स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHI-01

हिन्दी गद्य

प्रथम खण्ड : हिन्दी गद्य का विकास

द्वितीय खण्ड : हिन्दी कहानी

तृतीय खण्ड : हिन्दी उपन्यास (पहला भाग)

तृतीय खण्ड : हिन्दी उपन्यास (दूसरा भाग)

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

पाठ्यक्रम परिचय

हिन्दी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम में अध्ययन के लिए कुल 40 इकाइयाँ हैं । इन इकाइयों के लिए 8 क्रेडिट हैं । हम आशा करते हैं कि इनका अध्ययन आप लगभग 240 घंटे में कर लेंगे ।

यह हिन्दी साहित्य का पाठ्यक्रम है । साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं को भली-भाँति समझने के लिए विधाओं को सरल से सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है । हमारा प्रयत्न है कि इस पाठ्यक्रम की सहायता से आप विविध विधाओं को भली-भाँति समझ लें और उनका आस्वादन कर सकें ।

इस पाठ्यक्रम में कुल छह खंड हैं । पहले खंड में दो इकाइयाँ हैं । इस खंड में हिन्दी गद्य के विकास के साथ हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का परिचय दिया जा रहा है । बाकी के पाँच खंडों में क्रमशः कहानी, उपन्यास, एकांकी, नाटक तथा निबंध विधाओं को रखा गया है । दूसरे खंड में कहानी विधा की 3 से 10 इकाइयों में पाँच कहानियों का अध्ययन कराया जाएगा । तीसरे खंड में 11 से 17 इकाइयों में साहित्य की लोकप्रिय विधा "उपन्यास" का अध्ययन कराया जाएगा । इसमें आप प्रेमचंद के उपन्यास 'निर्मला' का अध्ययन करेंगे । एकांकी विधा का अध्ययन हम चौथे खण्ड की 18 से 25 इकाइयों में करेंगे । पाँचवे खंड में आप 26 से 32 इकाइयों में नाटक जैसी पारम्परिक विधा का अध्ययन करेंगे। इसमें जयशंकर प्रसाद के नाटक 'धुवस्वामिनी' का अध्ययन करेंगे। इस पाठ्यक्रम के अंतिम और छठे खंड की 33 से 40 तक की आठ इकाइयों में आप निबंध विधा का अध्ययन करेंगे ।

हिन्दी में गद्य की विविध विधाओं की रचनाएँ उच्चकोटि की हैं इस पाठ्यक्रम के माध्यम से जहाँ आपको विधाओं की रचनागत विशिष्टताओं को समझने में मदद मिलेगी, वहीं आप साहित्य का रसास्वादन भी कर सकेंगे ।

पूरे पाठ्यक्रम की सामग्री हमने निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की है ।

हिंदी गद्य	2 इकाइयाँ
कहानी	8 इकाइयाँ
उपन्यास	7 इकाइयाँ
एकांकी	8 इकाइयाँ
नाटक	7 इकाइयाँ
निबंध	8 इकाइयाँ
कुल	40 इकाइयाँ

खंड परिचय

हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आप पहले खंड का अध्ययन करने जा रहे हैं । इस खंड में दो इकाइयाँ हैं ।

(1) 'हिन्दी गद्य का विकास' और (2) 'हिन्दी गद्य की विविध विधाएँ। ।

अध्ययन के लिए जिन्होंने हिन्दी भाषा को एक विषय के रूप में चुना है । उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे हिन्दी गद्य के विकास को जानें । इस खंड की पहली इकाई में इस बात की चर्चा की गयी है कि हिंदी गद्य का विकास किस प्रकार हुआ । वे कौन सी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने हिंदी गद्य के विकास में सहायता पहुँचाई या रुकावटें डाली । खंड का अध्ययन करने के बाद आप यह भी जान सकेंगे कि किन-किन लेखकों के योगदान से हिन्दी गद्य का विकास हुआ है ।

इस खंड की दूसरी इकाई हिंदी गद्य की विविध विधाओं से संबंधित है । इस इकाई में हिंदी गद्य की विभिन्न विधाओं के स्वरूप और विशेषताओं के साथ उन विधाओं के विकास में उल्लेखनीय योगदान करने वाले लेखकों के नामों का भी उल्लेख है ।

इन पाठों को और अच्छी तरह समझने के लिए आप हिंदी कथा साहित्य' शीर्षक ऑडियो सुन सकते हैं तथा हिंदी गद्य साहित्य' शीर्षक वीडियो देख सकते हैं ।

इकाई के अंत में कुछ उपयोगी पुस्तकों के नाम दिए जा रहे हैं । अध्ययन में विशेष रुचि रखने वालों के लिए ये पुस्तकें लाभकारी होंगी । आप इनका अध्ययन कर सकते हैं ।

इस खंड के अध्ययन के बाद गृहकार्य कर अपनी उत्तर पुस्तिकाएँ विश्वविद्यालय के पास मूल्यांकन तथा सुझावों के लिए भेजें ।

ई 1 हिंदी गद्य का विकास

की रूपरेखा

उद्देश्य
स्तावना
द्य साहित्य
हिंदी गद्य की पृष्ठभूमि
.3.1 ब्रजभाषा गद्य
.3.2 खड़ी बोली में गद्य
हिंदी गद्य का विकास
.4.1 हिंदी गद्य के विकास के कारण
.4.2 प्रारंभिक गद्य लेखन
.4.3 अंग्रेजों की भाषा नीति
भारतेन्दु युग
द्विवेदी युग
प्रेमचंद और उनके बाद
सारांश
शब्दावली
कुछ उपयोगी पुस्तकें
बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

उद्देश्य

हिन्दी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम-1 की पहली इकाई पढ़ने जा रहे हैं । इस इकाई में हिंदी गद्य के का परिचय दिया गया है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- द्य एवं काव्य में अंतर कर सकेंगे,
- अंग्रेजों के समय में भाषा संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे,
- खड़ी बोली गद्य की आरंभिक स्थितियों का उल्लेख कर सकेंगे,
- भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग के गद्य साहित्य के विकास का उल्लेख कर सकेंगे;
- मचंद एवं उनके बाद के गद्य साहित्य के विकास को संक्षेप में समझ सकेंगे,
- चनाकारों के योगदान का उल्लेख कर सकेंगे ।

प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-1 के अंतर्गत यह पहली इकाई है । इसमें हिन्दी गद्य के आरंभ, विस्तार एवं को बताया गया है । आधुनिक युग से पूर्व का साहित्य मुख्यतः पद्य में है । गद्य की कुछ ँ अवश्य प्राप्त हुई हैं, लेकिन हिंदी साहित्य परम्परा में उनका विशेष महत्व नहीं है । गद्य की क शुरुआत आधुनिक युग में ही हुई । ऐसा क्यों हुआ और गद्य के विकास की दशा क्या रही, र हम इस इकाई में विचार करेंगे ।

गद्य साहित्य

उपन्यास पढ़ते होंगे, कहानियाँ पढ़ते होंगे या लेख पढ़ते होंगे, किन्तु क्या आपने कभी सोचा है कि के इन रूपों का विकास कैसे हुआ ? इस इकाई में हम देखेंगे कि साहित्य के अंतर्गत गद्य का किस प्रकार हुआ । आपने तुलसीदास, सूरदास, मीराँ आदि की रचनाएँ पढ़ी होंगी । आपने किया होगा कि उपन्यास और कहानी से सूर, मीराँ और तुलसी की रचनाएँ भिन्न प्रकार की साहित्यिक भाषा में सूर, मीराँ आदि की रचनाओं को छन्दोबद्ध रचना या काव्य कहा जाता है, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि को गद्य । इसे और स्पष्ट रूप से समझने के लिए आप दास की इन पंक्तियों को देखिए :

"सीय राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।"

अब नीचे दी गयी इन पंक्तियों का मिलान तुलसीदास की उपर्युक्त रचना से करें । ये पंक्तियाँ आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता' से उद्धृत की गयी हैं :

"मनुष्य सामाजिक प्राणी है । अतः बालकपन से वृद्धावस्था तक वह अपने लिए संगति खोजता रहता है । छोटे बच्चे भी अपने बराबर वालों के साथ खेलने-कूदने, हँसने-लड़ने में प्रसन्न रहते हैं ।"

दोनों उदाहरणों की तुलना करने पर आप स्पष्ट रूप से पहचान जाएँगे कि भाषा के इन दो प्रयोगों में क्या अंतर है ? छन्दोबद्ध रचना में गेयता तथा लय होती है, जबकि गद्य में भाषा व्याकरण के अनुरूप होती है । समस्त विश्व साहित्य में आरंभ से ही काव्य-रचना का प्रमुख स्थान रहा है । भारत में जहाँ 'रामायण', 'महाभारत' जैसे महाकाव्यों की रचना हुई, वहाँ यूनान में 'इलियड', 'ओडिसी' आदि लिखे गये । काव्य के अलावा नाटक भी लिखे गये । उनमें भी काव्य की भाषा का प्रयोग अधिक हुआ है । प्रश्न उठता है कि आधुनिक युग से पूर्व गद्य की बजाय पद्य में ही रचना क्यों होती रही ? अपनी गेयता, छन्दोबद्धता और लय के कारण काव्य को याद रखना सरल था । पहले जमाने में मुद्रण की सुविधाएँ कम थीं, इसलिए मौखिक परंपरा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी साहित्य को आगे बढ़ाने में काव्य की भाषा सहायक थी । प्राचीन काल में गद्य में साहित्य-रचना न होती हो, यह बात नहीं है, पर इस प्रकार की रचनाएँ संख्या में काफी कम थीं । भावों की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ काव्य-रचना की जाती थी वहाँ सैद्धांतिक निरूपण के लिए गद्य का भी प्रयोग होता था । संस्कृत साहित्य में भी गद्य का प्रयोग हुआ है । बाण भट्ट ने 'कादम्बरी' की रचना गद्य में ही की थी । आप सब 'पंचतंत्र' से भी परिचित होंगे । इसके लेखक थे, विष्णु शर्मा । यह ग्रंथ भी गद्य में रचित है ।

अब आपके मन में यह प्रश्न उठ रहा होगा कि आधुनिक युग में काव्य की प्रमुखता के बावजूद गद्य में लेखन क्यों शुरू हुआ और इसके क्या-क्या कारण थे ? शुरू से ही आपस में विचार-विनिमय के लिए एक अलग प्रकार की भाषा का प्रयोग होता था । यह साधारण बोल-चाल की भाषा थी और इसका रूप काव्य से अलग था । भाषा के इसी रूप को गद्य कहा गया था । भाषा का वह रूप जो उसकी व्याकरणिक संरचना के सर्वाधिक नज़दीक हो, गद्य कहलाता है, जबकि पद्य में प्रमुखता व्याकरणिक नियमों की नहीं छंद, लय और भाव की होती है । गद्य में लेखन वैसे तो प्राचीनकाल से ही होता आ रहा था, लेकिन इसकी प्रमुखता मुद्रण प्रणाली के अस्तित्व में आने और समाचारपत्रों के प्रकाशित होने के बाद ही हुई । भारत में मुद्रण की आधुनिक प्रणाली का आरंभ अंग्रेजों के आने के बाद हुआ और समाचार पत्रों का आरंभ इसके भी बाद हुआ । मुद्रण की आधुनिक प्रणाली और यातायात के तेज साधनों ने समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन को प्रोत्साहित किया । इनके लिए गद्यात्मक भाषा ही उपयुक्त थी । मुद्रण प्रणाली और यातायात के आधुनिक साधनों का जैसे-जैसे फैलाव होता गया, वैसे-वैसे गद्य लेखन को भी प्रोत्साहन मिलता गया ।

1.3 हिंदी गद्य की पृष्ठभूमि

अब हम हिंदी गद्य साहित्य के प्रणयन एवं विकास की चर्चा करेंगे और देखेंगे कि हिंदी गद्य किस प्रकार विकसित होकर वर्तमान रूप में हमारे सामने आया । आधुनिक काल के आरंभ से पहले अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व अन्य भारतीय भाषाओं की तरह हिन्दी-भाषा में भी गद्य की रचनाएँ बहुत अधिक नहीं थीं । आज खड़ी बोली साहित्य की भाषा है, किंतु प्राचीन काल में उसका साहित्य में प्रयोग बहुत समय तक नगण्य-सा ही रहा, क्योंकि उस समय ब्रजभाषा साहित्य की भाषा थी । लम्बे समय तक साहित्यिक रचनाएँ ब्रजभाषा में ही होती रहीं । भाव-विचार की अभिव्यक्ति के लिए काव्य की रचना होती थी, लेकिन जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, आपस में विचार-विनिमय के लिए एक अलग प्रकार की भाषा का प्रयोग होता था । बोलचाल की यह भाषा गद्यात्मक थी । ब्रजभाषा के बोलचाल के इस रूप का प्रयोग गद्यात्मक रचनाओं में होता था । हिंदी गद्य के विकास की परंपरा की दृष्टि से ऐसी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । आइए, हम ऐसी प्रारंभिक गद्य रचनाओं के रूप से परिचय प्राप्त करें ।

1.3.1 ब्रजभाषा गद्य

हमने बताया है कि ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा थी और भाव-विचार को व्यक्त करने के लिए पद्य में इसका प्रयोग होता था, किन्तु इस भाषा के बोलचाल के रूप का प्रयोग भी साहित्य में होता था । आप यह तो जानते ही होंगे कि विद्वानों की भाषा आम आदमियों की भाषा से भिन्न होती है और वे आपस में एक अलग प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं । प्रायः साहित्य में ऐसी ही भाषा का

प्रयोग होता है । इसके ठीक विपरीत जनसाधारण की भाषा साधारण बोल-चाल की होती है । इसलिए जब कोई विद्वान या उपदेशक अपने मत का प्रचार करना चाहता है तो उसे जनसाधारण की भाषा में ही अपने मत या विचार को समझाना पड़ता है । इस प्रकार गद्य के प्रणयन का एक कारण यह भी है कि इसके प्रयोग से लेखक अपना संदेश जनता तक सुगमता से पहुँचा सकता है । आरंभिक ब्रजभाषा-गद्य का प्रयोग इसी उद्देश्य से हुआ है । काव्य ग्रन्थों को आम जनता तक पहुँचाने के लिए टीकाएँ लिखी गयीं । ये टीकाएँ गद्य की भाषा में दिखाई पड़ती हैं । उस काल की गद्य-रचना का एक उदाहरण देखिए :

श्री गुरु परमानंद तिनको दंडवत है । हैं कैसे परमानंद आनंद स्वरूप है
सरीर जिन्हि को जिन्हि के नित्य गाए तें शरीर चेतन्नि अरु आनंदमय होत् है ।

('हिंदी साहित्य का इतिहास' रामचन्द्र शुक्ल पृ०-276)

उपरिलिखित गद्य रचना का काल संवत् 1400 के आस-पास माना जाता है ।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि पद्य के साथ गद्य का लेखन भी होता रहता था । ब्रजभाषा गद्य का प्रामाणिक रूप 17वीं शताब्दी उत्तरार्ध की दो रचनाओं- 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (औरंगज़ेब के काल की रचना) में मिलता है । इनमें वैष्णव भक्तों की महिमा व्यक्त करने वाली कथाएँ लिखी गई हैं । इनकी रचना भक्तिभाव के प्रचार के लिए की गई थी । इनमें से नीचे दिये गये उदाहरण में आप स्पष्ट देखेंगे कि इनमें गद्य भाषा व्यवस्थित तथा बोल-चाल के रूप में है ।

"सो श्री नंदगाम में रहा हतो । सो खंडन, ब्राह्मण शास्त्र पढ़्यो हतो । सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सबको खंडन करतो, ऐसो वाकों नेम हतो । याही तें सब लोगन ने वाकों नाम खंडन पारवो हतो ।"

('हिंदी साहित्य का इतिहास', रामचन्द्र शुक्ल, पृ०-277)

इसी प्रकार वि. संवत् 1660 के आस-पास भक्त नाभादास की रचना 'अष्टयाम' में ब्रजभाषा गद्य का जो रूप देखने को मिलता है उसकी भाषा भी सामान्य बोल-चाल की ही है, यद्यपि वह कुछ अधिक परिमार्जित है ।

"तब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए । फिर ऊपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए । फिर राजाधिराज जू को जोहार करिकै श्री महेंद्रनाथ दशरथ जू निकट बैठते भए ।"

('हिंदी साहित्य का इतिहास' रामचन्द्र शुक्ल पृ०-277)

ध्यान देने की बात यह है कि उस समय ब्रजभाषा में गद्य की रचना छिटपुट रूप में ही होती थी— इसकी कोई विकसित परंपरा नहीं मिलती । आइए, देखें कि इसके क्या कारण हो सकते हैं ? इसका एक मुख्य कारण है ब्रजभाषा में गद्य की क्षमता का विकास न हो पाना । हुआ यह कि ब्रजभाषा सीमित ब्रज क्षेत्र की भाषा थी । विचारों के आदान-प्रदान के लिए सम्पर्क-भाषा के रूप में ब्रजभाषा अपने सीमित क्षेत्र में ही बनी रही । ब्रज क्षेत्र से बाहर संपर्क भाषा के रूप में इसका विकास नहीं हो पाया । इसलिए इसमें गद्य की क्षमता का भी विकास नहीं हो पाया । यही कारण है कि ब्रजभाषा काव्य के लिए ही बनी रही और खड़ी बोली ने गद्य का स्थान ले लिया ।

1.3.2 खड़ी बोली में गद्य

हमने देखा कि किन कारणों से ब्रजभाषा में गद्य की परंपरा आगे नहीं बढ़ पाई । अब हम देखेंगे कि खड़ी बोली में गद्य का विकास किन कारणों से हुआ । खड़ी बोली जनसाधारण के बोल-चाल की भाषा थी । धीरे-धीरे साहित्य में इसका प्रयोग होने लगा और गद्य की रचनाएँ भी इसमें होने लगीं। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति ने खड़ी बोली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

चौदहवीं शताब्दी में खड़ी बोली दिल्ली एवं उसके आस-पास के क्षेत्र में बोली जाने लगी थी । मुगलकाल में शासन की सुविधा एवं जनता से सम्पर्क बनाने के लिए खड़ी बोली का प्रयोग प्रारंभ हुआ । मुगल भी बाहर से आए थे । उनकी मातृ-भाषा फ़ारसी थी । जब खड़ी बोली का प्रयोग संपर्क भाषा के रूप में शुरू हुआ तो फ़ारसी मिश्रित खड़ी बोली से बोल-चाल की नई शैली का जन्म हुआ । पढ़े-लिखे लोग बोल-चाल के इस मिश्रित रूप को फ़ारसी लिपि में लिखने लगे । इस नई शैली को हिन्दई,

हिन्दवी, हिन्दी, रेख्ता और आगे चलकर उर्दू नाम दिया गया । शायरों ने इसमें शायरी करनी आरंभ की । चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखीं ।

पहेली का एक उदाहरण देखिए :

एक थाल मोती से भरा, सबके ऊपर औंधा धरा ।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे ।।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, खुसरो ने खड़ी बोली में गद्य-रचना भी की थी, लेकिन उसके प्रमाण नहीं मिल पाए हैं ।

अमीर खुसरो के बाद खड़ी बोली का विकास दक्षिण के राज्यों में हुआ । डॉ० परमानन्द पांचाल के अनुसार, दक्खिनी हिंदी के रूप में वहाँ 14वीं से 18वीं शती तक दक्खिनी हिंदी में अनेक साहित्यिक ग्रंथों की रचनाएं हुई, जिनमें गद्य की रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । ख्वाजा बन्दा नवाज गैसू दराज (1322-1433), शाह मीराँ जी (—1496), बुरहानुद्दीन जानम (1544-1583) और मुल्ला वजही जैसे साहित्यकारों ने अपनी काव्य रचनाओं के साथ गद्य ग्रंथ भी लिखे । मुल्ला वजही ने 1635 ई० में अपने प्रसिद्ध गद्य-ग्रंथ 'सब रस' की रचना की, जिसका आरम्भ इस प्रकार से होता है :

"नकल—एक शहर था । शहर का नाउं सीस्तान । इस सीस्तान के बादशाह का नाउं अक्ल, दीन और दुनियां का सारा काम उस ते चलता, इसके हुक्म बाज जरी कई नई हिलता ...... वह चार लोको में इज्ज़त पाए ।"

इस प्रकार दक्खिनी हिंदी में लगातार गद्य साहित्य का विकास होता रहा । (देखिए-दक्खिनी हिन्दी : विकास और इतिहास, डॉ० परमानन्द पांचाल, पृ०-111)

मुगल साम्राज्य के विघटन ने खड़ी बोली के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । आपने देखा है कि खड़ी बोली मुगलों की संपर्क भाषा हो गई थी । जब अंतिम शक्तिशाली मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु हुई तो विशाल साम्राज्य को संगठित रखने की शक्ति बाद के किसी शासक में नहीं रही । दिल्ली, आगरा आदि पश्चिमी शहरों के स्थान पर लखनऊ, पटना, मुर्शिदाबाद आदि पूर्वी शहर समृद्ध हो चले । इसी कारण व्यापार की उन्नति के लिए व्यापारी वर्ग पूर्वी शहरों की ओर जाने लगे । चूँकि खड़ी बोली अब तक सम्पर्क भाषा बन चुकी थी, इसलिए इन व्यापारियों के साथ खड़ी बोली भी विस्तार पाती गई । इस प्रकार खड़ी बोली में गद्य की क्षमता का विकास होने लगा और उसमें गद्य की रचनाएँ होने लगीं ।
खड़ी बोली गद्य का प्रामाणिक रूप हमें मुगल बादशाह अकबर के दरबारी कवि गंग की रचना "चन्द छंद बरनन की महिमा" में मिलता है । इसका रचना काल सन् 1570 ई० स्वीकार किया गया है । निम्नलिखित उदाहरणों में आप दरबारी प्रभावयुक्त शिष्ट एवं परिष्कृत खड़ी बोली गद्य का रूप देखेंगे ।

"इतना सुनके पातसाह जी श्री अकबर साहि जी आप सेर सोना नरहर चारक को दिया । इनके डेढ़ सेर सोना हो गया । रास बंचना पूरा भया । आम खास बरखास हुआ ।

('हिंदी साहित्य का इतिहास', रामचंद्र शुक्ल, पृ०-280)

साहित्य में स्थान बनाने के लिए किसी भाषा को समय की अपेक्षा होती है । खड़ी बोली के साथ भी ऐसा ही हुआ । धीरे-धीरे खड़ी बोली गद्य का विकास हो रहा था । सन् 1741 ई० में पटियाला दरबार के 'रामप्रसाद निरंजनी' द्वारा रचित 'भाषा योग वासिष्ठ' से हम इस विकास की श्रृंखला को जोड़ सकते हैं । आप इस उदाहरण को देखें :

"हे राम जी, जो पुरुष अभिमानी नहीं है । वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है । मलीन वासना जन्मों का कारण है । ऐसी वासना छोड़कर जब तुम स्थित होगे तब तुम कर्त्ता हुये भी निर्लेप रहोगे ।

('हिंदी साहित्य का इतिहास', रामचंद्र शुक्ल पृ०-281)

इस उदाहरण को देखकर क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जैसे यह आज की परिमार्जित गद्य रचना है । खड़ी बोली कम समय में ही साहित्य में स्थान पा गई और तेजी के साथ इसमें गद्य का विकास हुआ । आगे हम देखेंगे कि किन-किन कारणों से इतनी शीघ्रता से इसका विकास हुआ ।

ध प्रश्न

व तक खड़ी बोली गद्य की पृष्ठभूमि का परिचय प्राप्त किया है । अब नीचे कुछ बोध प्रश्न रहे हैं, इन प्रश्नों को ध्यानपूर्वक पढ़िए और उनका उत्तर दीजिए । पाठ के अंत में दिये गये इनका मिलान कीजिए । इससे आपको मालूम हो सकेगा कि आपने जो पढ़ा है, उसे ठीक से या नहीं । अगर आप सही उत्तर न दे सकें तो पाठ को दोबारा पढ़िए ।

निक काल से पूर्व साहित्य की रचना काव्य में होती थी । नीचे दिए गए कारणों में से तीन हैं और एक गलत । गलत कारण के सामने (×) का निशान लगाइए ।

काव्य में गेयता होती है, इससे उसको याद रखना आसान होता है । ☐

आधुनिक युग से पूर्व मुद्रण की आधुनिक प्रणाली का विकास नहीं हुआ था । ☐

काव्य अभिव्यक्ति का सबसे अक्षम रूप है । ☐

आधुनिक युग से पूर्व पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ नहीं हुआ था । ☐

ाषा के स्थान पर खड़ी बोली को गद्य भाषा के रूप में स्वीकार किया गया क्योंकि (सही य के सामने √ का चिन्ह बनाइए ।)

खड़ी बोली संपर्क भाषा के रूप में हिंदी क्षेत्र में व्यवहृत होने लगी थी । ☐

ब्रजभाषा काव्य की भाषा थी । ☐

पद्य और गद्य की भाषा अलग-अलग होती है । ☐

खड़ी बोली को राज्याश्रय प्राप्त था । ☐

कुछ पुस्तकों के नाम दिये गये हैं, इनकी भाषा का नाम लिखिए ।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता ( )

भाषा योग वासिष्ठ ( )

अष्टयाम ( )

चंद छंद वरनन की महिमा ( )

दी गद्य का विकास

। गद्य का जो रूप आज हमारे सामने है वह सहज ही विकसित नहीं हो गया था । इसके परिस्थितियों, संस्थाओं और व्यक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इनमें से कुछ कारणों चर्चा हम आगे करने जा रहे हैं ।

ंदी गद्य के विकास के कारण

ाज्य की स्थापना के साथ भारत में परिवर्तनों का जो सिलसिला आरंभ हुआ, उसने नजीवन पर बहुत व्यापक असर छोड़ा । ये परिवर्तन किसी एक क्षेत्र से ही संबद्ध नहीं थे । ई परिवर्तनों का सीधा संबंध हिंदी गद्य के विकास से है । नीचे इनका संक्षिप्त विवरण दिया ।

नरियाँ : आप जानते हैं हमारा देश धर्मनिरपेक्ष है और यहाँ हिन्दू, मुसलमान ही नहीं, ईसाई ानने वाले भी बहुत बड़ी संख्या में हैं । दक्षिण भारत के केरल एवं पूर्वी भारत के कई छोटे ईसाई धर्म को मानने वालों की संख्या काफी अधिक है । आपको शायद यह आभास भी आज से कई सौ वर्ष पहले ईसाई धर्म प्रचारक इस देश में आये थे । जब अंग्रेज भारत की र छा गये तो ईसाई धर्म प्रचारकों की गतिविधियाँ भी तेज हो गईं और इन गतिविधियों ने के विकास में योगदान दिया । गद्य के विकास की आरंभिक चर्चा में आपने देखा है कि अपना संदेश पहुँचाने के लिए बोलचाल के गद्य का प्रयोग होता था । ईसाई धर्म प्रचारकों ता की भाषा में प्रचार शुरू किया । हिंदी गद्य में छोटी-छोटी प्रचार-पुस्तिकाओं तथा इबिल' के हिंदी-अनुवाद से ईसाई धर्म के प्रचार को जहाँ गति मिली, वहाँ प्रकारान्तर से गद्य के विकास में सहायता भी मिली ।

नवीन आविष्कार : अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिए मुद्रण, यातायात और संचार के नये साधनों का इस्तेमाल किया । ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् 1844 से 1856 के बीच देश के दूर-दूर के क्षेत्रों को रेल और तार से जोड़ दिया । मुद्रण, तार और रेल ने जनजीवन में बड़ा परिवर्तन ला दिया । यातायात के तेज साधनों ने पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन संभव बनाया क्योंकि समाचारपत्रों को रेल तथा अन्य तेज़ वाहनों से जल्दी-से-जल्दी दूसरे शहरों तक पहुँचाया जा सकता था । तार की सुविधा से समाचारों को जल्दी प्राप्त करना और भेजना संभव हुआ । इसी से बड़ी मात्रा में पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन और प्रसारण सम्भव हुआ । और इसी के कारण गद्य लेखन का तेजी से विस्तार हुआ ।

शिक्षा का विस्तार : सन् 1834 में लार्ड मैकाले में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने भारत में अंग्रेजी शिक्षा को प्रचारित करने की आवश्यकता पेश की । सन् 1835 में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से नये ढंग की शिक्षा देने की शुरुआत की गयी । इससे पहले तक भारत में शिक्षा संस्कृत और फ़ारसी के माध्यम से दी जाती थी । राजा राममोहन राय अंग्रेजी शिक्षा के पक्षधर थे क्योंकि उनका विचार था कि संस्कृत और फ़ारसी की शिक्षा से भारत नये युग में प्रवेश नहीं कर सकता । अंग्रेजी शिक्षा का लाभ भी हुआ । इससे भारतीयों को पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की गहरी जानकारी प्राप्त हुई । इससे भारतीयों में जहाँ अपनी परम्परा को नयी दृष्टि से देखने का अवसर मिला, वहाँ अपनी संस्कृति और राष्ट्रीय परम्परा के प्रति स्वाभिमान भी जाग्रत हुआ । शिक्षा के लिए जिन नये स्कूलों और कालेजों की स्थापना की गयी थी उनमें अंग्रेजी के साथ-साथ कहीं-कहीं हिन्दी-उर्दू की शिक्षा भी दी जाती थी । सन् 1800 में स्थापित फोर्ट विलियम कालेज में सन् 1803 में हिन्दी-उर्दू की पढ़ाई आरम्भ हुई और सन् 1824 से हिंदी की पढ़ाई का विशेष प्रबन्ध हुआ । पर उनकी रीति हिंदी के बहुत अनुकूल नहीं थी । सन् 1823 में आगरा कालेज की स्थापना हुई और उसमें हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था की गई । दूसरे सन् 1817 ई० में 'कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी' और सन् 1833 में 'आगरा स्कूल बुक सोसायटी' की स्थापना हुई । इन संस्थाओं ने अच्छे-अच्छे पाठ्य ग्रंथ तैयार करवाए । इस तरह शिक्षा के विस्तार ने भी हिन्दी गद्य को विकसित करने में मदद की ।

समाज-सुधार आंदोलन : 19वीं सदी में कई समाज-सुधार आंदोलनों की शुरुआत हुई । इन आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य था भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करना तथा जनता में अपने देश एवं धर्म के प्रति चेतना जगाना । चूँकि जनता तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए जनता की भाषा आवश्यक थी, अतः जिन नेताओं ने इस कार्य को शुरू किया, उन्होंने जनता की भाषा में अपने मत का प्रचार किया । राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' द्वारा यह कार्य किया । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना की और अपनी पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" की रचना हिन्दी गद्य में ही की । श्रद्धा राम फुल्लौरी तथा नवीन चंद्र राय ने भी समाज सुधार के लिए हिन्दी गद्य का ही सहारा लिया । पंजाब में हिंदी प्रचार के लिए इन्होंने पत्र निकाला और गद्य में रचनाएं भी कीं ।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन : मुद्रण की सुविधा से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन सरल हो गया । 30 मई सन् 1826 ई० में पंडित जुगलकिशोर शुक्ल ने कलकत्ता से हिन्दी में 'उदंत मार्तण्ड' पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया । यह हिन्दी का पहला समाचार-पत्र था । यह साप्ताहिक पत्र था । 'उदंत मार्तण्ड' नवयुग के आगमन की सूचना लेकर आया । उस समय हिन्दी पाठकों की संख्या बहुत कम थी। लगभग डेढ़ वर्ष निकल कर 4 दिसम्बर 1827 ई० को यह पत्र बंद हो गया । पत्र निकालने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए पत्र ने अपने पहले अंक में लिखा था :

यह उदंत मार्तण्ड अब पहले पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया, पर अंग्रेजी ओ पारसी ओ बँगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जानने ओ पढ़नेवालों को ही होता है । इससे सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेयें ओ पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भाषे की उपज न छोड़ें इसलिए ....'

(हिन्दी साहित्य का इतिहास में उद्धृत, पृ०-291)

हिंदी का दूसरा पत्र "बंगदूत" था । 'बंगदूत' का प्रकाशन 9 मई सन् 1829 को कलकत्ता में हुआ था । कलकत्ता से ही 1834 ई० में 'प्रजामित्र' नाम का तीसरा हिन्दी पत्र प्रकाशित हुआ । हिन्दी भाषी क्षेत्र से पहला समाचारपत्र 1844 में निकला था, इसका नाम 'बनारस' था और इसे राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' ने निकाला था । 1846 ई० में मौलवी नासिरूद्दीन के संपादकत्व में 'मार्तण्ड' नामक एक और पत्र प्रकाशित हुआ । इस तरह 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कई समाचार-पत्र प्रकाशित हुए । 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में तो पत्र-पत्रिकाओं की संख्या काफी बढ़ गई । पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी गद्य को विकसित और परिमार्जित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

1.4.2 प्रारंभिक गद्य लेखन

सन् 1800 में अंग्रेजों के प्रयास से कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई। सन् 1803 ई० में इस कालेज के हिन्दी-उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू में पुस्तकें लिखाने का प्रयत्न किया। इन्होंने कई मुंशियों की नियुक्ति की। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "जान गिलक्राइस्ट प्रधान रूप से हिंदुस्तानी या उर्दू के पक्षपाती थे, परन्तु वे जानते थे कि उस भाषा की आधारभूत भाषा हिंदवी या हिंदई थी। इसी आधारभूत भाषा की जानकारी के लिए उन्होंने कुछ 'भाषा मुंशियों' की सहायता प्राप्त की।" (हिन्दी साहित्यः उसका उद्भव और विकास पृ०-226) भाषा मुंशियों में श्री लल्लूलालजी और पं० सदल मिश्र ने हिन्दी में गद्य पुस्तकें लिखीं।

इसी समय दिल्ली निवासी मुंशी सदासुखलाल जी ने बहुत ही सुंदर भाषा में भागवत की कथा का 'सुखसागर' नाम से भाषांतर किया और लखनऊ के मुंशी इंशाअल्ला खाँ ने रानी 'केतकी की कहानी' नाम से एक ऐसी कथा लिखी, जिसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों को हटाकर शुद्ध हिन्दी लिखने की कोशिश की गयी थी। हिन्दी गद्य के आरंभिक विकास में इन चारों लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है।

मुंशी सदासुखलाल "नियाज" (1746–1824) उर्दू और फ़ारसी के अच्छे लेखक और कवि थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "इनकी भाषा कुछ निखरी हुई और सुव्यवस्थित है, पर तत्कालीन प्रचलित पंडिताऊ प्रयोग भी इनमें मिल जाते हैं।" 'सुखसागर' के अतिरिक्त 'विष्णु पुराण' के प्रसंगों के आधार पर आपने एक अपूर्ण ग्रंथ की भी रचना की थी। सदासुखलालजी की भाषा में सहजता और स्वाभाविकता है। इनकी भाषा का यह उदाहरण द्रष्टव्य है :

विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका जो सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कह के लोगों को बहकाइए, फुसलाइए और सत्य छिपाइए, व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए और मन को, कि तमोवृत्ति से भर रहा है, निर्मल न कीजिए।

(हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की उक्त पुस्तक से उद्धृत पृ०-228)

मुंशी इंशाअल्ला खाँ (मृत्यु सन् 1818) ने सन् 1798 और सन् 1803 के बीच "उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी" की रचना की थी। कहानी लिखने का कारण स्पष्ट करते हुए मुंशीजी ने लिखा थाः

"एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। ......बस, जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते-चालते हैं ज्यों का त्यों वही सब डौल रहें और छाँव किसी की न हो।"

('हिन्दी साहित्य का इतिहास' से उद्धृत, पृ०-285)

इंशाअल्ला खाँ ने अपनी भाषा को बाहर की बोली (अरबी, फ़ारसी, तुर्की), गँवारी (ब्रजभाषा, अवधी आदि) और भाखापन (संस्कृत शब्दों का मेल) से मुक्त रखने की प्रतिज्ञा की थी किंतु उनके वाक्य विन्यास पर फ़ारसी का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। शुक्ल जी के अनुसार "आरंभकाल के चारों लेखकों में इंशा की भाषा सबसे चटकीली, मटकीली, मुहावरेदार और चलती है।" (वही पृ०-286) उनकी भाषा का एक उदाहरण देखिए :

इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं।

('हिन्दी साहित्य का इतिहास' से उद्धृत, पृ०-286)

लल्लूलाल जी (सन् 1763-1825) फोर्ट विलियम कालेज से संबद्ध थे। इन्होंने भागवत के दशम स्कंध की कथा के आधार पर "प्रेमसागर" की रचना की। इसकी भाषा पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। विदेशी भाषा के शब्द इसमें कहीं-कहीं आ गये हैं, किंतु कोशिश इनसे बचने की है। द्विवेदी जी के शब्दों में "इस ब्रजरंजित खड़ी बोली में वह सहज प्रवाह नहीं है जो सदासुखलाल की भाषा में है।" शुक्ल जी की दृष्टि में इसकी भाषा "नित्य व्यवहार के अनुकूल नहीं" है।

पं. सदल मिश्र बिहार के रहने वाले थे और लल्लूलालजी की तरह फोर्ट विलियम कालेज से संबद्ध थे । इन्होंने "नासिकेतोपाख्यान" की रचना की । शुक्लजी ने लल्लूलालजी की भाषा से इनकी भाषा की तुलना करते हुए लिखा है कि "लल्लूलालजी के समान इनकी भाषा में न तो ब्रजभाषा के रूपों की वैसी भरमार है और न परंपरागत काव्य भाषा की पदावली का स्थान-स्थान पर समावेश । इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहाँ तक हो सकता है, खड़ी बोली का ही व्यवहार किया है ।" सदल मिश्र की भाषा में भी वह साफ सुथरापन नहीं है जो सदासुखलाल के यहाँ है । इनकी भाषा पर पूरबी बोली का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है । आधुनिक हिन्दी गद्य का आभास सदासुखलाल और सदलमिश्र की भाषा में ही दिखायी देता है, उसी का आगे विकास हुआ है ।

1.4.3 अंग्रेज़ों की भाषा नीति

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व यहाँ की राजकाज की भाषा फ़ारसी थी । लार्ड मैकालें के प्रयत्नों से कंपनी सरकार ने सन् 1835 से अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का कार्य शुरू किया । सन् 1836 ई० तक फ़ारसी ही अदालत की भाषा थी । लेकिन यह भी महसूस किया जा रहा था कि फ़ारसी से आम जनता को काफी परेशानी हुई है, इसलिए सन् 1836 ई० में ही एक "इश्तहारनामे" के द्वारा संयुक्त प्रांत के सदर बोर्ड अदालतों की भाषा "हिन्दी" कर दी और कहा गया कि जनता नागरी या फ़ारसी किसी भी लिपि में अर्जी दे सकती है । सरकार के इस फैसले का विरोध हुआ और सन् 1837 ई० में अदालतों की भाषा उर्दू कर दी गयी । उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक हिन्दी के विकास में सरकार की ओर से कोई मदद नहीं मिली । न तो इसे शिक्षा का माध्यम बनाया गया, न अदालतों का और न सरकारी कामकाज का ही । ऐसे समय में भी कुछ लोगों ने हिन्दी के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की । इनमें राजा शिवप्रसाद, 'सितारे हिंद' और राजा लक्ष्मणसिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद (सन् 1823-1895)

राजा शिवप्रसाद शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर के पद पर नियुक्त थे । वे हिन्दी के पक्षधर थे, लेकिन सरकारी नीति के कारण उसका खुलकर समर्थन नहीं कर सकते थे । सरकारी हलकों में उर्दू को शिष्ट भाषा और हिन्दी को गंवारू भाषा माना जाता था । ऐसी परिस्थिति में राजा जी ने ठेठ हिन्दी का सहारा लिया । अरबी, फ़ारसी के शब्दों को ग्रहण करने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया । उस समय साहित्य के कोर्स के लिए पुस्तकें नहीं थीं । राजा शिवप्रसाद ने स्वयं तो कोर्स की पुस्तकें लिखी हीं, पंडित श्रीलाल एवं पंडित वंशीधर को भी इस कार्य पर लगाया । पाठ्यक्रम के लिए उन्होंने कई कहानियों की रचना की जिनमें "राजा भोज का सपना", "वीर सिंह का वृत्तांत", "आलसियों का कोड़ा" आदि महत्त्वपूर्ण हैं । "राजा भोज का सपना" के इस उदाहरण में आप देखेंगे की उन्होंने सरल एवं चलती हिन्दी का प्रयोग किया है :

"वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो । उनकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत में व्याप्त रही है । बड़े-बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही कांप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते ।"

बाद में राजा साहब उर्दू के पक्षपाती होते गये । ऐसा शायद अंग्रेज अधिकारियों के दबाव के कारण हुआ । फिर भी उनके प्रारम्भिक कार्यों से हिन्दी-गद्य के विकास में सहायता मिली, इसमें कोई संदेह नहीं । सन् 1864 में उन्होंने "इतिहास तिमिर नाशक" इतिहास ग्रंथ लिखा था । इसका नाम तो संस्कृतनिष्ठ है किंतु भाषा उर्दू के नजदीक है । उन्होंने "बनारस" नाम का अखबार भी निकाला था । उसकी भाषा भी उर्दूनिष्ठ होती थी ।

राजा लक्ष्मणसिंह (सन् 1826-1896)

राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद के भाषा संबंधी दृष्टिकोण की तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई । राजा लक्ष्मणसिंह ने हिन्दी और उर्दू को दो अलग-अलग भाषाएं माना । उन्होंने कहा कि "कुछ अवश्य नहीं है कि अरबी-फ़ारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाय और न हम उस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी-फ़ारसी के शब्द भरे हैं ।" आचार्य द्विवेदी ने राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा पर अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि *"राजा साहब की भाषा में तद्भव शब्दों की मात्रा कम नहीं है। यद्यपि वह आरंभिक हिन्दी गद्य का ही नमूना है तथापि उसमें वक्ता और श्रोता के अनुकूल होने की क्षमता है और हमारी विशाल साहित्यिक परंपरा के अनुकूल है । भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्द नहीं के बराबर हैं परंतु वह काव्य की ब्रजभाषा के प्रभाव से एकदम मुक्त नहीं है ।"* राजा साहब ने कालिदास के कई ग्रंथों का अनुवाद किया । उनमें "मेघदूत", "अभिज्ञानशाकुंतलम्", का "शकुंतला

नाटक" नाम से अनुवाद और "रघुवंश" का अनुवाद काफी लोकप्रिय हुआ । राजा साहब की भाषा का उदाहरण देखिए ।

अनसूया (हौले प्रियंवदा से) सखी मैं भी इसी- सोच विचार में हूँ। अब इससे कुछ पूछूँगी। (प्रकट) महात्मा तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़ यहाँ पधारे हो ? क्या कारण है ?

(हिन्दी साहित्य का इतिहास से उद्धृत, पृ०-300)

राजा लक्ष्मण सिंह ने भाषा के प्रश्न के इस कठिन समय में हिन्दी का अपना नमूना सामने रखा और हिन्दी गद्य को समृद्ध किया । उन्होंने देखा कि रुचिकर साहित्य भाषा के स्थान पर एक ऐसी भाषा का साहित्य में प्रयोग बढ़ रहा है जो यहाँ के लोगों की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है, अतः उन्होंने सरल शुद्ध एवं संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को आगे बढ़ाया । इस कार्य के लिए सन् 1841 में उन्होंने 'प्रजाहितैषी' नामक पत्र निकाला ।

इस प्रकार हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से उपर्युक्त दोनों महानुभावों का योगदान पर्याप्त महत्वपूर्ण है । भाषा के भावी रूप का आभास इनकी रचनाओं में मिलता है । ऐसे समय में किसी ऐसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति की आवश्यकता थी कि जो भाषा को सुव्यवस्थित एवं मार्जित कर सके । इस आवश्यकता की पूर्ति भारतेंदु ने की । वे युग प्रवर्तक साहित्यकार थे ।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद और राजा लक्ष्मणसिंह के अतिरिक्त भी कई लोगों ने हिन्दी गद्य के विकास में योग दिया । उन्होंने अंग्रेजी से अनुवाद किये और पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं । इनमें रामप्रसाद त्रिपाठी, मथुराप्रसाद मिश्र, व्रजवासी दास, विहारीलाल चौबे, शिवशंकर, काशीनाथ खत्री, रामप्रसाद दुबे आदि प्रमुख हैं । हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आर्य समाज के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है स्वामी दयानंद ने "सत्यार्थ प्रकाश" की रचना हिन्दी गद्य में ही की थी, यद्यपि वे स्वयं गुजराती भाषी थे । आर्य समाज ने हिंदू धर्म की कुरीतियों को दूर करने और ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रभाव को निष्प्राण करने के लिए भी अथक प्रयत्न किया । इसके लिए आर्य समाज प्रचारकों ने हिन्दी भाषा का सहारा लिया । शुरूआती दौर में आर्य समाज का प्रभाव पंजाब में अधिक था । स्वामी दयानंद के प्रयत्नों से पंजाब में हिन्दी और संस्कृत को नवजीवन प्राप्त हुआ । लेकिन इससे पूर्व ही बाबू नवीनचंद्र राय और श्रद्धाराम फुल्लौरी ने पंजाब में हिन्दी के लिए अथक प्रयत्न किया था ।

बाबू नवीनचंद्र राय ने सन् 1863 और सन् 1880 के बीच भिन्न-भिन्न विषयों की बहुत-सी हिन्दी पुस्तकें तैयार कीं और दूसरों से तैयार कराई । नवीनचंद्र राय ने ब्रह्म समाज के सिद्धांतों के प्रचार के उद्देश्य से समय-समय पर कई पत्रिकाएँ निकालीं जिनमें "ज्ञानदायिनी" पत्रिका (सन् 1867) उल्लेखनीय है । (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 302) बाबू नवीनचंद्र राय का दृष्टिकोण उर्दू के प्रति अनुकूल नहीं था और उन्होंने उसका लगातार विरोध किया ।

पंजाब में हिन्दी को प्रचारित करने में दूसरा महत्वपूर्ण नाम पं० श्रद्धाराम फुलौरी का था । इन्होंने भी अपने प्रचार द्वारा ईसाई धर्म के प्रभाव को निस्तेज करने का प्रयास किया और धार्मिक और सामाजिक जागृति फैलाने का कार्य किया था । श्रद्धाराम जी ने "सत्यामृत प्रवाह" नाम का एक सिद्धांत ग्रंथ लिखा था जिसकी भाषा बहुत साफ और प्रौढ़ है । उन्होंने "आत्म चिकित्सा", "तत्वदीपक", "धर्म-रक्षा", "उपदेश संग्रह" आदि पुस्तकें लिखी थीं और "भाग्यवती" नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा था । यह उपन्यास सन् 1873 ई० में प्रकाशित हुआ था । इस प्रकार 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते हिन्दी गद्य का व्यापक व्यवहार होने लगा था और साहित्य रचना के लिए आवश्यक ज़मीन तैयार हो चुकी थी । ऐसे समय में भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे महान् व्यक्तित्व का आगमन हुआ जिनके प्रयासों से हिन्दी गद्य को एक नयी दिशा और ऊर्जा प्राप्त हुई ।

☛ बोध प्रश्न

4 नीचे हिन्दी गद्य के विकास के कुछ कारण बताए गये हैं, इनमें से एक कारण सही नहीं है, बताइए ।
   i) ईसाई धर्म प्रचारकों का योगदान
   ii) मुद्रण प्रणाली की शुरूआत
   iii) अंग्रेज सरकार का विशेष संरक्षण
   iv) पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन ( )

5 राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद
   i) उर्दू मिश्रित हिन्दी के पक्षधर थे ।
   ii) संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पक्षधर थे ।
   iii) ब्रजभाषा मिश्रित हिन्दी के पक्षधर थे ।
   iv) फ़ारसी के पक्षधर थे । (   )

6 "उदंत मार्तण्ड" के प्रकाशन का उद्देश्य था ।
   i) अधिक धन कमाना
   ii) जनता की भाषा में जनता से संवाद बनाना
   iii) अंग्रेजी का विरोध करना
   iv) हिन्दी साहित्य का प्रचार करना (   )

7 निम्नलिखित लेखकों में से किसकी भाषा को आधुनिक हिन्दी गद्य के सर्वाधिक नजदीक बताया गया है ।
   i) इंशाअल्ला खाँ
   ii) पं. सदासुखलाल
   iii) लल्लूलाल
   iv) जान गिलक्राइस्ट (   )

8 नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में दीजिए ।
   i) मुंशी सदासुखलाल फ़ोर्ट विलियम कालेज से संबद्ध रहे (हाँ/नहीं)
   ii) बाबू नवीनचंद्र राय ने पंजाब में आर्य समाज का प्रचार किया (हाँ/नहीं)
   iii) राजा लक्ष्मणसिंह ने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का आदर्श रखा (हाँ/नहीं)
   iv) राजा शिवप्रसाद ने 'रघुवंश' का अनुवाद किया (हाँ/नहीं)
   v) श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' उपन्यास की रचना की । (हाँ/नहीं)

अभ्यास

1 राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के भाषा संबंधी दृष्टिकोण की तुलना कीजिए । (केवल चार पंक्तियों में)

....

....

....

....

2 हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रण के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए । (केवल तीन पंक्तियों में)

....

....

....

1.5 भारतेंदु युग (सन् 1875-1900)

भारतेंदु हरिश्चन्द्र का जन्म बनारस के एक धनी परिवार में 2 सितम्बर सन् 1850 ई० को हुआ था । इनके पिता गोपाल चन्द्र भक्त तथा साहित्य प्रेमी थे । उन्होंने "नहुष वध" शीर्षक नाटक तथा कुछ कविताएं भी लिखी हैं । भारतेंदु ने घर पर रहकर ही विभिन्न भाषाओं की शिक्षा प्राप्त की । ग्यारह वर्ष की आयु से उन्होंने काव्य रचना आरंभ कर दी थी । विभिन्न विषयों पर अपनी रचनाओं के द्वारा इन्होंने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है । नाटक एवं काव्य के अतिरिक्त इन्होंने "कविवचन सुधा", "हरिश्चन्द्र मैगजीन" तथा "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" नामक पत्रिकाओं का संपादन भी किया । पत्रिकाओं के प्रकाशन का महत्त्व तत्कालीन लेखकों ने भली-भाँति समझ लिया था । इनके माध्यम से गद्य के विकास में बहुत सहायता मिली । भारतेंदु ने अपने समय तक प्रयुक्त खड़ी बोली के गद्य को परिमार्जित रूप में प्रस्तुत किया है । गद्य के विभिन्न क्षेत्रों-निबंध, नाटक, समालोचना आदि में उन्होंने एक नयी परंपरा का सूत्रपात किया है । उनकी रचनाएँ जहाँ देशभक्ति एवं भक्ति से जुड़ी हैं वहीं तत्कालीन समाज की अवस्था को भी दर्शाती हैं । 35 वर्ष की अल्पायु में हिन्दी साहित्य के लिए किये गये उनके कार्यों के

ान्तकारी प्रभाव हुए । भाषा के मामले में उन्होंने अपनी अवधारणा स्पष्ट की । वे "निज भाषा" के ोकास के पक्षधर थे । इसलिए उन्होंने लिखा है :

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल ।।"

ारतेंदु के मौलिक नाटक हैं—"वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति", "प्रेम योगिनी", "विषस्य विष्णौषधम" श्री चन्द्रावली नाटिका", "भारत दुर्दशा", "नील देवी", "अंधेर नगरी" आदि । उनके अनूदित नाटक : "विद्‌यासुंदर" "पाखंड-विडम्बन", "मुद्रा राक्षस", "सत्य हरिश्चंद्र", "कपूर मंजरी", "दुर्लभ बंधु" ादि । जीवन से ली गई सामग्री का उपयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है तथा समाज-सुधार एवं ाभक्ति का भी ध्यान रखा है ।

ारतेंदु अपने समय के लेखकों को प्रेरित किया करते थे । उनके प्रभाव एवं प्रयास से लेखकों की क ऐसी मंडली तैयार हुई जिसने भारतेंदु की परंपरा को आगे बढ़ाया । भारतेंदु मंडली के लेखक थे— ाप नारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन,' जगन्नाथ दास रत्नाकर, लमुकुन्द गुप्त, श्री निवास दास, राधा कृष्ण दास आदि । गद्य की विविध विधाओं पर इन लेखकों ने लम चलायी है । निबंध, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं में इन लेखकों की रचनाएं आज भी श्रेष्ठता ा प्रतीक बनी हुई हैं ।

टक के क्षेत्र में भारतेंदु के योगदान की चर्चा हम कर चुके हैं । उनके अलावा प्रताप नारायण मिश्र भी इस विधा में लेखन किया है । उन्होंने "भारत दुर्दशा" नाटक में पात्रों का मानवीकरण किया । इस नाटक के पात्रों—लाज, विद्या, आलस्य, मदिरा आदि को मिश्र जी ने मानव रूप में प्रस्तुत ाया है । "कलि कौतुक रूपक" "हठी हमीर नाटक" "गो संकट नाटक" आदि के अलावा मिश्र जी भी, पेट, मुच्छ, दान, जुआ आदि पर निबंध भी लिखे हैं । इसके अलावा इन्होंने 'ब्राह्मण' पत्रिका ि निकाली और उसका संपादन किया ।

बालकृष्ण भट्ट ने संवत् 1934 में प्रयाग से "हिन्दी प्रदीप" नामक मासिक पत्रिका निकाली । इस ्रिका में विभिन्न विषयों के लेख, नाटक, निबंध आदि प्रकाशित होते थे । भट्ट जी ने "पद्‌मावती", शिशुपालवध" एवं "चन्द्रसेन" नामक उत्तम नाटक लिखे । "सौ अजान एक सुजान" "नूतन ब्रह्मचारी" न्यास की रचना के अलावा उन्होंने आँख, कान, नाक आदि विषयों पर ललित निबंध भी लिखे. ।

धरी बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेंदु से प्रेरणा पाकर "भारत सौभाग्य" एवं "वीरांगना रहस्य" मक नाटकों की रचना की । इन्होंने अर्थ-गाम्भार्य एवं सूक्ष्म विचार से युक्त निबंधों की रचना की । ानन्द कादंबिनी" मासिक पत्र के अलावा एक साप्ताहिक पत्र "नीरद" भी निकाला ।

लमुकुन्द गुप्त ने हिंदी निबंध को अत्याधिक समृद्धि प्रदान की । आप इनके निबंध को आगे के ठों में पढ़ेंगे । "शिवशम्भु के चिट्‌ठे" इनकी प्रसिद्ध रचना है।

ला श्री निवास दास ने "प्रहलाद चरित्र" "तप्ता संवरण", "रणधीर प्रेममोहिनी" तथा "संयोगिता वंवर" नामक नाटकों की रचना की । "परीक्षा गुरू" नामक इनके उपन्यास की गणना हिंदी के ामिक उपन्यासों में की जाती है ।

ा कृष्ण दास ने "दुखिनी बाला", "महारानी पद्‌मावती", "महाराणा प्रताप" तथा "सती प्रताप" र्थक नाटकों की रचना की । इन्होंने 'निस्सहाय हिन्दू' नामक उपन्यास भी लिखा ।

रतेंदु मंडल के इन लेखकों की रचनाओं का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है । नाटक, निबंध, उपन्यास आदि विधाओं का प्रारंभ इस में हुआ जिससे हिंदी गद्य के विकास को बल मिला । भारतेंदु ने स्वयं बंगला आदि से अनुवाद के र्य किये तथा अन्य लेखकों को भी इसकी प्रेरणा दी । अनुवाद कार्य के द्वारा भी हिंदी गद्य का तार संभव हो सका ।

रतेंदु युग के लेखकों में एक तरह का फक्कड़पन और मस्ती थी । उनमें कुछ नया कर गुजरने की क थी और राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होने के कारण अपने दायित्व का अहसास भी था । भारतेंदु में जहाँ हिन्दी गद्य का साहित्यिक संस्कार हुआ, वहीं गद्य की कई विधाओं का श्रीगणेश भी हुआ । र भी इस समय तक इन विधाओं ने स्वतंत्र और प्रौढ़ रूप धारण नहीं किया था । यह कार्य वेदी युग में संपन्न हुआ । भारतेंदु युग में यद्यपि गद्य की भाषा खड़ी बोली थी और कभी-कभार ड़ी बोली में भी पद्य रचना हुई, किंतु काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही बनी रही और गद्य-पद्य की

भाषा का द्वंद्व बना रहा । द्विवेदी युग में इस द्वंद्व का भी समाहार हो गया और गद्य-पद्य दोनों की रचना खड़ी बोली में ही होने लगी ।

बोध प्रश्न

9 भारतेंदु हरिश्चन्द्र के योगदान को व्यक्त करने वाली बातें नीचे के वाक्यों में कही गयी हैं । उनमें से एक बात सही नहीं है, बताइए ।
- i) भारतेंदु ने हिन्दी गद्य को साहित्यिक संस्कार दिया ।
- ii) भारतेंदु ने गद्य की नयी विधाओं में लेखन को प्रोत्साहित किया ।
- iii) भारतेंदु ने लेखन को आधुनिक चेतना से जोड़ा ।
- iv) भारतेंदु ने कई कहानियों की रचना की । ( )

10 भारतेंदु युग के साहित्य की कुछ प्रमुख विशेषताएँ नीचे बताई गयी हैं उनमें से एक सही नहीं है, बताइए ।
- i) इनमें समाज सुधार को प्रोत्साहित किया गया ।
- ii) इनमें अंधविश्वासों और रूढ़िवादिता का प्रचार किया गया ।
- iii) इनमें राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई ।
- iv) इनमें विनोदप्रियता और व्यंग्य मिलता है । ( )

11 नीचे भारतेंदु युग के कुछ रचनाकारों के नाम दिये गये हैं तथा कुछ पत्रिकाओं के नाम भी उनके सामने लिखे हैं । किस लेखक का किस पत्रिका से संबंध था, बताइए ।

i) भारतेंदु हरिश्चंद्र	क) आनंद कादंबिनी
ii) बालकृष्ण भट्ट	ख) कविवचन सुधा
iii) प्रताप नारायण मिश्र	ग) हिन्दी प्रदीप
iv) चौधरी बदरीनारायण	घ) ब्राह्मण ( )

12 नीचे दी गयी रचनाओं के सामने उनके लेखक के नाम लिखिए:
- i) अंधेर नगरी ....
- ii) कलि कौतुक रूप ....
- iii) कलिराज की सभा ....
- iv) नीलदेवी ....
- v) भारत सौभाग्य ....

1.6 द्विवेदी युग (सन् 1900–1920)

हम देख चुके हैं कि भारतेंदु जैसे प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के कारण हिन्दी गद्य के विकास में किस प्रकार गति आयी । उनकी प्रेरणा से लेखकों की एक मंडली ही तैयार हो गई थी । इस मंडली ने अपने लेखों से हिन्दी गद्य को समृद्ध किया था । इस दौर में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों ने भी हिन्दी में लेखन का कार्य किया था । इस युग के लेखकों की दृष्टि हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर अधिक थी, अतः इनकी भाषा में त्रुटियाँ नजर आती हैं । स्वयं भारतेंदु मंडल के लेखकों में भाषागत दोष थे । वे "इच्छा किया", "आशा किया" आदि प्रयोग किया करते थे । भाषा बिगड़ने का एक और कारण यह था कि अब हिन्दी के उन पाठकों की संख्या बढ़ गई थी जो अनूदित उपन्यास पढ़ने में रुचि रखते थे किंतु अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद करने वालों ने इस भाषा की अच्छी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझा । उन्होंने शब्दकोश से अर्थ लगाकर ही अनुवाद का कार्य शुरू कर दिया इस प्रकार जहाँ एक ओर अंग्रेजी शब्दों के अर्थ के आधार पर "स्वार्थ लेना", "जीवन लोक" आदि अनुवाद होने लगे वहीं बंगला के शब्दों के अर्थ पर "सिहरना", "कांदना", "बसंत रोग" आदि अर्थ का हिन्दी में प्रयोग होने लगा । इस संकट की घड़ी में एक ऐसे व्यक्तित्व का आगमन हुआ कि जिसने इस स्थिति को संभाला ही नहीं, वरन् उसे बहुत सुरक्षित स्थान पर भी पहुँचाया ।

इस प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति का नाम था पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी । इन्होंने "सरस्वती" पत्रिका के माध्यम से भाषा के परिमार्जन का महत्वपूर्ण कार्य किया । "सरस्वती" पत्रिका का प्रकाशन इंडियन प्रेस इलाहाबाद से सन् 1900 में शुरू हुआ । सन् 1903 से इसके संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी बनाये गए । द्विवेदीजी "सरस्वती" पत्रिका के सन् 1920 तक संपादक रहे । हिन्दी गद्य के विकास में है

नहीं आधुनिक हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में भी "सरस्वती" का अप्रतिम योगदान है । "सरस्वती" को द्विवेदी के संपादन में जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, उतनी किसी अन्य हिंदी पत्रिका को प्राप्त नहीं हुई । द्विवेदी जी के संपादकत्व में 'सरस्वती' ने बीसवीं शती के आरंभिक दो दशकों के प्रतिनिधि साहित्य को प्रस्तुत करने का मंच प्रदान किया । 'सरस्वती' ने उस समय की राष्ट्रीय आकांक्षा को वाणी दी । 'सरस्वती' ने ज्ञान-विज्ञान के नये-नये क्षेत्रों में प्रवेश किया और यह प्रमाणित किया कि हिन्दी में भी जटिल-से-जटिल विषयों को प्रस्तुत करने की क्षमता निहित है । 'सरस्वती' ने हिंदी गद्य को गद्य की सभी विधाओं से संपन्न बनाने का महत्वपूर्ण प्रयत्न किया । 'सरस्वती' ने हिंदी गद्य को परिनिष्ठित रूप दिया, उसमें व्याप्त अनगढ़पन और अराजकता को समाप्त कर उसे एकरूपता प्रदान की । 'सरस्वती' ने हिंदी गद्य और पद्य की भाषा के द्वंद्व को समाप्त किया और पद्य के लिए भी खड़ी बोली को सुनिश्चित किया । ऊपर गिनाए गये ये सभी कार्य ऐतिहासिक महत्व के हैं और 'सरस्वती' ने ये सभी कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के संपादकत्व में किया था ।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी सन् 1861 सन् 1938 । स्वयं कवि थे, लेकिन उन्हें कवि के रूप में उतनी प्रतिष्ठा नहीं मिली, जितनी अपने निबंध और समालोचनाओं के कारण मिली थी । द्विवेदीजी ने सबसे बड़ा काम यह किया कि उन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशन के लिए आने वाली रचनाओं की भाषाओं को सुधारकर परिमार्जित और एकरूप किया । द्विवेदीजी भाषा के प्रति बहुत सजग रहते थे और उनकी कोशिश रहती थी कि खड़ी बोली हिन्दी अपना मानक रूप ग्रहण करे क्योंकि इसके बिना किसी महान साहित्य की रचना करना संभव नहीं था ।

द्विवेदीजी ने उस युग की राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की भावना को पूरी तरह आत्मसात् किया था और उसे ही हिन्दी साहित्य के लिए आदर्श मानते थे । उन्होंने साहित्य के मध्ययुगीन आदर्शों का विरोध किया, रीतिकालीन भावबोध और कलारूपों को अस्वीकार किया और अपने युग और समाज की जरूरतों के अनुकूल साहित्य रचने की प्रेरणा लेखकों में जगायी। उन्होंने साहित्य को समाज से जोड़ा । उन्होंने साहित्य को ज्ञान से जोड़ते हुए कहा कि ज्ञानराशि का संचित कोश ही साहित्य है । उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि किसी देश की उन्नति अगर देखनी हो तो उस देश के साहित्य को देखना चाहिए । उन्होंने बुद्धिजीवियों का आह्वान किया कि वे अपनी भाषा में उत्कृष्ट साहित्य की रचना कर अपने देश और समाज को नयी दिशा दें ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' के माध्यम से प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, नाथूराम शर्मा 'शंकर', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचंद्र शुक्ल, पद्मसिंह शर्मा आदि लेखकों को ख्याति मिली और उनका महत्वपूर्ण साहित्य जनता तक पहुँचा।

द्विवेदी युग में गद्य की विभिन्न विधाओं का महत्वपूर्ण साहित्य लिखा गया । विशेष रूप से उपन्यास, कहानी, निबंध और आलोचना के क्षेत्र में इस युग में महत्वपूर्ण काम हुआ । इसी युग में इन विधाओं का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बना और इसी स्वतंत्र व्यक्तित्व की नींव पर बाद में इन गद्य विधाओं ने महान् साहित्यकार और महान् रचनाएँ दीं । कहानी-उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद, नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद, निबंध के क्षेत्र में बालमुकुंद गुप्त, पूर्णसिंह, रामचंद्र शुक्ल तथा आलोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल इसी युग की देन थे । इसके अतिरिक्त जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा-विवरण जैसी कई नयी विधाओं में भी महत्वपूर्ण लेखन हुआ ।

आगे हम द्विवेदी युग में गद्य की विभिन्न विधाओं का संक्षिप्त परिचय देंगे । गद्य की विवि[illegible] विस्तृत अध्ययन आगे अगली इकाई में करेंगे ।

नाटक

हिन्दी में नाटकों की शुरूआत भारतेंदु युग में ही हो चुकी थी । भारतेंदु युग के प्रायः सभी रचनाकारों ने नाटकों की रचना की थी । स्वयं भारतेंदु ने नाटकों की रचना के साथ 'नाटक' पर एक लंबा लेख भी लिखा था ।

द्विवेदी युग में नाटकों का वैसा विकास नहीं हो पाया यद्यपि इस दौरान भी कई नाटक लिखे गये और दूसरी भाषाओं के कई महत्वपूर्ण नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी किये गये । इस [illegible] में बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत के महत्वपूर्ण नाटकों के अनुवाद किये गए । बंगला नाटकों में से [illegible] ठाकुर, गिरीश बाबू, क्षीरोदप्रसाद, विद्याविनोद की रचनाओं के अनुवाद किये गये [illegible] शेक्सपियर के नाटकों (हैमलेट, मैकबेथ, रोमियो जूलियट आदि) के अनुवाद भी [illegible] नाटकों में कालिदास, भवभूति आदि के नाटकों के अनुवाद हुए थे जो बहुत लोक[illegible]

नाटकों के क्षेत्र मे पं० किशोरी लाल गोस्वामी (चौपटचपेट और मयंकमंजरी) अयोध्यासिंह उपाध्याय (रुक्मिणी परिणय और प्रद्युम्नविजयव्यायोग) पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र (सीता वनवास) बाबू शिवनंदन सहाय (सुदामा नाटक) आदि ने कई नाटक लिखे लेकिन उनके नाटक अत्यंत साधारण स्तर के ही कहे जायेंगे । इस दौर में पारसी थियेटर के नाटकों ने काफी लोप्रियता अर्जित कर ली थी, लेकिन साहित्यिक दृष्टि से वे अधिक मूल्यवान नही थे। नाटकों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य की शुरूआत जयशंकर प्रसाद ने की जिन्होंने नाटकों का एक नया ढाँचा खड़ा किया और उन्हें साहित्यिक उत्कृष्टता प्रदान की ।

उपन्यास

उपन्यास आधुनिक युग की प्रतिनिधि विद्या है । इसे आधुनिक युग का महाकाव्य कहा गया है । गद्य के विकास के साथ हिंदी में भी उपन्यास लेखन की शुरूआत हुई । भारतेंदु से पूर्व श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' नामक उपन्यास की रचना की थी । स्वयं भारतेंदु युग में भी कई उपन्यास लिखे गये जिनमें लाला श्रीनिवासदास का शिक्षाप्रद उपन्यास 'परीक्षा गुरू' प्रकाशित हुआ । पं० रामचंद्र शुक्ल ने इसे अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास कहा था । भारतेंदु युग में ही राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिंदू (सन् 1886), पं० बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' (सन् 1886) सौ अजान और एक सुजान (सन् 1892) मेहता लज्जाराम शर्मा का 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (सन् 1899) और 'धूर्त रसिकलाल' (सन् 1899) आदि कई उपन्यास लिखे गये । अधिकांश उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को कथा का विषय बनाया गया था । द्विवेदी युग में उपन्यासों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य देवकीनंदन खत्री ने किया । उन्होंने 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' के नाम से कई भागों में तिलस्मी और ऐय्यारी उपन्यास लिखे । इन उपन्यासों को जबरदस्त लोकप्रियता हासिल हुई । कहा जाता है कि इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए कई लोगों ने हिन्दी सीखी । बाबू देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में कथा इतने रोचक ढंग से चलती है कि एक बार आरंभ करने के बाद उन्हें छोड़ पाना कठिन हो जाता है। देवकीनंदन खत्री की भाषा बहुत सहज थी । उर्दू-हिंदी का ऐसा मिश्रित रूप जो सबके लिये ग्राह्य हो, उन्होंने उपन्यासों के लिए स्वीकार किया था । भाषा के इसी रूप को बाद में प्रेमचंद ने अपने लेखन में और अधिक विकसित किया था ।

द्विवेदी युग में ही पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने भी कई उपन्यास लिखे । शुक्लजी के शब्दों में "इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र वासनाओं के रूप, रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा बहुत चरित्र चित्रण भी अवश्य पाया जाता है । "गोस्वामी जी ने 65 के करीब छोटे-बड़े उपन्यास लिखे थे और 'उपन्यास' नाम से मासिक पत्र भी निकाला था । इनके उपन्यासों में 'चपला' तारा, तरुण तपस्विनी, रजिया बेगम, लीलावती, लवंगलता उल्लेखनीय हैं । इसी युग में पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय ठेठ हिन्दी का ठाठ (सन् 1899) और अधखिला फूल (सन् 1907) लज्जाराम मेहता । हिंदू गृहस्थ, आदर्श दंपति (सन् 1904) और बिगड़े का सुधार (सन् 1907) बाबू ब्रजनंदन सहाय सौंदर्योपासक और राधाकांत (सन् 1912) आदि ने भी कई उपन्यास लिखे ।

उपन्यासों के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान देने वाले प्रेमचंद का आगमन भी इसी युग में हुआ था। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी में भी लिखने लगे । उनके शुरूआती उर्दू उपन्यासों के हिन्दी संस्करण द्विवेदी युग में ही प्रकाशित हुए थे, जिनमें 'प्रेमा' और 'वरदान' का उल्लेख किया जा सकता है । उनका पहला महत्वपूर्ण उपन्यास सेवासदन (सन् 1915) भी द्विवेदी युग में ही प्रकाशित हुआ था । द्विवेदी युग में दूसरी भाषाओं के भी कई उपन्यासों का अनुवाद हुआ था, विशेष रूप से बंगला उपन्यासों का । बंगला उपन्यासकारों में बंकिमचंद्र, रमेशचंद्र दत्त, हाराणचंद्र रक्षित, शरतचंद्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि लेखकों के कई उपन्यासों के हिंदी अनुवाद किए गये ।

कहानी

वैसे तो भारत में कहानी की लंबी परंपरा रही है किंतु जिसे आधुनिक कहानी कहा जाता है, वह अधिक पुरानी नहीं है । हिन्दी में पहली कहानी कौन-सी लिखी गयी इस पर आज भी विवाद बना हुआ है । आपने इस इकाई में पढ़ा है कि मुंशी इंशाअल्लाँ खां ने 'रानी केतकी की कहानी' नाम से कहानी की रचना की थी । लेकिन कहानी की आधुनिक परिभाषा के अनुसार उसे कहानी नहीं कहा जा सकता । बाद में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने भी 'राजाभोज का सपना' की रचना की थी । लेकिन ये कहानी लिखने के छिटपुट प्रयास थे । हिंदी कहानी की रचना की शुरूआत बीसवीं सदी के पहले दशक में हुई जब कई कहानियाँ प्रकाशित हुईं । हिन्दी के दो महत्वपूर्ण कहानीकार प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद ने भी कहानी लिखना सन् 1900 के बाद शुरू किया था । सन् 1911 में प्रसाद की 'ग्राम' कहानी प्रकाशित हुई थी । सन् 1915 में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा थ

ाशित हुई। सन् 1915-16 में प्रेमचंद ने इससे पहले उर्दू में कई कहानियाँ लिखी थीं। द्विवेदी युग कहानी के क्षेत्र में उल्लेखनीय लेखन करने वाले कहानीकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, धिकारमणप्रसाद सिंह, जी० पी० श्रीवास्तव, चतुरसेन शास्त्री आदि प्रमुख हैं। कहानी के विकास की ष्ट से प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद का योगदान अप्रतिम है।

ंध और समालोचना

रतेंदु युग में ही निबंध विधा का महत्वपूर्ण विकास हो चुका था। भारतेंदु युग में निबंधों में जहाँ ष्ट्र और समाज के प्रति चिंता व्यक्त हुई थी, वहीं तीखा व्यंग्य और विनोद प्रवृत्ति भी दिखाई देती । द्विवेदी युग के निबंधों में यद्यपि व्यंग्य और विनोद प्रवृत्ति कुछ कम नजर आती है किंतु लमुकुंद गुप्त के निबंधों में हम इस विशेषता को देख सकते हैं। बालमुकुंद गुप्त ने सामयिक और जनीतिक परिस्थिति को लेकर कई निबंध लिखे हैं जिनकी व्यंग्यात्मक भाषा और तीव्र राष्ट्रीय भावना का ध्यान आकृष्ट करते है। 'शिवशंभु का चिट्ठा' नाम से लिखे गये निबंध इस दृष्टि से लेखनीय हैं।

वेदी युग के निबंधकारों में महावीरप्रसाद द्विवेदी का भी महत्वपूर्ण स्थान है। आपने अपने निबंधों रा राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रश्नों को उठाया। इस दृष्टि से आपके निबंध चार प्रधान कहे जा सकते हैं। इस युग के अन्य प्रमुख निबंधकारों में पं० माधवप्रसाद मिश्र, सरदार सिंह, बाबू श्यामसुंदरदास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गुलाब राय, पं० रामचंद्र शुक्ल आदि प्रमुख हैं।

वेदी युग में निबंधों की भाषा और अधिक परिमार्जित है। उसका विषय क्षेत्र भी विस्तृत होता है, ससे नये-नये विषयों का विवेचन और वर्णन करने की क्षमता बढ़ती है। द्विवेदी युग की भाषा का दर्श रूप इस युग के निबंधों में ही देखने को मिलता है। भाषा की सर्जनात्मक क्षमता को गंभीर वेचन और विश्लेषण तथा भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया गया है। हिन्दी के ष्ठ निबंधकार रामचंद्र शुक्ल के निबंध भी इसी दौर में सामने आये थे।

वेदी युग का एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान है : समालोचना का आरंभ। वैसे तो एक-दो कृतियों की टपुट 'आलोचना' भारतेंदु युग में भी हुई थी। 'आनंद कादंबिनी' में लाला श्रीनिवासदास के नाटक ंयोगिता स्वयंवर' की विशद आलोचना प्रकाशित हुई थी, किंतु समालोचना की वास्तविक शुरूआत वेदी युग में ही होती है। इस दौर में आलोचना के सैद्धांतिक पक्ष से संबंधित कई निबंध लिखे गये पि उन पर पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों का स्पष्ट प्रभाव प्रकट होता था। भारत में समीक्षा की कोई परा नहीं थी। समीक्षा के नाम पर गुण-दोष बताना ही पर्याप्त समझा जाता था, लेकिन द्विवेदी युग में समीक्षा पद्धति आरंभ हुई उनमें कृति की विशद व्याख्या भी की जाती थी। इस तरह की पहली तक महावीर प्रसाद द्विवेदी की कालिदास की निरकुंशता थी जिसमें लाला सीताराम बी. ए. के अनुवाद ए हुए नाटकों के भाषा तथा भाव संबंधी दोष बड़े विस्तार से दिखाये गए थे। द्विवेदी जी ने अन्य ग्रंथों की समीक्षाएँ लिखी थीं। द्विवेदी युग में कई अन्य लेखकों – मिश्रबंधु, श्यामसुंदरदास, पद्मसिंह ि, कृष्णबिहारी मिश्र, बाबू गुलाबराय, ने व्यावहारिक समीक्षा को समृद्ध बनाने का महत्वपूर्ण कार्य या। लेकिन समीक्षा के क्षेत्र में युगांतरकारी कार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया, जिनके समीक्षा धी कई लेख द्विवेदी युग में ही प्रकाशित हुए।

बोध प्रश्न

हिंदी भाषा और साहित्य के संवर्द्धन में 'सरस्वती' ने निम्नलिखित योगदान दिए। इनमें से एक सही नहीं है, उसे बताइये।

i) राष्ट्रीय आकांक्षा को वाणी दी।
ii) भारतेंदु युग के लेखकों को मंच प्रदान किया।
iii) हिंदी भाषा को एकरूपता प्रदान की।
iv) गद्य की सभी विधाओं में लेखन को प्रोत्साहित किया। ☐

द्विवेदीजी के साहित्य में निम्नलिखित चार प्रवृत्तियों में से तीन मिलती हैं। लिखित प्रवृत्तियों में से एक सही नहीं है, बताइए।

i) गद्य और पद्य की भाषागत एकता पर बल दिया।
ii) रीतिकालीन भावबोध का समर्थन किया।
iii) राष्ट्रीय भावना और नवजागरण को प्रोत्साहित किया।
iv) समाज की जरूरतों के अनुकूल साहित्य रचने की प्रेरणा दी। ☐

15 नीचे कुछ रचनाओं के नाम दिए गये हैं । उनके सामने उनके लेखकों के नाम लिखिए तथा यह भी बताइए कि वह रचना किस विधा में है ।

	रचना का नाम	लेखक का नाम	विधा का नाम
i)	धूर्त रसिकलाल	....	....
ii)	ठेठ हिन्दी का ठाठ	....	....
iii)	ग्राम	....	....
iv)	कालिदास की निरंकुशता	....	....
v)	प्रेमा	....	....

अभ्यास

3 भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के निबंधों में कोई दो अंतर बताइए ।

....

....

....

....

4 'द्विवेदीयुग' के संदर्भ में 'सरस्वती' की भूमिका का विवेचन कीजिए । सिर्फ पाँच पंक्तियों में ।

....

....

....

....

....

....

1.7 प्रेमचंद और उनके बाद

हम देख चुके हैं कि द्विवेदी युग में भाषा के परिमार्जन का महत्वपूर्ण कार्य हुआ था । द्विवेदी युग के बाद कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि के क्षेत्र में जो उल्लेखनीय लेखन हुआ है, उसका विस्तृत अध्ययन यों तो आप इस पाठ्यक्रम की अन्य इकाइयों में करेंगे, पर उसका संक्षिप्त लेखा-जोखा यहाँ दिया जा रहा है ।

द्विवेदी युग के बाद गद्य साहित्य को जिन कुछ साहित्यकारों ने एक नयी दिशा दी उनमें प्रेमचंद का नाम शब्दावली है । यद्यपि प्रेमचंद ने द्विवेदी युग से ही लेखन आरंभ कर दिया था, तथापि उनके उपन्यासों और कहानियों में एक नवीनता दिखायी देती है, अतः इन विधाओं में उनसे एक नये युग का प्रारंभ माना जाता है । समाज एवं देश की यथार्थ स्थिति का चित्रण उनकी रचनाओं में मिलता है। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में रचनाएँ की हैं । प्रेमचंद ने उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, जीवनियाँ आदि तो लिखीं हीं, अनुवाद का कार्य भी किया । अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के द्वारा उन्होंने हिन्दी-कहानी को काफी ऊँचा उठाया । उन्होंने लगभग 300 कहानियों की रचना की है । इनकी कहानियों में विषय की विविधता है । समाज एवं परिवार की किसी-न-किसी समस्या को उन्होंने अपनी कहानियों का आधार बनाया है । उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ भागों में संकलित हैं । ईदगाह, कफन, शतरंज के खिलाड़ी, पूस की रात, बड़े घर की बेटी, पंचपरमेश्वर, नमक का दरोगा आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं । इनमें से 'शतरंज के खिलाड़ी' का अध्ययन आप अगले पाठों में करेंगे ।

उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद की रचनाएँ इतनी उच्च कोटि की थीं कि उन्हें 'उपन्यास सम्राट' के नाम से पुकारा गया । इस विधा के विराट फलक पर उन्होंने देश की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है । 'गोदान', 'गबन', 'रंगभूमि,' 'कर्मभूमि', आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं ।

प्रेमचंद युग में तथा उनके बाद उपन्यास-साहित्य को समृद्धि प्रदान करने वाले अन्य उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, चतुरसेनशास्त्री, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, पांडेय बेचन शर्मा, 'उग्र', इलाचंद्र जोशी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, गुरुदत्त, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, नागार्जुन, फणीश्वर नाथ 'रेणु' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

हम जान चुके हैं कि हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद का महत्वपूर्ण योगदान है । प्रेमचंद के समकालीन और परवर्ती जिन कहानीकारों ने इस विधा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है उनमें जयशंकर प्रसाद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन, यशपाल, अमृत राय, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय राघव, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती आदि के नाम लिये जा सकते हैं ।

प्रेमचंद के समकालीन जयशंकर प्रसाद के नाटकों में एक नयापन और अलगाव दिखायी देता है, इसलिए इस क्षेत्र में उन्हें युग, प्रवर्तक नाटककार माना जाता है । इन्होंने अपने अधिकतर नाटकों में इतिहास को आधार बनाया है । ऐतिहासिकता के साथ राष्ट्रीय चेतना और भारतीय संस्कृति का मिश्रण भी इनके नाटकों में दिखायी देता है । प्रसाद के नाटकों में कामना, जनमेजय का नाग यज्ञ, राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है।

प्रसाद के बाद नाटक के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वालों में जगदीश चंद्र माथुर एवं मोहन राकेश के नाम लिये जा सकते हैं । माथुर जी ने नाटक को रंगमंच से जोड़ने का जो महत्वपूर्ण कार्य किया, मोहन राकेश ने उसे आगे बढ़ाया । माथुर जी के नाटकों में "कोणार्क", "पहला राजा" और "शारदीया" बहुत चर्चित हुए । राकेश ने तीन महत्वपूर्ण नाटकों की रचना की— "आषाढ़ का एक दिन", "लहरों के राजहंस" एवं "आधे अधूरे" । "पैर तले की जमीन" उनके द्वारा लिखित एक अन्य नाटक है जिसे वे पूरा न कर पाये थे ।

अन्य उल्लेखनीय नाटककार हैं–हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, गोविन्दवल्लभ पंत, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दास, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, लक्ष्मीनारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, वृजमोहन शाह, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस, इन्द्रजीत भाटिया आदि ।

एकांकी के विकास का कारण है आधुनिक युग में समय की कमी । आज के व्यस्त जीवन में आम व्यक्ति कम से कम समय में अधिक से अधिक लाभ चाहता है, अतः साहित्य में एक अंक में समाप्त होने वाली नाट्य विधा का विकास हुआ जिसे एकांकी नाम दिया गया । कुछ विद्वानों ने प्रसाद के "एक घूँट" को हिन्दी का प्रथम एकांकी माना है, किन्तु कुछ अन्य विद्वान डॉ० रामकुमार वर्मा को हिन्दी का पहला एकांकीकार मानने के पक्ष में हैं । वर्मा जी के एकांकी-संग्रहों में "पृथ्वीराज की आँखें" "रेशमी टाई", "कौमुदी महोत्सव" आदि उल्लेखनीय हैं । अन्य एकांकीकारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, भुवनेश्वर, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण लाल आदि मुख्य हैं । आगामी पाठों में आप "कौमुदी महोत्सव" (रामकुमार वर्मा), जोंक (अश्क) तथा "संस्कार और भावना" (विष्णु प्रभाकर) पढ़ेंगे ।

प्रेमचन्द के बाद साहित्य की प्रत्येक विधा में बहुत-कुछ लिखा गया है । नाटक, एकांकी, उपन्यास और कहानी के समान निबंध, अलोचना तथा गद्य की अन्य विधाओं में भी पर्याप्त प्रगति हुई है । निबंध के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । यदि यह कहा जाए कि उनके द्वारा हिंदी-निबंध को एक नया जीवन मिला है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । हिन्दी निबंध के विकास में योग देने वाले अन्य लेखकों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, बाबू गुलाब राय, वासुदेवशरण अग्रवाल, सद्गुरुशरण अवस्थी, शांतिप्रिय द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, विष्णुकांत शास्त्री आदि प्रमुख हैं ।

निबंध के समान हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है । शुक्ल जी के बाद हिंदी आलोचना को विकसित करने वालों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० देवराज, डॉ० रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, नामवर सिंह, डॉ० आनद प्रकाश दीक्षित आदि के नाम लिए जा सकते हैं ।

प्रेमचंद और उनके बाद के साहित्य पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि युगीन परिस्थितियों का प्रभाव इस अवधि के साहित्य पर पड़ा है । इस काल की गद्यात्मक रचनाओं में जहाँ लेखकों ने सामाजिक समस्याओं के यथार्थ चित्रण पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की, वहाँ मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी साहित्य में स्थान दिया ।

देश की राजनीतिक चेतना का प्रभाव भी साहित्यकारों पर पड़ा. इसी कारण भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में राष्ट्रीय चेतना साहित्य का वर्ण्यविषय बन गयी थी । अन्तर्राष्ट्रीय जगत में जो परिवर्तन हो रहा था उसका प्रभाव भी यहाँ के साहित्य पर पड़ने लगा था । रूस में समाजवाद का उदय विश्व की महत्वपूर्ण घटना थी । इसके फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का आगमन हुआ । वर्षों के संघर्ष के बाद सन् 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली । देश की राजनीति में यह महान् परिवर्तन था । राष्ट्र स्वतंत्र था, देश की जनता विदेशी-शासन के अत्याचार से मुक्त थी । इस राजनीतिक परिवर्तन ने साहित्य पर काफी प्रभाव डाला । दूसरी ओर पश्चिम में जो वैज्ञानिक प्रगति हो चुकी थी उसका आगमन भी भारत में आ रहा था । नयी तकनीक की उन्नति से साहित्य में नयी विधाओं का जन्म होने लगा । रेल, प्रेस, बिजली, तार रेडियो आदि वैज्ञानिक साधनों ने जहाँ लोगों के जीवन में परिवर्तन उपस्थित किया, वहाँ साहित्य के क्षेत्र में नयी विधाओं के विस्तार में भी सहायता पहुँचाई। यात्रा वृत्त, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज आदि नवीन विधाओं में लेखन का कार्य शुरू हुआ । इन विधाओं के विषय में हम अगली इकाई में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

बोध प्रश्न

16 उपर्युक्त शब्दों के प्रयोग से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) प्रेमचंद की कहानियाँ .... के आठ भागों में संकलित है ।
ii) "कफन" .... की प्रसिद्ध कहानी है ।
iii) "आषाढ़ का एक दिन" के लेखक हैं .... ।

17 जयशंकर प्रसाद के किन्हीं चार सुप्रसिद्ध नाटकों के नाम लिखिए ।

18 हिन्दी निबंध के विकास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वासुदेवशरण अग्रवाल, सद्गुरु शरण अवस्थी, शांतिप्रिय द्विवेदी तथा विष्णुकांत शास्त्री का योगदान है । इसी क्रम में हिन्दी निबंध को गति देने वाले किन्हीं तीन सुप्रसिद्ध निबंध-लेखकों के नाम लिखिए ।

1.8 सारांश

आपने हिन्दी गद्य के विकास का परिचय देने वाली इस इकाई का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होगा । हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं के संबंध में विस्तृत अध्ययन आप आगे करेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- गद्य और पद्य में अंतर कर सकते हैं ।
- अंग्रेजों के समय में भाषा संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ सकते हैं ।
- खड़ी बोली गद्य की आरंभिक स्थितियों का उल्लेख कर सकते हैं ।
- खड़ी बोली गद्य के विकास के कारणों को समझ सकते हैं ।
- भारतेंदु एवं द्विवेदी युग के गद्य-साहित्य के विकास का उल्लेख कर सकते हैं ।
- प्रेमचंद एवं उनके बाद के गद्य साहित्य के विकास को संक्षेप में समझ सकते हैं ।

1.9 शब्दावली

संगति: दूसरे व्यक्ति का साथ ।

रामायण: महर्षि वाल्मीकि रचित महाकाव्य ।

महाभारत: महर्षि वेदव्यास रचित महाकाव्य ।

इलियड: महाकवि होमर रचित महाकाव्य ।

ओडिसी: महाकवि होमर रचित महाकाव्य ।

गेयता: गाये जा सकने का गुण ।

विचार-विनिमय: विचारों का परस्पर आदान-प्रदान ।

व्याकरणिक संरचना: व्याकरण के नियमों के अनुकूल वाक्य आदि की रचना ।

प्रणयन: रचना का निर्माण करना ।

हिन्दुई: मुसलमान जब भारत में आए तो वे यहां के लोगों को हिन्दू और भाषा को हिन्दुई कहते थे । बाद में इसे "हिन्दवी" भी कहा गया ।

हिन्दवी: देखिए – हिन्दुई ।

रेख्ता: फ़ारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है गिरा, पड़ा, बिखरा हुआ । उर्दू के लिए भी रेख्ता शब्द का प्रयोग मिलता है । यह मिश्रित भाषा होने के कारण रेख्ता कहलाई । रेख्ता वह कविता होती थी जिस में फ़ारसी और हिन्दी (उर्दू) का मिश्रण होता था ।

दक्खिनी हिन्दी: दक्खिनी हिन्दी, मूलतः हिन्दी का वह पूर्व रूप है जिस की विकास ईसा का चौदहवीं शती से अठ्ठारहवीं शती तक दक्खिन के बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही राज्यों में हुआ था । वह मूलतः दिल्ली के आसपास की खड़ी-बोली ही थी जिस पर ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी के साथ-साथ मराठी, गुजराती और दक्षिणी की तेलुगु तथा कन्नड़ भाषाओं का भी प्रभाव था ।

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रामचंद्र शुक्ल : *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
हजारीप्रसाद द्विवेदी : *हिन्दी साहित्य उसका उद्‌भव और विकास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
विश्वप्रकाश दीक्षित : हिन्दी साहित्य का नूतन इतिहास, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली ।

1.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 iii) 2 i)

3 i) ब्रजभाषा ii) खड़ी बोली iii) ब्रजभाषा

4 iii) 5 i) 6 ii) 7 ii)

8 i) नहीं ii) हाँ iii) नहीं iv) नहीं v) हाँ

9 i) 10 ii)

11 i) ख ii) ग iii) घ iv) क

12 भारतेंदु हरिश्चंद्र – कविवचन सुधा
बालकृष्ण भट्ट – हिंदी प्रदीप
प्रतापनारायण मिश्र – ब्राह्मण
बदरीनारायण चौधरी – आनंद कादंबिनी

13 ii) 14 ii)

15 i) मेहता लज्जाराम शर्मा, उपन्यास
ii) अयोध्यासिंह उपाध्याय, उपन्यास
iii) जयशंकर प्रसाद, कहानी
iv) महावीर प्रसाद द्विवेदी, आलोचना
v) प्रेमचंद, उपन्यास

16 i) मानसरोवर ii) प्रेमचंद iii) मोहन राकेश

17 अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी (इसी प्रकार उनके अन्य उपन्यास भी हो सकते हैं)

18 आचार्य नन्ददुलारी वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा॰ नगेन्द्र (इसी प्रकार अन्य प्रसिद्ध निबंधकारों में से किन्हीं तीन के नाम)

अभ्यास

1 राजा शिवप्रसाद उर्दूनिष्ठ हिंदी के पक्षधर थे, जिसमें अरबी, फ़ारसी के शब्द अधिक होते हैं, जबकि राजा लक्ष्मणसिंह हिंदी-उर्दू को अलग-अलग भाषा मानते थे और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पक्षधर थे ।

2 मुद्रण की आधुनिक प्रणाली से किसी पुस्तक की सैकड़ों/हजारों प्रतियाँ बहुत कम समय में छापी जा सकती हैं और इन्हें लोगों तक पहुँचाया जा सकता है । इस सुविधा के कारण सामग्री को कंठस्थ करने की आवश्यकता नहीं रही । इस प्रकार, इससे गद्य के विकास में सहायता मिली ।

3 i) भारतेंदु युग के निबंधों में व्यंग्य और विनोद की प्रवृत्ति अधिक है, जबकि द्विवेदी युग के निबंधों में वैचारिकता और विश्लेषण की प्रधानता है ।

ii) भारतेंदु युग के निबंधों की भाषा अनगढ़ है, जबकि द्विवेदी युग के निबंधों की भाषा परिमार्जित है ।

4 "सरस्वती" ने राष्ट्रीय आकांक्षा को वाणी दी । ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में लेखन को प्रोत्साहित किया । सामाजिक नवजागरण की भावनाओं की अभिव्यक्ति पर बल मिला । हिन्दी भाषा का संस्कार किया और गद्य की विभिन्न विधाओं के लेखन को प्रोत्साहित किया । उस युग का बड़े से बड़ा लेखक "सरस्वती" में छपकर गौरव अनुभव करता था ।

इकाई 2 हिन्दी गद्य की विविध विधाएँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 साहित्य
2.3 नाटक
  2.3.1 नाटक का वर्गीकरण
  2.3.2 रेडियो नाटक
  2.3.3 दूरदर्शन नाटक
2.4 एकांकी
2.5 उपन्यास
2.6 कहानी
2.7 लघुकथा
2.8 निबंध
2.9 आलोचना
2.10 रेखाचित्र और संस्मरण
2.11 आत्मकथा और जीवनी
2.12 यात्रावृत्त
2.13 रिपोतार्ज
2.14 सारांश
2.15 शब्दावली
2.16 उपयोगी पुस्तकें
2.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको गद्य की विविध विधाओं का परिचय देंगे । इसे पढ़ने के बाद आप :

- वाङ्मय एवं साहित्य में अंतर कर सकेंगे,
- साहित्यिक रचनाओं का वर्गीकरण कर सकेंगे,
- ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप साहित्य में विकसित नवीन विधाओं का परिचय दे सकेंगे,
- गद्य की विविध विधाओं का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे
- गद्य की विविध विधाओं में अंतर कर सकेंगे, तथा
- एक-दूसरे से मिलती-जुलती गद्य विधाओं में मिलने वाली समानता को समझ सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम की पहली इकाई में आपने हिंदी गद्य के विकास की जानकारी प्राप्त की है। इस इकाई में आपने गद्य और पद्य के अन्तर को जाना है । साथ ही, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि के विकास को भी देखा है । नाटक, उपन्यास, कहानी आदि साहित्य की विधाएँ कहलाती हैं इन विधाओं की रचना में कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य रहता है । प्रत्येक विधा अलग प्रकार के लेखन की माँग करती है । दूसरे शब्दों में किसी एक विधा की लेखन-शैली दूसरी विधा की लेखन-शैली से भिन्न होती है । चूँकि नाटक, उपन्यास, कहानी आदि गद्य-साहित्य की विधाएँ हैं, अतः इस इकाई में हम साहित्य की चर्चा करते हुए साहित्य शब्द का विशिष्ट अर्थ जानेंगे तथा गद्य की विविध विधाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे । विभिन्न विधाओं में अंतर करते हुए हम यह भी जानेंगे कि ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप इन विधाओं में किन नयी बातों का समावेश हुआ है ।

2.2 साहित्य

साहित्य शब्द का प्रयोग आज बहुत व्यापक अर्थों में होता है । जब हम किसी विषय के ग्रंथ की बात करते हैं तो वह ग्रंथ उस विषय का साहित्य कहलाता है, । जैसे हम 'इतिहास-साहित्य' कहें तो इसका अर्थ हुआ इतिहास-विषय से संबंधित पुस्तकें । इसी प्रकार जब हम 'राजनीति-साहित्य', 'दर्शन-साहित्य'

या 'विज्ञान-साहित्य' कहते हैं तो इसका अर्थ होता है राजनीति, दर्शन एवं विज्ञान विषय से संबंधित पुस्तकें । वस्तुतः इस प्रकार के साहित्य के लिए "वाङ्मय" शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त है । यहाँ वाङ्मय एवं साहित्य के अंतर को जान लेना चाहिए ।

'वाङ्मय' के अन्तर्गत सभी प्रकार की रचनाएँ आ जाती हैं, पर 'साहित्य' में कुछ विशिष्ट रचनाएँ आती है । साहित्य में केवल उन्हीं रचनाओं की गणना की जाती है जिनसे पाठक को आनंद की प्राप्ति होती है । वाङ्मय और साहित्य के इस अन्तर को 'मानक हिन्दी कोश' में इन शब्दों में समझाया गया है:

"समस्त प्रकार की रचना को वाङ्मय कहते हैं । वाङ्मय और साहित्य में मुख्य अंतर यह है कि वाङ्मय के अन्तर्गत तो ज्ञान-राशि का वह सारा संचित भंडार आता है जो मानव को नई दृष्टि देता है और उसे जीवन संबंधी सत्यों का परिज्ञान कराता है । परन्तु साहित्य उक्त समस्त भंडार का वह विशिष्ट अंश है जो मनुष्य को एक अंतर्दृष्टि देता है जिससे रचनाकार किसी प्रकार की रचना करके आत्मोपलब्धि करता है और रसिक लोग उस कला का आस्वादन करके लोकोत्तर आनंद का अनुभव करते हैं ।" ("मानक हिन्दी कोश", संपादक रामचंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

'वाङ्मय' और 'साहित्य' के अन्तर को आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'साहित्य सहचर' की सहायता से और सरलता से समझा जा सकता है । उन्होंने अपने इस ग्रंथ में समस्त प्रकार की रचनाओं को तीन वर्गों में बाँटा है:

सूचनात्मक साहित्य, विवेचनात्मक साहित्य तथा सृजनात्मक या रचनात्मक साहित्य । आइए, इन तीनों का अंतर जानें–

i) **सूचनात्मक साहित्य** : इसके अंतर्गत ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनके द्वारा हमें अनेक नयी बातों की जानकारी प्राप्त होती है । ऐसी रचनाओं को पढ़कर हम उनसे प्राप्त जानकारी से ही संतुष्ट हो जाते हैं । उदाहरण के लिए विश्वकोश, संदर्भ ग्रंथ आदि ।

ii) **विवेचनात्मक साहित्य** : इसके अंतर्गत ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनके द्वारा हमारा ज्ञान तो बढ़ता ही है, हमारी बोधन-शक्ति भी जागरूक बनी रहती है अर्थात् हमारे अंदर और अधिक जानने की इच्छा पैदा होती है । दर्शन, विज्ञान एवं गणित की पुस्तकें इस प्रकार के साहित्य के अंतर्गत आती हैं ।

iii) **रचनात्मक या सृजनात्मक साहित्य** : इस प्रकार की रचनाओं में ऐसी पुस्तकें शामिल हैं जिनमें लेखक हमारी जानी हुई बात को कुछ इस ढंग से कहता है कि हमारे अंदर उसे पढ़ने की ललक बढ़ती है । इस प्रकार की रचनाओं को पढ़कर हमें ऐसा लगता है मानों उसमें कही गयी बातें हमारी अपनी ही हों उदाहरण के लिए आप प्रेमचंद के उपन्यास "गोदान" को लें । इस उपन्यास का मुख्य पात्र होरी है । उसके सुख-दुःख के साथ हम भी जुड़ जाते है अर्थात् हम भी उसके सुख-दुःख में शामिल हो जाते हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, *"इस प्रकार की रचनाएँ हमें सुख-दुःख की व्यक्तिगत संकीर्णता और दुनियावी झगड़ों से ऊपर ले जाती हैं और संपूर्ण मनुष्य जाति के—और भी आगे बढ़कर प्राणि-मात्र से सुख-दुःख, राग-विराग, आह्लाद-आमोद को समझने की सहानुभूतिमय दृष्टि देती हैं ।"* ("साहित्य सहचर", हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ०-2) कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि इसी श्रेणी की रचनाएँ है ।

समस्त प्रकार की रचनाओं के जो तीन वर्ग बताए गये हैं, उन्हें 'वाङ्मय' के अन्तर्गत रख सकते हैं पर उनमें से तीसरा "सृजनात्मक साहित्य" ही साहित्य शब्द के विशिष्ट अर्थ का बोधक है ।

इस पाठ में हम "साहित्य" शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में करेंगे ।

आइए, अब गद्य की प्रमुख विधाओं पर विचार करें ।

2.3 नाटक

नाटक अत्यंत प्राचीन विधा है, इसलिए हम सर्वप्रथम इस पर विचार करेंगे ।

आपने बचपन में अपने मोहल्ले, गाँव या शहर में कुछ नाटक देखे होंगे । और नहीं तो त्यौहार के दिनों में रामलीला, रासलीला आदि को देखा ही होगा । ये भी नाटक के पुराने प्रकार हैं । रामलीला, रासलीला आदि को देखकर यह बात तो आपकी समझ में आयी ही होगी कि इनमें किसी महापुरुष के

जीवन की घटनाओं का अनुकरण किया जाता है । जो कलाकार इन घटनाओं का अनुकरण कर इन्हें हमारे सामने पेश करते हैं, उन्हें 'अभिनेता' कहते हैं । वास्तव में नाटक के मूल में अनुकरण या नकल का भाव है । यह शब्द 'नट्' धातु से बना है । 'नाटक' रूपक का एक भेद है। संस्कृत के आचार्यों ने 'रूपक' को भी 'काव्य' के अन्तर्गत रखा है । पर उन्होंने 'काव्य' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया है । आज जिस अर्थ में हम 'कविता' शब्द का प्रयोग करते हैं, 'काव्य' शब्द का प्रयोग प्राचीन आचार्यों ने ठीक उसी अर्थ में नहीं किया है । उनके अनुसार 'काव्य' में कविता ही नहीं, नाटक भी सम्मिलित है ।

कान से सुनने (श्रवण) और आँख से देखने (दृष्टि) के आधार पर काव्य के दो भेद किये गये हैं– श्रव्य-काव्य और दृश्य-काव्य । जिन रचनाओं का आनंद मुख्य रूप से सुनकर लिया जाता है वे श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत आती हैं । इस दृष्टि से कविता, कहानी, उपन्यास आदि श्रव्य-काव्य हैं । जिन रचनाओं की रचना प्रमुख रूप से चक्षु (आँख) के आधार पर की जाती है और जिनका आनंद देखकर लिया जाता है उन्हें दृश्य-काव्य कहते हैं । नाटक इसी वर्ग की रचना है, अतः यह दृश्य-काव्य है ।

दृश्य-काव्य होने के कारण नाटक की वास्तविक सफलता मंच पर खेले जाने में है । किसी नाटक को मंच पर देखकर या पढ़कर आप पाते हैं कि:

1) उस नाटक में किसी घटना का चित्रण है ।
2) यह घटना कुछ व्यक्तियों के जीवन में घटित हुई है ।
3) यह घटना किस काल अर्थात् समय में घटित हुई है ।
4) जिन व्यक्तियों की कथा नाटक में है, वे आपस में या स्वयं से वार्तालाप करते हैं और वार्तालाप का आधार है भाषा ।
5) नाटक के लिखने का कोई स्थान या देश है ।
6) नाटक लिखने का कोई न कोई कारण है ।
7) लिखा हुआ नाटक रंगमंच पर खेला जाता है जिसे 'अभिनय' कहते हैं ।

किसी भी नाटक में इन सात बातों का होना आवश्यक है । इन्हें हम नाटक के तत्व कहते हैं । इनके निम्नलिखित नाम हैं :

1) कथावस्तु
2) पात्र या चरित्र-चित्रण
3) देशकाल या परिवेश
4) संवाद और भाषा
5) शैली
6) अभिनेता
7) उद्देश्य

नाटक के इन तत्वों के आधार पर अब हम नाटक-विधा का विवेचन करेंगे, किन्तु अंतर यह है कि संवाद, भाषा और शैली को हमने एक ही नाम दिया है – "संरचना शिल्प" । साथ ही, उद्देश्य के लिए हमने प्रतिपाद्य शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा है । इस पाठ में हम नाटक के तत्वों को निम्नलिखित नामों से विवेचित कर रहे हैं :

नाटक के तत्व

1) कथावस्तु
2) चरित्र-चित्रण
3) परिवेश
4) संरचना-शिल्प
5) अभिनेयता और
6) प्रतिपाद्य ।

आइए, अब इन तत्वों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करें ।

कथावस्तु

कथावस्तु का अर्थ है नाटक में प्रस्तुत घटनाचक्र । यह घटनाचक्र विस्तृत होता है और इसकी सीमा में नाटक की स्थूल घटनाओं के साथ पात्रों के आचार-विचारों का भी समावेश है । आपने शायद प्रसाद जी के चंद्रगुप्त नाटक का अध्ययन किया होगा । इस नाटक में तीन प्रमुख घटनाएँ हैं । अलक्षेंद्र का आक्रमण, नंदवंश का उन्मूलन और सिल्यूकस का पराभव । इस प्रकार उस नाटक की कथावस्तु घटनाबहुल है । "चंद्रगुप्त" नाटक में नंद-वंश के उन्मूलन से चंद्रगुप्त के राज्याभिषेक तक बहुत सारी घटनाएँ घटती हैं । नाटक में स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार की घटनाएँ होती हैं । जो घटनाएँ मंच पर दिखायी जाती हैं, उन्हें "दृश्य" तथा जिनकी केवल सूचना दी जाती है उन्हें "सूच्य" कहते हैं । नाटक की कथावस्तु ठोस और सुसंबद्ध होनी चाहिए । इस नाटक की घटनाएं, प्रसंग या स्थितियाँ,

परस्पर सुसंबद्ध है और नाटक के मूलभाव एवं चरित्र को उजागर करने में सहायक है। घटनाक्रम के द्वारा इतिहास की संगति एवं नाटक के पात्रों के चरित्र-विकास का सामंजस्य होता चला है । नाटक के पहले अंक में ही तक्षशिला के गुरूकुल में युवकों की मंडली द्वारा राजनीतिक क्रांति का प्रयत्न दिखाया गया है । वहीं से मैत्री, प्रेम और विरोध का आरंभ होता है । फिर विपक्षी दल का परिचय मिलता है। क्रमानुसार विरोधी-दलों का सामना होता है और विरोध की जटिलता बढ़ती है।

नाटक की कथावस्तु के विकास की दृष्टि से डॉ. गोविन्द चातक ने इसके पाँच भाग स्वीकार किये हैं वे हैं :

1) प्रारंभ
2) नाटकीय स्थल
3) द्वन्द्व
4) चरम सीमा
5) परिणति

1) **प्रारंभ**: नाटककार को प्रारंभ पर विशेष ध्यान देना चाहिए । इस भाग में नाटक की कथावस्तु हमारे सामने आती है । इसका प्रारंभ कौतूहल एवं जिज्ञासा-युक्त होना चाहिए । चंद्रगुप्त नाटक का आरंभ भव्य एवं कौतूहलपूर्ण है । पाठक नाटक को पढ़ने के लिए आकर्षित होता है । नाटक का प्रारंभ तक्षशिला से हुआ है । तक्षशिला की प्रकृति मनोरम है और सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्व है । गुरूकुल के भव्य वातावरण ने आरंभ को आकर्षक बना दिया है । चाणक्य जैसे आचार्य, सिंहरण एवं चंद्रगुप्त जैसे वीर राजकुमार छात्रों का योग, उनके ओजस्वी संवाद तथा तलवार की लपक-झपक देखते ही बनती है ।

2) **नाटकीय स्थल** : कथा के वे भाग जिनमें घटनाएँ ऐसा मोड़ लेती है कि जिनकी दर्शक को पहले से कल्पना नहीं होती और जिनसे वह कौतूहल का अनुभव करता है, नाटकीय स्थल कहलाते हैं । कथावस्तु के इस भाग में नाटक के पात्र परिस्थिति-विशेष में उलझ जाते हैं । नंद की सभा में चंद्रगुप्त की आँखों के सामने चाणक्य का तिरस्कार और अपमान होता है । चंद्रगुप्त की भी निंदा होती है । यहीं से नाटकीय स्थल प्रारंभ होता है ।

3) **द्वंद्व**: नाटक में द्वंद का विशेष महत्व है । द्वंद्व बाह्य भी हो सकता है और आंतरिक भी । प्रसाद ने "चंद्रगुप्त" में इन दोनों प्रकार के द्वंद्वों की सुंदर योजना की है । नंद द्वारा तिरस्कृत चाणक्य एवं चंद्रगुप्त मिलकर नंद वंश को समाप्त करने की योजना बनाते हैं । यहीं से पात्रों में संघर्ष शुरू होता है और द्वंद्व का जन्म होता है ।

नाटकीय स्थल और द्वंद्व का समावेश कुछ आलोचकों ने "विकास " के अंतर्गत किया है ।

4) **चरम सीमा** : द्वंद्व के परिणामस्वरूप नाटक चरम सीमा पर पहुँचता है । चन्द्रगुप्त में चाणक्य की कूटनीति से नंद वंश का नाश होता है । सिल्यूकस और चन्द्रगुप्त की मैत्री से युद्ध समाप्त हो जाता है और भारतीय शांति का अनुभव करते हैं ।

चंद्रगुप्त को प्रजा राजा बना लेती है । यही इस नाटक की चरम सीमा है ।

5) **परिणति** : नाटक के अंतिम भाग में परिणति की योजना की जाती है । अंत में नायक फल की प्राप्ति करता है और कोई जिज्ञासा शेष नहीं रह जाती । "चंद्रगुप्त" को राज्य और नायिका की प्राप्ति तो होती ही है, वह भारत को शत्रुओं के भय से मुक्त कराने में भी सफल होता है ।

चरित्र-चित्रण

नाटक में यों तो पात्रों की संख्या अधिक होती है, किंतु सामान्यतः एक-दो पात्र ही प्रमुख होते हैं । किसी नाटक के प्रधान पुरुष-पात्र को नायक और प्रधान अथवा मुख्य स्त्री-पात्र को नायिका कहते हैं चरित्र-प्रधान नाटक में नाटक की कथावस्तु एक ही पात्र के इर्दगिर्द घूमती है । उदाहरण के लिए प्रसाद के नाटक "ध्रुवस्वामिनी" में प्रधान पात्र ध्रुवस्वामिनी एवं चंद्रगुप्त है । नाटक का सारा कार्य-व्यापार उन्हीं के इर्दगिर्द घूमता है और अंत में फल की प्राप्ति भी उन्हीं को होती है । यों, नायिका-प्रधान नाटक होने के कारण "ध्रुवस्वामिनी" को इस नाटक का प्रमुख पात्र स्वीकार किया जाता है ।

नोट: यदि अब तक आपने 'चन्द्रगुप्त' नाटक का अध्ययन न किया हो तो इस अंश को पढ़ने से पहले उसे पढ़ लें । इससे इस अंश के समझने में आपको सुविधा होगी ।

नाटक में चरित्र के विकास के लिए नाटककार पात्रों के अनुरूप संवादों की योजना करता है । पात्रों के वार्तालाप द्वारा उनके चरित्र को उजागर किया जाता है । पुराने नाटकों में पात्रों के मानसिक सोच-विचार के लिए एक विधि अपनाई जाती थी, जिसे "आकाश भाषित" कहा जाता था । पात्र दर्शकों के सुभीते के लिए स्वयं ही ज़ोर से पूछ लेता था "क्या कहा" ? अमुक बात; फिर स्वयं ही उस प्रश्न का उत्तर भी दे देता था । समकालीन नाटकों में वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से इसे भिन्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है ।

पात्रों के कार्यों एवं उनके पारस्परिक वार्तालाप से उनके चरित्र पर प्रका श पड़ता है । जब कोई पात्र किसी अन्य पात्र के विषय में कोई बात कहता है तो उससे भी चरित्र- त्रण में सहायता मिलती है । आप "चंद्रगुप्त" नाटक में चंद्रगुप्त के चरित्र को देखें । उसके कार्य ी ही नहीं, उसके विषय में अन्य पात्रों के कथनों से भी उसकी वीरता पर प्रकाश पड़ता है । द्वंद्व के लिए वह सदैव प्रस्तुत रहता है, वह स्वाभिमानी है, वह दृढ़ प्रतिज्ञ है, अपने इष्ट साधन के लिए वह सिंकदर जैसे यशस्वी की सहायता भी स्वीकार नहीं करता । शत्रु-पक्ष भी उसकी वीरता की प्रशंसा करता है ।

परिवेश

परिवेश से मतलब है—देश-काल । किसी भी नाटक में वर्णित घटनाओं का संबंध किसी स्थान एवं काल से होता है । नाटक में यथार्थता, सजीवता एवं स्वभाविकता लाने के लिए यह जरूरी है कि नाटककार घटनाओं का यथार्थ परिवेश चित्रित करे । ग्राम से संबंधित नाटक में ग्राम के परिवेश का चित्रण आवश्यक है, जैसे घर, नदी-नाले, खेत-खलिहान, प्रकृति, लोगों का पहनावा, चाल-ढाल आदि गाँव के अनुसार होने चाहिए । इसी प्रकार यदि घटना शहर की हो तो वहाँ के वास्तविक परिवेश का चित्रण अधिक स्वाभाविक होगा ।

नाटककार के लिए समय या काल का ध्यान रखना भी आवश्यक है । उदाहरण के लिए "चंद्रगुप्त" नाटक को ही लें । इसमें सिकंदर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है । उस समय छोटे-छोटे राज्यों में परस्पर शत्रुता थी । नंद ही शक्तिशाली राजा था । नाटक में तत्कालीन धार्मिक स्थिति का भी यथार्थ चित्रण हुआ है । तक्षशिला उस समय का विश्वप्रसिद्ध शिक्षा केंद्र था । उसका भी इसमें यथार्थ चित्रण है ।

निष्कर्ष यह है कि नाटककार के लिए अपने नाटक में वर्णित घटना के समय एवं परिवेश की सही जानकारी रखना आवश्यक है, अन्यथा नाटक में अस्वाभाविकता आ जाएगी ।

संरचना-शिल्प

इसमें हम नाटक की शैली, भाषा और संवाद की चर्चा करेंगे ।

शैली

रंगमंच की दृष्टि से नाट्य की कई शैलियाँ हैं-जैसे भारतीय शास्त्रीय नाट्य शैली, पाश्चात्य नाट्य शैली। इसके अतिरिक्त विभिन्न लोक-नाट्य शैलियाँ भी हैं—जैसे स्वांग, जात्रा, रामलीला, रासलीला आदि ।

प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से भी नाटक की कई शैलियाँ होती है—जैसे गली-मुहल्लों में, बिना रंगमंचीय उपकरणों की सहायता से खेले जाने वाले नाटकों की नुक्कड़ शैली, कविताओं पर आधारित नाटक या ऐसे नाटक जिनमें काव्य या गीति-तत्व की प्रमुखता हो-गीतिनाट्य शैली ।

आजकल नाटक और रंगमंच में विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यशैलियों के सम्मिश्रण के प्रयोग भी किए जाते हैं, जिन्हें किसी एक शैली में रखना संभव नहीं है ।

वास्तव में नाट्यशैली का निर्धारण उसी समय हो जाता है जब नाटककार नाट्यालेख की रचना करता है, क्योंकि नाटककार की रचना-प्रक्रिया में रंगमंच भी शामिल रहता है । स्पष्टतः नाटक लिखते समय नाटककार उसे अपने मन के रंगमंच पर अभिनीत होते हुए देखता भी है ।

संवाद

नाटक के विभिन्न पात्र एक दूसरे से जो वार्तालाप करते है, उन्हें संवाद कहते है । संवादों के द्वारा नाटक की कथा आगे बढ़ती है; नाटक के चरित्रों पर प्रकाश पड़ता है । नाटक में स्वगत-कथन भी

होते हैं । स्वगत-कथन में पात्र स्वयं से ही बात करता है । इनके द्वारा नाटककार पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण करता है। किन्तु आवश्यकता से अधिक लंबा स्वगत-कथन नाटक में शिथिलता ला देता है हमने आरंभ में ही बताया है कि नाटक दृश्य विधा है । दर्शक रंगमंच पर नाटक का अभिनय होते हुए देखते हैं, इसलिए नाटक के संवाद रंगमंच की विशेषताओं से युक्त होने चाहिए । "चंद्रगुप्त" नाटक की संवाद-योजना देखने पर लगता है कि इस नाटक के संवादों से कथावस्तु आगे बढ़ती है । अर्थशास्त्र से लेकर तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने तक की बात बढ़ती चली गयी है । आइए, एक उदाहरण देखें :

उदाहरण

आरंभ के दृश्य— *चाणक्य–"केवल तुम्हीं लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए ठहरा था ।" सिंहरण— "आर्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी शस्त्रज्ञान की है", चाणक्य—"अच्छा तुम अब मालवा में जाकर क्या करोगे ?" सिंहरण—"अभी तो मैं मालवा नहीं जाता । मुझे तो तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है ।"*

संवाद पात्रों के अनुकूल एवं स्वाभाविक हों । काल, परिस्थिति एवं पात्रों की स्थिति को ध्यान में रखकर संवादों की योजना करनी चाहिए । ऐतिहासिक नाटकों में उस युग के अनुकूल भाषा होनी चाहिए । अगर मुग़ल काल की कथा है तो उर्दू-मिश्रित भाषा का प्रयोग होना चाहिए और यदि गुप्तकाल की कथा है तो संस्कृत-निष्ठ भाषा का प्रयोग होना चाहिए ।

भाषा

नाटककार के लिए यह जरूरी है कि अपनी रचना में वह ऐसी भाषा का प्रयोग करे कि जिसमें स्वाभाविकता, रोचकता तथा सजीवता हो । विषय के अनुरूप भाषा का प्रयोग आवश्यक है । उदाहरण के लिए "चंद्रगुप्त" नाटक में संस्कृतनिष्ठ भाषा स्वाभाविक है । नाटक में स्वाभाविक बातचीत के रूप में भाषा का प्रयोग अपेक्षित है ।

अभिनेयता

कोई भी नाटककार नाटक की रचना रंगमंच पर खेले जाने के लिए ही करता है । रंगमंच पर खेला जाकर ही एक नाटक पूर्ण होता है । रंगमंच पर नाटक की प्रस्तुति जिस व्यक्ति के निर्देशन में संपन्न होती है, उसे निर्देशक कहते है । निर्देशक रंगमंचीय उपकरणों एवं अभिनेताओं के द्वारा उस नाटक को प्रेक्षकों (नाट्य-दर्शकों) के सामने प्रस्तुत करता है । इस प्रकार एक नाटक की यात्रा नाटककार से आरंभ होकर निर्देशक एवं अभिनेताओं से होती हुई प्रेक्षकों तक पहुँच कर पूर्ण होती है ।

रंगमंचीयता अथवा अभिनेयता को नाटक का प्राण माना जाता है । पात्रों की आकृति, आयु, वेशभूषा, चाल-ढाल, हाव-भाव आदि का उल्लेख नाटककार कोष्ठक में करता चलता है–इसे 'रंग-निर्देश' कहते हैं । नाटक की मंचीय प्रस्तुति में रंग-निर्देशों से सहायता मिलती है ।

प्रतिपाद्य

सफल नाटककार अपने नाटक के द्वारा गंभीर प्रतिपाद्य या उद्देश्य को हमारे सामने रखता है । नाटक की कथावस्तु, पात्र, परिवेश, शिल्प आदि तत्वों से महत्वपूर्ण है उसका प्रतिपाद्य । अनेक नाटककारों ने स्वयं अपने नाटकों के प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य की चर्चा की है । उदाहरण के लिए प्रसाद जी ने "चंद्रगुप्त", "विशाख" आदि ऐतिहासिक नाटकों के लिखने के उद्देश्य पर प्रकाश डाला है । उन्होंने "विशाख" (प्रथम संस्करण) की भूमिका में कहा है :

'इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है..............मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने कि हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।" निःसंदेह किसी नाटक के लिए प्रतिपाद्य का महत्व बहुत अधिक है । प्राचीन आचार्यों ने प्रतिपाद्य के स्थान पर "रस" शब्द का प्रयोग कर नाटक में उसी को सर्वोपरि माना था ।

नाटक में नाटककार जो कहना चाहता है, उसे प्रतिपाद्य या उद्देश्य कहते हैं । किसी भी नाटक के प्रतिपाद्य को समझने के लिए यह जरूरी है कि पहले हम नाटक को अच्छी प्रकार समझें, फिर उसके संदेश को पहचाने और उसके बाद नाटक के साहित्यिक एवं सामाजिक मूल्य का निर्णय करें ।

अंत को ध्यान में रखकर नाटक को दो कोटियों में विभाजित किया जाता है :
1) सुखांत—वे नाटक जिनका अन्त सुख में होता है ।
2) दुखांत—वे नाटक जिनका अंत दुःख में होता है ।

2.3.1 नाटक का वर्गीकरण

नाटक के भेद करते समय हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि नाटक उस रूप में साहित्य का अंग नहीं है जिस रूप में कहानी, उपन्यास या कविता आदि हैं । नाटक की दृश्यवत्ता इसे साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न धरातल पर ला खड़ा करती है । नाटक का लिखित आलेख संपूर्ण नाट्य नहीं है । संपूर्ण नाट्य तो तब बनता है जब नाटककार द्वारा लिखित नाट्यालेख को निर्देशक अभिनेताओं के सहयोग से रंगमंच पर प्रेक्षक-समुदाय के सामने प्रस्तुत करता है । अब हम देखेंगे कि किन आधारों पर नाटक के भेद किए जा सकते हैं । एक आधार तो विषयवस्तु का हो सकता है । विभिन्न विषयों को लेकर नाटकों की रचना की जाती है । यदि नाटक का विषय ऐतिहासिक हो तो उसे हम ऐतिहासिक नाटक कहेंगे और यदि सामाजिक हो तो सामाजिक नाटक । इसी प्रकार नाटक के धार्मिक, पौराणिक आदि भेद भी किए जा सकते हैं ।

नाट्य का दूसरा वर्गीकरण नाटक की मंचीय प्रस्तुति को ध्यान में रखकर किया जाता है, क्योंकि नाट्यालेख (नाटक का लिखित रूप) को नाट्य बनने के लिए रंगमंच पर उसकी प्रस्तुति प्रायः आवश्यक मानी गयी है । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि रंगमंच कई प्रकार के होते हैं–खुला रंगमंच, बॉक्स या बंद रंगमंच, चक्राकार या एक ही स्थान पर चक्र की तरह चारों ओर घूमने वाला रंगमंच आदि । कई नाटक लिखे ही इस तरह जाते है कि वे किसी विशेष प्रकार के रंगमंच पर ही प्रस्तुत हो सकते हैं । जैसे चक्राकार रंगमंच पर प्रस्तुत होने वाले नाटक में यह विशेषता होगी कि वह केवल एक ओर से ही दर्शकों के सामने नहीं होगा, बल्कि मंच के चारों ओर दर्शक बैठे होंगे और अभिनेता इस प्रकार अभिनय करेंगे कि चारों ओर बैठे दर्शकों को देख सकें, उन्हें अभिनय दिखा सकें । स्पष्ट शब्दों में, हर ओर बैठा दर्शक अभिनेताओं के क्रिया-कलाप को देख सकेगा ।

2.3.2 रेडियो नाटक

नाटक को रंगमंच पर देखने के अलावा आप रेडियो पर भी अक्सर नाटक सुनते होंगे । रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक से अलग एक नयी विधा है । मूलतः नाटक दृश्य विधा है, किन्तु रेडियो नाटक में शब्द और ध्वनि का विशेष महत्व है । रेडियो नाटक मंचीय नाटक से इस अर्थ में भिन्न है कि जहाँ मंचीय नाटक में विभिन्न रंगमंचीय उपकरणों का प्रयोग होता है तथा अभिनेताओं के अभिनय, हाव-भाव, गति आदि के द्वारा दर्शकों तक बात पहुँचाई जाती है, वहाँ रेडियो नाटक में केवल ध्वनि के माध्यम से ही सब कुछ करना होता है । इसमें ध्वनि के द्वारा ही अभिनेताओं का चलना-फिरना, हँसना-रोना, आह-भरना आदि प्रस्तुत किया जाता है ।

रेडियो नाटक बहुत हद तक संवादों पर भी निर्भर करता है । रेडियो नाटक के संवाद लिखे ही इस प्रकार जाते हैं कि उनमें ऐसी बातें, ऐसे संकेत दे दिए जाएँ जिनकी कि मंचीय नाटक में आवश्यकता नहीं होती । जैसे---मंचीय नाटक पर यदि कोई अभिनेता फटे कपड़े पहन कर आता है तो दर्शकों को देखने मात्र से ही पता चल जाता है कि उसने फटे कपड़े पहन रखें हैं, जबकि रेडियो नाटक में इस स्थिति की अभिव्यक्ति किसी पात्र के संवाद से ही करनी पड़ेगी ।

रेडियो नाटक के बारे में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें विभिन्न भावपूर्ण स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए पार्श्व संगीत का बहुत प्रयोग होता है । जैसे किसी की मृत्यु पर करुण संगीत का बजना, किसी आश्चर्यजनक घटना पर चौंकाने वाली धुन का बजना आदि ।

रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक से इस अर्थ में भिन्न है कि रंगमंचीय नाटक में तो अन्य ललित कलाएँ–चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्य आदि सम्मिलित रहती है, किन्तु रेडियो नाटक में इनका उपयोग उस रूप में नहीं किया जा सकता । केवल ध्वनि के सहारे नृत्य की गति का बोध कराया जा सकता है ।

2.3.3 दूरदर्शन नाटक

आजकल तो आप लगभग हर रोज़ रात को दूरदर्शन पर नाटक देखते होंगे । अब तो दूरदर्शन पर धारावाहिक नाटक दिखाये जाते है जिन्हें 'सीरियल' कहा जाता है । दूरदर्शन नाटक भी नाटक की एक नयी विधा है जो फ़िल्म के अधिक करीब है । दूरदर्शन नाटक और रंगमंचीय नाटक में बहुत अंतर है । सबसे बड़ा अंतर तो यह है कि दूरदर्शन नाटक में कैमरे का इस्तेमाल होता है । यहाँ हर

चीज़ कैमरे की आँख से ही देखी जाती है । यह बात तो आप सभी जानते होंगे कि दूरदर्शन में और फिल्म में भी 'कैमरा ट्रिक' का बहुत इस्तेमाल किया जाता है । दूसरा अंतर यह है कि रंगमंच पर सब कुछ नहीं दिखाया जा सकता, क्योंकि रंगमंच की अपनी सीमाएँ हैं, किन्तु दूरदर्शन पर लगभग सभी कुछ दिखाया जा सकता है । उदाहरण के लिए यदि रंगमंच पर कश्मीर का दृश्य दिखाना हो तो यह कार्य परदे के द्वारा सम्पन्न हो सकता है, किंतु दूरदर्शन पर यह यथार्थ दृश्य के रूप में ही दिखाया जाएगा ।

तीसरा अंतर यह है कि रंगमंच पर अभिनेताओं और दर्शकों का प्रत्यक्ष संबंध होता है । यदि कोई अभिनेता मंच पर कोई भूल कर बैठे तो वह साफ दिखाई देगी और उससे नाट्य-प्रस्तुति में भी अंतर आ जाएगा, लेकिन दूरदर्शन नाटक में ऐसी भूलों की गुंजाइश प्रायः नहीं रहती, क्योंकि भूल हो जाने की स्थिति में यहाँ दृश्य को बार-बार "शूट" किया जाता है, तब कहीं जा कर वह 'ओ॰ के॰' होता है ।

2.4 एकांकी

हिन्दी एकांकी पूर्ण रूप से एक नयी विधा है । आधुनिक कहानी की भाँति हिन्दी एकांकी पर भी पश्चिम का प्रभाव है । कुछ आलोचकों के मत में एकांकी को पश्चिम से जोड़ना बहुत ठीक नहीं है, क्योंकि रूपक और उपरूपक के कुछ भेद यथा-व्यायोग, भाण, प्रहसन, वीथी, सट्टक, विलासिका, प्रकारणिका आदि एक ही अंक के थे । अतः भारत में 'एकांकी' की परंपरा रही है । भास का 'उरुभंग' और 'मध्यम व्यायोग' एकांकी के निकट हैं । किन्तु तुलना करने पर आधुनिक एकांकी एवं संस्कृत के रूपक में स्पष्ट अंतर दिखता है । कथावस्तु एवं शिल्प-दोनों दृष्टियों से रूपक एवं एकांकी में अंतर है । आधुनिक एकांकी की मूल प्रेरणा जीवन का द्वन्द्व और संघर्ष है । मानसिक विश्लेषण को आधार बनाकर आधुनिक एकांकी जीवन की अभिव्यक्ति को अपना मुख्य उद्देश्य मानता है । संस्कृत के रूपक में संघर्ष या द्वन्द्व का प्रायः अभाव था ।

एकांकी का उद्भव एवं विकास पश्चिम में भी नया ही है । पश्चिम में प्राचीन काल में बड़े-बड़े नाटक ही खेले जाते थे । नाटक के बीच दृश्य-परिवर्तन के लिए समय निकालने के लिए, छोटे-छोटे नाटक खेले जाते थे जिन्हें "कर्टन रेंजर्स" कहते थे । ऐसे नाटकों का स्वतंत्र विकास वहाँ भी नहीं हो पाया । आप सोच रहे होंगे कि एकांकी का विकास क्यों हुआ ? इसका उत्तर है—समय की कमी के कारण । विश्व युद्ध के बाद आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के युग में मनुष्य के पास समय की कमी हो गयी । जीवन की भाग-दौड़ में वह कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक कार्य करना चाहता है, यहाँ तक कि मनोरंजन के लिए भी वह कम-से-कम समय देना चाहता है । वर्तमान युग में व्यक्ति की व्यस्तता और समय के अभाव के कारण अनेक ऐसी विधाओं का विकास हुआ है जो आकार में लघु है । एकांकी का विकास भी इसी कारण हुआ है ।

प्रसिद्ध एकांकीकार डॉ॰ रामकुमार वर्मा के अनुसार "*एकांकी में एक घटना होती है और वह नाटकीय कौशल से चरम सीमा तक पहुँचती है।*" एकांकी में एक सम्पूर्ण कार्य एक ही स्थान और समय में होना चाहिए । एकांकी में वर्णित कथावस्तु अलग-अलग स्थानों एवं कालों में घटित नहीं होनी चाहिए। अधिकांश एकांकी एक ही अंक और एक ही दृश्य में समाप्त हो जाते हैं जिससे प्रभाव की एकता एवं घटनाओं की एकसूत्रता बनी रहती है ।

नाटक के समान एकांकी में भी छः तत्व होते हैं । (1) कथावस्तु (2) चरित्र चित्रण (3) परिवेश (4) संरचना शिल्प (5) रंगमंचीयता और (6) प्रतिपाद्य । लेकिन नाटक के समान एकांकी में न तो कथावस्तु के विस्तार का अवकाश रहता है और न ही पात्रों की बहुलता का । ऐसा भी नहीं कि नाटक को छोटा करके एकांकी बना लिया जाए । एकांकी सर्वथा स्वतंत्र विधा है । नाटक में घटनाओं की बहुलता रहती है, जबकि एकांकी पात्र, घटना, संवाद आदि की दृष्टियों से सीमित होता है । नाटक में अनेक अंक होते हैं, किंतु एकांकी में एक ही अंक होता है ।

कथानक : एकांकी का कथानक भी इतिहास, राजनीति, पुराण, लोकतंत्र, समाज या चरित्र विशेष से लिया जा सकता है । उसका संबंध जीवन की किसी एक घटना या पहलू से होता है । इसके कथानक के मुख्य पाँच भाग होते हैं (1) प्रारंभ (2) नाटकीय स्थल (3) द्वंद्व (4) चरम सीमा और (5) परिणति। उदाहरण के लिए हम डॉ॰ रामकुमार वर्मा के एकांकी "दीपदान" को लें । इसमें कथानक एक महत्वपूर्ण घटना पर आधारित है—कथानक का विस्तार इसमें नहीं है । पन्ना धाय द्वारा चित्तौड़ के राजकुमार की जीवन-रक्षा के लिए अपने पुत्र को बलिदान करना ही इसकी कथावस्तु है, पर इसे नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

कथानक का प्रारंभ नाटकीय ढंग से तुलजा भवानी की पूजा के अवसर पर होता है । शामली का आकार पन्ना धाय से यह कहना कि सिपाहियों ने महल को चारों ओर से घेर लिया है, नाटकीय स्थल है ।

कथानक में द्वन्द्व उस समय आता है जब पन्ना कुँअर की जगह अपने पुत्र चंदन को सुलाने की बात सोचती है । कथानक में रनवीर द्वारा चंदन पर तलवार से आघात करना चरम सीमा है ।

चरित्र-चित्रण : एकांकी में पात्रों की बहुलता नहीं रहती । साधारणतया एक ही मुख्य पात्र होता है । मुख्य पात्र के आगे-पीछे सारी घटनाएँ घूमती हैं । 'दीपदान' में पन्ना ही मुख्य पात्र है । उसके कार्य एवं संवादों से उसका चरित्र उभरा है । पन्ना के दृढ, स्वामी-भक्त एवं राष्ट्र-भक्त चरित्र के साथ रनवीर के अत्याचारी रूप को उभार कर एकांकीकार ने चरित्रों की स्पष्ट पहचान कराई है ।

परिवेश : एकांकी में किसी कार्य-विशेष की प्रधानता रहती है । यह कार्य किसी काल-विशेष में घटित होता है और इसके घटने का कोई स्थान होता है । इन्हें देश-काल और वातावरण अथवा परिवेश कह सकते हैं । ऐतिहासिक एकांकियों में तो परिवेश का और भी अधिक महत्व होता है ।

एकांकी में एक स्थान, एक काल एवं कार्य की प्रधानता रहती है । दीपदान एकांकी से आप स्पष्ट पहचान सकते हैं कि इसमें एक स्थान मेवाड़, एक काल तथा एक कार्य की योजना की गई है । राज-परिवार से संबंधित परिवेश का यथार्थ चित्रण इस एकांकी में है ।

संरचना शिल्प

आप जान चुके हैं कि संरचना-शिल्प का संबंध एकांकी की भाषा शैली और संवाद-योजना से है ।

भाषा-शैली : प्रत्यक्ष प्रदर्शन की विधा होने के कारण एकांकी की शैली नाटकीय होती है । उसमें विचारों-भावों की अभिव्यक्ति केवल भाषा के द्वारा ही नहीं, पात्रों की वेश-भूषा, उनकी भाव-भंगिमा, कार्य, रंगमंच के दृश्य और वातावरण, गीत-संगीत, ध्वनि-प्रकाश आदि के द्वारा भी होती है । रेडियो के लिए लिखे जाने वाले एकांकियों की शैली मंच पर खेले जाने वाले एकांकियों से भिन्न होती है । रेडियो में ध्वनि का विशेष महत्व है जबकि मंच पर अभिनीत होने वाले एकांकियों में रंग-निर्देश का । कुछ एकांकी ऐसे भी होते हैं जो पहले रेडियो पर प्रसारण के लिए लिखे जाते हैं और बाद में उन्हें मंच के अनुरूप बना लिया जाता है । उस स्थिति में उनके शिल्प में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है । डॉ० रामकुमार वर्मा का 'दीपदान' ऐसा ही एकांकी है ।

एकांकी की भाषा सहज, स्वाभाविक, सजीव और रोचक होनी चाहिए । भाषा जन-जीवन के जितना निकट होगी, उसे समझना उतना ही सहज होगा । एकांकी की भाषा भावों की अभिव्यक्ति के साथ चरित्र-चित्रण का साधन भी है । उसी के द्वारा पात्रों के स्वभाव की विशेषताओं, गुण-दोषों आदि पर भी प्रकाश पड़ता है, इसलिए एकांकी के प्रत्येक पात्र की अपनी भाषा होती है । सभी पात्रों के लिए समान भाषा से एकांकी की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है । अच्छे एकांकियों में भाषा पात्रों के अनुसार बदलती है ।

संवाद : एकांकीकार कम से कम संवादों में भावों को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है । संवाद परिस्थिति एवं पात्रों की मनोदशा को प्रकट करने वाले होने चाहिए। 'दीपदान' एकांकी के मुख्य पात्र पन्ना के संवाद उसके चरित्र की दृढ़ता को प्रकट करते हैं : "चित्तौड़ राग-रंग की भूमि नहीं है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं ।

रंगमंचीयता अथवा अभिनेयता

नाटक के समान रंगमंचीयता एकांकी का भी प्राण-तत्व है । एकांकीकार के लिए भी अभिनेयता अथवा रंगमंचीयता का ध्यान रखना उतना ही आवश्यक है जितना कि नाटककार के लिए । एकांकी की वास्तविक सफलता भी रंगमंच पर अभिनीत होने में ही है । एकांकी में संक्षिप्तता आवश्यक है, अतः एकांकीकार के रंग-निर्देश संक्षिप्त होने चाहिए । एकांकी के लिखित रूप को निर्देशक अभिनेताओं तथा अन्य रंगकर्मियों के सहयोग से दर्शकों तक संप्रेषित करता है, अतः उसकी सफलता अभिनेताओं के अभिनय पर निर्भर करती है ।

प्रतिपाद्य : एकांकीकार अपनी रचना के द्वारा कोई-न-कोई संदेश देता है । वह स्पष्ट शब्दों में न कहकर कथानक, कार्य-व्यापार, चरित्र आदि के माध्यम से अपना उद्देश्य दर्शकों-पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है । एकांकीकार ने एकांकी में क्या कहा है, यह एकांकी को ठीक से समझने पर

पता चलेगा । 'दीपदान' एकांकी को ही लें । इसमें त्याग एवं बलिदान का आदर्श रखा गया है । देश के लिए पुत्र जैसे अनमोल रत्न को भी माँ ने बलिदान कर दिया है । देश की बलिवेदी पर सर्वस्व त्याग की प्रेरणा देना इस एकांकी का उद्देश्य है ।

नाटक और एकांकी में अंतर

नाटक और एकांकी में कुछ मूलभूत अंतर हैः

नाटक	एकांकी
1) नाटक की पृष्ठभूमि और कथानक विस्तृत होता है ।	1) एकांकी में पृष्ठभूमि अथवा कथानक के विस्तार का अवसर नहीं रहता ।
2) नाटक में जीवन के विविध पहलुओं पर विचार किया जाता है ।	2) एकांकी में जीवन के किसी एक पक्ष को लिया जाता है ।
3) नाटक में अनेक पात्र होते हैं ।	3) एकांकी में कम-से-कम पात्र रखे जाते हैं ।
4) नाटक में छोटी-छोटी घटनाओं का विवरण दिया जा सकता है ।	4) एकांकी में छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता ।
5) नाटक में किसी विचार को विस्तार से प्रस्तुत किया जा सकता है ।	5) एकांकी में विचार को संकेत द्वारा रखा जाता है ।
6) नाटक में स्थान और काल की सीमा का विस्तार हो सकता है ।	6) एकांकी में स्थान, समय और घटना के विस्तार के लिए अवसर नहीं रहता । संक्षिप्ति एकांकी के लिए आवश्यक है ।

☞ बोध प्रश्न

1 वाङ्मय एवं साहित्य में क्या अंतर है ? पाँच पंक्तियों में बताइए ।

....

....

....

....

....

2 नाटक के तीन प्रमुख तत्व है—पात्र या चरित्र-चित्रण, देशकाल या परिवेश, संवाद और भाषा । इनके अतिरिक्त नाटक के अन्य चार तत्वों के नाम लिखिए :

i) ii)
iii) iv)

3 वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप नाटक के क्षेत्र में कौन से नये रूप उभरे है ? केवल दो के नाम लिखिए ।

....

....

4 नाटक एवं एकांकी में मुख्य तीन अंतर बताइए ।

....

....

....

5 उपर्युक्त शब्दों के द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) नाटक...................................काव्य है ।
ii) रेडियो नाटक में...................................का विशेष महत्व है ।
iii) एकांकी में...................................अंक होता है ।

2.5 उपन्यास

उपन्यास साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा है । आपमें से कुछ लोगों ने अवश्य ही कोई-न-कोई उपन्यास पढ़ा होगा । उपन्यास पढ़ते समय ऐसा महसूस किया होगा कि जैसे आपकी अपनी ही बात कथा के माध्यम से कही जा रही हो । आपने यह भी अनुभव किया होगा कि उपन्यास की कथा एवं पात्र आपके परिवेश के ही हैं । यही नहीं, आप उपन्यास के पात्रों के सुख-दुःख से प्रभावित भी होते हैं । ऐसा क्यों है ? वास्तव में उपन्यास के माध्यम से लेखक मानव जीवन की तस्वीर को इस निपुणता से प्रस्तुत करता है कि हम उसमें डूब जाते हैं और उसमें वर्णित कथा हमें अपनी-सी लगने लगती है । उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने उपन्यास के बारे में अपना यह मत प्रकट किया है : *"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है ।"* उपन्यास में जीवन का व्यापक चित्रण किया जा सकता है, अतः उसका आकार प्रायः बड़ा हो जाता है ।

आपने इकाई एक में यह पढ़ा है कि हिन्दी में उपन्यास विधा का आरंभ भारतेंदु युग में हुआ । आपने यह भी जाना कि आरंभ में हिन्दी-उपन्यास की शुरूआत अनुवादों के द्वारा हुई । बंगला, मराठी, अंग्रेज़ी आदि से अनूदित उपन्यास हिन्दी पाठकों के सामने आए फिर हिन्दी में मौलिक उपन्यास लिखे जाने लगे । समय एवं परिस्थिति का प्रभाव लेखकों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । काल-विशेष की परिस्थितियाँ लेखक को भी प्रभावित करती हैं । हिन्दी उपन्यास भी समय एवं परिस्थिति से प्रभावित होता रहा है और उपन्यास का वर्तमान रूप भी काल एवं परिस्थिति से प्रभावित है । हम उपन्यास के तत्वों के सभी देखते चलेंगे कि किस प्रकार इस विधा में परिवर्तन आया है ।

हिन्दी में आरंभ में तिलस्मी एवं ऐय्यारी उपन्यास लिखे गये । तिलस्मी उपन्यासों में घटनाएँ तिलस्म से पूर्ण रहती थीं—अर्थात् ऐसे उपन्यासों में इन्द्रजाल, जादू, अद्‌भुत कारनामें; अलौकिक व्यापार एवं चमत्कार से पूर्ण घटनाएँ होती थीं । इस प्रकार के उपन्यासों में नायक वेश बदल कर विकट और विलक्षण कार्य करता था । जासूसी उपन्यास भी उसी प्रकार की घटनाओं से पूर्ण होते थे । जासूसी उपन्यास की खास बात यह होती है कि इसमें नायक गुप्त रूप से किसी भेद या बात का पता लगाने के लिए चलता है । वह अद्‌भुत कारनामे करता है । बाद में हिन्दी में ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी लिखे गये ।

उपन्यास के तत्व

वह कसौटी जिसके आधार पर किसी उपन्यास के गुण-दोषों की परीक्षा की जाती है तत्व कहलाता है । उपन्यास के निम्नलिखित तत्व हैं :

1) कथावस्तु
2) चरित्र-चित्रण
3) परिवेश
4) संरचना-शिल्प
5) प्रतिपाद्य

कथावस्तु : कथावस्तु उपन्यास का मेरुदण्ड है । विभिन्न महत्वपूर्ण घटनाओं का क्रमबद्ध कलात्मक व किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति-हेतु किया गया "संयोजन" कथानक कहलाता है ।

प्रत्येक प्रकार के उपन्यास में कथावस्तु अनिवार्य रूप से होती है, इसके बिना रचना की कल्पना ही नहीं की जा सकती । प्रमुख कथावस्तु अकेले नहीं आती । इसके साथ कुछ सहयोगी कथाएँ भी चलती हैं— रचना की मुख्य कथावस्तु के साथ कुछ अन्य प्रासंगिक कथाओं का संयोजन भी रहता है । मुख्य कथा को 'आधिकारिक कथा' तथा सहायक कथा को "प्रासंगिक कथा" कहते हैं ।

उपन्यास की कथा ठोस एवं श्रृंखलाबद्ध होनी चाहिए, अनावश्यक प्रसंगों से बचना चाहिए । उपन्यास के मूलभाव या चरित्र के विकास के लिए कथावस्तु का आयोजन जरूरी है । कथावस्तु जीवन की वास्तविकता से जुड़ी होनी चाहिए । पहले के उपन्यासों में कल्पना का अधिक स्थान होता था, किन्तु आज यथार्थ जीवन की घटनाओं को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है ।

उपन्यास की कथावस्तु का विकास पहले वर्णन द्वारा होता था किन्तु आज उपन्यास की कथा किसी भी रूप में आरंभ हो सकती है । आज के उपन्यासों में जीवन संदर्भों से कथावस्तु का आरंभ होता है और जीवन के विभिन्न पहलुओं के द्वारा कथा का विकास होता है ।

उदाहरण के लिए आप 'गोदान' को लें । इसमें कथा होरी के जीवन से आरंभ होती है । उपन्यासकार ने होरी के सम्पूर्ण जीवन को कथा का आधार बनाया है । होरी और धनिया की कथा मुख्य कथा है । प्रासंगिक कथा के रूप में मेहता और मालती, गोबर और झुनिया, मातादीन और सिलिया आदि की कथाएँ मुख्य कथा को प्रभावशाली बनाने के लिए ली गयी हैं ।

चरित्र चित्रण : जिन व्यक्तियों के जीवन की घटना को लेकर कथा का आयोजन किया जाता है, वे उपन्यास के पात्र कहलाते हैं । उदाहरण के तौर पर होरी के जीवन में भिन्न-भिन्न प्रकार की जो घटनाएँ घटीं, प्रेमचंद ने उनके आधार पर 'गोदान' की कथावस्तु का विकास किया, अतः हीरो इस उपन्यास का एक पात्र है । सामान्यतः उपन्यास में एक या दो मुख्य पात्र होते हैं । अन्य महत्वपूर्ण पात्र मुख्य पात्र के चरित्र को सशक्त बनाने के लिए रचे जाते हैं । उदाहरण के लिए 'गोदान' में धनिया, गोबर, सिलिया, झुनिया आदि पात्र होरी के चरित्र को सम्पूर्ण रूप से विकसित एवं सशक्त बनाने के लिए रचे गये हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चरित्र के विकास का अवसर अधिक होता है, क्योंकि इसमें चरित्र या पात्र ही उपन्यास का विषय होता है । उदाहरण के लिए जैनेन्द्र के "त्याग पत्र" में बुआ का तथा अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' में शेखर का चित्रण मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ है ।

उपन्यासकार पात्रों के कार्यों एवं वार्तालाप से तो उनके चरित्र को प्रकाशित करता ही है, कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप से भी उनका चरित्र-चित्रण कर देता है । प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की इस विधि को अपनाया है ।

परिवेश : परिवेश के अन्तर्गत देशकाल अर्थात् वह स्थान और समय आता है जहाँ कहानी की घटना घटित हुई । उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक है कि वह देश एवं काल का यथार्थ रूप प्रस्तुत करे । यदि ग्राम की कथा है तो पूरा परिवेश ग्रामीण होना चाहिए । मिट्टी के घर, तालाब, खेत, पगडंडी, पशुधन, ग्रामीण वेशभूषा, रीति-रिवाज, गँवई भाषा आदि ग्रामीण परिवेश की उपस्थिति में सहायक हो सकते हैं । उदाहरण के लिए, "गोदान" में गाँव की कथा कही गयी है । उपन्यास के आरंभ में ही गाँव का रूप सामने आ जाता है : होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी धनिया से कहा—"गोबर को ऊँख गोड़ने भेज देना ।" उपन्यास में परिवेश को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर रहता है–उपन्यासकार विस्तृत ब्यौरे से परिवेश का जीवंत चित्रण कर सकता है परिवेश के वास्तविक चित्रण के लिए लेखक को उस स्थान और काल की ठीक-ठीक जानकारी होनी चाहिए, अन्यथा वह अस्वाभाविक चित्रण कर बैठेगा। प्रेमचन्द को ग्रामीण परिवेश की सही जानकारी थी। वे स्वयं उस परिवेश में पले-बढ़े थे, अतः 'गोदान' में उन्होंने ग्रामीण परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है।

संरचना शिल्प

शैली : उपन्यासकार चाहे किसी भी विषय पर उपन्यास लिखे, उसके लिखने का ढंग अपना होता है । प्रत्येक उपन्यासकार अपने तरीके से कथा को प्रस्तुत करता है । इसी तरीके को शैली कहते हैं । आपने अनुभव किया होगा कि प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी अलग शैली होती है । एक उपन्यासकार की कई रचनाओं में भी विषयवस्तु के अनुसार शैली बदल जाती है । उपन्यासकार प्रत्यक्ष, परोक्ष, पत्र, डायरी, पूर्वदीप्ति आदि शैलियों का प्रयोग कर सकता है ।

लेखक की व्यक्तिगत रुचि और विषयवस्तु के अनुसार शैली में परिवर्तन होता है । उदाहरण के लिए आप प्रेमचंद के 'गोदान', 'रंगभूमि', 'सेवासदन' आदि उपन्यासों में शैली की विभिन्नता देख सकते हैं । व्यक्तिगत रुचि के अनुसार प्रेमचंद ने बाह्य घटनाओं पर और जैनेन्द्र ने मनोविश्लेषण पर अधिक जोर दिया है, जिससे उनकी शैलियाँ भिन्न-भिन्न हो गयी हैं ।

संवाद : उपन्यास के पात्र आपस में जो वार्तालाप करते हैं । उन्हें हम संवाद कहते हैं । संवादों से उपन्यास की कथा आगे बढ़ती है तथा पात्रों के चरित्र पर प्रकाश भी पड़ता है । वार्तालाप के द्वारा पात्रों के विचार जाने जा सकते हैं । उपन्यास में पात्रों के अनुकूल संवादों का होना आवश्यक है, अन्यथा कथा में अस्वाभाविकता आ जायेगी । 'गोदान' में मेहता शिक्षित पात्र हैं । उसका यह संवाद उसके शिक्षित होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है : "आप मुझे लज्जित कर रही हैं देवी जी ।"

नोट : इस अंश को पढ़ने से पहले यदि आप प्रेमचन्द के 'गोदान' को पढ़ लें तो इसे समझने में आपको अधिक सुविधा होगी।

भाषा : उपन्यासकार भाषा के माध्यम से रचना में सजीवता लाता है । सही भाषा के प्रयोग से पात्र सजीव एवं स्वाभाविक लगते हैं । यदि उपन्यासकार अपना विचार रख रहा हो तो उसकी अपनी भाषा होनी चाहिए, किन्तु पात्रों की संवादों की भाषा पात्रों के मनःस्थिति के अनुरूप होनी चाहिए । सफल उपन्यासकार प्रायः सरल एवं बोलचाल की भाषा का प्रयोग करता है । 'गोदान' के पात्र अक्सर अपने चरित्र के अनुकूल भाषा बोलते हैं, फलतः इसमें स्वाभाविकता की रक्षा हुई है ।

प्रतिपाद्य : किसी भी रचना के पीछे कोई-न-कोई उद्देश्य होता है । सफल उपन्यासकार वही है जो अपना उद्देश्य सहजता से पाठकों तक पहुँचा दे । 'गोदान' उपन्यास लिखने के पीछे प्रेमचंद का क्या उद्देश्य था ? वे गाँव में पले थे । गाँव में किसानों की आर्थिक दुर्दशा उन्होंने देखी थी । किसानों का शोषण कैसे होता है, यह उन्होंने देखा था । कृषक-जीवन के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करना तथा उनके शोषण को दिखाना उनका उद्देश्य था, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है ।

2.6 कहानी

उपन्यास के समान कहानी भी अत्यंत लोकप्रिय विधा है । इकाई एक में आपने पढ़ा है कि हिन्दी में कहानी का प्रारंभ अनूदित कहानियों से हुआ । मौलिक कहानी-रचना बाद में शुरू हुई । आधुनिक हिंदी कहानी पर पश्चिम का प्रभाव है । अमरीकी कहानीकार "एडगर एलन पो" ने कहा है, *"कहानी एक ऐसा आख्यान है जो एक ही बैठक में पढ़ा जा सके और पाठक पर किसी एक प्रभाव को उत्पन्न कर सके ।"* उसमें उन सभी बातों को छोड़ दिया जाता है जो इस प्रभाव को अग्रसर करने में सहायक नहीं होतीं । वह अपने आप में पूर्ण होती है ।

आइए, अब हम कहानी के तत्वों की चर्चा करें ।

कहानी के तत्व

1) कथावस्तु
2) चरित्र-चित्रण
3) परिवेश
4) संरचना-शिल्प
5) प्रतिपाद्य

कथावस्तु : जैसा कि उपन्यास की चर्चा करते हुए बताया जा चुका है—कथावस्तु का अर्थ है कथा में वर्णित घटना । कहानी मे कथावस्तु संक्षिप्त होती है । कथा के विस्तार के लिए इसमें अवसर नहीं रहता । कथावस्तु का आरंभ घटना से किया जा सकता है और साधारण बात से भी । "पूस की रात" कहानी में घटना एक रात की है । इसी प्रकार "ठाकुर का कुआँ" में भी एक रात की ही घटना है ।

कहानी में किसी ऐसी अनावश्यक बात का वर्णन नहीं होना चाहिए जो मूल कथा से जुड़ी न हो । घटनाओं, स्थितियों और भावों का सांकेतिक रूप में वर्णन करना चाहिए । कल्पना की जगह जीवन के यथार्थ से जुड़ी घटना आज की कहानी में आदर्श समझी जाती है ।

कथावस्तु का विकास विवरण, वार्तालाप, अंतर्द्वंद्व, डायरी या पत्र शैली के द्वारा किया जा सकता है । राधिका रमण की कहानी "कानों में कंगना" का प्रारंभ वार्तालाप शैली में है, जबकि प्रसाद की "गुण्डा" कहानी का परिचयात्मक रूप में ।

चरित्र-चित्रण : कहानी में पात्रों की संख्या कम होती है । सामान्यतः कहानी में किसी एक प्रमुख पात्र के इर्द-गिर्द सारी घटना घूमती है । "पूस की रात" कहानी में मुख्य पात्र हल्कू है । हल्कू के चरित्र को ही इस कहानी के केंद्र में रखा गया है ।

उपन्यास में जहाँ चरित्र के विकास के लिए पर्याप्त अवसर रहता है, वहाँ कहानी में सांकेतिक रूप से चरित्र-विकास की आवश्यकता होती है । कहानी के मूल भाव को लेकर ही चरित्र-चित्रण किया जाता है । सफल कहानीकार अपने पात्रों का पूरा चरित्र संक्षेप में ही निर्मित करते हैं । आप अगले पाठ में **"उसने कहा था"** कहानी में इस विशेषता को देखेंगे । कहानी में आज ऐसे चरित्रों का चित्रण किया जाता है जो जीवन की वास्तविकता से जुड़े होते हैं । कल्पित पात्रों के कारण कहानी में अस्वाभाविकता का दोष आ जाता है । कहानीकार वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले अथवा मानव के अंतर्द्वंद्व को चित्रित करने वाले पात्रों को ले सकते हैं । प्रेमचंद ने कृषक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में हल्कू का चित्रण किया है ।

कहानीकार चरित्र-चित्रण के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनाता है । कभी वह पात्रों के कार्यों अथवा विचारों से उनके चरित्र को उभारता है तो कभी पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप अथवा एक-दूसरे के बारे में व्यक्त विचारों के द्वारा भी चरित्र-चित्रण करता है । कभी-कभी लेखक स्वयं भी पात्रों के गुण-दोषों को बताता है । इनके अलावा चरित्र-चित्रण की कुछ और विधियाँ भी हो सकती है ।, यथा सांकेतिक चरित्र चित्रण ।

परिवेश : कहानी किसी स्थान और किसी समय से संबंधित होती है । इन्हें परिवेश कहते हैं । कहानी में उचित स्थान तथा काल का वर्णन सजीवता लाता है । यदि कहानी की घटनाएँ गाँव में घटित हुई हैं तो उसके स्थान पर शहर का चित्रण उचित नहीं होगा । गाँव से संबंधित सारी बातें उसमें आनी चाहिए । घर-आंगन, खेत-खलिहान, पशु, चौपाल, लोगों के रीति-रिवाज, रहन-सहन सभी परिवेश के अंतर्गत आते हैं । कहानी में लंबे-चौड़े विवरण का स्थान नहीं रहता, इसलिए कहानीकार थोड़े में कहानी के अनुकूल परिवेश का चित्रण करता है । परिवेश के स्वाभाविक चित्रण के लिए यह जरूरी है कि कहानीकार जिस स्थान एवं काल की घटना को ले, उसके बारे में उसे सही जानकारी हो । इसके अभाव में कहानी में अस्वाभाविकता आ जायेगी ।

संरचना शिल्प

शैली : कहानी लिखने का जो ढंग रचनाकार अपनाता है उसे शैली कहते हैं । प्रत्येक कहानीकार अपने ढंग से कहानी लिखता है, इसी कारण कहानी की शैली में विभिन्नता रहती है । विषयवस्तु एवं लेखक की अभिरुचि के अनुसार भी कहानी की शैली भिन्न हो सकती है । उदाहरण के लिए आप प्रेमचंद की कहानियों में शैली की विभिन्नता देख सकते हैं । कथानक के अनुसार कहानीकार डायरी शैली, आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली आदि का प्रयोग करता है । आप आगे की इकाई में 'उसने कहा था' कहानी पढ़ेंगे । इसमें पूर्वदीप्ति शैली है । व्यक्तिगत रुचि के अनुसार प्रेमचंद ने प्रायः बाह्य घटनाओं पर आधारित वर्णनात्मक कहानियों की रचना की है, जबकि जैनेन्द्र एवं 'अज्ञेय' ने मनोविश्लेषण को कहानी का आधार बनाया है ।

संवाद : कहानी के पात्र आपस में जो बातचीत करते हैं उन्हें संवाद कहते हैं । संवादों से कहानी आगे बढ़ती है । 'उसने कहा था' में कहीं-कहीं वार्तालाप ही कहानी को आगे बढ़ाते हैं । सफल कहानीकार पात्रों के अनुकूल संवादों का आयोजन करता है । यदि एक अनपढ़ पात्र शिक्षित की तरह बोलने लगे तो इसमें अस्वाभाविकता आ जाएगी । काल एवं स्थान के अनुसार पात्रों के संवादों में भी परिवर्तन होता है । यदि कहानी ऐतिहासिक है और स्थान राजस्थान है तो कहानी के पात्र उसी स्थान के अनुकूल वार्तालाप करेंगे । यदि कहानी लखनऊ से संबंधित है तो पात्रों के वार्तालाप में उर्दू के शब्दों का प्रयोग स्वभावतः होगा ।

भाषा : भाषा के द्वारा कहानीकार कहानी में सजीवता, स्वाभाविकता एवं रोचकता ला सकता है । इस के लिए यह आवश्यक है कि कहानीकार का भाषा पर पूर्ण अधिकार हो । कहानी में जहाँ लेखक अपना विचार रखता है – वहाँ उसकी अपनी भाषा होगी । लेकिन जब कोई बात पात्रों के द्वारा कहलवाई जाए, तब पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग आवश्यक है । कहानी की भाषा सरल सुबोध एवं बातचीत के रूप में होनी चाहिए । कठिन भाषा का प्रयोग कहानी समझने में बाधा उत्पन्न करता है ।

प्रतिपाद्य: कहानी के द्वारा लेखक जो संदेश देना चाहता है, उसे प्रतिपाद्य कहते हैं । सफल कहानी कथावस्तु, पात्र, परिवेश, शिल्प आदि तत्वों से निर्धारित नहीं होती, बल्कि उसकी सफलता गंभीर उद्देश्य पर निर्भर होती है । उदाहरण के लिए "शतरंज के खिलाड़ी" में प्रेमचंद का उद्देश्य यह दिखाना था कि तत्कालीन राज्य एवं समाज की अवस्था इतनी अवनत हो गयी थी कि बिना प्रतिरोध के अंग्रेजों ने "अवध" राज्य पर अधिकार कर लिया था ।

किसी कहानी को समझने के लिए यह जरूरी है कि आप के उसके प्रतिपाद्य को समझें । इसके लिए प्रथमतः कहानी को समझें, फिर उसमें निहित संदेश को पहचानें तथा उसके उपयोग पर विचार करें । उपन्यास एवं कहानी के तत्वों पर विचार करने पर हम दोनों में स्पष्ट अंतर पाते हैं:

उपन्यास	कहानी
1) उपन्यास का आकार बड़ा होता है ।	1) बड़ी से बड़ी कहानी भी छोटे से छोटे उपन्यास से छोटी होती है ।
2) उपन्यास में जीवन का व्यापक चित्रण रहता है ।	2) कहानी में जीवन के किसी एक अंश का चित्रण रहता है ।

3) उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है ।	3) कहानी में पात्रों की संख्या कम होती है ।
4) उपन्यास में घटनाओं का बाहुल्य रहता है ।	4) कहानी में घटनाओं की संख्या सीमित होती है । सामान्यतः किसी एक घटना को लेकर कहानी लिखी जाती है ।
5) उपन्यास में विचार को विस्तार से रखा जाता है ।	5) कहानी में विचार को सांकेतिक रूप में रखा जाता है ।
6) उपन्यास में स्थान और काल की सीमा विस्तृत हो सकती है ।	6) कहानी में प्रायः एक स्थान और एक काल का चित्रण रहता है ।

विषय के अनुरूप कहानियों के निम्नलिखित भेद किये जा सकते हैं :

1) घटना प्रधान 2) वातावरण प्रधान 3) चरित्र प्रधान
4) ऐतिहासिक 5) सामाजिक 6) मनोवैज्ञानिक

1) घटना प्रधान कहानियाँ : वे कहानियाँ हैं जिनमें घटना मुख्य है — अर्थात् घटनाओं के माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है । उदाहरण के लिए प्रेमचंद की "सान्त्या" घटना प्रधान कहानी है ।

2) वातावरण प्रधान : जब किसी कहानी को पढ़ने के बाद हमें ऐसा लगे कि जैसे पूरी कहानी में वातावरण ही हावी है, तब उसे वातावरण प्रधान कहानी कहते हैं । उदाहरण के तौर पर आप 'शतरंज के खिलाड़ी' को देख सकते हैं। यह वातावरण प्रधान कहानी है ।

3) चरित्र प्रधान : ऐसी कहानी जिसमें चरित्र का प्रभाव महत्वपूर्ण हो अर्थात् कहानी को पढ़ने के बाद आप महसूस करें कि लेखक ने पात्र के चरित्र को उभारने के लिए ही कहानी लिखी है, उसे चरित्र प्रधान कहानी कहते हैं। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' में लहनासिंह के चरित्र को उभारा गया है । इसे चरित्र प्रधान कहानी कह सकते हैं ।

4) ऐतिहासिक कहानी : ऐसी कहानी जो इतिहास की घटनाओं से संबंधित हो, ऐतिहासिक कहानी कही जाती है । जैसे प्रेमचंद की "शतरंज के खिलाड़ी" तथा "राजा" ।

5) सामाजिक कहानी : जिन कहानियों में परिवार एवं समाज की समस्याओं को प्रमुखता दी जाती है, उन्हें हम सामाजिक कहानियाँ कह सकते हैं । उदाहरण के तौर पर प्रेमचंद की 'अलग्योझा' तथा 'ठाकुर का कुआँ' कहानियों को देख सकते हैं । ये सामाजिक कहानियाँ हैं ।

6) मनोवैज्ञानिक कहानी : जिन कहानियों में मानव मन को प्रमुखता दी गयी हो अर्थात् पात्रों के अंदर उठने वाले भावों-विचारों को व्यक्त किया गया हो, उन्हें मनोवैज्ञानिक कहानी के अंतर्गत रखा जा सकता है । उदाहरण के लिए यशपाल की "ज्ञान दान", "अभिशप्त" आदि ।

2.7 लघुकथा

गल्प साहित्य के अनेक रूप हिंदी में प्रचलित हैं, जिनमें से एक है लघुकथा । ऊपर से देखने पर "लघुकथा" "शार्ट स्टोरी" का अनुवाद प्रतीत होता है, पर हिंदी लघुकथा से वही ध्वनि नहीं निकलती जो अंग्रेजी "शार्ट स्टोरी" से निकलती है । अंग्रेजी में कहानियों को उपन्यास की तुलना में आकार की दृष्टि से लघु होने के कारण "शार्ट स्टोरी" कहा गया, पर हिंदी की "लघुकथा" कहानी से भी आकार में छोटी है ।

लघुकथा भारतीय साहित्य और उसकी परंपरा से जुड़ी है । इसके विकास में जातक कथाओं, बोध कथाओं, दृष्टांतों आदि का योगदान स्वीकार किया गया है । कुछ लघुकथाकारों ने बौद्ध कथाओं का उपयोग आधुनिक लघुकथा लेखन के लिए किया भी है ।

पर "लघुकथा" हिंदी-साहित्य की आधुनिक विधा है । लघुकथा की विशेषताओं को समझने के लिए उदाहरण-रूप में आप श्री अरविंद ओझा की 'अभिनय' शीर्षक निम्नलिखित लघुकथा को पढ़िए :

अभिनय

शहर के खुले मैदान में नेताजी आए हैं ।
भीड़-भीड़ लोग सुन रहे हैं उनका भाषण :

- कि वर्तमान नीतियाँ खराब हैं ।
- कि हमें कुर्सी से मोह नहीं ।
- कि हम यह बदलेंगे, वह बदलेंगे ।
- कि हम यह मिटाएँगे, हम वह मिटाएँगे ।

दो बहरे पेड़ पर चढ़े हैं ।
एक ने बताया—"यह पहले से अच्छा अभिनय करता है ।"
दूसरे ने हाँ में गरदन हिलाई । फिर अपार भीड़ की तरफ आँख फैलाकर समझाया—"तभी तो भीड़ ज्यादा है ।"

(हस्ताक्षर, संपादिका—शमीम शर्मा, पृ० 66–67)

इस लघुकथा को पढ़कर आप समझ सकते हैं कि लघुकथा आकार में लघु अर्थात् संक्षिप्त होती है । यह लघुता लघुकथा की एक प्रमुख विशेषता है । इस लघुकथा में न कोई भारी-भरकम घटना है, न विस्तृत विवरण (ब्यौरे) और न प्रत्यक्ष रूप से कोई उपदेश; फिर भी इसमें नेताओं पर करारा व्यंग्य है । इससे स्पष्ट है कि लघुकथा में घटनाविहीनता और विवरणविहीनता के गुण होते हैं । लघुकथाकार की दृष्टि अपने उद्देश्य पर टिकी होती है और वह तीव्र गति से अंत की ओर बढ़ता है । वह सीधे-सीधे उपदेश तो नहीं देता पर व्यंग्य का सहारा लेकर एक दूसरे ढंग से अपनी बात को कह सकता है । जैसे इस लघुकथा में प्रकारांत से लघुकथाकार ने यह बता दिया है कि नेताओं की कथनी और करनी में अंतर होता है—वे केवल अभिनय (दिखावा) करते हैं और जो जितना अच्छा अभिनय करता है वह उतनी ही ज्यादा भीड़ जुटा लेता है, उतना ही लोकप्रिय हो जाता है । लेखक ने पाठकों को ऐसे नेताओं से सावधान रहने की नेक सलाह भी दे दी है । जब लेखक किसी और बहाने से किसी और को उपदेश देता है तो इसे अन्योक्तिपरकता कहते हैं । यहाँ दो बहरे व्यक्तियों के माध्यम से लघुकथाकार ने यही किया है । बहरा व्यक्ति दूसरे की बात नहीं सुन सकता । बात न सुनने के प्रतीक रूप में लेखक ने दो बहरे व्यक्तियों को रखा है । उन्हें रखकर मानो उनके बहाने से लेखक ने पाठकों को यह उपदेश दे दिया है कि नेताओं की बात मत सुनो—उनके कहे का विश्वास मत करो । इस प्रकार इस लघुकथा की विशेषताओं के जरिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि लघुता, घटनाविहीनता, विवरणविहीनता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्य और अन्योक्तिपरकता लघुकथा की विशेषताएँ हैं ।

विद्वानों के बीच "लघुकथा" को लेकर मतभेद है कि यह कहानी का ही एक रूप है या स्वतंत्र विधा है । एक बात आपके सामने स्पष्ट हो जानी चाहिए कि जिस प्रकार कहानी उपन्यास का संक्षिप्त रूप नहीं है, उसी प्रकार "लघुकथा" कहानी का संक्षिप्त रूप नहीं है । यह एक नयी विधा के रूप में उभर रही है ।

लघुकथाओं एवं लघुकथा से जुड़े समीक्षकों ने वास्तविक लघुकथा का आरंभ बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक से माना है, किंतु कुछ समीक्षकों ने प्रेमचंद, सुदर्शन, रामनारायण उपाध्याय, विष्णु प्रभाकर, श्यामसुन्दर व्यास आदि की पूर्व प्रकाशित लघुकथाओं में समकालीन लघुकथा के पूर्व रूप खोजे हैं । लघुकथा के विकास में वर्तमान युग की यांत्रिकता और व्यस्तता का जो योगदान है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । इस बढ़ती व्यस्तता के ही कारण आठवें दशक से लघुकथा का तीव्र गति से विकास हुआ है ।

लघुकथा के विकास में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रावी, सतीश दुबे, जगदीश कश्यप, विक्रम सोनी, रमेश बतरा, मधु दीप, शंकर पुणतांबेकर, अशोक भाटिया, कमल चोपड़ा, अशोक लव, मुकेश कुमार जैन "पारस", सोमेश पुरी आदि का विशेष योगदान है ।

बोध प्रश्न

6 तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों में क्या अंतर है ? पाँच वाक्यों में लिखिए।

....
....
....
....
....

7 उपन्यास और कहानी में एक अंतर यह है कि उपन्यास की पृष्ठभूमि बड़ी होती है और कहानी की छोटी । आप तीन अन्य अंतर बताइए ।

....

....

....

8 चरित्र-चित्रण के लिए कहानीकार अनेक विधियाँ अपनाता है । आप किन्हीं तीन विधियों का उल्लेख कीजिए ।

....

....

....

9 लघुकथा की एक विशेषता है प्रतीकात्मकता । आप तीन अन्य विशेषताएँ बताइए ।

....

....

....

2.8 निबंध

'निबंध' संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'संवार कर सीना' । प्राचीन काल में हस्तलिखित ग्रंथों को संवार कर सिया जाता था और इस प्रक्रिया को निबंध कहते थे । धीरे-धीरे इस शब्द का प्रयोग ग्रंथ के लिए होने लगा---वह ग्रंथ जिसमें विचारों को बांधा जाता था, निबंध कहलाने लगा । किंतु हिंदी में निबंध शब्द का अलग ही अर्थ है ।

आज 'निबंध' अंग्रेजी के 'एस्से' शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इस प्रकार निबंध में नये अर्थ जुड़े हैं और अनावश्यक अर्थों का त्याग हुआ है । फ्रांसिस बेकन ने 'एस्से' को 'डिस्पर्स्ड मैडिटेशन' अर्थात् बिखरे विचार माना है । इस धारणा के अनुसार साहित्यकार के मन में उठने वाले विचारों का लिखित रूप 'एस्से' है ।

हिंदी में निबंध शब्द का प्रयोग गद्य की उस विधा के लिए होता है जिसमें विचारों को क्रमबद्ध रूप में रखा जाता है । कविता की अपेक्षा गद्य लिखना कठिन है और गद्य की अपेक्षा निबंध लिखना । इसका कारण यह है कि निबंध में विचारों को एक सुनिश्चित क्रम में ठूंस-ठूंस कर रखा जाता है । निबंध के लेखन के लिए अध्ययन और विषय का ज्ञान आवश्यक है । इन्हीं कारणों से हिंदी के प्रसिद्ध निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबंध को 'गद्य की कसौटी' माना है ।

निबंध एक सीमित आकार वाली रचना है । इसमें विषय का प्रतिपादन निजीपन के साथ किया जाता है । विषय का विकास इस प्रकार से किया जाता है कि उसमें कोई बिखराव न हो । दूसरे शब्दों में विषय के प्रतिपादन में आवश्यक संगति तथा संबद्धता की आवश्यकता होती है । इसमें विवेचन की स्पष्टता के साथ भाषा की स्वच्छता तथा सजीवता की भी आवश्यकता होती है । निबंध की इन विशेषताओं को ध्यान में रखकर बाबू गुलाब राय ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है—'निबंध सीमित आकार वाली वह रचना है जिसमें विषय का प्रतिपादन, निजीपन, स्वच्छता, सौष्ठव, सजीवता एवं आवश्यक संगति तथा संबद्धता के साथ किया जाता है ।' इन विशेषताओं के अतिरिक्त निबंध में बुद्धि और हृदय के योग को भी आवश्यक माना गया है । इसका अर्थ यह है कि निबंध लेखन में केवल विचारों की ठूंस-ठांस ही नहीं होती, लेखक उसे सरस, सजीव, और रोचक बनाने के लिए उसमें अपने हृदय को भी उडेंलता है । इसके लिए कभी तो वह अपने जीवन की घटनाओं का उल्लेख करता है और कभी कुछ अन्य रोचक उदाहरणों का उपयोग कर लेता है । संक्षेप में यह कह सकते हैं कि निबंध लेखन के पीछे लेखक छिपा रहता है । उसका व्यक्तित्व निबंध में कहीं-न-कहीं झलक जाता है और यदि ऐसा नहीं हो पाता तो निबंध अपना सौंदर्य खो बैठता है ।

निबंध के तत्व

निबंध के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :
i) लेखक का व्यक्तित्व
ii) वैचारिक और भावात्मक आधार
iii) भाषा-शैली

संक्षेप में उपरिलिखित तत्वों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है—

i) **लेखक का व्यक्तित्व** : जब कोई लेखक किसी विषय पर निबंध लिखता है तो उस निबंध में उसका व्यक्तित्व भी आ जाता है । उदाहरण के लिए हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल या आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों को देख सकते हैं । इन निबंधकारों के निबंधों में इनका व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है । इन्होंने जब किसी विषय वस्तु या विचार पर निबंध लिखे तो उनमें इनके व्यक्तित्व की छाप अवश्य पड़ी ।

ii) **वैचारिक और भावात्मक आधार** : निबंध की रचना हवा में नहीं की जा सकती । निबंधकार निबंध में या तो किसी विचार की अभिव्यक्ति करता है या किसी भावना का चित्रण करता है । उदाहरण के लिए आप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों को लें । 'चिन्तामणि' शीर्षक निबंध संग्रह में संकलित 'कविता क्या है', 'तुलसी का भक्ति मार्ग' आदि उनके विचारात्मक निबंध हैं । इसी प्रकार सरदार पूर्ण सिंह के 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता' आदि भावात्मक निबंध हैं ।

iii) **भाषा-शैली** : गद्य की अन्य विधाओं के समान निबंध में भी भाषा-शैली का महत्वपूर्ण स्थान है । निबंध की भाषा विषय के अनुरूप होनी चाहिए । सामान्यतया निबंधकार विषय वस्तु के अनुरूप भाषा का चयन करता है । निबंध की भाषा संस्कृतनिष्ठ, उर्दूनिष्ठ तथा बोल-चाल के निकट हो सकती है । जब निबंधकार संस्कृत के शब्दों का अधिक प्रयोग करता है तो उसे संस्कृतनिष्ठ भाषा कहा जाता है । इसी प्रकार उर्दूनिष्ठ भाषा से तात्पर्य है अरबी, फ़ारसी तथा उर्दू के शब्दों की अधिकता । कई बार यह भी देखने में आया है कि निबंधकार इन तीनों का मिश्रण करके निबंध लेखन करता है ।

शैली : वाक्य रचना की दृष्टि से निबंध की 2 प्रमुख शैलियाँ हैं :
(1) व्यास शैली और (2) समास शैली

व्यास शैली में लेखक विस्तारपूर्वक अपनी बात को समझाता है । इसमें लंबे-लंबे वाक्यों का प्रयोग किया जाता है । निबंधकार उदाहरणों के द्वारा विषय को स्पष्ट करता है । विषय को विस्तारपूर्वक समझना इस शैली की प्रमुख विशेषता है ।

समास शैली में लेखक छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा विषय को सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है । इसमें विचारों को ठूंस-ठूंस कर छोटे से वाक्य में भर दिया जाता है तथा इस सूत्र वाक्य को समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है । पाठक को इस शैली के वाक्यों को पढ़ कर कुछ देर के लिए रुकना पड़ता है—इस प्रकार के सूत्र वाक्यों की व्याख्या की आवश्यकता होती है और इन्हें समझे बिना आगे बढ़ पाना पाठक के लिए कठिन हो जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'क्रोध' से एक उदाहरण देखिए—'बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है ।' यह समास शैली का उदाहरण है । इसकी व्याख्या समझे बिना पाठक आगे नहीं बढ़ पाता । सामान्यतः निबंध लेखक अपने निबंधों में इन दोनों शैलियों (व्यास शैली और समास शैली) का प्रयोग करते हैं ।

निबंधों के प्रमुख भेद

मुख्य रूप से निबंधों के निम्नलिखित प्रमुख भेद माने गए हैं :

i) **वर्णनात्मक निबंध** : इनमें किसी स्थान या वस्तु का वर्णन होता है ।

ii) **विवरणात्मक निबंध** : जिन निबंधों में किसी घटना या चरित्र का विवरण दिया जाता है उन्हें विवरणात्मक निबंध कहते हैं । घटनाएँ निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं :

क) ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं पर आधारित घटनाएँ,
ख) सच्ची या कल्पित कहानियों पर आधारित घटनाएँ,
ग) राजनीति, समाज या साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन पर आधारित घटनाएँ ।

iii) **विचारात्मक निबंध** : जिन निबंधों में विचारों की प्रधानता होती है उन्हें विचारात्मक निबंध कहते हैं । इस प्रकार के निबंधों में निबंधकार विषय के प्रत्येक पहलू का सोच-समझकर विवेचन करता है । निश्चय ही, इस कोटि के निबंधों में मस्तिष्क का अधिक योग रहता है तथा चिन्तन की प्रधानता होती है । सैद्धान्तिक विषय का विवेचन इस प्रकार के निबंधों की सीमा में आता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'कविता क्या है' शीर्षक निबंध इसका अच्छा उदाहरण है ।

उपरिलिखित वर्गों के अतिरिक्त निबंध के कुछ और प्रकार भी माने गए हैं जैसे मनोवैज्ञानिक निबंध । इस प्रकार के निबंधों में मानव के मनोभावों का विश्लेषण किया जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'उत्साह', 'क्रोध' आदि निबंध इसी प्रकार के हैं । मनोभावों का यह विवेचन विचारात्मक होता है, इसलिए कुछ विद्वान इन निबंधों को मनोवैज्ञानिक न कहकर विचारात्मक भी कह देते हैं ।

उपरिलिखित वर्गीकरण के स्थान पर कुछ आलोचक निबंध के निम्नलिखित दो मुख्य प्रकार मानने के पक्ष में हैं:

i) **विषयप्रधान निबंध** : इस कोटि के निबंधों में निबंधकार की दृष्टि विषय पर केन्द्रित रहती है । वह विषय का इस प्रकार विवेचन करता है कि उसके विभिन्न पहलू पाठक के सामने स्पष्ट हो जाते हैं ।

ii) **विषयिप्रधान निबंध** : इन निबंधों में लेखक का व्यक्तित्व पूरी तरह छाया रहता है । वह विषय का विवेचन भावना के धरातल पर करता है और उसमें पूरी तरह डूब जाता है । इस प्रकार के निबंधों को ललित निबंध भी कह दिया जाता है ।

हिंदी निबंध-साहित्य के विकास में पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, विद्या निवास मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि का महत्वपूर्ण योगदान है ।

☛ बोध प्रश्न

10 निबंध में विचारों को..............................रूप में रखा जाता है ।

11 निम्नलिखित कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत । आप सही कथन के आगे (√) और गलत कथन के आगे (x) का चिह्न लगाइए ।
   i) निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की छाप रहती है । ☐
   ii) निबंध में वैचारिक और भावात्मक आधारों का सुन्दर समन्वय होता है । ☐
   iii) निबंध का संबंध राजनीतिक विषय से नहीं हो सकता । ☐
   iv) निबंध केवल वर्णनात्मक होते हैं । ☐

12 निबंध को 'डिस्पर्स्ड मैडिटेशन' कहने वाले विद्वान का नाम है
(सही नाम के आगे (√) का चिह्न लगाएँ) :
   i) मैथ्यू आर्नल्ड ☐
   ii) जेम्स ज्वॉयस ☐
   iii) फ्रांसिस बेकन ☐
   iv) शेक्सपियर ☐

13 नीचे लिखे तत्वों में से आप निबंध के तत्वों को छाँटिए :
   i) चरित्र चित्रण
   ii) लेखक का व्यक्तित्व
   iii) चित्रात्मकता
   iv) वैचारिक और भावात्मक आधार ।

2.9 आलोचना

इकाई 1 'हिंदी गद्य का विकास' में आप 'आलोचना' या 'समालोचना' के विषय में कुछ पढ़ चुके हैं । आप जानते हैं कि किसी रचना की सम्यक् व्याख्या और उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन ही 'समालोचना' है । इसे हम 'समीक्षा' भी कहते हैं ।

समालोचना में समालोचक किसी रचनाकार की रचना की परीक्षा करता है दूसरे शब्दों में वह रचना के गुण-दोषों को निष्पक्ष रूप में प्रकट कर उसके विषय में अपना मत भी प्रस्तुत करता है ।
सहानुभूतिपूर्वक रचना के मर्म को उद्घाटित करना समीक्षक का पहला कर्त्तव्य है । अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं और राग-द्वेष से ऊपर उठकर उसे यह काम पूरी ईमानदारी के साथ करना होता है । आलोचक के इस गुण को हम उसकी 'तटस्थता' कह सकते हैं । यह तटस्थता आलोचना की प्राणशक्ति है । आलोचना के आलोचना बने रहने के लिए निष्पक्ष और तटस्थ मूल्यांकन आवश्यक है ।

किसी रचना की समीक्षा करते समय समीक्षक को उस रचना के विषय में अपना स्पष्ट मत प्रस्तुत करना होता है । दूसरे शब्दों में उसे रचना के विषय में स्पष्ट निर्णय देना होता है । जिस समीक्षक का निर्णय जितना निर्भ्रान्त और निष्पक्ष होगा, उसकी समीक्षा उतनी ही उत्तम बन पड़ेगी ।

आलोचना के स्वरूप को जान लेने के बाद अच्छे समालोचक के गुणों को जान लेना ज़रूरी है, क्योंकि जिस समीक्षक में ये गुण जितनी मात्रा में होंगे उसकी समीक्षा उतनी ही सशक्त बन सकेगी ।

समालोचक के गुण

अच्छे समालोचक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए :

विद्वता : किसी भी साहित्यिक मुद्दे या रचना की सही-सही आलोचना के लिये यह आवश्यक है कि आलोचक विद्वान हो । विद्वान लेखक ही विषयवस्तु को भलीभांति समझ सकता है । अपनी बुद्धि और ज्ञान के द्वारा वह सही और गलत की पहचान कर सकता है ।

निष्पक्षता : आलोचक का साहित्यिक मुद्दे या रचना का मूल्यांकन करते समय निष्पक्ष रहना आवश्यक है । अगर वह पक्षपातपूर्ण नीति का पालन करेगा तो संतुलित और निष्पक्ष मूल्यांकन न कर सकेगा । उसे बिना पक्षपात के सही और गलत या गुण-अवगुण की परख करनी चाहिए ।

तर्कपूर्ण संगति : सफल आलोचक वही हो सकता है जिसमें तर्क करने की शक्ति हो । रचना क्यों अच्छी है या क्यों बुरी है, रचना में कौन-कौन से गुण हैं और क्या-क्या कमियाँ है.इसे आलोचक को तर्कों द्वारा सिद्ध करना होगा । दूसरे शब्दों में आलोचक तर्क द्वारा ही अपने मत को सिद्ध कर सकता है ।

विवेचन-विश्लेषण : समालोचक में विवेचन की क्षमता होनी चाहिए । निष्पक्ष भाव से विवेचन-विश्लेषण द्वारा मूल्यांकन करना ही सच्चे आलोचक का गुण है । आलोचक का यही गुण आलोचना को गंभीर बनाता है ।

आलोचना के प्रकार

यों तो आलोचना के अनेक प्रकार हैं, किंतु मोटे तौर पर इसे निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

i) **सैद्धांतिक आलोचना ।**
ii) **व्यावहारिक आलोचना ।**

सैद्धांतिक आलोचना में उन सिद्धांतों की चर्चा की जाती है जिनके आधार पर किसी रचना की समीक्षा की जा सकती है । रस, अलंकार आदि ऐसे ही सिद्धांत हैं । इस प्रकार के सिद्धांतों को समीक्षा का आधार माना जाता है । समीक्षा के इन आधारभूत सिद्धांतों के विषय में दी जाने वाली जानकारी सैद्धांतिक समीक्षा के अंतर्गत आती है । आधुनिक दृष्टि से समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के आधार पर किया जाने वाला सैद्धांतिक विवेचन भी इसी प्रकार का है ।

जब समीक्षा के आधारभूत सिद्धांतों के आधार पर किसी कृति की समीक्षा की जाती है तो वह आलोचना का व्यावहारिक रूप होता है । दूसरे शब्दों में इसे व्यावहारिक समीक्षा कहते हैं । उदाहरण के लिए सूरदास के काव्य का रस, मनोविज्ञान अथवा समाजशास्त्र की दृष्टि से किया जाने वाला विश्लेषण व्यावहारिक समीक्षा के अन्तर्गत आएगा ।

हिंदी समीक्षा के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ॰ नगेन्द्र, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ॰ रामविलास शर्मा आदि का उल्लेखनीय योगदान है ।

14 दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द के प्रयोग द्वारा निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

i) समालोचना में समालोचक किसी रचनाकार की रचना का ………………करता है ।
(प्रकाशन, मूल्यांकन, संयोजन)

ii) आलोचक……………………………… रचना के मर्म को उद्घाटित करता है ।
(सहृदयतापूर्वक, व्यक्तिनिष्ठ भाव से)

iii) आलोचना के आलोचना बने रहने के लिए निष्पक्ष और……… ……मूल्यांकन आवश्यक है ।
(सापेक्ष, प्रभावपूर्ण, तटस्थ)

15 अच्छे आलोचक का एक गुण है विद्वता । आप उसके तीन अन्य गुणों का उल्लेख कीजिए :

………………………………………………………

………………………………………………………

………………………………………………………

16 आलोचना के प्रमुख दो प्रकारों का उल्लेख कीजिए ।

……………………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………………

2.10 रेखाचित्र और संस्मरण

रेखाचित्र और संस्मरण हिंदी-साहित्य की नवीन विधाएँ हैं । जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू चित्र बन जाता है तो उसे रेखाचित्र कहते हैं । इस प्रकार के वर्णन में व्यक्ति को बेलाग अर्थात् तटस्थ होना पड़ता है । इसके विपरीत जब लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में बीती किसी घटना अथवा दृश्य का स्मरण कर उसका वर्णन करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं । रेखाचित्र में वर्णन का हू-ब-हू होना आवश्यक है और संस्मरण में उसका स्मृति के आधार पर लिखा जाना । एक अन्य बात यह भी है कि रेखाचित्र में लेखक का वर्णित घटना, व्यक्ति आदि के साथ निजी संबंध होना आवश्यक नहीं है, जबकि संस्मरण के लिए यह आवश्यक है । संस्मरण लिखने के लिए यह जरूरी है कि लेखक का वर्णित व्यक्ति, घटना आदि के साथ व्यक्तिगत संबंध रहा हो ।

रेखाचित्र अतीत का भी हो सकता है, वर्तमान का भी और यदि लेखक के मन में भविष्य का कोई चित्र है तो उसका भी हो सकता है । संस्मरण अतीत का ही हो सकता है, वर्तमान या भविष्य का नहीं ।

संस्मरण में लेखक उन्हीं तथ्यों का वर्णन करता है जो वास्तव में घटित हो चुके हैं । उसे अपनी कल्पना से कुछ भी जोड़ने की छूट नहीं है । रेखाचित्र में इस प्रकार का कोई बंधन नहीं है ।

रेखाचित्र में लेखक के निजी व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं होता । संस्मरण में लेखक के निजी विचार किसी-न-किसी प्रकार आ ही जाते हैं, क्योंकि उसका संबंध उसके अपने जीवन से होता है ।

विस्तार संस्मरण की विशेषता है । प्रसंगों को याद करते समय लेखक उन्हें रुचिकर बनाकर प्रस्तुत करता है और कहानी कहने के लहजे का उपयोग करता है । इससे वर्णन में फैलाव आता है । कम से कम शब्दों का उपयोग कर बात रखने की कला का इसमें महत्व है । अनावश्यक विस्तार, रेखाचित्र को भोंडा बना देता है ।

रेखाचित्र में वर्णन इतना सुगठित और प्रभावपूर्ण होना चाहिए कि उसका चित्र पाठक के सामने उपस्थित हो जाए । ऐसा लगे कि किसी चित्रकार का बनाया हुआ चित्र आँखों के सामने है। शब्दों के द्वारा चित्र अंकित करने के इस गुण को चित्रात्मकता कहते हैं । यह रेखाचित्र की एक बहुत बड़ी विशेषता है । वास्तव में रेखाचित्रकार का काम शब्दों के द्वारा चित्रों की श्रृंखला प्रस्तुत करने का है । रेखाचित्र इन शब्द-चित्रों को किसी विशेष क्रम में उपस्थित करता है । क्रम के इस निर्वाह को

श्रृंखलाबद्धता कहते हैं । संस्मरण में भी सटीक और प्रभावपूर्ण वर्णन तथा श्रृंखलाबद्धता आवश्यक है । अपने इस बिंदु पर रेखाचित्र और संस्मरण एक दूसरे के नज़दीक हैं ।

संस्मरण कभी जीवनी के निकट चला आता है, कभी आत्मकथा के । यदि लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं को याद करता है तो वह 'आत्मकथा' के निकट आ जाता है और यदि अन्य व्यक्ति के साथ घटी घटनाओं को याद करता है तो वह 'जीवनी' के निकट पहुँच जाता है । मुख्य बात यह है कि इसमें लेखक या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन का कोई पक्ष सामने अवश्य आता है । इसके साथ, सबसे बड़ी बात यह है कि वह वर्णन इस प्रकार करता है, मानों बीती घटनाओं को याद कर रहा हो ।

हिंदी में महादेवी वर्मा के रेखाचित्र अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी अमर हैं । इनके अतिरिक्त बनारसीदास चतुर्वेदी का सेतुबंध, श्रीराम शर्मा का 'प्राणों का सौदा', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'माटी की मूरतें' तथा 'मील का पत्थर' उल्लेखनीय रेखाचित्र हैं । महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों को लेकर विद्वानों के बीच कुछ मतभेद है । कुछ विद्वान् इन्हें संस्मरण कहने के पक्ष में हैं । उनका तर्क है कि महादेवी वर्मा ने जिन पात्रों और घटनाओं को लिया है, वे उनके जीवन में आये हुए वास्तविक पात्र और घटनाएँ हैं । लेकिन हमारे पास इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं है कि ये पात्र लेखिका के जीवन में आये थे या नहीं ? इसके अतिरिक्त महादेवी वर्मा ने जिस तटस्थता के साथ, संक्षिप्त रूप में, पात्रों और घटनाओं का चित्रात्मक अंकन किया है, वह उनकी रचनाओं को रेखाचित्र के समीप लाता है । वस्तुतः महादेवी के रेखाचित्रों में 'स्मृतिचित्र' तथा संस्मरण दोनों समाहित हो जाते हैं । महादेवी ने संस्मरणात्मक शैली में ही रेखाचित्र अधिक लिखें हैं जिनको बहुत से आलोचक भ्रमवश संस्मरण मान लेते हैं ।

हिन्दी में राहुल सांकृत्यायन की 'बचपन की स्मृतियाँ,' प्रकाशचन्द्र गुप्त की 'पुरानी स्मृतियाँ,' विनयमोहन शर्मा का 'रेखा और रंग', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का 'जिन्दगी मुस्कराई', शान्तिप्रिय द्विवेदी की 'स्मृतियाँ और कृतियाँ,' विष्णु प्रभाकर का 'कुछ शब्द : कुछ रेखाएँ' उल्लेखनीय संस्मरण हैं।

☛ बोध प्रश्न

17 उपयुक्त शब्द के प्रयोग द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :
   i) जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू बन जाता है तो उसे रेखाचित्र कहते हैं ।
   ii) संस्मरण.............का ही हो सकता है, वर्तमान या भविष्य का नहीं ।

18 रेखाचित्र और संस्मरण में एक अंतर यह है कि रेखाचित्र में वर्णन का हू-ब-हू होना आवश्यक है जबकि संस्मरण में उसका स्मृति के आधार पर लिखा जाना । आप इसी प्रकार रेखाचित्र और संस्मरण में किन्हीं तीन अन्य अन्तरों का उल्लेख कीजिए ।

i) ....

....

ii)..

....

iii) ....

....

2.11 आत्मकथा और जीवनी

आत्मकथा और जीवनी एक-दूसरे से मिलती-जुलती विधाएँ हैं, फिर भी इन दोनों में भेद है । इनमें मुख्य अंतर यह है कि जहाँ आत्मकथा का लेखक अपने जीवन के बारे में खुद लिखता है, वहाँ जीवनी-लेखक किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में लिखता है । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि किसी

व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखी गयी अपनी जीवनी आत्मकथा है । इसके विपरीत, जब कोई लेखक किसी अन्य व्यक्ति के जीवन को महत्वपूर्ण घटनाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है तो उसे जीवनी कहते हैं । आत्मकथा का नायक लेखक स्वयं होता है जबकि जीवनी का नायक लेखक स्वयं नहीं, कोई अन्य व्यक्ति होता है ।

आत्मकथा में लेखक अपने बीते हुए जीवन पर दृष्टि डालता है अपने अतीत का विश्लेषण करता है, इसलिए उसे बाहरी सामग्री की तलाश नहीं करनी पड़ती, जबकि जीवनी-लेखक के लिए इसकी आवश्यकता रहती है । जीवनी-लेखक जिसकी जीवनी लिखे, यदि उससे उसका निकट का संपर्क हो तो यह अच्छी बात है । यदि चरित-नायक से लेखक का निकट का संपर्क न हो तो वह अपने चरित-नायक के जीवन की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करे । इसके लिए वह निम्नलिखित स्रोतों का उपयोग कर सकता है :

i) उस विषय या उससे संबंधित विषयों पर लिखित पुस्तकों या लेखों का,
ii) मूल सामग्री जैसे चरित-नायक द्वारा लिखित डायरी, पत्रों आदि का,
iii) चरित नायक के समकालीनों के संस्मरणों का,
iv) संबंधित स्थानों के भ्रमण से प्राप्त तथ्यों का,
v) किसी अन्य स्रोत से प्राप्त जानकारी का ।

आत्मकथा और जीवनी में कुछ समानताएँ भी हैं । आइए संक्षेप में उनकी जानकारी भी प्राप्त कर लें । आत्मकथा और जीवनी लिखने के लिए यह जरूरी नहीं कि व्यक्ति के जीवन की सभी घटनाएँ ली जाएँ, किंतु इनमें हृदय को छूने वाली अथवा जीवन में मोड़ लाने वाली घटनाओं का समावेश आवश्यक है । इनमें चरित-नायक के जीवन की प्रामाणिक और तथ्यपरक जानकारी की अपेक्षा रहती है, इसलिए कल्पना और कृत्रिमता के लिए इनमें कोई स्थान नहीं होता । साहित्य के अन्य रूपों के समान, आत्मकथा और जीवनी की शैली भी प्रभावपूर्ण होनी चाहिए । जीवन में घटित घटनाओं के क्रम का भी इन विधाओं में ध्यान रखना होता है । दूसरे शब्दों में घटनाएँ उसी क्रम में लिखी जानी चाहिए, जिस क्रम में वे घटी हों । आत्मकथा और जीवनी यदि प्रभावपूर्ण शैली में लिखी गयी हों तो वे उपन्यास की भाँति रोचक हो सकती हैं ।

जैन कवि बनारसी दास लिखित 'अर्धकथानक' हिंदी की पहली आत्मकथा है । आधुनिक युग में इस विधा की शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कुछ आप बीती, कुछ जगबीती' से की । अम्बिकादत्त व्यास की 'मित्र' 'वृत्तांत', बाबू श्यामसुन्दर दास की 'मेरी आत्मकहानी' राजेन्द्र बाबू की 'आत्मकथा' हरिवंश राय 'बच्चन' की 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड का निर्माण फिर', 'प्रवास की डायरी', भवानी दयाल संन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा', राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा', डॉ० नगेन्द्र की 'अर्धकथा', आदि हिंदी की उल्लेखनीय आत्मकथाएँ हैं ।

जीवनी-साहित्य की महत्वपूर्ण उल्लेखनीय कृतियाँ हैं. प्रेमचन्द्र : घर में (शिवरानी देवी), महाप्राण निराला (गंगा प्रसाद पाण्डेय), कलम का सिपाही (अमृत राय) प्रियदर्शिनी इंदिरा गाँधी (शिव कुमार कौशिक) , आवारा मसीहा (विष्णु प्रभाकर), प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी (कमलकिशोर गोयनका) आदि । इनके अतिरिक्त इनके पूर्व लिखी गयी रामनरेश त्रिपाठी की 'गाँधी जी कौन', व्यथित हृदय की 'पं० जवाहरलाल नेहरू', गणेश शंकर विद्यार्थी की 'लाला लाजपतराय', इन्द्र विद्यावाचस्पति की 'चन्द्रशेखर आज़ाद' आदि भी इसी कोटि की जीवनियाँ हैं ।

2.12 यात्रावृत्त

जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन करता है तो उसे यात्रावृत्त या यात्रा-साहित्य कहते हैं । लेखक वर्ण्य-विषय का वर्णन आत्मीयता तथा निजता के साथ करता है.जिस विषय का वह वर्णन करता है उसके साथ उसका जुड़ाव होता है तथा उसके अपने जीवन-संदर्भ भी उसमें आते हैं । आत्मीयता तथा निजता का यह गुण निबंध-शैली की भी विशेषता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि यात्रावृत्त की वर्णन-प्रक्रिया निबंध की सी होती है । फिर भी यात्रावृत्त निबंध नहीं है, क्योंकि इसमें जिस किसी विषय का समावेश नहीं हो सकता इसमें तो यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन ही अपेक्षित है ।

यात्रावृत्त के लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन प्रायः स्मृति के आधार पर करते हैं, इसलिए किसी अच्छे यात्रावृत्त में संस्मरण की प्रवृत्ति भी रहती है । फिर भी यात्रावृत्त और संस्मरण एक-दूसरे से भिन्न हैं। यात्रावृत्त में समय तथा स्थान का उल्लेख अनिवार्य रूप से होता है, किंतु संस्मरण में स्थान तथा समय का उल्लेख अनिवार्य नहीं है । इसके अतिरिक्त यात्रावृत्त में यात्रा

के दौरान देखे गये स्थानों, दृश्यों अथवा घटनाओं से जुड़ी सामयिक स्मृतियों का वर्णन होता है, जबकि संस्मरण में स्थायी एवं अमिट स्मृतियों का वर्णन किया जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्णन की दृष्टि से यात्रावृत्त निबंध और संस्मरण दोनों के कुछ गुणों को लेकर चलता है, फिर भी वह उन दोनों से अलग है ।

यात्रावृत्त का लेखक यात्रा के विवरणों में स्थान, दृश्य, घटना तथा व्यक्ति आदि से सम्बंधित कटु एवं मधुर स्मृतियों का चित्रण कर सकता है ।

हिन्दी में यात्रावृत्त विधा को समृद्ध करने वालों में 'अज्ञेय' (अरे यायावर रहेगा याद), मोहन राकेश (आखिरी चट्टान तक), भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया) आदि मुख्य हैं ।

2.13 रिपोर्ताज़

'रिपोर्ताज़' फ्रेंच भाषा का शब्द है तथा अंग्रेजी के 'रिपोर्ट' शब्द से इसका घनिष्ठ संबंध है । किसी घटना के यथातथ्य विवरण को 'रिपोर्ट' कहते हैं जो प्रायः समाचारपत्रों के लिए लिखी जाती है । रिपोर्ट के साहित्यिक और कलात्मक रूप को हम 'रिपोर्ताज' कह सकते हैं ।

'रिपोर्ताज़' का लेखक रिपोर्ताज़ में युद्ध, महामारी, अकाल, बाढ़ आदि के दुष्परिणामों का आँखों-देखा समाचार वर्णित करता है पर उसका उद्देश्य सूचना देना-भर नहीं होता । इसके पीछे उसकी एक विशेष दृष्टि होती है । लेखक का मुख्य उद्देश्य महामारी, बाढ़, अकाल आदि से उत्पन्न विषम स्थितियों से लाभ उठाने वाले मुनाफाखोरों पर व्यंग्य करना होता है । वह ऐसे नीच व्यक्तियों पर व्यंग्य कर मानव जीवन के विकास में सहायक जीवन-मूल्यों के ह्रास पर चिन्ता प्रकट करता है और पाठकों को इनके विषय में सोचने पर बाध्य करता है । यों तो, रिपोर्ताज़ में विनाशकारी घटना के वर्णन पर लेखक की दृष्टि टिकी होती है और पात्र उसके लिए विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं होते, तथापि मानव-मूल्यों का नाश करने वाले कुछ पात्रों के अमानवीय कार्यों का वर्णन भी लेखक करता ही है । इस प्रकार एक वाक्य में यह कहा जा सकता है कि जब कोई समाचार केवल समाचार नहीं रहता, वरन् मानव-मूल्यों से जुड़कर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है तब उसे 'रिपोर्ताज़' कहते हैं हिंदी के रिपोर्ताज़-लेखकों में शिवदान सिंह चौहान, अमृत राय, प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीचंद जैन, धर्मवीर भारती, प्रकाशचंद्र गुप्त आदि के नाम लिये जा सकते हैं ।

☛ **बोध प्रश्न**

19 आत्मकथा और जीवनी के मुख्य अंतर को एक वाक्य में स्पष्ट कीजिए ।

....

20 जीवनी-लेखक द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले स्रोतों में से किन्हीं तीन का उल्लेख कीजिए ।

....

....

....

21 जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन करता है तो उसे.........कहते हैं।

22 समाचार और रिपोर्ताज़ में क्या अन्तर है ? (दो पंक्तियों में लिखिए)

....

....

2.14 सारांश

इस इकाई में आपने हिंदी गद्य की विविध विधाओं की जानकारी प्राप्त की है । आशा है, इस इकाई का अध्ययन आपने ध्यानपूर्वक किया होगा और इसे पढ़कर आप गद्य की विविध विधाओं को अच्छी तरह समझ गये होंगे ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

i) साहित्य और वाङ्मय में अंतर कर सकते हैं,
ii) साहित्यिक रचनाओं का वर्गीकरण कर सकते हैं,
iii) ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप साहित्य में विकसित नवीन विधाओं को बता सकते हैं,
iv) गद्य की विविध विधाओं यथा नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, निबंध आलोचना, रेखाचित्र, संस्मरण आदि के स्वरूप को समझा सकते हैं,
v) गद्य की विभिन्न विधाओं यथा नाटक और एकांकी, रेखाचित्र और संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी आदि में अंतर कर सकते हैं,
vi) एक-दूसरे से मिलती-जुलती गद्यविधाओं यथा नाटक और एकांकी, आत्मकथा और जीवनी, रेखाचित्र और संस्मरण आदि में मिलने वाली समानता को भी समझा सकते हैं।

2.15 शब्दावली

वाङ्मय : किसी भाषा में रची गयी समस्त प्रकार की रचनाएँ ।
परिज्ञान : पूरा ज्ञान ।
आस्वादन : किसी रचना के पढ़ने या देखने से मिलने वाला आनंद ।
सृजनात्मक : सृष्टि या रचना करने की क्रिया ।
विश्वकोश : वह ग्रंथ जिसमें सभी विषयों या किसी विषय के सभी अंगों का विस्तार से वर्णन हो (इन्साइक्लोपीडिया) ।
संदर्भ ग्रंथ : वह पुस्तक जिसमें किसी दूसरी पुस्तक में आई हुई किसी रूढ़ बात का स्पष्टीकरण हो (रेफरेन्स बुक) ।
आह्लाद : आनंद, किसी रचना के पढ़ने या देखने से मिलने वाला आनंद ।
अनुकरण : नाटक में कवि द्वारा वर्णित पात्रों के क्रिया-कलाप की अभिनेताओं द्वारा की जाने वाली नकल ।
रूपक : रूपक में किसी पात्र के रूप, वेशभूषा, चाल ढाल आदि की नकल की जाती है । यह दृश्य काव्य का एक भेद है । नाटक इसका एक भेद है ।
पाश्चात्य : पश्चिम दिशा का (पाठ में पश्चिमी देशों के अर्थ में)
शास्त्रीय : शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार ।
पराभाव : पराजय, हार ।
उन्मूलन : समूल नष्ट करना ।
दृश्यवत्ता : दृश्य रूप में उपस्थित किये जाने का गुण ।
कैमरा ट्रिक : कैमरा एक साथ एक ही व्यक्ति को एक ही समय में अनेक स्थानों पर उपस्थित दिखा सकता है। सामान्य व्यवहार में यह संभव नहीं है। इस प्रकार की विधियों को "कैमरा ट्रिक" कहते हैं।
निष्पक्ष : पक्षपात रहित ।
इतिवृत्तात्मक : पुरानी कथा या कहानी का कल्पना रहित वर्णन करना ।
प्रतिक्रिया : कोई क्रिया होने पर उसके विरोध में या परिणाम-स्वरूप दूसरी ओर होने वाली क्रिया।
प्रत्यक्ष शैली : जब उपन्यासकार उपन्यास लिखते हुए उसमें वस्तुओं अथवा घटनाओं आदि का स्वयं विवरण देने लगता है तो उसकी यह शैली प्रत्यक्ष शैली कही जाती है ।
परोक्ष शैली : पात्रों के संवादों के माध्यम से घटनाओं आदि का परिचय या विवरण देना परोक्ष शैली कहलाता है ।
पूर्वदीप्ति : कभी-कभी पात्र के चरित्र को विकसित करने के लिए या घटनाओं को नाटकीय ढंग से रखने के लिए लेखक कभी पहले की घटित घटनाओं का पात्र विशेष के द्वारा स्मरण कराता है और उनको वर्तमान घटना की पृष्ठभूमि के रूप में इस्तेमाल करता है। इस शैली को पूर्वदीप्ति शैली कहते हैं।
संगति : किसी कही बात या तर्क का अन्य कथित बात या तर्क के साथ मेल, कही हुई बात की प्रसंगानुकूलता ।

संबद्धता : एक बात से क्रम में दूसरी बात का जुड़ा होना ।
तिरस्कार : अनादर, अपमान ।
द्वन्द्व : दो पक्षों या आदमियों की लड़ाई, किसी व्यक्ति के मन में किसी विषय के बारे में भिन्न और विरोधी विचारों के उत्पन्न होने से अनिश्चय और तनाव की स्थिति ।
सम्यक : पूर्ण रूप से ।

बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1 वाङ्मय में सभी प्रकार की रचनाएँ आ जाती हैं, जबकि साहित्य में केवल उन्हीं रचनाओं का समावेश हो सकता है जिनके देखने, पढ़ने या सुनने से पाठक को आनन्द की प्राप्ति होती है । सूचनात्मक, विवेचनात्मक और सृजनात्मक वर्गों में आने वाली सभी कृतियाँ, 'वाङ्मय' कहला सकती हैं, पर इनमें से सृजनात्मक वर्ग की रचनाएँ ही 'साहित्य' में गिनी जाएँगी ।

2 i) कथानक (कथावस्तु) iii) रंगमंचीयता अथवा अभिनेयता
ii) शैली iv) प्रतिपाद्य

3 i) रेडियो नाटक ii) दूरदर्शन नाटक

4

नाटक	एकांकी
i) एक से अधिक अंक ।	i) केवल एक अंक ।
ii) कथावस्तु विस्तृत ।	ii) कथावस्तु संक्षिप्त ।
iii) पात्रों की संख्या अधिक ।	iii) सीमित पात्र ।

5 i) दृश्य ii) ध्वनि iii) एक

6 तिलस्मी उपन्यास में इन्द्रजाल, जादू, अद्‌भुत कारनामें, अलौकिक व्यापार, तथा चमत्कार से पूर्ण घटनाएँ होती हैं ।

जासूसी उपन्यास की खास बात यह होती है कि ऐसे उपन्यास में नायक गुप्त रूप से किसी भेद या बात का पता लगाने के लिये चलता है । वह अद्‌भुत कारनामें करता है ।

7 i) उपन्यास में एक से अधिक कथाएँ एक दूसरे के समानान्तर चलती हैं । कहानी में एक कथा होती है।
ii) उपन्यास में कथा का विस्तार रहता है । कहानी में कथा संक्षिप्त होती है ।
iii) उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है, कहानी में कम ।

8 i) पात्रों के कार्यों अथवा विचारों के द्वारा,
ii) पात्रों के वार्तालाप के द्वारा, तथा
iii) लेखक द्वारा पात्रों के गुण-दोषों का कथन ।

9 i) लघुता या संक्षिप्तता ii) विवरणविहीनता iii) घटनाविहीनता

10 क्रमबद्ध

11 i) (√) iii) (×)
ii) (√) iv) (×)

12 iii) (√)

13 ii) तथा iv)

14 i) मूल्यांकन iii) तटस्थ
ii) सहृदयतापूर्वक

15 निष्पक्षता, तार्किकता तथा विवेचन-विश्लेषण की क्षमता ।

16 i) सैद्धांतिक आलोचना ii) व्यावहारिक आलोचना

17 i) चित्र ii) अतीत

18 i) संस्मरण में तथ्यपरकता होती है, रेखाचित्र में कल्पना का पुट भी हो सकता है ।
ii) रेखाचित्र में लेखक के निजी व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं होता, किंतु संस्मरण में लेखक के निजी विचार किसी-न-किसी प्रकार आ ही जाते हैं ।
iii) विस्तार संस्मरण की विशेषता है और संक्षेप रेखाचित्र की ।

19 जहाँ आत्मकथा का लेखक अपने जीवन के बारे में खुद लिखता है, वहाँ जीवनी-लेखक किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में लिखता है ।

20 i) वर्ण्य विषय या उससे संबंधित विषयों पर लिखित पुस्तकों या लेखों का,
ii) मूल सामग्री जैसे चरित-नायक द्वारा लिखित डायरी, पत्रों आदि का तथा
iii) चरित-नायक के समकालीनों के संस्मरणों का ।

21 यात्रावृत्त या यात्रा-साहित्य ।

22 समाचार तथ्य पर आधारित होता है और उसका उद्देश्य सूचना देना भर होता है जबकि रिपोर्ताज़ मानव-मूल्यों से जुड़ कर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है ।

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू जी एच आई - 01
हिंदी का ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड

2

हिंदी कहानी

इकाई 3

हिंदी कहानी : स्वरूप और विकास 5

इकाई 4

'उसने कहा था' (चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी') : वाचन 19

इकाई 5

'उसने कहा था' : विश्लेषण और मूल्यांकन 32

इकाई 6

'शतरंज के खिलाड़ी' (प्रेमचंद) : वाचन एवं विश्लेषण 44

इकाई 7

'आकाश-दीप' (जयशंकर प्रसाद) : वाचन 63

इकाई 8

'आकाश-दीप' : विश्लेषण और मूल्यांकन 76

इकाई 9

'परदा' (यशपाल) : वाचन एवं विश्लेषण 89

इकाई 10

'अकेली' (मन्नू भंडारी) : वाचन एवं विश्लेषण 108

खंड 2 का परिचय

यह हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम-1 (हिंदी गद्य) का दूसरा खंड है। इसमें आप हिंदी की पाँच प्रतिनिधि कहानियों का अध्ययन करेंगे। खंड की पहली इकाई (इकाई-3) में कहानी के स्वरूप और हिंदी कहानी के विकास का परिचय दिया गया है। इस इकाई से आपको हिंदी में कहानी के विकास का परिचय तो मिलेगा ही, साथ ही आपको वह आधार प्राप्त होगा जिससे आप कहानी का वाचन और विश्लेषण कर सकेंगे।

आप कहानियों का ध्यानपूर्वक वाचन कीजिए और समझने की कोशिश कीजिए कि कहानीकार ने कहानी के माध्यम से क्या कहा है? कहानियों में आये कठिन शब्दों के अर्थ भी दिये गये हैं ताकि भाषा के स्तर पर कहानी को समझने में किसी तरह की कठिनाई न आए। इसके बाद आप कहानियों के साथ दिये गये बोध प्रश्नों का उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाइयों के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए। इससे आपको कहानियों को समझने में मदद मिलेगी। कहानी के वाचन के बाद "कहानी का सार" दिया गया है जिससे कि आप कहानी के मूल कथ्य को पहचान सकें। आप स्वयं कहानियों को पढ़कर उनका सार लिखिए ताकि आप कहानी के कथ्य को अपने शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता विकसित कर सकें। इकाइयों में कहानियों के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या भी दी गयी है ताकि आप स्वयं कहानी की व्याख्या कर सकें।

कहानी के कथ्य और प्रतिपाद्य को समझने के लिए कथावस्तु, चरित्र चित्रण, देश-काल (परिवेश), भाषा, शैली और संवाद अर्थात् संरचना शिल्प और उद्देश्य की दृष्टि से कहानियों का विस्तृत विश्लेषण भी दिया गया है। इनसे न केवल आपको कहानियों को समझने में मदद मिलेगी बल्कि आपकी आलोचनात्मक क्षमता का विकास भी होगा। इसके लिए बोध प्रश्नों के साथ-साथ अभ्यास भी दिये गये हैं। इन अभ्यासों में से कुछ के उत्तर इकाइयों के अंत में दिये गये हैं आप उनसे अपने उत्तर मिलाकर देखिए। क्या आपके उत्तर में भी कमोबेश वे ही बातें हैं जो नमूने के उत्तर में हैं। अगर नहीं तो आप इकाइयों को दुबारा पढ़िए और फिर अपने उत्तरों को जाँचिए। यह जरूरी नहीं है कि आपका उत्तर ठीक वैसा ही हो या उसी भाषा में लिखा हो। अगर आप अपने उत्तर से संतुष्ट हैं तो आप अपने अध्ययन को आगे जारी रखिए। प्रत्येक इकाई के साथ कुछ पुस्तकों के नाम दिये गये हैं, संभव हो तो आप उन पुस्तकों का अध्ययन भी कीजिए इससे आपको और अधिक जानकारी प्राप्त होगी।

इस खंड से संबंधित दो ऑडियो-पाठ भी तैयार किया गया है जिसमें कथा-साहित्य से संबंधित कुछ सवालों पर प्रकाश डाला गया है।

आप अपने पाठ्यक्रम में रखे गये कहानीकारों और हिंदी के अन्य कहानीकारों की अन्य कहानियाँ भी पढ़िए और उन पर विचार कीजिए।

आभार

श्रीमती प्रकाशवती यशपाल
(इकाई 9 की कहानी 'परदा')

श्रीमती मन्नू भंडारी
(इकाई 10 की कहानी 'अकेली')

इकाई 3 हिंदी कहानी: स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 कहानी का रचनागत वैशिष्ट्य
- 3.2.1 कथावस्तु
- 3.2.2 चरित्र चित्रण
- 3.2.3 परिवेश
- 3.2.4 संरचना शिल्प
- 3.2.5 प्रतिपाद्य

3.3 कहानी के भेद
- 3.3.1 कथावस्तु के आधार पर
- 3.3.2 चरित्र चित्रण के आधार पर
- 3.3.3 परिवेश के आधार पर
- 3.3.4 शैली के आधार पर
- 3.3.5 प्रतिपाद्य के आधार पर

3.4 हिंदी कहानी का विकास
- 3.4.1 प्रेमचंदपूर्व युग की कहानी
- 3.4.2 प्रेमचंद युग की कहानी
- 3.4.3 प्रेमचंदोत्तर युग की कहानी

3.5 सारांश

3.6 उपयोगी पुस्तकें

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

यह खंड कहानी से संबंधित है। इसमें आप कहानियों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में हम आपको कहानी के स्वरूप और हिंदी कहानी के विकास से परिचित कराएँगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी और उपन्यास में अंतर कर सकेंगे;
- कहानी का रचनागत वैशिष्ट्य बता सकेंगे;
- कहानी के विभिन्न तत्वों की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी के तत्वों के आधार पर उसके विभिन्न भेद कर सकेंगे;
- हिंदी कहानी के विकास का वर्णन कर सकेंगे; और
- हिंदी कहानी की विकास-परंपरा के विभिन्न चरणों की विशेषताएँ बता सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-1 से संबंधित यह दूसरे खंड की पहली इकाई है अर्थात् इस पाठ्यक्रम की यह तीसरी इकाई है। दूसरा खंड कहानी से संबंधित है। इस खंड में आप चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था', जयशंकर प्रसाद की 'आकाशदीप' प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी', यशपाल की 'परदा' और मन्नू भंडारी की 'अकेली' कहानियों का अध्ययन करेंगे। लेकिन इन कहानियों को पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना ज़रूरी है कि कहानी क्या है, उसके विभिन्न तत्व कौन से हैं उनकी विशेषताएँ क्या हैं और कहानी कितनी तरह की हो सकती है। इसके साथ ही हिंदी कहानी की परंपरा से परिचित होना भी आपके लिए ज़रूरी है। तभी आपको कहानियों को भली भाँति समझने तथा इन का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने में मदद मिलेगी।

हिंदी कहानी का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इसका आरंभ इस शताब्दी के पहले दशक में ही हुआ है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'सरस्वती' ने कहानी लेखन को प्रोत्साहित करने में विशेष मदद पहुँचाई है। बाद में तो कई पत्रिकाएँ केवल 'कहानी' को ही केंद्र में रखकर निकाली गयीं जिनमें कहानी, 'नई कहानी', 'सारिका' आदि प्रमुख हैं। इस इकाई में कहानी के स्वरूप का परिचय दिया गया है, लेकिन श्रेष्ठ कहानियों का स्वरूप निर्धारित मानदंडों से बँधा नहीं होता। कहानी में नये-नये प्रयोग होते रहते हैं। प्रेमचंद जिस तरह की कहानियाँ लिखते थे, आज उस तरह की कहानियाँ नहीं लिखी जातीं। कहानी के तत्वों के अध्ययन से हमें कहानियों को समझने में मदद मिलती है। एक बार जब हम जान लेते हैं कि कहानी क्या है तो उसके बाद उसमें होने वाले नवीन प्रयोगों को भी हम आसानी से समझ सकते हैं।

इस इकाई में हम कहानी के स्वरूप और हिंदी कहानी के विकास पर विचार करेंगे जिससे आपको आगे की इकाइयों में दी गयी कहानियों को समझने में मदद मिलेगी।

3.2 कहानी का रचनागत वैशिष्ट्य

कहानी हमारे लिए अपरिचित शब्द नहीं है। बचपन में हम सभी ने अपनी दादी या माँ से कहानियाँ सुनी हैं। "एक समय की बात है......" या "एक राजा था......." शैली में न जाने कितनी कहानियाँ हमने सुनी और पढ़ी होंगी। राजा-रानी की कहानियाँ, देवताओं और राक्षसों की कहानियाँ, पशु-पक्षियों की कहानियाँ न जाने कितनी तरह की, चमत्कारों और अजीबोगरीब घटनाओं वाली कहानियाँ हमारे अतीत का हिस्सा रही हैं। पुराण, महाभारत, पंचतंत्र, बेताल पच्चीसी, जातक कथाएँ आदि कई प्राचीन ग्रंथों में ऐसी हजारों कहानियाँ भरी पड़ी हैं, जिन्हें हमने पढ़ा या सुना है। इन कहानियों को पढ़ने से जहाँ हमारा मनोरंजन होता था, वहीं उनके माध्यम से तरह-तरह की शिक्षा और उपदेश भी मिलते थे। इनमें वर्णित घटनाएँ महत्त्वपूर्ण नहीं होती थीं बल्कि उनके माध्यम से व्यक्त उपदेश महत्त्वपूर्ण होता था। निश्चय ही वे कहानियाँ हमारी परंपरा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं, लेकिन इस इकाई में हम 'कहानी' नामक जिस साहित्यिक विधा की चर्चा करने जा रहे हैं वह उन पुरानी कहानियों से नितांत भिन्न है।

प्राचीन कालीन कहानियाँ : पहले की कहानियों में महत्वपूर्ण होती थी, घटना। इस घटना के माध्यम से लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति करता था। इसके लिए वह घटनाओं को मनचाहा रूप देता था। उसके लिए जीवन की वास्तविकताओं का कहानी के संदर्भ में अधिक महत्त्व नहीं था। कहानी की रचना के लिए वह काल्पनिक, दैवीय या चमत्कारिक घटनाओं का सहारा लेता था। लेकिन आज का कहानीकार कहानी की रचना करते हुए जीवन के प्रत्येक अंग पर गहरा विचार करता है। वह यह ध्यान रखता है कि जिस कहानी की रचना वह कर रहा है, वह अवास्तविक न लगे। जो चरित्र वह निर्मित कर रहा है, वह जीते-जागते इंसान की तरह लगे। वह उनके द्वारा ऐसे कार्य संपन्न नहीं करा सकता जिसे करना मनुष्य के लिए असंभव है। निश्चय ही यह एक बहुत बड़ा फर्क था, लेकिन यह फर्क अनायास नहीं आया था। 18वीं और 19वीं शताब्दी में हुए परिवर्तनों ने मनुष्य की सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया था। अब मनुष्य की चिंता के केंद्र में धर्म नहीं रहा, बल्कि उसका स्थान मनुष्य ने ले लिया। इसलिए मनुष्य की सोच भी अधिक वास्तविक और जीवन के अधिक निकट हुई। इसका असर साहित्य की रचना पर भी पड़ा।

आधुनिक युग का प्रभाव : आधुनिक युग में, तकनीकी विकास के कारण मुद्रण और परिवहन के क्षेत्र में जो नये आविष्कार हुए, उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन और वितरण में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। इन्होंने भी साहित्य पर प्रभाव डाला और गद्य विधाओं के विकास को प्रोत्साहित किया। उपन्यास जैसी नितांत नयी विधा के जन्म लेने में इन परिवर्तनों का भी हाथ है। उपन्यास पर विस्तार से चर्चा हम खंड तीन में करेंगे। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि उपन्यास आधुनिक युग में महत्त्वपूर्ण विधा बनकर उभरा। किंतु बाद में जब पत्र-पत्रिकाओं का विशेष चलन शुरू हो गया तो पत्रिकाओं की ज़रूरत के अनुसार छोटी कथात्मक रचनाएँ लिखी जाने लगीं। धीरे-धीरे यह एक स्वतंत्र विधा के रूप में उभर आई और कहानी (short story) कही जाने लगी। इस दृष्टि से आज की 'कहानी' अधिक पुरानी विधा नहीं है।

उपन्यास की तरह आधुनिक ढंग की कहानियाँ भी पश्चिम में पहले लिखी गयीं। यूरोप और अमेरिका के कहानीकारों ने कहानी-विधा को नवीन रूप दिया। कहानी की लोकप्रियता के साथ-साथ उसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुए। कहानी की रचना-प्रक्रिया पर विचार हुआ। यह विचार हुआ कि कहानी क्या है? उसका मानव-जीवन से क्या संबंध है? उसकी रचना का क्या उद्देश्य है? वह पाठकों को कैसे प्रभावित करती है? क्या उससे केवल मनोरंजन होता है या उससे किसी महत् उद्देश्य की पूर्ति भी की जा सकती है? कहानी में घटना प्रधान होती है या चरित्र या कुछ और? और फिर यह भी सवाल था कि उपन्यास और कहानी जो लगभग एक-सी विधाएँ हैं, वे किन अर्थों में एक दूसरे से भिन्न हैं? क्या उनमें केवल आकारगत भेद है या कुछ अन्य भेद भी हैं जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं और जिनके कारण ही उपन्यास और कहानी दो भिन्न विधाएँ मानी जाती हैं।

उपन्यास और कहानी में अंतर : आइए, इन सवालों का उत्तर हम इस आखिरी प्रश्न का उत्तर खोजने से आरंभ करें। हममें से शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने कोई उपन्यास न पढ़ा हो। कोई साहित्यिक उपन्यास न भी पढ़ा हो तो जासूसी या रूमानी उपन्यास अवश्य पढ़ा होगा। अगर आप इन उपन्यासों की तुलना कहानी से करें तो आप आसानी से पहचान सकते हैं कि लंबी-से-लंबी कहानी भी छोटे-से-छोटे उपन्यास से आकार में छोटी होती है। लेकिन आकार में यह फर्क अनायास ही नहीं आता, वरन् उपन्यास और कहानी में कुछ मूलभूत फर्क है जिसके कारण आकार में यह फर्क आता है। उपन्यास और कहानी में सबसे बड़ा फर्क यह है कि उपन्यास में जीवन का व्यापक चित्रण किया जा सकता है, लेकिन कहानी में जीवन के व्यापक चित्रण की गुंजाइश नहीं होती। कहानीकार जीवन के किसी एक खंड को, एक घटना अथवा एक अनुभव को कहानी का आधार बनाता है जबकि उपन्यासकार एक साथ कई घटनाओं और अनुभवों को प्रस्तुत कर सकता है। निश्चय ही, यही वह मूलभूत अंतर है जिसके कारण शेष अंतर भी स्वतः आ जाते हैं। जब रचनाकार जीवन की किसी एक घटना या छोटे खंड का चित्रण करेगा तो उसके साथ ही उस घटना या अनुभव से जुड़े पात्रों की संख्या भी स्वतः ही सीमित हो जाएगी। उसके लिए घटनाओं के विस्तृत विवरण या छोटे-से-छोटे ब्यौरे देने की गुंजाइश नहीं रहेगी। वह अपने विचारों को भी सांकेतिक रूप से प्रस्तुत करेगा। इस तरह कहानी और उपन्यास में मूल अंतर जीवन की व्यापक अभिव्यक्ति और जीवन के किसी खंड की अभिव्यक्ति से तय होता है और यही उपन्यास और कहानी के स्वरूप को निर्धारित करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन को हम उदाहरणों से जाँच सकते हैं। आप इसी पाठ्यक्रम के खंड 3 में प्रेमचंद का उपन्यास 'निर्मला' पढ़ेंगे। हो सकता है आप में से कुछ लोगों ने इस उपन्यास को पढ़ लिया हो। आपने देखा होगा कि प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' (जिसे आप आधार पाठ्यक्रम में पढ़ चुके होंगे), आकार में 'निर्मला' से काफी छोटी है। यह अंतर क्यों है?

'पूस की रात' और 'निर्मला' की संरचनागत तुलना : 'पूस की रात' में एक घटना है—हल्कू पर कुछ कर्जा है जिसे वह चुकाने की स्थिति में नहीं है। उसकी फसल पक चुकी है। वह जानता है कि इस फसल को बेचने से जो पैसा आएगा वह सारा महाजन का कर्ज चुकाने में चला जाएगा और उसे अपना और अपने घर परिवार का पेट पालने के लिए मजदूरी करनी होगी। इसी मनःस्थिति में वह रात को अपने खेत की रखवाली करता है। उसका खेत उसी के सामने जानवर चर जाते हैं और वह अपने खेत को बचाने की कोशिश नहीं करता। इस कहानी में बस यही एक घटना है और हल्कू ही इसका मुख्य चरित्र है। इसके विपरीत 'निर्मला' (जो प्रेमचंद के कई उपन्यासों से आकार में काफी छोटा है) में निर्मला के विस्तृत जीवन का परिचय दिया गया है। उपन्यास का आरंभ निर्मला के विवाह की बातचीत से होता है। उसका विवाह तय होता है। पिता के आकस्मिक देहांत के कारण उसकी माता दहेज देने की स्थिति में नहीं है। उसकी सगाई टूट जाती है। बाद में उसका विवाह अधेड़ उम्र के वकील तोताराम से तय होता है जिसके तीन बेटे पहले से हैं। निर्मला के जीवन की दुखभरी लंबी गाथा ही उपन्यास का कथात्मक कलेवर है। उसके सौतेले बड़े बेटे की मृत्यु, दूसरे बेटे द्वारा आत्महत्या, तीसरे का घर से भाग जाना, बेटी का जन्म, भयानक गरीबी, और इतनी विपदाओं से जूझती हुई निर्मला की मृत्यु के साथ उपन्यास का अंत। यहाँ निर्मला के जीवन का व्यापक चित्रण है। निर्मला उपन्यास की नायिका है लेकिन इसके अतिरिक्त भी कई पात्र हैं जो कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। उपन्यास में एक के बाद एक कई घटनाएँ आती हैं और कहानी के मूल कथ्य को संपुष्ट करती हैं। कहानी का परिवेश भी पर्याप्त विस्तृत है और कई वर्षों के लंबे काल खंड में उपन्यास फैला हुआ है जबकि 'पूस की रात' केवल एक रात की कहानी है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कहानी और उपन्यास में अंतर सिर्फ आकारगत नहीं वरन् संरचनागत है और हम इन्हें पहचान सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि उपन्यास में जहाँ पूरे जीवन की नाप-जोख होती है, वहाँ कहानी में उसकी सिर्फ एक झाँकी मिलती है। मानव-चरित्र के किसी पहलू पर या उसमें घटित किसी एक घटना पर प्रकाश डालने के लिए छोटी कहानी लिखी जाती है। (साहित्य सहचर : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 79)

कहानी क्या है? : कहानी हो या उपन्यास सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसमें कहानी या कथा अवश्य होनी चाहिए। अगर उसमें कहानीपन ही नहीं हो तो हम उसे चाहे कोई नाम दे दें, कहानी या उपन्यास नहीं कह सकते। कहानीपन है क्या? अगर हम किसी भी कहानी पर विचार करें तो पायेंगे कि उनमें निम्नलिखित बातें रहती हैं :

- उसमें कोई न कोई घटना या कार्य-व्यापार अवश्य होता है,
- ये घटनाएँ या व्यापार मानव के जीवन से संबंधित होते हैं;
- कहानी में प्रस्तुत घटना किसी न किसी स्थान और काल में घटती है;
- जिनके जीवन की कथा सुनाई जा रही है वे प्रायः आपस में और कभी खुद अपने से बातचीत करते हैं;
- इसके साथ ही, प्रत्येक कहानीकार का कहानी कहने का अपना ढंग होता है; और
- कहानीकार के सामने कहानी लिखने का कोई-न-कोई कारण होता है।

कहानी के तत्त्व : ये छह बातें प्रत्येक कहानी में होंगी। यह संभव है कि कुछ कहानियों में इनमें से कोई एक या दो बातें अधिक महत्वपूर्ण ढंग से व्यक्त हुई हों, लेकिन ऐसा संभव नहीं है कि इनके बिना 'कहानी' की रचना हो सके। इन्हें ही हम कहानी के तत्त्व कहेंगे। इन्हीं बातों को कहानी की शास्त्रीय भाषा में निम्नलिखित रूप में व्यक्त करेंगे।

1 कथावस्तु	2 पात्र या चरित्र-चित्रण
3 देश-काल या परिवेश	4 संवाद और भाषा
5 शैली	6 उद्देश्य

कहानी के इन्हीं परंपरागत तत्त्वों को हमने भी विवेचन का आधार बनाया है। इसलिए इस इकाई में हम आपको कहानी के इन विभिन्न तत्त्वों से परिचित करायेंगे, किंतु कुछ अंतर के साथ। संवाद, भाषा और शैली इन तीन तत्त्वों को हमने एक ही नाम 'संरचना शिल्प' दिया है। यद्यपि इसके अंतर्गत उपर्युक्त तीन तत्त्वों का ही विवेचन होगा। यह इसलिए कि ये तीनों तत्त्व एक दूसरे से संबद्ध हैं। इसी तरह हमने उद्देश्य की बजाय प्रतिपाद्य कहना अधिक उपयुक्त समझा है और इस दृष्टि से हम इसके अंतर्गत कहानी के उद्देश्य के साथ-साथ उसकी रचनात्मक परिणति और रचनाकार की दृष्टि पर भी विचार कर सकेंगे। इस तरह हम कहानी के विभिन्न तत्त्वों को निम्नलिखित रूपों में प्रस्तुत कर सकते हैं :

कहानी के तत्त्व :

1 कथावस्तु,
2 चरित्र चित्रण,
3 परिवेश;
4 संरचना शिल्प; और

आइए, अब हम उपर्युक्त तत्वों का अलग-अलग विवेचन करें। इससे पहले कि हम इन तत्वों पर विचार करें आप निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें।

बोध प्रश्न

नोट : नीचे दिये गये प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1 प्राचीन कहानियों की जो विशेषताएँ नीचे बतायी गयी हैं उनमें से कौन-सी विशेषता उन पर लागू नहीं होती:

क) प्राचीन कहानियों में नैतिक उपदेश का अधिक महत्त्व था।
ख) उनमें घटना की प्रधानता रहती थी।
ग) उनमें पात्रों के मानसिक द्वंद्व का चित्रण होता था।
घ) उनमें चमत्कारिक घटनाओं का बाहुल्य होता था।

( )

2 कथावस्तु, चरित्र चित्रण और परिवेश की दृष्टि से कहानी और उपन्यास में अंतर बताइए:

क) ....

ख) ....

ग) ....

3 कहानी की निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर उनके तत्वों का निर्धारण कीजिए। उत्तर कोष्ठकों में लिखिए:

क) कहानी का संबंध मानव के जीवन में घटी किसी घटना से होता है, जिससे उनका व्यक्तित्व उजागर होता है। ( )
ख) कहानी के पात्रों का संबंध कुछ घटनाओं या व्यापारों से रहता है। ( )
ग) जिनके जीवन की कथा सुनाई जा रही है वे आपस में और कभी खुद अपने से भी, बातचीत ज़रूर करते हैं। ( )
घ) कथा की घटना किसी-न-किसी स्थान और किसी-न-किसी काल में जरूर घटती है। ( )
ङ) फिर कहने वाले का अपना कोई-न-कोई ढंग ज़रूर होता है। ( )

3.2.1 कथावस्तु

कथावस्तु का अर्थ है, कहानी में प्रस्तुत घटना। किंतु यह घटना विस्तृत नहीं होती, बल्कि छोटी होती है जैसा कि 'पूस की रात' उदाहरण से स्पष्ट है। यह भी आवश्यक नहीं कि कहानी में वर्णित घटना स्थूल या असाधारण हो। आप इसी ऐच्छिक पाठ्यक्रम में यशपाल की 'परदा' कहानी पढ़ेंगे, उसमें घटनाएँ बहुत साधारण-सी हैं, यही बात मन्नू भंडारी की 'अकेली' कहानी में पायेंगे। प्रसाद जी की 'आकाशदीप' कहानी में तो केवल दो पात्रों के मन का अंतर्द्वंद्व चित्रित हुआ है।

कथावस्तु की विशेषताएँ : एक अच्छी कहानी में कथावस्तु का ठोस और सुसंबद्ध होना आवश्यक है, कोई ऐसी बात या प्रसंग उसमें वर्णित नहीं होना चाहिए जो कहानी में अनावश्यक लगे। जितना संभव हो घटनाओं, स्थितियों और भावों का वर्णन संक्षेप में और सांकेतिक रूप में करना चाहिए। तथा प्रत्येक घटना, प्रसंग या स्थिति परस्पर संबद्ध और कहानी के मूल भाव या चरित्र को विकसित और स्पष्ट करने वाली होनी चाहिए। जीवन यथार्थ कथावस्तु का आधार होना चाहिए। आज कहानियों में काल्पनिक और अविश्वसनीय घटनाओं को चित्रित करना उचित नहीं माना जाता। यह अवश्य है कि शिल्प प्रयोग के तौर पर इस तरह की रचना की जा सकती है, लेकिन वहाँ भी कथावस्तु का अंतर्निहित सत्य मानव जीवन के यथार्थ से संबद्ध होना चाहिए।

कथावस्तु का विकास : पहले कहानी की रचना वर्णनात्मक रूप में हुआ करती थी। घटना का आरंभ, उसका विकास और फिर अंत। लेकिन अब इसे अनिवार्य नहीं माना जाता। कहानी का आरंभ अब किसी रूप में हो सकता है। दो पात्रों के पारस्परिक संवाद द्वारा, किसी चरित्र के अंतर्द्वंद्व द्वारा, डायरी या पत्र शैली में। कहने का अर्थ यह है कि कहानीकार कहानी के कथ्य के अनुसार उसके आरंभ, विकास और अंत को निश्चित करता है। अब यह भी नहीं माना जाता कि कहानी का कोई निश्चित अंत होना ही चाहिए। इसके विपरीत यह भी संभव है कि कहानी अपनी चरम परिणति पर पहुँच कर समाप्त हो जाय, जैसा कि 'परदा' कहानी में होता है या 'अकेली' की तरह जहाँ अंत में कहानी में कुछ भी नाटकीय घटित नहीं होता। फिर भी, कहानी पाठक के मन पर गहरा असर छोड़ती है।

3.2.2 चरित्र चित्रण

कहानी में उपन्यास की तरह पात्रों की संख्या अधिक नहीं होती। कई बार तो सिर्फ एक-दो पात्रों के ईर्द-गिर्द ही सारा कथानक घूमता रहता है। प्रायः कहानियों में एक ही चरित्र केंद्र में होता है। विशेषतः चरित्र प्रधान कहानियाँ तो एक ही चरित्र को केंद्र में रखकर निर्मित होती हैं। उदाहरण के लिए 'उसने कहा था', 'अकेली' जैसी कहानियों में एक ही पात्र कथा के केंद्र में है।

कहानी में चरित्रों के विकास के उतने अवसर नहीं होते जितने कि उपन्यास में होते हैं। यहाँ तक कि चरित्र प्रधान कहानियों में भी पात्र के चरित्र का सिर्फ वही पहलू उजागर होता है जो कहानी के केंद्रीय भाव को व्यक्त करने में सहायक होता है। लेकिन श्रेष्ठ कहानीकार अपने पात्रों के चरित्र का संक्षेप में ही लगभग पूरा चित्र निर्मित कर देता है। जैसे 'उसने कहा था' में 'लहनासिंह' के चरित्र के कई पक्ष हमारे सामने उजागर होते हैं। इसी तरह 'शतरंज के खिलाड़ी' में मिरजा और मीर के चरित्र के कई पक्ष उजागर हुए हैं।

चरित्र का विकास : कहानी में चरित्र के विकास का अवसर उन कहानियों में अधिक होता है जो मनुष्य के मनोभावों के संघर्ष को कहानी का विषय बनाती हैं। आज की कहानियों में नितांत कल्पित और अविश्वसनीय चरित्रों की सृष्टि नहीं की जाती। पात्रों में सजीवता और स्वाभाविकता का होना आवश्यक है। वे प्रेमचंद की कहानियों की तरह किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र भी हो सकते हैं और जयशंकर प्रसाद की कहानियों की तरह मनुष्य के अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करने वाले भी हो सकते हैं। लेकिन किसी भी रूप में हमें यह नहीं लगना चाहिए कि वे नकली और गढ़े गए हैं क्योंकि ऐसा लगने पर हम उनके कार्यों और विचारों से प्रभावित नहीं होंगे। इसके लिए यह ज़रूरी है कि कहानीकार मानव स्वभाव का सूक्ष्म अध्ययन करे। ऐसा करने पर ही वह पात्रों के चरित्र का स्वाभाविक चित्रण कर सकेगा। कई बार कहानीकार अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पात्रों को मनचाहा रूप दे देते हैं। इस तरह के चरित्र भले ही लेखक के उद्देश्य की पूर्ति करने में सक्षम हो जाते हों, लेकिन वे पाठकों को प्रभावित नहीं कर पाते।

चरित्र चित्रण की विधियाँ : चरित्र चित्रण के लिए कहानीकार कई विधियाँ अपनाता है। सबसे पहले तो उस पात्र के कार्य ही उसके चरित्र को उजागर करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य पात्रों द्वारा उसके बारे में कही गई बातों से, अन्य पात्रों के वार्तालाप से, स्वयं उसके सोच से भी पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। कई बार कहानीकार स्वयं भी प्रत्यक्ष रूप में अपने पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालता है, लेकिन यह विधि प्रायः अच्छी नहीं समझी जाती और कम ही कहानियों में इसका प्रयोग हुआ है।

3.2.3 परिवेश

कथा के संदर्भ में परिवेश से तात्पर्य है—देश-काल अर्थात—कहानी में वर्णित घटनाओं का संबंध किस समय से है और वे कहाँ घटित हो रही हैं और वहाँ उस समय के हालात कैसे हैं। कहानी में सजीवता और स्वाभाविकता लाने के लिए यह आवश्यक है कि कहानीकार कहानी में वर्णित घटनाओं को उसके वास्तविक परिवेश में प्रस्तुत करे। यानी कि अगर कहानी गाँव से संबंधित है तो कहानी में वर्णित वातावरण भी गाँव के अनुकूल होना चाहिए। गाँव की गलियाँ, घर, चौपाल, प्रकृति, लोगों का पहनावा, रीति-रिवाज, भाषा आदि सभी उसी के अनुकूल होने चाहिए। फिर एक ही गाँव के अलग-अलग सामाजिक और आर्थिक वर्गों के लोगों की वर्गीय भिन्नता के कारण आए फर्क को चित्रित या संकेतित किया जाना चाहिए। अगर कहानी का परिवेश ऐतिहासिक है, तो उसमें कोई ऐसी चीज़ वर्णित नहीं होनी चाहिए जो उस काल विशेष में अस्वाभाविक लगे। कहानी का परिवेश जितना स्वाभाविक और वास्तविकता के नज़दीक होगा, कहानी उतनी ही विश्वसनीय और यथार्थ नजर आएगी।

परिवेश चित्रण का महत्त्व : कहानी में परिवेश चित्रण के उतने अवसर नहीं होते जितने उपन्यास में होते हैं। कहानी में रचनाकार परिवेश का चित्रण उतना ही करेगा जितने से कहानी में वर्णित कार्य-व्यापार स्वाभाविक लगे, पात्र जीवंत लगे और कहानी के विकास में मदद मिले। उपन्यास की तरह, कहानी में रचनाकार परिवेश के लंबे-चौड़े ब्यौरे नहीं दे सकता। फिर भी श्रेष्ठ रचनाकार संक्षेप में ही वातावरण का जीवंत चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम हो जाता है। जैसे ''शतरंज के खिलाड़ी'' में वाजिदअली शाह के समय का लखनऊ पूरी तरह मूर्तिमान हो जाता है।

परिवेश की यथार्थ जानकारी आवश्यक : परिवेश के स्वाभाविक चित्रण के लिए ज़रूरी है कि कहानीकार को कहानी में वर्णित कथा से संबद्ध देशकाल की सही जानकारी हो अर्थात् वह गहराई से इस बात को जाने कि उस समय के लोगों का रहन-सहन कैसा था, किस तरह की सामाजिक व्यवस्था थी, उनके क्या विश्वास थे, मानव सभ्यता ने कितनी प्रगति कर ली थी, मानवीय संबंधों का स्वरूप क्या था। अगर लेखक को इनकी जानकारी नहीं है तो वह परिवेश का स्वाभाविक चित्रण नहीं कर सकेगा।

3.2.4 संरचना शिल्प

जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस शीर्षक के अंतर्गत हम कहानी की भाषा, शैली और संवाद पर विचार करेंगे क्योंकि इनका संबंध कहानी रचना के शिल्प पक्ष से है।

भाषा : कहानीकार की रचना की सारी विशेषताएँ भाषा के माध्यम से ही हमारे सामने आती हैं। इसलिए कहानी की भाषा को कहानी संरचना का प्राण कहा जा सकता है। शब्दों के द्वारा ही कथा में रोचकता, पात्रों में सजीवता और परिवेश में स्वाभाविकता आती है। रचनाकार का भाषा पर जितना अधिक अधिकार होगा, उसकी रचना उतनी ही उत्कृष्ट होगी।

एक ही कहानी में भाषा के कई रूप हो सकते हैं। जहाँ लेखक केवल अपने विचारों को प्रकट करता है तो वहाँ अवश्य भाषा उसकी अपनी हो सकती है लेकिन पात्रों के संवाद, परिस्थितियों के चित्रण तथा कथा के वर्णन में भाषा कहानी की कथावस्तु के अनुकूल होनी चाहिए। लेकिन, इसके विपरीत कहानी कहने में जितनी स्वाभाविकता, सहजता और प्रवाह होगा, कहानी

उतनी ही संप्रेष्य होगी, लेकिन ये गुण तभी आ सकते हैं, जब कहानीकार कहानी में सहज स्वाभाविक और जहाँ तक संभव हो बोलचाल की भाषा का प्रयोग करे। भाषा की जटिलता कहानी के सहज प्रवाह को बाधित करती है।

भाषा की इन विशेषताओं की दृष्टि से पाठ्यक्रम में शामिल सभी कहानियाँ उत्कृष्ट कही जा सकती हैं। अगर 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'परदा' में उर्दू मिश्रित बोलचाल की भाषा का रस मिलता है तो 'आकाशदीप' में काव्यात्मक भाषा कहानी की भाषा का एक विशेष रूप व्यक्त करती है।

शैली : कहानी चाहे घटना प्रधान हो या चरित्र प्रधान, उसकी विषयवस्तु ऐतिहासिक हो या समकालीन, चाहे वह जिस दृष्टि या उद्देश्य से लिखी गयी हो, प्रत्येक कहानीकार का कहानी लिखने का अपना एक अलग अंदाज होता है। आपने प्रेमचंद और प्रसाद की कहानियाँ पढ़ी होंगी। एक ही युग के प्रेमचंद और प्रसाद नितांत भिन्न-भिन्न शैलियों में कहानियाँ लिखते थे। इसी तरह स्वयं प्रेमचंद ने भी कई नयी शैलियों का प्रयोग किया। कहने का तात्पर्य यही है कि शैली की दृष्टि से कहानियाँ एक दूसरे से प्रायः अलग होती हैं।

प्रश्न उठता है कि कहानीकार कहानी में शैली का निर्धारण कैसे करता है? कहानी की शैली को दो चीजें प्रभावित करती हैं। एक तो लेखक की अपनी वैयक्तिक रुचि और दूसरे, कहानी की विषयवस्तु की मांग। अलग-अलग विषयवस्तु कहानी की भिन्न-भिन्न शैली की मांग करते हैं। अगर हम प्रेमचंद का ही उदाहरण लें तो हम पाते हैं कि वे अलग-अलग कथानक के लिए नितांत भिन्न शैलियों का प्रयोग करते हैं। जैसे 'पूस की रात', 'कफन', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बड़े भाई साहब' आदि कहानियाँ भिन्न-भिन्न शैलियों में लिखी गयी हैं।

कहानी लिखने की प्रायः कई शैलियां प्रचलित हैं। घटना प्रधान कहानियाँ प्रायः वर्णनात्मक शैली में लिखी होती हैं जिसमें लेखक घटनाओं का वर्णन मात्र करता है। चरित्र प्रधान कहानियों में कहानीकार मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग करता है और पात्रों के आंतरिक द्वंद्व को प्रस्तुत करता है। कथानक की आवश्यकता के अनुसार रचनाकार डायरी शैली, आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, फंतासी शैली का भी प्रयोग करता है। कुछ कहानीकारों ने लोककथा या पंचतंत्र आदि की कथाओं वाली शैलियों का भी प्रयोग किया है। कई बार एक ही कहानी में एक से अधिक शैली का प्रयोग मिलता है। जैसे 'उसने कहा था', वर्णनात्मक शैली में है, परंतु अंत में उसमें पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग भी है। इसी तरह 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में मीर और मिरजा की कहानी के समानांतर 'वाजिदअली शाह' और लखनऊ के पतन की कहानी भी चलती है। यह एक नयी तरह की शैली कही जा सकती है।

यहां यह भी ध्यान रखने की ज़रूरत है कि लेखक की अपनी व्यक्तिगत रुचि भी शैली के निर्धारण में सहायक होती है। प्रेमचंद, यशपाल आदि की रुचि मानव जीवन के बाह्य सामाजिक घटनाक्रम के चित्रण की ओर अधिक थी, इसलिए उनके यहां नाटकीयता, वर्णनात्मकता तो मिल जाती है परंतु भाव प्रधान और मनोविश्लेषणात्मकता कम मिलती है जो हमें प्रसाद, जैनेंद्र या अज्ञेय में दिखायी देती है।

संवाद : कहानी के विभिन्न पात्र आपस में बातचीत करते हैं, उन्हें ही हम संवाद कहते हैं। संवाद कहानी में कई ढंग से काम करते हैं। संवादों से कहानी आगे बढ़ती है। विभिन्न पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। संवाद के द्वारा कहानी में नाटकीयता लायी जा सकती है और लंबे चौड़े वर्णन से भी बचा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'उसने कहा था' कहानी में सूबेदारनी और लहनासिंह की बातचीत कहानी का प्राण है और सारी कहानी का अर्थ ही उनकी बातचीत से खुलता है। इसी तरह 'शतरंज के खिलाड़ी' के अंत में मीर और मिरजा की बातचीत दोनों के चरित्र को उजागर करने में सहायक होती है। 'आकाशदीप' कहानी में जब चंपा, बुधगुप्त से यह कहती है कि "मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ" तो इससे उसके मन की उथल-पुथल ही प्रकट होती है। इस प्रकार कहानी में संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

संवाद में यह ध्यान रखने की बात होती है कि वे पात्रों व परिस्थितियों के अनुकूल हों। अगर पात्र अशिक्षित है तो उसकी भाषा वैसी ही होगी। अगर वह शिक्षितों की भाषा बोलेगा तो वह अस्वाभाविक लगेगा। इसी तरह किसी ऐतिहासिक कहानी में संवादों की भाषा में भी उस युग की भाषागत विशिष्टता का ध्यान रखना होगा। जैसे 'आकाशदीप' के पात्र संस्कृतनिष्ठ और 'शतरंज के खिलाड़ी' के पात्र उर्दू मिश्रित भाषा बोलते हैं। इसी तरह भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों में पात्रों के संवादों की भाषा में अंतर आ जाएगा

3.2.5 प्रतिपाद्य

प्रतिपाद्य का अर्थ है कहानी में क्या कहा गया है और जो कहा गया है उसका अभिप्राय क्या है। इसलिए प्रतिपाद्य को समझने के लिए सबसे पहले यह ज़रूरी है कि हम कहानी को सही-सही समझें। कहानी को समझने के बाद हमें उसमें निहित मूल कथ्य को पहचानना चाहिए। और उसके बाद उस की सामाजिक और साहित्यिक मूल्यवत्ता का निर्णय करना चाहिए। इससे हमें कहानी के प्रतिपाद्य को समझने में सहायता मिलेगी।

हम पहले बता चुके हैं कि प्रतिपाद्य के अंतर्गत कहानी के उद्देश्य और रचनाकार की दृष्टि की चर्चा करेंगे। कहानी को महान उसकी कथावस्तु पात्र, परिवेश या शिल्प नहीं बनाते। कहानी को महान बनाता है उसका उद्देश्य। कहानी किस उद्देश्य से प्रेरित हो कर लिखी गयी है इसी से शेष चीजें तय होती हैं। अगर कहानीकार का उद्देश्य ही गंभीर नहीं है तो वह कैसे, कोई अच्छी रचना कर सकता है। गुलामी के उस दौर में, जब प्रेमचंद रचना कर रहे थे, उन्हें यह बात निश्चय ही सालती रही होगी कि किस तरह अंग्रेजों ने बिना युद्ध किए, अवध पर कब्जा कर लिया था। इसी ऐतिहासिक तथ्य ने उन्हें प्रेरित किया होगा 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी अमर रचना करने को। इसी तरह एक बदलते समाज में नए मानव संबंधों और जीवन मूल्यों

की खोज से प्रेरित हो कर ही 'उसने कहा था', 'आकाशदीप' जैसी कहानियाँ लिखी गयी थीं। इसलिए किसी भी कहानी को समझने के लिए उसके प्रतिपाद्य को समझना आवश्यक है।

बोध प्रश्न :

4 नीचे कहानी की कथावस्तु की कुछ विशेषताएँ बताई गयी है। इनमें से कोई एक विशेषता आधुनिक कहानी का गुण नहीं है, बताइए।

क) कथावस्तु ठोस और सुसंबद्ध हो।
ख) कथावस्तु का आधार जीवन का यथार्थ होना चाहिए।
ग) काल्पनिक और अविश्वसनीय घटनाएँ न हों।
घ) कथावस्तु उपदेशात्मक हो। ( )

5 नीचे दी गयी विधियों में से कौन सी विधि चरित्र चित्रण के लिए बहुत उपयुक्त नहीं है।

क) पात्र के कार्य
ख) पात्रों की पारस्परिक बातचीत
ग) कहानीकार द्वारा प्रत्यक्ष वर्णन
घ) पात्र के अंतर्द्वंद्व का चित्रण ( )

6 परिवेश के यथार्थ चित्रण से कहानी रचना में निम्नलिखित सहायता मिलती है, लेकिन इनमें से एक गलत है, बताइए।

क) कहानी का शीर्षक स्पष्ट होता है।
ख) कहानी में वर्णित कार्य व्यापार स्वाभाविक लगता है।
ग) पात्र सजीव लगते हैं।
घ) कहानी के विकास में मदद मिलती है। ( )

7 शैली को निर्धारित करने वाले दो कारण बताइए और दिये गये रिक्त स्थान में लिखिए। अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

क) ....

....

ख) ....

....

3.3 कहानी के भेद

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कहानी में कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं जो प्रायः सभी कहानियों में मिलेंगे। किंतु ये तत्त्व सभी कहानियों में एक से नहीं होते। कोई कहानी घटना प्रधान हो सकती है, तो किसी कहानी में कोई पात्र ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो सकता है। कोई कहानी हमें नये सामाजिक मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा दे सकती है तो कोई अन्य कहानी सीधे-सीधे वर्णनात्मक ढंग से लिखी हो सकती है और कोई फंतासी शैली में लिखी हो सकती है। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक कहानी का अपना एक अलग रूप, अलग अंदाज और अलग संदेश होता है। इस दृष्टि से प्रत्येक कहानी दूसरी से भिन्न होती है। किन्तु जिस तरह कहानी को समझने के लिए उसके विभिन्न तत्त्वों की पहचान और उसका विश्लेषण किया गया, उसी तरह इन भिन्न-भिन्न तरह की कहानियों के भी हम कुछ निश्चित भेद कर सकते हैं। निश्चय ही कहानी के निम्न भेदों से अलग भी कुछ और भेद किए जा सकते हैं। इसी तरह एक कहानी को हम एक से अधिक भेदों में परिगणित कर सकते हैं। जैसे, एक कहानी कथावस्तु के लिहाज से ऐतिहासिक, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से चरित्र प्रधान, शैली की दृष्टि से आत्मकथात्मक भी हो सकती है। कहानी के विभिन्न भेदों को उसके तत्त्वों के आधार पर विभाजित कर सकते हैं।

3.3.1 कथावस्तु के आधार पर

प्रत्येक कहानी का कथानक अलग-अलग होता है। कोई कहानी अतीत से संबंधित हो सकती है, किसी का संबंध पौराणिक कथा से हो सकता है। कोई कहानी समकालीन यथार्थ से संबंधित हो सकती है। इसमें भी कोई सामाजिक व कोई पारिवारिक हो सकती है। इस तरह कथावस्तु की दृष्टि से कहानी के कई भेद किए जा सकते हैं :

1 ऐतिहासिक,
2 सामाजिक,
3 पारिवारिक, और
4 पौराणिक

1 **ऐतिहासिक कहानी** : ऐतिहासिक कहानी उसे कहते हैं जिसकी कथावस्तु अतीत से संबंधित हो। ऐसी कहानियों में यह आवश्यक नहीं है कि कहानीकार इतिहास की किसी सच्ची घटना को ही चुने, कई बार वह नितांत काल्पनिक कथा भी चुन सकता है लेकिन आधार ऐतिहासिक संदर्भ का होता है। दोनों तरह की कहानियों में जीवन सत्य प्रायः समकालीन ही होता है और महत्व उसी का होता है। जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' और प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। किन्तु 'आकाशदीप' जहाँ पूर्णतया काल्पनिक कहानी है वहीं 'शतरंज के खिलाड़ी' की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक यथार्थ पर आधारित है।

2 **सामाजिक कहानियाँ** : जिस कहानी की कथावस्तु के केन्द्र में सामाजिक घटना या समस्या हो उसे हम सामाजिक कहानी कह सकते हैं। 'पूस की रात', 'परदा' को इसी श्रेणी में रखेंगे।

3 **पारिवारिक कहानियाँ** : जिस कहानी की कथावस्तु के केन्द्र में पारिवारिक समस्या या घटना हो उसे पारिवारिक कहानी कहेंगे। प्रेमचंद की कई कहानियाँ पारिवारिक समस्याओं पर आधारित हैं। यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि पारिवारिक समस्याओं का सामाजिक पहलू भी होता है। इसलिए कोई कहानी पारिवारिक हो कर भी सामाजिक हो सकती है।

4 **पौराणिक कहानियाँ** : प्राचीन पुराण और धार्मिक कथाओं पर आधारित कहानियों को पौराणिक कहानियाँ कहा जा सकता है। इस तरह की कहानियों में यद्यपि कथावस्तु तो पौराणिक होती है, परन्तु उसमें लेखक का प्रतिपाद्य आधुनिक होता है।

इनमें भी कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनमें घटनाओं का चित्रण प्रधान होता है। कुछ में पात्रों के भवों और मनोदशाओं पर अधिक जोर दिया जाता है। इस दृष्टि से कहानियाँ **घटना प्रधान** या **पात्र प्रधान** हो जाती हैं। इधर विज्ञान तेजी से विकसित हुआ और कुछ कहानियों में कथानक इस क्षेत्र से भी लिये गये। इससे **विज्ञानपरक** कथानक भी सामने आए। इन्हें भी भेदों में शामिल किया जा सकता है।

3.3.2 चरित्र चित्रण के आधार पर

जिस कहानी के केन्द्र में कोई चरित्र हो और लेखक का उद्देश्य भी उस चरित्र के माध्यम से कहानी कहना हो तो ऐसी कहानी को हम चरित्र प्रधान कहानी कहेंगे। उदाहरण के लिए 'उसने कहा था' कहानी की सारी विशिष्टता लहनासिंह के चरित्र के माध्यम से व्यक्त हुई है इसलिए इस कहानी को हम **चरित्र प्रधान कहानी** कह सकते हैं। लेकिन सभी चरित्र प्रधान कहानियाँ एक-सी नहीं होती। जहाँ लेखक चरित्र की रचना अपने किसी आदर्श की स्थापना के लिए करता है वहाँ लेखक की दृष्टि उसके मानसिक अंतर्द्वंद्व पर नहीं रहती, लेकिन जहाँ लेखक का उद्देश्य ही पात्र के मानसिक अंतर्द्वंद्व को दिखाना हो तो ऐसी कहानियों के पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए मनोवैज्ञानिक पद्धति का सहारा लेगा। इस तरह की कहानियों को हम मनोवैज्ञानिक कहानियाँ कह सकते हैं। जैनेंद्र, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी ने इस तरह की कहानियाँ काफी लिखी हैं।

3.3.3 परिवेश के आधार पर

परिवेश (देशकाल) के आधार पर भी कहानियों का विभाजन किया जाता रहा है। वैसे तो प्रत्येक कहानी का कोई न कोई परिवेश होता है, किन्तु परिवेश प्रधान कहानियों में सर्वप्रमुख परिवेश होता है। ऐसी परिवेश प्रधान कहानियों की विशेषता यह होती है कि उसमें जिस परिवेश को आधार बनाया गया है उसकी संपूर्ण विशिष्टता कहानी में उभर कर आती है और शेष चीजें गौण हो जाती हैं। उदाहरण के लिए फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ एक विशेष परिवेश (ग्रामीण अँचल) से संबंधित होती हैं, वह परिवेश है बिहार का पूर्णिया ज़िला। उनकी कहानियों में इस ज़िले की आँचलिक (स्थानीय) विशेषताएँ, विशेष रूप से उभर कर आती हैं, इसलिए उनकी कहानियों को **आँचलिक कहानियाँ** कहा जाता है। यह ध्यान देने की बात है कि सिर्फ़ गाँव के लोगों की कहानी को आँचलिक कहानी नहीं कहा जाता। आंचलिक कहानी में अँचल का परिवेश सजीव होकर उभरता है। परिवेश की दृष्टि से हम कहानियों के कई भेद कर सकते हैं : जैसे शहर की कहानियाँ, कस्बे की कहानियाँ, महानगर की कहानियाँ।

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि प्रायः ऐसी कहानियाँ कम ही लिखी जाती हैं, जिनमें रचनाकार का उद्देश्य केवल परिवेश की विशिष्टता को ही चित्रित करना हो, लेकिन यह सही है कि प्रत्येक श्रेष्ठ रचनाकार कहानी की रचना करते हुए परिवेश के चित्रण पर विशेष ध्यान देता है। जैसे प्रेमचंद की कहानियों में गाँव का चित्रण। परिवेश के चित्रण में काल का विशेष ध्यान देना होता है क्योंकि समय के साथ-साथ क्षेत्र विशेष की स्थितियों में भी परिवर्तन आता है।

3.3.4 शैली के आधार पर

शैली का तात्पर्य है, कहानी किस रूप में कही गई है। आज कहानी कहने की कई शैलियाँ प्रचलित हैं। अब कहानीकार सीधे-सीधे घटना का वर्णन करता नहीं चलता क्योंकि अब कहानी सुनी कम जाती है, पढ़ी ज्यादा जाती है। इस दृष्टि से कहानी लेखन की कई शैलियाँ प्रचलित हैं। जैसे अगर कहानी पात्र के मुख से ही कहलाई गई है तो उसे **आत्मकथात्मक शैली** की कहानी कह सकते हैं। अगर कहानी पत्रों के माध्यम से कही गई है तो उसे **पत्र शैली** की कहानी कह सकते हैं। अगर कहानी डायरी के रूप में कही गई है तो उसे **डायरी शैली** की कहानी कह सकते हैं। अगर कहानी केवल संवादों के माध्यम से कही गई है तो उसे **संवाद शैली** की कहानी कह सकते हैं। अगर कहानी प्रतीकों के माध्यम से कही गई है तो उसे

प्रतीकात्मक शैली की कहानी कह सकते हैं। अगर कहानी लोककथा कहने की शैली में लिखी गई है तो उसे **लोककथात्मक शैली** की कहानी कह सकते हैं। अगर कहानी स्वप्न चित्रों की तरह अतार्किक रूप से लिखी गई है तो उसे **फंतासी शैली** की कहानी कह सकते हैं। अगर कहानी में नाटकीयता की प्रधानता हो तो उसे **नाटकीय शैली** की कहानी कह सकते हैं। इस तरह शैली की दृष्टि से कहानियों के कई भेद किये जा सकते हैं।

कई बार कहानीकार केवल शैली की उत्कृष्टता दिखाने के लिए या शैलीगत नया प्रयोग करने के लिए भी कहानी की रचना करता है। इस तरह की कहानियों में मुख्य तत्त्व कहानी का शिल्प ही होता है। इसलिए इस तरह की कहानियों को हम **रूपवादी** या **कलावादी** या **शिल्पप्रधान कहानियाँ** कह सकते हैं। हिन्दी में कोरी रूपवादी कहानियाँ कम ही लिखी गई हैं।

कई कहानियों में एक से अधिक शैलियों का मिश्रण भी हो सकता है। जैसे एक ही कहानी डायरी और पत्र दोनों के मिश्रण से रची गई हो।

3.3.5 प्रतिपाद्य के आधार पर

यहाँ हम कहानियों का विभाजन दो आधारों पर कर सकते हैं। एक तो रचनाकार की दृष्टि के आधार पर और दूसरा, रचना में निहित उद्देश्य के आधार पर। रचनाकार की दृष्टि या तो आदर्शवादी होती है या यथार्थवादी। जब रचनाकार किसी आदर्श से प्रेरित होकर रचना करता है और कहानी में भी वह उसी आदर्श का प्रतिफलन देखना चाहता है तो ऐसी कहानी को हम आदर्शवादी कहानी कहते हैं। प्रेमचंद की आरंभिक कहानियाँ जैसे 'पंच परमेश्वर', 'अलग्योझा', 'ईदगाह' आदि इसी श्रेणी में आती हैं। अपने आदर्श के लिए लेखक यथार्थ की उपेक्षा भी कर सकता है।

यथार्थवादी कहानियाँ हम उसे कहते हैं जहाँ लेखक जीवन की वास्तविकताओं की, अपने आदर्शों के लिए उपेक्षा नहीं करता। जीवन यथार्थ जैसा भी है, उसे वह उसी रूप में प्रस्तुत कर देता है। दूसरे, यथार्थवादी कहानीकार ऐसे आदर्शों में विश्वास करता है जो सामाजिक वास्तविकताओं के अनुकूल होते हैं तथा वह समाज की प्रगति में विश्वास करता है। वे रचनाकार जो सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से देखते हैं और उसी के अनुसार कहानी की रचना करते हैं, उनकी कहानियों को हम समाजवादी कहानियाँ कह सकते हैं। वे कहानीकार जो मानव जीवन को मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं और उसी के अनुसार कहानी की रचना करते हैं उनकी ऐसी कहानियों को हम मनोविश्लेषणवादी कहानियाँ कह सकते हैं।

इस तरह की कहानियों के विभिन्न भेद किये जा सकते हैं।

बोध प्रश्न

8 नीचे कहानी के विभिन्न प्रकारों की परिभाषाएँ दी गयी हैं, उनके आधार पर उनका नाम बताइए।

उदाहरण : जिसकी कथावस्तु अतीत से संबंधित हो (ऐतिहासिक कहानी)

क) कथावस्तु के केन्द्र में सामाजिक घटना या समस्या हो ( )

ख) जहाँ लेखक का उद्देश्य किसी पात्र की चारित्रिक विशेषताओं के माध्यम से कहानी कहना हो ( )

ग) जहां किसी क्षेत्र विशेष की प्रकृति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषा आदि विशेष रूप से उभर कर आएँ ( )

घ) जहाँ कहानी स्वप्न की तरह अतार्किक रूप से विकसित हुई हो ( )

9 निम्नलिखित आधारों पर कहानी के तीन-तीन भेदों के नाम बताइये।

i) कथावस्तु के आधार पर

क) ....

ख) ....

ग) ....

ii) परिवेश के आधार पर

क) ....

ख) ....

ग) ....

iii) शैली के आधार पर

क) ....

ख) ....

ग) ....

iv) प्रतिपाद्य के आधार पर

क) ....

ख) ....

ग) ....

3.4 हिन्दी कहानी का विकास

कहानी के स्वरूप की पहचान के बाद आपके मन में निश्चय ही यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी कि हिंदी में कहानी का विकास किस तरह हुआ। हिंदी कहानी के विकास को समझना कई कारणों से ज़रूरी है। पहला कारण तो यही है कि इससे हम यह पहचान सकते हैं कि हिन्दी में किस तरह की कहानियाँ लिखी जाती रही हैं, उनकी सामान्य विशेषताएँ क्या हैं। दूसरे, हिंदी कहानी के विकास-क्रम में कौन से महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं और उनकी विशिष्टता क्या है। तीसरे, हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकार और प्रतिनिधि कहानियाँ कौन-कौन सी हैं और उनकी विशिष्टता क्या है। इससे हमें उन कहानियों को समझने और हिन्दी कहानी परम्परा के परिप्रेक्ष्य में उनका मूल्यांकन करने में मदद मिलेगी, जिन्हें हम अपने पाठ्यक्रम के दौरान पढ़ेंगे।

वैसे तो भारत में कहानी की अति प्राचीन परम्परा रही है, किंतु जिसे आधुनिक कहानी कहा जाता है, वह उपन्यास की तरह नई परिस्थितियों और पश्चिम के प्रभाव का परिणाम है। हिंदी कहानी का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। हिंदी की पहली कहानी कब लिखी गई और किस कहानी को हिंदी की पहली कहानी कहा जा सकता है, यह अब भी विवाद का मुद्दा बना हुआ है। हम यहाँ उस विवाद में नहीं जायेंगे, केवल हिंदी कहानी के विकास क्रम का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

प्रेमचंद का महत्त्व : हिंदी कहानी की परंपरा में प्रेमचंद का स्थान केन्द्रीय महत्त्व का है। प्रेमचंद ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखीं। उन्होंने हिन्दी कहानी को श्रेष्ठता का वह मानक प्रदान किया जो आज भी हिंदी में मील का पत्थर माना जाता है। हिंदी कहानी के विकास के केन्द्र में प्रेमचंद को मानते हुए हम उसे तीन चरणों में बाँट सकते हैं।

1 प्रेमचंद पूर्व युग की कहानी (1901 से 1914)
2 प्रेमचंद युग की कहानी (1914 से 1936)
3 प्रेमचंदोत्तर युग की कहानी (1936 से आज तक)

इन चरणों को प्रवृत्तियों की दृष्टि से कई धाराओं में विभाजित किया जाता है यहाँ हम इन तीनों चरणों का अलग-अलग विवेचन करेंगे।

3.4.1 प्रेमचंद पूर्व युग कहानी

प्रेमचंद पूर्व युग कहानी का समय 1901 से 1914 तक माना जाता है। हिंदी की पहली कहानी कौन-सी है, यह विवाद का विषय है। हिंदी गद्य के आरंभिक दौर में मुंशी इंशाअल्ला खां (मृत्यु 1818) ने 'उदयभान चरित्र' या 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की थी। समय की दृष्टि से यह सबसे पुरानी कहानी कही जा सकती है। परंतु आधुनिक कहानी-कला की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण रचना नही है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है कि यह मुस्लिम (फारसी) प्रभाव की अंतिम कहानी है यद्यपि 'इसकी भाषा और शैली में आधुनिक कहानी कला का थोड़ा आभास मिल जाता है।' राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद (1823-1895) की रचना 'राजा भोज का सपना' भी ऐसी ही आरंभिक कहानी है। इसमें भी आधुनिकता का स्पर्श मात्र है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने प्रसिद्ध साहित्य इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में हिन्दी की कुछ आरंभिक कहानियों का उल्लेख किया है। जिनमें किशोरी लाल गोस्वामी (इंदुमती,) रामचंद्र शुक्ल (ग्यारह वर्ष का समय), बंग महिला (दुलाई वाली) आदि की कहानियाँ प्रमुख हैं। इन कहानियों को हम आरंभिक प्रयोगशील कहानियाँ कह सकते हैं जिनमें कहानीकारों ने विदेशी या बंगला कहानियों के प्रभाव में आकर हिन्दी में भी कहानियाँ लिखने का प्रयास किया था। अब माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली कहानी माना जाता है जो 1901 में प्रकाशित हुई थी।

प्रेमचंद पूर्व युग की कहानियों की विशेषताएँ : इस युग की आरंभिक कहानियाँ तो पुराने ढांचे की ही थी, जिनका कथानक अलौकिक और चमत्कारों से युक्त होता था, लेकिन बाद में कहानीकार यथार्थ के चित्रण की ओर उन्मुख हुए, यद्यपि यथार्थ का वैसा रूप उनमें लक्षित नहीं होता जो प्रेमचंद युग की कहानियों की सामान्य विशेषता रहा है। प्रेमचंद पूर्व युग की कहानियाँ प्रायः आदर्शवादी हैं जिनमें भावुकता के साथ किसी भारतीय आदर्श की कथा कही गई है। भाषा की दृष्टि से भी उनमें वैसी प्रौढ़ता नजर नहीं आती जैसी प्रेमचंद युग की कहानियों में आती है। हिन्दी कहानी का वास्तविक आरंभ तो प्रेमचंद के द्वारा ही हुआ जो यद्यपि 1900 के आसपास से ही रचना कर रहे थे किन्तु जिनकी हिंदी कहानियाँ 1914-15 के आसपास ही प्रकाश में आईं। इससे पूर्व वे प्रायः उर्दू में लिखते थे। लेकिन हिन्दी की पहली श्रेष्ठ कहानी चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' है, जिसकी रचना 1915 में हुई थी। उनकी चर्चा हम प्रेमचंद युग में करेंगे।

3.4.2 प्रेमचंद युग की कहानी

जिसे हम हिन्दी कहानी का प्रेमचंद युग कहते हैं उसका आरंभ 1915 से माना जाता है और 1936 के बाद के युग को हम प्रेमचंदोत्तर युग कह सकते हैं। प्रेमचंद जिस दौर में कहानियाँ लिख रहे थे, उस दौर में और भी कई कहानीकार सक्रिय थे

जिनमें जयशंकर प्रसाद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, शिवपूजन सहाय, वृंदावनलाल वर्मा, गोपालराम गहमरी, रायकृष्णदास, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, ज्वालादत्त शर्मा, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव आदि कहानीकारों की रचनाएँ भी प्रकाशित हुई और हिन्दी का कहानी साहित्य तेजी से आगे बढ़ा।

गुलेरीजी की कहानियाँ : अगर आधुनिक कला की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाये तो हिंदी की पहली श्रेष्ठ कहानी निर्विवाद रूप से चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' (1915) है। इस कहानी का अध्ययन आप अगली इकाई में करेंगे। यह हिंदी की पहली कहानी है जो यथार्थ की सघनता से गुजरते उच्च आदर्श को रूपायित करने में समर्थ हुई है। गुलेरी जी की इस कहानी का कथ्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक है जो इसके महत्त्व को और बढ़ा देता है। गुलेरी जी ने इसके अतिरिक्त सिर्फ दो कहानियाँ और लिखी थीं। ये हैं—'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा'।

जयशंकर प्रसाद : प्रेमचंद युग में ही प्रसाद जी ने हिन्दी को कई कहानियाँ दीं। लेकिन आपकी कहानियों का मिजाज प्रेमचंद से काफी भिन्न है। प्रसाद जी मूलतः कवि थे, इसलिए उनकी कहानियों में भावात्मक संघर्ष और मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वंद्व का चित्रण अधिक हुआ है। यद्यपि उनकी कहानियों में राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक जागरण का प्रभाव देखा जा सकता है, किन्तु मुख्य रूप से पात्रों के अंतर्द्वंद्व के चित्रण पर वे विशेष बल देते रहे हैं। प्रसाद की अधिकांश कहानियों की कथावस्तु ऐतिहासिक है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, भावप्रवण, अलंकारिक और काव्यात्मक है। किंतु बाद में उन्होंने कुछ ऐसी कहानियाँ भी लिखीं जिनमें यथार्थ चित्रण पर अधिक बल नजर आता है। इस तरह की कहानियों में 'मधुआ और गुंडा' प्रख्यात हैं। प्रसाद की कहानियों में 'आकाश दीप', 'पुरस्कार', 'इंद्रजाल', 'छाया', 'आंधी', 'दासी' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

प्रेमचंद : प्रेमचंद की कहानियों का प्रकाशन हिन्दी के कथा साहित्य की बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है। हिन्दी में उनकी पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' (1915) प्रकाशित हुई थी। यद्यपि यह एक आदर्शवादी कहानी थी किंतु इसमें मनुष्य के अंदर छिपे दैवत्व को उजागर कर उसके हृदय की विशालता और पारस्परिक विश्वास को स्थापित किया गया था।

'प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद-पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकसों के महत्त्व के प्रचारक थे।' (हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्यः उद्भव और विकास, पृ॰ 266)

प्रेमचंद ने अपने युग की दुरवस्था को ही अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाया। उन्होंने अपने अनुभवों से जान लिया था कि हमारे सारे कष्टों के कारण दो ही हैं—एक धार्मिक अंधविश्वास और सामाजिक रूढ़िवादिता और दूसरा, आर्थिक शोषण और राजनीतिक पराधीनता। उनकी प्रायः सभी कहानियाँ इन्हीं के इर्दगिर्द घूमती हैं। आरंभ में तो उन्होंने भाववादी आदर्शवाद का सहारा लिया था, लेकिन बाद में उनका ऐसे किसी आदर्शवाद पर विश्वास नहीं रहा। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों द्वारा जहाँ गरीबों, बेकसों और उत्पीड़ितों की कारुणिक पीड़ाओं का यथार्थ चित्रण किया है, वहीं उनके अंदर छुपे मानवतावाद को उजागर कर उन्हें मानवीय गरिमा प्रदान की है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के द्वारा सामाजिक कुरीतियों और विडंबनाओं पर गहरी चोट की है।

भाषा की दृष्टि से भी प्रेमचंद ने बोलचाल की हिन्दी को ऐसा सहज, लोकभाषा का रूप दिया है जो आज भी हमारे लिए अनुकरणीय है। शैली की दृष्टि से प्रेमचंद ने सर्वाधिक प्रयोग किए हैं।

उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियां हैं, 'कफन', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'दूध का दाम', 'नशा', 'बड़े भाई साहब', ये सभी यथार्थवादी कहानियाँ हैं। आरंभिक दौर में लिखी गई आदर्शवादी कहानियाँ भी कम चर्चित नहीं हैं जिनमें 'अलग्योझा', 'नमक का दारोगा', 'पंच परमेश्वर', 'ईदगाह', 'मंत्र' आदि प्रमुख हैं।

3.4.3 प्रेमचंदोत्तर युग की कहानियाँ

प्रेमचंद के बाद हिन्दी कहानी का विकास और तेजी से हुआ है। प्रेमचंद और प्रसाद के बाद के दौर में हिंदी कहानी की दो प्रमुख धाराएँ उभर कर आईं। इनमें एक धारा तो सीधे प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा का विकास थी और दूसरी धारा प्रसाद की भाववादी मनोवैज्ञानिक परंपरा का विकास थी। इन्हें क्रमशः **प्रगतिवादी कहानियों और मनोवैज्ञानिक कहानियों** के नाम से जाना जाता है।

प्रगतिवादी कहानियाँ : इन कहानियों को यथार्थवादी या सामाजिक कहानियाँ भी कहा जाता है। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ यथार्थवाद से प्रेरित हो कर जो कहानियाँ लिखी जा रही थीं उन्हें प्रगतिवादी कहानियाँ कहा गया है। इनमें यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, पहाड़ी, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, आदि प्रमुख हैं। इन कहानीकारों ने सामाजिक समस्याओं को कहानी का विषय बनाया। प्रेमचंद की तरह इनकी दृष्टि भी धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक शोषण आदि पर गई और उन्होंने इन पर करारी चोट की। इन्होंने भी गरीब वर्ग को अपनी कहानियों के केंद्र में रखा। यद्यपि मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं पर भी कई कहानीकारों ने बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। चरित्र-चित्रण में इनकी दृष्टि व्यक्ति के अंतर्मन की बजाय उसके सामाजिक व्यवहार पर ज्यादा टिकी होती है। वे व्यक्ति को वर्गीय प्रतिनिधि के रूप में देखते और चित्रित करते हैं।

इन कहानीकारों में यशपाल का विशेष स्थान है। उन पर मार्क्सवाद के साथ-साथ फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव भी नजर आता है। 'महाराजा का इलाज', 'परदा', 'उत्तराधिकारी', 'काला आदमी', 'फूलों का कुर्ता', 'दास धर्म' आदि उनकी चर्चित कहानियाँ हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ : हिंदी में प्रेमचंद के बाद कुछ ऐसे कहानीकार आए जिन्होंने व्यक्ति मन को कहानी के केंद्र में रखा। इन कहानीकारों की दिलचस्पी सामाजिक समस्याओं में न होकर व्यक्ति की वैयक्तिक पीड़ाओं और मानसिक अंतर्द्वंद्व में थी। इन्होंने मनुष्य के अवचेतन मन की क्रियाओं और उनकी मानसिक ग्रंथियों को कहानी का विषय बनाया। मनुष्य के आंतरिक द्वंद्व पर विशेष ध्यान देने के कारण इनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्य और चरित्र की वैयक्तिक विशिष्टता विशेष रूप से व्यक्त हुई। इन कहानीकारों में जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय का स्थान प्रमुख है। जैनेंद्र की कहानियों पर दार्शनिकता का भी प्रभाव नजर आता है। उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं : 'पाज़ेब', 'एक रात', 'नीलमदेश की राजकन्या' 'जय संधि', 'मास्टर जी' आदि। इलाचंद्र जोशी का मुख्य धरातल भी मनोवैज्ञानिक है। इनकी कहानियों के दो पक्ष हैं मध्यवर्ग अथवा पतनशील जीवन की विश्लेषणात्मक आलोचना और दूसरा, व्यक्ति के अहंभाव पर प्रहार। इलाचंद्र जोशी की कहानियों पर मनोविश्लेषणात्मकता का प्रभाव सबसे ज्यादा है। इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं : 'चरणों की दासी', 'होली', 'अनाश्रित', 'परित्यक्त', 'मैं', 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' आदि। अज्ञेय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। उनकी कहानी कला का मूल धरातल व्यक्ति चरित्र है। इनकी कहानियाँ अपने दृष्टिकोण में इतनी विस्तृत, व्यापक और गंभीर है कि मानववाद अपने अधिक से अधिक रूपों में इनका उपजीव्य बन गया है। चरित्रविधान और शैली निर्माण में इनकी मौलिकता और हस्तलाघवता अपूर्व है। (लक्ष्मीनारायण लाल : आधुनिक हिंदी कहानी, पृ॰ 28) इनकी प्रमुख कहानियाँ है : 'जयदोल', 'पठार का धीरज', 'रोज', 'शरणदाता', 'हीलोबोन की बत्तखें', 'लेटर बाक्स'।

नयी कहानी : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी में कहानी का एक नया आंदोलन अस्तित्व में आया; इसे 'नयी कहानी', के नाम से जाना जाता है। एक विधा के तौर पर कहानी को शायद सबसे अधिक लोकप्रियता इसी युग में प्राप्त हुई। 'नयी कहानी' में प्रेमचंदोत्तर युग की यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक कहानियों की दो अलग-अलग धाराएँ पुनः एक होती नजर आती हैं। इस युग की कहानियों में भी सामाजिक समस्याओं और यथार्थ की जटिलताओं को चित्रित किया गया, किंतु व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व की उपेक्षा भी नहीं की गई। इस युग की कहानी के केंद्र में पारिवारिक और मानवीय संबंधों में आने वाले परिवर्तन प्रमुख रहे। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन के रिश्ते में ही नहीं, हमारे सामाजिक संबंधों में होने वाले परिवर्तन भी चित्रित हुए। यद्यपि इस युग के अधिकांश कथाकारों ने मध्यम वर्ग को ही कहानी का विषय बनाया लेकिन अब कहानी में महानगर, शहर, कस्बा और गाँवों की विशिष्ट जिंदगी को अलग पहचाना जा सकता था। नयी कहानी का केंद्रीय कथ्य स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के मध्यवर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं और स्वप्नभंगों से संबद्ध है। इस युग में कुछ महिला कहानीकारों ने भी उल्लेखनीय कहानियाँ लिखीं जिनमें कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कहानीकारों में भैरवप्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, मार्कंडेय, फणीश्वरनाथ रेणु, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, कमलेश्वर, कृष्णबलदेव वैद, रामकुमार, शिवप्रसाद सिंह, शानी, धर्मवीर भारती, अमरकांत, हरिशंकर परसाई आदि प्रमुख हैं।

नयी कहानी के बाद भी हिंदी कहानी का विकास पूर्ववत् जारी रहा और अकहानी, संचेतन कहानी, जनवादी कहानी आदि की कई नयी प्रवृत्तियाँ प्रकाश में आई। इन सभी में अपनी युगीन विशेषताएँ थी। यद्यपि बाद में 'नयी कहानी' जैसा कोई समर्थ आंदोलन नहीं उभरा किंतु कई अच्छे कहानीकार उभरे जिन्होंने हिंदी कहानी की परंपरा को समृद्ध किया। इनमें काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, रमेश उपाध्याय, गोविंद मिश्र, मुद्राराक्षस, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडेय आदि प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न

10 प्रेमचंद पूर्व युग की कहानियों की दो विशेषताएँ बताइए।

क) ....

ख) ....

11 निम्नलिखित विशेषताओं में से कौन सी विशेषताएँ प्रेमचंद पर लागू होती है और कौन सी प्रसाद पर। सही (✓) का चिह्न लगाकर बताइए।

क) सामाजिक समस्याओं के चित्रण पर बल (प्रेमचंद/प्रसाद)

ख) व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व के चित्रण की प्रधानता (प्रेमचंद/प्रसाद)

ग) ऐतिहासिक कथानकों की ओर विशेष झुकाव (प्रेमचंद/प्रसाद)

घ) ग्रामीण जीवन से संबंधित कहानियों का लेखन अधिक (प्रेमचंद/प्रसाद)

ङ) संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग (प्रेमचंद/प्रसाद)

च) बोलचाल की भाषा का प्रयोग (प्रेमचंद/प्रसाद)

12 प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों एवं उनके दो-दो प्रमुख कहानीकारों के नाम बताइए :

प्रवृत्ति का नाम	लेखक का नाम
i)	क) ....
	ख) ....
ii)	क) ....
	ख) ....

iii) .... क) ....

ख) ....

13 नयी कहानी की कोई दो विशेषताएँ लिखिए :

क) ....

....

ख) ....

....

3.5 सारांश

इस इकाई को आपने ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। इसे पढ़ने के बाद :

- कथा साहित्य की दो प्रमुख विधाओं कहानी और उपन्यास में अंतर बता सकते हैं। कहानी और उपन्यास में आकारगत भेद का कारण क्या है और दोनों में जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति किस रूप में होती है, को आप स्पष्ट कर सकते हैं।
- कहानी क्या है, अंतर्वस्तु और संरचना की दृष्टि से इसकी क्या विशेषताएँ हैं और इन दोनों में क्या संबंध है, आप इनकी व्याख्या कर सकते हैं।
- कहानी के छह तत्व हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण, परिवेश, भाषा, शैली और उद्देश्य। इन्हीं को समेटते हुए हमने कहानी की पांच तत्वों की चर्चा की थी : कथावस्तु, चरित्र चित्रण, परिवेश, संरचनाशिल्प और प्रतिपाद्य। आप कहानी के संदर्भ में उपर्युक्त तत्वों की विवेचना कर सकते हैं।
- इन्हीं तत्वों के आधार पर कहानी के कई भेद किये जा सकते हैं। आप कहानी के विभिन्न भेद और उनका रचनागत आधार स्पष्ट कर सकते हैं।
- हिंदी कहानी का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। प्रेमचंद ने कहानी को साहित्यिक उत्कृष्टता प्रदान की। प्रेमचंद से पहले और बाद में कहानी का जो विकास हुआ, उसको पढ़ चुके हैं। आप हिंदी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों और कहानीकारों की विशेषताएँ बता सकते हैं।

3.6 उपयोगी पुस्तकें

प्रेमचंद : **साहित्य का उद्देश्य**, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद : **साहित्य सहचर**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद : **हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास**, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

लक्ष्मीनारायण लाल : **आधुनिक हिंदी कहानी**, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्रा. लि., बंबई।

नामवर सिंह : **कहानी नयी कहानी**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 ग)

2 क) उपन्यास में व्यापक जीवन का चित्रण होता है, कहानी में जीवन के एक खंड का।

ख) उपन्यास में अधिक पात्र होते हैं, कहानी में पात्र कम होते हैं और उनमें भी एक-दो पात्र ही प्रमुख होते हैं।

ग) कहानी में परिवेश के चित्रण का अधिक अवसर नहीं होता जबकि उपन्यास में परिवेश का विस्तृत चित्रण किया जा सकता है।

3 क) चरित्र चित्रण ख) कथावस्तु ग) संवाद

घ) परिवेश ङ) शैली

4 घ) 5 ग) 6 क)

7 क) संकेत: लेखक की अपनी रुचि

ख) संकेत: कथावस्तु की आवश्यकता के अनुसार

8 क) सामाजिक कहानी

ख) चरित्र प्रधान कहानी

ग) आंचलिक कहानी

घ) फंतासी शैली की कहानी

9 i) क) ऐतिहासिक ख) घटना प्रधान ग) पारिवारिक
ii) क) आंचलिक ख) महानगरीय ग) कस्बाई
iii) क) नाटकीय ख) फंतासी ग) डायरी
iv) क) यथार्थवादी ख) आदर्शवादी ग) मनोविश्लेषणवादी

10. क) संकेतः आदर्शवादिता
ख) संकेतः भावुकता

11 क) प्रेमचंद ख) प्रसाद ग) प्रसाद घ) प्रेमचंद ङ) प्रसाद च) प्रेमचंद

12. i) यथार्थवादी या प्रगतिवादी कहानियाँ :
क) यशपाल
ख) विष्णु प्रभाकर
ii) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ :
क) अज्ञेय
ख) इलाचंद्र जोशी
ग) जैनेंद्र कुमार
iii) नयी कहानीः
क) भीष्म साहनी
ख) मार्कंडेय
ग) कृष्णा सोबती

13 क) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उभरे मध्यवर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं और स्वपनभंग की कहानी।
ख) परिवार और समाज के टूटते पुराने ढांचे और बनते नये संबंधों की कहानियाँ।

इकाई 4 'उसने कहा था' (चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'): वाचन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 कहानी का वाचन : उसने कहा था
4.3 कहानी का सार
4.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या
4.5 सारांश
4.6 उपयोगी पुस्तकें
4.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' दे रहे हैं। कहानी के साथ ही लेखक का परिचय, कहानी का सार एवं कहानी के महत्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या भी दे रहे हैं। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- कहानी में आए कठिन शब्दों के अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे;
- कहानी में आए मुहावरों व लोकोक्तियों के अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे; और
- कहानी के महत्वपूर्ण अंशों और उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम 'उसने कहा था' कहानी का अध्ययन करने जा रहे हैं। उससे पूर्व की इकाई में हमने कहानी के विभिन्न तत्वों की जानकारी प्राप्त की थी और हिंदी कहानी का परिचय प्राप्त किया था। आपको ज्ञात हो गया होगा कि हिंदी कहानी के विकास में "उसने कहा था" का कितना महत्त्व है। "उसने कहा था" हिंदी की पहली कहानी है जिसमें कहानी कला का उत्कृष्ट साफ़ तौर से नज़र आता है।

इस कहानी के लेखक पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी हैं। गुलेरी जी का जन्म सन् 1883 में व देहावसान 1922 में हुआ था। उनका पैतृक निवास स्थान हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा जिले का गुलेर गाँव था। वे कई वर्ष अजमेर (राजस्थान) के मेयो कालेज में अध्यापक रहे। वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका के संपादक भी रहे। उन्होंने धर्म, ज्योतिष, पुरातत्व, भाषा-शास्त्र, इतिहास, साहित्य आदि कई क्षेत्रों में गंभीर अध्ययन और अनुशीलन किया था।

गुलेरी जी ने सिर्फ तीन कहानियाँ लिखी हैं। 'सुखमय जीवन' (1911), 'बुद्धू का काँटा' (1913) और 'उसने कहा था' (1915)। इन तीनों में 'उसने कहा था' का विशेष महत्त्व है। पहली बार हिंदी कहानी में कथ्य, चरित्र और संवेदना की दृष्टि से ही नहीं वरन् शिल्प और भाषा की दृष्टि से भी पूर्ण परिपक्वता नज़र आती है। इसे आप स्वयं कहानी के वाचन द्वारा जान सकेंगे।

आगे हम इसी कहानी का पहले वाचन करेंगे। कहानी के साथ कठिन शब्दों, मुहावरों आदि के अर्थ दे दिये गये हैं। साथ ही हाशिये पर कहानी के विकास के विभिन्न चरण बताये गये हैं जिससे आप स्वयं कहानी के विकास की दिशा को समझ सकें।

कहानी के वाचन के बाद कहानी का सार दिया गया है ताकि कहानी की कथावस्तु को आप पुनः एक बार समझ सकें। इसके बाद इस कहानी की व्याख्या की ओर बढ़ेंगे। सबसे पहले कहानी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करेंगे और देखेंगे कि कथ्य, भाषा आदि की दृष्टि से कहानी की क्या विशेषताएँ हैं।

इस कहानी का ध्यानपूर्वक वाचन करने के लिए एक बार आप कहानी को पूरा पढ़ जाइए। इसके बाद, दूसरी बार कहानी को फिर पढ़िए। इस बार आप कहानी में आए कठिन शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों पर ध्यान दीजिए, उनके अर्थ समझिए और सहायता के लिए उसी पृष्ठ के नीचे दिये गये अर्थ देखिए। साथ ही, आप कहानी के हाशिये पर दिये गये कथा-सूत्रों तथा नीचे दी गई टिप्पणियों पर भी गौर कीजिए जिससे कथावस्तु के विकास को समझने में सहायता मिलेगी। अब आप कहानी के प्रत्येक भाग के अंत में दिये गये बोध प्रश्न भी हल कर सकते हैं और इस बात की परीक्षा भी कर सकते हैं कि आपने कहानी को कितना समझा है। कहानी को तीसरी बार तब पढ़िए जब आप इस कहानी का पूरा विश्लेषण (जो इकाई 5 में दिया गया है) पढ़ चुके हों।

4.2 कहानी का वाचन : उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी')

अमृतसर शहर बाजार का दृश्य सन् 1890 के आसपास

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न रहने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चींथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध में चले जाते हैं, अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर एक लड्डीवाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ा कर "बचो खालसा जी", "हटो भाई जी", "ठहरना भाई", "आने दो लाला जी", "हटो बाछा" कहते हुए सफ़ेद फटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने, खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं, क्या मजाल कि "जी" और "साहब" बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमा वालिए, हट जा पुत्तां प्यारिए, हट जा लम्बी उमर वालिए।[2] समष्टि में उसका अर्थ है तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तो क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है? बच जा।

कहानी के दो प्रमुख पात्र

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और उसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेसी से गुँथ रहा था, जो सेर भर पीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

दोनों का परस्पर परिचय

"तेरे घर कहाँ है?"
"मगरे में। और तेरे?"
"माँझे में;—यहाँ कहाँ रहती है?"
"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।"
"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है।"

परस्पर लगाव का उदय

इतने में दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—"तेरी कुड़माई हो गई है?" इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर "धत्" कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, या दूधवाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीने भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—"तेरी कुड़माई हो गई?" और उत्तर में वही "धत्" मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली—"हाँ, हो गई।"
"कब?"

लड़की की सगाई

"कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।[3]" लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाई, तब कहीं घर पहुँचा।

बम्बूकार्ट : तांगे की तरह की एक गाड़ी, नानीः नानी की गाली देते हैं, लड्डीवाले: हाथठेला वाले, बाछाः बादशाह, चितौनीः चेतावनी, सुथनः विशेष प्रकार का पायजामा, सलवार, कुड़माईः मँगनी, सगाई

टिप्पणी : 1 तांगे वालों की भाषा का रूप व्यंग्यात्मक शैली में.
2 पंजाबी तथा डोगरी भाषा की उक्तियाँ
3 लाल रंग का दुपट्टा, जो शादी या मांगलिक अवसरों पर पहना जाता है।

बोध प्रश्न

नोट: निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलाइये।

1 लड़का बार-बार पूछता था कि तेरी कुड़माई हो गयी? लड़की धत् कहकर भाग जाती थी। यह लड़की की किस मनःस्थिति को स्पष्ट करता है?
क) लज्जा
ख) क्रोध
ग) तिरस्कार

( )

2 जब लड़की कहती है कि उसकी कुड़माई हो गयी तो लड़का रास्ते भर जिस तरह की हरकतें करता है उसका कारण क्या है?
क) लड़का स्वभाव से शरारती है।
ख) लड़के के मन में लड़की के प्रति आसक्ति है।
ग) लड़के को घर जाने की बड़ी जल्दी थी।

( )

2

राम राम, यह भी कोई लड़ाई है? दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाने से दसगुना जाड़ा और मेह और बरफ़। ऊपर से पिंडलियों तक कीच में धंसे हुए हैं। **गनीम** कहीं दिखता नहीं, घण्टे दो घण्टे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल पड़ती है। इस **गैबी** गोले से बचे तो कोई लड़े। **नगरकोट**[1] का **ज़लज़ला** सुना था, यहाँ दिन में पच्चीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक के बाहर साफ़ा या कुहनी निकल गई, तो चटाक-से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लिपटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

वर्ष 1915 के आसपास की घटना।

"लहनासिंह तीन दिन और हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिए। परसों **'रिलीफ़'** आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों **झटका** करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उस फिरंगी मेम के बाग में मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, "तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।"

इंग्लैंड की महिला का कथन उद्धृत

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े...संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था।"

"पीछे जनरल साहब ने हट आने का **कमान** दिया, नहीं तो"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?" सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या **नायब** के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा।"

"सूबेदार जी, सच है।" लहनासिंह बोला—"पर करें क्या? हड्डियों में जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से *चम्बे की बावलियों* के-से सोते झर रहे हैं[2]। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

लहनासिंह के लड़ने का उत्साह

"उदमी उठ, **सिगड़ी** में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। लहनासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे पर पहरा बदल दे।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे। वजीरासिंह पल्टन का विदूषक था। बाल्टी में गंदा पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं **पाधा** बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

"लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथों में देकर कहा—"अपनी **बाड़ी** के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

किसानी मनोवृत्ति

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस **गुमा** ज़मीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"**लाड़ी** होरां को भी यहाँ बुला लोगे! या वही दूध पिलानेवाली फिरंगी मेम..."

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट पीने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ, तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब *बोधासिंह* कैसा है?"
"अच्छा है।"

सूबेदार हजारासिंह का बेटा

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख़्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न **माँदे** पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और 'निमोनिया' से मरनेवालों को **मुरब्बे** नहीं मिला करते।"

बोधासिंह के प्रति व्यवहार

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ में लगाए हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

लहनासिंह का किसानी सपना

वजीरासिंह ने **त्योरी चढ़ाकर** कहा—"क्या मरने-मारने की बात लगाई है? मरें जर्मन और तुरक!"

"हाँ भाइयो, कुछ गाओ।"

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएँगे, पर सारी खन्दक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते हों।

गनीमः शत्रु, गैबीः गैब या अज्ञात स्थान से आने वाले, जलज़लाः भूकंप, रिलीफ़ः सहायता (कुमुक), झटकाः एक झटके से पशु को मारना, कमानः अंग्रेजी 'कमाण्ड' हुक्म, नायबः सहायक (सेना का एक पद), सिगड़ीः अँगीठी, पाधाः पुरोहित, बाड़ीः बगीची, गुमाः जमीन की माप, लाड़ीः दुलहन, माँदेः बीमार, मुरब्बेः अरबी शब्द मुरब्बअ • वर्गाकार चौकोर जगह, त्योरी चढ़ाकरः मुहावरा—क्रोधित होकर,

1. नगरकोटः काँगड़ा (हि.प्र.) का पुराना नाम। काँगड़ा में सन् 1905 में इतना भयंकर भूकंप आया था कि सारी घाटी उजड़ गयी थी।
2. हिमाचल प्रदेश के चंबा जिले का संदर्भ, जहाँ पीने के पानी का एकमात्र स्रोत बावड़ियाँ थी।

बोध प्रश्न

3 भारतीय सैनिक किस देश की ओर से लड़ाई में शामिल हुए थे?
   क) जर्मनी
   ख) इंगलैंड
   ग) भारत   (   )

4 पाठ का कौन-सा अंश ऊपर के कथन को स्पष्ट करता है।

....

....

3

हजारासिंह का बेटा बोधासिंह बीमार, लहनासिंह द्वारा उसकी सेवा

दो पहर रात बीत गई है, अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और दो **बरानकोट**[1] ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"
"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—"कहो कैसे हो!"
पानी पीकर बोधा बोला—"कँपकँपी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं!"

"मेरी जरसी पहन लो।"
"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है, मुझे गरमी लगती है; पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए—"

"हाँ याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत में मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें!" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।
"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और खाकी कोट और जीन का कुरता-भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

कहानी में नया सूत्र

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई—"सूबेदार हजारासिंह!"

"कौन? लपटन साहब? हुकुम हजूर," कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

लड़ाई की भूमिका

"देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें 50 से ज्यादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़ कर सब को साथ ले, उनसे मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म!"

कुछ सैनिकों का प्रस्थान

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी **हुज्जत** हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

"लो, तुम भी पियो।"

लहनासिंह का संदेह

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—"लाओ, साहब।" हाथ आगे करते ही सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गए?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है। लहनासिंह ने जाँचना चाहा! लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजीमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जाएँगे?"

हुज्जतः कहा-सुनी, तकरार, आँख मारते-फिरतेः पलक झपकते (क्षण भर में)

1 बरानकोटः ओवरकोट जो सिपाहियों को मिलता है।

लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?"

लहनासिंह की सूझ

ाहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने ो थे-"हाँ, हाँ—वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने रह गया था?" "बेशक पाजी कहीं का"—"सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और पको एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में से निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मज़ा है। क्यों साहब, शिमले तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगाएँगे।" "हाँ, पर मैंने वह लायत भेज दिया।"—"ऐसे बड़े-बड़े सींग। दो-दो फुट के तो होंगे!"

ाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

ोता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ।" कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था और उसने पट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

ंरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

ौन? वजीरासिंह?"

ाँ, क्यों लहना? क्या कयामत आ गई? जरा तो आँख लगने दी होती?"

ा प्रश्न

लहनासिंह लपटन साहब से शिकार वाले प्रसंग की चर्चा क्यों करता है।
क) लहनासिंह लपटन साहब से अपनी निकट संबंध की याद दिलाना चाहता है।
ख) लहनासिंह को लपटन साहब पर जर्मन जासूस होने का संदेह हो गया है।
ग) लहनासिंह समय गुजारने के लिए बात कर रहा है। ( )

लपटन साहब वाले प्रसंग में लहनासिंह के चरित्र की किस विशेषता का पता चलता है।
क) मूर्खता
ख) चापलूसी
ग) बातूनी
घ) तुरंत बुद्धि ( )

4

लहनासिंह और वजीरासिंह अपनी खंदक में

ा में आओ! कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है!"

ा?"

संदेह की पुष्टि

पटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने उसका मुँह देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं; सोहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

अब?"

ब मारे गए। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में ा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार हो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ, पत्ता तक न खड़के, त करो।"

म तो यह है कि यहीं"

ी-तैसी हुक्म की। मेरा हुक्म—जमादार लहनासिंह का, जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुक्म है। मैं न साहब की खबर लेता हूँ।"

यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

ठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले ले। तीनों को ज़गह-जगह पर खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत क गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ एक दियासलाई गुत्थी पर रखने ....

जर्मन जासूस का पकड़ा जाना

ती की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब "आह! माई गॉड," कहते हुए हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

गदहा, खानसामा: रसोइया, सोहरा: ससुर (एक गाली)

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत-सी बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख के आये? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाँच लफज भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेब में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो; पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुर्की मौलवी[1] मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने की ताबीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी की बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जाएँगे, तो गौ-हत्या बंद कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हू राम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो·······।"

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हेनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की *कपालक्रिया*[2] कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—"क्या है?"

बोधा के प्रति लहनासिंह का अनुराग

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि "एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया," औरों से सब हाल कह दिया, बन्दूकें लेकर सब तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधी। घाव माँस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया।

जर्मन सैनिकों का हमला

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका, दूसरे को रोका पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुस आते थे। थोड़े से मिनटों में वे·················

अचानक आवाज आयी, "वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरु जी दा खालसा!" और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

भारतीय सैनिकों का जवाबी हमला और जीत

एक किलकारी और— *"अकाली सिक्खां दी फौज आई। वाह गुरु जी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा!! सत सिरि अकाल पुरुष!!!"* और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पंद्रह के प्राण गये। सूबेदार के कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसके घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और *बाकी का साफा*[3] कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव लगा है।

लहनासिंह का घायल होना

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ "क्षयी" नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी, जैसे कि बाणभट्ट की भाषा में *"दन्तवीणोपदेशाचार्य"*[4], कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार, लहनासिंह से सारा हाल सुन, और कागजात पाकर उसकी तुरन्त-बुद्धि को सराह रहे थे, और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मर जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट डाक्टर और बीमार ढोने की दो गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अंदर-अंदर वहाँ आ पहुँची। *फील्ड अस्पताल*[5] नज़दीक था। सुबह होते-होते पहुँच जाएँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही; पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जायेगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है, इस गाड़ी में चले आओ।"

"और तुम?"

बड़: वटवृक्ष, मंजा: चारपाई, हड़का:पागल,तक-तककर: निशाना देख-देखकर, खेत रहे: युद्ध में मरे (मुहावरा), पूर लिया: भर दिया, क्षयी: घटता हुआ चन्द्रमा, तुरन्त बुद्धि: शीघ्र निर्णय लेने वाली बुद्धि, बर्रा रहा था: बड़बड़ा रहा था।

1 तुर्की मौलवी के इस प्रसंग के संदर्भ में यह ध्यान रखें कि प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान तुर्की जर्मनी के पक्ष में था।
2 खोपड़ी फोड़ देना (हिंदुओं में शव के जलने पर बाँस से यह क्रिया की जाती है।)
3 साफे का कुछ भाग पहली बार जांघ पर लगी गोली के घाव पर बाँधा था, उसी साफे का शेष भाग अब लहनासिंह ने पसलियों के घाव पर बाँध लिया है।
4 दंतवीणा—एक प्रकार का वाद्य यंत्र; इसका दूसरा अर्थ है दाँत रूपी वीणा। यहाँ सर्दी के कारण दाँत बजने की ओर संकेत।
5 युद्धभूमि में सैनिकों के इलाज के लिए बना अस्थायी अस्पताल।

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ। वजीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला, आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो; सूबेदारनी होरॉं को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चलते-चलते लहना का हाथ पकड़ कर कहा—"तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तुम ही कह देना। उसने क्या कहा था?"

कहानी के महत्वपूर्ण संकेत सूत्र

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। "वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

बोध प्रश्न

7 लहनासिंह ने किन चार आधारों पर लपटन साहब की वास्तविकता का पता लगाया था।

क) ....

ख) ....

ग) ....

घ) ....

8 तुर्की मौलवी जर्मनी का प्रचार क्यों कर रहा था?

क) मौलवी को ब्रिटेन से घृणा थी।

ख) वह गरीब किसानों से पैसे ऐंठना चाहता था।

ग) प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की जर्मनी के पक्ष में था।

घ) क्योंकि वह मौलवी था।

5

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुंध बिलकुल उस पर से हट जाती है।

X X X X X X

फ्लैश बैक
लहनासिंह बीमार: अतीत की याद

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गई तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा "हाँ, कल हो गई। देखते नहीं, यह रेशम के फूलोंवाला सालू?" सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?[1]

"वजीरासिंह पानी पिला दे।"

किसान जीवन का हवाला

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं. 77 राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या को ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज **लाम** पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं, लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था, लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगा, तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला, "लहना, सूबेदारनी तुझको जानती है! बुलाती है, जा मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा? सूबेदारनी मुझे जानती है? कब से, रेजीमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर "मत्था टेकना" कहा, **असीस** सुनी। लहनासिंह चुप।

"मुझे पहचाना?"

"नहीं।"

लाम: युद्ध, असीस: आशीर्वाद

1 कहानी के आरंभिक सूत्र से कथा का विस्तार लहनासिंह ही कहानी के आरंभ का बालक है।

"तेरी कुड़माई हो गई। धत्...... कल हो गई...... देखते नहीं, रेशमी बूटों वाला सालू... अमृतसर में......"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा पानी पिला..... उसने कहा था।"

X X X X X X

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो **भाग फूट गए**। सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम **तीमियों की घँघरिया पलटन** क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती। एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी, "अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग। तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़ों की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना, यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

रोती-रोती सूबेदारनी **ओबरी** में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिंह पानी पिला..... उसने कहा था।"

लहना का सिर अपनी गोदी में रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आधे घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

"कौन? कीरतसिंह?"

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, "हाँ।"

"भइया, मुझे कुछ ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।"

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अबके हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने मैंने इसे लगाया था।"

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

X X X X X X

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और बेलजियम-68वीं सूची—मैदान में घावों से मरा-नं. 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

भाग फूट गए: बुरे दिन आ गए (मुहावरा), तीमियों की: स्त्रियों की, ओबरी: कोठरी

बोध प्रश्न

9 कहानी के भाग चार के पैरा "बोधा गाड़ी पर चढ़ गया" .... को ध्यान से पढ़िए और बताइए कि उसका भाग पाँच के किस पैरा से अर्थ स्पष्ट होता है।

....

....

....

....

10 लहनासिंह ने सूबेदारनी के वचन का पालन क्यों किया?

क) वह वचन का पक्का था।

ख) सूबेदार उसका अफसर था।

ग) सूबेदारनी के प्रति बचपन का लगाव उसके मन में अब भी जीवित था।

[ ]

11 सूबेदार और उसका बेटा लड़ाई में क्यों गये?

....

....

12 लहनासिंह का सपना क्या था?

....

....

13 सूबेदार हजारासिंह के बेटे का क्या नाम है?

....

4.3 कहानी का सार

कहानी का प्रारंभ अमृतसर नगर के चौक बाज़ार में एक आठ वर्षीय सिख बालिका तथा एक बारह वर्षीय सिख बालक के बीच छोटे से वार्तालाप से होता है। दोनों ही बालक-बालिका अपने-अपने मामा के यहाँ आए हुए थे। बालिका व बालक दोनों सामान खरीदने बाज़ार आए थे कि बालक मुस्कराकर बालिका से पूछता है "क्या तेरी कुड़माई (सगाई) हो गई।" इस पर बालिका कुछ आँखें चढ़ाकर "धत्" कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह-देखता रह गया। ये दोनों बालक-बालिका दूसरे-तीसरे दिन एक दूसरे से कभी किसी दूकान पर कभी कहीं टकरा जाते और वही प्रश्न और वही उत्तर। एक दिन ऐसा हुआ कि बालक ने वही प्रश्न पूछा और बालिका ने उसका उत्तर लड़के की संभावना के विरुद्ध दिया और बोली—"हाँ, हो गई।" इस अप्रत्याशित उत्तर को सुनकर लड़का चौंक पड़ता है और पूछता है "कब"? जिसके प्रत्युत्तर में लड़की कहती है—"कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।" और यह कह कर वह भाग जाती है। परंतु लड़के के ऊपर मानो वज्रपात होता है और वह किसी को नाली में धकेलता है, किसी छावड़ी वाले की छावड़ी गिरा देता है, किसी कुत्ते को पत्थर मारता है, किसी सब्ज़ी वाले के ठेले में दूध उँडेल देता है और किसी सामने आती हुई वैष्णवी से टक्कर मार देता है और गाली खाता है। कहानी का पहला भाग यहीं नाटकीय ढंग से समाप्त हो जाता है। इस बालक का नाम था लहनासिंह और यही बालिका बाद में सूबेदारनी के रूप में हमारे सामने आती है।

इस घटना के पच्चीस वर्ष पश्चात् कहानी का दूसरा भाग शुरु होता है। लहनासिंह युवा हो गया और जर्मनी की लड़ाई में लड़ने जाने वाले सैनिकों में भर्ती हो गया और अब वह नंबर 77 राइफल्स में जमादार है। एक बार वह सात दिन की छुट्टी लेकर अपनी जमीन के किसी मुकदमे की पैरवी करने घर आया हुआ था। वहीं उसे अपने रेजीमेंट के अफसर की चिट्ठी मिलती है कि फौज को लाम पर जाना है, फौरन चले आओ। इसी के साथ सेना के सूबेदार हज़ारासिंह का भी चिट्ठी मिलती है कि उसे और उसके बेटे बोधासिंह दोनों को लाम पर जाना है अतः वे साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव, रास्ते में पड़ता था और वह लहनासिंह को चाहता भी बहुत था। लहनासिंह सूबेदार के घर पहुँच गया। जब तीनों चलने लगे तब, अचानक सूबेदार लहनासिंह से कहता है कि उसकी पत्नी सूबेदारनी उसे जानती है और वह उसे बुला रही है। लहनासिंह को आश्चर्य होता है कि सेना के क्वार्टरों में तो वह कभी रही नहीं। पर जब अन्दर मिलने जाता है तब सूबेदारनी उसे "कुड़माई हो गई" वाला वाक्य दोहरा कर 25 वर्ष पहले की घटना का स्मरण दिलाती है और कहती है कि जिस तरह उस समय उसने एक बार घोड़े की लातों से उसकी रक्षा की थी, उसी प्रकार उसके पति और एकमात्र पुत्र की भी वह रक्षा करे। वह उसके आगे अपना आँचल पसार कर भिक्षा माँगती है। यह बात लहनासिंह के मर्म को छू जाती है।

युद्ध भूमि पर उसने सूबेदारनी के बेटे बोधासिंह को, अपने प्राणों की चिन्ता न करके, जान बचाई। पर इस कोशिश में वह स्वयं घातक रूप से घायल हो गया। उसने अपने घाव पर बिना किसी से कहे कस कर पट्टी बाँध ली और इसी अवस्था में जर्मन सैनिकों का मुकाबला करता रहा। शत्रुपक्ष की पराजय के बाद उसने सूबेदारनी के पति सूबेदार हजारासिंह और उसके पुत्र बोधासिंह को गाड़ी में सकुशल बैठा दिया और चलते हुए कहा "सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था वह मैंने कर दिया.........." सूबेदार पूछता ही रह गया उसने क्या कहा था कि गाड़ी चल दी। बाद में उसने वजीरा से पानी माँगा और कमरबन्द खोलने को कहा, क्योंकि वह खून से तर था। मृत्यु सन्निकट होने पर जीवन की सारी घटनाएँ, चल-चित्र के समान घूम गई। और अंतिम वाक्य जो उसके मुँह से निकला वह था, "उसने कहा था"। इसके बाद अखबारों में छपा कि "फ्रांस और बेल्जियम-68 सूची—मैदान में, घावों से मरा नं. 77 सिक्ख राइफल्स जमादार लहना सिंह।" इस प्रकार अपनी बचपन की छोटी सी मुलाकात में हुए परिचय के कारण, उसके मन में सूबेदारनी के प्रति जो प्रेम उदित हुआ था उसके कारण ही उसने सूबेदारनी के द्वारा कहे गये वाक्यों को स्मरण रख उसके पति व पुत्र की रक्षा करने में, अपनी जान दे दी क्यों कि यह उसने कहा था।

4.4 संदर्भ सहित व्याख्या

किसी भी साहित्यिक रचना में कुछ पंक्तियाँ ऐसी अवश्य होती हैं जो उस रचना के केंद्रीय भाव को स्पष्ट करने में अधिक मददगार होती है। कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी होती हैं जिनमें लेखक भाव या विचार को गुंफित रूप में प्रस्तुत करता है, जिन्हें अधिक व्याख्यायित करने की आवश्यकता होती है। ऐसी पंक्तियाँ भी होती हैं, जो भाषा या शिल्पगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती हैं। इस तरह की पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या से उस विशिष्ट रचना को समझने में मदद मिलती है।

'उसने कहा था' कहानी की ऐसी ही कुछ महत्वपूर्ण पंक्तियों की व्याख्या उदाहरण के रूप में यहाँ दे रहे हैं।

उद्धरण : 1

चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ 'उसने कहा था' कहानी से ली गई हैं। इस कहानी के लेखक श्री चंद्रधर गुलेरी हैं। इंग्लैंड की ओर से जर्मनी के विरुद्ध लड़ने के लिए गई भारतीय फौज में लहनासिंह भी है जो मोर्चे पर लड़ाई का इंतजार करते-करते उकता गया है और चाहता है कि जल्दी लड़ाई शुरू हो ताकि इस ऊब से मुक्ति मिले। इसी उकताहट में लहनासिंह ये पंक्तियाँ कहता है।

व्याख्या : चार दिन से एक पल को भी सो नहीं पाया। अगर ऐसे ही यहाँ पड़े रहे तो क्या लाभ। क्योंकि जिस तरह बिना दौड़े घोड़ा बिगड़ जाता है यानी काम का नहीं रहता, उसी तरह लड़ाई के बिना सैनिक भी बिगड़ जाता है अर्थात् उसका उत्साह खत्म होने लगता है। इसलिए हमारी आदतें बिगाड़ने से अच्छा है हमें आगे बढ़ने और जर्मनों पर हमला करने का आदेश दे दिया जाय। तब आप मेरी वीरता देखिए। अगर मैं अकेला सात जर्मन सैनिकों को मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब (स्वर्ण मंदिर, अमृतसर) का दर्शन करने का अवसर प्राप्त न हो।

विशेष :

1 'उसने कहा था' न केवल गुलेरी जा की वरन् हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। प्रेम, शौर्य और त्याग जैसे आदर्शों पर टिकी इस कहानी में लहनासिंह के चरित्र द्वारा भारतीय किसान की जीवटता, साहस, बुद्धिमानी और कर्तव्यपरायणता को दर्शाया गया है।

2 लहनासिंह एक किसान है और किसान की भाषा में देशज शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग अधिक होता है और वह विशेषता हम यहाँ भी देख सकते हैं।

3 कहानी की भाषा में पंजाबी प्रभाव है।

4 बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही यह लोकोक्ति है जो लहनासिंह के मनोभाव को प्रकट करने में पूरी तरह समर्थ है।

उद्धरण : 2

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ ''क्षयी'' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी, जैसे कि बाणभट्ट की भाषा में ''दंतवीणोपदेशाचार्य'' कहलाती।

संदर्भ : उपर्युक्त पंक्तियाँ पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' से उद्धृत की गयी है। जर्मन सैनिकों द्वारा धोखे से हमला किए जाने पर लहनासिंह और उसके साथी सैनिक उनका डटकर मुकाबला करते हैं। लहनासिंह इस लड़ाई में घायल हो जाता है। इसी प्रसंग में कवि ने रात के दृश्य का वर्णन किया है।

व्याख्या : लड़ाई के दौरान आकाश में चंद्रमा निकला हुआ था। कृष्ण पक्ष की रात थी। कृष्ण पक्ष में चंद्रमा की कलाएँ घटती रहती हैं इसलिए संस्कृत काव्य में उसे 'क्षयी' कहा गया है अर्थात् जो लगातार घटता जाए। तेज हवा चल रही थी, ऐसी हवा जिसमें ठंड के कारण दांत बजने लगें। संस्कृत कवि बाणभट्ट की भाषा में इस हवा को 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहा जा सकता है अर्थात् दंतवीणा का उपदेश देने वाला आचार्य।

विशेष :

1 पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी संस्कृत के विद्वान थे। यहाँ उसी का प्रभाव नज़र आता है। ''क्षयी'' और ''दंतवीणोपदेशाचार्य'' उनके संस्कृत साहित्य के गहरे अध्ययन को बताता है।

2 दंतवीणा एक प्रकार का वाद्ययंत्र है। इसका दूसरा अर्थ है दंतरूपी वीणा। यहाँ सर्दी के कारण दाँत बजने की ओर संकेत है।

3 बाणभट्ट, जिन्होंने 'कादंबरी' और 'हर्षचरित' की रचना की थी, संस्कृत के महान् रचनाकार थे।

4 यहाँ प्रकृति का वर्णन किया गया है।

अभ्यास

इस तरह हमने यहाँ दो उद्धरणों की संदर्भ सहित व्याख्या दी है। आप इस तरह की कई पंक्तियाँ और सूक्तियाँ कहानी से चुन सकते हैं और उनकी व्याख्या स्वयं कर सकते हैं।

1 निम्नलिखित पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए। आपकी सहायता के लिए नीचे संकेत भी दिये गये हैं।

i) **'निमोनिया' से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।**

संदर्भ : (कहानी और लेखक के नाम का उल्लेख)

....

....

युद्ध के मोर्चे पर—लहनासिंह का बोधासिंह के प्रति व्यवहार

....

दार हजारासिंह का कथन

....

....

ख्या : युद्ध का सैनिक के लिए महत्त्व

....

....

के मोर्चे की स्थिति

....

....

कार

"
....

....

ष : 1 भाषा : मुरब्बे शब्द का अर्थ

....

....

2 लहनासिंह के संदर्भ में उक्त कथन का अर्थ

....

....

के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुंध बिलकुल उस पर से हट जाती है।

र्भ : पहले उद्धरणों में दिये गये संदर्भों के अनुसार

....

....

में लहनासिंह का घायल होना और मौत की तरफ़ बढ़ना

....

....

ीत की यादें

....

....

ख्या : मृत्यु

....

....

ात की यादें

....

....

ासिंह की मृत्यु

....

....

अतीत की यादें

....

....

विशेष : 1 संरचना-फ्लेश बैक

....

2 कहानी की पराकाष्ठा

....

....

3 भाषा-परिनिष्ठित हिंदी

....

....

4.5 सारांश

आपने 'उसने कहा था' कहानी का वाचन ध्यान से किया होगा। आपने अच्छी तरह से समझ लिया होगा कि कहानीकार इस कहानी में क्या कहना चाहता है। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी के घटना चक्र का वर्णन कर सकते हैं। यह बता सकते हैं कि कहानी की पृष्ठभूमि क्या है। लहनासिंह अपने प्राण क्यों दे देता है? सूबेदारनी लहनासिंह से क्या अपेक्षा करती है और वह कैसे उस अपेक्षा पर खरा उतरता है?
- कहानी में आए कठिन शब्दों के अर्थ बता सकते हैं। कहानी में आये मुहावरों व लोकोक्तियों को पहचान सकते हैं और उनका अर्थ कर सकते हैं।
- कहानी में प्रस्तुत कथा को अपने शब्दों में लिख सकते हैं। यह बता सकते हैं कि कैसे लहनासिंह और सूबेदारनी के बीच बचपन में संबंध पनपे थे? सूबेदारनी ने लहनासिंह से क्या कहा था? युद्ध के मोर्चे पर लहनासिंह ने क्या किया? उसकी मृत्यु कैसे हुई और उसने सूबेदारनी की बात का कैसे पालन किया?
- कहानी के कुछ अंशों की अपने शब्दों में व्याख्या कर सकते हैं तथा उनकी शिल्पगत विशेषताएँ बता सकते हैं।

4.6 उपयोगी पुस्तकें

कपूर, मस्तराम : **चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'**; साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

मदान, इंद्रनाथ : **हिंदी कहानी : पहचान और परख,** लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली

4.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 क) 2 ख)

3 ख)

4 कहानी के भाग दो का निम्नलिखित अंश :

उस फिरंगी मेम के बाग में मखमल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।

5 ख) 6 घ)

7 क) जगाधरी जिले में नील गाय का देखा जाना

ख) खानसामा अब्दुला द्वारा मंदिर में जल चढ़ाना

ग) अंग्रेज अफसर द्वारा खोते की सवारी

घ) सिख द्वारा सिगरेट पीना

8 ग)

9 भाग पाँच का निम्नलिखित अंश.
मैंने तेरे को आते ही......................आँचल पसारती हूँ।

10 ग)

11 सूबेदार को अंग्रेज सरकार से बहादुरी का खिताब और ज़मीन जायदाद मिली थी, उन्हें इसके बदले में अपनी वफादारी बतानी थी?

12 लहनासिंह का सपना था कि उसका अपने गाँव में बाग हो जिसमें खरबूजे और आम फूले-फले, जिसे वह अपने भतीजे के साथ खाए।

13 बोधासिंह

अभ्यास

1 एवं 2 की व्याख्या स्वयं लिखिए और इकाई 4 एवं 5 पढ़कर अपने उत्तरों की जाँच कीजिए

इकाई 5 'उसने कहा था': विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 कथावस्तु

- 5.2.1 कथा का आरंभ
- 5.2.2 कथा का विकास
- 5.2.3 कथा का अंत

5.3 चरित्र-चित्रण

- 5.3.1 लहनासिंह
- 5.3.2 सूबेदारनी

5.4 परिवेश

5.5 संरचना शिल्प

- 5.5.1 शैली
- 5.5.2 भाषा और संवाद

5.6 मूल्यांकन

- 5.6.1 रचनाकार की दृष्टि और कहानी का प्रतिपाद्य
- 5.6.2 शीर्षक की उपयुक्तता

5.7 सारांश

5.8 उपयोगी पुस्तकें

5.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

आपने पिछली इकाई में 'उसने कहा था' कहानी का वाचन किया इससे आपको कहानी को समझने में काफी मदद मिली होगी। इस इकाई में हम कहानी को उसके तत्वों के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे और इस विश्लेषण के द्वारा कथावस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे;
- कहानी की परिवेशगत पृष्ठभूमि की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी की भाषागत विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी की शिल्पगत विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी के प्रतिपाद्य और कहानीकार की दृष्टि का विश्लेषण कर सकेंगे;
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता का निर्णय कर सकेंगे; और
- उपर्युक्त सभी विशेषताओं के आधार पर कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' को आपने इकाई 4 में ध्यानपूर्वक पढ़ा है। इससे आपको स्पष्ट हो गया होगा कि कहानीकार कहानी में क्या कहना चाहता है। जो वह कहना चाहता है उसके लिए वह एक कथा का निर्माण करता है। यह कथा निश्चय ही काल्पनिक है लेकिन इस कथा की पृष्ठभूमि वास्तविक है। कथा के पात्र काल्पनिक हैं लेकिन उनकी मनोदशा और भावनात्मक संबंध वास्तविक हैं। वस्तुतः कहानीकार एक काल्पनिक कथा और पात्रों द्वारा वास्तविक जीवन के ही संबंधों और संघर्षों को प्रस्तुत करता है। गुलेरी जी ने यही काम इस कहानी में किया है। स्पष्ट ही, इसे करने के लिए उन्होंने कहानी का जो विन्यास चुना है उसे समझे और विश्लेषित किये बिना हमारे सामने कहानी की सारी विशेषताएँ नहीं आ सकतीं। इस इकाई में हम कहानी का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं। जैसा कि इकाई 3 में बताया जा चुका है किसी भी कहानी में कोई एक घटना या कुछ घटनाएँ होती हैं। घटनाओं का विकास ही कहानी की **कथावस्तु** का निर्माण करता है। लेकिन ये घटनाएँ कुछ लोगों अर्थात् कहानी के पात्रों के जीवन में घटित होती हैं, जिनके संस्कार, विवेक, शिक्षा और परिस्थितियाँ उन घटनाओं को प्रभावित करती हैं। पात्रों की इस भूमिका अर्थात् **चरित्र** का विश्लेषण भी कहानी को समझने में सहायक होता है। प्रत्येक घटना किसी विशेष देश-काल में घटित होती है। घटनाओं के एक विशेष रूप में तथा पात्रों के व्यक्तित्व के

निर्माण में उनके देशकाल का भी प्रभाव होता है। इसे ही हम परिवेश कहते हैं। इसी तरह कहानीकार का दृष्टिकोण भाषा और कहानी की शिल्पगत विशेषताएँ कहानी की संरचना को निर्धारित करने में सहायक होती है। अंत में कहानी के उद्देश्य, रचनाकार की दृष्टि आदि पर विचार होगा। इस प्रकार 'उसने कहा था' का विश्लेषण हम इस इकाई में निम्नलिखित तत्वों के आधार पर करेंगे:

i) कथावस्तु
ii) चरित्र चित्रण
iii) परिवेश
iv) संरचना शिल्प
v) प्रतिपाद्य

5.2 कथावस्तु

'उसने कहा था' प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी गयी कहानी है। गुलेरी जी ने लहनासिंह और सूबेदारनी के माध्यम से मानवीय संबंधों का नया रूप प्रस्तुत किया है। आइए, सबसे पहले कहानी में वर्णित घटनाओं का विश्लेषण करें।

5.2.1 कथा का आरंभ

'उसने कहा था' कहानी का आरंभ अमृतसर के एक बाजार से होता है। समय है 19वीं शताब्दी का अंतिम दशक, संभवतः 1890 के आसपास। 12 वर्षीय लड़का और 8 वर्षीय लड़की की मुलाकात होती है। दोनों सिख हैं। लड़का लड़की से पूछता है — "तेरी कुड़माई हो गई"। लड़की "धत्" कहती है और भाग जाती है। दोनों बालकों में थोड़ा परिचय भी हो जाता है। मिलने का यह सिलसिला लगभग एक माह तक चलता रहता है। लड़का हर बार उसी तरह पूछता है, "तेरी कुड़माई हो गई", लड़की जवाब देती है। "धत्"। इस पूछने और बताने में ही उनके बीच एक अनकहा मधुर संबंध आकार लेने लगता है, जिसे अपनी अल्पवय के कारण दोनों ही नहीं जान पाते। एक दिन इसी तरह मिलने पर जब लड़का कुड़माई के बारे में पूछता है तो लड़की विश्वास पूर्वक जवाब देती है कि "हाँ, हो गई।" लड़के को लड़की के इस उत्तर से आघात लगता है। वह इसे ठीक-ठाक समझ नहीं पाता किंतु उसकी मनोदशा बदल जाती है और वह गुस्से में अपने रास्ते में आने वालों से जबरदस्ती झगड़ पड़ता है।

कहानी का पहला भाग यहीं समाप्त हो जाता है। यहाँ तक कहानीकार दो किशोरवय की ओर बढ़ते बच्चों के स्नेह संबंध का चित्र प्रस्तुत करता है। कहानीकार कहानी के इस अंश को यहीं छोड़ देता है।

कहानी का दूसरा भाग इस घटना के लगभग पच्चीस वर्ष बाद की घटनाओं से संबंधित है। प्रथम विश्वयुद्ध का काल। फ्रांस में भारतीय सैनिक इंग्लैंड की ओर से जर्मनी के विरुद्ध लड़ने के लिए तैनात किये गये हैं। इनमें लहनासिंह भी है। आगे की घटनाओं से मालूम पड़ता है कि लहनासिंह वही है जो पहले भाग में बालक के रूप में मौजूद था। किंतु कहानीकार इस बात का खुलासा जल्दी नहीं करता वरन् दूसरे भाग से कहानी बिल्कुल नये धरातल पर आगे बढ़ती है।

युद्ध के मोर्चे पर डटे सिपाही खन्दक में पड़े-पड़े उकता गये हैं। इनमें सूबेदार हजारासिंह है, उनका बेटा बोधासिंह है, लहनासिंह है। इसके अलावा भी कई सिपाही हैं। लहनासिंह चाहता है कि इस तरह पड़े रहने से अच्छा है, जल्दी से जल्दी लड़ाई शुरु हो, चाहे इसके लिए हमें स्वंय ही जमर्न फौज पर हमला क्यों न करना पड़े। लहनासिंह का यह उतावलापन जहाँ उसके साहस को दिखाता है; वहीं उकताहट की स्थिति को भी बताता है। हजारासिंह का बेटा बोधासिंह बीमार है। लहनासिंह उसका काफी ध्यान रखता है और उसकी देखभाल करता है।

यहाँ हमें अभी मालूम नहीं है कि लहनासिंह उसका इतना ध्यान क्यों रखता है। सिपाहियों की आपसी बातचीत से हमें यह मालूम पड़ता है कि ये सिपाही जो मूलतः किसान परिवार के हैं, इनके सपने भी किसानी जीवन से जुड़े हैं। लहनासिंह की आकांक्षा है कि युद्ध खत्म होने के बाद वह अपने आम के बगीचे में अपने भतीजे कीरतसिंह के साथ सुख-चैन से रहे।

5.2.2 कथा का विकास

सैनिकों की इस आपसी बातचीत के साथ कहानी का दूसरा भाग खत्म हो जाता है। तीसरे भाग में कहानी फिर एक नया मोड़ लेती है। यहाँ हम देख सकते हैं कि पहले दो भाग केवल कहानी की पृष्ठभूमि और उसके पात्रों के परिचय से संबंधित थे। तीसरे भाग में कथावस्तु का विकास होता है। यहाँ लपटन साहब नाम के एक नये पात्र का प्रवेश होता है जो हजारासिंह को आदेश देता है कि वह एक मील आगे पचास जर्मन सैनिकों की टुकड़ी पर धावा बोले और इसके लिए वह दस सैनिकों को छोड़कर शेष सभी को अपने साथ ले जाए। बोधासिंह की बीमारी के कारण सूबेदार की इच्छा समझकर लहनासिंह वहीं रह जाता है। इसी दौरान लहनासिंह लपटन साहब से बात करने लगता है और इस बातचीत से लहनासिंह तत्काल समझ जाता है कि यह अंग्रेज अफसर नहीं वरन् कोई जर्मन जासूस है।

इस नाटकीय मोड़ पर कहानी का यह भाग यहीं समाप्त हो जाता है। नये भाग में लहनासिंह अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए तत्काल एक सिपाही को हजारासिंह के पास भेजता है और खुद उस जर्मन को काबू में करता है। लेकिन इस दौरान उस

जर्मन की पिस्तौल से निकली गोली लहनासिंह की जांघ पर लगती है। बोधासिंह पिस्तौल की आवाज से पूछता है "व हुआ?" लेकिन लहनासिंह उसे वास्तविकता नहीं बताता।

इसी समय सत्तर जर्मन उस खाई पर हमला कर देते हैं। लहनासिंह वीरतापूर्वक उनका सामना करता है। तभी हजारासिंह की टुकड़ी भी वहाँ पहुँच जाती है और इस तरह दो तरफ से घिर जाने के कारण जर्मन सैनिकों का सफाया हो जाता है। इस लड़ाई में लहनासिंह को एक गोली पसली में भी लगती है। वह अपना यह घाव हजारासिंह व बोधासिंह से छुपाता है।

जब उनकी सहायता के लिए डाक्टर और बीमार ढोने वाली गाड़ियाँ पहुँचती हैं तो एक बार फिर लहनासिंह गंभीर रूप से घायल होने के बावजूद खुद न जाकर हजारासिंह और बोधासिंह को भेज देता है। यहाँ लहनासिंह सूबेदार से कहता है, "सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे उन्होंने जो कहा था, वह मैंने कर दिया।" यहाँ कहानी का चौथा भाग खत्म होता है।

कहानी के अंतिम भाग पर पहुँचने से पहले अब हम कथावस्तु के अब तक के विकास पर विचार कर सकते हैं। यहाँ तक हमारे सामने दो घटनाएँ आती हैं। एक, दो बालकों की कथा और दूसरी, युद्ध मोर्चे पर एक सैनिक और उसके साथियों की कथा। जब कहानी का पहला भाग खत्म होता है तब हमारे मन में सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है। कि उन दोनों बालकों का क्या हुआ। क्या उनके बीच वे मधुर संबंध समाप्त हो गये। क्या उनका मिलन हुआ या वे फिर कभी नहीं मिल सके। कहानीकार हमारी इन जिज्ञासाओं का कोई उत्तर नहीं देता बल्कि एक नयी कहानी छेड़ देता है — लहनासिंह की कहानी। लेकिन यहाँ फिर कई प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं। लहनासिंह और हजारासिंह का क्या संबंध है। लहनासिंह क्यों बोधासिंह की इतनी देखभाल कर रहा है। वह क्यों चाहता है कि हजारासिंह और बोधासिंह अस्पताल पहुँच जाएं। वह अपने घायल होने को क्यों छुपाता है और अंत में जब वह सूबेदार से कहता है कि सूबेदारनी से कह देना कि जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया तो उसके इस कथन का क्या तात्पर्य है। सूबेदारनी से लहनासिंह का क्या संबंध है और उसने लहनासिंह को क्या कहा था। इस तरह यहाँ तक आते-आते कहानी एक ऐसे बिंदु पर पहुँच जाती है जहाँ पाठकों में "कहानी में आगे क्या होगा?" को लेकर तीव्र जिज्ञासा पैदा हो जाती है। निश्चय ही ऐसी जिज्ञासा पैदा करना कहानीकार की कथावस्तु पर जबर्दस्त पकड़ का ही प्रदर्शन करना है।

5.2.3 कथा की परिणति या अंत

कहानी का पाँचवां और अंतिम भाग, कथा का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है। लहनासिंह खाई में पड़ा है और अंतिम साँसें ले रहा है। उसके साथ उसका साथी वजीरासिंह है। उसे एक-एक कर अतीत की घटनाएँ याद आने लगती हैं। गुलेरीजी की कहानी का चरम उत्कर्ष यहाँ देख सकते हैं। फ्लैशबैक (पूर्वदीप्ति) शैली का प्रयोग करते हुए उन्होंने लहनासिंह के जीवन की पूर्व घटनाओं को पाठकों के सामने खोला है, लेकिन यहाँ अतीत और वर्तमान इस तरह घुले मिले हैं कि लगता है जैसे हम एक साथ दोनों को देख रहे हों।

सबसे पहले उसे बचपन की वह घटना याद आती है जब उसने अमृतसर के बाजार में एक लड़की से यह पूछा था — "तेरी कुड़माई हो गई" बचपन की यह स्मृति बचपन के साथ ही विलीन हो गई थी। लहनासिंह सब कुछ भूल चुका था। लेकिन पच्चीस साल बाद अकस्मात् "उसी लड़की" से लहनासिंह की मुलाकात होती है जो अब सूबेदार हजारासिंह की पत्नी है। लहनासिंह उसे पहचान नहीं पाता तब सूबेदारनी उसे वही कुड़माई वाली घटना याद दिलाती है और लहनासिंह को बचपन के वो दिन याद आ जाते हैं और उन दिनों के साथ जुड़ी वह लड़की भी जो अब सूबेदारनी है और एक जवान बेटे बोधासिंह की माँ है। सूबेदारनी का बचपन की उन स्मृतियों और लहनासिंह की सूरत को मन में संजोए रखना लहनासिंह के लिए विस्मयकारी अनुभव था।

इसके बाद लहनासिंह को सूबेदारनी के साथ हुई बात याद आती है। सूबेदारनी उसे याद दिलाती है कि बचपन में उसने एक बार अपनी जान जोखिम में डालकर उसे बचाया था। वह लहनासिंह से प्रार्थना करती है कि युद्ध के मोर्चे पर भी वह उसके पति और पुत्र की रक्षा करे। सूबेदारनी अपना आंचल पसारकर दोनों की प्राणरक्षा की भीख माँगती है।

सूबेदारनी की यह बातें ही युद्ध के मैदान में लहनासिंह के कार्यों को विशेष दिशा प्रदान करती हैं। सूबेदार हजारासिंह और उसके बेटे की सेवा के लिए हर समय तत्पर रहना और अंत में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना सूबेदारनी को दिये वचन का ही परिणाम था। निश्चय ही लहनासिंह के चरित्र का यह ऐसा पहलू है जिसे उद्घाटित करना ही कहानीकार का मुख्य ध्येय है और सारी कहानी इसी केंद्रीय भाव को व्यक्त करने के लिए रची गई है। लेकिन कहानी यहाँ समाप्त नहीं होती है। लहनासिंह और सूबेदारनी के अनोखे परंतु मानवीय प्रेम की इस कहानी का अंत अत्यंत कारुणिक होता है।

लहनासिंह मर जाता है। शायद बच सकता था अगर वह हजारासिंह और बोधासिंह को भेजने की बजाए खुद अस्पताल की गाड़ी से चला जाता क्योंकि उसकी दशा इन दोनों से ज्यादा खराब थी लेकिन अपने घावों को छुपाकर वह जबरन सूबेदार व बोधासिंह को भेज देता है। और खुद मरने के लिए पीछे छूट जाता है। अंत में वह मर भी जाता है। किंतु उसका यह प्रेम, शौर्य और त्याग इस योग्य भी नहीं समझा जाता कि उसे सम्मानित किया जाता। ब्रिटिश सेना के लिए लहनासिंह की मौत अत्यंत साधारण मौत है — "मैदान में घावों से मरा"। मालूम नहीं जिसके वचन के लिए सूबेदार हजारासिंह और उसके पुत्र को बचाने के लिए उसने ये किया, उसके त्याग की गाथा सूबेदारनी तक पहुंची भी या नहीं। इस तरह यह कहानी लहनासिंह के त्रासद अंत के साथ खत्म हो जाती है।

बोध प्रश्न

नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थान में लिखिये और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये उत्तरों से मिलाइए।

1 "सूबेदारनी का बचपन की स्मृतियों और लहनासिंह के चेहरे को मन में संजोये रखना लहनासिंह के लिए विस्मयकारी अनुभव था।" कहानी में इस बात को प्रमाणित करने वाला तथ्य कौन सा है, लिखिए।

....

....

....

....

2 क) लहनासिंह बोधासिंह की इतनी देखभाल क्यों करता है? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

ख) लहनासिंह के प्रति सूबेदारनी की भावना को दो पंक्तियों में व्यक्त कीजिए।

....

....

....

ग) अंतिम क्षणों में लहनासिंह के मन में कौन-सी दो बातें मंडराती रहीं।

i) ....

ii) ....

3 पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किस भाग में हुआ है।

क) पहले

ख) पाँचवें

ग) चौथे

घ) दूसरे

5.3 चरित्र चित्रण

लहनासिंह 'उसने कहा था' का नायक है। कहानी का सारा घटनाचक्र उसी के इर्द-गिर्द घूमता है। लेकिन इस चरित्र की संपूर्ण विशेषताओं को तभी समझा जा सकता है जब हम कहानी के कुछ और चरित्रों को समझें। इनमें सूबेदारनी, सूबेदार हजारासिंह और उसका बेटा बोधासिंह है। इसके अतिरिक्त वजीरासिंह, लपटन साहब आदि अन्य पात्र हैं। लेकिन ये गौण पात्र हैं। बोधासिंह के चरित्र पर भी विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है। यहाँ हम लहनासिंह और सूबेदारनी के चरित्र पर विचार करेंगे। इनके आधार पर आप शेष पात्रों के चरित्र का विश्लेषण भी कर सकते हैं।

5.3.1 लहनासिंह

लहनासिंह से हमारा पहला परिचय अमृतसर के बाज़ार में होता है। उसकी उम्र सिर्फ 12 वर्ष है। किशोर वय, शरारती, चुलबुला। उसका यह शरारतीपन बाद में युद्ध के मैदान में भी दिखाई देता है। वह अपने मामा के यहाँ आया हुआ है। वहीं बाज़ार में उसकी मुलाकात 8 वर्ष की एक लड़की से होती है। अपनी शरारत करने की आदत के कारण वह लड़की से पूछता है — "तेरी कुड़माई हो गई" और फिर यह "मजाक" ही उस लड़की से उसका संबंध सूत्र बन जाता है। लेकिन मजाक-मजाक में पूछा गया यह सवाल उसके दिल में उस अनजान लड़की के प्रति मोह पैदा कर देता है। ऐसा **'मोह'** जिसे ठीक-ठाक समझ सकने की उसकी उम्र नहीं है। लेकिन जब लड़की बताती है कि हाँ उसकी सगाई हो गई है तो उसके हृदय को आघात लगता है। शायद उस लड़की के प्रति उसका लगाव इस खबर को सहन नहीं कर पाता और वह अपना गुस्सा दूसरों पर निकालता है। लहनासिंह के चरित्र का यह पक्ष अत्यंत महत्वपूर्ण तो है लेकिन असामान्य नहीं। लड़की के प्रति लहनासिंह का सारा व्यवहार बालकोचित है। लड़की के प्रति उसका मोह लगातार एक माह तक मिलने-जुलने से पैदा होता

है और यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन लहनासिंह के चरित्र की एक और विशेषता का प्रकाशन बचपन में ही हो जाता है, वह है उसका **साहस**, अपनी जान जोखिम में डालकर दूसरे को बचाने की कोशिश। लहनासिंह जब सूबेदारनी से मिलता है तो वह बताती है कि किस तरह एक बार उसने उसे तांगे के नीचे आने से बचाया था और इसके लिए वह स्वयं घोड़े के आगे चला गया था।

इस तरह लहनासिंह के चरित्र के ये दोनों पक्ष आगे कहानी में उसके व्यक्तित्व को निर्धारित करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। एक अनजान बालिका के प्रति मन में पैदा हुआ स्नेह भाव और दूसरे उसका साहस। तांगे वाली घटना यह भी बताती है कि बचपन में उन दोनों के बीच जो संबंध बना वह कितना गहरा और तीव्र था।

लेकिन पच्चीस साल का अंतराल कम नहीं होता। वह बालिका किसी और की पत्नी बन जाती है और लहनासिंह जो एक किसान का बेटा है, खेती छोड़कर सिपाही बन जाता है। लेकिन सिपाही बन जाने के बाद भी उसकी मानसिकता, उसके स्वप्न और उसकी आकांक्षाएँ किसानों-सी ही रहती हैं। सेना में वह मामूली **सिपाही** है। जमादार के पद पर। लेकिन वहाँ भी किसानी जीवन की समस्याएँ उसका पीछा नहीं छोड़तीं। वह छुट्टी लेकर अपने गाँव जाता है — ज़मीन के किसी मुकदमे की पैरवी के लिए। कहानीकार यह संकेत नहीं देता है कि लहनासिंह विवाहित है या अविवाहित। लेकिन लहनासिंह की बातों से तो यही लगता है कि वह अविवाहित है। उसका एक भतीजा है — कीरतसिंह। जिसकी गोद में सिर रखकर वह अपने बाकी दिन गुज़ारना चाहता है। अपने गाँव, अपने खेत, अपने बाग में। उसे सरकार से किसी ज़मीन, जायदाद की उम्मीद नहीं है, न ही खिताब की। वह एक साधारण ज़िंदगी जी रहा है, उतनी ही साधारण जितनी कि किसी भी किसान या सिपाही की हो सकती है। उस लड़की की स्मृति भी समय की पर्तों की नीचे दब चुकी है। जिससे उसने कभी पूछा था कि क्या तेरी कुड़माई हो गई।

लेकिन उसके साधारण जीवन में ज़बर्दस्त मोड़ तब आता है जब उसकी मुलाकात सूबेदारनी से होती है। पच्चीस साल बाद, यानी जब उसकी उम्र 37 साल की व सूबेदारनी की उम्र भी 33-34 साल की है, तब उनकी मुलाकात होती है। उन्हीं लड़के-लड़की की। लेकिन पच्चीस साल ने बहुत कुछ बदल दिया है। सूबेदारनी अब सूबेदार हज़ारासिंह की पत्नी है और बोधासिंह की मां है। सूबेदार हज़ारासिंह लहनासिंह की तरह मामूली किसान नहीं है। उसको बहादुरी का खिताब मिला है और लायलपुर में ज़मीन-जायदाद भी है। सूबेदार की हैसियत लहनासिंह से बहुत ऊँची है।

सूबेदारनी उसे इतने सालों बाद भी देखते ही पहचान लेती है। इससे पता चलता है कि बचपन की घटना उसको कितनी अधिक प्रभवित कर गई थी। जब वह उसे बचपन की उन घटनाओं का स्मरण कराती है तो वह अवाक् सा रह जाता है। भूला वह भी नहीं है, लेकिन समय ने उस पर एक गहरी पर्त बिछा दी थी, आज वह एकाएक धूल पोंछकर साफ़ हो गई। लहनासिंह के लिए सूबेदारनी से इस तरह मिलना चमत्कार से कम नहीं था। सूबेदारनी से हुई यह मुलाकात युद्ध के मोर्चे पर उसके कार्यों को विशेष दिशा देते हैं। सूबेदारनी ने बचपन के उन संबंधों को अब तक अपने मन में जिलाये रखा, यह लहनासिंह के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था। उसी संबंध के बल पर सूबेदारनी का यह विश्वास करना कि लहनासिंह उसकी बात टालेगा नहीं, लहनासिंह के लिए यह और भी विस्मयकारी था। वस्तुत: उस का लहनासिंह पर यह विश्वास ही बचपन के उन संबंधों की गहराई को व्यक्त करता है और इसी विश्वास की रक्षा करना लहनासिंह के जीवन की धुरी बन जाता है।

लहनासिंह एक वीर सिपाही है और खतरे के समय भी अपना **मानसिक संतुलन नहीं खोता**। युद्ध में वह इसलिए शामिल नहीं हुआ है कि उसे अंग्रेज सरकार के प्रति वफादारी व्यक्त करनी है या सरकार से कुछ इनाम हासिल करना है। सिपाही हो जाने के बावजूद वह तो किसानी के ही सपने देखता है। लेकिन युद्ध के मोर्चे पर वह एक **वीर नायक** भी है। खंदक में पड़े-पड़े उकताने से वह शत्रु पर आक्रमण करना बेहतर समझता है। यहाँ भी उसकी कृषक मानसिकता प्रकट होती है जो निकम्मेपन और ऊब से बेहतर तो लड़ते हुए अपनी जान देना समझती है।

जब उनकी टुकड़ी में जर्मन जासूस लपटन साहब बनकर घुस आता है तब उसकी **सूझबूझ और चतुराई** देखते ही बनती है। उसे यह पहचानने में देर नहीं लगती कि यह लपटन साहब नहीं वरन् जर्मन जासूस है और तब वह उसी के अनुकूल कदम उठाने में नहीं हिचकिचाता। और बाद में उस जर्मन जासूस के साथ मुठभेड़ या लड़ाई के दौरान भी उसका साहस और चतुराई स्पष्ट उभर कर प्रकट होती है। किंतु इस सारे घटनाचक्र में भी वह सूबेदारनी को दिये वचन के प्रति सजग रहता है और अपने जीते जी हज़ारासिंह व बोधासिंह पर किसी तरह की आँच नहीं आने देता। यही नहीं उनके प्रति अपनी आंतरिक भावना के कारण ही वह अपने घावों के बारे में सूबेदार को कुछ नहीं बताता। पसलियों में लगी गोली उसके लिए प्राणघातक होती है और अंत में वह मर जाता है। लेकिन मृत्यु शय्या पर उसकी नजरों के आगे दो ही चीजें मंडराती हैं — एक सूबेदारनी का कहा वचन और दूसरा आम के बाग में कीरतसिंह के साथ आम खाना। सूबेदारनी ने बचपन के उन संबंधों के बल पर लहनासिंह पर जो भरोसा किया था, उसी भरोसे के बल पर उसने अपने पति और पुत्र की जीवन रक्षा की भीख मांगी थी, लहनासिंह अपनी जान देकर उस भरोसे की रक्षा करता है। यह विश्वास और त्याग सूबेदारनी और लहनासिंह के संबंधों की पवित्रता और गहराई पर मोहर लगा देते हैं। स्त्री-पुरुष के बीच यह बिल्कुल नये तरह का संबंध है और इस दृष्टि से लहनासिंह एक नये तरह का नायक है जो नये सूक्ष्म रूमानी मानवीय संबंधों की एक आदर्श मिसाल सामने रखता है।

अपने व्यक्तित्व की इन ऊँचाइयों के बावजूद उसकी मृत्यु त्रासद ही कही जाएगी। उसका साहस, उसकी चतुराई, जिसके कारण जर्मनों को शिकस्त खानी पड़ी, इस योग्य भी नहीं समझी जाती कि कम से कम मृत्यु की सूचना में इतना उल्लेख तो होता कि युद्ध के दौरान साहस दिखाते हुए प्राणोत्सर्ग किया, बल्कि समाचार इस रूप में छपता है कि "मैदान में घावों से मरा"। इससे यह ज़ाहिर होता है कि जिस सूबेदारनी के कारण वह उसके पति और पुत्र की प्राण रक्षा करता है, उसके लिए भी लहनासिंह का बलिदान अकारथ की चला जाता है। लहनासिंह का ऐसा दुखद अंत उसे त्रासद नायक बना देता है।

5.3.2 सूबेदारनी

सूबेदारनी कहानी में सिर्फ़ दो बार आती है। एक बार कहानी के आरंभ में ही, दूसरी बार कहानी के अंतिम भाग में, वह भी लहनासिंह की स्मृतियों में। लेकिन कहानी में सूबेदारनी का चरित्र लहनासिंह के बाद सबसे महत्वपूर्ण चरित्र है। उस से पहली मुलाकात आठ वर्ष की बालिका के रूप में होती है जो अपने ही हम उम्र लड़के के मजाक से लजाती है। लेकिन उसके व्यक्तित्व में पहला परिवर्तन ही हमें तब नजर आ जाता है। लहनासिंह के इस प्रश्न के जवाब में कि "तेरी कुड़माई हो गई।" जब वह यह कहती है कि "हाँ हो गई, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा सालू" तो उसका इतने विश्वास के साथ जवाब देना यह बताता है कि जैसे सगाई के साथ वह एकाएक बहुत बड़ी हो गई है इतनी बड़ी कि उसमें इतना विश्वास आ गया है कि वह दृढ़तापूर्वक जवाब दे सके कि "हाँ, हो गई"। ज़ाहिर है विश्वास की यह अभिव्यक्ति सूबेदारनी के व्यक्तित्व का नया पहलू है। फिर भी अभी वह यह समझने में असमर्थ है कि "सगाई" का अर्थ क्या है। इसीलिए या लड़की होने के कारण अपनी भावनाओं को या तो वह व्यक्त नहीं करती इसलिए ऐसा नहीं लगता कि "सगाई" का उस पर भी वैसा "आघात" लगा है जैसा लहनासिंह पर लगा था।

किंतु लहनासिंह के साथ उसके संबंध कितने गहरे थे, इसका अहसास भी हमें कहानी में सूबेदारनी के माध्यम से ही होता है। आठ साल की नादान सी उम्र में जिस लड़के से उसका मज़ाक का संबंध बना था, उसे वह पच्चीस साल बाद भी अपने मन, मस्तिष्क से नहीं निकाल पाई। जबकि इस दौरान वह किसी और की पत्नी बन चुकी थी, उसका अपना घर-परिवार था। जवान बेटा था। और जैसा कि कहानी से स्पष्ट होता है, वह अपने घर-परिवार में सुखी और प्रसन्न थी।

लेकिन पच्चीस साल बाद भी जब लहनासिंह उसके सामने आता है तो वह उसे तत्काल पहचान जाती है। न केवल पहचान जाती है, अपने बचपन के उन संबंधों के बल पर उसे विश्वास है कि अगर वह लहनासिंह को कुछ करने को कहेगी, तो वह कभी इनकार नहीं करेगा। निश्चय ही यह विश्वास उसके अंदर लहनासिंह के व्यक्तित्व से नहीं पैदा हुआ था, बल्कि यह स्वयं उसके मन में लहनासिंह के प्रति जो भावना थी, उससे पैदा हुआ था। लहनासिंह के प्रति उसके अंतर्मन में बसी लगाव की भावना का इस तरह पच्चीस साल बाद भी जिंदा रहना, सूबेदारनी के व्यक्तित्व को एक नया निखार देता है। और इस अर्थ में वह परंपरागत भारतीय नारी से भिन्न नजर आती है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि सूबेदारनी अपने घर-परिवार के दायित्व से विमुख है। बल्कि इसके ठीक विपरीत लहनासिंह से उसकी पच्चीस साल बाद हुई मुलाकात उसके अपने घर-परिवार के प्रति गहरे दायित्व बोध को भी व्यक्त करता है। वह लहनासिंह से प्रार्थना करती है कि जिस तरह बचपन में उसने तांगे से उसे बचाया था, उसी तरह अब उसके पति और पुत्र के प्राणों की भी रक्षा करे। इस तरह उसमें अपने पति और पुत्र के प्रति प्रेम और कर्तव्य की भावना भी है।

हम कह सकते हैं कि सूबेदारनी के लिए जितना सत्य अपने पति और पुत्र के प्रति प्यार और कर्तव्य है, उतना ही सत्य उसके लिए वे स्मृतियाँ भी हैं, जो लहनासिंह के प्रति उसके लगाव को व्यक्त करती है। उस के चरित्र के ये दो पहलू हैं और इनसे ही उसका चरित्र महत्वपूर्ण बनता है।

'उसने कहा था' कहानी के इन तीन प्रमुख पात्रों का यह चारित्रिक विश्लेषण स्पष्ट कर देता है कि लहनासिंह ही कहानी का केंद्रीय चरित्र है जिसके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है सूबेदारनी। इस तरह सूबेदारनी भी कहानी में महत्वपूर्ण चरित्र बनकर उभरती है।

बोध प्रश्न

4 कहानी में लहनासिंह से किन-किन चारित्रिक गुणों का चित्रण हुआ है।

क) साहस, चतुराई, त्याग, शरारती, प्रेम ( )
ख) साहस, मूढ़ता, त्याग, वफादारी और प्रेम ( )
ग) प्रेम, गुस्सैल, साहस, स्वार्थीपन और चतुराई ( )
घ) बड़बोलापन, झगड़ालू, शरारती, चतुराई और त्याग ( )

5 सूबेदारनी का अपने घर-परिवार के प्रति दायित्व भावना कहानी के किस संवाद में व्यक्त हुई है।

....

....

....

....

6 नीचे बताई गई घटनाएँ लहनासिंह के चरित्र के किस-किस पहलू को उजागर करती हैं।

क) बालिका होराँ से 'कुड़माई हो गई' पूछना ( )
ख) लपटन साहब से बातचीत ( )
ग) बोधासिंह का ख्याल रखना ( )
घ) अस्पताल की गाड़ी में न जाना ( )

अभ्यास

1 सूबेदार हजारासिंह के चरित्र का विश्लेषण 100 शब्दों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5.4 परिवेश

'उसने कहा था' कहानी गुलेरीजी ने 1915 ई. में लिखी थी। इस कहानी की पृष्ठभूमि में प्रथम विश्वयुद्ध है, जिसे शुरू हुए अभी एक साल हुआ है। कहानी का मुख्य घटनाचक्र भारत से बाहर फ्रांस में घटित होता है, लेकिन कहानी का आरंभ अमृतसर से होता है। 1890 ई. के आसपास का अमृतसर। कहानी के आरंभ में ही अमृतसर के तांगेवालों का लंबा खाका खींचा गया है। बाज़ार से गुजरते हुए तांगे वाले किस तरह की आवाजें लगाते हैं, किस तरह का व्यवहार करते हैं, इसका अत्यंत जीवंत और यथार्थपरक चित्र खींचा गया है।

> "यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढिया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं — हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमा वालिए, हट जा पुत्तां प्यारिए, हट जा लंबी उमर वालिए।"

उपर्युक्त अंश से स्पष्ट है कि अमृतसर का पंजाबी वातावरण आरंभ से ही कहानी पर छाया हुआ है। पात्रों की वेशभूषा, उनकी ज़बान, उनके मुहावरे और उनके व्यवहार में पंजाबीपन की स्पष्ट महक महसूस की जा सकती है।

"**उसके बालों** और उसके **ढीले सुथने** से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं" (वेशभूषा)

"वह अपने मामा के **केश धोने के लिए दही** लेने आया था और यह रसोई के लिए **बड़ियाँ**" (पंजाब का घरेलू जीवन)

"तेरी **कुड़माई** हो गई" (भाषा)

'उसने कहा था' के सभी प्रमुख पात्र पंजाबी हैं, इसलिए उनकी भाषा और व्यवहार में पंजाबीपन का आना स्वाभाविक है। अगर, कहानीकार पात्रों की क्षेत्रीय पृष्ठभूमि की उपेक्षा करता तो उसमें वह बात नहीं आती जो कहानी में अब नज़र आती है। यानी कि इस पंजाबीपन के कारण कहानी के पात्र अधिक जीवंत और वास्तविक लगते हैं।

युद्ध के मैदान में भी उनका यह पंजाबीपन नहीं छूटता। पंजाब के लोग — विशेषतः सिख अपने साहस और चुलबुलेपन के लिए विख्यात हैं। ये विशेषताएँ हम लहनासिंह और अन्य पात्रों में भी देख सकते हैं।

> "वजीरासिंह पल्टन का विदूषक था। बाल्टी में गंदा पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला — "मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण"। इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल छँट गये।"
>
> युद्ध के मोर्चे पर भी उनका गाना-बजाना नहीं छूटता। अपने गाँव-खेत की बात करते-करते वे सचमुच वहीं पहुँच गये।
>
> "कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएँगे, पर सारी खंदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानो चार दिन से सोते और मौज करते हों।"

'उसने कहा था' कहानी का अधिकांश हिस्सा फ्रांस के युद्ध-मैदान से संबंधित है। कहानी में इतना अवसर नहीं था कि फ्रांस के परिवेश का चित्रण किया जाता, लेकिन कहानी में युद्ध के मोर्चे का वातावरण अवश्य प्रभावशाली ढंग से चित्रित हुआ है।

> "अचानक आवाज़ आयी, "वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा!" और धड़ाधड़ बंदूकों के फ्रायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने से लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।"

द्ध के मोर्चे पर सिपाहियों के जीवन के कई रूप इस कहानी में देखने को मिलते हैं। खंदकों में लेटे-लेटे लड़ाई का इंतजार रते सैनिक, उनकी बातचीत, उनकी मनःस्थिति, भविष्य की उनकी योजनाएँ, सभी कुछ इस कहानी में व्यक्त हुए हैं। इसके ाद जब सचमुच युद्ध शुरू होता है, उस वातावरण का भी गुलेरीजी ने अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया है।

किन कहानी में लहनासिंह की बदलती मनःस्थितियों का चित्रण करने में लेखक को विशेष सफलता मिली है। आरंभ में ालिका (सूबेदारनी) के साथ उसकी छेड़छाड़, उसके बाद बालिका की सगाई का सुनकर उसकी प्रतिक्रिया। यहाँ लेखक जाए अपनी ओर से टिप्पणी देने के, लहनासिंह की तत्काल की गई प्रतिक्रियाओं से ही उसकी मनःस्थिति व्यक्त कर देता है :

> "रास्ते में लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर आती हुए किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाई, तब कहीं घर पहुँचा।"

सी तरह युद्ध के मोर्चे पर उसका उत्साह, उसका साहस, उसकी समझदारी यानी उसकी प्रत्येक मनःस्थिति का चित्रण करने गुलेरीजी सफल रहे हैं। अंत में, जब लहनासिंह घायल अवस्था में लेटा हुआ अपने अतीत को याद करता है एक ओर से सूबेदारनी की कही बातें याद आती हैं तो दूसरी ओर उसे अपना घर-गाँव याद आता है। धीरे-धीरे उसकी चेतना लुप्त ने लगती है और वह वजीरासिंह को ही कीरतसिंह समझकर अपने बाग-बगीचे की बात बड़बड़ाने लगता है — वही कसानी सपना जिसे देखते-देखते वह मर जाता है।

ाेध प्रश्न

"तेरी कुड़माई हो गई। धत्....... कल हो गई....... देखते नहीं, रेशमी बूटों वाला सालू....... अमृतसर में......."

क) यह वाक्य किसने कहा?

....

ख) यह बात क्यों कही गई?

....

ग) इस कथन में किस घटना की ओर संकेत है?

....

....

सूबेदार की पारिवारिक स्थिति का पता कहानी के किस वाक्य से लगता है —

....

.5 संरचना शिल्प

रचना शिल्प के अंतर्गत यहाँ हम कहानी की शैली, संवाद और भाषा पर विचार करेंगे। 'उसने कहा था' कहानी जब लिखी ई थी, तब तक हिंदी में कुछ ही कहानियाँ लिखी गई थी, लेकिन उनमें से एक भी कहानी ऐसी नहीं थी, जिसकी शैली या ाल्प उल्लेखनीय कही जा सके। 'उसने कहा था' के माध्यम से पहली बार कहानी-कला अपने उत्कृष्ट रूप में व्यक्त हुई।

.5.1 शैली

उसने कहा था' की शैली वैसे तो वर्णनात्मक कही जा सकती है, लेकिन इसमें नाटकीयता के तत्त्व भी पर्याप्त हैं। कहानी ाल के दो भिन्न खंडों में चलती है। काल का पहला खंड, कहानी के मूल कथ्य का आधार है, और उसी पर शेष कहानी वकसित होती है। इसके लिए गुलेरीजी कथ्य को सीधे-साधे ही प्रस्तुत नहीं करते वरन् उसमें नाटकीयता उत्पन्न करने के लिए हले कथा को दो भिन्न एवं स्वतंत्र रूपों में विकसित करते हैं और कहानी के अंतिम भाग में उन्हें पूर्वदीप्ति शैली द्वारा एक-दूसरे ा जोड़ते हैं। पूर्वदीप्ति शैली का यह प्रयोग हिंदी कहानी के लिए नया ही नहीं था वरन् अत्यंत प्रौढ़ प्रयोग भी था। कथ्य की ारी संभावनाएं इसी शैली के कारण संप्रेषित हो सकी है। कथ्य के अनुकूल सही शैली की खोज लेखक की महत्वपूर्ण फलता है।

.5.2 भाषा और संवाद

कहानी की उत्कृष्टता का दूसरा मुख्य आधार है, भाषा। वर्णन और संवाद दोनों ही जगह भाषा की सृजनात्मकता हमारा ध्यान ाकृष्ट करती है। गुलेरीजी वैसे कहानी का सीधा-साधा वर्णन ही नहीं करते वरन् शब्दों के द्वारा इस स्थिति का पूरा चित्र खींच देते हैं यही चीज हम मनःस्थिति के वर्णन में देख सकते हैं, वहाँ भी भाषा परिस्थिति के अनुकूल अपने को परिवर्तित कर लेती है। गुलेरीजी भाषा का प्रयोग करते हुए स्थिति के प्रायः सभी पहलुओं का ध्यान रखते हैं। तांगे वालों का वर्णन

करते हुए भाषा का रूप वैसा ही हो जाता है, जैसा तांगे वालों की वास्तविक ज़बान को व्यक्त करने के लिए ज़रूरी है। "हटो बाछा", "आने दो लालाजी" जैसे शब्द प्रयोग इसीलिए महत्त्वपूर्ण है। गुलेरीजी भाषा का संयमित प्रयोग करते हैं। जहाँ कम शब्दों में बात कही जा सकती है, वहाँ वे मितव्ययता से काम लेते हैं। लहनासिंह और सूबेदारनी के बचपन के संबंधों का जो वर्णन हमें कहानी में मिलता है, उसके विस्तार की काफी गुंजाइश थी, लेकिन गुलेरीजी केवल "कुड़माई" वाले प्रसंग द्वारा उन दोनों की सारी मनोभावनाओं को व्यक्त कर देते हैं। इसी तरह सूबेदारनी से मिलने पर सूबेदारनी की कही बातों पर लेखक लहनासिंह की कोई प्रतिक्रिया कहानी में नहीं दर्शाता, यद्यपि उनका यह मिलन लहनासिंह के चरित्र को एक खास दिशा देने में मुख्य कारण बनता है। यही बात लहनासिंह के करुण और त्रासद अंत में देख सकते हैं जहाँ "मैदान में घावों से मरा" — वाक्यांश लहनासिंह की मौत को त्रासद अंत में बदल देता है।

जहाँ तक संवादों की बात है, गुलेरीजी ने प्रत्येक पात्र के मुख से वैसी ही भाषा बुलवाई है जो उसकी स्थितियों के अनुकूल हो। आरंभ में दोनों बच्चों की बातों में वैसी ही लज्जा, अबोधपन और चुलबुलापन है जो उस उम्र के बच्चों में होता है। लेकिन बाद में विभिन्न पात्रों की बातचीत में उनकी सामाजिक-पारिवारिक स्थिति के अनुसार अंतर आया है। सभी पात्रों की भाषा पर पंजाबी का प्रभाव है, जो स्वाभाविक है क्योंकि कहानी की कथावस्तु पंजाबी जीवन से ही संबंधित है। इसलिए इस कहानी में ऐसे शब्दों का प्रयोग पर्याप्त है जो पंजाबी भाषा से लिए गये हैं या जिनमें पंजाबी उच्चारण का प्रयोग किया गया है जैसे, कुड़माई, सालू, करमावालिये, पुत्ता प्यारिए, ग़नीम, गैवीं, मत्था टेकना, गुमा, पाधा, माँदा पड़ना आदि। 'उसने कहा था' कहानी पंजाबी जीवन से संबंधित है और इनके पात्र भी सामान्यतः साधारण पढ़े-लिखे हैं इसलिए उनकी भाषा में अपनी मातृभाषा का प्रभाव स्वाभाविक है, लेकिन कहानी में एक स्थान पर रात का वर्णन करते हुए कहानीकार संस्कृत के कवि बाणभट्ट की कही बात का उल्लेख कर जाता है।

> "ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ "क्षयी" नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी, जैसे कि बाणभट्ट की भाषा में "दंतवीणोपदेशाचार्य" कहलाती।"

गुलेरीजी की भाषा पात्रों की मनःस्थिति का चित्रण करने में भी अत्यंत सक्षम है। सूबेदारनी जब लहनासिंह से मिलती है और अपने मन की व्यथा कहती है तो उसके मन में चल रहा द्वंद्व इतना साफ उभर कर आता है कि पाठक उसे आसानी से समझ लेता है।

> "मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की घँघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती। एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी, "अब दोनों जाते हैं, मेरे भाग!" तुम्हें याद है, "एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़ों की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के पास तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना, यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ।"

या इसी तरह बेहोशी की हालत में लहनासिंह की बड़बड़ाहट महज बड़बड़ाहट नहीं है वरन् उसके स्वप्न, उसकी आकांक्षा, उसके जीवन की त्रासदी ही मानो मूर्तिमान हो जाती है।

इस प्रकार 'उसने कहा था' कहानी का शिल्प अत्यंत सधा हुआ, कहानी के कथ्य के अनुकूल और सृजनात्मक उत्कृष्टता से युक्त है। कहानी में प्रत्येक प्रसंग, पात्र व मनोभाव का चित्रण अत्यंत कलात्मक ढंग से हुआ है। कहानी उतना ही नहीं कहती, जितना कथ्य सीधे तौर पर व्यक्त करता है बल्कि उससे आगे जाकर वह कई ऐसे पहलुओं को उजागर करती है, जो कहानी के मूल कथ्य को और समृद्ध करते हैं।

अभ्यास

2 निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर दीजिए।

"मृत्यु के कुछ पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्य के रंग साफ़ होते हैं, समय की धुंध बिल्कुल उस पर से हट जाती है।"

कहानी के उपर्युक्त अंश से कहानी की शैली में क्या परिवर्तन आता है?

....

3 कहानी में प्रयुक्त पाँच-पाँच पंजाबी और उर्दू के शब्द चुनिए और उनके अर्थ बताइए।

....

....

....

....

....

पर करें क्या? हड्डियों में जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाए तो गरमी आ जाए।"

उपर्युक्त संवाद की भाषागत विशेषताएँ संक्षेप में बताइए।

....

....

....

....

....

....

मूल्यांकन

नी के विश्लेषण के बाद उसका मूल्यांकन करना आसान हो जाता है। यहाँ मूल्यांकन का तात्पर्य कहानी के बारे में कोई य देना नहीं वरन् लेखक की दृष्टि, कहानी का प्रतिपाद्य और शीर्षक की उपयुक्तता पर विचार करना है।

.1 रचनाकार की दृष्टि और कहानी का प्रतिपाद्य

ने कहा था' कहानी का कथ्य लहनासिंह और सूबेदारनी के संबंधों पर आधारित है। सूबेदारनी और लहनासिंह के बीच न में जो मधुर संबंध पनपे थे, वे सामाजिक संबंधों में प्रतिफलित होने से पूर्व ही खत्म हो गये थे। लेकिन उन संबंधों मृतियाँ दोनों के मन से कभी न मिट सकीं। सूबेदारनी जो बाद में सूबेदार हजारासिंह की पत्नी बन जाती है, अपने मन हनासिंह के साथ बीते बचपन के उन क्षणों को जीवित रखती है। बाद में इन्हीं संबंधों के बल पर वह लहनासिंह से पति और पुत्र की रक्षा की प्रार्थना करती है। स्त्री और पुरुष के बीच यह एक नये तरह का रिश्ता है, जिसे किसी परंपरागत से नहीं पुकारा जा सकता। सूबेदारनी अपने पति और पुत्र के प्रति उतनी ही वफादार और ईमानदार है, जितनी को कोई नी या माँ हो सकती है, इसके बावजूद लहनासिंह के प्रति उसके मन का भाव, और उस पर इतना अगाध विश्वास य ही एक नये तरह के मानवीय संबंध की ओर इंगित करते हैं। गुलेरीजी इन्हीं नये बनते मानवीय संबंधों को अपनी नी के द्वारा प्रस्तुत करना चाहते हैं।

बंधों को स्त्री-पुरुष के प्रेम संबंध कहना पर्याप्त नहीं है क्योंकि तब सूबेदारनी के अपने पति और पुत्र के साथ संबंध होते लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है, इसलिए ये संबंध स्त्री-पुरुष के बीच नये संबंधों को व्यक्त करता है। लहनासिंह सूबेदारनी पने प्रति विश्वास से अभिभूत होता है, क्योंकि उस विश्वास की नींव में बचपन के संबंध हैं। सूबेदारनी का यह स ही लहनासिंह को उस महान् त्याग की प्रेरणा देता है, जिसका चित्रण कहानी में हुआ है। इस प्रकार इस कहानी में क की दृष्टि आधुनिक और मानवतावादी कही जा सकती है।

विरोधी कहानी: कहानी एक और स्तर पर अपने को व्यक्त करती है। प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी यह ी एक अर्थ में युद्ध विरोधी कहानी भी है। पहला विश्वयुद्ध जिन देशों के बीच लड़ा गया, इनमें भारत शामिल नहीं भारतीय सैनिक तो इंग्लैंड की ओर से लड़ रहे थे, जिसने कि भारत को पराधीन बना रखा था। भारतीय सैनिकों की री अंग्रेजी साम्राज्य की रक्षा के लिए थी, उससे हिंदुस्तान को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होने वाली थी। लहनासिंह जैसे मामूली : अंग्रेज सरकार के प्रति वफ़ादारी व्यक्त करने के लिए सेना में भर्ती नहीं हुए थे, जैसा कि हजारासिंह के मामले में स्पष्ट ल्कि लहनासिंह जैसे मामूली किसान तो अपने जीवन की मज़बूरियों से प्रेरित होकर ही सेना में भर्ती हुए थे। यही कारण लेखक एक प्रसंग में भी इन सैनिकों की वफ़ादारी का उल्लेख करना जरूरी नहीं समझता वरन् इसके विपरीत सेना में हुए किसानी के सपने देखना यही बताता है कि वे सेना में सिर्फ बेहतर किसानी जीवन की आकांक्षा लेकर ही भर्ती हुए हनासिंह आदि का युद्ध के लिए उतावलापन भी या तो उनके व्यक्तिगत शौर्य को व्यक्त करता है या खंदक में पड़े-पड़े से उभरने के भाव को। इसलिए युद्ध के दौरान लहनासिंह के लिए सूबेदारनी का वचन उसके लिए इतना महत्वपूर्ण ता है और इस वचन के लिए अपने प्राणों की बलि दे देता है यद्यपि उसका शौर्य और बलिदान अंग्रेजों के लिए हितकर । और इस लिहाज से उसके बलिदान का उचित सम्मान किया जाना चाहिए परन्तु उसका बलिदान व्यर्थ हो जाता है और सिंह का करुण अंत युद्ध के विरोध में खड़ा हो जाता है। क्योंकि इस युद्ध से लहनासिंह का कोई सपना पूरा नहीं होता।

.2 शीर्षक की उपयुक्तता

क कहानी के शीर्षक का सवाल है उसकी उपयुक्तता स्पष्ट है। 'उसने कहा था' सूबेदारनी के कहे वचन की ओर संकेत है। सूबेदारनी की बातें जहाँ स्वयं सूबेदारनी के चरित्र को उजागर करती है, वहीं लहनासिंह के चरित्र में भी महत्वपूर्ण ाने वाली साबित होती है। सूबेदारनी की बातें ही उनके बीच के संबंधों को भी उजागर करती है, जो कहानी का मुख्य द्य है इसलिए सूबेदारनी के कहे वचन की ओर संकेत कराने वाला यह शीर्षक उपयुक्त है। मृत्यु की ओर बढ़ते सिंह के अंतिम क्षणों में भी सूबेदारनी के कहे शब्द ही गूंजते रहते हैं।

बोध प्रश्न

9 'उसने कहा था' कहानी का मुख्य प्रतिपाद्य है :

क) सैनिक लहनासिंह के शौर्य और त्याग की गाथा
ख) भारतीय सैनिकों की वीरगाथा
ग) भारतीय नारी के चरित्र का चित्रण
घ) लहनासिंह और सूबेदारनी की प्रेम कथा

5.7 सारांश

आपने 'उसने कहा था' कहानी के विलेषण को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद :

- आपने 'उसने कहा था' की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकते हैं और बता सकते हैं कि बचपन में लहनासिंह और सूबेदारनी के बीच किस तरह का संबंध बना। सूबेदारनी ने लहनासिंह को अपने पुत्र और पति की रक्षा करने को क्यों कहा और लहनासिंह ने सूबेदारनी के वचन का कैसे पालन किया।
- आप लहनासिंह और सूबेदारनी के चरित्र की विशेषताएँ पहचान सकते हैं और यह भी बता सकते हैं कि दोनों के बीच के संबंधों का आधार क्या है।
- 'उसने कहा था' प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी गई कहानी है। लेखक ने उस युग के समय को अत्यंत जीवंत रूप में कहानी में प्रस्तुत किया है। आप कहानी से संबद्ध परिवेश की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- कहानी कला की दृष्टि से 'उसने कहा था' अत्यंत प्रौढ़ रचना है। शैली; भाषा और संवाद की दृष्टि से इसमें कई नये प्रयोग है। शैली में पूर्वदीप्ति शैली, भाषा में यथार्थपरकता और संवादों में बोलचालपन इसकी खास विशेषताएँ हैं। आप इन विशेषताओं की कहानी के संदर्भ में व्याख्या कर सकते हैं।
- 'उसने कहा था' शीर्षक की उपयुक्तता का निर्णय कर सकते है।

5.8 उपयोगी पुस्तकें

कपूर, मस्तराम : **चंद्रधर शर्मा गुलेरी**, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
मदान, इंद्रनाथ : **हिंदी कहानी : पहचान और परख**, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली।

5.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 "तेरी कुड़माई हो गई। धत्......... कल हो गई .... देखते नहीं, रेशमी बूटों वाला सालू ...... अमृतसर में.........।" **(कहानी के भाग 5 का अंश)**

2 क) बोधासिंह सूबेदारनी का बेटा था और लहनासिंह से उसने अपने पुत्र की रक्षा की प्रार्थना की थी।

ख) लहनासिंह और सूबेदारनी के बीच बचपन में जो लगाव पैदा हुआ था, वह उसके मन में पच्चीस साल बाद भी जीवित रहा। सूबेदारनी सूबेदार हजारासिंह की पत्नी होते हुए भी अपने इस लगाव को जीवित रखती है।

ग) i) अपने गाँव-खेत में अपने घर-परिवार के साथ रहना
ii) सूबेदारनी का वचन

3 ख)
4 क)

5 सूबेदारनी के निम्न कथन से :

"एक काम कहती हूँ, मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की घँघरिया पलटन क्यों न बनादी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती। एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए पर एक भी नहीं जिया। सूबेदारनी रोने लगी, "अब दोनों जाते है। मेरे भाग।"

6 क) शरारतीपन ख) चतुराई ग) वचन पालन घ) त्याग

7 क) यह वाक्य सूबेदारनी ने लहनासिंह से कही।
ख) लहनासिंह को बचपन की घटनाओं का स्मरण कराने के लिए।
ग) लहनासिंह और सूबेदारनी के बीच बचपन में चलने वाले "कुड़माई हो गई" वाले मजाक की ओर संकेत।

8 "सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है।"

9 क)

अभ्यास

1 **सूबेदार हजारासिंह का चरित्र :** हजारासिंह सूबेदारनी का पति है और लहनासिंह का अफसर। सेना में सूबेदार के पद पर है और सरकार से बहादुरी का खिताब और ज़मीन-जायदाद मिल चुकी है। हजारासिंह के लाम पर जाने का मकसद अंग्रेज सरकार के प्रति वफादारी प्रकट करना है। इसलिए हजारासिंह और लहनासिंह दो भिन्न-भिन्न वर्ग और चरित्र के लोग हैं। हजारासिंह लहनासिंह के प्रति स्नेह भी रखता है और विश्वास भी। बोधासिंह के बीमार पड़ने पर वह लहनासिंह के ही भरोसे उसे छोड़ जाता है। वह लहनासिंह के सुख-दुःख की भी चिंता करता है। जब रात-दिन जागकर लहनासिंह बोधासिंह की सेवा करता है तो हजारासिंह लहनासिंह को अपनी सेहत का खयाल रखने को भी कहता है। लेकिन हजारासिंह के व्यक्तित्व का एक पहलू उभरता है, लहनासिंह की मौत से। सूबेदार हजारासिंह अच्छी तरह जानते थे कि जर्मनी की सेना के षड्यंत्र से बचाव लहनासिंह की बुद्धिमत्ता और साहस से ही हुआ था। सूबेदार हजारासिंह को चाहिए था कि वे लहनासिंह के इस साहस और चातुर्य को बड़े अधिकारियों तक पहुँचाते ताकि उसकी मृत्यु एक साधारण मौत नहीं मानी जाती। लेकिन ऐसा नहीं होता। यद्यपि कहानीकार इस प्रसंग पर कोई प्रकाश नहीं डालता क्योंकि कहानी की मूल संवेदना से इसका सीधा संबंध नहीं है किंतु कहानी के अंत में लहनासिंह की मौत का जिस रूप में उल्लेख होता है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूबेदार हजारासिंह ने लहनासिंह के बलिदान का सम्मान नहीं किया।

2 कहानीकार द्वारा कहानी में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया जाता है।

3 पंजाबी

1	पुत्ता	—	पुत्रों
2	कुड़माई	—	सगाई
3	सालू	—	दुपट्टा
4	पाधा	—	पुरोहित
5	सोहरा	—	ससुर

उर्दू

1	ज़बान	—	भाषा
2	सब्र	—	धैर्य
3	जलजला	—	भूकंप
4	नायब	—	सहायक
5	हुज्जत	—	बहस

4 इस वाक्य में लहनासिंह के खंदक में पड़े रहने की उकताहट वास्तविक रूप में व्यक्त हुई है। "पर करें क्या?" में उसकी खीज और ऊब व्यक्त हुई है। "चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं" में अपने प्रदेश के अनुभव को चित्रात्मक रूप में रखकर वातावरण को जीवंत कर दिया गया है। इस तरह संवाद की भाषा को सहज, यथार्थपरक और सृजनात्मक कहा जा सकता है।

इकाई 6 'शतरंज के खिलाड़ी' (प्रेमचंद) : वाचन एवं विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 कहानी का वाचन : शतरंज के खिलाड़ी
6.3 कहानी का सार
6.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या
6.5 कथावस्तु
6.6 चरित्र चित्रण
6.7 परिवेश
6.8 संरचना शिल्प
 6.8.1 शैली
 6.8.2 संवाद
 6.8.3 भाषा
6.9 मूल्यांकन
 6.9.1 कहानी का प्रतिपाद्य
 6.9.2 शीर्षक की उपयुक्तता
6.10 सारांश
6.11 उपयोगी पुस्तकें
6.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको प्रख्यात कथाकार प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' दे रहे हैं। आप कहानी का वाचन भी करेंगे और कहानी के विभिन्न पक्षों के विश्लेषण द्वारा उसका मूल्यांकन भी करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- कहानी में आए कठिन शब्दों, मुहावरों व लोकोक्तियों के अर्थ कर सकेंगे;
- कहानी के महत्वपूर्ण अंशों और उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे;
- कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे और कथावस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे;
- कहानी की परिवेशगत पृष्ठभूमि की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता बता सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 4 एवं 5 में पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' का अध्ययन किया था। इस इकाई में हम प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' दे रहे हैं। 'उसने कहा था' हिंदी की पहली ऐसी कहानी है, जिसमें पहली बार कहानी के तत्वों का पूरा निर्वाह होता हुआ नज़र आता है। 'शतरंज के खिलाड़ी' प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इसका कथ्य जितना सीधा और सहज है, उतना ही गहरा और मार्मिक भी। कैसे एक पूरे युग की त्रासदी को एक छोटे से कथानक के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है, यह हम इस कहानी में देख सकते हैं।

प्रेमचंद का जन्म वाराणसी के पास लमही गाँव में सन् 1880 में हुआ था। उन्होंने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की और लेखन के अतिरिक्त शिक्षा विभाग में निरीक्षक रहे और 'हंस' पत्रिका का संपादन किया। उनका 1936 में देहावसान हुआ। हिंदी कहानी परंपरा में प्रेमचंद का युगांतरकारी महत्व है। उन्होंने हिंदी कहानी को एक नया मोड़ दिया था। उन्होंने कहानी को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा और उसे सोद्देश्यता प्रदान की। उन्होंने अपनी कहानियों में उत्पीड़ित और शोषित जनता के दुःख-दर्द को वाणी दी, उनकी संवेदना और संघर्ष को नया अर्थ दिया। आरंभ में उन पर आदर्शवाद का भी प्रभाव था, लेकिन धीरे-धीरे उनका आदर्शवादिता से मोह भंग होने लगा और वे शोषक वर्गों की अमानवीयता के कटु आलोचक बन गये। प्रेमचंद ने उपन्यास और कहानियों दोनों की रचनाएँ की। वैसे तो उन्होंने जीवन के प्रत्येक पक्ष पर लिखा लेकिन किसानों और महिलाओं

UGHL-01(6A)

 प्रति तो उनकी गहरी सहानुभूति थी। 'मानसरोवर' के आठ भागों में उनकी प्रायः सभी कहानियाँ संकलित हैं। उनकी कुछ सिद्ध कहानियां हैं : कफन, पूस की रात, शतरंज के खिलाड़ी, ठाकुर का कुआँ, सद्गति आदि। उनके प्रख्यात उपन्यासों में दान, रंगभूमि, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम, निर्मला सेवासदन की चर्चा की जाती है। 'गोदान' को तो किसान जीवन का महाकाव्य हा गया है।

ापने 'उसने कहा था' कहानी का अध्ययन दो इकाइयों में किया था। लेकिन यह कहानी हम आपको एक ही इकाई में दे हे हैं। इसके प्रत्येक पक्ष का संक्षिप्त विश्लेषण भी दे रहे हैं। और साथ ही बोध प्रश्न और अभ्यास दे रहे हैं ताकि आप हानी को अच्छी तरह से समझ सकें।

.2 कहानी का वाचन: शतरंज के खिलाड़ी

1

ाजिदअली शाह[1] का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सभी विलासिता में बे हुए थे। कोई नृत्य और गान की **मज़लिस** सजाता था, तो कोई अफ़ीम की **पीनक** ही में मजे ले लेता था। जीवन के त्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक अवस्था में, कला-कौशल , उद्योग-धंधों में, आहार-व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम ौर विरह के वर्णन में, कारीगर **कलाबत्तू** और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, **मिस्सी** और उबटन का रोजगार करने लिप्त थे।

उन्नीसवीं सदी का मध्य लखनऊ युगीन स्थिति का संकेत

भी की आंखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। **बटेर** लड़ रहे । तीतरों की लड़ाई के लिए **पाली** बदी जा रही है। कहीं **चौसर** बिछी हुई है; पौ-बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज ा घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फ़कीरों को पैसे मिलते, तो वे टियाँ न लेकर अफ़ीम खाते या **मदक** पीते। शतरंज, ताश, **गंजीफा** खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार शक्ति का विकास ाता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है। ये दलीलें ज़ोरों के साथ पेश की जाती थीं। (इस सम्प्रदाय के लोगों दुनिया अब भी खाली नहीं है।) इसलिए अगर मिरज़ा सज्जादअली और मीर रौशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि ाव करने मे व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास **मौरूसी जागीरें** थीं; ीविका की कोई चिंता न थी। घर में बैठे चखौतियाँ करते थे। आखिर और करते ही क्या?

उच्च कुलीनवर्ग के प्रतिनिधि पात्र

ातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके **बिसात** बिछाकर बैठ जाते, मुहरे सज जाते, और लड़ाई के दाँवपेच होने लगते। फिर खबर होती थी कि कब दोपहर हुई, कब तीसरा पहर, कब शाम! घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता कि खाना तैयार है। हाँ से जवाब मिलता — चलो, आते हैं, **दस्तरख़्वान** बिछाओ। यहाँ तक कि बावरची विवश होकर कमरे ही में खाना रख ाता था, और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे।

रज़ा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था, इसलिए उन्हीं के दीवानखाने में बाजियाँ होती थीं। मगर यह बात न थी मिरज़ा के घर के और लोग उनके इस व्यवहार से खुश हों। घरवालों का तो कहना ही क्या मुहल्लेवाले, घर के नौकर-चाकर क नित्य द्वेषपूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे — बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। खुदा न करे, किसी को सकी **चाट पड़े**, आदमी दीन-दुनिया किसी के काम का नहीं रहता, **न घर का, न घाट का**। बुरा रोग है। यहाँ तक कि रज़ा की बेगम साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोजकर पति को लताड़ती थीं। पर उन्हें इसका अवसर श्किल से मिलता था। वह सोती ही रहती थीं, तब तक उधर बाजी बिछ जाती थी। और रात को जब सो जाती थीं, तब हीं मिरज़ाजी घर में आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती थी — क्या पान माँगे हैं। कह दो, आकर ले जाये। ाने की फ़ुरसत नहीं है? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खाएँ चाहे कुत्ते को खिलाएँ। पर रुबरु वह भी कुछ न कह सकती ीं। उनको अपने पति से उतना **मलाल** न था, जितना मीर साहब से। उन्होंने उनका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद रजाजी अपनी सफ़ाई देने के लिए सारा इलजाम मीर साहब ही के सिर थोप देते थे।

शतरंज की लत

मिरज़ा की पत्नी की नाराज़गी

क दिन बेगम साहिबा को सिर में दर्द होना लगा। उन्होंने **लौंडी** से कहा—जाकर मिरज़ा साहब को बुला ला। किसी हकीम यहाँ से दवा लाएँ। दौड़, जल्दी कर। लौंडी गयी तो मिरज़ाजी ने कहा— चल, अभी आते हैं।

गम साहबा का **मिजाज** गरम था। इतनी **ताब** कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो और पति शतरंज खेलता रहे। चेहरा **सुर्ख** हो या। लौंडी से कहा — जाकर कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जाएँगी।

ज़लिस: सभा, पीनक: नशा (झोंक), कलाबत्तू: रेशम के धागे पर लपेटा हुआ सोने या चाँदी का तार, मिस्सी: एक मंजन जिसे स्त्रियाँ शृंगार के लिए गाती हैं और जिसे लगाने से दाँतों पर स्याह रंग चढ़ जाता है, बटेर: तीतर से मिलती-जुलती एक चिड़िया जो अक्सर लड़ने के शौक के लिए पाली ाती है, पाली: तीतर-बटेर आदि लड़ाने की जगह, चौसर: एक भारतीय खेल, मदक: अफ़ीम के सत्त और पान के योग से बनने वाला एक नशीला दार्थ जिसे तंबाकू की तरह पिया जाता है, गंजीफा: ताश जैसा एक खेल जिसके पत्ते गोल और संख्या में 96 होते हैं, मौरूसी जागीर: पैतृक जायदाद, सात : वह कपड़ा जिस पर शतरंज खेली जाये, दस्तरख़्वान: खाना रखने के लिए [illegible], चाट पड़ना: आदत पड़ना (मु.) — घर का न घाट का : कहीं का भी नहीं रहना (लोकोक्ति) मलाल: दुःख, लौंडी: नौकरानी, मिज़ाज: स्वभाव, ताब: धैर्य, सुर्ख: लाल, किश्त: शतरंज बादशाह का विपक्षी के किसी मोहरे की ज़द में आ जाना, मात: हार, लबों: होंठों।

[1] अवध के नवाब, जिन्हें 1856 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा सत्ता से हटा दिया गया। वाजिदअली शाह को संगीत, नृत्य और कविता से बहुत प्रेम ।। कहा जाता है कि वे स्वयं कत्थक के विशेषज्ञ थे।

मिरज़ाजी बड़ी दिलचस्प बाजी खेल रहे थे, दो ही **किश्तों** में मीर साहब की मात हुई जाती थी। झुंझलाकर बोले — क्या ऐसा दम **लबों** पर है? ज़रा सब्र नहीं होता?

मीर — अरे, तो जाकर सुन ही आइए न! औरतें नाज़ुक-मिजाज होती ही हैं।

मिरज़ा — जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ! दो किस्तों में आपकी मात होती है।

मीर — जनाब, इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें और मात हो जाए। पर जाइए, सुन आइए। क्यों ख़ामख़्वाह उनका दिल दुखाइएगा?

मिरज़ा — इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर — मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिरज़ा — अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर-दर्द **ख़ाक** नहीं है; मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर — कुछ भी हो, उनकी ख़ातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिरज़ा — अच्छा एक चाल और चल लूँ।

मीर — हरगिज़ नहीं, जब तक आप सुन नहीं आएँगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।

मिरज़ा और बेगम में तकरार

मिरज़ा साहब मज़बूर होकर अंदर गये, तो बेगम साहब ने **त्योरियाँ बदल कर**, लेकिन कराहते हुए कहा— तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है। चाहे कोई मर ही जाए, पर उठने का नाम नहीं लेते! नौज कोई तुम-जैसा आदमी हो।

मिरज़ा — क्या कहूँ, मीर साहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाकर आया हूँ।

बेगम — क्या जैसे वह खुद **निखट्टू** हैं, वैसे ही सबको समझते हैं? उनके भी बाल-बच्चे हैं या सबका **सफ़ाया कर डाला**?

मिरज़ा — बड़ा **लती** आदमी है। जब आ जाता है, तब मजबूर होकर मुझे भी खेलना पड़ता है।

बेगम — दुत्कार क्यों नहीं देते?

मिरज़ा — बराबर के आदमी हैं; उम्र में, दर्जे में मुझसे दो अंगुल ऊँचे। **मुलाहिज़ा** करना ही पड़ता है।

बेगम — तो मैं ही दुतकारे देती हूँ। नाराज़ हो जाएँगे, तो हो जाएँ। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। **रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी**। हिरिया, जा बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ़ ले जाइए।

मिरज़ा — हाँ-हाँ ऐसा गज़ब भी न करना। **ज़लील** करना चाहती हो क्या? ठहर हिरिया, कहाँ जाती है।

बेगम — जाने क्यों नहीं देते? मेरा ही खून पिये जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको, तो जानूँ?

यह कहकर बेगम साहिबा झल्लाई हुई **दीवानख़ाने** की तरफ चलीं। मिरज़ा बेचारे का **रंग उड़ गया**। बीबी के मिन्नतें करने लगे··· खुदा के लिए, तुम्हें हजरत हुसेन[1] की कसम है। मेरी ही **मैयत**, देखे, जो उधर जाए। लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानख़ाने के द्वार तक गयीं, पर एकाएक पर-पुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध-से गये। भीतर झाँका, संयोग से कमरा खाली था। मीर साहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिये थे और अपनी सफ़ाई जताने के लिए बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अन्दर पहुँचकर बाजी उलट दी, मुहरे कुछ तख़्त के नीचे फेंक दिये, कुछ बाहर; और किवाड़ें अन्दर से बन्द करके कुंडी लगा दी। मीर साहब दरवाजे पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाजा बन्द हुआ, तो समझ गये, बेगम साहबा बिगड़ गयीं। चुपके से घर की राह ली।

मिरज़ा ने कहा — तुमने गज़ब किया।

बेगम — अब मीर साहब इधर आये, तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी **लौ खुदा से लगाते**, तो वली हो जाते! आप तो शतरंज खेलें और मैं यहाँ चूल्हे-चक्की की फ़िक्र में सिर खपाऊँ! जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी *ताम्मुल* है?

मिरज़ा घर से निकले तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुँचे और सारा वृत्तान्त कहा। मीर साहब बोले··· मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फ़ौरन भागा। बड़ी गुसेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रखा है, यह **मुनासिब** नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इन्तज़ाम करना उनका काम है; दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार?

मिरज़ा — ख़ैर, यह तो बताइए, अब कहाँ जमाव होगा?

ख़ाक: धूल (तुच्छ), त्योरियाँ बदलना: क्रोध से माथे पर बल पड़ना (मु.) नौज: भगवान न करे, निखट्टू: निकम्मा, सफ़ाया करना (मु.): समाप्त कर देना (मार डालना), लती: बुरी आदत वाला, मुलाहिज़ा: अपमानित, दीवानख़ाना: बैठक, रंग उड़ना: फीका पड़ना (मु.) मैयत: शव, लौ लगाना: मन लगाना (मु.) वली: महात्मा, मुनासिब: उचित

[1] इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद के नवासे (दौहित्र) जो शहीद हुए थे, जिनकी शहादत की याद में हर साल मोहर्रम मनाया जाता है।

मीर — इसका क्या गम है! इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है। बस, यहीं जमे।

मिरज़ा — लेकिन बेगम साहबा को कैसे मनाऊँगा? जब घर पर बैठा रहता था, तब तो वह इतना बिगड़ती थीं; यहाँ बैठक होगी, तो शायद जिन्दा न छोड़ेंगी।

मीर — अजी, बकने भी दीजिए, दो-चार रोज में आप ही ठीक हो जाएँगी। हाँ, आप इतना कीजिए कि आज से जरा तन जाइए।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठक में दीजिए।

1 मिरज़ा की पत्नी को मिरज़ा का शतरंज खेलना क्यों पसन्द नहीं था।

क) वह शतरंज के खेल से नफरत करती थी
ख) उसे शतरंज खेलना नहीं आता था
ग) उसे मीर का अपने घर आना नापसन्द था
घ) शतरंज के कारण मिरजा अपनी पत्नी का बिल्कुल ख्याल नहीं रखते थे।

[ ]

2 मिरज़ा की पत्नी द्वारा मिरज़ा को अंदर बुलाने के बाद मीर ने क्या किया।

क) मीर दीवानखाने में बैठे रहे।
ख) मीर शतरंज के मोहरे बदलकर दीवानखाने के बाहर खड़े हो गये।
ग) मीर अपने घर चले गये।
घ) मीर हिरिया से बातें करते रहे।

[ ]

3 शतरंज का खेल उस युग की किस प्रवृत्ति को व्यक्त करता है?

क) उच्च वर्ग की विलासिता को
ख) खेलों के प्रति गहरी अभिरुचि को
ग) सम्पन्नता और समृद्धि को
घ) किसी प्रवृत्ति को व्यक्त नहीं करता।

[ ]

2

मीर साहब की बेगम *किसी अज्ञात कारण* से मीर साहब का घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसलिए वह उनके शतरंज-प्रेम की कभी आलोचना न करती थीं, बल्कि कभी-कभी मीर साहब को देर हो जाती, तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीर साहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यंत विनयशील और गम्भीर है। लेकिन जब दीवानखाने में बिसात बिछने लगी और मीर साहब दिन-भर घर में रहने लगे, तो बेगम साहबा को बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गई। दिन-भर दरवाजे पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों में भी कानाफूसी होने लगी। अब तक दिन-भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में कोई आए, कोई जाए, उनसे कुछ मतलब न था। अब आठों पहर की धौंस हो गई। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का। और हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। वे बेगम साहिबा से जा-जाकर कहते··· हुजूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई। दिन-भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम कर दी। घड़ी आध घड़ी दिलबहलाव के लिए खेल लेना बहुत है। खैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं; हुजूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लाएँगे; मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलने वाला कभी पनपता नहीं; घर पर कोई न कोई आफ़त जरूर आती है। यहाँ तक कि इस के पीछे मुहल्ले-के-मुहल्ले तबाह होते देखे गये हैं। सारे मुहल्ले में यही चर्चा होती रहती है। हुजूर का नमक खाते हैं, अपने आका की बुराई सुन-सुनकर रंज होता है। मगर क्या करें? इस पर बेगम साहबा कहतीं, मैं तो खुद इसको पसन्द नहीं करती। पर वह किसी की सुनते ही नहीं, क्या किया जाए!

मुहल्ले में भी जो दो-चार पुराने जमाने के लोग जमा थे, आपस में भाँति-भाँति के अमंगल की कल्पनाएँ करने लगे··· अब खैरियत नहीं है। *जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही हाफिज है। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी।* आसार बुरे हैं।

धौंस: डाँट-डपट, जी का जंजाल होना (मु.): कष्ट का कारण होना, पैरों में छाले पड़ना (मु.): अत्यधिक कष्ट पाना, हुक्म बजाना (मु.): आज्ञा मानना, आका: स्वामी, हाफिज : रक्षक।

दयनीय स्थिति का चित्रण

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई **फरियाद** सुननेवाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची आती थी और वह वेश्याओं में, भाँडों में और विलासिता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अंग्रेज कम्पनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन-दिन भीगकर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। *रेजीडेंट*[1] बार-बार चेतावनी देता था, पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे; किसी के **कानों पर जूँ न रेंगती** थी।

खैर, मीर साहब के दीवानखाने में शतरंज होते कई महीने गुजर गये। नए-नए नक्शे हल किये जाते; नए-नए किले बनाये जाते; नित्य नई व्यूह-रचना होती; कभी-कभी खेलते-खेलते **झौंड** हो जाती; तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती; पर शीघ्र ही दोनों मित्रों में मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता कि बाजी उठा दी जाती; मिरजाजी रूठकर अपने घर चले आते। मीर साहब अपने घर में जा बैठते। पर रात-भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शान्त हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानखाने में आ पहुंचते थे।

मीर की बेगम का षड्यंत्र

एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए शतरंज की दलदल में गोते खा रहे थे कि इतने में *घोड़े पर सवार एक बादशाही फौज का अफसर* मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गये। यह क्या बला सिर पर आयी! यह **तलबी** किस लिए। नौकरों से बोले — कह दो, घर में नहीं हैं।

सवार — घर में नहीं, तो कहाँ हैं?

नौकर — यह मैं नहीं जानता। क्या काम है?

सवार — काम तुझे क्या बताऊँगा? हुजूर में *तलबी* है। शायद फौज के लिए कुछ सिपाही माँगे गए हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी! मोरचे पर जाना पड़ेगा, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा!

नौकर — अच्छा, तो जाइए, कह दिया जाएगा।

सवार — कहने की बात नहीं है। मैं कल खुद आऊँगा, साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा काँप उठी। मिरज़ाजी से बोले—कहिए जनाब, अब क्या होगा?

मिरज़ा — बड़ी मुसीबत है। कहीं मेरी तलबी भी न हो।

मीर — कमबख्त कल फिर आने को कह गया है।

मिरज़ा — आफत है, और क्या! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा, तो बेमौत मरे।

मीर — बस, यही एक **तदबीर** है कि घर पर मिलो ही नहीं। *कल से गोमती पार कहीं वीराने में नक्शा जमे।* वहाँ किसे खबर होगी? हजरत आकर आप लौट जायेंगे।

मिरज़ा — वल्लाह, आपको खूब सूझी! इसके सिवाय और कोई तदबीर ही नहीं है।

इधर मीर साहब की बेगम उस सवार से कह रही थी, तुमने खूब धता बताया।

उसने जवाब दिया — ऐसे **गावदियों** को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूलकर भी घर पर न रहेंगे।

फरियाद: प्रार्थना, कानों पर जूँ न रेंगना (मु.): परवाह न करना, झौंड: झगड़ा, तलबी: बुलावा, तदबीर: उपाय, गावदियों : मूर्खों

[1] ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा नियुक्त अधिकारी

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठक में लिखिए।

4 मीर साहब की पत्नी उनके शतरंज खेलने की निंदा क्यों नहीं करती थी?

क) उसे शतरंज का खेल अच्छा लगता था।
ख) वह पति के किसी काम में दखल नहीं देती थी।
ग) वह मीर का घर से दूर रहना व्यक्तिगत कारणों से उपयुक्त मानती थी।
घ) उसे मीर साहब से बहुत प्रेम था।

[ ]

5 मीर साहब के पास घुड़सवार को किसने भेजा था।

क) नवाब वाजिदअली शाह ने।
ख) मीर साहब की बेगम ने।
ग) फौजी अधिकारी ने।
घ) मिरज़ा ने।

[ ]

खेल का तीसरा केंद्र

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह अंधेरे घर से निकल खड़े होते। बगल में छोटी-सी दरी दबाए, डिब्बे में **गिलौरियाँ** भरे, गोमती पार की एक पुरानी मस्जिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसफुद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तम्बाकू, चिलम और मदरिया ले लेते और मस्जिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भरकर शतरंज खेलने बैठ जाते थे। *फिर उन्हें दीन-दुनिया की फिक्र न रहती थी।* किश्त, *शह* आदि दो एक शब्दों के सिवा उनके मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूख मालूम होती, तो दोनों मित्र किसी **नानबाई** की दुकान पर जाकर खाना खाते और एक चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम-क्षेत्र में डट जाते। कभी-कभी तो उन्हें भोजन का भी ख्याल न रहता था।

युगीन परिस्थितियाँ और पलायनवादी दृष्टि

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कम्पनी[1] की फौजें लखनऊ की तरफ बढ़ी चली आती थी। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को लेकर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी ज़रा भी फिक्र न थी। वे घर से आते तो गलियों में होकर। डर था कि कहीं किसी बादशाही **मुलाजिम** की निगाह न पड़ जाए, जो **बेगार** में पकड़े जाएँ। हजारों रुपये सालाना की जागीर मुफ्त ही हजम करना चाहते थे।

लखनऊ में अंग्रेजी सेना का प्रवेश

एक दिन दोनों मित्र मस्जिद के खंडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे मीर की बाजी कुछ कमजोर थी। मिरजा साहब उन्हें किश्त-पर-किश्त दे रहे थे इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिए। वह गोरों की फौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिए आ रही थी।

मीर साहब बोले — अंग्रेजी फौज आ रही है; खुदा खैर करे।

मिरज़ा — आने दीजिए, किश्त बचाइए। यह किश्त।

मीर — जरा देखना चाहिए, यहीं आड़ में खड़े हो जाएँ।

मिरज़ा — देख लीजिएगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त!

मीर — तोपखाना भी है! कोई पाँच हजार आदमी होंगे। कैसे-कैसे जवान हैं। लाल बन्दरों के-से मुँह! सूरत देखकर **खौफ़** मालूम होता है।

मिरज़ा — जनाब, हीले न कीजिए। ये चकमे किसी और को दीजिएगा। यह किश्त!

मीर — आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ तो शहर पर आफत आयी हुई है और आपको किश्त की सूझी है! कुछ इसकी भी खबर है कि शहर घिर गया तो घर कैसे चलेंगे?

मिरज़ा — जब घर चलने का वक्त आएगा, तो देखी जाएगी — यह किश्त! बस, अब की शह में मात है।

फौज निकल गयी। दस बजे का समय था। फिर बाजी बिछ गई।

मिरज़ा बोले — आज खाने की कैसे ठहरेगी?

मीर — अजी, आज तो रोजा है। क्या आपको ज्यादा भूख मालूम होती है?

मिरज़ा — जी नहीं! शहर में न जाने क्या हो रहा है!

मीर — शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुजूर नवाब साहब भी ऐशगाह में होंगे।

युगीन त्रासदी

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे, तो तीन बज गए। अब की मिरज़ाजी की बाजी कमजोर थी। चार का **गजर** बज ही रहा था कि फौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली पकड़ लिए गए थे और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिये जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूंद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शान्ति से, इस तरह खून बहे बिना न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े-बड़े कायर भी आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बन्दी चला जाता था और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

लखनऊ अंग्रेजों के अधिकार में

मिरज़ा ने कहा — हुजूर नवाब साहब को जालिमों ने कैद कर लिया है।

मीर — होगा, यह लीजिए शह।

मिरज़ा — जनाब, जरा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत नहीं लगती बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे।

मीर — रोया ही चाहें। यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा? यह किश्त!

गिलौरियाँ: पान के बीड़े, शह: शतरंज के बादशाह को दी गयी किश्त, नानबाई: रोटी और शोरबा बेचने का पेशा करने वाला, मुलाजिम: नौकर, बेगार: मजदूरी दिये बिना कराया जाने वाला काम, खौफ़: डर, गजर: घंटा

[1] ईस्ट इंडिया कंपनी, ब्रिटेन की वह व्यापारिक कंपनी थी जिसने उस युग में भारत की कई रियासतों पर अधिकार कर लिया था।

वाजिदअली शाह की गिरफ्तारी

मिरज़ा — किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।

मीर — हाँ; सो तो है ही — यह लो, फिर किश्त! बस, अब की किश्त में मात है, बच नहीं सकते।

मिरज़ा — खुदा की कसम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुःख नहीं होता। हाय, गरीब वाजिदअली शाह!

मीर — पहले अपने बादशाह को तो बचाइए, फिर नवाब साहब का मातम कीजिएगा। यह किश्त और यह मात! लाना हाथ!

बादशाह को लिये हुए सेना सामने से निकल गयी। उनके जाते ही मिरज़ा ने फिर बाजी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा — आइए; नवाब साहब के मातम में एक **मरसिया** कह डालें। लेकिन मिरज़ा की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे।

बोध प्रश्न

6 अंग्रेजों की सेना ने लखनऊ में क्यों प्रवेश किया?

क) लखनऊ पर अधिकार करने के लिए
ख) शहर में शांति स्थापित करने के लिए
ग) वाजिदअली शाह की सुरक्षा के लिए [ ]

7 मिरज़ा, वाजिदअली शाह की गिरफ्तारी पर चिंता क्यों व्यक्त करते हैं?

क) राजभक्ति के कारण
ख) शतरंज की बाज़ी हारने की आशंका से
ग) अंग्रेजों से नफरत के कारण [ ]

8 मीर और मिरज़ा शहर से दूर शतरंज खेलने क्यों जाने लगे?

क) वे कायर थे।
ख) उनमें राजभक्ति नहीं थी।
ग) शतरंज की लत के आगे उनके लिए कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं था। [ ]

4

खंडहर में शतरंज

शाम हो गई। खंडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोसलों में चिमटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। मिरजाजी तीन बाजियाँ लगातार हार चुके थे; इस चौथी बाजी का रंग भी अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़ निश्चय करके सँभलकर खेलते थे, लेकिन एक-न-एक चाल ऐसी बेढब आ जाती थी, जिससे बाजी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार भावना और भी उग्र होती जाती थी। उधर मीर साहब मारे उमंग के गज़लें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गए हों। मिरज़ाजी सुन-सुनकर झुंझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे। पर ज्यों-ज्यों बाजी कमजोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकला जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुंझलाने लगे—जनाब, आप चाल बदला न कीजिए। यह क्या कि एक चाल चले, और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो, एक बार चल दीजिए। यह आप मुहरे पर हाथ क्यों रखते हैं? मुहरे को छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छुइए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध घण्टे में चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पांच मिनट से ज्यादा लगें, उसकी मात समझी जाए। फिर आपने चाल बदली! चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिए।

मीर और मिरज़ा में तकरार

मीर साहब का फरजी पिटता था। बोले — मैंने चाल चली ही कब थी?

मिरज़ा — आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिए — उसी घर में!

मीर — उस घर में क्यों रखूँ? मैंने हाथ से मुहरा छोड़ा ही कब था?

मिरज़ा — मुहरा आप क़यामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी? फरजी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे।

मीर — धाँधली आप करते हैं। हार-जीत *तक़दीर* से होती है; धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।

मिरज़ा — तो इस बाजी में तो आपकी मात हो गई।

मीर — मुझे क्यों मात होने लगी।

मिरज़ा — आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रखा था।

मिर — वहां क्यों रखूं? नहीं रखता।

मिरज़ा — क्यों न रखिएगा। आपको रखना होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था, न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिरज़ा बोले — किसी ने खानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके क़ायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किए, आप शतरंज क्या खेलिएगा। **रियासत** और ही चीज है। जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर — क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आ रहे हैं।

मिरज़ा — अजी, जाइए भी, गाजीउद्दीन हैदर के यहां बावरची का काम करते-करते उम्र गुजर गई, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं है।

मीर — क्यों अपने बुजुर्गों के मुँह में कालिख लगाते हो — वे ही बावरची का काम करते होंगे। यहां तो हमेशा बादशाह के दस्तरख़्वान पर खाना खाते चले आये हैं।

मिरज़ा — अरे चल **चरकटे**, बहुत बढ़-बढ़कर बातें न कर।

मीर — जबान सँभालिए, वरना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँख दिखायीं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला?

मिरज़ा — आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर आइए। आज दो-दो हाथ हो जाएँ, इधर-या-उधर।

मीर और मिरज़ा में लड़ाई

मीर — तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन?

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी जमाना था; सभी तलवार, **पेशक़ब्ज़**, कटार वगैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे, कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था — बादशाह के लिए, बादशाहत के लिए क्यों मरें; पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैंतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाजें आईं। दोनों जख्म खाकर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प-तड़पकर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों में एक बूँद आँसू न निकला, उन दोनों प्राणियों ने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिये।

अंधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानो इन वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे!

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खंडहर की टूटी हुई महरावें, गिरी हुई दीवारें और धूलि-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।

मीर और मिरज़ा का अंत

टेकः हठ, **रियासतः** राज्य, **चरकटेः** चारा काटने वाला, **पेशक़ब्ज़ः** छोटी कटार

बोध प्रश्न

9 लखनऊ पर किसने अधिकार किया।
   क) ब्रिटिश सेना ने
   ख) वाजिदअली शाह की सेना ने
   ग) ईस्ट इंडिया कंपनी की फ़ौज ने [ ]

10 i) मीर और मिरज़ा के नाम बताइए।
   क) मीर का नाम : ....
   ख) मिरज़ा का नाम : ....

ii) "अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों में एक बूँद आँसू न निकला" इस वाक्यों में किस बादशाह की ओर संकेत हैं।

....

iii) नवाब वाजिदअली शाह के समय के लखनऊ की कोई दो विशेषताएँ बताइए।
   क) ....
   ख) ....

6.3 कहानी का सार

आइए, कहानी की समीक्षा में प्रवेश करने से पहले कहानी का सार जान लिया जाए। यह कहानी वाजिदअली शाह के समय की है जब लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। मिरज़ा सज्जाद अली और मीर रोशन अली अपना अधिकांश समय शतरंज खेलने में बिताते थे। दोनों मित्र नाश्ता करके खेलने बैठ जाते और देर रात तक खेलते रहते थे। चूंकि मिरज़ा के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था इसलिए यहाँ खेल उन्हीं के यहां होता था। मिरज़ा की बेगम साहिबा इस खेल से बहुत चिढ़ती थीं।

एक दिन सिर दर्द का बहाना बना कर मिरज़ा को अंदर बुलाया। मिरज़ा नहीं आये। मीर बाजी हार रहे थे इसलिए उन्होंने मिरज़ा को ज़बरदस्ती अंदर भेजा। बेगम साहिबा गुस्से में थीं और उनका गुस्सा मीर साहब पर ज्यादा था इसलिए मिरज़ा के मना करने पर भी वे कमरे के अंदर गयीं और शतरंज की बाजी उलट दी। मीर साहब कमरे के बाहर टहल रहे थे। भीतर का रंग-ढंग देख कर भाग खड़े हुए।

फिर मीर साहब के यहां बाजी जमने लगी। मीर साहब की बेगम साहिबा मीर साहब के बाहर रहने से बहुत खुश थीं क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में वे अपने प्रेमी से बेखटका मिलती रहती थीं। इस नयी परिस्थिति से उनके इस कार्य में बाधा उपस्थित हो गयी। अतः उनका प्रेमी एक दिन सरकारी घुड़सवार बनकर मीर साहब की खोज करता हुआ उनके घर पहुंचा और बताया कि उन्हें मोरचे पर जाना पड़ेगा। यह सुनकर मीर साहब के होश उड़ गये और दूसरे दिन से बाज़ी गोमती के किनारे के एक खंडहर में जमने लगी।

देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। अंग्रेज़ कंपनी की फौजें लखनऊ की ओर बढ़ती जा रही थीं। शहर में हलचल मची हुई थी किन्तु मिरज़ा और मीर इन सबसे निश्चिंत होकर शतरंज खेलने में मग्न थे। बादशाह वाजिदअली शाह पकड़ लिए गए थे। उन्हें लिये हुए सेना सामने से निकल गयी। उनके जाते ही फिर बाजी बिछ गयी। खेल में हार-जीत को लेकर दोनों में कहा-सुनी हो गई और बात ही बात में तलवारें निकल गयीं और दोनों की लाशें बिछ गयीं।

6.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या

हमने इकाई 4 में 'उसने कहा था' कहानी के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या की थी। उन व्याख्याओं के आधार पर आपने भी कुछ अन्य अंशों की व्याख्या की होगी। इस कहानी के भी एक महत्वपूर्ण अंश की व्याख्या का प्रयास हम करेंगे। इसको आधार बनाकर आप स्वयं कहानी के अन्य अंशों की व्याख्या कर सकते हैं।

उद्धरण:

"शहर में कोई हलचल थी न मारकाट। एक बूंद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह खून बहे बिना न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था जिस पर बड़े-बड़े कायर भी आंसू बहाते हैं।"

संदर्भ:

प्रस्तुत पंक्तियाँ हिंदी के महान् कथाकार प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' से उद्धृत की गई हैं। वाजिदअली शाह के समय में लखनऊ का वातावरण अत्यंत विलासी हो गया था। उसी वातावरण में मिरज़ा और मीर शतरंज खेलने में डूबे हुए थे। उन्होंने खंडहर में शतरंज खेलते हुए देखा कि गोरों की फौज लखनऊ में प्रवेश कर रही है।

फिर थोड़ी देर बाद देखा कि वह वाजिदअली शाह को पकड़ कर ले जा रही है। बादशाह की गिरफ्तारी पर पूरा लखनऊ शांत रहा, किसी ने गिरफ्तारी का विरोध नहीं किया। इसी संदर्भ में लेखक ने ये वाक्य लिखे हैं।

व्याख्या : अपने बादशाह के पकड़े जाने पर प्रजा में हलचल मच जाती है। लोग अपने बादशाह को छुड़ाने के लिए मारकाट करते हैं, मरते-मारते हैं। वीर प्रजा के यही लक्षण होते हैं किन्तु लखनऊ की प्रजा विलासिता में डूबी हुई थी. उसे अपने बादशाह के प्रति कोई लगाव नहीं था, उसमें कोई राजनीतिक और सामाजिक चेतना नहीं थी, इसलिए बादशाह की गिरफ्तारी का विरोध न कर वह अपने-अपने विलासी कर्मों में डूबी रही। किसी ने प्रतिरोध ही नहीं किया, इसलिए किसी का रक्त बहने का प्रश्न ही कहाँ था? लेखक टिप्पणी करता हुआ कहता है कि स्वाधीन देश की प्रजा में स्वाधीनता की चेतना और ऊर्जा होती है और चूंकि बादशाह स्वाधीन देश का शासक होता है प्रजा के सुख-चैन का रखवाला होता है। उसके विकास की चिंता करता है तथा वह देश की एकता का प्रतीक होता है अतः प्रजा उसे प्यार करती है, उस पर जान निछावर करती है और उस पर आयी हुई आपत्ति को देश पर आयी हुई आपत्ति मानकर उसके बचाव के लिए लड़ती है, खून बहाती है। बादशाह की पराजय होती भी है तो आसानी से नहीं, दुश्मनों के छक्के छूट जाते हैं। किन्तु इस राजा में और इस प्रजा में देश की यह चेतना ही नहीं थी, इसलिए विलासी प्रजा ने अपने विलासी बादशाह को आसानी से गिरफ्तार हो जाने दिया। मोटे तौर पर इसे अहिंसा कहा जा सकता है किन्तु यह अहिंसा नहीं कायरता थी। अहिंसावादी सत्य और न्याय के लिए संघर्ष करता है वह अपने प्राण देकर भी उसकी रक्षा करता है। उससे भागता नहीं है। अहिंसावादी बहुत बड़ा योद्धा होता है जो मानवतावादी मूल्यों की रक्षा में अपने को बलिदान कर देता है और उसके इस कृत्य पर देवता प्रसन्न होते हैं। देवता उच्च मूल्यों के प्रतीक हैं अतः वे मनुष्य के उच्च कार्यों से तृप्त होते हैं, उसे आशीष देते हैं। अतः लखनऊ के विलासियों की यह निष्क्रियता अहिंसा नहीं थी, यह कायरता की चरम सीमा थी। यह उस कोटि की भयानक कायरता थी जिसे देखकर बड़े-बड़े कायर भी दुखी होते हैं, रोते हैं। यानी वे भी इस कायरता को देखकर दुःख से कह उठते हैं कि ये कितने बड़े कायर हैं।

विशेष :

1 यह उद्धरण कहानी के मूल कथ्य को स्पष्ट करने के लिए स्वयं कथाकार द्वारा कहा गया है ताकि इससे उस युगीन त्रासदी को और गहराई से समझा जा सके।

2 इस अंश की भाषा सहज, सरल और बोलचाल के नज़दीक है। ऐसी भाषा के द्वारा प्रेमचंद अपने विचारों को पाठकों तक पहुँचाने में पूरी तरह सफल नज़र आते हैं।

अभ्यास

आपने ऊपर के उद्धरण की संदर्भ सहित व्याख्या ध्यान से पढ़ी होगी। अब आप नीचे दी गयी पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए। आपकी सहायता के लिए हमने संकेत भी दे दिये हैं। और अधिक स्पष्टता के लिए कहानी को दुबारा पढ़िए।

1 "अपने बादशाह के लिए जिनकी आंखों से एक बूँद आँसू न निकला, उन दोनों प्राणियों ने शतरंज के वज़ीर की रक्षा में प्राण दे दिये।"

संदर्भ : (कहानीकार व कहानी के नाम का उल्लेख)

....

मीर और मिरज़ा का शतरंज खेलने के लिए शहर से दूर खंडहर पर जाना

....

लखनऊ में अंग्रेजों की फौज का प्रवेश

....

वाजिदअली शाह बंदी

....

व्याख्या :

युगीन त्रासदी

....

....

मीर और मिरज़ा का पतन

....

....

युगीन पतन का प्रतीक

....

....

विशेष:

1 कथ्य की विशेषता : स्थिति का अंतर्विरोध

....

2 भाषा की विशेषता : बोलचाल, सहज, सरल

....

....

2 "पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों।"

संदर्भ:

लेखक व कहानी का नाम (पूर्वानुसार)

....

....

....

....

व्याख्या:

खेल के प्रति लगाव

....

....

समाज और राष्ट्र के प्रति पूरी उदासीनता

....

....

....

खेल के दाँव-पेंच को ही जीवन संघर्ष समझना

....

....

विशेष :
कहानी को पढ़कर लिखिए

....

....

....

....

6.5 कथावस्तु

कथ्य का आधार—इस कहानी के कथ्य या संवेदना से गुज़रने के बाद आपको इसकी कथावस्तु के स्वरूप की पहचान करनी है। कथावस्तु का निर्माण घटनाओं तथा पात्रों के पारस्परिक संयोग से होता है। कुछ कथानक ऐसे होते हैं जिनकी निर्मिति में परिवेश की भी बहुत बड़ी हिस्सेदारी होती है। वास्तव में कथ्य के अनुसार ही कथावस्तु का स्वरूप बनता है, उसी के अनुसार कभी घटनाएँ प्रधान हो जाती हैं, कभी चरित्र और कभी परिवेश या वातावरण। इस कहानी में घटनाओं की कोई ख़ास भूमिका नहीं है उनके स्थान पर एक विशेष परिवेश के छोटे-छोटे दैनिक संदर्भ आते हैं जो कहानी को आगे ले जाते हैं। मुख्य भूमिका चरित्रों और परिवेश की है।

आप ऊपर पढ़ चुके हैं कि इस कहानी में शतरंज के दो खिलाड़ियों मिरजा और मीर के शतरंजी दांव-पेंचों तथा मनःस्थितियों का सजीव चित्रण हुआ है किन्तु कहानी का कथ्य केवल इतना ही नहीं है। इन दोनों खिलाड़ियों के माध्यम से लेखक ने पतनशील समाज की गतिविधियों और विनाश की भी तस्वीर दी है इसलिए लेखक ने इन दोनों पात्रों को वाजिदअली शाह के ज़माने के लखनऊ के वातावरण में उपस्थित किया है और साथ ही इनकी गतिविधियों को सामाजिक गतिविधियों से बार-बार ताना है। ये जिस समय और समाज में जी रहे थे उसके अनुकूल ही हैं। इसलिए इन्हें चित्रित करने के लिए लेखक ने इनके समय के लखनऊ को भी चित्रित किया है और जब ये शतरंज खेल रहे होते हैं तब इनकी चालों के साथ-साथ समाज और राजनीति में घटित घटनाओं को भी लेखक दिखाता है—मसलन लखनऊ में कंपनी के सिपाहियों का आना और वाज़िदअली शाह को गिरफ्तार कर ले जाना आदि। इन बड़ी घटनाओं से निर्लिप्त रह कर ये शतरंज खेलते रहते हैं। यह क्रिया शतरंज के खिलाड़ियों की सहज निष्क्रियता को तो सूचित करती ही है एक समय के समाज की पूरी पतनशील मानसिकता को भी घोतित करती है।

यह कहानी ऐतिहासिक यथार्थ पर आधारित है। इसमें वाजिदअली शाह, कंपनी द्वारा उनकी गिरफ्तारी तो ऐतिहासिक सच्चाई है ही, उस काल की सामाजिक और राजनीतिक ज़िन्दगी की जो तस्वीर पेश की गयी है, यानी जो परिवेश है उसमें भी ऐतिहासिक सच्चाई है। मिरज़ा और मीर काल्पनिक पात्र होकर भी उस काल की विलासी मनोवृत्ति के सच्चे प्रतिनिधि पात्र हैं। बल्कि यों कहा जाए कि इन काल्पनिक पात्रों की कथा के माध्यम से ही लेखक ने उस समय की कथा कही है। इसलिए काल्पनिक पात्रों की कथा का बहुत महत्त्व है और यह देखना होगा कि यह कथा कितने सलीके से कही गयी है। प्रेमचंद कहानी को मोड़ देने के लिए प्रायः कुछ मार्मिक घटनाओं का सहारा लेते हैं किन्तु इस कहानी के निर्माण और विकास में घटनाओं का सृजन नहीं किया गया है, बल्कि छोटे-छोटे सहज संवादों से काम लिया गया है। आइए देखें :

मिरज़ा और मीर दोनों आर्थिक समस्या से मुक्त जागीरदार हैं इसलिए निश्चिंत होकर शतरंज खेल सकते हैं ख़ेलते हैं। यानी उस काल के पतनशील विलासी वातावरण से उपजे इन दोनों खिलाड़ियों को शतरंज खेलते रहने की सुविधा है। बाज़ी जमती है मिरजा के यहाँ। जैसाकि स्वाभाविक है दिन-रात शतरंज में लिप्त पति से पत्नी उपेक्षिता महसूस करती है। मिरजा की बीवी इसीलिए इस खेल से झल्लाती है। मिरज़ा को भला-बुरा कहती है और मिरज़ा सारा दोष मीर पर डाल देते हैं। एक दिन मिरजा की बेगम साहिबा गुस्से में शतरंज की बाजी उलट-पुलट देती हैं और उन दोनों को मजबूर होकर जगह बदलनी पड़ती है। अब बाजी मीर के यहाँ जमती है किन्तु मीर की बेगम साहिबा को अब अपने प्रेमी से

मिलने में दिक्कत होने लगती है और सरकारी घुड़सवार के रूप में अपने प्रेमी को भेजकर मीर को (और मिरज़ा को भी) धमकवा देती हैं। दोनों को डर है कि कहीं उन्हें पकड़ कर युद्ध में न भेज दिया जाए। अतः वे दोनों ऐसी जगह जाना चाहते हैं जहाँ कोई देख न सके। इसके लिए वे शहर से दूर एक खंडहर का चुनाव करते हैं। वे अंधेरे में निकल जाते हैं और अंधेरे में लौटते हैं। और एक दिन उसी खंडहर में लड़कर मर जाते हैं। मिरज़ा और मीर के समान ही पतनशील समाज का भी अंत समाज के खंडहर में ही होता है। यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि मिरज़ा और मीर के शतरंज खेलने के पीछे कोई घटना नहीं है, परिवेश है, उनके स्थान बदलने के पीछे कोई घटना नहीं है घरेलू संदर्भ है और दोनों के कट कर मर जाने के पीछे भी कोई घटना नहीं है, उनकी शतरंज सुलभ बातचीत और मानसिकता है। इसलिए इस कहानी का कथानक बहुत सहज माना गया है और इस कहानी की गणना प्रेमचंद की उन गिनीचुनी कहानियों में होती है जो पात्रों और परिवेश से संचालित होने के कारण अधिक सहज प्रतीत होती हैं। यानी जिनमें ऐसा लगता है कि कोई कहानी नहीं कही जा रही है, बल्कि जीवन का एक टुकड़ा ही जीवंतता और सच्चाई के साथ मूर्त कर दिया गया है।

बोध प्रश्न

11 मीर और मिरज़ा का शतरंज खेलना क्या व्यक्त करता है?

क) दोनों अच्छे खिलाड़ी थे।
ख) उस युग में शतरंज खेलने का बड़ा चलन था।
ग) उस युग में उच्च वर्गीय लोग विलासिता में डूबे हुए थे।
घ) शतरंज में लोग घर-परिवार को भूल जाते हैं। [ ]

12 मीर और मिरज़ा युद्ध में जाने से क्यों बचना चाहते हैं?

क) मीर और मिरज़ा को युद्ध से घृणा थी?
ख) मीर और मिरज़ा सामाजिक दायित्व बोध के प्रति उदासीन थे।
ग) दोनों कायर थे।
घ) वे वाजिदअली शाह को नापसंद करते थे। [ ]

13 बिना युद्ध किये लखनऊ पर अंग्रेजों का कब्जा करना क्या बताता है?

क) वह समाज पूरी तरह से पतित हो चुका था।
ख) लोगों में राष्ट्रीय भावना का अभाव था।
ग) समाज का उच्च वर्ग विलासिता में डूबा हुआ था।
घ) ऊपर के तीनों उत्तर सही। [ ]

14 मीर और मिरज़ा के शतरंज खेलने और वाजिदअली शाह के बंदी बनाए जाने में क्या संबंध था? दो-तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

15 'शतरंज के खिलाड़ी' को किन आधारों पर ऐतिहासिक कहानी कह सकते हैं? तीन कारण बताइए।

i) ....

....

ii) ....

....

iii) ....

....

.6 चरित्र चित्रण

स कहानी में मुख्यतः दो ही पात्र हैं — मिरज़ा और मीर तथा गौण रूप में मिरज़ा तथा मीर की बेगमें आयी हैं। वास्तव में न दो पात्रों को एक विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए गढ़ा गया है — यानि एक पतनशील समाज में शतरंज के दो खिलाड़ियों

को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि शतरंज के परिवेश की उनकी मानसिकता और गतिविधियों की तो तस्वीर उभरे ही, साथ ही उनके माध्यम से पतनशील समाज के व्यक्तियों की भी तस्वीर उभरे। वे दोनों पात्र परिवार या समाज की किसी समस्या से नहीं टकराते और टकराहट से उत्पन्न होने वाली मानसिक ऊहा-पोह से नहीं गुज़रते केवल शतरंज खेलते हैं इसलिए इनके चरित्र के कुछ निजी और विशिष्ट पहलू नहीं उभरते। वे दोनों उच्च वर्ग और ऊँची हैसियत के हैं और दोनों शतरंज खेलते हुए शतरंजी बोली बोलते हैं। दोनों शह और मात के बारे में सोचते हैं जब मीर की बाजी कमजोर पड़ती है तब वे समाज की ओर देखते हैं और मिरज़ा उन्हें बाजी की ओर घसीटते हैं और जब मिरजा की बाजी कमजोर पड़ती है तब उन्हें समाज की चिन्ता हो उठती है और मीर उन्हें घसीटते हैं। जीत की मानसिकता में कभी एक गुनगुनाता है कभी दूसरा। कभी एक झल्लाता है कभी दूसरा। और दोनों इसी झल्लाहट की चरम सीमा पर पहुंच कर जान दे देते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ये दोनों ऐसे वर्गीय पात्र हैं जो एक विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए रखे गये हैं। उनके चारित्रिक वैशिष्ट्य को उभारना लेखक का उद्देश्य नहीं है। इनकी अपेक्षा इनकी पत्नियों में चरित्र की निजी विशेषताएँ ज्यादा उभरी हैं। मिरज़ा की बीवी शतरंज का विरोध करती है क्योंकि वह इस मनहूस खेल के मारे मिरज़ा का साहचर्य नहीं प्राप्त कर पाती। दूसरी ओर मीर की बेगम व्यक्तिगत कारणों से मीर को शतरंज खेलने के लिए उत्साहित करती है किन्तु अपने घर में नहीं, बाहर। वह मिरज़ा की बेगम के विपरीत मीर के साहचर्य से बचना चाहती है। लेखक ने मिरज़ा और मीर के बीच चारित्रिक वैशिष्ट्य की रेखा भले न खींची हो, किन्तु उन दोनों को शतरंज के खिलाड़ियों की भूमिका में पूरी तरह उतारा है। यानी लेखक ने उनकी मानसिकता और क्रियाकलापों को बड़े कौशल से उभार कर उन्हें शतरंज के दो खिलाड़ियों का चरित्र प्रदान किया है। दोनों ही बहुत यथार्थ और जीवंत लगते हैं।

बोध प्रश्न

16 मीर और मिरज़ा के चरित्र से संबंधित निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

i) मीर और मिरज़ा किस वर्ग के थे?

....

ii) मीर और मिरज़ा वर्गीय चरित्र हैं या व्यक्ति चरित्र?

....

iii) शतरंज के खेल ने उनके परिवार पर क्या असर डाला?

....

iv) शतरंज का खेल उनकी किस प्रवृत्ति को बताता है?

....

v) इस खेल ने समाज के प्रति उनके दायित्व को कैसे प्रभावित किया?

....

vi) मिरज़ा की पत्नी शतरंज के खेल का विरोध क्यों करती है?

....

vii) मीर और मिरज़ा की पत्नियों के भिन्न स्वभावों का मूल कारण क्या है?

....

6.7 परिवेश

कथा में परिवेश (वातावरण या देशकाल) का महत्त्व कई दृष्टियों से होता है। एक तो वह कथा को स्थान और समय की पृष्ठभूमि प्रदान कर उसके स्वरूप को मूर्त करता है और विश्वसनीय बनाता है, दूसरे वह कभी-कभी कथा के सर्जक तत्त्व के रूप में भी काम करता है। यानी उसके माध्यम से कथा बनती है। प्रस्तुत कहानी में परिवेश उपर्युक्त दोनों रूपों में विद्यमान है।

परिवेश का अर्थ है वह देश और काल जिसके बीच घटनाएँ घटित होती हैं, चरित्र बनते और विकसित होते हैं। यह परिवेश प्राकृतिक भी होता है और सामाजिक भी। प्राकृतिक परिवेश में दिन-रात, सुबह-शाम, मौसम-ऋतु, नदी-नाले, खेत-खलिहान आदि अनंत बातें आ सकती हैं और सामाजिक परिवेश में मेले, पर्व, परिवार तथा समाज की विभिन्न स्थितियाँ, चौपाल, पंचायत, शहर-गाँव, कस्बे की ज़िन्दगी आदि न जाने कितनी बातें आ सकती हैं। इस कहानी में मुख्यतः सामाजिक परिवेश है किन्तु कहीं-कहीं प्राकृतिक परिवेश भी आया है।

ई जगह इस बात की चर्चा हो चुकी है कि इस कहानी में वाजिदअली शाह के समय के लखनऊ के विलासी जीवन का रिवेश चित्रित किया गया है। लेखक ने कहानी के आरंभ में ही इस विलासी समाज का बहुत ही जीवंत बयान किया है और मरज़ा तथा मीर की शतरंजी खेल वाली कहानी को एक पुष्ट आधार दिया है। चूंकि शतरंज के खेल वाली यह कहानी केवल ो व्यक्तियों के खेल की कहानी नहीं है, बल्कि समाज की विलासिता के खेल की कहानी है, इसलिए लेखक ने इस खेल को क विशेष वातावरण की पृष्ठभूमि पर खड़ा किया और फिर खेल खेलने वाले व्यक्तियों के पारिवारिक परिवेश को भी चित्रित किया। शतरंज के दोनों खिलाड़ी जागीरदार हैं, अतः उनका आर्थिक परिवेश उन्हें निश्चित भाव से खेल खेलने की छूट देता । लेखक इन दोनों खिलाड़ियों के पारिवारिक परिवेश का चित्रण कर खेल की कहानी को गतिशील करता है। ये दोनों खलाड़ी दो भिन्न कारणों से अपने घर में खेल नहीं पाते। यानि उनके पारिवारिक परिवेश उन्हें खंडहर में खेल खेलने के लिए ाध्य करते हैं और खेल खेलते समय दोनों के द्वंद्व और मरण की जो घटना घटी है वह संभवतः परिवार में नहीं घटित होती। आप देख चुके हैं कि कैसे खंडहर में खेल खेलते हुए इन खिलाड़ियों के सामने से बड़ी-बड़ी राजनीतिक घटनाएँ घटती हुई नकल जाती हैं और ये उनसे उदासीन होकर अपने-अपने वज़ीरों के बचाव में लगे होते हैं और अपनी जान दे देते हैं। यानी ो खिलाड़ी अपने बादशाह के बंदी बनाये जाने पर दो बूंद आंसू नहीं बहाते, वे ही अपने शतरंजी वज़ीरों की रक्षा के लिए अपनी जान दे देते हैं। इस तरह खंडहर के परिवेश में चलते हुए इस खेल से सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में चलती ई घटनाएँ टकराती हैं और शतरंज के खेल के माध्यम से जो विलासी पतनशील जीवन चित्रित किया गया है, उसकी विडंबना ो और गहराती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवेश केवल पृष्ठभूमि के रूप में ही काम नहीं करता वह मानव पात्रों की रह कथा को बनाने और विकसित करने में, उसके प्रभाव को गहराने में भूमिका अदा करता है।

ाकृतिक परिवेश के रूप में खंडहर का चित्र प्रस्तुत किया गया है। खंडहर यों तो मकान के रूप में सामाजिक परिवेश के ीतर आता है किन्तु यह जनशून्य हो जाने के बाद और प्रकृति के सन्नाटे का एक अंग बन जाने के बाद प्राकृतिक परिवेश ; अंदर समाविष्ट हो जाता है। लेखक ने दो पंक्तियों में इस खंडहर की शाम का कैसा प्रभावशाली चित्र खींचा है। शाम हो यी। खंडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ-आ कर अपने-अपने घोसलों में चिमटीं, पर दोनों खिलाड़ी टे हुए थे, मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। यह प्राकृतिक दृश्य खंडहर का स्वाभाविक दृश्य है किन्तु ाखक ने केवल स्वाभाविकता के विधान के लिए यह चित्रण नहीं किया है बल्कि इससे वह मिरज़ा और मीर की शतरंज ायता को गहराता है और भावी घटनाओं की ओर संकेत करता है। शाम हो गयी है। खंडहर में निवास करने वाले पक्षी ांडहर में लौट आये हैं और उनकी चीख चिल्लाहट से खंडहर की शाम और भयावनी हो गयी है किन्तु ये दोनों खिलाड़ी अपने-अपने घरों को न लौट कर इस भयानक खंडहर में डटे हुए खेल में जुटे हैं। यानी पशु-पक्षी तक समय से अपने-अपने रों को लौट आते हैं चाहे वह घर खंडहर ही क्यों न हो किंतु ये दोनों विलासी मनोवृत्ति के मनुष्य, मनुष्य होकर भी अपने मृद्ध घरों को नहीं लौट रहे हैं और वे खेल ही नहीं रहे हैं लगता है मानो एक दूसरे के खून के प्यासे हों। इस उत्प्रेक्षा से ाखक ने भावी घटना की ओर संकेत भी कर दिया।

स तरह आपने देखा कि इस कहानी में परिवेश बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

ोध प्रश्न

7 इस कहानी के भाग 1 में से लखनऊ के विलासी जीवन और मिरज़ा के पारिवारिक परिवेश का चित्रण करने वाले दो अंशों को उद्धृत कीजिए।

क) लखनऊ का विलासी जीवन

....

....

....

ख) मिरज़ा का पारिवारिक परिवेश

....

....

....

8. क) कहानी के भाग 2 में से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का चित्रण करने वाले अंश को उद्धृत कीजिए।

....

....

....

....

ख) उपर्युक्त अंश के आधार पर अवध के पतन के दो कारण बताइए।

i) ....

ii) ....

6.8 संरचना-शिल्प

संरचना-शिल्प के अंतर्गत शैली, भाषा और संवाद पर विचार किया जाता है। यहाँ भी इन्हीं तीनों पक्षों पर संक्षेप में विचार किया गया है इससे आप कहानी की भाषिक और शैलीगत विशेषताओं को समझ सकेंगे।

6.8.1 शैली

अवलोकन बिन्दु (Point of View) की दृष्टि से देखें तो इस कहानी की शैली इतिहास-शैली है। यानी कहानीकार ने इतिहासकार की शैली में स्वयं कहानी कही है। इस शैली की विशेषता यह होती है कि लेखक सर्वज्ञ होता है, वह कहीं को और किसी समय की बात कह सकता है। इसके विपरीत आत्मकथा शैली में कोई पात्र कहानी कहता लगता है। कहानी कहता तो लेखक ही है किन्तु किसी पात्र के मुँह से ऐसी स्थिति में वह पात्र स्वयं जितना जानता है उतना ही कहता है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में लेखक अपने समय से बहुत पीछे जा कर लखनऊ को देखता है और उस समय के लखनऊ के विलासी समाज की गतिविधियों का बयान करता है और उसी वातावरण में से दो पात्रों को उठा कर कहानी कहता है।

कहानी की शैली पर विचार करने की एक और पद्धति है। यानी यह देखना होता है कि इस कहानी में वर्णन की प्रमुखता है कि चित्रण की कि नाटकीयता की। प्रेमचंद की कहानियों में वर्णन की प्रमुखता होती है यद्यपि अन्य दोनों बातें भी बीच-बीच में आती रहती हैं। इस कहानी में आपने देखा कि लेखक प्रारंभ में लखनऊ के वातावरण का, फिर मिरज़ा और मीर की हैसियत का, उनके पारिवारिक वातावरण का, उनकी शतरंजी चालों और हरकतों का, उनकी मनःस्थितियों का और उनकी लड़ाई का स्वयं वर्णन करता है और बीच-बीच में टिप्पणियाँ भी करता है। किन्तु यह बयान कहीं-कहीं चित्र में बदल गया है यानी बयान से कोई विशेष चित्र बन गया है जैसे खंडहर की शाम का चित्र या दोनों के कट मरने के बाद शतरंज का चित्र— "अंधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानों इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे! — चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खंडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूलि-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखतीं और सिर धुनती थीं।" वर्णन एक के बाद एक तथ्यों को उद्घाटित करता है और चित्र किसी दृश्य, मनःस्थिति या स्थिति का एक ऐसा क्रमबद्ध विधान होता है जो अपने भीतर से कोई प्रभाव फेंकता है और पाठक अपनी समझ के अनुसार उसे पकड़ता है।

6.8.2 संवाद

इस कहानी में नाटकीय तत्व भी है। संवाद नाटक का गुण है। वर्णन में लेखक स्वयं उपस्थित रहता है और संवाद में वह दो पात्रों को कथा सूत्र पकड़ाकर स्वयं हट जाता है। संवाद में दो या कई पात्र परस्पर बातें करते हैं और उनकी बातों के माध्यम से ही कहानी आगे बढ़ती है, पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन होता है और कथा में एक रोचकता उत्पन्न होती है। जहां संवादों की बहुलता होती है कहानी की शैली नाटकीय हो जाती है। इस कहानी में बयान या वर्णन शैली के साथ-साथ संवाद शैली का भी खूब प्रयोग हुआ है। मिरज़ा और मीर के संवाद कहानी में भरे पड़े हैं। बीच-बीच में दो एक और पात्रों के छोटे-छोटे संवाद आये हैं। संवाद की कुछ विशेषताएँ होनी चाहिए — (1) वह पात्रों के स्वभाव और स्थिति के अनुकूल हो। प्रेमचंद अपने पात्रों से उन्हीं की भाषा में उनकी स्थिति और मनःस्थिति के अनुकूल संवाद करवाते हैं। इस कहानी में मिरज़ा और मीर दोनों ही उर्दू भाषी हैं, इसलिए उनकी भाषा में उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक है। दोनों शतरंज में डूबे हुए पात्र हैं, अतः उनके संवादों में शतरंज से संदर्भित मानसिकता व्यक्त हो रही है। वे अपने वातावरण के अनुसार निश्चित, विलासी और ऊँचे तबके के पात्र हैं इसलिए उनके संवादों में देश और काल में घटित होने वाली राजनीतिक और सामाजिक हलचलों से बेखबर मानसिकता के दर्शन होते हैं। यानी उनके संवाद उनके चरित्र और मनःस्थिति को खोलने में समर्थ हैं। (2) संवाद नाटकीय तत्व हैं अतः वे छोटे-छोटे होने चाहिए। तभी उनमें बातचीत की तेज़ी और खुलापन आता है। इस कहानी में ये विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। मिरज़ा और मीर, मिरज़ा और बेगम मिरज़ा के संवाद बहुत छोटे-छोटे हैं और इसलिए जल्दी-जल्दी आपस में टकराते चलते हैं। संवादों से कहानी आगे बढ़ती है। यदि वे भाषण हो जायेंगे तो कहानी एक स्थान पर देर तक ठहर जायेगी और नाटकीय वक्रता नहीं आयेगी। इस कहानी में हम देखते हैं कि मिरज़ा और बेगम मिरज़ा के संवादों से कहानी प्रभावित होती है और शतरंज का खेल मिरज़ा के घर के बजाए मीर के यहाँ होने लगता है। मीर के यहाँ बेगम मीर के प्रेमी और मीर के नौकर के बीच जो संवाद होता है उससे फिर कहानी एक नया मोड़ लेती है और शतरंज की बाज़ी खंडहर में जमने लगती है। वहाँ फिर दोनों खिलाड़ियों के बीच जो संवाद चलता है वह उन्हें युद्ध के बिन्दु पर ला पटकता है और दोनों लड़कर मर जाते हैं।

6.8.3 भाषा

कहानी में लेखक की भी भाषा होती है और पात्रों की भी। कुछ लेखक अपनी भाषा और पात्रों की भाषा में अंतर नहीं करते। प्रेमचंद की कहानियों में आने वाले पात्र अपनी स्थिति और मनःस्थिति के अनुरूप भाषा बोलते हैं। इस कहानी में पात्र ऊँचे तबके के मुस्लिम परिवेश के हैं। उस दौर में लखनऊ और उसके आसपास के क्षेत्रों में उच्च वर्गीय मुस्लिम परिवारों की भाषा उर्दू थी अतः प्रेमचंद की लेखकीय भाषा (यानी कहानी को बयान करने की भाषा) में भी उर्दू के शब्द अधिकता से आये हैं।

कुल मिलाकर प्रेमचंद की कहानियों की भाषा बोलचाल की बहती हुई भाषा होती है जिसमें पात्रों और परिवेश के अनुसार संस्कृत और उर्दू के तत्सम, तद्भव और कभी-कभी देशज शब्दों का प्रयोग होता है। इस कहानी में उत्तर भारतीय मुस्लिम

परिवेश के ही पात्र हैं, अतः लेखक के वर्णन और पात्रों के संवादों में उर्दू-मिश्रित जानदार भाषा दिखाई पड़ती है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में और भी जान आ गयी है। वाक्य छोटे-छोटे हैं और सहज प्रवाहशील हैं।

6.9 मूल्यांकन

कहानी के विश्लेषण के बाद उसका मूल्यांकन करना आसान हो जाता है। यहाँ मूल्यांकन का तात्पर्य कहानी के बारे में कोई निर्णय देना नहीं वरन् कहानी की मूल संवेदना या प्रतिपाद्य और शीर्षक की उपयुक्तता पर विचार करना है।

6.9.1 कहानी का प्रतिपाद्य

यह प्रश्न उठता है कि इस कहानी की मूल संवेदना या कथ्य क्या है? यानी कहानीकार ने कहानी में क्या कहना चाहा है। इसी को कहानी का उद्देश्य भी कह सकते हैं। शीर्षक के अनुसार कहा जा सकता है कि इस कहानी में शतरंज के दो खिलाड़ियों का चित्र खींचा गया है। हाँ, दो खिलाड़ियों का चित्र अवश्य खींचा गया है और उनकी सारी गतिविधियों और मनःस्थितियों को रूपांतरित किया गया है किंतु कहानी का कथ्य यही नहीं है। सामान्य अवस्था में शतरंज खेलने वाले खिलाड़ी ये नहीं हैं। ये अपने माध्यम से अपने समय के समाज को रूपांतरित करते हैं। इन खिलाड़ियों को पाठक के सामने लाने से पहले लेखक ने वाजिदअली शाह के समय के लखनऊ के विलासी और निष्क्रिय सामाजिक जीवन की तस्वीर खींची है। "—वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, ग़रीब-अमीर सभी विलासिता के रंग में डूबे हुए थे—संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर नहीं थी। — कहीं चौसर बिछी हुई है, पौ-बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। — शतरंज, ताश, गंजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है। ये दलीलें ज़ोरों के साथ पेश की जाती थीं। इसलिए मिरज़ा सज्जादअली और मीर रौशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी?"

कहानी के प्रारंभ में चित्रित वातावरण के ये कुछ अंश हैं। इनसे ज्ञात हो रहा है कि प्रस्तुत शतरंज का खेल अत्यंत प्रामाणिक होकर भी अपने आप में पर्याप्त नहीं है वरन् यह अपने देशकाल की गतिविधियों और मानसिकता का प्रतिनिधित्व कर रहा है। शतरंज का खेल हमारे समाज में अच्छा नहीं माना जाता। वह निकम्मों का खेल है किन्तु वाजिदअली शाह के ज़माने में तो जैसे सभी इस खेल में या इस जैसे विलासी खेलों में मशगूल थे। यानी पूरा समाज अपने दायित्व और कर्तव्यबोध से विमुख होकर पतनशील जीवन-सुख में लिप्त था। लोगों में सामाजिक कर्म के लिए अपने को बलिदान करने के स्थान पर अपने निजी राग-विराग के लिये मिटने की भावना थी। बड़े से बड़े सामाजिक और राष्ट्रीय हादसे हो जाने पर भी ये निश्चित रहते थे किन्तु निजी जीवन में घटित छोटी से छोटी घटना के लिये मर मिट सकते थे। लेखक ने लिखा है — 'नवाबी जमाना था, सभी तलवार, पेशकब्ज़ कटार वग़ैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे, कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था — बादशाह के लिये बादशाहत के लिये क्यों मरें, पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था।" इसलिए जो मीर और मिरज़ा कंपनी के सैनिकों के लखनऊ में घुसने और उनके द्वारा बादशाह वाजिदअली शाह के बंदी बनाये जाने की घटना देखकर भी निर्लिप्त रहे और अपने खेल में मस्त रहे, वे ही अपने-अपने शतरंजी वज़ीरों की रक्षा में चली गयी चालों को लेकर झगड़ पड़े और कहासुनी में उनका खानदानी अहंकार जाग उठा तथा एक दूसरे पर तलवार से वार कर मर गये। यह अंत शतरंज खिलाड़ियों का ही नहीं है वरन् एक पतनशील समाज का भी है जो मूल्यों और कर्तव्यों की रक्षा के लिये नहीं, अपनी विलासिता की पूर्ति के लिये जान देता है, जो सामाजिक और राजनीतिक चेतना से शून्य होकर केवल भोग विलास के लिये जीता है और नष्ट होता है।

6.9.2 शीर्षक की उपयुक्तता

इस कहानी का शीर्षक 'शतरंज के खिलाड़ी' बहुत सार्थक है। इस कहानी में मिरज़ा और मीर नामक दो व्यक्ति शतरंज के खेल में डूबे रहते हैं। शतरंज के खिलाड़ी जब शतरंज के खेल में डूबते हैं तब उन्हें दीन-दुनिया की ख़बर नहीं होती। वे इस निकम्मे खेल को खेलते रहने के लिए अपने घर वालों से भी अनेक बहाने बनाते हैं और सामाजिक दायित्व की उपेक्षा करते हैं तथा हार-जीत को लेकर स्वयं आपस में लड़ पड़ते हैं। इस कहानी में शतरंज के खेल की यह पूरी दुनिया चित्रित की गयी है और अंत में यह व्यंग्यपूर्वक दिखाया गया है कि अपने बादशाह के लिये जिनकी आंखों में एक बूँद आँसू न निकला, उन दोनों प्राणियों ने शतरंज के वज़ीर की रक्षा में प्राण दे दिये। यह शीर्षक लखनऊ के विलासी जीवन का प्रतीक भी बन गया है। इसलिए कह सकते हैं कि यह बहुत ही उपयुक्त शीर्षक है।

बोध प्रश्न

19 नीचे दिये गये अंशों में शैली की दृष्टि से भिन्नता बताइए।

क) वाज़िदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था .... रोजगार करने में लिप्त थे। (पृ. 45) [ ]

ख) अंधेरा हो चला था। बाज़ी बिछी हुई थीं .... सिर धुनती थी। (पृ॰ 51) [ ]

ग) कहानी का भाग 3
(पृ. 49 से पृ. 50 तक) [ ]

(नाटकीय, चित्रात्मक, वर्णनात्मक)

20 इस कहानी की तीन भाषिक विशेषताएँ बताइए।

क) ....

ख) ....

ग) ....

21 नीचे दिए गए प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

क) वाज़िदअली शाह के जमाने में उच्च वर्ग की क्या स्थिति थी?

....

....

ख) मीर और मिरज़ा के जीवन का सामाजिक पहलू क्या है?

....

....

ग) मीर और मिरज़ा की मृत्यु का राजनैतिक अर्थ क्या है?

....

....

घ) बादशाह को बंदी बनाए जाने पर भी दोनों का शतरंज खेलते रहना क्या व्यक्त करता है?

....

....

6.10 सारांश

आपने इस इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'शतरंज के खिलाड़ी' में 1857 के संग्राम से पूर्व की स्थिति का यथार्थ चित्रण है। प्रेमचंद ने इस कहानी में सामंती समाज की पतनशीलता को कथावस्तु का आधार बनाया है। आप इस कथावस्तु की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- कहानी के दो मुख्य पात्र हैं — मीर और मिरज़ा। ये वर्गीय चरित्र हैं और इनके माध्यम से उच्च सामंतवर्ग की विलासिता को व्यक्त किया गया है। आप इन दोनों पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ बता सकते हैं।
- इस कहानी का परिवेश सामंती है और प्रेमचंद ने इसे अत्यंत सजीव रूप में चित्रित किया है। आप इस कहानी की परिवेशगत विशेषताएँ बता सकते हैं।
- यह कहानी इतिहास शैली में लिखी गयी है, लेकिन यथार्थवादी ढंग से। इसकी भाषा और संवाद दोनों उस युग को जीवंत कर देते हैं। भाषा, संवाद और शैली की दृष्टि से आप कहानी की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- प्रेमचंद जी का उद्देश्य इस कहानी द्वारा उन कारणों को उजागर करना रहा है जो भारत की गुलामी के पीछे रहे हैं। राष्ट्रीय भावना का अभाव और उच्च वर्ग की विलासिता से कोई भी देश अपनी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकता। इसी परिप्रेक्ष्य में आप कहानी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण कर सकते हैं।

6.11 उपयोगी पुस्तकें

शर्मा, डॉ. रामविलास : **प्रेमचंद और उनका युग**, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

गुप्त, प्रकाशचंद्र : **प्रेमचंद**, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली।

मदान, इंद्रनाथ : **प्रेमचंद : एक विवेचन**, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

प्रश्न

) 2 ख) 3 क) 4 ग)
) 6 क) 7 ख) 8 ग)
)

i) क) मिरज़ा सज्जादअली
ख) मीर रोशनअली
ii) वाज़िदअली शाह
iii) क) उच्च वर्ग विलासिता में डूबा हुआ था।
ख) लोग राजनीति से विमुख थे।
ग) सामाजिक दायित्व बोध का अभाव था।

ग) 12 ख) 13 घ)

ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा बिना प्रतिरोध के वाज़िदअली शाह को बंदी बना लेना यह बताता था कि अवध के समाज में राजनीतिक चेतना का पूर्ण अभाव था। इसी अभाव की एक अभिव्यक्ति शतरंज का खेल था जिसमें दोनों जागीरदार डूबे रहते थे।

i) वाज़िदअली शाह से संबंधित तथ्य इतिहास पर आधारित हैं।
ii) वाज़िदअली शाह के समय का सामाजिक और राजनीतिक जीवन ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है।
iii) मीर और मिरज़ा काल्पनिक पात्र होकर भी उस काल की विलासी मनोवृत्ति के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

i) उच्च कुलीन वर्ग
ii) वर्गीय चरित्र
iii) मिरज़ा की पत्नी पति के साहचर्य के अभाव में कुंठित रहने लगी और मीर की पत्नी अपने पति से विमुख हो गयी।
iv) विलासी प्रवृत्ति
v) वे सामाजिक दायित्व से विमुख हो गये और लखनऊ पर अंग्रेजों के आधिपत्य से वे पूरी तरह अप्रभावित रहे।
vi) वह अपने पति का साहचर्य चाहती थी।
vii) पतियों द्वारा परिवार की उपेक्षा जो उनकी विलासी प्रवृत्ति का परिणाम थी।

क) बटेर लड़ रहे हैं ····· पेश की जाती है। (पृ. 45)
ख) यहाँ तक कि मिरज़ा की बेगम ····· कुछ न कह सकती थी। (पृ. 45)

क) राज्य में हाहाकार ····· किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी। (पृ. 48)
ख) i) उच्च वर्ग जनता के धन का उपयोग विलासिता में कर रहा था।
ii) अंग्रेज कंपनी का ऋण बढ़ने से उनका राजनीतिक दबाव अवध पर बढ़ता जा रहा था।

क) वर्णनात्मक ख) चित्रात्मक ग) नाटकीय

क) उर्दू मिश्रित भाषा
ख) मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग
ग) बोलचाल की भाषा

क) i) संकेत: उच्चवर्ग विलासिता में मग्न था।
ii) संकेत: सामाजिक दायित्व से शून्य था।
ख) सामाजिक दायित्व के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन थे।
ग) उनकी मृत्यु सामंतवर्ग के पूर्ण पतन का प्रतीक है।
घ) उस युग का समाज विशेषत: उच्च वर्ग राजनीतिक उथल-पुथल से पूर्णत: निरपेक्ष होकर अपने ही आमोद-प्रमोद में मग्न था।

ास

ंदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ हिन्दी के महान् कथाकार प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' से उद्धृत की गई है। प्रेमचंद ी कहानी को युगीन यथार्थ से जोड़कर जनता को अपने युग के प्रति जागरूक बनाया। इस कहानी के माध्यम से उन्होंने स्थितियों का चित्रण किया है जब अवध रियासत अंग्रेजों द्वारा हथिया ली गई थी।

मीर के घर फौज का सिपाही उनके बुलावे के लिए आता है तो वे दोनों इस डर से कि कहीं फौज में न जाना पड़े गोमती र एक वीराने में डेरा जमाते हैं। शतरंज खेलते हुए वे अवध पर अंग्रेजों के आधिपत्य और वाजिदअली शाह की गिरफ्तारी

को दहते हैं, लेकिन उन पर कोई असर नहीं पड़ता और शतरंज की चाल पर आपस में लड़कर मर जाते हैं। इसी घटना पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचंद उपर्युक्त बात कहते हैं।

व्याख्या : प्रेमचंद मीर और मिरज़ा के अंत पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि जिनकी आँखों से उस समय भी आँसू नहीं निकला जब उनके राज्य का बादशाह अंग्रेजों द्वारा बंदी बनाकर ले जाया जा रहा था। अपने राज्य के पराधीन हो जाने से उनमें न गुस्सा पैदा हुआ और न ही बेबसी। यह उन जागीरदारों के अधःपतन का नमूना था जो दूसरों की मेहनत पर पल रहे थे। इससे भी ज्यादा पतन यह था कि उन लोगों ने अपने राज्य की रक्षा के लिये संघर्ष करने से भले ही मुँह मोड़ लिया, लेकिन शतरंज खेलने की लत उन पर इतनी अधिक हावी थी कि एक मामूली बात पर वे लड़ पड़े और बात यहाँ तक बढ़ा ली कि लड़ते-लड़ते दोनों मारे गये। अगर यही जानें अपने राज्य की रक्षा के लिये जाती तो क्या अवध इतनी आसानी से अंग्रेजों के अधीन हो जाता।

विशेष : 1 इस पंक्ति में दो विरोधी स्थितियों पर लेखक ने व्यंग्य किया है। एक स्थिति राजनीतिक है और दूसरी दोनों खिलाड़ियों की आपसी टकराहट है। कहानी इन्हीं विरोधी धरातलों पर चलती है और एक ऐतिहासिक त्रासदी को उजागर करती है।

2 प्रेमचंद की भाषा यद्यपि बोलचाल की सहज भाषा है किंतु उसमें व्यंग्य की तीखी और गहरी मार करने की क्षमता भी है, यह इस पंक्ति से स्पष्ट है।

नोट : आपकी व्याख्या उपर्युक्त भाषा में हो, यह आवश्यक नहीं है लेकिन भाव इसके नजदीक और कहानी के मूल मंतव्य के अनुकूल होना चाहिए।

2 इसकी व्याख्या कहानी पढ़कर आप स्वयं लिखने का प्रयास कीजिए तथा उपर्युक्त बातों का ध्यान रखिए।

इकाई 7 'आकाश-दीप' (जयशंकर 'प्रसाद') : वाचन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 कहानी का वाचन : आकाश-दीप
7.3 कहानी का सार
7.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या
7.5 सारांश
7.6 उपयोगी पुस्तकें
7.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम प्रसिद्ध छायावादी कवि श्री जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाश-दीप' का अध्ययन करेंगे। कहानी के साथ ही लेखक का परिचय, कहानी का सार और उस के महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या भी करेंगे। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- कहानी में आए कठिन शब्दों, मुहावरों व लोकोक्तियों के अर्थ बता सकेंगे एवं उनके प्रयोग कर सकेंगे; और
- कहानी के महत्वपूर्ण अंशों और उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम 'आकाश-दीप' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पहले इकाई 4 एवं 5 में हमने प्रसिद्ध कथाकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' का वाचन, कथासार, ससंदर्भ व्याख्या एवं इसी कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन का अध्ययन किया था। इकाई 6 में प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' का वाचन और विश्लेषण प्रस्तुत किया गया था। इस इकाई में हम प्रसादजी की कहानी 'आकाश-दीप' का वाचन करेंगे। कहानी का सार लिखेंगे एवं महत्वपूर्ण अंशों और उक्तियों की व्याख्या करेंगे। इसके आगे की इकाई में हम इसी कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन करेंगे।

'आकाश-दीप' कहानी के लेखक श्री जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी (1889-1937) छायावादी काव्यधारा के आधार स्तंभ हैं। यद्यपि वे मूलतः कवि थे किंतु उन्होंने कहानी, नाटक, उपन्यास और निबंध भी लिखे। प्रसाद जी का रचनाकाल वही है जो प्रेमचंद का था, लेकिन एक ही युग में लिखते हुए भी उनकी कहानियाँ एक दूसरे से नितांत अलग हैं। प्रेमचंद के विपरीत प्रसाद जी की रुचि तत्कालीन सामाजिक समस्याओं में कम थी। उनकी कहानियों के कथ्य राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक जागरण से अभिप्रेरित होते थे। इसके लिए वे ऐतिहासिक घटनाचक्रों को कहानी का विषय बनाते थे। प्रसाद जी की एक और विशेषता यह थी कि उनकी कहानियों में व्यक्ति के भावात्मक संघर्ष और मानसिक अंतर्द्वंद्व का चित्रण अधिक मिलता है। प्रसाद जी की कहानियों की भाषा भावप्रवण, अलंकारिक और संस्कृतनिष्ठ है। इस तरह प्रसाद जी की कहानियाँ एक नये तरह का रस प्रदान करती हैं। यह कहानी भी हम दो इकाइयों में प्रस्तुत कर रहे हैं क्योंकि मानसिक अंतर्द्वंद्व का चित्रण होने के कारण यह जटिल कहानी है और अधिक व्याख्या और विश्लेषण की अपेक्षा करती है। प्रसाद जी ने लगभग 70 कहानियाँ लिखीं जो पाँच संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। इन संग्रहों के नाम इस प्रकार हैं —

1 छाया (1912), 2 प्रतिध्वनि (1922), 3 आकाश-दीप (1929),
4 आँधी (1931), 5 इंद्रजाल (1936)।

आपने इकाई 4 में 'उसने कहा था' का वाचन किया था। उस इकाई का अध्ययन करने से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि किसी कहानी का वाचन कैसे किया जाता है और उसके प्रमुख अंशों की व्याख्या कैसे की जाती है। इस इकाई में हम आपको कहानी की उतने विस्तार से व्याख्या नहीं करायेंगे बल्कि हम चाहेंगे कि आप स्वयं महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकें। इसके लिए आवश्यक संकेत और निर्देश देकर हम आपकी सहायता करेंगे। कहानी के साथ बोध प्रश्न भी दिये गये हैं जिससे आप जान सकेंगे कि आपने कहानी ध्यान से पढ़ी है या नहीं।

7.2 कहानी का वाचन : आकाश-दीप

एक नाव में रात्रि का समय

"बंदी!"
"क्या है? सोने दो?"
"मुक्त होना चाहते हो?"
"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

दो बंदी

"फिर अवसर न मिलेगा।"
"बड़ा शीत है, कहीं से एक कंबल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"
"आँधी की संभावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।"
"तो क्या तुम भी बंदी हो?"
"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"
"शस्त्र मिलेगा?"
"मिल जायेगा। पोत से संबद्ध रज्जु काट सकोगे?"
"हाँ।"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। दोनों बंदी आपस में टकराने लगे। पहले बंदी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक-दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा—स्नेह का असंभावित आलिंगन। दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गये। दूसरे बंदी ने हर्षातिरेक से उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बंदी ने कहा — "यह क्या? तुम स्त्री हो?"

"क्या स्त्री होना कोई पाप है?" — अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है — तुम्हारा नाम?"

"चंपा।"

समुद्र में आँधी

तारक-खचित नील अंबर और समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आंदोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर, फिर लुढ़कते हुए, बंदी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत से पथ-प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा — "आँधी!"

आपत्ति-सूचक **तूर्य** बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बंदी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बंदी ढुलक कर उस रज्जु के पास पहुँचा जो पोत से संलग्न थी। तारे ढक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर **कंदुक-क्रीड़ा** और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बंदी खिलखिलाकर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

रज्जु: रस्सी, तारक खचित नील अंबर: तारों से भरा नीला आकाश, आपत्ति: विपदा (मुसीबत), तूर्य: नगाड़ा, तुरही, कंदुक-क्रीड़ा: गेंद का खेल

बोध प्रश्न

नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1 बंदी युवती का नाम क्या था?

....

2 नाव पोत से अलग कैसे हो गयी?
   क) आँधी के कारण नाव अलग हो गया।
   ख) नाविकों ने नाव की सुरक्षा के लिये उसे पोत से अलग किया।
   ग) युवक बंदी ने पोत से जुड़ी रस्सी काट दी।
   घ) नाव पोत से अलग ही थी। [ ]

2

प्रातः काल का समय

अनंत जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहरी किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कुराने लगी। सागर शांत था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बंदी मुक्त हैं।

नायक ने कहा — "बुधगुप्त! तुमको मुक्त किसने किया?"
कृपाण दिखाकर बुधगुप्त ने कहा — "इसने।"

नायक ने कहा — "तो तुम्हें फिर बंदी बनाऊँगा।"

"किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा — नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।"

जलदस्यु बुधगुप्त

"तुम? जलदस्यु बुधगुप्त? कदापि नहीं।" — चौंक कर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा! चंपा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

"तो तुम द्वंद्वयुद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा।" — इतना कहकर बुधगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। चंपा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

बुधगुप्त की जीत

भीषण घात-प्रतिघात आरंभ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुधगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़ कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिये चंपा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परंतु बुधगुप्त ने **लाघव** से नायक का कृपाणवाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ **कटि** में डाला, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुधगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण-भिक्षा माँगने लगी।

बुधगुप्त ने कहा — "बोलो अब स्वीकार है कि नहीं?"

"मैं अनुचर हूँ, **वरुणदेव** की शपथ। मैं विश्वासघात नहीं करूँगा।" बुधगुप्त ने उसे छोड़ दिया।

चंपा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके **क्षतों** को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया। बुधगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-बिंदु विजय-तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुधगुप्त ने पूछा — "हम लोग कहाँ होंगे?"

"बाली द्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना-जाना होता है। **सिंहल** के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।"

"कितने दिनों में हम वहाँ पहुँचेंगे?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिये खाद्य का अभाव न होगा।"

सहसा नायक ने नाविकों को डाँड़ लगाने की आज्ञा दी, और स्वयं पतवार पकड़ कर बैठ गया। बुधगुप्त के पूछने पर उसने कहा — "यहाँ एक जलमग्न **शैलखण्ड** है। सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है।"

लाघवः चतुराई, कटिः कमर, वरुणदेवः समुद्र का देवता, क्षतोंः घावों, सिंहलः लंका, शैलखंडः चट्टान

बोध प्रश्न

3 बंदी युवक का नाम क्या था?

....

4 बुधगुप्त ने नाव पर कैसे अधिकार किया?

क) नाव के नायक को द्वंद्वयुद्ध में परास्त कर
ख) पोत के अध्यक्ष मणिभद्र को मारकर
ग) सारे नाविकों को युद्ध में परास्त कर
घ) नाव के नायक को रिश्वत देकर

[ ]

5 नाव किस ओर आगे बढ़ी?

क) भारत की ओर
ख) बाली द्वीप की ओर
ग) दक्षिण-पूर्व में एक नये द्वीप की ओर
घ) सिंहल द्वीप की ओर

[ ]

3

चंपा का अतीत

"तुम्हें इन लोगों ने बंदी क्यों बनाया?"
"वणिक् मणिभद्र की पाप-वासना ने।"
"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"**जाह्नवी** के तट पर। **चंपा-नगरी**[1] की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का **देहावसान** हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल-समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील **नभ** के नीचे, नील **जलनिधि** के ऊपर, एक भयानक अनंतता में निस्सहाय हूँ — अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से बंदी बना दी गयी।" — चंपा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्ति[2] का एक क्षत्रिय हूँ चंपा! परंतु दुर्भाग्य से जलदस्यु बन कर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी?"

प्रेम का उदय

"मैं अपने **अदृष्ट** को **अनिर्दिष्ट** ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाए।" — चंपा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। **धवल** अपांगों में बालकों के **सदृश** विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक **संभ्रमपूर्ण** श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर विलंबमयी राग-रंजित संध्या थिरकने लगी। चंपा के **असंयत कुंतल** उसकी पीठ पर बिखरे थे। **दुर्दान्त** दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका! वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी — कोमलता!

उसी समय नायक ने कहा — "हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये।"

चंपा-द्वीप पर पहुँचना

बेला से नाव टकराई। चंपा निर्भीकता से कूद पड़ी। माँझी भी उतरे। बुधगुप्त ने कहा — "जब इसका कोई नाम नहीं है, तो हम लोग इसे चंपा-द्वीप[3] कहेंगे।"

चंपा हँस पड़ी।

बोध प्रश्न

6 चंपा के पिता का देहांत कैसे हुआ?

क) समुद्र में गिर जाने से
ख) दस्युओं से युद्ध करते हुए
ग) मणिभद्र के द्वारा धोखे से
घ) स्वाभाविक मृत्यु से [ ]

7 चंपा बंदी कैसे बनायी गयी?

क) जल दस्युओं ने उसे बंदी बनाया।
ख) बुधगुप्त के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा दिया।
ग) मणिभद्र के घृणित प्रस्ताव को ठुकरा दिया था।
घ) वह जल दस्यु थी। [ ]

8 "दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरूण बालिका। वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा।"

इन पंक्तियों में बुधगुप्त के किस मनोभाव को दर्शाया गया है?

क) चंपा के प्रति प्रेम के भाव का उदय
ख) चंपा के साहस पर आश्चर्य की भावना
ग) अलौकिक भक्ति का भाव
घ) हीनता का भाव [ ]

4

पाँच बरस बाद —

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे थे। चंद्र के उज्ज्वल विजय पर अंतरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चंपा द्वीप में

चंपा के एक उच्चसौध पर बैठी हुई तरुणी चंपा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की **मंजूषा** में दीप धर कर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली-भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं। डोरी धीरे-धीरे खींची गई। चंपा की कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रों से हिलमिल जाय; किंतु वैसा होना असंभव था। उसने आशाभरी आँखें फिरा लीं।

जाह्नवी: जह्नु ऋषि की पुत्री अर्थात गंगा, देहावसान: मृत्यु, नभ: आकाश, जलनिधि: समुद्र, अदृष्ट: भाग्य, अनिर्दिष्ट: अनिश्चित, धवल: सफेद, सदृश: समान, संभ्रमपूर्ण: आदरयुक्त, असंयत कुंतल: बिखरे बाल, दुर्दांत: जिसे दबाना या वश में करना कठिन हो, बेला: समुद्र का तट, मंजूषा: संदूकची,

[1] चंपा जनपद, भागलपुर (बिहार) की पुरानी राजधानी

[2] भारत के पूर्वी समुद्री तट पर स्थित प्राचीन नगर।

सामने जल-राशि का रजत शृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैल-मालाएँ बन रही थीं—और वे मायाविनी छलनाएँ — अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर-दूर से धीवरों का वंशी-झनकार उनके संगीत-सा मुखरित होता था। चंपा ने देखा कि तरल सकुल जल-राशि में उससे कंडील का प्रतिबिंब अस्तव्यस्त था! वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकारा—"जया!"

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नील नभोमण्डल से मुख में शुद्ध नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चंपा को रानी कहती; बुधगुप्त की आज्ञा थी।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।" चंपा ने कहा। जया चली गयी।

महानाविक बुधगुप्त का आगमन

दूरागत पवन चंपा के आंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख चमत्कृत कर दिया। उसने फिर कर कहा — "बुधगुप्त!"

"बावली हो क्या? यहाँ बैठी हई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है?"

"क्षीरनिधिशायी अनंत की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाश-दीप जलवाऊँ?"

"हँसी आती है। तुम किसको दीप जला कर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है?"

"हाँ वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं; नहीं तो बुधगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?"

"तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चंपारानी!"

"मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा[1] का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक! परंतु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चंपा के उपकूल में पण्य लाद कर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे — इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में — थिरकती थी। बुधगुप्त! उस विजन अनंत में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम-तुम परिश्रम से थक कर पालों में शरीर लपेट कर एक-दूसरे का मुँह क्यों देखते थे। वह नक्षत्रों की मधुर छाया —"

"तो चंपा! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

चंपा का आस्था भाव

समुद्र में राह भटका हुआ

बुधगुप्त को पिता का हत्यारा मानना

"नहीं-नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी है परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश-दीप पर व्यंग्य कर रहे हो। नाविक! उस प्रचंड आँधी में प्रकाश की एक-एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे — मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती — 'भगवान्! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।' और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते — 'साध्वी! तेरी प्रार्थना से भगवान् ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है।' वह गद्गद् हो जाती। मेरी माँ? आह नाविक! यह उसी की पुण्य-स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जल दस्यु! हट जाओ।" — सहसा चंपा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठा कर हँस पड़ा।

"यह क्या चंपा? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।" — कहता हुआ चला गया। चंपा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

रजतः चाँदी जैसा, धीवरोः मल्लाहो, मछुआरों। कंडीलः एक प्रकार का आधान जिसमें दीपक जलाया जाता है, क्षीरनिधिशायी अनंतः भगवान विष्णु जो (पौराणिक मान्यता के अनुसार) क्षीरसागर में शयनरत है, उपकूलः किनारे के पास की भूमि, पण्यः वस्तुएँ, तरीः नाव, पथ-भ्रष्टः राह भटका हुआ, उन्मादिनीः पागल।

[1] बाली, जावा और सुमात्रा, इंडोनेशिया के विभिन्न द्वीपों के नाम।

बोध प्रश्न

9 आकाश-दीप का प्रयोजन क्या है?

क) दीप में रोशनी करना
ख) ईश्वर के प्रति भक्ति भाव की अभिव्यक्ति करना
ग) समुद्र में भटके राहियों को राह दिखाना
घ) घर में रोशनी करना

[ ]

10 पांच वर्षों में बुधगुप्त की क्या स्थिति बनी?

क) वह पूरे क्षेत्र का स्वामी बन गया।
ख) उसने चंपा से विवाह कर लिया।
ग) वह और बड़ा दस्यु राज बन गया।
घ) उसकी स्थिति वैसी ही बनी रही।

[ ]

11 "नहीं-नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी परंतु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है"।

चंपा की इस उक्ति के संदर्भ में कौन-कौन से कथन सही उतरते हैं।

क) उसमें अधिक धन के अर्जन का मोह बना हुआ है।

ख) वह चंपा का आकाश-दीप जलाना व्यर्थ मानता है।

ग) वह दस्यु वृत्ति को छोड़ने को तैयार नहीं है।

घ) वह ईश्वर के प्रति आस्था नहीं रखता। [ ]

12 पाठ की कौन-सी उक्ति है, जो स्पष्ट करती है कि चंपा बुधगुप्त को अपने पिता का हत्यारा मानती है?

....

....

5

निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला से टकरा कर लहरें बिखर जाती थीं। **पश्चिम का पथिक** थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत गंभीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

उदास चंपा

चंपा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गईं। तरंग से उठते हुए पवन ने उनके *वसन* को अस्त-व्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी-सी नौका आई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चंपा मुग्ध सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को **मिश्रित** कर देना चाहती थी।

"इतना जल! इतनी शीतलता! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी? नहीं! तो जैसे वेला से चोट खाकर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ? या जलते हुए **स्वर्ण-गोलक** सदृश अनंत जल में डूब कर बुझ जाऊँ?" — चंपा के देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिंब धीरे-धीरे सिंधु में, चौथाई — आधा फिर संपूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निश्वास लेकर चंपा ने मुँह फेर लिया। देखा तो महानाविक का **बजरा** उसके पास है। बुधगुप्त ने झुक कर हाथ बढ़ाया। चंपा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पास-पास बैठ गये।

चंपा की विवशता

"इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न **शैलखंड** है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती, चंपा तो?"

"अच्छा होता बुधगुप्त! जल में बंदी होना कठोर **प्राचीरों** से तो अच्छा है!"

बुधगुप्त का प्रेम

"आह चंपा, तुम कितनी निर्दय हो! बुधगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिये नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नयी प्रजा खोज सकता है, नये राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो···। कहो चंपा! वह कृपाण से अपना हृदय-पिंड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे।" — महानाविक — जिसके नाम से बाली, जावा और चंपा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था—घुटनों के बल चंपा के सामने छलछलाई आंखों से बैठा था।

प्रकृति चित्रण

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली में विस्तृत जल-देश में, **नील पिंगल** संध्या, प्रकृति की सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नीलजाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चंपा ने बुधगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिये। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिंधु का। किन्तु उस **परिरंभ** में सहसा चैतन्य होकर चंपा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

चंपा का प्रतिशोध

"बुधगुप्त! आज मैं अपने **प्रतिशोध** का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया!" —चमककर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

"तो आज से मैं विश्वास करूँ? क्षमा कर दिया गया?" — आश्चर्य-कंपित कंठ से महानाविक ने पूछा।

मन का द्वंद्व

"विश्वास? कदापि नहीं बुधगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।" — चंपा रो पड़ी।

प्रेम की जीत

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तम से अपनी आँखें बन्द करने लगी थी। दीर्घ निश्वास लेकर महानाविक ने कहा — "इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा, चंपा! यहीं उस पहाड़ी पर। संभव है कि मेरे जीवन की धुंधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाए!"

पश्चिम का पथिक: डूबता सूरज, **मिश्रित**: मिला देना, **स्वर्ण-गोलक**: सूरज, **बजरा**: छोटी नाव, **शैलखंड**: चट्टान, **प्राचीरें**: दिवारें, **नील पिंगल**: ललाई ... क्षितिज ... परिरंभ ...

बोध प्रश्न

13 चंपा अपने पास कृपाण क्यों रखती थी?

क) स्वरक्षा के लिये
ख) बुधगुप्त से बदला लेने के लिये
ग) मणिभद्र से रक्षा के लिये [ ]

14 चंपा बुधगुप्त से क्यों प्रतिशोध लेना चाहती थी?

क) बुधगुप्त उसके पिता का हत्यारा था।
ख) बुधगुप्त ने उसे बंदी बना रखा था।
ग) बुधगुप्त जलदस्यु था। [ ]

15 "जब मैं अपने हृदय पर विश्वास न कर सकी, उसी ने धोखा दिया" चंपा के इस कथन का क्या तात्पर्य है?

क) चंपा न चाहते हुए भी बुधगुप्त से घृणा करने लगी थी।
ख) उसके हृदय से बुधगुप्त के प्रति नफरत खत्म नहीं हो रही थी।
ग) न चाहते हुए भी वह बुधगुप्त से प्रेम करने लगी थी। [ ]

6

चंपा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। वह बहुत दूर तक सिंधु-जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैलमाला पर चंपा के आदि-निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चंपा को वनदेवी-सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक और नाविकों की श्रेणी में वन-कुसुम-विभूषिता चंपा **शिविकारूढ़** होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चंपा के नाविकों को सावधान करने के लिये सुदृढ़ दीप-स्तंभ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुधगुप्त स्तंभ के द्वार पर खड़ा था। **शिविका** से सहायता देकर चंपा को उसने उतारा। दोनों ने भीतर पदार्पण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में **कुसुम-भूषण** से सजी वन-बालाएँ फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

दीप स्तंभ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चंपा ने जया से पूछा — यह क्या है जया? इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लाई?"

"आज रानी का ब्याह है न?" — कह कर जया ने हँस दिया।

बुधगुप्त में चंपा से विवाह की इच्छा

बुधगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोर कर चंपा ने पूछा — "क्या यह सच है?"

"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चंपा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती से दबाये हूँ।"

"चुप रहो महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा?"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चंपा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे!"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती। बुधगुप्त, वह दिन कितना सुंदर होता, वह क्षण कितना **स्पृहणीय**! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते!"

जया नीचे चली गई थी। स्तंभ के **संकीर्ण प्रकोष्ठ** में बुधगुप्त और चंपा एकांत में एक दूसरे के सामने बैठे थे।

बुधगुप्त ने चंपा के पैर पकड़ लिये। **उच्छ्वसित** शब्दों में वह कहने लगा — "चंपा! हम लोग जन्मभूमि — भारतवर्ष से, कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इंद्र और **शची** के समान पूजित हैं। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किये है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है; परंतु मैं क्यों नहीं जाता? जानती हो, इतना महत्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ! मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से **चंद्रकांतमणि** की तरह द्रवित हुआ।"

"चंपा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई **तारिका** के समान मेरे **शून्य** में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस **निविड़तम** में मुस्कुराने लगी। पशु-बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और एकांत की कामना की हँसी खिलखिलाने लगी; पर मैं न हँस सका!"

शिविकारूढ़: पालकी पर चढ़कर, शिविका: पालकी (डोली), कुसुम-भूषण: फूलों के गहने, स्पृहणीय: जिसके लिए स्पृहा या कामना की जाये अर्थात् वांछनीय, संकीर्ण प्रकोष्ठ: सँकरा कमरा, उच्छ्वसित: प्रसन्नता से युक्त, शची: इंद्र की पत्नी का नाम, चंद्रकांतमणि: वह मणि जो इंद्र के प्रकाश से द्रवित हो उठती है, तारिका: उल्का, शून्य: आकाश, निविड़तम: गहरा अंधकार,

चंपा का समाज सेवा का व्रत लेना

चलोगी चंपा? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लाद कर राजरानी-सी जन्मभूमि के **अंक** में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिये प्रस्थान करें। महानाविक बुधगुप्त की आज्ञा सिंधु की लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत-**पुंज** को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देंगी। आह चंपा! चलो।"

चंपा ने उसके हाथ पकड़ लिए। किसी आकस्मिक झटके ने एक पलभर के लिए दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चंपा ने कहा — "बुधगुप्त! मेरे लिये सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्जवलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिये एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, **विभवों** का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चंपा! यहाँ रहकर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँ — इसमें संदेह है आह! उन लहरों में मेरा विनाश हो जाए।" — महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा — "तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तंभ पर से आलोक जला कर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किंतु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।"

7

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चंपा ने अपने दीप-स्तंभ पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चंपा का उपकूल छोड़कर पश्चिम-उत्तर की ओर महा जल-**व्याल** के समान **संतरण** कर रही है। उसकी आँखों से आंसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चंपा आजीवन उस द्वीप-स्तंभ में आलोक जलाती रही। किंतु उसके बाद भी बहुत दिन, दीप निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि-सदृश पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

अंकः गोद, पुंजः समूह के। विभवोंः ऐश्वर्यों, व्यालः साँप, संतरणः तिरना।

बोध प्रश्न

16 "इतना महत्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ" बुधगुप्त के इस कथन का क्या तात्पर्य है।

क) बुधगुप्त के पास धन का अभाव था।
ख) बुधगुप्त को चंपा का प्यार नहीं प्राप्त हो सका था।
ग) वह यश के साथ अर्थ की भी कामना करता था। [ ]

17 "कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिये एक शून्य है।" चंपा के इस कथन में उसकी कौन-सी भावना व्यक्त हुई है।

क) उदासीनता
ख) उपेक्षा
ग) वैराग्य [ ]

18 आकाश-दीप का भावार्थ क्या है?

क) ईश्वर के प्रति भक्ति भाव
ख) दूसरों को राह दिखाना
ग) स्वयं कष्ट सहते हुए दूसरों की सेवा करना [ ]

19 नीचे दिए गये कथन किसके हैं, बताइए

क) "भगवान मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।"

....

ख) "मुझे भी इसी में जलना होगा जैसे आकाश-दीप।"

....

ग) "पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है।"

....

7.3 कहानी का सार

आपने कहानी का वाचन ध्यानपूर्वक किया होगा। आपको कहानी की कथा स्पष्ट हो गई होगी। फिर भी, हम आपकी सुविधा के लिये यहाँ कहानी का सार दे रहे हैं ताकि आप कहानी की कथावस्तु के केंद्रीय भाव को ठीक से समझ सकें।

'आकाश-दीप' कहानी का आरंभ समुद्री व्यापारी मणिभद्र द्वारा बंदी बनाए गए चंपा तथा बुधगुप्त के वार्तालाप से होता है। दोनों एक नाव पर बंदी हैं। चंपा के बंधन ढीले हो चुके हैं किंतु वह अवसर की प्रतीक्षा में चुपचाप लेटी हुई है। पास ही बँधे हुए और थकावट तथा नींद से भरे हुए बुधगुप्त से पूछती है कि क्या वह मुक्त होना चाहता है? वह यह भी सूचना देती है कि अभी आँधी आने वाली है और इसलिए बँधन से छुटकारा पाने का यह बड़ा अच्छा अवसर है। थोड़ी देर बाद आँधी से हिलते-डुलते जहाज की स्थिति में वह बुधगुप्त की रस्सियाँ खोल देती है। बंधन से छूटते ही बुधगुप्त जब अँधेरे में चंपा का आलिंगन करता है, तब उसे उसके नारी होने का भान होता है। वह संकोच में पड़ जाता है! किंतु चंपा उल्टे उसे आश्वस्त करती है। बुधगुप्त चंपा से उसका नाम पूछता है।

आँधी-तूफान के कारण जहाज से बँधी नाव हिचकोले खाने लगता है। अंधकार और तूफान का लाभ उठाकर चंपा खिसकते हुए एक नाविक के पास पहुँच जाती है और उसकी कृपाण चुपके से निकाल लेती है। चंपा वह कृपाण लाकर बुधगुप्त को देती है। बुधगुप्त जिसके बंधन पहले ही खुल चुके हैं जहाज में बंधी रस्सी को काट देता है और इस तरह जिस नाव पर वे दोनों बंदी हैं, वह नाव जहाज से मुक्त हो जाती है।

उस नाव पर मणिभद्र के कुछ सिपाही और उसका नायक भी है। नायक और बुधगुप्त के बीच द्वंद्वयुद्ध होता है और बुधगुप्त उन को परास्त कर देता है। बुधगुप्त चंपा को बताता है कि वह ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय है परंतु दुर्भाग्य से जलदस्यु (डाकू) बनकर जीवन बिता रहा है। चंपा अपना परिचय देते हुए बताती है कि उसके पिता मणिभद्र के यहाँ प्रहरी थे। जब उसकी माता का देहांत हो गया तो वह पिछले आठ साल से पिता के साथ ही यात्रा पर रहने लगी। जिस समय बुधगुप्त और उसके साथियों ने जहाज पर हमला किया था, तब चंपा के पिता सात दस्युओं को मारकर स्वयं भी शहीद हो गए थे। पिता की मृत्यु के बाद मणिभद्र ने चंपा को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहा, लेकिन चंपा ने उसके घृणित प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। जिसके फलस्वरूप मणिभद्र ने चंपा को भी बंदी बना लिया था।

चंपा और बुधगुप्त अपने साथियों के साथ एक अज्ञात द्वीप पर पहुँच गए। उस द्वीप का नाम बुधगुप्त ने "चंपा द्वीप" रखा। चंपा और बुधगुप्त पांच वर्ष तक उस द्वीप पर साथ-साथ रहे। बुधगुप्त उस द्वीप का शासक बना, उसने दस्यु-वृत्ति छोड़ दी थी। इन पांच वर्षों में बुधगुप्त ने व्यापार द्वारा काफी धन कमाया। वे लोग हर तरह से सुखी और संपन्न थे तथा वहाँ के निवासी भी उन्हें राजा और रानी की तरह मानते और प्यार करते थे।

इतने लंबे समय तक साथ रहने के कारण दोनों में धीरे-धीरे प्रेम का विकास हो गया था। किंतु ज्यों ही चंपा को यह स्मरण हो आता था कि बुधगुप्त ही उसके और पिता का हत्यारा है, त्यों ही उसका मन क्रोध और घृणा से भर जाता था। वह बुधगुप्त से अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेना चाहती थी और इस कार्य के लिये वह अपने पास छुपाकर कृपाण रखती थी, लेकिन हृदय के हाथों विवश होने के कारण वह अपनी इस इच्छा को पूरा नहीं कर पाती थी। कहानी में चंपा के मन के इस द्वंद्व का चित्रण छोटी-छोटी घटनाओं के द्वारा अत्यंत कुशलता के साथ किया गया है। बुधगुप्त चंपा से परिणय स्वीकार करने की प्रार्थना करता है, वह उसके प्रेम को तो स्वीकार करती है और उसके वशीभूत होकर उस कृपाण को समुद्र में फेंक देती है जो उसने प्रतिशोध के लिये अपने पास छुपा रखा था, लेकिन वह अपने मन के द्वंद्व पर विजय प्राप्त नहीं कर पाती। चंपा रोते हुए बुधगुप्त से कहती है "मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।"

बुधगुप्त इस सुंदर मिलन-घड़ी की याद में पहाड़ी की ऊँचाई पर दीप स्तंभ बनाता है। चंपा बचपन में अपनी मां को दीप स्तंभ में दीप जलाते देखती रही थी। यह आकाश-दीप समुद्र में भटके पथिकों को राह दिखाता है। चंपा की भी यही इच्छा थी कि वह भी इसी तरह रोज आकाश-दीप जलाया करे। दीप स्तंभ बन जाने पर एक उत्सव आयोजित होता है जिसमें बुधगुप्त और चंपा भी सम्मिलित होते हैं। बुधगुप्त प्रस्ताव रखता है कि यदि चंपा की इच्छा हो तो वह उसके साथ विवाह करके स्वदेश (भारत) लौट जाए। किंतु चंपा के मन में पिता की मृत्यु की इतनी पीड़ा है कि उससे प्रेम के बावजूद भी वह इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती और आग्रह करती है कि वह स्वयं स्वदेश लौट जाए। चंपा प्रेम और घृणा के द्वंद्व में फँसी होने के कारण जीवन के प्रति निरपेक्ष भी हो जाती है। इसीलिए बुधगुप्त से कहती है कि वह स्वयं तो यहीं रहकर लोगों की सेवा करते हुए जीवन बिताएगी और प्रतिदिन संध्या को इस दीप स्तंभ पर दीप जलाएगी ताकि अँधेरे में भटके हुए यात्रियों को रास्ता मिल सके।

चंपा की इच्छा समझते हुए बुधगुप्त लौट जाता है। चंपा वहीं अकेली रह जाती है और दुःखी प्राणियों की सेवा करते हुए वह आकाश-दीप की तरह अपने जीवन को जलाती रहती है और इसी तरह एक दिन इस दुनिया से उठ जाती है।

7.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या

पिछली बार में आपने 'उसने कहा था' के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या की थी। इस कहानी में भी हम ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या का प्रयास करेंगे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है प्रत्येक कहानी में कुछ ऐसी पंक्तियाँ

अवश्य होती हैं जो उस रचना के केंद्रीय भाव को स्पष्ट करने में अधिक मददगार होती है। इस में नायिका चंपा के मन के द्वंद्व को प्रस्तुत करना कहानी का केंद्रीय भाव है। कहानी में यह भाव निम्न पंक्तियों में व्यक्त हुआ है।

"जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हा. लिये मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।"

आइए हम इस उद्धरण की संदर्भ सहित व्याख्या का प्रयास करें। सबसे पहले हमें "संदर्भ" लिखना चाहिए। संदर्भ से तात्पर्य है कि उक्त अंश किस रचना से लिया गया है? उसका रचनाकार कौन है? रचनाकार की विशिष्टता क्या है और उस रचना का केन्द्रीय भाव क्या है? ये चारों बातें संक्षेप में लिखी जानी चाहिए। उदाहरण के लिये इस अंश का संदर्भ लिखें।

संदर्भ : *प्रस्तुत उद्धरण जयशंकर प्रसाद की ऐतिहासिक कहानी 'आकाश-दीप' से लिया गया है।*

उक्त संदर्भ में आप पायेंगे कि रचना का नाम व लेखक के नाम का उल्लेख किया गया है। इसके बाद हम इसी के अंतर्गत "प्रसंग" लिखेंगे। प्रसंग से तात्पर्य है, उस रचना में वह उद्धरण किस प्रसंग में आया है, उसका उल्लेख। अगर वह किसी पात्र का कथन है तो यह बताना कि वह कथन किसने, किससे कहा है।

चंपा दस्युराज बुधगुप्त को अपने पिता का हत्यारा समझती है और उससे प्रतिशोध लेना चाहती है, लेकिन उससे उसे प्रेम भी हो जाता है। इस तरह एक ही व्यक्ति के प्रति उसके मन में घृणा भी है और प्रेम भी। प्रतिशोध लेने के लिए वह अपने पास कृपाण रखती है, लेकिन हृदय के हाथों विवश होकर वह उस कृपाण को जल में फेंक देती है। इस पर बुधगुप्त चंपा से पूछता है कि क्या वह विश्वास करे कि उसने उसे माफ कर दिया है। इस पर चंपा उक्त कथन कहती है।

ऊपर के अंश से यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त पंक्तियाँ किसने, किससे और किस प्रसंग में कही है। अब इस अंश की व्याख्या। व्याख्या का तात्पर्य है उस अंश में कही गई बात को किंचित् विस्तार और स्पष्टता के साथ खोलकर प्रस्तुत करना। इस अंश में चंपा अपने मन के द्वंद्व को प्रस्तुत कर रही है। स्पष्ट ही चंपा की मानसिक स्थिति जटिल है, उसी जटिलता को रचनाकार ने प्रस्तुत किया है। यह बात निम्नलिखित व्याख्या से स्पष्ट हो जाती है।

व्याख्या : *चंपा बुधगुप्त को अपनी मनःस्थिति बताते हुए कहती है कि बुधगुप्त मैं कैसे कहूँ कि तुम मेरा विश्वास करो जबकि मैं अपने हृदय पर भी विश्वास नहीं कर सकी। मेरे मन में तुम्हारे प्रति घृणा थी क्योंकि तुम मेरे वीर पिता के हत्यारे हो, क्या कोई स्त्री अपने पिता की हत्या करने वाले से प्रेम कर सकती है। मेरे मन में तुम्हारे प्रति गहरी घृणा थी। मैं तुमसे प्रतिशोध लेना चाहती थी, किंतु मेरा हृदय भी मेरे वश में नहीं रहा। वह न चाहते हुए भी तुम्हारी तरफ झुकता चला गया। और आज मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि यद्यपि मेरे मन में तुम्हारे प्रति गहरी घृणा है तो भी मैं तुम्हारे लिए अपनी जान भी दे सकती हूँ। अपने मन के इस द्वंद्व को मैं ही नहीं समझ पाती। जिसे मारना चाहती हूँ, उसी के लिए मर मिटना चाहती हूँ। क्या यह अँधेर नहीं है? क्या यह उचित है? हाँ, दस्युराज, वस्तुस्थिति यही है, मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं तुम्हें प्यार भी करती हूँ।*

चंपा का यह कथन उसके मन की पीड़ा और अंतर्द्वंद्व का सच्चा आईना है। उसकी भावनाओं को इससे अधिक सच्चे रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

व्याख्या के बाद उक्त अंश की शिल्पगत विशेषताओं पर संक्षेप में टिप्पणी की जाती है जिस के अंतर्गत शैली, भाषा आदि की विशेषता बताई जाती है। इसे "विशेष" शीर्षक के अंतर्गत क्रम देकर प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरण के लिये उक्त [illegible] विशेष टिप्पणी देखें।

विशेष :

1. *उक्त अंश में नायिका चंपा के अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत किया गया है। इतने संक्षिप्त कथन में हृदय की कशमकश को प्रस्तुत करना लेखक की भाषा पर अधिकार को सूचित करना है।*

2. *संस्कृतनिष्ठ भाषा (जो कि ऐतिहासिक परिवेश के अनुकूल है) होते हुए भी भाषाभिव्यक्ति में सहजता है।*

   अगर उद्धरण में भाषा की अन्य विशेषताएँ जैसे बिंबात्मकता, प्रतीकात्मकता, काव्यात्मकता, आलंकारिकता आदि हो तो उसे भी रेखांकित किया जाना चाहिए। इनमें से कई विशेषताएँ इस कहानी में विशेष रूप से दिखाई देती हैं।

अब हम आपको इस कहानी से कुछ उद्धरण दे रहे हैं, आप स्वयं उसकी व्याख्या का प्रयास कीजिए। आपकी सहायता के लिए हम संकेत भी दे रहे हैं।

अभ्यास

1 चंपा मैं ईश्वर को नहीं मानता ....पर मैं न हँस सका। (पृ. 69)

संदर्भ : संकेत: रचना का नाम
रचनाकार का नाम
किस का कथन
किससे

प्रसंग : दीप स्तंभ का महोत्सव
बुधगुप्त द्वारा चंपा से परिणय निवेदन

....
....
....
....
....

ख्या : संकेत: बुधगुप्त के विश्वास
बुधगुप्त का अतीत दस्युवृत्ति
चंपा से मिलने पर हुआ परिवर्तन

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

ोष : 1 शैली भावात्मक
2 भाषा संस्कृतनिष्ठ

....
....
....
....

ने शैलमाला की चोटी पर .... कृपाण निकाल लिया (पृ. 68)

र्भ : संकेत: रचना का नाम
रचनाकार का नाम
चंपा द्वीप पर बुधगुप्त और चंपा के बीच वार्तालाप और बुधगुप्त द्वारा चंपा से अपने प्रेम का निवेदन
प्रकृति चित्रण और दोनों का मिलन

....
....
....
....
....

ख्या : संकेत: प्रकृति चित्रण
संध्या का मोहक दृश्य
दोनों के हृदयगत भावों का प्रतिबिंब

चंपा और बुधगुप्त का मिलन
चंपा का कृपाण निकालना

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

विशेष : 1. शैली काव्यात्मकता
2. भाषा दृश्य बिंब
संस्कृतनिष्ठ
आलंकारिकता

....
....
....
....

इसके अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण उद्धरण इस कहानी में हैं जिनकी प्रसंग सहित व्याख्या आप स्वयं करने का अभ्यास करें। इससे कहानी को समझने और उसके शिल्पगत सौंदर्य को ग्रहण करने में मदद मिलेगी।

7.5 सारांश

आपने 'आकाश-दीप' कहानी का वाचन ध्यान से किया होगा। आपने अच्छी तरह से समझ लिया होगा कि कहानीकार इस कहानी में क्या कहना चाहता है। इस कहानी को पढ़ने के बाद अब आप :

- 'आकाश-दीप' कहानी ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित है। जिसमें बुधगुप्त और चंपा के संबंधों और चंपा के अंतर्द्वंद्व को चित्रित किया गया है। आप कहानी के वाचन और उसके महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या द्वारा इनको अपने शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।
- आकाश-दीप में प्रयुक्त कठिन शब्दों और संदर्भों की व्याख्या कर सकते हैं।

7.6 उपयोगी पुस्तकें

मदान, डॉ. इंद्रनाथ : **हिंदी कहानी : पहचान और परख**, लिपि प्रकाश, नई दिल्ली

वाजपेयी, नंददुलारे : **जयशंकर प्रसाद**, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

7.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1 चंपा
2 ग)

3 बुधगुप्त
4 क)
5 ग)
6 ख)
7 ग)
8 क)
9 ग)
10 क)
11 क), ख) और घ
12 "मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु, हट जाओ'
13 ख)
14 क)
15 ग)
16 ख)
17 क)
18 ग)
19 क) चंपा की मां का कथन
ख) चंपा का कथन
ग) बुधगुप्त का कथन

अभ्यासों के उत्तर आप स्वयं लिखिए।

इकाई 8 'आकाश-दीप' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 कथावस्तु
 8.2.1 कहानी का आरंभ
 8.2.2 कहानी का विकास
 8.2.3 कहानी की परिणति
8.3 चरित्र चित्रण
 8.3.1 चंपा
 8.3.2 बुधगुप्त
8.4 परिवेश
8.5 संरचना शिल्प
 8.5.1 शैली
 8.5.2 भाषा और संवाद
8.6 मूल्यांकन
8.7 सारांश
8.8 उपयोगी पुस्तकें
8.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

आप इकाई में 'आकाश-दीप' कहानी का विश्लेषण पढ़ेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे और इस विश्लेषण के द्वारा कथावस्तु की विशेषताएँ पहचान सकेंगे;
- कहानी के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण कर सकेंगे;
- कहानी की परिवेशगत विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी की भाषागत और शिल्पगत विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी के प्रतिपाद्य और कहानीकार की दृष्टि का विश्लेषण कर सकेंगे;
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता का निर्णय कर सकेंगे; और
- उपर्युक्त सभी विशेषताओं के आधार पर कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

आपने पिछली इकाई में 'आकाश-दीप' कहानी का वाचन किया। इससे आपको कहानी को समझने में काफी मदद मिली होगी। कहानी का उसके तत्वों के आधार पर विश्लेषण और मूल्यांकन कैसे किया जाता है, यह 'आकाश-दीप' कहानी के विश्लेषण द्वारा हम जानेंगे। इससे आप स्वयं कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन कर सकने में समर्थ हो सकेंगे। इकाई 5 में हमने 'उसने कहा था' और 6 में 'शतरंज के खिलाड़ी' का विश्लेषण और मूल्यांकन प्रस्तुत किया था। इस इकाई में हम कहानी का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करेंगे, वरन् विश्लेषण कैसे किया जाता है, इस पर विचार करेंगे और ऐसा करते हुए हमारे सामने व्यवहार में 'आकाश-दीप' कहानी होगी।

आपने जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाश-दीप' को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। आपने जाना कि किस तरह बुधगुप्त और चंपा एक-दूसरे के नज़दीक आए। कैसे चंपा के मन में यह धारणा बैठी कि बुधगुप्त उसके पिता का हत्यारा है। दूसरी ओर चंपा बुधगुप्त से प्रेम भी करती है। इससे चंपा मानसिक द्वंद्व में उलझ जाती है। हम कहानी के कथ्य और अन्य पक्षों का इसी संदर्भ में विश्लेषण करेंगे।

3.2 कथावस्तु

हमने आपको इकाई 3 में कहानी के विभिन्न तत्वों के बारे मे विस्तृत जानकारी दी थी। उस इकाई में हमने कथावस्तु के बारे में भी बताया था। कथावस्तु पर चर्चा करते हुए यह कहा था कि 'कथावस्तु का अर्थ है, कहानी में प्रस्तुत घटना'। अगर इस दृष्टि से विचार करें तो 'आकाश-दीप' में भी कुछ घटनाएँ है। जैसे कहानी के आरंभ में ही समुद्र में तैरती नाव पर बंदी दो व्यक्तियों का बंधन से छूटना, नाव के नायक और उसके सिपाहियों के साथ संघर्ष और बाद में कहानी के नायक-नायिका द्वारा एक अज्ञात द्वीप पर शरण लेना। इस तरह विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि 'उसने कहा था' की तरह 'आकाश-दीप' कहानी में भी घटनाओं का एक सिलसिला है और कहानी एक निश्चित बिंदु से आरंभ होकर निश्चित परिणति पर जाकर समाप्त होती है। कहानी के विकास के लिए कहानीकार ने तीन तरह की विधियों का प्रयोग किया है :

- कथा के सीधे वर्णन द्वारा
- किसी पात्र के मुख से
- पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा

हम आगे कहानी के इस विकास क्रम का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

3.2.1 कहानी का आरंभ

इस कहानी का आरंभ 'उसने कहा था' की तरह परिवेश वर्णन से होता है। 'आकाश-दीप' कहानी का आरंभ जैसा कहा जा चुका है, एक नाव से होता है, जहाँ दो व्यक्ति बंदी हैं, जो एक दूसरे से अपरिचित और अनजान हैं। उनमें से एक कैदी बंधन मुक्त हो चुका है और दूसरे को मुक्त कराने की इच्छा से प्रेरित होकर दूसरे से बात करता है। हमें ये सारी बातें दोनों के बीच के आरंभिक वार्तालाप से मालूम होती है। कहानी का आरंभ इस तरह होता है :

> *"बंदी।"*
> *"क्या है? सोने दो।"*
> *"मुक्त होना चाहते हो?"*
> *"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"*
> *"फिर अवसर न मिलेगा।"*
> *"बड़ा शीत है, कहीं से एक कंबल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"*
> *"आँधी की संभावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।"*
> *"तो क्या तुम भी बंदी हो?"*
> *"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"*
> *"शस्त्र मिलेगा।"*
> *"मिल जाएगा। पोत से संबद्ध रज्जु काट सकोगे?"*
> *"हाँ।"*

अगर हम उपर्युक्त वार्तालाप को ध्यान से पढ़े तो हमें कई बातें मालूम होगी।

यह नाव पर बंदी दो कैदियों का वार्तालाप है। इनमें से एक कैदी बंधन से मुक्त हो चुका है, दूसरा अभी भी बंधन में है और सो रहा है। जो बंधन से मुक्त हो चुका है, वह दूसरे को भी आजाद करना चाहता है, लेकिन दूसरा ठंड के मारे परेशान है और सोना चाहता है, लेकिन पहला कैदी उसे बताता है कि यही अवसर है मुक्त होने का। तब दूसरा कैदी भी सजग हो जाता है, और पहले कैदी से कहता है कि क्या शस्त्र मिलेगा। पहला कैदी इस पर कहता है, हाँ मिलेगा और प्रतिप्रश्न करता है कि क्या तुम पोत से जुड़ी हुई रस्सी काट सकोगे? वह "हाँ" में उत्तर देता है। इससे हमें यह भी मालूम होता है कि वह नाव किसी पोत से बंधी है। इसी वार्तालाप से हमें यह भी मालूम पड़ता है कि नाव पर दस नाविक और प्रहरी है। अर्थात् बंधन काटने के बाद भी इनको परास्त किये बिना पूरी मुक्ति संभव नहीं है। इस वार्तालाप से हमें कहानी के आरंभिक घटनाचक्र का पता चलता है, लेकिन ये मालूम नहीं चलता ये कि कैदी कौन है, इन्हें किसने बंदी बनाया है। इनका नाम क्या है? आदि। लेकिन बाद के घटनाचक्र से एक एक कर इन सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए दूसरे पैरा में ही हमें यह जानकारी मिल जाती है कि इन दोनों कैदियों में से एक स्त्री है।

इस तरह जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, हमें पात्रों का परिचय, उनके कैद होने का कारण, उनका मुक्त होने का प्रयत्न और उसकी सफलता का विवरण मिलता है। कहानी के आरंभ के रूप में हम इन घटनाओं का उल्लेख कर सकते है।

आपने ध्यान दिया हो तो पाया होगा कि आगे घटित होने वाली घटनाओं का संकेत कहानी के आरंभिक वार्तालाप में ही मिल जाता है। जैसे, जब पहला कैदी (जो स्त्री है) बताता है कि नाव पर दस नाविक और प्रहरी हैं तो हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि आगे इन बंदियों को मुक्ति के लिए इन प्रहरियों से संघर्ष होगा। कहानी के दूसरे भाग में वह संघर्ष घटित हुआ पाते हैं। इसी तरह दोनों बंदी क्यों कैद हुए इसका वर्णन हम कहानी के तीसरे भाग में पाते हैं। इस तरह कहानी आगे बढ़ती है।

कहानी के तीसरे भाग तक आते-आते हमारे सामने कहानी का आरंभिक चरण स्पष्ट हो जाता है जिसे संक्षेप में, निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त कर सकते है :

कहानी का आरंभ समुद्र व्यापारी मणिभद्र द्वारा बंदी बनाए गए चंपा तथा बुधगुप्त के वार्तालाप से होता है। दोनों एक नाव पर बंदी हैं। चंपा के बंधन ढीले हो चुके हैं और उसके सहयोग से बुधगुप्त भी मुक्त हो जाता है। बुधगुप्त नाव को पोत से मुक्त करा लेता है और बाद में मणिभद्र के सिपाहियों को परास्त कर नाव पर अधिकार कर लेता है। इस सारे घटनाचक्र के दौरान ही मालूम पड़ता है कि बुधगुप्त समुद्री डाकू है जिसने मणिभद्र के जहाज पर हमला किया था और चंपा के पिता जो मणिभद्र के सिपाही थे, इन डाकुओं से वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गए थे। मणिभद्र चंपा को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता था, लेकिन चंपा द्वारा इस घृणित प्रस्ताव को ठुकरा देने के कारण वह भी मणिभद्र द्वारा बंदी बना ली जाती है। मुक्त होने के बाद चंपा और बुधगुप्त दोनों एक अज्ञात द्वीप पर पहुँचते हैं और बुधगुप्त इसका नाम चंपा द्वीप रखता है।

8.2.2 कहानी का विकास

कहानी का अब तक का विश्लेषण केवल कुछ स्थूल घटनाओं को हमारे सामने लाता है। क्या ये घटनाएँ अपने आप में पर्याप्त हैं? क्या यही वास्तविक कथावस्तु है? क्योंकि अब तक वर्णित घटनाओं में यद्यपि तेजी से घटती घटनाएँ हैं, संघर्ष हैं, लेकिन किसी स्पष्ट और महत् उद्देश्य की जानकारी हमें नहीं मिलती। क्या कहानी का उद्देश्य सिर्फ दोनों बंदी व्यक्तियों को बंधन मुक्त कराना ही था। अगर इतना ही उद्देश्य होता तो कहानी यहीं समाप्त हो जाती, लेकिन ऐसा नहीं होता। इन स्थूल घटनाओं में ही वे सूक्ष्म तत्व छिपे हैं जो कथावस्तु के मूल भाव को व्यक्त करते हैं और कहानी जिनके माध्यम से आगे बढ़ती है। आइए, हम इन सूक्ष्म तत्वों का अवलोकन और परीक्षण करें।

कहानी के पहले भाग में जब बंधन मुक्त होने की खुशी के अतिरेक में बुधगुप्त चंपा को गले लगाता है तो उसे ज्ञात होता है कि वह स्त्री है। चंपा जिस तरह अंधेरे का लाभ उठाकर एक प्रहरी का कृपाण चुरा लाती है और बाद की परिस्थितियों में भी साहस और चतुराई का परिचय देती है, उससे बुधगुप्त के मन में चंपा के प्रति श्रद्धा और प्रेम का उदय होता है। जिसकी पहली अभिव्यक्ति कहानी के तीसरे भाग में निम्नलिखित वाक्य से होती है:

> *"उसके मन में एक संभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी"*

यानी कि बुधगुप्त के मन में चंपा के प्रति प्रेम का उदय।

इस तरह अब तक का घटना-चक्र कहानी को एक नयी दिशा की ओर मोड़ता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या चंपा भी बुधगुप्त से प्रेम करने लगती है। इस बात का उत्तर देने से पूर्व कहानी के द्वारा अब तक जो तथ्य हमारे सामने आये हैं, उन पर विचार करना चाहिए।

1 बुधगुप्त समुद्री डाकू है।
2 बुधगुप्त और उसके साथियों के साथ संघर्ष में ही चंपा के पिता की मृत्यु हुई थी।
3 बुधगुप्त ने चंपा को मणिभद्र की कैद से मुक्त कराया था।
4 बुधगुप्त के मन में चंपा के प्रति श्रद्धा भी है और प्रेम भी।

क्या इन तथ्यों को जानने के बाद निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि चंपा बुधगुप्त से प्रेम कर सकती है। अगर पहले दो तथ्य "नहीं" कहते हैं तो बाद के दो तथ्य "हाँ"। क्या इससे स्पष्ट नहीं हो जाता कि कहानी का विकास आगे किस रूप में होगा? यानी कि चंपा और बुधगुप्त के संबंध किस तरह के होंगे?

तीसरे भाग के बाद कहानी जब आगे बढ़ती है तो हमारे सामने नए तथ्य आते हैं। उस अज्ञात द्वीप पर रहते हुए चंपा और बुधगुप्त को पाँच साल हो गए हैं। बुधगुप्त उस द्वीप का शासक बना, उसने दस्यु-वृत्ति छोड़ दी थी। इन पाँच वर्षों में बुधगुप्त ने व्यापार द्वारा काफी धन कमाया। वे लोग हर तरह से सुखी और संपन्न थे। लेकिन बुधगुप्त के प्रेम का क्या हुआ, क्या उसे उसका प्रतिदान मिला? आइए, कहानी के निम्नलिखित अंश देखें :

1 *"मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक।"* (चंपा बुधगुप्त से)
2 *"मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जल दस्यु। हट जाओ।" — सहसा चंपा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा* (चंपा बुधगुप्त से)
3 *"इतना जल। इतनी शीतलता। हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी। नहीं। तो जैसे वेला से चोट खाकर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ। या जलते हुए स्वर्ण गोलक सदृश अनंत जल में डूब कर बुझ जाऊँ?"* (चंपा का स्वकथन)
4 *दृष्टि नील कमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चंपा ने बुधगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिये। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिंधु का।*
5 *किंतु उस परिरंभ में सहसा चैतन्य होकर चंपा ने अपनी कंचुकी से कृपाण निकाल लिया।*
6 *"बुधगुप्त! आज मैं अपने प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबो देती हूँ।"* (चंपा बुधगुप्त से)
7 *"मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।"* (चंपा बुधगुप्त से)

अभ्यास

1 'आकाश-दीप' कहानी के उपर्युक्त उद्धरण चंपा की मनःस्थिति को व्यक्त करने में सक्षम है। आप इनके द्वारा चंपा और बुधगुप्त के संबंधों की व्याख्या 100 शब्दों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

8.2.3 कहानी की परिणति

चंपा के अंतर्द्वंद्व को समझने के बाद आपके मन में इस जिज्ञासा का पैदा होना उचित ही है कि चंपा और बुधगुप्त के संबंधों की परिणति क्या होगी। क्या चंपा अपने मन की दुर्बलता को स्वीकारते हुए बुधगुप्त के परिणय-निवेदन को स्वीकार कर लेगी। कहानी आप पढ़ चुके हैं आप स्वयं जानते हैं कि कहानी का अंत क्या हुआ? इसलिए प्रश्न यह है कि चंपा ने यह मार्ग क्यों स्वीकारा। अर्थात् समाज सेवा का मार्ग। वह अपनी स्वर्गीया माँ की तरह समुद्र में भटके यात्रियों को राह दिखाने के लिए हर शाम आकाश-दीप जलाती है। वह अपनी जिंदगी को भी आकाश-दीप की तरह बना देना चाहती है। आकाश-दीप जो स्वयं जलता है लेकिन दूसरों को राह दिखाता है। इस तरह चंपा अपने मन के द्वंद्व पर विजय पाती है। वह बुधगुप्त से पुनः भारत लौट जाने को कहती है। बुधगुप्त चंपा के कहने पर लौट भी जाता है। चंपा उस द्वीप के दीन-दुखी प्राणियों की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर देती है।

यह है आकाश-दीप की कहानी। आप स्वयं अब सरलता से इस कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकते हैं। आप इसमें कितने सफल होते हैं, इसका पता निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करने से लग सकता है।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थान में प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से मिलाइए।

1 बुधगुप्त और चंपा के चंपा-द्वीप पर पहुंचने से पहले की तीन प्रमुख घटनाओं का क्रमवार उल्लेख कीजिए।

क) ....

....

ख) ....

....

ग) ....

....

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाए।" — चंपा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर कांप गया। उसके मन में एक संभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर विलंबमयी राग-रंजित संध्या थिरकने लगी। चंपा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दांत दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका। वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नयी वस्तु का पता चला। वह थी — कोमलता।"

उपर्युक्त अंश कहानी के तीसरे भाग से उद्धृत किया गया है और कहानी के आगे के विकास के कई पूर्व संकेत इसमें दिखाई देते हैं। आप उपर्युक्त अंश को ध्यानपूर्वक पढ़िए और निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

2 "मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी" से क्या तात्पर्य है?

....

....

3 चंपा के व्यक्तित्व का बुधगुप्त पर क्या-क्या असर हुआ, कोई दो प्रभाव बताइए।

क) ....

ख)

4 आगे हुए घटना-चक्र में से दो ऐसे तथ्यों को लिखिए जो बुधगुप्त में उत्पन्न हुए कोमलता के बिना होने असंभव थे।

क) ....

ख) ....

5 कहानी के अंत से संबंधित निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो-तीन पंक्तियों में दीजिए।

क) चंपा समाज सेवा का व्रत क्यों लेती है?

....

....

ख) बुधगुप्त चंपा को छोड़कर जाने के लिए क्यों तैयार हो जाता है?

....

....

ग) आकाश-दीप चंपा के जीवन के किस त्रासद पक्ष को व्यक्त करता है।

....

....

8.3 चरित्र चित्रण

हमने इकाई 3 में चरित्र चित्रण की चर्चा करते हुए कहा था कि कहानी में पात्रों की संख्या कम होनी चाहिए। 'आकाश-दीप' कहानी में आपने देखा होगा कि मुख्य पात्र केवल दो हैं –– बुधगुप्त और चंपा। इसके अतिरिक्त भी कई पात्र हैं, जैसे नाव का नायक, चंपा की सेविकाएँ जिनमें जया नाम की सेविका का जिक्र किया गया है। इसके अतिरिक्त चंपा के माता-पिता और मणिभद्र व्यापारी के चरित्र का भी उल्लेख होता है, लेकिन कहानी में इनमें से कोई भी पात्र अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व लेकर नहीं उभरता। ये सभी पात्र केवल घटना-विकास में सहायता करने के लिए गौण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार, इस कहानी में मुख्य पात्र दो ही हैं –– चंपा और बुधगुप्त। यहाँ हम इन दोनों के चरित्र का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

हमने इकाई 3 में ही यह बताया था कि पात्रों का चरित्र-चित्रण लेखक कई विधियों से करता है : घटनाओं द्वारा, पात्रों के कार्य द्वारा, अन्य पात्रों या स्वयं उसके कथन से, उसके सोच से या अन्य पात्रों के विचारों से। इस कहानी में भी इनमें से कई विधियों का प्रयोग हुआ है। आइए, अब हम इन विधियों की परीक्षा करते हुए कहानी के उपर्युक्त दोनों पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करें।

8.3.1 चंपा

चंपा 'आकाश-दीप' कहानी की नायिका है। यही कहानी का केंद्रीय चरित्र भी है। कहानी की कथावस्तु इसी के चारों ओर चक्कर लगाती है। चंपा का अंतर्द्वंद्व कहानी का केन्द्रीय विषय है। चंपा का चरित्र कई विधियों से हमारे सामने उजागर होता है। चंपा के अपने कार्य, उसका द्वंद्व, बुधगुप्त की प्रतिक्रिया और दोनों की पारस्परिक बातचीत। आपने कहानी पढ़ते हुए स्वयं चंपा की चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित किया होगा। आइए, हम कहानी के आधार पर चंपा के चरित्र की विशेषताओं को पहचानें।

कहानी के आरंभ में प्रस्तुत चंपा और बुधगुप्त की बातचीत को पुनः पढ़िए। इस बातचीत से चंपा के साहसिक व्यक्तित्व का पता चलता है। जब बुधगुप्त पूछता है कि "शस्त्र मिलेगा?" तो वह पूर्ण विश्वास और दृढ़ता के साथ कहती है "मिल जाएगा।" यह उसके साहसिक व्यक्तित्व की पहचान है। जिसका परिचय आपको बाद की घटनाओं से भी मिलता है। इसी बातचीत में चंपा के व्यक्तित्व की एक और विशिष्टता का परिचय मिलता है।

बातचीत का एक अंश देखिए :

> बुधगुप्त –– *तो क्या तुम भी बंदी हो ?*
> चंपा –– *हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर दस नाविक और प्रहरी हैं ।*

चंपा के इस उत्तर से उसकी बुद्धिमता का परिचय भी मिलता है। वह बंदी जीवन से आजाद होना चाहती है, लेकिन सावधान भी है। इस तरह चंपा के चरित्र की दो विशेषताएँ साहस व बुद्धिमता आरंभ में ही उजागर हो जाती है। बाद का घटना-चक्र इन दोनों विशेषताओं को और पुष्ट करता है।

किसी भी व्यक्ति का चरित्र उसके पारिवारिक और सामाजिक स्थितियों तथा वैयक्तिक रूझानों और क्षमताओं से निर्मित होता है। यह बात चंपा पर भी लागू होती है। 'आकाश-दीप' कहानी होने के कारण इसमें चंपा के पारिवारिक जीवन का विस्तृत

परिचय तो नहीं मिलता। लेकिन उसके परिवार का जो भी परिचय प्राप्त होता है, वह उसके चारित्रिक विशेषताओं को समझने में सहायक होता है। कहानी का निम्नलिखित अंश देखिए :

> *"....चंपा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल-समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील-नभ के नीचे नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनंतता में निस्सहाय हूँ—अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया मैंने उसे गालियाँ सुनाई। उस दिन से बंदी बना दी गई।"*

उपर्युक्त अंश में जहाँ हमें चंपा की पारिवारिक पृष्ठभूमि का पता चलता है, वहीं यह भी मालूम होता है कि उसके साहसिक व्यक्तित्व का स्रोत क्या है।

क्या आप स्वयं उपर्युक्त अंश के आधार पर चंपा के जीवन की स्थितियों और चरित्र की विशिष्टताओं को पहचान सकते हैं? आइए, आपके इस प्रयास में हम आपकी सहायता करते हैं।

चंपा एक क्षत्रिय बालिका है, जो माता के देहावसान के बाद अपने पिता के साथ समुद्र पर ही जीवन यापन करने लगी। समुद्र के कठोर जीवन और पिता के वीरतापूर्ण बलिदान का प्रभाव स्वयं पर उस पर भी है। यही उसके साहसिक होने का कारण है। पिता की मृत्यु के बाद वह बिल्कुल अकेली हो जाती है और इस स्थिति का लाभ उठाकर व्यापारी मणिभद्र उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है, जिसे वह दृढ़तापूर्वक ठुकरा देती है। यह उसके साहसिक व्यक्तित्व का एक और प्रमाण तो है ही, चारित्रिक दृढ़ता का भी प्रमाण है। यद्यपि अपने चरित्र की इन विशेषताओं के कारण उसे बंदी बना लिया जाता है। एक महीने लंबी कैद और पिता की मृत्यु ने गहरे दुःख और उदासी में उसे डुबो दिया है।

चंपा के व्यक्तित्व के कई पहलू चंपा-द्वीप जाने के बाद और खुलकर सामने आते हैं। चंपा-द्वीप पर साथ-साथ रहते हुए बुधगुप्त और चंपा का एक-दूसरे के प्रति प्रेम हो जाना स्वाभाविक है। बुधगुप्त अब बहुत बदल चुका है। उसने दस्युवृत्ति छोड़ दी है। वह चंपा से विवाह करना चाहता है, लेकिन स्वयं चंपा क्या सोचती है? क्या वह भी बुधगुप्त से उतना ही प्यार करती है? क्या वह बुधगुप्त से विवाह करने को तैयार हो जाती है? इन प्रश्नों का उत्तर पाते हुए हमारे सामने चंपा के चरित्र के कुछ और पहलू उजागर होते हैं। कहानी के निम्नलिखित अंशों जिन्हें बोध प्रश्नों में दिया गया है, के आधार पर आप स्वयं इनको पहचान सकते हैं।

बोध प्रश्न

कहानी के निम्नलिखित अंशों के आधार पर चंपा की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।

6 "नहीं-नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी परंतु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो।...." यहाँ चंपा के स्वभाव का कौन-सा पक्ष व्यक्त हुआ है।

क) क्रोधी
ख) नास्तिक
ग) आस्थावादी
घ) बुधगुप्त के प्रति प्रेम [ ]

7 "अच्छा होता बुधगुप्त। जल में बंदी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।" यहाँ चंपा के मन का कौन-सा भाव व्यक्त हुआ है।

क) हृदयहीनता
ख) विवशता
ग) सहनशीलता
घ) जीवंतता [ ]

8 "जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ।" चंपा के इस कथन से उसके हृदय के किन भावों का बोध होता है।

क) मन की अस्थिरता और दुर्बलता
ख) मन का द्वंद्व और प्रेम की जीत
ग) पिता के प्रति विश्वासघात और प्रेमी के प्रति अंधमोह
घ) मन की घृणा और हृदय का प्रेम [ ]

9 "बुधगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है।" चंपा का उपर्युक्त कथन उसके हृदय के किस भाव को व्यक्त करता है।

क) वैराग्य
ख) कठोरता

ग) दार्शनिकता
घ) निराशा [ ]

10 "प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" चंपा को समाज सेवा के व्रत की प्रेरणा किससे मिलती है?

क) बुधगुप्त
ख) आत्मप्रेरणा
ग) प्रेम की असफलता से
घ) अपनी माँ से [ ]

8.3.2 बुधगुप्त

चंपा के चरित्र को अब आप कुछ-कुछ विश्लेषित कर सकते हैं। इस कहानी का दूसरा महत्वपूर्ण चरित्र है बुधगुप्त। बुधगुप्त को चंपा की तरह गहरे अंतर्द्वंद्व से नहीं गुजरना पड़ता। लेकिन चंपा के संसर्ग में आने से उसके चरित्र में मूलभूत परिवर्तन आता है। चंपा से मिलने से पहले वह समुद्री डाकू है। एक डाकू के चरित्र की जो विशेषताएँ होती हैं, वे उसमें भी हैं। वह क्रूर है, धन का लोभी है, साहसी है, खतरों से खेलना जानता है। किसी की हत्या करने में उसे संकोच नहीं होता। विपत्ति में भी नहीं घबराता। लेकिन चंपा से मिलने के बाद उसके हृदय में एक नये भाव का उदय होता है। एक ऐसे भाव का, जिससे उसका पहले कभी परिचय नहीं हुआ था।

बोध प्रश्न

11 आप बता सकते हैं वह भाव कौन-सा था जो बुधगुप्त के मन में चंपा के संपर्क में आने पर उदित हुआ।

क) करुणा
ख) कोमलता
ग) दया
घ) मोह [ ]

इस भाव के उत्पन्न होने से उसकी स्वभावगत क्रूरता, और हिंसक वृत्ति धीरे-धीरे नष्ट होने लगती है और एक नये बुधगुप्त का जन्म होता है। बुधगुप्त के चरित्र की इन नवीन विशेषताओं को बुधगुप्त के निम्नलिखित कथनों से आप पहचान सकते हैं।

बोध प्रश्न

12 "आह चंपा, तुम कितनी निर्दयी हो! बुधगुप्त को आज्ञा देकर देखा तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिए नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नयी प्रजा खोज सकता है नये राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो। कहो चंपा। वह कृपाण से अपना हृदय-पिंड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे।" बुधगुप्त के उक्त कथन से उसके हृदय के किस भाव का बोध होता है।

क) गहरा प्रेम
ख) आज्ञाकारिता
ग) साहस
घ) त्याग [ ]

13 बुधगुप्त के कथन के निम्नलिखित अंशों का आशय स्पष्ट करें और उससे बुधगुप्त के चरित्र के किस पहलू पर प्रकाश पड़ता है।

क) "मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता।"

....

ख) "मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है।"

....

ग) "आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कुराने लगी।"

....

8.4 परिवेश

आपने इससे पूर्व 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी का अध्ययन किया था, वह एक ऐतिहासिक कहानी थी। ऐतिहासिक कहानी का तात्पर्य है, ऐसी कहानी जिसका कथानक अतीत के किसी युग विशेष से संबद्ध हो। 'शतरंज के खिलाड़ी' की कथावस्तु 1856 के लखनऊ से संबद्ध थी, जिसे पहचानना आसान था क्योंकि वाजिदअली शाह का अपदस्थ होना और अवध पर अंग्रेजों का अधिकार होना, इतिहास-प्रसिद्ध घटनाएँ हैं। 'आकाश-दीप' कहानी की कथावस्तु भी अतीत से संबंधित है। लेकिन इसका देश-काल उतना स्पष्ट नहीं है क्योंकि इस कहानी का संबंध अतीत की किसी ऐतिहासिक घटना से नहीं है। इस कहानी में कुछ जगहों के जो नाम प्रयुक्त हुए हैं उससे इस कहानी में वर्णित घटनाओं के समय का अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे कहानी का नायक बुधगुप्त बताता है कि वह ताम्रलिप्ति का रहने वाला है। ताम्रलिप्ति गुप्तकाल में भारत के पूर्वी समुद्री-तट (बंगाल और उड़ीसा के बीच) पर स्थित नगर था, जहाँ के बंदरगाह से दक्षिण-पूर्व एशिया के कई देशों से भारत का व्यापारिक संबंध था। इसी तरह उसी युग में, बिहार के वर्तमान भागलपुर जनपद और उसके आसपास के क्षेत्र को चंपा-नगरी कहा जाता था और जो गंगा के किनारे पर बसी हुई थी। चंपा इसी शहर की रहने वाली थी। इसी तरह चंपा और बुधगुप्त जिस नये द्वीप की खोज करते हैं, उसे चंपा-द्वीप का नाम देते हैं। उस युग में वियतनाम को भी चंपा ही कहा जाता था। संभव है प्रसादजी का संकेत वियतनाम की ओर ही हो। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस कहानी का संबंध गुप्तकाल (सन् 300-600 ई.) या उसके आसपास के किसी काल से है।

'आकाश-दीप' चरित्र-प्रधान कहानी है और इसकी नायिका चंपा के अंतर्द्वंद्व को ही कहानी का मुख्य कथ्य बनाया गया है। चंपा का अंतर्द्वंद्व मनुष्य की ऐसी भावनाओं से जुड़ा है जो किसी भी देश और काल में संभव है इसलिए इस कहानी में परिवेश का उतना महत्व नहीं है, जितना "शतरंज के खिलाड़ी" में था। इसके बावजूद इस कहानी में परिवेश की संरचना उस युग के अनुकूल की गई है और प्रसादजी ने इस बात का ध्यान रखा है कि कहानी में उस युग के यथार्थ के विपरीत कुछ न हो। इसका एक उदाहरण है, कहानी की भाषा। इस कहानी की भाषा संस्कृतनिष्ठ है और तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका कारण यह है कि कहानी का संबंध जिस काल से है, इसमें आज की बोलचाल की हिंदी जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग काफी मात्रा में होता है, अयथार्थ लगेगी। इसकी तुलना में संस्कृत और तत्सम शब्द उस युग के माहौल को जीवंत बनाने में मददगार होते हैं। आप इस परिवेश की अन्य विशेषताओं को कहानी के माध्यम से आसानी से पहचान सकते हैं। यद्यपि प्रसादजी ने परिवेश का बाह्य चित्रण बहुत कम किया है।

कहानी के आरंभ में समुद्र का वर्णन है :

> *"तारक-खचित नील अंबर और समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आंदोलन था। नौका लहरों में विकल थी।"*

यह समुद्र पर एक रात्रि का वर्णन है। तेज हवा और अँधेरी रात में समुद्र में बहती नाव का चित्र खींचा गया है। यह चित्र तथ्यपरक कम और आलंकारिक ज्यादा है। तथ्य सिर्फ इतना है कि एक नाव है जो समुद्र में बह रही है। लेकिन नाव का आकार-प्रकार का वर्णन नहीं किया गया है। नाव पर दस-बारह लोग हैं, इसलिए कह सकते हैं कि नाव का आकार बड़ा है। कहानी में बाह्य तथ्यों का वर्णन इसी तरह का है। इसका कारण यह है कि प्रसादजी मूलतः कवि थे और उनकी अभिरुचि वस्तुओं के बाह्य रूप में कम उसके भावात्मक चित्रण में अधिक रमती थी। इसीलिए उनकी इस कहानी में प्रकृति के विभिन्न रूपों का काव्यमय वर्णन या पात्रों के हृदयगत द्वंद्व का चित्रण मिलता है। इन दोनों तरह के प्रसंगों में प्रसाद की कलात्मक दक्षता देखते बनती है।

प्रकृति वर्णन

> *"तारे ढँक गये। तरंगें उद्वेलित हुई, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कंदुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।"*

उपर्युक्त पंक्तियाँ समुद्र में उठे ज्वार का दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। यह मात्र एक दृश्य का वर्णन नहीं है वरन् इसमें काव्य का सौंदर्य भी देख सकते हैं। समुद्र में उठी भीषण आँधी की तुलना जब वे पिशाचिनी (राक्षसी) के रूप में करते हैं और नाव की तुलना गेंद के रूप में तो सारा दृश्य एक भिन्न सौंदर्य के साथ हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है। प्रकृति के विभिन्न रूपों के ऐसे कई चित्र हम इस कहानी में देख सकते हैं। ऐसे ही हृदय के द्वंद्व का निम्नलिखित चित्र देखिए:

> *"इतना जल! इतनी शीतलता! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी? नहीं! तो जैसे वेला से चोट खाकर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ? या जलते हुए स्वर्ण-गोलक सदृश अनंत जल में डूब कर बुझ जाऊँ।"*

उपर्युक्त पंक्तियाँ चंपा का स्वकथन है। इसमें चंपा की हृदयगत पीड़ा का आभास मिलता है। उसकी पीड़ा का कारण है, बुधगुप्त। बुधगुप्त जिसे वह अपने पिता का हत्यारा समझती है, लेकिन उसी बुधगुप्त से वह प्रेम भी करने लगती है यही उसके मन की पीड़ा का कारण है। उसके मन का यही द्वंद्व इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है : "इतना जल! इतनी शीतलता! हृदय की प्यास न बुझी।" "यह जल" और उसकी "शीतलता" उसके हृदय की वे कोमल भावनाएँ हैं जो बुधगुप्त के कारण उत्पन्न हुई हैं, लेकिन पिता की स्मृति उसे यह 'प्यार' स्वीकार नहीं करने देती। इसी भावना को समुद्र के एक दृश्य से वे व्यक्त करते हैं जैसे समुद्र में सांझ के समय सूर्य डूबता है उसी तरह अपनी इन भावनाओं को हृदय की अतल गहराइयों में डुबोकर खत्म कर दूँ। आप देखेंगे यहाँ भी कवि नायिका चंपा की मनोदशा को चित्रित करने के लिए काव्य के उपकरणों का इस्तेमाल करता है।

इस तरह प्रकृति चित्रण और व्यक्ति की मनोदशाओं की अभिव्यक्ति मे हमें प्रसाद की परिवेश निर्माण की क्षमता का परिचय मिलता है। इस अर्थ में उनकी कहानियाँ कविता-सा आस्वाद देती है।

बोध प्रश्न

14 इस कहानी में परिवेश का महत्व अपेक्षाकृत कम क्यों है?
- क) यह ऐतिहासिक कहानी है।
- ख) यह काल्पनिक कहानी है।
- ग) इस कहानी में भावनाओं के द्वंद्व को अधिक महत्व दिया गया है।
- घ) इस कहानी में सामाजिक यथार्थ की उपेक्षा की गई है। [ ]

15 इस कहानी में परिवेश चित्रण की दो विशेषताएँ बताइए।
- क) ....
....
- ख) ....
....

8.5 संरचना-शिल्प

संरचना-शिल्प के अंतर्गत यहाँ हम कहानी की शैली, संवाद और भाषा पर विचार करेंगे। हमने इससे पूर्व 'उसने कहा था' और 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानियों के संरचना शिल्प का अध्ययन किया था। 'आकाश-दीप' कहानी उक्त दोनों कहानियों से भाषा और शैली दोनों दृष्टियों से भिन्न है। आइए, हम देखें कि यह कहानी किन अर्थों में भिन्न है और इसकी अपनी विशिष्टताएँ क्या हैं।

8.5.1 शैली

'आकाश-दीप' भावना-प्रधान कहानी है। इस कहानी में लेखक का उद्देश्य स्थूल घटनाओं का वर्णन करना नहीं है बल्कि भावनाओं के संघर्ष का चित्रण करना है। भावनाओं के चित्रण पर आधारित कहानी की शैली स्वतः ही भावप्रधान हो जाएगी। इसीलिए इस कहानी की शैली भी भावप्रधान है। इस कहानी में केवल पात्रों की मनोदशा के चित्रण में ही नहीं बल्कि प्रकृति चित्रण, घटनाओं के वर्णन में भी भावप्रवणता देखी जा सकती है। जैसे निम्नलिखित अंश देखिए :

> *"एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बंदी खिलखिलाकर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।"*

उपर्युक्त अंश में आप देखेंगे कि यह एक घटना का वर्णन है। लेकिन प्रसादजी की भावगत शैली यहाँ भी स्पष्ट दिखाई देती है। "आँधी के हाहाकार में" प्रयोग इसी भावप्रधान शैली का द्योतक है। अगर इसकी जगह "आँधी के शोर में" लिखते तो वह मात्र घटना का वर्णन होता यद्यपि यह भी यथार्थ की दृष्टि से सही होता। यह भावगत शैली हम कहानी में शुरु से अंत तक देख सकते हैं।

> *"नौका लहरों में विकल थी।*
> *सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कुराने लगी।*
> *समुद्र-वक्ष पर विलंबमयी राग-रंजित संध्या थिरकने लगी।"*

प्रसाद की कहानियों में यह काव्यात्मकता उनके कवि होने का परिणाम है।

8.5.2 भाषा और संवाद

प्रसादजी की भाषा उनकी शैली की तरह भावप्रधान है जो उनकी कहानियों की संरचना के अनुकूल है। जैसा कि कहा जा चुका है, प्रसादजी मूलतः कवि हैं इसलिए उनकी अभिरुचि यथार्थ के बाह्य पक्ष (या वस्तुपक्ष) के चित्रण में कम और उसके संवेदनात्मक पक्ष के चित्रण में अधिक रही है। जहाँ अभिव्यक्ति में वस्तुपरकता कम होगी भावप्रवणता अधिक होगी वहाँ भाषा भी उसी के अनुरूप कोमल और माधुर्य गुणों से युक्त हो जाएगी। इस कहानी की भाषा में यह माधुर्य और कोमलता हम सर्वत्र देख सकते हैं। एक उदाहरण लें :

> *"आपत्ति-सूचक तूर्य बजने लगा।"*

आप इस पंक्ति का तात्पर्य समझ गए होंगे। इस पंक्ति में "आपत्ति -सूचक" और "तूर्य" शब्द गौर तलब है। इस पंक्ति में कवि आपत्ति-सूचक की जगह खतरा या खतरे की सूचना देने वाले और तूर्य की जगह तुरही, बिगुल या ढोल शब्दों के प्रयोग भी किए जा सकते थे, लेकिन तब वाक्य में वह कोमलता नहीं आ पाती जो अब आ गई है।

इसी तरह प्रसाद अपनी भाषा में काव्य-भाषा की विशेषताओं का भी इस्तेमाल करते हैं। ये विशेषताएँ हैं बिंबात्मकता और आलंकारिता। प्रसाद शब्दों के द्वारा पूरे दृश्य का बिंब बना देते हैं, विशेष रूप से प्रकृति चित्रण में। जैसे, निम्नलिखित बिंब देख सकते हैं :

> *"भीषण आँधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कंदुक क्रीड़ा और अट्टाहास करने लगी।"*

यह आँधी का बिंब है, लगता है जैसे कहानीकार ने पूरा दृश्य शब्दों में जीवित कर दिया हो। ऐसे ही भाषा की आलंकारिकता भी हमारा ध्यान आकृष्ट करती है :

> *"अनंत जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट पड़ा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कुराने लगी।"*

इन पंक्तियों में "अनंत जलनिधि", "उषा का मधुर आलोक" "सुनहली किरणों" और "कोमल सृष्टि" जैसे प्रयोग भाषा को अलंकारमय भी बनाते हैं।

हमने 'परिवेश' के अंतर्गत कहा था कि इस कहानी में भाषा संस्कृतनिष्ठ है और शब्दावली तत्सम प्रधान है। इसका कारण है, कहानी का कथ्य, जो ऐतिहासिक है तथा जिस काल से संबंधित कहानी है, उसके लिए तत्सम और संस्कृतनिष्ठ भाषा अपरिहार्य है। इस कारण से भाषा में कहीं-कहीं क्लिष्टता भी आ गई है, जो स्वाभाविक है।

जहाँ तक संवादों का प्रश्न है, इस कहानी में चंपा के संवाद अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके संवादों द्वारा ही उसकी हृदयगत वेदना और द्वंद्व का आभास मिलता है। प्रसादजी ने चंपा बुधगुप्त दोनों के संवाद लिखने में अद्भुत भाषा कौशल का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए चंपा का निम्नलिखित संवाद देख सकते है :

> *"विश्वास? कदापि नहीं बुधगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है, जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।"*

चंपा के उपर्युक्त संवाद में बुधगुप्त के प्रति उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन बुधगुप्त के प्रति चंपा की भावनाएँ सहज नहीं बल्कि जटिल हैं और भावनाओं की यही जटिलता यहाँ अत्यंत कुशलता से व्यक्त हुई है। "मैं तुम्हें घृणा भी करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ।" चंपा के जटिल भावबोध को इतने सहज ढंग से व्यक्त करता है कि हमें उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होती।

इस कहानी के संवादों की ये विशेषताएँ विशेष रूप से ध्यान रखी जानी चाहिए। लेकिन इसके साथ ही यह भी कहना आवश्यक है कि प्रेमचंद की कहानियों में संवादों में जो स्वाभाविकता, सहजता और प्रवाहमयता नज़र आती है, वह यहाँ कम है। भाषा की साहित्यिकता तो ध्यान खींचती है, लेकिन संवादों की भाषा बोलचाल के नज़दीक होने की बजाए किताबी अधिक हो गई है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित संवाद देखिए :

"बुधगुप्त! आज मैं अपने प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबो देती हूँ।......"

इस संवाद में "प्रतिशोध का कृपाण" अतल जल में डुबो देना जैसे प्रयोग साहित्यिक दृष्टि से अवश्य ध्यान खींचते है, लेकिन इसमें बोलचाल की स्वाभाविकता नहीं नज़र आती।

बोध प्रश्न

16 'आकाश-दीप' कहानी की शैलीगत विशेषता क्या है, दो पंक्तियों मे उत्तर दीजिए।

....

....

17 इस कहानी के भाग 4 में से भाषा और शैली की निम्नलिखित विशेषताओं वाले अंश उद्धृत कीजिए।

क) आलंकारिक भाषा

....

....

ख) बिंबात्मक भाषा

....

....

ग) भावोद्वेग व्यक्त करने वाला संवाद

....

....

18 'आकाश-दीप' कहानी के संवादों के दोष बताइए और भाग 6 में से उसका एक उदाहरण भी उद्धृत कीजिए।

दोष :

....

....

उदाहरण :

....

....

8.6 मूल्यांकन

इस कहानी के विभिन्न पक्षों के विश्लेषण का अध्ययन कर चुके हैं। विश्लेषण के बाद कहानी का मूल्यांकन करना आसान हो जाता है। जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि मूल्यांकन का तात्पर्य कहानी के बारे में कोई निर्णय देना नहीं वरन् लेखक की दृष्टि, कहानी का प्रतिपाद्य और शीर्षक की उपयुक्तता पर विचार करना है।

'आकाश-दीप' कहानी चरित्र-प्रधान कहानी है। लेकिन यहाँ चरित्र भी सफेद और स्याह नहीं है। यहाँ चरित्र से तात्पर्य पात्रों के कुछ गुणों को उजागर करना नहीं वरन् उसके मनोभावों के चित्रण द्वारा उसके हृदय की जटिलताओं को उजागर करना है और ऐसा करते हुए चरित्र की कमजोरियों और मानवीय भावनाओं के उज्ज्वल पक्ष व्यक्त होते हैं, प्रसाद की मूल चिंता उसी से जुड़ी है।

प्रसादजी ने नायिका चंपा के अंतर्द्वंद्व को ही कहानी का मुख्य कथ्य बनाया है। चंपा का द्वंद्व यह है कि एक ऐसे व्यक्ति (बुधगुप्त) से जिसे वह अपने पिता का हत्यारा समझती है, उसके प्रति उत्पन्न हुए प्रेम का वह क्या करे। उसका द्वंद्व यह नहीं कि वह बुधगुप्त के प्रणय-निवेदन को स्वीकार करे या नहीं। अगर यही निर्णय लेना होता तो शायद उसके लिए उतना मुश्किल नहीं होता। किंतु चंपा की समस्या तो शायद उसके अपने मन की समस्या है क्योंकि न चाहते हुए (आखिर कोई भी युवती उस व्यक्ति से कैसे प्रेम कर सकती है जिसे वह अपने पिता का हत्यारा समझती है) वह बुधगुप्त से प्रेम करने लगती है। अपनी इस भावना को स्वीकार नहीं करना चाहती लेकिन बुधगुप्त के बदले हुए व्यवहार के आगे वह विवश भी है। यही उसका अंतर्द्वंद्व है। प्रसादजी 'आकाश-दीप' कहानी के द्वारा एक ही व्यक्ति के प्रति दो विपरीत भावनाओं के संभव होने को व्यक्त करना चाहते हैं: हमारा मन किसी के प्रति हमेशा एक-सा नहीं रहता। एक ही समय एक ही व्यक्ति के प्रति एक ही साथ कई तरह की भावनाएँ संभव हो सकती हैं। इस अर्थ में प्रसादजी मानव-मन की जटिलताओं को जो मानवीय यथार्थ का ही एक अंश है, व्यक्त कर रहे हैं और इसीलिए यह महत्वपूर्ण भी है।

'आकाश-दीप' कहानी की कमजोरी यह है कि प्रसादजी जिस मानवीय-यथार्थ को व्यक्त करना चाहते हैं, उसके लिए जो घटना-चक्र वह कल्पित करते हैं, वह उतना विश्वसनीय नहीं लगता। बुधगुप्त समुद्री डाकू था। उसके दल और मणिभद्र के प्रहरियों के बीच हुए संघर्ष में ही चंपा के पिता की मृत्यु हुई। किंतु केवल इस कारण से ही बुधगुप्त को अपने पिता का हत्यारा मान लेना बहुत विश्वसनीय नहीं लगता।

कहानी का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है — आकाश-दीप जलाना। वैयक्तिक जीवन की असफलता चंपा को सामाजिक आदर्श की ओर मोड़ती है। चंपा की माता समुद्र में भटके यात्रियों को राह दिखाने के लिए आकाश-दीप जलाती थी। चंपा भी अपना जीवन-आदर्श इसे ही बनाती है। जैसे दीप स्वयं जलकर दूसरों को पथ दिखाता है, वैसे ही चंपा भी अपने जीवन को वैयक्तिक सुख-भोगों से काटकर समाज के दुखी और उत्पीड़ित लोगों की सेवा में लगा देती है। अगर वह अपने अंतर्द्वंद्व पर विजय पा सकती तो शायद बुधगुप्त से विवाह कर वह वैभवपूर्ण जीवनयापन करती। किंतु वह ऐसा नहीं करती। वह अपने प्यार के प्रति भी सच्ची रहती है, पिता के प्रति भी और समाज के प्रति भी। लेकिन उसके लिए उसे वैयक्तिक जीवन के सुखों की आहुती देनी पड़ती है। चंपा का 'आकाश-दीप' जलाना इसी अर्थ में एक प्रतीक बन जाता है, उसके अपने जीवन की त्रासदी का।

> *"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तंभ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किंतु देखती हूँ मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।"*

'आकाश-दीप' शीर्षक की उपयुक्तता भी इसी अर्थ में है।

बोध प्रश्न

19 'आकाश-दीप' की कहानी की मूल संवेदना का आधार क्या है?

क) प्रेम और घृणा का द्वंद्व और उस पर विजय।

ख) एक ही व्यक्ति के प्रति विपरीत भावनाओं से उत्पन्न द्वंद्व।

ग) वैयक्तिक प्रेम का त्याग कर समाज सेवा का व्रत लेना।

घ) भावना और कर्तव्य का संघर्ष। [ ]

20 क) 'आकाश-दीप' कहानी का शीर्षक चंपा के जीवन के किस पक्ष को व्यक्त करता है? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

ख) जयशंकर प्रसाद इस कहानी के माध्यम से कौन सा मानवीय यथार्थ व्यक्त कर रहे हैं, संक्षेप में लिखिए।

....

....

....

8.7 सारांश

आपने 'आकाश-दीप' के विश्लेषण और मूल्यांकन का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होगा।

- 'आकाश-दीप' ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित है। इसमें व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व को कथा का आधार बनाया गया है। प्रेम और घृणा के बीच झूलते व्यक्ति मन की क्या दशा होती है, इस पृष्ठभूमि में आप 'आकाश-दीप' की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकते हैं।
- 'आकाश-दीप' में दो प्रमुख पात्र हैं, चंपा और बुधगुप्त। बुधगुप्त समुद्री डाकू है जो चंपा के संपर्क में आकर बदल जाता है। स्वयं चंपा भी उससे प्रेम करती है, लेकिन वह उसे अपने पिता का हत्यारा भी समझती है। चंपा का चरित्र इसी अंतर्द्वंद्व पर टिका है। आप बुधगुप्त और चंपा की चारित्रिक विशेषताएँ बता सकते हैं।
- 'आकाश-दीप' का काल अतीत में है, लेकिन यह मूलतः मानवीय भावनाओं की कहानी है। फिर भी प्रसाद जी ने इसे इतिहासपरक बनाया है, विशेषतया भाषा के माध्यम से। कहानी के परिवेश का इस दृष्टि से आप विश्लेषण कर सकते हैं।
- प्रसाद जी मूलतः कवि हैं। इसलिए इनकी शैली में भावना का बाहुल्य, भाषा में बिंबात्मकता और संवादों में गहराई है। आप शैली और भाषा के द्वारा कहानी की इन विशेषताओं को पहचान सकते हैं।
- 'आकाश-दीप' के द्वारा प्रसाद जी ने बताना चाहा है कि व्यक्ति किसी अन्य के प्रति एक ही साथ दो विरोधी भावनाएँ रख सकता है। चंपा बुधगुप्त से प्रेम भी करती है और घृणा भी। इस अंतर्द्वंद्व का समाहार समाज की सेवा में अपने को डुबो देने से ही संभव है। कहानी के इस प्रतिपाद्य का आप विश्लेषण कर सकते हैं।

8.8 उपयोगी पुस्तकें

बाजपेयी, नंददुलारे : **जयशंकर प्रसाद,** भारती भवन, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मदान, डॉ॰ इंद्रनाथ : **हिंदी कहानी : पहचान और परख,** लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली

8.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

अभ्यास

1 चंपा बुधगुप्त के बंधन से मुक्त होना चाहती है। यह बंधन बाहरी नहीं है, उसके अपने मन का है। वह बुधगुप्त के मोह से छूट नहीं पा रही है। लेकिन वह जब भी यह स्मरण करती है कि बुधगुप्त उसके पिता का हत्यारा है, तो उसके मन में बुधगुप्त के प्रति घृणा का प्रबल आवेग फूट पड़ता है लेकिन फिर प्रेम के कमजोर क्षणों में बुधगुप्त के प्रति अपनी हृदय-भावना भी व्यक्त कर देती है। एक ओर वह पिता की हत्या का बदला लेना चाहती है और दूसरी ओर वह बुधगुप्त के प्रेम को अस्वीकार भी नहीं कर पाती, यही द्वंद्व है चंपा के मन का और इसी द्वंद्व को व्यक्त करना कहानी का उद्देश्य है। दूसरी ओर बुधगुप्त चंपा के संसर्ग में आने के बाद दस्युवृत्ति छोड़ चुका है। अपने हृदय की कठोरता का त्याग कर चुका है। चंपा के एक संकेत पर वह कुछ भी कर सकता है। क्या किसी के निश्छल और पवित्र प्रेम का निरादर किया जा सकता है।

(आपका उत्तर ठीक इसी भाषा में हो यह आवश्यक नहीं है किंतु भाव इसके आस-पास का होना चाहिए।)

बोध प्रश्न

1 क) चंपा द्वारा बंधन से मुक्ति और बुधगुप्त को मुक्ति के लिए कहना।
ख) चंपा द्वारा एक प्रहरी से कृपाण चुराना और बुधगुप्त द्वारा रस्सी काटना।
ग) नाव पर सवार प्रहरियों के नायक से बुधगुप्त का द्वंद्व और उसे परास्त करना।

2 अपने भाग्य को अनिश्चित बनाए रखना। अर्थात मेरा भविष्य अनिश्चित ही बना रहेगा, चंपा के कथन का तात्पर्य है :

3 क) दस्युवृत्ति छोड़ दी।
ख) हिंसक वृत्ति भी समाप्त हो गई।

4 क) बुधगुप्त ने चंपा के प्रति कठोर व्यवहार नहीं किया।
ख) बुधगुप्त चंपा के कहने पर भारत लौट गया।

5 क) अपने जीवन की वैयक्तिक असफलताओं का समाधान वह समाज सेवा में पाती है।
ख) चंपा के प्रति उसके मन में गहरी श्रद्धा है और वह किसी भी प्रकार चंपा की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता।
ग) चंपा अपने मन की वेदना को दबाकर दूसरों की सेवा करते हुए अपने को समाप्त कर लेती है।

6 ग) 7 ख) 8 घ) 9 घ) 10 घ) 11 ख) 12 क)

13 क) अनास्थावादी ख) कोमलता ग) प्रेम

14 ग)

15 क) प्रकृति चित्रण में काव्यात्मकता
ख) मनुष्य की हृदयगत भावनाओं का चित्रण

16 'आकाश-दीप' की शैली भावप्रधान है। भावप्रधान शैली के अनुकूल इसकी भाषा काव्यात्मक और आलंकारिक है।

17 क) शरद के धवल नक्षत्र............बिखेर दिया। (इकाई 7 पृ. 66)
ख) सामने जल राशि का रजत............मुखरित होता था। (इकाई 7 पृ. 67)
ग) "मेरे पिता, वीर पिता............हट जाओ।" (इकाई 7 पृ. 67)

18 दोष-: बोलचाल की भाषा नहीं।
असहजता एवं अस्वाभाविकता।
उदाहरण : चलोगी चंपा! पोतवाहिनी पर...... जन्मभूमि के अंक में। (इकाई पृ. 70)

19 ख)

20 क) वैयक्तिक प्रेम का त्याग कर चंपा समाज सेवा का व्रत लेती है और आकाश-दीप की तरह अपने को जलाकर दूसरों की सहायता करती है।

ख) व्यक्ति दूसरे के प्रति एक साथ विपरीत भावनाओं के वशीभूत हो सकता है और उसके लिए उस पर विजय पाना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति से छुटकारा अपने को समाज सेवा में लगाकर ही मिल सकता है।

काई 9 'परदा' (यशपाल) : वाचन एवं विश्लेषण

काई की रूपरेखा

.0 उद्देश्य
.1 प्रस्तावना
.2 कहानी का वाचन : परदा
.3 कहानी का सार
.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या
.5 कथावस्तु
.6 चरित्र चित्रण
.7 परिवेश
.8 संरचना शिल्प
9.8.1 शैली
9.8.2 भाषा
9.8.3 संवाद
.9 मूल्यांकन
.10 सारांश
.11 उपयोगी पुस्तकें
.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

.0 उद्देश्य

स इकाई में हम आपको प्रसिद्ध कथाकार यशपाल की कहानी 'परदा' दे रहे हैं। आप कहानी का वाचन भी करेंगे और हानी के विभिन्न पक्षों के विश्लेषण द्वारा उसका मूल्यांकन भी करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- कहानी में आए कठिन शब्दों; मुहावरों व लोकोक्तियों के अर्थ कर सकेंगे;
- कहानी के महत्वपूर्ण अंशों और उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे;
- कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे और इस विश्लेषण के द्वारा कथावस्तु की विशेषताएँ पहचान सकेंगे;
- कहानी के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे;
- कहानी की परिवेशगत पृष्ठभूमि की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण कर सकेंगे;
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता बता सकेंगे; और
- उपर्युक्त आधारों पर किये गये विश्लेषण द्वारा कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।

.1 प्रस्तावना

पने अब तक तीन कहानियों का विस्तृत अध्ययन किया है। 'उसने कहा था', 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'आकाश-दीप'। तीनों कहानियाँ हिंदी की कहानी-परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। आपने इन तीनों कहानियों के अध्ययन से अनुभव या होगा कि ये तीनों भिन्न-भिन्न वास्तविकताओं और संरचनाओं को व्यक्त करने वाली कहानियाँ हैं। 'परदा' यशपाल की ा कहानियों में है। इसका कथ्य भी 'शतरंज के खिलाड़ी' की तरह सीधा और सहज है और अपने प्रभाव में यह भी वैसी मार्मिक है। इसका कथ्य 'शतरंज के खिलाड़ी' की तरह विस्तृत नहीं है परन्तु इस कहानी का अर्थ एक बड़े सामाजिक वर्ग स्थिति और मनोवृत्ति को उजागर करने वाला है, जिसे आप कहानी के वाचन और विश्लेषण से समझ सकेंगे।

ापाल, प्रेमचंद परंपरा के कथाकार थे। उनका जन्म 1903 में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई , बाद में वे अध्ययन के लिए लाहौर आ गए। लाहौर में ही उनका संपर्क भगतसिंह आदि क्रांतिकारियों से हुआ और वे तिकारी आंदोलन में शामिल हो गये। जेल से छूटने के बाद वे साहित्य सृजन की ओर प्रवृत्त हुए। वे मार्क्सवादी कथाकार और उन्होंने प्रगतिशील दृष्टिकोण से कहानियों और उपन्यासों की रचना की। 'परदा' के अतिरिक्त 'महाराज का इलाज', र्माधिकारी', 'फूलों का कुर्ता' आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। देश के विभाजन को आधार बनाकर लिखा गया ठा-सच' उनका प्रसिद्ध महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसके अतिरिक्त 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप',

'मेरी तेरी उसकी बात,' भी उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उन्होंने 'दिव्या' और 'अमिता' नाम से दो ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे जो अत्यंत प्रसिद्ध हुए। उनका 1976 ई. में देहावसान हुआ।

आपने इकाई 7 एवं 8 में 'आकाश-दीप' का अध्ययन किया था। इस इकाई में हम 'परदा' का वाचन भी करेंगे और विश्लेषण भी। इस इकाई में विश्लेषण की पद्धति कुछ भिन्न होगी। हम विभिन्न तत्वों के आधार पर कहानी का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे और अभ्यासों द्वारा इस विश्लेषण को आगे बढ़ाएँगे।

9.2 कहानी का वाचन : परदा

चौधरी पीरबख्श की पारिवारिक पृष्ठभूमि

चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के **महकमे** में दरोगा थे। आमदनी अच्छी थी। एक छोटा, पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया। लड़कों को पूरी **तालीम** दी। दोनों लड़के **एंट्रेन्स** पास कर रेलवे डाकखाने में बाबू हो गये। चौधरी साहब की ज़िन्दगी में लड़कों के ब्याह और बाल-बच्चे भी हुए, लेकिन **ओहदे** में खास तरक्की न हुई; वही तीस और चालीस रुपये **माहवार** का दर्जा।

अपने ज़माने को याद कर चौधरी साहब कहते — "वो भी क्या वक्त थे! मिडिल पास लोग डिप्टी-कलक्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एंट्रेन्स तक अंग्रेजी पढ़कर लड़के तीस-चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते।" बेटों को ऊँचे ओहदों का **अरमान** लिये ही उन्होंने **आँखें मूँद लीं**।

इंशाअल्ला, चौधरी साहब के **कुनबे** में **बरकत** हुई। चौधरी फ़जल कुरबान रेलवे में काम करते थे। अल्लाह ने उन्हें चार बेटे और तीन बेटियाँ दीं। चौधरी इलाहीबख्श डाकखाने में थे। उन्हें भी अल्लाह ने चार बेटे और दो लड़कियाँ **बख्शीं**।

चौधरी ख़ानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा देने पर भी जगह **तंग** ही रही। दरोगा साहब के ज़माने में **ज़नाना** भीतर था और बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठ **नैचा** गुड़गुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उनके बाद बैठक भी ज़नाने में शामिल हो गयी और घर की **ड्योढ़ी** पर परदा लटक गया। बैठक न रहने पर भी घर की इज्जत का ख़याल था; इसलिए परदा बोरी के टाट का नहीं, बढ़िया क़िस्म का रहता।

ज़ाहिरा दोनों भाइयों के बाल-बच्चे एक मकान में रहने पर भी भीतर सब अलग-अलग था। ड्योढ़ी का परदा कौन भाई लाये? इस समस्या का हल इस तरह हुआ कि दरोगा साहब के ज़माने की पलंग की रंगीन दरियाँ एक के बाद एक ड्योढ़ी में लटकायी जाने लगीं।

तीसरी पीढ़ी के ब्याह-शादी होने लगे। आखिर चौधरी ख़ानदान की औलाद को हवेली छोड़ दूसरी जगह तलाश करनी पड़ी। चौधरी इलाहीबख्श के बड़े साहबज़ादे एंट्रेंस पास डाकखाने में 20 रुपये की क्लर्की पा गये। दूसरे साहबज़ादे मिडिल पास कर अस्पताल में कम्पाउंडर बन गये। ज्यों-ज्यों ज़माना गुज़रता जाता, तालीम और नौकरी दोनों मुश्किल होती जातीं। तीसरे बेटे होनहार थे। उन्होंने **वज़ीफ़ा** पाया। जैसे-तैसे मिडिल कर स्कूल में **मुदर्रिस** हो देहात चले गये।

पीरबख्श की पारिवारिक और आर्थिक स्थिति

चौथे लड़के पीरबख्श प्राइमरी से आगे न बढ़ सके। आजकल की तालीम माँ-बाप पर खर्च के बोझ के सिवा और है क्या? स्कूल की फ़ीस हर महीने, और किताबों, कापियों और नक्शे के लिए रुपये-ही-रुपये!

चौधरी पीरबख्श का भी ब्याह हो गया। **मौला के करम** से बीबी की **गोद भी जल्दी ही भरी** है। पीरबख्श ने रोज़गार के तौर पर ख़ानदान की इज्ज़त के ख़याल से एक तेल की मिल में मुंशीगिरी कर ली। तालीम ज्यादा नहीं तो क्या, **सफेदपोश** ख़ानदान की इज्ज़त का **पास** तो था। मज़दूरी और दस्तकारी उनके करने की चीज़ें न थीं। चौकी पर बैठते। कलम-दवात का काम था।

पीरबख्श का नया सामाजिक परिवेश

बारह रुपया महीना अधिक नहीं होता। चौधरी पीरबख्श को मकान सितवा की कच्ची बस्ती में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रुपया था। आसपास ग़रीब और कमीन लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचोंबीच गली के **मुहाने** पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती, जिसके किनारे घास उग आयी थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते। सामने रमज़ानी धोबी की भट्ठी थी, जिसमें से धुआँ और सज्जी मिले उबलते कपड़ों की गंध उड़ती रहती। दायीं ओर बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कुली रहते थे।

इस सारी बस्ती में चौधरी ही पढ़े-लिखे सफेदपोश थे। सिर्फ़ उनके ही घर की ड्योढ़ी पर परदा था। सब लोग उन्हें 'चौधरी जी, मुंशीजी' कहकर सलाम करते। उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। लड़कियाँ चार-पाँच बरस तक किसी काम-काज से निकलतीं और फिर घर की आबरू के ख़याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था। पीरबख्श खुद ही मुसकराते हुए सुबह-शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।

चौधरी की तनख्वाह पन्द्रह बरस में बारह से अठारह हो गयी। खुदा की बरक्त होती है तो रुपये-पैसे की शक्ल में नहीं, आस-औलाद की शक्ल में होती है। पन्द्रह बरस में पाँच बच्चे हुए। पहले तीन लड़कियाँ और बाद में लड़के।

महकमे: विभाग, तालीम: शिक्षा, ओहदे: पद, माहवार: मासिक, अरमान: इच्छा, आँखे मूंदना (मु.): मृत्यु हो जाना, कुनबा: परिवार, बरकत: बढ़ोत्तरी, बख्शी: प्रदान की, तंग: छोटी, जनाना (खाना): घर का वह भाग या खंड जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं, नैचा: हुक्का, ड्योढ़ी: प्रवेश द्वार, जाहिरा: प्रकट रूप में, वजीफा: छात्रवृत्ति, मुदर्रिस: अध्यापक, मौला के करम से: ईश्वर की दया से, गोद भरना: बच्चा होना, सफेदपोश: इज्जतदार, मुहाने: किनारे

दूसरी लड़की होने को थी तो पीरबख़्श की वाल्दा मदद के लिए आयीं। वालिद साहिब का इन्तकाल हो चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा की फ़िक्र करने आया नहीं; वे छोटे लड़के के यहाँ ही रहने लगीं।

जहाँ बाल-बच्चे और घर-बार होता है, सौ किस्म की झंझटें होती ही हैं। कभी बच्चे को तकलीफ़ है, तो कभी जच्चा को। ऐसे वक़्त में कर्ज़ की ज़रूरत कैसे न हो? घर-बार हो, तो कर्ज़ भी होगा ही।

परदाः उच्चवर्गीय इज़्ज़त का प्रतीक

मिल की नौकरी का क़ायदा पक्का होता है। हर महीने की सात तारीख से गिनकर तनख़्वाह मिल जाती है। पेशगी से मालिक को चिढ़ है। कभी बहुत जरूरत पर मेहरबानी करते। ज़रूरत पड़ने पर चौधरी घर की छोटी-मोटी कोई चीज़ गिरवी रखकर उधार ले आते। गिरवी रखने से रुपये के बारह आने ही मिलते। ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज़ घर लौट आने की सम्भावना न रहती।

मुहल्ले में चौधरी पीरबख़्श की इज़्ज़त थी। इज़्ज़त का आधार था, घर के दरवाज़े पर लटका परदा। भीतर जो हो, परदा सलामत रहता। कभी बच्चों की खींच-खांच या बेदर्द हवा के झोंकों से उसमें छेद हो जाते, तो परदे की आड़ से हाथ सुई-धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में लिखिए।

1 चौधरी पीरबख़्श कहाँ काम करते थे?
- क) स्कूल में मुदर्रिस थे।
- ख) तेल की मिल में मुंशी थे।
- ग) डाकखाने में क्लर्क थे।
- घ) चुंगी के महकमे में दारोगा थे। [ ]

2 चौधरी पीरबख़्श के परिवार को ख़ानदानी हवेली क्यों छोड़नी पड़ी?
- क) वे संयुक्त परिवार में रहना नहीं चाहते थे।
- ख) चौधरी पीरबख़्श की नौकरी दूसरे शहर में थी।
- ग) बढ़ते परिवार के लिए हवेली छोटी पड़ती थी।
- घ) उनके भाइयों ने उन्हें निकाल दिया। [ ]

3 चौधरी परीबख़्श ने मुंशीगिरी ही क्यों अपनायी?
- क) वे मेहनत-मज़दूरी को अपनी इज़्ज़त के विरूद्ध समझते थे।
- ख) वे अधिक पढ़े -लिखे न थे।
- ग) मुंशीगिरी उनका ख़ानदानी पेशा था।
- घ) उनके पास और कोई विकल्प न था। [ ]

2

चौधरी पीरबख़्श की आर्थिक दुरवस्था

दिनों का खेल! मकान की ड्योढ़ी के किवाड़ गलते-गलते बिलकुल गल गये। कई दफ़ा कसे-कसे जाने से पेंच टूट गये और सूराख ढीले पड़ गये। मकान-मालिक सूरज पांडे को उसकी फ़िक्र न थी। चौधरी कभी जाकर कहते-सुनते तो उत्तर मिलता — "कौन बड़ी रकम थमा देते हो? दो रुपल्ली किराया और वह भी छः-छः महीने का बकाया। जानते हो लकड़ी का क्या भाव है? न हो, मकान छोड़ जाओ।" आख़िर किवाड़ गिर गये। रात में चौधरी उन्हें जैसे-तैसे चौखट से टिका देते। रात-भर दहशत रहती कि यहाँ कोई चोर न आ जाये।

मुहल्ले में सफेदपोशी और इज़्ज़त होने पर भी चोर के लिए घर में कुछ न था। शायद एक भी साबुत कपड़ा या बरतन ले जाने के लिए चोर को न मिलता; पर चोर तो चोर है। छिनने के लिए कुछ भी न हो, तो भी चोर का डर तो होता ही है, वह चोर जो ठहरा।

चोर से ज्यादा फ़िक्र थी आबरू की। किवाड़ न रहने पर परदा ही आबरू का रखवाला था। वह परदा भी तार-तार होते-होते एक रात आँधी में किसी भी हालत में लटकने लायक़ न रह गया। दूसरे दिन घर की एकमात्र पुश्तैनी चीज़ दरी दरवाज़े पर लटक गयी। मुहल्ले वालों ने देखा और चौधरी को सलाह दी—"अरे चौधरी, इस ज़माने में दरियाँ काहे खराब करोगे? बाजार से ला टाट का टुकड़ा लटका दो!" पीरबख़्श टाट की क़ीमत भी आते-जाते कई दफ़ा पूछ चुके हैं। दो ग़ज़ टाट आठ आने से कम में नहीं मिल सकता था। हँसकर बोले—"होने दो, क्या है? हमारे यहाँ पक्की हवेली में भी ड्योढ़ी पर दरी का ही परदा रहता था।"

कपड़े की महँगी के इस ज़माने मे घर की पाँचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिर रहे थे, जैसे पेड़ अपनी छाल बदलते हैं; पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक दफ़ा किसी तरह पेट भर सकने के लिए आटे के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहाँ? खुद उन्हें नौकरी पर जाना होता। पायजामे में जब पैबन्द सँभालने की ताब न रही, मारकीन का एक कुर्ता-पायजामा ज़रूरी हो गया, पर लाचार थे।

वाल्दाः माता, इंतकालः मृत्यु, जच्चाः वह स्त्री जिसे बच्चा हुए अभी कुछ ही दिन हुए हों, दहशतः भय, आबरूः इज़्ज़त, जीर्णः पुराना, ताबः सामर्थ्य।

गिरवी रखने के लिए घर में कुछ भी न हो, गरीब का एकमात्र सहायक है पंजाबी ख़ान। रहने की जगह-भर देखकर वह रुपया उधार दे सकता है। दस महीने पहले गोद के लड़के बरकत के जन्म के समय पीरबख्श को रुपये की ज़रूरत आ पड़ी। कहीं और कोई प्रबंध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी खान बबर अली ख़ाँ से चार रुपये उधार ले लिये थे।

पंजाबी ख़ान से उधार लेना

बबर अली ख़ाँ का रोज़गार सितवा के उस कच्चे मुहल्ले में अच्छा-ख़ासा चलता था। बीकानेरी, मोची, वर्कशाप के मज़दूर और कभी-कभी रमज़ानी धोबी—सभी बबर मियाँ से कर्ज़ लेते रहते। कई दफ़ा चौधरी पीरबख्श ने बबर अली को कर्ज़ और सूद की किस्त न मिलने पर अपने हाथ के डंडे से ऋणी का दरवाज़ा पीटते देखा था। उन्हें साहूकार और ऋणी में बीच-बचौवल भी करना पड़ा था। ख़ान को वे शैतान समझते थे, लेकिन लाचार हो जाने पर उसी की शरण लेनी पड़ी। चार आना रुपया महीने पर चार रुपया कर्ज़ लिया। शरीफ़ ख़ानदानी, मुसलमान भाई का ख्याल कर बबर अली ने एक रुपया माहवार की किस्त मान ली। आठ महीने में कर्ज़ अदा होना तय हुआ।

अपमान

ख़ान की किश्त न दे सकने की हालत में अपने घर के दरवाज़े पर **फ़ज़ीहत** हो जाने की बात ख़याल कर चौधरी के **रोएँ खड़े हो जाते**। सात महीने **फ़ाका करके** भी वे किसी तरह से किश्त देने चले गये, लेकिन जब सावन में बरसात पिछड़ गयी और बाजरा भी रुपये का तीन सेर मिलने लगा, किश्त देना सम्भव न रहा। ख़ान सात तारीख को शाम को ही आया। चौधरी पीरबख्श ने ख़ान को दाढ़ी छू और अल्ला की कसम खा एक महीने की मुआफ़ी चाही, अगले महीने एक का सवा देने का वायदा किया। ख़ान टल गया।

कर्ज़ चुकाने की चिंता

भादों में हालत और परेशान हो गयी। बच्चों की माँ की तबीयत रोज़-रोज़ गिरती जा रही थी। खाया-पिया उसके पेट में न ठहरता। पथ्य के लिए उसको गेहूँ की रोटी देना ज़रूरी हो गया। गेहूँ मुश्किल से रुपये का सिर्फ ढाई सेर मिलता। बीमार का जी ठहरा, कभी प्याज़ के टुकड़े या धनिये की खुशबू के लिए ही मचल जाता। कभी पैसे की सौंफ, अजवाईन, काले नमक की ही ज़रूरत हो, तो पैसे की कोई चीज़ मिलती ही नहीं। बाज़ार में ताँबे का नाम ही नहीं रह गया। नाहक इकन्नी निकल जाती है। चौधरी को दो रुपये महँगाई-भत्ते के मिले, पर **पेशगी** लेते-लेते तनख़्वाह के दिन केवल चार ही रुपये हिसाब में निकले।

बच्चे पिछले हफ्ते लगभग फ़ाके-से थे। चौधरी कभी गली से दो पैसे की **चौथाहे** ख़रीद लाते, कभी बाजरा उबाल सब लोग कटोरा-कटोरा-भर पी लेते। बड़ी कठिनता से मिले चार रुपयों में से सवा रुपया ख़ान के हाथ में धर देने की हिम्मत चौधरी को न हुई।

मिल से घर लौटते समय मंडी की ओर टहल गये। दो घंटे बाद जब समझा, खान टल गया होगा तो अनाज की गठरी ले वे घर पहुँचे। ख़ान के भय से दिल डूब रहा था, लेकिन दूसरी ओर चार भूखे बच्चों, उनकी माँ, दूध न उतर सकने के कारण सूखकर काँटा हो रहे गोद के बच्चे और चलने-फिरने से लाचार अपनी **ज़ईफ़** माँ की भूख से बिलबिलाती सूरतें आँखों के सामने नाच जातीं। धड़कते हुए हृदय से वे कहते जाते— "मौला सब देखता है, **ख़ैर** करेगा।"

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में लिखिए।

4 चौधरी पीरबख्श की आर्थिक दुरवस्था का कारण क्या था?
   क) वे फिजूल खर्च थे।
   ख) उनकी आमदनी कम थी और परिवार बड़ा था।
   ग) उन्होंने बहुत-सा कर्ज़ ले रखा था।
   घ) उनके घर चोरी हो गई थी। [ ]

5 चौधरी पीरबख्श ने बबर अली ख़ाँ से कर्ज़ क्यों लिया?
   क) उन्होंने अपने बच्चे बरकत के जन्म पर उधार लिया था।
   ख) उन्हें अपने पिता का कर्ज़ चुकाना था।
   ग) उनकी पत्नी बीमार थी।
   घ) उनकी नौकरी छूट गई थी। [ ]

6 चौधरी पीरबख्श ने बबर अली ख़ाँ के कर्ज़ की किश्त क्यों नहीं चुकाई?
   क) चौधरी पीरबख्श को वेतन नहीं मिला था।
   ख) चौधरी की माँ बीमार होने के कारण उसे रुपये बीमारी पर खर्च करने पड़े।
   ग) बबर अली ख़ाँ ब्याज ज्यादा वसूलना चाहता था।
   घ) चौधरी को तनख्वाह के चार रुपये ही मिले थे
   और उनसे पूरे महीने का घर-खर्च चलाना था। [ ]

फ़ज़ीहतः अपमान, रोएं खड़े हो जाना (मु.): भयभीत होना, फाका करना (मु.): भूखे मरना, पेशगी: अग्रिम (समय से पहले तनख्वाह का कुछ हिस्सा ले लेना) ज़ईफ़ः बूढ़ी, ख़ैरः कुशल (रक्षा), माकूलः उचित।

3

ख़ान द्वारा कर्ज़ की वसूली की कोशिश

सात तारीख की शाम को असफल हो ख़ान आठ की सुबह खूब तड़के चौधरी के मिल चले जाने से पहले ही अपना डंडा हाथ में लिये दरवाज़े पर मौजूद हुआ।

त-भर सोच-सोचकर चौधरी ने ख़ान के लिए बयान तैयार किया। मिल के मालिक लालाजी चार रोज़ के लिए बाहर गये। उनके दस्तख़त के बिना किसी को भी तनख़्वाह नहीं मिल सकी। तनख़्वाह मिलते ही वह सवा रुपया हाज़िर करेगा। **क़ूल** वजह बताने पर भी ख़ान बहुत देर तक गुर्राता रहा—"अम वतन चोड़ के परदेश में पड़ा है, ऐसे रुपया चोड़ देने वास्ते अम यहाँ नहीं आया है, अमारा भी बाल-बच्चा है। चार रोज में रुपया नई देगा, तो अम तुमारा···कर देगा।"

पीरबख़्श की बढ़ती परेशानी

ाँचवें दिन रुपया कहाँ से आ जाता? तनख़्वाह मिले अभी हफ़्ता भी नहीं हुआ। मालिक ने पेशगी देने से साफ़ इनकार कर या। छठे दिन क़िस्मत से इतवार था। मिल में छुट्टी करने पर भी चौधरी ख़ान के डर से सुबह ही बाहर निकल गये। न-पहचान के कई आदमियों के यहाँ गये। इधर-उधर की बातचीत कर वे कहते—"भाई, हो तो बीस आने पैसे तो दो-एक ज़ के लिए देना। ऐसे ही ज़रूरत आ पड़ी है।"

ार मिला—"मियाँ, पैसे कहाँ इस जमाने में! पैसे का मोल कौड़ी नहीं रह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ या तमाम···!"

पहर हो गयी। ख़ान आया भी होगा, तो इस वक्त तक बैठा नहीं रहेगा—चौधरी ने सोचा और घर की तरफ़ चल दिये। घर ुँचने पर सुना, ख़ान आया था और घंटे-भर तक ड्योढ़ी पर लटके दरी के परदे को डंडे से ठेल-ठेलकर गाली देता रहा। दे की आड़ से बड़ी बीबी के बार-बार खुदा की कसम खा यक़ीन दिलाने पर कि चौधरी बाहर गये हैं, रुपया लेने गये हैं, ान गाली देकर कहता—"नई, बदजात चोर बीतर में छिपा है! अम चार घंटे में फिर आता है। रुपया लेकर जायेगा किदर? ाया नई देगा, तो उसका खाल उतारकर बाजार में बेच देगा। ···अमारा रुपिया क्या अराम का है···?"

चौधरी और ख़ान का आमना-सामना और झगड़ा

र घंटे से पहले ही ख़ान की पुकार सुनायी दी—"चौधरी!" पीरबख़्श के शरीर में बिजली-सी दौड़ गयी और वे बिलकुल सत्व हो गये, हाथ-पैर सुन्न और खुश्क।

ली दे परदे को ठेलकर ख़ान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर निर्जीव प्राय होने पर भी निश्चेष्ट न रह सका। उठकर ार आ गये। ख़ान **आगबबूला**[1] हो रहा था—"पैसा नई देने का वास्ते चिपता है···!" एक-से-एक बढ़ती हुई तीन गालियाँ -साथ ख़ान के मुँह से पीरबख़्श के पुरखों-पीरों के नाम निकल गयीं। इस भयंकर आघात से पीरबख़्श का ख़ानदानी रक्त ड़क उठने के बजाय और भी निर्जीव हो गया। ख़ान के घुटने छू, अपनी मुसीबत को बता वे मुआफ़ी के लिए खुशामद ने लगे।

न की तेजी बढ़ गयी। उसके ऊँचे स्वर से पड़ोस के मोची और मज़दूर चौधरी के दरवाजे के सामने इकट्ठे हो गये। ख़ान थ में डंडा फटकार कर कह रहा था—"पैसा नहीं देना था, लिया क्यों? तनख़्वाह किदर में जाता? अरामी अमारा पैसा ाा। आज तुमारा खाल खींच लेगा। पैसा नई है, तो घर पर परदा लटका के शरीफजाद कैसे बनता? ···तुम अमको बीबी गैना दो, बर्तन दो, कुछ भी तो दो, अम ऐसे नई जायेगा।"

ख़ान द्वारा चौधरी के घर की ड्योढ़ी पर लटका परदा खींचना

लकुल बेबस लाचारी में दोनों हाथ उठा खुदा से ख़ान के लिए दुआ माँग पीरबख़्श ने कसम खायी, एक पैसा भी घर में ं, बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी नहीं, ख़ान चाहे तो उसकी खाल उतारकर बेच ले।

न और आग हो गया, "अम तुमारा दुआ क्या करेगा? तुमारा खाल क्या करेगा? उसका तो जूता भी नई बनेगा। तुमारा ल से तो टाट अच्छा"। ख़ान ने ड्योढ़ी पर लटका दरी का परदा झटक लिया। ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ ही, जैसे धरी के जीवन की डोर टूट गयी। वह डगमगाकर ज़मीन पर गिर पड़े।

चौधरी के परिवार की दुरवस्था अनावृत

दृश्य को देख सकनेकी ताब चौधरी में न थी, परन्तु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा—घर की लड़कियाँ और औरतें परदे के री ओर घटती घटना के आतंक से आँगन के बीचो-बीच इकट्ठी हो खड़ी काँप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें सिकुड़ गयीं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर-भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। के शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक-तिहाई अंग ढँकने में भी असमर्थ थे।

हेल भीड़ ने घृणा और शरम से आँखे फेर लीं। उस नग्नता की झलक से ख़ान की कठोरता भी पिघल गयी। ग्लानि से , परदे को आँगन में वापस फेंक क्रुद्ध निराशा से उसने "**लाहौल बिला**···!" कहा और असफल लौट गया।

से चीखकर ओट में हो जाने के लिए भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छँट गयी। चौधरी बेसुध पड़े थे। अब उन्हें आया, ड्योढ़ी का परदा आँगन में सामने पड़ा था, परन्तु उसे उठाकर फिर से लटका देने की सामर्थ्य उनमें शेष न थी। द अब इसकी आवश्यकता भी न रही थी। परदा जिस भावना का **अवलम्ब** था, वह मर चुकी थी।

---

[1] बबूला होना (मु.): क्रोधित होना, लाहौल बिला (लाहौल बिला कूव्वत): अरबी की पंक्ति जिसका अर्थ है 'शैतान को भगाओ', 'अवलंब: ार।

प्रश्न

नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में लिखिए।

चौधरी पीरबख़्श ने दरवाज़े पर परदा क्यों लटका रखा था?

क) ख़ानदानी शान के लिए।

ख) घर की वास्तविकता दुनिया से छुपाने के लिए।

8 ख़ान ने परदा क्यों खींचा?
क) ख़ान चौधरी को बेआबरू करना चाहता था।
ख) ख़ान आग बबूला हो रहा था।
ग) ख़ान अपना कर्ज़ वसूल करना चाहता था। [ ]

9 "ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ ही, जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गई।" इस कथन का क्या तात्पर्य है?
क) परदे ने उनके घर की वास्तविकता को छिपा रखा था।
ख) परदा हटने से घर की औरतें बेपर्दा हो गई।
ग) परदा ही उनके घर का सबसे कीमती सामान था। [ ]

10 परदा किस भावना का अवलंब था?
क) परदा घर की औरतों की इज़्ज़त था।
ख) परदा परंपरा का प्रतीक था।
ग) परदा खानदानी इज़्ज़त का अवलंब था। [ ]

9.3 कहानी का सार

आपने कहानी को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। आशा है कि आपको कहानी की कथा समझ में आ गई होगी। क्या आप स्वयं कहानी का सार लिख सकते हैं? आइए, हम देखें कि कहानी का सारांश कैसे लिखा जा सकता है। सारांश का तात्पर्य है, कहानी के केंद्रीय घटनाचक्र को प्रस्तुत करना जो कहानी के मूल मंतव्य को व्यक्त करता है। इस कहानी में मूल मंतव्य क्या है, इसे आप आसानी से पहचान सकते हैं। आपने जब कहानी पढ़ी होगी तब हाशिए पर कहानी के विकास क्रम की मुख्य घटनाओं को पढ़ा होगा। आप उनके आधार पर कहानी का सार लिख सकते हैं।

इस कहानी के घटनाचक्र के मुख्य केंद्र बिंदु निम्नलिखित हैं:

- चौधरी पीरबख़्श की पारिवारिक पृष्ठभूमि
  (दादा-चुंगी में दारोगा, उच्च कुलीन मुसलमान, बड़ा परिवार)
- पीरबख़्श की पारिवारिक और आर्थिक स्थिति
  (प्राइमरी तक शिक्षा, तेल मिल में मुंशीगिरी, बारह रुपये वेतन, पाँच बच्चे)
- पीरबख़्श का नया [illegible] निवेश
  (कच्ची बस्ती में मकान, निम्न और अकुलीन समझे जाने वाले लोगों के बीच रहना)
- परदा : उच्चवर्गीय इज़्ज़त का प्रतीक
  (घर पर लटके परदे का उल्लेख)
- पीरबख़्श की आर्थिक दुरवस्था
  (बढ़ता परिवार, कम वेतन, कुलीनता का दबाव)
- पंजाबी खान से उधार लेना
  (बच्चे की पैदाइश पर चार रुपये का उधार)
- कर्ज़ चुकाने की चिंता
  (कर्ज़ पूरा न चुका पाना)
- ख़ान द्वारा कर्ज़ की वसूली की कोशिश
- पीरबख़्श की बढ़ती परेशानी
  (कर्ज़ न चुका पाने के कारण ख़ान से बचने की कोशिश)
- चौधरी और ख़ान का आमना-सामना
  (दोनों में झगड़ा, ख़ान द्वारा चौधरी को गाली गलौज, चौधरी का ख़ान से माफ़ी माँगना)
- ख़ान द्वारा परदा खींचना
- चौधरी के परिवार की दुरवस्था अनावृत

अभ्यास

1 ऊपर दिये गये बिंदुओं में से आरंभ के तीन बिंदुओं के आधार पर चौधरी पीरबख़्श की पारिवारिक स्थिति का 10 पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

9.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या

'परदा' कहानी का कथ्य सामाजिक है। इस कहानी के माध्यम से यशपाल ने उच्च कुलीन परंतु निम्न मध्य वर्ग के परिवार की सामाजिक विडंबना को चित्रित किया है। इसलिए इस कहानी में ऐसे प्रसंग हैं जिनसे इस वर्ग की सामाजिक विडंबना उजागर होती है। यशपाल इसके लिए व्यंग्य का सहारा भी लेते हैं। इन्ही प्रसंगों के कुछ अंशों की व्याख्या से कहानी की मूल संवेदना को समझा और आत्मसात् किया जा सकता है। आइए, निम्नलिखित अंश की व्याख्या करने का प्रयास करें।

> *"इस सारी बस्ती में चौधरी ही पढ़े लिखे सफेदपोश थे। सिर्फ उनके ही घर की ड्योढ़ी पर परदा था। सब लोग उन्हें चौधरी जी, मुंशीजी कहकर सलाम करते। उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। लड़कियाँ चार-पाँच बरस तक किसी काम-काज से निकलतीं और फिर घर की आबरू के ख्याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था।"*

व्याख्या में जैसा कि आप पिछली इकाइयों में देख चुके हैं, सबसे पहले संदर्भ लिखा जाता है। 'संदर्भ' के अंतर्गत लेखक और कहानी का नाम, लिखा जाता है। यह सब दो-तीन पंक्तियों में आ जाना चाहिए। उदाहरण के लिए उपर्युक्त अंश का संदर्भ देखें।

संदर्भ : प्रस्तुत अंश यशपाल (कहानीकार का नाम) की कहानी 'परदा' (कहानी का नाम) से लिया गया है। यशपाल ने अपनी कहानियों में सामाजिक समस्याओं और वास्तविकताओं को चित्रित किया है।

'संदर्भ' के अंतर्गत 'प्रसंग' भी लिखा जाता है। प्रसंग के अंतर्गत व्याख्या के लिए प्रस्तुत अंश कहानी में किस प्रसंग में आया है, का संक्षेप में उल्लेख किया जाता है। यह भी तीन-चार पंक्तियों से अधिक में नहीं होना चाहिए।

> *चौधरी पीरबख्श अपनी पुश्तैनी हवेली छोड़कर एक कच्ची बस्ती में किराये का मकान लेकर रहने लगते हैं। इस बस्ती में गरीब और छोटे समझे जाने वाले लोग रहते हैं। चौधरी पीरबख्श उस मुहल्ले में अकेले उच्च कुलीन वर्ग के हैं।*

'संदर्भ' से व्याख्या के लिए प्रस्तुत अंश को सही संदर्भों में समझा जा सकता है। इसके बाद व्याख्या की जानी चाहिए। व्याख्या का अर्थ है, दिये गये अंश का आशय स्पष्ट करना। जाहिर है ऐसा करते हुए कुछ विस्तार संभव है, लेकिन कोशिश की जानी चाहिए कि अधिक विस्तार न हो। इसके लिए यह भी जरूरी है कि उस अंश का आशय कम से कम शब्दों में व्यक्त किया जाय और व्याख्या के अंतर्गत कहानी कहने की कोशिश न की जाय। अंश को ध्यानपूर्वक पढ़ लेना चाहिए और यह नोट कर लेना चाहिए कि उसमें किन बातों की व्याख्या की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए उपर्युक्त अंश का अवलोकन करें। इस अंश में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं।

1 चौधरी का पढ़ा-लिखा सफेदपोश होना
2 घर की ड्योढ़ी पर परदा लटकना
3 पीरबख्श को "चौधरी जी" "मुंशीजी" कहना
4 घर की औरतों का आबरू के ख्याल से बाहर न निकलना।

ये चार बातें हैं जो उपर्युक्त अंश में कही गई हैं और इन्हीं का आशय स्पष्ट करने से उपर्युक्त अंश की व्याख्या की जा सकेगी।

ऊपर हमने जिन चार बातों की चर्चा की है, उनके आशय को समझने का प्रयास कीजिए।

चौधरी का पढ़ा लिखा सफेदपोश होना : चौधरी उच्च कुलीन परिवार के हैं इसी कारण वे चौधरी पीरबख्श कहलाते हैं। उन्हें इसीलिए शिक्षा का अवसर भी मिला। किंतु वे प्राइमरी तक की शिक्षा भी पूरी नहीं कर पाये। लेकिन अपने परिवार की [illegible] के अनुसार वे अपने को पढ़ा लिखा सफेदपोश समझते थे।

घर की ड्योढ़ी पर परदा लटकना : आज से चालीस-पचास साल पहले (और कहीं-कहीं अब भी) उच्च जातीय हिंदू और मुस्लिम परिवारों में परदे का काफी चलन था। "उच्च कुलीन किंतु मध्यवित मुस्लिम परिवारों" में घर के दरवाजे पर परदा लटका रहता था ताकि महिलाओं के लिए ओट बनी रहे यह परदा उनके खानदानी होने का चिह्न भी था क्योंकि परदे का ऐसा रिवाज छोटी समझी जाने वाली जातियों में नहीं था।

पीरबख्श को "चौधरी, मुंशी जी" कहना : पीरबख्श जिस कच्ची बस्ती में रहते थे, उसमें उनका परिवार ही ऐसा था, जो खानदानी था। चौधरी पीरबख्श चौधरी खानदान से थे। इसीलिए निम्न और गरीब लोगों के बीच रहते हुए भी वे "चौधरी" ही कहलाते। इसीलिए उनका सम्मान था और उनको लोग आदर से "चौधरी जी" और "मुंशीजी" कहते थे।

घर की औरतों का आबरू के ख्याल से बाहर न निकलना : "कुलीन" परिवार की स्त्रियों में परदे का रिवाज ज्यादा रहा है। हिंदू और मुसलमान दोनों ही में। कुलीन परिवारों की स्त्रियाँ या तो घर से निकलती ही नहीं थी और निकलना ही पड़ता तो परदे में। इसी कारण वे पुरुषों की तरह बाहर के काम भी नहीं करती थीं। औरत का इस तरह घर और परदे में कैद रहना ऐसे परिवारों में इज्जत और आबरू की बात समझा जाता था।

इस तरह उपर्युक्त चारों बिंदुओं का आशय ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है, अब आप स्वयं उपर्युक्त अंश की व्याख्या लिख सकते हैं।

व्याख्या के बाद "विशेष" लिखा जाता है। "विशेष" का तात्पर्य है, व्याख्या के लिए प्रस्तुत अंश पर विशेष टिप्पणी। यह टिप्पणी "अंश" के मूल भाव को रेखांकित करने के लिए, भाषा और शैली बताने के लिए की जाती है। उदाहरण के लिए उपर्युक्त अंश का मूल भाव है, चौधरी पीरबख्श की पारिवारिक कुलीनता को उजागर करना, परदा जिस का प्रतीक है। इसी तरह भाषा और शैली पर टिप्पणी की जा सकती है। इस कहानी की शैली ऊपरी तौर पर वर्णनात्मक है किंतु व्यंग्य का स्पर्श इसमें है। इसे "पढ़े-लिखे सफेदपोश", "आबरू" जैसे शब्दों से व्यक्त हुआ है। भाषा उर्दू मिश्रित हिंदी है।

हम आशा करते हैं कि उपर्युक्त आधार पर आप कहानी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या स्वयं कर सकते हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित अंशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

2 *"मुहल्ले में चौधरी पीरबख्श की इज़्ज़त थी। इज़्ज़त का आधार था, घर के दरवाजे पर लटका परदा। भीतर जो हो, परदा सलामत रहता। कभी बच्चों की खींच-खांच या बेदर्द हवा के झोंकों से उसमें छेद हो जाते, तो परदे की आड़ से हाथ सुई-धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।"*

संदर्भ : लेखक एवं कृति का नाम ....

....

उपर्युक्त अंश के पूर्व के प्रसंग का उल्लेख ....

....

....

....

व्याख्या : चौधरी पीरबख्श की इज़्ज़त का आधार ....

....

....

परदे का महत्व ....

....

....

....

....

....

विशेष :

मूल भाव : ....

शैली : ....

भाषा : ....

3. *"चौधरी बेसुध पड़े थे। अब उन्हें होश आया, ड्योढ़ी का परदा आँगन में सामने पड़ा था, परंतु उसे उठाकर फिर से लटका देने की सामर्थ्य उनमें शेष न थी। शायद अब इसकी आवश्यकता भी न रही थी। परदा जिस भावना का अवलंब था, वह मर चुकी थी।"*

संदर्भ : ....

....

....

....

....

व्याख्या : ....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष : ....

....

....

....

....

9.5 कथावस्तु

इससे पूर्व हमने जिन तीन कहानियों का अध्ययन किया है, उनसे यह कहानी नितांत भिन्न है। 'परदा' एक सामाजिक कहानी है। इस दृष्टि से यह कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' के नजदीक है। परंतु 'शतरंज के खिलाड़ी' का कथानक इतिहास की घटनाओं पर आधारित था, जबकि इस कहानी का कथानक आधुनिक समाज पर आधारित है।

इस कहानी में 'आकाश-दीप' की तरह भावनाओं का संघर्ष चित्रित नहीं हुआ है। न ही 'उसने कहा था' की तरह आदर्श और त्याग की कहानी कही गई है। 'परदा' कहानी की कथावस्तु के विश्लेषण के लिए सबसे पहले हमें यह पहचानना चाहिए कि इस कहानी का 'कथ्य' क्या है? अर्थात् कहानी के द्वारा लेखक क्या कहना चाहता है? आपने कहानी को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। इस कहानी में चौधरी पीरबख्श के परिवार को कथा के केंद्र में रखा गया है जो बहुत आर्थिक तंगी में जीवनयापन कर रहा है, यहाँ तक कि पेट भरने के भी लाले पड़ रहे हैं। पीरबख्श को ऐसी स्थिति में कर्ज लेना पड़ता है, वह कर्ज चुका नहीं पाता और जिससे कर्ज लेता है, वह उसके बदले में घर के प्रवेश द्वार पर लटके परदे को ले जाने के लिए उसे खींच लेता है। परदा गिर जाता है और इसके साथ ही घर की औरतें अर्द्धनग्न अवस्था में सामने आ जाती हैं। इस दृश्य को देखकर न केवल खान बल्कि सारा मुहल्ला स्तब्ध रह जाता है। चौधरी पीरबख्श भी बेहोश हो जाता है। खान परदा वहीं छोड़कर चला जाता है और चौधरी में इतना साहस नहीं रहता कि वह परदे को पुनः लटका दे।

इसी के साथ कहानी समाप्त होती है। प्रश्न यह है कि चौधरी पीरबख्श के घर की दयनीय दशा का उजागर होना क्या प्रकट करता है? क्या चौधरी पीरबख्श अपनी गरीबी छुपाना चाहते थे या और कुछ? परदे के गिरने ने क्या उजागर किया? इस प्रश्न का जवाब कहानी की कथावस्तु के विश्लेषण से पा सकते हैं।

कहानी का आरंभ : सबसे पहले कहानी के आरंभ को लें। कहानी के आरंभ में चौधरी पीरबख्श की पारिवारिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। कहानी के विकास में इस पृष्ठभूमि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस से ही हमें यह मालूम पड़ता है कि चौधरी पीरबख्श का संबंध किस परिवार से है। क्योंकि उनके जीवन की समस्या का सीधा संबंध इस पृष्ठभूमि से है। इस पृष्ठभूमि

ने उनके परिवार को कुछ ऐसे मूल्यों से बाँध दिया है, जिसकी रक्षा करते रहने की कोशिश ने उनकी समस्याओं को और बढ़ा दिया है। इसे आप कहानी के आरंभिक भाग से पहचान सकते हैं :

- *"चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमे में दरोगा थे। आमदनी अच्छी थी। एक छोटा, पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया। लड़कों को पूरी तालीम दी।"*
- *"चौधरी ख़ानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा देने पर भी जगह तंग ही रही। दरोगा साहब के जमाने में जनाना भीतर था और बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठ नैचा गुडगुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उनके बाद बैठक भी जनाने में शामिल हो गयी और घर की ड्योढ़ी पर परदा लटक गया।"*
- *"पीरबख्श ने रोज़गार के तौर पर ख़ानदान की इज़्ज़त के ख्याल से एक तेल की मिल में मुंशीगिरी कर ली। तालीम ज्यादा नहीं तो क्या सफेदपोश ख़ानदान की इज़्ज़त का पास तो था। मज़दूरी और दस्तकारी उनके करने की चीजें न थीं। चौकी पर बैठते। कलम-दवात का काम था।"*
- *"उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। लड़कियाँ चार-पाँच बरस तक किसी काम-काज से निकलती और फिर आबरू के ख्याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था।"*

कहानी के आरंभिक भाग से उद्धृत उपर्युक्त चार अंश कहानी के आधार को स्पष्ट कर देते हैं। हम अनुमान लगा सकते हैं कि कहानी का विकास किस दिशा में होगा आप उपर्युक्त अंशों के आधार पर चौधरी पीरबख्श के जीवन के उन मूल्यों को पहचान सकते हैं, जिनके कारण पीरबख्श के जीवन में वह अपमानजनक स्थिति आई जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

अभ्यास

4 उपर्युक्त चारों अंशों के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि पीरबख्श के जीवन की वे कौन-सी मान्यताएँ थीं जिनके कारण उन्हें आगे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा?

i) ....

ii) ....

iii) ....

कहानी का विकास : चौधरी पीरबख्श उच्च ख़ानदान के थे। उनके दादा दरोगा थे। उनके पिता "हवेली" में रहते थे। वे एंट्रेंस पास भी थे। उनके घर की औरतें परदे में रहती थीं। उनके परिवार में सभी पुरुष सफेदपोश कामों में लगे थे। यह पीरबख्श की पारिवारिक पृष्ठभूमि थी। किंतु स्वयं पीरबख्श प्राइमरी तक पढ़े थे। पुरानी हवेली बढ़ते परिवार के लिए छोटी थी, इसलिए उन्हें हवेली छोड़कर कच्ची बस्ती में रहना पड़ा। प्राइमरी तक की शिक्षा भी पूरी न कर पाने के कारण उन्हें एक तेल की मिल में मुंशीगिरी करनी पड़ी जहाँ वेतन था, सिर्फ बारह रुपये। इन बारह रुपयों में आठ लोगों के परिवार का गुजारा कितना मुश्किल होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यह है वह स्थिति जिसमें इस कहानी का विकास होना है।

> *"दिनों का खेल! मकान की ड्योढ़ी के किवाड़ गलते-गलते बिल्कुल गल गये।" "किवाड़ न रहने पर परदा ही आबरू का रखवाला था। वह परदा भी तार-तार होते-होते एक रात आँधी में किसी भी हालत में लटकने लायक न रह गया। दूसरे दिन घर की एक मात्र पुश्तैनी चीज दरी दरवाजे पर लटक गयी।"*
>
> *"कपड़े की महँगी के इस जमाने में घर की पाँचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिर रहे थे, जैसे पेड़ अपनी छाल बदलते हैं, पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक दफ़ा किसी तरह पेट भर सकने के लिए आटे के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहाँ ?"*

अभ्यास

5 उपर्युक्त अंश चौधरी पीरबख्श के परिवार की दारुण स्थिति बताते हैं। आप इन अंशों के आधार पर बताइए कि इनका कारण क्या था और चौधरी पीरबख्श इसके लिए स्वयं कहाँ तक उत्तरदायी थे? उत्तर पाँच पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

चौधरी पीरबख्श के यहाँ जब पाँचवा बच्चा हुआ तो उन्हें कर्ज़ लेना पड़ा। कर्ज़ चुकाने की स्थिति उनकी थी नहीं। फिर भी पेट काटकर उन्होंने कर्ज़ की सात किस्तें चुका दी। आठवीं किस्त वे नहीं चुका पाये। इस स्थिति से बचने का उनके पास कोई उपाय नहीं था, इसलिए वे पंजाबी ख़ान से बचने की कोशिश करते रहे।

अभ्यास

6 i) चौधरी पीरबख्श जिस कच्ची बस्ती में रहते थे, उसमें रहने वालों और उनमें क्या समानताएँ और क्या विषमताएँ थीं? कम-से-कम दो समानताओं और दो विषमताओं का उल्लेख कीजिए।

समानताएँ : क) ....

ख) ....

विषमताएँ : क) ....

ख) ....

ii) कहानी की परिणति के लिए उपर्युक्त में से कौन-सा कारण अधिक उत्तरदायी है और क्यों? चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए?

....

....

....

....

कहानी की परिणति : इस कहानी का अंत नाटकीय घटना से होता है। कहानी अब तक यह थी कि चौधरी पीरबख्श जो बहुत गरीबी में जीवन-यापन कर रहे हैं, पंजाबी ख़ाने से चार रुपये उधार लेते हैं, लेकिन वे पूरे पैसे चुका नहीं पाते और ख़ान से बचे फिरते हैं। ख़ान से अंततः उनका सामना होता है और चौधरी के काफी गिडगिड़ाने के बावजूद ख़ान का दिल नहीं पसीजता और वह अपने पैसे के बदले में घर की ड्योढ़ी पर लटका परदा खींच लेता है। परदा खींचते ही जो दृश्य सामने आता है वह कहानी को एक नया अर्थ देता है चौधरी पीर बख्श की गरीबी व उसका कर्ज न चुका पाना उतना महत्वपूर्ण नहीं रहता। बल्कि कुछ और महत्वपूर्ण बनकर उभरता है। वह क्या है, इसे जानने के लिए कहानी के निम्नलिखित अंशों को देखिए :

"इस दृश्य को देखने की ताब चौधरी में न थी, परंतु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा — घर की लड़कियाँ और औरतें परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आँगन के बीचों-बीच इकट्ठी हो खड़ी काँप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गयीं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर-भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक तिहाई अंग ढँकने में भी असमर्थ थे।"

"जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आँखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से ख़ान की कठोरता भी पिघल गयी। ग्लानि से थूक, परदे को आँगन में वापस फेंक क्रुद्ध निराशा में उसने "लाहौल विला ...... !" कहा और असफल लौट गया"

अभ्यास

7 परदे के गिरने ने चौधरी की किस छुपी हुई वास्तविकता को उजागर किया? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

....

....

8 चौधरी पीरबख्श अपने घर की वास्तविकता को क्यों छिपाना चाहते थे? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

....

....

9 कहानी के इस अंत का निहितार्थ क्या है? चार पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

9.6 चरित्र चित्रण

'परदा' कहानी का केंद्रीय चरित्र है, चौधरी पीरबख्श। चौधरी पीरबख्श के अतिरिक्त इस कहानी में पंजाबी ख़ान बबर अली ख़ाँ का चरित्र भी आता है। लेकिन यह चरित्र अपना स्वतंत्र महत्व नहीं रखता। कहानीकार ने भी कहानी के घटना-विकास को आगे बढ़ाने में एक सहायक तत्व की तरह ही इसे प्रस्तुत किया इसीलिए चरित्र चित्रण की दृष्टि से ख़ान का चरित्र का विशेष महत्व नहीं है। वैसे वह एक सूदखोर महाजन के रूप में आया है और उसी के अनुरूप उसका व्यवहार है।

जहाँ तक चौधरी पीरबख्श के चरित्र का सवाल है, उसकी विशेषताओं को पहचानने का प्रयास हम करेंगे। अगर आपने कहानी को ध्यान से पढ़ा है तो आपने यह जान लिया होगा कि चौधरी पीरबख्श का चरित्र चंपा, बुधगुप्त, लहनासिंह आदि चरित्रों से भिन्न हैं। ये सभी चरित्र अपना चारित्रिक वैशिष्ट्य भी रखते हैं जो उनके सामाजिक परिवेश जिसमें उनका व्यक्तित्व बना है, से काफी हद तक स्वतंत्र भी है। लेकिन पीरबख्श के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। इस अर्थ में पीरबख्श का चरित्र 'शतरंज के खिलाड़ी' के पात्र मीर और मिरजा से मिलता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि "चौधरी पीरबख्श" एक वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है।

प्रश्न यह है कि चौधरी पीरबख्श किस वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है? इसका निर्णय आप स्वयं कहानी के आधार पर कर सकते हैं। इसके लिए आप कहानी के भाग 1 के आरंभिक अंशों को पुनः पढ़िए जिससे आपको निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होंगे।

- चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमे में दरोगा थे।
- उन्होंने एक छोटा, पर पक्का मकान बनवाया।
- उन्होंने बच्चों को शिक्षा दिलवाई।
- उनके घर की औरतें परदे में रहती थीं और घर की ड्योढ़ी पर भी परदा लटका रहता था।
- उनके घर के लोग मेहनत-मजदूरी के काम की अपेक्षा सफेदपोश काम को ही खानदान के अनुकूल समझते थे।

अभ्यास

10 उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर बताइए कि चौधरी पीरबख्श का संबंध किस सामाजिक वर्ग से था?

....

....

चौधरी पीरबख्श ज्यादा पढ़े लिखे न थे इस कारण उन्हें एक तेल मिल में 12 रु. के वेतन पर मुंशीगिरी की नौकरी। बढ़ते परिवार ने उनके घर-परिवार की आर्थिक स्थिति को शोचनीय बना दिया। जिसका उल्लेख 'कथावस्तु' के अंतर्गत किया जा चुका है।

बोध प्रश्न

11 आप पीरबख्श के परिवार की आर्थिक स्थिति के आधार पर बताइये कि वे किस वर्ग के माने जायेंगे।

क) उच्च वर्ग
ख) उच्च मध्य वर्ग
ग) मध्य वर्ग
घ) निम्न मध्य वर्ग [ ]

चौधरी पीरबख्श की पारिवारिक पृष्ठभूमि ने उन्हें कुछ ऐसी रूढ़ियों में जकड़ लिया था, जिसके कारण उनकी समस्याएँ और बढ़ गई। ये रूढ़ियाँ कौन-सी थीं इन्हें आप कहानी के निम्नलिखित अंशों से पहचान सकते हैं।

- *"तालीम ज्यादा नहीं तो क्या, सफेदपोश खानदान की इज्जत का पास तो था।"*
- *"मजदूरी और दस्तकारी उनके करने की चीजें न थी।"*
- *"उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा।"*
- *"खुदा की बरक्कत होती है तो रुपये-पैसे की शक्ल में नहीं, आस औलाद की शक्ल में होती है। पंद्रह बरस में पाँच बच्चे हुए।"*

अभ्यास

11 उपर्युक्त अंशों के आधार पर बताइए कि कहानी में चौधरी पीरबख्श की कौन-सी रूढ़िगत मान्यताएँ अभिव्यक्त हुई है?

क) ....

ख) ....

ग) ....

घ) ....

उपर्युक्त विश्लेषण से अब हम चौधरी पीरबख्श के चरित्र की कुछ ठोस विशेषताओं को रेखांकित कर सकते हैं। इनका आधार है, चौधरी पीरबख्श की पारिवारिक पृष्ठभूमि, आर्थिक स्तर और सामाजिक मान्यताएँ।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर चौधरी पीरबख्श को कुलीन वर्ग का एक ऐसा व्यक्ति कह सकते हैं जो अपनी सामाजिक मान्यताओं में अत्यंत रूढ़िवादी है और आर्थिक रूप से गरीब लोगों के समकक्ष होते हुए भी अपनी कुलीनता की जंजीरों को तोड़ने में [illegible]

चौधरी पीरबख्श के चरित्र के उपर्युक्त मूल्यांकन से हम उसके कार्यों को और उसके जीवन में आने वाले संकट को आसानी से समझ सकते हैं। आर्थिक रूप से खोखला होने तथा झूठी मान्यताओं से बंधे रहने ने उसके चरित्र को दयनीय और कमजोर बना दिया है। खान से उधार लेने के बाद उसके जीवन की यह दयनीयता और अधिक उजागर होती है। कर्ज न चुकाने पर ख़ान से गालियाँ खाने पर भी वह उसके पैरों में पड़कर गिड़गिड़ाता है। खानदानी कुलीनता की रक्षा में वह अपने परिवार को इस दयनीय स्थिति में पहुँचा चुका है कि यह कुलीनता का परदा उसकी वास्तविकता को ढाँप नहीं पाता और अंततः वह एक दिन गिर जाता है। चौधरी पीरबख्श के चरित्र की यह त्रासदी है।

9.7 परिवेश

'परदा' कहानी के परिवेश पर विचार आरंभ करते ही कुछ तथ्य सहज ही सामने आ जाते हैं :

- यह निम्न वर्गीय परंतु कुलीन मुस्लिम परिवार की कहानी है।
- इसके मुख्य पात्र पीरबख्श का मासिक वेतन 18 रु. है और मकान का किराया 2 रु. है। इस आय में वह आठ जनों के परिवार का भरण पोषण करता है।
- जिस बस्ती में वह रहता है वह गरीब और निम्न कही जाने वाली जातियों की बस्ती है जो मेहनत मजदूरी कर अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह करते हैं।

ये कुछ ऐसे तथ्य हैं जो कहानी के परिवेश को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सबसे पहले दूसरे तथ्य को लें। 18 रु. मासिक वेतन और 8 लोगों के परिवार का भरण-पोषण से हमारे सामने यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि इस कहानी में प्रस्तुत घटनाओं का संबंध आज से लगभग पाँच-छह दशक पहले से है यानी कि स्वतंत्रता से पूर्व के भारत का काल।

परिवेश की विशिष्टता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह पहचाने कि कहानीकार ने जो कहानी कही है उसका संबंध किस काल और किस देश से है। अगर कथावस्तु ऐतिहासिक नहीं है तो हम कहानी के रचनाकाल से भी कथावस्तु के काल का अनुमान लगा सकते हैं अन्यथा कहानी का अंतः साक्ष्य तो आधार है ही और इस दृष्टि से उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस कहानी का संबंध किस समय से है।

परिवेश का दूसरा अंग है, देशगत परिवेश।

इस कहानी में चौधरी पीरबख्श का परिवेश तीन चीजों से निर्धारित हुआ है।

1 उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि,
2 उसकी वर्तमान दशा, और
3 उसका सामाजिक परिवेश।

हम 'कथावस्तु' और 'चरित्र चित्रण' के अंतर्गत पहली दो बातों की विस्तृत विवेचना कर चुके हैं। इनके आधार पर कहानी के परिवेश की विशिष्टता को पहचान सकते हैं। कहानीकार 'परिवेश' को कितने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सका है, यह उसके यथार्थ की निरीक्षण क्षमता और कल्पनाशीलता पर निर्भर करता है।

बोध प्रश्न

नीचे हम कहानी का एक अंश दे रहे हैं, इनके आधार पर कहानी की परिवेशगत विशिष्टताएँ बताइए। इसके लिए नीचे दिये गये बोध प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में लिखिए।

> *"चौधरी खानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा देने पर भी जगह तंग ही रही। दरोगा साहब के जमाने में जनाना भीतर था और बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठ नैचा गुड़गुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उसके बाद बैठक भी जनाने में शामिल हो गयी और घर की ड्योढ़ी पर परदा लटक गया। बैठक न रहने पर भी घर की इज्जत का ख्याल था, इसलिए परदा बोरी के टाट का नहीं, बढ़िया किस्म का रहता।"*

12 चौधरी खानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था, इस कथन का क्या आशय है?
क) मकान को पहले हवेली कहने का रिवाज था।
ख) हवेली से उच्चवर्गीय होने का आभास होता था।
ग) हवेली बड़े मकाने को कहा जाता था। [ ]

13 'दरोगा साहब का नैचा गुड़गुड़ाना' क्या व्यक्त करता है?
क) दरोगा साहब नशेबाज थे।
ख) नैचा गुड़गुड़ाना उस समय का आम रिवाज था।
ग) नैचा गुड़गुड़ाना भी सामंती उच्चता को प्रकट करता था। [ ]

14 उपर्युक्त अंश के आधार पर बताइए कि चौधरी ख़ानदान में वे परिवेशगत विशेषताएँ कौन-सी थीं जिससे उनकी उच्च वर्गीय कुलीनता प्रकट होती थी?

क) ....

ख) ....

ग) ....

चौधरी पीरबख्श अपनी कुलीन परंपरा को बनाए रखने की कोशिश करते हैं लेकिन बिगड़ती आर्थिक स्थिति उस परंपरा की सारी बातों का अनुकरण करने का अवसर नहीं देती, केवल उस परंपरा में से एक ही चीज़ रहती है और वह है परदा। परदा इस अर्थ में उस कुलीन परिवेश का प्रतीक भी है जिससे पीरबख्श का संबंध था।

बढ़ते परिवार के कारण जगह की तंगी की वजह से पीरबख्श को हवेली छोड़कर सितवा की कच्ची बस्ती में रहना पड़ता है। इस कच्ची बस्ती में मेहनतकश लोग रहते हैं इसलिए यहाँ का माहौल बिल्कुल भिन्न प्रकार का है।

"कच्ची गली के बीचों-बीच गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती, जिसके किनारे घास उग आयी थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते। सामने रमजानी धोबी की भट्टी थी, जिसमें से धुआँ और सज्जी मिले उबलते कपड़ों की गंध उड़ती रहती। दायीं ओर बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कुली रहते थे।"

बोध प्रश्न

15 कहानी के उपर्युक्त अंश के आधार पर कच्ची बस्ती की परिवेशगत विशिष्टता बताइए और उत्तर दीजिये।

क) वह गरीबों की बस्ती थी।
ख) उसमें छोटी समझी जाने वाली जातियाँ रहती थीं।
ग) इस तरह के माहौल में उच्च कुलीन लोग प्रायः नहीं रहते।
घ) उपर्युक्त सभी विशिष्टताएँ सही है। [

परिवेश का एक महत्वपूर्ण पक्ष है कहानी का मुस्लिम माहौल। यह एक निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की कहानी है और उत्तर भारत, विशेषतः हिंदी क्षेत्र के कुलीन एवं शिक्षित मुस्लिम परिवारों में उर्दू भाषा का व्यवहार आम रहा है इसीलिए उसकी जीवंत प्रस्तुति के लिए यशपाल ने उर्दू के शब्दों का प्रयोग काफी किया है। दूसरे, उन्होंने मुस्लिम समाज की परंपराओं औ मान्यताओं का भी ध्यान रखा है, यद्यपि अपने व्यापक अर्थ में इस कहानी का कथ्य किसी भी रूढ़िग्रस्त समाज पर लागू हो सकता है।

9.8 संरचना शिल्प

संरचना शिल्प के अंतर्गत हम शैली, भाषा और संवाद की चर्चा करते रहे हैं। आइए, सबसे पहले शैली की चर्चा करें।

9.8.1 शैली

'परदा' कहानी की शैली क्या है? इसका उत्तर आपको कहानी से काफी कुछ लग गया होगा। आइए एक बार पुनः कहानी का अवलोकन करें, यह देखें कि कहानी का विकास कैसे किया गया है।

- सर्वप्रथम पीरबख्श की पारिवारिक पृष्ठभूमि का वर्णन किया गया है।
- इसके बाद पीरबख्श का स्वयं का परिचय दिया गया है।
- तत्पश्चात् पीरबख्श के परिवार का परिचय दिया गया है और उसका कच्ची बस्ती में जाकर रहने का वर्णन है।
- इसके बाद कच्ची बस्ती में रहते हुए उसकी बढ़ती आर्थिक कठिनाइयों का वर्णन है।
- यहाँ तक कहानी लगभग आधी समाप्त हो जाती है। आप पायेंगे कि यहाँ तक कोई घटना नहीं है बल्कि पीरबख्श के घर-परिवार का वर्णन मात्र है।
- इसके बाद पीरबख्श का बबर अली खाँ से चार रुपये उधार लेने का वर्णन है। यहाँ से कथा में घटनाओं का आरंभ होता है।

- पीरबख्श कर्ज की किस्त नहीं चुका पाता और खान से बचता फिरता है।
- और एक दिन खान और चौधरी के बीच तकरार के बाद खान चौधरी की ड्योढ़ी का परदा कर्ज की वसूली के तौर पर खींच लेता है। परदा गिरते ही घर की औरतें अर्धनग्न अवस्था में नजर में आती हैं।

इस नाटकीय घटना के साथ ही कहानी समाप्त हो जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से शैली के निर्णय में सहायता मिल सकती है। आप देखेंगे कि आरंभ में सिर्फ स्थितियों का वर्णन किया गया है बाद में पीरबख्श द्वारा कर्ज लेने के साथ स्थिति में परिवर्तन आता है यहीं से नाटकीयता की शुरुआत होती है। कर्ज़ न चुका पाने और खान से बचने की कोशिश तथा अंत में ड्योढ़ी पर लगे पर्दे का खींचा जाना नाटकीयता का चरम उत्कर्ष है लेकिन स्थितियों के आरंभिक वर्णन के बिना बाद की नाटकीयता असंभव थी। इसलिए कहानी में स्थितियों का वर्णन और कहानी का नाटकीय अंत एक दूसरे से संबद्ध है। इस आधार पर इसे हम वर्णनात्मक और नाटकीय शैली के मिले जुले रूप की कहानी कह सकते हैं।

शैली की दृष्टि से इस कहानी की एक और विशेषता है, वह है व्यंग्यात्मकता। यह तत्व कहानी में आरंभ से अंत तक है। वस्तुतः व्यंग्य ही इस कहानी में पीरबख्श की अंतर्विरोधी स्थिति को उजागर करता है। कहानी में व्यंग्य कैसे और किन रूपों में इसे आप स्वयं पहचान सकते हैं।

9.8.2 भाषा

यशपाल, प्रेमचंद परंपरा के कथाकार हैं, न केवल विचारों में बल्कि भाषा में भी। यशपाल की कहानियों की भाषा भी बोलचाल की भाषा के निकट होती है। बोलचाल की भाषा की जो विशेषताएँ होती हैं, जैसे स्वाभाविकता, सहजता और सरलता, वे उनकी कहानियों में भी हम देख सकते हैं इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी कहानियों में हमेशा एक-सी भाषा होती है वरन् कहानी के कथ्य के अनुसार वे इसी बोलचाल की भाषा को नया रूप दे देते हैं।

हमने 'परिवेश' के अंतर्गत बताया था कि यह कहानी उत्तर भारत के उच्चवर्गीय मुस्लिम परिवार से संबंधित है और इसके स्वाभाविक चित्रण के लिए उन्होंने उर्दू शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। यहाँ हम इसमें यह और जोड़ना चाहेंगे कि न केवल उर्दू शब्द बल्कि उन्होंने मुहावरों आदि के द्वारा भी मुस्लिम समाज के यथार्थ को जीवंत बनाने की कोशिश की है। इस तरह के कुछ उदाहरण देखिए :

"*इंशाअल्ला* चौधरी साहब के *कुनबे* में *बरकत* हुई।"
"*मौला के करम* से *बीबी* की गोद भी जल्दी ही भरी है।"
"*खुदा की बरकत* होती है तो रुपये-पैसे की शक्ल में नहीं, *आस-औलाद* की शक्ल में होती है।"

लेकिन आप देखेंगे कि इससे खड़ी बोली का सहज रूप लुप्त नहीं हुआ है। भाषा में जो सहजता और स्वाभाविकता होनी चाहिए, वह हम सर्वत्र देख सकते हैं।

इस कहानी में यशपाल की भाषा का एक अन्य गुण जो प्रकट हुआ है, वह है, व्यंग्यात्मकता। नीचे का उदाहरण देखिए

> *"चौधरी की तनख्वाह पंद्रह बरस में बारह से अठारह हो गयी। खुदा की बरकत होती है तो रुपये-पैसे की शक्ल में नहीं, आस-औलाद की शक्ल में होती है।"*

आप इन पंक्तियों में छिपी व्यंग्य की ध्वनि को आसानी से पहचान सकते हैं। यहाँ न केवल कहानी संबंधी एक तथ्य उजागर हुआ है। (यानी पीरबख्श का परिवार कितना बड़ा है) बल्कि इसके प्रति लेखक के रूख का भी पता चलता है और यह प्रकट हुआ है व्यंग्य से। यह व्यंग्य उपर्युक्त पंक्तियों में तथ्य की प्रस्तुति में है। अगर इस बात को यशपाल सीधे इस रूप में रखते कि पंद्रह साल में पीरबख्श की तनख्वाह बारह से अठारह हो गयी और वे पाँच बच्चों के पिता बन गए तो वह बात पैदा न होती जो अब हुई है। तब सिर्फ एक तथ्य का उल्लेख होता लेकिन अब व्यंग्य के कारण न केवल कहानीकार की दृष्टि वरन् कथा की दिशा का संकेत भी प्रकट होता है। इससे यह भी जाहिर होता है कि रचनाकार भाषा का कितने स्तरों पर इस्तेमाल करता है।

यशपाल की भाषा की तीसरी विशेषता है—भाषा के द्वारा कहानी में रोचकता उत्पन्न करना। यह वस्तुतः ऊपर के गुणों की संश्लिष्ट विशेषता है। यशपाल एक किस्सागो की तरह अपनी भाषा का इस्तेमाल करते हैं। स्थिति के सीधे-सादे वर्णन को भी वे इतना रोचक बना देते हैं कि उसमें एक खास तरह का कथा रस आने लगता है। नीचे के अंश को देखिए :

"ज़ाहिरा दोनों भाइयों के बाल-बच्चे एक मकान में रहने पर भी भीतर सब अलग-अलग था। ड्योढ़ी का परदा कौन भाई लाये? इस समस्या का हल इस तरह हुआ कि दरोगा साहब के जमाने की पलंग की दरियाँ एक के बाद एक ड्योढ़ी में लटकायी जाने लगी।"

आप देखेंगे कि उपर्युक्त अंश में बोलचाल की भाषा की विशेषता और व्यंग्य तो है ही, साथ ही ऐसा प्रकट होता है जैसे कोई कहानी कह रहा हो और वह एक-एक बात को रोचक ढंग से पेश कर रहा हो। इसके लिए वाक्यों की रचना में यशपाल विशेष ध्यान देते हैं। छोटे-छोटे वाक्यों का अधिक प्रयोग और बड़े वाक्यों का अगर प्रयोग भी होगा तो वह इतना स्पष्ट और सहज कि समझने में कोई कठिनाई न हो।

9.8.3 संवाद

इस कहानी के कुछ संवाद देखिये :

पीरबख्श के संवाद:

> *"होने दो, क्या है? हमारे यहाँ पक्की हवेली में भी ड्योढ़ी पर दरी का ही परदा रहता था।"*
>
> *"भाई, हो तो बीस आने पैसे तो दो-एक रोज के लिए देना ऐसे ही जरूरत आ पड़ी है।"*

खान के संवाद :

> *"अम वतन चोड़ के परदेश में पड़ा है, ऐसे रुपया चोड़ देने के वास्ते अम यहाँ नहीं आया है, अमारा भी बाल-बच्चा है। चार रोज में रुपया नहीं देगा, तो अम तुमारा···· कर देगा।"*
>
> *"पैसा नहीं देना था, लिया क्यों? तनख्वाह किदर में जाता? अरामी अमारा पैसा मारेगा। आज तुमारा खाल खींच लेगा। पैसा नई है, तो घर पर परदा लटका के शरीफजाद कैसे बनता? ···· तुम अमको बीबी का मैना दो, बर्तन दो, कुछ भी तो दो, अम ऐसे नई जायेगा।"*

इस कहानी में संवाद कम है। अधिकांश संवाद कहानी के अंतिम भाग में ही आए हैं। इनमें भी पीरबख्श के संवाद दो तीन ही हैं। पीरबख्श की भाषा सामान्य मध्यवर्ग के लोगों की भाषा के अनुकूल ही है। ऊपर जो चौधरी पीरबख्श के संवाद दिये गए हैं उनमें आप देखेंगे कि किस तरह चौधरी पीरबख्श अपने घर की आर्थिक दुरवस्था को चतुराई से छिपाने की कोशिश कर रहा है। इस कहानी के संवादों की यह विशेषता है कि वह पात्र के मनोभावों को व्यक्त करने में पूरी तरह सक्षम हैं। दूसरे, वे संवाद लिखते हुए ध्यान रखते हैं कि बोलचाल की भाषा कैसी होती है। इसलिए वे छोटे-छोटे वाक्य बनाते हैं। ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते हैं जो बोलचाल में उचित लगे। इनके संवादों की तीसरी विशेषता है, पात्र की अपना मातृभाषा के कारण उसके हिंदी-उर्दू बोलने में आया फर्क। पंजाबी खान के संवादों में हम यह विशेषता देख सकते हैं। "ह" को अ, "ही" को ई, तथा वाक्य रचना में भी भिन्नता देख सकते है। जैसे "अमारा भी बाल-बच्चा है।" इस वाक्य में "हमारा" की जगह "अमारा" का तो प्रयोग हुआ ही है। लेकिन हिंदी उर्दू के अनुसार हमारा के स्थान पर मेरे भी बाल-बच्चे हैं, प्रयोग सही होता, लेकिन खान की भाषा पर अपनी मातृभाषा का प्रभाव होने के कारण उसकी भाषा का स्वरूप इस तरह का बन गया है। इस तरह के संवाद से कहानी में स्वाभाविकता आ जाती है।

अभ्यास

12 'परदा' कहानी की शैलीगत विशेषता बताइए तथा इन विशेषताओं को व्यक्त करने वाले एक-एक उदाहरण दीजिए। आपका उत्तर दस पंक्तियों से ज्यादा का न हो।

....

....

....

....

....

....

13 नीचे दिये गए अंश के आधार पर कहानी की तीन भाषागत विशेषताएँ बताइए तथा उन विशेषताओं वाले शब्दों या वाक्यांश को भी लिखिए।

> *"चौधरी पीरबख्श का भी ब्याह हो गया। मौला के करम से बीबी की गोद भी जल्दी ही भरी है। पीरबख्श ने रोजगार के तौर पर खानदान की इज्जत के ख्याल से एक तेल की मिल में मुंशीगिरी कर ली। तालीम ज्यादा नहीं तो क्या, सफेदपोश खानदान की इज्जत का पास तो था। मजदूरी और दस्तकारी उनके करने की चीजें न थी। चौकी पर बैठते। कलम-दवात का काम था।"*

i) ....

....

ii) ....

....

iii) ....

....

4 'परदा' कहानी के संवादों की तीन विशेषताएँ बताइए।

i) ....

ii) ....

iii) ....

.9 मूल्यांकन

आपने कहानी का वाचन और विश्लेषण दोनों का अध्ययन किया है। आप इसके आधार पर अब आसानी से कहानी का मूल्यांकन कर सकते हैं। सबसे पहले हम कहानी के प्रतिपाद्य पर विचार करें। प्रतिपाद्य का अर्थ है कि कहानी के द्वारा लेखक क्या कहना चाहता है? इसको जानने के लिए ही कहानी का विश्लेषण किया जाता है। इससे हमारे सामने निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

- इस कहानी का केंद्रीय पात्र चौधरी पीरबख्श का संबंध एक ऐसे परिवार से रहा है जो कुलीन या खानदानी माना जाता था।
- यह परिवार कभी आर्थिक रूप से संपन्न भी था।
- यह परिवार मजदूरी और दस्तकारी को हेय की दृष्टि से देखता था।
- इनके परिवार की औरतों को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। उन्हें परदे में रहना पड़ता था।

अपने को कुलीन समझना, मेहनत के काम को हेय समझना, औरतों को परदे में रखना और आर्थिक सम्पन्नता को बड़ा मूल्य मानना सामंती जीवन मूल्यों के अनुकूल है। चौधरी पीरबख्श इन्हीं सामंती मूल्यों में जकड़ा हुआ है। लेकिन अब तक इस परिवार की संपन्नता समाप्त हो चुकी है। यही नहीं अपने को कुलीन मानना और दूसरों को हेय समझना या मजदूरी और दस्तकारी के काम को छोटा समझना अच्छे विचार नहीं माने जाते। इसे वैचारिक पिछड़ापन कह सकते हैं। चौधरी पीरबख्श इसी पिछड़ेपन से चिपटे हुए हैं। उनका दुर्भाग्य यह है कि जिस गरीबी की हालत में उन्हें जीना पड़ रहा है उसमें उन पुराने मूल्यों से चिपके रहना नामुमकिन-सा हो गया है। फिर भी वे उससे चिपटे रहते हैं और अपने परिवार को न केवल दयनीय स्थिति में पहुँचा देते हैं बल्कि ऐसी हास्यास्पद स्थिति में भी जिसके कारण उनके घर की वास्तविकता अत्यंत कारुणिक रूप में जगजाहिर होती है।

पुरानी संपन्नता न रहने के कारण केवल "परदा" ही उस सामंती जीवन पद्धति का अवशेष रह गया है। यह "परदा" पहले स्त्रियों को परदे में रखने के रिवाज का माध्यम था लेकिन चौधरी पीरबख्श इसके माध्यम से अपने घर की विपन्नता को भी छिपाते हैं। उनके पास परदे के लिए टाट खरीदने के लिए भी पैसे नहीं हैं इसलिए विवश होकर उन्हें दरी लटकानी पड़ती है लेकिन वे प्रदर्शित यह करते हैं यह उनकी पुश्तैनी संपन्नता और कुलीनता का प्रतीक है। अपने जीवन के इस अंतर्विरोध को वे समझ नहीं पाते और इसी अंतर्विरोध को उजागर करना ही लेखक का प्रतिपाद्य है।

शीर्षक की उपयुक्तता : इस कहानी के शीर्षक की इस इकाई में इतनी बार चर्चा हो चुकी है कि यहाँ उसकी उपयुक्तता की चर्चा आवश्यक नहीं है। आप स्वयं शीर्षक की उपयुक्तता पर विचार कीजिए।

अभ्यास

5 'परदा' कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता के तीन कारण बताइए।

i) ....

....

ii) ....

....

iii) ....

....

.10 सारांश

आपने 'परदा' कहानी का वाचन और विश्लेषण दोनों का विस्तृत अध्ययन किया है। आशा है, आप इसे समझ गये होंगे।

- 'परदा' सामाजिक कहानी है। इसके नायक चौधरी पीरबख्श हैं। चौधरी पीरबख्श किस तरह कुलीनता के झूठे अहंकार

में फँस जाते है और सामाजिक विडंबना के शिकार होते है यही कहानी का कथ्य है। इस आधार पर आप कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकते है।

- 'परदा' का नायक चौधरी पीरबख्श वर्गीय पात्र है। यह ऐसे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जो वर्तमान में अत्यंत दयनीय हालात में जी रहा है, लेकिन अतीत की झूठी शान के कारण वास्तविकताओं को स्वीकार करने में असमर्थ है। आप चौधरी पीरबख्श के चरित्र की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकते हैं।
- चौधरी उच्च परिवार का परन्तु आर्थिक दृष्टि से निम्न मध्यवर्गीय मुसलमान है। चौधरी का पारिवारिक और सामाजिक परिवेश कहानी में अत्यंत कुशलता से चित्रित हुआ है। आप इस आधार पर कहानी के परिवेश की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- 'परदा' कहानी की शैली यथार्थवादी, भाषा बोलचाल की परंतु उर्दू मिश्रित एवं संवाद पात्रों के सामाजिक और वैयक्तिक स्तर के अनुकूल हैं। इस दृष्टि से आप कहानी की भाषा और शैली की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- यशपाल प्रगतिशील कथाकार है। इस दृष्टि के अनुकूल ही उन्होंने सामाजिक जीवन में व्याप्त अंतर्विरोधों को चित्रित किया है। 'परदा' कहानी में भी मध्यवर्गीय परिवार की सामाजिक विडंबनाओं को व्यक्त किया गया है। इस दृष्टि से आप कहानी का प्रतिपाद्य बता सकते है।

9.11 उपयोगी पुस्तकें

मदान, डॉ० इंद्रनाथ : **हिंदी कहानी : पहचान और परख**, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली।

लाल, डॉ० लक्ष्मीनारायण : **आधुनिक हिंदी कहानी**, हिंदी ग्रंथ रत्नाकार प्रा०लि०, बंबई।

9.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

अभ्यास

1 चौधरी पीरबख्श अधिक नहीं पढ़ पाये। प्राइमरी तक की शिक्षा ही वे प्राप्त कर सके। ऊँचे खानदान के थे इसलिए वे मेहनत मजदूरी के काम को छोटा समझते थे। इसलिए एक तेल की मिल में मुंशी की नौकरी कर ली। उनका वेतन था 12 रु. जो बढ़ते-बढ़ते 18 रु. हुआ। परिवार भी इस दौरान काफी बढ़ गया और पांच बच्चों सहित परिवार में आठ सदस्य हो गये। उन्हें पुश्तैनी हवेली छोड़कर कच्ची बस्ती में रहना पड़ा जहाँ छोटे समझे जाने वाले गरीब लोग रहते थे। अठारह रु. में आठ लोगों का भरण-पोषण मुश्किल से होता। इससे एक समय का भोजन ही जुट पाता था। शेष आवश्यकताएँ पूरी करना तो नामुमकिन होता जा रहा था।

2 एवं 3 आप इन अंशों की व्याख्या स्वयं करने का प्रयास कीजिए। इसके लिए कहानी को ध्यान से पढ़िए एवं उसके विश्लेषण का भी अध्ययन कीजिए। आपको व्याख्या करने में कोई कठिनाई नहीं आएगी।

4 i) पीरबख्श को अपने उच्च कुलीन होने का गर्व था।
ii) वह हाथ से काम करने वाले को हेय दृष्टि से देखते थे।
iii) बिना परदे के घर की औरतों का बाहर निकलना बुरा मानते थे।

5 इसका कारण था चौधरी पीरबख्श अपने खानदान की उच्चता और अतीत की सम्पन्नता से इतने आक्रांत थे कि वर्तमान की वास्तविकताओं को स्वीकार करने से हिचकिचाते थे। चौधरी पीरबख्श की गरीबी के लिए वे अकेले उत्तरदायी नहीं थे किंतु अपने जीवन की वास्तविकताओं को स्वीकार करने और उसके अनुसार अपने जीवन को न बदल पाने का दायित्व उन्हीं पर था।

6 i) **समानताएँ**

क) चौधरी पीरबख्श उन्हीं की तरह गरीब थे।
ख) चौधरी पीरबख्श उन्हीं की तरह एक ही मुहल्ले में एक सी स्थिति में रह रहे थे।

विषमताएँ

क) चौधरी अपने को उच्च कुलीन वर्ग का समझते थे और बस्ती वालों को निम्न और जाहिल।
ख) चौधरी के परिवार की औरतें परदे में रहती थीं।

ii) कहानी की परिणति के लिए विषमताओं के उपर्युक्त सभी कारण उत्तरदायी है। अपने को उच्च कुल का मानना और गरीबों का सा जीवन जीने के बीच के अंतर्विरोध को न समझ पाने तथा वास्तविकता को दुनिया से छिपाने की कोशिश ने ही उन्हें इस स्थिति में ला पटका।

7 परदे के गिरने से वह गरीबी प्रकट हो गई जिसे वे इज़्ज़त के प्रतीक परदे की ओट में छिपाये हुए थे।

8 क्योंकि उनमें अपनी वास्तविकता को स्वीकार करने का साहस नहीं था और इसका कारण था अपने को उच्च एवं कुलीन मानने का भ्रम।

9 कहानी के अंत का निहितार्थ यह है कि समय के साथ जो वर्ग अपनी वास्तविकता को स्वीकार नहीं करता और उसे लगातार छिपाकर अतीत की संपन्नता के झूठे भ्रम में फँसा रहता है, जीवन का यथार्थ स्वयं उसके इस भ्रम को अंततः तोड़ देता है।

10 चौधरी पीरबख्श का संबंध एक ऐसे परिवार से था जो सामाजिक दृष्टि से उच्च माना जाता था, और जो आर्थिक दृष्टि से संपन्न था।

11 i) उच्च कुल का समझना
ii) मेहनत के कार्य को हेय दृष्टि से देखना
iii) औरतों को परदे में रखना
iv) अधिक बच्चे पैदा करना।

12 'परदा' कहानी की शैलीगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:
1 वर्णनात्मकता
"इंशाअल्ला, चौधरी साहब के कुनबे ···· दो लड़कियाँ बख्शीं।" (पृ. 90)
2 व्यंग्यात्मकता
"मुहल्ले में सफेदपोशी और इज्ज़त ···· वह चोर जो ठहरा।" (पृ. 91)
3 नाटकीयता
"खान और आग हो गया···· जमीन पर गिर पड़े।" (पृ. 93)

आप इनके अतिरिक्त अन्य उपयुक्त उदाहरण भी दे सकते हैं।

13 i) **उर्दूनिष्ठ भाषा**
करम, रोज़गार, इज़्ज़त, तालीम, सफेदपोश जैसे उर्दू शब्दों का प्रयोग
ii) **बोलचाल की भाषा जैसी सहजता और स्वाभाविकता**
"चौधरी पीरबख्श का भी ब्याह हो गया।"
iii) **व्यंग्य**
"मौला के करम से बीबी के गोद भी जल्दी ही भरी है।"

14 i) बोलचाल के अनुकूल
ii) पात्र के देश-काल के अनुकूल
iii) छोटे वाक्य

15 i) 'परदा' सामंती जीवन मूल्यों का प्रतीक है जो वर्तमान वास्तविकता को छिपाने का आवरण रह गया है।
ii) 'परदा' सामंती परिवारों में औरतों की हीन दशा को भी व्यक्त करता है।
iii) 'परदा' विपन्नता पर संपन्नता का आवरण है।

बोध प्रश्न

1 ख) 2 ग) 3 क)
4 ख) 5 क) 6 घ)
7 ख) 8 ग) 9 क)
10 ग) 11 घ) 12 ख) 13 ग)

14 क) चौधरी के परिवार के लोग अपने पुश्तैनी घर को हवेली कहते थे।
ख) उनके घर की ड्योढ़ी पर परदा लटका रहता था।
ग) उनके घर के लोग मेहनत और दस्तकारी का काम नहीं करते थे।

15 घ)

इकाई 10 'अकेली' (मन्नू भंडारी) : वाचन एवं विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 कहानी का वाचन : अकेली
10.3 कहानी का सार
10.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या
10.5 कथावस्तु
10.6 चरित्र चित्रण
10.7 परिवेश
10.8 संरचना शिल्प
10.9 मूल्यांकन
10.10 सारांश
10.11 उपयोगी पुस्तकें
10.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको प्रसिद्ध कथा लेखिका मन्नू भंडारी की कहानी 'अकेली' दे रहे हैं। आप इस कहानी का वाचन भी करेंगे और कहानी के विभिन्न पक्षों के विश्लेषण द्वारा उसका मूल्यांकन भी करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- कहानी में आए कठिन शब्दों और मुहावरों का अर्थ बता सकेंगे और कथावस्तु की विशेषताएँ पहचान सकेंगे;
- सोमा बुआ का चरित्र चित्रण कर सकेंगे;
- कहानी की परिवेशगत और संरचनागत विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण कर सकेंगे;
- कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता का निर्णय कर सकेंगे; और
- उपर्युक्त आधारों पर किए गए विश्लेषण द्वारा कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

आपने अब तक चार कहानियों का विस्तृत अध्ययन किया है। अब आप इस पाठ्यक्रम की अंतिम कहानी पढ़ने जा रहे हैं। अब तक आपने जो भी कहानियाँ पढ़ी हैं, वे भिन्न-भिन्न वास्तविकताओं और संरचनाओं को व्यक्त करने वाली थीं। 'अकेली' कहानी जिसका आप इस इकाई में अध्ययन करने जा रहे हैं, वह पूर्व की चार कहानियों से कई अर्थों में भिन्न है। आकार में अपेक्षाकृत छोटी इस कहानी में मध्यवर्ग की एक स्त्री के जीवन के अकेलेपन को विषय बनाया गया है। इसके माध्यम से बदलते जीवन मूल्यों के बीच मानवीय रिश्तों की तलाश और उससे उत्पन्न हताशा को अभिव्यक्ति दी गई है। इसका विस्तृत अध्ययन आप कहानी के विश्लेषण द्वारा करेंगे।

मन्नू भंडारी (जन्म : 1931) नयी कविता आंदोलन की प्रतिनिधि कथा लेखिका हैं। आप छठे दशक के आरंभ से कहानियाँ लिख रही हैं। आपका प्रथम कहानी संग्रह 'मैं हार गई' सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। आपने लगभग पचास कहानियाँ, पाँच उपन्यास, दो नाटक एवं बाल साहित्य की भी रचना की है। 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यही सच है', 'एक प्लेट सैलाब', 'त्रिशंकु' आदि आपके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। 'आपका बंटी' और 'महाभोज' बहुचर्चित और प्रशंसित उपन्यास हैं।

मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों मे मध्यवर्ग के जीवन की वास्तविकताओं को उजागर किया है। विशेष रूप से इस वर्ग की नारी के जीवन की त्रासद स्थितियों को जितनी कुशलता से आपने अभिव्यक्त किया है, वैसी कुशलता कम ही देखी गयी है। परंपरागत रूढ़ियों और संस्कारों के बीच अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती नारी की मनोव्यथा को मन्नू जी ने गहराई और सहानुभूति से समझा है।

मन्नू भंडारी ने अपनी कई रचनाओं में व्यापक सामाजिक और राजनीतिक अंतर्विरोधों की भी पड़ताल की है। 'महाभोज' इस दृष्टि से अत्यंत उल्लेखनीय है।

आपने इससे पहले की इकाई में यशपाल की कहानी 'परदा' का अध्ययन किया था। इस इकाई में हम 'अकेली' का वाचन भी प्रस्तुत करेंगे और विश्लेषण भी। इस इकाई में विश्लेषण की पद्धति वही होगी, जो इससे पहले की इकाई में अपनाई गयी थी। हमारी कोशिश अभ्यासों द्वारा स्वयं आपसे कहानी का विश्लेषण कराने की होगी, ताकि आप स्वयं कहानियों को समझने की क्षमता विकसित कर सकें।

10.2 कहानी का वाचन : अकेली

सोमा बुआ बुढ़िया हैं।
सोमा बुआ **परित्यक्ता** हैं।
सोमा बुआ अकेली हैं।

कहानी का केंद्रीय चरित्र

सोमा बुआ का जवान बेटा क्या जाता रहा, उनकी अपनी जवानी चली गई। पति को पुत्र-वियोग का ऐसा सदमा लगा कि वे पत्नी, घर-बार तजकर तीरथ-वासी हुए और परिवार में कोई ऐसा सदस्य था नहीं जो उनके एकाकीपन को दूर करता। पिछले बीस वर्षों से उनके जीवन की इस एकरसता में किसी प्रकार का कोई **व्यवधान** उपस्थित नहीं हुआ, कोई परिवर्तन नहीं आया। यों हर साल एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते थे, पर कभी उन्होंने पति की प्रतीक्षा नहीं की, उनकी राह में आंखें नहीं बिछाईं। जब तक पति रहते उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता, क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोज़मर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती **स्वच्छंद धारा** को कुंठित कर देता। उस समय उनका घूमना-फिरना, मिलना-जुलना बन्द हो जाता, और संन्यासी जी महाराज से यह भी नहीं होता कि दो मीठे बोल बोलकर सोमा बुआ को एक ऐसा **सम्बल** ही पकड़ा दें, जिसका आसरा लेकर वह उनके वियोग के ग्यारह महीने काट दें। इस स्थिति में बुआ को अपनी ज़िन्दगी पास-पड़ोस वालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी। किसी के घर मुण्डन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या **गमी**; बुआ पहुँच जातीं और फिर **छाती फाड़कर** काम करतीं, मानो वे दूसरों के घर में नहीं अपने ही घर में काम कर रही हों।

सोमा बुआ के जीवन की पृष्ठभूमि

इकलौते पुत्र की असामयिक मृत्यु

आजकल सोमा बुआ के पति आए हुए हैं, और अभी-अभी कुछ कहासुनी होकर चुकी है। बुआ आंगन में बैठी धूप खा रही हैं, पास रखी कटोरी से तेल लेकर हाथ में मल रही हैं, और बड़बड़ा रही हैं। इस एक महीने में अन्य **अवयवों** के शिथिल हो जाने के कारण उनकी जीभ ही सबसे अधिक सजीव और सक्रिय हो उठी है। तभी हाथ में एक फटी साड़ी और पापड़ लेकर ऊपर से राधा भाभी उतरीं।

"क्या हो गया बुआ, क्यों बड़बड़ा रही हो? फिर संन्यासीजी महाराज ने कुछ कह दिया क्या?"

"अरे, मैं कहीं चली जाऊं सो ही इन्हें नहीं सुहाता। कल चौक वाले किशोरीलाल के बेटे का मुण्डन था, सारी बिरादरी का न्यौता था। मैं तो जानती थी कि यह पैसे का **गरूर** है कि मुण्डन पर भी सारी बिरादरी को न्यौता है, पर काम उन नई-नवेली बहुओं से संभलेगा नहीं, सो जल्दी ही चली गई। हुआ भी वही," और सरककर बुआ ने राधा के हाथ से पापड़ लेकर सुखाने शुरू कर दिए। "एक काम **गत** से नहीं हो रहा था। अब घर में कोई बड़ा-बूढ़ा हो तो बतावे, या कभी किया हो तो जाने। गीतवाली औरतें मुण्डन पर **बन्ना-बन्नी** गा रही थीं, मेरा तो हंसते-हंसते पेट फूल गया।" और उसकी याद से ही कुछ देर पहले का दुःख और आक्रोश धुल गया। अपने सहज स्वाभाविक रूप में वे कहने लगीं — "भट्टी पर देखो तो अजब तमाशा — समोसे कच्चे ही उतार दिए और इतने बना दिए कि दो बार खिला दो, और गुलाब-जामन इतने कम कि एक **पंगत** में भी पूरे न पड़ें। उसी समय मैदा सानकर नए गुलाब-जामन बनाए। दोनों बहुएं और किशोरीलाल तो बिचारे इतना जस मान रहे थे कि क्या बताऊं? कहने लगे — "अम्मा! तुम न होतीं तो आज **भद्द उड़ जाती**। अम्मा! तुमने लाज रख ली!" मैंने तो कह दिया कि अरे, अपने ही काम नहीं आवेंगे तो कोई बाहर से तो आवेगा नहीं। ये तो आजकल इनका रोटी-पानी का काम रहता है, नहीं तो सवेरे से ही चली जाती!"

सोमा बुआ की सामाजिकता

व्यवहार कुशलता का अभाव

"तो संन्यासी महाराज क्यों बिगड़ पड़े? उन्हें तुम्हारा आना-जाना अच्छा नहीं लगता बुआ?"

"यों तो मैं कहीं आऊं-जाऊं सो ही इन्हें नहीं सुहाता. और फिर कल किशोरी के यहां से बुलावा नहीं आया। अरे, मैं तो कहूं कि घर वालों का कैसा बुलावा? वे लोग तो मुझे अपनी मां से कम नहीं समझते, नहीं तो कौन भला यों भट्टी और भण्डार-घर सौंप दे? पर उन्हें अब कौन समझाए? कहने लगे, "तू ज़बरदस्ती दूसरों के घर में टांग अड़ाती फिरती है।" और एकाएक उन्हें उस क्रोध-भरी वाणी और कटु वचनों का स्मरण हो आया जिनकी बौछार कुछ देर पहले ही उनपर हो चुकी थी। याद आते ही फिर उनके आँसू बह चले।

"अरे रोती क्यों हो बुआ। कहना-सुनना तो चलता ही रहता है। संन्यासी जी महाराज एक महीने को तो आकर रहते हैं, सुन लिया करो, और क्या!"

"सुनने को तो सुनती ही हूं, पर मन तो दुखता ही है कि एक महीने को आते हैं तो भी कभी मीठे बोल नहीं बोलते। मेरा आना-जाना इन्हें सुहाता नहीं, सो तू ही बता राधा, ये तो साल में ग्यारह महीने हरिद्वार में रहते हैं। इन्हें तो नाते-रिश्तेवालों से कुछ लेना-देना नहीं, पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है। मैं भी सबसे तोड़-ताड़कर बैठ जाऊं तो कैसे चले! मैं तो इनसे कहती हूं कि जब **पल्ला पकड़ा** है तो अन्त समय में भी साथ ही रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम-करम ये ही लूटेंगे,

परित्यक्ता: पति द्वारा त्यागी हुई स्त्री, **व्यवधान**: बाधा, **स्वच्छंद धारा**: अनियंत्रित प्रवाह, **संबल**: सहारा, **गमी**: मृत्यु-शोक, **छाती फाड़कर** (मु.): लगकर मेहनत करना, **अवयवों**: शरीर के अंगों, **गरूर**: घमंड, **गत**: ठीक तरह, **बन्ना-बन्नी गाना**: विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत **पंगत**: पंक्ति, **भद्द उड़ जाना**: अपमानित होना, **पल्ला पकड़ना** (मु.): दायित्व लेना (यहाँ तात्पर्य विवाह द्वारा पत्नी की जिम्मेदारी लेने से है)

सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी यहाँ इनके नाम को रोया करूं। उस पर से कहीं आऊं-जाऊं, वह भी इनसे बर्दाश्त नहीं होता···" और बुआ फूट-फूटकर रो पड़ीं। राधा ने आश्वासन देते हुए कहा, "रोओ नहीं बुआ। अरे, वे तो इसलिए नाराज़ हुए कि बिना बुलाए तुम चली गई।"

बेटे की स्मृति

"बेचारे इतने हंगामे में बुलाना भूल गए, तो मैं भी मान करके बैठ जाती? फिर घरवालों का कैसा बुलाना? मैं तो अपनेपन की बात जानती हूँ। कोई प्रेम नहीं रखे तो दस बुलावे पर नहीं जाऊं और प्रेम रखे तो बिना बुलाए भी सिर के बल जाऊं। मेरा अपना हरखू होता और उसके घर काम होता तो क्या मैं बुलावे के भरोसे बैठी रहती? मेरे लिए जैसा हरखू, वैसा किशोरीलाल! आज हरखू नहीं है इसीसे दूसरे को देख-देखकर मन भरमाती रहती हूँ।" और वे हिचकियां लेने लगीं।

सूखे पापड़ों को बटोरते-बटोरते स्वर को भरसक कोमल बनाकर राधा ने कहा, "तुम भी बुआ, बात को कहां से कहां ले गईं? लो अब चुप होओ, पापड़ भूनकर लाती हूं, खाकर बताना, कैसा है?" और वह साड़ी को समेटकर ऊपर चढ़ गई।

सोमा बुआ के देवर के ससुराल में विवाह

कोई सप्ताह-भर बाद बुआ बड़े प्रसन्न मन से आई और संन्यासी जी से बोलीं, "सुनते हो, देवर जी के ससुराल वालों की किसी लड़की का सम्बन्ध भागीरथ जी के यहाँ हुआ है। वे सब लोग यहीं आकर ब्याह कर रहे हैं। देवर जी के बाद तो उन लोगों से कोई संबंध ही नहीं रहा, फिर भी हैं तो समधी ही। वे तो तुमको भी बुलाए बिना नहीं मानेंगे। समधी को आखिर कैसे छोड़ सकते हैं?" और बुआ पुलकित होकर हंस पड़ीं। सन्यासी जी की मौन उपेक्षा से उनके मन को ठेस तो पहुंची, फिर भी वे प्रसन्न थीं। इधर-उधर जाकर वे विवाह की प्रगति की खबरें लातीं! आखिर एक दिन वे यह भी सुन आई कि उनके समधी यहाँ आ गए हैं। ज़ोर-शोर से तैयारियां हो रही हैं। सारी बिरादरी को दावत दी जाएगी — खूब रौनक होने वाली है। दोनों ही पैसे वाले ठहरे।

निमंत्रण की आशा

"क्या जानें, हमारे घर को बुलावा आएगा या नहीं? देवर जी को मरे पच्चीस साल हो गए, उसके बाद से तो कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। रखे भी कौन? यह काम तो मरदों का होता है, मैं तो मरदवाली होकर भी बेमरद की हूँ।" और एक ठण्डी सांस उनके दिल से निकल गई।

"अरे वाह बुआ! तुम्हारा नाम कैसे नहीं हो सकता! तुम तो समधिन ठहरीं। संबंध न रहे तो कोई रिश्ता थोड़े ही टूट जाता है।" दाल पीसती हुई घर की बड़ी बहू बोली।

विवाह में जाने की तैयारी

"है, बुआ, नाम है। मैं तो सारी लिस्ट देखकर आई हूँ।" विधवा ननंद बोली। बैठे ही बैठे एक कदम आगे सरककर बुआ ने बड़े उत्साह से पूछा, "तू अपनी आंखों से देखकर आई है नाम? नाम तो होना ही चाहिए। पर मैंने सोचा कि क्या जाने, आजकल के फैशन में पुराने संबंधियों को बुलाना हो, न हो।" और बुआ बिना दो पल भी रुके वहां से चल पड़ीं। अपने घर जाकर सीधे राधा भाभी के कमरे में चढ़ीं, "क्यों री राधा, तू तो जानती है कि नई फैशन में लड़की की शादी में क्या दिया जावे है? समधियों का मामला ठहरा, सो भी पैसे वाले। खाली हाथ जाऊंगी तो अच्छा नहीं लगेगा। मैं तो पुराने जमाने की ठहरी, तू ही बता दे, क्या दूं? अब कुछ बनाने का समय तो रहा नहीं, दो दिन बाकी हैं, सो कुछ बना-बनाया ही खरीद लाना।"

"क्या देना चाहती हो अम्मा, ज़ेवर, कपड़ा या शृंगारदान, या कोई और चांदी की चीज़ें?"

विवाह में भेंट देने के लिए मृत पुत्र की अंगूठी बेचना

"मैं तो कुछ भी नहीं समझूं री! जो कुछ पास हैं, तुझे लाकर दे देती हूँ; जो तू ठीक समझे ले आना। बस भद नहीं उड़नी चाहिए! अच्छा, देखूं पहले कि रुपये कितने हैं?" और वे डगमगाती कदमों से नीचे आई। दो-तीन कपड़ों की गठरियां हटाकर एक छोटा सा बक्स निकाला। उसका ताला खोला। इधर-उधर करके एक छोटी सी डिबिया निकाली। बड़े जतन से उसे खोला — उसमें सात रुपये और कुछ रेजगारी पड़ी थी, और एक अंगूठी। बुआ का अनुमान था कि रुपये कुछ ज्यादा होंगे, पर जब सात रुपये ही निकले तो सोच में पड़ गई। रईस समधियों के घर में इतने से रुपये से तो बिन्दी भी नहीं लगेगी। उनकी नज़र अंगूठी पर गई। यह उनके मृत पुत्र की एकमात्र निशानी उनके पास रह गई थी। बड़े-बड़े आर्थिक संकटों के समय भी वे उस अंगूठी का मोह नहीं छोड़ सकी थीं। आज भी एक बार उसे उठाते समय उनका दिल धड़क गया, फिर भी उन्होंने पांच रुपये और वह अंगूठी आंचल से बांध ली। बक्स को बन्द किया और फिर ऊपर को चलीं, पर इस बार उनके मन का उत्साह कुछ ठण्डा पड़ गया था और पैरों की गति शिथिल! राधा के पास जाकर बोलीं, "रुपये तो नहीं निकले बहू। आएं भी कहां से, मेरे कौन कमानेवाला बैठा है? उस कोठरी का किराया आता है, उसमें तो दो समय की रोटी निकल जाती है जैसे-तैसे!" और वे रो पड़ीं। राधा ने कहा, "क्या करूं बुआ, आजकल मेरा भी हाथ तंग है, नहीं तो मैं ही दे देती। अरे, पर तुम देने के चक्कर में पड़ती ही क्यों हो? आजकल तो लेने-देने का रिवाज़ ही उठ गया है।"

"नहीं रे राधा! समधियों का मामला ठहरा! पच्चीस बरस हो गये तो भी वे नहीं भूले, और मैं खाली हाथ जाऊं? नहीं-नहीं, इससे तो न जाऊं सो ही अच्छा!"

"तो जाओ ही मत। चलो, छुट्टी हुई। इतने लोगों में किसे पता लगेगा कि आई या नहीं।" राधा ने सारी समस्या का सीधा-सा हल बताते हुए कहा।

"बड़ा बुरा मानेंगे। सारे शहर के लोग जावेंगे, और मैं समधिन होकर नहीं जाऊंगी तो यही समझेंगे कि देवर जी मरे तो सम्बन्ध भी तोड़ लिया। नहीं-नहीं, तू अंगूठी बेच ही दे।" और उन्होंने आंचल की गांठ खोलकर एक पुराने ज़माने की अंगूठी राधा के हाथ पर रख दी। फिर बड़ी मिन्नत के स्वर में बोलीं, "तू तो बाजार जाती है राधा, इसे बेच देना और जो कुछ ठीक समझे, खरीद लेना। बस, शोभा रह जाए, इतना ख्याल रखना।"

गली में बुआ ने चूड़ीवाले की आवाज़ सुनी तो एकाएक ही उनकी नज़र अपने हाथ की भद्दी मटमैली चूड़ियों पर जाकर टिक गई। कल समधियों के यहां जाना है, जेवर नहीं तो कम से कम कांच की चूड़ी तो अच्छी पहन लें। पर एक अव्यक्त लाज

भेंट की तैयारी

ने उनके कदमों को रोक दिया, कोई देख लेगा तो। लेकिन दूसरे क्षण ही अपनी इस कमजोरी पर विजय पाती-सी वे पीछे के दरवाजे पर पहुंच गईं और एक रुपया कलदार खर्च करके लाल-हरी चूड़ियों के बन्द पहन लिए। पर सारे दिन हाथों को साड़ी के आंचल से ढके-ढके फिरीं।

शाम को राधा भाभी ने बुआ को चांदी की एक सिन्दूरदानी, एक साड़ी और एक ब्लाउज़ का कपड़ा लाकर दे दिया। सब-कुछ देख कर बुआ बड़ी प्रसन्न हुईं, और यह सोच-सोचकर कि जब वे ये सब देंगी तो उनकी समधिन पुरानी बातों की दुहाई दे-देकर उनकी मिलनसारिता की कितनी प्रशंसा करेगी, उनका मन पुलकित होने लगा। अंगूठी बेचने का गम भी जाता रहा। पास वाले बनिये के यहां से एक आने का पीला रंग लाकर रात में उन्होंने साड़ी रंगी। शादी में सफेद साड़ी पहनकर जाना क्या अच्छा लगेगा? रात में सोयीं तो मन कल की ओर दौड़ रहा था।

दूसरे दिन नौ बजते-बजते खाने का काम समाप्त कर डाला। अपनी रंगी हुई साड़ी देखी तो कुछ जंची नहीं। फिर ऊपर राधा के पास पहुंची, "क्यों राधा, तू तो रंगी साड़ी पहनती है तो बड़ी आब रहती है, चमक रहती है, इसमें तो चमक आई नहीं?"

"तुमने कलफ जो नहीं लगाया अम्मा, थोड़ा-सा मांड दे देती तो अच्छा रहता। अभी दे लो, ठीक हो जाएगी। बुलावा कब का है?"

बिना निमंत्रण के विवाह में न जाने की पति द्वारा चेतावनी

"अरे नये फैशनवालों की मत पूछो, ऐन मौकों पर बुलावा आता है। पांच बजे का मुहूरत है, दिन में कभी भी आ जावेगा।" राधा भाभी मन ही मन मुस्करा उठीं।

बुआ ने साड़ी में मांड लगाकर सुखा दिया। फिर एक नई थाली निकाली, अपनी जवानी के दिनों में बुना हुआ क्रोशिए का एक छोटा-सा मेज़पोश निकाला। थाली में साड़ी, सिन्दूरदानी, एक नारियल और थोड़े से बताशे सजाए, फिर जाकर राधा को दिखाया। संन्यासी महाराज सवेरे से इस आयोजन को देख रहे थे, और उन्होंने कल से लेकर आज तक कोई पच्चीस बार चेतावनी दे दी थी कि यदि कोई बुलाने न आये तो चली मत जाना, नहीं तो ठीक नहीं होगा। हर बार बुआ ने बड़े ही विश्वास के साथ कहा, "मुझे क्या बावली समझ रखा है जो बिना बुलाए ही चली जाऊंगी? अरे, वह पड़ोसवालों की नन्दा अपनी आंखों से बुलावे की लिस्ट में नाम देखकर आई है। और बुलावेंगे क्यों नहीं? शहरवालों को बुलावेंगे और समधियों को नहीं बुलावेंगे क्या?"

निमंत्रण की बेताबी से प्रतीक्षा

तीन बजे के करीब बुआ को अनमने भाव से छत पर इधर-उधर घूमते देख राधा भाभी ने आवाज़ लगाई, "गई नहीं बुआ?"

एकाएक चौंकते हुए बुआ ने पूछा, "कितने बज गये राधा? — क्या कहा, तीन? सरदी में तो दिन का पता ही नहीं लगता है। बजे तीन ही हैं और धूप सारी छत पर से ऐसे सिमट गई, मानो शाम हो गई हो।" फिर एकाएक जैसे ख्याल आया कि यह तो भाभी के प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ, तो ज़रा ठंडे स्वर में बोलीं, "मुहूरत तो पांच बजे का है, जाऊंगी तो चार तक जाऊंगी, अभी तो तीन ही बजे हैं।" बड़ी सावधानी से उन्होंने स्वर में लापरवाही का पुट दिया। बुआ छत पर से गली में नज़र फैलाए खड़ी थीं, उसके पीछे ही रस्सी पर धोती फैली हुई थी, जिसमें कलफ लगा था और अभ्रक छिड़का हुआ था। अभ्रक के बिखरे हुए कण रह-रहकर धूप में चमक जाते थे, ठीक वैसे ही जैसे किसी को गली में घुसते देख बुआ का चेहरा चमक उठता था!

सात बजे के धुंधलके में राधा ने ऊपर से देखा, तो छत की दीवार से सटी, गली की ओर मुंह किए एक छाया-मूर्ति दिखाई दी। उसका मन भर आया। बिना कुछ पूछे इतना ही कहा, "बुआ! सर्दी में खड़ी-खड़ी यहां क्या कर रही हो! आज खाना नहीं बनेगा क्या, सात तो बज गए?"

निमंत्रण न आने की हताशा

जैसे एकाएक नींद में से जागते हुए बुआ ने पूछा, "क्या कहा, सात बज गए?" फिर जैसे अपने से ही बोलते हुए पूछा, "पर सात कैसे बज सकते हैं, मुहूरत तो पांच बजे का था?" और फिर एकाएक ही सारी स्थिति को समझते हुए, स्वर को भरसक संयत बनाकर बोलीं, "और खाने का क्या है, अभी बना लूंगी। दो जनों का तो खाना है, क्या खाना और क्या पकाना!"

सोमा बुआ की व्यथा

फिर उन्होंने सूखी साड़ी को उतारा। नीचे जाकर अच्छी तरह उसकी तह की, धीरे-धीरे हाथों से चूड़ियां खोलीं, थाली में सजाया हुआ सारा सामान उठाया और सारी चीजें बड़े जतन से अपने एकमात्र संदूक में रख दीं।

और फिर बड़े ही बुझे हुए दिल से अंगीठी जलाने लगीं।

मांड: उबले हुए चावल का पानी

बोध प्रश्न

आपने कहानी को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा अब आप नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर कोष्ठकों में लिखिये।

1 बुआ के पति संन्यासी क्यों हो गये?
क) धार्मिक आस्था के कारण
ख) बेटे के दुःख में
ग) पत्नी के दुर्व्यवहार के कारण
घ) कामचोर होने के कारण [ ]

2 सोमा बुआ अपने पति का इंतजार क्यों नही करती थी?
क) उनका पति संन्यासी था।
ख) पति दुराचारी था।
ग) पति का स्नेहहीन व्यवहार उसको पसंद नही था।
घ) उसे पति से प्यार नही था। [ ]

3 सोमा बुआ के मृत बेटे का क्या नाम था?
क) किशोरीलाल
ख) हरखू
ग) भागीरथ
घ) नंदलाल [ ]

4 सोमा बुआ विवाह, मुंडन आदि में जाने को क्यों उत्सुक रहती थी?
क) बुआ को विवाह शादी में जाना प्रिय था।
ख) बुआ इसे अपना सामाजिक कर्तव्य समझती थी।
ग) बुआ नाते-रिश्तेदारों से बनाकर रखना चाहती थी।
घ) बुआ के अकेलेपन से भरे जीवन का यही सहारा था। [ ]

5 "अरे नये फैशन वाले की मत पूछो, ऐन मौकों पर बुलावा आता है, पाँच बजे का मुहूरत है, दिन में कभी भी आ जावेगा।" बुआ के इस कथन पर राधा भाभी क्यों मुस्कुरा उठी।
क) बुआ के भोले विश्वास को देखकर
ख) बुआ की व्यवहार कुशलता पर
ग) बुआ की मूर्खतापूर्ण बात सुनकर
घ) बुआ की चतुराई पर [ ]

10.3 कहानी का सार

आपने कहानी को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। आशा है आपको कहानी की कथा समझ में आ गई होगी। इस कहानी का सार भी आप आसानी से लिख सकते हैं। यह कहानी घटना प्रधान नहीं है। देखा जाय तो इसमें कोई घटना है ही नही। इस कहानी के केंद्र में एक पात्र है और उससे जुड़ी एक भावात्मक समस्या है। अगर आपने इसे पहचान लिया है तो कहानी के कथा चक्र को आप आसानी से समझ सकते हैं।

इस कहानी के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं जिसके द्वारा कहानी अपने को व्यक्त करती है।

- सोमा बुआ का अकेलापन
- इकलौते पुत्र की असामयिक मृत्यु
- पुत्र के गम में पति द्वारा गृह-त्याग
- सोमा बुआ की दिनचर्या
- किशोरीलाल के बेटे के मुंडन पर बिना बुलाए जाने पर पति की नाराजगी
- राधा भाभी के सामने सोमा बुआ द्वारा अपना पक्ष रखना
- सोमा बुआ के देवर के ससुराल में विवाह
- निमंत्रण की आशा
- विवाह में जाने की तैयारी
- विवाह में भेंट देने के लिए मृत बेटे की अंगूठी बेचना
- बिना निमंत्रण के विवाह में न जाने की पति द्वारा चेतावनी
- निमंत्रण की बेताबी से प्रतीक्षा
- निमंत्रण न आने की हताशा
- सोमा बुआ की व्यथा

आप इन बिंदुओं के द्वारा कहानी का सार लिख सकते हैं।

अभ्यास

1 सोमा बुआ के देवर के ससुराल में विवाह के निमंत्रण से संबंधित घटनाओं का सार संक्षेप लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

10.4 कहानी की संदर्भ सहित व्याख्या

'अकेली' कहानी का कथ्य सामाजिक भी है और वैयक्तिक भी। इस कहानी के माध्यम से मन्नू भंडारी ने मध्यवर्गीय भारतीय नारी की मानसिकता का चित्रण किया है। यह एक ऐसी नारी की कहानी है जो बदलते हुए जीवन मूल्यों के बीच अपनी पहचान खोती जा रही है। वह जीवन के अकेलेपन से मुक्त होकर उसे नया अर्थ देना चाहती है। लेकिन रिश्तों की बदलती अवधारणा के कारण वह उपेक्षित होती जा रही है। इससे उसके जीवन का अकेलापन और बढ़ता जा रहा है। सोमा बुआ के जीवन का यही अकेलापन इस कहानी का केंद्रीय भाव है। कहानी के कुछ अंशों की व्याख्या से आप कहानी के इस केंद्रीय भाव को समझ सकते है। आइए, कहानी के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करें।

उद्धरण : *"मैं तो इनसे कहती हूँ कि जब पल्ला पकड़ा है तो अंत समय में भी साथ ही रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम-करम ये ही लूटेंगे, सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी यहाँ इनके नाम को रोया करूं। उस पर से कहीं आऊँ-जाऊँ, वह भी इनसे बर्दाश्त नहीं होता।"*

हमने पिछली इकाइयों में 'संदर्भ' कैसे लिखा जाता है, इसकी विस्तृत चर्चा की थी। हम उसे यहाँ दोहराना नहीं चाहते। हमें आशा है आप आसानी से उपर्युक्त 'उद्धरण' का 'संदर्भ' बता सकते हैं। हमने कहा था कि 'उद्धरण' को कहानी के जिस भाग से उठाया गया है, वहाँ यह किस प्रसंग में आया है, उसका जिक्र करना होता है। आपने अगर कहानी को ध्यानपूर्वक पढ़ा है तो आप आसानी से पहचान लेंगे कि उपर्युक्त उद्धरण किस प्रसंग में आया है। हम नीचे आपको सहायता के लिए संकेत दे रहे हैं जिससे आप स्वयं संदर्भ लिख सकें।

संकेत : 1 किशोरीलाल के बेटे के मुंडन पर जाने पर पति की नाराजगी।
2 राधा भाभी के सामने सोमा बुआ द्वारा अपना दुखड़ा व्यक्त करना।

व्याख्या : उपर्युक्त उद्धरण में जो बात कही गयी है उसके मर्म को आप आसानी से समझ सकते हैं। आप उक्त अंश की व्याख्या करते हुए अगर कहानी में व्यक्त किये गये कुछ तथ्यों को ध्यान में रखें तो आपको व्याख्या करने में आसानी होगी।

- सोमा बुआ का इकलौता जवान बेटा मर चुका है।
- सोमा बुआ के पति संन्यासी-सा जीवन व्यतीत करते हैं और साल में ग्यारह महीने तीर्थ यात्रा पर रहते हैं।
- सोमा बुआ के पति जब घर रहते हैं तब भी वे अपनी पत्नी से प्रायः विमुख ही रहते हैं। उसके मन के दुख को नहीं समझते।
- सोमा बुआ अपने दुःख को भूलने के लिए पास-पड़ोसियों के यहाँ चली जाती हैं। कभी बुलाने पर, कई बार बिना बुलाए।
- पति को सोमा बुआ का इस तरह दूसरों के यहाँ पहुँच जाना अच्छा नहीं लगता और इस पर दोनों में कहा-सुनी हो जाती है।

सोमा बुआ का उपर्युक्त कथन इन्हीं तथ्यों की रोशनी में समझा जाना चाहिए। लेकिन उपर्युक्त कथन का एक महत्वपूर्ण अंश है, सोमा बुआ की अपने पति से अपेक्षाएँ। पुत्र की मृत्यु के बाद सोमा बुआ का अपने पति के अलावा और कोई नहीं है; जो सदमा बुआ को लगा है, वह पति के स्नेहिल स्वभाव से कम हो सकता था। निश्चय ही पुत्र की मृत्यु का जितना दुःख बुआ को है उतना ही उनके पति को भी है और ऐसे में दोनों एक दूसरे के दुःख को बाँट सकते हैं। सोमा बुआ अपने पति से जिस स्नेह और सहानुभूति की उम्मीद करती है, वह उसे नहीं मिलता। इसके विपरीत, पति महोदय उस सदमे का मुकाबला करने की बजाय जिम्मेदारियों से भाग खड़े होते हैं। इस तरह सोमा बुआ को वे अकेले छोड़ देते हैं। ऐसे दुःख के समय में सोमा बुआ का सहारा उसका वह छोटा संसार बनता है, जो उसके पास-पड़ोसियों और नाते-रिश्तेदारों से बना है। लेकिन यह संसार भी बदल रहा है। सोमा बुआ में वह व्यवहार कुशलता नहीं है जो इस बदलते संसार की प्रकृति को समझ सकें। सोमा बुआ के संस्कार जिस तरह के सामाजिक संबंधों से बने हैं, वह अब भी उसी से अपने व्यवहार को निश्चित करती है। इस दृष्टि से उसके पति अधिक व्यवहार कुशल हैं। लेकिन उनकी यह व्यवहार कुशलता सोमा बुआ से उसके इस छोटे से संसार को भी छीनने की कोशिश बन जाती है। इसीलिए वह अपने पति का विरोध करती है। सोमा बुआ की पीड़ा यह भी है कि उसके पति ने तो धर्म का सहारा लेकर अपने अकेलेपन का इलाज ढूँढ़ लिया, लेकिन वह क्या करे। और यहाँ वह एक प्रश्न रखती है, क्या पति के रूप में उनका फर्ज नहीं था कि जिस पत्नी का साथ निभाने का उन्होंने प्रण किया था, उसका साथ अंत तक निभाये? संन्यासी बनकर वे तो त्यागी और तपस्वी बन गये और पूज्य हो गये, लेकिन इससे स्वयं उनकी पत्नी को क्या मिला, सिवाय आंसुओं और अकेलेपन के।

हमारा विचार है कि अगर आप उपर्युक्त बातों की रोशनी में उद्धरण को पढ़ें तो आपको व्याख्या के सारे बिंदु मिल जाएंगे और आप स्वयं अपने शब्दों में व्याख्या लिख सकेंगे।

विशेष : 'विशेष' के अंतर्गत जैसा कि हम पहले की इकाइयों में बता चुके है, भाषा और शैली संबंधी कोई टिप्पणी तथा 'उद्धरण' में कोई उल्लेखनीय बात हो तो उसे लिखा जाता है। इस दृष्टि से इस 'उद्धरण' पर अगर आप कोई टिप्पणी करना चाहें तो आप को इकाई में आगे 'संरचना शिल्प' के अध्ययन से सहायता मिलेगी यहाँ हम आपकी सहायता के लिए कुछ संकेत दे रहें हैं :

मुहावरे का उपयोग : पल्ला पकड़ना
तद्भव शब्दों का प्रयोग : धरम-करम, जस
बोलचाल की भाषा : छोटे-छोटे वाक्य और उपवाक्य

अभ्यास

2 निम्नलिखित अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

i) "मैं तो अपने मन की बात जानती हूँ, कोई प्रेम नहीं रखे तो दस बुलावे पर नहीं जाऊँ और प्रेम रखे तो बिना बुलाए भी सर के बल जाऊँ। मेरा अपना हरखू होता और उसके घर का काम होता तो क्या मैं बुलावे के भरोसे पर बैठी रहती? मेरे लिए जैसा हरखू वैसा किशोरीलाल। आज हरखू नहीं है इसी से दूसरे को देख-देखकर मन भरमाती रहती हूँ।"

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

ii) यों हर साल एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते थे, पर कभी उन्होंने पति की प्रतीक्षा नहीं की, उनकी राह में आँखें नहीं बिछाई। जब तक पति रहते उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता, क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोजमर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती स्वच्छन्द धारा को कुंठित कर देता।

....
....
....
....
....
....
....
....

....

....

....

....

....

....

10.5 कथावस्तु

इससे पहले की इकाइयों में हमने जिन चार कहानियों का अध्ययन किया है, उनसे यह कहानी कई अर्थों में भिन्न है। 'अकेली' कहानी पहले की कहानियों से छोटी है। इसमें उतनी भी घटनाएँ नहीं है, जितनी 'आकाश-दीप' में थी। यह कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' की तरह न तो पूर्णतः सामाजिक है और न ही 'आकाश-दीप' की तरह भावात्मक। इस कहानी का सामाजिक संदर्भ गौण नहीं है। न ही सिर्फ सोमा बुआ की वैयक्तिक पीड़ा कहानी का मुख्य कथ्य है। यद्यपि सोमा बुआ का निजी वैशिष्ट्य कहानी के कथ्य को अधिक विश्वसनीय बनाता है।

कहानी आकार में कुछ छोटी होते हुए भी अपने में पूर्ण है। कहानी का आरंभ, विकास और परिणति की स्थितियाँ कथ्य को अधिक समझने के लिए हैं। कहानीकार रचना करते हुए कहानी के कथ्य को टुकड़ों में नहीं देखता। वह तो कहानी की कल्पना अपनी पूर्णता में ही करता है। हमें इसी पूर्णता को समझने के लिए उसके कथ्य के विकासक्रम को खंडों में विभाजित करके देखना होता है।

कहानी का आरंभ : इस कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण करने के लिये आप कहानी का एक बार पुनः वाचन कीजिए। कहानी की परिणति पर अगर आप गौर करें तो आपको कथावस्तु का विकास क्रम स्पष्ट हो जाएगा। कहानी का अंत होता है—सोमा बुआ को विवाह में जाने का निमंत्रण न आना। मुहूर्त का समय निकल जाना और बुआ का हताश हो जाना। इस से कई प्रश्न निकलते हैं।

सोमा बुआ विवाह में क्यों जाना चाहती थी? किस का विवाह था? निमंत्रण न आने से वह हताश क्यों हुई इन प्रश्नों का उत्तर हमें कहानी में मिल जाता है। सोमा बुआ जिस संबंधी के यहाँ विवाह में जाने के लिए उत्सुक हैं, वे रिश्ते में बहुत दूर के हैं। इसे रिश्ता कहना ही शायद आज असंभव है। इतने दूर के रिश्ते में विवाह पर जाने की उत्सुकता सोमा बुआ में क्यों है, यही कहानी का कथ्य है। कहानी का आरंभ इसी को स्पष्ट करता है।

कहानी के आरंभ में जो कुछ लिखा गया है, उससे कहानी की परिणति का आधार तैयार होता है। पहला तथ्य है—सोमा बुआ का जीवन। सोमा बुआ का पुत्र मर चुका है और पति संन्यासी है। इस संसार में वह निपट अकेली है। इस अकेलेपन में उसके जीवन का सहारा है, पास-पड़ोस, जिनके साथ सोमा बुआ ने अपने को जोड़ लिया है।

"इस स्थिति में बुआ को अपनी जिंदगी पास-पड़ोस वालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी। किसी के घर मुंडन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जाती और फिर छाती फाड़कर काम करती, मानो वे दूसरों के घर में नहीं, अपने ही घर में काम कर रही हो।"

लेकिन उनके जीवन के अकेलेपन को कम करने वाला यह संबल उनके पति के आने पर हट जाता। क्योंकि पति बिना बुलाए किसी के यहाँ जाने की मनाही करते हैं। अभी कल ही किशोरीलाल के बेटे के मुंडन पर बिन बुलाए पहुँच जाने पर सोमा बुआ की अपने पति से कहा-सुनी हो गयी थी। कहानी के यहाँ तक के अंश को कथ्य की भूमिका कहा जा सकता है। इसके बाद कहानी में जो कुछ घटित होता है उसको मनोवैज्ञानिक और सामाजिक अर्थ इसी से प्राप्त होता है।

कहानी का विकास : उपर्युक्त पृष्ठभूमि के बाद कहानी में एक नवीन घटना का आरंभ होता है। सोमा बुआ को पास-पड़ोस से मालूम पड़ता है कि उसके "देवरजी के ससुराल वालों की किसी लड़की का संबंध भागीरथजी के यहाँ हुआ है। वे सब लोग यहीं आकर ब्याह कर रहे हैं।" अपनी प्रकृति के अनुकूल बुआ को आशा है कि इस ब्याह में उन्हें भी निमंत्रित किया जाएगा। यद्यपि "देवरजी को मरे पच्चीस साल हो गए" और "उसके बाद से तो कोई संबंध ही नहीं रहा।" लेकिन उसे आशा है "है तो समधी ही" इसीलिए उन्हें "बुलाए बिना नहीं मानेंगे।" उसकी यह आशा तब और मजबूत हो जाती है जब पड़ोस की एक महिला बुआ को बताती है कि उसने स्वयं "लिस्ट" में नाम देखा है। बुआ इस बात पर विश्वास कर लेती है और वह जाने की तैयारी में पूरे उत्साह से जुट जाती है। भेंट देने के लिए पैसे न होने पर वह अपने मृत पुत्र की एक मात्र निशानी अंगूठी को बेच देती है। कहानी का कथ्य इस बिंदु पर अपने उत्कर्ष पर पहुँच जाता है। शादी का दिन आ जाता है, सोमा बुआ की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं। उनके पति ने कई बार चेतावनी दे डाली है कि बिन बुलाए नहीं जाना है। इसलिए वह निमंत्रण का इंतजार कर रही है। उसे सूचना मिल चुकी है कि मुहूर्त शाम पाँच बजे का है। निमंत्रण का इंतजार और बढ़ती बेचैनी, छत पर खड़ी होकर गली में लगातार देखते रहना। क्या सोमा बुआ विवाह में जा सकेगी? अगर निमंत्रण नहीं आया तो सोमा बुआ क्या करेगी? यहाँ पाठक सोमा बुआ की बेचैनी और व्यथा से एकाकार हो जाता है। पति की चेतावनी

से बंधे पैर और अंतिम क्षणों तक निमंत्रण की आशा के बीच झूलती सोमा बुआ का अकेलापन कहानी को उत्कर्षता पर पहुँचा देता है।

कहानी की परिणति : इंतजार करते-करते सात बज जाते है। सोमा बुआ अब भी "छत की दीवार से सटी" "गली की ओर मुँह किए" निमंत्रण की आशा में खड़ी है। राधा भाभी जब बुआ को इस तरह देखती है तो उसका भी मन भर आता है। वह समझ जाती है कि बुआ निमंत्रण नहीं आ पाने के कारण नहीं जा सकी है। बुआ के अहम् को चोट पहुँचाए बिना वह उनको बताती है कि सात बज गये हैं, क्या आज खाना नही बनेगा? बुआ अचानक कह उठती है "क्या कहा सात बज गए?" और फिर आप ही बोलती है कि "पर सात कैसे बज सकते हैं, मुहूरत तो पाँच बजे का था।" बुआ का यह कथन उनके मन की आशा को ही व्यक्त करता है, लेकिन "सात बजना" जैसे आशा के सारे सूत्रों को छिन्न-भिन्न कर देता है। और उसके बाद नैराश्य की इस चरम स्थिति को स्वीकारते हुए वह पुनः रोजमर्रा के घरेलू कामों में जुट जाती है। "और फिर बड़े ही बुझे हुए दिल से अंगीठी जलाने लगी।" कहानी यहीं समाप्त हो जाती है।

कहानी की यह परिणति व्यवहारिक अर्थों में अत्यंत साधारण है। प्रकट रूप में ऐसा कुछ भी नहीं होता जिसे नाटकीय घटना कहा जा सके। वैसे तो पूरी कहानी में भी कोई नाटकीय घटना घटित नहीं होती, लेकिन कहानी में ऐसी स्थितियाँ है जिनमें नाटकीयता है और जो कहानी के अर्थ को निश्चित परिणति तक पहुँचाने में मदद करती हैं। इन स्थितियों में प्रमुख है—सोमा बुआ की विवाह में जाने की उत्सुकता। इस स्थिति की परिणति ही सोमा बुआ के अकेलेपन को ऐसे बिंदु पर पहुँचाती है जहाँ अकेलेपन के एहसास को पाठक पूरी शिद्दत से महसूस करता है और इसे ही महसूस कराना कहानी का उद्देश्य है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर रिक्त स्थान में लिखिये।

6 क) सोमा बुआ का अकेलापन उनके जीवन की किन दो घटनाओं का परिणाम है?

....

....

ख) इस अकेलेपन से बचने के लिए सोमा बुआ कौन-सा मार्ग अपनाती है?

....

....

अभ्यास

3 "और फिर बड़े ही बुझे दिल से अंगीठी जलाने लगी।" कहानी की इस अंतिम पंक्ति में व्यक्त सोमा बुआ के मनोभाव की व्याख्या चार पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

4 कहानी के इस अंत का निहितार्थ क्या है? चार पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

10.6 चरित्र चित्रण

'अकेली' कहानी का केंद्रीय चरित्र सोमा बुआ है। सोमा बुआ के अलावा इस कहानी में दो चरित्र है—सोमा बुआ के संन्यासी पति और राधा भाभी। राधा भाभी ऐसा सहायक चरित्र है जो कहानी को आगे बढ़ाने और सोमा बुआ के चरित्र को उजागर करने में मदद तो करता है, लेकिन जिसके अपने व्यक्तित्व का कहानी के विकास पर कोई प्रभाव नही पड़ता। इसीलिए इस चरित्र के निजी पहलू कहानी में उजागर नहीं हुए है, सोमा बुआ के संन्यासी पति के चरित्र के कुछ पहलू अवश्य कहानी में उजागर हुए हैं, लेकिन ये पहलू भी सोमा बुआ के ही व्यक्तित्व के हिस्से के तौर पर आए हैं क्योंकि कहानी की विषय वस्तु

सोमा बुआ के पति, पुत्र की मृत्यु से आहत होकर संन्यासी हो गये हैं। साल के ग्यारह महीने वे तीर्थ यात्रा पर रहते हैं और एक महीना घर पर। पुत्र की मृत्यु से सोमा बुआ भी आहत हुई हैं। ऐसे समय पति की निकटता और उनका स्नेह सोमा बुआ का सबसे बड़ा संबल बन सकता था, लेकिन पति महोदय इस संकट के समय सोमा बुआ को अकेला छोड़ देते हैं। इस व्यवहार से स्पष्ट है कि सोमा बुआ के पति पलायनवादी हैं।

यद्यपि संन्यासी महोदय ने घर त्याग दिया है लेकिन जब एक महीने के लिए घर आते हैं तब सोमा बुआ के क्रिया-कलापों पर अंकुश लगा देते हैं। सोमा बुआ और उनके पति के बीच के संबंधों का रूप सामंती है। पति में अधिकार भावना ही अधिक है इसीलिए वे सुख-दुःख में अपनी पत्नी को भागीदार नहीं बनाते। कहानी से स्पष्ट है कि व्यवहारिक मामलों में सोमा बुआ की तुलना में उनके पति अधिक समझदार हैं। लेकिन यह व्यवहारिकता उनके व्यक्तित्व का कोई सकारात्मक पहलू नहीं है। क्योंकि इससे यह भी उजागर होता है कि संन्यासी महाराज सोमा बुआ की भावनाओं को समझने को तैयार नहीं है।

सोमा बुआ का चरित्र कहानी के केंद्र में है। इस अर्थ में यह कहानी 'उसने कहा था' और 'आकाश-दीप' की तरह की है। सोमा बुआ के चरित्र को समझने और उसकी चारित्रिक विशेषताओं को पहचानने से कहानी के प्रतिपाद्य को भी समझा जा सकता है।

कहानी पढ़ते हुए आपने अनुभव किया होगा कि सोमा बुआ के चरित्र में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे असाधारण कहा जा सके। उसके जीवन में ऐसा कुछ भी घटित नही होता जिसे उल्लेखनीय कहा जा सके। उसका रोजमर्रा का जीवन भी अत्यंत सामान्य-सा है। फिर भी सोमा बुआ का चरित्र असाधारण हो जाता है या सोमा बुआ के जीवन पर आधारित कहानी असाधारण हो जाती है तो हमें इस असाधारणता की तलाश सोमा बुआ के जीवन में ही करनी होगी।

"सोमा बुआ का जवान बेटा क्या जाता रहा, उनकी अपनी जवानी चली गई। पति को पुत्र वियोग का ऐसा सदमा लगा कि वे पति-पत्नी घर-बार तजकर तीरथ-वासी हुए और परिवार में कोई ऐसा सदस्य था नहीं जो उनके एकाकीपन को दूर करता।"

सोमा बुआ अकेली है। उनकी एकमात्र संतान की मृत्यु हो चुकी है। उनका अकेलापन ही उनके जीवन की मुख्य समस्या है। पुत्र की मृत्यु के बाद पति ही उनके जीवन का एकमात्र सहारा है। लेकिन वही सहारा उन्हें असहाय छोड़ देता है। ऐसे में सोमा बुआ क्या करे?

एक परंपरागत समाज में जीवनयापन करने वाली स्त्री जिसके सारे संस्कार उसी समाज की मान्यताओं से बने हैं, ऐसी स्थिति में जो रास्ता चुन सकती थी, वही सोमा बुआ भी चुनती है।

"इस स्थिति में बुआ की अपनी जिंदगी पास-पड़ोस वालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी। किसी के घर मुंडन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जाती और फिर छाती फाड़कर काम करती, मानो वे दूसरों के घर में नहीं, अपनी ही घर में काम कर रही हो।"

अपने को पास-पड़ोस के जीवन में पूरी तरह खपा देना जहाँ बुआ के जीवन की अपनी जरूरत थी, वहीं वह उनके सामाजिक संस्कारों का प्रतिबिंब भी था। सोमा बुआ के मन में सामाजिक और पारिवारिक जीवन का जो प्रतिरूप था, वह स्वयं समाज में धीरे-धीरे बदल रहा था। इसे उनके संन्यासी पति महसूस कर रहे थे। लेकिन वे स्वयं उन्हें महसूस करने में असमर्थ थीं। सोमा बुआ यह मानती थी कि ये पास-पड़ोस मेरा अपना है। उसके सुख-दुःख में शामिल होना उनका कर्तव्य है पड़ोसियों के प्रति इस तरह के भाव एक तरह की आत्म प्रवंचना ही थी क्योंकि संबंधों का वैसा प्रत्युत्तर पास-पड़ोस से नहीं मिलता था। इसी कारण नाते-रिश्तेदारों और पास-पड़ोसियों की उनकी परिकल्पना और वास्तविकता के बीच एक अंतराल उत्पन्न होता जा रहा था। शायद वे इनको महसूस भी नहीं कर पातीं यदि उनके संन्यासी पति यदा-कदा आकर उनके जीवन की सहज गति में बाधा उत्पन्न न करते। किशोरीलाल के यहाँ बिना आमंत्रित चले जाने में बुआ की नजर में कोई दोष नहीं था।

"और फिर कल किशोरीलाल के यहां से बुलावा नहीं आया। अरे, मैं तो कहूँ कि घर वालों का कैसा बुलावा? वे लोग तो मुझे अपनी माँ से कम नही समझते, नही तो कौन भला यों भट्टी और भंडार-घर सौंप दें?"

यहाँ सोमा बुआ का भोलापन तो झलकता ही है, संबंधों की उनकी अवधारणा भी प्रकट होती है जो निश्चय ही बदलते सामाजिक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में अव्यवहारिक ही कही जाएगी। शायद बुआ इसे महसूस करती, यदि उनके जीवन में वह खालीपन नहीं होता, जिसे उन्हें अकेले ही भोगना पड़ता है। इसीलिए पति द्वारा आने-जाने पर लगाया जाने वाला प्रतिबंध उन्हें ज्यादा खलता है।

सोमा बुआ का देवर के ससुराल में होने वाले विवाह पर जाने की उत्सुकता एक तरह से उनके जीवन की त्रासदी को ही अत्यंत वेदना के साथ व्यक्त करती है। संबंधों की क्षीण डोरी को पकड़ना वस्तुतः सोमा बुआ द्वारा जीवन के एकाकीपन में संबंधों की तलाश ही है। सवाल यह नही है कि संबंधों का यह रूप कितना वास्तविक है, सवाल यह है कि सोमा बुआ के जीवन में उसकी जरूरत कितनी वास्तविक है। इसीलिए बुआ द्वारा निमंत्रण का इंतजार और आखिरी क्षणों तक गली में टकटकी लगाए देखना, कितना ही अव्यवहारिक क्यों न लगे, उसके मानवीय पहलू को महसूस करने से पाठक बच नहीं पाता। इसीलिए जब निमंत्रण नही आता और बुआ निराश होकर भेंट का सारा सामान वापस संदूक में रख देती है तो सिर्फ बुआ ही आहत नहीं होती उनके साथ पाठक भी आहत होता है। इसीलिए बुआ का अकेलापन जो उनके चरित्र की निजता को व्यक्त करता है, अपने सामाजिक संदर्भों में रिश्तों के प्रति बदलते हुए दृष्टिकोण को भी व्यक्त करता है जहाँ सोमा बुआ जैसे चरित्र अपने को न बदल पाने तथा संबंधों की अपनी जरूरत से प्रेरित होकर यथार्थ को स्वीकार न करने के कारण लगातार उपेक्षित और अकेले होते जाते हैं।

अभ्यास

5 i) सोमा बुआ के चरित्र को साधारण कहने का अभिप्राय नीचे दी गयी चार पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

ii) सोमा बुआ के पति के व्यवहार की समीक्षा कीजिए। (पाँच पंक्तियों में)

....

....

....

....

....

iii) अंगूठी बेचने के निर्णय में सोमा बुआ के किस द्वंद्व की अभिव्यक्ति हुई है? पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

10.7 परिवेश

'अकेली' कहानी का परिवेश कहानी में बहुत सांकेतिक रूप में ही चित्रित हुआ है। कहानी पढ़ने पर आप इस परिवेश की विशिष्टता को आसानी से पहचान सकते हैं। हम नीचे कहानी के कुछ अंश दे रहे हैं, जिसके आधार पर कहानी में 'परिवेश' की पहचान की जा सकती है।

- *"बुआ आंगन में बैठी धूप खा रही है पास रखी कटोरी से तेल लेकर हाथ में मल रही हैं, और बड़बड़ा रही है। .... तभी हाथ में एक फटी साड़ी और पापड़ लेकर ऊपर से राधा भाभी उतरीं।"* (मध्यवर्गीय घरेलू स्त्रियों की दिनचर्या)
- *"कल चौक वाले किशोरीलाल के बेटे का मुंडन था, सारी बिरादरी का न्यौता था। मैं तो जानती थी कि यह पैसे का गरूर है कि मुंडन पर भी सारी बिरादरी को न्यौता है।"* (मुंडन संस्कार-रूढ़िवादी समाज)
- *"गीतवाली औरतें बन्ना-बन्नी गा रहीं थीं, मेरा तो हंसते-हंसते पेट फूल गया। भट्टी पर देखो तो अजब तमाशा-समोसे कच्चे ही उतार दिए गए और इतने बना दिए कि दो बार खिला दो, और गुलाब जामुन इतने कम कि एक पंगत में भी पूरे न पड़े।"* (परंपरागत समाज के रीति-रिवाज)
- *"इन्हें तो नाते-रिश्तेदारों से कुछ लेना-देना नहीं, पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है।"* (संबंधों की परंपरागत परिकल्पना)
- *"दो-तीन कपड़ों की गठरियाँ हटाकर एक छोटा-सा बक्स निकाला। उसका ताला खोला। इधर-उधर करके एक छोटी-सी डिबिया निकाली। बड़े जतन से उसे खोला-उसमें सात रुपये और कुछ रेजगारी पड़ी थी और एक अंगूठी। बुआ का अनुमान था कि रुपये कुछ ज्यादा होंगे पर सात रुपये ही निकले तो सोच में पड़ ई।"* (बुआ की आर्थिक स्थिति)
- *"रुपये तो नहीं निकले बहू। आएं भी कहाँ से, मेरे कौन कमाने वाला बैठा है? उस कोठी का किराया आता है, उसमें दो समय की रोटी निकल जाती है, जैसे-तैसे।"* (बुआ की आर्थिक स्थिति)

सोमा बुआ के पारिवारिक और सामाजिक परिवेश को समझने के लिए उपर्युक्त अंश पर्याप्त है।

1 सोमा बुआ मध्यवर्गीय परिवार की है, लेकिन आय का कोई ठोस स्रोत न होने के कारण केवल न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सकती है।

2 सोमा बुआ की धारणाएँ मध्यवर्गीय है। परिवार और समाज की उनकी परिकल्पना परंपरागत है।

3 सोमा बुआ का समाज मध्यवर्गीय और परंपरावादी है। जीवन पद्धति और सोच दोनों स्तरों पर अभी आधुनिक नहीं हुआ है। यद्यपि रिश्तों के स्तर पर परिवर्तन दिखायी देने लगा है।

बोध प्रश्न

7 ऊपर दिये गये अंश 2 एवं 3 में कहानी के परिवेश के किस पहलू पर प्रकाश पड़ता है?

क) मध्यवर्ग की परंपरावादी जीवन पद्धति।
ख) पैसे का गरूर।
ग) विवाह पर फिजूलखर्ची
घ) उच्च वर्ग का अहंकार [ ]

8 अंश 4 में सोमा बुआ की किस मानसिकता की अभिव्यक्ति हुई है।

क) भीरूता
ख) सामाजिकता
ग) अव्यवहारिकता
घ) सरलता [ ]

9 बुआ की आर्थिक स्थिति के आधार पर उसे किस वर्ग की कहा जा सकता है।

क) मध्यवर्ग
ख) उच्च वर्ग
ग) उच्च मध्यवर्ग [ ]

10.8 संरचना शिल्प

जैसा कि पहले की इकाइयों से स्पष्ट है संरचना शिल्प के अंतर्गत हम शैली, भाषा और संवाद की चर्चा करते हैं।

शैली : 'अकेली' कहानी की शैली पर चर्चा करने से पूर्व आप पहले पढ़ी हुई कहानियों की शैलीगत विशेषताओं का स्मरण कीजिए। क्या आपको लगता है कि इसी पाठ्यक्रम में पढ़ी हुई कोई कहानी शैलीगत रूप में 'अकेली' जैसी है। मोटे तौर पर, 'परदा' कहानी की शैली 'अकेली' से समानता रखती है। "अकेली' में भी पहले सोमा बुआ के जीवन का परिचय दिया गया है और बाद में कहानी का मुख्य घटनाचक्र आरंभ होता है। 'अकेली' कहानी में मन्नू भंडारी ने सोमा बुआ के जीवन की केंद्रीय समस्या को पहले ही उजागर कर दिया है। जबकि 'परदा' कहानी में पीरबख्श के जीवन की विडंबना कहानी में धीरे-धीरे खुलती है। 'अकेली' कहानी में सोमा बुआ का अकेलापन यद्यपि आरंभ से ही स्पष्ट है लेकिन "विवाह" की अंतिम घटना उस अकेलेपन को पाठक की संवेदना के साथ एकाकार कर देती है। यहाँ 'परदा' की तरह नाटकीयता नहीं है। "निमंत्रण का न आना" बहुत कुछ पहले से तय है लेकिन निमंत्रण का इंतजार करती बुआ जिस तरह अपने चारों ओर के परिवेश से कटती हुई, शाम के धुंधलके में अपने अकेलेपन के साथ डूबती चली जाती है, वह एक नया ही निखार कहानी को देता है। इस अर्थ में कहानी की शैली ऊपरी तौर पर वर्णनात्मक-सी लगने पर भी उसमें प्रस्तुति की आत्मीयता और भावात्मकता सहज ही ध्यान आकृष्ट करती है। कहानी के केंद्र में कोई घटना नहीं है। केन्द्र में है—चरित्र और चरित्र भी सहजता, और साधारणता लिए हुए है। लेकिन अपनी साधारणता में ऐसी व्यापक अनुभूति छिपाये हुए है कि कहानी को शैली की दृष्टि से चरित्र प्रधान कहा जा सकता है।

भाषा : मन्नू भंडारी 'नयी कहानी' दौर की कथाकार हैं। इस दौर में कहानी की भाषा में गुणात्मक परिवर्तन आया। नयी कहानी की भाषा में प्रेमचन्द और प्रसाद दोनों की परंपराओं के सकारात्मक पक्ष मौजूद थे। मन्नू भंडारी की भाषा भी नयी कहानी की भाषागत विशेषताओं से युक्त है, लेकिन उसमें अपनी विशिष्टता भी है। नयी कहानी की भाषा अपनी मूल प्रकृति में बोलचाल की ही भाषा है। लेकिन परिवेश के अनुसार उसमें परिवर्तन आया है। शहर, कस्बे या ग्रामीण अंचल के अनुसार उसकी शब्दावली, वाक्य विन्यास और मुहावरे तय हुए हैं।

मन्नू भंडारी की कहानियों में प्रायः कस्बों और शहरों की जिंदगी के चित्र प्रस्तुत हुए हैं। इसीलिए उनकी कहानियों की भाषा में शहरी भाषा के अनुकूल सहजता और स्वाभाविकता व्यक्त हुई है। यह कहानी कस्बे के मध्यवर्गीय जीवन से संबद्ध है इसीलिए इस की भाषा भी उसी के अनुकूल है। उसके मुहावरे शब्द-चयन उसी जीवन से तय हुए हैं।

"कल चौक वाले किशोरीलाल के बेटे का मुंडन था, सारी *बिरादरी* का न्यौता था।"
"गीत वाली औरतें मुंडन पर *बन्ना-बन्नी* गा रही थीं।"
"बुआ पहुँच जाती और *छाती फाड़कर* काम करती।"
"तुम न होती तो आज *भद्द उड़ जाती*।"
"जब *पल्ला पकड़ा* है तो अंत समय में भी साथ ही रखो।"

उपर्युक्त अंशों के अवलोकन से स्पष्ट है कि इस कहानी की भाषा में कस्बाई जीवन की रंगत साफ है। इस क्षेत्र के लोगों में मध्यवर्गीय जीवन की जो मान्यताएँ होती हैं वही कहानी में व्यक्त हुई हैं।

मन्नू भंडारी की कहानी की दूसरी विशेषता है आत्मीयता। वे कहानी कहते हुए पात्रों और स्थितियों का ऐसा आत्मीय चित्र खड़ा करती हैं कि कहानी कहानी न रहकर जीवन का सच्चा प्रतिबिंब बन जाती है।

> *"उनकी नजर अंगूठी पर गई। यह उनके मृत पुत्र की एकमात्र निशानी उनके पास रह गई थी। बड़े-बड़े आर्थिक संकटों के समय भी वे उस अंगूठी का मोह नहीं छोड़ सकी थी। आज भी एक बार उसे उठाते समय उनका दिल धड़क गया, फिर भी उन्होंने पाँच रुपये और वह अंगूठी आँचल से बांध ली। बक्स को बंद किया और ऊपर को चली। पर इस बार उनके मन का उत्साह कुछ ठंडा पड़ गया था और पैरों की गति शिथिल।"*

उपर्युक्त अंश में आप देखेंगे कि लेखिका ने अंगूठी के प्रति सोमा बुआ की भावना और शादी में भेंट के लिए उसके इस्तेमाल में झिझक को प्रस्तुत किया है। लेकिन इस प्रस्तुति में सोमा बुआ की हृदयगत भावनाओं को लेखिका ने जितनी गहराई से समझा है, उतनी ही भाषिक कौशल से चित्रित भी किया है। यह मन्नू भंडारी की भाषा का ही सौन्दर्य है कि हम सोमा बुआ की भावनाओं को पूरी तरह से आत्मसात् कर लेते हैं।

इस कहानी की भाषा की तीसरी विशेषता है, भाषा का सहज प्रवाह। कहानी की गति के साथ भाषा सहज रूप में चलती है वह उसके साथ पूरी एकमेक नजर आती है। इसके लिए छोटे वाक्य, तद्भव और देशज शब्द बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले मुहावरे, मध्यवर्गीय महिलाओं की भाषा का अपना खास रंग, सभी का लेखिका ने ध्यान रखा है।

मन्नू भंडारी की कहानी के आरंभ में ही हम देख सकते हैं कि उन्होंने शब्दों का अत्यंत कुशलतापूर्वक उपयोग किया है जैसे पहले के तीन वाक्य देखें।

सोमा बुआ *बुढ़िया हैं*।
सोमा बुआ *परित्यक्ता हैं*।
सोमा बुआ *अकेली हैं*।

यहाँ "बुढ़िया" "परित्यक्ता" और "अकेली" जैसे शब्दों का प्रयोग सोमा बुआ के संदर्भ में बहुत ही अर्थपूर्ण ढंग से किया है। बुढ़िया शब्द केवल सोमा बुआ की आयु का ही बोध नही कराता वरन् उनके संस्कारों और मानसिक जरूरतों को भी संकेतित करता है। सोमा बुआ परित्यक्ता नही है क्योंकि उनके पति ने उन्हें पूरी तरह से त्यागा नहीं है, किन्तु सोमा बुआ के लिए उसके पति का होना न होना बराबर है क्योंकि सोमा बुआ को पति से जो स्नेह और सहारा मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। इसीलिए सोमा बुआ परित्यक्ता है। पुत्र की मृत्यु, पति द्वारा परित्यक्त और समाज द्वारा उपेक्षित सोमा बुआ "अकेली" है, मानसिक स्तर पर उसका कोई नहीं है। ऐसा कोई भी नहीं, जिसके साथ वह सुख-दुःख की बातें कर सकें, जिन्हें वह अपना समझकर उनके लिए जी सकें और इसी अर्थ में वह "अकेली" है या कहना चाहिए अकेली कर दी गयी है।

इस कहानी में शब्दों और वाक्यों में निहित भाषिक क्षमता को अब आप स्वयं विश्लेषित कर सकते हैं।

संवाद : इस कहानी का मुख्य कलेवर सोमा बुआ और राधा की बातचीत से सामने आता है। राधा के साथ सोमा बुआ की बातचीत कहानी को आगे बढ़ाने में सहायक होती है। मुख्य संवाद सोमा बुआ के ही हैं। राधा भाभी तो केवल सोमा बुआ की बातों को सामने लाने का माध्यम है। सोमा बुआ के संवाद कहानी के प्राण कहे जा सकते हैं। जिस परिवेश और मानसिक संस्कार से उसकी भाषा निर्मित हुई है, वैसी ही भाषा सोमा बुआ की है।

"मैं तो कहती हूँ कि जब पल्ला पकड़ा है तो अंत समय में भी साथ ही रखो, सो तो इनसे होता नही। सारा धरम-करम ये ही लूटेंगे, सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी यहाँ इनके नाम को रोया करूँ। उस पर से कहीं आऊँ-जाऊँ, वह भी इनसे बर्दाश्त नही होता।"

उपर्युक्त संवाद में हम पाते है कि सोमा बुआ की चारित्रिक विशिष्टता उसमें पूरी तरह व्यक्त होती है। भाषा में उनकी अपनी शिक्षा-दीक्षा और संस्कार भी प्रकट हुए हैं। उनके जीवन की विडंबना भी। लेकिन भाषा का जो प्रवाह और स्वाभाविकता है, उससे लगता है जैसे यह कहानी का नही, यथार्थवादी नाटक का संवाद हो।

मन्नू भंडारी इस बात का पूरा ख्याल रखती हैं कि जो बात पात्र के मुख से कहलाई जा रही है वह उसके अनुकूल भी है या नहीं। दूसरे, जिस भाषा में वह पात्र बोल रहा है, वह उसके लिए स्वाभाविक है या नही। तीसरे, बोलते हुए उसकी जो मनःस्थिति है, क्या वह भी संवाद में व्यक्त हो रही है, इन तीनों दृष्टियों से इस कहानी के संवाद श्रेष्ठ और यथार्थपरक हैं।

बोध प्रश्न

10 'अकेली' कहानी की दो शैलीगत विशिष्टताएँ बताइए और उनके एक-एक उदाहरण कहानी में से दीजिए।

क) पहली विशेषता : ....

उदाहरण :

....

....

....

I) दूसरी विशेषता : ....

उदाहरण :

....

....

....

....

....

....

1 'अकेली' कहानी की भाषागत तीन विशेषताएँ बताइए।

क) ....

ख) ....

ग) ....

2 कहानी के संवादों की कोई दो विशेषताएँ बताइए।

क) ....

ख) ....

....

....

10.9 मूल्यांकन

आपने कहानी का वाचन और विश्लेषण दोनों का अध्ययन किया है। आप इसके आधार पर अब आसानी से कहानी का मूल्यांकन कर सकते है। 'मूल्यांकन' के अंतर्गत हम कहानी का प्रतिपाद्य और रचनाकार के वैशिष्ट्य की चर्चा करते हैं। साथ ही, शीर्षक की उपयुक्तता पर भी विचार किया जाता है।

सबसे पहले कहानी के प्रतिपाद्य पर विचार करें। प्रतिपाद्य का अर्थ है कहानी के द्वारा लेखक क्या कहना चाहता है। इसको जानने के लिए ही कहानी का विश्लेषण किया जाता है।

सोमा बुआ अकेली है। उसका एकमात्र पुत्र मर चुका है। इस सदमे के कारण पति भी संन्यासी हो गये हैं और साल के ग्यारह महीने तीर्थयात्रा पर रहते हैं। इसलिए बुआ को अकेले ही जीवन यापन करना पड रहा है। ऐसे में उनका सहारा पास-पड़ौसी हैं जिनके यहाँ विभिन्न अवसरों पर शामिल होकर वे अपने अकेलेपन को बाँटती हैं। पिछले बीस साल से वे इसी तरह जीवन के एकाकीपन को दूर करती हैं। लेकिन जब उनके पति आ जाते हैं तो उनके जीवन-प्रवाह में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

सोमा बुआ के पति उनके हृदय की पीड़ा को नहीं समझ पाते। संभवतः यह पति-पत्नी के सामंती संबंधों का परिणाम है, जिसके कारण पति अपनी पत्नी से प्रेम और आत्मीयता का संबंध रखने की बजाए अधिकार और आदेश का संबंध रखता है। इसी का परिणाम है कि सोमा बुआ पति के आने से खुश नहीं होती।

सोमा बुआ के सामाजिक जीवन की विडंबना यह है कि वे जिस तरह पास-पड़ौसियों और नाते-रिश्तेदारों को अपना समझकर उनके सुख-दुःख में शामिल होती हैं, वैसी ही आत्मीयता उन्हें दूसरे पक्ष से नहीं मिलती। सोमा बुआ को शायद इसकी चाहना भी नहीं है। लेकिन संन्यासी पति को अपनी सामाजिक मर्यादा का ज्यादा ख्याल है, इसलिए वे सोमा बुआ को दूसरों के यहाँ बिना निमंत्रण के जाने से रोकते है।

सोमा बुआ के मन में संबंधों की जो धारणा है, वही धारणा दूसरों की नहीं है। इसलिए संबंधों की अपनी परिकल्पना और दूसरे के प्रति अपनेपन का जो भाव वे खुद महसूस करती है, वह यथार्थ नहीं है लेकिन इसे वह या तो समझती नहीं या समझना नहीं चाहती इसी कारण उनका विश्वास टूटता है। कहानी की आखिरी घटना इसी को दर्शाता है। लेकिन विश्वास का टूटना सोमा बुआ को और अकेला कर देता है। लेकिन इस अकेलेपन की विडंबना यह है कि सोमा बुआ से अपना मनोगत संसार भी छीन लिया जाता है। पास-पड़ोसियों के जीवन में अपने को खपाकर वह अपने एकाकीपन को कम कर लेती थी, वह सहारा उनसे छिन जाता है।

प्रश्न यहां है कि सोमा बुआ का अकेलापन क्या है? यह बुआ का निजी अकेलापन नहीं है। यह स्वयं उसके द्वारा स्वीकारा हुआ अकेलापन भी नहीं है। यह तो उसके ऊपर थोप दिया गया अकेलापन है। पुत्र की मृत्यु अकेलेपन का मुख्य कारण

नहीं है। पुत्र की मृत्यु के बाद भी वह अपने पति के साथ एक भरा-पूरा जीवन जी सकती थी, लेकिन पति-पत्नी संबंधों के सामंती रूप में, उनके बीच बराबरी और आत्मीयता का संसार ही नहीं पनप पाता, जहाँ दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख बाँट सकें। समाज में खपाकर वह अपने एकाकीपन को दूर कर सकती है और करती भी है, लेकिन यहाँ संबंधों की परिकल्पनाएँ बदल चुकी हैं और सोमा बुआ का एकाकीपन इससे और बढ़ता है।

इस प्रकार सोमा बुआ का अकेलापन उसका निजी अकेलापन नहीं रहता वह सामाजिक संदर्भ प्राप्त कर लेता है। वह कई प्रश्नों को हमारे सामने रखता है। पति-पत्नि के रिश्तों का सवाल, समाज में स्त्री की स्थिति का सवाल, बदलते समाज में मानवीय रिश्तों का सवाल। 'अकेली' कहानी सांकेतिक रूप से ये सब सवाल उठाती है, इसलिए कहानी को एक बड़ा अर्थ प्राप्त होता है और यही कहानी को श्रेष्ठ भी बनाता है।

जहाँ तक रचनाकार की अपनी दृष्टि का सवाल है, वह स्पष्ट है। मन्नू भंडारी कहानी के माध्यम से मध्यवर्गीय परंपरावादी स्त्री के जीवन की विडंबना को प्रस्तुत करना चाहती है। निश्चय ही यहाँ सवाल सोमा बुआ के प्रति सहानुभूति का नहीं है बल्कि उसके जीवन की स्थितियों और संस्कारों और मनोगत जरूरतों का है, जिसके बीच वह जी रही है। सोमा बुआ इन्हें नहीं बदल सकती, लेकिन उसकी दुनिया उससे छीनी जा रही है, यही कहानीकार कहना चाहता है।

बोध प्रश्न

13 इस कहानी में कहानी लेखिका सोमा बुआ के अकेलेपन के माध्यम से किन प्रश्नों को प्रस्तुत करती है?

क) ....

ख) ....

ग) ....

अभ्यास

6 कहानी के विश्लेषण के आधार पर शीर्षक की उपयुक्तता बताइए। (सिर्फ पाँच पंक्तियों में)

....

....

....

....

....

7 आपने कहानी का वाचन और विश्लेषण ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। क्या अब आप स्वयं कहानी का मूल्यांकन कर सकते हैं। कहानी के विभिन्न पक्षों के मूल्यांकन के आधार नीचे दिये जा रहे है, इनके द्वारा आप स्वयं मूल्यांकन कर सकते हैं।

- **कथावस्तु** : प्रतिपाद्य के साथ कथा की पूर्ण संगति और उसी के अनुकूल कथा का विकास-क्रम
- **चरित्र-चित्रण** : प्रतिपाद्य को पुष्ट करने में उस चरित्र की भूमिका एवं प्रतिपाद्य को पुष्ट करने वाले चारित्रिक पक्षों का चित्रण
- **परिवेश** : कथा में वर्णित देश-काल एवं पात्रों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक वास्तविकताओं से अनुकूलता
- **संरचना शिल्प** :

  शैली : प्रतिपाद्य की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति एवं कलात्मक उत्कृष्टता

  भाषा : शैली, चरित्र एवं परिवेश से अनुकूलता

  संवाद : पात्रों की सामाजिक और मानसिक स्थिति से अनुकूलता

10.10 सारांश

आपने 'अकेली' का वाचन और विश्लेषण दोनों का अध्ययन किया है। आशा है आप इसे समझ गये होंगे।

- 'अकेली' मन्नू भंडारी की प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी में मध्यवर्गीय नारी की विडम्बना को प्रस्तुत किया है। कहानी की कथावस्तु के विश्लेषण द्वारा आप इसे व्यक्त कर सकते हैं।
- सोमा बुआ मध्यवर्गीय नारी है। पुत्र की मृत्यु और पति के गृहत्याग ने उसे अकेला कर दिया है। इन परिस्थितियों के बीच वह जिस रूप में जीवनयापन करती है, उससे उसके चरित्र की कई विशेषताएँ सामने आती हैं। अब आप स्वयं सोमा बुआ के चरित्र की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- सोमा बुआ का सामाजिक परिवेश भी मध्यवर्गीय है। इस परिवेश की विशेषताएँ भी आप बता सकते हैं।

- इस कहानी की शैली यथार्थपरक है भाषा बोलचाल की है। आप कहानी द्वारा इन विशेषताओं की व्याख्या कर सकते हैं।
- कहानी के द्वारा मध्यवर्गीय भारतीय नारी के जीवन की विडंबनाओं और अकेलेपन को प्रस्तुत किया गया है। कहानी के इस प्रतिपाद्य को आप अपने शब्दों में व्याख्यायित कर सकते हैं।
- किसी कहानी के मूल्यांकन के आधार क्या हैं, आप समझ गये होंगे। उन आधारों पर आप स्वयं कहानी का मूल्यांकन कर सकते हैं।

10.11 उपयोगी पुस्तकें

नामवर सिंह : कहानी : नयी कहानी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

अवस्थी, देवीशंकर : नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली

10.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1 ख) 2 ग) 3 ख) 4 घ) 5 क)

6 क) पुत्र की मृत्यु और पति की अपेक्षा
ख) वह पास पड़ोस और नाते रिश्तेदारों के यहाँ विभिन्न अवसरों पर शामिल होकर अपने एकाकीपन को दूर करती है।

7 क) 8 ख) 9 क)

10 क) चरित्र प्रधान शैली (पृ. 109)
उदाहरण : इस स्थिति में बुआ अपनी...........घर में काम कर रही हों।
ख) भावात्मक शैली
उदाहरण : बुआ छत पर से .... चमक उठता था। (पृ. 111)

11 क) परिवेश के अनुकूल बोलचाल की भाषा
ख) आत्मीयता
ग) सहज प्रवाह

12 क) पात्र के परिवेश और मन:स्थिति के अनुकूल संवाद
ख) भाषा में यथार्थपरकता जैसे वास्तविक बातचीत को ही उद्धृत कर लिया गया हो।

13 क) पति और पत्नी के संबंध
ख) समाज में स्त्री की स्थिति
ग) बदलते समाज में मानवीय रिश्तों का सवाल

अभ्यास

1 सोमा बुआ के देवर के ससुराल में किसी लड़की का विवाह है। देवर को मरे पच्चीस साल से अधिक हो गये हैं। तब से उस परिवार से संबंध भी नहीं रहा है। लेकिन बुआ को विश्वास है कि विवाह के अवसर पर उन्हें भी बुलाया जायेगा। वे पड़ोसियों से सुन भी आती है कि निमंत्रण की लिस्ट में उनका नाम है। इसके बाद वे विवाह में जाने की तैयारी करती हैं। उनको विवाह में जाने की इतनी उत्सुकता है कि अपने मृत पुत्र की एकमात्र निशानी अंगूठी बेचकर भेंट की तैयारी करती हैं। विवाह के दिन वे उत्सुकता से विवाह के निमंत्रण की प्रतीक्षा करती है; मुहूर्त भी निकल जाता है, किंतु निमंत्रण नहीं आता। अंत में हताश होकर वे भेंट की वस्तुएँ वापस संदूक में रख देती हैं।

2 i एवं ii इकाई को पूरा पढ़कर स्वयं लिखने का अभ्यास कीजिए।

3 सोमा बुआ को विवाह में जाने की बड़ी उत्सुकता थी। उसने बड़ी लगन से जाने की तैयारियाँ की थीं। लेकिन दिन भर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब निमंत्रण नहीं आया और वह जा न सकी तो उसके दिल को गहरा आघात लगा। अपने मन की इस चोट को छुपाकर वह हताश होकर रोजमर्रा के कामों में लग जाती है।

4 सोमा बुआ का विवाह में न जा पाना उसके एकाकीपन को और उजागर करता है। वस्तुतः विवाह का निमंत्रण न आना महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि बुआ का निमंत्रण के लिए इंतजार करना है। सोमा बुआ की उत्सुकता और बाद की निराशा उसके जीवन के अकेलेपन को पूरी तरह से व्यक्त कर देता है।

5 i) सोमा बुआ मध्यवर्ग की एक सामान्य स्त्री है। कहानी में ऐसा कुछ भी घटित नहीं होता, जिसे असाधारण कहा जा सके। वह एक बहुत सामान्य जीवन व्यतीत करती है। असाधारणता सोमा बुआ में नहीं, उसके अकेलेपन में है जिसे कहानी का आधार बनाया गया है।

ii) सोमा बुआ का पति पलायनवादी है। पुत्र की मृत्यु पर अपनी पत्नी के प्रति जिम्मेदारी समझने के बजाय वह संन्यासी बन घर त्याग देता है। पत्नी के साथ संबंध भी प्रेम और आत्मीयता का नहीं है, इसीलिए पत्नी की भावनाओं को समझने में असमर्थ है।

iii) सोमा बुआ विवाह में जाने को बहुत उत्सुक है, लेकिन वह खाली हाथ नहीं जाना चाहती। पैसे के अभाव में वह अपने मृत पुत्र की एकमात्र निशानी बेचने का निर्णय करती है। एक ओर पुत्र की याद है, दूसरी ओर उस याद से मुक्त होने की कोशिश। यही कशमकश इस प्रसंग में व्यक्त हुई है। अंगूठी बेचने का निर्णय अकेलेपन से छूटने की बुआ की कोशिश का ही प्रतीक है।

6. कहानी का शीर्षक 'अकेली' उपयुक्त है क्योंकि कहानी का कथ्य, कहानी के केंद्रीय पात्र सोमा बुआ के अकेलेपन से ही संबंधित है। कहानी सोमा बुआ के अकेलेपन को ही उजागर करती है लेकिन इस रूप में कि इसके माध्यम से कुछ सामाजिक सवाल भी उभरते हैं। वस्तुतः "अकेलापन" केवल व्यक्ति की निजी समस्या नहीं है वह एक सामाजिक सवाल भी है, यही कहानी कहना चाहती है। इस दृष्टि से कहानी का शीर्षक उपयुक्त है।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू जी एच आई - 01
हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

ंड

3

हिंदी उपन्यास (पहला भाग)

इकाई 11

हिंदी उपन्यास : स्वरूप और विकास 5

इकाई 12

"निर्मला" (प्रेमचंद) वाचन एवं व्याख्या-I 21

इकाई 13

"निर्मला" (प्रेमचंद) वाचन एवं व्याख्या-II 80

इकाई 14

"निर्मला" : कथावस्तु 128

इकाई 15

"निर्मला" : चरित्र-चित्रण 143

इकाई 16

"निर्मला" : परिवेश, संरचना-शिल्प 162

इकाई 17

"निर्मला" : प्रतिपाद्य एवं प्रेमचंद का वैशिष्ट्य 187

ंड 3 का परिचय

दी ऐच्छिक पाठ्यक्रम के अंतर्गत अब तक आपने दो खंडों का अध्ययन कर लिया है। अब आप सरे खंड का अध्ययन करने जा रहे हैं। यह खंड कथा साहित्य की लोकप्रिय विधा "उपन्यास" : आधारित है। इस खंड में कुल सात इकाइयाँ हैं। इनमें से दो इकाइयाँ उपन्यास के वाचन से बंधित हैं, जिनमें आप "निर्मला" उपन्यास का वाचन करेंगे। बाकी पाँच इकाइयाँ उपन्यास के रूप और विकास तथा उपन्यास के मुख्य तत्वों पर आधारित हैं। इस खंड की इकाइयों का क्रम स प्रकार है :

 हिंदी उपन्यास : स्वरूप और विकास
2 "निर्मला" (प्रेमचंद) : वाचन एवं व्याख्या-I
3 "निर्मला" (प्रेमचंद) : वाचन एवं व्याख्या-II
4 "निर्मला" : कथावस्तु
5 "निर्मला" : चरित्र-चित्रण
6 "निर्मला" : परिवेश, संरचना-शिल्प
7 "निर्मला" : प्रतिपाद्य एवं प्रेमचंद का वैशिष्ट्य

वीं इकाई में आप उपन्यास विधा का सामान्य ज्ञान प्राप्त करेंगे। साथ ही साथ इस इकाई के ध्ययन से आप यह भी जान पायेंगे कि हिंदी भाषा में इस विधा का प्रारंभ एवं विकास, विस्तार स प्रकार हुआ। आप इसके माध्यम से यह भी जान पायेंगे कि हिंदी के आरंभिक उपन्यासकार न-कौन थे तथा किसकी रचनाओं से हिंदी उपन्यास का स्तर विश्व की अन्य भाषाओं में किसी च्चकोटि के उपन्यासों के समकक्ष पहुँच सका। 14वीं इकाई में आप उपन्यास की कथावस्तु से बंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। 15वीं इकाई में हम आपको उपन्यास के महत्वपूर्ण तत्व रित्र-चित्रण के बारे में बताएंगे। 16वीं इकाई उपन्यास के संरचना-शिल्प से संबंधित है। इस काई में प्रथमतः उपन्यास के परिवेश के बारे में बताया जायेगा जिसके आधार पर आप स्वयं खेंगे कि "निर्मला" उपन्यास का परिवेश की रचना किस प्रकार से कथा के अनुकूल हुई है। सके बाद आपको उपन्यास की शैली, भाषा एवं संवाद के बारे में विस्तृत जानकारी दी जायेगी। स खंड की अंतिम 17वीं इकाई उपन्यास के प्रतिपाद्य एवं उपन्यास के लेखक प्रेमचंद के शिष्ट्य से संबंधित है। इस इकाई में इस बात पर विचार किया जायेगा कि किसी रचना के पीछे ोई न कोई संदेश छिपा रहता है, लेखक अपनी रचना का शीर्षक किस आधार पर निर्धारित रता है उसे भी बताया जायेगा। अंत में उपन्यास सम्राट कहलाने वाले प्रेमचंद के लेखन से बंधित विशेषताओं की चर्चा की जायेगी।

गर आप इस खंड की इकाइयों को ध्यान से पढ़ेंगे तो आप "उपन्यास" विधा का सही विश्लेषण स्तुत कर पायेंगे।

7वीं इकाई में अध्ययन के लिए कुछ पुस्तकों के नाम दिये जा रहे हैं आप उनका भी अध्ययन रें।

स खंड के अध्ययन के आधार पर आपको सत्रीय कार्य करना है। वह पूरा करके अपनी उत्तर स्तिकाओं को विश्वविद्यालय के पास मूल्यांकन तथा सुझाव के लिए भेजें।

इकाई 11 हिंदी उपन्यास : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 उपन्यास का रचनागत वैशिष्ट्य
  11.2.1 कथावस्तु
  11.2.2 चरित्र-चित्रण
  11.2.3 परिवेश
  11.2.4 संरचना शिल्प
  11.2.5 प्रतिपाद्य
11.3 उपन्यास के भेद
  11.3.1 कथावस्तु के आधार पर
  11.3.2 चरित्र-चित्रण के आधार पर
  11.3.3 परिवेश के आधार पर
  11.3.4 शैली के आधार पर
  11.3.5 प्रतिपाद्य के आधार पर
11.4 हिंदी उपन्यास का विकास
  11.4.1 प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास
  11.4.2 प्रेमचंद युगीन हिंदी उपन्यास
  11.4.3 प्रेमचंदोत्तर युग के हिंदी उपन्यास
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

ऐच्छिक पाठ्यक्रम 1 में अब तक आप पहले खंड में "हिंदी गद्य का विकास" एवं "हिंदी गद्य की विविध विधाएँ" पढ़ चुके हैं। खंड दो में आपने हिंदी कहानी से संबंधित पाठों का अध्ययन किया है। आशा है आप कहानी के स्वरूप एवं विकास को समझ गए होंगे। उन इकाइयों को पढ़ने के बाद आप कहानी विधा की विशेषताओं से भी परिचित हो गए होंगे। यह खंड हिंदी उपन्यास से संबंधित है। इसमें आप हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद के "निर्मला" उपन्यास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में हम आपको उपन्यास के स्वरूप एवं हिंदी उपन्यास के विकास के बारे में बताएँगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उपन्यास के स्वरूप को बता सकेंगे,
- उपन्यास एवं कहानी में अंतर कर सकेंगे,
- उपन्यास के रचनागत वैशिष्ट्य को बता सकेंगे,
- हिंदी उपन्यास के विकास को पहचान सकेंगे,
- हिंदी उपन्यास के विकास के विभिन्न चरणों में इस विधा में क्या-क्या परिवर्तन हुए तथा कौन-कौन से लेखकों ने इस विधा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, इस इतिहास को प्रस्तुत कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम 1 खंड तीन में आप "निर्मला" उपन्यास का विस्तृत अध्ययन करेंगे। किंतु इस उपन्यास का अध्ययन करने से पूर्व आप यह जानना चाहेंगे कि उपन्यास क्या है, इसमें कौन-कौन से भिन्न तत्व हैं, उन तत्वों की क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं, तथा उपन्यास कितने प्रकार के होते हैं। इस इकाई में हम इन सभी बातों की जानकारी प्राप्त करेंगे। साथ ही आपके लिए यह जानना भी आवश्यक होगा कि हिंदी उपन्यास का विकास कैसे हुआ और किन-किन उपन्यासकारों ने इस विधा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। "हिंदी गद्य का विकास" एवं "हिंदी गद्य की विविध विधाएँ" पढ़ते हुए आपने देखा कि किस प्रकार हिंदी गद्य का विकास हुआ और नयी-नयी

गद्य विधाएँ विकसित होती गयीं। हिंदी कहानी के समान ही हिंदी उपन्यास का इतिहास भी बहुत पुराना नहीं है। इस विधा का आरंभ भी इसी शताब्दी के प्रथम दशक में हुआ। यों भारतेन्दु युग से पूर्व श्रद्धाराम फुलौरी ने "भाग्यवती" (1877) नामक उपन्यास की रचना की लेकिन भारतेन्दु युग से ही इस विधा का विकास प्रारंभ हुआ। पं. रामचंद्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवास दास के "परीक्षा गुरु" (1882) उपन्यास को मौलिक उपन्यास की संज्ञा दी है। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में प्रथमतः तिलिस्मी, जासूसी, ऐयारी उपन्यासों की धूम रही। मुंशी प्रेमचंद के आगमन से इस विधा को नया आयाम मिला। हम इस खंड में जिस उपन्यास को पढ़ेंगे वह तिलिस्मी, जासूसी आदि उपन्यासों से नितान्त भिन्न प्रकार का है। इस इकाई में प्रथमतः हम देखेंगे कि किस प्रकार उपन्यास विधा में नए-नए प्रयोग होते गए। इकाई में हम उपन्यास के तत्वों का अध्ययन करेंगे जिससे उपन्यास को समझने में सहायता होगी।

11.2 उपन्यास का रचनागत वैशिष्ट्य

कहानी का अध्ययन करने के बाद अब हम उपन्यास का अध्ययन करने जा रहे हैं। वास्तव में उपन्यास शब्द दो शब्दों के मेल से बना है। उप + न्यास। "उप" उपसर्ग का अर्थ होता है– सामने या समीप और "न्यास" शब्द का अर्थ होता है धरोहर और रखना। इस आधार पर उपन्यास शब्द का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है कि एक लेखक अपने जीवन एवं समाज के आस-पास जो कुछ देखता-सुनता एवं अनुभव करता है उसे अपने भाव-विचार से कल्पना के द्वारा सजा-सँवार कर हमारे सामने प्रस्तुत करता है। चूँकि उपन्यास में वर्णित घटना को लेखक समाज से ही ग्रहण करता है और कल्पना के द्वारा सुन्दर ढंग से हमारे सामने प्रस्तुत करता है इसलिए वह हमें रुचिकर लगता है। यानी वह साहित्यिक रचना जिसे पढ़कर लगे कि उसमें वर्णित घटना हमारे निकट की नहीं बल्कि हमारी ही है, उपन्यास कहते हैं। उपन्यास आधुनिक जीवन के यथार्थ को बहुत निकटता से पहचानने और उपस्थित करने वाली विधा है। उपन्यास को परिभाषा में बाँधना आसान नहीं है फिर भी उसकी परिभाषा करते हुए यह कहा जा सकता है कि उपन्यास वह आधुनिक गद्य विधा है जो यथार्थ को बहुत सहजता से उभारती है। उपन्यास की कथा काल्पनिक होती है किंतु वह जीवन के यथार्थ की ही कथा होती है। उसके पात्र जीवंत और यथार्थ होते हैं, घटनाएँ हमारे जीवन के बीच की होती हैं और उनमें एक तार्किक संगति होती है अर्थात् किसी घटना के घटित होने के कारण एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। उपन्यास के बारे में प्रेमचंद ने कहा है–"मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-जीवन पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास के मूल तत्व हैं।"

आपमें से बहुतों ने कोई न कोई उपन्यास अवश्य पढ़ा होगा। पहले के उपन्यासों में चमत्कारी एवं अजीबोग़रीब घटनाओं का जमघट रहता था। नायक के हैरतअंगेज करतबों से पाठक को आनंद मिलता था। जासूसी आदि उपन्यास ही प्रथमतः काफी लोकप्रिय हुए। इस खंड में हम इनसे भिन्न प्रकार के उपन्यास का अध्ययन करेंगे। पहले के उपन्यासों में घटना प्रधान होती थी। अपने उद्देश्य की पूर्ति लेखक घटना के माध्यम से ही करता था। घटनाओं को अपनी इच्छा के अनुरूप ढालने से उसमें वास्तविकता नहीं रह जाती थी। आज का उपन्यासकार इस प्रकार के वर्णन को महत्व नहीं देता। वह उपन्यास में वास्तविकता लाने का प्रयत्न करता है। इसके लिए वह पात्रों का चरित्र-चित्रण इस रूप में करता है कि वे काल्पनिक न लगें। पात्रों में सजीवता लाने का वह भरसक प्रयत्न करता है। पात्रों द्वारा किये जाने वाले कार्य असंभव प्रतीत न हों। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर आज का उपन्यासकार जीवन के यथार्थ को अपनी रचना में उतारने का प्रयत्न करता है। जब इन बातों को ध्यान में रखकर हम आज के उपन्यासों को पहले के उपन्यास से तुलना करते हैं तो एक स्पष्ट बदलाव नज़र आता है।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक उन्नति के कारण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से विकास एवं परिवर्तन आया। मुद्रण एवं परिवहन के विकास से पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में क्रांतिकारी परिवर्तन शुरू हुआ। गद्य की विविध विधाओं पर इस परिवर्तन का व्यापक प्रभाव पड़ा। उपन्यास विधा का विकास साहित्य में केंद्रीय विधा के रूप में हुआ बड़े-बड़े उपन्यास लिखे जाने लगे। प्रारंभ में भिन्न भाषाओं से हिंदी में अनुवाद द्वारा भी इस विधा का विकास हुआ। पत्र-पत्रिकाओं के विकास से जहाँ कहानी जैसी स्वतंत्र विधा का विकास हुआ वहाँ उपन्यास के रूप में भी परिवर्तन शुरू हुआ।

उपन्यास का जन्म पश्चिम में हुआ। पश्चिम के उपन्यासकारों ने उपन्यास विधा को नया रूप प्रदान किया। उपन्यास विधा लोकप्रियता प्राप्त करती गई साथ ही साथ समयानुसार इसमें

परिवर्तन भी आता गया। उपन्यास की रचना-प्रक्रिया पर विचार करते हुए सोचा गया कि उपन्यास क्या है? मानव जीवन से इसका क्या संबंध है? और इसे किस उद्देश्य से लिखा जाता है? उपन्यास विधा अन्य विधाओं से किस प्रकार भिन्न है? क्या उपन्यास एवं कहानी एक ही विधा है? आइए, इन प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयत्न करें।

सर्वप्रथम हम देखें कि उपन्यास और कहानी में क्या अंतर है। जैसा कि हमने पहले भी कहा है कि आपमें से बहुत से लोगों ने उपन्यास एवं कहानी का अध्ययन किया होगा। यदि आप किसी उपन्यास की तुलना किसी लंबी से लंबी कहानी से करें तो आप पायेंगे कि उपन्यास की तुलना में कहानी का आकार काफी छोटा होता है। दोनों विधाओं में क्या यह अंतर अनायास आता है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। यह अंतर मूलभूत बातों के कारण आता है। उपन्यास एवं कहानी में सबसे बड़ा अंतर यह है कि उपन्यास में जहाँ जीवन का व्यापक चित्रण किया जा सकता है वहाँ कहानी में जीवन के व्यापक चित्रण की गुंजाइश नहीं रहती। उपन्यासकार जहाँ संपूर्ण जीवन को लक्ष्य का आधार बनाता है वहीं कहानीकार जीवन के किसी एक खंड को, एक घटना या एक अनुभव को ही इस कथा का आधार बनाता है। इस मूलभूत अंतर के कारण ही दोनों विधाओं के अन्य तत्वों में अंतर भी अपने आप आ जाते हैं। जब रचनाकार किसी पात्र के संपूर्ण जीवन का चित्रण करता है तो स्वतः ही घटनाओं की संख्या भी बढ़ जाएगी, पात्रों की संख्या भी बढ़ जाएगी और विस्तार से ही पात्रों के संपूर्ण जीवन का चित्रण करना पड़ेगा। यदि रचनाकार जीवन की एक घटना या छोटे खंड का चित्रण करेगा तो घटना, पात्र एवं अन्य ब्योरे की संख्या भी सीमित हो जाएगी। उसे अपने विचारों को सांकेतिक रूप से प्रस्तुत करना पड़ेगा। इस प्रकार इन दोनों विधाओं में मूलभूत अंतर जीवन के व्यापक चित्रण और जीवन के किसी एक खंड का चित्रण करने के कारण आ जाता है।

आइए, हम दो उदाहरणों द्वारा इस अंतर को समझने का प्रयत्न करें। इस खंड की आगे की इकाइयों में हम "निर्मला" उपन्यास पढ़ेंगे। हो सकता है आपमें से कुछ लोगों ने इसे पढ़ा भी हो। "कहानी" पढ़ते समय आपने "पूस की रात" कहानी का भी अध्ययन किया है, इस कहानी का आकार "निर्मला" उपन्यास से काफी छोटा है। यह अंतर किसलिए है?

"पूस की रात" में एक घटना का वर्णन है—हल्कू किसान पर कुछ कर्जा है। वह उसे चुका पाने में असमर्थ है। उसने मेहनत करके फसल उगायी है, फसल तैयार हो चुकी है। वह इस आशा में है कि फसल कटने पर उसे बेचकर वह महाजन के कर्ज को चुका देगा। किंतु कर्जा चुकाने में सारा धन निकल जाएगा और उसे फिर मजदूरी करके पेट पालना पड़ेगा। इसी विचार को लिये हुए वह कड़ाके की ठंड में अपनी खेती की रक्षा करने जाता है। किंतु, जानवर उसके खेत चर जाते हैं। ठंड के कारण विवशता से वह खेत की रखवाली नहीं कर पाता। इस कहानी में पूस की रात की इस घटना को ही मुख्य आधार बनाया गया है। हल्कू मुख्य चरित्र है। इसके विपरीत "निर्मला" उपन्यास (जो कि लेखक के अन्य उपन्यासों से आकार में काफी छोटा है) में निर्मला के संपूर्ण जीवन को कथा का आधार बनाया गया है। कथा का आरंभ निर्मला के परिचय से होता है, फिर विवाह की बात चलती है। विवाह तय हो जाता है। पिता की आकस्मिक मृत्यु के कारण विवाह स्थगित हो जाता है। धनाभाव के कारण माता दहेज देने की स्थिति में नहीं हैं। सगाई टूट जाती है। पंडित के प्रयत्न से एक अधेड़, विधुर, व्यक्ति तोताराम के साथ निर्मला का विवाह हो जाता है। तोताराम के तीन बेटे हैं और बड़ा बेटा उम्र में निर्मला के करीब का है। निर्मला के जीवन की करुण कहानी ही उपन्यास का कथात्मक कलेवर है। अनमेल विवाह के कारण मानसिक यंत्रणा, पति के शंका के कारण बड़े बेटे की मृत्यु, दूसरे बेटे द्वारा आत्महत्या, तीसरे बेटे का घर से भाग जाना, बेटी का जन्म, पति का गृह त्याग, अत्याधिक गरीबी आदि। इन सारी विपत्तियों से जूझती हुई निर्मला की मृत्यु के साथ उपन्यास समाप्त होता है। इस प्रकार मुख्य पात्र निर्मला के संपूर्ण जीवन को लेखक ने उपन्यास में ढाला है। अन्य पात्र भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। निर्मला के चरित्र को करुण बनाने के लिए अन्य पात्रों की रचना की गई है। मुख्य कथानक के साथ प्रासंगिक कथाओं की रचना की गयी है। ये प्रासंगिक कथाएँ मुख्य कथा को सशक्त बनाती हैं। कहानी का परिवेश अत्यधिक लंबा है। कई वर्षों के लंबे काल खंड में उपन्यास फैला हुआ है। इसके विपरीत "पूस की रात" मात्र एक रात की कहानी है।

उपर्युक्त उदाहरणों से आपने स्पष्ट देखा कि केवल आकार की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि संरचनागत दृष्टि से भी उपन्यास एवं कहानी में अंतर है, उपन्यास में संपूर्ण जीवन का परिचय दिया जाता है। जबकि कहानी में जीवन के किसी एक अंश का। उपन्यास कहानी के लिए सबसे आवश्यक बात है, उसमें कथा का होना। अगर किसी रचना में कथा ही नहीं होगी तो उसे कोई अन्य नाम दे दें कहानी या उपन्यास नहीं कह सकते। उपन्यास पर विचार करने पर हम पायेंगे कि उनमें निम्नलिखित बातें होती हैं।

1 उसमें किसी घटना का वर्णन रहता है।
2 घटना किसी पात्र से संबंधित होती है।
3 घटना का संबंध किसी स्थान एवं समय से होता है।
4 घटना में वर्णित पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं।
5 प्रत्येक लेखक घटना को अपने ढंग से प्रस्तुत करता है।
6 रचना करने के पीछे लेखक के सामने कोई न कोई कारण होता है।

किसी भी उपन्यास में इन छह बातों का होना आवश्यक है। यह और बात है कि किसी उपन्यास में इनमें से दो एक बातें अधिक महत्वपूर्ण ढंग से व्यक्त हुई हों। इन्हें ही हम कहानी के तत्व के नाम से जानते हैं। शास्त्रीय भाषा में इसे निम्नलिखित रूप में व्यक्त करेंगे।

1 कथावस्तु
2 पात्र या चरित्र-चित्रण
3 देशकाल या परिवेश
4 संवाद और भाषा
5 शैली तथा
6 उद्देश्य

उपन्यास के इन्हीं तत्वों के आधार पर हम इस विधा की चर्चा करेंगे। इन तत्वों को हम कुछ अंतर के साथ बताएँगे। संवाद-भाषा और शैली को हमने "संरचना शिल्प" का नाम दिया है। इसी प्रकार उद्देश्य के लिए हमने "प्रतिपाद्य" शब्द रखा है। इस प्रकार हम उपन्यास के विभिन्न तत्वों को निम्न रूपों में प्रस्तुत कर सकते हैं।

1 कथावस्तु
2 पात्र या चरित्र-चित्रण
3 परिवेश
4 संरचना शिल्प एवं
5 प्रतिपाद्य

आइए, अब हम उपन्यास के इन तत्वों का अलग-अलग विवेचन करें।

बोध प्रश्न

1 पहले के उपन्यासों की वे विशेषताएँ नीचे बताई गई हैं उनमें से कौन-सी विशेषता सही नहीं है।

i) पहले के उपन्यासों में मानसिक द्वंद्व का चित्रण होता था। [ ]

ii) पहले के उपन्यास चमत्कारी घटनाओं से भरे होते थे। [ ]

iii) कल्पना एवं अवास्तविकता का समावेश रहता था। [ ]

iv) जीवन के यथार्थ का चित्रण होता था। [ ]

2 तीन पंक्तियों में कथावस्तु, चरित्र-चित्रण एवं परिवेश के आधार पर उपन्यास एवं कहानी में अंतर बताइए।

....

....

....

3 नीचे कुछ वाक्य दिये जा रहे हैं। आप इनके द्वारा उपन्यास के तत्वों का निर्धारण कीजिए।

i) उपन्यास में पात्रों से संबंधित घटना का वर्णन होता है। ....

ii) उपन्यास में वर्णित पात्र आपस में बातचीत करते हैं। ....

iii) उपन्यास में वर्णित घटना का संबंध किसी स्थान एवं काल से रहता है। ....

iv) उपन्यासकार अपने ढंग से कथा को प्रस्तुत करता है। ....

v) कथा को कहने के पीछे कोई न कोई कारण होता है। ....

अभ्यास

1 चार पंक्तियों में पहले एवं आज के उपन्यास की विशेषताओं को लिखिए।

....

....

11.2.1 कथावस्तु

उपन्यास में जिस घटना का वर्णन किया जाता है, उसे कथावस्तु कहते हैं। इस विधा में घटना का विस्तार से वर्णन रहता है। स्थूल घटना के विस्तार के लिए इसमें पर्याप्त अवसर रहता है अर्थात् रचनाकार सीमा के अंदर बँधा नहीं रहता।

उपन्यास में कथावस्तु ठोस और शृंखलाबद्ध होनी चाहिए अन्यथा कथा में अस्वाभाविकता आ जाती है। शृंखलाबद्ध का तात्पर्य है एक प्रसंग का दूसरे प्रसंग से संबंध, मूल भाव, या प्रसंग को विस्तार से वर्णन करने का अवसर उपन्यास में रहता है। अत: रचनाकार बड़े कौशल के साथ इसका वर्णन कर सकता है। विस्तार करते समय यह भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है कि कहीं कोई प्रसंग अप्रासंगिक तो नहीं हुआ जा रहा है। उपन्यास की कथा चरित्र को विकसित करने वाली और स्पष्ट होनी चाहिए। काल्पनिक और अविश्वसनीय लगने वाली घटना का चित्रण उपन्यास में नहीं होना चाहिए। कारण इससे उपन्यास में, अस्वाभाविकता आ जाती है। आधुनिक उपन्यास में सामाजिक समस्या को ही कथावस्तु के रूप में स्थान दिया गया। पहले के उपन्यास में कथा के आरंभ से अंत तक एक शृंखला होती थी अर्थात् प्रथम कथावस्तु का आरंभ मध्य एवं अंत होता था। लेकिन आज ऐसा नहीं है। आज कथा का आरंभ किसी भी घटना या वर्णन आदि से हो सकता है, अर्थात् कथावस्तु के कथा के अनुसार कहीं से भी कहानी शुरू हो सकती है। पात्रों के वार्तालाप से, किसी पात्र के अंतर्द्वन्द्व से कथा की शुरुआत हो सकती है। आज के उपन्यास में यह आवश्यक नहीं कि उसमें कोई निश्चित अंत हो अर्थात् कथा की समाप्ति बीच में भी हो सकती है।

11.2.2 चरित्र-चित्रण

आपने पढ़ा है कि कहानी में पात्रों की संख्या सीमित होती है किंतु उपन्यास में ऐसा नहीं होता। पात्रों की संख्या इसमें अधिक तो होती ही है साथ ही एक से अधिक पात्र महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

वैसे चरित्र-प्रधान उपन्यास में एक पात्र को केंद्र में रखकर कथा का विकास किया जाता है। आगे हम "निर्मला" उपन्यास को पढ़ेंगे इसमें निर्मला ही मुख्य पात्र है। यह उपन्यास उसके संपूर्ण जीवन पर आधारित है। सारी घटनाएँ उसके इर्द-गिर्द घूमती हैं।

उपन्यास में चरित्र के विकास के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है। अर्थात् पात्र के चरित्र की छोटी-से छोटी विशेषताओं को भी बताया जा सकता है। जिस उपन्यास में मानव के मनोभावों के संघर्ष को लेखक विषयवस्तु के रूप में चुनता है उसमें चरित्र के विकास का पर्याप्त अवकाश रहता है आज के उपन्यास में कल्पित एवं अविश्वसनीय लगने वाले चरित्रों की सृष्टि नहीं की जाती। वैसे पात्रों का चुनाव किया जाता है जो स्वाभाविक लगें। अर्थात् पाठक को लगे कि पात्र उसके आस-पास के जीवन का ही है। आप जब हिंदी के अच्छे उपन्यासों का अध्ययन करेंगे तो पाएँगे कि किसी-किसी उपन्यास में पात्र किसी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किये गए हैं। जैसे प्रेमचंद्र के ही पात्र वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं उदाहरण के रूप में "गोदान" का पात्र होरी भारतीय किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। जैनेंद्र के उपन्यासों में पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को विशेष स्थान दिया गया है। इन पात्रों के चरित्र की विशेषताओं को विस्तार दिया गया है। जिस उपन्यास में मानव के सूक्ष्म मनोभाव को नियंत्रित किया जाता है उसके पात्र वास्तविक लगते हैं।

यदि उपन्यासकार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पात्रों को मनचाहा रूप प्रदान करता है तो वह स्वयं की संतुष्टि तक सीमित रह जाता है उस रचना को पढ़कर पाठक वर्ग प्रभावित नहीं हो सकता।

उपन्यासकार चरित्र-चित्रण के लिए कई प्रकार की विधियाँ अपनाता है। प्रथमत: तो वह पात्र द्वारा किये जाने वाले कार्यों द्वारा उसका चरित्र उजागर करता है। कभी पात्र अपने बारे में सोचता है। इससे भी उसका चरित्र स्पष्ट होता है। एक पात्र दूसरे पात्र के बारे में जो कुछ कहता है वह भी पात्र के चरित्र-चित्रण में सहायक होता है। कभी-कभी लेखक स्वयं भी पात्रों के चरित्र को उजागर करता है। उदाहरण के लिए जब आप आगे की इकाइयों में निर्मला उपन्यास का वाचन करेंगे तो पायेंगे कि परिच्छेद 3 में लेखक अपनी ओर से उपन्यास के एक पात्र बाबू भालचंद्र के बारे में लिखता है। "बाबू भालचंद्र दीवानखाने के सामने आराम कुर्सी पर नंगधड़ंग लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही स्थुल ऊँचे कद के आदमी थे" इस प्रकार पूरे उपन्यास में आप देखेंगे

कि लेखक ने स्वयं भी पात्रों के बारे में बहुत सारी बातें कहीं हैं। इस प्रकार पात्रों का चरित्र-चित्रण किया जाता है।

11.2.3 परिवेश

परिवेश का अर्थ है, देशकाल। अर्थात् उपन्यास में वर्णित घटनाओं का संबंध किस समय और किस स्थान से है। इन्हीं सब बातों की जानकारी परिवेश के अंतर्गत दी जाती है। लेखक को उस काल, स्थान की जानकारी होनी चाहिए जिस काल और स्थान को वह अपनी रचना में लेता है। यदि लेखक बिना जानकारी के परिवेश का वर्णन करता है तो उससे रचना में अस्वाभाविकता का समावेश हो जाएगा। अर्थात् कथा में बनावटीपन झलकेगा। यथार्थ से दूर होने पर पाठक को उसमें अरुचि भी हो सकती है। यदि लेखक ने ग्रामीण जीवन को रचना का आधार बनाया है तो उसे ग्रामीण जीवन के परिवेश का यथार्थ ज्ञान होना चाहिए। जब तक वह स्वयं उस परिवेश का सूक्ष्मता से अध्ययन नहीं कर लेता अर्थात् जानकारी प्राप्त नहीं कर लेता तब तक यथार्थ चित्रण नहीं कर सकता। रचना में कृत्रिमता आ जाएगी। गाँव के घर, गलियाँ, चौपाल, खेत-खलिहान, लोगों के रहन-सहन, खान-पान, पहनावा, रीति-रिवाज, अनुष्ठान, पशुधन आदि की पूर्ण जानकारी के बाद ही लेखक ग्रामीण जीवन का सच्चे अर्थ में अपनी रचना के माध्यम से प्रस्तुत कर सकता है। इसी प्रकार लेखक यदि शहर के जीवन को कथानक का आधार बनाता है तो उसे उन सारी बातों की जानकारी आवश्यक हो जाएगी जिनसे शहरी जीवन जुड़ा हुआ है।

कथानक का संबंध किसी काल और समय-विशेष से जुड़ा होता है। लेखक को काल की सही जानकारी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, कथा किसी काल-विशेष से जुड़ी है तो उस काल की विशेषताओं की जानकारी आवश्यक है। जैसे लेखक यदि गुप्तकाल या मुगलकाल से जुड़ा हुआ कथानक लेता है तो इन कालों की जानकारी होनी चाहिए और उसी के अनुकूल परिवेश का चित्रण जरूरी है। यदि गुप्तकाल में आधुनिक काल की विशेषताओं को रखा जाएगा तो इससे कथा में अस्वाभाविकता तथा बनावटीपन नजर आएगा। यथार्थ से अलग होने पर पाठक के मन पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। कथानक का परिवेश जितना स्वाभाविक एवं यथार्थपरक होगा, उपन्यास उतना ही विश्वसनीय और यथार्थ नजर आएगा।

उपन्यास में परिवेश का चित्रण विस्तार से किया जा सकता है। उपन्यासकार लंबे-चौड़े विवरण द्वारा परिवेश को समझा सकता है, लेकिन विस्तार देते समय यह ध्यान देना भी जरूरी है कि आवश्यकता से अधिक विस्तार न हो जाए। परिवेश का चित्रण ऐसा हो जिससे उपन्यास में वर्णित कार्य-व्यापार स्वाभाविक लगें, पात्र सजीव लगें और कहानी के विकास में मदद मिले।

परिवेश के स्वाभाविक चित्रण के लिए यह जरूरी है कि लेखक को वर्णित कथा से संबद्ध देश काल की सही जानकारी हो अर्थात् तत्कालीन समय के लोगों का रहन-सहन कैसा था? किस तरह की सामाजिक व्यवस्था थी? उनके मत-मतान्तर क्या थे? सभ्यता ने कितनी प्रगति कर ली थी? मानव मूल्यों की स्थापना किस स्तर तक हो चुकी थी, इन सब बातों की जानकारी आवश्यक है। रचनाकार अगर इस प्रकार की जानकारी नहीं रखता है तो वह स्वाभाविक चित्रण में खरा नहीं उतर पाएगा।

11.2.4 संरचना शिल्प

संरचना शिल्प से हमारा तात्पर्य है कि उपन्यास की शैली किस प्रकार की है, उपन्यास की भाषा किस प्रकार की है और उपन्यास का संवाद किस प्रकार का है। आनंद प्राप्त करने के लिए आपने कुछ उपन्यासों का अध्ययन किया होगा। एक दो उपन्यास पढ़ने के बाद आपने अनुभव किया होगा कि इनमें कुछ अंतर है। आइए, देखें कि यह अंतर किस प्रकार हो जाता है। वास्तव में प्रत्येक उपन्यासकार चाहे वह किसी विषय वस्तु पर उपन्यास लिख रहा हो अपनी एक विशेष रीति अपनाता है। इस प्रकार प्रत्येक उपन्यासकार का उपन्यास लिखने का एक ढंग होता है। अपने तरीके से वह कथावस्तु प्रस्तुत करता है। रचना में भाषा का प्रयोग-संवाद की योजना आदि करने का एक अलग तरीका अपनाता है।

शैली : शैली का तात्पर्य है रचना करने का ढंग। लेखक की व्यक्तिगत रुचि और विषयवस्तु के कारण ही शैली में परिवर्तन होता है। अपनी रुचि के अनुसार लेखक जिस तरीके से कथावस्तु को प्रस्तुत करता है उससे शैली में परिवर्तन आता है। व्यक्तिगत रुचि के अनुसार कुछ लेखक मनुष्य जीवन के बाह्य पक्ष पर बल देते हैं तो कुछ मनुष्य के मनोभावों पर बल देते हैं। उदाहरण के लिए आप प्रेमचंद के उपन्यासों को लें तो आप देखेंगे कि जीवन के बाह्य पक्ष पर बल दिया गया है। समाज का यथार्थ चित्रण करते समय वे यद्यपि कभी-कभी पात्रों की मनोदशा का भी सुंदर चित्रण करते हैं लेकिन जीवन में घट रही घटनाएँ ही उनकी कथावस्तु का मुख्य आधार हैं। हिंदी के एक और उपन्यासकार जैनेंद्र की रचनाओं को जब आप पढ़ेंगे तो पायेंगे कि इसमें घटनाओं का

र्णन कम है जबकि मानव-मन अर्थात् पात्रों के मन में उठने वाले भावों को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार लेखक की व्यक्तिगत रुचि द्वारा उपन्यास की शैली में भिन्नता आती है। प्रेमचंद ने जो शैली अपनाई उसे वर्णनात्मक शैली तथा जैनेंद्र ने जो शैली अपनाई उसे मनोवैज्ञानिक शैली कहते हैं।

संवाद : संवाद का अर्थ तो आप जान ही गये हैं। उपन्यास में वर्णित पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं जिनसे कथावस्तु आगे बढ़ती है ऐसे वार्तालाप को ही संवाद कहा जाता है। उचित संवादों से जहाँ कथा आगे बढ़ती है वहीं पात्रों के चरित्र की विशेषताओं का अंदाजा भी लगता है। संवाद द्वारा उपन्यास में *नाटकीयता* आती है। चरित्र उद्घाटन के लिए पात्रानुकूल संवाद की योजना आवश्यक है। उपन्यासकार यदि पात्रों के अनुकूल संवाद नहीं लिखता है तो इससे अस्वाभाविकता आ जाती है। यदि उपन्यास का पात्र शिक्षित है तो उसके अनुकूल ही संवाद होना चाहिए यदि पात्र ग्राम जीवन से संबंधित है तो उसके परिवेश के अनुकूल ही संवाद आवश्यक है। यदि पात्र स्थान विशेष से संबंध रखता है तो उसके अनुसार ही संवाद होना चाहिए। उदाहरण के लिए हम यहाँ प्रेमचंद के "गोदान" उपन्यास के पात्रों का संवाद दे रहे हैं, जिससे आपको स्पष्ट पता चल जाएगा कि किस प्रकार पात्रानुकूल संवाद होने चाहिए। उपन्यास "गोदान" – पात्र "होरी" "*ग्रामीण जीवन का पात्र*" होरी ने अपने झुर्रीयों से भरे माथे को सिकोड़कर कहा – "तुझे-रस पानी की पड़ी है, मुझे यह चिन्ता है कि सवेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी।"

पात्र मिर्जा–मिर्जा ने घिघियाकर कहा – "देवी जी, खुदा के लिए इस मूँजी को रुपये दे दीजिए।"

पात्र मेहता–मिस्टर मेहता उसी ठंडे मन से बोले–नहीं-नहीं, मैं इसे बुरा नहीं समझता। समाज व्यक्ति से ही बनता है। और व्यक्ति को भूलकर हम किसी व्यवस्था पर विचार नहीं कर सकते। आपने देखा कि प्रत्येक पात्र की भाषा में अंतर है, होरी की भाषा ग्राम जीवन से संबंधित है तो मिर्जा की भाषा पर उर्दू का प्रभाव है। मेहता की भाषा एक शिक्षित व्यक्ति की भाषा है।

भाषा : भाषा ही वह माध्यम है जिससे उपन्यासकार रचना में रोचकता लाता है। सहज, पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग से पात्र सजीव लगते हैं। कभी-कभी उपन्यासकार को पात्रों को छोड़कर अपनी ओर से कुछ कहना पड़ता है। ऐसे समय में लेखक की भाषा अलग हो जाती है। वहाँ वह विचारक के रूप में भाषा का प्रयोग करता है। उपन्यास के लिए सबसे आवश्यक बात है भाषा का सरल होना, यदि भाषा जटिल होगी तो पाठक के लिए कठिनाई उत्पन्न होगी। इसलिए जहाँ तक संभव हो सहज बोलचाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए। भाषा की सरलता के लिए आवश्यक है कि प्रचलित शब्दों का प्रयोग, छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया जाए।

11.2.5 प्रतिपाद्य

प्रतिपाद्य का अर्थ है उद्देश्य। उपन्यास में क्या कहा गया है और क्यों कहा गया है, उसी को उद्देश्य कहते हैं। उपन्यास के प्रतिपाद्य को समझने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि हम उपन्यास को ठीक से समझें उसके बाद उसमें निहित संदेश को पहचानें। उस संदेश का सामाजिक और साहित्यिक मूल्यांकन करने के बाद ही हम जान सकते हैं कि लेखक ने रचना के माध्यम से जो संदेश दिया है वह कितना उचित है।

बोध प्रश्न

4 नीचे कथावस्तु की विशेषताएँ दी जा रही हैं आप बताइए कि इनमें से कौन-सी विशेषता एक अच्छे उपन्यास का गुण नहीं हैं।

क) ठोस एवं सुसंबद्ध कथानक [ ]

ख) जीवन के यथार्थ को आधार बनाकर कथावस्तु की योजना करनी चाहिए। [ ]

ग) अवास्तविक और अविश्वसनीय घटनाएँ न हों। [ ]

घ) उपदेशात्मक कथावस्तु हो। [ ]

5 चरित्र-चित्रण के लिए रचनाकार कुछ विधियाँ अपनाता है उनमें से एक है पात्रों द्वारा किए जाने वाले कार्य। आप अन्य तीन महत्वपूर्ण विधियाँ बताइए।

....

....

....

6 रचनाकार जब परिवेश का यथार्थ चित्रण करता है तब उपन्यास में निम्नलिखित बातें मिलती हैं। इनमें से एक गलत है, उसके सामने गलत का चिह्न (×) लगाइए।

क) उपन्यास में वर्णित घटनाएँ स्वाभाविक लगती हैं [ ]
ख) पात्र सजीव लगते हैं [ ]
ग) उपन्यास का नाम स्पष्ट होता है [ ]
घ) कथावस्तु के विकास में सहायता मिलती है [ ]

7 शैली का निर्धारण कई कारणों से होता है। आप दो कारण बताइए।

....

....

11.3 उपन्यास के भेद

आपने देखा कि उपन्यास के कुछ तत्व सभी उपन्यासों में मिलते हैं। किन्तु आप यह भी देखेंगे कि सभी उपन्यासों में ये तत्व एक-समान नहीं होते। किसी उपन्यास में कोई पात्र महत्वपूर्ण होता है तो किसी में घटना महत्वपूर्ण हो जाती है। किसी उपन्यास का प्रतिपाद्य केवल मनोरंजन करना होता है तो किसी का सामाजिक मूल्यों का निर्धारण। किसी उपन्यास में कथावस्तु लिखने का ढंग फंतासी होता है तो किसी में सीधे-सीधे वर्णन होते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक उपन्यास का अलग रूप, तरीका या ढंग और उद्देश्य होता है। इस प्रकार प्रत्येक उपन्यास दूसरे से भिन्न होता है। आइए, भिन्न प्रकार के उपन्यासों के बारे में जानें।

11.3.1 कथावस्तु के आधार पर

प्रत्येक उपन्यास का कथानक अलग-अलग हो सकता है, कोई उपन्यास तत्कालीन यथार्थ से संबंधित हो सकता है, किसी का संबंध पुराण से हो सकता है, किसी का संबंध अतीत से हो सकता है। इसी प्रकार समकालीन यथार्थ से संबंधित उपन्यासों में कोई कथावस्तु सामाजिक व कोई पारिवारिक हो सकती है। इस प्रकार उपन्यासों को कथावस्तु की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है।

1 ऐतिहासिक
2 पारिवारिक
3 सामाजिक
4 पौराणिक
} विषयवस्तु की दृष्टि से

5 घटना प्रधान
6 भाव प्रधान
} वर्णनशैली की दृष्टि से

1 **ऐतिहासिक उपन्यास :** ऐतिहासिक उपन्यासों का संबंध अतीत से होता है। अर्थात् उनकी कथावस्तु अतीत से जुड़ी होती है। ऐसे उपन्यासों में यह आवश्यक नहीं कि वह इतिहास-सम्मत सच्ची घटना को ही कथावस्तु का आधार बनायें, बल्कि इसमें वह कल्पना द्वारा कथा की संरचना कर सकता है। लेकिन सबसे प्रमुख बात यह है कि ऐसे उपन्यासों में भी समकालीन जीवन के सत्य का उद्घाटन होता है। अर्थात् समकालीन जीवन की समस्याओं को अतीत की घटना के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास "बाणभट्ट की आत्मकथा" में बाणभट्ट के युग की कथा के माध्यम से आज के समाज की जातिप्रथा पर करारी चोट की गयी है।

2 **पारिवारिक उपन्यास :** जिस उपन्यास में परिवार की समस्या या घटना को कथावस्तु का मुख्य आधार बनाया जाय, उन्हें पारिवारिक उपन्यास कहते हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि परिवार समाज की इकाई है। अर्थात् परिवार समाज का ही एक अंग है अतः परिवार से जुड़ी होने के कारण ऐसे उपन्यास को सामाजिक उपन्यास के अंतर्गत भी रख सकते हैं, उदाहरण के लिए, प्रेमचंद के "निर्मला" उपन्यास में अनमेल विवाह के कारण परिवार में उत्पन्न समस्या को दर्शाया गया है।

3 **सामाजिक उपन्यास :** सामाजिक समस्या या घटना को लेकर लिखे जाने वाले उपन्यास सामाजिक उपन्यास कहलाते हैं। उदाहरण के लिए "सेवासदन" और "निर्मला" सामाजिक उपन्यास हैं।

4 पौराणिक उपन्यास : जिस उपन्यास में कथा का आधार पौराणिक लोकगाथा हो वह पौराणिक उपन्यास कहलाता है। ऐतिहासिक उपन्यास के समान इसमें कथा का आधार तो पुराण से संबंधित होता है लेकिन उद्देश्य आधुनिक होता है। उदाहरण—हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास "अनामदास का पोथा"।

5 घटना-प्रधान उपन्यास : जिस उपन्यास में घटना की प्रधानता हो वह घटना प्रधान उपन्यास कहलाता है। ऐसे उपन्यासों में कथा की रोचकता घटना के विकास से जुड़ी रहती है। तेजी से बदलती हुई घटनाएँ कथा को रोचक बनाती है। पाठक उपन्यास को इसलिए पढ़ता जाता है कि कथा में एक के बाद एक घटना के साथ यह संभावना बनी रहती है कि आगे क्या होगा? जासूसी, ऐयारी, तिलिस्मी उपन्यास इसी वर्ग में आते हैं। आप इसी पाठ में हिंदी उपन्यास के विकास के अंतर्गत पढ़ेंगे कि हिंदी के आरंभिक उपन्यास इसी प्रकार के होते थे।

6 भाव-प्रधान उपन्यास : जिन उपन्यासों में भावनात्मक संघर्ष को कथा का आधार बनाया जाता है उसे भाव-प्रधान उपन्यास कहते हैं। ऐसे उपन्यासों में पात्रों के मन में उठने वाले भावों का चित्रण किया जाता है। उदाहरण के लिए जैनेंद्र के उपन्यास "सुनीता" को इसी वर्ग में रखा जा सकता है।

11.3.2 चरित्र-चित्रण के आधार पर

जिस उपन्यास में किसी मुख्य चरित्र को केंद्र में रखकर कथा का विकास किया जाता है उसे चरित्र-प्रधान उपन्यास कहते हैं। उदाहरण के लिए आप इस खंड में जिस उपन्यास का अध्ययन करेंगे वह चरित्र प्रधान उपन्यास है। "निर्मला" उपन्यास का प्रमुख नारी पात्र है। पूरी कथा उसके जीवन से संबंधित है। अन्य छोटी कथाएँ उसके चरित्र को पुष्ट करने के लिए निर्मित हुई हैं। चरित्र-प्रधान उपन्यास दो प्रकार के होते हैं। एक को तो आप जान गये दूसरा चरित्र-प्रधान उपन्यास वह होता है जिसमें लेखक चरित्र-चित्रण के लिए मनोवैज्ञानिक पद्धति का सहारा लेता है। अर्थात् पात्रों के मनोभावों को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए, जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी ने ऐसे उपन्यासों की रचना की।

11.3.3 परिवेश के आधार पर

प्रत्येक उपन्यास का कोई न कोई परिवेश होता है। लेकिन जिस उपन्यास में अन्य तत्वों की अपेक्षा परिवेश की प्रधानता होती है उसे परिवेश-प्रधान उपन्यास के अंतर्गत रखा जा सकता है। लेखक जिस परिवेश को अपनाता है उसकी संपूर्ण विशेषता को प्रकट करता है। रचनाकार परिवेश द्वारा मानव मन पर पड़ने वाले प्रभाव को बड़े सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत करता है। हिंदी के सारे मनोवैज्ञानिक उपन्यास वातावरण-प्रधान उपन्यास हैं। इलाचंद्र जोशी के उपन्यास को पढ़ने पर आप स्पष्ट पहचान सकते हैं कि उपन्यास में परिवेश अर्थात् वातावरण की ही प्रमुखता है।

11.3.4 शैली के आधार पर

शैली का अर्थ है रूप अर्थात् उपन्यास किस रूप में प्रस्तुत किया गया है। पहले उपन्यास लिखने का एक ही तरीका था अर्थात् कथावस्तु का आरंभ करके उसका विकास करना तथा अंत तक पहुँचा देना लेकिन आज ऐसा नहीं है। आज उपन्यास लिखने की कई शैलियाँ विकसित हो चुकी हैं। अगर उपन्यास की कथा किसी पात्र के मुख से कहलाई गई है तो उसे **आत्मकथात्मक शैली** का उपन्यास कह सकते हैं। उदाहरण के लिए, आप हजारी प्रसाद द्विवेदी के "**बाणभट्ट की आत्मकथा**" तथा जैनेन्द के "**त्यागपत्र**" को देख सकते हैं। अगर उपन्यास की कथा पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है तो उसे **पत्र शैली** का उपन्यास कहेंगे। उदाहरण के लिए पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र लिखित "**चंद हसीनों के खतूत**" उपन्यास पत्र शैली में है। अगर उपन्यास डायरी के रूप में लिखा जाए तो वह **डायरी शैली** का उपन्यास कहलाएगा। उदाहरण के लिए, डॉ. देवराज का उपन्यास "**अजय की डायरी**" डायरी शैली में है। जिस उपन्यास में प्रतीक के द्वारा कथा कही गई हो उसे **प्रतीकात्मक शैली** का उपन्यास कहेंगे। उदाहरण के लिए, लक्ष्मीकांत वर्मा का "**खाली कुर्सी की आत्मा**" प्रतीकात्मक उपन्यास है। अगर उपन्यास अतार्किक रूप में स्वप्न चित्रों की तरह लिखा गया हो तो उसे फंतासी शैली का उपन्यास कहेंगे। जिस उपन्यास की कथा लोककथा पर आधारित हो उसे **लोक कथात्मक** शैली का उपन्यास कहेंगे। कई उपन्यासों में एक से अधिक शैली का मिश्रण भी हो सकता है।

11.3.5 प्रतिपाद्य के आधार पर

इस वर्ग के उपन्यास को हम दो आधारों पर बाँट सकते हैं। एक रचनाकार के दृष्टिकोण के आधार पर और दूसरा रचना में निहित उद्देश्य के आधार पर। रचनाकार की दृष्टि या तो

आदर्शवादी होती है या यथार्थवादी। जब रचनाकार किसी आदर्श को रखकर उपन्यास की रचना करता है तो उसे हम आदर्शवादी उपन्यास कहते हैं। प्रेमचंद के आरंभिक उपन्यास इसी वर्ग में रखे जा सकते हैं। जब उपन्यासकार अपने आदर्श को न रखकर जीवन के यथार्थ को उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत करता है तब उसे यथार्थवादी उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। इसमें जीवन की वास्तविकता को प्रस्तुत करना ही रचनाकार का उद्देश्य हो जाता है। जीवन का यथार्थ चाहे जैसा हो उसे उसी रूप में प्रस्तुत करता है। मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक उपन्यासकार समाज को मार्क्सवादी दृष्टि से देखते हैं और उसी के अनुरूप उपन्यास की रचना करते हैं। ऐसे उपन्यास को समाजवादी उपन्यास कह सकते हैं। यशपाल और नागार्जुन के उपन्यास इसी कोटि में आते हैं। मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में विश्वास रखने वाले उपन्यासकार उपन्यास में पात्रों के माध्यम से मनोविश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। ऐसे उपन्यास मनोविश्लेषणवादी उपन्यास कहे जाते हैं।

बोध प्रश्न

8 नीचे उपन्यास के भिन्न प्रकारों की परिभाषाएँ दी जा रही हैं। उसके आधार पर आप उनके नाम लिखिए।

i) जिस उपन्यास में अतीत की कथावस्तु प्रस्तुत की गई हो ....

ii) जिस उपन्यास की कथावस्तु का आधार सामाजिक समस्या हो ....

iii) जिस उपन्यास में पात्र के इर्द-गिर्द पूरी कथा चले ....

iv) जिस उपन्यास में किसी स्थान-विशेष का वर्णन हो ....

v) जिस उपन्यास की कथावस्तु स्वप्न की तरह लगे ....

बोध प्रश्न

9 निम्नलिखित आधारों पर उपन्यास के तीन भेद लिखिए।

i) कथावस्तु के आधार पर
क) ....
ख) ....
ग) ....

ii) परिवेश के आधार पर
क) ....
ख) ....
ग) ....

iii) शैली के आधार पर
क) ....
ख) ....
ग) ....

iv) प्रतिपाद्य के आधार पर
क) ....
ख) ....
ग) ....

11.4 हिंदी उपन्यास का विकास

अब तक आपने उपन्यास के स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त की है। अब आपके मन में यह प्रश्न जरूर उठ रहा होगा कि क्या हिंदी उपन्यास में समयानुकूल परिवर्तन आया है। यह प्रश्न स्वाभाविक है। इस प्रश्न के समाधान के लिए यह आवश्यक है कि हम हिंदी उपन्यास के विकास क्रम को जानें। इसके द्वारा हम यह जान पाऐंगे कि हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक रूप कैसा था, उसकी क्या-क्या विशेषताएँ थीं और उपन्यास विकासक्रम में कौन से महत्वपूर्ण परिवर्तन आए तथा उनकी विशिष्टता क्या है। साथ ही साथ हम यह भी जान पाऐंगे कि हिंदी के प्रारंभिक उपन्यासकार कौन थे तथा उनकी विशेषताएँ क्या थीं। हिंदी उपन्यास के विकासक्रम को जानकर हमें उनके मूल्यांकन में सुविधा होगी।

हिंदी कहानियों का अध्ययन करते समय आपने यह जानकारी प्राप्त की है कि कथा साहित्य की परंपरा भारत में अति प्राचीन काल से रही है, लेकिन कहानी की तरह उपन्यास विधा का विकास भी पश्चिम के प्रभाव का ही परिणाम है। हिंदी उपन्यास का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इस विधा का विकासक्रम भारतेन्दु युग से प्रारंभ हुआ। प्रथमतः बंगला उपन्यासों के अनुवाद द्वारा हिंदी उपन्यास की शून्यता दूर हुई। भारतेन्दु युग में जिस प्रकार गद्य की अन्य विधाओं का विकास हुआ उसी प्रकार उपन्यास विधा को भी गति मिली। भारतेन्दु की प्रेरणा से लेखक इस

त्था में लेखन के लिए प्रोत्साहित हुए। लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखा गया उपन्यास "परीक्षा गुरु" को हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास माना जाता है।

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद का योगदान केंद्रीय महत्व रखता है। इसलिए उन्हीं को आधार मानकर हिंदी उपन्यास के विकासक्रम को मोटेतौर पर तीन चरणों में रखा जा सकता है।

प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यास
प्रेमचंद युग के उपन्यास
प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यास

11.4.1 प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास

प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासों को उद्देश्यों की दृष्टि से दो भागों में रखा जा सकता है– 1) शुद्ध मनोरंजन 2) मनोरंजन के साथ सुधारवादी भावना।

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यासों में तिलिस्मी, ऐयारी तथा जासूसी उपन्यास शामिल हैं। सुधारवादी भावना से युक्त उपन्यासों में सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को रखा जाता है।

तिलिस्मी, ऐयारी उपन्यास के लेखकों में प्रमुख हैं: देवकीनंदन खत्री (चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति), किशोरी लाल गोस्वामी (तिलिस्मी शीश महल), हरेकृष्ण जौहर (कुसुमलता), तथा रामलाल वर्मा (पुतनी महल)

जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने अद्भुत लाश, बेकसूर की फाँसी, सरकती लाश आदि उपन्यासों की रचना की।

इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था। पाठक ऐसे उपन्यासों को बड़े शौक से पढ़ते थे। उपन्यास में विचित्र घटनाओं की भरमार होती थी तिलिस्मी घटनाओं के बीच प्रेमकथाओं को रखा जाता था, अलबेले अनोखे प्रेमियों के अद्भुत कारनामों से पाठक में दिलचस्पी बनी रहती थी। ऐसे उपन्यासों में कौतूहल भरा रहता था। तिलिस्मी उपन्यासों में दो तीन कथाओं की गुत्थियों के साथ वर्णन किया जाता था। फिर उन गुत्थियों को सुलझाने के लिए लेखक अनेकानेक घटनाओं की रचना करता था कथा में नाटकीय मोड़ उपस्थित करके रोचकता पैदा की जाती थी। ऐसे उपन्यासों से हिंदी गद्य के विकास में सहायता मिली। उपन्यास पढ़ने के लिए उन व्यक्तियों ने भी हिंदी की लिपि सीखी जो केवल उर्दू जानते थे। इन उपन्यासों की भाषा साधारण बोलचाल की थी, इसलिए पाठकों को उपन्यास पढ़ने में कठिनाई नहीं होती थी। यद्यपि इस युग के उपन्यासों का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन था लेकिन बाद के उपन्यासों में उपन्यासकार यथार्थ के चित्रण की ओर उन्मुख हुए।

उद्देश-प्रधान सामाजिक उपन्यासों में उस समय की सामाजिक वास्तविकताओं का वर्णन करते हुए कोई न कोई समाधान दिया गया है। उपन्यास के माध्यम से लेखक समाज की बुराइयों का चित्रण करता है। और उन बुराइयों को दूर करने का उपाय बताता है। उद्देश्यपरक इन उपन्यासों से यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति का विकास होता है। इस प्रकार के उपन्यासकारों में लाला श्रीनिवासदास (परीक्षा गुरू), राधाकृष्णदास (निस्सहाय हिन्दू), बालकृष्ण भट्ट (नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान), ठाकुर जगमोहन सिंह (श्यामा स्वप्न), किशोरी लाल गोस्वामी तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय (अधखिला फूल, ठेठ हिंदी का ठाठ) आदि मुख्य हैं।

इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी की गई। भारतीय इतिहास के अतीत से कथावस्तु का चयन किया गया तथा उसे कल्पना के सहारे नवीन रूप देकर प्रस्तुत किया गया। ऐसे उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी (हृदयहारिणी, आदर्श रमणी, तारा, रज़िया बेगम) गंगा प्रसाद गुप्त (पृथ्वीराज चौहान), श्यामसुन्दर वैद्य (पंजाब पतन) आदि मुख्य हैं।
प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासों में आदर्शवाद के साथ भावुकता तथा भारतीय आदर्श को प्रस्तुत किया गया है। भाषा की दृष्टि से जो प्रौढ़ता प्रेमचंद युग में आई उसका इस युग की रचनाओं में अभाव है।

11.4.2 प्रेमचंद युगीन हिंदी उपन्यास

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद के आगमन से एक नए युग का सूत्रपात होता है। जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने का कार्य इस युग में होता है। वैसे स्वयं प्रेमचंद ने प्रथमतः आदर्शवादी उपन्यासों की रचना की किंतु बाद में उन्होंने यथार्थवादी उपन्यासों की रचना की। इस प्रकार के उपन्यासों की शुरुआत प्रेमचंद के सेवासदन (1918) से होता है। इस उपन्यास में समाज की समस्या को स्थान दिया गया। सामाजिक अत्याचार से पीडित नारी समाज के पतन और

वेश्यावृत्ति में सुधार की समस्या का विश्लेषण किया गया है। पूर्वयुग के उपन्यासों की चर्चा करते हुए प्रेमचंद ने कहा :

"हमने जिस युग को अभी पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की सृष्टि खड़ी कर उनमें मनमाने तिलिस्मी बाँधा करते थे। कहीं फ़िसानये अजायब की दास्तान थी, कहीं बोस्ताने ख्याल की और कहीं चंद्रकांता संतति की। इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और हमारे अद्भुत रस-प्रेम की तृप्ति। साहित्य का जीवन से कोई लगाव है यह कल्पनातीत था। कहानी कहानी है, जीवन जीवन। दोनों परस्पर विरोधी समझी जाती थी।"

प्रेमचंद ने सामाजिक-कुरीतियों, राष्ट्रीय भावनाओं, ग्रामीण जीवन की समस्याओं, मजदूर, किसान, नेता, उपदेशक, राजा-रंक, सभी का यथार्थ चित्रण किया है। एक ओर तो उनके उपन्यासों में गरीबों, बेबसों, उत्पीड़ितों का कारुणिक चित्रण हुआ है वहीं उनके अंदर छिपे हुए मानवता को भी दर्शाया है। प्रेमचंद ने व्यवहारिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। पाठक उपन्यास को पढ़ने में कहीं बाधा महसूस नहीं करता। मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग कर भाषा को और सहज बनाया। प्रेमचंद ने उपन्यास रचना में भिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया।

प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास हैं प्रेमा (1907), सेवासदन (1918), वरदान (1920), प्रेमाश्रम (1922), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), निर्मला (1927), गबन (1931), कर्मभूमि (1932), गोदान (1936), मंगलसूत्र- (अधूरा) 1948।

प्रेमचंद युग के अन्य उपन्यासकारों ने भी समाज के यथार्थ का चित्रण किया इनमें विश्वेश्वरनाथ शर्मा (भिखारिणी, माँ), पांडेय बेचन शर्मा उग्र (बुधुवा की बेटी, शराबी), चतुरसेन शास्त्री की (हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा, बहते आँसू), सियारामशरण गुप्त (गोद, अंतिम आकांक्षा) आदि हैं।

जयशंकर प्रसाद ने भी इस युग में दो उपन्यासों की रचना की। वे हैं : 'कंकाल' और 'तितली', यद्यपि इन रचनाओं में यथार्थ का चित्रण किया गया है लेकिन लेखक की शैली भिन्न है। दोनों उपन्यासों में वर्तमान कालीन समाज के उत्थान-पतन का चित्रण किया गया है।

इस युग में उपन्यास की दो प्रकार की शैलियों का चलन हुआ जिन्हें प्रेमचंद शैली तथा प्रसाद शैली कहा गया। दोनों शैलियों में मुख्य अंतर घटना और भावना को लेकर है। प्रेमचंद की शैली में घटना को प्रमुख स्थान दिया गया वहीं प्रसाद शैली में मानव मन के विश्लेषण पर जोर दिया गया।

11.4.3 प्रेमचंदोत्तर युग के हिंदी उपन्यास

प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास के विकास में गति आई। आपने देखा कि प्रेमचंद युग में ही इस विधा में दो धाराएँ उभर रही थीं। बाद में ये धाराएँ स्पष्ट रूप से सामने आ गईं। एक धारा प्रेमचंद के यथार्थवादी परंपरा में विकास की ओर अग्रसर हुई तो दूसरी धारा प्रसाद की भाववादी परंपरा पर आगे बढ़ी। दूसरी धारा में प्रगतिवादी और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का विकास हुआ।

सामाजिक एवं समाजवादी उपन्यास

सामाजिक एवं समाजवादी उपन्यासों में जीवन के यथार्थ का चित्रण होता है। दोनों प्रकार के उपन्यासों में अंतर इस बात का है कि समाजवादी उपन्यासकार समाज के यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से देखते हैं और उसी के अनुसार उपन्यास की कथावस्तु को प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों में समाज की वास्तविकता को प्रमुख स्थान दिया गया। धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक शोषण को केंद्र में रखकर उपन्यास की रचना की गई। इन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण में अंतर्मन के बजाय बाह्य कार्य-व्यापार पर अधिक ध्यान दिया गया।

इस प्रकार के उपन्यासकारों में यशपाल (दादा कामरेड, झूठा सच) उपेंद्रनाथ अश्क (गिरती दीवारें, गर्म राख, शहर में घूमता आईना), अमृत राय (बीज, धुआँ), रागेय राघव (घरौंदे), भीष्म साहनी (तमस, कड़ियाँ, झरोखे) अमृतलाल नागर (बूँद और समुद्र), मोहन राकेश (अँधेरे बंद कमरे), राजेंद्र यादव (उखड़े हुए लोग, सारा आकाश) आदि मुख्य हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास

प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में कुछ ऐसे उपन्यासकार आए जिन्होंने मानव मन को ही कथा का मुख्य आधार बनाया। इनमें सामाजिक समस्याओं के स्थान पर व्यक्ति की वैयक्तिक पीड़ाओं एवं मानसिक द्वंद्व को प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार के उपन्यासों की रचना के पीछे प्रसिद्ध मनोविश्लेषक फ्रायड, एडलर तथा जुंग के सिद्धांत का प्रभाव है। मानव मन में अवचेतन

क्रियाओं तथा मानसिक ग्रंथियों को कथा का आधार बनाया गया। मानव के अंतमन के द्वंद्व सत्य तथा चरित्र की वैयक्तिक विशिष्टता का उद्घाटन हुआ है।

इस धारा के उपन्यासकारों में जैनेन्द्र (सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी), इलाचंद्र जोशी (निर्वासित, जहाज का पंछी), अज्ञेय (शेखर : एक जीवनी, अपने अपने अजनबी) मुख्य हैं।

आंचलिक उपन्यास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपन्यास के क्षेत्र में एक नई धारा का विकास हुआ, वह था आंचलिक उपन्यास की धारा। इस प्रकार के उपन्यासों में रचनाकार क्षेत्र विशेष से कथावस्तु का चयन करता है। क्षेत्र विशेष या अंचल विशेष के आधार पर कथा रचने के कारण ही इसे आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गई। इस प्रकार के उपन्यासों की शुरुआत फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्याम "मैला आंचल" से हुई। लेखक ने इस उपन्यास में बिहार के पूर्णिया जिले के एक गाँव "मीरगंज" को आधार बनाया है। अंचल विशेष की सारी विशेषताओं को उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ऐसे उपन्यासों में भाषा, रहन-सहन, आचार-विचार आदि सभी का वर्णन अंचल विशेष के अनुसार होता है।

इस प्रकार के उपन्यास लेखकों में फणीश्वरनाथ रेणु (मैला-आचल, परती परिकथा), उदयशंकर भट्ट (सागर लहरें और मनुष्य), रागेय राघव (कब तक पुकारूँ), राही मासूम रजा (आधा गाँव) आदि मुख्य हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए। लेकिन ऐसे उपन्यासों में प्रमुख परिवर्नन आया। इस युग में यथार्थवादी दृष्टिकोण के आधार पर ऐसे उपन्यासों की रचना हुई। समाजवादी दृष्टि के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मार्क्सवादी दृष्टि की प्रधानता दी। ऐसे उपन्यासकारों में राहुल सांकृत्यायन (सिंह सेनापति), यशपाल (दिव्या), रागेय राघव (मुर्दों का टीला)।

मानवतावादी दृष्टिकोण के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मानवतावादी दृष्टि को उभारा। इनमें हजारी प्रसाद द्विवेदी (बाण भट्ट की आत्मकथा, अनामदास का पोथा), वृन्दावनलाल वर्मा, (विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी), अमृतलाल नागर (शतरंज की मोहरे, मानस का हंस), भगवती चरण वर्मा (चित्रलेखा, वैशाली की नगरवधू), आचार्य चतुरसेन शास्त्री (सोमनाथ)आदि।

बोध प्रश्न

10 क्या कारण थे कि प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यास पाठकों में अत्यंत लोकप्रिय हुए? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

11 प्रेमचंद पूर्व युग के चार उपन्यासकारों के नाम तथा प्रत्येक की एक-एक रचना के नाम बताइए।

	उपन्यासकार	उपन्यास
i)	....	....
ii)	....	....
iii)	....	....
iv)	....	....

12 प्रेमचंद एवं प्रसाद के उपन्यासों की दो-दो विशेषताएँ बताइए।

प्रेमचंद

....

....

प्रसाद

....

....

13 उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए।

क) जिन उपन्यासों में समाज के यथार्थ का चित्रण होता है उन्हें .... उपन्यास कहते हैं।

ख) मानसिक द्वंद्व को आधार बनाकर लिखे जाने वाले उपन्यास .... कहलाते हैं।

ग) आंचलिक उपन्यास लेखकों में प्रथम नाम .... का है।

घ) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ऐतिहासिक उपन्यासों का आधार भी .... हो गया।

11.5 सारांश

आपने इस इकाई को सावधानी पूर्वक पढ़ा होगा। आपने देखा कि उपन्यास विधा साहित्य की लोकप्रिय विधा है। इस पाठ को पढ़ने के बाद:

- उपन्यास के स्वरूप को बता सकते हैं।
- कहानी एवं उपन्यास साहित्य की लोकप्रिय विधा है। दोनों विधाओं में बहुत से तत्व समान होते हैं किंतु फिर भी दोनों विधाएँ अलग हैं, आप इसके मूलभूत अंतर स्पष्ट कर सकते हैं।
- उपन्यास में केवल कल्पित कथा को ही प्रस्तुत नहीं किया जाता। जीवन के तथ्य का इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जो रोचक हो, आप उपन्यास के रचनागत वैशिष्ट्य को बता सकते हैं।
- हिंदी उपन्यास का प्रारंभ भी 19वीं शती के प्रथम दशक में हुआ। आरंभिक हिंदी उपन्यास किस प्रकार के होते थे तथा किस प्रकार इसमें परिवर्तन आया तथा किन उपन्यासकारों ने हिंदी उपन्यास को उत्कृष्टता प्रदान की, उसका विश्लेषण कर सकते हैं।

11.6 शब्दावली

रचनागत वैशिष्ट्य: रचना की विशेषता, साहित्यिक कृति की विशेषता

आयाम: विस्तार

तिलिस्मी: अद्भुत या अलौकिक व्यापार, करामात।

चमत्कारी: आश्चर्यजनक कार्य या व्यापार, आश्चर्य का विषय या विचित्र घटना।

अजीबोग़रीब: विचित्र, अनोखा।

हैरतअंगेज़: आश्चर्य चकित कर देने वाला।

करतब: कार्य, काम, करामात, जादू।

मूलभूत: किसी वस्तु के मूल या तत्व से संबंध रखने वाला, असल।

अप्रासंगिक: प्रसंग के विरुद्ध

अविश्वसनीय: जिस पर विश्वास न हो

नाटकीयता : नाटक-संबंधी, बहुत ही आकस्मिक रूप से, परंतु कुशलता और चतुरता पूर्वक किया जाने वाला कार्य।

निहित : छिपा हुआ

समकालीन : जो एक ही समय में हुए हों।

मूल्यांकन : किसी रचना का मूल्य या महत्व आँकना या समझना।

प्रोत्साहित : किसी काम के लिए उत्साह बढ़ाना।

फ़िसानये अजायब : विचित्र कथा, वृतान्त, हाल, कहानी, किस्सा, वर्णन।

मानसिक ग्रंथि : मन संबंधी गुत्थी।

11.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 i) पहले के उपन्यासों में मानसिक द्वंद्व का चित्रण होता था।

ii) जीवन के यथार्थ का चित्रण होता था।

2 i) उपन्यास में व्यापक जीवन का चित्रण होता है जबकि कहानी में जीवन के किसी एक अंश का।

ii) उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है जबकि कहानी में कम और एक दो पात्र ही महत्वपूर्ण होते हैं।

iii) उपन्यास में परिवेश का विस्तार से चित्रण किया जाता है जबकि कहानी में इसके लिए अवकाश नहीं रहता।

3 i) कथावस्तु
ii) वार्तालाप
iii) परिवेश
iv) शैली
v) उद्देश्य

अभ्यास

1 पहले के उपन्यास में घटनाओं की भरमार रहती थी। रहस्य, रोमांच एवं अवास्तविकता का चित्रण अधिक होता था। नायक अद्भुत कारनामे करता था। आज के उपन्यास में अवास्तविकता के स्थान पर यथार्थ का चित्रण अधिक होता है। जीवन में जो घटनाएँ घटती हैं उनका स्वाभाविक ढंग से चित्रण होता है।

बोध प्रश्न

4 घ

5 पात्रों के संवाद
पात्रों द्वारा स्वयं के बारे में सोच से
लेखक स्वयं भी पात्रों के बारे में कुछ कहता है।

6 ग

7 i) लेखक की अपनी रुचि
ii) उपन्यास के कथावस्तु के अनुसार

8) i) ऐतिहासिक उपन्यास
ii) सामाजिक उपन्यास
iii) चरित्र प्रधान उपन्यास
iv) आंचलिक उपन्यास
v) फंतासी उपन्यास

9

i)	क) घटना प्रधान	ख) पारिवारिक	ग) ऐतिहासिक
ii)	क) आंचलिक	ख) महानगरीय	ग) कस्बाई
iii)	क) फंतासी	ख) डायरी	ग) प्रतीकात्मक
iv)	क) आदर्शवादी	ख) यथार्थवादी	ग) समाजवादी

10 प्रेमचंद पूर्व के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था। उपन्यासों में विचित्र घटनाओं से पाठक के मन में यह कौतूहल बना रहता था कि आगे क्या होगा? इस कारण ऐसे उपन्यास लोकप्रिय हुए।

11

उपन्यासकार	उपन्यास
i) देवकीनंदन खत्री	चंद्रकांता संतति
ii) किशोरीलाल गोस्वामी	तिलिस्मी शीश महल
iii) हरेकृष्ण जौहर	कुसुमलता
iv) गोपालराम गहमरी	बेकसूर को फाँसी

12 प्रेमचन्द
   i) सामाजिक उपन्यासों का चित्रण
   ii) ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण

   प्रसाद
   i) मानव मन के अर्न्तद्वंद्व का चित्रण
   ii) संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग

13 क) यथार्थवादी
   ख) मनोवैज्ञानिक
   ग) फणीश्वरनाथ रेणु
   घ) यथार्थ चित्रण हो गया

इकाई 12 "निर्मला" (प्रेमचंद) वाचन एवं व्याख्या-I

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 उपन्यास का वाचन
12.3 कथासार
12.4 संदर्भ सहित व्याख्या
12.5 सारांश
12.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास "निर्मला" पढ़ने जा रहे हैं। इस उपन्यास के पठन या वाचन से पूर्व आप लेखक का सामान्य परिचय भी प्राप्त करेंगे। वाचन की सुविधा के लिए हमने उपन्यास को दो इकाइयों में बाँटा है। दोनों इकाइयों में पढ़े गए भागों का कथासार तथा महत्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या भी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- पढ़े गए भाग का कथासार अपने शब्दों में लिख सकेंगे,
- बीच-बीच में आए कठिन शब्दों का अर्थ बता सकेंगे,
- कथा में आए मुहावरों एवं कहावतों के अर्थ बता सकेंगे तथा उनका वाक्यों में प्रयोग कर सकेंगे,
- महत्वपूर्ण अंशों एवं उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

आपने ऐच्छिक पाठ्यक्रम के अंतर्गत खंड दो में "कहानी" विधा का अध्ययन किया है। आपने अन्य महत्वपूर्ण कहानियों के अलावा मुंशी प्रेमचंद की कहानी "शंतरज के खिलाड़ी" का भी अध्ययन किया है। अब आप साहित्य की महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय विधा "उपन्यास" का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई से हम "निर्मला" उपन्यास का वाचन करेंगे। इस उपन्यास के लेखक मुंशी प्रेमचंद हैं। इस इकाई में आप उपन्यास के प्रथम परिच्छेद से बारह परिच्छेद तक की कथा का अध्ययन करेंगे। कथा को भली-भाँति समझने के लिए हम पढ़े गए अंश का कथासार भी दे रहे हैं। इस खंड की पहली इकाई के अध्ययन से हम जान चुके हैं कि उपन्यास का आकार बड़ा होता है। लेखक विस्तार से कथा का वर्णन करता है। कथा का वर्णन करते समय लेखक कभी-कभी ऐसे शब्दों का प्रयोग भी करता है जो सामान्य प्रयोग से भिन्न होता है। वाचन की सुविधा के लिए हमने ऐसे शब्दों का अर्थ भी दिया है। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में मुहावरों एवं कहावतों का भरपूर प्रयोग किया है। भाषा को प्रभावशाली बनाने में ऐसे प्रयोग सहायक हुए हैं। हम कथा को समझने के लिए ऐसे मुहावरों का अर्थ भी जानेंगे। उपन्यास का वाचन करते समय आपके सामने कुछ ऐसे अंश आयेंगे जिन्हें समझने के लिए व्याख्या की आवश्यकता पड़ेगी। हम इस इकाई में पाठ में आए ऐसे महत्वपूर्ण अंशों एवं उक्तियों की सप्रसंग व्याख्या करना भी सीखेंगे। आइए, उपन्यास को पढ़ने से पूर्व लेखक के बारे में जानें।

"निर्मला" के लेखक मुंशी प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई सन् 1880 ई. को काशी से चार मील दूर लमही ग्राम में हुआ था। इनके बचपन का नाम धनपतराय था। पिता डाकमुंशी थे। जब ये छोटे थे तभी माता-पिता का निधन हो गया था। अनेक कष्ट सहते हुए तथा बच्चों को पढ़ाकर इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। नौकरी करते हुए एफ.ए. तथा बी.ए. भी किया। तत्कालीन भारत में राजनीतिक स्थिति अच्छी नहीं थी। अत्याचारी अंग्रेजी शासन के खिलाफ आंदोलन हो रहे थे। जनता विदेशी शासन को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थी। गांधी जी के आगमन से इस आंदोलन में एक नई शक्ति आई। उनके नेतृत्व से आंदोलन में और गति आई। गांधी जी ने "असहयोग आंदोलन" की शुरुआत की। उन्होंने शासन के खिलाफ देशवासियों से सरकारी नौकरी त्यागने का आह्वान किया। प्रेमचंद ने भी इस आंदोलन में भाग लिया और सरकारी

नौकरी का परित्याग किया। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भी राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान दिया।

प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे। बाद में हिंदी में लेखन का कार्य आरंभ किया और जीवन पर्यंत हिंदी साहित्य के भंडार को भरने के लिए प्रयत्नशील रहे। उन्होंने गद्य की विविध विधाओं में लेखन का कार्य किया। तत्कालीन समाज की समस्याओं का यथार्थ चित्रण उनकी रचनाओं में मिलता है। राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक जागरण को उन्होंने लेखन का आधार बनाया। 8 अक्तूबर 1936 में उनकी जीवन लीला समाप्त हुई।

प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य को अमूल्य भेंट दी है। साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं में रचना करने के साथ ही साथ उन्होंने जीवनियाँ लिखीं तथा अनुवाद का कार्य भी किया है। हिंदी उपन्यास एवं कहानी विधाओं को उन्होंने विश्व स्तर तक पहुँचाया। उन्होंने लगभग ग्यारह उपन्यास, तीन नाटक तथा करीब तीन सौ कहानियों की रचना की। उनके उपन्यास हैं :

1 प्रतिज्ञा या प्रेमा	2 वरदान,	3 सेवासदन	4 प्रेमाश्रम
5 निर्मला	6 रंगभूमि,	7 कायाकल्प	8 गबन
9 कर्मभूमि	10 गोदान,	11 मंगलसूत्र (अपूर्ण)	

''मानसरोवर'' कहानी संग्रह के आठ खंडों में उनकी अधिकांश कहानियाँ संकलित हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में ''पूस की रात'', ''ईदगाह'', ''कफन'', ''शतरंज के खिलाड़ी'', ''बड़े घर की बेटी'', ''ठाकुर का कुआँ'', ''पंचपरमेश्वर'', ''सुजान भगत'' आदि हैं।

प्रेमचंद ने तीन नाटकों की रचना की। वे हैं : 1 संग्राम, 2 कर्बला, 3 प्रेम की वेदी।

प्रेमचंद से पूर्व हिंदी उपन्यास की समृद्ध परंपरा नहीं थी। उन्होंने कथ्य तथा संरचना दोनों दृष्टियों से हिंदी उपन्यास को नया स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज की समस्याओं का आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किया। बाद के उपन्यासों में उन्होंने यथार्थ एवं आदर्श को समान रूप से स्थान दिया।

''निर्मला'' उनका बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें उन्होंने नारी जीवन के यथार्थ तक अपने को सीमित रखा है। कहानी निर्मला के जीवन तक सीमित है। यद्यपि कुछ प्रासंगिक कथाएँ भी रखी गई हैं, लेकिन वे मुख्य कथा को सशक्त बनाने के लिए ही हैं। उपन्यास का वाचन करने पर आप पायेंगे कि लेखक की सहानुभूति सभी पात्रों के साथ है। तोताराम जैसे चरित्र को भी वे घृणा का पात्र नहीं बनाते हैं। आइए उपन्यास का वाचन प्रारंभ करें।

12.2 उपन्यास का वाचन

1

कथा का आरंभ

निर्मला का परिचय

निर्मला का विवाह तय होना

यों तो बाबू उदयभानुलाल के परिवार में बीसों ही प्राणी थे, कोई ममेरा भाई था, कोई फुफेरा, कोई भांजा था, कोई भतीजा, लेकिन यहाँ हमें उनसे कोई प्रयोजन नहीं। वह अच्छे वकील थे, **लक्ष्मी प्रसन्न थी**[1] और कुटुम्ब के दरिद्र प्राणियों को आश्रय देना उनका कर्तव्य ही था। हमारा सम्बन्ध तो केवल उनकी दोनों कन्याओं से है, जिनमें बड़ी का नाम निर्मला और छोटी का कृष्णा था। अभी कल दोनों साथ-साथ गुड़िया खेलती थीं। निर्मला का पन्द्रहवाँ साल था, कृष्णा का दसवाँ, फिर भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों चंचल, खिलाड़िन और सैर-तमाशे पर जान देती थीं। दोनों गुड़ियों का धूम-धाम से ब्याह करती थीं, सदा **काम से जी चुराती**[2] थीं। माँ पुकारती रहती थी पर दोनों कोठे पर छिपी बैठी रहती थीं कि न जाने किस काम के लिए बुलाती हैं। दोनों अपने भाइयों से लड़ती थीं, नौकरों को डाँटती थीं और बाजे की आवाज सुनते ही द्वार पर आकर खड़ी हो जाती थीं। पर आज एकाएक एक ऐसी बात हो गई है, जिसने बड़ी को बड़ी और छोटी को छोटी बना दिया है। कृष्णा वही है, पर निर्मला बड़ी गंभीर, एकान्त-प्रिय और लज्जाशील हो गई है। इधर महीनों से बाबू उदयभानुलाल निर्मला के विवाह की बातचीत कर रहे थे। आज उनकी मेहनत ठिकाने लगी है। बाबू भालचन्द्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवन मोहन सिन्हा से बात पक्की हो गई है। वर के पिता ने कह दिया है कि आपकी खुशी हो दहेज दें, या न दें, मुझे इसकी परवाह नहीं; हाँ बारात में जो लोग जायँ, उनका आदर-सत्कार

1 आर्थिक स्थिति अच्छी थी, 2 मु०—काम न करने या उससे बचने का प्रयत्न करती थीं

अच्छी तरह होना चाहिए, जिसमें मेरी और आपकी जग-हँसाई न हो। बाबू उदयभानुलाल थे तो वकील पर संचय करना न जानते थे। दहेज उनके सामने कठिन समस्या थी। इसलिए जब वर के पिता ने स्वयं कह दिया कि मुझे दहेज की परवाह नहीं तो मानो उन्हें आँखें मिल गईं। डरते थे, न जाने किस-किस के सामने हाथ फैलाना पड़े, दो-तीन महाजनों को ठीक कर रखा था। उनका अनुमान था कि हाथ रोकने पर भी बीस हजार से कम खर्च न होंगे। यह आश्वासन पाकर वे खुशी के मारे फूले न समाये।

इसकी सूचना ने अज्ञात बालिका को मुँह ढाँप कर एक कोने में बिठा रखा है। उसके हृदय में एक विचित्र शंका समा गई, रोम-रोम में एक अज्ञात भय का संचार हो गया है—न जाने क्या होगा? उसके मन में वे उमंगें नहीं हैं, जो युवतियों की आँखों में तिरछी चितवन बन कर, ओठों पर मधुर हास्य बन कर और अंगों में आलस्य बनकर प्रकट होती हैं। नहीं, वहाँ अभिलाषाएँ नहीं हैं; वहाँ केवल शंकाएँ, चिंताएँ और भीरु कल्पनाएँ हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है।

कृष्णा कुछ-कुछ जानती है, कुछ-कुछ नहीं जानती। जानती है, बहिन को अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे, द्वार पर बाजे बजेंगे, मेहमान आयेंगे; नाच होगा—यह जानकर प्रसन्न है; और यह भी जानती है कि बहिन सब के गले मिलकर रोयेगी, यहाँ से रो-धोकर विदा हो जायगी, मैं अकेली रह जाऊँगी—यह जानकर दुःखी है। पर यह नहीं जानती कि यह सब किसलिए हो रहा है, माताजी और पिता जी क्यों बहिन को घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं। बहिन ने तो किसी को कुछ नहीं कहा, किसी से लड़ाई नहीं की, क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी ये लोग निकाल देंगे? मैं भी इसी तरह कोने में बैठकर रोऊँगी और किसी को मुझ पर दया न आयेगी? इसलिए वह भयभीत भी है।

संध्या का समय था, निर्मला छत पर जाकर अकेली बैठी आकाश की ओर तृषित नेत्रों से ताक रही थी। ऐसा मन होता था कि पंख होते तो वह उड़ जाती और इन सारे झंझटों से छूट जाती। इस समय बहुधा दोनों बहिनें कहीं सैर करने जाया करती थीं। बग्घी खाली न होती, तो बगीचे ही में टहला करतीं। इसलिए कृष्णा उसे खोजती फिरती थी। जब कहीं न पाया, तो छत पर आई और उसे देखते ही हँसकर बोली—तुम यहाँ आकर छिपी बैठी हो और मैं तुम्हें ढूँढती फिरती हूँ। चलो, बग्घी तैयार करा आयी हूँ।

निर्मला ने उदासीन भाव से कहा—तू जा, मैं न जाऊँगी।

कृष्णा—नहीं मेरी अच्छी दीदी, आज जरूर चलो। देखो, कैसी ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है।

निर्मला—मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।

कृष्णा की **आँखें डबडबा आईं**[1]। काँपती हुई आवाज से बोली—आज तुम क्यों नहीं चलतीं? मुझसे क्यों नहीं बोलतीं? क्यों इधर-उधर छिपी-छिपी फिरती हो? मेरा जी अकेले बैठे-बैठे घबड़ाता है। तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगी।
यहीं तुम्हारे साथ बैठी रहूँगी।
निर्मला—और जब मैं चली जाऊँगी, तब क्या करेगी? तब किसके साथ खेलेगी, किसके साथ घूमने जायेगी, बता?
कृष्णा—मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। अकेले मुझसे यहाँ न रहा जायेगा।
निर्मला मुस्कराकर बोली—तुझे अम्मा न जाने देंगी।
कृष्णा—तो मैं भी तुम्हें न जाने दूँगी। तुम अम्मा से कह क्यों नहीं देतीं कि मैं न जाऊँगी?
निर्मला—कह तो रही हूँ, कोई सुनता है?
कृष्णा—तो क्या यह तुम्हारा घर नहीं है!
निर्मला—नहीं, मेरा घर होता तो क्यों जबर्दस्ती निकाल देता?
कृष्णा—इसी तरह किसी दिन मैं भी निकाल दी जाऊँगी?
निर्मला—और नहीं क्या तू बैठी रहेगी! हम लड़कियाँ हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता।
कृष्णा—चन्दर भी निकाल दिया जायेगा?
निर्मला—चन्दर तो लड़का है, उसे कौन निकालेगा?
कृष्णा—तो लड़कियाँ बहुत खराब होती होंगी?
निर्मला—खराब न होतीं तो घर से भगाई क्यों जातीं?
कृष्णा—चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भगाता। हम-तुम तो कोई बदमाशी भी नहीं करतीं।

1 मु० कृष्णा रोने-रोने को हो आयी; आँखों में आँसू भर आये

एकाएक चन्दर धम-धम करता हुआ छत पर आ पहुँचा और निर्मला को देखकर बोला—अच्छा! आप यहाँ बैठी हैं। ओहो! अब तो बाजे बजेंगे, दीदी दूल्हन बनेंगी, पालकी पर चढ़ेंगी ओहो! ओहो!!

चन्दर का पूरा नाम चन्द्रभानु सिन्हा था। निर्मला से तीन साल छोटा और कृष्णा से दो साल बड़ा।
निर्मला—चन्दर, मुझे चिढ़ाओगे तो अभी जाकर अम्मा से कह दूँगी।
चन्द्र—तो चिढ़ती क्यों हो? तुम भी बाजे सुनना। ओ हो-हो। अब आप दुल्हन बनेंगी। क्यों किशनी, तू बाजे सुनेगी न? वैसे बाजे तूने कभी न सुने होंगे।
कृष्णा—क्या बैण्ड से भी अच्छे होंगे?
चन्द्र—हाँ-हाँ, बैण्ड से भी अच्छे, हजार गुने अच्छे, लाख गुने अच्छे। तुम जानो क्या? एक बैण्ड सुन लिया तो समझने लगीं कि उससे अच्छे बाजे नहीं होते। बाजे बजाने वाले लाल-लाल वर्दियाँ और काली-काली टोपियाँ पहने होंगे। ऐसे खूबसूरत मालूम होंगे कि तुमसे क्या कहूँ; आतिशबाजियाँ भी होंगी, हवाइयाँ आसमान में उड़ जायेंगी और वहाँ तारों में लगेंगी तो लाल, पीले, हरे, नीले तारे टूट-टूटकर गिरेंगे। बड़ा मजा आयेगा।
कृष्णा—और क्या-क्या होगा चन्दर, बता दे मेरे भैया।
चन्द्र—मेरे साथ घूमने चल तो रास्ते में सारी बातें बता दूँ। ऐसे-ऐसे तमाशे होंगे कि देखकर तेरी **आँखें खुल जायेंगी**[1]। हवा में उड़ती हुई परियाँ होंगी, सचमुच की परियाँ।

कृष्णा—अच्छा चलो, लेकिन न बताओगे तो मारूँगी।

चन्द्रभानु और कृष्णा चले गये, पर निर्मला अकेली बैठी रह गई। कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ। कृष्णा, जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी **निठुर**[2] हो गई। अकेली छोड़कर चली गई! बात कोई न थी, लेकिन दुःखी हृदय दुखती हुई आँख है, जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है। निर्मला बड़ी देर तक बैठी रोती रही। भाई-बहिन, माता-पिता, सभी इसी भाँति मुझे भूल जायेंगे, सब की आँखें फिर जायेंगी, फिर शायद इन्हें देखने को भी तरस जाऊँ।

स्वप्न द्वारा निर्मला के भावी जीवन की सूचना

बाग में फूल खिले हुए थे। मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे। निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी-पड़ी सो गई और आँख लगते ही उसका मन स्वप्न-देश में विचरने लगा। क्या देखती है कि सामने एक नदी लहरें मार रही है और वह नदी के किनारे नाव की बाट देख रही है। सन्ध्या का समय है। अँधेरा किसी भयंकर जन्तु की भाँति बढ़ता चला आता है। वह घोर चिंता में पड़ी हुई है कि कैसे यह नदी पार होगी, कैसे घर पहुँचूँगी। रो रही है कि कहीं रात न हो जाय, नहीं तो मैं अकेली यहाँ कैसे रहूँगी। एकाएक उसे एक सुन्दर नौका घाट की ओर आती दिखाई देती है। वह खुशी से उछल पड़ती है और ज्योंही नाव घाट पर आती है, वह उस पर चढ़ने के लिए बढ़ती है लेकिन ज्योंही नाव के पटरे पर पैर रखना चाहती है, उसका मल्लाह बोल उठता है—तेरे लिए यहाँ जगह नहीं है! वह मल्लाह की **खुशामद**[3] करती है, उसके पैरों पड़ती है, रोती है लेकिन वह यह कहे जाता है, तेरे लिए यहाँ जगह नहीं है। एक क्षण में नाव खुल जाती है। वह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगती है। नदी के निर्जन तट पर रात भर कैसे रहेगी, यह सोच वह नदी में कूद कर उस नाव को पकड़ना चाहती है कि इतने में कहीं से आवाज आती है—ठहरो, ठहरो, नदी गहरी है, डूब जाओगी। वह नाव तुम्हारे लिए नहीं है, मैं आता हूँ, मेरी नाव पर बैठ जाओ मैं उस पार पहुँचा दूँगा। वह भयभीत होकर इधर-उधर देखती है कि यह आवाज कहाँ से आई। थोड़ी देर के बाद एक छोटी-सी डोंगी आती दिखाई देती है। उसमें न पाल है, न पतवार, और न मस्तूल। पेंदा फटा हुआ है, तख्ते टूटे हुए, नाव में पानी भरा हुआ है, और एक आदमी उसमें से पानी उलीच रहा है। वह उससे कहती है, यह तो टूटी हुई है, यह कैसे पार लगेगी? मल्लाह कहता है—तुम्हारे लिए यही भेजी गई है, आकर बैठ जाओ! वह एक क्षण सोचती है—इसमें बैठूँ या न बैठूँ? अन्त में वह निश्चय करती है बैठ जाऊँ। यहाँ अकेली पड़ी रहने से नाव में बैठ जाना फिर भी अच्छा है। किसी भयंकर जन्तु के पेट में जाने से तो यही अच्छा है कि नदी में डूब जाऊँ। कौन जाने, नाव पार पहुँच ही जाए। यह सोचकर वह प्राणों को मुट्ठी में लिये हुए नाव पर बैठ जाती है। कुछ देर तक नाव डगमगाती हुई चलती है; लेकिन प्रतिक्षण उसमें पानी भरता जाता है। वह भी मल्लाह के साथ दोनों हाथों से पानी उलीचने लगती है। यहाँ तक कि उनके हाथ रह जाते हैं, पर पानी बढ़ता ही चला जाता है, आखिर नाव चक्कर खाने लगती है, मालूम होता है—अब डूबी, अब डूबी। तब किसी अदृश्य सहारे के लिए दोनों हाथ फैलाती है, नाव नीचे से खिसक जाती है और उसके पैर उखड़ जाते हैं।

---

1 मु०—ज्ञान होना, 2 निष्ठुर, कठोर 3 विनयपूर्ण आग्रह जिसमें उसके बड़प्पन या प्रशंसा का भाव रहे जिससे विनयपूर्वक आग्रह किया जा रहा है

वह जोर से चिल्लाई और चिल्लाते ही उसकी आँखें खुल गईं। देखा तो माता सामने खड़ी उसका कन्धा पकड़कर हिला रही थी।

2

विवाह की तैयारी

बाबू उदयभानुलाल का मकान बाजार बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े और कमरे में दर्जी की सुइयाँ चल रही हैं। सामने नीम के नीचे बढ़ई चारपाइयाँ बना रहा है। खपरैल में हलवाई के लिए भट्ठा खोदा गया है। मेहमानों के लिए अलग एक मकान ठीक किया गया है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि हरेक मेहमान के लिए एक-एक चारपाई, एक-एक कुर्सी और एक-एक मेज हो। हर तीन मेहमानों के लिए एक-एक कहार रखने की **तजवीज**[1] हो रही है। अभी बारात आने में एक महीने की देर है। लेकिन तैयारियाँ अभी से हो रही हैं। बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाये कि किसी को **जबान हिलाने का मौका न मिले**[2]। वे लोग भी याद करें कि किसी के यहाँ बारात में गये थे। एक पूरा मकान बर्तन से भरा हुआ है। चाय के सेट हैं, नाश्ते की तश्तरियाँ, थाल, लोटे, गिलास। जो लोग नित्य खाट पर पड़े हुक्का पीते रहते थे, बड़ी तत्परता से काम में लगे हुए हैं। अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का ऐसा अच्छा अवसर उन्हें फिर बहुत दिनों के बाद मिलेगा। जहाँ एक आदमी को जाना होता है, पाँच दौड़ते हैं। काम कम होता है, हुल्लड़ अधिक। जरा-जरा-सी बात पर घण्टों तर्क-वितर्क होता है और अन्त में वकील साहब को आकर निर्णय करना पड़ता है। एक कहता है, यह घी खराब है, दूसरा कहता है, इससे अच्छा बाजार में मिल जाय तो टाँग की राह से निकल जाऊँ। तीसरा कहता है, इसमें तो **हीक**[3] आती है। चौथा कहता है, तुम्हारी नाक ही सड़ गई है, तुम क्या जानो घी किसे कहते हैं। जब से यहाँ आये हो, घी मिलने लगा है, नहीं तो घी के दर्शन भी न होते थे! इस पर तकरार बढ़ जाती है और वकील साहब को झगड़ा चुकाना पड़ता है।

विवाह में होने वाले खर्च को लेकर पति-पत्नी में वाद-विवाद

रात के नौ बजे थे। उदयभानुलाल अन्दर बैठे हुए खर्च का **तखमीना**[4] लगा रहे थे। वह प्राय: रोज ही तखमीना लगाते थे; पर रोज ही उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन और **परिवर्धन**[5] करना पड़ता था। सामने कल्याणी भौंहें सिकोड़े हुए खड़ी थी। बाबू साहब ने बड़ी देर के बाद सिर उठाया और बोले—दस हजार से कम नहीं होता, बल्कि शायद और बढ़ जाय।

कल्याणी—दस दिन में पाँच हजार से दस हजार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाय।

उदयभानु—क्या करूँ, जग हँसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। कोई शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज एक पाई नहीं लेते तो मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रखूँ।

कल्याणी—जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न नहीं रख सका। उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई-न-कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियाँ भी **मयस्सर**[6] नहीं, वह भी बारात में जाकर तानाशाह बन बैठता है। तेल खुशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहाँ से बटोर लाये, कहार बात नहीं सुनते, लालटेनें धुआँ देती हैं, कुर्सियों में खटमल हैं, चारपाइयाँ ढीली हैं, जनवासे की जगह हवादार नहीं। ऐसी हजारों शिकायतें होती रहती हैं। उन्हें आप कहाँ तक रोकियेगा? अगर यह मौका न मिला, तो और कोई ऐब निकाल लिये जायँगे। भई, यह तेल तो रंडियों के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिए। जनाब ने यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखाई है, मानो हमने साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं यमदूत हैं, जब देखिये, सिर पर सवार! लालटेनें ऐसी भेजी हैं कि आँखें चमकने लगती हैं; अगर दस-पाँच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े तो आँखें फूट जायँ। जनवासा क्या है, अभागे का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से झोंके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूँगी कि बारातियों के नखरों का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु—तो आखिर तुम मुझे क्या करने को कहती हो?

कल्याणी—कह तो रही हूँ पक्का इरादा कर लो कि मैं पाँच हजार से अधिक न खर्च करूँगा। घर में तो टका है नहीं, कर्ज ही का भरोसा ठहरा, तो इतना कर्ज क्यों लें कि जिन्दगी में अदा न हो। आखिर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी कुछ चाहिए।

उदयभानु—तो क्या आज मैं मरा जाता हूँ।

कल्याणी—जीने-मरने का हाल कोई नहीं जानता।

उदयभानु—तो तुम बैठी यही मनाया करती हो?

---

1 प्रस्ताव फैसला, निर्णय, 2 मु०—शिकायत में कुछ कहने का अवसर न मिले, 3 अप्रिय गंध, 4 हिसाब लगाना, व्यय का अनुमान, 5 बढ़ोत्तरी, 6 उपलब्ध

कल्याणी—इसमें बिगड़ने की तो कोई बात नहीं। मरना एक दिन सभी को है। कोई यहाँ अमर होकर थोड़े ही आया है। आँखें बन्द कर लेने से तो होने वाली बात न टलेगी। रोज आँखों देखती हूँ, बाप का देहान्त हो जाता है, उसके बच्चे गली-गली ठोकरें खाते फिरते हैं। आदमी ऐसा काम ही क्यों करे?

उदयभानु ने जलकर कहा—तो अब समझ लूँ कि मेरे मरने के दिन निकट आ गये, यही तुम्हारी भविष्यवाणी है! सुहाग से स्त्रियों का जी ऊबते नहीं सुना था, आज यह नई बात मालूम हुई। **रंडापे**[1] में भी कोई सुख होगा ही!

कल्याणी—तुमसे दुनिया की कोई भी बात कही जाती है, तो **जहर उगलने लगते हो**[2]। इसलिए न कि जानते हो, इसे कहीं ठिकाना नहीं है, मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है; या और कुछ! जहाँ कोई बात कही, बस सिर हो गये, मानो मैं घर की लौंडी हूँ, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूँ, तुम और भी दबाते हो। मुफ्तखोर माल उड़ायें, कोई मुँह न खोले, शराब-कबाब में रुपये लुटें, कोई जबान न हिलाये। वे **सारे काँटे मेरे बच्चों ही के सिर तो बोये जा रहे हैं**[3]।

उदयभानुलाल—तो मैं क्या तुम्हारा गुलाम हूँ?

कल्याणी—तो क्या मैं तुम्हारी लौंडी हूँ?

उदयभानु—ऐसे मर्द और होंगे जो औरतों के इशारों पर नाचते हैं।

कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियाँ भी और होंगी जो मर्दों की **जूतियाँ सहा करती**[4] हैं।

उदयभानु—मैं कमा कर लाता हूँ, जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ। किसी को बोलने का अधिकार नहीं।

कल्याणी—तो आप अपना घर सँभालिये! ऐसे घर को मेरा **दूर ही से सलाम**[5] है जहाँ मेरी कोई पूछ नहीं। घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी। इससे जौ भर भी कम नहीं। अगर तुम अपने मन के राजा हो तो मैं भी अपने मन की रानी हूँ। तुम्हारा घर तुम्हें **मुबारक**[6] रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है। तुम्हारे बच्चे हैं, मारो या जिलाओ। न आँखों से देखूँगी, न पीड़ा होगी। आँखें फूटीं, पीर गई!

उदयभानु—क्या तुम समझती हो कि तुम न सँभालोगी तो मेरा घर ही न सँभलेगा? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर सँभाल सकता हूँ।

कल्याणी—कौन? अगर आज के महीनवें दिन मिट्टी में न मिल जाय, तो कहना कोई कहती थी! यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा, वह झमककर उठी और कमरे के द्वार की ओर चली। वकील साहब मुकदमों में तो खूब **मीन-मेख निकालते**[7] थे, लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही-सा ज्ञान था। यही एक ऐसी विद्या है जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी **कोरा**[8] रह जाता है। अगर वे अब भी **नरम पड़ जाते**[9] और कल्याणी का हाथ पकड़कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती। लेकिन आपसे यह तो हो न सका; उल्टे चलते-चलते एक और चरका दिया। बोले—मैके का घमण्ड होगा?

कल्याणी ने द्वार पर रुक कर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा और बिफरकर बोली—मैके वाले मेरे **तकदीर**[10] के साथी नहीं हैं और न मैं इतनी नीच हूँ कि उनकी **रोटियों पर जा पड़ूँ**[11]।

उदयभानु—तब कहाँ जा रही हो?

कल्याणी—तुम यह पूछने वाले कौन होते हो? ईश्वर की सृष्टि में असंख्य प्राणियों के लिए जगह है, क्या मेरे ही लिए जगह नहीं है।

यह कहकर कल्याणी कमरे के बाहर निकल गई। आँगन में आकर उसने एक बार आकाश की ओर देखा, मानो तारागण को साक्षी दे रही है कि मैं इस घर से कितनी निर्दयता से निकाली जा रही हूँ। रात के ग्यारह बज गये थे। घर में सन्नाटा छा गया था, दोनों बेटों की चारपाई उसी के कमरे में रहती थी। वह अपने कमरे में आई, देखा चन्द्रभानु सोया है, सबसे छोटा सूर्यभानु चारपाई पर उठ बैठा है। माता को देखते ही वह बोला—तुम तहाँ दई तीं अम्मा?

कल्याणी दूर ही से खड़े-खड़े बोली—कहीं तो नहीं बेटा, तुम्हारे बाबूजी के पास गई थी।

सूर्य०—तुम तली दई, मुधे अतेले दर लदता ता। तुम त्यों तली दई तीं, बताओ?

यह कहकर बच्चे ने गोद चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला दिये। कल्याणी अब अपने को न रोक सकी। मातृ-स्नेह के **सुधा-प्रवाह**[12] से उनका **संतप्त हृदय**[13] **परिप्लावित**[14] हो गया। हृदय के

---

1 वैधव्य, 2 मु०—कटु बातें कहने लगते हो, 3 हित का ध्यान न रखकर काम करना; सारी कठिनाइयाँ मेरे बच्चों को आपत्ति में डालने के लिए ही उत्पन्न की जा रही हैं। काँटे बोना (मु०) = भविष्य में कष्ट देने के उपाय रचना, 4 मु०—अत्याचार सहती हैं, 5 अलग रहना, निकट का संबंध न होना, 6 मंगलकारी, तुम्हें मुबारक रहे = तुम्हीं उसका लाभ या सुख उठाओ, 7 मु०—गलती निकालते, 8 अज्ञानी, 9 मु०—शांत हो जाते, कोमलता से बात करते, 10 भाग्य, 11 मु०—बोझ बनूँ, आश्रित हो जाऊँ, 12 अमृत का प्रवाह। 13 दुःखी, क्रुद्ध, रुष्ट, 14 तर, गीला, भीगा हुआ

कोमल पौधे, जो क्रोध के ताप से मुरझा गये थे, फिर हरे हो गये। आँखें सजल हो गई। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और छाती से लगाकर बोली—तुमने पुकार क्यों न लिया, बेटा?
सूर्य०—पुतालतां तो ता, तुम थुनती न तीं, बताओ, अब तो कबी न दाओगी।
कल्याणी—नहीं भैया, अब नहीं जाऊँगी।

कल्याणी के मन में उठने वाले भाव

यह कहकर कल्याणी सूर्यभानु को लेकर चारपाई पर लेटी। माँ के हृदय से लिपटते ही बालक निःशंक होकर सो गया, कल्याणी के मन में संकल्प-विकल्प होने लगे, पति की बातें याद आतीं तो मन होता—घर को **तिलांजलि**[1] देकर चली जाऊँ। लेकिन बच्चों का मुँह देखती, तो वात्सल्य से चित्त गद्गद हो जाता। बच्चों को किस पर छोड़कर जाऊँ? मेरे इन लालों को कौन पालेगा, ये किसके होकर रहेंगे? कौन प्रातःकाल इन्हें दूध और हलवा खिलायेगा, कौन इनकी नींद सोयेगा, इनकी नींद जागेगा? बेचारे कौड़ी के तीन हो जायेंगे। नहीं प्यारो, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगी। तुम्हारे लिए सब कुछ सह लूँगी। निरादर-अपमान, जली-कटी, खोटी-खरी, घुड़की-झिड़की सब तुम्हारे लिए सहूँगी।

कल्याणी तो बच्चे को लेकर लेटी; पर बाबू साहब को नींद न आई। उन्हें चोट करनेवाली बातें बड़ी मुश्किल से भूलती थीं। उफ, यह मिजाज! मानो मैं ही इनकी स्त्री हूँ। बात मुँह से निकालनी मुश्किल है। अब मैं इनका गुलाम होकर रहूँ। घर में अकेली यह रहें और बाकी जितने अपने बेगाने हैं, सब निकाल दिये जायँ। जला करती हैं। मनाती हैं कि यह किसी तरह मरें तो मैं अकेली आराम करूँ। दिल की बात मुँह से निकल ही जाती है, चाहे कोई कितना ही छिपाये। कई दिन से देख रहा हूँ ऐसी ही **जली-कटी सुनाया करती हैं**[2]। मैके का घमण्ड होगा, लेकिन वहाँ कोई भी न पूछेगा, अभी सब आवभगत करते हैं। जब जाकर सिर पड़ जायँगी तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। रोती हुई आयेंगी। वाह रे घमण्ड, सोचती हैं—मैं ही यह गृहस्थी चलाती हूँ। अभी चार दिन को कहीं चला जाऊँ तो मालूम हो जायेगा, सारी शेखी किरकिरी हो जायेगी। एक बार इनका घमण्ड तोड़ ही दूँ। जरा वैधव्य का मजा भी चखा दूँ। न जाने इनकी हिम्मत कैसे पड़ती है कि मुझे यों कोसने लगती है। मालूम होता है, प्रेम इन्हें छू नहीं गया या समझती हैं, यह घर से इतना चिमटा हुआ है कि इसे चाहे जितना कोसूँ, टलने का नाम न लेगा। यही बात है, पर यहाँ संसार से चिमटनेवाले जीव नहीं हैं। **जहन्नुम**[3] में जाय यह घर, जहाँ ऐसे प्राणियों से पाला पड़े। घर है या नरक? आदमी बाहर से थका-माँदा आता है तो उसे घर में आराम मिलता है। यहाँ आराम के बदले कोसने सुनने पड़ते हैं। मेरी मृत्यु के लिए व्रत रखे जाते हैं। यह है पचीस वर्ष के दाम्पत्य-जीवन का अन्त! बस चल ही दूँ। जब देख लूँगा इनका सारा घमण्ड धूल में मिल गया और **मिजाज ठण्डा हो गया**[4], तो लौट आऊँगा। चार-पाँच दिन काफी होंगे। लो तुम भी याद करोगी कि किसी से पाला पड़ा था।

निर्मला के पिता द्वारा घर छोड़ने का निर्णय करना रात्रि में घर छोड़ देना

यही सोचते हुए बाबू साहब उठे, रेशमी चादर गले में डाली, कुछ रुपये लिये, अपना कार्ड निकालकर दूसरे कुर्ते की जेब में रखा, छड़ी उठाई और चुपके से बाहर निकले। सब नौकर नींद में मस्त थे। कुत्ता आहट पाकर चौंक पड़ा और उनके साथ हो लिया।

पर यह कौन जानता था कि यह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। **जीवन-रंगशाला**[5] का वह निर्दय **सूत्रधार**[6] किसी अगम गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर क्रीड़ा दिखा रहा है। यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रही है, अभिनय सत्य का रूप ग्रहण करने वाला है।

निशा ने इन्दु को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतंक जमा रखा था। सद्वृत्तियाँ मुँह छिपाये पड़ी थीं और कुवृत्तियाँ विजय-गर्व से इठलाती फिरती थीं। वन में वन्य-जन्तु शिकार की खोज में विचर रहे थे और नगरों में नर-पिशाच गलियों में मँडराते फिरते थे।

बाबू उदयभानुलाल लपके हुए गंगा की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने अपना कुर्ता घाट के किनारे रखकर पाँच दिन के लिए मिर्जापुर चले जाने का निश्चय किया था। उनके कपड़े देखकर लोगों को डूब जाने का विश्वास हो जायगा, कार्ड कुर्ते की जेब में था। पता लगाने में कोई दिक्कत न हो सकती थी। दम-के-दम में सारे शहर में खबर मशहूर हो जायेगी। आठ बजते-बजते तो मेरे द्वार पर सारा शहर जमा हो जायेगा, तब देखूँ देवीजी क्या करती हैं।

---

1 छोड़ कर, 2 मु०—बुरा भला कहती हैं, 3 नरक, 4 मु०—घमंड समाप्त होना, स्वभाव शांत, कोमल या नम्र हो गया, 5 संसार, जीवन रूपी नाट्यगृह, 6 जिसके हाथ में जीवन का सूत्र हो अर्थात् भगवान। (प्राचीन नाटकों में आरंभ में कथावस्तु की सूचना देते हुए नाटक आरंभ करानेवाला व्यक्ति (नट) सूत्रधार कहलाता था। उसके द्वारा कथा का सूत्र प्रस्तुत कर दिया जाता था, इसीलिए उसे सूत्रधार कहा जाता था

मतई को उदयभानु से बदला लेने का अवसर प्राप्त होना

यही सोचते हुए बाबू साहब गलियों में चले जा रहे थे, सहसा उन्हें अपने पीछे किसी आदमी के आने की आहट मिली; समझे कोई होगा। आगे बढ़े; लेकिन जिस गली में वह मुड़ते उसी तरफ यह आदमी भी मुड़ता था। तब बाबू साहब को आशंका हुई कि यह आदमी मेरा पीछा कर रहा है। ऐसा आभास हुआ कि इसकी नीयत साफ नहीं है। उन्होंने तुरन्त **जेबी लालटेन**[1] निकाली और उसके प्रकाश में उस आदमी को देखा। एक बलिष्ठ मनुष्य कन्धे पर लाठी रखे चला आता था। बाबू साहब उसे देखते ही चौंक पड़े। यह शहर का **छटा हुआ बदमाश था**[2] । तीन साल पहले उस पर डाके का अभियोग चला था। उदयभानु ने उस मुकदमें में सरकार की ओर से पैरवी की थी और इस बदमाश को तीन साल की सजा दिलाई थी। तभी से वह इनके **खून का प्यासा**[3] हो रहा था। कल ही वह छूटकर आया था। आज **दैवात्**[4] बाबू साहब अकेले रात को दिखाई दिये, तो उसने सोचा यह इनसे **दाँव चुकाने**[5] का अच्छा मौका है। ऐसा मौका शायद ही फिर कभी मिले। तुरन्त पीछे हो लिया और वार करने की घात ही में था कि बाबू साहब ने जेबी लालटेन जलाई। बदमाश जरा ठिठककर बोला—क्यों बाबूजी, पहचानते हो? मैं हूँ मतई।
बाबू साहब ने डपटकर कहा—तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आ रहे हो।
मतई—क्यों, किसी को रास्ता चलने की मनाही है? यह गली तुम्हारे बाप की है?

बाबू साहब जवानी में कुश्ती लड़े थे, अब भी हृष्ट-पुष्ट आदमी थे। दिल के भी कच्चे न थे। छड़ी सँभालकर बोले—अभी शायद मन नहीं भरा। अबकी सात साल को जाओगे।
मतई—मैं सात साल को जाऊँगा या चौदह साल को, पर तुम्हें जीता न छोड़ूँगा। हाँ, अगर तुम मेरे पैरों पर गिरकर कसम खाओ कि अब किसी को सजा न कराऊँगा, तो छोड़ दूँ। बोलो मंजूर है?
उदयभानु—तेरी **शामत**[6] तो नहीं आई?
मतई—शामत मेरी नहीं आई, तुम्हारी आई है। बोलो खाते हो कसम—एक!
उदयभानु—तुम हटते हो कि मैं पुलिसमैन को बुलाऊँ।
मतई—दो!
उदयभानु—(गरजकर) हट जा बदमाश, सामने से!
मतई—तीन!
मुँह से 'तीन' शब्द निकलते ही बाबू साहब के सिर पर लाठी का ऐसा तुला हाथ पड़ा कि वह अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े। मुँह से केवल इतना ही निकला—हाय! मार डाला!

मतई द्वारा उदयभानु की हत्या

मतई ने समीप आकर देखा, तो सिर फट गया था और खून की धार निकल रही थी। नाड़ी का कहीं पता न था। समझ गया कि काम तमाम हो गया। उसने कलाई से सोने की घड़ी खोल ली, कुर्ते से सोने के बटन निकाल लिये, उँगली से अँगूठी उतारी और अपनी राह चला गया, मानो कुछ हुआ ही नहीं। हाँ, इतनी दया की कि लाश रास्ते से घसीटकर किनारे डाल दी। हाय, बेचारे क्या सोचकर चले थे, क्या हो गया। जीवन, तुमसे ज्यादा **असार**[7] भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या वह उस दीपक की भाँति ही **क्षणभंगुर**[8] नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है! पानी के एक बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है, जीवन में उतना सार भी नहीं। साँस का भरोसा ही क्या और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं। नहीं जानते, नीचे जाने वाली साँस ऊपर आएगी या नहीं, पर सोचते इतनी दूर की हैं, मानो हम अमर हैं।

बोध प्रश्न

1 निर्मला के स्वभाव में एकाएक परिवर्तन क्यों आ गया? (सही उत्तर कोष्ठक में लिखें)

क) निर्मला के पिता ने उसे गंभीर रहने के लिए कहा था।

ख) कम उम्र में विवाह ठीक हो जाने के कारण वह भविष्य की दुश्चिन्ताओं से घिर गयी थी।

ग) उसकी इच्छा विवाह करने की नहीं थी।

घ) उसे यह मालूम हो गया था कि उसका होने वाला पति क्रोधी स्वभाव का है। ☐

2 निर्मला और कृष्णा के वार्तालाप से कौन-सी बात स्पष्ट होकर सामने आती है?

क) लड़कियाँ बहुत खराब होती हैं।

ख) चन्दर अच्छा लड़का है।

1 टॉर्च, 2 मु०—भारी, बड़ा, मशहूर गुण्डा था, 3 दुश्मन, 4 दैवयोग, संयोग से, 5 बदला लेने का, 6 विपत्ति, 7 असार—तत्वहीन, थोथा, 8 क्षणभंगुर—क्षण में नष्ट होने वाला

ग) भारतीय समाज में लड़कियों को अपने माता-पिता का घर छोड़ना पड़ता है।

घ) लड़कियाँ माता-पिता की आज्ञा नहीं मानतीं। ☐

3 निर्मला द्वारा देखा गया स्वप्न कथा प्रवाह का स्वाभाविक अंग है, क्योंकि यह

क) आगे आने वाली कथा का संकेत देता है।

ख) आगे आने वाली कथा को स्पष्ट रूप में पाठक के सामने रख देता है।

ग) कथा प्रवाह में बाधा उत्पन्न करता है।

घ) कथा को उलझा देता है। ☐

4 उदयभानु और कल्याणी के बीच झगड़े का क्या कारण है?

क) उदयभानु शादी में खर्च नहीं करना चाहते थे।

ख) उदयभानु शादी में अपनी औकात से ज्यादा खर्च करना चाहते थे।

ग) कल्याणी और ज्यादा खर्च करने के लिए कह रही थी।

घ) कल्याणी ने दूसरा लड़का पसन्द कर रखा था। ☐

हमने देखा, कथा का आरंभ निर्मला के परिचय से होता है। निर्मला की शादी तय हो जाती है। विवाह में होने वाले खर्च को लेकर निर्मला के माता-पिता में तकरार हो जाती है। उदयभानु पत्नी को सबक सिखाने के लिए कुछ दिन घर से बाहर रहने का निश्चय करते हैं। रात्रि में जब वे घर से बाहर जाते हैं तब रास्ते में मतई नाम का गुंडा उनका पीछा करता है। इस गुंडे को उदयभानु ने सजा दिलवाई थी, बदला लेने के लिए मतई उदयभानु की हत्या कर देता है। इस घटना के बाद कथा में क्या मोड़ आता है, आइए आगे देखें :

3

पति की हत्या हो जाने पर कल्याणी की मनोदशा

विधवा का विलाप और अनाथों का रोना सुनाकर हम पाठकों का **दिल न दुखायेंगे**[1] । जिसके ऊपर **पड़ती**[2] है, वह रोता है, विलाप करता है, **पछाड़ें खाता**[3] है। यह कोई नयी बात नहीं। हाँ, अगर आप चाहें तो कल्याणी की उस घोर मानसिक यातना का अनुमान कर सकते हैं, जो उसे इस विचार से हो रही थी कि मैं ही अपने प्राणाधार की घातिका हूँ। वे वाक्य जो क्रोध के आवेश में उसके असंयत मुख से निकले थे, अब उसके हृदय को वाणों की भाँति छेद रहे थे। अगर पति ने उसकी गोद में कराह-कराह कर प्राण-त्याग दिए होते, तो उसे संतोष होता कि मैंने उनके अपने कर्त्तव्य प्रति का पालन किया। शोकाकुल हृदयों को इससे ज्यादा सान्त्वना और किसी बात से नहीं होती। उसे इस विचार से कितना सन्तोष होता कि मेरे स्वामी मुझसे प्रसन्न गये, अन्तिम समय तक उनके हृदय में मेरा प्रेम बना रहा। कल्याणी को यह सन्तोष न था। वह सोचती थी—हा! मेरी पचीस बरस की तपस्या निष्फल हो गई। मैं अंत समय अपने प्राणपति के प्रेम से वंचित हो गयी। अगर मैंने उन्हें ऐसे कठोर शब्द न कहे होते, तो यह कदापि रात को घर से न जाते। न जाने उनके मन में क्या-क्या विचार आये हों? उनके मनोभावों की कल्पना करके और अपने अपराध को बढ़ा-बढ़ाकर वह आठों पहर **कुढ़ती**[4] रहती थी। जिन बच्चों पर वह प्राण देती थी, अब उनके सूरत से चिढ़ती। इन्हीं के कारण मुझे अपने स्वामी से **रार मोल लेनी**[5] पड़ी। यही मेरे शत्रु हैं। जहाँ **आठों पहर**[6] कचहरी-सी लगी रहती थी, वहाँ अब **खाक उड़ती**[7] है। वह मेला ही उठ गया। जब खिलाने वाला ही न रहा, तो खाने वाले कैसे पड़े रहते। धीरे-धीरे एक महीने के अन्दर सभी भांजे-भतीजे बिदा हो गये! जिनका दावा था कि हम पानी की जगह खून बहाने वालों में हैं, वे ऐसा **सरपट**[8] भागे कि पीछे फिरकर भी न देखा। दुनिया ही दूसरी हो गयी। जिन बच्चों को देखकर प्यार करने को जी चाहता था, उनके चेहरे पर अब मक्खियाँ भिनभिनाती थीं। न जाने वह कांति कहाँ चली गई?

माँ द्वारा निर्मला के विवाह का प्रयत्न

शोक का आवेग कम हुआ तो निर्मला के विवाह की समस्या उपस्थित हुई। कुछ लोगों की सलाह हुई कि विवाह इस साल रोक दिया जाय। लेकिन कल्याणी ने कहा—इतनी तैयारियों के बाद विवाह को रोक देने से सब किया-धरा **मिट्टी में मिल जायगा**[9] और दूसरे साल फिर यही तैयारियाँ

---

1 मु०—हृदय को दुःख न पहुँचायेंगे, 2 विपत्ति आती है, 3 रोते हुए गिर-गिर पड़ना, 4 अन्दर ही अन्दर दुःखी होना और पछताना, 5 झगड़ा करना, 6 पूरे दिन के समय को आठ भागों में बाँटा गया है। प्रत्येक पहर तीन घंटे का होता है। आठ पहर अर्थात् चौबीस घंटे, 7 मु०—रौनक समाप्त हो गयी है। खाक उड़ना (मु०) = सौंदर्यहीन हो जाना, 8 बिना रुके और बिना इधर-उधर देखे भय या शंका से तेजी से भागना, 9 मु०—नष्ट हो जायेगा

करनी पड़ेगी, जिसकी कोई आशा नहीं। विवाह कर ही देना अच्छा है। कुछ लेना-देना तो है ही नहीं। बारातियों के सेवा-सत्कार का काफी सामान हो चुका है, विलम्ब करने में हानि-ही-हानि है। अतएव महाशय भालचन्द्र को शोक-सूचना के साथ यह सन्देशा भी भेज दिया गया। कल्याणी ने अपने पत्र में लिखा—इस अनाथिनी पर दया कीजिए और डूबती हुई नाव को पार लगाइये। स्वामीजी के मन में बड़ी-बड़ी कामनाएँ थीं, किन्तु ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था। अब मेरी लाज आपके हाथ है। कन्या आपकी हो चुकी। मैं लोगों के सेवा-सत्कार करने को अपना सौभाग्य समझती हूँ, लेकिन यदि इसमें कुछ कमी हो, कुछ त्रुटि पड़े तो मेरी दशा का विचार करके क्षमा कीजियेगा। मुझे विश्वास है कि आप स्वयं इस अनाथिनी की निन्दा न होने देंगे, आदि।

कल्याणी ने यह पत्र डाक से न भेजा; बल्कि पुरोहित से कहा—आपको कष्ट तो होगा, पर आप स्वयं जाकर यह पत्र दीजिए और मेरी ओर से बहुत विनय के साथ कहियेगा कि जितने कम आदमी आयें, उतना ही अच्छा। यहाँ कोई प्रबन्ध करने वाला नहीं है।

निर्मला का विवाह तय करने के लिए मोटेराम का भालचंद्र के यहाँ जाना

पुरोहित मोटेराम यह सन्देश लेकर तीसरे दिन लखनऊ जा पहुँचे।

सन्ध्या का समय था। बाबू भालचन्द्र **दीवानखाने**[1] के सामने आरामकुर्सी पर नंग-धड़ंग लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही स्थूल, ऊँचे कद के आदमी थे। ऐसा मालूम होता था कि काला देव है, या कोई हब्शी अफ्रीका से पकड़कर आया है। सिर से पैर तक एक ही रंग था—काला। चेहरा इतना स्याह था कि मालूम न होता था कि माथे का अंत कहाँ है और सिर का आरम्भ कहाँ। बस कोयले की एक सजीव मूर्ति थी। आपको गर्मी बहुत सताती थी। दो आदमी खड़े पंखा झल रहे थे, उस पर भी पसीने का तार बँधा हुआ था। आप **आबकारी के विभाग**[2] में एक ऊँचे **ओहदे**[3] पर थे। 500 वेतन मिलता था। ठेकेदारों से खूब रिश्वत लेते थे। ठेकेदार शराब के नाम पानी बेचें, चौबीसों घंटे दुकान खुली रखें, आपको केवल खुश रखना काफी था। सारा कानून आपकी खुशी थी। इतनी भयंकर मूर्ति थी कि चाँदनी रात में लोग उन्हें देख कर सहसा चौंक पड़ते थे—बालक और स्त्रियाँ ही नहीं, पुरुष तक सहम जाते थे। चाँदनी रात इसलिए कहा गया कि अँधेरी रात में तो उन्हें कोई देख ही न सकता था—**श्यामलता**[4] अन्धकार में विलीन हो जाती थी। केवल आँखों का रंग लाल था। जैसे पक्का मुसलमान पाँच बार नमाज पढ़ता है, वैसे ही आप भी पाँच बार शराब पीते थे, मुफ्त की शराब तो काजी को हलाल है; फिर आप तो शराब के अफसर ही थे, जितनी चाहें पियें, कोई **हाथ पकड़ने वाला न था**[5] । जब प्यास लगती शराब पी लेते। जैसे कुछ रंगों में परस्पर सहानुभूति है, उसी तरह कुछ रंगों में परस्पर विरोध है। लालिमा के संयोग से कालिमा और भी भयंकर हो जाती है।

बाबू साहब ने पंडितजी को देखते ही कुर्सी से उठकर कहा—अख्खाह। आप हैं? आइए-आइए। धन्य भाग! अरे कोई है। कहाँ चले गये सब-के-सब, झगडू, गुरदीन, छकौड़ी, भवानी, रामगुलाम कोई है? क्या सब-के-सब मर गये! चलो रामगुलाम, भवानी, छकौड़ी, गुरदीन, झगडू। कोई नहीं बोलता, सब मर गये! दर्जन-भर आदमी हैं, पर मौके पर एक की भी **सूरत नहीं नजर आती**[6] जाने सब कहाँ गायब हो जाते हैं। आपके वास्ते कुर्सी लाओ।

बाबू साहब ने ये पाँचों नाम कई बार दुहराये; लेकिन यह न हुआ कि पंखा झलनेवाले दोनों आदमियों में से किसी को कुर्सी लाने को भेज देते। तीन-चार मिनट के बाद एक काना आदमी खाँसता हुआ आकर बोला—सरकार, ई तना की नौकरी हमार कीन न होई! कहाँ तक उधार-बाढ़ी लै-लै खाई। **माँगत-माँगत थेथर**[7] होय गयेन।

भाल०—बको मत, जाकर कुर्सी लाओ। जब कोई काम करने को कहा गया, तो रोने लगता है। कहिए पण्डितजी, वहाँ सब कुशल है?

मोटेराम—क्या कुशल कहूँ बाबूजी, अब कुशल कहाँ? सारा घर मिट्टी में मिल गया।

इतने में कहार ने एक टूटा हुआ चीड़ का सन्दूक लाकर रख दिया और बोला—कुर्सी-मेज हमारे उठाये नाहीं उठत है।

पण्डितजी शर्माते हुए डरते-डरते उस पर बैठे कि कहीं टूट न जाय और कल्याणी का पत्र बाबू साहब के हाथ में रख दिया।

भा०—अब और कैसे मिट्टी में मिलेगा? इससे बड़ी और कौन विपत्ति पड़ेगी? बाबू उदयभानुलाल से मेरी पुरानी दोस्ती थी। आदमी नहीं, हीरा था! क्या दिल था, क्या हिम्मत थी, (आँखें पोंछकर)

---

1 सभी लोगों से मिलने का कमरा, बैठक खाना, 2 मादक वस्तुओं से संबंध रखने वाले सरकारी विभाग में, एक्साइज़ (Excise) विभाग में, 3 पद, 4 कालापन, 5 मु०—रोकने वाला न था, 6 दिखाई न पड़ना, 7 ढीठ

मेरा तो जैसे दाहिना हाथ ही कट गया। विश्वास मानिए, जबसे यह खबर सुनी है, आँखों में अँधेरा-सा छा गया है। खाने बैठता हूँ तो **कौर**[1] मुँह में नहीं जाता। उनकी सूरत आँखों के सामने खड़ी रहती है। **मुँह जूठा करके**[2] उठ आता हूँ। किसी काम में दिल नहीं लगता। भाई के मरने का रंज भी इससे कम ही होता। आदमी नहीं, हीरा था।

मोटे०—सरकार, नगर में अब ऐसा कोई रईस नहीं रहा।

भाल०—मैं खूब जानता हूँ पण्डितजी, आप मुझसे क्या कहते हैं। ऐसा आदमी लाख-दो-लाख में एक होता है। जितना मैं उनको जानता था, उतना दूसरा नहीं जान सकता। दो-ही-तीन बार की मुलाकात में उनका भक्त हो गया और मरते दम तक रहूँगा। आप समधिन साहब से कह दीजिएगा, मुझे **दिली रंज**[3] है।

मोटे०—आपसे ऐसी ही आशा थी! आप-जैसे सज्जनों के दर्शन दुर्लभ हैं। नहीं तो आज कौन बिना दहेज के पुत्र का विवाह करता है।

भाल०—महाराज, दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती। उनसे सम्बन्ध हो जाना ही लाख रुपये के बराबर है। मैं इसी को अपना अहोभाग्य समझता हूँ। हाँ! कितनी उदार आत्मा थी। रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं, तिनके के बराबर भी परवाह नहीं की। बुरा **रिवाज**[4] है, बेहद बुरा! मेरा बस चले, तो दहेज लेनेवालों और दहेज देनेवालों दोनों ही को गोली मार दूँ; हाँ साहब, साफ गोली मार दूँ; फिर चाहे फाँसी ही क्यों न हो जाय! पूछो, आप लड़के का विवाह करते हैं कि उसे बेचते हैं? अगर आपको लड़के की शादी में दिल खोलकर खर्च करने का **अरमान**[5] है तो शौक मे खर्च कीजिए, लेकिन जो कुछ कीजिए, अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का **गला रेतिए**[6] । नीचता है, घोर नीचता! मेरा बस चले, तो इन **पाजियों**[7] को गोली मार दूँ।

मोटे०—धन्य हो सरकार! भगवान ने आपको बड़ी बुद्धि दी है। यह धर्म का प्रताप है। मालकिन की इच्छा है कि विवाह का मुहूर्त वही रहे, और तो उन्होंने सारी बातें पत्र में लिख दी हैं। बस, अब आप ही उबारें तो हम उबर सकते हैं। इस तरह तो बारात में जितने सज्जन आयेंगे, उनकी सेवा-सत्कार हम करेंगे ही; लेकिन परिस्थिति अब बहुत बदल गयी है सरकार, कोई करने-धरनेवाला नहीं है। बस, ऐसी बात कीजिए कि वकील साहब के नाम पर **बट्टा न लगे**[8] ।

भालचन्द्र एक मिनट तक आँखें बन्द किये बैठे रहे, फिर एक लम्बी साँस खींच कर बोले—ईश्वर को मंजूर ही न था कि वह लक्ष्मी मेरे घर आती, नहीं तो क्या यह **वज्र गिरता**[9] ? सारे **मनसूबे खाक में मिल गये**[10] । फूला न समाता था कि वह शुभ-अवसर निकट आ रहा है; पर क्या जानता था कि ईश्वर के दरबार में कुछ और षड्यंत्र रचा जा रहा है। मरनेवाले की याद ही रुलाने के लिए काफी है। उसे देखकर तो जख्म और भी हरा हो जाएगा। उस दशा में न जाने क्या कर बैठूँ। इसे गुण समझिए चाहे दोष कि जिससे एक बार मेरी घनिष्ठता हो गयी, फिर उसकी याद चित्त से नहीं उतरती। अभी तो खैर इतना ही है कि उनकी सूरत आँखों के सामने नाचती रहती है; लेकिन यदि वह कन्या घर में आ गयी, तब मेरा जिन्दा रहना कठिन हो जाएगा। सच मानिए, रोते-रोते मेरी आँखें फूट जायेंगी। जानता हूँ, रोना-धोना व्यर्थ है। जो मर गया वह लौटकर नहीं आ सकता। **सब्र**[11] करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। लेकिन दिल से **मजबूर**[12] हूँ। उस अनाथ बालिका को देखकर मेरा **कलेजा फट जायेगा**[13]।

मोटेराम द्वारा निर्मला का विवाह तय करने का प्रयत्न करना

मोटे०—ऐसा न कहिए सरकार! वकील साहब नहीं तो क्या, आप तो हैं। अब आप ही उसके पिता-तुल्य हैं। वह अब वकील साहब की कन्या नहीं, आपकी कन्या है! आपके हृदय के भाव तो कोई जानता नहीं, लोग समझेंगे, वकील साहब का देहांत हो जाने के कारण आप अपने वचन से फिर गये। इसमें आपकी बदनामी है। चित्त को समझाइए और हँसी-खुशी कन्या का **पाणिग्रहण**[14] करा लीजिए। **हाथी मरे तो नौ लाख का**[15] । लाख विपत्ति पड़ी है, लेकिन मालकिन आप लोगों की सेवा-सत्कार करने में कोई बात न उठा रखेंगी।

बाबू साहब समझ गये कि पंडित मोटेराम कोरे पोथी के ही पंडित नहीं वरन् व्यवहार-नीति में भी चतुर हैं। बोले—पंडितजी, **हलफ**[16] से कहता हूँ, मुझे उस लड़की से जितना प्रेम है, उतना अपनी लड़की से भी नहीं है, लेकिन जब ईश्वर को **मंजूर**[17] नहीं है, तो मेरा क्या बस है? वह मृत्यु एक प्रकार की अमंगल सूचना है, जो विधाता की ओर से हमें मिली है। यह किसी आनेवाली **मुसीबत**[18] की आकाशवाणी है। विधाता स्पष्ट रीति से कह रहा है कि यह विवाह मंगलमय न होगा। ऐसी दशा में आप ही सोचिये, यह संयोग कहाँ तक उचित है। आप तो विद्वान आदमी हैं।

---

1 खाते समय हाथ में लिया गया भोजन का अंश, निवाला, गस्सा, 2 मु०—थोड़ा खाकर, 3 हृदय से दुःख, 4 चलन, रीति, प्रथा, 5 इच्छा, 6 कष्ट देना, 7 बदमाशों, 8 मु०—प्रतिष्ठा बनी रहे, 9 मु०—विपत्ति आती 10 मु०—इच्छा समाप्त हो गयी, 11 धैर्य, 12 असमर्थ, विवश, 13 मु०—अत्यधिक दुःख होगा, 14 विवाह, 15 कहावत—मूल्यवान वस्तु खराब भी हो जाए तो उसका मूल्य अपेक्षाकृत अधिक ही होता है। मरा हुआ हाथी भी नौ लाख में बिकता है, 16 शपथ, कसम, 17 स्वीकार, 18 विपत्ति

सोचिए जिस काम का आरम्भ ही अमंगल से हो, उसका अंत मंगलमय हो सकता है? नहीं, जानबूझकर **मक्खी नहीं निगली जाती**[1]। समधिन साहब को समझाकर कह दीजिएगा, मैं उनकी आज्ञापालन करने को तैयार हूँ लेकिन इसका परिणाम अच्छा न होगा। स्वार्थ के वश में होकर मैं अपने परम मित्र की सन्तान के साथ यह अन्याय नहीं कर सकता।

इस तर्क ने पंडितजी को निरुत्तर कर दिया। **वादी**[2] ने वह तीर छोड़ा था, जिसकी उनके पास कोई काट न थी। शत्रु ने उन्हीं के हथियार से उन पर वार किया था और वह उसका प्रतिकार न कर सकते थे। वह अभी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाबू साहब ने फिर नौकरों को पुकारना शुरू किया–अरे तुम सब फिर गायब हो गये–झगड़ू, छकौड़ी, भवानी, गुरुदीन, रामगुलाम! एक भी नहीं बोलता, सब-के-सब मर गये। पंडितजी के वास्ते पानी-वानी की फिक्र है? ना जाने इन सबों को कोई कहाँ तक समझाये। अक्ल छू तक नहीं गयी। देख रहे हैं कि एक महाशय दूर से थके-माँदे चले आ रहे हैं, पर किसी को जरा भी परवाह नहीं। लाओ पानी-वानी रखो। पंडितजी, आपके लिए शर्बत बनवाऊँ या फलाहारी मिठाई मँगवा दूँ।

मोटेरामजी मिठाइयों के विषय में किसी तरह का बन्धन न स्वीकार करते थे। उनका सिद्धान्त था कि धृत से सभी वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं। रसगुल्ले और बेसन के लड्डू उन्हें बहुत प्रिय थे, पर शर्बत से उन्हें रुचि न थी। पानी से पेट भरना उनके नियम के विरुद्ध था। सकुचाते हुए बोले–शर्बत पीने की तो मुझे आदत नहीं, मिठाई खा लूँगा।
भाल०–फलाहारी न?
मोटे०–इसका मुझे कोई विचार नहीं।
भाल०–है तो यही बात। छूत-छात सब **ढकोसला**[3] है। मैं स्वयं नहीं मानता। अरे, अभी तक कोई नहीं आया? छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम, कोई तो बोलो!

अबकी भी वही बूढ़ा कहार खाँसता हुआ आकर खड़ा हो गया और बोला–सरकार, **मोर तलैब दे दीन जाय**[4]। ऐसी नौकरी **मोसे**[5] न होई। कहाँ **लौ**[6] दौरी। **दौरत-दौरत**[7] **गोड पिराय**[8] लागत है।
भाल०–काम कुछ करो या न करो, पर तलब पहिले चाहिए! दिन भर पड़े-पड़े खाँसा करो, तलब तो तुम्हारी चढ़ रही है। जाकर बाजार से एक आने की ताजी मिठाई ला। दौड़ता हुआ जा।

कहार को यह **हुक्म**[9] देकर बाबू साहब घर में गये और स्त्री से बोले–वहाँ से एक पंडितजी आये हैं। यह खत लाये हैं, जरा पढ़ो तो।

पत्नीजी का नाम रँगीलीबाई था। गोरे रंग की प्रसन्न-मुख महिला थीं। रूप और यौवन उनसे विदा हो रहे थे, पर किसी प्रेमी मित्र की भाँति मचल-मचल कर तीस साल तक जिसके गले से लगे रहे, उसे छोड़ते न बनता था।

दहेज नहीं मिलने की आशा से विवाह तोड़ना

रँगीलीबाई बैठी पान लगा रही थीं। बोलीं–कह दिया न कि हमें वहाँ ब्याह करना मंजूर नहीं।
भाल०–हाँ, कह तो दिया, पर मारे संकोच के मुँह से शब्द न निकलता था। झूठ-मूठ का होला करना पड़ता।
रँगीली०–साफ बात कहने में संकोच क्या? हमारी इच्छा है, नहीं करते। किसी का कुछ लिया तो नहीं है? जब दूसरी जगह दस हजार नगद मिल रहे हैं, तो वहाँ क्यों न करूँ? उनकी लड़की कोई सोने की थोड़े ही है। वकील साहब जीते होते तो शरमाते-शरमाते पन्द्रह-बीस हजार दे मरते। अब वहाँ क्या रखा है?
भाल०–एक **दफा**[10] **जबान देकर**[11] मुकर जाना अच्छी बात नहीं। कोई मुख से कुछ न कहे, पर बदनामी हुए बिना नहीं रहती। मगर तुम्हारी जिद से मजबूर हूँ।

रँगीलीबाई ने पान खाकर खत खोला और पढ़ने लगीं। हिन्दी का अभ्यास बाबू साहब को तो बिल्कुल न था और यद्यपि रँगीलीबाई भी शायद हो कभी किताब पढ़ती हों, पर खत-वत पढ़ लेती थीं। पहली ही पाँति पढ़कर उनकी आँखें सजल हो गयीं, और पत्र समाप्त किया तो उनके आँखों से आँसू बह रहे थे–एक-एक शब्द करुणा के रस में डूबा हुआ था। एक-एक अक्षर से दीनता टपक रही थी। रँगीलीबाई की कठोरता पत्थर की नहीं, लाख की थी–जो एक ही आँच से पिघल जाती है। कल्याणी के करुणोत्पादक शब्दों ने उनके स्वार्थ-मंडित हृदय को पिघला दिया: रुँधे हुए कंठ से बोली–अभी ब्राह्मण बैठा है न?

---

1 विपत्ति नहीं ली जाती, 2न्यायालय में कोई वाद या मुकदमा पेश करने वाला। मुद्दई, 3 दिखावा, 4 मेरी तनख्वाह दी जाए, 5 मुझसे, 6 तक, 7 दौड़ते-दौड़ते, 8 पेट में दर्द, 9 आदेश, 10 बार, 11 वचन देकर

भालचन्द्र पत्नी के आँसुओं को देख-देख कर सूखे जाते थे। अपने ऊपर झल्ला रहे थे कि नाहक मैंने यह खत इसे दिखाया। इसकी जरूरत क्या थी? इतनी बड़ी भूल उनसे कभी न हुई थी। संदिग्ध भाव से बोले—शायद बैठा हो, मैंने तो जाने को कह दिया था। रँगीली ने खिड़की से झाँककर देखा। पंडित मोटेराम जी **बगुले की तरह ध्यान लगाये**[1] बाजार के रास्ते की ओर ताक रहे थे। लालसा में व्यग्र होकर कभी यह **पहलू बदलते**[2] कभी वह पहलू। 'एक आने की मिठाई' ने तो आशा की कमर ही तोड़ दी थी, उसमें भी यह विलम्ब, दारुण दशा थी। उन्हें बैठे देखकर रँगीलीबाई बोलीं—है-है अभी है, जाकर कह दो, हम विवाह करेंगे, जरूर करेंगे! बेचारी बड़ी मुसीबत में है।

भाल०—तुम कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करने लगती हो; अभी उससे कह आया हूँ कि मुझे विवाह करना मंजूर नहीं। एक लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधनी पड़ी। अब जाकर यह संदेश कहूँगा, तो वह अपने दिल में क्या कहेगा, जरा सोचो तो? यह शादी-विवाह का मामला है। लड़कों का खेल नहीं कि अभी एक बात तय की, अभी पलट गये। भले आदमी की बात न हुई, **दिल्लगी**[3] हुई।

रँगीली०—अच्छा, तुम अपने मुँह से न कहो, उस ब्राह्मण को मेरे पास भेज दो। मैं इस तरह समझा दूँगी कि तुम्हारी बात भी रह जाए और मेरी भी। इसमें तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है।

भाल०—तुम अपने सिवा सारी दुनिया को नादान समझती हो। तुम कहो या मैं कहूँ, बात एक ही है। जो बात तय हो गयी, वह हो गई; अब मैं उसे फिर नहीं उठाना चाहता। तुम्हीं तो बार-बार कहती थीं कि मैं वहाँ न करूँगी। तुम्हारे ही कारण मुझे अपनी बात खोनी पड़ी। अब तुम फिर **रंग बदलती**[4] हो। यह तो मेरी **छाती पर मूँग दलना**[5] है। आखिर तुम्हें कुछ तो मेरे मान-अपमान का विचार करना चाहिए।

रँगीली०—तो मुझे क्या मालूम था कि विधवा की दशा इतनी हीन हो गयी है? तुम्हीं ने तो कहा था कि उसने पति की सारी सम्पत्ति छिपा रखी है और अपनी गरीबी का ढोंग रचकर काम निकालना चाहती है। एक ही छँटी हुई औरत है। तुमने जो कहा, वह मैंने मान लिया। भलाई करके बुराई करने में तो लज्जा और संकोच है। बुराई करके भलाई करने में कोई संकोच नहीं। अगर तुम 'हाँ' कर आये होते और मैं 'नहीं' करने को कहती, तो तुम्हारा संकोच उचित था। 'नहीं' करने के बाद 'हाँ' करने में तो अपना बड़प्पन है।

भाल०—तुम्हें बड़प्पन मालूम होता हो, मुझे तो लुच्चापन ही मालूम होता है। फिर तुमने यह कैसे मान लिया कि मैंने वकीलाइन के विषय में जो बात कही थी, वह झूठी थी! क्या वह पत्र देखकर? तुम जैसी खुद सरल हो, वैसे ही दूसरों को भी सरल समझती हो।'

रँगीली०—इस पत्र में बनावट नहीं मालूम होती। बनावट की बात दिल में चुभती नहीं। उसमें बनावट की गंध अवश्य रहती है।

भाल०—बनावट की बात तो ऐसी चुभती है कि सच्ची बात उसके सामने बिल्कुल फीकी मालूम होती है। यह किस्से-कहानियाँ लिखनेवाले जिनकी किताबें पढ़-पढ़कर तुम घण्टों रोती हो, क्या सच्ची बातें लिखते हैं? सरासर झूठ का **तूमार बाँधते**[6] हैं। यह भी एक कला है।

रँगीली०—क्यों जी, तुम मुझसे भी उड़ते हो! **दाई से पेट छिपाते हो**[7] ? मैं तुम्हारी बातें मान जाती हूँ तो तुम समझते हो, इसे चकमा दिया। मगर मैं तुम्हारी **एक-एक नस पहचानती हूँ**[8] । तुम अपना ऐब मेरे सिर मढ़कर खुद बेदाग बचना चाहते हो। बोलो, कुछ झूठ कहती हूँ, जब वकील साहब जीते थे, तो तुमने सोचा था कि ठहराव की जरूरत ही क्या है, वह खुद ही जितना उचित समझेंगे, देंगे; बल्कि बिना ठहराव के और भी ज्यादा मिलने की आशा होगी। अब जो वकील साहब का देहान्त हो गया तो तरह-तरह के **हीले-हवाले करने लगे**[9] । यह भलमनसी नहीं, छोटापन है; इसका **इलजाम**[10] भी तुम्हारे ही सिर है। मैं अब शादी-ब्याह के **नगीच**[11] न जाऊँगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। ढोंगी आदमियों से मुझे चिढ़ है। जो बात करो, सफाई से करो, बुरा हो या अच्छा। **हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और**[12] वाली नीति पर चलना तुम्हें शोभा नहीं देता। बोलो, अब भी वहाँ शादी करते हो या नहीं?

भाल०—जब मैं बेईमान, दगाबाज और झूठा ठहरा, तो मुझसे पूछना ही क्या! मगर खूब पहचानती हो आदमियों को! क्या कहना है, तुम्हारी इस सूझबूझ की, **बलैया ले लें**[13]!

रँगीली०—**हो बड़े हयादार**[14], अब भी नहीं शरमाते। ईमान से कहो, मैंने बात ताड़ ली कि नहीं?

---

1 तन्मय होकर, 2 इधर-उधर देखते, पहलू = करवट, 3 हँसी खेल, 4 मु०—बात से पलट जाती हो, 5 मु०—दुःख देना है, 6 मु०—साधारण बात का व्यर्थ विस्तार देते हैं, 7 मु०—सामने की बात को छिपाते हो, विशेषज्ञ या जानकार से बात छिपाना, 8 मु०—अच्छी प्रकार पहचानती हूँ, 9मु०—कोई न कोई कारण बताकर व्यर्थ की देरी करने लगे, 10 आरोप, 11 नजदीक, समीप, पास, 12 कु०—कथनी और करनी में अंतर, 13 मु०—स्नेह प्रदर्शन, आशीर्वाद देना, प्रशंसा करें, बलिहारी जायें, 14 लज्जाशील

भाल०—अजी जाओ, वह दूसरी औरतें होती हैं जो मर्दों को पहचानती हैं। अब तक मैं यही समझता था कि औरतों की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होती है, पर आज यह विश्वास उठ गया और महात्माओं ने औरतों के विषय में जो तत्व की बातें कही हैं, उनको मानना पड़ा।
रँगीली०—जरा आईने में अपनी सूरत तो देख आओ: तुम्हें मेरी कसम है। जरा देख लो, कितना झेंपे हुए हो।
भाल०—सच कहना, कितना झेंपा हुआ हूँ।
रँगीली०—इतना ही, जितना कोई भलामानस चोर चोरी खुल जाने पर झेंपता है।
भाल०—खैर, मैं झेंपा ही सही; पर शादी वहाँ न होगी।
रँगीली०—मेरी बला से, जहाँ चाहो करो। क्यों, भुवन से एक बार क्यों नहीं पूछ लेते?
भाल०—अच्छी बात है, उसी पर फैसला रहा।
रँगीली—जरा भी इशारा न करना!
भाल०—अजी, मैं उसकी तरफ ताकूँगा[1] भी नहीं।

संयोग से ठीक इसी वक्त भुवनमोहन भी आ पहुँचा। ऐसे सुन्दर, सुडौल, बलिष्ट युवक कालेजों में बहुत कम देखने में आते हैं। बिल्कुल माँ को पड़ा था, वही गोरा-चिट्टा रंग, वही पतले-पतले गुलाब की पत्ती-के-से-ओंठ, वही चौड़ा माथा, वही बड़ी-बड़ी आँखें, डील-डौल बाप का-सा था। ऊँचा कोट, ब्रीचेज, टाई, बूट, हैट उस पर खूब खिल रहे थे। हाथ में एक हाकी-स्टिक थी। चाल में जवानी का गरूर था, आँखों में आत्मगौरव।

रँगीली ने कहा—आज बड़ी देर लगाई तुमने? यह देखो, तुम्हारी ससुराल से यह खत आया है। तुम्हारी सास ने लिखा है। साफ-साफ बतला दो, अभी सबेरा है। तुम्हें वहाँ शादी करना मंजूर है या नहीं?
भुवन०—शादी करनी तो चाहिए अम्माँ, पर मैं करूँगा नहीं।
रँगीली०—क्यों?
भुवन०—कहीं ऐसी जगह शादी करवाइये, कि खूब रुपये मिलें। और न सही, एक लाख का तो डौल हो। वहाँ अब क्या रखा है। वकील साहब रहे ही नहीं, बुढ़िया के पास अब क्या होगा?
रँगीली०—तुम्हें ऐसी बातें मुँह से निकालते शर्म नहीं आती?
भुवन०—इसमें शर्म की कौन-सी बात है? रुपये किसे काटते हैं[2] ? लाख रुपये तो लाख जन्म में भी न जमा कर पाऊँगा। इस साल पास भी हो गया, तो कम-से-कम पाँच साल तक रुपये की सूरत नजर न आयेगी। फिर सौ-दो-सौ रुपये महीने कमाने लगूँगा। पाँच-छः तक पहुँचते-पहुँचते उम्र के तीन भाग बीत जायेंगे। रुपये जमा करने की नौबत ही न आयेगी। दुनिया का कुछ मजा न उठा सकूँगा। किसी धनी की लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता; बस एक लाख नकद हो; या फिर कोई ऐसी जायदाद वाली बेवा[3] मिले जिसके एक ही लड़की हो।
रँगीली०—चाहे औरत कैसी ही मिले।
भुवन०—धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे वह गालियाँ भी सुनाये, तो भी चूँ न करूँ। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है?
बाबू साहब ने प्रशंसा-सूचक भाव से कहा—हमें उन लोगों के साथ सहानुभूति है, और दुःख है, कि ईश्वर ने उन्हें विपत्ति में डाला; लेकिन बुद्धि से काम लेकर ही कोई निश्चय करना चाहिए। हम कितने ही फटे-हालों जायँ, फिर भी अच्छी-खासी बारात हो जायगी। वहाँ भोजन का भी ठिकाना नहीं। सिवा इसके कि लोग हँसें, और कोई नतीजा न निकलेगा।
रँगीली०—तुम बाप पूत दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। दोनों उस गरीब लड़की के गले पर छुरी फेरना चाहते हो।
भुवन०—जो गरीब है उसे गरीबों ही के यहाँ सम्बन्ध करना चाहिए। अपनी हैसियत से बढ़कर...
रँगीली०—चुप भी रह, आया है वहाँ से हैसियत लेकर। तुम कहाँ के धन्ना-सेठ हो? कोई आदमी द्वार पर आ जाये, तो एक लोटे पानी को तरस जाय। बड़े हैसियतवाले बने हो।

यह कहकर रँगीली वहाँ से उठकर रसोई का प्रबन्ध करने चली गयी।

भुवनमोहन के साथ निर्मला का विवाह टूट जाना

भुवनमोहन मुस्कराता हुआ अपने कमरे में चला गया और बाबूसाहब मूँछों पर ताव देते हुए बाहर आये कि मोटेराम को अन्तिम निश्चय सुना दें, पर उनका कहीं पता न था।

मोटेरामजी कुछ देर तक तो कहार की राह देखते रहे, जब उसके आने में बहुत देर हुई, तो उनसे बैठा न गया। सोचा यहाँ बैठे-बैठे काम न चलेगा, कुछ उद्योग करना चाहिए। भाग्य के भरोसे

1 देखूँगा, 2 किसे खराब लगते हैं?, 3 विधवा,

यहाँ अड़ी किये बैठे रहें तो भूखों मर जायेंगे। यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलने की[1]। चुपके से लकड़ी उठायी और जिधर वह कहार गया था, उसी तरफ चले। बाजार थोड़ी ही दूर पर था, एक क्षण में जा पहुँचे। देखा तो बुड्ढा एक हलवाई की दूकान पर बैठा चिलम पी रहा था। उसे देखते ही आपने बड़ी बेतकल्लुफी[2] से कहा—अभी कुछ तैयार नहीं है क्या महरा? सरकार वहाँ बैठे बिगड़ रहे हैं कि जाकर सो गया या ताड़ी पीने लगा, मैंने कहा—'सरकार यह बात नहीं, बुड्ढा आदमी है, आते ही बड़े विचित्र जीव हैं।.न जाने इनके यहाँ कैसे नौकर टिकते हैं!

कहार—मुझे छोड़ कर आज तक दूसरा कोई टिका नहीं, और न टिकेगा। साल-भर से तलब[3] नहीं मिली। किसी को तलब नहीं देते। जहाँ किसी ने तलब माँगी और लगे डाँटने। बेचारा नौकरी छोड़कर भाग जाता है। वे दोनों आदमी जो पंखा झल रहे थे, सरकारी नौकर है। सरकार से दो अर्दली मिले हैं न। इसी से पड़े हुए हैं। मैं भी सोचता हूँ, जैसा तेरा ताना-बाना वैसी मेरी भरनी[4]। दस साल कट गये हैं, साल दो साल और इसी तरह कट जायेंगे।
मोटेराम—तो तुम्हीं अकेले हो? नाम तो कई कहारों का लेते हैं।
कहार—वह सब इन दो-तीन महीनों के अन्दर आये और छोड़-छोड़ कर चले गये। यह अपना रौब जमाने को अभी तक उनका नाम जपा करते हैं। कहीं नौकरी दिलाइएगा, चलूँ?
मोटेराम—अजी, बहुत नौकरी है। कहार तो आजकल ढूँढ़े नहीं मिलते। तुम तो पुराने आदमी हो, तुम्हारे लिए नौकरी की क्या कमी है। यहाँ कोई ताजी चीज? मुझसे कहने लगे, खिचड़ी बनाइएगा या बाटी लगाइएगा? मैंने कह दिया—सरकार, बुड्ढा आदमी है, रात को उसे मेरा भोजन बनाने में कष्ट होगा, मैं कुछ बाजार ही से खा लूँगा। इसकी आप चिन्ता न करें। बोले, अच्छी बात है, कहार आपको दुकान पर मिलेगा। बोलो साहजी, कुछ तर माल तैयार है? लड्डू तो ताजे मालूम होते हैं। तौल दो एक सेर भर। आ जाऊँ वहीं ऊपर न?

यह कहकर मोटेरामजी हलवाई की दुकान पर जा बैठे और तर माल चखने लगे। खूब छककर खाया। ढाई-तीन सेर चट कर गये[5]। खाते जाते थे और हलवाई की तारीफ करते जाते थे—साहजी, तुम्हारी दुकान का जैसा नाम सुना था, वैसा ही माल भी पाया। बनारसवाले ऐसे रसगुल्ले नहीं बना पाते, कलाकन्द अच्छी बनाते हैं। पर तुम्हारी उनसे बुरी नहीं। माल डालने से अच्छी चीज नहीं बन जाती, विद्या चाहिए।

हलवाई—कुछ और लीजिए महाराज! थोड़ी-सी रबड़ी मेरी तरफ से लीजिए।
मोटेराम—इच्छा तो नहीं है, लेकिन दे दो पाव-भर।
हलवाई—पाव-भर क्या लीजिएगा? चीज अच्छी है, आध सेर तो लीजिए।

खूब इच्छापूर्ण भोजन करके पंडितजी ने थोड़ी देर तक बाजार की सैर की, और नौ बजते-बजते मकान पर आये। यहाँ सन्नाटा-सा छाया हुआ था। एक लालटेन जल रही थी। आपने चबूतरे पर बिस्तर जमाया और सो गये।

सबेरे अपने नियमानुसार कोई आठ बजे उठे, तो देखा कि बाबूसाहब टहल रहे हैं। इन्हें जगा देखकर वह पालागन कर बोले—महाराज, आप रात कहाँ चले गये? मैं बड़ी रात तक आपकी राह देखता रहा। भोजन का सब सामान बड़ी देर तक रखा रहा। जब आप न आये तो रखवा दिया गया। आपने कुछ भोजन किया था या नहीं?

मोटे०—हलवाई की दुकान में कुछ खा आया था।
भाल०—अजी पूरी-मिठाई में वह आनन्द कहाँ जो बाटी और दाल में है। दस-बारह आने खर्च हो गये होंगे, फिर भी पेट न भरा होगा, आप मेरे मेहमान हैं, जितने पैसे लगे हों ले लीजिएगा।
मोटे०—आप ही के हलवाई की दुकान पर खाया था; वह जो नुक्कड़ पर बैठता है।
भाल०—कितने पैसे देने पड़े?
मोटे०—आपके हिसाब में लिखा दिये हैं।.
भाल०—जितनी मिठाइयाँ ली हों, मुझे बता दीजिए, नहीं तो पीछे से बेईमानी करने लगेगा। एक ही ठग है।
मोटे०—कोई ढाई सेर मिठाई थी और आध सेर रबड़ी।

बाबूसाहब ने विस्फारित[6] नेत्रों से पंडितजी को देखा, मानो कोई अचम्भे की बात सुनी हो। तीन सेर तो कभी यहाँ महीने भर का टोटल भी न होता था और यह महाशय एक ही बार में कोई चार रुपये का माल उड़ा गये। अगर एक आध दिन और रह गये, तो बधिया बैठ जायेगी। पेट है या

1 बात न बनने की, 2 निःसंकोच भाव से, 3 वेतन, 4 क०—जैसे को तैसा, 5 मु०—खा गये, 6 चकित भाव से आँखें फाड़कर

शैतान की कब्र? तीन सेर! कुछ ठिकाना है! उद्विग्न दशा में दौड़े हुए अन्दर गये और रँगीली से बोले—कुछ सुनती हो, यह महाशय कल तीन सेर मिठाई उड़ा गये। तीन सेर पक्की तौल!

रँगीलीबाई ने विस्मित होकर कहा—अजी नहीं, तीन सेर भला क्या खा जाएगा! आदमी है या बैल?

भाल०—तीन सेर तो अपने मुँह से कह रहा है। चार सेर से कम न खाया होगा, पक्की तौल!

रँगीली०—पेट में सनीचर है क्या?

भाल०—आज और रह गया तो छः सेर पर हाथ फेरेगा[1]।

रँगीली०—तो आज रहे ही क्यों, खत का जवाब जो देना हो देकर विदा करो। अगर रहे तो साफ कह देना कि हमारे यहाँ मिठाई मुफ्त नहीं आती। खिचड़ी बनाना हो, बनावे, नहीं तो अपनी राह ले। जिन्हें ऐसे पेटुओं को खिलाने से मुक्ति मिलती हो; वे खिलायें हमें ऐसी मुक्ति न चाहिये।

मगर पंडित विदा होने को तैयार बैठे थे, इसीलिए बाबूसाहब को कौशल से काम लेने की जरूरत न पड़ी।

पूछा—क्या तैयारी कर दी महाराज?

मोटे०—हाँ सरकार, अब चलूँगा। नौ बजे की गाड़ी मिलेगी न?

भाल०—भला आज तो और रहिए।

यह कहते-कहते बाबूजी को भय हुआ कि कहीं यह महाराज सचमुच न रह जायें, इसलिए वाक्य को यों पूरा किया—हाँ, वहाँ भी लोग आपका इन्तजार कर रहे होंगे।

मोटे०—एक-दो दिन की तो कोई बात न थी और विचार भी यही था कि त्रिवेणी का स्नान करूँगा; पर बुरा न मानिए तो कहूँ,—आप लोगों में ब्राह्मणों के प्रति लेशमात्र[2] भी श्रद्धा नहीं है। हमारे जजमान हैं, जो हमारा मुँह जोहते रहते हैं[3] कि पंडितजी कोई आज्ञा दें तो उसका पालन करें। हम उनके द्वार पर पहुँच जाते हैं, तो वे अपना धन्य भाग्य समझते हैं और सारा घर—छोटे से बड़े तक हमारी सेवा-सत्कार में मग्न हो जाते हैं। जहाँ अपना आदर नहीं, वहाँ एक क्षण भी ठहरना असह्य है। जहाँ ब्राह्मण का आदर नहीं, वहाँ कल्याण नहीं हो सकता।

भाल०—महाराज, हमसे तो ऐसा अपराध नहीं हुआ।

मोटे०—अपराध नहीं हुआ! और अपराध कहते किसे हैं? अभी आप ही ने घर में जाकर कहा कि यह महाशय तीन सेर मिठाई चट कर गये; पक्की तौल! आपने अभी खानेवाले देखे कहाँ। एक बार खिलाइये तो आँखें खुल जायें। ऐसे-ऐसे महान् पुरुष पड़े हैं जो पसेरी[4] भर मिठाई खा जायें और डकार तक न लें। एक-एक मिठाई खाने के लिये हमारी चिरौरी[5] की जाती है, रुपये दिये जाते हैं। हम भिक्षुक ब्राह्मण नहीं है, जो आपके द्वार पर पड़े रहें। आपका नाम सुन कर आये थे, यह न जानते थे कि यहाँ मेरे भोजन के भी लाले पड़ेंगे[6]। जाइये, भगवान आपका कल्याण करें।

बाबू साहब ऐसा झेंपे कि मुँह से बात न निकली। जिन्दगी भर में उन पर कभी ऐसी फटकार न पड़ी थी। बहुत बातें बनायी—आपकी चर्चा न थी, एक दूसरे ही महाशय की बात थी, लेकिन पंडितजी का क्रोध शान्त न हुआ। वह सब कुछ सह सकते थे, पर अपने पेट की निन्दा न सह सकते थे। औरतों को रूप की निन्दा जितनी अप्रिय लगती है, उससे कहीं अधिक अप्रिय पुरुषों को अपने पेट की निन्दा लगती है। बाबू साहब मानते तो थे; पर धड़का भी समाया हुआ था कि यह टिक न जायें। उनकी कृपणता का परदा खुल गया था, अब इसमें सन्देह न था। उस पर्दे को ढाँकना जरूरी था। अपनी कृपणता को छिपाने के लिए उन्होंने कोई बात उठा न रखी; पर होनेवाली बात होकर रही। पछता रहे थे कि कहाँ से घर में इसकी बात कहने गया और कहा भी तो उच्च स्वर में। यह दुष्ट भी कान लगाये सुनता रहा। किन्तु अब पछताने से क्या हो सकता था? न जाने किस ममहूस की सूरत देखी थी कि यह विपत्ति गले पड़ी। अगर इस वक्त यहाँ से रुष्ट होकर चला गया; तो वहाँ जाकर बदनाम करेगा और मेरा सारा कौशल खुल जायगा। अब तो इसका मुँह बन्द कर देना ही पड़ेगा।

यह सोच-विचार करते हुए वह घर में जाकर रंगीलीबाई से बोले—इस दुष्ट ने हमारी-तुम्हारी बातें सुन ली। रूठकर चला जा रहा है।

रंगीली०—जब तुम जानते थे कि द्वार पर खड़ा है तो धीरे से क्यों न बोले?

भाल०—विपत्ति आती है; तो अकेले नहीं आती। यह क्या जानता था कि वह द्वार पर कान लगाये खड़ा है।

रंगीली०—न जाने किसका मुँह देखा था।

---

1 मु०—समाप्त करेगा (खा जाएगा), 2 थोड़ी भी, 3 मु०—इंतजार करते रहते हैं, 4 पाँच सेर, 5 खुशामद, 6 मु०—अभाव हो जायेगा

ज० —वही दुष्ट सामने लेटा हुआ था। जानता तो उधर ताकता ही नहीं। अब तो इसे कुछ -दिलाकर राजी करना पड़ेगा।

ीली०—ऊँह, जाने भी दो। जब तुम्हें वहाँ विवाह ही नहीं करना है, तो क्या परवाह है? जो ाहे समझे, जो चाहे कहे!

ाल० —यों जान न बचेगी। लाओ दस रुपये विदाई के बहाने दे दूँ। ईश्वर फिर इस मनहूस की रत न दिखाये।

ीली ने बहुत अछताते-पछताते दस रुपये निकाले और बाबू साहब ने उन्हें ले जाकर पंडितजी चरणों पर रख दिया। पंडितजी ने दिल में कहा—धत्तेरे मक्खीचूस की—ऐसा रगड़ा कि याद रोगे। तुम समझते होगे कि दस रुपये देकर इसे उल्लू बना लूँगा। इस फेर में न रहना। यहाँ म्हारी **नस-नस पहचानते**[1] हैं। रुपये जेब में रख लिये और आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

ाबू साहब बड़ी देर तक खड़े सोच रहे थे—मालूम नहीं, अब भी मुझे कृपण ही समझ रहा है, या रदा ढँक गया। कहीं ये रुपये भी तो पानी में नहीं गिर पड़े।

4

माँ को निर्मला के विवाह की चिंता

ल्याणी के सामने अब एक विषम समस्या आ खड़ी हुई। पति के देहान्त के बाद उसे अपनी रवस्था का यह पहला और बहुत ही कड़वा अनुभव हुआ। दरिद्र विधवा के लिए इससे बड़ी और या विपत्ति हो सकता है कि जवान बेटी सिर पर सवार हो। लड़के नंगे पाँव पढ़ने जा सकते हैं, ौका-बर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है, रूखा-सूखा खाकर निर्वाह किया जा सकता है; ोपड़े में दिन काटे जा सकते हैं लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बैठाई जा सकती। कल्याणी को ालचन्द्र पर ऐसा क्रोध आता था कि स्वयं जाकर उसके मुँह में कालिख लगाऊँ, सिर के बाल ोच लूँ, कहूँ कि तू अपनी बात से फिर गया; तू अपने बाप का बेटा नहीं। पंडित मोटेराम न नकी कपट-लीला का नग्न वृत्तान्त सुना दिया था।

ह इसी क्रोध में भरी बैठी थी कि कृष्णा खेलती हुई आयी; और बोली—कै दिन में बारात आयेगी म्माँ? पंडितजी तो आ गये।

ल्याणी—बारात का सपना देख रही है क्या?

ृष्णा—वही चन्दर तो कह रहा है कि दो-तीन दिन में बारात आयेगी, क्या न आयेगी अम्माँ?

ल्याणी—एक बार तो कह दिया, **सिर क्यों खाती**[2] है?

ृष्णा—सबके घर तो बारात आ रही है, हमारे यहाँ क्यों नहीं आती?

ल्याणी—तेरे यहाँ जो बारात लानेवाला था, उसके घर में आग लग गई।

ृष्णा—सच, अम्माँ! तब तो सारा घर जल गया होगा। कहाँ रहते होंगे? बहन कहाँ जाकर हेगी?

ल्याणी—अरे पगली! तू तो बात ही नहीं समझती। आग नहीं लगी। तब हमारे यहाँ ब्याह न रेगा।

ृष्णा—यह क्यों अम्माँ? पहले तो वहीं ठीक हो गया था न?

ल्याणी—बहुत से रुपये माँगता है मेरे पास उसे देने को रुपये नहीं हैं।

ृष्णा—क्या बड़े लालची हैं, अम्माँ?

ल्याणी—लालची नहीं तो और क्या हैं। पूरा कसाई, निर्दयी, दगाबाज।

ृष्णा—तब तो अम्माँ, बहुत अच्छा हुआ कि उसके घर बहन का ब्याह नहीं हुआ। बहन उसके ाथ कैसे रहती? यह तो खुश होने की बात है अम्माँ, तुम रंज क्यों करती हो?

ल्याणी ने पुत्री को स्नेहमयी दृष्टि से देखा। इनका कथन कितना सत्य है? भोले शब्दों में मस्या का कितना मार्मिक निरूपण है? सचमुच यह तो प्रसन्न होने की बात है कि ऐसे कुपात्रों से म्बन्ध नहीं हुआ, रंज की कोई बात नहीं। ऐसे कुमानुसों के बीच में बेचारी निर्मला की न जाने या गति होती। अपने नसीबों[3] को रोती। जरा-सा घी दाल में अधिक पड़ जाता, तो सारे घर में ोर मच जाता, जरा खाना ज्यादा पक जाता, तो सास दुनिया सिर पर उठा लेती। लड़का भी ऐसा ोभी है। बड़ी अच्छी बात हुई, नहीं तो बेचारी को उम्र भर रोना पड़ता। कल्याणी यहाँ से उठी, ो उसका हृदय हल्का हो गया था।

ेकिन विवाह तो करना ही था और हो सके तो इसी साल; नहीं तो दूसरे साल फिर नये सिरे से ैयारियाँ करनी पड़ेंगी। अब अच्छे घर की जरूरत न थी। अच्छे वर की जरूरत न थी। अभागिनी ो अच्छा घर-वर कहाँ मिलता! अब तो किसी भाँति सिर का बोझा उतारना था, किसी भाँति ड़की को पार लगाना था—उसे **कुएँ में झोंकना था**[4]। यह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है,

1 मु०—अच्छी प्रकार पूर्णतया या गहराई से पहचानते हैं, 2 मु०—परेशान क्यों करती हो, 3 भाग्य, 4 कष्ट में डालना था

कुलीन है, तो हुआ करे; दहेज नहीं तो उसके सारे गुण दोष है; दहेज हो तो सारे दोष-गुण हैं प्राणी का कोई मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है। कितनी विषम भाग्यलीला है!

कल्याणी का दोष कुछ कम न था। अबला और विधवा होना ही उसे दोषों से मुक्त नहीं कर सकता। उसे अपने लड़के अपनी लड़कियों से कहीं ज्यादा प्यारे थे। लड़के हल के बैल हैं, भूसे खली पर पहला हक उनका है, उनके खाने से जो बचे वह गायों का! मकान था, कुछ नकद था, कई हजार के गहने थे, लेकिन उसे अभी दो लड़कों का पालन-पोषण करना था, उन्हें पढ़ाना-लिखाना था। एक कन्या और भी चार-पाँच साल में विवाह करने योग्य हो जायेगी। इसीलिए वह कोई बड़ी रकम दहेज में न दे सकती थी; आखिर लड़कों को भी तो कुछ चाहिए। वे क्या समझेंगे कि हमारा भी कोई बाप था।

दूसरी जगह निर्मला के विवाह की बात पक्की करने के लिए मोटेराम द्वारा प्रयत्न करना

पंडित मोटेराम को लखनऊ से लौटे पन्द्रह दिन बीत चुके थे। लौटने के बाद दूसरे ही दिन से वह वर की खोज में निकले थे। उन्होंने प्रण किया था कि मैं लखनऊ वालों को दिखा दूँगा कि संसार में तुम्हीं अकेले नहीं हो, तुम्हारे जैसे और भी कितने पड़े हुए हैं। कल्याणी रोज दिन गिना करती थी। आज उसने उन्हें पत्र लिखने का निश्चय किया और कलम-दवात लेकर बैठी ही थी कि पंडित मोटेराम ने पदार्पण किया।

कल्याणी—आइये पंडितजी, मैं तो आपको खत लिखने जा रही थी, कब लौटे?
मोटेराम—लौटा तो प्रातःकाल ही था, पर इसी समय एक सेठ के यहाँ से निमन्त्रण आ गया। कई दिन से तर माल न मिले थे। मैंने कहा कि लगे हाथ यह भी काम निपटाता चलूँ। अभी उधर ही से लौटा आ रहा हूँ, कोई पाँच सौ ब्राह्मणों की पंगत थी।
कल्याणी—कुछ कार्य भी सिद्ध हुआ या रास्ता ही नापना पड़ा।
मोटे०—कार्य क्यों न सिद्ध होगा? भला, यह भी कोई बात है? पाँच जगह बातचीत कर आया हूँ। पाँचों की नकल लाया हूँ। उनमें से आप चाहे जिसे पसन्द करें। यह देखिए इस लड़के का बाप डाक के सीगे में 100) महीने का नौकर है। लड़का अभी कालेज में पढ़ रहा है। मगर नौकरी का भरोसा है, घर में कोई जायदाद नहीं। लड़का होनहार मालूम होता है। खानदान भी अच्छा है। 2000) में बात तय हो जायेगी। माँगते तो यह तीन हजार हैं।
कल्याणी—लड़के के कोई भाई हैं।
मोटे०—नहीं, मगर तीन बहनें हैं और तीनों क्वाँरी। माता जीवित है। अच्छा अब दूसरी नकल देखिये। यह लड़का रेल के सीगे में 50) महीना पाता है। माँ-बाप नहीं हैं। बहुत ही रूपवान्, सुशील और शरीर से खूब हृष्ट-पुष्ट, कसरती जवान है। मगर खानदान अच्छा नहीं, कोई कहता है, माँ नाइन थी; कोई कहता है, ठकुराइन थी। बाप किसी रियासत में मुख्तार थे। घर पर थोड़ी-सी जमींदारी है, मगर उस पर कई हजार का कर्ज है। वहाँ कुछ लेना-देना न पड़ेगा। उम्र कोई 20 साल होगी।

कल्याणी—खानदान में दाग न होता तो मन्जूर कर लेती। देखकर तो मक्खी नहीं निगली जाती।
मोटे०—तीसरी नकल देखिए। एक जमींदार का लड़का है; कोई एक हजार सालाना नफा है। कुछ खेती-बारी भी होती है। लड़का पढ़ा-लिखा तो थोड़ा ही है; पर कचहरी-अदालत के काम में चतुर है। दुहाजूं है, पहली स्त्री को मरे दो साल हुए। उससे कोई संतान नहीं; लेकिन रहन-सहन मोटा है। पीसना-कूटना घर ही में होता है।
कल्याणी—कुछ दहेज माँगते हैं?
मोटे०—इसकी कुछ न पूछिए। चार हजार सुनाते हैं। अच्छा यह चौथी नकल देखिये। लड़का वकील है, उम्र कोई पैंतीस साल होगी। तीन-चार सौ की आमदनी है। पहली स्त्री मर चुकी है। उससे तीन लड़के भी हैं अपना घर बनवाया है। कुछ जायदाद भी खरीदी है। यहाँ भी लेन-देन का झगड़ा नहीं है।
कल्याणी—खानदान कैसा है?
मोटे०—बहुत ही उत्तम, पुराने रईस हैं। अच्छा यह पाँचवीं नकल देखिए। बाप का छापाखाना है। लड़का पढ़ा तो बी० ए० तक है, पर उसी छापेखाने में काम करता है। उम्र अठारह साल की होगी। घर में प्रेस के सिवाय कोई जायदाद नहीं है; मगर किसी का कर्ज सिर पर नहीं। खानदान न बहुत अच्छा है, न बुरा। लड़का बहुत सुन्दर और सच्चरित्र है। मगर एक हजार से कम में मामला तय न होगा, माँगते तो वह तीन हजार हैं। अब बताइए, आप कौन-सा वर पसन्द करती हैं।
कल्याणी—आपको सबों में कौन पसन्द है।
मोटे०—मुझे तो दो वर पसन्द हैं। एक वह जो रेलवई में है, और दूसरा वह जो छापेखाने में काम करता है।
कल्याणी—मगर पहले के तो खानदान में आप दोष बताते हैं?
मोटे०—हाँ, यह दोष तो है। छापेखाने वाले को ही रहने दीजिये।

कल्याणी—यहाँ एक हजार देने को कहाँ से आयेगा? एक हजार तो आपका अनुमान है, शायद वह और मुँह फैलाये। आप तो घर की दशा देख ही रहे हैं, भोजन मिलता जाय, यही गनीमत है[1]। रुपये कहाँ से आयेंगे? जमींदार साहब चार हजार सुनाते हैं, डाक बाबू भी दो हजार का सवाल करते हैं। इनको जाने दीजिए। बस, वकील साहब ही बच रहते हैं। पैंतीस साल की उम्र भी कोई ज्यादा नहीं। इन्हीं को क्यों न रखिए।

मोटेराम—आप खूब सोच-विचार लें। मैं यों आपकी मर्जी का ताबेदार हूँ। जहाँ कहिएगा वहाँ जा कर टीका कर आऊँगा। मगर हजार का मुँह न देखिए, छापेखाने वाला लड़का रत्न है। उसके साथ कन्या का जीवन सफल हो जाएगा। जैसी यह रूप और गुण की पूरी है, वैसा ही लड़का भी सुन्दर और सुशील है।

मॉं द्वारा वकील साहब के साथ निर्मला का विवाह ठीक करना

कल्याणी—पसन्द तो मुझे भी यही है महाराज, पर रुपये किसके घर से आयें! कौन देने वाला है! है कोई दानी? खाने वाले तो खा-पीकर चंपत हुए[2]। अब किसी की भी सूरत नहीं दिखाई देती, बल्कि और मुझसे बुरा मानते हैं कि हमें निकाल दिया। जो बात अपने बस के बाहर है, उसके लिए हाथ ही क्यों फैलाऊँ? सन्तान किसको प्यारी नहीं होती? कौन उसे सुखी नहीं देखना चाहता? पर जब अपना काबू भी हो। आप ईश्वर का नाम लेकर वकील साहब को टीका कर आइये। आयु कुछ अधिक है, लेकिन मरना-जीना विधि[3] के हाथ है। पैंतीस साल का आदमी बुड्ढा नहीं कहलाता। अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा है, तो जहाँ जायेगी सुखी रहेगी, दुःख भोगना है, तो जहाँ जायेगी दुःख झेलेगी। हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है। उनके बच्चों को अपना समझेगी। आप शुभ मुहूर्त देखकर टीका कर आयें।

बोध प्रश्न

5 कल्याणी का पत्र पढ़कर रंगीलीबाई ने पति से क्या कहा?

- क) ब्राह्मण से बात कर भुवनमोहन का निर्मला के साथ विवाह की बात पक्की कर ले
- ख) ब्राह्मण द्वारा विवाह अस्वीकार करने का संदेशा भिजवा दे
- ग) कल्याणी को शोक पत्र लिख दे
- घ) निर्मला के घर स्वयं चला जाए ☐

6 रंगीलीबाई ने जब पुत्र भुवनमोहन से विवाह की बात कही तो उसने क्या उत्तर दिया?

- क) विवाह के लिए पाँच हजार रुपये की माँग रखी
- ख) ऐसी जगह शादी करवाए जहाँ अधिक रुपया मिले
- ग) पिता से मंजूरी के लिए पूछा
- घ) विवाह के लिए मंजूरी जाहिर की ☐

7 जमींदार के लड़के के साथ निर्मला के विवाह की बात पक्की क्यों नहीं हो सकी?

- क) लड़के की उम्र बहुत अधिक थी
- ख) जमींदार दहेज में चार हजार रुपये माँगता था
- ग) लड़का नाटे कद का था
- घ) लड़का काम नहीं करता था ☐

8 इस अंश में आयी कथा की सबसे प्रमुख घटना कौन-सी है?

- क) मोटेराम द्वारा खूब मिठाई खाना।
- ख) कल्याणी का दुःखी होना।
- ग) निर्मला की शादी का टूटना।
- घ) मोटेराम द्वारा वर की खोज करना। ☐

पति के मृत्यु के बाद कल्याणी को निर्मला के विवाह को लेकर चिंता बढ़ जाती है। उसने पूर्व निश्चित तिथि पर ही विवाह कराने का निश्चय कर, पंडित मोटेराम को वर के यहाँ भेजती है। वर का पिता जब यह देखता है कि विवाह में दहेज मिलने की संभावना समाप्त हो गई है तो वह टालमटोल की नीति अपनाता है। इस प्रकार यह रिश्ता टूट जाता है। अब कल्याणी और अधिक चिंतित हो जाती है। एक अधेड़ तथा दुहाजू व्यक्ति के साथ निर्मला का विवाह तय हो जाता है। क्या इस विवाह से निर्मला के जीवन में कोई बदलाव आया आइए आगे देखें।

---

1 संतोष की बात है, 2 मु०—भाग गए, 3 भगवान, भाग्य

अधेड़ के साथ निर्मला का विवाह हो जाना

निर्मला का विवाह हो गया। ससुराल आ गयी। वकील साहब का नाम था मुंशी तोताराम। सांवले रंग के मोटे-ताजे आदमी थे। उम्र तो अभी चालीस से अधिक न थी; पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर के बाल पका दिये थे। व्यायाम करने का उन्हें अवकाश न मिलता था। यहाँ तक कि कभी कहीं घूमने भी न जाते, इसीलिए तोंद निकल आई थी। देह के स्थूल[1] होते हुए भी आये दिन कोई-न-कोई शिकायत रहती थी। मंदाग्नि और बवासीर से तो उनका चिरस्थायी सम्बन्ध था। अतएव बहुत **फूँक-फूँककर कदम रखते थे**[2]। उनके तीन लड़के थे। बड़ा मंसाराम सोलह वर्ष का था, मँझला जियाराम बारह और सियाराम सात वर्ष का। तीनों अँग्रेजी पढ़ते थे। घर में वकील साहब की विधवा बहिन के सिवा और कोई औरत न थी। वही घर की मालकिन थी। उनका नाम था रुक्मिणी और अवस्था पचास के ऊपर थी। ससुराल में कोई न था। स्थायी रीति से यहीं रहती थीं।

तोताराम दम्पत्ति-विज्ञान में कुशल थे। निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी; उसे वह उपहारों से पूरी करना चाहते थे। यद्यपि वह बहुत ही **मितव्ययी**[3] पुरुष थे, पर निर्मला के लिए कोई-न-कोई **तोहफा**[4] रोज लाया करते। मौके पर धन की परवाह न करते थे। लड़के के लिए थोड़ा दूध आता था, पर निर्मला के लिए मेवे, मुरब्बे, मिठाइयाँ—किसी चीज की कमी न थी। अपनी जिंदगी में कभी सैर-तमाशे देखने न गये थे; पर अब छुट्टियों में निर्मला को सिनेमा, सरकस, थिएटर दिखाने ले जाते थे। अपने बहुमूल्य समय का थोड़ा-सा हिस्सा उसके साथ बैठकर ग्रामोफोन बजाने में व्यतीत किया करते थे।

अनमेल विवाह का प्रभाव

लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने-बोलने में संकोच होता था। इसका कदाचित् यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर-झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी; अब उनकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।

वकील साहब को उनके दम्पत्ति-विज्ञान ने सिखाया था कि युवती के सामने खूब प्रेम की बातें करनी चाहिये। दिल निकालकर रख देना चाहिए, यही उसके वशीकरण का मुख्य मंत्र है। इसलिए वकील साहब अपने प्रेम-प्रदर्शन में **कोई कसर न रखते**[5] थे, लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुन कर उसका हृदय प्रेम से **उन्मत्त**[6] हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकलकर उसके हृदय पर शर के समान आघात करती थी। उनमें रस न था, उल्लास न था, उन्माद न था, हृदय न था, केवल बनावट थी, धोखा था, और था शुष्क, नीरस शब्दाडम्बर। उसे इत्र और तेल बुरा न लगता, सैर-तमाशे बुरे न लगते, बनाव-सिंगार भी बुरा न लगता था, बुरा लगता था, तो केवल तोताराम के पास बैठना। वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखाना चाहती थी, क्योंकि वहाँ देखने वाली आँखें न थीं। वह उन्हें इन रसों का आस्वादन लेने योग्य ही न समझती थी। **कली प्रभात-समीर**[7] ही के स्पर्श से खिलती है। दोनों के समान **सारस्य**[8] है। निर्मला के लिए वह प्रभात समीर कहाँ था?

पहला महीना गुजरते ही तोताराम ने निर्मला को अपना खजांची बना लिया। कचहरी से आकर दिन-भर की कमाई उसे दे देते। उनका ख्याल था कि निर्मला इन रुपयों को देखकर **फूली न समाएगी**[9]। निर्मला बड़े शौक से इस पद का काम **अंजाम**[10] देती। एक-एक पैसे का हिसाब लिखती, अगर कभी रुपये कम मिलते, तो पूछती आज कम क्यों हैं? गृहस्थी के सम्बन्ध में उनसे खूब बातें करती। इन्हीं बातों के लायक वह उनको समझती थी। ज्योंही कोई विनोद की बात उनके मुँह से निकल जाती, उसका **मुख मलिन हो जाता था**[11]।

निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौन्दर्य की **सुषमापूर्ण आभा**[12] देखती, तो उसका हृदय एक **सतृष्ण**[13] कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वाला-सी उठती। मन में आता इस घर में आग लगा दूँ। अपनी माता पर क्रोध आता पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध तोताराम पर आता। वह सदैव इस ताप से जला करती। बाँका सवार बूढ़े लद्दू टट्टू पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े? निर्मला की दशा उसी बाँके सवार की-सी थी। वह उस पर सवार होकर उड़ना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्युत गति का आनन्द उठाना चाहती थी, टट्टू के हिनहिनाने

---

1 मोटा, 2 मु०—सम्भल कर चलते अर्थात् कोई काम करते थे, 3 कम खर्च करने वाला, 4 उपहार, 5 कोई कमी न रखते थे, 6 मतवाला, 7 सुबह बहने वाली हवा, 8 एक ही रस, एक ही आधार, 9 मु०—अत्यधिक खुश होगी, 10 परिणाम, 11 उदास हो जाती थी, मुँह की कान्ति या प्रसन्नता नष्ट हो जाती थी, 12 सुन्दरता से पूर्ण चमक, 13 प्यास से युक्त, अभिलाषा से युक्त

ार कनौतियाँ खड़ी करने से क्या आशा होती? संभव था कि बच्चों के साथ हँसने-खेलने से वह पनी दशा को थोड़ी देर के लिए भूल जाती, **कुछ मन हरा हो जाता**[1] लेकिन रुक्मिणी देवी ड़कों को उसके पास फटकने तक न देतीं, मानो वह कोई पिशाचिनी है, जो उन्हें निगल ायेगी। रुक्मिणी देवी का स्वभाव सारे संसार से निराला था, यह पता लगाना कठिन था कि वह ‌स बात से खुश होती थीं और किस बात से नाराज। एक बार जिस बात से खुश हो जाती थीं, ‌सरी बार उसी बात से जल जाती थीं। अगर निर्मला अपने कमरे में बैठी रहती तो कहतीं कि न ाने कहाँ की **मनहूसिन**[2] है, अगर वह कोठे पर चढ़ जाती या महरियों से बातें करती तो छाती ‌टने लगतीं—न लाज है न शरम, निगोड़ी ने **हया भून खाई**[3]! अब क्या कुछ दिनों में बाजार में ‌चेगी! जब से वकील साहब ने निर्मला के हाथ में रुपये-पैसे देने शुरू किये, रुक्मिणी उसकी ालोचना करने पर **आरूढ़**[4] हो गयी। उन्हें मालूम होता था कि अब प्रलय होने में बहुत थोड़ी सर रह गयी है। लड़कों को बार-बार पैसों की जरूरत पड़ती। जब तक खुद स्वामिनी थीं, उन्हें हला दिया करती थीं। अब सीधे निर्मला के पास भेज देतीं। निर्मला को लड़कों का **चटोरापन**[5] च्छा न लगता था। कभी-कभी पैसे देने से इन्कार कर देती। रुक्मिणी को अपने **वाग्बाण**[6] सर रने का अवसर मिल जाता—अब तो मालकिन हुई है, लड़के काहे को जियेंगे। बिना माँ के बच्चे ‌ कौन पूछे? रुपयों की मिठाइयाँ खा जाते थे, अब **धेले-धेले को तरसते हैं**[7]। निर्मला अगर ढ़कर किसी दिन बिना कुछ पूछे-ताछे पैसे दे देती, तो देवीजी उसकी दूसरी ही आलोचना रतीं—इन्हें क्या, लड़के मरें या जियें, इनकी बला से, माँ के बिना कौन समझाये कि बेटा, बहुत ‌ठाइयाँ मत खाओ। आयी-गयी तो मेरे सिर जायेगी, इन्हें क्या? यहीं तक होता तो निर्मला ‌ायद **जब्त कर जाती**[8], पर देवीजी तो **खुफिया**[9] पुलिस के सिपाही की भाँति निर्मला का पीछा रती रहती थीं। अगर वह कोठे पर खड़ी है, तो अवश्य ही किसी पर निगाह डाल रही होगी; हरी से बातें करती है, तो अवश्य ही उनकी निन्दा करती होगी। बाजार से कुछ मँगवाती है, तो वश्य कोई विलास वस्तु होगी। वह बराबर उसके पत्र पढ़ने की चेष्टा किया करती। ‌प-छिपकर बातें सुना करती। निर्मला उनकी दोधारी तलवार से काँपती रहती थी। यहाँ तक ‌ उसने एक दिन पति से कहा—आप जरा जीजी को समझा दीजिए, क्यों मेरे पीछे पड़ी रहती ?

ोताराम ने तेज होकर कहा—तुम्हें कुछ कहा है, क्या?

ोज ही कहती हैं। बात मुँह से निकालना मुश्किल है। अगर उन्हें इस बात की जलन हो कि यह ालकिन क्यों बनी हुई है, तो आप उन्हीं को रुपये-पैसे दीजिये मुझे न चाहिये. वही मालकिन ‌नी रहें। मैं तो केवल इतना चाहती हूँ कि कोई मुझे ताने-मेहने न दिया करे।

निर्मला के मन को वश में करने के लिए तोताराम का प्रयत्न

‌ह कहते-कहते निर्मला की आँखों से आँसू बहने लगे। तोताराम को अपना प्रेम दिखाने का यह हुत ही अच्छा मौका मिला। बोले—मैं आज ही उनकी **खबर लूँगा**[10]। साफ कह दूँगा, अगर मुँह ‌न्द करके रहना है, तो रहो, नहीं तो अपनी राह लो। इस घर की स्वामिनी वह नहीं है, तुम हो। ‌ह केवल तुम्हारी सहायता के लिए हैं। अगर सहायता करने के बदले तुम्हें **दिक करती हैं**[11], तो ‌नके यहाँ रहने की जरूरत नहीं, मैंने सोचा था कि विधवा हैं, अनाथ हैं, पाव भर आटा खायेंगी, ‌ड़ी रहेंगी। जब और नौकर-चाकर खा रहे हैं तो वह तो अपनी बहिन ही हैं। लड़कों की ‌ख-भाल के लिए एक औरत की जरूरत भी थी, रख लिया; लेकिन इसके यह माने नहीं, कि वह ‌म्हारे ऊपर शासन करें।

‌र्मला ने फिर कहा—लड़कों को सिखा देती हैं कि जाकर माँ से पैसे माँगों, कभी कुछ कभी कुछ। ‌ड़के आकर **मेरी जान खाते हैं**[12]। घड़ी भर लेटना मुश्किल हो जाता है। डाँटती हूँ, तो वह **ाँखें लाल-पीली करके दौड़ती हैं**।[13] मुझे समझती हैं कि लड़कों को देखकर जलती है। ईश्वर ‌ानते होंगे कि मैं बच्चों को कितना प्यार करती हूँ। आखिर मेरे ही बच्चे तो हैं। मुझे उनसे क्यों ‌लन होने लगी!

‌ताराम **क्रोध से काँप उठे**[14]। बोले—तुम्हें जो लड़का दिक करे, उसे पीट दिया करो। मैं भी ‌खता हूँ, कि लौंडे **शरीर**[15] हो गये हैं। मंसाराम को तो मैं बोर्डिंग हाउस में भेज दूँगा। बाकी ‌नों को तो आज ही ठीक किये देता हूँ।

स वक्त तोताराम कचहरी जा रहे थे, डाँट-डपट करने का मौका न था; लेकिन कचहरी से लौटते ‌ उन्होंने घर में आकर रुक्मिणी से कहा—क्यों बहिन, तुम्हें इस घर में रहना है या नहीं? अगर

मु०—प्रसन्न हो जाता, 2 अशुभ दर्शन वाली, 3 मु०—लाज शर्म छोड़ दी, 4 तैयार हो जाना. (चढ़ जाना). माँग कर खाने की आदत, चट से किसी चीज़ को खाकर फिर उसके लिए ललकना या ललचाना, 6 वाक्य का ण चलाना अर्थात् भला-बुरा कहना, 7 मु०—थोड़े-थोड़े पैसों या धन के लिए तरसते हैं, 8 चुप हो जाती, पने पर काबू रखना, 9 जासूस, 10 मु०—डाँटूँ-डपटूँगा, 11 परेशान करती है, 12 मु०—तंग करते हैं, परेशान रते हैं, 13 मु०—अत्यधिक गुस्सा करती हैं, 14 मु०—अत्यधिक क्रोधित हो गए, 15 शैतान

रहना है, शान्त होकर रहो। यह क्या कि दूसरों का रहना मुश्किल कर दो।

रुक्मिणी समझ गयीं कि बहू ने अपना वार किया; पर वह दबनेवाली औरत न थीं। एक तो उम्र में बड़ी, तिस पर इसी घर की सेवा में जिन्दगी काट दी थी! किसकी **मजाल**[1] थी कि उन्हें **बेदखल**[2] कर दे। उन्हें भाई की इस क्षुद्रता पर आश्चर्य हुआ। बोली—तो क्या **लौंडी बनाकर**[3] रखोगे? लौंडी बनकर रहना है, तो इस घर की लौंडी न बनूँगी। अगर तुम्हारी यह इच्छा हो कि घर में कोई आग लगा दे और मैं खड़ी देखा करूँ, किसी को **बेराह**[4] चलते देखूँ; तो चुप साध लूँ, जो जिसके मन में आये करे, मैं **मिट्टी की देवी बनी रहूँ**,[5] तो यह मुझसे न होगा। यह हुआ क्या, जो तुम इतना **आपे से बाहर हो रहे हो**[6]? निकल गयी सारी बुद्धिमानी, कल की लौंडिया चोटी पकड़कर नचाने लगी? कुछ पूछना न ताछना, बस, उसने तार खींचा और तुम काठ के सिपाही की तरह तलवार निकालकर खड़े हो गये।

तोता०—सुनता हूँ, कि तुम हमेशा **खुचर निकालती रहती हो**[7], बात-बात पर ताने देती हो। अगर, कुछ सीख देनी हो, तो उसे प्यार से, मीठे शब्दों में देनी चाहिये। तानों से सीख मिलने के बदले उलटा और जी जलने लगता है।

रुक्मिणी—तो तुम्हारी यही **मर्जी**[8] है, कि किसी बात में न बोलूँ, यही सही। लेकिन फिर यह न कहना कि तुम घर में बैठी थीं, क्यों नहीं सलाह दी। जब मेरी **बातें जहर लगती हैं**[9], तो **मुझे क्या कुत्ते ने काटा**[10] है, जो बोलूँ? मसल है—'नाटो खेती, बहुरियों घर।' मैं भी देखूँ, बहुरिया कैसे घर चलाती है।

इतने में सियाराम और जियाराम स्कूल से आ गये। आते ही आते दोनों बुआजी के पास जाकर खाने को माँगने लगे।

रुक्मिणी ने कहा—जाकर अपनी नयी अम्माँ से क्यों नहीं माँगते, मुझे बोलने का **हुक्म**[11] नहीं है।

तोता०—अगर तुम लोगों ने उस घर में कदम रखा, तो टाँग तोड़ दूँगा। बदमाशी पर **कमर बाँधी**[12] है।

जियाराम जरा शोख था। बोला—उनको तो आप कुछ नहीं कहते, हमीं को धमकाते हैं। कभी पैसे नहीं देतीं।

सियाराम ने इस कथन का अनुमोदन किया—कहती हैं, मुझे दिक करोगे तो कान काट लूँगी। कहती हैं, कि नहीं जिया?

निर्मला अपने कमरे से बोली—मैंने कब कहा था, कि तुम्हारे कान काट लूँगी। अभी से झूठ बोलने लगे?

इतना सुनना था, कि तोताराम ने सियाराम के दोनों कान पकड़कर उठा लिया। लड़का जोर से चीख मारकर रोने लगा।

रुक्मिणी ने दौड़कर बच्चे को मुंशीजी के हाथ से छुड़ा लिया और बोली—बस रहने भी दो, क्या बच्चे को मार डालोगे? हाय-हाय! कान लाल हो गया। सच कहा है, नयी बीवी पाकर आदमी अन्धा हो जाता है। अभी से यह हाल है, तो इस घर के भगवान ही मालिक हैं।

निर्मला अपनी विजय पर मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी; लेकिन जब मुंशीजी ने बच्चे का कान पकड़कर उठा लिया, तो उससे न रहा गया। छुड़ाने को दौड़ी; पर रुक्मिणी पहले ही पहुँच गयी थीं। बोलीं—पहले आग लगा दी, अब बुझाने दौड़ी हो। जब अपने लड़के होंगे, तब आँखें खुलेंगी। **पराई पीर क्या जानो**[13]?

निर्मला—खड़े तो हैं, पूछ लो न, मैंने क्या आग लगा दी? मैंने इतना ही कहा था कि लड़के मुझे पैसों के लिए बार-बार दिक करते हैं। इसके सिवाय जो मेरे मुँह से कुछ निकला हो, तो मेरी आँखें फूट जायँ।

तोता०—मैं खुद इन लौंडों की शरारत देखा करता हूँ, अन्धा थोड़े ही हूँ। तीनों जिद्दी और शरीर हो गये हैं। बड़े मियाँ को तो मैं आज ही होस्टल में भेजता हूँ।

रुक्मिणी—अब तक तुम्हें इनकी कोई शरारत न सूझी थी, आज आँखें क्यों इतनी तेज हो गयीं?

तोताराम—तुम्हीं ने इन्हें इतना **शोख**[14] कर रखा है।

रुक्मिणी—तो मैं ही विष की गाँठ हूँ। मेरे ही कारण तुम्हारा घर चौपट हो रहा है। लो, मैं जाती हूँ; तुम्हारे लड़के हैं, मारो चाहे काटो, न बोलूँगी।

---

1 हिम्मत, 2 अधिकार-च्युत, 3 नौकरानी, 4 गलत राह, 5 मु०—उदासीन या जड़ बनी रहूँ, 6 मु०—अधिक क्रोधित हो रहे हो, 7 मु०—गलती निकालती रहती हो, 8 इच्छा, 9 मु०—खराब लगती हैं, कटु लगती हैं, 10 पागल होना, 11 आदेश, 12 मु०—तैयारी कर ली है, कटिबद्ध होना, 13 दूसरे का दुःख क्या जानो, 14 शैतान

यह कहकर वह वहाँ से चली गयीं। निर्मला बच्चे को रोते देखकर विह्वल हो उठी। उसने उसे छाती से लगा लिया और गोद में लिये हुए अपने कमरे में लाकर उसे चुमकारने लगी, लेकिन बालक और भी सिसक-सिसक कर रोने लगा। उसका अबोध हृदय इस प्यार में वह मातृ-स्नेह न पाता था, जिससे दैव ने उसे वंचित कर दिया था। यह वात्सल्य न था, केवल दया थी। यह वह वस्तु थी, जिस पर उसका कोई अधिकार न था, जो केवल भिक्षा के रूप में उसे दी जा रही थी। पिता ने पहले भी दो-एक बार मारा था, जब उसकी माँ जीवित थी; लेकिन तब उसकी माँ उसे छाती से लगाकर रोती न थी। वह अप्रसन्न होकर उससे बोलना छोड़ देती, यहाँ तक कि वह स्वयं थोड़ी ही देर के बाद सब कुछ भूलकर फिर माता के पास दौड़ा जाता था। शरारत के लिए सजा पाना तो उसकी समझ में आता था, लेकिन मार खाने पर चुमकारा जाना उसकी समझ में न आता था। मातृ-प्रेम में कठोरता होती थी, लेकिन मृदुलता से मिली हुई। इस प्रेम में करुणा थी, पर वह कठोरता न थी जो आत्मीयता का गुप्त सन्देश है। स्वस्थ अंग की परवाह कौन करता है? लेकिन वही अंग जब किसी वेदना से टपकने लगता है, तो उसे ठेस और धक्के से बचाने का यत्न किया जाता है। निर्मला का करुण रोदन बालक को उसके अनाथ होने की सूचना दे रहा था। वह बड़ी देर तक निर्मला की गोद में बैठा रोता रहा और रोते-रोते सो गया। निर्मला ने उसे चारपाई पर सुलाना चाहा, तो बालक, ने सुषुप्तावस्था में अपनी दोनों कोमल बाहें उसकी गर्दन में डाल दीं और ऐसा चिपट गया, मानो नीचे कोई गढ़ा हो। शंका और भय से उसका मुख विकृत हो गया। निर्मला ने फिर बालक को गोद में उठा लिया, चारपाई पर न सुला सकी। इस समय बालक को गोद में लिये हुए उसे वह तुष्टि हो रही थी जो अब तक कभी न हुई थी। आज पहली बार उसे आत्मवेदना हुई, जिसके बिना आँख नहीं खुलती, अपना कर्त्तव्य-मार्ग नहीं सूझता। वह मार्ग अब दिखायी देने लगा।

6

तोताराम द्वारा निर्मला को वश में नहीं कर पाने पर उदास रहना

उस दिन अपने प्रगाढ़ प्रणय का सबल प्रमाण देने के बाद मुंशी तोताराम को आशा हुई थी कि निर्मला के मर्म-स्थल पर मेरा सिक्का जम जायेगा, लेकिन उनकी यह आशा लेशमात्र भी पूरी न हुई, बल्कि पहले तो वह कभी-कभी उनसे हँसकर बोला भी करती थीं, अब बच्चों ही के लालन-पालन में व्यस्त रहने लगी। जब घर आते, बच्चों को उसके पास बैठे पाते। कभी देखते कि उन्हें खिला रही है, कभी कपड़े पहना रही है, कभी कोई खेल, खेल रही और कभी कोई कहानी कह रही है। निर्मला का तृषित हृदय प्रणय की ओर से निराश होकर इस **अवलम्ब**[1] ही को **गनीमत**[2] समझने लगा, बच्चों के साथ हँसने-बोलने में उसकी मातृ-कल्पना तृप्त होती थी। पति के साथ हँसने-बोलने में उसे जो संकोच, जो अरुचि तथा जो अनिच्छा होती थी, यहाँ तक कि वह उठकर भाग जाना चाहती, उसके बदले बालकों के सच्चे, सरल स्नेह से चित्त प्रसन्न हो जाता था। पहले मंसाराम उसके पास आते हुए झिझकता था; लेकिन अब वह भी कभी-कभी आ बैठता। वह निर्मला का **हमसिन**[3] था, लेकिन मानसिक विकास में पाँच साल छोटा। हॉकी और फुटबाल ही उसका संसार, उसकी कल्पनाओं का मुक्तक्षेत्र तथा उसकी कामनाओं का हरा-भरा बाग था। एकहरे बदन का छरहरा, सुन्दर, हँसमुख, लज्जाशील बालक था, जिसका घर से केवल भोजन का नाता था, बाकी सारे दिन न जाने कहाँ घूमा करता। निर्मला उनके मुँह से खेल की बातें सुनकर थोड़ी देर के लिए अपनी चिन्ताओं को भूल जाती और चाहती कि एक बार फिर वही दिन आ जाते, जब वह गुड़िया खेलती और उसके ब्याह रचाया करती थी और जिसे अभी थोड़े, आह, बहुत ही थोड़े दिन गुजरे थे।

मुंशी तोताराम अन्य एकान्त-सेवी मनुष्यों की भाँति विषयी जीव थे। कुछ दिनों तो वह निर्मला को सैर-तमाशे दिखाते रहे। लेकिन जब देखा कि इसका कुछ फल नहीं होता, तो फिर एकान्त-सेवन करने लगे। दिन-भर के कठिन मानसिक परिश्रम के बाद उनका चित्त आमोद-प्रमोद के लिए लालायित हो जाता; लेकिन जब अपनी विनोद-वाटिका में प्रवेश करते और उसके फूलों को मुरझाया, पौधों को सूखा और क्यारियों से धूल उड़ती हुई देखते, तो उनका जी चाहता—क्यों न इस वाटिका को उजाड़ दूँ? निर्मला उनसे क्यों विरक्त रहती है, इसका रहस्य उनकी समझ में न आता था। दम्पत्ति शास्त्र के सारे मन्त्रों की परीक्षा कर चुके, पर मनोरथ पूरा न हुआ। अब क्या करना चाहिए, यह उनकी समझ में न आता था।

एक दिन वह इसी चिंता में बैठे हुए थे कि उनके सहपाठी मित्र नयनसुखराम आकर बैठ गये और सलाम-वलाम के बाद मुस्कराकर बोले—आजकल तो खूब गहरी छनती होगी। नयी बीवी का आलिंगन करके जवानी का मजा आ जाता होगा? बड़े भाग्यवान हो! भई, रूठी हुई जवानी को मनाने का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं कि नया विवाह हो जाये। यहाँ तो जिन्दगी **बवाल**[4] हो रही है। पत्नीजी इस बुरी तरह चिमटी हैं कि किसी तरह **पिण्ड ही नहीं छोड़ती**[5]। मैं तो दूसरी

1 आधार, सहारा, 2 संतोष की बात; 3 एक ही उम्र का, 4 झमेला, 5 मु०—पीछा नहीं छोड़ती है

शादी की फिक्र में हूँ। कहीं डौल हो तो ठीक-ठाक कर दो। दस्तूरी में एक दिन तुम्हें उसके हाथ के बने हुए पान खिला देंगे।

तोताराम ने गम्भीर भाव से कहा—कहीं ऐसी हिमाकत न कर बैठना, नहीं तो पछताओगे। लौंडियाँ तो लौंडों से ही खुश रहती हैं। हम तुम अब उस काम के नहीं रहे। सच कहता हूँ मैं तो शादी करके पछता रहा हूँ बुरी बला गले पड़ी! सोचा था, दो-चार साल और जिन्दगी का मजा उठा लूँ, पर उलटी आँतें गले पड़ीं?

निर्मला को वश में करने के लिए नयनसुख का उदास तोताराम को सुझाव देन

नयनसुख—तुम क्या बातें करते हो। लौंडियों को पंजों में लाना क्या मुश्किल बात है, जरा सैर-तमाशे दिखा दो, उनके रूप-रंग की तारीफ कर दो बस, **रंग जम गया**[1]।
तोता०—यह सब कर-धरके हार गया।
नयन०—अच्छा! कुछ इत्र-तेल, फूल-पत्ते, चाट-वाट का भी मजा चखाया?
तोता०—अजी, यह सब कर चुका। दम्पत्ति-शास्त्र के सारे मन्त्रों का इम्तहान ले चुका; सब **कोरी**[2] गप्पे हैं!
नयन०—अच्छा, तो अब मेरी एक सलाह मानो। जरा अपनी सूरत बनवा लो। आजकल यहाँ एक बिजली के डॉ० आये हुए हैं, जो बुढ़ापे के सारे निशान मिटा देते हैं। क्या मजाल कि चेहरे पर एक झुर्री या सिर का बाल पका रह जाये। न जाने क्या जादू कर देते हैं कि आदमी का **चोला ही बदल जाता है**[3]।
तोता०—फीस क्या लेते हैं?
नयन०—फीस तो सुना है, शायद पाँच सौ रुपये!
तोता०—अजी, कोई पाखण्डी होगा, बेवकूफों को लूट रहा होगा। कोई **रोगन**[4] लगाकर दो-चार दिन के लिए जरा चेहरा चिकना कर देता होगा। **इश्तहारी डॉक्टरों**[5] पर तो अपना विश्वास ही नहीं। दस-पाँच की बात होती तो कहता, जरा **दिल्लगी ही सही**[6]। 500) बड़ी रकम है।
नयन०—तुम्हारे लिए 500) कौन बड़ी बात है। एक महीने की आमदनी है। मेरे पास तो भाई 500) होते, तो सबसे पहला काम यही करता। जवानी के एक घण्टे की कीमत 500) से कहीं ज्यादा है।
तोता०—अजी, कोई सस्ता नुस्खा बताओ, कोई फकीरी जड़ी-बूटी जो कि **बिना हर्र-फिटकरी के रंग चोखा हो जाये**[7]। बिजली और रेडियम बड़े आदमियों के लिए रहने दो। उन्हीं को **मुबारक**[8] हो।
नयन०—तो फिर रंगीलेपन का स्वाँग रचो। यह ढीला-ढाला कोट फेंको, पंजेब की चुस्त अचकन हो, चुन्नटदार पाजामा, गले में सोने की जंजीर पड़ी हुई, सिर पर जयपुरी साफा बँधा हुआ, आँखों में सुर्मा और बालों में हिना का तेल पड़ा हुआ। तोंद का पिचकना भी जरूरी है। दोहरा कमरबन्द बाँधो। जरा तकलीफ तो होगी, पर अचकन सज उठेगी। खिजाब मैं ला दूँगा। सौ-पचास गजलें याद कर लो, और मौके-मौके से शेर पढ़ो। बातों में रस भरा हो। ऐसा मालूम हो कि तुम्हें दीन और दुनिया की कोई फिक्र नहीं है, बस, जो कुछ है, प्रियतमा ही है। जवाँमर्दी और साहस के काम करने का मौका ढूँढ़ते रहो। रात को झूठ-मूठ शोर करो—चोर-चोर—और तलवार लेकर अकेले पिल पड़ो। हाँ, जरा मौका देख लेना, ऐसा न हो कि सचमुच कोई चोर आ जाये और तुम उसके पीछे दौड़ो, नहीं तो सारी कलई खुल जायेगी और **मुफ्त के उल्लू बनोगे**[9]। उस वक्त तो जवाँमर्दी इसी में है कि दम साधे खड़े रहो, जिससे वह समझे कि तुम्हें खबर ही नहीं हुई, लेकिन ज्योंही चोर भाग खड़ा हो, तुम भी उछलकर बाहर निकलो और तलवार लेकर 'कहाँ? कहाँ?' कहते दौड़ो। ज्यादा नहीं, एक महीना मेरी बातों का इम्तहान करके देखो। अगर वह तुम्हारा **दम न भरने लगे**,[10] तो जो जुर्माना कहो, वह दूँ।

मुंशीजी द्वारा मित्र के सुझाव का पालन करना

तोताराम ने उस वक्त तो यह बातें हँसी में उड़ा दीं, जैसा कि एक व्यवहार कुशल मनुष्य को करना चाहिए था, लेकिन इनमें की कुछ बातें उनके मन में बैठ गयीं! उनका असर पड़ने में कोई सन्देह न था। धीरे-धीरे रंग बदलने लगे, जिसमें लोग **खटक न जायँ**[11]। पहले बालों से शुरू किया; फिर सुर्मे की बारी आयी, यहाँ तक कि एक-दो महीने में उनका **कलेवर**[12] ही बदल गया। गजलें याद करने का प्रस्ताव तो हास्यास्पद था; लेकिन वीरता की डींग मारने में कोई हानि न थी।

उस दिन से वह रोज अपनी जवाँमर्दी का कोई-न-कोई प्रसंग अवश्य छेड़ देते। निर्मला को सन्देह होने लगा कि कहीं इन्हें **उन्माद**[13] का रोग तो नहीं हो रहा है। जो आदमी मूँग की दाल और मोटे आटे के दो **फुलके**[14] खाकर भी नमक सुलेमानी का मुहताज हो, उसके छैलपन पर उन्माद का

---

1 मु०—प्रभाव पड़ गया, 2 केवल, 3 मु०—शारीरिक परिवर्तन हो जाता है, 4 शरीर पर लगाने या रगड़ने के लिए तरल दवा, 5 प्रचार करने वाले डॉक्टर, 6 मनबहलाव ही सही, 7 क०—बिना अधिक मेहनत किए कार्य में सफलता, 8 शुभ, 9 मु०—व्यर्थ में मूर्ख बनोगे, 10 प्रशंसा करना, 11 जान न जायँ, 12 शरीर, 13 पागलपन, 14 हल्की पतली रोटी

पति के व्यवहार को देख निर्मला के मन में दया का भाव

सन्देह हो, तो आश्चर्य ही क्या? निर्मला पर इस पागलपन का और क्या रंग जमता[1], हाँ, उसे उन पर दया आने लगी। क्रोध और घृणा का भाव जाता रहा। क्रोध और घृणा उन पर होती है, जो अपने होश में हो पागल आदमी तो दया ही का पात्र है। वह बात-बात में उनकी चुटकियाँ लेती, उनका मजाक उड़ाती, जैसे लोग पागलों के साथ किया करते हैं। हाँ इसका ध्यान रखती थी कि वह समझ न जायँ। वह सोचती, बेचारा अपने पाप का प्रायश्चित कर रहा है। यह सारा स्वाँग केवल इसीलिए तो है कि मैं अपना दुःख भूल जाऊँ। आखिर अब भाग्य तो बदल सकता नहीं, इस बेचारे को क्यों जलाऊँ?

एक दिन रात को नौ बजे तोताराम बाँके बने हुए सैर करके लौटे और निर्मला से बोले—आज तीन चोरों से सामना हो गया। जरा शिवपुर की तरफ चला गया था। अँधेरा था ही। ज्योंही रेल की सड़क के पास पहुँचा, तो तीन आदमी तलवार लिए हुए न जाने किधर से निकल पड़े। यकीन मानो[2], तीनों काले देव थे। मैं बिलकुल अकेला पास में सिर्फ यह छड़ी थी। उधर तीनों तलवार बाँधे हुए, होश उड़ गये। समझ गया कि जिन्दगी का यहीं तक साथ था, मगर मैंने भी सोचा, मरता ही हूँ, तो वीरों की मौत क्यों न मरूँ? इतने में एक आदमी ने ललकार कर कहा—रख दे तेरे पास जो कुछ हो और चुपके से चला जा।

मैं छड़ी सँभालकर खड़ा हो गया और बोला—मेरे पास तो सिर्फ यह छड़ी है, और इसका मूल्य एक आदमी का सिर है।

मेरे मुँह से इतना निकलना था कि तीनों तलवार खींचकर मुझ पर झपट पड़े और मैं उनके वारों को छड़ी पर रोकने लगा। तीनों झल्ला-झल्लाकर वार करते थे, खटाके की आवाज होती थी और मैं बिजली की तरह झपटकर उनके वारों को काट देता थ। कोई दस मिनट तक तीनों ने खूब तलवार के जौहर[3] दिखाये, पर मुझ पर रेफ[4] तक न आयी। मजबूरी यही थी कि मेरे हाथ में तलवार न थी। यदि कहीं तलवार होती, तो एक को जीता न छोड़ता। खैर, कहाँ तक बयान करूँ? उस वक्त मेरे हाथों की सफाई देखने काबिल थी। मुझे खुद आश्चर्य हो रहा था, कि यह चपलता मुझमें कहाँ से आ गयी। जब तीनों ने देखा कि यहाँ दाल नहीं गलने[5] की, तो तलवार म्यान में रख ली और पीठ ठोकर बोले—जवान तुम-सा वीर आज तक नहीं देखा। हम तीनों तीन सौ पर भारी[6] हैं, गाँव-के-गाँव ढोल बजाकर लूटते हैं पर आज तुमने हमें नीचा दिखा दिया। हम तुम्हारा लोहा मान गए। यह कहकर तीनों फिर नजरों से गायब हो गए।

निर्मला ने गंभीर भाव से मुस्कराकर कहा—इस छड़ी पर तो तलवारों के बहुत से निशान बने हुए होंगे?

मुंशीजी इस शंका के लिये तैयार न थे पर कोई जवाब देना आवश्यक था, बोले—मैं वारों को बराबर खाली कर देता था। दो-चार चोटें छड़ी पर पड़ीं भी तो उचटती हुई, जिनसे कोई निशान नहीं पड़ सकता था।

अभी उनके मुँह से पूरी बात भी न निकली थी, कि सहसा रुक्मिणी देवी बदहवास दौड़ती हुई आयीं और हाँफते हुए बोलीं—तोता, तोता है कि नहीं? मेरे कमरे में एक साँप निकल आया है। मेरी चारपाई के नीचे बैठा हुआ है। मैं उठ कर भागी। मुआ कोई दो गज का होगा। फन निकाले फुफंकार रहा है, जरा चलो तो! डंडा लेते चलना।

तोताराम के चेहरे का रंग उड़ गया, मुँह पर हवाइयाँ छूटने लगीं मगर मन के भावों को छिपाकर बोले—साँप यहाँ कहाँ? तुम्हें धोखा हुआ होगा। कोई रस्सी होगी।
रुक्मिणी—अरे, मैंने अपनी आँखों देखा है। जरा चलकर देख लो न। हैं, हैं! मर्द होकर डरते हो?
मुंशीजी घर से तो निकले; लेकिन बरामदे में फिर ठिठक गये। उनके पाँव ही न उठते थे। कलेजा धड़-धड़ कर रहा था। साँप बड़ा क्रोधी जानवर है। कहीं काट ले तो मुफ्त में प्राण से हाथ धोना पड़े। बोले—डरता नहीं हूँ। साँप ही तो है, शेर तो नहीं। मगर साँप पर लाठी नहीं असर करती; जाकर किसी को भेजूँ, किसी के घर से भाला लाये।

यह कहकर मुंशीजी लपके हुए बाहर चले गये। मंसाराम बैठा खाना खा रहा था। मुंशीजी तो बाहर चले गये, इधर वह खाना छोड़, अपनी हॉकी का डंडा हाथ में ले, कमरे में घुस ही तो पड़ा और तुरन्त चारपाई खींच ली। साँप मस्त था, भागने के बदले फन निकालकर खड़ा हो गया। मंसाराम ने चटपट चारपाई की चादर उठाकर साँप के ऊपर फेंक दी और ताबड़तोड़ तीन-चार डंडे कसकर जमाये। साँप चादर के अन्दर तड़प कर रह गया। तब उसे डंडे पर उठाये हुए बाहर चला। मुंशीजी कई आदमियों को साथ लिये चले आ रहे थे। मंसाराम को साँप लटकाये आते

1 मु०—प्रभाव पड़ता, 2 विश्वास करो, 3 वीरता, 4 खरोंच, 5 मु०—काम नहीं बनेगा, 6 अधिक ताकतवर

देखा, तो सहसा उनके मुँह से चीख निकल पड़ी। मगर फिर सम्भल गए और बोले—मैं तो आ ही रहा था, तुमने क्यों जल्दी की? दे दो, कोई फेंक आए।

यह कहकर बहादुरी के साथ रुक्मिणी के कमरे के द्वार पर जाकर खड़े हो गए और कमरे को खूब देखभाल कर मूछों पर ताव देते हुए निर्मला के पास जाकर बोले—मैं जब तक आऊँ-जाऊँ, मंसाराम ने मार डाला। बेसमझ लड़का डंडा लेकर दौड़ पड़ा। साँप हमेशा भाले से मारना चाहिए। यही तो लड़कों में एब[1] है। मैंने ऐसे-ऐसे कितने साँप मारे हैं। साँप को खिला-खिलाकर मारता हूँ। कितनों ही को मुट्ठी से पकड़कर मसल दिया है।

रुक्मिणी ने कहा—जाओ भी, देख ली तुम्हारी मर्दानगी।
मुंशीजी झेंपकर बोले—अच्छा जाओ, मैं डरपोक ही सही, तुमसे कुछ इनाम तो नहीं माँग रहा हूँ। जाकर महाराज से कहो, खाना निकाले।

मुंशीजी तो भोजन करने गये और निर्मला द्वार की चौखट पर खड़ी सोच रही थी—भगवान्! क्या इन्हें सचमुच कोई भीषण रोग हो रहा है? क्या मेरी दशा को और भी दारुण बनाना चाहते हो? मैं इनकी सेवा कर सकती हूँ, सम्मान कर सकती हूँ, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूँ; लेकिन वह नहीं कर सकती, जो मेरे किये नहीं हो सकता। अवस्था का भेद मिटाना मेरे वश की बात नहीं। आखिर यह मुझसे क्या चाहते हैं—समझ गयी! आह! यह बात पहले ही नहीं समझी थी, नहीं तो इनको क्यों इतनी तपस्या करनी पड़ती, क्यों इतने स्वाँग भरने पड़ते।

7

निर्मला द्वारा परिस्थिति से समझौता करने का फैसला

उस दिन से निर्मला का रंग-ढंग बदलने लगा। उसने अपने को कर्त्तव्य पर मिटा देने का निश्चय कर लिया। अब तक नैराश्य के सन्ताप में उसने कर्त्तव्य पर ध्यान ही न दिया था। उसके हृदय में विप्लव की ज़्वाला-सी दहकती रहती थी, जिसकी असह्य वेदना ने उसे संज्ञाहीन-सा कर रखा था। अब उस वेदना का वेग शान्त होने लगा। उसे ज्ञात हुआ कि मेरे लिए जीवन का कोई आनन्द नहीं। उसका स्वप्न देखकर क्यों इस जीवन को नष्ट करूँ। संसार में सब-के-सब प्राणी सुख-सेज ही पर तो नहीं सोते? मैं भी उन्हीं अभागों में हूँ। मुझे भी विधाता ने दुःख की गठरी ढोने के लिए चुना है। वह बोझ सिर से उतर नहीं सकता। उसे फेंकना भी चाहूँ, तो नहीं फेंक सकती। उस कठिन भार से चाहे आँखों में अँधेरा छा जाये, चाहे गर्दन टूटने लगे, चाहे पैर उठाना दुस्तर हो जाये; लेकिन वह गठरी ढोनी ही पड़ेगी। उम्र भर का कैदी कहाँ तक रोयेगा? रोये भी तो कौन देखता है? किसे उस पर दया आती है? रोने से काम में हर्ज होने के कारण उसे और यातनाएँ ही तो सहनी पड़ती हैं।

दूसरे दिन वकील साहब कचहरी से आये तो देखा—निर्मला की सहास्य मूर्ति अपने कमरे के द्वार पर खड़ी है। वह अनिन्द्य छवि देख कर उनकी आँखें तृप्त हो गयीं। आज बहुत दिनों के बाद उन्हें यह कमल खिला हुआ दिखलाई दिया। कमरे में एक बड़ा-सा आईना दीवार से लटका हुआ था। उस पर एक परदा पड़ा रहता था। आज उसका परदा उठा हुआ था। वकील साहब ने कमरे में कदम रखा, तो शीशे पर निगाह पड़ी। अपनी सूरत साफ-साफ दिखायी दी। उनके हृदय में चोट-सी लग गयी। दिन भर के परिश्रम से मुख की कान्ति मलिन हो गयी थी, भाँति-भाँति के पौष्टिक पदार्थ खाने पर भी गालों की झुर्रियाँ साफ दिखाई दे रही थीं। तोंद कसी होने पर भी किसी मुँहजोर घोड़े की भाँति बाहर निकली हुई थी। आईने ही के सामने, किन्तु दूसरी ओर ताकती हुई निर्मला भी खड़ी थी। दोनों सूरतों में कितना अन्तर था!—एक रत्न जड़ित विशाल भवन था, दूसरा टूटा-फूटा खँडहर। वह उस आईने की ओर न देख सके। अपनी यह हीनावस्था उनके लिए असह्य थी। वह आईने के सामने से हट गये, उन्हें अपनी ही सूरत से घृणा होने लगी। फिर इस रूपवती कामनी का उनसे घृणा करना कोई आश्चर्य की बात न थी। निर्मला की ओर ताकने का भी उन्हें साहस न हुआ। उसकी यह अनुपम छवि उनके हृदय का शूल बन गयी।

निर्मला ने कहा—आज इतनी देर कहाँ लगायी? दिन भर राह देखते-देखते आँखें फूट जाती हैं।
तोताराम ने खिड़की की ओर ताकते हुए जवाब दिया—मुकदमों के मारे दम मारने की छुट्टी नहीं मिलती। अभी एक मुकदमा और था; लेकिन मैं सिरदर्द का बहाना करके भाग खड़ा हुआ।
निर्मला—तो क्यों इतने मुकदमे लेते हो? काम उतना ही करना चाहिए, जितना आराम से हो सके। प्राण देकर थोड़े ही काम किया जाता है। मत लिया करो, बहुत मुकदमे। मुझे रुपयों का लालच नहीं। तुम आराम से रहोगे, तो रुपये बहुत मिलेंगे।
तोताराम—भई, आती हुई लक्ष्मी भी तो नहीं ठुकराई जाती।

---

1 बुराई

निर्मला—लक्ष्मी अगर रक्त और माँस की भेंट लेकर आती है तो उसका न आना ही अच्छा। मैं धन की भूखी नहीं हूँ।

इस वक्त मंसाराम भी स्कूल से लौटा। धूप में चलने के कारण मुख पर पसीने की बूँदें आयी हुई थीं, गोरे मुखड़े पर खून की लाली दौड़ रही थी, आँखों से ज्योति-सी निकलती मालूम होती थी। द्वार पर खड़ा होकर बोला—अम्माँजी, लाइए, कुछ खाने को निकालिए, जरा खेलने जाना है।

निर्मला जाकर गिलास में पानी लायी और एक तश्तरी में कुछ मेवे रखकर मंसाराम को दिये। मंसाराम जब खाकर चलने लगा तो निर्मला ने पूछा—कब तक आओगे?
मंसाराम—कह नहीं सकता, गोरों के साथ हॉकी का मैच है। बारक यहाँ से बहुत दूर है।
निर्मला—भई, जल्द आना। खाना ठण्डा हो जायेगा, तो कहोगे मुझे भूख नहीं है।
मंसाराम ने निर्मला की ओर सरल स्नेह भाव से देखकर कहा—मुझे देर हो जाये; तो समझ लीजिएगा, वहीं खा रहा हूँ। मेरे लिए बैठने की जरूरत नहीं।
वह चला गया, तो निर्मला बोली—पहले तो घर में आते ही न थे, मुझसे बोलते शर्माते थे। किसी चीज की जरूरत होती, तो बाहर से ही मँगवा भेजते। जब से मैंने बुलाकर कहा तब से आने लगे हैं।
तोताराम ने कुछ चिढ़कर कहा—यह तुम्हारे पास खाने-पीने की चीजें माँगने क्यों आता है? दीदी से क्यों नहीं कहता?

मंसाराम निर्मला के मधुर संबंध के प्रति मुंशीजी की शंका का प्रथम उद्घाटन

निर्मला ने यह बात प्रशंसा पाने के लोभ से कही थी। वह यह दिखाना चाहती थी कि मैं तुम्हारे लड़कों को कितना चाहती हूँ। यह कोई बनावटी प्रेम न था। उसे लड़कों से सचमुच स्नेह था। उसके चरित्र में अभी तक बाल-भाव ही प्रधान था, उसमें वही उत्सुकता, वही चंचलता, वही विनोद-प्रियता विद्यमान थी और बालकों के साथ उसकी ये बालवृत्तियाँ प्रस्फुटित होती थीं। पत्नी-सुलभ ईर्ष्या अभी तक उसके मन में उदय नहीं हुई थी; लेकिन पति के प्रसन्न होने के बदले नाक-भौं सिकोड़ने का आशय न समझकर बोली—मैं क्या जानूँ, उनसे क्यों नहीं माँगते; मेरे पास आते हैं तो दुत्कार नहीं देती। अगर ऐसा करूँ, तो यही होगा कि यह तो लड़कों को देखकर जलती है!

बेटे के प्रति मुंशीजी में शंका बढ़ना

मुंशीजी ने इसका कुछ जवाब न दिया; लेकिन आज उन्होंने मुवक्किलों से बातें नहीं कीं, सीधे मंसाराम के पास गये और उसका इम्तहान लेने लगे। यह जीवन में पहला ही अवसर था कि इन्होंने मंसाराम या किसी लड़के की शिक्षोन्नति के विषय में इतनी दिलचस्पी दिखायी हो। उन्हें अपने काम से सिर उठाने की फुरसत[1] ही न मिलती थी। उन्हें उन विषयों को पढ़े हुए चालीस वर्ष के लगभग हो गये थे। तब से उनकी ओर आँख तक न उठायी थी। वह कानूनी पुस्तकों और पत्रों के सिवा और कुछ पढ़ते ही न थे। इसका समय ही न मिलता। पर आज उन्हीं विषयों में मंसाराम की परीक्षा लेने लगे। मंसाराम जहीन[2] था और इसके साथ मेहनती भी था। खेल में बी टीम का कैप्टन होने पर भी वह क्लास में प्रथम रहता था। जिस पाठ को एक बार देख लेता पत्थर की लकीर[3] हो जाती थी। मुंशीजी को उतावली में ऐसे मार्मिक प्रश्न तो सूझे नहीं, जिनके उत्तर देने में चतुर लड़के को भी सोचना पड़ता और ऊपरी प्रश्नों को मंसाराम ने चुटकियों में उड़ा दिया। कोई सिपाही अपने शत्रु पर वार खाली जाते देखकर झल्ला-झल्लाकर और भी तेजी से वार करता है, उसी भाँति मंसाराम के जवाबों को सुन-सुनकर वकील साहब भी झल्लाते थे। वह कोई ऐसा प्रश्न करना चाहते थे; जिसका जवाब मंसाराम से न बन पड़े। देखना चाहते थे कि इसका कमजोर पहलू कहाँ है। यह देखकर अब उन्हें संतोष न हो सकता था कि वह क्या करता है। वह यह देखना चाहते थे कि यह क्या नहीं कर सकता। कोई अभ्यस्त परीक्षक मंसाराम की कमजोरियों को आसानी से दिखा देता। पर वकील साहब अपनी आधी शताब्दी की भूली हुई शिक्षा के आधार पर इतने सफल कैसे होते? अंत में उन्हें अपना गुस्सा उतारने के लिए कोई बहाना न मिला तो बोले—मैं देखता हूँ, तुम सारे दिन इधर-उधर मटरगश्त किया करते हो, मैं तुम्हारे चरित्र को तुम्हारी बुद्धि से बढ़कर समझता हूँ और तुम्हारा यों आवारा घूमना मुझे कभी गवारा नहीं हो सकता।

निर्मला की बातों से मुंशीजी में शंका बढ़ना

मंसाराम ने निर्भीकता से कहा—मैं शाम को एक घण्टा खेलने के लिए जाने के सिवा दिन भर कहीं नहीं जाता। आप अम्माँ या बुआजी से पूछ लें। मुझे खुद इस तरह घूमना पसन्द नहीं। हाँ, खेलने के लिए हेड मास्टर साहब आग्रह करके बुलाते हैं, तो मजबूरन जाना पड़ता है। अगर आपको मेरा खेलने जाना पसन्द नहीं है, तो कल से न जाऊँगा।
मुंशीजी ने देखा कि बातें दूसरे ही रुख पर जा रही हैं, तो तीव्र स्वर में बोले—मुझे इस बात का इतमीनान क्योंकर हो कि खेलने के सिवा कहीं नहीं घूमने जाते? मैं बराबर शिकायतें सुनता हूँ।

---

1 अवकाश, 2 स्मरण रखने वाला, 3 पक्का हो जाना, स्मरण हो जाता है

मंसाराम ने उत्तेजित होकर कहा—किन महाशय ने आपसे यह शिकायत की है, जरा मैं भी तो सुनूँ?
वकील—कोई हो, इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं। तुम्हें इतना विश्वास होना चाहिये कि मैं झूठा आक्षेप नहीं करता।
मंसाराम—अगर मेरे सामने कोई आकर कह दे कि मैंने इन्हें कहीं घूमते देखा है, तो मुँह न दिखाऊँ।

शंका के कारण पुत्र को घर से बाहर रखने का प्रयत्न करना

वकील—किसी को ऐसी क्या गरज पड़ी है कि तुम्हारे मुँह पर तुम्हारी शिकायत करे और तुमसे वैर मोल ले? तुम अपने दो-चार साथियों को लेकर उसके घर की **खपरैल फोड़ते**[1] फिरो। मुझसे इस किस्म की शिकायत एक आदमी ने नहीं, कई आदमियों ने की है और कोई वजह नहीं है कि मैं अपने दोस्तों की बात पर विश्वास न करूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम स्कूल ही में रहा करो।
मंसाराम ने मुँह गिराकर कहा—मुझे वहाँ रहने में कोई आपत्ति नहीं है, जब से कहिये, चला जाऊँ।
वकील—तुमने मुँह क्यों लटका लिया? क्या वहाँ रहना अच्छा नहीं लगता? ऐसा मालूम होता है, मानो वहाँ जाने के भय से तुम्हारी **नानी मरी जा रही**[2] है। आखिर बात क्या है, वहाँ तुम्हें क्या तकलीफ होगी?

मंसाराम छात्रालय में रहने के लिए उत्सुक नहीं था; लेकिन जब मुंशीजी ने यही बात कह दी और इसका कारण पूछा, सो वह अपनी झेंप मिटाने के लिए प्रसन्न चित्त होकर बोला—**मुँह क्यों लटकाऊँ**[3]? मेरे लिए जैसे घर वैसे बोर्डिंग हाउस। तकलीफ भी कोई नहीं, और हो भी तो उसे सह सकता हूँ। मैं कल से चला जाऊँगा। हाँ अगर जगह न खाली हुई, तो मजबूरी है।

होस्टल में जाने के लिए मंसाराम पर मुंशीजी द्वारा दबाव डालना

मुंशीजी वकील थे। समझ गये कि यह लौंडा कोई ऐसा बहाना ढूँढ़ रहा है, जिसमें मुझे वहाँ जाना भी न पड़े और कोई इल्जाम भी सिर पर न आये। बोले—सब लड़कों के लिए जगह है, तुम्हारे ही लिये जगह न होगी?

मंसाराम—कितने ही लड़कों को जगह नहीं मिली और वे बाहर किराये के मकानों में पड़े हुए हैं। अभी बोर्डिंग हाउस से एक लड़के का नाम कट गया था तो पचास **अर्जियाँ**[4] उस जगह के लिए आयी थीं।

वकील साहब ने ज्यादा तर्क-वितर्क करना उचित न समझा। मंसाराम को कल तैयार रहने की आज्ञा देकर अपनी बग्घी तैयार करायी और सैर करने चले गये। इधर कुछ दिनों से वह शाम को प्रायः सैर करने चले जाया करते थे। किसी अनुभवी प्राणी ने बतलाया था कि दीर्घ जीवन के लिए इससे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। उनके जाने के बाद मंसाराम आकर रुक्मिणी से बोला—बुआजी, बाबूजी ने मुझे कल से स्कूल में रहने को कहा है।

रुक्मिणी ने विस्मित होकर पूछा—क्यों?
मंसा०—मैं क्या जानूँ? कहने लगे कि तुम यहाँ आवारों की तरह इधर-उधर फिरा करते हो।
रुक्मिणी—तूने कहा नहीं कि मैं कहीं नहीं जाता?
मंसा०—कहा क्यों नहीं, मगर जब वह मानें भी।
रुक्मिणी—तुम्हारी नयी अम्माँजी की कृपा होगी और क्या?
मंसाराम—नहीं बुआजी, मुझे उन पर संदेह नहीं है, वह बेचारी तो भूल से कभी कुछ नहीं कहतीं। कोई चीज माँगने जाता हूँ, तो तुरन्त उठाकर दे देती हैं।
रुक्मिणी—तू यह त्रिया-चरित्र क्या जाने, यह उन्हीं की लगाई हुई आग है। देख, मैं जाकर पूछती हूँ।

रुक्मिणी झल्लाई हुई निर्मला के पास जा पहुँची। उसे आड़े हाथों लेने का, **काँटों में घसीटने**[5] का, **तानों से छेदने का**[6], रुलाने का सुअवसर वह हाथ से न जाने देती थी। निर्मला उनका आदर करती थी, उनसे दबती थी, उनकी बातों का जवाब तक न देती थी। वह चाहती थी कि यह सिखावन की बातें कहें, जहाँ मैं भूलूँ वहाँ सुधारें, सब कामों की देख-रेख करती रहें, पर रुक्मिणी उससे तनी ही रहती थी।
निर्मला चारपाई से उठकर बोली—आइए दीदी, बैठिए।
रुक्मिणी ने खड़े-खड़े कहा—मैं पूछती हूँ क्या तुम सबको घर से निकालकर अकेले ही रहना चाहती हो?
निर्मला ने कातर भाव से कहा—क्या हुआ दीदीजी? मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा।

---

1 मिट्टी का पका टुकड़ा जो छप्पर छाने के काम में आता है, गाँव में मिट्टी के मकान की छत पर खपरैल डले रहते हैं, 2 भय लग रहा है, 3 उदास क्यों होऊँ, 4 आवेदन, 5 कष्ट में डालने का, 6 उलाहनों से दुःख पहुँचाने का

रुक्मिणी—मंसाराम को घर से निकाले देती हो, तिस[1] पर कहती हो, मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा। क्या तुमसे इतना भी नहीं देखा जाता?
निर्मला—दीदीजी, तुम्हारे चरणों को छूकर कहती हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम। मेरी आँखें फूट जायें, अगर उसके विषय में मुँह तक खोला हो।
रुक्मिणी—क्यों व्यर्थ कसमें खाती हो। अब तक तोताराम कभी लड़के से नहीं बोलते थे। एक हफ्ते के लिए मंसाराम ननिहाल चला गया था, तो इतने घबराये कि खुद जाकर लिवा लाये। अब उसी मंसाराम को घर से निकालकर स्कूल में रखे देते हैं। अगर लड़के का बाल भी बाँका हुआ, तो तुम जानोगी। वह कभी बाहर नहीं रहा, उसे न खाने की सुध[2] रहती है न पहनने की—जहाँ बैठता वहीं सो जाता है। कहने को तो जवान हो गया, पर स्वभाव बालकों-सा है। स्कूल में उसकी मरन हो जायेगी। वहाँ किसे फिक्र है कि इसने खाया या नहीं, कहाँ कपड़े उतारे, कहाँ सो रहा है। जब घर में कोई पूछनेवाला नहीं, तो बाहर कौन पूछेगा। मैंने तुम्हें चेता दिया, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने!

यह कहकर रुक्मिणी वहाँ से चली गयी।
वकील साहब सैर करके लौटे, तो निर्मला ने तुरन्त यह विषय छेड़ दिया

मंसाराम से वह आजकल थोड़ी अंग्रेजी पढ़ती थी। उसके चले जाने पर फिर उसके पढ़ने का हरज न होगा? दूसरा कौन पढ़ायेगा? वकील साहब को अब तक यह बात न मालूम थी। निर्मला ने सोचा था कि जब कुछ अभ्यास हो जायेगा, तो वकील साहब को एक दिन अंग्रेजी में बातें करके चकित कर दूँगी। कुछ थोड़ा-सा ज्ञान तो उसे अपने भाइयों से ही हो गया था। अब वह नियमित रूप से पढ़ रही थी। वकील साहब की छाती पर साँप-सा लोट गया, त्योरियाँ बदलकर बोले—वो कब से पढ़ा रहा है, तुम्हें। मुझसे तुमने कभी नहीं कहा।

निर्मला ने उनका यह रूप केवल एक बार देखा था, जब उन्होंने सियाराम को मारते-मारते बेदम कर दिया था। वही रूप और भी विकराल बनकर आज उसे फिर दिखायी दिया। सहमती हुई बोली—उनके पढ़ने में तो इससे कोई हरज नहीं[3] होता, मैं उसी वक्त उनसे पढ़ती हूँ, जब उन्हें फुरसत रहती है[4]। पूछ लेती हूँ, कि तुम्हारा हरज होता हो, तो जाओ। बहुधा जब वह खेलने जाने लगते हैं, तो दस मिनट के लिए रोक लेती हूँ। मैं खुद चाहती हूँ कि उनका नुकसान न हो।

मुंशीजी की शंका विश्वास में परिणत

बात कुछ न थी, मगर वकील साहब हताश से होकर चारपाई पर गिर पड़े और माथे पर हाथ रखकर चिन्ता में मग्न हो गये। उन्होंने जितना समझा था, बात उससे कहीं अधिक बढ़ गयी थी। उन्हें अपने ऊपर क्रोध आया कि मैंने पहले ही क्यों न इस लौंडे को बाहर रखने का प्रबंध किया। आजकल जो यह महारानी इतनी खुश दिखायी देती हैं, इसका रहस्य अब समझ में आया। पहले कभी कमरा इतना सजा-सजाया न रहता था, बनाव-चुनाव भी न करती थीं, पर अब देखता हूँ, कायापलट-सी हो गयी है। जी में तो आया कि इसी वक्त चलकर मंसाराम को निकाल दें, लेकिन प्रौढ़ बुद्धि ने समझाया कि इस अवसर पर क्रोध की जरूरत नहीं! कहीं इसने भाँप लिया तो गजब ही हो जायेगा। हाँ, जरा इसके मनोभावों को टटोलना चाहिए। बोले—यह तो मैं जानता हूँ कि तुम्हें दो-चार मिनट पढ़ाने से उसका हरज नहीं होता, लेकिन आवारा लड़का है, अपना काम न करने का उसे एक बहाना तो मिल जाता है। कल अगर फेल हो गया, तो साफ कह देगा—मैं तो दिन भर पढ़ाता रहता था। मैं तुम्हारे लिए कोई मिस नौकर रख दूँगा। कुछ ज्यादा खर्च न होगा। तुमने मुझसे पहले कहा ही नहीं। यह तुम्हें भला क्या पढ़ाता होगा, दो-चार शब्द बताकर भाग जाता होगा। इस तरह तो तुम्हें कुछ भी न आयेगा।

निर्मला ने तुरन्त इस आक्षेप का खण्डन किया—नहीं, यह बात तो नहीं। वह मुझे दिल लगा कर पढ़ाते हैं और उनकी शैली भी कुछ ऐसी है कि पढ़ने में मन लगता है। आप एक दिन जरा उनका समझाना देखिए। मैं तो समझती हूँ कि मिस इतने ध्यान से न पढ़ायेगी।
मुंशीजी अपनी प्रश्न-कुशलता पर मूँछों पर ताव देते हुए बोले—दिन में एक ही बार पढ़ाता है या कई बार?
निर्मला अब भी इन प्रश्नों का आशय न समझी। बोली—पहले तो शाम ही को पढ़ा देते थे, अब कई दिनों से एक बार आकर लिखना भी देख लेते हैं। वह तो कहते हैं कि मैं अपने क्लास में सबसे अच्छा हूँ। अभी परीक्षा में इन्हीं को प्रथम स्थान मिला था, फिर आप कैसे समझते हैं कि उनका पढ़ने में जी नहीं लगता? मैं इसलिए और भी कहती हूँ कि दीदी समझेंगी, इसी ने यह आग लगाई है! मुफ्त में मुझे ताने सुनने पड़ेंगे। अभी जरा ही देर हुई, धमकाकर गयी हैं।

रेखांकित कथन मुंशीजी की शंका का प्रमाण

मुंशीजी ने दिल में कहा—खूब समझता हूँ। तुम कल की छोकरी होकर मुझे चराने चलीं! दीदी का सहारा लेकर अपना मतलब पूरा करना चाहती हैं। बोले—मैं नहीं समझता, बोर्डिंग का नाम

1 उस पर, तो भी 2 याद, 3 हानि नहीं, 4 अवकाश रहता है

सुनकर क्यों लौंडे की नानी मरती है। और लड़के खुश होते हैं कि अब अपने दोस्तों में रहेंगे, यह उलटे रो रहा है। अभी कुछ दिन पहले तक यह दिल लगाकर पढ़ता था, यह उसी मेहनत का नतीजा है कि अपने क्लास में सबसे अच्छा है, लेकिन इधर कुछ दिनों से इसे सैर-सपाटे का चस्का पड़ चला है। अगर अभी से रोक-थाम न की गयी, तो पीछे कुछ करते-धरते न बन पड़ेगा। तुम्हारे लिए मैं एक मिस रख दूँगा।

दूसरे दिन मुंशीजी प्रातःकाल कपड़े-लत्ते पहनकर बाहर निकले। दीवानखाने[1] में कई मुवक्किल बैठे हुए थे। इनमें एक राजा साहब भी थे, जिनसे मुंशीजी को कई हजार सालाना मेहनताना मिलता था। मगर मुंशीजी उन्हें वहीं बैठे छोड़ दस मिनट में आने का वादा करके बग्घी पर बैठकर स्कूल के हेडमास्टर के यहाँ जा पहुँचे। हेडमास्टर साहब बड़े सज्जन पुरुष थे। वकील साहब का बहुत आदर-सत्कार किया; पर उनके यहाँ एक लड़के की भी जगह खाली न थी। सभी कमरे भरे हुए थे। इन्स्पेक्टर साहब की कड़ी ताकीद[2] थी कि मुफस्सिल के लड़कों को जगह देकर तब शहर के लड़कों को लिया जाये। इसीलिए यदि कोई जगह खाली भी हुई, तो भी मंसाराम को जगह न मिल सकेगी, क्योंकि कितने ही बाहरी लड़कों के प्रार्थना-पत्र रखे हुए थे। मुंशीजी वकील थे, रात-दिन ऐसे प्राणियों से साबिका[3] रहता था, जो लोभवश असंभव को भी संभव, असाध्य को भी साध्य बना सकते हैं। समझे शायद कुछ दे-दिलाकर काम निकल जाये—दफ्तर-क्लर्क से ढंग की कुछ बातचीत करनी चाहिये। पर उसने हँसकर कहा—मुंशीजी यह कचहरी नहीं, स्कूल है; हेडमास्टर साहब के कानों में इसकी भनक भी पड़ गयी, तो जामे से बाहर हो जायेंगे[4] और मंसाराम को खड़े-खड़े निकाल देंगे। संभव है, अफसरों से शिकायत कर दें। बेचारे मुंशीजी अपना-सा मुँह लेकर रह गये। दस बजते-बजते झुँझलाये हुए घर लौटे। मंसाराम उसी वक्त घर से स्कूल जाने को निकला। मुंशीजी ने कठोर नेत्रों से उसे देखा, मानो वह उनका शत्रु हो और घर में चले गये।

इसके बाद दस-बारह दिनों तक वकील साहब का यही नियम रहा कि कभी सुबह कभी शाम, किसी-न-किसी स्कूल के हेडमास्टर से मिलते और मंसाराम को बोर्डिंग हाउस में दाखिल कराने की चेष्टा करते; पर किसी स्कूल में जगह न थी। सभी जगहों से कोरा[5] जवाब मिल गया। अब दो ही उपाय थे—या तो मंसाराम को अलग किराये के मकान में रख दिया जाये या किसी दूसरे स्कूल में भर्ती करा दिया जाये। यह दोनों बातें आसान थीं। मुफस्सिल के स्कूलों में जगह अक्सर खाली रहती थी! लेकिन अब मुंशीजी का शंकित हृदय कुछ शान्त हो गया था। उस दिन से उन्होंने मंसाराम को कभी घर में जाते न देखा। यहाँ तक कि अब वह खेलने भी न जाता था। स्कूल जाने के पहले और आने के बाद, बराबर अपने कमरे में बैठा रहता। गर्मी के दिन थे, खुले हुए मैदान में भी देह से पसीने की धारें निकलती थीं; लेकिन मंसाराम अपने कमरे से बाहर न निकलता। उसका आत्माभिमान आवारापन के आक्षेप से मुक्त होने के लिए विकल हो रहा था। वह अपने आचरण से इस कलंक को मिटा देना चाहता था।

मुंशीजी के व्यवहार से मंसाराम का स्वास्थ्य प्रभावित

एक दिन मुंशीजी बैठे भोजन कर रहे थे, कि मंसाराम भी नहाकर खाने आया, मुंशीजी ने इधर उसे महीनों से नंगे बदन न देखा था। आज उस पर निगाह पड़ी तो होश उड़ गये। हड्डियों का ढाँचा सामने खड़ा था। मुख पर अब भी ब्रह्मचर्य का तेज था; पर देह घुलकर काँटा हो गयी थी[6] पूछा—आजकल तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं है; क्या? इतने दुर्बल क्यों हो?

मंसाराम ने धोती ओढ़कर कहा—तबियत तो बिलकुल अच्छी है।
मुंशीजी—फिर इतने दुबले क्यों हो?
मंसाराम—दुर्बल तो नहीं हूँ। मैं इससे ज्यादा मोटा कब था?
मुंशीजी—वाह, आधी देह भी नहीं रही और कहते हो, मैं दुर्बल नहीं हूँ। क्यों दीदी, यह ऐसा ही था?
रुक्मिणी—आँगन में खड़ी तुलसी को जल चढ़ा रही थी, बोली—दुबला क्यों होगा, अब तो बहुत अच्छी तरह लालन-पालन हो रहा है। मैं गँवारिन थी, लड़कों को खिलाना-पिलाना नहीं जानती थी। खोमचा[7] खिला-खिलाकर इनकी आदत बिगाड़े देती थी। अब तो एक पढ़ी-लिखी गृहस्थी के कामों में चतुर औरत पान की तरह फेर रही है न[8]! दुबला हो उसका दुश्मन!
मुंशीजी—दीदी, तुम बड़ा अन्याय करती हो। तुमसे किसने कहा कि लड़कों को बिगाड़ रही हो। जो काम दूसरों के किये न हो सके, वह तुम्हें खुद करना चाहिये। यह नहीं कि घर से कोई नाता न रखो। जो अभी खुद लड़की है, वह लड़कों की देख-रेख क्या करेगी? यह तुम्हारा काम है।
रुक्मिणी—जब तक अपना समझती थी, करती थी। जब तुमने गैर समझ लिया, तो मुझे क्या पड़ी है कि मैं तुम्हारे गले से चिपटूँ? पूछो, कै दिन से दूध नहीं पिया? जाके कमरे में देख आओ, नाश्ते

1 बैठक खाना, 2 आज्ञा, 3 काम, सामना, संबंध, 4 मु०—अत्याधिक क्रोधित हो जायेंगे, 5 खाली, सादा, 6 मु०—अत्याधिक दुर्बल हो गयी थी, 7 चाट बेचने वाले की टोकरी, 8 अत्याधिक प्यार कर रही है न

के लिए जो मिठाई भेजी गयी थी, वह पड़ी सड़ रही है। मालकिन समझती हैं, मैंने तो खाने का सामान रख दिया, कोई न खाय तो क्या मैं मुँह में डाल दूँ? तो भैया, इस तरह वे लड़के पलते होंगे, जिन्होंने कभी लाड़-प्यार का सुख नहीं देखा। तुम्हारे लड़के बराबर पान की तरह फेरे जाते रहे हैं, अब अनाथों की तरह रहकर सुखी नहीं रह सकते। मैं तो बात साफ कहती हूँ। बुरा मानकर ही कोई क्या कर लेगा? उस पर सुनती हूँ कि लड़के को स्कूल में रखने का प्रबन्ध कर रहे हो। बेचारे को घर में आने तक की मनाही है। मेरे पास आते भी डरता है, और फिर मेरे पास रखा ही क्या रहता है, जो जाकर खिलाऊँगी।

इतने में मंसाराम दो फुलके खाकर उठ खड़ा हुआ। मुंशीजी ने पूछा—क्या तुम खा चुके? अभी बैठे एक मिनट से ज्यादा नहीं हुआ। तुमने खाया क्या, दो ही फुलके तो लिये थे।
मंसाराम ने सकुचाते[1] हुए कहा—दाल और तरकारी भी तो थी। ज्यादा खा जाता हूँ, तो गला जलने लगता है, खट्टी डकारें आने लगती हैं।

मुंशीजी भोजन करके उठे तो बहुत चिंतित थे। अगर लड़का यों ही दुबला होता गया, तो उसे कोई भयंकर रोग पकड़ लेगा। उन्हें रुक्मिणी पर इस समय बहुत क्रोध आ रहा था। उन्हें यही जलन है कि मैं घर की मालकिन नहीं हूँ। यह नहीं समझतीं कि मुझे घर की मालकिन बनने का क्या अधिकार है? जिसे रुपया का हिसाब तक करना नहीं आता, वह घर की स्वामिनी कैसे हो सकती है? बनीं तो थीं, साल भर तक मालकिन—एक पाई की बचत न होती थी। इस आमदनी में रूपकला दो-ढाई सौ रुपये बचा लेती थी। इनके राज में वही आमदनी खर्च को भी पूरी न पड़ती थी। कोई बात नहीं, लाड-प्यार ने इन लड़कों को चौपट कर दिया। इतने बड़े-बड़े लड़कों को इसकी क्या जरूरत कि जब कोई खिलाये तो खायें। इन्हें तो खुद अपनी फिक्र करनी चाहिये। मुंशीजी दिन भर इसी उधेड़-बुन में पड़े रहे। दो-चार मित्रों से भी जिक्र किया। लोगों ने कहा—उसके खेल-कूद में बाधा न डालिए, अभी से उसे कैद न कीजिए, खुली हवा में चरित्र के भ्रष्ट होने की उससे कहीं कम संभावना है, जितना बन्द कमरे में। कुसंगत से जरूर बचाइए; मगर यह नहीं कि उसे घर से निकलने ही न दीजिए। युवावस्था में एकान्त-वास चरित्र के लिए बहुत ही हानिकारक है। मुंशीजी को अब अपनी गलती मालूम हुई। घर लौटकर मंसाराम के पास गये। वह अभी स्कूल से आया था और बिना कपड़े उतारे, एक किताब सामने खोलकर, सामने खिड़की की ओर ताक रहा था। उसकी दृष्टि एक भिखारिन पर लगी हुई थी, जो अपने बालक को गोद में लिये भिक्षा माँग रही थी। बालक माता की गोद में बैठा हुआ ऐसा प्रसन्न था, मानो वह किसी राजसिंहासन पर बैठा हो। मंसाराम उस बालक को देखकर रो पड़ा। यह बालक क्या मुझसे अधिक सुखी नहीं है? इस आनन्त विश्व में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसे वह इस गोद के बदले में पाकर प्रसन्न हो? ईश्वर भी ऐसी वस्तु की सृष्टि नहीं कर सकते। ईश्वर ऐसे बालकों को जन्म ही क्यों देते हो, जिनके भाग्य में मातृ-वियोग का दुःख भोगना बदा हो? आज मुझ-सा अभागा संसार में और कौन है? किसे मेरे खाने-पीने की, मरने-जीने की सुध है। अगर मैं आज मर भी जाऊँ, तो किसके दिल को चोट लगेगी। पिता को अब मुझे रुलाने में मजा आता है, वह मेरी सूरत भी नहीं देखना चाहते, मुझे घर से निकाल देने की तैयारियाँ हो रही हैं! आह माता! तुम्हारा लाड़ला बेटा आज आवारा कहा जा रहा है! वही पिताजी, जिनके हाथ में तुमने हम तीनों भाइयों के हाथ पकड़ाये थे, आज मुझे आवारा और बदमाश कह रहे हैं। मैं इस योग्य भी नहीं कि इस घर में रह सकूँ। यह सोचते-सोचते मंसाराम अपार वेदना से फूट-फूट कर रोने लगा।

उसी समय तोताराम कमरे में आकर खड़े हो गये। मंसाराम ने चटपट आँसू पोंछ डाले और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। मुंशीजी ने शायद यह पहली बार उसके कमरे में कदम रखा था। मंसाराम का दिल धड़धड़ करने लगा कि देखें आज क्या आफत आती है। मुंशीजी ने उसे रोते देखा, तो एक क्षण के लिए उनका वात्सल्य घोर निद्रा से चौंक पड़ा। घबराकर बोले—क्यों, रोते क्यों हो बेटा! किसी ने कुछ कहा है।

मंसाराम ने बड़ी मुश्किल से उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर कहा—जी नहीं, रोता, तो नहीं हूँ...
मुंशीजी—तुम्हारी अम्माँ ने तो कुछ नहीं कहा?
मंसा०—जी नहीं, वह तो मुझसे बोलती ही नहीं।
मुंशीजी—क्या करूँ बेटा, शादी तो इसलिए की थी कि बच्चों को माँ मिल जायेगी; लेकिन वह आशा पूरी नहीं हुई। तो क्या बिलकुल नहीं बोलतीं?
मंसा०—जी नहीं, इधर महीनों से नहीं बोलीं।
मुंशीजी—विचित्र स्वभाव की औरत है, मालूम ही नहीं होता कि क्या चाहती है। मैं जानता कि उसका ऐसा मिजाज होगा तो कभी शादी न करता। रोज एक-न-एक बात लेकर उठ खड़ी होती

निर्मला ले मंसाराम को दूर करने का नया प्रयत्न

[1] सकुचाते हुए

है। उसी ने मुझसे कहा था कि यह दिन भर न जाने कहाँ गायब रहता है। मैं उसके दिल की बात क्या जानता था? समझा, तुम कुसंगत में पड़कर शायद दिन भर घूमा करते हो। कौन ऐसा पिता है, जिसे अपने प्यारे पुत्र को आवारा फिरते देखकर रंज न हो? इसीलिए मैंने तुम्हें बोर्डिंग हाउस में रखने का निश्चय किया था। बस, और कोई बात नहीं थी, बेटा। मैं तुम्हारा खेलना-कूदना बन्द नहीं करना चाहता था। तुम्हारी यह दशा देखकर मेरे दिल के टुकड़े हुए जाते हैं। कल मुझे मालूम हुआ कि मैं भ्रम में था। तुम शौक से खेलो, सुबह-शाम मैदान में निकल जाया करो। ताजी हवा से तुम्हें लाभ होगा। जिस चीज की जरूरत हो मुझसे कहो; उनसे कहने की जरूरत नहीं। समझ लो कि वह घर में है ही नहीं। तुम्हारी माता छोड़कर चली गयी, तो मैं तो हूँ।

बालक का सरल निष्कपट हृदय पितृ-प्रेम से पुलकित हो उठा। मालूम हुआ कि साक्षात् भगवान् खड़े हैं। नैराश्य और क्षोभ से विकल होकर उसने मन में अपने पिता को निष्ठुर और न जाने क्या-क्या समझ रखा था। विमाता से उसे कोई गिला न था। अब उसे ज्ञात हुआ कि मैंने अपने देवतुल्य पिता के साथ कितना अन्याय किया है। पितृ-भक्ति की एक तरंग-सी हृदय में उठी, और वह पिता के चरणों पर सिर रखकर रोने लगा। मुंशीजी करुणा से विह्वल हो गये। जिस पुत्र को एक क्षण भर आँखों से दूर देखकर उनका हृदय व्यग्र हो उठता था; जिसके शील, बुद्धि और चरित्र को अपने-पराये सभी बखान करते थे, उसी के प्रति उनका हृदय इतना कठोर क्यों हो गया? वह अपने ही प्रिय पुत्र को शत्रु समझने लगे, उसको निर्वासन देने को तैयार हो गये। निर्मला पुत्र और पिता के बीच दीवार बनकर खड़ी थी। निर्मला को अपनी ओर खींचने के लिए पीछे हटना पड़ता था, और पिता तथा पुत्र में अन्तर बढ़ता जाता था। फलतः आज यह दशा हो गयी है कि अपने अभिन्न पुत्र से उन्हें इतना छल करना पड़ रहा है। आज बहुत सोचने के बाद उन्हें एक ऐसी युक्ति सूझी है, जिससे आशा हो रही है कि वह निर्मला को बीच से निकालकर अपने दूसरे बाजू को अपनी तरफ खींच लेंगे। उन्होंने उस युक्ति का आरम्भ भी कर दिया है। लेकिन इसमें अभीष्ट सिद्ध होगा या नहीं, इसे कौन जानता है।

निर्मला द्वारा पति की शंका की पहचान

जिस दिन से तोताराम ने निर्मला के बहुत मिन्नत-समाजत करने पर भी मंसाराम को बोर्डिंग हाउस में भेजने का निश्चय किया था, उसी दिन से उसने मंसाराम से पढ़ना छोड़ दिया। यहाँ तक कि बोलती भी न थी। उसे स्वामी की इस अविश्वासपूर्ण तत्परता का कुछ-कुछ आभास हो गया था। ओफ्फोह! इतना शक्की मिजाज! ईश्वर ही इस घर की लाज रखें। इनके मन में ऐसी-ऐसी दुर्भावनाएँ भरी हुई हैं! मुझे यह इतनी गयी-गुजरी समझते हैं। ये बातें सोच-सोचकर वह कई दिन रोती रही। तब उसने सोचना शुरू किया, इन्हें क्यों ऐसा सन्देह हो रहा है? मुझ में ऐसी कौन-सी बात है, जो इनकी आँखों में खटकती है। सोचने पर भी उसे अपने में कोई ऐसी बात नजर न आयी। तो क्या उसका मंसाराम से पढ़ना, उससे हँसना-बोलना ही इनके संदेह का कारण है तो फिर मैं पढ़ना छोड़ दूँगी, भूलकर भी मंसाराम से न बोलूँगी—उसकी सूरत न देखूँगी।

लेकिन यह तपस्या उसे असाध्य जान पड़ती थी। मंसाराम से हँसने-बोलने में उसकी विलासिनी कल्पना उत्तेजित भी होती थी और तृप्त भी। उससे बातें करते हुए उसे एक अपार सुख का अनुभव होता था, जिसे वह शब्दों में प्रकट न कर सकती थी। कुवासना की उसके मन में छाया भी न थी। वह स्वप्न में भी मंसाराम से कलुषित प्रेम करने की बात न सोच सकती थी। प्रत्येक प्राणी को अपने हमजोलियों के साथ, हँसने-बोलने की जो एक नैसर्गिक[1] 'तृष्णा'[2] होती है, उसी की तृप्ति का यह एक अज्ञात साधन था। अब वह अतृप्त तृष्णा निर्मला के हृदय में दीपक की भाँति जलने लगी। रह-रहकर उसका मन किसी अज्ञात वेदना से विकल[3] हो जाता। खोयी हुई किसी अज्ञात वस्तु की खोज में इधर-उधर घूमती-फिरती, जहाँ बैठती, वहाँ बैठी ही रह जाती, किसी काम में जी न लगता। हाँ, जब मुंशीजी आ जाते, वह अपनी सारी तृष्णाओं को नैराश्य में डुबाकर, उनसे मुस्कराकर इधर-उधर की बातें करने लगती।

रुक्मिणी का घर की बदलती परिस्थिति के लिए निर्मला को दोषी ठहराना

कल जब मुंशीजी भोजन करके कचहरी चले गये तो रुक्मिणी ने निर्मला को खूब तानों से छेदा—जानती तो थी कि यहाँ बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ेगा, तो क्यों घरवालों से नहीं कह दिया कि वहाँ मेरा विवाह न करो। वहाँ जाती जहाँ पुरुष के सिवा और कोई न होता। वही यह बनाव-शृंगार और छवि देखकर खुश होता—अपने भाग्य को सराहता। यहाँ बुड्ढा आदमी तुम्हारे रंग-रूप, हाव-भाव पर क्या लट्टू होगा? इसने इन्हीं बालकों की सेवा करने के लिए तुमसे विवाह किया है, भोग-विलास के लिए नहीं। वह बड़ी देर तक घाव पर नमक छिड़कती रही, पर निर्मला ने चूँ तक न की। वह अपनी सफाई तो पेश करना चाहती थी, पर न कर सकती थी। अगर कहे कि मैं वही कर रही हूँ, जो मेरे स्वामी की इच्छा है, तो घर का भण्डा फूटता है। अगर वह अपनी भूल स्वीकार करके उसका सुधार करती है, तो भय है कि उसका न जाने क्या परिणाम हो। वह

1 स्वाभाविक, 2 प्यास, 3 बेचैन

या बड़ा स्पष्टवादिनी थी, सत्य कहने में उसे संकोच या भय न होता था; लेकिन इस नाजुक मौके पर उसे चुप्पी साधनी पड़ी। इसके सिवा दूसरा उपाय न था। वह देखती थी मंसाराम बहुत विरक्त और उदास रहता है, यह भी देखती थी कि वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता है; लेकिन उसकी वाणी और कर्म दोनों ही पर मोहर लगी हुई थी। चोर के घर चोरी हो जाने से उसकी जो दशा होती है, वही दशा इस समय निर्मला की हो रही थी।

बोध प्रश्न

9 निर्मला सहज ढंग से अपने पति तोताराम का सामना नहीं कर पाती थी, क्योंकि

क) मुंशी तोताराम से वह लजाती थी।

ख) मुंशी तोताराम उसे देखकर क्रोधित हो जाते थे।

ग) उम्र का ज्यादा अंतर होने से वह उसे अपना पति नहीं मान पाती थी।

घ) रुक्मिणी देवी से उसे भय लगता था। ☐

10 रुक्मिणी देवी निर्मला से क्यों नाराज रहती थी? (उत्तर दो पंक्तियों में दें)

....

....

11 तोताराम द्वारा सियाराम की पिटाई के बाद निर्मला के व्यवहार में क्या परिवर्तन आया :

क) निर्मला ने पति को प्रसन्न रखने का प्रयत्न शुरू कर दिया।

ख) निर्मला ने रुक्मिणी देवी के प्रति वैरभाव बढ़ा लिया।

ग) निर्मला ने बच्चों पर विशेष ध्यान देना शुरू किया।

घ) निर्मला घर के प्रति उदासीन हो गयी। ☐

12 "मैं उनकी सेवा कर सकती हूँ, सम्मान कर सकती हूँ, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूँ : लेकिन वह नहीं कर सकती, जो मेरे किए नहीं हो सकता।"

क) रुक्मिणी देवी से समझौता नहीं कर सकती।

ख) मुंशी तोताराम से प्यार नहीं कर सकती।

ग) मुंशी तोताराम से पैसे नहीं ले सकती।

घ) बच्चों को प्यार नहीं कर सकती। ☐

13 "निर्मला की ओर ताकने का भी उन्हें साहस न हुआ। उसकी यह अनुपम छवि उनके हृदय का शूल बन गयी"
इन पंक्तियों में मुंशी जी की कौन-सी भावना स्पष्ट होती है?

क) मुंशीजी का निर्मला के प्रति क्रोध का भाव।

ख) अपनी अवस्था का अनुभव कर, अपनी गलती का भान।

ग) निर्मला के प्रति बहन के व्यवहार से उनमें उत्पन्न क्रोध का भाव।

घ) निर्मला के सौंदर्य से ईर्ष्या का भाव। ☐

14 मंसाराम द्वारा निर्मला को अंग्रेजी पढ़ाने की बात सुनकर मुंशीजी क्रोधित क्यों हुए :

क) क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि निर्मला अंग्रेजी पढ़े।

ख) क्योंकि उन्हें डर था कि इससे मंसाराम की पढ़ाई में बाधा होगी।

ग) वे निर्मला एवं मंसाराम के संबंध को लेकर शंकित थे।

घ) उन्हें अंग्रेजी से नफरत थी। ☐

15 मंसा के मन में निर्मला के प्रति क्रोध जगाने के लिए मुंशी जी ने क्या प्रयत्न किया? दो पंक्तियों में उत्तर दें?

....

....

16 निर्मला को पति के मन में उठ रही शंका का आभास कब हुआ ?

क) जब निर्मला ने पति को मंसाराम से अंग्रेजी पढ़ने की बात बतायी।

ख) जब रुक्मिणी देवी ने निर्मला को भला बुरा कहा।

ग) जब निर्मला के बहुत मिन्नत करने पर भी तोताराम ने मंसा को बोर्डिंग भेजने का फैसला नहीं बदला

घ) जब मुंशी जी ने बच्चों की देखभाल के लिए अपनी बहन को कहा। ☐

निर्मला का पति उम्र में उसके पिता के समान था, इस कारण निर्मला के वैवाहिक जीवन में वह आनंद नहीं था, जो एक नवदंपति में होना चाहिए। तोताराम पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए प्रयत्न करते हैं यहाँ तक कि मित्र द्वारा बताए गए नुस्खों का प्रयोग भी करते हैं। लेकिन इन सब प्रयत्नों के बावजूद वे निर्मला का दिल नहीं जीत पाते। पति-पत्नी के बीच सबसे बड़ी बाधा आयु की थी। निर्मला पति से दूर-दूर रहती है। तोताराम पत्नी की इस उदासीनता से खिन्न हो जाते हैं। उनके अंदर कुंठा उत्पन्न होती है। इधर निर्मला अपने सौतेले बेटों से स्नेह बढ़ाती है। बड़ा बेटा मंसाराम तो निर्मला का हम उम्र है। तोताराम की कुंठा पत्नी और बड़े पुत्र के संबंध को लेकर शंका में परिवर्तित हो जाती है। वे प्रयत्न करते हैं कि मंसाराम निर्मला से दूर रहे। इसके लिए वे उसे होस्टल में भेजने का प्रयत्न भी करते हैं। साथ ही साथ यह प्रयत्न भी करते हैं कि मंसा के मन में निर्मला के प्रति द्वेष भी उत्पन्न हो जाए। क्या मुंशी जी पुत्र में यह भावना जगा पाये, क्या उन्होंने पुत्र को होस्टल भेज दिया? हम आगे की कथा का वाचन कर इन सवालों का उत्तर पायेंगे।

8

निर्मला की झूठी बात से मंसा के मन में निर्मला के प्रति द्वेष उत्पन्न होना

जब कोई बात हमारी आशा के विरुद्ध होती है, तभी दुःख होता है। मंसाराम को निर्मला से कभी इस बात की आशा न थी कि वे उसकी शिकायत करेंगी। इसलिए उसे घोर वेदना हो रही थी। वह क्यों मेरी शिकायत करती हैं? क्या चाहती हैं? यही न कि वह मेरे पति की कमाई खाता है, इसके पढ़ाने-लिखाने में रुपये खर्च होते हैं, कपड़े पहनता है। उनकी यही इच्छा होगी कि यह घर में न रहे। मेरे न रहने से उनके रुपये बच जायेंगे। वह मुझ से बहुत प्रसन्नचित रहती हैं। कभी मैंने उनके मुँह से कटु शब्द नहीं सुने। क्या यह सब कौशल है? हो सकता है? चिड़िया को जाल में फँसाने के पहले शिकारी दाने बिखेरता है। आह! मैं नहीं जानता था कि दाने के नीचे जाल है; यह मातृस्नेह केवल मेरे निर्वासन[1] की भूमिका है।

अच्छा, मेरा यहाँ रहना क्यों बुरा लगता है? जो उसका पति है, क्या वह मेरे पिता नहीं है? क्या पिता-पुत्र का संबंध स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से कुछ कम घनिष्ट है? अगर मुझे उनके सम्पूर्ण आधिपत्य से ईर्ष्या नहीं होती—वह जो चाहे करें, मैं मुँह नहीं खोल सकता—तो वह मुझे पितृ-प्रेम से क्यों वंचित करना चाहती हैं? वह अपने साम्राज्य में क्यों मुझे एक अंगुल भर भूमि भी देना नहीं चाहतीं। आप पक्के महल में रह कर क्यों मुझे वृक्ष की छाया में बैठा नहीं देख सकतीं।

मंसाराम मनःस्थिति

हाँ, यह समझती होंगी कि यह बड़ा होकर मेरे पति की सम्पत्ति का स्वामी हो जायेगा, इसलिए अभी से निकाल देना अच्छा है। उनको कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मेरी ओर से यह शंका न करें। उन्हें क्योंकर बताऊँ कि मंसाराम विष खाकर प्राण दे देगा, इसके पहले कि उनका अहित करे। उसे चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ सहनी पड़ें वह उनके हृदय का शूल न बनेगा। यों तो पिताजी ने मुझे जन्म दिया है और अब भी मुझ पर उनका स्नेह कम नहीं है; लेकिन क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि जिस दिन पिताजी ने उनसे विवाह किया, उसी दिन उन्होंने हमें अपने हृदय से बाहर निकाल दिया? अब हम अनाथों की भाँति यहाँ पड़े रह सकते हैं; इस घर पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। कदाचित पूर्व संस्कारों के कारण यहाँ अन्य अनाथों से हमारी दशा कुछ अच्छी है; पर हैं अनाथ ही। हम उसी दिन अनाथ हुए जिस दिन अम्माँजी परलोक सिधारीं। जो कुछ कसर[2] रह गयी थीं, वह इस विवाह ने पूरी कर दी। मैं तो खुद पहले इनसे विशेष सम्बन्ध न रखता था। अगर, उन्हीं दिनों पिताजी से मेरी शिकायत की होती, तो शायद मुझे इतना दुःख न होता। मैं तो उस आघात के लिए तैयार बैठा था। संसार में क्या मैं मजदूरी भी नहीं कर सकता? लेकिन बुरे वक्त में इन्होंने चोट की। हिंसक पशु भी आदमी को गाफिल[3] पाकर ही चोट करते हैं। इसीलिए मेरी इतनी आवभगत होती थी, खाना खाने के लिए उठने में जरा भी देर हो जाती थी, तो बुलावे पर बुलावे आते थे, जलपान के लिए प्रातःकाल ताजा हलुआ बनाया जाता था, बार-बार पूछा जाता—रुपयों की जरूरत तो नहीं है? इसीलिए वह 100) की घड़ी मँगवायी थी।

---

1 गाँव, नगर-देश आदि से दंड-स्वरूप बाहर निकाल देना 2 कमी 3 बेखबर

: क्या इन्हें कोई दूसरी शिकायत न सूझी, जो मुझे आवारा कहा? आखिर उन्होंने मेरी क्या ारगी देखी? यह कह सकती थीं कि इसका मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता, एक-न-एक चीज ोए नित्य रुपये माँगता रहता है। यही एक बात उन्हें क्यों सूझी? शायद इसीलिए कि यही ो कठोर आघात है, जो वह मुझ पर कर सकती हैं। पहली ही बार इन्होंने मुझ पर अग्नि-बाण ; दिया, जिससे कहीं शरण नहीं। इसीलिए न कि यह पिता की नजरों से गिर जाये? मुझे ंग-हाउस में रखने का तो एक बहाना था। उद्देश्य यह था कि इसे दूध की मक्खी की तरह ाल दिया जाये। दो-चार महीने के बाद खर्च-बर्च देना बन्द कर दिया जाये, फिर चाहे मरे या । अगर मैं जानता कि यह प्रेरणा इनकी ओर से हुई है, तो कहीं जगह न रहने पर भी जगह ाल लेता। नौकरों की कोठरियों में तो जगह मिल जाती, बरामदे में पड़े रहने के लिए बहुत ; मिल जाती। खैर, अब सबेरा है। जब स्नेह नहीं रहा, तो केवल पेट भरने के लिए यहाँ पड़े ा बेहयाई है, यह अब मेरा घर नहीं। इसी घर में पैदा हुआ हूँ, यहीं खेला हूँ पर यह अब मेरा । पिताजी भी मेरे पिता नहीं हैं। मैं उनका पुत्र हूँ; पर वह मेरे पिता नहीं हैं। संसार के सारे स्नेह के नाते हैं। जहाँ स्नेह नहीं, वहाँ कुछ नहीं। हाय, अम्माँजी! तुम कहाँ हो?

सोचकर मंसाराम रोने लगा। ज्यों-ज्यों मातृ-स्नेह की पूर्व-स्मृतियाँ जागृत होती थीं, उसके ् उमड़ते आते थे। वह कई बार अम्माँ-अम्माँ पुकार उठा, मानो वह खड़ी सुन रही है। -हीनता के दुःख का आज उसे पहली बार अनुभव हुआ। वह आत्माभिमानी था, साहसी था; अब तक सुख की गोद में लालन-पालन होने के कारण वह इस समय अपने को निराधार[1] त रहा था।

के दस बज गये थे। मुंशीजी आज कहीं दावत खाने गये हुये थे। दो बार महरी मंसाराम को ान करने के लिए बुलाने आ चुकी थी। मंसाराम ने पिछली बार उससे झुंझलाकर कह दिया -मुझे भूख नहीं है, कुछ न खाऊँगा। बार-बार आकर सिर पर सवार हो जाती है। इसलिये निर्मला ने उसे फिर उसी काम के लिए भेजना चाहा, तो वह न गयी। बोली—बहूजी, वह मेरे ने से न आवेंगे।

ला—आयेंगे क्यों नहीं? जाकर कह दे, खाना ठण्डा हुआ जाता है। दो ही चार कौर खा लें।

ो—मैं यह सब कह के हार गयी, नहीं आते।

ला—तूने यह कहा था कि वह बैठी हुई हैं?

ो—नहीं बहूजी, यह तो मैंने नहीं कहा; झूठ क्यों बोलूँ।

ला—अच्छा, तो जाकर यह कह देना वह बैठी तुम्हारी राह देख रही हैं। तुम न खाओगे तो वह ई उठाकर सो रहेंगी। मेरी भूँगी, सुन, अबकी और चली जा। (हँसकर) न आवें, तो गोद में लाना।

नाक-भौं सिकोड़ते गयी पर एक ही क्षण में आकर बोली—अरे बहूजी, वह तो रो रहे हैं। ो ने कुछ कहा है, क्या। निर्मला इस तरह चौंककर उठी और दो-तीन पग आगे चली, मानो ो माता ने अपने बेटे के कुएँ में गिर पड़ने की खबर पायी हो। फिर वह ठिठक गयी, और भूँगी ोली—रो रहे हैं? तूने पूछा नहीं, क्यों रो रहे हैं?

—नहीं बहूजी, यह तो मैंने नहीं पूछा। झूठ क्यों बोलूँ?

रो रहे हैं। इस निस्तब्ध रात्रि में अकेले बैठे हुए वह रो रहे हैं? माता की याद आई होगी? कैसे र उन्हें समझाऊँ? हाय, कैसे समझाऊँ? यहाँ तो छींकते नाक कटती है। ईश्वर, तुम साक्षी अगर मैंने उन्हें भूल से भी कुछ कहा हो, तो वह मेरे आगे आये। मैं क्या करूँ? वह दिल में झते होंगे कि इसी ने पिताजी से मेरी शिकायत की होगी। कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैंने कभी ारे विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला? अगर मैं ऐसे देवकुमार के-से चरित्र रखनेवाले क का बुरा चेतूँ, तो मुझसे बढ़कर राक्षसी संसार में न होगी।

घर की बदलती हुई परिस्थिति के लिए निर्मला का स्वयं को दोषी मानना

ला देखती थी कि मंसाराम का स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता जाता है, वह दिन-दिन दुर्बल होता ा है, उसके मुख की निर्मल कान्ति दिन-दिन मलिन होती जाती है, उसका सहास बदन चित होता जाता है। इसका कारण भी उससे छिपा न था; पर वह इस विषय में अपने स्वामी ुछ न कह सकती थी। यह सब देख-देखकर उसका हृदय विदीर्ण होता रहता था, पर उसकी ान न खुल सकती थी। वह कभी-कभी मन में झुंझलाती कि मंसाराम क्यों जरा-सी बात पर ा क्षोभ करता है? क्या इनके आवारा कहने से वह आवारा हो गया? मेरी और बात है—एक -सा शक मेरा सर्वनाश कर सकता है; पर उसे ऐसी बातों की इतनी क्या पर्वाह?

के जी में प्रबल इच्छा हुई कि चलकर उन्हें चुप कराऊँ और लाकर खाना खिला दूँ। बेचारे -दिन भूखे पड़े रहेंगे। हाय! मैं इस उपद्रव की जड़ हूँ। मेरे आने के पहले इस घर में शान्ति

ला आधार का, अकेला

का राज्य था। पिता बालकों पर जान देता था, बालक पिता को प्यार करते थे। मेरे आते ही सारी बाधाएँ आ खड़ी हुईं। इनका अन्त क्या होगा? भगवान ही जाने। भगवान मुझे मौत भी नहीं देते। बेचारा अकेले भूखों पड़ा है! उस वक्त भी मुँह जूठा करके उठ गया था। और उसका आहार ही क्या है—जितना वह खाता है, उतना तो साल-दो साल के बच्चे खा जाते हैं।

निर्मला चली। पति की इच्छा के विरुद्ध चली। जो नाते में उसका पुत्र होता था, उसी को मनाने जाते उसका हृदय काँप रहा था।

उसने पहले रुक्मिणी के कमरे की ओर देखा। वह भोजन करके बेखबर सो रही थीं। फिर बाहर के कमरे की ओर गयी। वहाँ भी सन्नाटा था। मुंशीजी अभी न आये थे। यह सब देखभाल कर वह मंसाराम के कमरे के सामने जा पहुँची। कमरा खुला हुआ था, मंसाराम एक पुस्तक सामने रखे मेज पर सिर झुकाये बैठा हुआ था, मानो शोक और चिन्ता की सजीव मूर्ति हो। निर्मला ने पुकारना चाहा पर उसके कंठ से आवाज न निकली।

सहसा मंसाराम ने सिर उठाकर द्वार की ओर देखा। निर्मला को देखकर अँधेरे में पहचान न सका। चौंककर बोला—कौन?
निर्मला ने काँपते हुए स्वर में कहा—मैं तो हूँ। भोजन करने क्यों नहीं चल रहे हो? कितनी रात गयी!
मंसाराम ने मुँह फेरकर कहा—मुझे भूख नहीं है।
निर्मला—यह तो मैं तीन बार भूँगी से सुन चुकी हूँ।
मंसाराम—तो चौथी बार मेरे मुँह से सुन लीजिये।
निर्मला—शाम को भी तो कुछ नहीं खाया था, भूख क्यों नहीं लगी।
मंसाराम ने व्यंग्य की हँसी-हँसकर कहा—बहुत भूख लगेगी तो आयेगा कहाँ से?

यह कहते-कहते मंसाराम ने कमरे का द्वारा बन्द करना चाहा; लेकिन निर्मला किवाड़ों को हटाकर कमरे में चली आयी और मंसाराम का हाथ पकड़ सजल नेत्रों से विनय-मधुर स्वर से बोली—मेरे कहने से चलकर थोड़ा-सा खा लो। तुम न खाओ तो मैं भी जाकर सो रहूँगी। दो ही कौर खा लेना। क्या मुझे रात-भर भूखों मारना चाहते हो?

निर्मला के व्यवहार से मंसाराम के अन्दर उठने वाले भाव

मंसाराम सोच में पड़ गया। अभी भोजन नहीं किया, मेरे ही इन्तजार में बैठी रहीं। यह स्नेह, वात्सल्य और विनय की देवी हैं या ईर्ष्या और अमंगल की मायाविनी मूर्ति? उसे अपनी माता का स्मरण हो आया। जब वह रूठ जाता था, तो वे भी इसी तरह मनाने आया करती थीं और जब तक वह न जाता था, वहाँ से न उठती थी। वह इस विनय को अस्वीकार न कर सका। बोला—मेरे लिए आपको इतना कष्ट हुआ, इसका मुझे खेद है। मैं जानता कि आप मेरे इन्तजार में भूखी बैठी हैं, तो कभी खा आया होता।
निर्मला ने तिरस्कार-भाव से कहा—यह तुम कैसे समझ सकते थे कि तुम भूखे रहोगे और मैं खाकर सो रहूँगी? क्या विमाता का नाता होने ही से मैं ऐसी स्वार्थिनी हो जाऊँगी?

सहसा मर्दाने कमरे में मुंशीजी के खाँसने की आवाज आयी। ऐसा मालूम हुआ कि वह मंसाराम के कमरे की ओर आ रहे हैं? निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। वह तुरन्त कमरे से निकल गयी और भीतर जाने का मौका न पाकर कठोर स्वर में बोली—मैं लौंडी नहीं हूँ कि इतनी रात तक किसी के लिए रसोई के द्वार पर बैठी रहूँ। जिसे न खाना हो वह पहले ही कह दिया करे।

मुंशीजी ने निर्मला को वहाँ खड़े देखा। यह अनर्थ! यह यहाँ क्या करने आ गयी? बोले—यहाँ क्या कर रही हो?

परिस्थिति को देखते हुए निर्मला द्वारा व्यवहार परिवर्तन

निर्मला ने कर्कश स्वर में कहा—कर क्या रही हूँ, अपने भाग्य को रो रही हूँ। बस, सारी बुराइयों की जड़ मैं ही हूँ। कोई इधर रूठा है, कोई उधर मुँह फुलाये पड़ा है। किस-किस को मनाऊँ और कहाँ तक मनाऊँ!
मुंशीजी कुछ चकित होकर बोले—बात क्या है?
निर्मला—भोजन करने नहीं जाते और क्या बात है? दस दफा महरी को भेजा, आखिर आप दौड़ी आयी। इन्हें तो इतना कह देना आसान है, मुझे भूख नहीं है, यहाँ तो घर भर की लौंडी हूँ, सारी दुनियाँ मुँह में कालिख पोतने को तैयार। किसी को भूख न हो; पर कहनेवालों को यह कहने से कौन रोकेगा कि पिशाचिनी किसी को खाना नहीं देती।
मुंशीजी ने मंसाराम से कहा—खाना क्यों नहीं खा लेते जी? जानते हो क्या वक्त है?

निर्मला के व्यवहार परिवर्तन से मंसाराम अचंभित

मंसाराम स्तंभित-सा खड़ा था। उसके सामने एक ऐसा रहस्य हो रहा था, जिसका मर्म वह कुछ भी न समझ सकता था। जिन नेत्रों में एक क्षण पहले विनय के आँसू भरे हुए थे, उनमें अकस्मात् ईर्ष्या की ज्वाला कहाँ से आ गयी? जिन अधरों से एक क्षण पहले सुधा-वृष्टि हो रही थी, उनमें से विष का प्रवाह क्यों होने लगा? उसी अर्ध चेतना की दशा में बोला—मुझे भूख नहीं है।

मुंशीजी ने घुड़ककर कहा—क्यों भूख नहीं है? भूख नहीं थी तो शाम को क्यों न कहला दिया? तुम्हारी भूख के इन्तजार में कौन सारी रात बैठा रहे? तुममें पहले तो यह आदत न थी। रूठना कब से सीख लिया? जाकर खा लो।
मंसाराम—जी नहीं, मुझे जरा भी भूख नहीं है।
तोताराम ने दाँत पीसकर कहा—अच्छी बात है, जब भूख लगे तब खाना। यह कहते हुए वह अन्दर चले गये। निर्मला भी उनके पीछे ही चली गयी। मुंशीजी तो लेटने चले गये, उसने जाकर रसोई उठा दी और कुल्लाकर, पान खा मुस्कराती हुई आ पहुँची। मुंशीजी ने पूछा—खाना खा लिया न?
निर्मला—क्या करती। किसी के लिए अन्न-जल छोड़ दूंगी?
मुंशीजी—इसे न जाने क्या हो गया है, कुछ समझ में नहीं आता। दिन-दिन घुलता चला जाता है, दिन भर उसी कमरे में पड़ा रहता है।

मंसा के प्रति व्यवहार परिवर्तन से निर्मला में ग्लानि

निर्मला कुछ न बोली; वह चिन्ता के अपार सागर में डुबकियाँ खा रही थी। मंसाराम ने मेरे भाव-परिवर्तन को देखकर दिल में क्या-क्या समझा होगा? क्या उसके मन में यह प्रश्न उठा होगा कि पिताजी को देखते ही इसकी त्योरियाँ क्यों बदल गयी? इसका कारण भी क्या उसकी समझ में आ गया होगा? बेचारा खाने आ रहा था, तब तक यह महाशय न जाने कहाँ से फट पड़े? इस रहस्य को उसे कैसे समझाऊँ! समझाना सम्भव भी है? मैं किस विपत्ति में फँस गयी?

सबेरे वह उठकर घर के काम-धन्धे में लगी। सहसा नौ बजे भूँगी ने आकर कहा—मंसा बाबू तो अपने कागज-पत्तर सब इक्के पर लाद रहे हैं।
निर्मला ने हकबकाकर पूछा—इक्के पर लाद रहे हैं? कहाँ जाते हैं?
भूँगी—मैंने पूछा तो बोले, अब स्कूल ही में रहूँगा।

मंसा द्वारा घर छोड़ने का निर्णय लेना

मंसाराम प्रातःकाल उठकर अपने स्कूल के हेडमास्टर साहब के पास गया था और अपने रहने का प्रबन्ध कर आया था। हेडमास्टर साहब ने पहले तो कहा—यहाँ जगह नहीं है, तुमसे पहले के कितने ही लड़कों के प्रार्थना-पत्र पड़े हुए हैं। लेकिन जब मंसाराम ने कहा—मुझे जगह न मिलेगी तो कदाचित् मेरा पढ़ना न हो सके और मैं इम्तहान में शरीक[1] न हो सकूं, तो हेडमास्टर साहब को हार माननी पड़ी। मंसाराम के प्रथम श्रेणी में पास होने की आशा थी। अध्यापकों को विश्वास था कि वह उस शाला की कीर्ति को उज्ज्वल करेगा। हेडमास्टर साहब ऐसे लड़के को कैसे छोड़ सकते थे? उन्होंने अपने दफ्तर का कमरा उसके लिए खाली कर दिया। इसीलिए मंसाराम वहाँ से आते ही अपना सामान इक्के पर लादने लगा।
मुंशीजी ने कहा — अभी ऐसी क्या जल्दी है? दो-चार दिन में चले जाना। मैं चाहता हूँ, तुम्हारे लिए कोई अच्छा-सा रसोइया ठीक कर दूँ।
मंसाराम— वहाँ का रसोइया बहुत अच्छा भोजन पकाता है।
मुंशीजी — अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। ऐसा न हो कि पढ़ने के पीछे स्वास्थ्य खो बैठो।
मंसा० — वहाँ नौ बजे के बाद कोई पढ़ने नहीं पाता और सबको नियम के साथ खेलना पड़ता है।
मुंशीजी—बिस्तर क्यों छोड़ देते हो? सोओगे किस पर?
मंसा०—कंबल लिये जाता हूँ। बिस्तर की जरूरत नहीं।
मुंशीजी—कहार जब तक तुम्हारा सामान रख रहा है, जाकर कुछ खा लो। रात भी तो कुछ नहीं खाया था!
मंसा० — वहीं खा लूँगा। रसोइये से भोजन बनाने को कह आया हूँ। यहाँ खाने लगूँगा तो देर होगी।

घर में जियाराम और सियाराम भी भाई के साथ जाने की जिद कर रहे थे। निर्मला उन दोनों को बहला रही थी—बेटा, वहाँ छोटे लड़के नहीं रहते, सब काम अपने ही हाथ से करना पड़ता है.... एकाएक रुक्मिणी ने आकर कहा — तुम्हारा बज्र का हृदय है, महारानी! लड़के ने रात भी कुछ नहीं खाया, इस वक्त भी बिन खाये-पिये चला जा रहा है, और तुम लड़कों को लिये बाते कर रही हो? उसको तुम जानती नहीं हो।
यह समझ लो कि वह स्कूल नहीं जा रहा है, वनवास ले रहा है, लौटकर फिर न आयेगा। यह उन लडकों में नहीं है, जो खेल में मार भूल जाते हैं। बात उसके दिल पर पत्थर की लकीर हो जाती है।
निर्मला के कातर स्वर में कहा — क्या करूँ, दीदीजी? वह किसी की सुनते ही नहीं। आप जरा जाकर बुला लें। आपके बुलाने से आ जायेंगे।
रुक्मिणी—आखिर हुआ क्या, जिस पर भागा जाता है? घर से उसका जी कभी उचाट न होता था। उसे तो अपने घर के सिवा और कहीं अच्छा ही न लगता था। तुम्हीं ने उसे कुछ कहा होगा, या उसकी कुछ शिकायत की होगी। क्यों अपने लिए काँटे बो रही हो? रानी, घर को मिट्टी में मिलाकर चैन से न बैठने पाओगी।

---

1 शामिल

निर्मला ने रो कर कहा—मैंने उन्हें कुछ कहा हो, तो मेरी जबान कट जाये। हाँ, सौतेली माँ होने के कारण बदनाम तो हूँ ही। आपके हाथ जोड़ती हूँ, जरा जाकर उन्हें बुला लाइये।
रुक्मिणी ने तीव्र स्वर में कहा—तुम क्यों नहीं बुला लातीं? क्या छोटी हो जाओगी? अपना होता तो क्या इसी तरह बैठी रहती?

निर्मला की बेचारगी

निर्मला की दशा उस पंखहीन पक्षी की तरह हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर आते देख कर उड़ना चाहता है, पर उड़ नहीं सकता, उछलता है और गिर पड़ता है; पंख फड़फड़ाकर रह जाता है। उसका हृदय अन्दर-ही-अन्दर तड़प रहा था; पर बाहर न जा सकती थी।
इतने में दोनों लड़के अन्दर आकर बोले—भैयाजी चले गये।
निर्मला मूर्तिवत् खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन हो गयी हो। चले गये? घर में आये तक नहीं, मुझसे मिले तक नहीं! चले गये! मुझसे इतनी घृणा! मैं उनकी कोई न सही, उनकी बुआ तो थीं। उनसे तो मिलने आना चाहिए था? मैं यहाँ थी न! अन्दर कैसे कदम रखते? मैं देख लेती न! इसलिए चले गए।

9

मंसाराम का घर छोड़कर होस्टल में चले जाना

मंसाराम के जाने से घर सूना हो गया। दोनों छोटे लड़के उसी स्कूल में पढ़ते थे। निर्मला रोज उनसे मंसाराम का हाल पूछती। आशा थी कि छुट्टी के दिन वह आयेगा, लेकिन जब छुट्टी के दिन गुजर गये और वह न आया, तो निर्मला की तबीयत घबराने लगी। उसने उसके लिए मूंग के लड्डू बना रखे थे। सोमवार को प्रातः भूंगी को लड्डू देकर मदसरे भेजा। नौ बजे भूंगी लौट आयी। मंसाराम ने लड्डू ज्यों-के-त्यों लौटा दिये थे।
निर्मला ने पूछा—पहले से कुछ हरे हुए हैं,[1] रे?
भूँगी—हरे-वरे तो नहीं हुए, और सूख गये हैं।
निर्मला—क्या जी अच्छा नहीं है?
भूँगी—यह तो मैंने नहीं पूछा बहूजी, झूठ क्यों बोलू? हाँ, वहाँ का कहार मेरा देवर लगता है। वह कहता था कि तुम्हारे बाबूजी की खुराक[2] कुछ नहीं है। दो फुलकियाँ खाकर उठ जाते हैं। फिर दिन भर कुछ नहीं खाते। हरदम पढ़ते रहते हैं।
निर्मला—तूने पूछा नहीं, लड्डू क्यों लौटाए देते हो?
भूँगी—यह तो नहीं पूछा बहूजी, झूठ क्यों बोलूँ? उन्होंने कहा—इसे लेती जा, यहाँ रखने का कुछ काम नहीं। मैं लेती आई।
निर्मला—और कुछ नहीं कहते थे? पूछा नहीं कल क्यों नहीं आये? छुट्टी तो थी।
भूँगी—बहूजी, झूठ क्यों बोलूँ। यह पूछने की तो मुझे सुध ही न रही। हाँ, यह कहते थे कि अब तू यहाँ कभी न आना, न मेरे लिये कोई चीज लाना। और अपनी बहूजी से कह देना कि मेरे पास कोई चिट्ठी-पत्तर न भेजें। लड़कों से भी मेर पास कोई सन्देशा न भेजें। और एक बात ऐसी कही कि मेरे मुँह से निकल नहीं सकती। फिर रोने लगे।
निर्मला—कौन बात थी कह तो?
भूँगी—क्या कहूँ बहूजी, कहते थे मेरे जीने को धिक्कार है। यही कहकर रोने लगे।

निर्मला की आत्मपीड़ा

निर्मला के मुँह से एक ठंडी साँस निकल गई। ऐसा मालूम हुआ, मानो कलेजा बैठा जाता है। उसका रोम-रोम आर्तनाद करने लगा। वह वहाँ बैठी न रह सकी। जाकर बिस्तर पर मुँह ढाँपकर लेट रही और फूट-फूट कर रोने लगी। 'वह भी जान गये।' उसके अंतःकरण में बार-बार यही आवाज गूँजने लगी—'वह भी जान गये।' भगवान अब क्या होगा? जिस सन्देह की आग में वह भस्म हो रही थी, अब शतगुण[3] वेग से धधकने लगी। उसे अपनी कोई चिन्ता न थी। जीवन में अब सुख की क्या आशा थी, जिसकी उसे लालसा होती? उसने अपने मन को इस विचार से समझाया था कि यह मेरे पूर्व कर्मों का प्रायश्चित है। कौन प्राणी ऐसा निर्लज्ज होगा, जो इस दशा में बहुत दिन जी सके? कर्त्तव्य की वेदी पर उसने अपना जीवन और उसकी सारी कामनाएँ होम कर दी थीं। हृदय रोता रहता था, पर मुख पर हँसी का रंग भरना पड़ता था। जिसका मुँह देखने को जी न चाहता था, उसके सामने हँस-हँसकर बातें करनी पड़ती थीं। जिस देह का स्पर्श उसे सर्प के शीतल स्पर्श के समान लगता था, उससे आलिंगित होकर उसे जितनी घृणा, जितनी मर्मवेदना होती थी, उसे कौन जान सकता है? उस समय उसकी यह इच्छा थी कि धरती फट जाये और मैं उसमें समा जाऊँ! लेकिन सारी विडम्बना अब तक अपने ही तक थी। अपनी चिन्ता उसने छोड़ दी थी; लेकिन वह समस्या अब अत्यन्त भयंकर हो गयी थी। वह अपनी आँखों से मंसाराम की आत्मपीड़ा नहीं देख सकती थी। मंसाराम जैसे मनस्वी, साहसी युवक पर इस आक्षेप का जो असर पड़ सकता था, उसकी कल्पना ही से उसके प्राण काँप उठते थे। अब चाहे उस पर कितने ही सन्देह क्यों न हों, चाहे उसे आत्महत्या ही क्यों न करनी पड़े, पर वह चुप नहीं बैठ

1 मु०—स्वस्थ हुए हैं, प्रसन्न हुए हैं, 2 भोजन, 3 सौ गुने

ती। मंसाराम की रक्षा करने के लिए वह विकल हो गई। उसने संकोच और लज्जा की चादर र कर फेंक देने का निश्चय कर लिया।

ल साहब भोजन करके कचहरी जाने से पहिले एक बार उससे अवश्य मिल लिया करते थे। के आने का समय हो गया था। आ ही रहे होंगे, यह सोच कर निर्मला द्वार पर खड़ी हो गई उनका इन्तजार करने लगी; लेकिन यह क्या? वह तो बाहर चले जा रहे हैं। गाड़ी जुत कर गई, यह हुक्म वह यहीं से दिया करते थे। तो क्या आज वह न आयेंगे, बाहर-ही-बाहर चले गे। नहीं, ऐसा नहीं होने पायेगा। उसने भुँगी से कहा—जाकर बाबूजी को बुला ला। कहना, जरूरी काम है, सुन लीजिए।

ीजी जाने को तैयार ही थे। यह सन्देशा पाकर अन्दर आये, पर कमरे में न आकर दूर ही से -क्या बात है, भाई? जल्दी कह दो, मुझे एक जरूरी काम से जाना है। अभी थोड़ी देर हुई, मास्टर साहब का एक पत्र आया है कि मंसाराम को ज्वर आ गया है, बेहतर हो कि आप घर र उसका इलाज करें। इसलिए उधर ही से होता हुआ कचहरी जाऊँगा। तुम्हें कोई खास तो नहीं कहनी है।

मंसाराम की बीमारी की सूचना निर्मला का चिंतित होना

ला पर मानो वज्र गिर पड़ा। आँसुओं के आवेग और कंठ-स्वर में घोर संग्राम होने लगा। दोनों ले निकलने पर तुले हुए थे। दो में से कोई एक कदम भी पीछे हटना नहीं चाहता था। -स्वर की दुर्बलता और आँसुओं की सबलता देखकर यह निश्चय करना कठिन नहीं था कि क्षण यही संग्राम होता रहा तो मैदान किसके हाथ रहेगा। आखिर दोनों साथ-साथ कले—लेकिन बाहर आते ही बलवान ने निर्बल को दबा लिया। केवल इतना मुँह से कला—कोई खास बात नहीं थी। आप तो उधर जा ही रहे हैं।

ीजी—मैंने लड़कों से पूछा था, तो वे कहते थे, कल बैठे पढ़ रहे थे, आज न जाने क्या हो गया। र्मला ने आवेश से काँपते हुए कहा—यह सब आप कर रहे हैं।
ीजी ने त्योरियाँ बदलकर कहा—मैं कर रहा हूँ? मैं क्या कर रहा हूँ?
र्मला—अपने दिल से पूछिए।

मुंशी जी की चारित्रिक दुर्बलता

ीजी—मैंने तो यही सोचा था कि यहाँ उसका पढ़ने में जी नहीं लगता, वहाँ और लड़कों के साथ मख्वाह पढ़ेगा ही। यह तो बुरी बात न थी, और मैंने क्या किया?
र्मला—खूब सोचिये, इसीलिए आपने उन्हें वहाँ भेजा था? आपके मन में और कोई बात न थी। ीजी जरा हिचकिचाये और अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए मुस्कराने की चेष्टा करके ले—और क्या बात हो सकती थी? भला तुम्हीं सोचो!
र्मला—खैर, यही सही। अब आप कृपा करके उन्हें आज ही लेते आइयेगा; वहाँ रहने से उनकी मारी बढ़ जाने का भय है। यहाँ दीदीजी जितनी तीमारदारी कर सकती हैं, दूसरा नहीं कर कता।
क्षण के बाद उसने सिर नीचा करके कहा—मेरे कारण न लाना चाहते हों तो मुझे मेरे घर भेज जिए। मैं वहाँ आराम से रहूँगी।
ीजी ने इसका कुछ जवाब न दिया। बाहर चले गये, और एक क्षण में गाड़ी स्कूल की ओर ी।

! तेरी गति कितनी विचित्र है, कितनी रहस्य से भरी हुई, कितनी दुर्भेद्य। तू कितनी जल्द रंग लता है? इस कला में तू निपुण है। आतिशबाज की चर्खी को भी रंग बदलते कुछ देर लगती पर तुझे रंग बदलने में उसका लक्षांश समय भी नहीं लगता। जहाँ अभी वात्सल्य था, वहाँ र सन्देह ने आसन जमा लिया। वह सोचते जाते थे—कहीं उसने बहाना तो नहीं किया है?

ध प्रश्न

7 मंसाराम निर्मला से क्षुब्ध था, क्योंकि :

क) निर्मला उसे फिजूलखर्ची के लिए मना करती थी।

ख) मंसाराम को इस बात की आशा न थी कि निर्मला उसकी शिकायत करेगी।

ग) निर्मला ने मंसाराम के छोटे भाई को पीटा था।

घ) उसने रुक्मिणी देवी को बुरा-भला कहा था।

8 पति को देखते ही मंसाराम के प्रति निर्मला का व्यवहार क्यों कटु हो गया। उत्तर दो पंक्तियों में दें।

....

....

19 रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए विकल्पों से करें। निर्मला के बदले हुए व्यवहार को देखकर मंसाराम .... हो गया।
क) क्रोधित ख) चकित ग) पागल घ) शर्मिन्दा

20 मंसाराम की बीमारी की खबर पाकर निर्मला ने पति से उसे घर ले आने की बात कही इस पर मुंशीजी पर क्या प्रतिक्रिया हुई।

क) वे बहुत प्रसन्न हुए

ख) उनका संदेह बढ़ने लगा

ग) वे रोने लगे

घ) वे हँसने लगे

मुंशी तोताराम ने पुत्र को यह बताया कि होस्टल भेजने की बात निर्मला ने कही है। यह बात जानने पर मंसाराम के मन में द्वन्द्व होता है। यहाँ तक कि वह खेलने के लिए भी बाहर नहीं निकलता था। इस बीच एक घटना से मंसाराम के मन में निर्मला के प्रति क्षोभ उत्पन्न होता है। एक दिन मंसाराम भूखा रहता है उस दिन निर्मला भी कुछ नहीं खाती। वह मंसा को मनाने उसके कमरे में जाती है। जब मंसा को पता चलता है कि निर्मला ने भी खाना नहीं खाया तो उसका स्नेह फिर पनपने लगता है। उसी समय तोताराम के आने की आहट पाकर निर्मला परिस्थिति को संभालने का प्रयत्न करती है। वह नहीं चाहती कि उसे मंसा के कमरे में देखकर तोताराम को अनावश्यक शंका हो। वह तुरंत मंसाराम पर क्रोध करते हुए निकलती है। सौतेली माता के इस व्यवहार को मंसा समझ नहीं पाता वह दूसरे दिन ही होस्टल में रहने का इंतजाम कर घर छोड़ देता है। मंसाराम अपने पिता के मन में उठी शंका को पहचान जाता है। उसे इस बात से बहुत दुःख होता है कि पिता ने उसके प्रति दुर्भावना बना ली है। वह मानसिक पीड़ा से पीड़ित हो जाता है। वह अस्वस्थ हो जाता है। क्या मंसाराम फ़िर स्वस्थ हो सका? क्या पिता की दुर्भावना दूर हो सकी। आइये आगे की कथा का वाचन करके इन सवालों का उत्तर जाने।

10

मंसा में स्वावलम्बी बनने की भावना

मंसाराम दो दिन तक गहरी चिन्ता में डूबा रहा। बार-बार अपनी माता की याद आती, न खाना अच्छा लगता, न पढ़ने ही में जी लगता। उसकी **कायापलट-सी हो गई**[1]। दो दिन **गुजर**[2] गये और छात्रालय में रहते हुए भी उसने वह काम न किया, जो स्कूल के मास्टरों ने घर से कर लाने को दिया था। परिणाम-स्वरूप उसे बेंच पर खड़ा रहना पड़ा। जो बात कभी न हुई थी, वह आज हो गई। यह असह्य अपमान भी उसे सहना पड़ा।

तीसरे दिन वह इन्हीं चिन्ताओं में मग्न हुआ अपने मन को समझा रहा था—क्या संसार में अकेले मेरी ही माता मरी हैं? विमाताएँ तो सभी इसी प्रकार की होती हैं। मेरे साथ कोई नई बात नहीं हो रही है। अब मुझे पुरुषों की भाँति द्विगुण परिश्रम से अपना काम करना चाहिए, जैसे माता-पिता राजी रहें, वैसे उन्हें राजी रखना चाहिए। इस साल अगर छात्र-वृत्ति मिल गई तो मुझे घर से कुछ लेने की जरूरत ही न रहेगी। कितने ही लड़के अपने ही बल पर बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्राप्त कर लेते हैं। बाधाओं पर विजय पाना और अवसर देखकर काम करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। भाग्य के नाम को रोने-कोसने से क्या होगा?

सियाराम द्वारा मंसा को निर्मला के बारे में बताना

इतने में जियाराम आकर खड़ा हो गया।

मंसाराम ने पूछा—घर का क्या हाल है जिया? नई अम्माँजी तो बहुत प्रसन्न होंगी?

जिया०—उनके मन का हाल तो मैं नहीं जानता, लेकिन जब से तुम आये हो, उन्होंने एक जून भी खाना नहीं खाया। जब देखो तब रोया ही करती हैं। जब बाबू जी आते हैं, तब अलबत्ता हँसने लगती हैं। तुम चले आये, तो मैंने भी शाम को अपनी किताबें सँभाली! यहीं तुम्हारे साथ रहना चाहता था। भूंगी चुड़ैल ने जाकर अम्माँजी से कह दिया। बाबूजी बैठे थे, उनके सामने ही अम्माँजी ने आकर मेरी किताबें छीन लीं, और रोकर बोलीं—तुम भी चले जाओगे, तो इस घर में कौन रहेगा? अगर मेरे कारण तुम लोग घर छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हो, तो लो, मैं ही कहीं चली जाती हूँ। मैं तो झल्लाया हुआ था ही, वहाँ अब बाबूजी भी न थे, बिगड़कर बोला—आप क्यों कहीं चली जायेंगी? आपका तो घर है, आप आराम से रहिए। गैर तो हमीं लोग हैं; हम न रहेंगे, तब तो आपको आराम-ही-आराम होगा।

---

1 शारीरिक परिवर्तन हो गया, 2 बीत जाए

मंसाराम—तुमने खूब कहा, बहुत ही अच्छा कहा! इस पर और भी झल्लाई होंगी और जाकर बाबूजी से शिकायत की होगी।
जियाराम—नहीं, यह कुछ नहीं हुआ। बेचारी जमीन पर बैठकर रोने लगीं। मुझे भी करुणा आ गई। मैं भी रो पड़ा, उन्होंने आँचल से मेरे आँसू पोंछे और बोलीं—जिया! मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे भैया के विषय में तुम्हारे बाबूजी से एक शब्द भी नहीं कहा। मेरे भाग्य में कलंक लिखा हुआ है, वही भोग रही हूँ। फिर और न जाने क्या-क्या कहा, जो मेरी समझ में नहीं आया। कुछ बाबूजी की बात थी।
मंसाराम ने उद्विग्नता से पूछा—बाबूजी के विषय में क्या कहा? कुछ याद है?
जियाराम—बातें तो भई, मुझे याद नहीं आतीं। मेरी 'मेमोरी' कौन बड़ी तेज है; लेकिन उनकी बातों का मतलब कुछ ऐसा मालूम होता था कि उन्हें बाबूजी को प्रसन्न रखने के लिए यह स्वाँग भरना पड़ रहा है। न जाने धर्म-अधर्म की कैसी बातें करती थीं जो मैं बिल्कुल न समझ सका। मुझे तो अब इसका विश्वास आ गया है कि उनकी इच्छा तुम्हें यहाँ भेजने की न थी।
मंसाराम—तुम इन चालों का मतलब नहीं समझ सकते। ये बड़ी गहरी चालें हैं।
जियाराम—तुम्हारी समझ में होगी, मेरी समझ में नहीं है।
मंसाराम—जब तुम ज्योमेट्री नहीं समझ सकते, तो इन बातों को क्या समझ सकोगे। उस रात को जब मुझे खाना खाने के लिए बुलाने आई थीं और उनके आग्रह पर मैं जाने को तैयार भी हो गया था, उस वक्त बाबूजी को देखते ही उन्होंने जो कैंडा[1] बदला वह क्या मैं कभी भी भूल सकता हूँ?
जियाराम—यही बात मेरी समझ में नहीं आती। अभी कल ही मैं यहाँ से गया, तो लगीं तुम्हारा हाल पूछने! मैंने कहा—वह तो कहते थे कि अब कभी इस घर में कदम न रखूँगा। मैंने कुछ झूठ तो कहा नहीं; तुमने मुझसे कहा ही था। इतना सुनना था कि फूट-फूटकर रोने लगीं! मैं दिल में बहुत पछताया कि कहाँ-से-कहाँ मैंने यह बात कह दी। बार-बार यही कहती थीं, क्या वह मेरे कारण घर छोड़ देंगे? मुझसे इतने नाराज हैं? चले गये और मुझसे मिले तक नहीं। खाना तैयार था, खाने तक नहीं आये! हाय! मैं क्या बताऊँ, किस विपत्ति में हूँ। इतने में बाबूजी आ गये। बस तुरन्त आँखें पोंछकर मुस्कराती हुई उनके पास चली गईं। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आज मुझसे बड़ी मिन्नत की कि उनको साथ लेते आना। आज मैं तुम्हें खींच ले चलूँगा। दो दिन में वह कितनी दुबली हो गई हैं, तुम्हें यह देखकर उन पर दया आयेगी। तो चलोगे न?

पिता की शंका को जानने पर मंसा की मानसिक स्थिति

मंसाराम ने कुछ जवाब न दिया। उसके पैरे काँप रहे थे। जियाराम तो हाजिरी की घंटी सुनकर भागा; पर वह बेंच पर लेट गया और इतनी लम्बी साँस ली मानो बहुत देर से उसने साँस नहीं ली है। उसके मुख से दुस्सह वेदना में डूबे हुए शब्द निकले—हाय ईश्वर! इस नाम के सिवा उसे अपना जीवन निराधार मालूम होता था। इस एक उच्छ्वास में कितना नैराश्य, कितनी सम्वेदना, कितनी करुणा, कितनी दीन-प्रार्थना भरी हुई थी, इसका कौन अनुमान कर सकता है! अब सारा रहस्य उसकी समझ में आ रहा था और बार-बार उसका पीड़ित हृदय आर्तनाद कर रहा था—हाय ईश्वर! इतना घोर कलंक!

क्या जीवन में इससे बड़ी विपत्ति की कल्पना की जा सकती है? क्या संसार में इससे घोरतर नीचता की कल्पना हो सकती है? आज तक किसी पिता ने अपने पुत्र पर इतना निर्दय कलंक न लगाया होगा। जिसके चरित्र की सभी प्रशंसा करते थे, जो अन्य युवकों के लिए आदर्श समझा जाता था, जिसने कभी अपवित्र विचारों को अपने पास नहीं फटकने दिया, उसी पर यह घोरतर कलंक! मंसाराम को ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका दिल फटा जाता है।

दूसरी घंटी भी बज गयी! लड़क अपने-अपने कमरे में गए; पर मंसाराम हथेली पर गाल रखे अनिमेष[2] नेत्रों से भूमि की ओर देख रहा था मानो उसका सर्वस्व जलमग्न हो गया हो, मानो वह किसी को मुँह न दिखा सकता हो। स्कूल में गैरहाजिरी हो जायेगी, जुर्माना हो जायेगा; इसकी उसे चिन्ता नहीं; जब उसका सर्वस्व लट गया, तो अब इन छोटी-छोटी बातों का क्या भय? इतना बड़ा कलंक लगने पर भी अगर जीता रहूँ, तो मेरे जीने को धिक्कार है।

उसी शोकातिरेक दिशा में वह चिल्ला पड़ा—माताजी! तुम कहाँ हो? तुम्हारा बेटा, जिस पर तुम प्राण देती थीं—जिसे तुम अपने जीवन का आधार समझती थीं, आज घोर संकट में है। उसी का पिता उसकी गर्दन पर छुरी फेर रहा है। हाय, तुम कहाँ हो?

मंसाराम के सामने पीछे घटी घटनाओं का रहस्य खुलना

मंसाराम फिर शान्तचित्त से सोचने लगा—मुझ पर यह सन्देह क्यों हो रहा है? इसका क्या कारण है? मुझमें ऐसी कौन-सी बात उन्होंने देखी, जिससे उन्हें यह सन्देह हुआ? वह हमारे पिता हैं, मेरे शत्रु नहीं हैं, जो अनायास ही मुझ पर यह अपराध लगाने बैठ जायें। जरूर उन्होंने कोई-न-कोई बात देखी या सुनी है। उनका मुझ पर कितना स्नेह था! मेरे बगैर भोजन न करने जाते थे, वही मेरे शत्रु हो जायें, यह बात अकारण नहीं हो सकती।

1 पैंतरा, 2 एक टक से, लगातार

अच्छा, इस सन्देह का बीजारोपण किस दिन हुआ? मुझे बोर्डिंग हाउस में ठहराने की बात तो पीछे की है। उस दिन रात को वह मेरे कमरे में आकर मेरी परीक्षा लेने लगे थे, उसी दिन उनकी त्योरियाँ बदली हुई थीं। उस दिन ऐसी कौन-सी बात हुई, जो अप्रिय लगी हो। मैं नई अम्माँ से कुछ खाने को माँगने गया था। बाबूजी उस समय वहाँ बैठे थे। हाँ, अब याद आती है, उसी वक्त उनका चेहरा तमतमा गया था। उसी दिन से नई अम्माँ ने मुझसे पढ़ना छोड़ दिया। अगर मैं जानता कि मेरा घर में आना-जाना, अम्माँ जी से कुछ कहना-सुनना और उन्हें पढ़ाना-लिखाना पिताजी को बुरा लगता है, तो आज क्यों यह नौबत आती? और नई अम्माँ! उन पर क्या बीत रही होगी?

सही स्थिति की जानकारी होने पर मंसा को निर्मला के प्रति चिंतित होना

मंसाराम ने अब तक निर्मला की ओर ध्यान नहीं दिया था। निर्मला का ध्यान आते ही उसके रोंये खड़े हो गये। हाय उनका सरल स्नेहशील हृदय वह आघात कैसे सह सकेगा? आह! मैं कितने भ्रम में था। मैं उनके स्नेह को कौशल समझता था। मुझे क्या मालूम था कि उन्हें पिताजी का भ्रम-शांत करने के लिए मेरे प्रति इतना कटु व्यवहार करना पड़ता है। आह! मैंने उन पर कितना अन्याय किया है। उनकी दशा तो मुझसे भी खराब हो रही होगी। मैं तो यहाँ चला आया, मगर वह कहाँ जायेंगी? जिया कहता था, उन्होंने दो दिन से भोजन नहीं किया। हरदम रोया करती हैं। कैसे जाकर समझाऊँ। वह इस अभागे के पीछे क्यों अपने सिर यह विपत्ति ले रही हैं? वह क्यों बार-बार मेरा हाल पूछती हैं? क्यों बार-बार मुझे बुलाती हैं? कैसे कह दूँ कि माता मुझे तुमसे जरा भी शिकायत नहीं, मेरा दिल तुम्हारी तरफ से साफ है।

वह अब भी बैठी रो रही होंगी! कितना बड़ा अनर्थ है! बाबूजी को यह क्या हो रहा है? क्या इसीलिए विवाह किया था! एक बालिका की हत्या करने ही के लिए उसे लाये थे? इस कोमल पुष्प को मसल डालने ही के लिए तोड़ा था।

निर्मला के कष्ट को दूर करने के लिए मंसा द्वारा प्राण त्यागने की प्रतिज्ञा करना

उनका उद्धार कैसे होगा! उन निरपराधिनी का मुख कैसे उज्ज्वल होगा? उन्हें केवल मेरे साथ स्नेह का व्यवहार करने के लिए यह दंड दिया जा रहा है। उनकी सज्जनता का उन्हें यह उपहास मिल रहा है। मैं उन्हें इस प्रकार निर्दय आघात सहते देखकर बैठा रहूँगा? अपनी मान-रक्षा के लिए न सही, उनकी आत्म-रक्षा के लिए इन प्राणों का बलिदान करना पड़ेगा। इसके सिवाय उद्धार का कोई उपाय नहीं। आह! दिल में कैसे-कैसे अरमान थे। वे सब खाक में मिला देने होंगे। एक सती पर सन्देह किया जा रहा है; और मेरे कारण! मुझे अपने प्राणों से उनकी रक्षा करनी होगी, यही मेरा कर्त्तव्य है। इसी में सच्ची वीरता है। माता, मैं अपने रक्त से इस कालिमा को धो दूँगा। इसी में मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण है।

वह दिन भर इन्हीं विचारों में डूबा रहा। शाम को उसके दोनों भाई आकर घर चलने के लिए आग्रह करने लगे।

सियाराम—चलते क्यों नहीं? मेरे भैया जी, चले चलो न!

मंसाराम—मुझे फुरसत नहीं है कि तुम्हारे कहने से चला चलूं।

जिया०—आखिर कल तो इतवार है ही।

मंसा०—इतवार को भी काम है

जिया०—अच्छा, कल आओगे न?

मंसा०—नहीं, कल मुझे एक मैच में जाना है।

सिया०—अम्माँजी मूंग के लड्डू बना रही हैं। न चलोगे तो एक भी न पाओगे। हम तुम मिल के खा जायेंगे, जिया, इन्हें न देंगे।

जिया०—भैया, अगर तुम कल न गये तो शायद अम्माँजी यहाँ चली आयें।

मंसा०—सच! नहीं ऐसा क्यों करेंगी। यहाँ आयीं तो बड़ी परेशानी होगी। तुम कह देना वह कहीं मैच देखने गये हैं।

जिया०—मैं झूठ क्यों बोलने लगा। मैं कह दूँगा, वह मुँह फुलाये बैठे थे। देख लेना, उन्हें साथ लाता हूँ कि नहीं।

सिया०—हम कह देंगे कि आज पढ़ने नहीं गए। पड़े-पड़े सोते रहे।

मंसाराम ने इन दूतों से कल आने का वादा करके **गला छुड़ाया**[1]। जब दोनों चले गये, तो फिर चिन्ता में डूबा। रात-भर उसे **करवटें बदलते गुजरी**[2]। छुट्टी का दिन भी बैठे-बैठे कट गया, उसे दिन भर शंका होती रहती है कि कहीं अम्माँजी सचमुच न चली आयें। किसी गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनता, तो उसका कलेजा धक्-धक् करने लगता। कहीं आ तो नहीं गयीं?

छात्रालय में एक छोटा-सा औषधालय था। एक डॉक्टर साहब संध्या समय एक घण्टे के लिए आ जाया करते थे। अगर कोई लड़का बीमार होता तो उसे दवा देते। आज वह आये तो मंसाराम

1 मु०—पीछा छुड़ाया, 2 मु०—नींद नहीं आयी

कुछ सोचता हुआ उनके पास जाकर खड़ा हो गया। वह मंसाराम को अच्छी तरह जानते थे। उसे देखकर आश्चर्य से बोले—यह तुम्हारी क्या हालत है जी? तुम तो मानो गले जा रहे हो। कहीं बाजार का चस्का तो नहीं पड़ गया? आखिर तुम्हें हुआ क्या? जरा यहाँ तो आओ!

मंसाराम ने मुस्कराकर कहा—मुझे जिन्दगी का रोग है। आपके पास इसकी भी तो कोई दवा है? डॉक्टर—मैं तुम्हारी परीक्षा करना चाहता हूँ। तुम्हारी तो सूरत ही बदल गई जी, पहचाने भी नहीं जाते।

यह कहकर उन्होंने मंसासम का हाथ पकड़ लिया और छाती, पीठ, आँखें, जीभ सब बारी-बारी से देखीं। तब चिन्तित होकर बोले—वकील साहब से मैं आज ही मिलूँगा। तुम्हें थाइसिस हो रहा है। सारे लक्षण उसी के हैं।
मंसाराम ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—कितने दिनों में काम तमाम हो जायेगा, डॉक्टर साहब?
डॉक्टर—कैसी बात करते हो जी! मैं वकील साहब से मिलकर तुम्हें किसी पहाड़ी जगह भेजने की सलाह दूँगा। ईश्वर ने चाहा तो तुम बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे। बीमारी अभी पहले स्टेज में है।
मंसाराम—तब तो अभी साल दो साल की देर मालूम होती है। मैं तो इतना इन्तजार नहीं कर सकता। सुनिए, मुझे थायसिस-वायसिस कुछ नहीं है, न कोई दूसरी शिकायत ही है; आप बाबूजी को नाहक तरद्दुद[1] में न डालिएगा। इस वक्त मेरे सिर में दर्द है कोई दवा दीजिए। कोई ऐसी दवा हो, जिससे नींद भी आ जाये। मुझे दो रात से नींद नहीं आती।

डॉक्टर ने जहरीली दवाइयों की आलमारी खोली और शीशी से थोड़ी-सी दवा निकालकर मंसाराम को दी। मंसाराम ने पूछा—यह तो कोई जहर है। भला इसे कोई पी ले तो मर जाये?
डॉक्टर—नहीं, मर तो नहीं जाये, पर सिर में चक्कर जरूर आ जाये।
मंसा०—कोई ऐसी दवा भी इसमें है जिसे पीते ही प्राण निकल जायें?
डॉक्टर—ऐसी एक-दो नहीं कितनी ही दवाएँ हैं। यह जो शीशी देख रहे हो, इसकी एक बूंद भी पेट में चली जाये तो जान न बचे। आनन-फानन[2] में मौत हो जाये।
मंसा०—क्यों डॉक्टर साहब, जो लोग जहर खा लेते हैं, उन्हें बड़ी तकलीफ होती होगी?
डॉक्टर—सभी जहरों से तकलीफ नहीं होती। बाज[3] तो ऐसे हैं कि पीते ही आदमी ठंडा हो जाता है[4]। यह शीशी इसी किस्म की है, इसे पीते ही आदमी बेहोश हो जाता है, फिर उसे होश नहीं आता।

मंसाराम ने सोचा—तब तो प्राण देना बहुत आसान है। फिर क्यों लोग इतना डरते हैं। यह शीशी कैसे मिलेगी? अगर दवा का नाम पूछकर शहर के किसी दवा-फरोश[5] से लेना चाहूँ, तो वह कभी न देगा। ऊँह, इसके मिलने में कोई दिक्कत नहीं। यह तो मालूम हो गया कि प्राणों का अन्त बड़ी आसानी से किया जा सकता है। मंसाराम इतना प्रसन्न हुआ, मानो कोई इनाम पा गया हो। उसके दिल पर से एक बोझ-सा हट गया। चिन्ता की मेघ-राशि जो सिर पर मँडरा रही थी, छिन्न-भिन्न हो गई। महीनों बाद आज उसे मन में एक स्फूर्ति का अनुभव हुआ। लड़के थियेटर देखने जा रहे थे, निरीक्षक से आज्ञा ले ली थी। मंसाराम भी उनके साथ थियेटर देखने चला गया। ऐसा खुश था, मानो उससे ज्यादा सुखी जीव संसार में कोई नहीं है। थियेटर में नकल देखकर तो वह हँसते-हँसते लोट गया। बार-बार तालियाँ बजाने और 'वन्स मोर' की हाँक लगाने में पहला नम्बर उसी का था। गाना सुनकर वह मस्त हो जाता था, और 'ओहो हो!' करके चिल्ला उठता था। दर्शकों की निगाहें बार-बार उसकी तरफ उठ जाती थीं। थियेटर के पात्र भी उसी की ओर ताकते थे और यह जानने को उत्सुक थे कि कौन महाशय इतने रसिक और भावुक हैं। उसके मित्रों को उसकी उच्छृंखलता पर आश्चर्य हो रहा था। वह बहुत ही शांतचित्त, गम्भीर स्वभाव का युवक था। आज वह क्यों इतना हास्यशील हो गया है, क्यों उसके विनोद का पारावार नहीं है।

मानसिक परेशानी के कारण मंसा द्वारा अस्वाभाविक कार्य करना

दो बजे रात को थियेटर से लौटने पर भी उसका हास्योन्माद कम नहीं हुआ। उसने एक लड़के की चारपाई उलट दी, कई लड़कों के कमरे के द्वार बाहर से बन्द कर दिये, और उन्हें भीतर से खट-खट करते सुनकर हँसता रहा। यहाँ तक कि छात्रालय के अध्यक्ष महोदय की नींद भी शोरगुल सुनकर खुल गई और उन्होंने मंसाराम की शरारत पर खेद प्रकट किया। कौन जानता है कि उसके अन्तस्थल में कितनी भीषण क्रांति हो रही है? संदेह के निर्दय आघात ने उसकी लज्जा और आत्म-सम्मान को कुचल डाला है। उसे अपमान और तिरस्कार का लेशमात्र भी भय नहीं है। यह विनोद नहीं—उसकी आत्मा का करुण विलाप है। जब और सब लड़के सो गए तो वह भी

1 परेशानी, 2 तुरंत, 3 कुछ तो, 4 म०—मर जाता है, 5 दवा बेचने वाला

चारपाई पर लेटा लेकिन उसे नींद नहीं आई। एक क्षण के बाद वह बैठा और अपनी सारी पुस्तक बाँधकर सन्दूक में रख दीं। जब मरना ही है तो पढ़ कर क्या होगा? जिस जीवन में ऐसी-ऐसी बाधाएँ हैं—ऐसी-ऐसी यातनाएँ हैं, उससे मृत्यु कहीं अच्छी!

मानसिक अशांति से मंसा का बीमार पड़ जाना

यह सोचते-सोचते **तड़का**[1] हो गया। तीन रात से वह एक क्षण भी न सोया था। इस वक्त वह उठा तो उसके पैर थर-थर काँप रहे थे और सिर में चक्कर-सा आ रहा था। आँखें जल रही थीं और शरीर के सारे अंग शिथिल हो रहे थे। **दिन चढ़ता जाता था**[2] और उसमें इतनी शक्ति भी न थी कि उठकर मुँह-हाथ धो डाले। एकाएक उसने भूँगी को रूमाल में कुछ लिए हुए एक कहार के साथ आते देखा। उसका कलेजा सन्न हो गया। हाय ईश्वर! वे आ गईं! अब क्या होगा? भूँगी अकेले नहीं आई होगी? बग्घी जरूर बाहर खड़ी होगी? कहाँ तो उससे उठा न जाता था, कहाँ भूँगी को देखते ही दौड़ा और घबड़ाई हुई आवाज में बोला—अम्माँजी भी आई हैं, क्या रे? जब मालूम हुआ कि अम्माँजी नहीं आयीं, तब उसका चित्त शांत हुआ। भूँगी ने कहा—भैया! तुम कल गये नहीं, बहूजी तुम्हारी राह देखती रह गईं। उनसे क्यों रूठे हो भैया? कहती हैं, मैंने उनकी कुछ भी शिकायत नहीं की है। मुझसे आज रोकर कहने लगी—उनके पास यह मिठाई लेती जा और कहना, मेरे कारण क्यों घर छोड़ दिया है? कहाँ रख दूं यह थाली?

मंसाराम ने रुखाई से कहा—यह थाली अपने सिर पर पटक दे, चुड़ैल! वहाँ से चली है मिठाई लेकर! खबरदार, जो फिर कभी इधर आयी। **सौगात**[3] लेकर चली है! जाकर कह देना, मुझे उनकी मिठाई नहीं चाहिए! जाकर कह देना, तुम्हारा घर है तुम रहो, वहाँ वे बड़े आराम से हैं। खूब खाते और मौज करते हैं। सुनती है, बाबूजी के मुँह पर कहना, समझ गई? मुझे किसी का डर नहीं है, और जो करना चाहें, कर डालें, जिससे दिल में कोई **अरमान**[4] न रह जाये। कहें तो इलाहाबाद, लखनऊ, कलकत्ता, चला जाऊँ। मेरे लिए जैसे बनारस वैसे दूसरा शहर। यहाँ क्या रखा है?
भूँगी—भैया, मिठाई रख लो, नहीं रो-रोकर मर जायेंगी। सच मानो रो-रोकर मर जायेंगी।
मंसाराम ने आँसुओं के उठते हुए वेग को दबाकर कहा—मर जायेंगी, मेरी बला से! कौन मुझे बड़ा सुख दे दिया है, जिसके लिए पछताऊँ। मेरा तो उन्होंने सर्वनाश कर दिया। कह देना, मेरे पास कोई संदेशा न भेजें, कुछ जरूरत नहीं।
भूँगी—भैया, तुम तो कहते हो, यहाँ खूब खाता हूँ और मौज करता हूँ, मगर देह तो आधी भी न रही। जैसे आये थे, उससे आधे भी न रहे।
मंसाराम—यह तेरी **आँखों का फेर**[5] है। देखना, दो-चार दिन में **मुटाकर कोल्हू हो जाता हूँ कि नहीं**[6]। उनसे यह भी कह देना कि रोना-धोना बन्द करें। जो मैंने सुना कि रोती हैं और खाना नहीं खातीं, मुझसे बुरा कोई नहीं। मुझे घर से निकाला है, तो आप चैन से रहें। चली हैं, प्रेम दिखाने! मैं ऐसे त्रिया-चरित्र बहुत पढ़े बैठा हूँ।

भूँगी चली गई। मंसाराम को उससे बातें करते ही कुछ ठण्ड मालूम होने लगी थी। यह अभिनय करने के लिए उसे अपने मनोभावों को जितना दबाना पड़ा था, वह उसके लिए **असाध्य**[7] था। उसका आत्म-सम्मान उसे इस कुटिल व्यवहार का जल्द-से-जल्द अन्त कर देने के लिए बाध्य कर रहा था; पर इसका परिणाम क्या होगा? निर्मला क्या यह आघात सह सकेगी? अब तक वह मृत्यु की कल्पना करते समय किसी अन्य प्राणी का विचार न करता था, पर आज एकाएक ज्ञान हुआ कि मेरे जीवन के साथ एक और प्राणी का जीवन-सूत्र भी बँधा हुआ है। निर्मला यह समझेंगी कि मेरी निष्ठुरता ही ने इनकी जान ली। यह समझकर उसका कोमल हृदय क्या फट न जायेगा? उसका जीवन तो अब भी संकट में है! संदेह के कठोर पंजे में फँसी हुई अबला क्या अपने को हत्यारिणी समझकर बहुत दिन जीवित रह सकती है?

मंसाराम ने चारपाई पर लेटकर लिहाफ ओढ़ लिया, फिर भी सर्दी से कलेजा काँप रहा था। थोड़ी ही देर में उसे जोर से ज्वर चढ़ आया—वह बेहोश हो गया। इस अचेत दशा में उसे भाँति-भाँति के स्वप्न दिखाई देने लगे। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद चौंक पड़ता—आँखें खुल जातीं, फिर बेहोश हो जाता।

मंसा के उन्माद की स्थिति

सहसा वकील साहब की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ा। हाँ, वकील साहब ही की आवाज थी। उसने लिहाफ फेंक दिया और चारपाई से उतर कर नीचे खड़ा हो गया। उसके मन में एक आवेग हुआ कि इस वक्त इनके सामने प्राण दे दूँ। उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैं मर जाऊँ, तो इन्हें सच्ची खुशी होगी। शायद इसीलिए वह देखने आये हैं कि मेरे मरने में कितनी देर है। वकील साहब ने उसका हाथ पकड़ लिया, जिसमें वह गिर न पड़े और पूछा—कैसी तबियत है, लल्लू! लेटे क्यों न रहे? लेट न जाओ, तुम खड़े क्यों हो गये?

1 सवेरा, 2 मु०—समय बीतता जाता था, 3 उपहार, 4 इच्छा, 5 मु०—देखने में कमी है, 6 मु०—अत्याधिक मोटा हो जाता हूँ कि नहीं, 7 बिना साधना जिसे न किया जा सके

मंसाराम—मेरी तबीयत तो बहुत अच्छी है। आपको व्यर्थ ही कष्ट हुआ।

मुंशीजी ने कुछ जवाब न दिया। लड़के की दशा देखकर उनकी आँखों से आँसू निकल आये। वह हृष्ट-पुष्ट बालक, जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता था, अब सूखकर काँटा हो गया था। पाँच-छः दिन में ही वह इतना दुबला हो गया था कि उसे पहचानना कठिन था। मुंशीजी ने उसे आहिस्ता से चारपाई पर लिटा दिया और लिहाफ अच्छी तरह उढ़ाकर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। कहीं लड़का हाथ से तो न जायेगा! यह ख्याल करके वह शोक में विह्वल हो गये और स्टूल पर बैठकर फूट-फूटकर रोने लगे। मंसाराम भी लिहाफ में मुँह लपेटे रो रहा था। अभी थोड़े ही दिनों पहले उसे देखकर पिता का हृदय गर्व से फूल उठता था; लेकिन आज उसे इस दारुण दशा में देखकर भी वह सोच रहा है कि इसे घर ले चलूँ या नहीं। क्या यहाँ दवा नहीं हो सकती? मैं यहाँ चौबीसों घन्टे बैठा रहूँगा। डॉक्टर साहब यहाँ हैं ही। कोई दिक्कत न होगी। घर ले चलने में उन्हें बाधाएँ-ही-बाधाएँ दिखाई देती थीं; सबसे बड़ा भय यह था कि वहाँ निर्मला इसके पास हरदम बैठी रहेगी, और मैं मना न कर सकूँगा—यह उनके लिए असह्य था।

बीमार पुत्र के स्वास्थ्य को देखकर पिता के अन्दर करुणा का भाव

मुंशी तोताराम की शंका बने रहने का प्रभाव

इतने में अध्यक्ष ने आकर कहा—मैं तो समझता हूँ, आप इन्हें अपने साथ ले जायँ। गाड़ी है ही, कोई तकलीफ न होगी। यहाँ अच्छी तरह देखभाल न हो सकेगी।

मुंशीजी—हाँ, आया तो मैं इसी ख्याल से था; लेकिन इनकी हालत बहुत ही नाजुक मालूम होती है। जरा-सी असावधानी होने से सरसाम[1] हो जाने का भय है।

अध्यक्ष—यहाँ से इन्हें ले जाने में थोड़ी-सी दिक्कत जरूर है; लेकिन यह तो आप खुद सोच सकते हैं कि घर पर जो आराम मिल सकता है, वह यहाँ किसी तरह नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त किसी बीमार लड़के को यहाँ रखना नियम-विरुद्ध भी है।

मुंशीजी—कहिए तो मैं हेडमास्टर से आज्ञा ले लूं। मुझे इनको यहाँ से इस हालत में ले जाना किसी तरह मुनासिब नहीं मालूम होता।

अध्यक्ष ने हेडमास्टर का नाम सुना, तो समझे कि यह महाशय धमकी दे रहे हैं। जरा तिनककर बोले—हेडमास्टर नियम-विरुद्ध कोई बात नहीं कर सकते। मैं इतनी बड़ी जिम्मेदारी कैसे ले सकता हूँ?

अब क्या हो? क्या घर ले ही जाना पड़ेगा? यहाँ रखने का तो यह बहाना था कि ले जाने से बीमारी बढ़ जाने की शंका है। यहाँ से ले जाकर अस्पताल में ठहराने के लिए कोई बहाना नहीं है। जो सुनेगा, वह यही कहेगा कि डॉक्टर की फीस बचाने के लिए लड़के को अस्पताल फेंक आये; पर अब ले जाने के सिवा और कोई उपाय न था। अगर अध्यक्ष महोदय इस वक्त रिश्वत लेने पर तैयार हो जाते, तो शायद दो-चार साल का वेतन ले लेते लेकिन कायदे के पाबन्द लोगों में इतनी बुद्धि, इतनी चतुराई कहाँ! अगर इस वक्त मुंशीजी को कोई आदमी ऐसा उज्र सुझा देता, जिसमें उन्हें मंसाराम को घर न ले जाना पड़े, तो वह आजीवन उसका एहसान मानते। सोचने का समय भी नहीं था। अध्यक्ष महोदय शैतान की तरह सिर पर सवार थे। विवश होकर मुंशीजी ने दोनों साईसों को बुलाया और मंसाराम को उठाने लगे। मंसाराम अर्द्धचेतना की दशा में था, चौंककर बोला—क्या है? कौन है?

मुंशीजी—कोई नहीं है बेटा! मैं तुम्हें घर ले चलना चाहता हूँ, आओ, गोद में उठा लूँ।

मंसाराम—मुझे क्यों घर ले चलते हैं? मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।

मुंशीजी—यहाँ तो रह नहीं सकते, नियम ही ऐसा है।

मंसाराम—कुछ भी हो, मैं वहाँ न जाऊँगा। मुझे और कहीं ले चलिए—किसी पेड़ के नीचे, किसी झोपड़े में, जहाँ चाहे रखिए; पर घर न ले चलिए।

अध्यक्ष ने मुंशीजी से कहा—आप इन बातों का ख्याल न करें, यह तो होश में नहीं है।

मंसाराम—कौन होश में नहीं है? मैं होश में नहीं हूँ? किसी को गालियाँ देता हूँ? दाँत काटता हूँ? क्यों होश में नहीं हूँ? मुझे यहीं पड़ा रहने दीजिए, जो कुछ होना होगा यहीं होगा, अगर ऐसा है तो मुझे अस्पताल ले चलिए, मैं वहाँ पड़ा रहूँगा। जीना होगा, जीऊँगा, मरना होगा, मरूँगा; लेकिन घर किसी तरह भी न जाऊँगा।

यह जोर पाकर मुंशीजी फिर अध्यक्ष से मिन्नतें करने लगे, लेकिन वह कायदे का पाबन्द आदमी कुछ सुनता ही न था। अगर छूत की बीमारी हुई और किसी दूसरे लड़के को छूत लग गई, तो कौन उसका जवाबदेह होगा। इस तर्क के सामने मुंशीजी की कानूनी दलीलें भी मात हो गयीं।

आखिर मुंशीजी ने मंसाराम से कहा—बेटा, तुम्हें घर चलने से क्यों इनकार हो रहा है? वहाँ तो सभी तरह का आराम रहेगा। मुंशीजी ने कहने को तो यह बात कह दी लेकिन डर रहे थे कि कहीं सचमुच मंसाराम चलने पर राजी न हो जाये। मंसाराम को अस्पताल में रखने का कोई बहाना खोज रहे थे और उसकी जिम्मेदारी मंसाराम ही के सिर डालना चाहते थे। यह अध्यक्ष के सामने

1 सन्निपात, एक रोग जिसमें कफ, बात और पित्त तीनों बिगड़ जाते हैं

की बात थी; वह इस बात की साक्षी दे सकते थे कि मंसाराम अपनी जिद से अस्पताल जा रहा है। मुंशीजी का इसमें लेशमात्र भी दोष नहीं है।

मंसाराम ने झल्लाकर कहा—नहीं, नहीं; सौ बार नहीं! मैं घर नहीं जाऊँगा। मुझे अस्पताल ले चलिए और घर के सब आदमियों को मना कर दीजिए कि मुझे देखने न आयें। मुझे कुछ नहीं हुआ है, बिलकुल बीमार नहीं हूँ। आप मुझे छोड़ दीजिए, मैं अपने पाँव मे चल सकता हूँ।

वह उठ खड़ा हुआ। और उन्मत्त की भाँति द्वार की ओर चला, लेकिन पैर लड़खड़ा गये। यदि मुंशीजी ने सँभाल न लिया होता, तो उसे बड़ी चोट आती। दोनों नौकरों की मदद से मुंशीजी उसे बग्घी के पास लाये और अन्दर बिठा दिया।

मंसा द्वारा अस्पताल ले चलने की बात से मुंशी जी का प्रसन्न होना

गाड़ी अस्पताल की ओर चली। वही हुआ जो मुंशीजी चाहते थे। इस शोक में भी उनका चित्त सन्तुष्ट था। लड़का अपनी इच्छा से अस्पताल जा रहा था। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं था कि घर से इसे कोई स्नेह नहीं है? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मंसाराम निर्दोष है? वह उस पर अकारण ही भ्रम कर रहे थे।

लेकिन जरा ही देर में इस तुष्टि की जगह उनके मन में ग्लानि का भाव जाग्रत हुआ। वह अपने प्राण-प्रिय पुत्र को घर न ले जाकर अस्पताल लिये जा रहे थे। उनके विशाल भवन में उनके पुत्र के लिए जगह न थी, इस दशा में भी जब कि उसका जीवन संकट में पड़ा हुआ था। कितनी विडम्बना है!

एक क्षण के बाद एकाएक मुंशीजी के मन में प्रश्न उठा—कहीं मंसाराम उनके भावों को ताड़ तो नहीं गया? इसीलिए तो उसे घर से घृणा नहीं हो गयी है? अगर ऐसा है, तो गजब हो जायेगा।

उस अनर्थ की कल्पना ही से मुंशीजी के रोएँ खड़े हो गए और कलेजा धक्-धक् करने लगा। हृदय में एक धक्का-सा लगा। अगर इस ज्वर का यही कारण है, तो ईश्वर ही मालिक है। इस समय उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। वह आग जो उन्होंने अपने ठिठुरे हुए हाथों को सेंकने के लिए जलाई थी, अब उनके घर में लगी जा रही थी। इस करुणा, शोक, पश्चात्ताप और शंका से उनका चित्त घबरा उठा। उनके गुप्त रोदन की ध्वनि बाहर निकल सकती तो सुनने वाले रो पड़ते। उनके आँसू बाहर निकल सकते, तो उनका तार बँध जाता। उन्होंने पुत्र के वर्णहीन मुख की ओर एक बार वात्सल्यपूर्ण नेत्रों से देखा, वेदना से विकल होकर उसे छाती से लगा लिया, और इतना रोये कि हिचकी बँध गयी।

सामने अस्पताल का फाटक दिखाई दे रहा था।

11

मुंशी जी की शंका को दूर करने के लिए निर्मला द्वारा बनाव शृंगार कर रहना

मुंशी तोताराम सन्ध्या समय कचहरी से घर पहुँचे, तो निर्मला ने पूछा—उन्हें देखा, क्या हाल है? मुंशीजी ने देखा कि निर्मला के मुख पर नाममात्र को भी शोक या चिन्ता का चिह्न नहीं है। उसका बनाव-सिंगार और दिनों से भी कुछ गाढ़ा हुआ है। मसलन वह गले में हार न पहनती थी, पर आज वह भी गले में शोभा दे रहा था। झूमर से भी उसे बहुत प्रेम था; पर आज वह भी महीन रेशमी साड़ी के नीचे, काले-काले केशों के ऊपर, फानूस के दीपक की भाँति चमक रहा था।
मुंशीजी ने मुँह फेरकर कहा—बीमार है, और क्या हाल बताऊँ?
निर्मला—तुम तो उन्हें यहाँ लाने गए थे?
मुंशीजी ने झुंझलाकर कहा—वह नहीं आता: तो क्या मैं जबरदस्ती उठा लाता? कितना समझाया कि बेटा घर चलो, वहाँ तुम्हें कोई तकलीफ न होने पावेगी; लेकिन घर का नाम सुनकर उसे जैसे दूना ज्वर हो जाता था। कहने लगा—मैं यहाँ मर जाऊँगा; लेकिन घर न जाऊँगा। आखिर मजबूर होकर अस्पताल पहुँचा आया, और क्या करता?

रुक्मिणी भी आकर बरामदे में खड़ी हो गई थीं बोलीं—वह जन्म का हठी है, यहाँ किसी तरह न आएगा और यह भी देख लेना, वहाँ अच्छा भी न होगा?

मुंशीजी ने कातर स्वर में कहा—तुम दो-चार दिन के लिए वहाँ चली जाओ, तो बड़ा अच्छा हो बहिन! तुम्हारे रहने से उसे तस्कीन होती रहेगी। मेरी बहिन, मेरी यह विनय मान लो! अकेले वह रो-रोकर प्राण दे देगा। बस, हाय अम्माँ! हाय अम्माँ! की रट लगाकर रोया करता है। मैं वहीं जा रहा हूँ, मेरे साथ ही चलो। उसकी दशा अच्छी नहीं। बहिन, वह सूरत ही नहीं रही। देखें, ईश्वर क्या करते हैं?

यह कहते-कहते मुंशीजी की आँखों से आँसू बहने लगे; लेकिन रुक्मिणी अविचलित भाव से बोली—मैं जाने को तैयार हूँ। मेरे वहाँ रहने से अगर मेरे लाल के प्राण बच जायें, तो मैं सिर के

बल दौड़ी जाऊँ। लेकिन मेरा कहना गिरह में बाँध लो भैया, वहाँ वह अच्छा न होगा। मैं उसे खूब पहचानती हूँ। उसे कोई बीमारी नहीं है; केवल घर से निकाले जाने का शोक है। यही दुःख ज्वर के रूप में प्रकट हुआ है। तुम एक नहीं, लाख दवा करो—सिविल सर्जन को ही क्यों न दिखाओ, उसे कोई दवा असर न करेगी।

मुंशीजी—बहिन, उसे घर से निकाला किसने है? मैंने तो केवल उसकी पढ़ाई के ख्याल से उसे भेजा था।

रुक्मिणी—तुमने चाहे जिस ख्याल से भेजा हो; लेकिन यह बात उसे लग गई। मैं तो अब किसी गिनती में नहीं हूँ, मुझे किसी बात में बोलने का कोई अधिकार नहीं। मालिक तुम, मालकिन तुम्हारी स्त्री। मैं तो केवल तुम्हारी रोटियों पर पड़ी हुई अभागिनी विधवा हूँ। मेरी कौन सुनेगा और कौन परवाह करेगा? लेकिन बिना बोले रहा नहीं जाता। मंसा तभी अच्छा होगा, जब घर आएगा—जब तुम्हारा हृदय वही हो जायेगा, जो पहले था।

"निर्मला" (प्रेमचंद) वाचन एवं व्याख्या-I

यह कहकर रुक्मिणी वहाँ से चलीं गई, उनकी ज्योतिहीन, पर अनुभवपूर्ण आँखों के सामने जो चरित्र हो रहे थे, उनका रहस्य वह खूब समझती थीं और उनका सारा क्रोध निरपराधिनी निर्मला ही पर उतरता था। इस समय भी वह कहते-कहते रुक गई, कि जब तक यह लक्ष्मी इस घर में रहेगी, इस घर की दशा बिगड़ती ही जायेगी। उसको प्रगट रूप से न कहने पर भी उसका आशय[1] मुंशीजी से छिपा नहीं रहा। उनके चले जाने पर, मुंशीजी ने सिर झुका लिया और सोचने लगे। उन्हें अपने ऊपर इस समय इतना क्रोध आ रहा था कि दीवार से सिर पटककर प्राणों का अन्त कर दें। उन्होंने क्यों विवाह किया था? विवाह करने की क्या जरूरत थी? ईश्वर ने उन्हें एक नहीं, तीन-तीन पुत्र दिये थे। उनकी अवस्था भी पचास के लगभग पहुँच गई थी, फिर उन्होंने क्यों विवाह किया? क्या इसी बहाने ईश्वर को उनका सर्वनाश करना मंजूर था? उन्होंने सिर उठाकर एक बार निर्मला की सहास, पर निश्चल मूर्ति देखी और अस्पताल चले गये। निर्मला की सहास छवि ने उनका चित्त शांत कर दिया था। आज कई दिनों के बाद उन्हें यह शांति मयस्सर हुई थी। प्रेम-पीड़ित हृदय इस दशा में क्या इतना शांत और अविचलित रह सकता है? नहीं, कभी नहीं। हृदय की चोट भाव-कौशल से नहीं छिपाई जा सकती। अपने चित्त की दुर्बलता पर इस समय उन्हें अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्होंने अकारण ही सन्देह को हृदय में स्थान देकर इतना अनर्थ किया। मंसाराम की ओर से भी उनका मन निःशंक हो गया। हाँ, उसकी जगह अब एक नई शंका उत्पन्न हो गई। क्या मंसाराम भाँप तो नहीं गया? क्या भाँपकर ही तो घर आने से इनकार नहीं कर रहा है? अगर वह भाँप गया है, तो महान् अनर्थ हो जायेगा। उसकी कल्पना ही से उनका मन दहल उठा। उनकी देह की सारी हड्डियाँ मानो इस हाहाकार पर पानी डालने के लिए व्याकुल हो उठीं। उन्होंने कोचवान से घोड़े को तेज चलाने को कहा। आज कई दिनों के बाद उनके हृदय मंडल पर छाया हुआ सघन घन फट गया था और प्रकाश की लहरें अंदर से निकलने के लिए व्यग्र हो रही थीं। उन्होंने बाहर सिर निकाल कर देखा, कोचवान सो तो नहीं रहा है। घोड़े की चाल उन्हें इतनी मन्द कभी न मालूम हुई थी।

तोताराम में आत्मग्लानि की भावना

अस्पताल पहुँचकर वह लपके हुए मंसाराम के पास गये। देखा तो डॉक्टर साहब उसके सामने चिन्ता में मग्न खड़े थे। मुंशीजी के हाथ-पाँव फूल गये[2]। मुँह से शब्द न निकल सका। भरभराई हुई आवाज में बड़ी मुश्किल से बोले—क्या हाल है, डॉक्टर साहब? यह कहते-कहते वह रो पड़े और जब डॉक्टर साहब को उनके प्रश्न का उत्तर देने में एक क्षण का विलम्ब हुआ, तब तो उनके प्राण नहों में समा गये। उन्होंने पलंग पर बैठकर अचेत बालक को गोद में उठा लिया और बालक की भाँति सिसक-सिसक कर रोने लगे। मंसाराम की देह तवे की तरह जल रही थी। मंसाराम ने एक बार आँखें खोलीं। आह, कितनी भयंकर और उसके साथ ही कितनी दीन दृष्टि थी। मुंशीजी ने बालक को कंठ से लगाकर डॉक्टर से पूछा—क्या हाल है, साहब ! आप चुप क्यों हैं?

डॉक्टर ने संदिग्ध स्वर से कहा—हाल [illegible] आप देख ही रहे हैं। 106 डिग्री का ज्वर है, और मैं क्या बताऊँ? अभी ज्वर का [illegible] जाता है। मेरे किये जो कुछ हो सकता है, कर रहा हूँ। ईश्वर मालिक है। [illegible] मिनट के लिए भी यहाँ से नहीं हिला। भोजन तक नहीं कर सका। [illegible] कि एक मिनट में क्या हो जायेगा, नहीं कहा जा सकता? यह महाज्वर है, [illegible] नहीं है। रह-रह कर 'डिलीरियम' का दौरा-सा हो जाता है। क्या घर [illegible] कुछ कहा है! बार-बार, अम्माँजी, तुम कहाँ हो! यही आवाज मुँह से निकलती है।

डॉक्टर साहब यह कह ही रहे थे कि सहसा मंसाराम उठकर बैठ गया और धक्के से मुंशीजी को चारपाई के नीचे ढकेलकर उन्मत्त स्वर में बोला—क्यों धमकाते हैं आप! मार डालिए, मार

1 आशय — अर्थ, 2 मु०—डर लगने लगा

डालिए, अभी मार डालिए। तलवार नहीं मिलती! रस्सी का फन्दा है या वह भी नहीं! मैं अपने गले में लगा लूँगा। हाय अम्माँजी, तुम कहाँ हो? यह कहते-कहते वह फिर अचेत होकर गिर पड़ा!

मुंशीजी का पश्चाताप

मुंशीजी एक क्षण तक मंसाराम की शिथिल मुद्रा की ओर व्यथित नेत्रों से ताकते रहे, फिर सहसा उन्होंने डॉक्टर साहब का हाथ पकड़ लिया और अत्यन्त दीनतापूर्ण आग्रह से बोले—डॉक्टर साहब, इस लड़के को बचा लीजिए—ईश्वर के लिए बचा लीजिए, नहीं मेरा सर्वनाश हो जाएगा। मैं अमीर नहीं हूँ; लेकिन आप जो कुछ कहेंगे, वह हाजिर करूँगा, इसे बचा लीजिए। आप बड़े-से-बड़े डॉक्टरों को बुलाइए, और उनकी राय लीजिए, मैं—मैं सब खर्च दूँगा। इसकी यह दशा अब नहीं देखी जाती! हाय, मेरा होनहार बेटा!

डॉक्टर साहब ने करुण स्वर में कहा—बाबू साहब, मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ कि मैं इनके लिए अपनी तरफ से कोई बात उठा नहीं रख रहा हूँ। अब आप दूसरे डॉक्टरों से सलाह लेने को कहते हैं। अभी डॉक्टर लाहिरी, डॉक्टर भाटिया और डॉक्टर माथुर को बुलाता हूँ। विनायक शास्त्री को भी बुलाये लेता हूँ, लेकिन मैं आपको व्यर्थ का आश्वासन नहीं देना चाहता—हालत नाजुक है।

मुंशीजी की व्याकुलता

मुंशीजी ने रोते हुए कहा—नहीं डॉक्टर साहब, यह शब्द मुँह से न निकालिये। हालत इसके दुश्मनों की नाजुक हो। ईश्वर मुझ पर इतना कोप न करेंगे। आप कलकत्ता और बम्बई के डॉक्टरों को तार दीजिए, मैं जिंदगी भर आपकी गुलामी करूँगा। यही मेरे कुल का दीपक है। यही मेरे जीवन का आधार है। मेरा हृदय फटा जा रहा है। कोई ऐसी दवा दीजिए; जिससे इसे होश आ जाये। मैं जरा अपने कानों से उसकी बातें सुनूँ जानूँ कि उसे क्या कष्ट हो रहा है! हाय, मेरा बच्चा!

डॉक्टर—आप जरा दिल को **तस्कीन दीजिए**[1]। आप बुजुर्ग आदमी हैं, यों **हाय-हाय करने**[2] और डॉक्टरों की फौज जमा करने से कोई नतीजा न निकलेगा। शांत होकर बैठिए, मैं शहर के लोगों को बुला रहा हूँ, देखिए क्या कहते हैं? आप तो खुद ही **बदहवास हुए जाते हैं**[3]।
मुंशीजी—अच्छा डॉक्टर साहब! मैं अब न बोलूँगा, जबान तक न खोलूँगा आप जो चाहे करें, बच्चा अब आपके हाथ में है। आप ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। मैं इतना ही चाहता हूँ कि जरा इसे होश आ जाये, मुझे पहचान ले, मेरी बातें समझने लगे। क्या कोई ऐसी **संजीवनी बूटी**[4] नहीं? मैं इससे दो-चार बातें कर लेता।

यह कहते-कहते मुंशीजी आवेश में आकर मंसाराम से बोले—बेटा, जरा आँखें खोलो, कैसा जी है? मैं तुम्हारे पास बैठा हुआ रो रहा हूँ, मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है, मेरा दिल तुम्हारी ओर से साफ है।
डॉक्टर—फिर आपने **अनर्गल**[5] बातें करनी शुरू कीं। अरे साहब, आप बच्चे नहीं हैं—बुजुर्ग आदमी हैं, जरा धैर्य से काम लीजिए।
मुंशीजी—अच्छा डॉक्टर साहब, अब न बोलूँगा, **खता**[6] हुई। आप जो चाहें कीजिए। मैंने सब कुछ आप पर छोड़ दिया। कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे मैं इसे इतना समझा सकूँ कि मेरा दिल साफ है? आप ही कह दीजिए डॉक्टर साहब, कह दीजिए, तुम्हारा अभागा पिता बैठा रो रहा है। उसका दिल तुम्हारी तरफ से बिलकुल साफ है। उसे कुछ भ्रम हुआ था। वह अब दूर हो गया। बस, इतना ही कह दीजिए! मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं चुपचाप बैठा हूँ। **जबान तक नहीं खोलता**[7]; लेकिन आप इतना जरूर कह दीजिए।
डॉक्टर—ईश्वर के लिए बाबू साहब, जरा सब्र कीजिए, वरना मुझे मजबूर होकर आपसे कहना पड़ेगा कि घर जाइए। मैं जरा दफ्तर में जाकर डॉक्टरों को खत लिख रहा हूँ। आप चुपचाप बैठे रहिएगा।

मुंशीजी द्वारा अपने किये का पछतावा

निर्दयी डॉक्टर! जवान बेटे की यह दशा देखकर कौन पिता है, जो धैर्य से काम लेगा? मुंशीजी बहुत गम्भीर स्वभाव के मनुष्य थे। यह भी जानते थे कि इस वक्त हाय-हाय मचाने से कोई नतीजा नहीं; लेकिन फिर भी इस समय शांत बैठना उनके लिए असंभव था। अगर **दैव गति से**[8] यह [illegible]री होती, तो वह शांत हो सकते थे, दूसरों को समझा सकते थे, खुद डॉक्टरों को बुला सकते थे, लेकिन क्या यह जानकर भी धैर्य रख सकते थे कि यह सब आग मेरी ही लगाई हुई है? कोई पिता इतना **वज्र-हृदय**[9] हो सकता है? उनका रोम-रोम इस समय उन्हें धिक्कार रहा था। उन्होंने सोचा, मुझे यह **दुर्भावना**[10] उत्पन्न ही क्यों हुई? मैंने क्यों बिना किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के

---

1 धैर्य धरिए, 2 मु०—दुःख प्रकट करने, 3 अचेतन हुए जाते हैं, 4 संजीवनी—मरे हुए मनुष्य को जीवित करने वाली एक कल्पित औषधि, 5 बिना अर्थ का, 6 भूल, 7 मु०—कुछ न बोलूँगा, 8 स्वाभाविक रूप से, 9 कठोर हृदय, 10 गलत भावना

ऐसी भीषण कल्पना कर डाली? अच्छा मुझे उस दशा में क्या करना चाहिए था। जो कुछ उन्होंने किया उसके सिवा वह और क्या करते—इसका वह निश्चय न कर सके। वास्तव में विवाह के बन्धन में पड़ना ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना था। हाँ, यही सारे उपद्रव की जड़ है।

अनमेल विवाह के प्रति मुंशी जी में उठने वाले विचार

मगर मैंने यह कोई अनोखी बात नहीं की। सभी स्त्री-पुरुष विवाह करते हैं। उनका जीवन आनन्द से कटता है। आनन्द की इच्छा से ही तो हम विवाह करते हैं। मुहल्ले में सैकड़ों आदमियों ने दूसरी, तीसरी, चौथी यहाँ तक कि सातवीं शादियाँ की हैं और मुझसे भी कहीं अधिक अवस्था में। वह जब तक जिये आराम ही से जिये। यह भी नहीं हुआ कि सभी स्त्री से पहले मर गये हों। दुहाज-तिहाज होने पर भी कितने ही फिर रँडुए हो गए। अगर मेरी-जैसी दशा सब की होती, तो विवाह का नाम ही कौन लेता? मेरे पिता जी ने पचपनवें वर्ष में विवाह किया था और मेरे जन्म के समय उनकी अवस्था साठ से कम न थी। हाँ, इतनी बात जरूर है कि तब और अब में कुछ अन्तर हो गया है। पहले स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी न होती थीं। पति चाहे कैसा ही हो, उसे पूज्य समझती थीं; यह बात हो कि पुरुष सब कुछ देखकर भी बेहयाई से काम लेता हो, अवश्य यही बात है? जब युवक वृद्धा के साथ प्रसन्न नहीं रह सकता, तो युवती क्यों किसी वृद्ध के साथ प्रसन्न रहने लगी? लेकिन मैं तो कुछ ऐसा बुड्ढा न था। मुझे देखकर कोई चालीस से अधिक नहीं बता सकता। कुछ भी हो, जवानी ढल जाने पर जवान औरत से विवाह करके कुछ-न-कुछ बेहयाई जरूर करनी पड़ती है, इसमें सन्देह नहीं। स्त्री स्वभाव से लज्जाशील होती है। कुलटाओं की बात तो दूसरी है, पर साधारणतः स्त्री पुरुष से कहीं ज्यादा संयमशील होती हैं। जोड़ का पति पाकर वह चाहे पर-पुरुष से हँसी-दिल्लगी कर ले, पर उसका मन शुद्ध रहता है। बेजोड़ विवाह हो जाने से वह चाहे किसी की ओर आँखें उठाकर न देखे, पर उसका चित्त दुःखी रहता है। वह पक्की दीवार है, उसमें **सबरी**[1] का असर नहीं होता; यह कच्ची दीवार है और उसी वक्त तक खड़ी रहती है, जब तक इस पर सबरी न चलायी जाये। इन्हीं विचारों में पड़े-पड़े मुंशीजी को एक झपकी आ गई। मन के भावों ने तत्काल स्वप्न का रूप धारण कर लिया। क्या देखते हैं कि उनकी पहली स्त्री मंसाराम के सामने खड़ी कह रही है—'स्वामी, यह तुमने क्या किया? जिस बालक को मैंने अपना रक्त पिला-पिलाकर पाला, उसको तुमने इतनी निर्दयता से मार डाला। ऐसे आदर्श चरित्र बालक पर तुमने इतना घोर कलंक लगा दिया? अब बैठे क्या बिसूरते हो? तुमने उससे हाथ धो लिया। मैं तुम्हारे निर्दय हाथों से छीनकर उसे अपने साथ लिए जाती हूँ। तुम तो इतने शक्की कभी न थे। क्या विवाह करते ही शक को भी गले बाँध लाये? इस कोमल हृदय पर इतना कठोर आघात! इतना भीषण कलंक! इतना बड़ा अपमान सहकर जीनेवाले कोई बेहया होंगे। मेरा बेटा नहीं सह सकता!' यह कहते-कहते उसने बालक को गोद में उठा लिया और चली। मुंशीजी ने रोते हुए उसकी गोद से मंसाराम को छीनने के लिए हाथ बढ़ाया, तो आँखें खुल गई और डॉक्टर लाहिरी, डॉक्टर भाटिया आदि आधे दर्जन डॉक्टर उनको सामने खड़े दिखाई दिये।

स्वप्न द्वारा घटना का पूर्वाभास

12

तीन दिन गुजर गये और मुंशीजी घर न आये। रुक्मिणी दोनों वक्त अस्पताल जातीं और मंसाराम को देख आती थीं। दोनों लड़के भी जाते थे; पर निर्मला कैसे जाती? उसके पैरों में तो **बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं**[2]। वह मंसाराम की बीमारी का हाल-चाल जानने के लिए व्यग्र रहती थी; यदि रुक्मिणी से कुछ पूछती थीं, तो ताने मिलते थे और लड़कों से पूछती तो **बेसिर-पैर की**[3] बातें करने लगते थे। एक बार खुद जाकर देखने के लिए उसका चित्त व्याकुल हो रहा था। उसे यह भय होता था कि संदेह ने कहीं मुंशीजी के पुत्र-प्रेम को शिथिल न कर दिया हो, कहीं उनकी कृपणता ही तो मंसाराम के अच्छे होने में बाधक नहीं हो रही है? डॉक्टर किसी के सगे नहीं होते, उन्हें तो अपने पैसों से काम है, मुर्दा **दोजख**[4] में जाये या **बहिश्त**[5] में। उसके मन में प्रबल इच्छा होती थी कि जाकर अस्पताल के डॉक्टरों को एक हजार की थैली देकर कहे—इन्हें बचा लीजिए, यह थैली आपकी भेंट है। पर उसके पास न तो इतने रुपये ही थे, न इतना साहस ही था। अब भी यदि वहाँ पहुँच सकती, तो मंसाराम अच्छा हो जाता। उसकी जैसी सेवा-सुश्रूषा होनी चाहिए, वैसी नहीं हो रही है। नहीं तो क्या तीन दिन तक ज्वर ही न उतरता? यह दैहिक ज्वर नहीं, मानसिक ज्वर है। और चित्त के शान्त होने ही से इसका प्रकोप शान्त हो सकता है। अगर वह वहाँ रात-भर बैठी रह सकती और मुंशीजी जरा भी **मन मैला न करते**[6] तो कदाचित् मंसाराम को विश्वास हो जाता कि पिताजी का दिल साफ है, और फिर अच्छे होने में देर न लगती। लेकिन ऐसा होगा? मुंशीजी उसे वहाँ देखकर प्रसन्नचित रह सकेंगे? क्या जब भी उनका दिल साफ नहीं हुआ? यहाँ से जाते समय तो ऐसा ज्ञात हुआ था कि वह अपने प्रमोद पर पछता रहे हैं। ऐसा तो न होगा कि उसके वहाँ जाते ही मुंशीजी का संदेह फिर भड़क उठे और वह बेटे की जान लेकर ही छोड़ें?

इस दुविधा में पड़े-पड़े तीन दिन गुजर गये, और न घर में चूल्हा जला, न किसी ने कुछ खाया।

---

1 दीवार पर प्लास्टर चढ़ाने का औजार, 2 मु०—लाचार थी, 3 मु०—बिना अर्थ के, 4 नरक, 5 स्वर्ग, 6 दुर्भावना नहीं थी

लड़कों के लिए बाजार से पूरियाँ ली जाती थीं, रुक्मिणी और निर्मला भूखी ही सो जाती थीं। उन्हें भोजन की इच्छा ही न होती।

चौथे दिन जियाराम स्कूल से लौटा, तो अस्पताल होता हुआ घर आया। निर्मला ने पूछा—क्यों भैया, अस्पताल भी गये थे? आज क्या हाल है? तुम्हारे भैया उठे या नहीं?
जियाराम रुआँसा होकर बोला—अम्माँजी, आज तो वह कुछ बोलते-चालते ही न थे। चुपचाप चारपाई पर पड़े जोर-जोर से हाथ-पाँव पटक रहे थे[1]।
निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। घबराकर पूछा—तुम्हारे बाबू जी वहाँ न थे?
जियाराम—थे क्यों नहीं? आज वह बहुत रोते थे।
निर्मला का कलेजा धक्-धक् करने लगा। पूछा—डॉक्टर लोग वहाँ न थे?
जियाराम—डॉक्टर भी खड़े थे और आपस में कुछ सलाह कर रहे थे। सबसे बड़ा सिविल सर्जन अंगरेजी में कह रहा था कि मरीज की देह में कुछ ताजा खून डालना चाहिए। इस पर बाबूजी ने कहा—मेरी देह से जितना खून चाहें ले लीजिए। सिविल सर्जन ने हँसकर कहा—आपके ब्लड से काम नहीं चलेगा, किसी जवान आदमी का ब्लड चाहिए। आखिर उसने पिचकारी से कोई दवा भैया के बाजू में डाल दी। चार अंगुल से कम की सुई न रही होगी; पर भैया मिनके[2] तक नहीं। मैंने तो मारे डर के आँखें बन्द कर लीं।

निर्मला द्वारा अस्पताल जाने का निश्चय करना

बड़े-बड़े महान् संकल्प आवेश में ही जन्म लेते हैं। कहाँ तो निर्मला भय से सूखी जाती थी, कहाँ उसके मुँह पर दृढ़ संकल्प की आभा झलक पड़ी। उसने अपनी देह का ताजा खून देने का निश्चय कर लिया। अगर उसके रक्त से मंसाराम के प्राण बच जाएँ, तो वह बड़ी खुशी से उनकी अंतिम बूँद तक दे डालेगी। अब जिसका जो जी चाहे समझे, वह कुछ परवाह न करेगी। उसने जियाराम से कहा—तुम लपककर एक इक्का बुला लो, मैं अस्पताल जाऊँगी।
जियाराम—वहाँ तो इस वक्त बहुत से आदमी होंगे। जरा रात हो जाने दीजिए।
निर्मला—नहीं, तुम अभी इक्का बुला लो।
जियाराम—कहीं बाबूजी बिगड़े न?
निर्मला—बिगड़ने दो। तुम अभी जाकर सवारी लाओ।
जिया०—मैं कह दूँगा, अम्माजी ही ने मुझसे सवारी मँगाई थी।
निर्मला—कह देना।
जियाराम तो उधर ताँगा लाने गया, इतनी देर में निर्मला ने सिर में कंघी की, जूड़ा बाँधा, कपड़े बदले, आभूषण पहने, पान खाया और द्वार पर आकर ताँगे की राह देखने लगी।
रुक्मिणी अपने कमरे में बैठी हुई थीं। उसे इस तैयारी से आते देखकर बोलीं—कहाँ जाती हो, बहू?
निर्मला—जरा अस्पताल तक जाती हूँ।
रुक्मिणी—वहाँ जाकर क्या करोगी?
निर्मला—कुछ नहीं, करूँगी क्या? करने वाले तो भगवान हैं। देखने को जी चाहता है।
रुक्मिणी—मैं कहती हूँ, मत जाओ।
निर्मला ने विनीत भाव से कहा—अभी चली आऊँगी; दीदीजी। जियाराम कह रहे हैं कि इस वक्त उनकी हालत अच्छी नहीं है। जी नहीं मानता, आप भी चलिए न?
रुक्मिणी—मैं देख आई हूँ। इतना ही समझ लो कि अब बाहरी खून पहुँचाने पर ही जीवन की आशा है। कौन अपना ताजा खून देगा, और क्यों देगा? उसमें भी तो प्राणों का भय है?
निर्मला—इसीलिए तो मैं जाती हूँ! मेरे खून से क्या काम न चलेगा?
रुक्मिणी—चलेगा क्यों नहीं, जवान ही का तो खून चाहिए, लेकिन तुम्हारे खून से मंसाराम की जान बचे, इससे यह कहीं अच्छा है कि उसे पानी में बहा दिया जाये।

ताँगा आ गया। निर्मला और जियाराम दोनों जा बैठे। ताँगा चला।

रुक्मिणी द्वार पर खड़ी देर तक रोती रहीं। आज पहिली बार उसे निर्मला पर दया आई; उसका बस होता तो वह निर्मला को बाँध रखतीं। करुणा और सहानुभूति का आवेश उसे कहाँ लिये जाता है, यह वह अप्रकट रूप से देख रही थीं। आह! यह दुर्भाग्य की प्रेरणा है। यह सर्वनाश का मार्ग है।

निर्मला अस्पताल पहुँची, तो दीपक जल चुके थे[3]। डॉक्टर लोग अपनी राय देकर विदा हो चुके थे। मंसाराम का ज्वर कुछ कम हो गया था। वह टकटकी लगाए हुए द्वार की ओर देख रहा था। उसकी दृष्टि उन्मुक्त आकाश की ओर लगी हुई थी, मानो किसी देवता की प्रतीक्षा कर रहा हो! वह कहाँ है, किस दशा में है, इसका उसे कुछ ज्ञान न था।

1 मु०—बेचैन हो गए थे, 2 हिले तक नहीं, 3 संध्या हो गई थी

हसा निर्मला को देखते ही वह चौंककर उठ बैठा। उसकी समाधि टूट गई। उसकी विलुप्त तना प्रदीप्त हो गई। उसे अपनी स्थिति का, अपनी दशा का ज्ञान हो गया, मानो कोई भूली हुई ात याद आ गई है। उसने आँखें फाड़कर निर्मला को देखा और मुँह फेर लिया।
काएक मुंशीजी तीव्र स्वर में बोले—तुम, यहाँ क्या करने आईं?

र्मला अवाक् रह गई। वह बतलाये कि क्या करने आई? इतने सीधे से प्रश्न का भी वह क्या ोई जवाब दे सकी? वह क्या करने आई थी? इतना जटिल प्रश्न किसके सामने आया होगा? घर ा आदमी बीमार है, उसे देखने आई है, यह बात क्या बिना पूछे मालूम न हो सकती थी? फिर श्न क्यों?

ह हतबुद्धि-सी खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन[1] हो गई हो। उसने दोनों लड़कों से मुंशीजी के शोक ौर संताप की बातें सुनकर यह अनुमान किया था कि अब उनका दिल साफ हो गया है। अब से ज्ञात हुआ कि वह भ्रम था। हाँ, वह महाभ्रम था। मगर वह जानती कि आँसुओं की वृष्टि ने ो संदेह की अग्नि शांत नहीं की, तो वह कदापि न आती। वह कुढ़-कुढ़कर मर जाती, घर से ाँव न निकालती।
ुंशीजी ने फिर वही प्रश्न किया—तुम यहाँ क्यों आईं?
र्मला ने निःशंक भाव से उत्तर दिया—आप यहाँ क्या करने आये हैं?
ुंशीजी के नथने फड़कने लगे। वह झल्लाकर चारपाई से उठे और निर्मला का हाथ पकड़कर ोले—तुम्हारे यहाँ आने की कोई जरूरत नहीं। जब मैं बुलाऊँ तब आना। समझ गईं?
रे! यह क्या अनर्थ हुआ! मंसाराम जो चारपाई से हिल भी न सकता था, उठकर खड़ा हो गया ौर निर्मला के पैरों पर गिरकर रोते हुए बोला—अम्माँजी, इस अभागे के लिए आपको व्यर्थ तना कष्ट हुआ। मैं आपका स्नेह कभी भी न भूलूँगा। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा ुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूँ। ईश्वर जानता है, मैंने ापको विमाता नहीं समझा। मैं आपको अपनी माता समझता रहा। आपकी उम्र मुझसे बहुत यादा न हो, लेकिन आप, मेरी माता के स्थान पर थीं, और मैंने आपको सदैव इसी दृष्टि से खा... अब नहीं बोला जाता अम्माँजी, क्षमा कीजिए! यह अंतिम भेंट है।

मंसा द्वारा पिता की शंका का समाधान कर देना

र्मला ने अश्रु-प्रवाह को रोकते हुए कहा—तुम ऐसी बातें क्यों करते हो? दो-चार दिन में अच्छे ो जाओगे।
ंसाराम ने क्षीण स्वर में कहा—अब जीने की इच्छा नहीं, और न बोलने की शक्ति ही है।
ह कहते-कहते मंसाराम अशक्त होकर वहीं जमीन पर लेट गया। निर्मला ने पति की ओर िर्भय नेत्रों से देखते हुए कहा—डॉक्टरों ने क्या सलाह दी?
ुंशीजी—सब-के-सब भंग खा गए हैं, कहते हैं, ताजा खून चाहिए।
िर्मला—ताजा खून मिल जाये, तो प्राण-रक्षा हो सकती है?
ुंशीजी ने निर्मला की तीव्र नेत्रों से देखकर कहा—मैं ईश्वर नहीं हूँ, और न डॉक्टर ही को ईश्वर मझता हूँ।
िर्मला—ताजा खून तो ऐसी अलभ्य वस्तु नहीं!
ुंशीजी—आकाश के तारे भी तो अलभ्य नहीं! मुँह के सामने खंदक क्या चीज है।
िर्मला—मैं अपना खून देने को तैयार हूँ। डॉक्टरों को बुलाइए।
ुंशीजी ने विस्मित होकर कहा—तुम!
िर्मला—हाँ! क्या मेरे खून से काम न चलेगा?
ुंशीजी—तुम अपना खून दोगी? नहीं, तुम्हारे खून की जरूरत नहीं। इसमें प्राणों का भय है।
िर्मला—मेरे प्राण और किस दिन काम आयेंगे?
ुंशीजी ने सजल-नेत्र होकर कहा—नहीं निर्मला, उसका मूल्य अब मेरी निगाहों में बहुत बढ़ गया ै। आज तक वह मेरे भोग की वस्तु थी, आज से वह मेरी भक्ति की वस्तु है। मैंने तुम्हारे साथ ड़ा अन्याय किया है, क्षमा करो।

मुंशीजी का पश्चात्ताप

बोध प्रश्न

21 इस अंश की कथा के आरंभ में मंसाराम क्या निर्णय करता है?

क) वह अपने पिता से कभी बात नहीं करेगा।

ख) वह बाधाओं पर विजय प्राप्त करेगा।

ग) वह संन्यास ले लेगा।

घ) आत्महत्या कर लेगा।

---

1 बेसुध

22 वास्तविक स्थिति से परिचित होने के बाद मंसा के मन पर क्या प्रभाव पड़ा? चार पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

23 बीमारी की नाजुक अवस्था में भी मुंशी तोताराम अपने बेटे को घर नहीं ले जाना चाहते थे, क्योंकि :

क) उनकी शंका अब तक समाप्त नहीं हुई थी।

ख) घर ले जाने से बीमारी और बढ़ जाने की आशंका थी।

ग) मंसा को घर ले जाने से ज्यादा खर्च होने का डर था।

घ) निर्मला ने उन्हें मना किया था।

24 मंसाराम ने निर्मला की दशा को अपनी दशा से भी अधिक खराब माना, क्योंकि :

क) निर्मला अबोध थी।

ख) निर्मला उस घुटन और अपमान से मुक्त नहीं हो सकती थी।

ग) निर्मला को सियाराम अधिक परेशान करता था।

घ) रुक्मिणी देवी निर्मला को अधिक परेशान करती थी।

25 सारे कलह को जड़ से समाप्त करने के लिए मंसाराम ने क्या निर्णय लिया?

क) अपने पिता के सामने स्थिति स्पष्ट करेगा।

ख) प्राणोत्सर्ग कर देगा।

ग) बुआजी के साथ अलग रहेगा।

घ) विमाता को मायके जाने को कहेगा।

26 थियेटर देखते समय तथा उसके बाद मंसाराम द्वारा अस्वाभाविक हरकतों के पीछे क्या कारण थे?

क) मंसाराम की मानसिक प्रसन्नता।

ख) मंसाराम की बेवकूफी।

ग) मंसा की मानसिक अशांति।

घ) मंसा की स्वाभाविक आदत।

27 पुत्र के बीमार पड़ने के बाद मुंशी तोताराम के मन में अनमेल विवाह से संबंधित कैसे विचार उठते हैं? (छह पंक्तियों में उत्तर दें)

....

....

....

....

....

....

28 नीचे दिये गए कथन किसके हैं?

क) हालत इतनी नाजुक है कि एक मिनट में क्या हो जाएगा ....

ख) क्या हाल है, साहब! आप चुप क्यों हैं ....

ग) रस्सी का फन्दा है या वह भी नहीं! मैं अपने गले में लगा लूँगा..........................

घ) उसका दिल तुम्हारी तरफ से साफ है..........................

ङ) मैं जरा दफ्तर में जाकर डॉक्टरों को खत लिख रहा हूँ..........................

29 निम्नलिखित कथन किसके हैं?

क) क्यों भैया, अस्पताल भी गये थे? आज क्या हाल है..........................

ख) चुपचाप चारपाई पर पड़े जोर-जोर से हाथ-पांव पटक रहे थे..........................

ग) कौन अपना ताजा खून देगा और क्यों देगा!..........................

घ) आकाश के तारे भी तो अलभ्य नहीं! मुँह के सामने खंद क्या चीज है..........................

ङ) उनकी दशा दिन-दिन खराब होती जाती है कुछ कहते नहीं बनता! न जाने ईश्वर को क्या मंजूर है..........................

मंसाराम की अवस्था दिन पर दिन खराब होती जाती है, पिता की शंका की जानकारी के बाद उसका दुःख बढ़ता चला जाता है और वह मौत की कगार पर पहुँच जाता है। इधर निर्मला चाह कर भी मंसा को देखने नहीं जा पाती। अस्पताल में डॉक्टर मंसा की तबीयत ठीक करने का भरसक प्रयत्न करते हैं लेकिन मंसा का रोग तो मानसिक था जिसका इलाज मुश्किल था। डॉक्टर अंत में मंसा के लिए ताजा खून देने की आवश्यकता महसूस करते हैं किंतु इतनी जल्दी ताजा खून आता कहाँ से। निर्मला को जब मंसा की गिरती अवस्था का पता चलता है तो वह ताजा खून देने के लिए स्वयं ही अस्पताल जाती है। इसी समय मंसाराम अपने को निष्कलंकित सिद्ध करता हुआ अचेत हो जाता है। मुंशी तोताराम को अपनी गलती का एहसास हो जाता है। आगे की इकाई में हम पढ़ेंगे कि मंसाराम के न रहने पर क्या निर्मला के परिवार में सुख-शांति आ सकी?

12.3 कथासार

आप "निर्मला" उपन्यास पढ़ रहे हैं, पूरे उपन्यास का वाचन हम दो भागों में करेंगे। अब तक आपने जितना अध्ययन किया उसकी कथा स्पष्ट हो गई होगी। फिर भी, हम आपकी सुविधा के लिए यहाँ अब तक पढ़ी गई कथा का सार दे रहे हैं।

उपन्यास का आरंभ वकील बाबू उदयभानुलाल के परिवार के परिचय से होता है। निर्मला वकील साहब की सबसे बड़ी संतान है, निर्मला की एक बहन कृष्णा तथा दो भाई भी हैं। पंद्रह वर्ष की उम्र में निर्मला का विवाह लखनऊ के आबकारी अफसर भालचंद्र और रंगीली बाई के बड़े लड़के भुवन मोहन से तय हो जाता है। शादी में होने वाले खर्च को लेकर निर्मला के माता-पिता में वाद-विवाद होता है। क्रोध में आकर वकील साहब पत्नी को यह दिखाने के लिए कि उसके बिना घर की क्या स्थिति हो जाएगी, वे कुछ दिन के लिए घर छोड़ने का निर्णय करके निकल पड़ते हैं। रात्रि में अवसर पाकर उनके द्वारा सजा पाया एक गुंडा उनकी हत्या कर देता है। इधर भारी दहेज मिलने की संभावना समाप्त होने पर भालचंद्र पुत्र की सगाई तोड़ देते हैं।

निर्मला की विधवा माता को पुत्री के विवाह की चिन्ता सताती रहती है। पं. मोटेराम की खोजबीन के बाद निर्मला की शादी एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति तोताराम से तय हो जाती है। तोताराम की पहली पत्नी मर चुकी होती है और उसके तीन लड़के भी हैं। बड़ा लड़का मंसाराम निर्मला की हम उम्र है। विवाह के बाद मुंशी तोताराम निर्मला का प्यार पाने के लिए तरह-तरह के स्वाँग रचते हैं। मित्र द्वारा बताए नुस्खों का प्रयोग करते हैं। निर्मला उनके व्यवहार से जान जाती है कि यह सब कार्य वे उसका प्यार पाने के लिए करते हैं। किंतु निर्मला बेबस है। अपने पिता की उम्र का पति पाकर वह अपने मन को कभी भी उनके प्रति समर्पित नहीं कर पाती।

निर्मला अपने तीनों पुत्रों को बहुत प्यार करती है। मंसाराम उसे अंग्रेजी पढ़ाता है। इन सब बातों को देखकर मुंशी जी के मन में गलत भावना का उदय होता है। निर्मला द्वारा पुत्रों के साथ किए गए व्यवहार का वे गलत अर्थ लगाते हैं। यहाँ तक कि मंसाराम और निर्मला के स्नेह भाव को वे दो युवा युवती के संबंध के रूप में देखने लगते हैं। निर्मला को पति के संदेह का पता चल जाता है, किन्तु वह चारों तरफ से अपने को बेबस पाती है। पुत्रों के प्रति प्यार दिखाती है तो पति संदेह करते हैं और यदि वह पुत्रों से कठोर व्यवहार करती है तो ननद और पुत्र सभी उसे दोषी ठहराते हैं। निर्मला इस तरह सब ओर से कष्ट पाती है।

इधर जब मुंशी जी मंसाराम को घर से बाहर रखने का प्रयत्न करते हैं तो मंसाराम को वास्तविक स्थिति का पता-चल जाता है पिता की तुच्छ मानसिकता उसे विचलित कर देती है। वह मानसिक व्यथा से पीड़ित हो जाता है। मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और उसकी तबीयत दिन पर दिन खराब होती जाती है। अंततः वह डॉक्टरों के अथक प्रयास के बावजूद माता-पिता के सामने प्राण त्याग देता है।

बाकी बचे अंश का वाचन आप अगली इकाई में करेंगे।

12.4 संदर्भ सहित व्याख्या

ऐच्छिक पाठ्यक्रम के अंतर्गत द्वितीय खंड में कहानियों का अध्ययन करते समय आपने सप्रसंग व्याख्या सीखी है। आपने जान लिया कि व्याख्या किस प्रकार की जाती है। जिस प्रकार कहानियों को पढ़ते समय आपने देखा कि बीच-बीच में कुछ ऐसे अंश आये, जिन्हें कुछ विस्तार से समझने की आवश्यकता महसूस हुई। उपन्यास का वाचन करते समय भी आपने अनुभव किया होगा कि कहीं-कहीं कुछ अंश सामान्य पंक्तियों से भिन्न हैं। इन्हें कुछ विस्तार से समझाने की आवश्यकता है। व्याख्या द्वारा हम इन पंक्तियों के अर्थ को ठीक-ठीक समझा सकते हैं। लेखक कभी पात्रों के माध्यम से और कभी स्वयं कुछ विशेष बात कहना चाहता है। सामान्य पंक्तियों से भिन्न अंशों में ही व्याख्या की आवश्यकता होती है। यूँ तो व्याख्या करने के तरीके को आप अच्छी प्रकार समझ ही गये हैं। लेकिन हम आपको फिर से स्मरण दिला देना चाहते हैं कि व्याख्या के लिए प्रथमतः रचना का नाम फिर रचनाकार का नाम तथा रचनाकार का वैशिष्टय बताया जाता है। तत्पश्चात् प्रसंग में यह बताया जाता है कि पंक्तियाँ किस समय किसके बारे में क्यों लिखी गयीं। फिर विस्तार से महत्वपूर्ण बात को समझाया जाता है। आइए उपन्यास के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या देखें।

1 'जीवन, तुमसे ज्यादा असार भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या वह उस दीपक की भाँति क्षणभंगुर नहीं, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है। पानी के एक बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है, जीवन में उतना सार भी नहीं। साँस का भरोसा ही क्या और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं। नहीं जानते नीचे जानेवाली साँस ऊपर आयेगी या नहीं : पर सोचते इतनी दूर की हैं, मानो हम अमर हैं"

व्याख्या : प्रस्तुत उद्धरण प्रेमचंद के "निर्मला" उपन्यास से लिया गया है, इन पंक्तियों में मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता पर लेखक ने अपना विचार व्यक्त किया है। भिन्न रूपकों द्वारा जीवन की क्षणभंगुरता को समझाने का प्रयत्न किया है। निर्मला के माता-पिता में उसके विवाह के खर्च को लेकर वाद-विवाद बढ़ जाता है। पिता उदयभानुलाल घर से कुछ दिन के लिए बाहर रहने का निश्चय कर निकल पड़ते हैं। गुंडा मतई बदला लेने का अवसर पाता है और उनकी हत्या कर देता है। वह उनके सोने के बटन एवं घड़ी भी रख लेता है। इसी समय लेखक ने जीवन की क्षणभंगुरता पर अपना विचार व्यक्त किया है।

लेखक उदयभानुलाल की इस असामयिक मृत्यु पर कहता है कि मनुष्य के जीवन से तुच्छ वस्तु इस संसार में और कुछ नहीं है। वह प्रश्न वाचक चिह्न लगाता है कि क्या मनुष्य का जीवन उस दीपक की भाँति नहीं जो हवा का झोंका पाकर तुरंत बुझ जाता है। मनुष्य जीवन की तुलना पानी के बुलबुले से करते हुए लेखक कहता है कि पानी के बुलबुले को भी जिस प्रकार क्षणभर में नष्ट होने में तो कुछ समय भी लगता है लेकिन मानव जीवन उससे भी कम समय में नष्ट हो जाता है। "मनुष्य के जीवन का क्या भरोसा" लेखक आगे विचार प्रकट करता है कि हम मनुष्य जीवन की इस क्षणभंगुरता को जानते हुए भी जाने कितनी, अभिलाषा आकांक्षा, करते रहते हैं। यह पा जाएँ, वह हो जाएँ इसी में लगे रहते हैं। हम यह नहीं जानते कि क्षण में क्या हो जाएगा। साँस लेने की क्रिया के बीच में ही हमारा जीवन नष्ट हो सकता है (साँस लेने की क्रिया—नाक द्वारा साँस लेना और छोड़ना) लेकिन मनुष्य की यह आदत है कि जीवन की इस वास्तविकता को जानते हुए भी कुछ पाने और बन जाने की सोच में ही लगे रहते हैं। हम इतनी अभिलाषाएँ, आकांक्षाएँ लेकर जीते हैं मानों अमर हैं। मानों हमारी मृत्यु हो ही नहीं सकती।

विशेष : 1 संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग
2 मनुष्य जीवन की तुलना दीपक तथा पानी के बुलबुले के साथ करते हुए प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग।

2 "महाराज दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती। उनसे संबंध हो जाना ही

ाख रुपये के बराबर है। मैं इसी को अपना अहोभाग्य समझता हूँ। हा! कितनी उदार आत्मा ी। रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं। तिनके के बराबर की परवाह नहीं की। बुरा िवाज है, बेहद बुरा! मेरा बस चले तो दहेज लेने वालों और देने वालों को गोली मार दूँ, फिर ाहे फाँसी ही क्यों न हो जाए! पूछो आप लड़के का विवाह करते हैं कि उसे बेचते हैं? अगर ापको लड़के की शादी में दिल खोलकर खर्च करने का अरमान है तो शौक से खर्च कीजिए किन जो कुछ कीजिए अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए! नीचता है, ार नीचता! मेरा बस चले, तो इन पाजियों को गोली मार दूँ"।

याख्या : उपरोक्त उक्ति "निर्मला" उपन्यास से लिया गया है। इसके लेखक प्रेमचंद हैं। निर्मला का िवाह भालचंद्र के पुत्र से तय हो चुका था, लेकिन उदयभानलाल के अचानक मृत्यु हो जाने से विवाह में बाधा पस्थित हो गई थी। निर्मला की माँ चाहती थी कि निश्चित समय में ही विवाह हो जाए, अत: . मोटेराम को एक पत्र के साथ भालचंद्र के यहाँ भेजा। पं. मोटेराम भालचंद्र के यहाँ जाते हैं उस मय भालचंद्र ने मोटेराम से उक्त बातें कहीं। पहले वे उदयभानुलाल की प्रशंसा करते हैं और र दहेज लेने वाले तथा देनेवाले की बुराई करते हैं। लेखक ने भालचंद्र के चरित्र को स्पष्ट करने लिए उसके मुख से ऐसी बातें कहलवायी हैं। भालचंद्र लोभी प्रवृत्ति का व्यक्ति है उदयभानु की ृत्यु के बाद वह जान जाता है कि अब पुत्र के विवाह में दहेज नहीं मिलेगा अत: विवाह को रोकने लिए टालमटोल करता है। बातें बनाकर किसी प्रकार पं. जी से छुटकारा पाना चाहता है।

खक ने भालचंद्र के चरित्र को बड़ी सहजता से प्रस्तुत किया है। भालचंद्र की कथनी और करनी अंतर है। वह दहेज प्रथा को बुरा कहता है लेकिन निर्मला के साथ पुत्र का विवाह इसलिए तोड़ ा है कि उसे दहेज मिलने की आशा नहीं रहती। निर्मला के संग पुत्र के विवाह को समाप्त रने के लिए वह पं. जी के सामने भूमिका बाँधता है। प्रथमत: उदयभानुलाल की बड़ाई करते (कहता है कि उनसे संबंध हो जाना बड़ी बात थी, वे पैसे को महत्व नहीं देते थे। फिर दहेज ा की चर्चा करते हुए कहते हैं कि यह प्रथा बुरी है। अगर उनको अधिकार मिल जाए तो दहेज े तथा देने वाले को गोली मार दें। चाहें इस कार्य के लिए फाँसी ही क्यों न हो जाए। आगे वह हते हैं कि दहेज लेने वाले पिता से पूछा जाए कि वे लड़के का विवाह करते हैं या बेचते हैं फिर कहते हैं कि यदि पुत्र का विवाह कर रहे हैं तो अपनी ओर से खर्च कीजिए न कि लड़की के पिता पैसा लेकर। अगर कोई दहेज लेता है तो यह नीचता है। फिर बनावटी क्रोध प्रकट करते हुए वे हते हैं कि दहेज लेने वालों को गोली मार दें।

शेष : लेखक ने भालचंद्र के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए उसके मुख से ही बातें कहवाई हैं। लचंद्र के कथनी और करनी में अंतर है वह कहता है कुछ और तथा करता है कुछ और।

परी तौर पर व्याख्येय पंक्तियाँ किसी विद्रोही व्यक्ति का कथन जान पड़ती हैं। पर बाद में चंद ने भालचंद्र के चरित्र को सामने रखकर इस कथन के खोखलेपन को सामने रख दिया है। तुत: स्थिति को त्रासद बनाने के लिए ही प्रेमचंद ने यह कथन भालचंद्र के मुख से कहलवाया इसके अतिरिक्त इस कथन के माध्यम से प्रेमचंद उन लोगों की भी पोल खोल देते हैं, जो मंचों दहेज के खिलाफ बड़े-बड़े भाषण करते हैं और अपने बेटे की शादी में बिल्कुल बदल जाते हैं।

षा : लेखक ने संवाद के द्वारा चरित्र को स्पष्ट किया है। बोलचाल की भाषा। संवाद को ाकूल बनाने के लिए उर्दू के शब्दों का प्रयोग।

आइए कुछ और अंशों की व्याख्या देखें :

"इस समय बालक को गोद में लिए हुए उसे वह तुष्टि हो रही थी जो अब तक कभी नहीं हुई । आज पहली बार उसे आत्मवेदना हुई; जिसके बिना आस नहीं बदलती, अपना कर्त्तव्य-मार्ग ीं सूझता। वह मार्ग अब दिखायी देने लगा।"

र्युक्त अंश "निर्मला" उपन्यास से लिया गया है। इसके लेखक प्रेमचंद हैं। निर्मला का विवाह ड़े उम्र के तोताराम से होता है। तोताराम की एक विधवा बहन रुक्मिणी निर्मला से इसलिए ाती है कि उसका अधिकार छिन गया है। निर्मला रुक्मिणी देवी के व्यवहार से घबराकर मुंशी से शिकायत करती है। बात बढ़ जाती है, तोताराम का सबसे छोटा लड़का सियाराम सोतेली पर झूठा आरोप लगाता है इस पर तोताराम कान खींचकर उसकी पिटाई करते हैं। वह ख़कर रोने लगता है। इसी समय निर्मला बच्चे को गोद में लेकर चुप कराने लगती है। ाराम उसकी गोद में सो जाता है। जब निर्मला उसे चारपाई पर सुलाना चाहती है उस समय ावस्था में ही सियाराम निर्मला के गले में हाथ डाल कर चिपट जाता है। इसी समय निर्मला अंदर उठने वाले भावों को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।

ा सियाराम निर्मला से नींद में चिपट जाता है, तो उसका सोया हुआ वात्सल्य भाव छलक पड़ता

है। इसके साथ ही उसे कर्त्तव्य बोध भी होता है। अभी तक वह दांपत्य जीवन को पति-पत्नी की सीमा में बाँध कर देख रही थी। अधेड़ उम्र के व्यक्ति से विवाह होने के कारण दांपत्य जीवन के इस सुख से वह वंचित रही। इस कारण वह दुःखी रहती थी। आज वात्सल्य जीवन ने उसके दांपत्य जीवन के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया। पत्नी ने माँ का स्थान ग्रहण कर लिया। इस वात्सल्य प्रेम ने उसे नयी राह दिखा दी। उसे लगा कि वह इसके सहारे अपने जीवन को ख़ुशी-ख़ुशी गुज़ार सकती है। बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य को वह समझती है और इसके बाद बच्चों को प्यार करने से उसका सूखा जीवन हराभरा हो जाता है। एक तरफ उसे कर्त्तव्य-बोध होता है और दूसरी ओर जीने का आधार मिल जाता है।

विशेष : कर्त्तव्य-मार्ग निर्मला के कर्त्तव्य-बोध और जीने की राह को संकेतित करता है।

अभ्यास 1

आपने "निर्मला" उपन्यास के एक से बारह परिच्छेद तक का अध्ययन किया। आपने कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या भी देखी अब हम आपको कुछ महत्वपूर्ण अंश दे रहे हैं, आप इनकी व्याख्या करने का प्रयत्न कीजिए।

"विचित्र स्वभाव की औरत है, मालूम ही नहीं होता कि क्या चाहती है। मैं जानता कि उसका ऐसा मिजाज होगा तो कभी शादी न करता। रोज एक न एक बात लेकर उठ खड़ी होती है। उसने मुझसे कहा था कि वह दिन भर जाने कहाँ गायब रहता है, मैं उसके दिल की बात क्या जानता था? समझा तुम कुसंगत में पड़कर शायद दिन भर घूमा करते हो। कौन ऐसा पिता है, जिसे अपने पुत्र को आवारा फिरते देखकर रोका न हो? इसीलिए मैंने तुम्हे बोर्डिंग हाउस में रखने का निश्चय किया था।"

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

अभ्यास 2

"ओफ्फोह! इतना शक्की मिजाज! ईश्वर ही इस घर की आन रखे। इनके मन में ऐसी-ऐसी दुर्भावनाएँ भरी हुई हैं। मुझे यह इतनी गयी गुजरी समझते हैं। ये बातें सोच-सोचकर वह कई दिन रोती है। तब उसने सोचना शुरू किया, इन्हें क्यों ऐसा संदेह हो रहा है? मुझमें ऐसी कौन-सी बात है, जो इनकी आँखों में खटकती है। बहुत सोचने पर भी उसे अपने में कोई ऐसी बात नजर न आयी"।

व्याख्या

....

....

....

....

....

अभ्यास 3

आपने अब तक निर्मला उपन्यास का परिच्छेद बारह तक का वाचन कर लिया है। आपने देखा कि लेखक ने प्रायः हर जगह बात को स्पष्ट करने तथा भाषा को सरल बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया है। हम यहाँ पाठ से संबंधित कुछ मुहावरे दे रहे हैं। आप इन मुहावरों द्वारा वाक्य बनाने का प्रयत्न कीजिए। अगर आप इनका वाक्यों में प्रयोग न कर पाएँ तो उत्तर देखिए तथा पुनः अन्य वाक्य बनाने का प्रयत्न कीजिए।

1 आँखें खुल जाना ....

2 ज़हर उगलना ....

कॉटे बोना ....

मीन मेख निकालना ....

नरम पड़ जाना ....

जली-कटी सुनाना ....

दिल दुखाना ....

खाक उड़ना ....

खाक में मिल जाना ....

0 रंग बदलना ....

1 छाती पर मूँग दलना ....

2 तूमार बाँधना ....

3 बलैया लेना ....

4 ओले पड़ना ....

5 नस-नस पहचानना ....

12.5 सारांश

- आपने इस इकाई में "निर्मला" उपन्यास का परिच्छेद एक से बारह तक का वाचन कर लिया है। आप अब तक पढ़े गए कथा को अच्छी प्रकार समझ गए होंगे। आप पाठ में दिए गए महत्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर कथासार अपने शब्दों में लिख सकते हैं।
- उपन्यास का अब तक के अंश का वाचन करते समय आप बीच-बीच में आए कठिन शब्दों के अर्थ भी समझते गए हैं। आप कठिन शब्दों के अर्थ भी बता सकते हैं।
- कथा का वाचन करते समय आपने देखा कि लेखक ने बात को स्पष्ट करने के लिए हर जगह मुहावरों का प्रयोग किया है। पाठ में नीचे की ओर मुहावरों के अर्थ दिए गए हैं जिसके आधार पर आप मुहावरा प्रयुक्त कर नए वाक्य बना सकते हैं।
- प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यासों में तत्कालीन समय का यथार्थ चित्रण तो किया ही है साथ ही साथ पात्रों के द्वारा मानव मनोभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। पाठ में ऐसे महत्वपूर्ण अंशों एवं उक्तियों को व्याख्या द्वारा समझाया गया है। आप ऐसे महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकते हैं।

12.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ख, 2) ग, 3) क, 4) ख, 5) क, 6) ख, 7) ख, 8) ग, 9) ग।

10) रुक्मिणी देवी की नाराजगी का सबसे बड़ा कारण यह था कि निर्मला के आ जाने से उनका अधिकार छिन गया था। अब पैसों पर निर्मला का पूरा अधिकार था।

11) ग, 12) ख, 13) ख, 14) ग।

15) निर्मला के प्रति मंसा में क्रोध जगाने के लिए उन्होंने मंसा से यह कहा कि निर्मला ने ही उनसे शिकायत की है कि मंसा अध्ययन नहीं करता इसलिए उसे होस्टल भेज दिया जाए।

16) ग) 17) ख।

18) निर्मला यह जान गई थी कि उसके पति को मंसाराम से उसकी बातचीत पसंद नहीं, पति को संदेह से मुक्त रखने के लिए वह ऐसा आचरण करती है।

19) ख, 20) ख, 21) ख।

22) वास्तविक स्थिति जानकर मंसाराम को असह्य वेदना हुई। इस असह्य कलंक के बाद उसे जीवन निस्सार लगने लगा। उसकी स्थिति पागलों-सी हो जाती है।

23) क, 24) ख, 25) ख, 26) ग।

27) मुंशी तोताराम सोचते हैं कि अधेड़ावस्था में विवाह करके उन्होंने गलती तो नहीं की? पर इसके विपक्ष में उन्हें अनेक तर्क मिल जाते हैं; खुद उनके पिताजी ने बुढ़ापे में शादी की। कई लोगों के उदाहरण मुंशी जी के सामने उपस्थित हो जाते हैं, जिन्होंने एक नहीं 6-6 शादियाँ की पर अंत में मुंशी तोताराम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि अनमेल विवाह से स्त्रियाँ खुश नहीं रहती हैं।

28) क) मुंशी तोताराम
ख) डॉक्टर
ग) मंसाराम
घ) मुंशी तोताराम
ङ) डॉक्टर

29) क) निर्मला, ख) जियाराम, ग) रुक्मिणी, घ) मुंशी तोताराम, ङ) निर्मला।

अभ्यासों के उत्तर

1 प्रस्तुत कथन प्रेमचंद के "निर्मला" उपन्यास से लिया गया। मुंशी तोताराम अपने पुत्र मंसा से निर्मला की शिकायत कर रहे हैं। मुंशी तोताराम निर्मला का हृदय जीतने में असफल होते हैं इधर बड़े पुत्र मंसाराम तथा निर्मला के संबंध में उनके अंदर शंका उत्पन्न होती है। जब उन्हें यह पता लगता है कि निर्मला मंसाराम से अंग्रेजी पढ़ती है तब उनकी शंका और बढ़ती है। वे किसी प्रकार मंसा को होस्टल भेजना चाहते हैं। इस कार्य के लिए वे झूठी बात कहकर मंसा में निर्मला के प्रति द्वेष पैदा करना चाहते हैं। वे मंसा से निर्मला के बारे में कहते हैं कि वह विचित्र स्वभाव की औरत है और उन्हें यह पता होता तो वे शादी नहीं करते। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि निर्मला ने ही तुम्हारे बारे में उल्टी-सीधी कहती है, फिर पिता के प्यार की याद दिलाकर वे कहते हैं कि कौन ऐसा पिता है जो अपने पुत्र को गलत राह पर जाते देखना चाहता है। इसलिए निर्मला के कहने में आकर उन्होंने उसे होस्टल भेजने का निर्णय किया है।

विशेष : उपरोक्त कथन में लेखक ने तोताराम का दुर्बल चरित्र सामने रखा है। तोताराम को अपने आप पर, अपनी पत्नी पर और अपने लड़के पर भरोसा नहीं है। इसलिए वह छल-कपट से अपने पुत्र को निर्मला से दूर करना चाहते हैं। अपने भोले और होनहार बेटे के हृदय में द्वेष का बीज बोते हैं और यही उनकी समूची गृहस्थी नष्ट कर देता है। वे अपने सबसे होनहार पुत्र को खो देते हैं क्योंकि इसके बाद से ही मंसा की मानसिक स्थिति बिगड़ने लगती है, और अन्ततः इसका परिणाम होता है उसकी मौत।

2 प्रस्तुत अंश प्रेमचंद के उपन्यास "निर्मला" से लिया गया है। "निर्मला" में पति की शंका को लेकर उठने वाले भावों को इसमें व्यक्त किया गया है।
"निर्मला" को जब यह पता चलता है कि मुंशी तोताराम ने मंसाराम को होस्टल में भेजने का फैसला कर लिया है तब वह पति से ऐसा नहीं करने की सलाह देती है, उसकी मिन्नत के बावजूद तोताराम का फैसला दृढ़ रहता है। इन सब बातों से निर्मला को पता चल जाता है कि पति के अंदर मंसाराम के प्रति उसके संबंध को लेकर शंका उत्पन्न हो गयी है। फिर वह दुःख प्रकट करती हुई सोचती है कि ऐसे शक्की मन के कारण घर की लाज को केवल ईश्वर ही बचा सकते हैं। उसके मन में पति के प्रति घृणा उत्पन्न होती है, फिर वह सोचती है कि उसके पति उसे इतनी गिरी हुई समझते हैं। कई-कई दिन इसी बात को लेकर वह रोती है फिर वह सोचती है कि आखिर पति के अंदर ऐसी शंका किस कारण उत्पन्न हुई। बहुत सोचने पर भी उसे कोई कारण नहीं सूझता है।

विशेष : इसमें निर्मला की मनोदशा का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। इन पंक्तियों में एक ऐसी नारी की व्यथा है जो न पूर्ण रूप से पत्नी बन सकी और न पूर्ण रूप से माँ। अपने पिता की उम्र के पति को वह सहजता से न स्वीकार सकी। जो प्यार वह पति से न पा सकी, उसके विकल्प में उसने वात्सल्य का सहारा लेना चाहा। पर माँ-पुत्र के प्रेम को अधेड़ पति सहजता से स्वीकार न कर सका। और उसे निश्छल प्यार को शक की निगाह से देखने लगा। पति के शक पर निर्मला ने अपने उद्‌गार व्याख्येय पंक्तियों में व्यक्त किए हैं, जो उसकी वेदना को प्रकट करते हैं।

3 **मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग**
1 गुरु के उपदेश से शिष्य की आँख खुल गई।
2 मंसाराम की सौतेली माँ हमेशा जहर उगला करती है।
3 दुर्जन हमेशा सज्जनों की राह में काँटे बोने का प्रयत्न करते हैं।

4 रुक्मिणी हमेशा निर्मला के कार्यों में मीन-मेख निकाला करती थी।

5 निर्मला की बात से जया को वास्तविक स्थिति का पता चल गया और वह नरम पड़ गई।

6 साधना की सास उसे हमेशा जली-कटी सुनाती रहती है।

7 सुप्रिया की बात से श्याम का दिल दुखी हो गया।

8 पिता के न रहने से मीरा के घर की आर्थिक स्थिति खराब हो गयी, जहाँ प्रतिदिन जलसे हुआ करते थे वहाँ अब खाक उड़ा करती है।

9 मालिक के न रहने से सारा घर खाक में मिल गया।

10 विवाह की बात सुनते ही भालचंद्र रंग बदलने लगे।

11 मालिक होने का यह मतलब नहीं कि नौकरों की छाती पर मूँग दला जाए।

12 विमला के बच्चे को जरा-सी चोट लगी थी लेकिन वह पति के सामने तुमार बाँधने लगी।

13 श्याम के प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर माँ ने उसकी बलैया ली।

14 पिता के न रहने से मोहन के घर में एक-एक दाने के लाले पड़ गए।

15 रमाकान्त सुधीर की नस-नस पहचानता था।

इकाई 13 "निर्मला" (प्रेमचंद) वाचन एवं व्याख्या-II

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13,2 उपन्यास का वाचन
13.3 उपन्यास का सार
13.4 उपन्यास की संदर्भ सहित व्याख्या
13.5 सारांश
13.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

आप "निर्मला" उपन्यास का अध्ययन कर रहे हैं, अब तक आपने बारह परिच्छेद तक का अध्ययन कर लिया है। अब हम आपको बाकी बचे अंश का अध्ययन करायेंगे। इस इकाई में भी उपन्यास के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या दी जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उपन्यास का कथासार अपने शब्दों में लिख सकेंगे,
- उपन्यास में आए कठिन शब्दों के अर्थ बता सकेंगे,
- उपन्यास में आए मुहावरों का अर्थ बता सकेंगे,
- उपन्यास के महत्वपूर्ण अंशों एवं उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास "निर्मला" का आप अध्ययन कर रहे हैं। अब तक आपने बारह परिच्छेद का अध्ययन कर लिया है। आप जानते हैं कि उपन्यास का आकार बड़ी से बड़ी कहानी से भी काफी बड़ा होता है। हमने पठन की सुविधा के लिए "निर्मला" उपन्यास को दो भागों में बाँटा है। अब तक आपने देखा कि किन परिस्थितियों में निर्मला का विवाह एक अधेड़ व्यक्ति से हो गया। अनमेल विवाह का दुष्परिणाम यह हुआ कि पिता ने अपने पुत्र पर ही संदेह किया। पुत्र ने अपने को निष्कलंकित करने के लिए प्राण त्याग दिया। उपन्यास की कथा में इसके बाद एक नया मोड़ आता है। इस इकाई में हम आगे की कथा का अध्ययन करेंगे, साथ ही उपन्यास में आए कठिन शब्दों का अर्थ जानेंगे। जगह-जगह लेखक ने मुहावरों का प्रयोग किया है, उसका अर्थ भी जानेंगे। आप मुहावरों के अर्थ समझकर उन्हें वाक्यों में प्रयोग कर सकते हैं। कथा वस्तु का सार तथा महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या भी बताई जाएगी।

13.2 उपन्यास का वाचन

13

मंसाराम की मृत्यु

जो कुछ होना था हो गया, किसी की कुछ न चली। डॉक्टर साहब निर्मला की देह से रक्त निकालने की चेष्टा कर ही रहे थे कि मंसाराम अपने उज्ज्वल चरित्र की अन्तिम झलक दिखाकर इस भ्रम-लोक से विदा हो गया। कदाचित् इतनी देर तक उसके प्राण निर्मला ही की राह देख रहे थे। उसे निष्कलंक सिद्ध किये बिना वे देह को कैसे त्याग देते? अब उनका उद्देश्य पूरा हो गया। मुंशीजी को निर्मला के निर्दोष होने का विश्वास हो गया। पर कब? **जब हाथ से तीर निकल चुका था**[1]— जब मुसाफिर ने **रकाब में पाँव डाल लिया था**[2]।

पुत्र की मृत्यु के बाद तोताराम की शोकाकुल अवस्था

पुत्र-शोक में मुंशीजी का जीवन भार-स्वरूप हो गया। उस दिन से फिर उनके ओठों पर हँसी न आई। यह जीवन अब उन्हें व्यर्थ-सा जान पड़ता था। कचहरी जाते, मगर मुकदमों की पैरवी करने के लिए नहीं, केवल दिल बहलाने के लिए घंटे-दो-घंटे में वहाँ से उकताकर चले आते।

1 मु०— अवसर समाप्त हो गया था, 2 मु०— तैयार हो गया था

खाने बैठते तो कौर मुँह में न जाता। निर्मला अच्छी से अच्छी चीज पकाती पर मुंशीजी दो-चार कौर से अधिक न खा सकते। ऐसा जान पड़ता कि कौर मुँह से निकला आता है! मंसाराम के कमरे की ओर जाते ही **उनका हृदय टूक-टूक हो जाता था**[1]। जहाँ उनकी आशाओं का दीपक जलता रहता था, वहाँ अब अंधकार छाया हुआ था। उनके दो पुत्र अब भी थे, लेकिन जब दूध देती हुई गाय मर गयी तो बछिया का क्या भरोसा? जब फलने-फूलने वाला वृक्ष गिर पड़ा, तो नन्हें-नन्हें पौधों से क्या आशा? यों तो जवान-बूढ़े सभी मरते हैं, लेकिन दु:ख इस बात का था कि उन्होंने स्वयं लड़के की जान ली। जिस दम बात याद आ जाती, तो ऐसा मालूम होता था कि उनकी **छाती फट जायगी**[2]– मानो हृदय बाहर निकल पड़ेगा।

निर्मला का पति के शोक को कम करने का प्रयत्न

निर्मला को पति से सच्ची सहानुभूति थी। जहाँ तक हो सकता था, वह उनको प्रसन्न रखने की फिक्र रखती थी और भूलकर भी पिछली बातें जबान पर न लाती थी। मुंशीजी उससे मंसाराम की कोई चर्चा करते शरमाते थे। उनकी कभी-कभी ऐसी इच्छा होती कि एक बार निर्मला से अपने मन के सारे भाव खोलकर कह दूँ, लेकिन लज्जा जबान रोक लेती थी। इस भाँति उन्हें वह सांत्वना भी न मिलती थी, जो अपनी व्यथा कह डालने से—दूसरों को अपने **गम में शरीक कर लेने से**[3]—प्राप्त होती है। मवाद बाहर न निकलकर अन्दर-ही-अन्दर अपना विष फैलाता जाता था– दिन-दिन देह घुलती जाती थी।

इधर कुछ दिनों से मुंशीजी और उन डॉक्टर साहब में जिन्होंने मंसाराम की दवा की थी, **याराना**[4] हो गया था। बेचारे कभी-कभी आकर मुंशीजी को समझाया करते, कभी-कभी अपने साथ हवा खिलाने के लिए खींच ले जाते। उनकी स्त्री भी दो-चार बार निर्मला से मिलने आई थीं। निर्मला भी कई बार उनके घर गई थी, मगर वहाँ से जब लौटती तो कई दिन तक उदास रहती। उस दम्पत्ति का सुखमय जीवन देखकर उसे अपनी दशा पर दु:ख हुए बिना न रहता था। डॉक्टर साहब को कुल 200 रु. मिलते थे, पर इतने में ही दोनों आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे। घर में केवल एक महरी थी, गृहस्थी का बहुत-सा काम स्त्री को अपने ही हाथों करना पड़ता था। गहने भी उसकी देह पर बहुत कम थे पर उन दोनों में वह प्रेम था, जो धन को तृण के बराबर परवाह नहीं करता। पुरुष को देखकर स्त्री का चेहरा खिल उठता था। स्त्री को देखकर पुरुष **निहाल हो जाता था**[5]। निर्मला के घर में धन इससे कहीं अधिक था– आभूषणों से उसकी देह फटी पड़ती थी– घर का कोई काम उसे अपने हाथ से न करना पड़ता था, पर निर्मला सम्पन्न होने पर भी अधिक दु:खी थी, और सुधा विपन्न होने पर भी सुखी। सुधा के पास कोई ऐसी वस्तु थी, जो निर्मला के पास न थी, जिसके सामने उसे अपना वैभव तुच्छ जान पड़ता था। यहाँ तक कि वह सुधा के घर गहने पहनकर जाते शरमाती थी।

एक दिन निर्मला डॉक्टर साहब के घर आई, तो उसे बहुत उदास देखकर सुधा ने पूछा—बहिन! आज बहुत उदास हो; वकील साहब की तबीयत तो अच्छी है, न?

निर्मला—क्या कहूँ, सुधा? उनकी दशा दिन-दिन खराब हो जाती है– कुछ कहते नहीं बनता। न जाने ईश्वर को क्या मंजूर है?

सुधा—हमारे बाबूजी तो कहते हैं कि उन्हें कहीं जल-वायु बदलने के लिए जाना जरूरी है, नहीं तो कोई भयंकर रोग खड़ा हो जायेगा। कई बार वकील साहब से कह भी चुके हैं; पर वह यही कह दिया करते हैं कि मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ—मुझे कोई शिकायत नहीं। आज तुम कहना।

निर्मला—जब डॉक्टर साहब की नहीं सुनते तो मेरी क्या सुनेंगे?

यह कहते-कहते निर्मला की आँखें डबडबा गईं; और जो शंका, इधर महीनों से उसके हृदय को विकल करती रहती थी; मुँह से निकल पड़ी। अब तक उसने उस शंका को छिपाया था; पर अब न छिपा सकी। बोली—बहिन; मुझे तो लक्षण कुछ अच्छे नहीं मालूम होते। देखें, भगवान् क्या करते हैं।

सुधा—तुम आज उनसे खूब जोर देकर कहना कि कहीं जल-वायु बदलने चलिए। दो-चार महीने बाहर रहने से बहुत-सी बातें भूल जायेंगी। मैं तो समझती हूँ, शायद मकान बदलने से भी उनका शोक कुछ कम हो जायेगा। तुम कहीं बाहर जा भी तो न सकोगी। यह कौन-सा महीना है?

निर्मला—आठवाँ महीना बीत रहा है। यह चिन्ता तो मुझे और भी मारे डालती है। मैंने तो इसके लिए ईश्वर से कभी प्रार्थना न की थी। यह बला मेरे सिर न जाने क्यों मढ़ दी? मैं बड़ी अभागिनी

1 अत्याधिक द[illegible] न था, 2 मु०—अत्याधिक दु:ख, 3 दु:ख में शामिल कर लेने, 4 मित्रता, 5 मु०—प्रसन्न हो जाता था

हूँ बहिन! विवाह के एक महीने पहले पिताजी का देहांत हो गया। उनके मरते ही मेरे सिर शनीचर सवार हुए। जहाँ पहले विवाह की बातचीत पक्की हुई थी, उन लोगों ने आँखें फेर लीं। बेचारी अम्माँ को हारकर मेरा विवाह यहाँ करना पड़ा। अब छोटी बहिन का विवाह होने वाला है। देखें, उसकी नाव किस घाट जाती है!

सुधा—जहाँ पहले विवाह की बातचीत हुई थी, उन लोगों ने इन्कार क्यों कर दिया।

निर्मला—यह तो वे ही जानें। पिताजी न रहे, तो सोने की गठरी कौन देता?

सुधा—यह तो नीचता है! कहाँ के रहने वाले थे?

निर्मला—लखनऊ के। नाम तो याद नहीं, आबकारी के कोई बड़े अफसर थे।

सुधा ने गंभीर भाव से पूछा—और उनका लड़का क्या करता था।

निर्मला—कुछ नहीं, कहीं पढ़ता था, पर बड़ा होनहार था।

सुधा द्वारा यह समझ जाना कि उसके पति के साथ ही पहले निर्मला की सगाई हुई थी।

सुधा ने सिर नीचा करके कहा—उसने अपने पिता से कुछ न कहा था? वह तो जवान था, अपने बाप को दबा न सकता था?

निर्मला—अब यह मैं क्या जानूँ बहिन! सोने की गठरी किसे प्यारी नहीं होती। जो पण्डित मेरे यहाँ से सन्देश लेकर गया था, उसने तो कहा था कि लड़का ही इन्कार कर रहा है। लड़के की माँ अलबत्ता देवी थी। उसने पुत्र और पति दोनों ही को समझाया; पर उसकी कुछ न चली।

सुधा—मैं तो उस लड़के को पाती, तो खूब आड़े हाथों लेती।

निर्मला—मेरे भाग्य में जो लिखा था, वह हो चुका। बेचारी कृष्णा पर न जाने क्या बीतेगी।

सन्ध्या समय निर्मला के जाने के बाद जब डॉक्टर साहब बाहर से आये तो सुधा ने कहा—क्यों जी; तुम उस आदमी को क्या कहोगे, जो एक जगह विवाह ठीक कर लेने के बाद फिर लोभवश किसी दूसरी जगह संबंध कर ले?

डॉक्टर सिन्हा ने स्त्री की ओर कुतूहल से देखकर कहा—ऐसा नहीं करना चाहिए, और क्या!

सुधा—यह क्यों नहीं कहते कि यह घोर नीचता है—पहले सिरे का कमीनापन है!

सिन्हा—हाँ, यह कहने में भी मुझे इन्कार नहीं!

सुधा—किसका अपराध बड़ा है? वर का या वर के पिता का?

सिन्हा की समझ में अभी तक नहीं आया कि सुधा के इन प्रश्नों का आशय क्या है? विस्मय से बोले— जैसी स्थिति हो अगर वह पिता के अधीन हो; तो पिता का ही अपराध समझो।

सुधा—अधीन होने पर भी क्या जवान आदमी का अपना कोई कर्त्तव्य नहीं है! अगर उसे अपने लिए नये कोट की जरूरत हो, तो वह पिता के विरोध करने पर भी उसे रो-धोकर बनवा लेता है। क्या ऐसे महत्व के विषय में वह अपनी आवाज पिता के कानों तक नहीं पहुँचा सकता? यह कहो कि वर और पिता दोनों अपराधी हैं, परन्तु वर अधिक! बूढ़ा आदमी सोचता है— मुझे तो सारा खर्च संभालना पड़ेगा, कन्या-पक्ष से जितना ऐंठ सकूं, उतना ही अच्छा मगर वर का धर्म है कि यदि वह स्वार्थ के हाथों बिल्कुल बिक नहीं गया है, तो अपने आत्मबल का परिचय दे। अगर वह ऐसा नहीं करता, तो मैं कहूँगी कि वह लोभी है और कायर भी। दुर्भाग्यवश ऐसा ही एक प्राणी मेरा पति है, और मेरी समझ में नहीं आता कि किन शब्दों में उसका तिरस्कार करूँ।

सिन्हा ने हिचकिचाते हुए कहा— वह ... वह ... वह ... दूसरी बात थी। लेन-देन का कारण नहीं था; बिल्कुल दूसरी बात थी। कन्या के पिता का देहान्त हो गया था। ऐसी दशा में हम लोग क्या करते? यह भी सुनने में आया था कि कन्या में कोई ऐब है। वह बिल्कुल दूसरी बात थी। मगर तुमसे यह कथा किसने कही।

सुधा—कह दो कि वह कन्या कानी थी, या कुबड़ी थी, या नाइन के पेट की थी, या भ्रष्टा थी। इतनी कसर क्यों छोड़ दी? भला सुनूं तो, उस कन्या में क्या ऐब था?

सिन्हा—मैंने देखा तो था नहीं, सुनने में आया था कि इसमें कोई ऐब है।

सुधा—सबसे बड़ा ऐब यही था कि उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था, और वह कोई लंबी-चौड़ी रकम न दे सकती थी। इतना स्वीकार करते क्यों झेंपते हो? मैं कुछ तुम्हारे कान तो काट न लूंगी! अगर दो-चार फिकरे कहूँ, तो इस कान से सुनकर उस कान से उड़ा देना। ज्यादा-चीं-चपड़ करूँ तो छड़ी से काम ले सकते हो। औरत जात डण्डे ही से ठीक रहती है। अगर उस कन्या में कोई ऐब था, तो मैं कहूँगी, लक्ष्मी भी बे-ऐब नहीं है। तुम्हारी तकदीर खोटी थी, बस! और क्या? तुम्हें तो मेरे पाले पड़ना था।

सिन्हा—तुमसे किसने कहा कि वह ऐसी थी और वैसी थी? जैसे तुमने किसी से सुनकर मान लिया, वैसे ही हम लोगों ने भी सुनकर मान लिया।

सुधा—मैंने सुनकर नहीं मान लिया। अपनी आँखों देखा। ज्यादा बखान क्या करूँ, मैंने ऐसी सुन्दर स्त्री कभी नहीं देखी थी।

सिन्हा ने व्यग्र होकर पूछा—क्या वह यहीं कहीं है? सच बताओ, उसे कहाँ देखा? क्या तुम्हारे घर आई थी?

डॉक्टर सिन्हा को निर्मला के बारे में पता चलना

सुधा–हाँ, मेरे घर में आई थी, और एक बार नहीं, कई बार आ चुकी है। मैं भी उसके यहाँ कई बार जा चुकी हूँ, वकील साहब की बीवी वही कन्या है, जिसे आपने ऐबों के कारण त्याग दिया!
सिन्हा–सच!
सुधा–बिलकुल सच! आज अगर उसे मालूम हो जाय कि आप वही महापुरुष हैं; तो शायद फिर इस घर में कदम न रखे। ऐसी सुशीला, घर के कामों में ऐसी निपुण और ऐसी परम सुन्दर स्त्री इस शहर में दो ही चार होंगी। तुम मेरा बखान करते हो[1]। मैं उसकी लौंडीं बनने के योग्य भी नहीं हूँ। घर में ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ है, मगर जब प्राणी ही मेल का नहीं, तो और सब रहकर क्या करेगा? धन्य है उसके धैर्य को कि उस बुड्ढे खूसट वकील के साथ जीवन के दिन काट रही है। मैंने तो कब का जहर खा लिया होता। मगर मन की व्यथा कहने से ही थोड़े प्रकट होती है। हँसती है, बोलती है, गहने-कपड़े पहनती है, पर रोयाँ-रोयाँ रोया करता है[2]।
सिन्हा–वकील साहब की खूब शिकायत करती होगी?
सुधा–शिकायत क्यों करेगी? क्या वह उसके पति नहीं है। संसार में अब उसके लिए जो कुछ है, वकील साहब हैं! वह बुड्ढे हों या रोगी, पर हैं तो उसके स्वामी ही। कुलवंती स्त्रियाँ पति की निन्दा नहीं करतीं– यह कुलटाओं का काम है। वह उनकी दशा देखकर कुढ़ती हैं, पर मुँह से कुछ नहीं कहतीं।
सिन्हा–इन वकील साहब को क्या सूझी थी, जो इस उम्र में ब्याह करने चले?
सुधा–ऐसे आदमी न हों, तो गरीब क्वारियों की नाव कौन पार लगाये? तुम और तुम्हारे साथी बिना भारी गठरी लिए बात नहीं करते, तो फिर ये बेचारी किसके घर जाएँ? तुमने यह बड़ा भारी अन्याय किया है, और तुम्हें, इसका प्रायश्चित करना पड़ेगा। ईश्वर उसका सुहाग अमर करे। लेकिन वकील साहब को कहीं कुछ हो गया, तो बेचारी का जीवन ही नष्ट हो जायेगा। आज तो वह बहुत रोती थी। तुम लोग सचमुच बड़े निर्दयी हो। मैं तो अपने सोहन का विवाह किसी गरीब लड़की से करूँगी।

डॉक्टर साहब ने यह पिछला वाक्य नहीं सुना। वह घोर चिन्ता में पड़ गये। उनके मन में यह प्रश्न उठ-उठकर उन्हें विकल करने लगा–कहीं वकील साहब को कुछ हो गया तो? आज उन्हें अपने स्वार्थ का भयंकर स्वरूप दिखायी दिया। वास्तव में यह उन्हीं का अपराध था। अगर उन्होंने पिता से जोर देकर कहा होता कि मैं और कहीं विवाह न करूँगा, तो क्या वह उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका विवाह कर देते?
सहसा सुधा ने कहा–कहो तो कल निर्मला से तुम्हारी मुलाकात करा दूं? वह भी जरा तुम्हारी सूरत देख ले। वह कुछ बोलेगी तो नहीं, पर कदाचित् एक दृष्टि से यह तुम्हारा इतना तिरस्कार कर देगी, जिसे तुम कभी न भूल सकोगे। बोलो; कल मिला दूं? तुम्हारा बहुत संक्षिप्त परिचय भी करा दूँगी।
सिन्हा ने कहा–नहीं सुधा, तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, कहीं ऐसा गजब न करना! नहीं तो सच कहता हूँ, घर छोड़कर भाग जाऊँगा।
सुधा–जो काँटा बोया है; उसका फल खाते क्यों इतना डरते हो? जिसकी गर्दन पर कटार चलाई है, जरा उसे तड़पते भी तो देखो। मेरे दादा जी ने पाँच हजार दिये न! अभी छोटे भाई के विवाह में पाँच-छः हजार और मिल जायेंगे। फिर तो तुम्हारे बराबर धनी संसार में कोई दूसरा न होगा। ग्यारह हजार बहुत होते हैं। बाप-रे-बाप! ग्यारह हजार! उठा-उठाकर रखने लगें, तो महीनों लग जाएँ। अगर लड़के उड़ाने लगें, तो तीन पीढ़ियों तक चले। कहीं से बात हो रही है या नहीं?
इस परिहास से डॉक्टर साहब इतना झेंपे कि सिर तक न उठा सके। उनका सारा वाक्-चातुर्य गायब हो गया। नन्हा-सा मुँह निकल आया, मानो मार पड़ गई हो। इसी वक्त किसी ने डॉक्टर साहब को बाहर से पुकारा। बेचारे जान लेकर भागे। स्त्री कितनी परिहास कुशल होती है–इसका आज परिचय मिल गया।

सुधा द्वारा निर्मला के बहन की विवाह के बारे में चर्चा करना

रात को डॉक्टर साहब शयन करते हुए सुधा से बोले–निर्मला की तो कोई बहन है न?
सुधा–हाँ, आज उसकी चर्चा तो करती थी। इसको चिंता अभी से सवार हो रही है। अपने ऊपर तो जो कुछ बीतना था, बीत चुका, बहिन की फिक्र में पड़ी हुई थी। माँ के पास तो अब और भी कुछ नहीं रहा, मजबूरन किसी ऐसे ही बूढ़े बाबा के गले वह भी मढ़ दी जायेगी।
सिन्हा–निर्मला तो अपनी माँ की मदद कर सकती है।
सुधा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा–तुम भी कभी-कभी बिलकुल बेसिर-पैर की बातें करने लगते हो। निर्मला बहुत करेगी, तो दो-चार सौ रुपये दे देगी; और क्या कर सकती है। वकील साहब का यह हाल हो रहा है; उसे अभी पहाड़-सी उम्र काटनी है। फिर कौन जाने उनके घर का क्या हाल है। इधर छः महीने से बेचारे घर बैठे हैं। रुपये आकाश से थोड़े ही बरसते हैं। दस-बीस हजार होंगे भी तो बैंक में होंगे, कुछ निर्मला के पास तो रखे न होंगे। हमारा 200/- महीने का खर्च है, तो क्या

1 बखान करना– प्रशंसा करते हो; 2 मु.–अत्यधिक दुःख होना है

डॉक्टर द्वारा अपने भाई के साथ निर्मला के विवाह के लिए पत्र लिखना

इनका 400) महीने का भी न होगा?
सुधा को तो नींद आ गई, पर डॉक्टर साहब बहुत देर तक करवट बदलते रहे। फिर कुछ सोचकर उठे और मेज पर बैठकर एक पत्र लिखने लगे।

14

कृष्णा का विवाह तय होना

तीनों बातें एक ही साथ हुई—निर्मला की कन्या ने जन्म लिया, कृष्णा का विवाह निश्चित हुआ और मुंशी तोताराम का मकान नीलाम हो गया। कन्या का जन्म तो साधारण बात थी, यद्यपि निर्मला की दृष्टि में यह उसके जीवन की सबसे महान् घटना थी, लेकिन शेष दोनों घटनाएँ असाधारण थीं। कृष्णा का विवाह ऐसे सम्पन्न घराने में क्योंकर ठीक हुआ? उसकी माता के पास तो दहेज के नाम को कौड़ी भी न थी; और इधर बूढ़े सिन्हा साहब जो अब पेंशन लेकर घर आ गये थे, बिरादरी में महालोभी मशहूर थे। वह अपने पुत्र का विवाह ऐसे दरिद्र घराने में करने पर कैसे राजी हुए। किसी को सहसा विश्वास न आता था। इससे भी बड़े आश्चर्य की बात मुंशीजी के मकान का नीलाम होना था। लोग मुंशीजी को अगर लखपती नहीं तो बड़ा आदमी अवश्य समझते थे। उनका मकान कैसे नीलाम हुआ? बात यह थी कि मुंशीजी ने एक महाजन से कुछ रुपये कर्ज लेकर एक गाँव रेहन रखा था। उन्हें आशा थी कि साल-आध-साल में यह रुपये पाट देंगे। फिर दस-पाँच साल में उस गाँव पर कब्जा कर लेंगे। वह जमींदार असल और सूद के कुल रुपये अदा करने में असमर्थ हो जायेगा। इसी भरोसे पर मुंशीजी ने यह मामला किया था। गाँव बहुत बड़ा था—चार-पाँच सौ रुपये नफा होता था। लेकिन मन की सोची मन ही में रह गई। मुंशीजी दिल को बहुत समझाने पर भी कचहरी न जा सके। पुत्रशोक ही नहीं छोड़ा! कौन ऐसा हृदय-शून्य पिता है, जो पुत्र की गर्दन पर तलवार चलाकर चित्त को शान्त कर ले?

मुंशीजी का घर नीलाम हो जाना

महाजन के पास जब साल भर तक सूद न पहुँचा, और न उसके बार-बार बुलाने पर मुंशीजी उसके पास गये—यहाँ तक कि पिछली बार उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि हम किसी के गुलाम नहीं है, साहुजी जो चाहें करें—तब साहुजी को गुस्सा आ गया। उसने नालिश कर दी। मुंशीजी पैरवी करने भी न गये। एकाएक डिग्री हो गयी। यहाँ घर में रुपये कहाँ रखे थे? इतने ही दिनों में मुंशीजी की साख भी उठ गयी थी। वह रुपये का कोई प्रबन्ध न कर सके। आखिर मकान नीलाम पर चढ़ गया। निर्मला सौर[1] में थी। यह खबर सुनी तो कलेजा सन्न-सा हो गया। जीवन में कोई और सुख न होने पर भी धनाभाव की चिन्ताओं से मुक्त थी। धन मानव जीवन में अगर सर्वप्रधान वस्तु नहीं तो वह उसके बहुत निकट की वस्तु अवश्य है। अब और अभावों के साथ यह चिन्ता भी उसके सिर सवार हुई। उसने दाई द्वारा कहला भेजा, मेरे सब गहने बेचकर घर को बचा लीजिए, लेकिन मुंशीजी ने यह प्रस्ताव किसी तरह स्वीकार न किया।

निर्मला की पुत्री का जन्म होना

उस दिन से मुंशीजी और भी चिन्ताग्रस्त रहने लगे। जिस धन का सुख भोगने के लिए उन्होंने विवाह किया था, वह अब अतीत की स्मृतिमात्र था। वह मारे ग्लानि के अब निर्मला को अपना मुँह तक न दिखा सकते। उन्हें अब उस अन्याय का अनुमान हो रहा था जो उन्होंने निर्मला के साथ किया था और कन्या के जन्म ने तो रही-सही कसर भी पूरी कर दी—सर्वनाश ही कर डाला!

बारहवें दिन सौर से निकलकर निर्मला नवजात शिशु को गोद में लिये पति के पास गई। वह इस अभाव में भी इतनी प्रसन्न थी; मानो उसे कोई चिन्ता नहीं है। बालिका को हृदय से लगाकर वह अपनी सारी चिन्ताएँ भूल गई थी। शिशु के विकसित और हर्ष प्रदीप्त नेत्रों को देखकर उसका हृदय प्रफुल्लित हो रहा था। मातृत्व के इस उद्गार में उसके सारे क्लेश विलीन हो गये थे। वह शिशु को पति की गोद में देकर निहाल हो जाना चाहती थी, लेकिन मुंशीजी कन्या को देखकर सहम उठे। गोद लेने के लिए उनका हृदय हुलसा[2] नहीं, पर उन्होंने एक बार उसे करुण नेत्रों से देखा और फिर सिर झुका लिया, शिशु की सूरत मंसाराम से बिलकुल मिलती थी।

निर्मला ने उनके मन का भाव कुछ और ही समझा। उसने शतगुण स्नेह[3] से लड़की को हृदय से लगा लिया मानो उनसे कह रही है—अगर तुम इसके बोझ से दबे जाते हो, तो आज से मैं इस पर तुम्हारा साया भी नहीं पड़ने दूँगी। जिस रतन को मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, उसका निरादर करते हुए तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता? वह उसी क्षण शिशु को गोद से चिपकाते हुए अपने कमरे में चली आई, और देर तक रोती रही। उसने पति की इस उदासीनता को समझने की जरा भी चेष्टा न की, नहीं तो शायद वह उन्हें इतना कठोर न समझती। उसके सिर पर उत्तरदायित्व का इतना बड़ा भार कहाँ था, जो उसके पति पर आ पड़ा था? वह सोचने की चेष्टा करती, तो क्या इतना भी उसकी समझ में न आता?

मुंशीजी को एक ही क्षण में अपनी भूल मालूम हो गई। माता का हृदय प्रेम में इतना अनुरक्त

1 वह कमरा जिसमें बच्चे का जन्म हो, 2 उमंग, 3 अत्यधिक स्नेह

ता है, कि भविष्य की चिन्ता और बाधाएं उसे ज़रा भी भयभीत नहीं करतीं। उसे अपने त:करण में एक अलौकिक शक्ति का अनुभव होता है, जो बाधाओं को उसके सामने परास्त कर ी। मुंशीजी दौड़े हुए घर में आये और शिशु को गोद में लेकर बोले मुझे याद आती है, मंसा भी ा ही था—बिलकुल ऐसा ही!

र्मला—दीदीजी भी तो यही कहती हैं।

शीजी—बिलकुल वही बड़ी-बड़ी आँखें और लाल-लाल ओंठ हैं। ईश्वर ने मुझे मेरा मंसाराम त रूप में दे दिया। वही माथा है, वही मुँह, वही हाथ-पाँव! ईश्वर, तुम्हारी लीला अपार है।

हसा रुक्मिणी भी आ गई! मुंशीजी को देखते ही बोली—देखो बाबू मंसाराम है कि नहीं? वही ाया है। कोई लाख कहे, मैं न मानूँगी। साफ मंसाराम है। साल भर के लगभग हो भी तो गया।

शीजी—बहिन, एक-एक अंग तो मिलता है। बस, भगवान् ने मुझे मेरा मंसाराम दे दिया। शशु से) क्यों री, तू मंसाराम ही है? छोड़कर जाने का नाम न लेना; नहीं फिर खींच लाऊँगा। से निष्ठुर होकर भागे थे। आखिर पकड़ लाया कि नहीं? बस कह दिया, अब मुझे छोड़कर जाने ा नाम न लेना। देखो बहिन, कैसी टुकुर-टुकुर ताक रही है?

सी क्षण मुंशीजी ने फिर से अभिलाषाओं का भवन बनाना शुरू कर दिया। मोह ने उन्हें फिर सार की ओर खींचा। मानव जीवन! तू इतना क्षणभंगुर है, पर तेरी कल्पनाएँ कितनी दीर्घायु! ही तोताराम जो संसार से विरक्त हो रहे थे, जो रात दिन मृत्यु का आवाहन किया करते थे, नके का सहारा पाकर तट पर पहुँचने के लिए पूरी शक्ति से हाथ-पाँव मार रहे हैं।

गर तिनके का सहारा पाकर कोई तट पर पहुँचा है?

15

बहन के विवाह में निर्मला का मायके जाना

र्मला को यद्यपि अपने घर के झंझटों से अवकाश न था, पर कृष्णा के विवाह का संदेशा पाकर ह किसी तरह न रुक सकी। उसकी माता ने बहुत आग्रह करके बुलाया था। सबसे बड़ा ाकर्षण यह था कि कृष्णा का विवाह उसी घर में हो रहा था, जहाँ निर्मला का विवाह पहले तय आ था। आश्चर्य यही था कि इस बार ये लोग बिना कुछ दहेज लिए कैसे विवाह करने पर तैयार ा गए। निर्मला को कृष्णा के विषय में बड़ी चिन्ता हो रही थी। समझती थी—मेरी ही तरह वह ो किसी के गले मढ़ दी जायगी। बहुत चाहती थी कि माता की कुछ सहायता करूँ, जिससे कृष्णा ो लिए कोई योग्य वर मिले, लेकिन इधर वकील साहब के घर बैठ जाने और महाजन के नालिश र देने से उसका हाथ भी तंग था[1]। ऐसी दशा में यह खबर पाकर उसे बड़ी शान्ति मिली। लने की तैयारी कर दी। वकील साहब स्टेशन तक पहुँचाने आये। नन्हीं बच्ची से उन्हें बहुत म था। छोड़ते ही न थे, यहाँ तक कि निर्मला के साथ चलने को तैयार हो गये, लेकिन विवाह से क महीने पहले उनका ससुराल जा बैठना निर्मला को उचित न मालूम हुआ। निर्मला ने अपनी ाता से अब तक अपनी विपत्ति कथा न कही थी। जो बात हो गई, उसका रोना रोकर माता को ष्ट देने और रुलाने में क्या फायदा? इसलिए उसकी माता समझती थी, निर्मला बड़े आनन्द से । अब जो निर्मला की सूरत देखी, तो मानो उसके हृदय पर धक्का-सा लग गया[2]। लड़कियाँ सुराल से घुलकर नहीं आतीं, फिर निर्मला जैसी लड़की, जिसको सुख की सभी सामग्रियाँ प्राप्त ीं। उसने कितनी लड़कियों को दूज की चन्द्रमा की भाँति ससुराल जाते और पूर्ण चन्द्र बनकर ाते देखा था। मन में कल्पना कर रही थी, निर्मला का रंग निखर गया होगा, देह भरकर सुडौल ो गई होगी, अंग-प्रत्यंग की शोभा कुछ और ही हो गई होगी। अब जो देखा, तो वह आधी भी न ही थी। न यौवन की चंचलता थी, न वह विहसित[3] छवि जो हृदय को मोह लेती है। वह मनीयता, सुकुमारता, जो विलासमय जीवन से आ जाती है, यहाँ नाम को न थी। मुख पीला; ष्टा गिरी हुई, अंग शिथिल, उन्नीसवें ही वर्ष में बुड्ढी हो गई थी। जब माँ-बेटियाँ रो-धोकर ान्त हुई, तो माँ ने पूछा—क्यों री; तुझे वहाँ खाने को न मिलता था? इससे कहीं अच्छी तो तू हीं थी। हाँ तुझे क्या तकलीफ थी?

निर्मला की दशा देखकर माँ को कष्ट होना

ष्णा ने हँसकर कहा—वहाँ मालकिन थीं कि नहीं। मालकिन को दुनिया भर की चिन्ताएँ रहती , भोजन कब करे।

र्मला—नहीं अम्माँ, वहाँ का पानी मुझे रास नहीं आया! तबीयत भारी रहती है।

ाता—वकील साहब न्योते में आयेंगे न? तब पूछूँगी कि आपने फूल-सी लड़की ले जाकर उसकी ह गत बना डाली। अच्छा, अब यह बता कि तूने यहाँ रुपये क्यों भेजे थे? मैंने तो तुमसे कभी न

मु०—पैसे की कमी थी, 2 मु०—अत्याधिक कष्ट हुआ, 3 हँसता हुआ, प्रसन्न

माँगे थे। लाख गई-गुजरी हूँ, लेकिन बेटी का धन खाने की नीयत नहीं।

निर्मला ने चकित होकर पूछा—किसने रुपये भेजे थे। अम्माँ, मैंने तो नहीं भेजे।

माता—झूठ न बोल! तूने 500/-के नोट नहीं भेजे थे?

कृष्णा—भेजे नहीं थे, तो क्या आसमान से आ गये? तुम्हारा नाम साफ लिखा था। मोहर भी वहीं की थी।

निर्मला—तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ, मैंने रुपये नही भेजे! यह कब की बात है?

माता—अरे; दो-ढाई महीने हुए होंगे। अगर तूने नहीं भेजे, तो आये कहाँ से?

निर्मला—यह मैं क्या जानूँ! मगर मैंने रुपये नहीं भेजे। हमारे यहाँ तो जब से जवान बेटा मरा है, कचहरी ही नहीं जाते। मेरा हाथ तो आप ही तंग था, रुपये कहाँ से आते?

माता—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। वहाँ और कोई तेरा सगा-सम्बन्धी तो नहीं है? वकील साहब ने तुमसे छिपाकर तो नहीं भेजे?

निर्मला—नहीं अम्माँ, मुझे तो विश्वास नहीं।

माता—इसका पता लगाना चाहिए। मैंने सारे रुपये कृष्णा के गहने-कपड़े में खर्च कर डाले। यही बड़ी मुश्किल हुई।

दोनों लड़कों में किसी विषय पर विवाद उठ खड़ा हुआ, और कृष्णा उधर फैसला करने चली गई तो निर्मला ने माता से कहा—इस विवाह की बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह कैसे हुआ, अम्माँ?

माता—यहाँ जो सुनता है, दाँतों उँगली दबाता है[1]। जिन लोगों ने पक्की कराई बात फेर दी. और केवल थोड़े से रुपये के लोभ से, वे अब बिना कुछ लिए कैसे विवाह करने पर तैयार हो गये, समझ में नहीं आता। उन्होंने खुद ही पत्र भेजा। मैंने साफ लिख दिया कि मेरे पास देने-लेने को कुछ नहीं है, कुश-कन्या ही से आपकी सेवा कर सकती हूँ।

निर्मला—इसका कुछ जवाब नहीं दिया?

माता—शास्त्रीजी पत्र लेकर गये थे। वह तो यही कहते थे कि अब मुंशीजी कुछ लेने के इच्छुक नहीं हैं। अपनी पहली वादा-खिलाफी पर[2] कुछ लज्जित भी हैं। मुंशीजी से तो इतनी उदारता की आशा न थी, मगर सुनती हूँ, उनके बड़े पुत्र बहुत सज्जन आदमी हैं। उन्होंने कह सुनकर बाप को राजी किया है।

निर्मला—पहले तो वह महाशय भी थैली[3] चाहते थे न?

माता—हाँ, मगर अब तो शास्त्रीजी कहते थे कि दहेज के नाम से चिढ़ते हैं। सुना है, यहाँ विवाह न करने पर पछताते भी थे। रुपये के लिए बात छोड़ी थी, और रुपये खूब पाये स्त्री पसन्द नहीं।

निर्मला के मन में उस पुरुष को देखने की प्रबल उत्कंठा हुई, जो उसकी अवेहलना करके अब उसकी बहिन का उद्धार करना चाहता है। प्रायश्चित सही, लेकिन कितने ऐसे प्राणी हैं, जो इस तरह प्रायश्चित करने को तैयार हैं? उनसे बातें करने के लिए नम्र शब्दों से उनका तिरस्कार करने के लिए, अपनी अनुपम छवि दिखाकर उन्हें और भी जलाने के लिए निर्मला का हृदय अधीर हो उठा। रात को दोनों बहिनें एक ही कमरे में सोईं। मुहल्ले में किन-किन लड़कियों का विवाह हो गया, कौन-कौन लड़कोरी हुईं[4], किस-किस का विवाह धूम-धाम से हुआ, किस-किस के पति कन्या के इच्छानुकूल मिले, कौन कितने और कैसे गहने चढ़ावे में लाया—इन्हीं विषयों में दोनों में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। कृष्णा बार-बार चाहती थी कि बहिन के घर का कुछ हाल पूछूँ, मगर निर्मला उसे पूछने का अवसर न देती थी। जानती थी कि यह जो बातें पूछेगी उसके बताने में मुझे संकोच होगा। आखिर एक बार कृष्णा पूछ ही बैठी जीजाजी भी आयेंगे न?

निर्मला—आने को कहा तो है।

कृष्णा—अब तो तुमसे प्रसन्न रहते हैं न; या अब भी वही हाल है? मैं तो सुना करती थी दुहाजू पति, स्त्री को प्राणों से भी प्रिय समझते हैं; वहाँ बिलकुल उल्टी बात देखी। आखिर किस बात पर बिगड़ते रहते हैं?

निर्मला—अब मैं किसी के मन की बात क्या जानूँ।

कृष्णा—मैं तो समझती हूँ, तुम्हारी रुखाई से वह चिढ़ते होंगे। तुम तो यहीं से जली हुई गई थीं! वहाँ भी उन्हें कुछ कहा होगा।

निर्मला—यह बात नहीं है, कृष्णा; मैं सौगन्ध खाकर कहती हूँ, जो मेरे मन में उनकी ओर से जरा भी मैल हो। मुझसे जहाँ तक हो सकता है, उनकी सेवा करती हूँ; अगर उनकी जगह कोई देवता भी होता, तो भी मैं इससे ज्यादा और कुछ न कर सकती। उन्हें भी मुझसे प्रेम है। बराबर मेरा मुँह देखते रहते हैं; लेकिन जो बात उनके और मेरे काबू के बाहर है, उसके लिए वह क्या कर सकते हैं, और मैं क्या कर सकती हूँ। न वह जवान हो सकते हैं, न मैं बुढ़िया हो सकती हूँ। जवान बनने के लिए वह न जाने कितने रस और भस्म खाते रहते हैं, मैं बुढ़िया बनने के लिए दूध-घी

1 मु०—आश्चर्य व्यक्त करता है, 2 मु०—प्रतिज्ञा करके झुकर जाने पर, 3 रुपये, 4 माँ बनी

सब छोड़े बैठी हूँ। सोचती हूँ, मेरे दुबलेपन ही से अवस्था का भेद कुछ कम हो जाय; लेकिन न उन्हें पौष्टिक पदार्थों से कुछ लाभ होता हैं, न मुझे उपवासों से। जब से मंसाराम का देहान्त हो गया है, तब से उनकी दशा और खराब हो गयी है।

कृष्णा—मंसाराम को तुम भी बहुत प्यार करती थीं?

निर्मला के आंतरिक भाव का उद्घाटन

निर्मला—वह लड़का ही ऐसा था कि जो देखता था, प्यार करता था। ऐसी बड़ी-बड़ी डोरेदार आँखें मैंने किसी की नहीं देखीं। कमल की भाँति मुख हरदम खिला रहता था। ऐसा साहसी कि अगर अवसर आ पड़ता तो आग में भी फाँद जाता। कृष्णा, मैं तुमसे कहती हूँ, जब वह मेरे पास आकर बैठ जाता, तो मैं अपने को भूल जाती थी। जी चाहता था, वह हरदम सामने बैठा रहे और मैं देखा करूँ। मेरे मन में पाप का लेश भी न था। अगर एक क्षण के लिए भी मैंने उसकी ओर किसी और भाव से देखा हो, तो मेरी आँखें फूट जायँ पर न जाने क्यों उसे अपने पास देखकर मेरा हृदय फूला न समाता था। इसीलिए मैंने पढ़ने का स्वाँग रचा, नहीं तो वह घर में आता ही न था। यह मैं जानती हूँ कि अगर उसके मन में पाप होता तो मैं उसके लिए सब कुछ कर सकती थी।

कृष्णा—अरे बहिन, चुप रहो; कैसी बातें मुँह से निकालती हो।

निर्मला—हाँ; यह बात सुनने में बुरी मालूम होती है, और है भी बुरी; लेकिन मनुष्य की प्रकृति को तो कोई बदल नहीं सकता। तू ही बता—एक पचास वर्ष के मर्द से तेरा विवाह हो जाए तो तू क्या करेगी?

कृष्णा—बहिन, मैं तो जहर खाकर सो रहूँ। मुझसे तो उसका मुँह भी न देखते बने।

निर्मला—तो बस यही समझ ले। उस लड़के ने कभी भी मेरी ओर आँख उठाकर नहीं देखा; लेकिन बुड्ढे तो शक्की होते ही हैं—तुम्हारे जीजा उस लड़के के दुश्मन हो गए और आखिर उसकी जान लेकर ही छोड़ी। जिस दिन उसे मालूम हो गया कि पिताजी के मन में मेरी ओर से सन्देह है, उसी दिन से उसे ज्वर चढ़ा, जो जान लेकर ही उतरा। हाय! उस अन्तिम समय का दृश्य आँखों से नहीं उतरता। मैं अस्पताल गई थी, वह ज्वर में बेहोश पड़ा था—उठने की शक्ति न थी; लेकिन ज्योंही मेरी आवाज सुनी, चौंककर उठ बैठा, और 'माता-माता' कह कर मेरे पैरों पर गिर पड़ा। (रोकर) कृष्णा, उस समय ऐसा जी चाहता था अपने प्राण निकाल कर उसे दे दूँ। मेरे पैरों पर ही वह मूर्छित हो गया और फिर आँखें न खोलीं। डॉक्टर ने उसकी देह में ताजा खून डालने का प्रस्ताव किया था, यही सुनकर मैं दौड़ी गई थी, लेकिन जब तक डॉक्टर लोग वह क्रिया आरम्भ करें, उसके प्राण निकल गए।

कृष्णा—ताजा रक्त पड़ जाने से उसकी जान बच जाती?

निर्मला—कौन जानता है? लेकिन मैं तो अपने रुधिर की अन्तिम बूँद तक देने को तैयार थी! उस दशा में भी उसका मुखमण्डल दीपक की भाँति चमकता था। अगर वह मुझे देखते ही दौड़कर मेरे पैरों पर न गिर पड़ता, पहले कुछ रक्त देह में पहुँच जाता, तो शायद बच जाता।

निर्मला—अरे पगली, तू भी अभी तक बात न समझी। वह मेरे पैरों पर गिर कर और माता-पुत्र का सम्बन्ध दिखाकर अपने बाप के दिल से वह सन्देह निकाल देना चाहता था। केवल इसीलिए वह उठा था। मेरा क्लेश मिटाने के लिए उसने प्राण दिए और उसकी वह इच्छा पूरी हो गई। तुम्हारे जीजाजी उसी दिन से सीधे हो गये। अब तो उनकी दशा पर मुझे दया आती है। पुत्र-शोक उनके प्राण लेकर छोड़ेगा। मुझ पर सन्देह करके मेरे साथ जो अन्याय किया है, अब उसका प्रतिशोध कर रहे हैं। अबकी उनकी सूरत देखकर तू डर जायगी। बूढ़े बाबा हो गये हैं। कमर भी कुछ झुक चली है।

कृष्णा—बुड्ढे लोग इतने शक्की क्यों होते हैं, बहिन?

निर्मला—यह जाकर बुड्ढों से पूछ।

कृष्णा—मैं समझती हूँ, उनके दिल में हरदम एक चोर-सा बैठा रहता होगा कि इस युवती को प्रसन्न नहीं रख सकता। इसलिए जरा-जरा-सी बात पर उन्हें शक होने लगता है।

निर्मला—जानती तो है, फिर मुझसे क्यों पूछती है।

कृष्णा—इसीलिए बेचारा स्त्री से दबता भी होगा। देखने वाले समझते होंगे कि यह बहुत प्रेम करता है।

निर्मला—तूने इतने ही दिनों में इतनी बातें कहाँ से सीख लीं। इन बातों को जाने दे, बता, तुझे अपना वर पसन्द है? उसकी तस्वीर तो देखी होगी?

कृष्णा—हाँ, आई तो थी। लाऊँ, देखोगी?

एक क्षण में कृष्णा ने तस्वीर लाकर निर्मला के हाथ में रख दी।

निर्मला ने मुस्कराकर कहा—तू बड़ी भाग्यवान् है।

कृष्णा—अम्माँजी ने भी बहुत पसन्द किया।

निर्मला—तुझे पसन्द है कि नहीं, सो कह; दूसरों की बात न चला।

कृष्णा—(लजाती हुई) शक्ल-सूरत तो बुरी नहीं है, स्वभाव का हाल ईश्वर जाने। शास्त्रीजी तो कहते थे, ऐसे सुशील और चरित्रवान् युवक कम होंगे।

निर्मला—यहाँ से तेरी तस्वीर भी गई थी?

कृष्णा—गई तो थी, शास्त्रीजी ही तो ले गए थे।
निर्मला—उन्हें पसन्द आई?
कृष्णा—अब किसी के मन की बात मैं क्या जानूँ? शास्त्रीजी तो कहते थे, बहुत खुश हुए थे।
निर्मला—अच्छा, बता, तुझे क्या उपहार दूँ? अभी से बता दे, जिससे बनवा रखूँ।
कृष्णा—जो तुम्हारा जी चाहे, देना। उन्हें पुस्तकों से बहुत प्रेम है। अच्छी-अच्छी पुस्तके मँगवा देना।
निर्मला—उनके लिए नहीं पूछती, तेरे लिए पूछती हूँ।
कृष्णा—अपने ही लिये तो मैं भी कह रही हूँ।
निर्मला—(तस्वीर की तरफ देखती हुई) कपड़े सब खद्दर के मालूम होते हैं।
कृष्णा—हाँ, खद्दर के बड़े प्रेमी हैं। सुनती हूँ कि पीठ पर खद्दर लाद कर देहातों में बेचने जाया करते हैं। व्याख्यान देने में भी चतुर हैं।
निर्मला—तब तो तुझे भी खद्दर पहनना पड़ेगा। तुझे तो मोटे कपड़ों से चिढ़ है।
कृष्णा—जब उन्हें मोटे कपड़े अच्छे लगते हैं तो मुझे क्यों चिढ़ होगी, मैंने तो चर्खा चलाना सीख लिया है।
निर्मला—सच! सूत निकाल लेती है?
कृष्णा—हाँ, बहिन, थोड़ा-थोड़ा निकाल लेती हूँ। जब वह खद्दर के इतने प्रेमी हैं तो चर्खा भी जरूर चलाते होंगे। मैं न चला सकूँगी तो मुझे कितना लज्जित होना पड़ेगा।

इस तरह बात करते-करते दोनों बहिनें सोईं। कोई दो बजे रात को बच्ची रोई तो निर्मला की नींद खुली। देखा तो कृष्णा की चारपाई खाली पड़ी थी। निर्मला को आश्चर्य हुआ कि इतनी रात गये कृष्णा कहाँ चली गई। शायद पानी-वानी पीने गई हो। मगर पानी तो सिरहाने रखा हुआ है, फिर कहाँ गई है? उसने दो-तीन बार उसका नाम लेकर आवाज दी, पर कृष्णा का पता न था। तब तो निर्मला घबरा उठी। उसके मन में भाँति-भाँति की शंकाएँ होने लगीं। सहसा उसे खयाल आया कि शायद अपने कमरे में न चली गई हो। बच्ची सो गई, तो वह उठकर कृष्णा के कमरे के द्वार पर आई। उसका अनुमान ठीक था, कृष्णा अपने कमरे में थी। सारा घर सो रहा था और वह बैठी चर्खा चला रही थी। इतनी तन्मयता से शायद उसने थियेटर भी न देखा होगा। निर्मला दंग रह गई। अन्दर जाकर बोली—यह क्या कर रही है रे, यह चर्खा चलाने का समय है?

कृष्णा चौंककर उठ बैठी, और संकोच से सिर झुकाकर बोली—तुम्हारी नींद कैसे खुल गई! पानी-वानी तो मैंने रख दिया था।
निर्मला—मैं कहती हूँ, दिन को तुझे समय नहीं मिलता, जो पिछली रात को चर्खा लेकर बैठी है?
कृष्णा—दिन को फुरसत ही नहीं मिलती?
निर्मला—(सूत देखकर) सूत तो बहुत महीन है।
कृष्णा—कहाँ बहिन, यह सूत तो मोटा है। मैं बारीक सूत कात कर उनके लिए साफा बनाना चाहती हूँ। यही मेरा उपहार होगा।
निर्मला—बात तो तूने खूब सोची है। इससे अधिक मूल्यवान वस्तु उनकी दृष्टि में और क्या होगी? अच्छा, उठ इस वक्त, कल कातना! कहीं बीमार पड़ जायगी, तो यह सब धरा रह जायगा।
कृष्णा—नहीं मेरी बहिन, तुम चल कर सोओ, मैं अभी आती हूँ।
निर्मला ने अधिक आग्रह न किया—लेटने चली गई। मगर किसी तरह नींद न आयी! कृष्णा की उत्सुकता और यह उमंग देखकर उसका हृदय किसी **अलक्षित**[1] **आकांक्षा**[2] से आन्दोलित हो उठा। ओह! इस समय इसका हृदय कितना प्रफुल्लित हो रहा है। **अनुराग**[3] ने इसे कितना उन्मत्त कर रखा है। तब उसे अपने विवाह की याद आयी। जिस दिन तिलक गया था, उसी दिन से उसकी सारी चंचलता, सारी सजीवता विदा हो गयी थी। अपनी कोठरी में बैठी वह अपनी किस्मत को रोती थी, और ईश्वर से विनय करती थी कि प्राण निकल जायँ। अपराधी जैसे दण्ड की प्रतीक्षा करता है, उसी भाँति वह विवाह की प्रतीक्षा करती थी, उस विवाह की, जिसमें उसके जीवन की सारी अभिलाषाएँ विलीन हो जायेंगी, जब मण्डप के नीचे बने हुए हवन-कुण्ड में उसकी आशाएँ जलकर भस्म हो जायेंगी।

बोध प्रश्न

1 सुधा के इस कथन से कि "तुम कहीं बाहर जा भी तो नहीं सकोगी। यह कौन सा महीना है? किस बात का पता चलता है।

क) निर्मला सैर करना पसंद नहीं करती थी। ☐

ख) निर्मला को बाहर जाते डर लगता था। ☐

1 जिसका कोई लक्ष्य न हो 2 इच्छा 3 प्रेम

ग) निर्मला माँ बनने वाली थी। ☐

घ) सुधा महीने का नाम जानना चाहती थी। ☐

सुधा ने गंभीरता से यह बात क्यों पूछी कि उसकी शादी पहले जहाँ ठीक हुई थी वह लड़का क्या करता था।

क) क्योंकि सुधा को उस लड़के से घृणा थी। ☐

ख) सुधा को यह शक हो गया था कि उसी के पति से निर्मला का विवाह ठीक हुआ था। ☐

ग) सुधा को ऐसी बातें पूछने में आनंद आता था। ☐

घ) वह लड़का सुधा का मित्र था। ☐

सुधा ने अपने देवर के साथ निर्मला की बहन की शादी कराने का फैसला किया, क्योंकि

क) कृष्णा रूपवती कन्या थी। ☐

ख) कृष्णा एवं उसके देवर की जोड़ी खूब जँचती थी। ☐

ग) अपने पति को सबक सिखाना चाहती थी। ☐

घ) अपने पति से भूल का प्रायश्चित करवाना चाहती थी। ☐

निर्मला की बहन के विवाह में सहायता के लिए 500 रु. ······ ने भेजे थे।

क) निर्मला ☐

ख) मुंशी तोताराम ☐

ग) रूक्मिणी ☐

घ) डॉक्टर सिन्हा ☐

निर्मला ने अपनी छोटी बहन कृष्णा को किस घटना की चर्चा करते हुए बताया कि उस दिन से तोताराम सीधे हो गए, दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

कृष्णा अपने होने वाले पति को उपहार स्वरूप क्या और क्यूँ देना चाहती थी; दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

पठित अंश के 14वें परिच्छेद में कौन-सी घटना नहीं घटी?

क) निर्मला ने कन्या को जन्म दिया। ☐

ख) कृष्णा का विवाह निश्चित हुआ। ☐

ग) मंसाराम की मृत्यु हो गयी। ☐

घ) मुंशी तोताराम का मकान नीलाम हो गया। ☐

किस घटना से मंसाराम के प्रति निर्मला की आसक्ति व्यक्त होती है? (तीन पंक्तियों में उत्तर दें)

....

....

....

राम की मृत्यु के बाद डॉक्टर सिन्हा एवं तोताराम के परिवार में घनिष्ठता बढ़ने लगती है। चीत के दौरान डॉक्टर सिन्हा की पत्नी सुधा को पता चल जाता है कि निर्मला वही लड़की है के साथ डॉक्टर सिन्हा का विवाह तय हुआ था। वह डॉक्टर सिन्हा के छोटे भाई के साथ

निर्मला की छोटी बहन कृष्णा का विवाह तय करवाती है साथ ही विवाह में खर्च के लिए रुपये भी भिजवाती है। इधर निर्मला की बच्ची का जन्म होता है। तोताराम को पुत्री के जन्म की खुशी तो होती है किन्तु मंसा की मृत्यु के शोक ने उनके जीवन को अति दुःखदायी बना दिया है। उनके काम करने की शक्ति क्षीण होती जाती है। घर की आर्थिक स्थिति दिन पर दिन खराब होती जाती है। घर भी नीलाम हो जाता है। कृष्णा का विवाह तय होने की सूचना पाकर निर्मला को आश्चर्य तथा खुशी दोनों होती है। वह एक महीना पहले ही मायके चली जाती है। क्या निर्मला को यह पता चल पाता है कि कृष्णा का विवाह सुधा ने ठीक करवाया है? क्या वह जान पाती है कि डॉक्टर सिन्हा ही वह व्यक्ति है जिसने उसके साथ विवाह तोड़ दिया था?

16

तोताराम का कृष्णा के विवाह में शामिल होने जाना

महीना कटते देर न लगी। विवाह का शुभ मुहूर्त आ पहुँचा। मेहमानों से घर भर गया। मुंशी तोताराम एक दिन पहले आ गये, और उनके साथ निर्मला की सहेली भी आई निर्मला ने बहुत आग्रह न किया था—वह खुद ही आने को उत्सुक थी। निर्मला की सबसे बड़ी उत्कंठा यही थी कि वर के बड़े भाई के दर्शन करूँगी, और हो सकता तो उसकी सुबद्धि पर धन्यवाद दूंगी।

सुधा ने हँस कर कहा—तुम उनसे बोल सकोगी?
निर्मला—क्यों, बोलने में क्या हानि है? अब तो दूसरा ही सम्बन्ध हो गया। और मैं न बोल सकूंगी तो तुम तो हो ही।
सुधा—न भाई, मुझसे यह न होगा। मैं पराये मर्द से नहीं बोल सकती। न जाने कैसे आदमी हों।
निर्मला—आदमी तो बुरे नहीं हैं, और फिर तुम्हें उनसे कुछ विवाह तो करना नहीं, जरा-सा बोलने में क्या हानि है! डॉक्टर साहब यहाँ होते तो मैं तुम्हें आज्ञा दिला देती।
सुधा—जो लोग हृदय के उदार होते हैं; क्या चरित्र के भी अच्छे होते हैं? पराई स्त्री को घूरने में तो किसी मर्द को संकोच नहीं होता।
निर्मला—अच्छा न बोलना, मैं ही बातें कर लूंगी, घूर लेंगे जितना उनसे घूरते बनेगा, बस, अब तो राजी हुई।

इतने में कृष्णा आकर बैठ गई। निर्मला ने मुस्कराकर कहा—सच बता कृष्णा, तेरा मन इस वक्त क्यों उचाट हो रहा है?
कृष्णा—जीजाजी बुला रहे हैं, पहले जाकर सुन आओ, पीछे गप्पें लड़ाना! बहुत बिगड़ रहे हैं।
निर्मला—क्या है, तूने कुछ पूछा नहीं।
कृष्णा—कुछ बीमार से मालूम होते हैं! बहुत दुबले हो गए हैं।
निर्मला—तो जरा बैठकर उनका मन बहला देती। यहाँ दौड़ी क्यों चली आई। यह कहो, ईश्वर ने कृपा की, नहीं तो ऐसा ही पुरुष तुझे भी मिलता। जरा बैठकर बातें करो। बुड्ढे बातें लच्छेदार करते हैं। जवान इतने डींगयल[1] नहीं होते।
कृष्णा—नहीं बहिन, तुम जाओ, मुझसे तो वहाँ बैठा नहीं जाता।
निर्मला चली गई, तो सुधा ने कृष्णा से कहा—अब तो बारात आ गई होगी। द्वार-पूजा क्यों नहीं होती।
कृष्णा—क्या जाने बहिन, शास्त्रीजी सामान इकट्ठा कर रहे हैं।
सुधा—सुना है, दूल्हा की भावज बड़े कड़े स्वभाव की स्त्री है।
कृष्णा—कैसे मालूम?
सुधा—मैंने सुना है, इसीलिए चेताये देती हूँ। चार बातें गम खाकर रहना होगा[2]।
कृष्णा—मेरी झगड़ने की आदत नहीं। जब मेरी तरफ से कोई शिकायत ही न पायेंगी तो क्या अनायास ही बिगड़ेंगी!
सुधा—हाँ, सुना तो ऐसा ही है। झूठ-मूठ लड़ा करती है।
कृष्णा—मैं तो सौ बात की एक बात जानती हूँ—नम्रता पत्थर को भी मोम कर देती है।
सहसा शोर मचा—बारात आ रही है। दोनों रमणियाँ खिड़की के सामने आ बैठीं। एक क्षण में निर्मला भी आ पहुँची।
वर के बड़े भाई को देखने की उसे बड़ी उत्सुकता हो रही थी।
सुधा ने कहा—कैसे पता चलेगा कि बड़े भाई कौन है?
निर्मला—शास्त्रीजी से पूछूँ तो मालूम हो। हाथी पर तो कृष्णा के ससुर महाशय हैं। अच्छा, डॉक्टर साहब यहाँ कैसे आ पहुँचे! वह घोड़े पर क्या हैं, देखती नहीं हो?
सुधा—हाँ, हैं तो वही।
निर्मला—उन लोगों से मित्रता होगी। कोई सम्बन्ध तो नहीं है।
सुधा—अब भेंट हो तो पूछूँ, मुझे तो कुछ नहीं मालूम।

1 बात बनाने वाला, 2 मु—सहन करके रहना होगा

निर्मला—पालकी में जो महाशय बैठे हुए हैं, वह तो दूल्हा के भाई जैसे नहीं दीखते।
सुधा—बिलकुल नहीं। मालूम होता है, सारी देह में पेट-ही-पेट है।
निर्मला—दूसरे हाथी पर कौन बैठा है, समझ में नहीं आता।
सुधा—कोई हो, दूल्हा का भाई नहीं हो सकता। उसकी उम्र नहीं देखती हो ... चालिस के ऊपर होगी।
निर्मला—शास्त्रीजी तो इस वक्त द्वार-पूजा की फिक्र में है, नहीं तो उनसे पूछती।

संयोग से नाई आ गया। सन्दूकों की कुंजिया निर्मला के पास थीं। इस वक्त द्वारचार के लिए कुछ रुपये की जरूरत थी, माता ने भेजा था; यह नाई भी पण्डित मोटेराम जी के साथ तिलक लेकर गया था।
निर्मला ने कहा—क्या अभी रुपये चाहिए?
नाई—हाँ बहिनजी, चलकर दे दीजिए।
निर्मला—अच्छा चलती हूँ। पहले यह बता, तू दूल्हा के बड़े भाई को पहचानता है?
नाई—पहचानता काहे नहीं, वह क्या सामने हैं।
निर्मला—कहाँ, मैं तो नहीं देखती?
नाई—अरे, वह क्या घोड़े पर सवार हैं। वही तो हैं।
निर्मला ने चकित होकर कहा—क्या कहता है, घोड़े पर दूल्हा के भाई हैं! पहचानता है या अटकल से कह रहा है?
नाई—अरे बहिनजी; क्या इतना भूल जाऊँगा? अभी तो जलपान का सामान दिये चला आता हूँ।
निर्मला—अरे, यह तो डॉक्टर साहब हैं। मेरे पड़ोस में रहते हैं।
नाई—हाँ-हाँ, वही तो डॉक्टर साहब हैं।
निर्मला ने सुधा की ओर देखकर कहा—सुनती हो बहिन, इसकी बातें?
सुधा ने हँसी रोककर कहा—झूठ बोलता है।
नाई—अच्छा साहब, झूठ ही सही; अब बड़ों के मुँह कौन लगे। अभी शास्त्रीजी से पुछवा दूंगा, तब तो मानिएगा?

नाई के आने में देर हुई. मोटेराम खुद आँगन में आकर शोर मचाने लगे—इस घर की मर्यादा रखना ईश्वर ही के हाथ है! नाई घन्टे भर से आया हुआ है, और अभी तक रुपये नहीं मिले।
निर्मला—जरा यहाँ चले आइएगा शास्त्रीजी! कितने रुपये दरकार[1] हैं, निकाल दूं?

शास्त्रीजी भुनभुनाते[2] और जोर-जोर से हाँफते हुए ऊपर आये; और एक लम्बी साँस लेकर बोले—क्या है यह बातों का समय नहीं है, जल्दी से रुपये निकाल दो।
निर्मला—लीजिए, निकाल तो रही हूँ। अब क्या मुँह के बल गिर पड़ूँ? पहले यह बताइए कि दूल्हा के बड़े भाई कौन हैं!
शास्त्रीजी—राम-राम, इतनी-सी बात के लिए मुझे आकाश पर लटका दिया। नाई क्या न पहचानता था?
निर्मला—नाई तो कहता है कि वह जो घोड़े पर सवार है, वही हैं।
शास्त्रीजी—तो फिर किसे बता दें? वही तो हैं ही।
नाई—घड़ी भर से कह रहा हूँ, पर बहिनजी मानती ही नहीं।

निर्मला को डॉक्टर साहब की वास्तविकता का पता चलना

निर्मला ने सुधा की ओर स्नेह, ममता, विनोद और कृत्रिम तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—अच्छा, तो तुम्हीं अब तक मेरे साथ यह त्रियाचरित्र[3] खेल रही थीं! मैं जानती तो तुम्हें यहाँ बुलाती ही नहीं। ओफ्फोह! बड़ा गहरा पेट है तुम्हारा[4]! तुम महीनों से मेरे साथ यह शरारत करती चली आती हो, और कभी भूल से भी इस विषय का एक शब्द तुम्हारे मुँह से नहीं निकला। मैं तो दो-चार ही दिन में उबल पड़ती।
सुधा—तुम्हें मालूम हो जाता, तो तुम मेरे यहाँ आती ही क्यों?
निर्मला—गजब-रे-गजब, मैं डॉक्टर साहब से कई बार बातें कर चुकी हूँ। तुम्हारे ऊपर यह सारा पाप पड़ेगा। देखा कृष्णा, तूने अपनी जेठानी की शरारत! यह ऐसी मायाविनी है, इनसे डरती रहना।
कृष्णा—मैं तो ऐसी देवी के चरण धो-धोकर माथे चढ़ाऊँगी। धन्य-भाग कि इनके दर्शन हुए।
निर्मला—अब समझ गई। रुपये भी तुम्हीं ने भिजवाये होंगे। अब सिर हिलाया तो सच कहती हूँ, मार बैठूँगी।
सुधा—अपने घर बुलाकर के मेहमान का अपमान नहीं किया जाता।
निर्मला—देखो तो अभी कैसी-कैसी खबरें लेती हूँ। मैंने तुम्हारा मान रखने को जरा-सा लिख दिया था; और तुम सचमुच आ पहुँची। भला वहाँ वाले क्या कहते होंगे?

---
1 आवश्यकता 2 धीमी आवाज में बोलना 3 स्त्री चरित्र 4 बात छुपाने वाली हो

सुधा—सबसे कहकर आयी हूँ।

निर्मला—अब तुम्हारे पास कभी न आऊँगी। इतना तो इशारा कर देती कि डॉक्टर साहब से पर्दा रखना।

सुधा—उनके देख लेने ही से कौन बुराई हो गयी? न देखते तो अपनी किस्मत को रोते कैसे? जानते कैसे कि लोभ में पड़कर कैसी चीज खो दी? अब तो तुम्हें देखकर लालाजी हाथ मलकर रह जाते हैं। मुँह से तो कुछ नहीं कहते; पर मन में अपनी भूल पर पछताते हैं।

निर्मला—अब तुम्हारे घर कभी न आऊँगी।

सुधा—अब पिण्ड नहीं छूट सकता। मैंने कौन तुम्हारे घर की राह नहीं देखी है।

कृष्णा का विवाह हो जाना

द्वार-पूजा समाप्त हो चुकी थी। मेहमान लोग बैठे जलपान कर रहे थे। मुंशीजी की बगल में ही डॉक्टर सिन्हा बैठे हुए थे। निर्मला ने कोठे पर चिक की आड़ से उन्हें देखा, और कलेजा थामकर रह गयी। एक आरोग्य, यौवन और प्रतिभा का देवता था, पर दूसरा—इस विषय में कुछ न कहना ही उचित है।

निर्मला ने डॉक्टर साहब को सैकड़ों ही बार देखा था, पर आज उसके हृदय में जो विचार उठे, वे कभी न उठे थे। बार-बार यही जी चाहता था कि बुलाकर खूब फटकारूँ, ऐसे-ऐसे ताने मारूँ कि वह भी याद करें; रुला-रुलाकर छोड़ूँ मगर रहम करके रह जाती थी। बारात जनवासे[1] चली गयी थी। भोजन की तैयारी हो रही थी। निर्मला भोजन के थाल चुनने में व्यस्त थी। सहसा महरी ने आकर कहा—बिट्टो, तुम्हें सुधा रानी बुला रही हैं। तुम्हारे कमरे में बैठी हैं।

निर्मला ने थाल छोड़ दिये और घबराई हुई सुधा के पास आई, मगर अन्दर कदम रखते ही ठिठक गयी—डॉक्टर सिन्हा खड़े थे।

सुधा ने मुस्कराकर कहा—लो बहिन, बुला दिया। अब जितना चाहो, फटकारो। मैं दरवाजा रोके खड़ी हूँ, भाग नहीं सकते।

डॉक्टर साहब ने गम्भीर भाव से कहा—भागता कौन है? यहाँ तो सिर झुकाए खड़ा हूँ।

निर्मला ने हाथ जोड़कर कहा—इसी तरह सदा कृपा-दृष्टि रखिएगा, भूल न जाइएगा। यह मेरी विनय है।

17

वकील साहब का वापस चले जाना तथा निर्मला का मायके में ही रह जाना

कृष्णा के विवाह के बाद सुधा चली गई। लेकिन निर्मला मैके ही में रह गई। वकील साहब बार-बार लिखते थे, पर वह न जाती थी। वहाँ जाने को उसका जी न चाहता था। वहाँ कोई ऐसी चीज न थी, जो उसे खींच ले जाय। यहाँ माता की सेवा और छोटे भाइयों की देख-भाल में उसका समय बड़े आनन्द से कट जाता था। वकील साहब खुद आते तो शायद वह जाने पर राजी हो जाती; लेकिन इस विवाह में, मुहल्ले की लड़कियों ने उनकी वह दुर्गत की थी कि बेचारे आने का नाम ही न लेते थे। सुधा ने भी कई बार पत्र लिखा; पर निर्मला ने उससे भी हील-हवाले[2] किये! आखिर एक दिन सुधा ने नौकर को साथ लिया और स्वयं आ धमकी।

जब दोनों गले मिल चुकीं, तो सुधा ने कहा—तुम्हें तो वहाँ जाते मानो डर लगता है।

निर्मला—हाँ बहिन, डर तो लगता है। ब्याह की गई तीन साल में आई; अब की तो वहाँ उम्र ही खतम हो जायेगी, फिर कौन बुलाता है, और कौन आता है।

सुधा—आने को क्या हुआ, जब जी चाहे चली आना। वहाँ वकील साहब बहुत बेचैन हो रहे हैं।

निर्मला—बहुत बेचैन, रात को शायद नींद न आती हो!

निर्मला को अपने घर की बदली परिस्थिति की सूचना

सुधा—बहिन, तुम्हारा कलेजा पत्थर का है। उनकी दशा देखकर तरस आता है। कहते थे, घर में कोई पूछने वाला नहीं, न कोई लड़का, न बाला[3], किससे जी बहलायें? जब से दूसरे मकान में उठ आए हैं, बहुत दुखी रहते हैं।

निर्मला—लड़के तो ईश्वर के दिये दो-दो हैं।

सुधा—उन दोनों की तो बड़ी शिकायत करते थे। जियाराम तो अब बात ही नहीं सुनता—तुर्की-बतुर्की[4] जवाब देता है। रहा छोटा, वह भी उसी के कहने में है। बेचारे बड़े लड़के की याद करके रोया करते हैं।

निर्मला—जियाराम तो शरीफ था, वह बदमाशी कब से सीख गया? मेरी तो कोई बात न टालता था—इशारे पर काम करता था।

सुधा—क्या जाने बहिन! सुना, कहता है, आप ही ने भैया को जहर देकर मार डाला—आप हत्यारे हैं। कई बार तुमसे विवाह करने के लिए ताने दे चुका है! ऐसी-ऐसी बातें कहता है कि वकील साहब रो पड़ते हैं अरे, और तो क्या कहूँ, एक दिन पत्थर उठाकर मारने दौड़ा था।

निर्मला ने गम्भीर चिन्ता में पड़कर कहा—यह लड़का तो बड़ा शैतान निकला। उससे यह किसने कहा कि उसके भाई को उन्होंने जहर दे दिया है?

*1 बारातियों के ठहरने का स्थान, 2 आनाकानी करना, 3 लड़की, 4 अनाप-शनाप

सुधा—वह तुम्हीं से ठीक होगा।

घर की बदली परिस्थिति से चिंतित होना

निर्मला को यह नई चिन्ता पैदा हुई। अगर जिया का यही रंग है—अपने बाप से लड़ने पर तैयार रहता है तो मुझसे क्यों दबने लगा? वह रात को बड़ी देर तक इसी फिक्र में डूबी रही। मंसाराम की आज उसे बहुत याद आयी। उसके साथ जिन्दगी आराम से कट जाती। इस लड़के का जब अपने पिता के सामने ही यह हाल है, तो उनके पीछे उसके साथ कैसे निर्वाह होगा! घर हाथ से निकल ही गया। कुछ-न-कुछ कर्ज अभी सिर पर होगा ही, आमदनी का यह हाल। ईश्वर ही बेड़ा पार लगायेंगे। आज पहली बार निर्मला को बच्ची की फिक्र पैदा हुई। इस बेचारी का न जाने क्या हाल होगा? ईश्वर ने यह विपत्ति सिर डाल दी। मुझे तो इसकी जरूरत न थी। जन्म ही लेना था, तो किसी भाग्यवान् के घर जन्म लेती। बच्ची उसकी छाती में लिपटी हुई सो रही थी। माता ने उसको और भी चिपटा लिया, मानो कोई उसके हाथ से उसे छीन लिये जाता है।

निर्मला के पास ही सुधा की चारपाई भी थी। निर्मला तो चिन्ता सागर में गोता खा रही थी, और सुधा मीठी नींद का आनन्द उठा रही थी। क्या उसे अपने बालक की फिक्र सताती है? मृत्यु तो बूढ़े और जवान का भेद नहीं करती, फिर सुधा को कोई चिन्ता क्यों नहीं सताती? उसे तो कभी भविष्य की चिन्ता से उदास नहीं देखा।

सहसा सुधा की नींद खुल गई। उसने निर्मला को अभी तक जागते देखा, तो बोली—अरे अभी तुम सोई नहीं?
निर्मला—नींद ही नहीं आती।
सुधा—आँखें बन्द कर लो, आप ही नींद आ जाएगी। मैं तो चारपाई पर आते ही मर-सी जाती हूँ। वह जगाते भी हैं तो खबर नहीं होती। न जाने मुझे क्यों इतनी नींद आती है। शायद कोई रोग है।

निर्मला—हाँ, बड़ा भारी रोग है। इसे राज-रोग कहते हैं। डॉक्टर साहब से कहो—दवा शुरू कर दें।
सुधा—तो आखिर जागकर क्या सोचूँ? कभी-कभी मैके की याद आ जाती है, तो उस दिन जरा देर में आँख लगती है।
निर्मला—डॉक्टर साहब की याद नहीं आती?
सुधा—कभी नहीं, उनकी याद क्यों आये? जानती हूँ कि टेनिस खेलकर आये होंगे, खाना खाया होगा और आराम से लेटे होंगे।
निर्मला—लो, सोहन भी जाग गया। जब तुम जाग गईं तो भला यह क्यों सोने लगा?
सुधा—हाँ बहिन, इसकी अजीब आदत है। मेरे साथ सोता और मेरे ही साथ जागता है। उस जन्म का कोई तपस्वी है। देखो, इसके माथे पर तिलक का कैसा निशान है। बाहों पर भी ऐसे ही निशान हैं। जरूर कोई तपस्वी है।
निर्मला—तपस्वी लोग तो चन्दन-तिलक नहीं लगाते। उस जन्म का कोई धूर्त पुजारी होगा। क्यों रे, तू कहाँ का पुजारी था? बता?
सुधा—इसका ब्याह मैं बच्ची से करूँगी।
निर्मला—चलो बहिन, गाली देती हो। बहिन से भी भाई का ब्याह होता है?
सुधा—मैं तो करूँगी चाहे कोई कुछ कहे! ऐसी सुन्दर बहू और कहाँ पाऊँगी? ज़रा देखो तो बहिन, इसकी देह कुछ गर्म है या मुझे ही मालूम होती है।

सुधा के बच्चे की तबीयत खराब होना

निर्मला ने सोहन का माथा छूकर कहा—नहीं-नहीं, देह गर्म है। यह ज्वर कब आ गया। दूध तो पी रहा है न?
सुधा—अभी सोया था, तब तो देह ठंडी थी। शायद सर्दी लग गई, उढ़ाकर सुलाये देती हूँ। सबेरे तक ठीक हो जाएगा।

सबेरा हुआ तो सोहन की दशा और भी खराब हो गई। उसकी नाक बहने लगी; और बुखार और भी तेज हो गया। आँखें चढ़ गईं और सिर झुक गया। न वह हाथ-पैर हिलाता था, न हँसता-बोलता था, बस, चुपचाप पड़ा था। ऐसा मालूम होता था कि उसे इस वक्त किसी का बोलना अच्छा नहीं लगता। कुछ-कुछ खाँसी भी आने लगी। अब तो सुधा घबराई। निर्मला की भी राय हुई कि डॉक्टर साहब को बुलाया जाय; लेकिन उसकी बूढ़ी माता ने कहा—डॉक्टर-हकीम का यहाँ कुछ काम नहीं! साफ तो देख रही हूँ कि बच्चे को नजर लग गई है। भला डॉक्टर आकर क्या करेंगे?
सुधा—अम्माजी, भला यहाँ नजर कौन लगा देगा? अभी तक तो बाहर कहीं गया भी नहीं।
माता—नजर कोई लगाता नहीं बेटी, किसी-किसी आदमी की दीठ[1] बुरी होती है, आप-ही-आप लग जाती है। कभी-कभी माँ-बाप तक की नजर लग जाती है। जबसे आया है, एक बार भी नहीं

1 दृष्टि, नजर

रोया। चोंचले बच्चों की यही गति होती है। मैं तो इसे **हुकमते**[1] देखकर डरी थी कि कुछ-न-कुछ अनिष्ट होने वाला है। आँखें नहीं देखती हो, कितनी चढ़ गई हैं। यही नजर की सबसे बड़ी पहचान है।

बच्चे का डॉक्टर की जगह ओझा आदि से इलाज करवाना

बुढ़िया महरी और पड़ोस की पंडिताइन ने इस कथन का अनुमोदन कर दिया। बस महँगू ने आकर बच्चे का मुँह देखा और हँस कर बोला—मालकिन, यह दीठ है, और कुछ नहीं। जरा पतली-पतली तीलियाँ तो मँगवा दीजिए। भगवान ने चाहा तो साँझ तक बच्चा हँसने लगेगा।

सरकण्डे के पाँच टुकड़े लाये गये। महँगू ने उन्हें बराबर करके एक डोरे से बाँध दिया और कुछ बुदबुदाकर उसी **पोले**[2] हाथों से पाँच बार सोहन का सिर सहलाया! अब जो देखा, तो पाँचों तीलियाँ छोटी-बड़ी हो गई थीं। सब स्त्रियाँ यह कौतुक देखकर दंग रह गईं। अब नजर में किसे सन्देह हो सकता था। महँगू ने फिर बच्चे को तीलियों से सहलाना शुरू किया। अब की तीलियाँ बराबर हो गईं। केवल थोड़ा-सा अन्तर रह गया। यह सब इस बात का प्रमाण था कि नज़र का असर अब थोड़ा-सा और रह गया है। महँगू सबको दिलासा देकर शाम को फिर आने का वायदा करके चला गया। बालक की दशा दिन को और भी खराब हो गई। खाँसी का जोर हो गया। शाम के समय महँगू ने आकर फिर तीलियों का तमाशा किया। इस वक्त पाँचों तीलियाँ बराबर निकलीं। स्त्रियाँ निश्चिन्त हो गईं। लेकिन सोहन को सारी रात खाँसते गुजरी। यहाँ तक कि कई बार उसकी आँखें उलट गईं। सुधा और निर्मला दोनों ने **बैठकर सवेरा किया**[3] खैर, रात कुशल से कट गई। अब वृद्धा माताजी नया रंग लाईं! महँगू नजर न उतार सका, इसलिए अब किसी मौलवी से **फूँक**[4] डलवाना जरूरी हो गया। सुधा फिर भी अपने पति को सूचना न दे सकी। महरी सोहन को एक चादर से लपेट कर एक मस्जिद में ले गई और फूँक डलवा लाई, शाम को भी फूँक छोड़ी, पर सोहन ने सिर न उठाया। रात आ गई, सुधा ने मन में निश्चय किया कि रात कुशल से बीतेगी तो प्रातःकाल पति को तार दूँगी।

सुधा के बच्चे की मृत्यु

लेकिन रात कुशल से न बीतने पाई। आधी रात जाते-जाते बच्चा **हाथ से निकल गया**[5]। सुधा की जीवन-सम्पति देखते-देखते उसके हाथों से छिन गई।

वहीं जिसके विवाह का दो दिन पहले विनोद हो रहा था, आज सारे घर को रुला रहा है। जिसकी भोली-भाली सूरत देखकर माता की छाती फूल उठती थी, उसी को देखकर आज माता की **छाती फटी जाती**[6] है। सारा घर सुधा को समझाता था, पर उसके आँसू न थमते थे, सब्र न होता था। सबसे बड़ा दुःख इस बात का था कि पति को कौन मुँह दिखलाऊँगी। उन्हें खबर तक न दी!

डॉक्टर सिन्हा का आना

रात ही को तार दे दिया गया, और दूसरे दिन डॉक्टर सिन्हा नौ बजते-बजते मोटर पर आ पहुँचे। सुधा ने उनके आने की खबर पाई, तो और भी फूट-फूटकर रोने लगी। बालक की जल-क्रिया हुई, डॉक्टर साहब कई बार अन्दर आये, किन्तु सुधा उनके पास न गई। उनके सामने कैसे जाये? कौन मुँह दिखाये? उसने अपनी नादानी से उनके जीवन का रत्न छीनकर दरिया में डाल दिया। अब उनके पास जाते उसकी छाती के टुकड़े-टुकड़े हुए जाते थे। बालक को उसकी गोद में देखकर पति की **आँखें चमक उठती थीं**[7]। बालक **ठुमककर**[8] पिता की गोद में चला जाता था। माता फिर बुलाती, तो पिता की छाती से चिपट जाता था, और लाख **चुमकारने-बुलारने**[9] पर भी बाप की गोद न छोड़ता था। तब माँ कहती थी—बड़ा मतलबी है। आज वह किसे गोद में लेकर पति के पास जायगी? उसकी सूनी गोद देखकर कहीं वह चिल्लाकर रो न पडे। पति के सम्मुख जाने की अपेक्षा उसे मर जाना कहीं आसान जान पड़ता था। वह एक क्षण के लिए भी निर्मला को न छोड़ती थी कि कहीं पति से सामना न हो जाय।

निर्मला ने कहा—बहिन, जो होना था वह हो चुका, अब उनसे कब तक भागती फिरोगी। रात ही को चले जायेंगे। अम्माँ कहती थीं।

सुधा ने सजल नेत्रों से ताकते हुए कहा—कौन मुँह लेकर उनके पास जाऊँ? मुझे डर लग रहा है कि उनके सामने जाते ही मेरा पैर न थर्राने लगे और मैं गिर पड़ूँ।

निर्मला—चलो, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। तुम्हें सँभाले रहूँगी।
सुधा—मुझे छोड़कर भाग तो न जाओगी?
निर्मला—नहीं-नहीं, भागूँगी नहीं।
सुधा—मेरा कलेजा तो अभी से उमड़ा आता है। मैं इतना घोर वज्रघात होने पर भी बैठी हूँ, मुझे

---

1 बीमार पड़ने से बच्चे में होने वाली चेष्टाएँ, 2 नरम हाथों से, 3 चिन्तित अवस्था में रात बिताना, 4 मौलवी द्वारा उपचार की क्रिया, 5 मृत्यु हो गयी, मु०—अत्याधिक दुःख होता है, 7 मु०—प्रसन्न हो जाते थे, 8 ठुमककर (चाल क्रिया), 9 प्यार करने पर

यही आश्चर्य हो रहा है। सोहन को वह बहुत प्यार करते थे बहिन। न जाने उनके चित्त की क्या दशा होगी। मैं उन्हें ढाढ़स क्या दूंगी, आप ही रोती रहूँगी। क्या रात ही को चले जायेंगे?
निर्मला—हाँ, अम्माँ जी तो कहती थीं छुट्टी नहीं ली है।

दोनों सहेलियाँ मर्दाने कमरे[1] की ओर चली, लेकिन कमरे के द्वार पर पहुँचकर सुधा ने निर्मला को विदा कर दिया। अकेली कमरे में दाखिल हुई।

पुत्र के न रहने पर डॉक्टर सिन्हा के मन में उठने वाले भाव

डॉक्टर साहब घबरा रहे थे कि न जाने सुधा की क्या दशा हो रही है। भाँति-भाँति की शंकाएँ मन में आ रही थीं! जाने को तैयार बैठे थे, लेकिन जी न चाहता था। जीवन शून्य-सा मालूम होता था। मन-ही-मन कुढ़ रहे थे, अगर ईश्वर को इतनी जल्दी यह पदार्थ देकर छीन लेना था, तो दिया ही क्यों था? उन्होंने तो कभी सन्तान के लिए ईश्वर से प्रार्थना न की थी। वह आजन्म निःसन्तान रह सकते थे, पर सन्तान पाकर उससे वंचित हो जाना उन्हें असहय जान पड़ता था। क्या सचमुच मनुष्य ईश्वर का खिलौना है? यही मानव-जीवन का महत्व है? वह केवल बालकों का घरौंदा है, जिसके बनने का न कोई हेतु है न बिगड़ने का? फिर बालकों को भी तो घरौंदो से, अपनी कागज की नावों से, अपनी लकड़ी के घोड़ों से ममता होती है। अच्छे खिलौने को वह जाने के पीछे छिपाकर रखते हैं। अगर ईश्वर बालक ही है तो वह विचित्र बालक है।

किन्तु बुद्धि तो ईश्वर का यह रूप स्वीकार नहीं करती। अनन्त सृष्टि का कर्त्ता उद्दण्ड बालक नहीं हो सकता है। हम उसे उन सारे गुणों से विभूषित करते हैं; जो हमारी बुद्धि की पहुँच से बाहर है। खिलाड़ीपन तो उन महान् गुणों में नहीं! क्या हँसते-खेलते बालकों का प्राण हर लेना कोई खेल है? क्या ईश्वर ऐसा पैशाचिक खेल खेलता है?

सहसा सुधा दबे-पाँव कमरे में दाखिल हुई। डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए और उसके समीप आकर बोले—तुम कहाँ थीं, सुधा? मैं तुम्हारी राह देख रहा था।

सुधा की आँखों में कमरा तैरता हुआ जान पड़ा। पति की गर्दन में हाथ डालकर उसने उनकी छाती पर सिर रख दिया और रोने लगी; लेकिन इस अश्रु-प्रवाह में उसे असीम धैर्य और सांत्वना का अनुभव हो रहा था। पति के वक्ष-स्थल से लिपटी हुई वह अपने हृदय में एक विचित्र स्फूर्ति और बल का संचार होते हुए पाती थी, मानो पवन से थरथराता हुआ दीपक अंचल की आड़ में आ गया हो।

डॉक्टर साहब ने रमणी के अश्रु-सिंचित कपोलों को दोनों हाथों में लेकर कहा—सुधा, तुम इतना छोटा दिल क्यों करती हो? सोहन अपने जीवन में जो कुछ करने आया था, वह कर चुका था, फिर वह क्यों बैठा रहता! जैसे कोई वृक्ष जल और प्रकाश से बढ़ता है, लेकिन पवन के प्रबल झोकों ही से सुदृढ़ होता है, उसी भाँति प्रणय भी दुःख के आघातों ही से विकास पाता है। खुशी के साथ हँसने वाले बहुतेरे मिल जाते हैं, रंज में जो साथ रोये, वही हमारा सच्चा मित्र है। जिन प्रेमियों को साथ रोना नहीं नसीब हुआ, वे मुहब्बत के मजे क्या जानें? सोहन को मृत्यु ने आज हमारे द्वैत को बिलकुल मिटा दिया। आज ही हमने एक दूसरे का सच्चा स्वरूप देखा है।

सुधा ने सिसकते हुए कहा—मैं नजर[2] के धोखे में थी। हाय! तुम उसका मुँह भी नहीं देखने पाये। न जाने इन दिनों उसे इतनी समझ कहाँ से आ गई थी। जब मुझे रोते देखता, तो अपने कष्ट भूलकर मुस्करा देता। तीसरे ही दिन मेरे लाड़ले की आँख बन्द हो गई। कुछ दवा-दर्पन भी न करने पाई।

यह कहते-कहते सुधा के आँसू फिर उमड़ आये। डॉक्टर सिन्हा ने उसे सीने से लगाकर करुणा से काँपती हुई आवाज में कहा—प्रिय, आज तक कोई ऐसा बालक या वृद्ध न मरा होगा, जिसके घरवालों की दवा-दर्पन की लालसा पूरी हो गई हो।

सुधा—निर्मला ने मेरी बड़ी मदद की। मैं तो एकाध झपकी ले भी लेती थी; पर उसकी आँखें नहीं झपकीं। रात-रात लिये बैठी या टहलती रहती थी। उसके ऐहसान कभी न भूलूँगी। क्या तुम आज ही जा रहे हो?
डॉक्टर—हाँ, छुट्टी लेने का मौका न था! सिविल सर्जन शिकार खेलने गया हुआ था!
सुधा—यह सब हमेशा शिकार ही खेला करते हैं?
डॉक्टर—राजाओं का और काम ही क्या है?
सुधा—मैं तो आज न जाने दूँगी।
डॉक्टर—जी तो मेरा भी नहीं चाहता।

1 बैठक-खाना, 2 दृष्टि लग जाना

सुधा—तो मत जाओ, तार दे दो। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। निर्मला को भी लेती चलूँगी।

सुधा का डॉक्टर सिन्हा के साथ लौट जाना

सुधा वहाँ से लौटी, तो उसके हृदय का बोझ हल्का हो गया था। पति की प्रेमपूर्ण कोमल वाणी ने उसके सारे शोक और संताप का हरण कर लिया था। प्रेम में असीम विश्वास है, असीम धैर्य है, और असीम बल है।

18

बाहर के लोगों द्वारा तोताराम पर टीका-टिप्पणी करना तथा बच्चों के साथ झूठी सहानुभूति जताना

जब हमारे ऊपर कोई बड़ी विपत्ति आ पड़ती है, तो उससे हमें केवल दुःख ही नहीं होता—हमें दूसरों के ताने भी सहने पड़ते हैं। जनता को हमारे ऊपर टिप्पणियाँ करने का वह सुअवसर मिल जाता है, जिसके लिए वह हमेशा बेचैन रहती है। मंसाराम क्या मरा, मानो समाज को उन पर आवाजें कसने का बहाना मिल गया। भीतर की बातें कौन जाने, प्रत्यक्ष बात यह थी कि यह सब सौतेली माँ की करतूत है। चारों तरफ यही चर्चा थी, ईश्वर न करे लड़कों को सौतेली माँ से पाला पड़े। जिसे अपना बना-बनाया घर उजाड़ना हो—अपने प्यारे बच्चों की गर्दन पर छुरी फेरनी हो, वह बच्चों के रहते हुए अपना दूसरा ब्याह करे। ऐसा कभी नहीं देखा, कि सौत के आने पर घर तबाह न हो गया हो। वही बाप जो बच्चों पर जान देता था, सौत के आते ही उन्हीं बच्चों का दुश्मन हो जाता है—उसकी मति ही बदल जाती है। ऐसी देवी ने जन्म ही नहीं लिया, जिसने सौत के बच्चों को अपना समझा हो।

मुश्किल यह थी कि लोग इन टिप्पणियों पर सन्तुष्ट न होते थे। कुछ ऐसे सज्जन भी थे जिन्हें अब जियाराम और सियाराम से विशेष स्नेह हो गया था। वे दोनों बालकों से बड़ी सहानुभूति प्रकट करते, यहाँ तक कि दो-एक महिलाएँ तो उसकी माता के शील और स्वभाव को याद करके आँसू बहाने लगती थीं। हाय-हाय! बेचारी क्या जानती थी कि उसके मरते ही उसके लाड़लों की यह दुर्दशा होगी! अब दूध-मक्खन काहे को मिलता होगा!
जियाराम कहता—मिलता क्यों नहीं?
महिला कहती—मिलता है! अरे बेटा, मिलना भी कई तरह का होता है। पानीवाला दूध टके सेर का मँगाकर रख दिया, पियो चाहे न पियो—कौन पूछता है? नहीं तो बेचारी नौकर से दूध दुहवा कर मँगवाती थी। वह तो चेहरा ही कहे देता है। दूध की सूरत छिपी नहीं रहती—वह सूरत ही नहीं रही।

जियाराम के व्यवहार में परिवर्तन आना

जियाराम को अपनी माँ के समय के दूध का स्वाद तो याद था नहीं, जो इस आक्षेप का उत्तर देता; और न उस समय की अपनी सूरत ही याद थी—चुप रह जाता। इन शुभाकांक्षाओं का असर भी पड़ना स्वाभाविक था। जियाराम को अपने घरवालों से चिढ़ होती जाती थी। मुंशीजी मकान नीलामी हो जाने के बाद दूसरे घर में उठ आए, तो किराये की फिक्र हुई। निर्मला ने मक्खन बन्द कर दिया। वह आमदनी ही नहीं रही, तो खर्च कैसे रहता। दोनों कहार अलग कर दिये गये। जियाराम को यह **कतर-ब्योंत**[1] बुरी लगती थी। जब निर्मला मैके चली गई, तो मुंशीजी ने दूध भी बन्द कर दिया। नवजात कन्या की चिन्ता अभी से उनके सिर पर सवार हो गई थी।

जियाराम का पिता से तकरार होना

जियाराम ने बिगड़कर कहा—दूध बन्द रहने से तो आपका महल बन रहा होगा, भोजन भी बन्द कर दीजिए!
मुंशीजी—दूध पीने का शौक है, तो जाकर दुहा क्यों नहीं लाते? पानी के पैसे तो मुझसे न दिये जायेंगे।
जियाराम—मैं दूध दुहाने जाऊँ, कोई स्कूल का लड़का देख ले तब?
मुंशीजी—तब कुछ नहीं। कह देना, अपने लिये दूध लिये जाता हूँ। दूध लाना कोई चोरी नहीं है।
जियाराम—चोरी नहीं है! आप ही को कोई दूध लाते देख ले तो आपको शर्म न आयेगी।
मुंशीजी—बिल्कुल नहीं। मैंने तो इन्हीं हाथों से पानी खींचा है, अनाज की गठरियाँ लाया हूँ। मेरे बाप लखपती नहीं थे।
जियाराम—मेरे बाप तो गरीब नहीं, मैं क्यों दूध दुहाने जाऊँ? आखिर आपने कहारों को क्यों जवाब दे दिया?
मुंशीजी—क्या तुम्हें इतना भी नहीं सूझता कि मेरी आमदनी अब पहली-सी नहीं रही, इतने नादान तो नहीं हो?
जियाराम—आखिर आपकी आमदनी क्यों कम हो गई?
मुंशीजी—जब तुम्हें अकल ही नहीं है; तो क्या समझाऊँ। यहाँ जिन्दगी से तंग आ गया हूँ, मुकदमे कौन ले; और ले भी तो तैयार कौन करे? वह दिल ही नही रहा। अब तो जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा हूँ। सारे अरमान लल्लू के साथ चले गए।
जियाराम—अपने ही हाथों न।

1 खर्चे में कटौती

मुंशीजी ने चीखकर कहा—अरे **अहमक**[1]। यह ईश्वर की मर्जी थी! अपने हाथों कोई अपना गला काटता है।
जियाराम—**ईश्वर** तो आपका विवाह करने न आया था।
मुंशीजी अब **जब्त न कर सके**[2], लाल-लाल आँखें निकालकर बोले—क्या तुम आज लड़ने के लिए **कमर बाँधकर आये हो**[3]? आखिर किस **बिरते**[4] पर? मेरी रोटियाँ तो नहीं चलाते? जब इस **काबिल**[5] **हो जाना**, तो मुझे उपदेश देना। तब मैं सुन लूँगा। अभी तुमको मुझे उपदेश देने का अधिकार नहीं है। कुछ दिनों **अदब तमीज सीखो**[6]। तुम मेरे सलाहकार नहीं हो कि मैं जो काम करूँ, उसमें तुमसे सलाह लूँ। मेरी पैदा की हुई दौलत है, उसे जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ। तुमको जबान खोलने का भी हक नहीं है। अगर फिर तुमने मुझसे ऐसी बेअदबी की, तो **नतीजा**[7] बुरा होगा। जब मंसाराम ऐसा रत्न खोकर मेरे प्राण न निकले, तो तुम्हारे बगैर मैं मर न जाऊँगा, समझ गये?
यह कड़ी फटकार पाकर भी जियाराम वहाँ से न टला। **निःशंक**[8] भाव से बोला—तो आप क्या चाहते हैं कि हमें चाहे कितनी ही तकलीफ हो मुँह न खोलें? मुझसे तो यह न होगा। भाई साहब को अदब और तमीज का जो इनाम मिला, उसकी मुझे भूख नहीं। मुझमें जहर खाकर प्राण देने की हिम्मत नहीं। ऐसे अदब को दूर से दंडवत करता हूँ।
मुंशीजी—तुम्हें ऐसी बातें कहते हुए शर्म नहीं आती?
जियाराम—लड़के अपने बुजुर्गों ही की नकल करते हैं।

मुंशीजी का क्रोध शान्त हो गया। जियाराम पर उसका कुछ भी असर न होगा, इसका उन्हें यकीन हो गया। उठकर टहलने चले गये। आज उन्हें सूचना मिल गई कि इस घर का शीघ्र ही सर्वनाश होने वाला है।

उस दिन से पिता और पुत्र में किसी-न-किसी बात पर रोज ही एक झपट हो जाती है। मुंशीजी ज्यों-ज्यों **तरह देते थे**[9], जियाराम और भी शेर होता जाता था। एक दिन जियाराम ने रुक्मिणी से यहाँ तक कह डाला—बाप हैं, यह समझकर छोड़ देता हूँ, नहीं तो मेरे ऐसे-ऐसे साथी हैं कि चाहूँ तो भरे बाजार में पिटवा दूँ। रुक्मिणी ने मुंशीजी से कह दिया। मुंशीजी ने प्रकट रूप से तो बेपरवाही ही दिखाई पर उनके मन में शंका समा गई। शाम को सैर करना छोड़ दिया। यह नई चिन्ता सवार हो गई। इसी भय से निर्मला को भी न लाते थे कि शैतान उसके साथ भी यही बर्ताव करेगा। जियाराम एक बार दबी जबान कह भी चुका था—देखूँ, अबकी कैसे इस घर में आती हैं? दूर ही से न दुत्कार दूँ तो जियाराम नाम नहीं। बुड्ढे मियाँ कर ही क्या लेंगे? मुंशीजी भी खूब समझ गए थे कि मैं इसका कुछ भी नहीं कर सकता। कोई बाहर का आदमी होता, तो उसे पुलिस और कानून के शिकंजे में कसते। अपने लड़के को क्या करें? सच कहा है—आदमी हारता है, तो अपने लड़कों ही से।

डॉक्टर सिन्हा द्वारा जियाराम को सुझाव देना

एक दिन डॉक्टर सिन्हा ने जियाराम को बुलाकर समझाना शुरू किया। जियाराम उनका अदब करता था। चुपचाप बैठा सुनता रहा। जब डॉक्टर साहब ने अन्त में पूछा, आखिर तुम चाहते क्या हो? तो वह बोला—साफ-साफ कह दूँ न? बुरा तो न मानिएगा।
सिन्हा—नहीं, जो कुछ तुम्हारे दिल में हो साफ-साफ कह दो।
जियाराम—तो सुनिये, जब से भैया मरे हैं, मुझे पिताजी की सूरत देखकर क्रोध आता है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि इन्हीं ने भैया की हत्या की है; और एक दिन मौका पाकर हम दोनों भाइयों की भी हत्या करेंगे। अगर इनकी यह इच्छा न होती तो ब्याह ही क्यों करते?
डॉक्टर साहब ने बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर कहा—तुम्हारी हत्या करने के लिए उन्हें ब्याह करने की क्या जरूरत थी, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। बिना विवाह किये भी तो वह हत्या कर सकते थे!
जियाराम—कभी नहीं! उस वक्त तो उनका दिल ही कुछ और था—हम लोगों पर जान देते थे! अब मुँह तक नहीं देखना चाहते। उनकी यही इच्छा है कि उन दोनों प्राणियों के सिवा घर में और कोई न रहे। अब जो लड़के होंगे उनके रास्ते से हम लोगों को हटा देना चाहते हैं, यही उन दोनों आदमियों की दिली मंशा है। हमें तरह-तरह की तकलीफें देकर भगा देना चाहते हैं। इसीलिए आजकल मुकदमे नहीं लेते। हम दोनों भाई आज मर जाएँ तो फिर देखिए कैसी बहार होती है।
डॉक्टर—अगर तुम्हें भगाना ही होता, तो कोई इल्जाम लगाकर घर से निकाल न देते?
जिया०—इसके लिए पहले ही से तैयार बैठा हूँ।
डॉक्टर—सुनूँ, क्या तैयारी की है?
जिया०—जब मौका आयेगा, देख लीजिएगा।

---

1 बेवकूफ, 2 रोक न सके, 3 तैयार होकर आये हो, 4 बूते, 5 योग्य, 6 सम्मान करने का तरीका सीखो, 7 परिणाम, 8 निडर, 9 छूट देते थे

यह कहकर जियाराम चलता हुआ। डॉक्टर सिन्हा ने बहुत पुकारा; पर उसने फिरकर देखा भी नहीं।

कई दिन के बाद डॉक्टर साहब की जियाराम से फिर मुलाकात हो गई। डॉक्टर साहब सिनेमा के प्रेमी थे; और जियाराम की तो जान ही सिनेमा में बसती थी। डॉक्टर साहब ने सिनेमा पर आलोचना करके जियाराम को बातों में लगा लिया और अपने घर लाये। भोजन का समय आ गया था, दोनों आदमी साथ ही भोजन करने बैठे। जियाराम को वहाँ भोजन बहुत स्वादिष्ट लगा, बोला—मेरे यहाँ तो जब से महाराज अलग हुआ खाने का मजा ही जाता रहा। बुआजी पक्का वैष्णवी भोजन बनाती हैं। जबरदस्ती खा लेता हूँ, पर खाने की तरफ ताकने का जी नहीं चाहता।
डॉक्टर—मेरे यहाँ तो, जब घर में खाना पकता है, तो इससे कहीं स्वादिष्ट होता है। तुम्हारी बुआजी प्याज-लहसुन न छूती होंगी[1]?
जिया०—हाँ साहब, उबालकर रख देती हैं। लालाजी को इसकी परवाह ही नहीं कि कोई खाता है या नहीं। इसीलिए तो महाराज को अलग किया है। अगर रुपये नहीं हैं, तो गहने कहाँ से बनते हैं?
डॉक्टर—यह बात नहीं है जियाराम; उनकी आमदनी सचमुच बहुत कम हो गई है। तुम उन्हें बहुत दिक करते हो[2]।
जिया०—(हँसकर) मैं उन्हें दिक करता हूँ? मुझसे कसम ले लीजिए जो कभी उनसे बोलता भी हूँ। मुझे बदनाम करने का उन्होंने बीड़ा उठा लिया[3] है। बेसबब[4], बेवजह[5] पीछे पड़े रहते हैं। यहाँ तक कि मेरे दोस्तों से भी उन्हें चिढ़ है। आप ही सोचिए, दोस्तों के बगैर कोई जिन्दा रह सकता है? मैं कोई लुच्चा नहीं हूँ कि लुच्चों की सोहबत[6] रखूँ, मगर आप दोस्तों ही के पीछे मुझे रोज सताया करते हैं। कल तो मैंने साफ कह दिया—मेरे दोस्त मेरे घर आयेंगे, किसी को अच्छा लगे या बुरा। जनाब, कोई हो, हर वक्त का धौंस[7] नहीं सह सकता।

डॉक्टर सिन्हा द्वारा जिया को पिता के प्रति अच्छा व्यवहार करने की सलाह देना

डॉक्टर—मुझे तो भाई, उन पर बड़ी दया आती है। यह जमाना उनके आराम करने का था। एक तो बुढ़ापा, उस पर जवान बेटे का शोक; स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं। ऐसा आदमी क्या कर सकता है? वह जो कुछ थोड़ा-बहुत करते हैं, वही बहुत है। तुम अभी और कुछ नहीं कर सकते, तो कम-से-कम अपने आचरण से तो उन्हें प्रसन्न रख सकते हो। बुढ़्ढों को प्रसन्न करना बहुत कठिन काम नहीं यकीन मानो[8], तुम्हारा हँसकर बोलना ही उन्हें खुश करने को काफी है। इतना पूछने में तुम्हारा क्या खर्च होता है—बाबूजी, आपकी तबियत कैसी है? वह तुम्हारी यह उद्दण्डता देखकर मन-ही-मन कुढ़ते रहते हैं[9]। मैं तुमसे सच कहता हूँ, कई बार रो चुके हैं। उन्होंने मान लो शादी करने में गलती की। इसे वह भी स्वीकार करते हैं; लेकिन तुम अपने कर्तव्य से क्यों मुँह मोड़ते हो? वह तुम्हारे पिता हैं, तुम्हें उनकी सेवा करनी चाहिए। एक बात भी ऐसी मुँह से न निकालनी चाहिए, जिससे उनका दिल दुखे। उन्हें यह ख्याल करने का मौका ही क्यों दो कि सब मेरी कमाई खानेवाले हैं, बात पूछनेवाला कोई नहीं। मेरी उम्र तुमसे कहीं ज्यादा है, जियाराम, पर आज तक मैंने अपने पिताजी की किसी बात का जवाब नहीं दिया। वह आज भी मुझे डाँटते हैं, सिर झुकाकर सुन लेता हूँ। जानता हूँ, वह जो कुछ कहते हैं, मेरे भले ही की कहते हैं। माता-पिता से बढ़कर हमारा हितैषी और कौन हो सकता है? उनके ऋण से कौन मुक्त हो सकता है?

जिया द्वारा डॉक्टर सिन्हा की बातों पर अमल करने का निश्चय करना

जियाराम बैठा रोता रहा। अभी उसके सद्भावों का संपूर्णतः लोप न हुआ था, अपनी दुर्जनता उसे साफ नजर आ रही थी। इतनी ग्लानि उसे बहुत दिनों से न आई थी। रोकर डॉक्टर साहब से कहा—मैं बहुत ही लज्जित हूँ। दूसरों के बहकाने में आ गया। अब आप मेरी जरा भी शिकायत न सुनेंगे। आप पिताजी से मेरे अपराध क्षमा करा दीजिए। मैं सचमुच बड़ा अभागा हूँ। उन्हें मैंने बहुत सताया। उनसे कहिए—मेरे अपराध क्षमा कर दें, नहीं मैं मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँगा—डूब मरूँगा।
डॉक्टर साहब अपनी उपदेश-कुशलता पर फूले न समाये। जियाराम को गले लगाकर विदा किया।
जियाराम घर पहुँचा, तो ग्यारह बज गये थे। मुंशीजी भोजन करके अभी बाहर आये थे। उसे देखते ही बोले—जानते हो कै बजे हैं? बारह का वक्त है।
जियाराम ने बड़ी नम्रता से कहा—डॉक्टर सिन्हा मिल गये। उनके साथ उनके घर तक चला गया। उन्होंने खाने के लिए जिद की, मजबूरन खाना पड़ा। इसी से देर हो गई।
मुंशीजी—डॉक्टर सिन्हा से दुखड़े रोने गये होंगे या और कोई काम था।

जिया का पिता से तकरार होना

जियाराम की नम्रता का चौथा भाग उड़ गया, बोला—दुखड़े रोने की मेरी आदत नहीं है।
मुंशीजी—जरा भी नहीं, तुम्हारे मुँह में तो जबान ही नहीं! मुझसे जो लोग तुम्हारी बातें कहा करते हैं, वह गढ़ा करते होंगे[10]?

---

1 शाकाहारी होगी, 2 परेशान करते हो, 3 मु०—ठान लिया है, निश्चय कर लिया है, 4 बिना किसी उद्देश्य से, 5 बिना कारण से, 6 संगत, 7 धमकी, 8 विश्वास करो, 9 शोक करते हैं, 10 बनाकर कहते होंगे

जियाराम—और दिनों की मैं नहीं कहता; लेकिन आज डॉक्टर सिन्हा के यहाँ मैंने कोई बात ऐसी नहीं की, जो इस वक्त आपके सामने न कर सकूँ।

मुंशीजी—बड़ी खुशी की बात है। बेहद खुशी हुई। आज से गुरुदीक्षा ले ली है क्या?

जियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और गायब हो गया। सिर उठाकर बोला—आदमी बिना गुरुदीक्षा लिए हुए भी अपनी बुराइयों पर लज्जित हो सकता है। अपना सुधार करने के लिए गुरुमन्त्र कोई जरूरी चीज नहीं।

मुंशीजी—अब तो लुच्चे[1] न जमा होंगे?

जियाराम—आप किसी को लुच्चा क्यों कहते हैं, जब तक ऐसा कहने के लिए आपके पास कोई प्रमाण नहीं?

मुंशीजी—तुम्हारे दोस्त सब लुच्चे-लफंगे हैं। एक भी भला आदमी नहीं। मैं तुमसे कई बार कह चुका कि उन्हें यहाँ मत जमा किया करो; पर तुमने सुना नहीं। आज मैं आखिरी बार कहे देता हूँ कि अगर तुमने उन शोहदों[2] को जमा किया तो मुझे पुलिस की सहायता लेनी पड़ेगी।

जियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और गायब हो गया। फड़ककर[3] बोला—अच्छी बात है, पुलिस की सहायता लीजिये। देखें, पुलिस क्या करती है? मेरे दोस्तों में आधे से ज्यादा पुलिस के अफसरों ही के बेटे हैं। जब आप ही मेरा सुधार करने पर तुले हैं, तो मैं व्यर्थ क्यों कष्ट उठाऊँ? यह कहता हुआ जियाराम अपने कमरे में चला गया और एक क्षण के बाद हारमोनियम के मीठे स्वरों की आवाज बाहर आने लगी।

सहृदयता का जलाया हुआ दीपक निर्दय व्यंग के एक झोंके से बुझ गया। अड़ा हुआ घोड़ा चुमकारने से जोर मारने लगा था, पर हण्टर पड़ते ही फिर अड़ गया और गाड़ी को पीछे ढकेलने लगा।

19

अबकी सुधा के साथ निर्मला को भी आना पड़ा। वह तो मैके में कुछ दिन और रहना चाहती थी लेकिन शोकातुर[4] सुधा अकेले कैसे रहती! उसकी खातिर आना ही पड़ा। रुक्मिणी ने भूँगी से कहा—देखती हूँ, बहू मैके से कैसा निखरकर[5] आई है!

सुधा के साथ निर्मला का अपने घर वापस आना

भूँगी ने कहा—दीदी, माँ के हाथ की रोटियाँ लड़कियों को बहुत अच्छी लगती है।

रुक्मिणी—ठीक कहती है भूँगी, खिलाना तो बस माँ ही जानती है।

निर्मला को ऐसा मालूम हुआ कि घर का कोई आदमी उसके आने से खुश नहीं। मुंशीजी ने खुशी तो बहुत दिखाई, पर हृदयगत चिन्ता को न छिपा सके। बच्ची का नाम सुधा ने आशा रख दिया था। वह आशा की मूर्ति-सी थी भी। देखकर सारी चिन्ता भाग जाती थी। मुंशीजी ने उसे गोद में लेना चाहा, तो रोने लगी, दौड़कर माँ से लिपट गई, मानो पिता को पहचानती ही नहीं। मुंशीजी ने मिठाइयों से उसे परचाना[6] चाहा। घर में कोई नौकर तो था नहीं, जाकर सियाराम से दो आने की मिठाइयाँ लाने को कहा। जियाराम भी बैठा हुआ था। बोल उठा हम लोगों के लिए तो कभी मिठाइयाँ नहीं आतीं।

बच्चों के लिए मिठाई लाने को लेकर पिता पुत्र में फिर तकरार होना

मुंशीजी ने झुंझलाकर कहा—तुम लोग बच्चे नहीं हो।

जियाराम—और क्या बूढ़े हैं? मिठाइयाँ मँगवाकर रख दीजिए, तो मालूम हो कि बच्चे हैं या बूढ़े! निकालिए चार आना और! आशा के बदौलत हमारे नसीब भी जागें।

मुंशीजी—मेरे पास इस वक्त पैसे नहीं हैं। जाओ सिया, जल्द आना।

जिया०—सिया नहीं जायेगा। किसी का गुलाम नहीं है। आशा अपने बाप की बेटी है, तो वह भी अपने बाप का बेटा है।

मुंशीजी—क्या फजूल की बातें करते हो। नन्हीं-सी बच्ची की बराबरी करते तुम्हें शर्म नहीं आती? जाओ सियाराम, ये पैसे लो।

जिया०—मत जाना सिया! तुम किसी के नौकर नहीं हो।

सिया बड़ी दुविधा में पड़ गया। किसका कहना माने? अन्त में उसने जियाराम का कहना मानने का निश्चय किया। बाप ज्यादा-से-ज्यादा घुड़क देंगे, जिया तो मारेगा, फिर वह किसके पास फरियाद[7] लेकर जायेगा। बोला—मैं न जाऊँगा।

मुंशीजी ने धमकाकर कहा—अच्छा, तो मेरे पास फिर कोई चीज माँगने मत आना।

मुंशीजी खुद बाजार चले गये, और एक रुपये की मिठाई लेकर लौटे। दो आने की मिठाई माँगते हुए उन्हें शर्म आई। हलवाई उन्हें पहचानता था। दिल में क्या कहेगा?

मिठाई लिए हुए मुंशीजी अन्दर चले गए। सियाराम ने मिठाई का बड़ा-सा दोना देखा, तो बाप का कहना न मानने का उसे दुःख हुआ। अब वह किस मुँह से मिठाई लेने अन्दर जायेगा। बड़ी भूल

1 शैतान, 2 बदमाशों, 3 तनककर, 4 शोक से दुखी, 5 स्वास्थ्य परिवर्तन, 6 बहलाना, 7 निवेदन, प्रार्थना

हो गई वह मन-ही-मन जियाराम के चाँटों की चोट और मिठाई की दुकान में तुलना करने लगा। सहसा भूँगी ने दो तश्तरियाँ दोनों के सामने लाकर रख दीं। जियाराम ने बिगड़कर कहा—इसे उठा ले जा!
भूँगी—काहे को बिगड़त हो बाबू, क्या मिठाई अच्छी नहीं लगती?
जिया०—मिठाई आशा के लिए आई है, हमारे लिए नहीं आई? ले जा; नहीं तो मैं सड़क पर फेंक दूँगा। हम तो पैसे-पैसे के लिए **रटते**[1] रहते हैं, और यहाँ रुपये की मिठाई आती है।
भूँगी—तुम ले लो सिया बाबू, यह न लेंगे न सही।
सियाराम ने डरते-डरते हाथ बढ़ाया था कि जियाराम ने डाँटकर कहा—मत छूना मिठाई, नहीं तो हाथ तोड़कर रख दूँगा! लालची कहीं का!

सियाराम यह **घुड़की**[2] सुनकर सहम उठा, मिठाई खाने की हिम्मत न पड़ी। निर्मला ने यह कथा सुनी; तो दोनों लड़कों को मनाने चली। मुंशीजी ने कड़ी कसम रखा दी।
निर्मला—आप समझते नहीं हैं। यह सारा गुस्सा मुझ पर है।
मुंशीजी—**गुस्ताख**[3] हो गया है। इस ख्याल से कोई सख्ती नहीं करता कि लोग कहेंगे, बिना माँ के बच्चों को सताते हैं, नहीं तो सारी शरारत घड़ी भर में निकाल दूँ।
निर्मला—इस बदनामी का तो मुझे भी डर है।
मुंशीजी—अब न डरूँगा, जिसके जी में जो आये कहे।
निर्मला—पहले तो यह ऐसे न थे!
मुंशीजी—अजी, कहता है कि आपके लड़के मौजूद थे, आपने शादी क्यों की! यह कहते भी इसे संकोच नहीं होता कि आप लोगों ने मंसाराम को विष दे दिया। लड़का नहीं है, शत्रु है।

जियाराम द्वार पर छिपकर खड़ा था। स्त्री-पुरुष में मिठाई के विषय में क्या बातें होती हैं, यही सुनने वह आया था। मुंशीजी का अन्तिम वाक्य सुनकर उससे न रहा गया। बोल उठा—शत्रु न होता तो आप उसके पीछे क्यों पड़ते? आप जो इस वक्त कह रहे हैं वह मैं बहुत पहले से समझे बैठा हूँ। भैया न समझे थे, धोखा खा गये। हमारे साथ आपकी **दाल न गलेगी**[4]। सारा जमाना कह रहा है कि भाई साहब को जहर दिया गया है। मैं कहता हूँ तो आपको क्यों गुस्सा आता है?

निर्मला तो **सन्नाटे**[5] में आ गई! मालूम हुआ, किसी ने उसकी देह पर अंगारे डाल दिये। मुंशीजी ने डाँटकर जियाराम को चुप करना चाहा, जियाराम निःशंक खड़ा **ईंट का जवाब पत्थर से देता रहा**[6]। यहाँ तक कि निर्मला को भी उस पर क्रोध आ गया। यह कल का छोकरा, किसी काम का न काज का, यों खड़ा **टर्रा रहा है,**[7] जैसे घर भर का पालन-पोषण यही करता हो। त्योरियाँ चढ़ाकर बोली—बस, अब बहुत हुआ जियाराम! मालूम हो गया, तुम बड़े लायक हो, बाहर जाकर बैठो।

मुंशीजी अब तक तो कुछ दब-दबकर बोलते रहे, निर्मला की **शह**[8] पाई तो दिल बढ़ गया। दाँत पीसकर लपके और इसके पहिले कि निर्मला उनके हाथ पकड़ सके, एक थप्पड़ चला ही दिया। थप्पड़ निर्मला के मुँह पर पड़ा, वही सामने पड़ी। माथा चकरा गया। मुंशीजी के सूखे हुये हाथों में भी इतनी शक्ति है, इसका वह अनुमान न कर सकती थी। सिर पकड़ कर बैठ गई। मुंशीजी का **क्रोध और भी भड़क उठा,**[9] फिर घूँसा चलाया पर अबकी जियाराम ने उनका हाथ पकड़ लिया और पीछे ढकेलकर बोला—दूर से बातें कीजिए, क्यों नाहक अपनी बेइज्जती करवाते हैं? अम्माँजी का लिहाज कर रहा हूँ, नहीं तो दिखा देता।

यह कहता हुआ वह बाहर चला गया। मुंशीजी संज्ञा-शून्य से खड़े रहे। इस वक्त अगर जियाराम पर दैवी वज्र गिर पड़ता तो शायद उन्हें हार्दिक आनन्द होता। जिस पुत्र को कभी गोद में लेकर **निहाल हो जाते थे**[10], उसी के प्रति आज भाँति-भाँति की दुष्कल्पनाएँ मन में आ रही थीं।
रुक्मिणी अब तक तो अपनी कोठरी में थीं। अब आकर बोली—बेटा अपने बराबर का हो जाये, तो उस पर हाथ न छोड़ना चाहिए।
मुंशीजी ने ओठ चबाकर कहा—मैं इसे घर से निकालकर छोड़ूँगा। भीख माँगे या चोरी करे, मुझसे कोई मतलब नहीं।
रुक्मिणी—**नाक किसकी कटेगी**[11]?

---

1 बार-बार कहना, 2 डाँट, 3 बड़ों का संकोच न करने वाला; 4 मु०— वश न चलना, काम नहीं बनेगा, 5 सकते में आ जाना; आश्चर्य चकित होना, 6 मु०—प्रश्न का कड़ा उत्तर देना रहा, 7 बक रहा है, 8 बढ़ावा, 9 क्रोध बढ़ जाना, 10 प्रसन्न हो जाते थे, 11 मु०—किसकी बेइज्जती न होगी

मुंशीजी—इसकी चिन्ता नहीं।

निर्मला—मैं जानती कि मेरे आने से यह तूफान खड़ा हो जायेगा[1] तो भूलकर भी न आती। अब भी भला है, मुझे भेज दीजिए। इस घर में मुझसे न रहा जायेगा।

रुक्मिणी—तुम्हारा बहुत लिहाज करता है बहू! नहीं तो आज अनर्थ ही हो जाता।

निर्मला—अब और क्या अनर्थ होगा दीदीजी! मैं तो फूँक-फूँक कर पाँव रखती[2] हूँ; फिर भी अपयश लग ही जाता है। अभी घर में पाँव रखते देर नहीं हुई और यह हाल हो गया! ईश्वर ही कुशल करे।

रात को भोजन करने कोई न उठा। अकेले मुंशीजी ने खाया। निर्मला को आज नई चिन्ता हो गई—जीवन कैसे पार लगेगा? अपना ही पेट होता तो विशेष चिन्ता न थी। अब तो एक नई विपत्ति गले पड़ गई थी। वह सोच रही थी—मेरी बच्ची के भाग्य में क्या लिखा है राम!

निर्मला को भविष्य की चिंता

बोध प्रश्न

9 निम्नलिखित कथन किसके हैं?

क) जो लोग हृदय के उदार होते हैं, क्या चरित्र के भी अच्छे होते हैं? पराई स्त्री को घूरने में तो किसी मर्द को संकोच नहीं होता। ....

ख) अरे बहिन जी, क्या इतना भूल जाऊँगा? अभी तो जलपान का सामान दिये चला आता हूँ ....

ग) ओफ्फोह! बड़ा गहरा पेट लगता है तुम्हारा : ....

घ) हाँ बहिन; इसकी अजीब आदत है! मेरे साथ सोता और मेरे ही साथ जागता है। उस जन्म का कोई तपस्वी है ....

ङ) डॉक्टर हकीम का यहाँ कुछ काम नहीं! साफ तो देख रही हूँ कि बच्चे को नजर लग गई है। ....

10 सुधा के बच्चे की मृत्यु के बाद जब डॉक्टर सिन्हा आए तो सुधा उनका सामना करने से कतरा रही थी, क्योंकि

क) पुत्र की मृत्यु का कारण वह स्वयं को मानती थी।

ख) पुत्र की मृत्यु के कारण निर्मला से झगड़ा हो गया था।

ग) सुधा ने निर्मला के माँ की बात नहीं मानी थी।

घ) पुत्र के मृत्यु का दोषी डॉक्टर साहब को मानती थी। ☐

11 जिन दिनों निर्मला बहन की शादी में मायके गई थी उन दिनों जियाराम के व्यवहार में परिवर्तन आया। उसके व्यवहार परिवर्तन से संबंधित कुछ कथन दिए जा रहे हैं सही के आगे (✓) का निशान लगाइए।

क) जियाराम उदास रहने लगा [ ]

ख) जियाराम पड़ोसियों से झगड़ा करने लगा [ ]

ग) पिता के प्रति अभद्र व्यवहार करने लगा [ ]

घ) सियाराम को हमेशा पीटने लगा [ ]

12 कृष्णा के विवाह के बाद निर्मला ससुराल क्यों नहीं जाना चाहती थी? दो पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

13 सुधा के पुत्र की मृत्यु उपन्यास का एक अनावश्यक प्रसंग है, क्योंकि

क) यह उपन्यास के केंद्रीय विषय (दहेज, अनमेल विवाह) से बिल्कुल अलग-थलग है।

ख) उपन्यास की कथा के लिए यह प्रसंग लाना जरूरी था।

ग) डॉक्टर साहब को अपने कर्म का फल मिला।

घ) रुक्मिणी इससे बहुत प्रसन्न हुई।

---

1 मु०—बड़ी विपत्ति आ जायेगी।

कृष्णा का विवाह संपन्न हो जाता है। यहाँ निर्मला के सामने यह रहस्य खुलता है कि डॉक्टर साहब, ही लड़के के बड़े भाई हैं। वह यह भी समझ जाती है कि कृष्णा का विवाह सुधा के प्रयत्नों से ही संभव हो सका। इस कारण वह सुधा और डॉक्टर साहब से और भी गहरे रूप में जुड़ जाती है। वकील साहब के साथ निर्मला वापस नहीं लौटती, वह नैहर में ही रह जाती है। इसी बीच सुधा उसके घर का हाल बताती है। जियाराम उद्दंड हो चुका है और पिता-पुत्र में नित्य झड़पें हुआ करती हैं। इधर एक घटना और घट जाती है। सुधा का लड़का बीमार पड़ता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। निर्मला सुधा के साथ वापस "घर" लौटती है और वहाँ उसका सामना पिता-पुत्र संघर्ष से होता है। क्या निर्मला घर की बिगड़ी स्थिति संभाल सकी, जियाराम रास्ते पर आ गया? आगे आने वाले अंश में देखें क्या होता है?

20

चिन्ता में नींद कब आती है? निर्मला चारपाई पर करवटें बदल रही थी। कितना चाहती थी कि नींद आ जाये; पर नींद ने न आने की कसम-सी खा ली थी। चिराग बुझा दिया था, खिड़की के दरवाजे खोल दिये थे, टिक-टिक करने वाली घड़ी भी दूसरे कमरे में रख आई थी; पर नींद का नाम न था; जितनी बातें सोचनी थीं; सब सोच चुकी—चिन्ताओं का भी अन्त हो गया पर पलकें न झपकीं। तब उसने लैम्प जलाया और एक पुस्तक पढ़ने लगी। दो-ही चार पृष्ठ पढ़े होंगे कि झपकी आ गई। किताब खुली रह गई।

जियाराम द्वारा गहना चोरी करना

सहसा जियाराम ने कमरे में कदम रखा। उसके पाँव थर-थर काँप रहे थे। उसने कमरे में ऊपर नीचे देखा। निर्मला सोई हुई थी उसके सिरहाने ताक पर, एक छोटा-सा पीतल का सन्दूक रक्खा हुआ था। जियाराम दबे पाँव गया, धीरे से सन्दूकचा उतारा और बड़ी तेजी से कमरे के बाहर निकला। उसी वक्त निर्मला की आँखें खुल गईं। चौंककर उठ खड़ी हुई। द्वार पर आकर देखा। कलेजा धक्-से हो गया। क्या यह जियाराम है! मेरे कमरे में क्या करने आया था? कहीं मुझे धोखा तो नहीं हुआ? शायद दीदीजी के कमरे में आया हो। यहाँ उसका काम ही क्या था? शायद मुझसे कुछ कहने आया हो; लेकिन इस वक्त क्या कहने आया होगा? इसकी नीयत[2] क्या है? उसका दिल काँप उठा[3]!

मुंशीजी ऊपर छत पर सो रहे थे मुंडेर[4] न होने के कारण निर्मला ऊपर न सो सकती थी। उसने सोचा चलकर उन्हें जगाऊँ; पर जाने की हिम्मत न पड़ी। शक्की आदमी हैं न जाने क्या समझ बैठें और क्या करने को तैयार हो जायें। आकर फिर वही पुस्तक पढ़ने लगी। सबेरे पूछने पर आपही मालूम हो जायेगा। कौन जाने मुझे धोखा ही हुआ हो। नींद में कभी-कभी धोखा हो जाता है, लेकिन सबेरे पूछने का निश्चय करने पर भी उसे फिर नींद नहीं आई।

जिया के व्यवहार से निर्मला को सन्देह होना

सबेरे वह जलपान लेकर स्वयं सियाराम के पास गई, तो वह उसे देखकर चौंक पड़ा। रोज तो भूँगी आती थी, आज यह क्यों आ रही है? निर्मला की ओर ताकने की उसकी हिम्मत न पड़ी।

निर्मला ने उसकी ओर विश्वासपूर्ण नेत्रों से देखकर पूछा—रात को तुम मेरे कमरे में गये थे? जियाराम ने विस्मय दिखाकर कहा—मैं? भला मैं रात को क्या करने जाता। क्या कोई गया था? निर्मला ने इस भाव से कहा, मानो उसे उसकी बात का पूरा विश्वास हो गया—हाँ, मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई मेरे कमरे से निकला। मैंने उसका मुँह तो न देखा, पर उसकी पीठ देखकर अनुमान किया कि शायद तुम किसी काम से आये हो। इसका पता कैसे चले कौन था? कोई था जरूर इसमें कोई सन्देह नहीं।

जियाराम अपने को निरपराध सिद्ध करने की चेष्टा कर कहने लगा—मैं तो रात को थियेटर देखने चला गया था। वहाँ से लौटा तो एक मित्र के घर लेटा रहा। थोड़ी देर हुई लौटा हूँ। मेरे साथ और भी कई मित्र थे। जिससे जी चाहे, पूछ लें। हाँ; भाई मैं बहुत डरता हूँ। ऐसा न हो, कोई चीज गायब हो गई, तो मेरा नाम लगे। चोर को तो कोई पकड़ नहीं सकता, मेरे मत्थे जायेगी। बाबूजी को आप जानती हैं। मुझे मारने दौड़ेंगे।

निर्मला—तुम्हारा नाम क्यों लगेगा? अगर तुम्हीं होते तो भी तुम्हें कोई चोरी नहीं लगा सकता। चोरी दूसरे की चीज की जाती है, अपनी चीज की चोरी कोई नहीं करता

अभी तक निर्मला की निगाह अपने सन्दूकचे पर न पड़ी थी। भोजन बनाने लगी। जब वकील साहब कचहरी चले गये, तो वह सुधा से मिलने चली। इधर कई दिनों से मुलाकात न हुई थी, फिर रातवाली घटना पर विचार परिवर्तन भी करना था। भूँगी से कहा—कमरे में से गहनों का बक्स उठा ला।

भूँगी ने लौटकर कहा—वहाँ तो कहीं सन्दूक नहीं है। कहाँ रखा था?

निर्मला ने चिढ़कर कहा—एक बार में तो तेरा काम ही कभी नहीं होता। वहाँ छोड़कर और जायेगा

1 मु०—संभल कर चलती है, 2 इरादा, इच्छा, 3 मु०—भय लगने लगा, 4 घर की छत के चारों ओर की दीवार।

कहाँ। आलमारी में देखा था?

भूँगी—नहीं बहू जी, आलमारी में तो नहीं देखा, झूठ क्यों बोलूँ!
निर्मला मुस्करा पड़ी। बोली—जा देख, जल्दी आ। एक क्षण में भूँगी फिर खाली हाथ लौट आई—आलमारी में भी तो नहीं है। अब जहाँ बताओ वहाँ देखूँ।

निर्मला द्वारा गहना खोजना

निर्मला झुँझलाकर यह कहती हुई उठ खड़ी हुई—तुझे ईश्वर ने आँखें ही न जाने किस लिए दीं। देख; उसी कमरे में से लाती हूँ कि नहीं।

भूँगी भी पीछे-पीछे कमरे में गई। निर्मला ने ताक पर निगाह डाली, आलमारी खोलकर देखी। चारपाई के नीचे झाँककर देखा, फिर कपड़ों का बड़ा सन्दूक खोलकर देखा। बक्स का कहीं पता नहीं। आश्चर्य हुआ—आखिर बक्स गया कहाँ?

सहसा रातवाली घटना बिजली की भाँति उसकी आँखों के सामने चमक गई। कलेजा उछल पड़ा। अब तक निश्चिन्त होकर खोज रही थी। अब ताप-सा चढ़ आया। बड़ी उतावली से चारों ओर खोजने लगी। कहीं पता नहीं। जहाँ खोजना चाहिए था, वहाँ भी खोजा और जहाँ नहीं खोजना चाहिए था, वहाँ भी खोजा। इतना बड़ा सन्दूकचा बिछावन के नीचे कैसे छिप जाता; पर बिछावन भी झाड़कर देखा। क्षण-क्षण मुख की कान्ति मलिन होती जाती थी। **प्राण नशों में समाते जाते थे**[1]। अन्त को निराश होकर उसने छाती पर एक घूँसा मारा, और रोने लगी।

गहने ही स्त्री की सम्पत्ति होते हैं। पति की और किसी सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं होता। इन्हीं का उसे बल और गौरव होता है। निर्मला के पास पाँच-छः हजार के गहने थे। जब उन्हें पहनकर वह निकलती थी, तो उतनी देर के लिए उल्लास से उसका हृदय खिला रहता था। एक-एक गहना मानो विपत्ति और बाधा से बचाने के लिए एक-एक रक्षास्त्र था। अभी रात ही उसने सोचा था, जियाराम की लौंडी बन कर वह न रहेगी! ईश्वर न करे कि वह किसी के सामने हाथ फैलाये। इसी खेवे से वह अपनी नाव को भी पार लगा देगी और अपनी बच्ची को भी किसी-न-किसी घाट पहुँचा देगी। उसे किस बात की चिन्ता है। इन्हें तो कोई उससे न छीन लेगा। आज ये मेरे सिंगार हैं, कल को मेरे आधार हो जायेंगे। इस विचार से उसके हृदय को कितनी सान्त्वना मिली थी? वह सम्पत्ति आज उसके हाथ से निकल गई। अब वह निराधार थी। संसार में उसे कोई अवलम्ब, कोई सुहारा न था। उसकी आशाओं का आधार जड़ से कट गया, वह फूट-फूटकर रोने लगी। ईश्वर! तुमसे इतना भी न देखा गया? मुझ दुखिया को तुमने यों ही अपंग बना दिया था, अब आँखें भी फोड़ दीं। अब वह किसके सामने हाथ फैलायेगी, किसके द्वार पर भीख माँगेगी। पसीने से उसकी देह भीग गई, रोते-रोते आँखें सूज गईं। निर्मला सिर नीचा किये रो रही थी! रुक्मिणी उसे धीरज दिला रही थीं, लेकिन उसके आँसू न रुकते थे, शोक की ज्वाला कम न होती थी।

गहने के बारे में जिया से पूछना

तीन बजे जियाराम स्कूल से लौटा। निर्मला उसके आने की खबर पाकर विक्षिप्त[2] की भाँति उठी, और उसके कमरे के द्वार पर आकर बोली—भैया, दिल्लगी की हो तो दे दो। दुखिया को सताकर क्या पाओगे?

जियाराम एक क्षण के लिए कातर हो उठा। चोर-कला में उसका यह पहला ही प्रयास था। वह कठोरता जिससे हिंसा में मनोरंजन होता है, अभी तक उसे प्राप्त न हुई थी। यदि उसके पास सन्दूकचा होता, और फिर इतना मौका मिलता कि उसे ताक पर रख आवे, तो कदाचित् वह उस मौके को न छोड़ता, लेकिन सन्दूक उसके हाथ से निकल चुका था। यारों ने उसे सराफे में पहुँचा दिया था और औने-पौने बेच भी डाला था। चोरों की झूठ के सिवा और कौन रक्षा कर सकता है। बोला—भला अम्माँजी, मैं आपसे ऐसी दिल्लगी करूँगा? आप अभी तक मुझ पर शक करती जा रही हैं। मैं कह चुका कि मैं रात को घर पर न था, लेकिन आपको **यकीन**[3] ही नहीं आता। बड़े दुःख की बात है कि मुझे आप इतना नीच समझती हैं।
निर्मला ने आँसू पोंछते हुए कहा—मैं तुम्हारे ऊपर शक नहीं करती भैया! तुम्हें चोरी नहीं लगाती। मैंने समझा, शायद दिल्लगी की हो।

जियाराम पर वह चोरी का सन्देह कैसे कर सकती थी? दुनिया यही तो कहेगी कि लड़के की माँ मर गई है, तो उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जा रहा है। मेरे मुँह में ही तो कालिख लगेगी। जियाराम ने आश्वासन देते हुए कहा—चलिए, मैं देखूँ, आखिर ले कौन गया? चोर आया किस रास्ते से?
भूँगी—भैया, तुम चोरों के आने की कहते हो। चूहे के बिल से तो निकल आते हैं, यहाँ तो चारों ओर ही खिड़कियाँ हैं।

---

1 भयभीत हो जाते थे, 2 पागल, 3 विश्वास

जियाराम—खूब अच्छी तरह तलाश कर लिया है?
निर्मला—सारा घर तो छान मारा, अब कहाँ खोजने को कहते हो?
जियाराम—आप लोग सो भी तो जाती हैं मुर्दों से बाजी लगाकर।
चार बजे मुंशीजी घर में आये तो निर्मला की दशा देखकर पूछा—कैसी तबियत है? कहीं दर्द तो नहीं है? यह कहकर उन्होंने आशा को गोद में उठा लिया।
निर्मला कोई जवाब न दे सकी, फिर रोने लगी।

गहना चोरी के बारे में मुंशीजी को बताना

भूँगी ने कहा—ऐसा कभी नहीं हुआ था। मेरी सारी उम्र इसी घर में कट गई। आज तक एक पैसे की चोरी नहीं हुई। दुनिया यही कहेगी कि भूँगी का काम है, अब तो भगवान ही **पत-पानी रखें**[1]।
मुंशीजी अचकन के बटन खोल रहे थे। फिर बटन बन्द करते हुए बोले—क्या हुआ? क्या कोई चीज चोरी हो गई?
भूँगी—बहूजी के सारे गहने उठ गए।
मुंशीजी—रखे कहाँ थे?
निर्मला ने सिसकियाँ लेते हुए रात की सारी घटना बयान कर दी, पर जियाराम की सूरत के आदमी के अपने कमरे से निकलने की बात न कही। मुंशीजी ने ठंडी साँस भर कर कहा—ईश्वर भी बड़ा अन्यायी है। जो मरे हैं उन्हीं को मारता है। मालूम होता है, **अदिन**[2] आ गए हैं। मगर चोर आया तो किधर से? कहीं सेंध न पड़ी, और किसी तरफ से आने का रास्ता नहीं। मैंने तो कोई ऐसा पाप नहीं किया, जिसकी मुझे यह सजा मिल रही हो! बार-बार कहता रहा—गहने का सन्दूकचा ताक पर मत रखो, मगर कौन सुनता है।
निर्मला—मैं क्या जानती थी कि यह गजब टूट पड़ेगा।
मुंशीजी—इतना जानती थी कि सब दिन बराबर नहीं जाते। आज बनवाने जाऊँ तो दस हजार से कम न लगेंगे। आजकल अपनी जो दशा है, वह तुमसे छिपी नहीं, खर्च भर को मुश्किल से मिलता है, गहने कहाँ से बनेंगे। जाता हूँ पुलिस में **इत्तिला**[3] कर आता हूँ, पर मिलने की कोई उम्मीद न समझो।
निर्मला ने आपत्ति के भाव से कहा—जब जानते हैं कि पुलिस में इत्तिला करने से कुछ न होगा, तो क्यों जा रहे हैं?
मुंशीजी—दिल नहीं मानता, और क्या? इतना बड़ा नुकसान उठा कर चुपचाप तो नहीं बैठा जाता।
निर्मला—मिलने वाले होते तो जाते ही क्यों? तकदीर में न थे, तो कैसे रहते?
मुंशीजी—तकदीर में होंगे, तो मिल जायेंगे, नहीं तो गये तो हैं ही।
मुंशीजी कमरे से निकले। निर्मला ने उनका हाथ पकड़कर कहा—मैं कहती हूँ, मत जाओ, कहीं ऐसा न हो, लेने के देने पड़ जायें।

मुंशीजी द्वारा गहना चोरी की सूचना थाने में करना

मुंशीजी ने हाथ छुड़ाकर कहा—तुम भी कैसी बच्चों की-सी जिद्द कर रही हो। दस हजार का नुकसान ऐसा नहीं है, जिसे मैं यों ही उठा लूँ। मैं रो नहीं रहा हूँ, पर मेरे हृदय पर जो बीत रही है, वह मैं ही जानता हूँ। यह चोट मेरे कलेजे पर लगी है। मुंशीजी और कुछ न कह सके! गला फँस गया। वह तेजी से कमरे से निकल आये और थाने पर जा पहुँचे। थानेदार उनका बहुत **लिहाज**[4] करता था। उसे एक बार रिश्वत के मुकदमे से बरी करा चुके थे। उनके साथ ही **तफतीश**[5] करने आ पहुँचा। नाम था अलायार खाँ।

जाँच के बाद थानेदार द्वारा घर के लोगों पर शक करना

शाम हो गई थी। थानेदार ने मकान के अगवाड़े-पिछवाड़े घूम-घूमकर देखा। अन्दर जाकर निर्मला के कमरे को गौर से देखा। ऊपर की मुंडेर की जाँच की। मुहल्ले के दो-चार आदमियों से चुपके-चुपके कुछ बातें की और तब मुंशीजी से बोले—जनाब, खुदा की कसम, यह किसी बाहर के आदमी का काम नहीं। खुदा की कसम, अगर कोई बाहर का आदमी निकले तो आज से थानेदारी करना छोड़ दूँ। आपके घर में कोई **मुलाजिम**[6] ऐसा तो नहीं है, जिस पर आपको **शुबहा**[7] हो।
मुंशीजी—घर में तो आजकल सिर्फ एक **महरी**[8] है।
थानेदार—अजी, वह पगली है। यह किसी बड़े शातिर का काम है, खुदा की कसम।
मुंशीजी—तो घर में और कौन है? मेरे दोनों लड़के हैं, स्त्री है, और बहन है। इनमें से किस पर शक करूँ?
थानेदार—खुदा की कसम, घर ही के किसी आदमी का काम है, चाहे, वह कोई हो! इन्शाअल्लाह, दो-चार दिन में मैं आपको इसकी खबर दूँगा। यह तो नहीं कह सकता कि माल भी सब मिल जायेगा, पर खुदा की कसम, चोर जरूर पकड़ दिखाऊँगा।

थानेदार चला गया, तो मुंशीजी ने आकर निर्मला से उसकी बातें कहीं। निर्मला सहम उठी—आप थानेदार से यह कह दीजिये, **तफतीश**[9] न करें, आपके पैरों पड़ती हूँ।

---

1 मु०—लाज रखें, 2 बुरे दिन, 3 सूचना, 4 आदर, 5 जाँच, 6 अभियुक्त, 7 शक, 8 नौकरानी, 9 जाँच

मुंशीजी—आखिर क्यों?
निर्मला—अब क्या बताऊँ? वह कह रहा है कि घर ही के किसी आदमी का काम है।
मुंशीजी—उसे बकने दो।

जियाराम अपने कमरे में बैठा हुआ भगवान को याद कर रहा था। उसके मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं[1]। सुन चुका था कि पुलिसवाले चेहरे से भाँप जाते हैं। बाहर निकलने की हिम्मत न पड़ती थी। दोनों आदमियों में क्या बातें हो रही हैं, यह जानने के लिए वह छटपटा रहा था। ज्योंही थानेदार चला गया, और भूँगी किसी काम से बाहर निकली, जियाराम ने पूछा—थानेदार क्या कह रहा था भूँगी?
भूँगी ने पास आकर कहा—डाढ़ीजार[2] कहता था, घर ही के किसी आदमी का काम है, बाहर का कोई नहीं है।
जियाराम—दादाजी ने कुछ नहीं कहा?
भूँगी—कुछ तो नहीं कहा, खड़े 'हूँ-हूँ' करते रहे। घर में एक भूँगी ही गैर है न; और तो सब अपने ही हैं।
जियाराम—मैं भी तो गैर हूँ तू ही क्यों?
भूँगी—तुम गैर काहे हो भैया?
जियाराम—बाबूजी ने थानेदार से कहा नहीं, घर में किसी पर उनका शुबहा[3] नहीं है।
भूँगी—कुछ रहे कहते नहीं सुना। बेचारे थानेदार ने भले ही कहा—भूँगी तो पगली है, वह क्या चोरी करेगी। बाबूजी तो मुझे फँसाये ही देते थे।
जियाराम—तब तो तू भी निकल गई। अकेला मैं ही रह गया। तूही बता, तूने मुझे उस दिन घर पर देखा था?
भूँगी—नहीं भैया, तुम तो ठेठर[4] देखने गये थे।
जियाराम—गवाही देगी न?
भूँगी यह क्या कहते हो भैया? बहूजी तफतीश[5] बन्द करा देंगी।
जियाराम—सच?
भूँगी—हाँ भैया, बार-बार कहती हैं कि तफतीश न कराओ। गहने गये, जाने दो; पर बाबूजी मानते ही नहीं।

भेद खुल जाने के भय से जियाराम का डरना

पाँच-छः दिन तक जियाराम ने पेट भर भोजन नहीं किया। कभी दो-चार कौर खा लेता, कभी कह देता, भूख नहीं है। उसके चेहरे का रंग उड़ा रहता था। रातें जागते कटतीं, प्रतिक्षण थानेदार की शंका बनी रहती थी। यदि वह जानता कि मामला इतना तूल खींचेगा[6] तो कभी ऐसा काम न करता। उसने तो समझा था—किसी चोर पर शुबहा होगा। मेरी तरफ किसी का ध्यान भी न जायेगा, पर अब भण्डा फूटता हुआ मालूम होता था[7]। अभागा थानेदार जिस ढंग से छान-बीन कर रहा था, उससे जियाराम को बड़ी शंका हो रही थी।

सातवें दिन संध्या समय घर लौटा तो बहुत चिंतित था। आज तक उसे बचने की कुछ-न-कुछ आशा थी। माल अभी तक कहीं बरामद न हुआ था; पर आज उस माल के बरामद होने की खबर मिल गई थी। इसी दम थानेदार कांस्टेबिल को लिए आता होगा। बचने का कोई उपाय नहीं। थानेदार को रिश्वत देने से सम्भव है और मुकदमे को दबा दे, रुपये हाथ में थे। पर क्या बात छिपी रहेगी? अभी माल बरामद नहीं हुआ, फिर भी सारे शहर में अफवाह थी कि बेटे ने ही माल उड़ाया है। माल मिल जाने पर तो गली-गली बात फैल जायेगी। फिर वह किसी को मुँह न दिखा सकेगा।

जियाराम की चोरी का पता लगना

मुंशीजी कचहरी से लौटे तो बहुत घबराये हुए थे। सिर थामकर चारपाई पर बैठ गये।
निर्मला ने कहा—कपड़े क्यों नहीं उतारते? आज तो और दिनों से देर हो गई है।
मुंशीजी—क्या कपड़े उतारूँ? तुमने कुछ सुना?
निर्मला—क्या बात है? मैंने तो कुछ नहीं सुना?
मुंशीजी—माल बरामद हो गया। अब जिया का बचना मुश्किल है।
निर्मला को आश्चर्य नहीं हुआ। उसके चेहरे से ऐसा जान पड़ा मानो उसे यह बात मालूम थी। बोली—मैं तो पहले ही कह रही थी कि थाने में इत्तला[8] मत कीजिए।
मुंशीजी—तुम्हें जिया पर शक था?
निर्मला—शक क्यों नहीं था, मैंने उन्हें अपने कमरे से निकलते देखा था।
मुंशीजी—फिर तुमने मुझसे क्यों न कह दिया?

---

1 मु०—भय लग रहा था, 2 एक प्रकार की गाली, 3 शक, 4 थियेटर, 5 जाँच, 6 मु०—किसी बात का बहुत बढ़ जाना, 7 मु०—भेद खुलने वाला था, 8 सूचना

निर्मला—यह बात मेरे कहने की न थी। आपके दिल में जरूर ख्याल आता कि यह ईर्ष्यावश आक्षेप लगा रही हैं। कहिए, यह ख्याल होता था नहीं? झूठ न बोलिएगा।
मुंशीजी—सम्भव है, मैं इन्कार नहीं कर सकता। फिर भी उस दशा में तुम्हें मुझसे कह देना चाहिए था। रिपोर्ट की नौबत न आती। तुमने अपनी नेक-नामी की तो फिक्र की, पर यह न सोचा कि परिणाम क्या होगा। मैं अभी थाने से चला आता हूँ। अलायार खाँ आता ही होगा!
निर्मला ने हताश होकर पूछा—फिर अब?
मुंशीजी ने आकाश की ओर ताकते हुए कहा—फिर जैसी भगवान की इच्छा। हजार-दो-हजार रुपये रिश्वत देने के लिए होते तो शायद मामला दब जाता, पर मेरी हालत तो तुम जानती हो। तकदीर खोटी है, और कुछ नहीं। पाप तो मैंने किया है; दण्ड कौन भोगेगा! एक लड़का था, उसकी वह दशा हुई, दूसरे की यह दशा हो रही है। नालायक था, गुस्ताख[1] था, कामचोर था, पर था तो अपना ही लड़का; कभी-न-कभी चेत ही जाता। यह चोट अब न सही जायेगी।
निर्मला—अगर कुछ दे-दिलाकर जान बच सके, तो मैं रुपये का प्रबन्ध कर दूँ।
मुंशीजी—कर सकती हो? कितने रुपये दे सकती हो?
निर्मला—कितना दरकार होगा?
मुंशीजी—एक हजार से कम पर तो शायद बातचीत न हो सके। मैंने एक मुकदमे में उससे 1000) लिये थे। वह कसर आज निकालेगा।
निर्मला—हो जायेगा। अभी थाने जाइए।

थानेदार को रिश्वत देकर बात दबा देना

मुंशीजी को थाने में बड़ी देर लगी। एकान्त में बातचीत करने का बहुत देर में मौका मिला! अलायार खाँ पुराना घाघ[2] था! बड़ी मुश्किल से अण्टी पर चढ़ा[3]। पाँच सौ रुपये लेकर भी एहसान का बोझा सिर पर लाद ही दिया। काम हो गया। लौटकर निर्मला से बोले—लो भाई, बाजी मार ली, रुपये तुमने दिये, पर काम मेरी जबान ही ने किया। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से राजी हो गया। यह भी याद रहेगी। जियाराम भोजन कर चुका है?
निर्मला—कहाँ, वह तो अभी घूमकर लौटे ही नहीं।
मुंशीजी—बारह तो बज रहे होंगे।
निर्मला—कई दफे जा-जाकर देख आई। कमरे में अँधेरा पड़ा हुआ है।
मुंशीजी—और सियाराम?
निर्मला—वह तो खा-पीकर सोये हैं?
मुंशीजी—उससे पूछा नहीं, जिया कहाँ गया?
निर्मला—वह तो कहते हैं, मुझसे कुछ कहकर नहीं गये।
मुंशीजी को कुछ शंका हुई। सियाराम को जगाकर पूछा—तुमसे जियाराम ने कुछ कहा नहीं, कब तक लौटेगा? गया कहाँ है?
सियाराम ने सिर खुजलाते और आँखें मलते हुए कहा—मुझसे कुछ नहीं कहा।
मुंशीजी—कपड़े सब पहनकर गया है।
सिया०—जी नहीं, कुर्ता और धोती।
मुंशीजी—जाते वक्त खुश था?
सिया०—खुश तो नहीं मालूम होते थे। कई बार अन्दर आने का इरादा किया पर देहरी[4] से ही लौट गये। कई मिनट तक सायबान[5] में खड़े रहे। चलने लगे तो आँखें पोंछ रहे थे! इधर कई दिन से अक्सर रोया करते थे।
मुंशीजी ने ऐसी ठंडी साँस ली, मानो जीवन में अब कुछ नहीं रहा, और निर्मला से बोले—तुमने किया तो अपनी समझ में भले ही के लिए, पर कोई शत्रु भी मुझ पर इससे कठोर आघात न कर सकता था। जियाराम की माता होती, तो क्या वह यह संकोच करती? कदापि नहीं।
निर्मला बोली—जरा डॉक्टर साहब के यहाँ क्यों नहीं चले जाते? शायद वहाँ बैठे हों। कई लड़के रोज आते हैं, उनसे पूछिए, शायद कुछ पता लग जाये। फूँक-फूँककर चलने पर भी[6] अपयश लग ही गया।
मुंशीजी ने मानो खुली हुई खिड़की से कहा—हाँ, जाता हूँ। और क्या करूँगा।
मुंशीजी बाहर आये तो देखा, डॉक्टर सिन्हा खड़े हैं। चौंककर पूछा—क्या आप देर से खड़े हैं?
डॉक्टर—जी नहीं, अभी आया हूँ। आप इस वक्त कहाँ जा रहे हैं? साढ़े बारह हो गये हैं।
मुंशीजी आप ही की तरफ आ रहा था। जियाराम अभी तक घूम कर नहीं आया। आपकी तरफ तो नहीं गया था?

डॉक्टर सिन्हा द्वारा जिया के आत्महत्या की सूचना देना

डॉक्टर सिन्हा ने मुंशीजी के दोनों हाथ पकड़ लिये, और इतना कह पाये थे, 'भाई साहब, अब धैर्य से काम...' कि मुंशीजी गोली खाये हुए मनुष्य की तरह जमीन पर गिर पड़े।

1 बदमाश, 2 पुराना चोर, 3 बात बनी, 4 कमरे के दरवाजे पर बनी चौखट, 5 मकान या कमरे के आगे की ओर छाया के लिए बनी हुई टीन आदि की छाजन, 6 मु०—ध्यान से काम करने पर भी

ध प्रश्न

4 जियाराम जब गहना चुराने निर्मला के कमरे में गया उस समय निर्मला ने मुंशीजी को इस बात की सूचना नहीं दी।

क) क्योंकि वह ऊपर जाते डरती थी।

ख) वह जियाराम से डरती थी।

ग) वह गहरी निद्रा में थी।

घ) वह मुंशीजी के शकी मिजाज से डरती थी। ☐

15 मुंशीजी गहना चोरी की सूचना पुलिस को देना चाहते थे, किंतु निर्मला ऐसा करने से मना कर रही थी क्यों—दो पंक्तियों में लिखिए।

....

....

16 असली चोर का पता चलने पर मुंशीजी ने क्या किया—दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

17 जियाराम की आत्महत्या की सूचना मुंशीजी को किसने दी?

....

....

इस अंश की कथा जियाराम के नैतिक पतन और उसकी आत्महत्या से है। इसमें जियाराम निर्मला के गहने चुराता है और उसे बेचकर सारा पैसा अपने साथियों के साथ उड़ा देता है। निर्मला जियाराम को कमरे से निकलते देख लेती है, लेकिन पति की शंकालु प्रवृत्ति के कारण उनसे कुछ नहीं कहती। दूसरे दिन जब निर्मला को गहने नहीं मिलते, तो वह जियाराम से इस बारे में पूछती है, पर जियाराम साफ मुकर जाता है। इसी बीच मुंशी तोताराम को इस दुर्घटना का पता चलता है। वे पुलिस को सूचना दे देते हैं। अपराधी सामने आ जाता है। अपमान के भय से जियाराम आत्महत्या कर लेता है। कथा में उसकी आत्महत्या का संकेत मात्र किया गया है। दूसरे पुत्र को खोने के बाद मुंशी तोताराम और निर्मला की गाड़ी किस दिशा में बढ़ी, आइए आगे के अंश में देखें।

21

गहना चोरी चले जाने पर निर्मला का स्वभाव परिवर्तन

रुक्मिणी ने निर्मला से त्योरियाँ बदलकर कहा—क्या नंगे पाँव ही मदरसे जायगा?

निर्मला ने बच्ची के बाल गूँथते हुए कहा—मैं क्या करूँ? मेरे पास रुपये नहीं हैं।

रुक्मिणी—गहने बनवाने को रुपये जुड़ते हैं, लड़के के जूतों के लिए रुपयों में आग लग जाती है! दो तो चले ही गये, क्या तीसरे को भी रुला-रुलाकर मार डालने का इरादा है?

निर्मला ने एक साँस खींचकर कहा—जिसको जीना है, जियेगा, जिसको मरना है, मरेगा। मैं किसी को मारने-जिलाने नहीं जाती।

आजकल एक-न-एक बात पर निर्मला और रुक्मिणी में रोज ही झड़प हो जाती थी। जब से गहने-चोरी गये हैं, निर्मला का स्वभाव बिलकुल बदल गया है। वह एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ने लगी है। सियाराम रोते-रोते चाहे जान दे दे, मगर उसे मिठाई के लिए पैसे नहीं मिलते। और यह बर्ताव कुछ सियाराम ही के साथ नहीं है, निर्मला स्वयं अपनी जरूरतों को टालती रहती है। धोती जब तक फटकर तार-तार न हो जाय, नई धोती नहीं आती। महीनों सिर का तेल नहीं लगाया जाता। पान खाने का उसे शौक था, कई-कई दिन तक पानदान खाली पड़ा रहता है, यहाँ तक कि बच्ची के लिए दूध भी नहीं आता। नन्हें से शिशु का भविष्य विराट रूप धारण करके उसके विचार-क्षेत्र पर मँडराता रहता।

मुंशीजी ने अपने को सम्पूर्णतः निर्मला के हाथों में सौंप दिया है। उसके किसी काम में दखल नहीं देते। न जाने क्यों उससे कुछ दबे रहते हैं। वह अब बिना नागा[1] कचहरी जाते हैं। इतनी मेहनत

उन्होंने जवानी में भी न की थी। आँखें खराब हो गई हैं, डॉक्टर सिन्हा ने रात को लिखने-पढ़ने की **मुमानियत**[1] कर दी है, पाचनशक्ति पहले ही दुर्बल थी, अब और भी खराब हो गई है, दमे की शिकायत भी पैदा हो चली है, पर बेचारे सबेरे से आधी-आधी रात तक काम करते हैं। काम करने को जी चाहे या न चाहे, तबीयत अच्छी हो या न हो, काम करना ही पड़ता है। निर्मला को उन पर जरा भी दया नहीं आती। वही भविष्य की भीषण चिन्ता उसके आन्तरिक सद्भावों का सर्वनाश कर रही है। किसी भिक्षुक की आवाज सुनकर झल्ला पड़ती है। वह एक कौड़ी भी खर्च करना नहीं चाहती।

निर्मला द्वारा सिया को घी लाने भेजना

एक दिन निर्मला ने सियाराम को घी लाने के लिए बाजार भेजा। भूँगी पर उसका विश्वास न था, उससे अब कोई सौदा न मँगाती थी। सियाराम में **कपट**[2] की आदत न थी। **औने-पौने करना न जानता था**[3]। प्राय: बाजार का सारा काम उसी को करना पड़ता। निर्मला एक-एक चीज को तौलती, जरा भी कोई चीज तौल में कम पड़ती तो उसे लौटा देती। सियाराम का बहुत-सा समय इसी **लौटा-फेरी**[4] में बीत जाता था। बाजार वाले उसे जल्दी कोई सौदा न देते। आज भी वही नौबत आई। सियाराम अपने बिचार से तो बहुत अच्छा घी, कई दूकान से देखकर लाया, लेकिन निर्मला ने उसे सूँघते ही कहा—घी खराब है, लौटा आओ।

सियाराम ने झुँझलाकर कहा—इससे अच्छा घी बाजार में नहीं है, मैं सारी दूकानें देखकर लाया हूँ?
निर्मला—तो मैं झूठ कहती हूँ?
सिया०—यह मैं नहीं कहता, लेकिन बनिया अब घी वापिस न लेगा। उसने मुझसे कहा था, जिस तरह देखना चाहो, यहीं देखो, माल तुम्हारे सामने है। **बोहिनी-बट्टे**[5] के वक्त मैं सौदा वापिस न लूँगा। मैंने सूँघकर, चखकर लिया। अब किस मुँह से लौटाने जाऊँ?
निर्मला ने **दाँत पीसकर कहा**[6]—घी में साफ चरबी मिली हुई है और तुम कहते हो, घी अच्छा है। मैं इसे रसोई में न ले जाऊँगी, तुम्हारा जी चाहे लौटा दो, चाहे खा जाओ।

घी की हाँडी वहीं छोड़कर निर्मला घर में चली गई। सियाराम क्रोध और क्षोभ से कातर हो उठा। वह कौन मुँह लेकर लौटाने जाय। बनिया साफ कह देगा—मैं नहीं लौटाता। तब वह क्या करेगा? आस-पास के दस-पाँच बनिये और सड़क पर चलने वाले आदमी खड़े हो जायँगे। उन सबों के सामने उसे लज्जित होना पड़ेगा। बाजार में योंही कोई बनिया उसे जल्दी सौदा नहीं देता, वह किसी दूकान पर खड़ा होने नहीं पाता। चारों ओर से उसी पर **लताड़ पड़ेगी**[7]। उसने मन-ही-मन झुँझलाकर कहा—पड़ा रहे घी, मैं लौटाने न जाऊँगा।

मातृ-हीन बालक के समान दु:खी, दीन-प्राणी संसार में दूसरा नहीं होता। और सारे दु:ख भूल जाते हैं। बालक को माता याद आई, अम्माँ होतीं तो क्या आज मुझे यह सब सहना पड़ता? भैया चले गए, जियाराम भी चले गए; मैं ही अकेला यह विपत्ति सहने के लिए क्यों बच रहा? सियाराम की आँखों से आँसू की झड़ी लग गई। उसके **शोक कातर**[8] कण्ठ से एक गहरे नि:श्वास के साथ मिले हुए ये शब्द निकल आये—अम्माँ! तुम मुझे भूल क्यों गई, क्यों मुझे नहीं बुला लेतीं?

निर्मला एवं सिया में वाद-विवाद होना

सहसा निर्मला फिर कमरे की तरफ आई। उसने समजा था सियाराम चला गया होगा। उसे बैठा देखा तो गुस्से से बोली—तुम अभी तक बैठे ही हो? आखिर खाना कब बनेगा?
सियाराम ने आँखें पोंछ डाली। बोला—मुझे स्कूल जाने में देर हो जायगी।

निर्मला—एक दिन देर ही हो जायगी तो कौन **हरज**[9] है। यह भी तो घर ही का काम है?
सिया०—रोज तो यही **धन्धा**[10] लगा रहता है। कभी वक्त पर स्कूल नहीं पहुँचता। घर पर भी पढ़ने का वक्त नहीं मिलता। कोई **सौदा**[11] दो-चार बार लौटाये बिना नहीं लिया जाता। डाँट तो मुझ पर पड़ती है, शर्मिन्दा तो मुझे होना पड़ता है, आपको क्या?
निर्मला—हाँ मुझे क्या? मैं तो तुम्हारी दुश्मन ठहरी! अपना होता तब तो उसे दु:ख होता। मैं तो ईश्वर से मनाया करती हूँ कि तुम पढ़-लिख न सको। मुझमें सारी बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ हैं, तुम्हारा कोई कसूर नहीं। विमाता का नाम ही बुरा होता है। अपनी माँ विष भी खिलाये तो अमृत है; मैं अमृत भी पिलाऊँ तो विष हो जायगा। तुम लोगों के कारण मैं मिट्टी में मिल गई, रोते-रोते उम्र कटी जाती, मालूम ही न हुआ कि भगवान् ने किसलिए जन्म दिया था; और तुम्हारी समझ में मैं **बिहार कर रही हूँ**[12]। तुम्हें सताने में मुझे बड़ा मजा आता है। **भगवान् भी नहीं पूछते**[13] कि सारी विपत्ति का अन्त हो जाता।

यह कहते-कहते निर्मला की आँखें भर आईं। अन्दर चली गयी। सियाराम उसको रोते देखकर

---

1 मनाही, 2 छल प्रपंच, 3 मु०—टाल-मटोल करना नहीं जानता था, 4 ले आना, ले जाना, 5 प्रात: दूकान खोलने पर पहली बिक्री का समय, 6 अत्यधिक क्रोध में कहा, 7 मु०—मार पड़ेगी, 8 दु:ख के साथ, 9 हानि, 10 सामान खरीदना, 11 बाजार से खरीदा सामान, 12 आनंद मना रही हूँ, 13 मु०—मृत्यु भी नहीं होती

सहम उठा। ग्लानि तो नहीं आई; हाँ, यह शंका हुई कि न जाने कौन-सा दण्ड मिले। चुपके से हाँडी उठा ली और घी लौटाने चला। इस तरह जैसे कोई कुत्ता किसी नये गाँव में जाता है। उसी कुत्ते की भाँति उसकी मनोगति वेदना उसके एक-एक भाव से प्रकट हो रही थी। उसे देखकर साधारण बुद्धि का मनुष्य भी अनुमान कर सकता था कि वह **अनाथ**[1] है।

सियाराम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, आनेवाले संग्राम के भय से उसकी हृदय-गति बढ़ती जाती थी। उसने निश्चय किया--बनिये ने घी न लौटाया तो वह घी वहीं छोड़कर चला आयेगा। **झख मार कर**[2] बनिया आप ही बुलायेगा। बनिया को डाँटने के लिए भी उसने शब्द सोच लिए। वह कहेगा--क्यों साहूजी, आँखों में धूल झोंकते हो? दिखाते हो **चोखा माल**[3] और देते हो रद्दी माल? पर यह निश्चय करने पर भी उसके पैर आगे बहुत धीरे-धीरे उठते थे! वह यह न चाहता था, बनिया उसे आता हुआ देखे, वह अकस्मात् ही उसके सामने पहुँच जाना चाहता था। इसलिए वह चक्कर काटकर दूसरी गली से बनिये की दुकान पर गया।

घी वापस करने की बात पर बनिया एवं सिया में विवाद

बनिये ने उसे देखते ही कहा--हमने कह दिया था कि हम सौदा वापिस न लेंगे। बोलो, कहा था कि नहीं।
सियाराम ने बिगड़कर कहा--तुमने वह घी कहाँ दिया जो दिखाया था? दिखाया एक माल, दिया दूसरा माल, लौटाओगे कैसे नहीं? क्या कुछ **राहजनी**[4] है?
साह--इससे चोखा घी बाजार में निकल आये तो **जरीबाना**[5] दूँ। उठा लो हाँड़ी और दो-चार दूकान देख आओ।
सियाराम--हमें इतनी फुर्सत नहीं है। अपना घी लौटा लो।
साह--घी न लौटेगा।
बनिये की दूकान पर एक जटाधारी साधू बैठा हुआ यह तमाशा देख रहा था। उठकर सियाराम के पास आया और हांड़ी का घी सूँघकर बोला--बच्चा, घी तो बहुत अच्छा मालूम होता है।
शाह ने **शह**[6] पाकर कहा--बाबाजी हम लोग तो आपही इनको घटिया माल नहीं देते। खराब माल क्या जाने-सुने गाहकों को दिया जाता है?
साधु--घी ले जाव बच्चा, बहुत अच्छा है।

ढोंगी साधु द्वारा सिया को बातों से लुभाना

सियाराम रो पड़ा। घी को बुरा सिद्ध करने के लिए उसके पास अब क्या प्रमाण था? बोला--वही तो कहती है, घी अच्छा नहीं है, लौटा आओ। मैं तो कहता था कि घी अच्छा है।
साधु--कौन कहता है?
साह--इसकी अम्माँ कहती होंगी। कोई सौदा उनके मन ही नहीं भाता। बेचारे लड़के को बार-बार दौड़ाया करती हैं। सौतेली माँ हैं न! अपनी माँ हो तो कुछ खयाल भी करे।

साधु ने सियाराम को **सदय**[7] नेत्रों से देखा, मानो उसे **त्राण**[8] देने के लिए उनका हृदय विकल हो रहा है। तब करुण स्वर में बोले--तुम्हारी माता का स्वर्गवास हुए कितने दिन हुए बच्चा?

साधु का सिया को बातों से लुभाना

सियाराम--छठा साल है।
साधु--तब तो तुम उस वक्त बहुत ही छोटे रहे होगे। भगवान, तुम्हारी लीला कितनी विचित्र है! इस **दूधमुँहे**[9] बालक को तुमने मातृ-प्रेम से वंचित कर दिया। बड़ा अनर्थ करते हो भगवान! छः साल का बालक और राक्षसी विमाता के पाले पड़े! धन्य हो दयानिधि! साहजी, बालक पर दया करो--घी लौटा लो नहीं तो इसकी माता इसे घर में रहने न देगी। भगवान् की इच्छा से तुम्हारा घी जल्द बिक जायेगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।

साहजी ने रुपये वापस न किये। आखिर लड़के को फिर घी लेने आना ही पड़ेगा। न जाने दिन में कितनी बार चक्कर लगाना पड़े और किस **जालिये**[10] से पाला पड़े। उसकी दूकान में जो घी सबसे अच्छा था, वह सियाराम को दे दिया। सियाराम दिल में सोच रहा था, बाबाजी कितने दयालु हैं? इन्होंने सिफारिश न की होती, तो साहजी क्यों अच्छा घी देते?

सियाराम घी लेकर चला तो बाबाजी भी उसके साथ हो लिये। रास्ते में मीठी-मीठी बातें करने लगे।
'बच्चा' मेरी माता भी मुझे तीन-साल का छोड़कर परलोक सिधारी थी। तभी से मातृ-विहीन बालकों को देखता हूँ तो मेरा **हृदय फटने लगता है**[11]'
सियाराम ने पूछा--आपके पिताजी ने भी तो दूसरा विवाह कर लिया था?
साधु--हाँ बच्चा, नहीं तो आज साधु क्यों होता? पहले तो पिताजी विवाह न करते थे। मुझे बहुत प्यार करते थे। फिर न जाने क्यों मन बदल गया--विवाह कर लिया। साधु हूँ, कटु वचन मुँह से नहीं निकालना चाहिये, पर मेरी विमाता जितनी ही सुन्दर थीं; उतनी ही कठोर थीं। मुझे

1-बिना माँ बाप का, 2 हार कर, 3 ठीक वस्तु, 4 डाका, 5 जुर्माना, 6 बढ़ावा, 7 दया के साथ, 8 मुक्ति, 9 दूध पीते बच्चे, छोटे बच्चे, 10 धोखेबाज, 11 मु०--अत्याधिक दुःख होता है

दिन-दिन-भर खाने को न देतीं, रोता तो मारतीं। पिताजी की **आँखें भी फिर गईं**[1]। उन्हें मेरी सूरत[2] से घृणा होने लगी। मेरा रोना सुनकर मुझे पीटने लगते। अंत को मैं एक दिन घर से निकल खड़ा हुआ।

साधु द्वारा सियाराम को घर छोड़ने की सलाह देना

सियाराम के मन में भी घर से निकल भागने का विचार कई बार हुआ था। इस समय भी उसके मन में यही विचार उठ रहा था। बड़ी उत्सुकता से बोला—घर से निकलकर आप कहाँ गये।
बाबाजी ने हँसकर कहा—उसी दिन मेरे सारे कष्टों का अंत हो गया। जिस दिन, घर के मोह-बंधन से छूटा और भय मन से निकला, उसी दिन मानो मेरा उद्धार हो गया। दिन भर मैं एक पुल के नीचे बैठा रहा। संध्या समय मुझे एक महात्मा मिल गये। उनका नाम स्वामी परमानन्दजी था। वे बाल ब्रह्मचारी थे। मुझ पर उन्होंने दया की और अपने साथ रख लिया। उनके साथ मैं देश-देशान्तरों में घूमने लगा। वह बड़े अच्छे योगी थे। मुझे भी उन्होंने योग-विद्या सिखाई। अब तो मेरे को इतना अभ्यास हो गया है कि जब इच्छा होती है; माताजी के दर्शन कर लेता हूँ, उनसे बात कर लेता हूँ!
सियाराम ने विस्फारित नेत्रों से देखकर पूछा—आपकी माता का तो देहान्त हो चुका था?
साधु—तो क्या हुआ बच्चा, योग-विद्या में वह शक्ति है कि जिस मृत-आत्मा को चाहे, बुला ले।
सिया०—मैं योग-विद्या सीख लूँ तो मुझे भी माताजी के दर्शन होंगे?
साधु—अवश्य! अभ्यास से सब कुछ हो सकता है। हाँ, योग्य गुरु चाहिए। योग से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। जितना धन चाहो, पल-मात्र में मँगा सकते हो। कैसी ही बीमारी हो, उसकी औषधि बता सकते हो।
सिया०—आपका स्थान कहाँ है?
साधु—बच्चा, मेरे को स्थान कहीं नहीं है। देश-देशांतरों में रमता[3] फिरता हूँ। अच्छा, बच्चा, अब तुम जाओ, मैं ज़रा स्नान-ध्यान करने जाऊँगा।
सिया०—चलिए मैं भी उसी तरफ चलता हूँ। आपके दर्शन से जी नहीं भरा।
साधु—नहीं बच्चा तुम्हें पाठशाले जाने की देरी हो रही है।
सिया०—फिर आपके दर्शन कब होंगे?
साधु—कभी आ जाऊँगा बच्चा, तुम्हारा घर कहाँ है?
सियाराम प्रसन्न होकर बोला—चलिएगा मेरे घर? बहुत नजदीक है। आपकी बड़ी कृपा होगी।

सियाराम कदम बढ़ाकर आगे-आगे चलने लगा। इतना प्रसन्न था, मानो सोने की गठरी लिये जाता हो। घर के सामने पहुँचकर बोला—आइए बैठिए कुछ देर।
साधु—नहीं बच्चा, बैठूँगा नहीं। फिर कल-परसों किसी समय आ जाऊँगा। यही तुम्हारा घर है?
सिया०—कल किस वक्त आइयेगा?
साधु—निश्चय नहीं कह सकता। किसी समय आ जाऊँगा।

साधु आगे बढ़े तो थोड़ी ही दूर पर उन्हें एक दूसरा साधु मिला। उसका नाम था हरिहरानन्द। परमानन्द ने पूछा—कहाँ-कहाँ की सैर की? कोई शिकार फँसा?
हरिहरानन्द—इधर चारों तरफ घूम आया, कोई शिकार न मिला। एकाध मिला भी तो मेरी हँसी उड़ाने लगा।
परमानन्द—मुझे तो एक मिलता हुआ जान पड़ता है! फँस जाय तो जानूँ।
हरिहरानन्द—तुम योंही कहा करते हो। जो आता है, दो-एक दिन के बाद निकल भागता है।
परमानन्द—अबकी न भागेगा, देख लेना। इसकी माँ मर गई है। बाप ने दूसरा विवाह कर लिया है। माँ भी सताया करती है। घर से ऊबा हुआ है!
हरिहरानन्द—हाँ, यह मामला है तो अवश्य फँसेगा! **लासा लगा**[4] दिया है न?
परमानन्द—खूब अच्छी तरह! यह तरकीब सबसे अच्छी है! पहले इसका पता लगा लेना चाहिए कि मुहल्ले में किन-किन घरों में विमाताएँ हैं! उन्हीं घरों में फन्दा डालना चाहिए।

22

सियाराम का भी स्नेह के अभाव में उद्दंड होना

निर्मला ने बिगड़कर पूछा—इतनी देर कहाँ लगाई।
सियाराम ने ढिठाई से कहा—रास्ते में एक जगह सो गया था!
निर्मला—यह तो मैं नहीं कहती, पर जानते हो कै बज गए हैं? दस कभी के बज गये। बाज़ार कुछ दूर भी तो नहीं है।
सिया०—कुछ दूर नहीं। दरवाजे ही पर तो है।
निर्मला—सीधे से क्यों नहीं बोलते? ऐसा बिगड़ रहे हो जैसे मेरा ही कोई काम करने गये हों।

---

1 मु०—ध्यान देना बंद कर दिया, 2 चेहरे, 3 घूमता, 4 मु०—पक्षी को फँसाने के लिए बहेलिए एक तरल पदार्थ का उपयोग करते हैं, जिनमें पक्षी चिपक जाता है और उड़ नहीं पाता

सिया०—तो आप व्यर्थ की बकवास क्यों करती हैं। लिया सौदा लौटाना क्या आसान काम है? बनिये से घंटों हुज्जत[1] करनी पड़ी। यह तो कहो, एक बाबाजी ने कह-सुनकर फेरवा[2] दिया, नहीं तो किसी तरह न फेरता। रास्ते में कहीं एक मिनट भी नहीं रुका, सीधा चला आता हूँ।
निर्मला—घी के लिए गये-गये तो तुम ग्यारह बजे लौटे हो, लकड़ी के लिए जाओगे तो साँझ ही कर दोगे। तुम्हारे बाबूजी बिना खाए ही चले गए। तुम्हें इतनी देर लगाना था, तो पहले ही क्यों न कह दिया? जाते हो लकड़ी के लिए।
सियाराम अब अपने को न सँभाल सका। झल्लाकर बोला—लकड़ी किसी और से मँगाइए! मुझे स्कूल जाने को देर हो रही है।
निर्मला—खाना न खाओगे?
सिया०—न खाऊँगा!
निर्मला—मैं खाना बनाने को तैयार हूँ हाँ, लकड़ी लाने नहीं जा सकती।
सिया०—भूँगी को क्यों नहीं भेजतीं!
निर्मला—भूँगी का लाया सौदा तुमने कभी देखा नहीं है?
सिया०—तो मैं इस वक्त न जाऊँगा।
निर्मला—मुझे दोष न देना।

सियाराम कई दिनों से स्कूल नहीं गया था, बाजार-हाट के मारे उसे किताबें देखने का समय ही न मिलता था। स्कूल जाकर झिड़कियाँ खाने, बेंच पर खड़े होने या ऊँची टोपी देने के सिवा और क्या मिलता? वह घर से किताबें लेकर चलता, पर शहर के बाहर जाकर किसी वृक्ष की छाँह में बैठा रहता या पल्टनों की कवायद देखता। तीन बजे घर लौट आता। आज भी वह घर से चला; लेकिन बैठने में उसका जी न लगा—उस पर आँतें अलग जल रही थीं[3]। हाँ! अब उसे रोटियों के भी लाले पड़ गये[4]। दस बजे क्या खाना न बन सकता था? माना कि बाबूजी चले गये थे। क्या मेरे लिए घर में दो-चार पैसे भी न थे। अम्माँ होतीं, तो इस तरह बिना कुछ खाये-पिये आने देतीं? मेरा अब कोई नहीं रहा।

सियाराम का मन बाबाजी के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठा। उसने सोचा—इस वक्त वह कहाँ मिलेंगे? कहाँ चलकर देखूँ? उनकी मनोहर वाणी, उनकी उत्साहप्रद सान्त्वना, उसके मन को खींचने लगी। उसने आतुर होकर कहा—मैं उनके साथ ही क्यों न चला गया। घर पर मेरे लिए क्या रखा था?

सियाराम द्वारा साधु की तलाश करना

वह आज यहाँ से चला तो घर न जाकर सीधा घी वाले साहजी की दूकान पर गया। शायद बाबाजी से वहाँ मुलाकात हो जाय। पर वहाँ बाबाजी न थे। बड़ी देर तक खड़ा-खड़ा लौट आया।

घर आकर बैठा ही था कि निर्मला ने आकर कहा—आज देर कहाँ लगाई? सबेरे खाना नहीं बना, क्या इस वक्त भी उपवास होगा? जाकर बाजार से कोई तरकारी[5] लाओ।
सियाराम ने झल्लाकर कहा—दिन भर का भूखा चला आता हूँ; कुछ पानी पीने तक[6] को लाई नहीं ऊपर से बाजार जाने का हुक्म[7] दे दिया। मैं नहीं जाता बाजार, किसी का नौकर नहीं हूँ। आखिर रोटियाँ ही तो खिलाती हो या और कुछ? ऐसी रोटियाँ जहाँ मेहनत करूँगा, वहीं मिल जायँगी। जब मजूरी ही करनी है तो आपकी न करूँगा, जाइए मेरे लिए खाना मत बनाइएगा।

निर्मला अवाक् रह गई। लड़के को आज क्या हो गया? और दिन तो चुपके से जाकर काम कर लाता था, आज क्यों त्योरियाँ बदल रहा है[8]। अब भी उसको यह न सूझी कि सियाराम को दो-चार पैसे कुछ खाने को दे दे। उसका स्वभाव इतना कृपण हो गया था, बोली—घर का काम करना तो मजूरी नहीं कहलाती। इसी तरह मैं भी कह दूँ कि मैं खाना नहीं पकाती, तुम्हारे बाबूजी कह दें कि मैं कचहरी नहीं जाता, तो क्या हो बताओ? नहीं जाना चाहते तो मत जाओ, भूँगी से मँगा लूँगी। मैं क्या जानती थी कि तुम्हें बाजार जाना बुरा लगता है, नहीं तो बला से धेले की चीज[9] पैसे में आती, तुम्हें न भेजती। लो आज से कान पकड़ती[10] हूँ।

सियाराम दिल में कुछ लज्जित तो हुआ, पर बाजार न गया। उसका ध्यान बाबाजी की ओर लगा हुआ था। अपने सारे दुःखों का अन्त और जीवन की सारी आशाएँ उसे अब बाबाजी के आशीर्वाद में मालूम होती थीं। उन्हीं की शरण जाकर उसका यह आधारहीन जीवन सार्थक होगा। सूर्यास्त के समय वह अधीर हो गया। सारा बाजार छान मारा, लेकिन बाबाजी का कहीं पता न मिला। दिन भर का भूखा-प्यासा, वह अबोध बालक दुखते हुए दिल को हाथों से दबाये आशा और भय की मूर्ति बना, दूकानों, गलियों और मन्दिरों में उस आश्रय को खोजता फिरता था, जिसके बिना उसे अपना जीवन दुस्सह हो रहा था। एक बार मन्दिर के सामने उसे कोई साधु खड़ा दिखाई

सियाराम द्वारा घर छोड़कर बाबा की तलाश करना

1 वाद-विवाद, 2 वापस, 3 मु०—भूख लग रही थी, 4 मु०—अन्न के लिए तरसने लगे, 5 सब्जी, 6 जलपान, 7 आज्ञा, 8 मु०—गुस्सा दिखा रहा है, 9 कम दाम की वस्तु, 10 कसम खाना।

दिया। उसने समझा वही हैं। हर्षोल्लास से वह फूल उठा। दौड़ा और जाकर साधु के पास खड़ा हो गया; पर यह कोई और ही महात्मा थे। निराश होकर आगे बढ़ गया।

धीरे-धीरे सड़कों पर सन्नाटा छा गया, घरों के द्वार बन्द होने लगे। सड़क की पटरियों पर और गलियों में बँसखटे या बोरे बिछा-बिछाकर भारत की प्रजा सुख-निद्रा में मग्न होने लगी, लेकिन सियाराम घर न लौटा। उस घर से उसका दिल फट गया[1] था, जहाँ किसी को उससे प्रेम न था जहाँ वह किसी पराश्रित की भाँति पड़ा हुआ था, केवल इसीलिए कि उसे और कहीं शरण न थी। इस वक्त भी उसके घर न जाने की किसे चिन्ता होगी? बाबूजी भोजन करके लेटे होंगे, अम्माँजी भी आराम करने जा रही होंगी। किसी ने मेरे कमरे की ओर झाँककर देखा भी न होगा। हाँ, बुआजी घबरा रही होंगी, वह अभी तक मेरी राह देखती होंगी। जब तक मैं न जाऊँगा, भोजन न करेंगी। रुक्मिणी की याद आते ही सियाराम घर की ओर चला। वह अगर और कुछ न कर सकती थी, तो कम-से-कम उसे गोद में चिमटाकर रोती तो थी? उसके बाहर से आने पर हाथ-मुँह धोने के लिए पानी तो रख देती थीं। संसार में सभी बालक दूध की कुल्लियाँ नहीं करते, सभी सोने के कौर नहीं खाते। कितनों को पेट भर भोजन भी नहीं मिलता; पर घर से विरक्त वही होते हैं, जो मातृ-स्नेह से वंचित हैं।

सियाराम घर की ओर चला ही था कि सहसा बाबा परमानन्द एक गली से आते दिखाई दिये। सियाराम ने जाकर उनका हाथ पकड़ लिया। परमानन्द ने चौंककर पूछा—बच्चा, तुम यहाँ कहाँ? सियाराम ने बात बनाकर कहा—एक दोस्त से मिलने आया था। आपका स्थान यहाँ से कितनी दूर है?

सिया की साधु से मुलाकात होना

परमानन्द—हम लोग तो आज यहाँ से जा रहे हैं, बच्चा! हरिद्वार की यात्रा है।
सियाराम ने हतोत्साह होकर कहा—क्या आज ही चले जाइएगा?
परमानन्द—हाँ बच्चा, अब लौटकर आऊँगा तो दर्शन दूँगा?
सियाराम ने कातर कंठ से कहा—लौटकर!
परमानन्द—जल्द ही आऊँगा, बच्चा!
सियाराम ने दीन भाव से कहा—मैं भी आपके साथ चलूँगा।
परमानन्द—मेरे साथ! तुम्हारे घर के लोग जाने देंगे?
सियाराम—घर के लोगों को मेरी क्या परवाह[2] है? इसके आगे सियाराम और कुछ न कह सका। उसके अश्रु-पूरित[3] नेत्रों ने उसकी करुण-गाथा उससे कहीं विस्तार के साथ सुना दी, जितनी उसकी वाणी कर सकती थी।

सियाराम का साधु के साथ चले जाना

परमानन्द ने बालक को कंठ से लगाकर कहा—अच्छा बच्चा, तेरी इच्छा हो तो चल। साधु-संतों की संगति का आनन्द उठा। भगवान् की इच्छा होगी, तो तेरी इच्छा पूरी होगी।

दाने पर मण्डराता हुआ पक्षी अंत में दाने पर गिर पड़ा। उसके जीवन का अंत पिंजरे में होगा या व्याध की छुरी के तले—यह कौन जानता है?

23

मुंशीजी पाँच बजे कचहरी से लौटे और अन्दर आकर चारपाई पर गिर पड़े। बुढ़ापे की देह, उस पर आज सारे दिन भोजन न मिला। मुँह सूख गया। निर्मला समझ गयी, आज दिन खाली गया।
निर्मला ने पूछा—आज कुछ न मिला?
मुंशीजी—सारा दिन दौड़ते गुजरा, पर हाथ कुछ न लगा।
निर्मला—फौजदारी वाले मामले में क्या हुआ?
मुंशीजी—मेरे मुवक्किल को सजा हो गई।
निर्मला—पंडितवाले मुकदमें में?
मुंशीजी—पंडित पर डिग्री हो गई।
निर्मला—आप तो कहते थे, दावा खारिज हो जायगा।
मुंशीजी—कहता तो था, और अब भी कहता हूँ कि दावा खारिज हो जाना चाहिए था, मगर उतना सिर मगजन कौन करे[4]?
निर्मला—और सीर वाले दावे में?
मुंशीजी—उसमें भी हार हो गई।
निर्मला—तो आज आप किसी अभागे का मुँह देखकर उठे थे।

मुंशीजी से अब काम बिल्कुल न हो सकता था। एक तो उनके पास मुकदमे आते ही न थे; और जो आते भी थे; वह बिगड़ जाते थे। मगर अपनी असफलताओं को वह निर्मला से छुपाते रहते थे। जिस दिन कुछ हाथ न लगता, उस दिन किसी से दो चार रुपये उधार लाकर निर्मला को देते।

1 दुखी होना, 2 चिंता, 3 आँसू से भरे, 4 बुद्धि कौन लगाए

ाय: सभी मित्रों से कुछ-न-कुछ ले चुके थे। आज वह डौल भी न लगा।
ार्मला ने चिन्तापूर्ण स्वर में कहा—आमदनी का यह हाल है, तो ईश्वर ही मालिक है; उस पर टे का यह हाल है कि बाजार में जाना मुश्किल! भूँगी ही से सब काम कराने को जी चाहता है! ो लेकर ग्यारह बजे लौटा। कितना कहकर हार गई कि लकड़ी लेते आओ, पर सुना ही नहीं!

ंशीजी—तो खाना नहीं पकाया?
ार्मला—ऐसी ही बातों से तो आप मुकदमें हारते हैं। ईंधन के बिना किसी ने खाना बनाया है कि हीं बना लेती?
ंशीजी—तो बिना कुछ खाये ही चला गया?
ार्मला—घर में और क्या रखा था जो खिला देती?
ंशीजी ने डरते-डरते कहा—कुछ पैसे-वैसे न दे दिये?
ार्मला ने भौंहे सिकोड़कर कहा—घर में पैसे फलते हैं न?

ंशीजी ने कुछ जवाब न दिया। जरा देर तक तो प्रतीक्षा करते रहे कि शायद जलपान के लिए ुछ मिलेगा; लेकिन जब निर्मला ने पानी तक न मँगवाया, तो बेचारे निराश होकर बाहर चले ये। सियाराम के कष्ट का अनुमान करके उनका चित्त चंचल हो उठा। सारा दिन गुजर गया, चारे ने अभी तक कुछ न खाया। कमरे में पड़ा होगा। एक बार भूँगी ही से लकड़ी मँगा ली ाती, तो ऐसा क्या नुकसान हो जाता? ऐसी किफायत भी किस काम की कि घर के आदमी भूखे ़ जायँ। अपना संदूकचा खोलकर टटोलने लगे कि शायद दो-चार आने पैसे मिल जायँ। उसके न्दर के सारे कागजात निकाल डाले, एक-एक खाना देखा, नीचे हाथ डाल कर देखा पर कुछ न ाला। अगर निर्मला के सन्दूक में पैसे न फलते थे तो इस सन्दूकचे में शायद इसके फूल भी न गते हों। लेकिन संयोग ही कहिए कि कागजों को झाड़ते हुए एक चवन्नी गिर पड़ी। मारे हर्ष के ंशीजी उछल पड़े। बड़ी-बड़ी रकमें इसके पहले कमा चुके थे, पर यह चवन्नी पाकर इस समय न्हें जितना आह्लाद हुआ, उतना पहले कभी न हुआ था। चवन्नी हाथ में लिये हुए सियाराम के मरे के सामने आकर पुकारा। कोई जवाब न मिला। तब कमरे में जाकर देखा। सियाराम का हीं पता नहीं—क्या अभी स्कूल से नहीं लौटा? मन में यह प्रश्न उठते ही मुंशीजी ने अन्दर ाकर भूँगी से पूछा। मालूम हुआ स्कूल से लौट आये।

ंशीजी ने पूछा—कुछ पानी पिया है?
ंगी ने कुछ जवाब न दिया। नाक सिकोड़कर मुँह फेरे हुए चली गयी।

मुंशीजी का सिया के बारे में पूछना

ंशीजी आहिस्ता-आहिस्ता आकर अपने कमरे में बैठ गये। आज पहली बार उन्हें निर्मला पर ्रोध आया; लेकिन एक ही क्षण में क्रोध का आघात अपने ऊपर होने लगा। उस अँधेरे कमरे में र्श पर लेटे हुए वह अपने को पुत्र की ओर से इतना उदासीन हो जाने पर धिक्कारने लगे। दिन ़के थके थे। थोड़ी ही देर में उन्हें नींद आ गई।

ंगी ने आकर पुकारा—बाबूजी, रसोई तैयार है।
ंशीजी चौंक कर उठ बैठे। कमरे में लैम्प जल रहा था पूछा—कै बज गये भूँगी? मुझे तो नींद आ ई थी।
ंगी ने कहा—कोतवाली के घण्टे में तो नौ बज गए हैं, और हम नाहीं जानित।
ंशीजी—सिया बाबू आए?
ंगी—आये होंगे तो घर ही में न होंगे।
ंशीजी ने झुंझलाकर पूछा—मैं पूछता हूँ, आये कि नहीं? और तू न जाने क्या-क्या जवाब देती है? ये कि नहीं?
ंगी—मैंने तो नहीं देखा, झूठ कैसे कह दूँ।
ंशीजी फिर लेट गए और बोले—उनको आ जाने दे, तब चलता हूँ।

मुंशीजी द्वारा सिया को खोजने जाना

ाध घण्टे तक द्वार की ओर आँख लगाए मुन्शीजी लेटे रहे, वह उठकर बाहर आये और दाहिने ाथ कोई दो फर्लांग तक चले। तब लौटकर द्वार पर आये और पूछा—सिया बाबू आ गये?
न्दर से आवाज आई—अभी नहीं।
ंशीजी फिर बाईं ओर चले और गली के नुक्कड़ तक गये। सियाराम कहीं दिखाई न दिया। वहाँ फिर घर आये और द्वार पर खड़े होकर पूछा—सिया बाबू आ गये?
न्दर से जवाब मिला—नहीं।
ोतवाली के घण्टे में दस बजने लगे।

ंशीजी बड़े वेग से कम्पनी बाग की तरफ चले। सोचने लगे, शायद वहाँ घूमने गया हो और ास पर लेटे-लेटे नींद आ गई हो। बाग में पहुँचकर उन्होंने हरेक बेंच को देखा, चारों तरफ घूमे, ़त से आदमी घास पर पड़े हुए थे। पर सियाराम का निशान न था। उन्होंने सियाराम का नाम ़कर जोर से पुकारा, पर कहीं से आवाज न आई।

पुत्र को न पाकर रात्रि में लौटना

खयाल आया शायद स्कूल में कोई तमाशा हो रहा हो। स्कूल एक मील से कुछ ज्यादा ही था। स्कूल की तरफ चले; पर आधे रास्ते ही से लौट पड़े। बाजार बन्द हो गया था। स्कूल में इतनी रात तक तमाशा नहीं हो सकता। अब भी उन्हें आशा हो रही थी कि सियाराम लौट आया होगा। द्वार पर आकर उन्होंने पुकारा–सिया बाबू आए? किवाड़ बन्द थे। कोई आवाज न आई। फिर जोर से पुकारा। भूँगी किवाड़ खोलकर बोली–अभी तो नहीं आए। मुंशीजी ने धीरे से भूँगी को अपने पास बुलाया और करुण स्वर में बोले–तू तो घर की सब बातें जानती है; बता आज क्या हुआ था?

भूँगी–बाबूजी, झूठ न बोलूँगी, मालकिन छुड़ा देंगी और क्या? दूसरे का लड़का इस तरह नहीं रखा जाता। जहाँ कोई काम हुआ, बस बाजार भेज दिया। दिन भर बाजार दौड़ते बीतता था। आज लकड़ी लाने न गये तो चूल्हा ही नहीं जला। कहो तो मुँह फुलावें। जब आप ही नहीं देखते तो दूसरा कौन देखेगा। चलिए, भोजन कर लीजिए, बहूजी कब से बैठी हैं।
मुंशीजी–कह दे, इस वक्त नहीं खायेंगे।
मुंशीजी फिर अपने कमरे में चले गये और एक लम्बी साँस ली। वेदना से भरे हुए ये शब्द उनके मुँह से निकल पड़े–ईश्वर, क्या अभी दण्ड पूरा नहीं हुआ? क्या इस अंधे की लकड़ी को[1] भी हाथ से छीन लोगे?

निर्मला ने आकर कहा–आज सियाराम अभी तक नहीं आये। कहती रही कि खाना बनाये देती हूँ, खा लो मगर न जाने कब उठकर चल दिये! न जाने कहाँ घूम रहे हैं। बात तो सुनते ही नहीं। कब तक उनकी राह देखा करूँ। आप चलकर खा लीजिये, उनके लिये खाना उठाकर रख दूँगी।
मुंशीजी ने निर्मला की ओर कठोर नेत्रों से देखकर कहा–अभी कै बजे होंगे?
निर्मला–क्या जाने, दस बजे होंगे।
मुंशीजी–जी नहीं, बारह बजे हैं।
निर्मला–बारह बज गये? इतनी देर तो कभी न करते थे। तो कब तक उनकी राह देखोगे। दोपहर को भी कुछ नहीं खाया था। ऐसा सैलानी[2] लड़का मैंने नहीं देखा।
मुंशीजी–जी; तुम्हें बहुत दिक करता है, क्यों?
निर्मला–देखिये न, इतनी रात गई और घर की सुध ही नहीं।
मुंशीजी–शायद यह आखिरी शरारत हो।
निर्मला–कैसी बातें मुँह से निकालते हैं? जायँगे कहाँ? किसी यार-दोस्त के यहाँ पड़ रहे होंगे।
मुंशीजी–शायद ऐसा ही हो। ईश्वर करे ऐसा ही हो।
निर्मला–सवेरे आवें तो जरा तम्बीह[3] कीजिएगा।
मुंशीजी–खूब अच्छी तरह करूँगा।
निर्मला–चलिए, खा लीजिए, देर बहुत हुई।
मुंशीजी–सबेरे उसकी तम्बीह करके खाऊँगा, कहीं न आया तो तुम्हें ऐसा ईमानदार नौकर कहाँ मिलेगा!
निर्मला ने ऐंठकर कहा–तो क्या मैंने भगा दिया?

मुंशीजी द्वारा निर्मला को ताना देना

मुंशीजी–नहीं, यह कौन कहता है? तुम उसे क्यों भगाने लगीं। तुम्हारा तो काम करता था–शामत आ गई होगी!
निर्मला ने और कुछ नहीं कहा। बात बढ़ जाने का भय था भीतर चली आई। सोने को भी न कहा। जरा देर में भूँगी ने अन्दर से किवाड़ भी बन्द कर दिए।

क्या मुंशीजी को नींद आ सकती थी? तीन लड़कों में केवल एक बच रहा था। वह भी हाथ से निकल गया तो फिर जीवन में अंधकार के सिवाय और क्या है? कोई नाम लेनेवाला भी न रहेगा। हा! कैसे-कैसे रत्न हाथ से निकल गए? मुंशीजी की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी, तो कोई आश्चर्य है? उस व्यापक पश्चाताप, उस सघन ग्लानि तिमिर में आशा की एक हलकी-सी रेखा उन्हें सँभाले हुए थी। जिस क्षण यह रेखा लुप्त हो जाएगी, कौन कह सकता है–उन पर क्या बीतेगी? उनकी उस वेदना की कल्पना कौन कर सकता है?

कई बार मुंशीजी की आँखें झपकीं, लेकिन हर बार सियाराम की आहट के धोखे में चौंक पड़े।

सबेरा होते ही मुंशीजी फिर सियाराम को खोजने निकले। किसी से पूछते शर्म आती थी। किस मुँह से पूछें? उन्हें किसी से सहानुभूति की आशा न थी। प्रकट न कहकर मन में सब यही कहेंगे–जैसा किया वैसा भोगो। सारे दिन वह स्कूल के मैदानों, बाजारों और बगीचों का चक्कर लगाते रहे, दो दिन निराहार[4] रहने पर भी उन्हें इतनी शक्ति कैसे हुई, यह वही जानें।

1 मु०–आखिरी सहारा को, 2 घुमक्कड़, 3 समझा, 4 बिना कुछ खाए

त क बारह बजे मुंशीजी घर लौटे, दरवाजे पर लालटेन जल रही थी, निर्मला द्वार पर खड़ी थी। ाते ही बोली—कहा भी नहीं, न जाने कब चल दिए। कुछ पता चला?

ंशीजी ने आग्नेय नेत्रों से ताकते हुए कहा—हट जाओ सामने से नहीं तो बुरा होगा। **मैं आपे में हीं हूँ**[1]। यह तुम्हारी करनी है। तुम्हारे ही कारण आज मेरी यह दशा हो रही है। आज से छः ाल पहले क्या इस घर की यही दशा थी? तुमने मेरा बना-बनाया घर बिगाड़ दिया, तुमने मेरे **लहलहाते**[2] बाग को उजाड़ डाला। केवल एक ठूँठ रह गया है। उसका निशान मिटाकर तभी म्हें सन्तोष होगा। मैं अपना सर्वनाश करने के लिए तुम्हें अपने घर नहीं लाया था। सुखी जीवन ो और भी सुखमय बनाना चाहता था। यह उसी का प्रायश्चित है। जो लड़के **पान की तरह फेरे ाते थे**[3], उन्हें मेरे जीते-जी तुमने चाकर समझ लिया; और मैं आँखों से सब कुछ देखते हुए भी ंधा बना बैठा रहा। जाओ, मेरे लिए थोड़ा-सा **संखिया**[4] भेज दो। बस यही **कसर**[5] रह गई है; ह भी पूरी हो जाय!

अपने अंतिम बेटे के खोने पर सारा दोष निर्मला पर डालना

र्मला ने रोते हुए कहा—मैं तो अभागिन हूँ ही, आप कहेंगे तब जानूँगी? न जाने ईश्वर ने मुझे न्म क्यों दिया था। मगर यह आपने कैसे समझ लिया कि सियाराम आवेंगे ही नहीं?

ंशीजी ने अपने कमरे की ओर जाते हुए कहा—जलाओ मत, जाकर खुशियाँ मनाओ। तुम्हारी नोकामना पूरी हो गई।

24

र्मला सारी रात रोती रही! इतना कलंक! उसने जियाराम को गहने ले जाते देखने पर भी मुँह ोलने का साहस नहीं किया। क्यों? इसीलिए तो कि लोग समझेंगे कि यह मिथ्या दोषारोपण रके लड़के से बैर साध रही हैं! आज उसके मौन रहने पर उसे अपराधिनी ठहराया जा रहा है। दि वह जियाराम को उसी क्षण रोक देती; और जियाराम लज्जावश कहीं भाग जाता, तो क्या सके सिर अपराध न मढ़ा जाता?

ियाराम ही के साथ उसने कौन-सा दुर्व्यवहार किया था। वह कुछ बचत करने के ही विचार से ो सियाराम से सौदा मँगवाया करती थी। क्या वह बचत करके अपने लिए गहने गढ़वाना चाहती ी? जब आमदनी का यह हाल हो रहा था तो पैसे-पैसे पर निगाह रखने के सिवाय कुछ जमा रने का उसके पास और साधन ही क्या था? जवानों की जिन्दगी का तो कोई भरोसा ही नहीं, ूढ़ों की जिन्दगी का क्या ठिकाना! बच्ची के विवाह के लिए वह किसके सामने हाथ फैलाती? च्ची का भार कुछ उसी पर तो नहीं था। वह केवल पति की सुविधा ही के लिए कुछ **बटोरने**[6] ा प्रयत्न कर रही थी। पति ही को क्यों? सियाराम ही तो पिता के बाद घर का स्वामी होता। हिन के विवाह करने का भार क्या उसके सिर न पड़ता? निर्मला सारी **कतर ब्योंत**[7] पति और त्र का संकट-मोचन करने ही के लिए कर रही थी। बच्ची का विवाह इस परिस्थिति में संकट के िवा और क्या? पर इसके लिये भी उसके भाग्य में अपयश ही बदा था।

ोपहर हो गया; पर आज भी चूल्हा नहीं जला। खाना भी जीवन का काम है—इसकी किसी को ुध ही न थीं। मुंशीजी बाहर बेजान-से पड़े थे और निर्मला भीतर थी। बच्ची कभी भीतर जाती, भी बाहर। कोई उससे बोलने वाला न था। बार-बार सियाराम के कमरे के द्वार पर जाकर खड़ी ोती और 'बैया-बैया' पुकारती; पर 'बैया' कोई जवाब न देता था।

ंध्या समय मुंशीजी आकर निर्मला से बोले—तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं?

पुत्र के मिलने पर मुंशीजी का निर्मला के प्रति क्रोध करना

र्मला ने चौंककर पूछा—क्या कीजिएगा?

ंशीजी—मैं जो पूछता हूँ, उसका जवाब दो।

र्मला—क्या आपको नहीं मालूम है? देनेवाले तो आप ही हैं।

ंशीजी—तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं या नहीं? अगर हों तो मुझे दे दो, न हो तो साफ जवाब दो।

र्मला ने अब भी साफ जवाब न दिया। बोली—होंगे तो घर ही में न होंगे। मैंने कहीं और नहीं ेज दिये।

ंशीजी बाहर चले गए। वह जानते थे कि निर्मला के पास रुपये हैं, वास्तव में थे भी। निर्मला ने ह भी नहीं कहा कि नहीं; या मैं न दूँगी; पर उसकी बातों से प्रकट हो गया कि वह देना नहीं ाहती।

ौ बजे रात को मुंशीजी ने आकर रुक्मिणी से कहा—बहिन; मैं जरा बाहर जा रहा हूँ। मेरा बस्तर भूँगी से बँधवा देना और ट्रंक में कुछ कपड़े रखवाकर बन्द कर देना।

मुंशीजी द्वारा घर छोड़ने का निर्णय करना

ुक्मिणी भोजन बना रही थीं। बोली—बहू तो कमरे में है, कह क्यों नहीं देते? कहाँ जाने का रादा है?

1 मु०—अपने वश में नहीं होना, 2 हरे-भरे, 3 अत्याधिक प्यार किया जाता था, 4 विष, 5 कमी, 6 इकट्ठा, 7 बचत

मुंशीजी—मैं तुमसे कहता हूँ; बहू से कहना होता, तो तुमसे क्यों कहना? आज तुम क्यों खाना पका रही हो?
रुक्मिणी—कौन पकावे? बहू के सिर में दर्द हो रहा है। आखिर इस वक्त कहाँ जा रहे हो? सबेरे न चले जाना।
मुंशीजी—इसी तरह टालते-टालते तो आज तीन दिन हो गये। इधर-उधर घूम-घामकर देखूँ, शायद कहीं सियाराम का पता मिल जाय। कुछ लोग कहते हैं कि एक साधु के साथ बातें कर रहा था। शायद वह कहीं बहका ले गया हो?
रुक्मिणी—तो लौटोगे कब तक?
मुंशीजी—कह नहीं सकता। हफ्ता भर लग जाय, महीना भर लग जाय। क्या ठिकाना है?
रुक्मिणी—आज कौन दिन है? किसी पंडित से पूछ लिया है, कि नहीं?
मुंशीजी भोजने करने बैठे। निर्मला को इस वक्त उन पर बड़ी दया आई। उसका सारा क्रोध शांत हो गया। खुद तो न बोली, बच्ची को जगाकर चुमकारती हुई बोली—देख, तेरे बाबूजी कहाँ जा रहे हैं? पूछ तो?
बच्ची ने द्वार से झाँककर पूछा—बाबू दी, तहाँ दाते हो?
मुंशीजी—बड़ी दूर जाना हूँ बेटी, तुम्हारे भैया को खोजने जाता हूँ।
बच्ची ने वहीं से खड़े-खड़े कहा—अम बी नलेंबे।
मुंशीजी—बड़ी दूर जाते हैं बच्ची! तुम्हारे वास्ते चीजें लायेंगे! यहाँ क्यों नहीं आती?
बच्ची मुस्कराकर छिप गई और एक क्षण में फिर किवाड़ से सिर निकाल कर बोली—अम भी तलेंगे।
मुंशीजी ने उसी स्वर में कहा—तुमको नई ले तलेंगे।
बच्ची—हमको क्यों नई ले तलोगे?
मुंशीजी—तुम तो हमारे पास आती नहीं हो।

लड़की ठुमकती हुई आकर पिता की गोद में बैठ गई। थोड़ी देर के लिए मुंशीजी उसकी बाल-क्रीड़ा में अपनी अंतर्वेदना भूल गये।

भोजन करके मुंशीजी बाहर चले गये। निर्मला खड़ी ताकती रही। कहना चाहती थी—व्यर्थ जा रहे हो, पर कह न सकती थी। कुछ रुपये निकाल कर देने का विचार करती थी, पर दे न सकती थी।

अंत को न रहा गया, रुक्मिणी से बोली—दीदीजी, जरा समझा दीजिए कहाँ जा रहे हैं। मेरी जबान पकड़ी जायगी पर बिना बोले रहा नहीं जाता। बिना ठिकाने कहाँ खोजेंगे? व्यर्थ की हैरानी होगी।
रुक्मिणी ने करुणा-सूचक नेत्रों से देखा और अपने कमरे में चली गई।
निर्मला बच्ची को गोद में लिए सोच रही थी कि शायद जाने के पहले बच्ची को देखने या मुझसे मिलने के लिए आवें; पर उसकी आशा विफल हो गई? मुंशीजी ने बिस्तर उठाया और ताँगे पर जा बैठे।

उसी वक्त निर्मला का **कलेजा मसोसने**[1] लगा। उसे ऐसा जान पड़ा कि अब इनसे भेंट न होगी। वह अधीर होकर द्वार पर आई कि मुंशीजी को रोक ले; पर ताँगा चल चुका था।

25

मुंशीजी के जाने तथा आर्थिक तंगी से निर्मला का व्यवहार परिवर्तन

दिन गुजरने लगे। एक महीना पूरा निकल गया; लेकिन मुंशीजी न लौटे। कोई खत भी न भेजा। निर्मला को अब नित्य यही चिन्ता बनी रहती कि वह लौटकर न आये तो क्या होगा? उसे इसकी चिन्ता न होती थी कि उन पर क्या बीत रही होगी, वह कहाँ मारे-मारे फिरते होंगे, स्वास्थ्य कैसा होगा? उसे केवल अपनी और उससे भी बढ़कर बच्ची की चिंता थी। गृहस्थी का निर्वाह कैसे होगा? ईश्वर कैसे बेड़ा पार लगायेंगे! बच्ची का क्या हाल होगा? उसने कतर ब्योंत करके जो रुपये जमा कर रखे थे, उसमें कुछ-न-कुछ रोज ही कमी होती जाती थी। निर्मला को उसमें से एक-एक पैसा निकालते इतनी **अखर**[2] होती थी, मानो कोई उसकी देह से रक्त निकाल रहा हो। झुँझलाकर मुंशीजी को कोसती। लड़की किसी चीज के लिए रोती, तो उसे अभागिन, कलमुँही कहकर झल्लाती। यहीं नहीं, रुक्मिणी का घर में रहना उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो वह गर्दन पर सवार है। जब हृदय जलता है, तो वाणी भी अग्निमय हो जाती है। निर्मला बड़ी मधुर-भाषिणी स्त्री थी, पर अब उसकी गणना कर्कशाओं में की जा सकती थी। दिन भर उसके मुख से जली-कटी बातें निकला करती थीं। उसके शब्दों की कोमलता न जाने क्या हो गई। भावों में माधुर्य का कहीं नाम नहीं! भूँगी बहुत दिनों से इस घर में नौकर थी। स्वभाव की सहनशील थी, पर यह आठों पहर की बकबक उससे भी न सही गई। एक दिन उसने भी **घर की राह ली**[3]।

1 मु०—अत्याधिक दुःख होने लगा, 2 दुःख, 3 काम करना छोड़ दिया, अपने घर चली गयी

यहाँ तक कि जिस बच्ची को प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, उसकी सूरत से भी घृणा हो गई। बात-बात पर घुड़क पड़ती, कभी-कभी मार बैठती। रुक्मिणी रोई हुई बालिका को गोद में बैठा लेती, और चुमकार-दुलार कर चुप करतीं। उस अनाथ के लिए अब यही एक आश्रय रह गया था।

निर्मला की कटुता परिस्थिति वश

निर्मला को अब अगर कुछ अच्छा लगता था, तो वह सुधा से बात करना था। वह वहाँ जाने का अवसर खोजती रहती थी। बच्ची को अब वह अपने साथ न ले जाना चाहती थी। पहले जब बच्ची को अपने घर सभी चीजें खाने को मिलती थीं तो वह वहाँ जाकर हँसती-खेलती थी। अब वहीं जाकर उसे भूख लगती थी। निर्मला उसे घूर-घूरकर देखती, मुट्ठियाँ बाँधकर धमकाती, पर लड़की भूख की रट लगाना न छोड़ती थी। इसीलिए निर्मला उसे साथ न ले जाती थी। सुधा के पास बैठकर उसे मालूम होता था कि मैं आदमी हूँ। उतनी देर के लिए वह चिंताओं से मुक्त हो जाती थी। जैसे शराबी को शराब के नशे में सारी चिन्ताएँ भूल जाती है, उसी तरह निर्मला को सुधा के घर जाकर सारी बातें भूल जाती हैं। जिसने उसे उसके घर पर देखा हो, वह उसे यहाँ देखकर चकित रह जाता। वही कर्कशा, कटु-भाषिणी स्त्री यहाँ आकर हास्यविनोद और माधुर्य की पुतली बन जाती थी। यौवन-काल की स्वाभाविक वृत्तियाँ अपने घर पर रास्ता बन्द पाकर यहाँ किलोलें करने लगती थीं। यहाँ आते वक्त वह माँग-चोटी, कपड़े-लत्ते से लैस होकर आती और यथासाध्य अपनी विपत्ति कथा को मन में रखती थी। वह यहाँ रोने के लिए नहीं, हँसने के लिए आती थी।

पर कदाचित उसके भाग्य में यह सुख भी नहीं बदा था। निर्मला मामूली तौर से दोपहर को या तीसरे पहर को सुधा के घर जाया करती थी। एक दिन उसका जी इतना ऊबा कि सबेरे ही जा पहुँची। सुधा नदी स्नान करने गई थी; डॉक्टर साहब अस्पताल जाने के लिए कपड़े पहन रहे थे। महरी अपने काम-धंधे में लगी हुई थी। निर्मला अपनी सहेली के कमरे में जाकर निश्चिन्त बैठ गई। उसने समझा—सुधा कोई काम कर रही होगी, अभी आती होगी। जब बैठे दो-तीन मिनट गुजर गये, तो उसने आलमारी से तस्वीरों की एक किताब उतार ली और केश खोल पलंग पर लेटकर चित्र देखने लगी। इसी बीच में डॉक्टर साहब को किसी जरूरत से निर्मला के कमरे में आना पड़ा। अपनी ऐनक ढूँढ़ते फिरते थे। बेधड़क अन्दर चले आये। निर्मला द्वार की ओर केश खोले लेटी हुई थी। डॉक्टर साहब को देखते ही चौंककर उठ बैठी, और सिर ढाँकती हुई चारपाई से उतरकर खड़ी हो गई। डॉक्टर साहब ने लौटते हुए चिक के पास खड़े होकर कहा—क्षमा करना निर्मला, मुझे मालूम न था कि तुम यहाँ हो! मेरी ऐनक मेरे कमरे में नहीं मिल रही है, न जाने कहाँ उतार कर रख दी थी। मैंने समझा शायद यहाँ हो।

निर्मला ने चारपाई के सिरहाने आले पर निगाह डाली तो ऐनक की डिबिया दिखाई दी। उसने आगे बढ़कर डिबिया उतार ली; और सिर झुकाये, देह समेटे, संकोच से डॉक्टर साहब की ओर हाथ बढ़ाया। डॉक्टर साहब ने निर्मला को दो-एक बार पहले भी देखा था, पर इस समय के-से भाव कभी उनके मन में न आये थे। जिस ज्वाला को वह बरसों से हृदय में दबाये हुए थे, वह आज पवन का झोंका पाकर दहक उठी। उन्होंने ऐनक लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो हाथ काँप रहा था। ऐनक लेकर भी वह बाहर न गये, वहीं खोये हुए से खड़े रहे। निर्मला ने इस एकान्त से भयभीत होकर पूछा—सुधा कहीं गई हैं क्या?
डॉक्टर साहब ने सिर झुकाये हुए जवाब दिया—हाँ, जरा स्नान करने चली गई हैं।

फिर भी डॉक्टर साहब बाहर न गये। वहीं खड़े रहे। निर्मला ने फिर पूछा—कब तक आयेंगी?

डॉक्टर साहब ने सिर झुकाये हुए कहा—आती होंगी।
फिर भी वह बाहर नहीं गये। उनके मन में घोर द्वन्द्व मचा हुआ था। औचित्य का बंधन नहीं, भीरुता का कच्चा तागा उनकी जबान को रोके हुए था। निर्मला ने फिर कहा—कहीं घूमने-घामने लगी होंगी। मैं भी इसी वक्त जाती हूँ।

एकांत पाकर डॉक्टर साहब का निर्मला से प्रणय निवेदन करना

भीरुता का कच्चा तागा भी टूट गया। नदी के कगार पर पहुँच कर भागती हुई सेना में अद्भुत शक्ति आ जाती है। डॉक्टर साहब ने सिर उठाकर निर्मला को देखा और अनुराग में डूबे हुए स्वर में बोले—नहीं, निर्मला, अब आती ही होगी। अभी न जाओ। रोज सुधा की खातिर से बैठती हो, आज मेरी खातिर से बैठो। बताओ, कब तक इस आग में जला करूँ? सत्य कहता हूँ निर्मला····
निर्मला ने कुछ और नहीं सुना। उसे ऐसा जान पड़ा मानो सारी पृथ्वी चक्कर खा रही है। मानो उसके प्राणों पर सहस्त्रों वज्रों का आघात हो रहा है। उसने जल्दी से अलगनी पर लटकी हुई चादर उतार ली और बिना मुँह से एक शब्द निकाले कमरे से निकल गई। डॉक्टर साहब खिसियाये हुए-से रोना मुँह बनाये खड़े रहे। उसको रोकने की या कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। निर्मला ज्योंही द्वार पर पहुँची उसने सुधा को ताँगे से उतरते देखा। सुधा उसे देखते ही जल्दी से उतरकर उसकी ओर लपकी और कुछ पूछना चाहती थी, मगर निर्मला ने उसे अवसर न दिया, तीर की तरह झपटकर चली। सुधा एक क्षण तक विस्मय की दशा में खड़ी रही। बात क्या है,

उसकी समझ में कुछ न आ सका। वह व्यग्र हो उठी। जल्दी से अन्दर गई महरी से पूछने कि क्या बात हुई है। वह अपराधी का पता लगायेगी और अगर उसे मालूम हुआ कि महरी या और किसी नौकर ने उसे कोई अपमान-सूचक बात कह दी है तो वह उसे खड़े-खड़े निकाल देगी। लपकी हुई वह अपने कमरे में गई अन्दर कदम रखते ही डॉक्टर साहब को मुँह लटकाये चारपाई पर बैठा देखा। पूछा—निर्मला यहाँ आई थी?

डॉक्टर साहब ने सिर खुजलाते हुए कहा—हाँ, आई तो थीं।

सुधा—किसी महरी-अहरी ने उन्हें कुछ कहा तो नहीं? मुझसे बोली तक नहीं, झपटकर निकल गई।

डॉक्टर साहब की मुख-कान्ति मलिन हो गई, कहा—यहाँ तो उन्हें किसी ने भी कुछ नहीं कहा।

सुधा—किसी ने कुछ कहा है! देखो मैं पूछती हूँ न, ईश्वर जानता है, पता पा जाऊँगी तो खड़े-खड़े निकाल दूँगी।

डॉक्टर साहब सिटपिटाते हुए बोले—मैंने तो किसी को कुछ कहते नहीं सुना। तुम्हें उन्होंने देखा न होगा।

सुधा—वाह, देखा ही न होगा! उनके सामने तो मैं ताँगे से उतरी हूँ। उन्होंने मेरी ओर ताका भी; पर बोलीं कुछ नहीं। इस कमरे में आई थीं?

डॉक्टर साहब के प्राण सूखे जा रहे थे। हिचकिचाते हुए बोले—आई क्यों नहीं थी।

सुधा—तुम्हें यहाँ बैठे देखकर चली गई होंगी। बस, किसी महरी ने कुछ कह दिया होगा। नीच जात है न, किसी को बात करने की तमीज तो है नहीं। अरे ओ सुन्दरिया, जरा यहाँ तो आ!

डॉक्टर—उसे क्यों बुलाती हो, वह यहाँ से सीधे दरवाजे की तरफ गईं। महरियों से बात तक नहीं हुई।

सुधा—तो फिर तुम्हीं ने कुछ कह दिया होगा।

डॉक्टर साहब का कलेजा धक्-धक् करने लगा। बोले—मैं भला क्या कह देता, क्या ऐसा गँवार हूँ?

सुधा—तुमने उन्हें आते देखा, तब भी बैठे रह गये?

डॉक्टर—मैं यहाँ था ही नहीं। बाहर बैठक में अपनी ऐनक ढूँढ़ता रहा जब वहाँ न मिली तो मैंने सोचा, शायद अन्दर हो। यहाँ आया तो उन्हें बैठे देखा। मैं बाहर जाना चाहता था कि उन्होंने खुद पूछा—किसी चीज की जरूरत है? मैंने कहा—जरा देखना, यहाँ मेरी ऐनक तो नहीं है। ऐनक इसी सिरहाने वाले ताक पर थी। उन्होंने उठाकर दे दी। बस इतनी ही बात हुई!

सुधा—बस, तुम्हें ऐनक देते ही वह झल्लाई हुई बाहर चली गई? क्यों?

डॉक्टर—झल्लाई हुई तो नहीं चली गई। जाने लगीं तो मैंने कहा—बैठिए वह आती होंगी। न बैठीं तो मैं क्या करता?

सुधा ने कुछ सोचकर कहा—बात कुछ समझ में नहीं आती, मैं जरा उसके पास जाती हूँ। देखूँ, क्या बात है।

सुधा ने चादर ओढ़ते हुए कहा—मेरे पेट में खलबली मची हुई[1] है, कहते हो जल्दी क्या है?

सुधा तेजी से कदम बढ़ाती हुई निर्मला के घर की ओर चली और पाँच मिनट में जा पहुँची? देखा तो निर्मला अपने कमरे में चारपाई पर पड़ी रो रही थी और बच्ची उसके पास खड़ी पूछ रही थी—अम्माँ, क्यों लोती हो?

सुधा ने लड़की को गोद में उठा लिया और निर्मला से बोली—बहिन, सच बताओ, क्या बात है? मेरे यहाँ किसी ने तुम्हें कुछ कहा है? मैं सबसे पूछ चुकी, कोई नहीं बतलाता!

निर्मला आँसू पोंछती हुई बोली—किसी ने कुछ कहा नहीं बहिन, भला वहाँ मुझे कौन कुछ कहता?

सुधा—तो फिर मुझसे बोलीं क्यों नहीं, और आते-ही-आते रोने क्यों लगीं?

निर्मला—अपने नसीबों को रो रही हूँ, और क्या!

सुधा—तुम यों न बताओगी तो मैं कसम रखा दूँगी।

निर्मला—कसम-असम न रखना भाइ, मुझे किसी ने कुछ नहीं कहा, झूठ किसे लगा दूँ?

सुधा—खाओ मेरी कसम!

निर्मला—तुम तो नाहक जिद करती हो।

सुधा—अगर तुमने न बताया निर्मला, तो मैं समझूँगी, तुम्हें मुझसे जरा भी प्रेम नहीं है। बस, सब जबानी जमा-खर्च है। मैं तुमसे किसी बात का पर्दा नहीं रखती और तुम मुझे गैर समझती हो। तुम्हारे ऊपर मुझे बड़ा भरोसा था। अब जान गई कि कोई किसी का नहीं होता।

[illegible] की बातों से सुधा को [illegible] पता लग जाना

सुधा की आँखें सजल हो गईं। उसने बच्ची को गोद से उतार दिया और द्वार की ओर चली! निर्मला ने उठकर उसका हाथ पकड़ लिया; और रोती हुई बोली—सुधा, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मत पूछो! तुम्हें सुनकर दुःख होगा और शायद मैं फिर तुम्हें अपना मुँह न दिखा सकूँ। मैं

1 मु०—जानने की इच्छा

अभागिनी न होती, तो यह दिन ही क्यों देखती। अब तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि संसार से मुझे उठा ले। अभी यह दुर्गति हो रही है तो आगे न जाने क्या होगा।

इन शब्दों में जो संकेत था, वह बुद्धिमती सुधा से छिपा न रह सका। वह समझ गई कि डॉक्टर साहब ने कुछ छेड़-छाड़ की है। उनका हिचक-हिचककर बातें करना और उनके प्रश्नों को टालना, उनकी वह ग्लानिमय, कांतिहीन मुद्रा बातें करना और उसके प्रश्नों को टालना, उनकी वह ग्लानिमय, कांतिहीन मुद्रा उसे याद आ गई। वह सिर से पाँव तक काँप उठी, और बिना कुछ कहे-सुने सिंहिनी की भाँति क्रोध से भरी हुई द्वार की ओर चली। निर्मला ने उसे रोकना चाहा पर न पा सकी। देखते-देखते वह सड़क पर आ गई और घर की ओर चली। तब निर्मला वहीं भूमि पर बैठ गई और फूट-फूटकर रोने लगी।

26

निर्मला दिन भर चारपाई पर पड़ी रही। मालूम होता है, उसकी देह में प्राण नहीं है। न स्नान किया, न भोजन करने उठी। सन्ध्या समय उसे ज्वर हो आया। रात भर देह तवे की भाँति तपती रही। दूसरे दिन ज्वर न उतरा। हाँ, कुछ-कुछ कम हो गया था। वह चारपाई पर लेटी हुई निश्चल नेत्रों से द्वार की ओर ताक रही थी। चारों ओर शून्य था—अन्दर भी शून्य बाहर भी शून्य। कोई चिन्ता न थी, न कोई स्मृति, न कोई दुःख, मस्तिष्क में स्पन्दन की शक्ति ही न रही थी।

सहसा रुक्मिणी बच्ची को गोद में लिये हुए आकर खड़ी हो गई। निर्मला ने पूछा—क्या यह बहुत रोती थी?
रुक्मिणी—नहीं; यह तो सिसकी तक नहीं। रात भर चुपचाप पड़ी रही, सुधा ने थोड़ा-सा दूध भेज दिया था।
निर्मला—अहीरिन दूध न दे गई थी?
रुक्मिणी—कहती थी, पिछले पैसे दे दो तो दूँ। तुम्हारा जी अब कैसा है?
निर्मला—मुझे कुछ नहीं हुआ है? कल देह गरम हो गई थी।
रुक्मिणी--डॉक्टर साहब का बुरा हाल हो गया।
निर्मला ने घबराकर पूछा—क्या हुआ, क्या? कुशल से हैं न?
रुक्मिणी—कुशल से हैं कि लाश उठाने की तैयारी हो रही है! कोई कहता है, जहर खा लिया था, कोई कहता है, दिल का चलना बन्द हो गया था। भगवान् जाने क्या हुआ था।
निर्मला ने एक ठण्डी साँस ली, और रुँधे हुए कंठ से बोली—हाय भगवान् सुधा की क्या गति होगी? कैसे जियेगी?

डॉक्टर सिन्हा के आत्महत्या की सूचना

यह कहते-कहते वह रो पड़ी और बड़ी देर तक सिसकती रही। तब बड़ी मुश्किल से उठ कर सुधा के पास जाने को तैयार हुई। पाँव थर-थर काँप रहे थे, दीवार थामें खड़ी थी, पर जी न मानता था। न जाने सुधा ने यहाँ से जाकर पति से क्या कहा? मैंने तो उससे कुछ कहा भी नहीं, न जाने मेरी बातों का वह क्या मतलब समझी? हाय! ऐसे रूपवान्, दयालु, ऐसे सुशील प्राणी का यह अन्त! अगर निर्मला को मालूम होता कि उसके क्रोध का यह भीषण परिणाम होगा, तो वह जहर का घूँट पीकर भी उस बात को हँसी में उड़ा देती।

यह सोचकर कि मेरी ही निष्ठुरता के कारण डॉक्टर साहब का यह हाल हुआ, निर्मला के हृदय के टुकड़े होने लगे। ऐसी वेदना होने लगी, मानो हृदय में शूल उठ रहा हो। वह डॉक्टर साहब के घर चली।

लाश उठ चुकी थी। बाहर सन्नाटा छाया हुआ था। घर में स्त्रियाँ जमा थी। सुधा जमीन पर बैठी रो रही थी। निर्मला को देखते ही जोर से चिल्लाकर रो पड़ी और आकर उसकी छाती से लिपट गई। दोनों देर तक रोती रहीं।

जब औरतों की भीड़ कम हुई और एकान्त हो गया, निर्मला ने पूछा—यह क्या हो गया बहिन, तुमने क्या कह दिया?
सुधा अपने मन को इसी प्रश्न का उत्तर आज कितनी बार दे चुकी थी। उसका मन जिस उत्तर से शांत हो गया था, वही उत्तर उसने निर्मला को दिया। बोली—चुप भी तो न रह सकती थी बहिन! क्रोध की बात पर क्रोध आता ही है।
निर्मला—मैंने तो तुमसे कोई ऐसी बात भी न कही थी।
सुधा—तुम कैसे कहतीं, कह ही नहीं सकती थीं, लेकिन उन्होंने जो बात हुई थी, वह कह दी थी। उस पर मैंने जो कुछ मुँह में आया, कहा। जब एक बात दिल में आ गई, तो उसे हुआ ही समझना चाहिये। अवसर और घात मिले, तो वह अवश्य ही पूरी हो। यह कहकर कोई नहीं निकल सकता कि मैंने तो हँसी की थी। एकान्त में ऐसा शब्द जबान पर लाना ही कह देता है कि नीयत बुरी

थी। मैंने तुमसे कभी कहा नहीं बहिन, लेकिन मैंने उन्हें कई बार तुम्हारी ओर झाँकते देखा। उस वक्त मैंने भी यही समझा कि शायद मुझे धोखा हो रहा हो। अब मालूम हुआ कि उस ताक-झाँक का क्या मतलब था! अगर मैंने दुनिया ज्यादा देखी होती तो तुम्हें अपने घर न आने देती। कम-से-कम तुम पर उनकी निगाह कभी न पड़ने देती; लेकिन यह क्या जानती थी कि पुरुषों के मुँह में कुछ और मन में कुछ और होता है। ईश्वर को जो मंजूर था, वह हुआ। ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती। दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं सुखी है, जिसे उसका धन साँप बनकर काटने दौड़े। उपवास कर लेना आसान है, विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल।

इसी वक्त डॉक्टर सिन्हा के छोटे भाई और कृष्णा ने घर में प्रवेश किया। घर में कोहराम मच गया।

27

निर्मला का आर्थिक तंगी के कारण घर बदलना

एक महीना और गुजर गया। सुधा अपने देवर के साथ तीसरे ही दिन चली गई। अब निर्मला अकेली थी। पहले हँस-बोलकर जी बहला लिया करती थी। अब रोना ही एक काम रह गया। उसका स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता गया! पुराने मकान का किराया अधिक था। दूसरा मकान थोड़े किराये का लिया, यह तंग गली में था। अन्दर एक कमरा था और छोटा-सा आँगन। न प्रकाश जाता, न वायु। दुर्गन्ध उड़ा करती थी। भोजन का यह हाल कि पैसे रहते हुये भी कभी-कभी उपवास करना पड़ता था। बाजार से लावे कौन? फिर अपना कोई मर्द नहीं, कोई लड़का नहीं, तो रोज भोजन बनाने का कष्ट कौन उठाये। औरतों के लिये रोज भोजन करने की आवश्यकता ही क्या? अगर एक वक्त खा लिया तो दो दिन के लिये छुट्टी हो गई। बच्ची के लिए ताजा हलुआ या रोटियाँ बन जाती थीं! ऐसी दशा में स्वास्थ्य क्यों न बिगड़ता? चिन्ता, शोक, दुरवस्था—एक हो तो कोई कहे। यहाँ तो **त्रयताप**[1] का धावा था। उस पर निर्मला ने दवा खाने की कसम खा ली थी। करती ही क्या? उन थोड़े-से रुपयों में दवा की गुंजाइश कहाँ थी? जहाँ भोजन का ठिकाना न था, वहाँ दवा का जिक्र ही क्या? दिन-दिन सूखती चली जाती थी।

निर्मला के प्रति रुक्मिणी देवी का व्यवहार परिवर्तन

एक दिन रुक्मिणी ने कहा—बहू, इस तरह कब तक घुला करोगी, जी ही से तो जहान है। चलो, किसी वैद्य को दिखा लाऊँ।
निर्मला ने विरक्त भाव से कहा—जिसे रोने ही के लिये जीना हो, उसका मर जाना ही अच्छा।
रुक्मिणी—बुलाने से तो मौत नहीं आती।
निर्मला—मौत तो बिना बुलाए आती है, बुलाने पर क्यों न आयेगी? उसके आने में बहुत दिन न लगेंगे बहिन! जै दिन चलती हूँ, उतने साल समझ लीजिए।
रुक्मिणी—दिल ऐसा छोटा मत करो बहू! अभी संसार का सुख ही क्या देखा है?
निर्मला—अगर संसार का यही सुख है, जो इतने दिनों से देख रही हूँ तो उससे जी भर गया। सच कहती हूँ बहिन, इस बच्ची का मोह मुझे बाँधे हुए है, नहीं तो अब तक कभी की चली गई होती। न जाने इस बेचारी के भाग्य में क्या लिखा है।

दोनों महिलाएँ रोने लगीं। इधर जब से निर्मला ने चारपाई पकड़ ली है, रुक्मिणी के हृदय में दया का **सोता-सा**[2] खुल गया है। द्वेष का लेश भी नहीं रहा। कोई काम करती हों, निर्मला की आवाज सुनते ही दौड़ती हैं। घण्टों उसके पास कथा-पुराण सुनाया करती हैं। कोई ऐसी चीज पकाना चाहती हैं, जिसे निर्मला रुचि से खाये। निर्मला को कभी हँसते देख लेती हैं तो **निहाल**[3] हो जाती हैं और बच्ची को तो अपने **गले का हार**[4] बनाये रहती हैं। उसी की नींद सोती हैं उसी की नींद जागती हैं। वही बालिका अब उनके जीवन का आधार है।

रुक्मिणी ने जरा देर बाद कहा—बहू, तुम इतनी निराश क्यों होती हो? भगवान चाहेंगे तो तुम दो-चार दिन में अच्छी हो जाओगी। मेरे साथ आज वैद्यजी के पास चलो। बड़े सज्जन हैं।
निर्मला—दीदीजी, अब मुझे किसी वैद्य, हकीम की दवा फायदा न करेगी। आप मेरी चिन्ता न करें। बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूँ। अगर जीती-जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजियेगा। मैं तो इसके लिये अपने जीवन में कुछ न कर सकी, केवल जन्म देने भर की अपराधिनी हूँ। चाहे क्वाँरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा, इतनी ही आपसे मेरी विनय है। मैंने आपकी कुछ सेवा न की, इसका बड़ा दुःख हो रहा है। मुझे अभागिनी से किसी को सुख नहीं मिला। जिस पर मेरी छाया भी पड़ गई उसका सर्वनाश हो गया। अगर स्वामीजी कभी घर आवें तो, उनसे कहिएगा कि इस करम-जली के अपराध क्षमा कर दें।

रुक्मिणी रोती हुई बोलीं—बहू, तुम्हारा कोई अपराध नहीं। ईश्वर से कहती हूँ, तुम्हारी ओर से मेरे मन में जरा भी मैल नहीं है। हाँ, मैंने सदैव तुम्हारे साथ कपट किया, इसका मुझे मरते दम तक दुःख रहेगा।

1 दैहिक, दैविक, भौतिक दुःख, 2 स्रोत, 3 प्रसन्न, 4 मु०—अत्यधिक प्रेम।

निर्मला ने कातर नेत्रों से देखते हुये कहा—दीदीजी, कहने की बात नहीं, पर बिना कहे रहा नहीं जाता। स्वामीजी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखा, लेकिन मैंने कभी मन में भी उनकी उपेक्षा नहीं की। जो होना था वह तो हो ही चुका था। अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ती। पूर्व जन्म में न जाने कौन-से पाप किये थे जिसका वह प्रायश्चित करना पड़ा। इस जन्म में काँटे बोती, तो कौन गति होती?

निर्मला का पुत्री के प्रति चिंतित होना

निर्मला की साँस बड़े वेग से चलने लगी। फिर खाट पर लेट गई, और बच्ची की ओर एक ऐसी दृष्टि से देखा, जो उसके जीवन की संपूर्ण विपत्कथा की वृहद आलोचना थी, वाणी में इतनी सामर्थ्य कहाँ?

तीन दिनों तक निर्मला की आँखों से आँसुओं की धारा बहती रही। वह न किसी से बोलती थी, न किसी की ओर देखती थी, और न किसी का कुछ सुनती थी। बस रोये चली जाती थी। उस वेदना का कौन अनुमान कर सकता है?

निर्मला की मृत्यु

चौथे दिन सन्ध्या समय वह विपत्ति कथा समाप्त हो गई। उसी समय जब पशु-पक्षी अपने-अपने बसेरे को लौट रहे थे; निर्मला का प्राण-पक्षी भी दिन भर शिकारियों के निशानों, शिकारी चिड़ियों के पंजों और वायु के प्रचंड झोकों से आहत और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड़ गया।

अनमेल विवाह का परिणाम

मुहल्ले के लोग जमा हो गये। लाश बाहर निकाली गई। कौन दाह करेगा यह प्रश्न उठा। लोग इसी चिन्ता में थे कि सहसा एक बूढ़ा पथिक एक बकुचा[1] लटकाये आकर खड़ा हो गया। यह मुंशी तोताराम थे।

बोध प्रश्न

18 गहने चोरी चले जाने के बाद निर्मला के व्यवहार में परिवर्तन आया। वह एक-एक पैसा जोड़कर रखने लगी। उसे सबसे अधिक चिन्ता।

क) अपने पति के गिरते स्वास्थ्य के लिए थी।

ख) रूक्मिणी देवी के व्यवहार की थी।

ग) सियाराम के लिए थी।

घ) अपनी पुत्री के लिए थी।

19 निर्मला का स्वाभाव क्यों कटु हो गया था?

क) उसका कटु स्वभाव उसके व्यक्तित्व का अंग था।

ख) उसकी कटुता परिस्थितिवश थी।

ग) उसकी बच्ची बहुत तंग किया करती थी।

घ) तोताराम उस पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे।

20 साधु के किस प्रलोभन से सियाराम अधिक प्रभावित हुआ।

क) विमाता की चर्चा से।

ख) देशाटन की चर्चा से।

ग) योग विद्या द्वारा माँ के दर्शन की चर्चा से।

घ) स्वामी परमानंद की चर्चा से।

21 सियाराम ने जब घर से जाने का निश्चय किया और मंदिर तक गया तो पूर्व परिचित महात्मा को न पाकर निराश हुआ। उस समय उसे घर की बहुत सी बातें याद आईं। किस बात के याद आते ही उसने घर वापस जाने का निश्चय किया।

क) पिता के प्यार को याद कर।

ख) निर्मला को याद कर।

ग) छोटी बहन को याद कर।

घ) रूक्मिणी देवी को याद कर।

---

[1] बकसा

22 "दाने पर मण्डराता हुआ पक्षी अंत में दाने पर गिर पड़ा।" उपयुक्त पंक्ति के द्वारा लेखक क्या कहना चाहता है?

क) सियाराम नें घर छोड़ दिया।

ख) सियाराम साधु के जाल में फंस गया।

ग) सियाराम ने सफलता पायी।

घ) निर्मला ने सफलता पायी।

23 "ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं मानती" इस कथन से सुधा के किस चरित्र का उद्घाटन होता है?

क) सुधा विधवापन को अच्छा समझती थी।

ख) व्याभिचारी पति का रहना नहीं रहने से अच्छा है।

ग) विधवा होना भाग्य की बात है।

घ) वह अपने पति से प्यार नहीं करती थी।

24 निर्मला के प्रति रुक्मिणी देवी के व्यवहार में कब परिवर्तन आया?

क) जब निर्मला ने घर बदल लिया।

ख) जब निर्मला की पुत्री थोड़ी बड़ी हो गयी।

ग) जब मुंशी तोताराम ने ग्रह त्याग दिया।

घ) जब निर्मला बीमार पड़ गई।

25 प्रेमचंद इस उपन्यास में क्या कहना चाहते हैं?

क) लड़की का विवाह नहीं करना चाहिए।

ख) लड़की को स्वावलम्बी बनाना चाहिए।

ग) स्त्रियाँ स्वभाव की बुरी होती हैं।

घ) अनमेल विवाह का परिणाम बुरा होता है।

यह अंश उपन्यास का अन्तिम मोड़ है। इसमें मुंशी तोताराम के एकमात्र जीवित पुत्र सियाराम की विरक्ति और घर से साधु के साथ निकल जाने की कथा आयी है। इसके अतिरिक्त मुंशीजी का घर छोड़ देना और निर्मला की मृत्यु इस भाग की प्रमुख घटनाएँ हैं। परिस्थितिवंश निर्मला का स्वभाव कटु हो गया है और वह कंजूस भी हो चली है। मुंशीजी की आमदनी भी काफी कम हो गयी है। घर से सारे नौकर हटा दिए गये हैं और सारा काम सियाराम को ही करना पड़ता है। निर्मला के व्यवहार से क्षुब्ध होकर वह भी घर छोड़ देता है और एक ठग साधु के चक्कर में पड़कर कहीं चल पड़ता है। मुंशीजी सियाराम की खोज में निकल पड़ते हैं और घर की तबाही के लिए निर्मला को दोषी ठहराते हुए फटकारते हैं। इसी बीच डॉक्टर साहब आत्महत्या कर लेते हैं। यह भी परोक्ष रूप में निर्मला के कारण ही होता है, हालाँकि उसका कोई दोष इसमें नहीं था। निर्मला आधी मरी हुई तो थी ही, वह इस कलंक और सदमें को बर्दाश्त न कर सकी और घुट-घुट कर प्राण त्याग दिए।

13.3 उपन्यास का सार

आपने उपन्यास को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। आशा है आप उपन्यास की कथा को समझ गए होंगे। यदि अब आपको कहा जाए कि कथा का सार लिखें तो क्या आप लिख सकते हैं? आइए हम देखें कि सार या सारांश कैसे लिखा जाता है। सारांश का अर्थ है कथा के केंद्रीय घटना चक्र को प्रस्तुत करना। इस केंद्रीय घटना चक्र में ही मूल मंतव्य छिपा रहता है। आप उपन्यास के मूल मंतव्य को आसानी से पहचान सकते हैं, उपन्यास का अध्ययन करते समय आपने बाँयीं ओर लिखी कथा के विकास क्रम की मुख्य घटनाओं को पढ़ा होगा। आप उसके आधार पर उपन्यास का सार लिख सकते हैं। नीचे हम उपन्यास की कथा के घटनाचक्र के मुख्य केंद्र बिंदु को दे रहे हैं। आप इसी को आधार बनाकर कथा सार लिख लेगें।

1 निर्मला की शादी तय होना, खर्चे को लेकर माता-पिता में विवाद, पत्नी को सबक सिखाने के लिए उदयभानुलाल का घर छोड़ना, रास्ते में गुंडे द्वारा हत्या।

2 बदली हुई परिस्थिति में दहेज न पाने की आशंका से लड़के के पिता द्वारा शादी की बात समाप्त करना, पैसे के अभाव में निर्मला की शादी अधेड़ व्यक्ति मुंशी तोताराम से, जिनके पहले ही तीन पुत्र थे और पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी।

3 अधेड़ उम्र का पति मिलने से निर्मला दुःखी, निर्मला द्वारा दापंत्य प्रेम की पूर्ति वात्सल्य प्रेम से, मंसाराम से विशेष लगाव, मुंशी तोताराम का शंकित होना, पुत्र पर दबाव कि वह घर छोड़कर स्कूल के होस्टल में चला जाए, मुंशीजी द्वारा पत्नी से पुत्र को दूर रखने के लिए मंसाराम को निर्मला के प्रति भड़काना, स्कूल में मंसाराम का दिनों-दिन गिरता स्वास्थ्य, निर्मला से घृणा, वास्तविकता मालूम होने पर प्राणोत्सर्ग का फैसला, मंसाराम की मृत्यु।

4 पुत्र शोक से मुंशी तोताराम विह्वल, ठीक से काम न करना, पैसे का अभाव, घर की नीलामी, निर्मला की पुत्री का जन्म।

5 मंसाराम की मृत्यु के दौरान एक डॉक्टर से मित्रता, निर्मला की डॉक्टर पत्नी से दोस्ती। बातों ही बातों में सुधा को पता चलना कि निर्मला की शादी उसके पति से ही ठीक हुई थी। प्रायश्चित स्वरूप अपने पति पर दबाव डालना कि अपने छोटे भाई की शादी निर्मला की छोटी बहन कृष्णा से करें, शादी संपन्न, निर्मला का मायके में रहना, सुधा के लड़के की मृत्यु, सुधा के साथ निर्मला का वापस ससुराल में आना।

6 ससुराल की हालत नाजुक, जियाराम उद्दंड, लोगों के सिखाने और घर की परिस्थिति के कारण, जियाराम द्वारा निर्मला के गहने चुराना, पकड़े जाने के भय से आत्महत्या।

7 निर्मला का दिनों-दिन कटु होता स्वभाव, सियाराम पर सारा आक्रोश, सियाराम का घर छोड़ना, पति द्वारा लांछन लगाना, और घर छोड़ना।

8 निर्मला को एकान्त में पाकर डॉक्टर का प्रणय निवेदन, सुधा का इस तथ्य से वाकिफ होना, डॉक्टर द्वारा आत्महत्या।

9 इन परिस्थितियों में निर्मला के जीने का कोई अर्थ नहीं, कलंक और अपमान के सदमे को बर्दाश्त न करना और धीरे-धीरे प्राण त्याग देना।

13.4 उपन्यास की संदर्भ सहित व्याख्या

इस इकाई से पूर्व के पाठ में आपने उपन्यास में आए महत्वपूर्ण अंश की व्याख्या कैसे की जाती है, यह सीखा। इस इकाई में हम नमूने के तौर पर व्याख्या प्रस्तुत करेंगे जिससे आप अच्छी प्रकार यह कार्य करना सीख जाएँ।

"तुमने मेरा बना-बनाया घर बिगाड़ दिया, तुमने मेरे लहलहाते बाग को उजाड़ डाला। केवल एक ठूँठ रह गया है। उसका निशान मिटाकर तुम्हें संतोष होगा"

जैसा कि आप पिछली इकाई में देख चुके हैं : प्रथमतः लेखक का नाम, रचना का नाम, कहानीकार का वैशिष्ट्य तथा अंश का केंद्रीय भाव लिखा जाता है। ये सारी बातें तीन चार पंक्तियों में आ जानी चाहिए। अब उपर्युक्त अंश का संदर्भ देखें

संदर्भ: प्रस्तुत कथन प्रेमचंद के उपन्यास "निर्मला" से लिया गया है। प्रेमचंद समाज का यथार्थ चित्रण करने में कुशल थे। इस कथन में लेखक ने मुंशी तोताराम के अंदर उठ रही व्यथा को दर्शाया है।

प्रसंग: घर की परिस्थितियों से परेशान सियाराम कपटी साधु के शब्दजाल में फँसकर घर छोड़ देता है। मुंशीजी उसकी तलाश में जगह-जगह भटकते हैं। रात्रि बारह बजे खाली हाथ वापस घर लौटते हैं, उस समय निर्मला जब सियाराम के बारे में पूछती है तो मुंशीजी क्रोध में वाक्य कहते हैं।

आप तो जान ही गए हैं कि व्याख्या में दिए गए अंश को खोलकर समझाया जाता है। इसके लिए कुछ विस्तार की आवश्यकता होती है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि अनावश्यक विस्तार कर दिया जाए। अंश का आशय कम से कम शब्दों में सरल ढंग से कहा जाए। यह नहीं कि पूरी कथा ही कहने लगें। अंश को ध्यानपूर्वक पढ़ लेना चाहिए फिर यह देखना चाहिए कि अंश में कौन-सी महत्वपूर्ण बात कही गयी है। उपर्युक्त कथन में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं।

1 घर बिगाड़ देना,
2 लहलहाते बाग उजाड़ देना,
3 एक ठूँठ बचा है,
4 उसे मिटाने पर संतोष होगा।

उपर्युक्त चार बातों का आशय क्या है उसे अगर समझ जाए तो व्याख्या करना सरल होगा।

घर बिगाड़ देना: मुंशीजी कम आयु की कन्या निर्मला से विवाह करते हैं, निर्मला का प्यार न पाने के कारण उनमें संदेह उत्पन्न होता है। बड़ा पुत्र मंसाराम संदेह का शिकार होता है। वह इसी शोक में मर जाता है। दूसरा पुत्र आत्महत्या कर लेता है, तीसरा पुत्र लापता है, इन सभी घटनाओं के लिए वे निर्मला को उत्तरदायी मानते हैं। वे यह भी आक्षेप लगाते हैं कि निर्मला ने उनके बसे बसाए घर को नष्ट कर दिया।

लहलहाते बाग उजाड़ देना: निर्मला से विवाह के पूर्व मुंशीजी के घर में कोई समस्या न थी। सभी प्रसन्न रहते थे। लहलहाता बाग प्रसन्न परिवार के लिए कहा गया है।

एक ठूँठ बचा है: ठूँठ ऐसे सूखे हुए वृक्ष को कहते हैं, जिसकी सारी पत्तियाँ सूख गयी हों, तने सूख गये हों। वे अपने एकमात्र बचे पुत्र सियाराम को एक ठूँठ की संज्ञा देते हैं।

उसे मिटाने पर संतोष होगा : सियाराम की मृत्यु पर ही तुम्हें शांति होगी।

आपने देखा कि उपर्युक्त कथन का क्या आशय है। अब आप इसकी व्याख्या कर सकते हैं।

मुंशी तोताराम अधेड़ अवस्था में सुखमय जीवन बनाने के लोभ से दूसरा ब्याह रचाते हैं। पत्नी की उम्र उनके बड़े पुत्र के बराबर है। पत्नी से प्यार नहीं मिलने पर उनमें हीनता की ग्रंथि बन जाती है। वे पुत्र पर शक करने लगते हैं। इस प्रकार घर की शांति भंग हो जाती है। पुत्र को जब पिता के संदेह का पता चलता है तो वह अत्याधिक दुःखी होता है, यहाँ तक कि अपने को निष्कलंकित करने के लिए वह प्राण दे देता है। बड़े भाई की मृत्यु से जियाराम एवं सियाराम के व्यवहार में परिवर्तन होता है। गहने चुराने पर आत्मग्लानि से जियाराम आत्महत्या कर लेता है। सियाराम कपटी साधु के शब्दजाल में फँसकर घर छोड़ देता है। मुंशीजी इन सारी विपत्तियों का कारण निर्मला को मानते हैं और क्रोध में उसे ये वचन कहते हैं। तोताराम तीनों पुत्रों से वंचित हैं। उन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है। वे इस सर्वनाश की जड़ निर्मला को मानते हैं। निर्मला के आने से पूर्व परिवार सुखी था। जीवन को सुखी बनाने के लिए मुंशीजी ने धन कमाया था। तीन होनहार पुत्र थे। उनका घर एक बाग के समान था जिसमें लहलहाते पौधे थे। बाग की शोभा हरियाली से होती है और परिवार की शोभा भरे-पूरे प्रसन्न चित्त सदस्यों से। मंसाराम और जियाराम के बाद एक मात्र सियाराम बचा था।

विशेष: तोताराम के अनमेल विवाह की त्रासदी को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भाषा-रूपक का प्रयोग
परिवार को लहलहाते बाग तथा सियाराम को ठूँठ कहा गया है।

हमें आशा है कि उपर्युक्त उदाहरण से व्याख्या करने के लिए आपको मार्गदर्शन मिल गया होगा। अब आप उपन्यास में आए महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकते हैं।

अभ्यास
निम्नलिखित अंशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

1 "अगर तुम इसके बोझ से दबे जाते हो, तो आज से मैं इस पर तुम्हारा साया भी नहीं पड़ने दूँगी। जिस रतन को मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है उसका निरादर करते हुए तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता?"

(चौदहवाँ परिच्छेद)

संदर्भ : ....
....
....
....

प्रसंग : ....
....

....

....

याख्या : ....

....

....

....

....

भ्यास 2

अपराधी जैसे दण्ड की प्रतीक्षा करता है, उसी भाँति वह विवाह की प्रतीक्षा करती थी, उस वाह की जिसमें उसके जीवन की सारी अभिलाषाएँ विलीन हो जाएँगी; जब मंडप के नीचे बने ए हवनकुंड में उसकी आशाएँ जलकर भस्म हो जाएँगी।"

(पन्द्रवाँ परिच्छेद)।

दर्भ : ....

....

....

....

संग : ....

....

....

....

याख्या : ....

....

....

....

....

....

13.5 सारांश

- इस इकाई में आपने "निर्मला" उपन्यास का वाचन पूरा कर लिया है। इस इकाई में भी पाठ की बायीं ओर दिए गए महत्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर आप कथासार अपने शब्दों में लिख सकते हैं।
- इस इकाई में भी आपने देखा कि पाठ के नीचे कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं, आप अब कठिन शब्दों के अर्थ बता सकते हैं।
- लेखक ने पूरे उपन्यास में कथा को सरस तथा यथार्थ बनाने के लिए मुहावरों का भरपूर प्रयोग किया है। आप मुहावरों का प्रयोग कर सकते हैं।
- लेखक ने कहीं पात्रों केसंवाद से उसकी मनोदशा को प्रस्तुत किया और स्वयं भी कुछ विचार रखे हैं। पाठ में आए ऐसे अंशों की व्याख्या भी आप कर सकते हैं।

13.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ग, 2) ख, 3) घ, 4) घ,

5 निर्मला ने बहन से अस्पताल वाली घटना का जिक्र किया। उसने बताया कि मंसाराम ने पिता के सामने अपने को निष्कलंकित करते हुए प्राण त्याग दिया। उसी दिन से तोताराम ठीक हो गए।

6) कृष्णा का होने वाला पति गांधीवादी विचारधारा का था। उसे खादी से प्रेम था इसी कारण कृष्णा सूत कातकर साफा बनाना चाहती थी, जिसे वह पति को उपहार में दे सके।

7) क) सुधा, ख) नाई, ग) निर्मला, घ) सुधा, ङ) कल्याणी

8) मंसाराम की मृत्यु के बाद, निर्मला अपनी छोटी बहन कृष्णा से कहती है कि यदि मंसाराम में दुर्भावना होती, तो वह समर्पण से इंकार नहीं कर सकती थी।

9) क) सुधा, ख) नाई, ग) निर्मला, घ) सुधा, ङ) कल्याणी

10) क, 11) ग।

12) नैहर में निर्मला काफी सुखी थी। वह ज्यादा से ज्यादा दिन "घर" की मनहूसियत से दूर रहना चाहती थी।

13) क, 14) घ

15) निर्मला ने जियाराम को रात्रि में अपने कमरे में देखा था जिससे उसे पता चल गया था कि उसी ने गहने चोरी किये हैं। इसलिए वह नहीं चाहती थी कि जियाराम को सजा हो।

16) थानेदार ने पता लगा लिया था कि जियाराम ने ही चोरी की है यह जानने पर मुंशीजी ने निर्मला से पैसे लेकर थानेदार को घूस दिया।

17) डॉक्टर साहब ने

18) घ, 19) ख, 20) क 21) घ, 22) ख,

23) ख, 24) घ, 25) घ

अभ्यास 1

संदर्भ : प्रस्तुत अंश प्रेमचंद के "निर्मला" उपन्यास का है, ये पंक्तियाँ नायिका के मन में उठने वाले भावों को व्यक्त करती हैं। प्रेमचंद एक ओर समाज का यथार्थ चित्रण करने में माहिर थे वहीं मानव मन के भावों को चित्रित करने में भी कुशल थे।

प्रसंग : निर्मला बारहवें दिन प्रसूतिघर से निकल कर पुत्री को गोद में लिए हुए पति के पास जाती है। शिशु का चेहरा मंसाराम से मिलता जुलता है। इस कारण मुंशीजी उसे गोद लेने नहीं बढ़ते वे सोचने लगते हैं। पति के इस व्यवहार का निर्मला उल्टा अर्थ लगा लेती है, उसी समय उसके मन में ये विचार उठते हैं।

निर्मला पति के मनोभाव को नहीं समझ पाती। वह सोचती है कि पुत्री होने के कारण पति ने जैसे बोझ समझ लिया है इसलिए प्रसन्न होकर उसे गोद में नहीं लेते हैं। अगर वे बोझ समझते हैं तो आज से वे पति की छाया भी इस पर पड़ने नहीं देगी। अर्थात् पुत्री को पिता से दूर ही रखेगी। इतने कष्ट के बाद उसने जिस अमूल्य चीज को पाया है उसके प्रति इस प्रकार का अनादर भाव प्रकट करने से क्या पत्नी को कष्ट नहीं होता। इस कथन में माता का वात्सल्य भाव प्रकट हुआ है।

विशेष : निर्मला का दुःख एक माता का दुःख है।

1 मुहावरे के प्रयोग से कथन सजीव हो उठा है—बोझ से दबाना, साया नहीं पड़ने देना, हृदय फटना आदि मुहावरे ऊपर से आरोपित नहीं मालूम होते। यह साधारण बोलचाल की भाषा के अंग हैं। प्रेमचंद साधारण बोलचाल में प्रयुक्त मुहावरों का सटीक उपयोग करते हैं।

2 **संदर्भ :** प्रस्तुत अंश प्रेमचंद के "निर्मला" उपन्यास का है। इन पंक्तियों में निर्मला के मन में उठने वाले भावों को व्यक्त किया गया है। मानव मन को भाँपने में प्रेमचंद कुशल थे। यहाँ उन्होंने निर्मला की मानसिक स्थिति का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

प्रसंग : निर्मला अपनी बहन कृष्णा की शादी में मायके आयी हुई है। दोनों बहनें अंतरंग बातें करते हुए सोने जाती हैं। नींद पड़ने के बाद अचानक निर्मला की आँख खुलती है। वह कृष्णा को बिस्तर पर न पाकर घबराती है। खोजते हुए कृष्णा के कमरे में पहुँचती है तो पाती है कि कृष्णा चर्खे पर सूत कात रही है। वह अपने होने वाले पति को सूत से बने साफा भेंट देना चाहती है। कृष्णा के उत्साह को देखकर निर्मला को अपने विवाह का दिन स्मरण हो आता है। वह अपने और बहन के भाग्य की तुलना करते सोचती है :

जिस दिन निर्मला का तिलक गया था उस दिन से उसकी मनःस्थिति उसी प्रकार की थी जिस प्रकार एक अपराधी जेल जाने की प्रतीक्षा करता है। विवाह का दिन जेल के अंदर जाने का

दन जैसा लग रहा था। उस दिन वह सोच रही थी कि विवाह होते उसकी सारी इच्छाएँ ामाप्त हो जाएँगी। अर्थात् उसने जो इच्छाएँ सँजो रखी थी कि उसका दूल्हा सुन्दर होगा, ावान होगा, प्रेम की बातें होंगी वह सब अनमेल विवाह से समाप्त हो जाएँगी। विवाह के ामय जो मण्डप बना था मानो उसकी अग्नि में उसकी सारी आशाएँ जलकर भस्म हो गयी थी।

वशेष : लेखक ने भावनात्मक शैली में मानव मन में उठने वाले भावों को दर्शाया है।

कैदी और जेल का बिम्ब उपस्थित कर निर्मला के मन की दशा को दर्शाया गया है। जिस ाकार हवन कुण्ड में आहूति देने पर सामग्री जलकर राख हो जाती है उसी प्रकार विवाह के ामय बने हवन कुण्ड में मानों निर्मला की आशाएँ भी जलकर भस्म हो गयीं।

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-01
हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड
3
हिंदी उपन्यास (दूसरा भाग)

इकाई 11

हिंदी उपन्यास : स्वरूप और विकास 5

इकाई 12

"निर्मला" (प्रेमचंद) वाचन एवं व्याख्या-I 21

इकाई 13

"निर्मला" (प्रेमचंद) वाचन एवं व्याख्या-II 80

इकाई 14

"निर्मला" : कथावस्तु 128

इकाई 15

"निर्मला" : चरित्र-चित्रण 143

इकाई 16

"निर्मला" : परिवेश, संरचना-शिल्प 162

इकाई 17

"निर्मला" : प्रतिपाद्य एवं प्रेमचंद का वैशिष्ट्य 187

खंड 3 का परिचय

हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम के अंतर्गत अब तक आपने दो खंडों का अध्ययन कर लिया है। अब आप तीसरे खंड का अध्ययन करने जा रहे हैं। यह खंड कथा साहित्य की लोकप्रिय विधा "उपन्यास" पर आधारित है। इस खंड में कुल सात इकाइयाँ हैं। इनमें से दो इकाइयाँ उपन्यास के वाचन से संबंधित हैं, जिनमें आप "निर्मला" उपन्यास का वाचन करेंगे। बाकी पाँच इकाइयाँ उपन्यास के स्वरूप और विकास तथा उपन्यास के मुख्य तत्वों पर आधारित हैं। इस खंड की इकाइयों का क्रम इस प्रकार है :

11 हिंदी उपन्यास : स्वरूप और विकास
12 "निर्मला" (प्रेमचंद) : वाचन एवं व्याख्या-I
13 "निर्मला" (प्रेमचंद) : वाचन एवं व्याख्या-II
14 "निर्मला" : कथावस्तु
15 "निर्मला" : चरित्र-चित्रण
16 "निर्मला" : परिवेश, संरचना-शिल्प
17 "निर्मला" : प्रतिपाद्य एवं प्रेमचंद का वैशिष्ट्य

11वीं इकाई में आप उपन्यास विधा का सामान्य ज्ञान प्राप्त करेंगे। साथ ही साथ इस इकाई के अध्ययन से आप यह भी जान पायेंगे कि हिंदी भाषा में इस विधा का प्रारंभ एवं विकास, विस्तार किस प्रकार हुआ। आप इसके माध्यम से यह भी जान पायेंगे कि हिंदी के आरंभिक उपन्यासकार कौन-कौन थे तथा किसकी रचनाओं से हिंदी उपन्यास का स्तर विश्व की अन्य भाषाओं में किसी उच्चकोटि के उपन्यासों के समकक्ष पहुँच सका। 14वीं इकाई में आप उपन्यास की कथावस्तु से संबंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। 15वीं इकाई में हम आपको उपन्यास के महत्वपूर्ण तत्व चरित्र-चित्रण के बारे में बताएंगे। 16वीं इकाई उपन्यास के संरचना-शिल्प से संबंधित है। इस इकाई में प्रथमतः उपन्यास के परिवेश के बारे में बताया जायेगा जिसके आधार पर आप स्वयं देखेंगे कि "निर्मला" उपन्यास का परिवेश की रचना किस प्रकार से कथा के अनुकूल हुई है। इसके बाद आपको उपन्यास की शैली भाषा एवं संवाद के बारे में विस्तृत जानकारी दी जायेगी। इस खंड की अंतिम 17वीं इकाई उपन्यास के प्रतिपाद्य एवं उपन्यास के लेखक प्रेमचंद के वैशिष्ट्य से संबंधित है। इस इकाई में इस बात पर विचार किया जायेगा कि किसी रचना के पीछे कोई न कोई संदेश छिपा रहता है, लेखक अपनी रचना का शीर्षक किस आधार पर निर्धारित करता है उसे भी बताया जायेगा। अंत में उपन्यास सम्राट कहलाने वाले प्रेमचंद के लेखन से संबंधित विशेषताओं की चर्चा की जायेगी।

अगर आप इस खंड की इकाइयों को ध्यान से पढ़ेंगे तो आप "उपन्यास" विधा का सही विश्लेषण प्रस्तुत कर पायेंगे।

17वीं इकाई में अध्ययन के लिए कुछ पुस्तकों के नाम दिये जा रहे हैं आप उनका भी अध्ययन करें।

इस खंड के अध्ययन के आधार पर आपको सत्रीय कार्य करना है। वह पूरा करके अपनी उत्तर पुस्तिकाओं को विश्वविद्यालय के पास मूल्यांकन तथा सुझाव के लिए भेजें।

इकाई 14 "निर्मला" : कथावस्तु

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 कथावस्तु
 14.2.1 कथावस्तु के प्रकार
 14.2.2 कथावस्तु के गुण
 14.2.3 कथावस्तु के विकास की पद्धति
14.3 "निर्मला" की कथा
 14.3.1 कथा का आरंभ
 14.3.2 कथा का विकास
 14.3.3 कथा की परिणति
14.4 "निर्मला" की कथावस्तु की विशेषताएँ
14.5 सारांश
14.6 शब्दावली
14.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

आप "निर्मला" उपन्यास का अध्ययन कर रहे हैं। इस इकाई में उक्त उपन्यास की कथावस्तु पर विचार किया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- कथावस्तु के बारे में बता सकेंगे,
- उपन्यास की मुख्य कथा एवं प्रासंगिक कथा के बारे में बता सकेंगे,
- "निर्मला" उपन्यास की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे तथा,
- इस उपन्यास की कथावस्तु के आरंभ, विकास तथा परिणति को बता सकेंगे,
- "निर्मला" उपन्यास की कथावस्तु की विशेषताओं को पहचान सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

आप उपन्यास विधा का अध्ययन कर रहे हैं, आपने अब तक तीन इकाइयों का अध्ययन किया है, आप उपन्यास विधा के स्वरूप तथा हिंदी उपन्यास के विकास को भी पहचान गए हैं, आपने पिछली दो इकाइयों में प्रेमचंद के "निर्मला" उपन्यास का वाचन भी कर लिया है, उपन्यास की कथा को भी आप जान गये हैं। लेकिन उपन्यास की कथावस्तु की विशेषताओं को अलग से जानने की अपेक्षा है। अतः हम इस इकाई में उपन्यास की कथावस्तु पर विस्तार से चर्चा करेंगे। कथावस्तु क्या है? कथावस्तु का आरंभ कैसे होता है, किस प्रकार कथावस्तु विस्तार पाती है तथा किस प्रकार कथा की परिणति होती है इन सब बातों की जानकारी हम आपको इस इकाई के माध्यम से कराएँगे।

14.2 कथावस्तु

आपने इकाई 11 में "हिंदी उपन्यास स्वरूप और विकास" के अन्तर्गत उपन्यास के विभिन्न तत्वों की जानकारी प्राप्त कर ली है। आपने देखा कि कथावस्तु ही उपन्यास का मुख्य आधार है। उपन्यास में घटित घटनाएँ ही कथावस्तु का रूप लेती है। आप यह भी जान चुके हैं कि उपन्यास का आकार बड़ा होता है, बड़ी से बड़ी कहानी भी छोटे से उपन्यास की तुलना में छोटी होती है। यही कारण है कि उपन्यास में एक मुख्य कथा के साथ प्रासंगिक कथा की रचना भी की जा सकती है। आइए प्रथमतः हम देखेंगे कि उपन्यास की कथावस्तु के कितने प्रकार हैं:

14.2.1 कथावस्तु के प्रकार

उपन्यास का आकार बड़ा होता है, लेखक को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है कि वह कथावस्तु को

विस्तार दें, उपन्यासकार किसी उद्देश्य को लेकर उपन्यास की रचना करता है। उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह एक मुख्य कथा की रचना करता है मुख्य कथा के विस्तार के लिए उपकथा या प्रासंगिक कथा की रचना करता है। इस प्रकार मुख्य रूप से उपन्यास की कथावस्तु दो प्रकार की होती है।

1 मुख्य कथा 2 प्रासंगिक कथा

मुख्य कथा उसे कहते हैं जो उपन्यास में आरंभ से अंत तक चले। उदाहरण के लिए आप "निर्मला" उपन्यास की मूल कथा को देखें। इसमें निर्मला के संपूर्ण जीवन को लेखक ने मुख्य कथा के रूप में चुना है। नायिका के परिचय से कथा का आरंभ होता है। उसके विवाह की बात टूटने, दूसरी जगह अनमेल विवाह होने, पारिवारिक जीवन की त्रासदी और कष्ट पाते हुए अंत में उसकी मृत्यु पर्यन्त कथा चलती है। इस प्रकार निर्मला के जीवन की व्याख्या करना ही उपन्यास का मूल कथानक है।

प्रासंगिक कथाएँ उन्हें कहते हैं जो मुख्य कथा के साथ बीच-बीच में आएँ, प्रासंगिक कथाओं में वह विशेषता होनी चाहिए जिससे मुख्य कथा आगे बढ़े तथा उसे मजबूती प्रदान हो। उदाहरण के लिए, आप निर्मला उपन्यास में ही देखें। मुख्य कथा आरंभ होती है निर्मला के परिचय एवं विवाह की बात से। लेकिन इसी बीच उदयभानु लाल एवं कल्याणी की प्रासंगिक कथा से जहाँ कथा को गति मिली वहीं कथा में एक नया मोड़ उपस्थित हुआ है। पिता की मृत्यु के साथ निर्मला के विवाह की समस्या जटिल हो जाती है। दहेज न दे सकने की स्थिति में विवाह टूट जाता है और विवश होकर कल्याणी एक अधेड़ उम्र के वकील तोताराम से निर्मला की शादी तय कर देती है। इस प्रकार निर्मला के जीवन में एक नया मोड़ आता है। इसी प्रकार की प्रासंगिक कथाओं से लेखक उपन्यास को रोचक बनाता है और कथानक का विकास तथा विस्तार करता है।

14.2.2 कथावस्तु के गुण

जिन तत्वों से उपन्यासकार कथा को स्वाभाविक (विश्वसनीय) रोचक एवं उदात्त बनाता है वे तत्व ही कथावस्तु के गुण कहलाते हैं। पाठक उपन्यास को पढ़ने में रम जाए इसके लिए उपर्युक्त गुणों का होना आवश्यक है। आइये इसे विस्तार से समझें कि किन गुणों से उपन्यास रोचक बनता है।

1 **मौलिकता**: कथावस्तु का पहला गुण है मौलिकता। मौलिकता से हमारा तात्पर्य दो बातों से है, एक तो अज्ञात बात को प्रस्तुत करना और दूसरा पूर्वज्ञात बात को नये रूप में या शैली में प्रस्तुत करना। सामान्य रूप से हम जीवन में प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं से परिचित होते हैं। आपके आसपास जाने कितनी अच्छी-बुरी घटनाएँ घटती रहती हैं। लेकिन हमारा ध्यान उस ओर नहीं जाता। "निर्मला" उपन्यास की कथा को ही लें। समाज में दहेज एवं अनमेल विवाह से संबंधित जाने कितनी घटनाएँ घटित होती रहती हैं। सभी इस कुप्रथा से परिचित थे। उपन्यासकार प्रेमचंद ने इन सामाजिक समस्याओं को "निर्मला" में बड़े ही रोचक एवं मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत किया। हम उपन्यास की कथा पढ़ने में रम जाते हैं। इसे ही मौलिकता कहते हैं। उपन्यासकार पूर्वज्ञात तथ्य को नये ढंग से व्याख्यायित करता है।

2 **संवेगात्मकता** : संवेगात्मकता का तात्पर्य है पात्र के भावों और उसकी मानसिक स्थिति का ऐसा सजीव चित्रण जिसे पढ़कर पाठक भी वर्णित भाव या स्थिति का समान रूप से अनुभव करने लगे। लेखक किसी चरित्र या घटना को कल्पना के बल पर संवेगात्मक बना देता है। पाठक पढ़ते-पढ़ते किसी पात्र के साथ ऐसा घुल-मिल जाता है कि उसके सुख-दुःख का अनुभव स्वयं भी करने लगता है। आप "निर्मला" उपन्यास के इस अंश को देखें:

"चंद्रभानु और कृष्णा चले गये, पर निर्मला अकेली बैठी रह गई। कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ। कृष्णा, जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी निष्ठुर हो गई। अकेली छोड़कर चली गई। बात कोई न थी, लेकिन दुःखी हृदय दुःखती हुई आँख है, जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है। निर्मला बड़ी देर तक बैठी रोती रही। भाई-बहन, माता-पिता, सभी इसी भांति मुझे भूल जाएँगे, सब की आँखें फिर जाएँगी, फिर शायद इन्हें देखने को भी तरस जाएँ।"

इस अंश को पढ़ने के बाद क्या आप भी थोड़ी देर के लिए "निर्मला" के साथ उसके दुःख में शामिल नहीं हो जाते हैं, आपने उपन्यास में स्थान-स्थान पर ऐसे वर्णन पढ़े होंगे।

3 **मानवीय अन्तर्दृष्टि** : उपन्यास की कथावस्तु में मानवीय जीवन के किसी आंतरिक सत्य का उद्घाटन "मानवीय अन्तर्दृष्टि" कहलाता है। लेखक किसी पात्र की मनोदशा को हमारे सामने प्रस्तुत करता है जिससे पाठक किसी घटना या स्थिति के विषय में पात्र के मनोभावों,

उसके विचारों और उसके द्वारा किये गए कार्य-विशेष के पीछे उसके आदर्श या जीवन-संबंधी मान्यता का अनुमान लगा लेता है। "निर्मला" उपन्यास में इस अंश में आप इस बात को और स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

"निर्मला" सारी रात रोती रही। इतना कलंक। उसने जियाराम को गहने ले जाते देखने पर भी मुँह खोलने का साहस नहीं किया। क्यों? इसीलिए कि लोग समझेंगे कि यह मिथ्या दोषारोपण करके लड़के से वैर साध रही है। आज उसके मौन रहने पर उसे अपराधिनी ठहराया जा रहा है। यदि वह जियाराम को उसी क्षण रोक देती, और जियाराम लज्जावश कहीं भाग जाता, तो क्या उसके सिर अपराध न मढ़ा जाता? सियाराम ही के साथ उसने कौन-सा दुर्व्यहार किया था। वह कुछ बचत करने ही के विचार से तो सियाराम से सौदा मँगवाया करती थी।"

आप देखें कि यहाँ लेखक ने "निर्मला" के चिंतन में मानवीय भावनाओं को ही उभारा है। "निर्मला" मानवीय जीवन के आंतरिक सत्य को पहचानती है, इसीलिए उसने जियाराम को गहने चुराते समय नहीं रोका क्योंकि यदि वह रोकती तो संभव था कि भेद खुलने के डर से वह कहीं भाग जाता। तब भी लोग उसे ही अपराधिनी मानते। यदि वह उसकी चोरी की बात कहती तो हो सकता था कि लोग उसका विश्वास न करते और यही कहते कि वह उस लड़के पर झूठा आरोप लगा रही है, क्योंकि वह सौतेली माँ है। यह लोक-स्वभाव है। इस प्रकार की लोक-सामान्य और स्वभाव सिद्ध-बातें ही मानवीय आंतरिक सत्य कहलाती हैं।

4 **रोचकता:** कथावस्तु रोचक हो इसके लिए लेखक कहीं हास्य, कहीं रहस्य, कहीं व्यंग्य आदि की सृष्टि करता है। पाठक कथा को पढ़ने में रस ले अर्थात् उसे ऐसा अनुभव न हो कि बस कथा यहीं समाप्त हो गई। पाठक में यह उत्सुकता बनी रहे कि आगे क्या होगा। आइए कुछ उदाहरणों से इसे समझें।

"**नयन सुख**—तुम क्या बातें करते हो लौंडियों को पंजों में लाना क्या मुश्किल बात है, जरा सैर-तमाशे दिखा दो, उनके रूप-रंग की तारीफ़ कर दो बस, रंग जम गया।

तोता—यह सब कर-धर के हार गया।

नयन०—अच्छा! कुछ इत्र-तेल, फूल-पत्ते, चाट-वाट का भी मज़ा चखाया?

तोता—अजी, यह सब कर चुका। दम्पत्ति-शास्त्र के सारे मंत्रों का इम्तहान ले चुका, सब कोरी गप्पे हैं।

यह संवाद लंबा है इसमें रोचकता तो है ही साथ ही पात्रों का चरित्र भी सामने आता है। नयन सुख तोताराम को कई नुस्खे बताता है जिससे उसकी पत्नी उसके वश में हो जाए। इत्र-तेल-फूल, चाट-वाट आदि का सुझाव यहाँ संवाद को रोचक बना देता है। "मज़ा चखाया" जैसे मुहावरे के प्रयोग से भाषा रोचक बन पाई है।

"निर्मला" उपन्यास से ही एक उदाहरण द्वारा देखें कि कथा में उत्सुकता किस प्रकार पैदा की गई है:

"यही सोचते हुए बाबू साहब गलियों में चले जा रहे थे सहसा उन्हें अपने पीछे किसी दूसरे आदमी के आने की आहट मिली, समझे कोई होगा। आगे बढ़े, लेकिन जिस गली में वह मुड़ते उसी तरफ यह आदमी भी मुड़ता था।"

पाठक में उत्सुकता बनी रहती है कि आगे क्या होगा इस प्रकार लेखक कथावस्तु को रोचक बनाता है।

5 **स्वाभाविकता:** कथावस्तु का एक महत्वपूर्ण गुण है—स्वाभाविकता। लेखक कथावस्तु की रचना करते समय कल्पना का सहारा लेता है। वह कल्पना से कथा में रोचकता ला सकता है लेकिन कथावस्तु में यदि स्वाभाविकता नहीं होगी तो वह पाठक के मन पर प्रभाव नहीं डाल सकती। कथा को रोचक बनाने के लिए कल्पना का सहारा लिया जाता है, लेकिन अस्वाभाविक या अविश्वसनीय लगने वाली कल्पना के चित्रण से पाठक ऊबने लगता है। अस्वाभाविक चित्रण का तात्पर्य है किसी पात्र या घटना का ऐसा चित्रण जो ऐसा न लगे कि यह कार्य या यह घटना जबर्दस्ती कराई जा रही है या घटित हो रही है। एक उदाहरण से इसे समझें:

"मंसाराम ने अब तक निर्मला की ओर ध्यान नहीं दिया था। निर्मला का ध्यान आते ही उसके रोयें खड़े हो गये। हाय उनका सरल स्नेहशील हृदय यह आघात कैसे सह सकेगा? आह! मैं कितने भ्रम में था। मैं उनके स्नेह को कौशल समझता था। मुझे क्या मालूम था कि उन्हें पिताजी का भ्रम-शान्त करने के लिए मेरे प्रति इतना कटु-व्यवहार करना पड़ता था।"

इस स्थान पर मंसाराम का निर्मला के बारे में इस प्रकार सोचना स्वाभाविक लगता है। वह

जब परिस्थितियों का आकलन करता है तो पाता है कि निर्मला का उसके प्रति किया गया कटु-व्यवहार परिस्थितिवश था। निर्मला का उस पर सच्चा स्नेह था। इस प्रकार के विश्वसनीय वर्णन से कथा में स्वाभाविकता आती है।

संबद्धता और संगठनात्मकता: उपन्यासकार उपन्यास की मुख्य कथावस्तु के साथ प्रासंगिक कथाओं की रचना भी करता है। आवश्यक बात यह है कि प्रासंगिक कथाएँ ऐसी होनी चाहिए जो सुसंबद्ध अर्थात् एक दूसरे से जुड़ी हों और मुख्य कथा को सशक्त बनाती हों। पारस्परिक सुसंबद्धता से कथा के बिखराव की संभावना नहीं रहती। यदि प्रासंगिक कथाएँ ऐसी हों जो मुख्य कथा के विकास में बाधा पहुँचाती हों तो इससे कथावस्तु की एकसूत्रता अथवा एकता कायम नहीं रह सकती। पाठक को पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगे कि अचानक कथा बीच में ही रुक गई है और एक नई कथा की शुरुआत हो गई है तो इससे उसे अरुचि होगी। और यही कथावस्तु में अस्वाभाविकता ला देगी। उदाहरण के लिए, आप "निर्मला" उपन्यास में मतई के प्रासंगिक कथा को लें। इस कथा से निर्मला की जीवन-गाथा में बाधा उपस्थित नहीं होती बल्कि कथा में एक नया मोड़ उपस्थित होता है और कथा आगे बढ़ती है। इस प्रकार उपर्युक्त छहों गुणों से युक्त होने पर कथावस्तु, परिपूर्ण हो सकती है।

ध प्रश्न

मुख्य कथा एवं प्रासंगिक कथा का चार पंक्तियों में अंतर बताइए।

....

....

....

....

कथावस्तु के दो गुण हैं : मौलिकता एवं संवेगात्मकता। आप अन्य चार गुण बताइए।

....

....

....

....

भ्यास

उपन्यास से दो अंशो की चार-चार पंक्तियाँ लिखिए जिसमें लेखक ने मानवीय भावनाओं को व्यक्त किया हो।

क) ....

....

....

....

ख) ....

....

....

....

चार-चार पंक्तियों में उपन्यास की ऐसी आरंभिक प्रासंगिक कथा के बारे में लिखिए जिनसे कथा का विस्तार होता है।

क) ....

....

....

....

ख) ....

....

....

....

14.2.3 कथावस्तु के विकास की पद्धति

कथावस्तु के विकास के लिए लेखक विभिन्न कथात्मक पद्धतियों का प्रयोग करता है। इसे "वर्णन वैचित्र्य" के नाम से भी जाना जाता है। आइए इन पद्धतियों की जानकारी प्राप्त करें।

सामान्यतः उपन्यासकार निम्नलिखित छह प्रकार की पद्धतियों द्वारा कथावस्तु का विकास करता है।

1) कथात्मक या वर्णनात्मक पद्धति
2) संवादात्मक या नाटकीय पद्धति
3) मनोविश्लेषणात्मक पद्धति
4) समीक्षात्मक पद्धति
5) फ्लैश बैक या पूर्वदीप्ति पद्धति
6) भावात्मक अथवा काव्यात्मक पद्धति

1 **वर्णनात्मक पद्धतिः** कथावस्तु के विस्तार की पारंपरिक पद्धति है–वर्णनात्मक पद्धति। यह उपन्यास की सर्वाधिक प्रचलित एवं सामान्य पद्धति है। इस स्थान पर आप वर्णनात्मक एवं "विवरणात्मक" शब्द को समझ लें। जब किन्हीं घटनाओं का विस्तार से क्रमवार वर्णन किया जाए तो वह विवरणात्मक पद्धति होगी। अर्थात् अमुक घटना के बाद यह हुआ फिर यह घटना घटी, इत्यादि। वर्णनात्मक पद्धति वह है जहाँ किसी कार्य का स्पष्ट और विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जाए। इसमें क्रमिकता आवश्यक नहीं। वर्णनात्मक पद्धति का एक उदाहरण देखें।

"बाबू उदयभानुलाल का मकान बाजार बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े और कमरे में दरजी की सुइयाँ चल रही हैं। सामने नीम के नीचे, बढ़ई चारपाइयाँ बना रहा है खपरैला में हलवाई के लिए भट्ठा खोदा गया है।

यहाँ विवाह की तैयारी का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

2 **संवादात्मक पद्धतिः** इस पद्धति में संवादों के द्वारा जहाँ कथावस्तु का विकास किया जाता है वहीं कथा में नाटकीयता द्वारा नया मोड़ उपस्थित होता है नीचे के उदाहरण में आप देखेंगे कि निर्मला को जैसे ही यह पता चलता है कि मंसा की तबीयत बहुत अधिक खराब है तो वह अस्पताल जाने को तैयार हो जाती है। संवादों द्वारा पात्रों के मनोभाव एवं हाव-भाव को भी प्रदर्शित किया जाता है। "निर्मला" उपन्यास से ही इस उदाहरण द्वारा आप स्पष्ट समझ पाएंगे कि इस पद्धति से कथा का विकास किस प्रकार किया गया है।

निर्मला ने पूछा–क्यों भैया, अस्पताल भी गये थे? आज क्या हाल है। तुम्हारे भैया उठे या नहीं?

जियाराम रुआँसा होकर बोला–अम्माँ जी, आज तो वह कुछ बोलते-चालते ही न थे। चुपचाप चारपाई पर पड़े जोर-जोर से हाथ पाँव पटक रहे थे।
निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। घबराकर पूछा–तुम्हारे बाबू जी वहाँ न थे।
जियाराम–थे क्यों नहीं? आज वह बहुत रोते थे।

....

....

उसने जियाराम से कहा–तुम लपककर एक एक्का बुला लो, मैं अस्पताल जाऊँगी।

इस संवाद से रोगी की दशा गंभीर होने की तथा निर्मला की उसके लिए बेचैनी की सूचना मिलती है और पता लगता है कि निर्मला अस्पताल जाने के लिए तैयार हुई। यह कथा के विकास में सहायक है।

3 **मनोविश्लेषणात्मक पद्धतिः** मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का तात्पर्य है पात्रों की सूक्ष्म भावनाओं के उद्घाटन द्वारा कथा का विकास करना। लेखक पात्रों के चरित्र की गहराई को सामने लाता है। पात्रों के मन में परिस्थितिवश क्या-क्या भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं उसका स्वाभाविक चित्रण किया जाता है पात्रों के मनोद्गार भी इसी पद्धति द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। पात्रों के मन में क्या-क्या भावनाएँ उठती हैं और परिणामस्वरूप वह आगे क्या करता है इन्हीं सब बातों से कथा को आगे बढ़ाया जाता है। एक उदाहरण देखिए–

उस दिन से निर्मला का रंग-ढंग बदलने लगा। उसने अपने को कर्त्तव्य पर मिटा देने का निश्चय कर लिया। अब तक नैराश्य के सन्ताप में उसने कर्त्तव्य पर ध्यान ही न दिया था। उसके हृदय में विप्लव की ज्वाला सी दहकती रहती थी, जिसकी असह्य वेदना ने उसे संज्ञाहीन-कर रखा था। अब उस वेदना का वेग शान्त होने लगा। उसे ज्ञान हुआ कि मेरे लिए जीवन का कोई आनन्द नहीं। उसका स्वप्न देखकर क्यों इस जीवन को नष्ट करें। संसार में सब के सब प्राणी सुख-सेज ही पर तो नहीं सोते? मैं भी उन्हीं अभागों में हूँ।"

यहाँ निर्मला के अंदर उठने वाले ससन्द (मनोभाव) का चित्रण किया गया है। साथ ही कथा को आगे बढ़ाने के लिए निर्मला के चिंतन का सहारा लिया गया है। निर्मला चिंतन करने के बाद निश्चय करती है कि वह बच्चों के प्रति कर्त्तव्य का पालन करेगी।

4 **समीक्षात्मक पद्धति**: उपन्यासकार कथावस्तु में इस प्रकार की पद्धति अपनाकर अपने पात्रों तथा उनसे संबद्ध घटनाओं की समीक्षा या आलोचना प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए–

"जीवन तुमसे ज्यादा असार भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या वह उस दीपक की भाँति ही क्षणभंगुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है। पानी के एक बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटने भी कुछ देर लगती है, जीवन में उतना सार भी नहीं। साँस का भरोसा ही क्या। और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं, नहीं जानते; नीचे जाने वाली साँस ऊपर आएगी या नहीं, पर सोचते इतनी दूर की हैं मानो हम अमर हैं।"

इस अंश में लेखक ने उदयभानुलाल की हत्या होने पर जीवन की निस्सारता की समीक्षा प्रस्तुत की है।

5 **फ्लैशबैक या पूर्वदीप्ति पद्धति**: उपन्यास की कथावस्तु के विकास के लिए लेखक फ्लैशबैक या पूर्वदीप्ति पद्धति का भी प्रयोग करता है। कथा में कोई घटना पहले घट गई हो। किन्तु उसका वर्णन नहीं किया गया हो और बाद में उपयुक्त समय पर उस घटना को चल रहे प्रसंग के साथ जोड़कर जब कथावस्तु का विकास किया जाए तो उसे फ्लैशबैक या पूर्वदीप्ति पद्धति कहते हैं। इस पद्धति का प्रयोग लेखक इसलिए करता है कि पाठक को वर्तमान प्रसंग को समझने में सहायता मिले। आप कई उपन्यासों में इस पद्धति का दर्शन कर सकते हैं। "निर्मला" उपन्यास में इस पद्धति का प्रयोग नहीं है।

6 **काव्यात्मक पद्धति**: जब उपन्यासकार गद्य की भाषा की अपेक्षा पद्यात्मक भाषा का प्रयोग करता है तब हम उसे काव्यात्मक पद्धति कहते हैं। लेखक वर्णन करते-करते सामान्य गद्य की भाषा से हटकर पद्य की भाषा का प्रयोग करने लगता है। इसे हम **भावात्मक शैली** का नाम भी दे सकते हैं। काव्यात्मक शैली या भावात्मक शैली में लेखक की भाषा **अलंकृत** होती है कुछ उदाहरण द्वारा आप इसे स्पष्ट समझ सकते हैं।

"बाग में फूल खिले हुए थे। मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे।"

"निशा ने इन्दु को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतंक जमा रखा था। सद्वृत्तियाँ मुँह छिपाये पड़ी थी और कुप्रवृत्तियाँ विजय से इठलाती फिरती थीं। वन में वन्य जन्तु शिकार की खोज में विचर रहे थे और नगरों में नरपिशाच गलियों में मंडराते फिरते थे।"

आपने देखा कि लेखक ने वातावरण को प्रभावशाली बनाने के लिए काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है। उसने इस वर्णन में पाठक की भावुकता जगाने के लिए विशेषणों का प्रयोग किया है, जैसे "मीठी-मीठी सुगंध" या "इठलाती फिरती थी" जैसे मुहावरेदार प्रयोग भी चित्रात्मकता लाकर इस गद्य को काव्य का सा आनंद देने वाला बना देता है। इसी को अलंकृत शैली भी कह सकते हैं।

बोध प्रश्न

3 कथावस्तु के विकास के लिए उपन्यासकार कुछ पद्धतियों को अपनाता है। उनमें से दो पद्धतियाँ हैं: वर्णनात्मक तथा संवादात्मक पद्धति। आप अन्य पद्धतियों के नाम लिखिए।

....

....

....

....

4 दो पंक्तियों में पूर्वदीप्ति पद्धति को समझाइये।

....

....

5 "बोले—पंडित जी, हलफ से कहता हूँ, मुझे उस लड़की से जितना प्रेम है, उतना अपनी लड़की से भी नहीं है, लेकिन जो ईश्वर को मंजूर नहीं है, तो मेरा क्या बस है? वह मृत्यु एक प्रकार की अमंगला की सूचना है, जो विधाता की ओर से हमें मिली है। यह किसी आने वाली मुसीबत की आकाशवाणी है।"

उपर्युक्त अंश उपन्यास के तीसरे परिच्छेद से उद्धृत किया गया है। इस अंश में कथा के विकास के पूर्व संकेत भी मिलते हैं।

आप अंश को सावधानी पूर्वक पढ़िए तथा नीचे दिए गए प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

i) "लेकिन जो ईश्वर को मंजूर नहीं है, तो मेरा क्या बस है?" यहाँ वक्ता क्या कहना चाहता है?

....

....

ii) उपर्युक्त अंश से आगे होने वाले किस परिवर्तन का पता चलता है?

....

....

....

6 "जीवन-तुमसे ज्यादा असार भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या वह उस दीपक की भाँति ही क्षणभंगुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है। पानी के एक बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है, जीवन में उतना सार भी नहीं।"

उपर्युक्त अंश को ध्यान से पढ़िए और यह बताइए कि इस स्थान पर लेखक ने किस प्रकार की पद्धति का प्रयोग किया है।

....

अभ्यास

3 उपन्यास के उन अंशों की चार-चार पंक्तियाँ लिखिए जिनमें कथावस्तु की संवादात्मक तथा काव्यात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

क) ....

....

....

....

ख) ....

....

....

....

14.3 "निर्मला" की कथा

आपने "निर्मला" उपन्यास का वाचन पूरा कर लिया है। उपन्यास का कथासार भी आप पढ़ चुके हैं। पूरे उपन्यास को पढ़ने के बाद आपको यह तो अवश्य पता चल गया होगा कि इस उपन्यास में नायिका निर्मला के संपूर्ण जीवन को चित्रित किया गया है। निर्मला के माध्यम से लेखक ने नारी समस्या का यथार्थ चित्रण किया है। निर्मला के परिवार के परिचय से कथा का आरंभ होता है। पिता की मृत्यु के बाद दहेज के कारण निर्मला का विवाह टूट जाता है। फिर एक अधेड़ व्यक्ति तोताराम से निर्मला का विवाह हो जाता है। अनमेल विवाह के कारण निर्मला अपने पति से

:-दूर रहती है। निर्मला का प्यार पाने के लिए तोताराम तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं। इसी च उनके मन में अपने बड़े पुत्र तथा निर्मला को लेकर शंका का भाव उत्पन्न होता है। वे पुत्र घर से दूर रखने का प्रयत्न करते हैं। इन सब बातों से निर्मला एवं मंसाराम को तोताराम की मजोरी का पता चल जाता है। मंसाराम पिता की शंका के कारण मानसिक व्यथा से पीड़ित हो ता है। यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी हो जाती है, मृत्यु से कुछ क्षण पूर्व वह माता-पिता के मने अपने को निष्कलंकित साबित करता है। मुंशी तोताराम को पुत्र की मृत्यु के बाद अपनी न का एहसास होता है। वे पश्चाताप की आग में जलते रहते हैं। वे अपना कार्य भी ठीक ढंग से हीं कर पाते। घर की आर्थिक स्थिति खराब होती जाती है। इधर उनका दूसरा पुत्र दिन पर दिन इंड होता जाता है। अवसर पाकर वह निर्मला के गहनों की चोरी कर लेता है। पकड़े जाने के र से वह आत्महत्या कर लेता है। दूसरे पुत्र को खोने के बाद तोताराम और भी विक्षिप्त से ने लगते हैं आर्थिक तंगी तथा गहनों की चोरी के बाद निर्मला के स्वभाव में भी परिवर्तन आ ता है। वह बात-बात पर क्रोध करने लगती है। मुंशीजी भी बदली हुई परिस्थिति के लिए निर्मला जिम्मेदार ठहराते हैं। तोताराम का सबसे छोटा लड़का भी साधु के जाल में फँसकर घर से ग जाता है। तीनों बेटों को खोने के बाद मुंशी तोताराम घर त्याग देते हैं। इधर निर्मला सहाय हो जाती है। आर्थिक तंगी के कारण उसे घर बदलना पड़ता है। उसका स्वास्थ्य गिरता ता है। अंततः पुत्री को ननद रुक्मिणी देवी के हाथ सौंपकर वह हमेशा के लिए संसार त्याग ी है। इस प्रकार आप देखें तो निर्मला की कथा ही इस उपन्यास की कथावस्तु का मुख्य आधार लेखक ने कथा की प्रस्तुति किस प्रकार की है तथा मुख्य कथा को सशक्त बनाने के लिए किस कार की प्रासंगिक कथाओं की योजना की है, इसे हम आगे देखेंगे।

न्यास हो या कहानी या नाटक आपका ध्यान इस बात की ओर अवश्य गया होगा कि सभी में था होती है और कथा का आरंभ किसी घटना, या दृश्य से होता है, फिर उसका विस्तार किया ता है तथा एक निश्चित घटना पर कथा की समाप्ति होती है। निर्मला उपन्यास में भी इसी कार की कथा योजना की गई है इसी कारण संपूर्ण उपन्यास की कथा को हम तीन भागों में रख देखेंगे।

- कथा का आरंभ
- कथा का विकास और
- कथा की परिणति

.3.1 कथा का आरंभ

उपन्यास की कथा का आरंभ वर्णनात्मक ढंग से हुआ है। लेखक ने नायिका "निर्मला" के वार के परिचय से कथा का आरंभ किया है, यथा–

तो बाबू उदयभानुलाल के परिवार में बीसों प्राणी थे; कोई ममेरा भाई या कोई फुफेरा,.....

क कथा को आगे बढ़ाता हुआ कहता है–हमारा संबंध तो केवल उनकी दोनों कन्याओं से है, में बड़ी का नाम निर्मला और छोटी का कृष्णा था। इस प्रकार कथा के आरम्भ में ही लेखक ने ट बता दिया है कि वह किस पात्र के माध्यम से कथा कहने जा रहा है। आपने उपन्यास का न किया है और आपने पढ़ा भी है कि निर्मला के विवाह से कथा आगे बढ़ती है फिर मंसा की यु के बाद एक नया मोड़ आता है और यहाँ फिर निर्मला की बहन कृष्णा के विवाह से कथा ो बढ़ती है।

ा के आरंभ में ही इस उपन्यास की एक समस्या को लेखक ने सामने रख दिया है–वह है दहेज समस्या उदाहरण के लिए उपन्यास के प्रथम अनुच्छेद (पैरा) का यह अंश देखिए :

ाबू उदयभानुलाल थे तो वकील पर संचय करना न जानते थे। दहेज उनके सामने कठिन स्या थी।"

र्मला के विवाह में खर्चे की बात को लेकर उसके माता-पिता में तर्क-वितर्क होता है बात आगे जाती है। पिता कुछ दिन के लिए घर त्यागने का निश्चय करके रात्रि में निकल पड़ते हैं। इसी न पर मतई के प्रसंग को लाकर कथा में एक नया मोड़ लाया जाता है। मतई बदला लेने के श्य से उदयभानु की हत्या कर देता है। अब निर्मला की माता को उसके विवाह की चिंता ती है। वह प्रयत्न करती है कि पहले से निश्चित समय पर ही निर्मला का विवाह हो जाए। कन दहेज मिलने की संभावना समाप्त होते ही भालचंद अपने बेटे की सगाई तोड़ देता है।

.3.2 कथा का विकास

ने देखा कि कथा के आरंभ में निर्मला के परिचय के बाद उसके विवाह की बात तथा पिता की

मृत्यु के बाद सगाई के टूट जाने की बात कही गई है। सगाई टूटने का कारण था—दहेज न दे पाना। कथा के विकास के लिए लेखक ने दहेज का प्रसंग लिया है। निर्मला की माता, पं० मोटेराम द्वारा लाए रिश्तों में से योग्य वर नहीं चुन पाती कारण इसके लिए उसे दहेज देना पड़ेगा जो उसके पास नहीं था। अंततः एक अधेड़ व्यक्ति तोताराम से निर्मला का विवाह हो जाता है। कथा के विकास में इस स्थान से अनमेल विवाह की समस्या को लेखक ने जोड़ा है। जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है पात्रों की संख्या भी बढ़ती जाती है। मुंशी तोताराम की बहन रुक्मिणी तथा तीन बेटे मंसाराम, जियाराम, तथा सियाराम के साथ नौकरानी भूंगी का आगमन होता है।

लेखक कहीं वर्णन द्वारा तो कहीं पात्रों के मनोभावों द्वारा कथा को आगे बढ़ाता है, कार्यकारण की संगति लिए हुए कथा का विस्तार किया गया है। उम्र में अधिक होने के कारण निर्मला पति को प्यार नहीं दे पाती है। इधर निर्मला की उदासीनता से तोताराम दुःखित होते हैं। ऐसे समय में लेखक ने एक और पात्र की योजना की है वह है मुंशीजी का मित्र नयनसुख। वह मुंशीजी को पत्नी के आकर्षण के लिए कई नुस्खे बताता है। मुंशीजी मित्र के बताए नुस्खे पर अमल करते हैं फिर भी कोई असर नहीं होता। फिर निर्मला की अपनी ओर से उदासीनता के कारण मुंशीजी में एक बदलाव आता है। उनका बड़ा पुत्र मंसाराम है जिसकी उम्र निर्मला के बराबर है। मंसा होनहार एवं मेहनती छात्र है साथ ही वह लज्जालु प्रकृति का है। निर्मला तीनों पुत्रों को प्यार करती है। वह मंसा से अंग्रेजी भी पढ़ती है। यह सब देख मुंशीजी में बड़े पुत्र तथा निर्मला के प्रति शंका उत्पन्न होती है।

कथा के विकास के इस भाग में लेखक ने अनमेल विवाह के कारण उत्पन्न समस्याओं का मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ चित्रण किया है। पात्रों की मनोस्थिति के द्वारा कथा आगे बढ़ती है। कहीं छोटी-छोटी घटनाएँ कथा के विकास में सहायक होती हैं। परिस्थितियों से घिरी निर्मला का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। मंसाराम को पिता की शंका का पता चलते पर कथा की घटनाओं में तेजी आती है, मंसा मानसिक रोग से पीड़ित हो जाता है। उसकी अवस्था दिन पर दिन बिगड़ती जाती है, पुत्र की नाजुक स्थिति को देखते हुए भी मुंशीजी की शंका दूर नहीं होती। अंततः मंसाराम की मृत्यु हो जाती है। पुत्र की मृत्यु के बाद मुंशीजी को अपनी भूल का एहसास होता है। वे अत्यधिक दुःखी रहने लगते हैं।

कथा के विस्तार के लिए लेखक ने यहाँ मंसाराम को देखने वाले डॉक्टर के परिवार से संपर्क जोड़ दिया है। साथ ही कथा में रहस्य तथा उत्सुकता बनाए रखने के लिए डॉक्टर के नाम का उल्लेख नहीं किया है। डॉक्टर की पत्नी सुधा एवं निर्मला की मित्रता से कथा का विकास होता है। सुधा के उदार एवं दृढ़ चरित्र के कारण निर्मला की छोटी बहन का विवाह डॉक्टर के छोटे भाई से हो जाता है। विवाह में दहेज न लेकर डॉक्टर अपने किए पाप का प्रायश्चित करना चाहता है किंतु लेखक ने निर्मला के संपूर्ण जीवन को कथा का आधार बनाया है अतः कथा के विस्तार के लिए उसने और कई प्रसंग जोड़े हैं। जियाराम के स्वभाव में परिवर्तन तथा गहना चोरी के प्रसंग से जहाँ कथा आगे बढ़ी है वहीं पात्रो के व्यवहार में भी परिवर्तन आया है। मुंशीजी अपनी असफलता तथा घर की बिगड़ती स्थिति के लिए निर्मला को दोषी ठहराते हैं। जियाराम तथा रुक्मिणी देवी तो सदा से ही निर्मला को दोषी ठहराती ही रहती थी। एक दिन अवसर पाकर जियाराम निर्मला के गहनों की चोरी कर लेता है। पुलिस में रिपोर्ट लिखवाई जाती है। यद्यपि निर्मला ने जिया को गहना चुराते देख लिया था लेकिन बदनामी के भय से वह चुप थी। उसने यह भी प्रयत्न किया कि बात पुलिस तक न पहुँचे। अपराधी का पता चल जाने पर मुंशीजी ने पैसे देकर बात को दबवा दिया। किंतु आत्मग्लानि के कारण जियाराम ने आत्महत्या कर ली। दूसरे पुत्र के न रहने पर मुंशीजी की स्थिति और बिगड़ती जाती है। मुकदमे का कार्य ठीक से नहीं होने के कारण आर्थिक तंगी होती जाती है। इसके बाद साधु के प्रसंग को लेकर लेखक ने कथा को और विस्तार दिया है। पहले के समान सुख वैभव न पाकर छोटा लड़का सियाराम के मन में घर छोड़ने की भावना का जन्म होता है साधुओं के प्रलोभन में पड़कर एक दिन वह भी घर छोड़ देता है। तीसरे बेटे को खो देने के बाद मुंशीजी का रहा-सहा चैन भी छिन जाता है। वे अंततः घर छोड़ देते हैं। निर्मला असहाय हो जाती है, उसे अपनी पुत्री की चिन्ता सताती रहती है। इस दुःख की घड़ी में उसे डॉक्टर की पत्नी सुधा से ही सहारा मिलता है। वह कभी-कभी उसके यहाँ जाकर मन बहला आती है। लेखक ने कथा के विकास के लिए एक और प्रसंग जोड़ दिया है। निर्मला एक दिन सुधा से मिलने उसके घर आती है। सुधा उस समय गंगा स्नान के लिए गई होती है। डॉक्टर साहब, अवसर पाकर निर्मला से प्रणय निवेदन कर बैठते हैं। इस अनुचित व्यवहार से निर्मला वापस घर लौट आती है। सुधा को इस घटना का पता चल जाता है। वह इस व्यवहार के लिए डॉक्टर को फटकारती है तथा निर्मला से माफी माँगने जाती है। इस बीच ग्लानि में डॉक्टर आत्महत्या कर लेता है। खुद को इसका कारण मानकर निर्मला अत्यंत दुःखी होती है।

14.3.3 कथा की परिणतिं

उपन्यास का वाचन आपने किया है। आपने देखा कि कथा के विस्तार के लिए लेखक ने कई प्रसंग जोड़े हैं। साथ ही पात्रों के मनोभावों का चित्रण तथा वर्णन पद्धति के द्वारा कथा आगे बढ़ी है। निर्मला पर एक के बाद एक विपत्ति आती है। वह परिस्थितियों से जूझती चलती है। पति के न रहने पर उसकी एकमात्र सहेली सुधा भी चली जाती है। निर्मला का पति तोताराम तो पहले ही घर छोड़ गएं हैं। इस प्रकार अब निर्मला अकेली पड़ जाती है। पुत्री के साथ एकमात्र ननद रुक्मिणी ही उसके साथ है। निर्मला के प्रति रुक्मिणी देवी का स्वभाव बदल गया है। आर्थिक तंगी के कारण निर्मला को घर बदलना पड़ता है। दुःखों की मार से वह अस्वस्थ हो जाती है। दिन पर दिन उसकी अवस्था खराब होती जाती है। पुत्री को अनमेल विवाह से बचाने का निवेदन कर निर्मला प्राण त्याग देती है। इस प्रकार लेखक ने निर्मला के संपूर्ण जीवन की त्रासदी का चित्रण करते हुए उसकी मृत्यु से कथा का अंत किया है।

14.4 निर्मला उपन्यास की कथावस्तु की विशेषताएँ

निर्मला उपन्यास का प्रधान लक्ष्य है समाज का यथार्थ चित्रण करना। समूचे समाज के दायरे को कथानक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास की भूमि मौलिक होने के साथ काफ़ी जटिल है तथा विविधता लिए हुए है। मुख्य कथा मुंशी तोताराम तथा निर्मला की है। लेकिन अनेक उपकथाओं के द्वारा मुख्य कथा को सशक्त बनाया गया है। लेखक ने अपने उद्देश्य एवं आदर्श के अनुसार कथा को संगुम्फित किया है। निर्मला की मुख्य कथा तथा उपकथाओं को निम्नलिखित रूप में बाँट कर विवेचन किया जा सकता है।

1) मुख्य कथा-सूत्रों की पारस्परिकता और एकसूत्रता।
2) प्रासंगिक कथा-सूत्रों की मुख्य कथा-सूत्रों से संबद्धता।
3) संपूर्ण कथाओं की एकान्विति।
4) अंतर्कथाओं का वस्तु-विन्यास में स्थान।
5) कथाओं का विस्तार।

आइए इन बिंदुओं पर विचार करते हुए निर्मला की कथावस्तु की विशेषताओं को पहचानें।

1) **मुख्य कथा सूत्रों की पारस्परिकता और एकसूत्रता:** निर्मला उपन्यास में मुख्य पाँच कथा प्रसंग हैं। वे हैं,

   क) बाबू उदयभानुलाल एवं कल्याणी का प्रसंग
   ख) सुधा एवं डॉक्टर का प्रसंग
   ग) रुक्मिणी का प्रसंग
   घ) सियाराम का प्रसंग
   ङ) मंसाराम और जियाराम का प्रसंग

   इन पाँचों प्रसंगों का संबंध निर्मला एवं मुंशी तोताराम की मुख्य कथा के साथ है। कल्याणी तथा उदयभानुलाल तो निर्मला के माता-पिता ही हैं। निर्मला के दुःखदायी जीवन के लिए उसके माता-पिता भी उत्तरदायी हैं। उदयभानलाल की असामयिक मृत्यु के कारण कल्याणी ने विवश होकर अधेड़ व्यक्ति के साथ निर्मला का विवाह कर दिया। इस प्रकार निर्मला के दुःखद जीवन का आरंभ उसके विवाह के साथ ही हो गया।

   सुधा एवं डॉक्टर सिन्हा का प्रसंग स्वतंत्र है किंतु डॉक्टर सिन्हा के साथ ही निर्मला का विवाह ठीक हुआ था और वहाँ से संगाई टूटने पर ही निर्मला का दुर्भाग्य शुरू हुआ इसलिए यह प्रसंग मुख्य कथा को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, साथ ही प्रत्यक्ष रूप से भी इसके द्वारा मुख्य कथा को बल मिलता है। कथा को नाटकीय मोड़ देने के लिए लेखक ने इस प्रसंग को जोड़ा है। डॉक्टर सिन्हा पत्नी की प्रेरणा से प्रभावित होकर अपने किये के प्रायश्चित के लिए निर्मला की छोटी बहन कृष्णा का विवाह अपने छोटे भाई से करवा देता है।

   रुक्मिणी, सियाराम, मंसाराम तथा जियाराम का प्रसंग एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। मुंशी तोताराम की विधवा बहन मालकिन का अधिकार छिन जाने पर निर्मला को सदा कोसती रहती है। वह तीनों लड़कों को निर्मला के विरुद्ध सदा उकसाती रहती है। वह बच्चों में यह धारणा बना देने का प्रयत्न करती है कि सौतेली माँ होने के कारण निर्मला सभी बच्चों का जीवन नष्ट करना चाहती है। मंसाराम के प्रसंग से जहाँ कथा को एक नया मोड़ मिलता है

वहीं जियाराम तथा सियाराम के प्रसंग से निर्मला तथा तोताराम की मुख्य कथा में जटिलता आती है।

इस प्रकार पाँचों प्रसंगों के द्वारा मुख्य कथा को मजबूती मिली है। कथा की एकसूत्रता तथा संबद्धता कायम हुई है।

2) **प्रासंगिक कथा-सूत्रों की मुख्य कथा-सूत्रों से संबद्धता:** उपन्यास के प्रासंगिक कथा-सूत्र सहायक पात्रों एवं मुख्य पात्रों दोनों की कथाओं से संबद्ध है। बाबू भालचंद्र का प्रसंग तथा मतई का प्रसंग ऐसे ही प्रसंग हैं। मतई के प्रसंग से ही एक संपन्न परिवार का सर्वनाश हो जाता है। साथ ही इसके कारण ही निर्मला का विवाह दुहाजू व्यक्ति से होता है। भालचंद्र के प्रसंग के कारण ही निर्मला का जीवन दुःखद बन जाता है। धन के लोभी भालचंद द्वारा विवाह से इंकार के कारण निर्मला के जीवन में दुर्भाग्य का आगमन होता है।

इसमें कुछ प्रसंगों के द्वारा लेखक ने व्यंग्य करते हुए सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है, जैसे—मोटेराम का प्रसंग, नयनसुख का प्रसंग, रंगीलीबाई का प्रसंग, साधुओं का प्रसंग। इन प्रसंगों से मूल कथा का रूप निखरा है।

3) **संपूर्ण कथाओं की एकसूत्रता:** निर्मला उपन्यास का वाचन करने पर आपने अनुभव किया होगा कि प्रत्येक प्रसंग एक दूसरे से जुड़ा हुआ है, कोई कथा प्रसंग उपन्यास को पूर्णता देता है, कोई सहायक कथा सूत्र को गति देता है, कोई मुख्य कथा-सूत्र को और मूल कथानक को प्रभावित करता है। इस प्रकार सभी कथा प्रसंग परस्पर एक-दूसरे से संबंद्ध हैं और इनमें एकसूत्रता है।

4) **अन्तर्कथाओं का वस्तु-विन्यास में स्थान:** उपन्यास का वाचन करते समय आपने पाया होगा कि कहीं-कहीं लेखक ने पात्रों के विगत जीवन के बारे में वर्णन किया है। इन्हें ही अन्तर्कथाएँ कहते हैं। इस प्रकार के अंतर्कथाओं के द्वारा जहाँ कथा में रोचकता आ गई है वहीं पात्रों के चरित्र को समझने में भी सहायता मिली है। इस उपन्यास में मुंशी तोताराम का तथा रुक्मिणी देवी के जीवन की पूर्वकथा का वर्णन किया गया है। मतई नामक पात्र का पूर्व वर्णन किया गया है, ये अन्तर्कथाएँ उपन्यास को संपूर्ण बनाने में सहायक सिद्ध हुई हैं।

5) **कथांशों का विस्तार:** निर्मला में कथांशों का विस्तार आवश्यकता के अनुरूप किया गया है। लेखक ने जिस स्थान पर पात्रों की आवश्यकता जरूरी नहीं समझी उसे समाप्त कर दिया गया है। जिन पात्रों की कथा में पुन: आवश्यकता समझी उसे वहाँ फिर उपस्थित किया है। इस प्रकार समयानुकूल कथा के विस्तार से कथा में स्वाभाविकता आ गई है। उपन्यास में कथा-प्रसंग संयत और सुनियोजित हैं। उदाहरण के लिए मतई का प्रसंग समयानुकूल आता है फिर अनावश्यक विस्तार नहीं किया गया। कल्याणी का प्रसंग आरंभ में आया है फिर जितने समय तक लेखक ने उचित नहीं समझा उतने समय तक उसका वर्णन नहीं आया। आवश्यकता पड़ने पर फिर लेखक ने कृष्णा के विवाह के समय उसे उपस्थित किया है। भुवन मोहन सिन्हा का संक्षिप्त परिचय कथा के आरंभ में है फिर बाद में उसे पुन: उपस्थित किया गया है और अंत तक चलता रहता है। कथांशों की इस प्रकार योजना से संपूर्ण कथानक में एकसूत्रता तथा संगठनात्मकता लाने में सहायता मिलती है।

बोध प्रश्न

7 निर्मला उपन्यास की मुख्य कथा कौन-सी है तथा कौन-कौन से कथा प्रसंगों का समावेश हुआ है?

....

....

....

....

8 निर्मला के अलावा किस पात्र का वर्णन कथा में सर्वाधिक है?

....

....

9 कथा के आरंभ में कौन-सी घटना के द्वारा कथावस्तु में नया मोड़ उपस्थित होता है?

....

....

10 कथा के विकास की दृष्टि से कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं आप दो तीन पंक्तियों में इनके उत्तर दीजिए।

i) मुंशी तोताराम तरह-तरह के स्वांग क्यों रचते हैं?

ii) किस कारण से तोताराम ने मंसाराम को होस्टल में रखना चाहा?

iii) डॉक्टरी इलाज द्वारा मंसाराम की तबियत में कोई सुधार क्यों नहीं हुआ?

iv) मंसाराम की मृत्यु के बाद तोताराम की आर्थिक स्थिति क्यों खराब होती गई?

v) माता-पिता के प्रति जियाराम की उद्दंडता क्यों बढ़ती गई?

11 कथा के अंत से संबंधित निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दो-तीन पंक्तियों में दीजिए।

i) डॉक्टर भुवन मोहन ने आत्महत्या क्यों कर ली?

ii) मुंशी तोताराम ने घर क्यों छोड़ दिया?

iii) निर्मला के प्रति रुक्मिणी देवी के व्यवहार में क्यों परिवर्तन आया?

iv) सियाराम साधुओं की किन बातों से अधिक प्रभावित हुआ?

v) मृत्यु से पूर्व निर्मला ने रुक्मिणी देवी से क्या निवेदन किया?

14.5 सारांश

- इस इकाई में आपने उपन्यास की कथावस्तु के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली है। अब आप बता सकते हैं कि कथावस्तु किसे कहते हैं।
- उपन्यास का आकार बड़ा होता है। लेखक एक मुख्य कथा को उपन्यास का आधार बनाता है। साथ ही मुख्य कथा के साथ अन्य प्रसंगों की रचना करता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकते हैं कि किसी उपन्यास की मुख्य कथा में प्रासंगिक कथाएँ किस प्रकार सहायक होती हैं।
- आपने निर्मला उपन्यास की कथा के साथ इस उपन्यास के आरंभ तथा विकास एवं अंत के बारे में जानकारी प्राप्त की है। अब आप इसकी विशेषताओं को बता सकते हैं।
- इस इकाई में आपने उपन्यास की कथावस्तु की संपूर्ण विशेषताओं के बारे में अध्ययन किया है–आप अब कथावस्तु की दृष्टि से पूरे उपन्यास का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं।

14.6 शब्दावली

प्रासंगिक: गौण (कथानक) "निर्मला" की कथा में कल्याणी एवं उदयभानु की कथा प्रासंगिक है।

त्रासदी: दुःखान्त रचना, दुःखान्त घटना पश्चिम के नाटकों में त्रासदी को ही महत्वपूर्ण माना गया।

उदात्त: श्रेष्ठ, दयावान, कृपालु, उदार आदि अर्थ हैं, लेकिन पाठ में श्रेष्ठ या अच्छा के लिए प्रयुक्त।

मौलिकता: मूल से संबंध रखने वाला (ग्रंथ या विचार) जो किसी रचना का अनुवाद या नकल न हो, और न ही किसी रचना पर आधारित हो।

उद्घाटन: प्रकट करना, प्रकाशित करना, खोलना।

आंतरिक: अंदर का, भीतरी।

संबद्धता: बंधा या जुड़ा हुआ, संबंध युक्त।
उपन्यासकार उपन्यास की मुख्य कथा एवं प्रासंगिक कथा में सम्बद्धता कायम कर रचना को सफल बनाता है।

मनोविश्लेषण: इस बात का विश्लेषण या जाँच कि मनुष्य का मन किन अवस्थाओं में किस प्रकार कार्य करता है। सफल उपन्यासकार वह है जो अपने पात्रों का सूक्ष्म मनोविश्लेषण प्रस्तुत कर पाये।

निस्सारता: सार रहित, जिसमें काम की बात न हो, क्षणभंगुरता। उपन्यासकार प्रेमचन्द ने जीवन की निस्सारता को "निर्मला" उपन्यास में सुन्दर रूपक द्वारा समझाया है। (उपन्यास का वाचन करते समय, व्याख्या वाले अंश में आप इसे पढ़ चुके हैं)।

14.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 किसी भी उपन्यास की मुख्य कथा वह है जो आरम्भ से उपन्यास के अंत तक चले। प्रासंगिक कथाएँ वे हैं जो बीच-बीच में जोड़ी गयी हैं। प्रासंगिक कथाएँ मुख्य कथा में सहायता पहुँचाने के लिए रची जाती हैं। उदाहरण के लिए निर्मला एवं तोताराम की कथा मुख्य कथा है तथा सुधा एवं डॉक्टर साहब की कथा प्रासंगिक कथा है।

2 1) मानवीय अंतर्दृष्टि
2) रोचकता
3) स्वाभाविकता
4) कथा की संबद्धता

ास

ह) कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ। कृष्णा, जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी निष्ठुर हो गई। अकेली छोड़ कर चली गई। बात कोई न थी, लेकिन दुःखी हृदय दुखती हुई आँख है। जिसे हवा से भी पीड़ा होती है। निर्मला बड़ी देर तक बैठी रोती रही।

ब) निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलकृंत होकर आइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौन्दर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वाला सी उठती। मन में आता इस घर में आग लगा दूँ। अपनी माता पर क्रोध आता।

ह) निर्मला के विवाह में खर्च को लेकर उदयभानुलाल एवं कल्याणी में वाद-विवाद बढ़ जाता है। उदयभानु यह सोचकर घर से निकलते हैं कि दो-चार दिन बाहर रहने से कल्याणी को एहसास हो जाएगा कि उसके बिना घर की क्या स्थिति होगी। इसी समय उसके द्वारा सजा पाया गुंडा मतई बदला लेने की भावना से उसकी हत्या कर देता है कथा का विकास यहीं से होता है।

ब) पति के गुजरने के बाद कल्याणी निर्मला का विवाह निश्चित समय के अंदर ही करवाने का प्रयास करती है। पं० मोटेराम इसी कारण लड़के के पिता भालचंद्र के यहाँ जाते हैं किंतु दहेज मिलने की संभावना समाप्त हो जाने से वे सगाई तोड़ देते हैं। इस प्रसंग से कथा में एक मोड़ उपस्थित होता है।

प्रश्न

ानोविश्लेषणात्मक

ामीक्षात्मक

ूर्वदीप्ति

ाव्यात्मक

ूर्वदीप्ति में किसी वर्तमान प्रसंग या घटना की पृष्ठभूमि बताने के लिए पाठकों से अज्ञात ात्रों के विगत जीवन का स्मरण के माध्यम से वर्णन किया जाता है। इस पद्धति से जहाँ कथा ं स्पष्टता आती है वहीं चरित्र के चित्रण में सहायता मिलती है।

) वक्ता भाग्य की विडंबना का उदाहरण देकर सगाई को समाप्त करना चाहता है।

i) अंश के द्वारा पता चलता है कि सगाई टूट जाने से कल्याणी को निर्मला के विवाह के लिए अन्यत्र प्रयत्न करना पड़ेगा।

ामीक्षात्मक पद्धति

ास

ह) तोताराम—अगर तुम लोगों ने उस घर में कदम रखे तो टाँगे ताड़ दूँगा। बदमाशी पर कमर बँधी है।
जियाराम जरा शोख था। बोला—उनको तो आप कुछ नहीं कहते, हमीं को धमकाते हैं, कभी पैसे नहीं देतीं।
सियाराम ने इस कथन का अनुमोदन किया—कहती हैं, मुझे तंग करोगे तो कान काट लूँगी। कहती हैं कि नहीं जिया?
निर्मला अपने कमरे से बोली—मैंने कब कहा था कि कान काट लूँगी अभी से झूठ बोलने लगे।

ब) निशा ने इंद्र को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतंक जमा रखा था, सद्वृत्तियाँ मुँह छिपाए पड़ी थीं और कुवृत्तियाँ विजय- गर्व से इठलाती फिरती थीं। वन में वन्य-जन्तु शिकार की खोज में विचर रहे थे और नगरों में नर पिशाच गलियों में मंडराते फिरते थे।

प्रश्न

'निर्मला'' उपन्यास में मुख्य कथा निर्मला एवं तोताराम की है, प्रासंगिक कथाएँ हैं—सुधा एवं डॉक्टर की कथा, मंसाराम की कथा, रुक्मिणी की कथा, जिया एवं सियाराम की कथा।

नर्मला के अतिरिक्त मुंशी तोताराम की कथा का सर्वाधिक वर्णन हुआ है।

9 बदमाश मतई को उदयभानुलाल ने सजा दिलाई थी। अवसर पाकर उसन उनकी हत्या कर डाली। इस घटना से उपन्यास की कथा में नया मोड़ आता है।

10 i) निर्मला को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए मुंशी तोताराम तरह-तरह के स्वांग रचते हैं।

ii) तोताराम को निर्मला एवं मंसाराम के संबंध में शंका उत्पन्न हो गयी थी इसी कारण वे उसको घर से बाहर होस्टल में रखने का प्रयत्न करते हैं।

iii) मंसाराम को कोई शारीरिक बीमारी नहीं थी। पिता के अंदर उठी शंका की भावना से वह मानसिक व्यथा से पीड़ित था। इसी कारण डॉक्टरी इलाज के बावजूद उसकी तबियत में कोई सुधार नहीं हुआ।

iv) पुत्र वियोग की व्यथा से तोताराम अपने मुकदमे का कार्य ठीक से नहीं कर पाते हैं। वे जो भी मुकदमा लेते हैं, सभी में उनकी हार होती है। इस प्रकार उनकी आम्दनी कम होती जाती है।

v) जियाराम मानता है कि उसके बड़े भाई मंसाराम की मृत्यु पिता एवं सौतेली माँ के कारण हुई। यही कारण है कि माता-पिता के प्रति उसके व्यवहार में उद्दंडता आती है।

11 i) निर्मला के साथ किए गए अनुचित व्यवहार एवं पत्नी सुधा की फटकार के कारण ग्लानि में डॉक्टर सिन्हा ने आत्महत्या कर ली।

ii) अपने दो पुत्रों को खोने पर तोताराम दुःखी थे ही लेकिन जब उन्होंने अपने अंतिम पुत्र को खो दिया तो उन्हें इतनी निराशा हुई कि उन्होंने घर छोड़ दिया।

iii) रुक्मिणी देवी निर्मला की दयनीय दशा से परिचित हैं। निर्मला के प्रति अपने किए गए व्यवहार से उनमें ग्लानि होती है, यही कारण हैं कि उनके व्यवहार में परिवर्तन आता है।

iv) सियाराम साधुओं की योग-विद्या की बात से अधिक प्रभावित हुआ। इस विद्या के अभ्यास से वह अपनी मृत माता जी का दर्शन कर पाता।

v) मृत्यु से पूर्व निर्मला ने रुक्मिणी देवी से यह निवेदन किया कि वे उसकी पुत्री का विवाह अयोग्य व्यक्ति के साथ न करें।

इकाई 15 "निर्मला" : चरित्र चित्रण

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 चरित्र चित्रण
15.3 चरित्र चित्रण की विधियाँ
- 15.3.1 विश्लेषणात्मक पद्धति
- 15.3.2 संवादात्मक प्रद्धति
- 15.3.3 मनोवैज्ञानिक पद्धति
- 15.3.4 पूर्ववृत्तात्मक पद्धति

15.4 चरित्र चित्रण के गुण
- 15.4.1 अनुकूलता
- 15.4.2 स्वाभाविकता
- 15.4.3 जीवंतता
- 15.4.4 मौलिकता
- 15.4.5 संवेदना

15.5 उपन्यास के पात्र
- 15.5.1 प्रमुख पात्र
- 15.5.2 गौण पात्र

15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

आप "उपन्यास" खंड का अध्ययन कर रहे हैं। अब तक आपने इकाई 11 से 14 तक का अध्ययन कर लिया है। 14वीं इकाई में आपने उपन्यास के महत्वपूर्ण तत्व कथावस्तु के बारे में विस्तृत जानकारी हासिल कर ली है। इस इकाई में हम आपको उपन्यास के एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व "चरित्र चित्रण" के बारे में बतायेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उपन्यास के महत्वपूर्ण तत्व "चरित्र चित्रण" की परिभाषा बता सकेंगे,
- उपन्यासकार "चरित्र चित्रण" के लिए जिन विधियों का प्रयोग करता है, उनका विश्लेषण कर सकेंगे,
- "चरित्र चित्रण" को प्रभावशाली एवं जीवंत बनाने के लिए आवश्यक गुणों को बता सकेंगे,
- "निर्मला" उपन्यास में जिन विधियों का पालन किया गया है उन्हें समझा सकेंगे, तथा
- "निर्मला" के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

"चरित्र चित्रण" उपन्यास का महत्वपूर्ण तत्व है। लेखक कथावस्तु का विकास अपने चरित्रों के माध्यम से करता है। अतः कथावस्तु के समान ही चरित्र चित्रण भी उपन्यास के लिए आवश्यक है। घटनाओं को लेखक विभिन्न प्रकार के पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। बिना पा. के कोई घटना हो ही नहीं सकती। लेखक कथा के अनुसार पात्रों की रचना करता है। पात्रों के कार्यव्यापार, आकृति, विचार, मन के भाव आदि सब उसकी कथा पर आधारित होते हैं। कथावस्तु विश्वसनीय तभी हो सकती है जब उपन्यास के पात्र भी विश्वसनीय हों अर्थात् पात्रों का चुनाव एवं चित्रण इस प्रकार किया गया हो कि उनकी आकृति, प्रकृति, उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य, उनके संवाद सभी स्वाभाविक लगें। कोई पात्र किन परिस्थितियों में क्या कार्य करता है, परिस्थितियों में उलझ जाने पर उसकी मानसिक स्थिति कैसी होती है अर्थात् उस समय वह क्या सोचता है, इन सभी बातों को उपन्यासकार स्वाभाविक रूप में पेश करता है। इस प्रकार उसके पात्र सजीव एवं विश्वसनीय बन जाते हैं। पाठ में हम देखेंगे कि उपन्यासकार अपनी कथावस्तु को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए किस प्रकार के पात्रों का चुनाव करता है। चरित्र

चित्रण के लिए किन-किन विधियों का प्रयोग करता है। पात्रों को अधिक विश्वसनीय एवं सजीव बनाने के लिए किन गुणों को लेखक ध्यान में रखता है, इसकी जानकारी भी प्राप्त करेंगे।

"निर्मला" प्रेमचंद का मौलिक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने "दहेज" और "अनमेल-विवाह" की सामाजिक समस्याओं को लिया है। उपन्यास की मुख्य विषय वस्तु इन्हीं पर निर्भर है। कथा में नारी-जीवन के यथार्थ को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हम चरित्र चित्रण का विश्लेषण करते समय देखेंगे कि लेखक ने विषय वस्तु के अनुकूल पात्रों का चयन करके किस प्रकार रचना को मौलिकता प्रदान की है। पात्रों को लेखक ने किस प्रकार विश्वसनीय एवं सजीव बनाया है। पाठ के माध्यम से हम यह भी जानेंगे कि मुख्य पात्र एवं गौण पात्र में क्या अंतर होता है। तथा गौण पात्र किस प्रकार कथा को सशक्त बनाते हैं। आइए "चरित्र चित्रण" को विस्तार से जानें।

15.2 चरित्र चित्रण

ऐच्छिक पाठ्यक्रम के अंतर्गत आपने दो खंडों का अध्ययन कर लिया है। खंड एक और खंड दो में आपने "चरित्र चित्रण" के बारे में पढ़ा है। उपन्यास के इस खंड की प्रथम इकाई में भी आपने चरित्र चित्रण के बारे में जानकारी प्राप्त की है, किंतु उपन्यास के संदर्भ में इसे और विस्तार से समझने की अपेक्षा है। इतना तो आप समझ ही गए होंगे कि उपन्यास कहानी आदि गद्य विधाओं में लेखक कथा के विकास के लिए पात्रों की रचना करता है। बिना पात्रों के कोई घटना नहीं हो सकती। रचना के अनुकूल उपन्यासकार पात्रों का चुनाव करता है। वह पात्रों की आकृति, विचार, मन के भावों, उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों, अनुभवों आदि का चित्रण करता है। पात्रों में स्वाभाविकता एवं सजीवता लाने के लिए ही वह उपर्युक्त बातों का ध्यान रखता है। पात्रों को सफल बनाने के लिए उपन्यासकार में कल्पना-शक्ति का होना भी आवश्यक है अर्थात् वह ठीक-ठीक कल्पना कर ले कि अमुक पात्र में अमुक गुण को लाया जाए। अमुक पात्र की मानसिक स्थिति को इस प्रकार दर्शाया जाए या अमुक पात्र से इस प्रकार का कार्य करवाया जाए। किसी रचनाकार की रचना तभी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पा सकती है जब उसमें वर्णित पात्रों की रचना महान् उद्देश्य को लेकर की गयी हो और महान उद्देश्यों को लेकर वही उपन्यासकार अपने पात्रों की रचना कर सकता है जो स्वयं भी महत् एवं संवेदनशील अन्तर्दृष्टि रखता हो। किसी उपन्यास के पात्रों में जो जीवन्तता है, उनके जो कार्यव्यापार हैं, उनके अंदर उठने वाली जो भावनाएँ हैं उन सब पर पाठकों को सहज रूप से विश्वास होने लगे। अर्थात् पात्रों में हँसने-रोने या अन्य भावनाएँ उठने से पाठक में भी वही भाव उठने लगें तो मानना चाहिए कि उस रचना के पात्र जीवंत हैं और संवेदना जगाने की क्षमता रखते हैं। कोई पात्र यदि चमत्कारी या असंभव कार्य करता है तो इससे उसकी स्वाभाविकता प्रकट नहीं होगी। वैसे पात्र ही स्वाभाविक एवं जीवंत होंगे जिनमें सहजता होगी। लेखक [illegible] के लिए कई प्रकार [illegible] अपनाता है। आइए इन विधियों पर विचार करें।

15.3 चरित्र चित्रण की विधियाँ

चरित्रांकन के लिए लेखक कई प्रकार की विधियों का पालन करता है। कभी लेखक स्वयं पात्रों के बारे में कुछ कहता है, कभी पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं जिनसे उनका चरित्र सामने आता है। कभी पात्र अपने बारे में या दूसरे पात्रों के बारे में सोचता है। इससे भी उसका तथा दूसरे पात्रों का चरित्र स्पष्ट होता है। कभी-कभी लेखक प्रसंगानुकूल उन घटनाओं की स्मृति करता है जिनका पहले वर्णन नहीं किया गया हो तथा कभी पूर्व घटित घटना को प्रत्यक्ष रूप में शब्दों के द्वारा स्पष्ट वर्णित करवाता है इन विधियों द्वारा पात्रों का चरित्र सामने आता है। हम इन्हे चार वर्गों में रख सकते हैं:

1) विश्लेषणात्मक पद्धति
2) संवादात्मक पद्धति
3) मनोवैज्ञानिक पद्धति
4) पूर्ववृत्तात्मक पद्धति

15.3.1 विश्लेषणात्मक पद्धति

इस पद्धति में उपन्यासकार स्वयं पात्रों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है अर्थात् लेखक पात्रों के

चरित्र को स्पष्ट करता चलता है। पात्रों के गुण-अवगुण या जिन परिस्थितियों में किसी पात्र ने कोई कार्य किया है, उन्हें वह स्पष्ट करता है। अगर आप इस दृष्टि से निर्मला उपन्यास को दुबारा पढ़ें तो पायेंगे कि लेखक ने अधिकांश पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने में इस पद्धति का प्रयोग किया है। उपन्यास के इस उदाहरण से आप इसे ठीक-ठीक समझ सकते हैं।

"तोताराम दम्पति-विज्ञान में कुशल थे। निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी, उसे वह उपहारों से पूरी करना चाहते थे। यद्यपि वह बहुत ही मितव्ययी पुरुष थे तथापि निर्मला के लिए कोई-न-कोई तोहफा रोज लाया करते। मौके पर धन की परवाह न करते। लड़कों के लिए थोड़ा दूध आता, पर निर्मला के लिए मेवे मुरब्बे, मिठाइयाँ—किसी चीज की कमी न थी। अपनी ज़िन्दगी में कभी सैर तमाशे देखने न गए थे। अब अपने बहुमूल्य समय का थोड़ा सा हिस्सा उसके साथ बैठकर ग्रामोफोन बजाने में व्यतीत किया करते थे।"

आपने देखा कि लेखक ने तोताराम के चरित्र को स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है। तोताराम दम्पति-विज्ञान मे कुशल थे, वे मितव्ययी पुरुष थे, इत्यादि-इत्यादि।

15.3.2 संवादात्मक पद्धति

संवादों के माध्यम से जब पात्रों का चरित्र सामने आए तब उसे संवादात्मक पद्धति कहते हैं। उपन्यास के पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं तब उनका चरित्र प्रकाश में आता है। कभी-कभी कोई एक पात्र किसी दूसरे पात्र के बारे में उसके गुण-अवगुण का उद्घाटन करते हैं। इन्हें हम क्रमशः (1) प्रत्यक्ष एवं (2) अप्रत्यक्ष चरित्र चित्रण के अंतर्गत रख सकते हैं।

प्रत्यक्ष चरित्र चित्रण में संवादों के माध्यम से उन पात्रों के गुण-अवगुण का स्पष्ट परिचय मिलता है जिनके बीच संवाद हो रहा होता है। प्रत्यक्ष संवाद पात्रों के अपने कार्य पर आधारित होते है और उनके पात्रों के विचारों, आदर्शों तथा उनकी कार्यपद्धति आदि का पता चलता है। इन बातों से उनके चरित्र का निर्माण होता है। एक उदाहरण देखिए—

"रंगीली ने कहा—आज बड़ी देर लगाई तुमने। यह देखो, तुम्हारी ससुराल से यह खत आया है। तुम्हारी सास ने लिखा है। साफ-साफ बतला दो—अभी सवेरा है। तुम्हें वहाँ शादी करना मंजूर है या नहीं?

भुवन—शादी करनी तो चाहिए अम्मा, पर मैं करूँगा नहीं।
रंगीली—क्यों?
भुवन—इसमें शर्म की कौन-सी बात है? रुपये किसे काटते हैं? लाख रुपये तो लाख जन्म में भी न जमा कर पाऊँगा। इस साल पास भी हो गया तो कम-से-कम पाँच साल तक रुपये की सूरत नज़र न आयगी। फिर सौ-दो सौ रुपये महीने कमाने लगूँगा। पाँच-छः सौ तक पहुँचते-पहुँचते उम्र के तीन भाग बीत जायेंगे। रुपए जमा करने की नौबत न आएगी। दुनिया का कुछ मज़ा न उठा सकूँगा। किसी धनी लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नगद हो, फिर ऐसी ज्यादादवाली बेवा, मिले जिसके एक ही लड़की हो।

रंगीली—चाहे औरत कैसी ही मिले।

भुवन—धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे वह गालियाँ भी सुनाए तो भी चूँ न करूँ। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है।"

आप देखें कि उपर्युक्त संवादों से दोनों पात्रों का चरित्र साफ प्रकट होता है। भुवन मोहन का लालची एवं धनलोलुप चरित्र स्पष्ट है। वह धन को ही सब कुछ मानता है। माँ के कहने पर कि, "औरत कैसी ही हो", वह इतना तक कहता है कि धन सारे ऐबों को छिपा देता है। इससे उसका दृष्टिकोण भी स्पष्ट हो जाता है।

अप्रत्यक्ष चरित्र चित्रण में लेखक किन्ही पात्रों के संवाद के किसी दूसरी पात्र के बारे में सूचनाएँ दिलवाता है, लेकिन इसके द्वारा यह भी संभव है कि पात्रों के संवाद व्यक्तिगत द्वेष के कारण अन्य पात्रों के बारे में गलत तथ्यों को सामने लाते हों। अतः इस विधि में पात्र अपने विचारानुकूल ही दूसरे के चरित्र को सामने रखते हैं। यदि तटस्थ एवं निष्पक्ष होकर कोई संवाद बोलता है तो उस समय अवश्य ही वह किसी पात्र का सही चित्र प्रस्तुत करता है। आइए, हम इसे एक उदाहरण द्वारा समझें—

"मंसाराम ने बड़ी मुश्किल से उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर कहा—जी रोता नहीं हूँ।
मुंशीजी—तुम्हारी अम्माँ ने तो कुछ नहीं कहा?

मंसाराम—जी नहीं, वह तो मुझसे बोलती ही नहीं।

मुंशीजी—क्या करूँ बेटा, शादी तो इसलिए की थी कि बच्चों को माँ मिल जायेगी, लेकिन यह आशा पूरी नहीं हुई। तो क्या बिल्कुल नहीं बोलती?

मंसाराम—जी नहीं, इधर महीनों से नहीं बोलीं।

मुंशीजी—विचित्र स्वभाव की औरत है, मालूम नहीं होता कि क्या चाहती है। मैं जानता कि उसका ऐसा मिज़ाज होगा, तो कभी शादी न करता। रोज एक न एक बात लेकर उठ खड़ी होती है। उसी ने मुझसे कहा था कि यह दिन भर जाने कहाँ गायब रहता है। मैं उसके दिल की बात क्या जानता था? समझा तुम कुसंगत में पड़कर शायद दिन भर घूमा करते हो। कौन ऐसा पिता है, जिसे अपने प्यारे पुत्र को आवारा फिरते देखकर रंज न हो? इसीलिए मैंने तुम्हें बोर्डिंग हाउस में रखने का निश्चय किया। बस, और कोई बात न थी, बेटा।''

आप देखें कि मुंशी तोताराम निर्मला के बारे में जो कुछ कहते हैं, वह असत्य है। वे निर्मला के प्रति मंसाराम के मन में द्वेष का भाव पैदा करने के लिए ऐसी बातें गढ़ते हैं, अतः यहाँ तोताराम का चरित्र तो स्पष्ट होता है लेकिन निर्मला का चरित्र चित्रण तथ्यपूर्ण नहीं है। एक अन्य संवाद देखिए—

''मंसाराम—तुमने खूब कहा, बहुत ही अच्छा कहा। इस पर और भी झल्लायी होंगी और जाकर बाबूजी से शिकायत की होगी।

जियाराम—नहीं, यह कुछ नहीं हुआ। बेचारी जमीन पर बैठकर रोने लगी। मुझे भी करुणा आ गई। मैं भी रो पड़ा। उन्होंने अंचल से मेरे आँसू पोछें और बोले—जिया! मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे भैया के विषय में तुम्हारे बाबूजी से एक शब्द नहीं कहा। मेरे भाग्य में कलंक लिखा हुआ है, वही भोग रही हूँ। फिर और न जाने क्या-क्या कहा, जो मेरी समझ में नहीं आया। कुछ बाबू जी की बात थी।''

मंसा एवं जिया के इस संवाद में जियाराम ने निर्मला के बारे में जो कुछ कहा वह बिना किसी लाग-लपेट के, तटस्थ होकर कहा, अतः इससे निर्मला का सही चरित्र उद्घाटित होता है। इस प्रकार संवादात्मक पद्धति द्वारा लेखक चरित्र चित्रण करता है।

15.3.3 मनोवैज्ञानिक पद्धति

इस पद्धति के अंतर्गत लेखक पात्रों के मनोभाव को उद्घाटित करता है। आज सफल उपन्यास उसी को माना जाता है जिसमें लेखक ने पात्रों के मनोभाव का स्वाभाविक चित्रण किया हो। मानवमन की गहराई तक बैठकर ही सफल लेखक अपने चरित्रों का यथार्थ मनोभाव उपस्थित कर सकता है। परिस्थितियों के बीच उलझे पात्रों के अंतर्द्वंद्व को लेखक तभी चित्रित कर सकता है जब वह पात्रों के अंतर्मन तक पहुँच जाये अर्थात् वह यह अनुमान लगा ले कि अमुक परिस्थिति में पात्र की मानसिक स्थिति किस प्रकार की हो सकती है। आप ''निर्मला'' उपन्यास के इस उदाहरण से इसे समझें—

''मंसाराम ने अब तक निर्मला की ओर ध्यान नहीं दिया था। निर्मला का ध्यान आते ही उसके रोयें खड़े हो गए। उनका सरल स्नेहशील हृदय यह आघात कैसे सह सकेगा? आह! मैं कितने भ्रम में था। मैं उनके स्नेह को कौशल समझता था। मुझे क्या मालूम था कि उन्हें पिता जी का भ्रम शांत करने के लिए मेरे प्रति कितना कटु व्यवहार करना पड़ता है। आह! मैंने उन पर कितना अन्याय किया है। उनकी दशा तो मुझसे भी खराब हो रही होगी। मैं तो यहाँ चला आया, मगर वह कहाँ जाएँगी? जिया कहता था; उन्होंने दो दिन से भोजन नहीं किया। हरदम रोया करती है, कैसे जाकर समझाऊँ? वह इस अभागे के पीछे क्यों अपने सिर पर विपत्ति ले रही हैं, वह क्यों बार-बार मेरा हाल पूछती हैं? क्यों बार-बार मुझे रुलाती हैं? कैसे कह दूँ कि माता, मुझे तुमसे जरा भी शिकायत नहीं, मेरा दिल तुम्हारी तरफ से साफ है।''

यहाँ मंसाराम के मनोभाव का स्वाभाविक चित्रण किया गया है उसकी मानसिक स्थिति किस प्रकार की है और वह परिस्थिति के विषय में क्या सोचता है, इसका स्वाभाविक चित्रण किया गया है। इसलिए इसे हम मनोवैज्ञानिक पद्धति कह सकते हैं। मनोवैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत मानसिक द्वंद्व एवं स्वप्न आदि द्वारा भी पात्रों के चरित्र को उभारा जाता है। निम्नलिखित उदाहरण तोताराम के मानसिक द्वंद्व को दर्शाया गया है, उसे देखिए—

''एक क्षण के बाद एकाएक मुंशी के मन में प्रश्न उठा—कहीं मंसाराम उनके भावों को ताड़ तो नहीं गया? इसीलिए तो घर से घृणा नहीं हो गयी है? अगर ऐसा है, तो गज़ब हो जाएगा।

इस अनर्थ की कल्पना ही से मुंशी जी के रोएँ खड़े हो गये और कलेजा धक्-धक् करने लगा। हृदय में एक धक्का सा लगा। अगर इस ज्वर का यही कारण है, तो ईश्वर ही मालिक है। इस समय उनकी दशा अत्यंत दयनीय थी। वह आग जो उन्होंने अपने ठिठुरे हुए हाथों को सेंकने के लिए जलायी थी, अब उनके घर में लगी जा रही थी। इस करुणा, शोक, पश्चाताप और शंका से उनका चित्त घबरा उठा। उनके गुप्त रोदन की ध्वनि बाहर निकल सकती तो सुनने वाले रो पड़ते। उनके आँसू बाहर निकल सकते थे, तो उनका तार बँध जाता। उन्होंने पुत्र के वर्णहीन मुख की ओर, एक बार, वात्सल्यपूर्ण नेत्रों से देखा, वेदना से विकल होकर उसे छाती से लगा लिया, और इतना रोये कि हिचकी बँध गयी।"

15.3.4 पूर्ववृतात्मक पद्धति

इस पद्धति के अंतर्गत लेखक किसी पात्र के बारे में उन बातों की जानकारी देता है जो उसके जीवन के पूर्व पक्ष से संबंधित होते हैं। परन्तु जिनका वर्णन पहले नहीं किया गया रहता। मनोवैज्ञानिक गुत्थी को सुलझाने के लिए ही इसका प्रयोग किया जाता है। कथा में पहले इसका वर्णन नहीं किया जाता। परिस्थिति एवं समयानुकूल तथ्य को सामने रखकर चरित्र को स्पष्ट किया जाता है।

निर्मला उपन्यास में मुंशी तोताराम एवं रुक्मणी देवी के चरित्र को इसी पद्धति के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

"घर में वकील साहब की विधवा बहिन के सिवा और कोई औरत न थी। वही घर की मालकिन थीं। उनका नाम रुक्मिणी और अवस्था पचास के ऊपर थी। ससुराल में कोई न था। स्थायी रीति से यहाँ रहती थीं।

तोताराम की बहन रुक्मिणी देवी के जीवन से संबंधित पूर्व घटना की जानकारी यहाँ दी गई है। रुक्मिणी देवी तोताराम की बड़ी बहन हैं, विवाह होने के बाद वे विधवा हो जाती हैं। फिर वे भाई के घर में मालकिन के रूप में रहने लगती हैं। इस प्रकार पूर्व घटना की जानकारी यहाँ देकर रुक्मिणी देवी के चरित्र को स्पष्ट किया गया है।

15.4 चरित्र चित्रण के गुण

अभी तक हमने उन पद्धतियों की जानकारी प्राप्त की जिनके द्वारा उपन्यासकार चरित्र चित्रण करता है। अब हम उन विशेषताओं को जानने का प्रयत्न करेंगे जिनसे लेखक चरित्र को प्रभावशाली बनाता है।

पात्रों को जीवंत एवं सक्रिय बनाने के लिए उपन्यासकार जिन विशेषताओं का रूपांकन करता है, वही चरित्र चित्रण के गुण कहलाते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि पात्रों में अनुकूलता, स्वाभाविकता, सप्राणता (जीवंतता) तथा मौलिकता हो और उसकी संवेदनशीलता पाठक को प्रभावित करके उसमें भी वैसी ही संवेदना जागृत कर सकता हो। आइए इसे एक-एक कर देखें।

15.4.1 अनुकूलता

अनुकूलता का तात्पर्य है जिस प्रकार की कथा है उसी के अनुकूल पात्रों का चुनाव। कथा के अनुकूल पात्रों का चुनाव करने से पात्रों एवं कथावस्तु में स्वाभाविक संबंध स्थापित हो जाता है। पाठक को ऐसा प्रतीत नहीं होता कि लेखक ने जानबूझ कर अमुक पात्र की रचना की है। पात्र यथार्थ लगते हैं। पाठक को उसकी यथार्थता में संदेह नहीं रहता।

"निर्मला" उपन्यास के पात्रों को ही लें। इसके सभी पात्र कथावस्तु के अनुकूल रचे गए हैं। निर्मला, तोताराम, मसाराम, जियाराम तथा रुक्मिणी सभी कथा के अनुकूल हैं।

इस उपन्यास की कथा दहेज प्रथा एवं अनमेल विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं को दर्शाने के लिए है। इसके लिए सभी पात्र समाज के उन वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनका संबंध इस समस्या से है। "निर्मला" उस नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जिन्हें दहेज की बलिवेदी पर चढ़ना होता है। तोताराम उस पुरुष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपनी आयु को नजरअंदाज करके वासना-पूर्ति के लिए अपने से कम उम्र की कन्याओं से विवाह करते हैं। मंसाराम उन होनहार बालकों का प्रतिनिधित्व करता है जिन्हें परिस्थितिवश अनुचित बातें सहनी पड़ती हैं। अपने सरल स्वभाव के कारण ऐसे बालक घुट-घुट कर मर जाते हैं। जियाराम उन उद्दंड बालकों का प्रतिनिधित्व करता है जो माता-पिता की परेशानियों को नहीं समझते और उनकी गलती उनका

ही जीवन बर्बाद कर देती है। रुक्मिणी देवी उस नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जो विधवा होने पर अपने रिश्तेदारों के यहाँ घर की मालकिन बन कर रहना चाहती हैं और ऐसा न होने पर घर में आए दिन परेशानियाँ खड़ी करती रहती हैं। आप निर्मला की कथा को ध्यान में रखकर उपर्युक्त बातों को जाँचें तो पाएँगे कि सभी पात्र कथा के अनुकूल हैं और कथा के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक हैं।

15.4.2 स्वाभाविकता

पात्र स्वाभाविक हों, इसके लिए यह ज़रूरी है कि केवल कल्पना एवं व्यर्थ की बातों से पात्रों को अलग रखा जाए। यथार्थ की धरातल पर पात्रों का चित्रण किया जाए। पाठक उपन्यास पढ़ते समय पात्रों के साथ तादात्मय स्थापित कर ले। ऐसा नहीं कि किसी पात्र के कार्य का चिंतन उसके स्वभाव या उसकी स्थिति में विपरीत हों।

जियाराम एवं मुंशीजी के वार्तालाप से आप देखिए कि चरित्र की स्वाभाविकता स्पष्ट दिखाई पड़ती है–

मुंशीजी ने झुंझलाकर कहा–तुम लोग बच्चे नहीं हो।

जियाराम–और क्या बुढ़े हैं? मिठाइयाँ मँगवाकर रख दीजिए; तो मालूम हो कि बच्चे हैं या बूढ़े। निकालिए चार आना और। आशा के बदौलत हमारे नसीब भी जागें।

मुंशीजी–मेरे पास इस वक्त पैसे नहीं हैं। जाओ जिया, जल्द आना।

जिया–सिया नहीं जायेगा। किसी का गुलाम नहीं है। आशा अपने बाप की बेटी है तो वह भी अपने बाप का बेटा है।

आप देख रहे हैं कि पात्र किस प्रकार आपस में बात करते हैं। सामान्यतः हम आये दिन घरों में इसी प्रकार के संवाद सुनते हैं इसलिए स्वाभाविकता आ पाई है।

15.4.3 जीवंतता

चरित्र सजीव एवं आकर्षक होने चाहिए। आदर्श चरित्र इतने आदर्श रूप में चित्रित न किये जाएँ कि उसमें बनावटीपन आ जाए। जिन पात्रों के चरित्र आदर्श गुण से ही भरपूर होंगे उनमें बनावटीपन आ जायेगा और पाठक में संदेह उपस्थित होगा। उसे उपन्यास पढ़ने में अरुचि होगी। पात्र वस्तुतः यथार्थ की धरातल से जुड़े होने चाहिए। निर्मला उपन्यास में सभी पात्र जीवंत हैं।

"जियाराम जरा शोख था। बोला–उनको तो आप कुछ नहीं कहते, हमीं को धमकाते हैं। कभी पैसे नहीं देती।

सियाराम ने इस कथन का अनुमोदन किया–कहती है, मुझे दिक करोगे तो कान काट लूँगी। कहती है कि नहीं जिया?

निर्मला अपने कमरे से बोली–मैंने कब कहा था कि कान काट लूँगी? अभी से झूठ बोलने लगे?"

आप देखें सभी पात्र अपनी बातों से स्वाभाविक एवं जीवंत लगते हैं। ऐसा नहीं लगता है कि कोई अस्वाभाविक कार्य कर रहे हों। परिवारों में इस प्रकार की घटनाएँ आये दिन घटित होती रहती हैं और बातें भी इसी तरह बनाई जाती हैं।

15.4.4 मौलिकता

उपन्यासकार अपने पात्रों को तभी रोचक एवं प्रभावशाली बना सकता है जब उसमें मौलिकता होगी। मौलिकता से हमारा तात्पर्य इस बात से है कि रचनाकार ने पात्रों को किसी अन्य रचना से नकल करके नहीं लिया हो, बल्कि वह नितांत उसकी अपनी कल्पना से गढ़ा गया हो। हम "निर्मला" के पात्रों को ही उदाहरणस्वरूप रख सकते हैं। निर्मला, मुंशी तोताराम, कल्याणी, मंसाराम, डॉ. सिन्हा, सुधा, जियाराम, रुक्मिणी आदि सभी पात्र जीवन से लिये गये हैं और अपने आपमें मौलिक हैं। इसके पहले अन्य किसी रचनाकार ने इन पात्रों की रचना नहीं की है।

15.4.5 संवेदना

अनेक बार उपन्यास में वर्णित पात्रों के सुख-दुःख में, उनके मन में उठने वाली भावनाओं में, पाठक सहभागी हो जाता है। पाठक पात्र की संवेदना का वैसा ही अनुभव करने लगता है या उसमें

भी वही संवेदना जागृत हो जाती है। लेखक की सफलता इसी बात में है कि वह ऐसे पात्रों का सृजन करे जो पाठकों में संवेदना जागृत कर सकें। "निर्मला" में प्रेमचंद ने निर्मला को प्रायः इसी रूप में चित्रित किया है। एक उदाहरण देखिए—

"निर्मला ने रोकर कहा—मैंने उन्हें कुछ कहा तो, मेरी जबान कट जाए। हाँ सौतेली माँ होने के कारण बदनाम तो हूँ ही। आपके हाथ जोड़ती हूँ। ज़रा जाकर उन्हें बुला लाइए।"

रुक्मिणी ने तीव्र स्वर में कहा— तुम क्यों नहीं बुला लाती? क्या छोटी हो जाओगी? अपना होता तो क्या इसी तरह बैठी रहती? निर्मला की दशा उस पंखहीन की तरह हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर आते देखकर उड़ना चाहता है, पर उड़ नहीं सकता, उछलता है और गिर पड़ता है, पंख फड़फड़ाकर रह जाता है। उसका हृदय अंदर ही अंदर तड़प रहा था, पर बाहर न जा सकती थी।

इतने में दोनों लड़के अंदर आकर बोले—भैया जी चले गए। निर्मला मूर्तिवत् खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन हो गई। चले गए। घर में आये तक नहीं; मुझसे मिले तक नहीं। चले गए? मुझसे इतनी घृणा। मैं उनकी कोई न सही; उनकी बुआ तो थी। उनसे तो मिलने आना चाहिए न? मैं यहाँ थी न! अंदर कैसे कदम रखते! मैं देख लेती न। इसीलिए चले गए।"

निर्मला की इस दयनीय स्थिति को देखकर किसी भी सहृदय पाठक में सहानुभूति के भाव उठ सकते हैं। निर्मला परिस्थितिवश लाचार है। वह मंसा को रोक नहीं सकती, उस पर रुक्मिणी देवी के तानों से वह और भी त्रस्त है। क्या हममें रुक्मिणी देवी के प्रति रोष और निर्मला के प्रति सहानुभूति नहीं जगती? इन्हीं सहानुभूतिपूर्ण और अनुकूल भावनाओं के पाठक के हृदय में उठने को संवेदना जागना कहते हैं।

बोध प्रश्न

1 दो पंक्तियों में विश्लेषणात्मक पद्धति को स्पष्टतया समझाइये।

....

....

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित शब्दों द्वारा कीजिए :

i) उपन्यास के पात्रों द्वारा आपस की बातचीत से जब उनका चरित्र उभारा जाये, तब उसे.......... कहते हैं।

ii) पात्र कभी-कभी अपने बारे में या किसी घटित घटना पर चिंतन करते हैं और उसके द्वारा जब उनका चरित्र सामने आता है तब उसे.......... कहते हैं।

iii) किसी पात्र से संबंधित घटना पहले घट चुकी होती है, किंतु कथा में उसका जिक्र बाद में किया जाता है, और तब जाकर उस पात्र का चरित्र सामने आता है, इस पद्धति को.......... कहते हैं।

3 उपन्यासकार अपने पात्रों को जीवंत बना सके इसके लिए एक आवश्यक गुण है कथा के "अनुकूल पात्रों का चयन"। आप तीन अन्य गुणों को लिखिए।

....

....

....

4 दो पंक्तियों में मौलिकता का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

....

....

अभ्यास

1 पठित "उपन्यास" "निर्मला" के किसी एक पात्र से संबंधित वे पाँच पंक्तियाँ लिखिए जिनमें उसके मनोभाव उभारे गए हों :

....

....

....

....

....

2 "मंसाराम ने आँसुओं के उठते हुए वेग को दबाकर कहा—मर जायेंगी, मेरी बला से! कौन मुझे बड़ा सुख दिया है, जिसके लिए पछताऊँ। मेरा तो उन्होंने सर्वनाश कर दिया। कह देना, मेरे पास कोई संदेश न भेजें, कुछ जरूरत नहीं।"
उपर्युक्त कथन में मंसाराम के कौन से भाव स्पष्ट होते हैं?

....

....

....

....

3 "मुंशीजी ने उसे आहिस्ते से चारपाई पर लिटा दिया और लिहाफ़ अच्छी तरह उढ़ाकर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। कहीं लड़का हाथ से तो न निकल जायेगा। यह ख्याल करके वह शोक में विह्वल हो गए और स्टूल पर बैठकर फूट-फूट कर रोने लगे। मंसाराम भी लिहाफ में मुँह लपेटे रो रहा था। अभी थोड़े ही दिन पहले उसे देखकर पिता का हृदय गर्व से फूल उठता था; लेकिन आज उसे इस दारुण दशा में देखकर भी वह सोच रहा है कि इसे घर ले चलूँ या नहीं? क्या यहाँ दवा नहीं हो सकती? मैं यहाँ चौबीसों घंटे बैठा रहूँगा। डॉक्टर साहब यहाँ हैं ही। कोई दिक्कत न होगी। घर से चलने में उन्हें बाधाएँ ही बाधाएँ दिखाई देती थीं, सबसे बड़ा भय था कि वहाँ निर्मला इसके पास हरदम बैठी रहेगी और मना न कर सकूँगा—यह उनके लिए असह्य था।"

उपर्युक्त चिंतन में तोताराम के कौन-कौन से भाव उभर कर सामने आते हैं और समग्र रूप से इससे तोताराम के चरित्र की किस विशेषता का पता चलता है।

....

....

....

....

4 पठित उपन्यास से उन चार-पाँच पंक्तियों को लिखिए जिनमें चिंतन के द्वारा पूर्ववृत्तात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

....

....

....

....

15.5 उपन्यास के पात्र

अब तक हमने चरित्र चित्रण की विधियों एवं उनके प्रभाव लाने के लिए आवश्यक गुणों की चर्चा की है। अब हम "निर्मला" उपन्यास के पात्रों को एक-एक करके लेंगे और देखेंगे कि लेखक कितनी सफलता से इन पात्रों की रचना कर पाया है।

उपन्यास में जितने प्रकार के पात्रों की रचना की जाती है उन्हें मोटे तौर पर दो वर्गों में रखा जा सकता है

1 मुख्य पात्र तथा गौण पात्र
2 पुरुष पात्र और नारी पात्र

नारी पात्र और पुरुष पात्र मुख्य भी हो सकते हैं और गौण भी। मुख्य पात्र उन्हें कहते हैं जिनके इर्दगिर्द उपन्यास की पूरी कथा चलती है। अर्थात् लेखक किसी मुख्य पात्र को लेकर ही पूरी कथा की रचना करता है। चाहे उसका उद्देश्य मुख्य पात्र के द्वारा किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करना ही क्यों न हो।

गौण पात्र उन्हें कहते हैं जो मुख्य पात्र के चरित्र को उभारने के लिए या कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। ऐसे पात्र कथा में किसी अवसर विशेष पर उपस्थित किये जाते हैं। ये कथा में या तो एक बार आकर समाप्त हो जाते हैं या बीच-बीच में लाये जाते हैं। हम "निर्मला" मे पात्रों का चरित्र-विश्लेषण करते हुए इसे विस्तार से समझेंगे। "निर्मला" में मुख्य पात्र हैं, निर्मला, मुंशी तोताराम, मंसाराम, जियाराम, डॉ. सिन्हा, रुक्मिणी और सुधा। गौण पात्र हैं, कल्याणी, भालचंद्र, मतई, सियाराम आदि। आइए पहले प्रमुख पात्रों का विश्लेषण करें :

15.5.1 प्रमुख पात्र

"निर्मला" उपन्यास की मुख्य कथा पति-पत्नी की पारिवारिक कहानी को केंद्र में रखकर लिखी गई है। इसलिए इसमें तोताराम और उनकी पत्नी निर्मला ही प्रमुख पात्र हैं। यदि उन दोनों में भी किसी एक पात्र को प्रधानता देना चाहें तो वह है "निर्मला"। निर्मला की संपूर्ण जीवनगाथा को लेखक ने कथा के कलेवर में समेटा है। निर्मला का परिचय, विवाह, पारिवारिक समस्याएँ एवं अंततः अभावग्रस्त होकर उसका अंत, यही पूरे उपन्यास के मुख्य कथा बिंदु हैं। लेखक ने निर्मला के चरित्र को उभारने के लिए अन्य पात्रों की रचना की है

निर्मला

निर्मला उपन्यास की नायिका है। उसके समस्त जीवन का वर्णन इसमें है। निर्मला की जीवन-गाथा के साथ ही कथा आगे बढ़ती है। और कथा का अंत भी उसके जीवन के अंत से होता है। निर्मला का प्रथम परिचय हम बाबू उदयभानु लाल के पारिवारिक परिचय में पाते हैं। वह पन्द्रह साल की कन्या है और उस अवस्था में उसके विवाह की बात तय होती है। विवाह के योग्य उम्र नहीं होने के कारण उसमें स्वाभाविक खुशी के स्थान पर भय का भाव उत्पन्न होता है। इस बीच एक दुर्घटना घटती है और उसके पिता की हत्या हो जाती है। उसके जीवन में दुःख की शुरुआत यहीं से हो जाती है। दहेज न दे सकने की स्थिति में उसका विवाह दुहाजू वकील मुंशी तोताराम के साथ हो जाता है। अनमेल विवाह से उसे वैवाहिक सुख नहीं मिल पाता। पति के शंकालु स्वभाव से उसका जीवन और दुःखमय हो जाता है। वह सौतेले पुत्रों को खोती जाती है और अंत में पति भी छोड़ जाता है। आर्थिक तंगी के कारण उसका त्रासद अंत होता है।

इस प्रकार परिस्थितिवश उसके जीवन में उतार-चढ़ाव आता है। स्वभावतः उसके चरित्र में भी परिवर्तन आता है। पन्द्रह वर्ष की निश्छल कन्या से वह पत्नी, फिर ममतामयी मृदुभाषी माँ बनती है। और परिस्थितियाँ उसे कर्कशा एवं चिड़चिड़ी बना देती हैं। हम निर्मला के चरित्र को क्रमशः निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं।

- सोलह वर्षीय बालिका
- पतिव्रता पत्नी
- भावुक और संवेदनशील नारी
- ममतामयी माँ
- आत्मालोचक
- परिस्थिति के अनुसार कर्कशा तथा स्वार्थिनी नारी

सोलह वर्षीय बालिका

उपन्यास के कथा के आरंभ में ही हम निर्मला को एक सोलह वर्षीय कन्या के रूप में पाते हैं जिसका विवाह तय हो चुका है। वयस्क न होने पर वह विवाह के महत्व को नहीं समझ पाती और भयभीत होती है। उसका भावुक रूप आरंभ में ही प्रकट होता है।

पतिव्रता नारी

परिस्थितिवश निर्मला का विवाह रुक जाता है। आर्थिक तंगी के कारण अच्छे वर के साथ उसका विवाह नहीं हो पाता। माता विवश होकर एक दुहाजू व्यक्ति वकील मुंशी तोताराम के साथ उसका विवाह कर देती है। तोताराम की उम्र चालीस वर्ष है। निर्मला का जीवन एक अधेड़ व्यक्ति के साथ बंध जाता है। अब वह अपने पिता की उम्र के बराबर व्यक्ति की पत्नी है। इस अनमेल विवाह ने स्वाभाविक रूप से उसके वैवाहिक सुख को समाप्त कर दिया। लेखक ने मनोवैज्ञानिक पद्धति से उसके चरित्र को स्पष्ट किया है।

'निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौंदर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वाला सी उठती। मन में आता, इस घर में आग लगा दूँ। अपनी माता पर क्रोध आता, पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध तोताराम पर आता। वह सदैव इस बात से

जला करती। बाँका सवार बड़े लट्टू-टट्टू पर सवार होना कब पसंद करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े। निर्मला की दशा उसी बाँके सवार की-सी थी। वह उन पर सवार होकर उड़ना चाहती थी, टट्टू के हिनहिनाने और कनौतियाँ खड़ी करने से क्या आशा होती ? संभव था कि बच्चों के साथ हँसने-खेलने से वह अपनी दशा को थोड़ी देर के लिए भूल जाती।"

इन सब बातों के होते हुए भी वह अपने पति के प्रति वफादार है। वह परिस्थिति से समझौता कर लेती है।

"संसार के सब प्राणी सुख-सेज पर ही तो नहीं सोते। मैं भी उन्हीं अभागों में हूँ। मुझे भी विधाता ने दु:ख की गठरी ढोने के लिए चुना है। वह बोझ सिर से उतर नहीं सकता। उसे फेंकना भी चाहूँ तो नहीं फेंक सकती। उस कठिन भार से चाहे आँखों में अँधेरा आ जाये, चाहे गर्दन टूटने लगे, चाहे पैर उठना दुस्तर हो जाये, लेकिन गठरी ढोनी पड़ेगी।"

निर्मला के पतिव्रत का प्रमाण हम उस समय पाते हैं जब डॉ. सिन्हा उससे एकांत में प्रणय निवेदन करते हैं। उसने कुछ कहा भी नहीं—

"निर्मला ने कुछ न सुना। उसे ऐसा जान पड़ा मानो सारी पृथ्वी चक्कर खा रही है। मानों उसके प्राणों पर सहस्त्रों वज्रों का आघात हो रहा है। उसने जल्दी से लटकी अलगनी पर लटकी हुई चादर उतार ली और बिना मुँह से एक शब्द निकाले कमरे से निकल गयी। डॉक्टर साहब खिसियाये हुए से—रोना मुँह बनाये खड़े रहे।"

इस प्रकार निर्मला ने कभी अपने पतिव्रत पर आँच नहीं आने दी। यद्यपि वह अधेड़ व्यक्ति से ब्याही गयी थी और उसने वैवाहिक जीवन का आनंद नहीं उठाया था फिर भी वह एक भारतीय नारी की तरह पतिव्रता बनी रही।

भावुक और संवेदनशील नारी

लेखक ने निर्मला के भावुक एवं संवेदनशील चरित्र को उभारा है। विवाह से पूर्व पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही वह अपनी भावुकता दर्शाती है। उसके भाई-बहन उसे अकेला छोड़कर चले जाते हैं। वह सोचने लगती है :

"चन्द्रभानु और कृष्णा चले गये, पर निर्मला अकेली बैठी रह गई। कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ। कृष्णा, जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी निष्ठुर हो गई। अकेली छोड़ कर चली गई? निर्मला बड़ी देर तक बैठी रोती रही। भाई-बहन, माता-पिता, सभी इसी भाँति मुझे भूल जायेंगे; सब की आँखें फिर जायेंगी, फिर शायद इन्हें देखने को भी तरस जाऊँ।"

भूँगी ने जब सूचना दी कि मंसा रो रहे हैं तो निर्मला का हृदय भावुक हो उठा :

"उसके जी में प्रबल इच्छा हुई कि चलकर उन्हें चुप कराऊँ और लाकर खाना खिला दूँ। बेचारे रात-भर पड़े रहेंगे। हाय! मैं इस उपद्रव की जड़ हूँ। मेरे आने के पहले इस घर में शान्ति थी। पिता बालकों पर जान देता था, बालक पिता को प्यार करते थे। मेरे आते ही बाधाएँ आ खड़ी हुई। इसका अंत क्या होगा? भगवान ही जाने। भगवान मुझे मौत भी नहीं देते। बेचारा अकेले भूखा पड़ा है। उस वक्त भी मुँह जूठा करके उठ गया था; और उसका आहार ही क्या है—जितना वह खाता है, उतना साल-दो-साल के बच्चे खा जाते हैं।"

निर्मला का चरित्र इतना संवेदनशील है कि दूसरे के कुकर्म के प्रति भी सहानुभूति रखती है। डॉ. सिन्हा ने उससे अनुचित प्रस्ताव किया और पश्चाताप के कारण आत्महत्या भी कर ली। इस घटना के लिए निर्मला स्वयं को दोषी मानती है।

"यह सोचकर कि मेरी ही निष्ठुरता के कारण डॉक्टर साहब का यह हाल हुआ; निर्मला के हृदय के टुकड़े होने लगे। ऐसी वेदना होने लगी; हृदय में शूल उठ रहा हो।"

रुक्मिणी एवं निर्मला के इस संवाद में निर्मला की भावुकता स्पष्ट दिखायी देती है।

रुक्मिणी रोती हुई बोली—बहू, तुम्हारा कोई अपराध नहीं। ईश्वर से कहती हूँ, तुम्हारी ओर से मेरे मन में जरा भी मैल नहीं है। हाँ, मैंने सदैव तुम्हारे साथ कपट किया। इसका मुझे मरते दम तक दु:ख रहेगा।

निर्मला ने कातर नेत्रों से देखते हुए कहा—दीदी जी, कहने की बात है पर बिना कहे रहा नहीं जाता। स्वामी जी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखा, लेकिन मैंने कभी मन में उनकी उपेक्षा नहीं की। जो होना था, वह हो चुका था। अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ती? पूर्व

में न जाने कौन से पाप किये थे, जिसका यह प्रायश्चित करना पड़ा। इस जन्म में काँटे , तो कौन गति होती?

ाकार लेखक ने निर्मला के भावुक एवं संवेदनशील रूप का बहुत सुन्दर चित्रण किया है

ामयी माँ

ना विवाह कर मुंशी तोताराम के यहाँ आती है। तोताराम की पहली पत्नी से तीन लड़के हैं। ाम, जियाराम एवं सियाराम। निर्मला इन बच्चों की सौतेली माँ बनती है। यद्यपि मातृत्व का ाव उसे नहीं है लेकिन सौतेले पुत्रों के प्रति उसका व्यवहार सगी माँ के समान ही है। ाम द्वारा सियाराम की पिटाई वाली घटना से वह और भी कर्तव्यपरायण हो जाती है।

ला" बच्चे को रोता देखकर विकल हो उठी। उसने उसे छाती से लगा लिया। और गोद मे हुए अपने कमरे में लाकर उसे चुमकारने लगी।

ाड़ी देर तक निर्मला की गोदी में बैठा रोता रहा और रोते-रोते सो गया। निर्मला ने उसे ाई पर सुलाना चाहा तो बालक ने सुषुप्तावस्था में अपनी दोनों कोमल बाहें उसकी गर्दन में दीं और ऐसा चिपट गया मानों नीचे कोई गढ़ा हो । शंका और भय से उसका मुख विकृत हो निर्मला ने फिर बालक को गोद में उठा लिया। चारपाई पर न सुला सकी। इस समय क को गोद में लिए हुए वह तुष्टि हो रही थी, जो तब तक कभी न हुई थी। आज पहली बार ात्मवेदना हुई जिसके बिना आँख नहीं खुलती अपना कर्तव्य-मार्ग नहीं सूझता। वह मार्ग देखाई देने लगा।"

ा की ममता उस समय और भी स्पष्ट रूप से सामने आती है जब उसे पता चलता है कि की तबीयत बहुत खराब हो गई है। रुक्मिणी देवी उसे यह सूचना देती हैं कि मंसा को ताज़ा ने की आवश्यकता है। निर्मला की ममता इस सूचना से उमड़ पड़ती है। वह मंसा को ा खून देने अस्पताल पहुँच जाती है।

नेर्मला की पुत्री का जन्म होता है और जब पुत्री को लेकर वह पति के पास जाती है उस मुंशी जी बच्ची को गोद में नहीं लेते। उस समय निर्मला का पुत्री के प्रति प्रेम देखते ही ा है। वह बच्ची पर किसी की नज़र नहीं लगने देगी यहाँ तक कि उसके पिता की भी।

ने शतगुण स्नेह से लड़की को हृदय से लगा लिया; मानो उनसे कह रही है—अगर तुम इसके से दबे जाते हो, तो आज से मैं इस पर तुम्हारी छाया भी न पड़ने दूंगी। जिस रत्न को मैंने तपस्या के बाद पाया है, उसका निरादर करते तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता। वह उसी क्षण को चिपकाए हुए अपने कमरे में चली आयी और देर तक रोती रही।"

के प्रति ममता एवं चिंता लिए हुए निर्मला का देहांत हो जाता है।

ला—दीदी जी, अब मुझे किसी वैद्य की दवा फायदा न करेगी। आप मेरी चिंता न करें। को आपकी गोद में छोड़ जाती हूँ। अगर जीती-जागती रहे; तो किसी अच्छे कुल में विवाह ीजिएगा। मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी, केवल जन्म देने-भर की धिनी हूँ। चाहे क्वाँरी रखियेगा; चाहे विष देकर मार डालिएगा; पर कुपात्र के गले न गा; इतनी ही आपसे विनय है।"

ालोचक

ा में आत्मालोचना के गुण भी हैं। जब उसने देखा कि उसके कारण उसके पति को स्वांग ा पड़ता है तो उसने पति के प्रति कर्तव्य पर अपने को मिटा देने का फैसला कर लिया। वह ालोचना करती है।

उस वेदना का वेग शांत होने लगा। उसे ज्ञात हुआ कि मेरे जीवन में कोई आनंद नहीं। ा स्वप्न देखकर क्यों इस जीवन को नष्ट करूँ? संसार के सब के सब प्राणी सुख-सेज पर ही हीं सोते। मैं भी उन्हीं अभागों में हूँ। मुझे भी विधाता ने दुःख की गठरी ढोने के लिए चुना ह बोझ सिर से उतर नहीं सकता। उसे फैंकना भी चाहूँ तो नहीं फैंक सकती। उस कठिन से चाहे आँखों में अंधेरा आ जाये, चाहे गर्दन टूटने लगे, चाहे पैर उठाने दुस्तर हो जाये, ा गठरी ढोनी पड़ेगी।"

ात्मालोचना द्वारा यह सोचती है कि सभी मनुष्य को सुख नहीं मिलता, कुछ दुःख सहने के ही जन्म लेते हैं और वह भी उन्हीं लोगों में से है। यदि वह चाहे भी तो इस दुःख से मुक्ति ा सकती।

परिस्थिति के अनुसार कर्कशा तथा स्वार्थिनी नारी

निर्मला मृदुभाषिणी नारी थी। विवाह से पूर्व हम देखते हैं कि उसका व्यवहार किसी के प्रति कटु नहीं है। जब भाई एवं बहन उसे अकेला छोड़कर सैर के लिए चले जाते हैं तो उस समय वह उन्हें कुछ नहीं कहती, केवल चिंतन करने लगती है। विवाह के बाद परिस्थितियाँ उसके स्वभाव में परिवर्तन लाती हैं। कठिन परिस्थिति में भी वह अपने पर काबू रखती है। ननद रुक्मिणी देवी के कटुवचन को भी वह सहती है, जब रुक्मिणी देवी उसके पत्रों को चुरा कर पढ़ने लगती है तो निर्मला के धैर्य की सीमा टूट जाती है। वह पति से कहती है—

आप जरा जीजी को समझा दीजिए, क्यों मेरे पीछे पड़ी रहती हैं।

वह पति से केवल उन्हीं बातों को सीधे रूप से कहती है जो उसके साथ घटित होता था। वह कभी भी बात को बढ़-चढ़ा कर नहीं कहना चाहती।

परिस्थितिवश निर्मला ने मंसाराम को कठोर वचन कहे थे। पति की शंका को निर्मूल करने के लिए उसे ऐसा करना पड़ा।

"सहसा मर्दाने कमरे से मुंशीजी के खाँसने की आवाज आयी। देखा, मालूम हुआ कि मंसाराम के कमरे की ओर जा रहे हैं। निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। वह तुरंत कमरे से निकल गयी और भीतर जाने का मौका न पाकर कठोर स्वर से बोली—मैं लौंडी नहीं हूँ कि इतनी रात तक किसी के लिए रसोई के द्वार पर बैठी रहूँ। जिसे न खाना हो पहले ही कह दिया करे।"

मुंशीजी ने निर्मला को खड़े देखा। यह अनर्थ! यह यहाँ क्या करने आ गई? बोले—क्या कर रही हो?

"निर्मला ने कर्कश स्वर में कहा—क्या कर रही हूँ, अपने भाग्य को रो रही हूँ। बस सारी बुराइयों की जड़ मैं हूँ। कोई इधर रूठा है, कोई उधर मुँह फुलाए पड़ा है। किस-किस को मनाऊँ और कहाँ तक मनाऊँ।"

परिस्थिति एवं आर्थिक तंगी के कारण निर्मला के चरित्र में परिवर्तन होता है। उसके गहने चोरी चले जाते हैं। इसके बाद निर्मला के स्वभाव परिवर्तन की झलक इन संवादों में मिलती है—

"रुक्मिणी ने निर्मला से त्योरियाँ बदलकर कहा—क्या नंगे पाँव मदरसे जायगा? निर्मला ने बच्ची के बाल गूँथते हुए कहा—मैं क्या करूँ? मेरे पास रुपये नहीं हैं। रुक्मिणी—गहने बनवाने को रुपये जुड़ते हैं, लड़के के जूतों के लिए रुपयों में आग लग जाती है। दो तो चले ही गए, क्या तीसरे को भी रुला-रुलाकर मार डालने का इरादा है?

निर्मला ने साँस खींचकर कहा—जिसको जीना है, जिये, जिसको मरना है, मरेगा। मैं किसी को मारने-जिलाने नहीं जाती।"

निर्मला के स्वभाव-परिवर्तन को लेखक विश्लेषणात्मक पद्धति से स्पष्ट करता है—

"आजकल एक-न-एक बात पर निर्मला और रुक्मिणी में रोज ही झड़प हो जाती थी। जबसे गहने चोरी गए हैं, निर्मला का स्वभाव बिलकुल बदल गया है। वह एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ने लगी है। सियाराम रोते-रोते चाहे जान दे दे, मगर उसे मिठाई के लिए पैसे नहीं मिलते; और यह बर्ताव कुछ सियाराम के ही साथ नहीं है; निर्मला स्वयं अपनी जरूरतों को टालती रहती है।"

निर्मला के स्वभाव-परिवर्तन से मुंशीजी भी थोड़ा डरने लगे थे। इस संवाद को देखिये—

"मुंशीजी—तो बिना कुछ खाए ही चला गया?
निर्मला—घर में और रखा था, जो खिला देती?
मुंशीजी—ने डरते-डरते कहा—कुछ पैसे-वैसे न दे दिए?
निर्मला ने भौंहें सिकोड़कर कहा—घर में पैसे फलते हैं न!"

पति के घर छोड़ देने के बाद निर्मला के स्वभाव में और भी परिवर्तन होता है। लेखक ने उसके स्वभाव-परिवर्तन को स्वयं ही स्पष्ट किया है—

"दिन गुजरने लगे। एक महीना पूरा निकल गया, लेकिन मुंशीजी न लौटे कोई खत भी न भेजा। निर्मला को अब नित्य यही चिंता बनी रहती कि वह लौटकर न आये तो क्या होगा? उसे चिंता न होती थी कि उन पर क्या बीत रही होगी, कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते होंगे, स्वास्थ्य कैसा होगा? उसे केवल अपनी और उससे भी बढ़कर बच्ची की चिंता थी। गृहस्थी का निर्वाह कैसे होगा। ईश्वर कैसे बेड़ा पार लगाएँगे? बच्ची का क्या हाल होगा? उसने कतरव्योंत करके जो रुपये

जमा कर रखे थे, उसमें कुछ-न-कुछ रोज कमी होती थी, मानो कोई उसकी देह से रक्त निकाल रहा हो। झुंझलाकर मुंशीजी को कोसती। लड़की किसी चीज के लिए रोती; तो "अभागिनी; कलमुँही" कहकर झल्लाती। यही नहीं, रुक्मिणी का घर में रहना उसे कष्टकर जान पड़ता था, मानो वह उसके गर्दन पर सवार है।"

अन्यत्र लेखक लिखता है–

"निर्मला मधुरभाषिणी स्त्री थी, पर अब उसकी गणना कर्कशाओं में की जा सकती थी। दिन भर उसके मुख से जली-कटी बातें ही निकला करती थीं। उसके शब्दों की कोमलता न जाने क्या हो गई? भावों में माधुर्य का कहीं नाम नहीं। भूँगी बहुत दिनों से इस घर में नौकर थी। स्वभाव की सहनशील थी। पर यह आठों पहर की बकबक उससे भी न सही गई। एक दिन उसने भी घर की राह ली। यहाँ तक कि जिस बच्ची को वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, उसकी सूरत से घृणा हो गई। बात-बात पर भड़क पड़ती, कभी-कभी मार बैठती।"

इस प्रकार आपने देखा कि निर्मला के चरित्र को स्वाभाविक बनाने के लिए लेखक ने प्रथमतः उसका आदर्श रूप हमारे सामने रखा है। फिर उसका चरित्र यथार्थवादी हो जाता है। हमें कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि निर्मला कोई अस्वाभाविक कार्य करती है। समय एवं परिस्थितियों के कारण उसके चरित्र में स्वाभाविक परिवर्तन आता है।

बोध प्रश्न

5 रुक्मिणी देवी बराबर निर्मला के पत्र को पढ़ने की चेष्टा करती। इससे रुक्मिणी देवी की किस प्रवृत्ति का पता चलता है। दो पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

6 "उन्हें भाई की क्षुद्रता से आश्चर्य हुआ। बोली–तो क्या लौंडी बनाकर रखोगे? लौंडी बनाकर रखना हो तो इस घर की लौंडी न बनूँगी।"
उपर्युक्त कथन से रुक्मिणी देवी के किस स्वभाव का पता चलता है। दो पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

7 "उन्हें रुक्मिणी पर इस समय बहुत क्रोध आ रहा था। उन्हें यही जलन है कि मैं घर की मालकिन नहीं हूँ। यह नहीं समझती कि मुझे घर की मालकिन बनने का क्या अधिकार है, जिसे रुपयों का हिसाब तक करना नहीं आता, वह घर की स्वामिनी कैसे बन सकती है?"

तोताराम के उपर्युक्त चिंतन में रुक्मिणी देवी की किस चारित्रिक कमज़ोरी का उद्घाटन हुआ है। चरित्र चित्रण की इस पद्धति को किस नाम से जाना जाता है:

....

....

....

....

....

अब हम उपन्यास के एक और प्रमुख पात्र की विस्तृत चर्चा करेंगे।

मुंशी तोताराम

मुंशी तोताराम उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र और कथा-नायक हैं। लेखक ने उपयुक्त समय पर इस पात्र को उपस्थित किया है। निर्मला के पिता की हत्या हो जाती है। शादी की बात टूट जाती है। कल्याणी के कहने पर पंडित मोटेराम नए वर की खोज में लग जाते हैं। कई रिश्तों में कल्याणी को वकील साहब का रिश्ता उपयुक्त लगता है। कारण अन्य अच्छे रिश्तों के लिए दहेज होना आवश्यक था। तोताराम का परिचय मोटेराम इस प्रकार देते हैं।

"तोताराम–इसकी कुछ न पूछिए। चार हजार सुनाते हैं, अच्छा यह चौथी नकल देखिए। लड़का वकील है; उम्र कोई पैंतीस साल होगी। तीन-चार सौ की आमदनी है। पहली स्त्री मर चुकी है। उसके तीन लड़के भी हैं। अपना घर बनवाया है। कुछ जायदाद भी खरीदी है। यहाँ भी लेन-देन का झगड़ा नहीं है।"

मोटेराम अंदाज से वकील साहब की उम्र बताते हैं। वास्तव में वे चालीस वर्ष के हैं। इसे लेखक ने स्वयं स्पष्ट किया है। मुंशीजी अधेड़ उम्र में पंद्रह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करते हैं। पत्नी निर्मला की ओर से उदासीनता पाकर उनका शंकालु मन पत्नी तथा पुत्र के संबंध को लेकर चिंतित होता है। शंका के कारण उनकी मानसिक स्थिति बदलती रहती है। इसी शंका के कारण वे अपने पुत्र को खो देते हैं। पुत्र शोक से उनकी मानसिक स्थिति और बिगड़ती जाती है। कार्य में असफलता मिलती रहती है। आर्थिक तंगी से परिवार में संकट बढ़ता ही जाता है। दूसरे पुत्र जियाराम के कारनामों से उन्हें पुलिस को घूस भी देना पड़ता है। अंत में सबसे छोटे पुत्र को खोने पर वे घर त्याग देते हैं। निर्मला को वे सब कष्टों का कारण मानते हैं। कभी अपने किये पर पश्चाताप भी करते हैं। लेकिन उनका ढुलमुल चरित्र कभी स्थिर नहीं रहता। लेखक ने वकील साहब का–शारीरिक, मानसिक सभी दृष्टि से सुन्दर स्वाभाविक चित्रण किया है। यद्यपि उनके कारनामें अनुचित होते हैं। फिर भी लेखक ने उन्हें घृणा का पात्र नहीं बनाया है। पाठक को उनके साथ भी सहानुभूति होती है।

तोताराम के चरित्र को हम निम्नलिखित रूप में रख कर देखेंगे।

रोगी पुरुष
वासना प्रिय और आत्मप्रशंसक
ढोंगी
शंकालु
आत्मपीड़क
आत्मालोचक

रोगी पुरुष

निर्मला का विवाह मुंशी तोताराम से होता है। लेखक ने वकील साहब के शारीरिक रूप एवं उनकी व्याधियों को स्वयं ही इस प्रकार बताया है:

"वकील साहब का नाम था मुंशी तोताराम। साँवले रंग के मोटे-ताजे आदमी थे। उम्र तो अभी चालीस से अधिक न थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर के बाल पका दिये थे। व्यापार करने का अवकाश न मिलता था। यहाँ तक कि कभी कहीं घूमने न जाते, इसलिए तोंद निकल आयी थी। देह स्थूल होते हुए भी आए दिन कोई-न-कोई शिकायत रहती थी। मंदाग्नि और बवासीर से तो उनका चिरस्थायी संबंध था। अतएव बहुत फूँक-फूँक कर कदम रखते थे। उनके तीन लड़के थे। बड़ा मंसाराम सोलह वर्ष का था, मँझला जियाराम ग्यारह और सियाराम सात वर्ष का था। तीनों अंग्रेजी पढ़ते थे। घर में वकील साहब की विधवा बहन के सिवा और कोई औरत न थी।"

इस प्रकार तोताराम रोगी व्यक्ति थे, अतः वे परहेज़ से रहते थे। वे परिश्रमी वकील थे जिसके कारण उनके स्वास्थ्य पर असर हुआ था। उन्हें इस उम्र में विवाह की चिंता हुई। उन्होंने पन्द्रह वर्ष की कन्या से विवाह किया, यह उनकी वासनाप्रियता का प्रमाण था।

वासनाप्रिय और आत्मप्रशंसक

मुंशी तोताराम वैवाहिक सुख का उपभोग कर लिया था। तीन पुत्र भी थे, जिनमें बड़े की उम्र सोलह वर्ष की थी। पत्नी के न रहने पर उनके घर की देखभाल उनकी बड़ी और विधवा बहन करती थीं, किंतु मुंशीजी की वासना ने उनमें फिर से विवाह की इच्छा जगायी। मुंशीजी ने उम्र का ख्याल भी नहीं किया और पन्द्रह वर्ष की कन्या "निर्मला" को अपनी पत्नी बना लाए।

यद्यपि इस अनमेल विवाह से पत्नी निर्मला का जीवन परिवर्तित हो गया, पिता के हम उम्र का पति पाकर उसे वैवाहिक आनंद से वंचित होना पड़ा। किंतु मुंशीजी की वासना इस बात को न समझ पाई। वे पत्नी को आकर्षित करने के लिए तरह-तरह के स्वांग रचने लगे। आत्म-प्रशंसा द्वारा पत्नी को रिझाने का प्रयत्न किया। उपहारों से प्रसन्न रखना चाहा। उपन्यासकार के शब्दों में–

"तोताराम दम्पति-विज्ञान में कुशल थे। निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी, उसे वह उपहारों से पूरी करना चाहते थ। यद्यपि वह बहुत ही मितव्ययी पुरुष थे; तथापि निर्मला के लिए कोई-न-कोई तोहफा रोज लाया करते। मौके पर धन की परवाह न करते। लड़कों के लिए दूध आता पर निर्मला के लिए मेवे, मुरब्बे, मिठाइयाँ–किसी चीज की कमी न थी। अपनी जिन्दगी में कभी सैर-तमाशे देखने न गए थे। अब अपने बहुमूल्य समय का थोड़ा सा हिस्सा उसके साथ बैठकर ग्रामोफोन बजाने में व्यतीत किया करते थे।"

मुंशीजी के मित्र नयनसुख उन्हें जवांमर्दी दिखाकर पत्नी को आकर्षित करने की सलाह देता है। तोताराम वैसा ही करते हैं। आत्मप्रशंसा के लिए वे स्वांग रचते हैं। उदाहरण के लिए यह प्रसंग देखिए—

"एक दिन रात को नौ बजे तोताराम बाँके बने हुए सैर करके लौटे और निर्मला से बोले—आज तीन चोरों से सामना हो गया। मैं जरा शिवपुर की तरफ चला गया था। अंधेरा था, ज्यो ही रेल की सड़क के पास पहुँचा, तो तीन आदमी तलवार लिये हुए न जाने किधर से निकल पड़े। यकीन मानों, तीनों काले देव थे। मैं बिलकुल अकेला; हाथ में सिर्फ यह छड़ी थी। उधर तीनों तलवार बाँधे हुए, होश उड़ गए। समझ गया कि जिन्दगी का यही एक साथ था; मगर मैंने भी सोचा मरता ही हूँ तो वीरों की मौत क्यों न मरूँ। इतने में एक आदमी ने ललकारकर कहा—रख दे, पास जो कुछ हो और चुपके से चला जा। मैं छड़ी संभाल कर खड़ा हो गया और बोला—मेरे पास सिर्फ यही छड़ी है और इसका मूल्य एक आदमी का सिर है।"

"मेरे मुँह से इतना निकलना था कि तीनों तलवार खींचकर मुझ पर झपट पड़े और मैं उनकी वारों को छड़ी पर रोकने लगा। तीनों झल्ला झल्लाकर वार करते थे, खटाके की आवाज होती थी और मैं विजली की तरह झपट कर उनके वारों को काट देता था। कोई दस मिनट तक तीनों ने खूब तलवार का जौहर दिखाया: मुझ पर रेफ तक न आयी। मजबूरी यह थी कि मेरे हाथ में तलवार न थी। यदि कहीं तलवार होती तो एक को जीता न छोड़ता। खैर, कहाँ तक बयान करूँ, उस वक्त मेरे हाथ की सफाई देखने काबिल थी। मुझे खुद आश्चर्य हो रहा था कि यह चपलता मुझमें कहाँ से आ गई। जब तीनों ने देखा कि यहाँ दाल नहीं गलने की, तो तलवार म्यान में रख ली और पीठ ठोंककर बोले—जवान, तुम-सा और वीर आज तक नहीं देखा। हम तीनों सौ पर भारी हैं, गाँव-के-गाँव ढोल बजाकर लूटते हैं। पर आज तुमने हमें नीचा दिखा दिया। हम तुम्हारा लोहा मान गए। कहकर तीनों फिर नजरों से गायब हो गए।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पूरा प्रसंग मुंशीजी ने अपनी जवांमर्दी दिखाने के लिए गढ़ा है। यह आत्मप्रशंसा का सबसे सुंदर नमूना है।

ढोंगी

मुंशीजी पत्नी को रिझाने के लिए ढोंग भी किया करते थे, बालों को रंग कर, सुरमा लगाकर, निकले हुए तोंद को कसकर वे जवाँमर्द दिखने का प्रयत्न करते थे। मुंशी तोताराम धीरे-धीरे रंग बदलने लगे, जिनसे लोग खटक न जायें। पहले बालों से शुरू किया, फिर सुरमे की बारी आई, यहाँ तक कि एक दो महीने में उनका कलेवर ही बदल गया। गजलें याद करने का प्रस्ताव तो हास्यास्पद था, लेकिन वीरता की डींग मारने में कोई हानि न थी।

शंकालु

आप स्पष्ट देख रहे हैं कि किस प्रकार कथा आगे बढ़ती है और साथ ही साथ पात्र में परिवर्तन भी आता है। जब सभी प्रकार के प्रयत्नों से भी तोताराम निर्मला को रिझा नहीं पाते तो उन्हें खीज होती है। एक छोटी सी घटना के साथ उनके चरित्र में परिवर्तन आता है। एक दिन मंसाराम खेलकर आता है। निर्मला उसे कुछ मेवे खाने को देती है। जब वह खाकर जाने लगता है तो पूछती है कि कब आयेगा। जवान बेटे के प्रति निर्मला के इस स्नेह को वे सह नहीं पाते और पूछ बैठते हैं—

"तोताराम ने कुछ चिढ़कर कहा—यह तुम्हारे पास खाने-पीने की चीज क्यों माँगने आता है? दीदी से क्यों नहीं कहता?"

तोताराम में इन्हीं छोटी-छोटी बातों से शंका उत्पन्न होती है। आगे वे पुत्र और पत्नी के प्रति शंका बढ़ाते ही जाते हैं। पुत्र को घर से बाहर रखने का प्रयत्न करते हैं। निर्मला तथा मंसा दोनों उनकी शंका को पहचान जाते हैं। निर्मला पति के व्यवहार से दु:खी रहती है और सब तरह से प्रयत्न करती है कि पति उसे पतिव्रता समझे। मंसा को पिता के इस शंका से इतना दु:ख पहुँचता है कि अंतत: वह प्राण भी दे देता है।

मंसाराम के अस्वस्थ हो जाने पर तथा स्थिति नाजुक होने पर भी तोताराम की शंकालु प्रवृत्ति में फर्क नहीं आता।

"आखिर मुंशीजी ने मंसाराम से कहा—बेटा, तुम्हें घर चलने से क्यों इंकार हो रहा है? वहाँ तो सभी तरह का आराम होगा। मुंशीजी ने कहने को तो यह बात कह दी; लेकिन डर रहे थे कि कहीं मंसाराम चलने पर राजी न हो जाये। वह मंसाराम को अस्पताल में रखने का कोई बहाना खोज रहे थे। और उसकी सारी जिम्मेदारी मंसाराम के सिर पर डालना चाहते थे।"

तोताराम की शंका ने ही परिवार में अशांति ला दी। पुत्र की मृत्यु हो जाने पर उनके स्वभाव में स्वाभाविक परिवर्तन होता है।

आत्मपीड़क

आत्मपीड़क का तात्पर्य है अपने किये हुए कार्य पर पश्चाताप कर स्वयं को पीड़ित करना। पुत्र शोक के कारण तोताराम की दिनचर्या ही बदल गई। यदि तोताराम ने सोच समझ कर काम लिया होता तो हो सकता है उनका घर बर्बाद होने से बच जाता। वे अपनी वासना की तृप्ति के लिए इतना भी ख्याल न कर पाए कि जिस कन्या के साथ वे विवाह रचा रहे हैं, वह उसके बड़े पुत्र के उम्र की है। उनकी करनी के कारण निर्मला का जीवन भी परिवर्तित हो जाता है। पत्नी का प्यार न पाने से उनके अंदर कुंठा जन्म लेती है; बाद में वह कुंठा शंका में बदल जाती है। अपनी शंका के कारण वे अपने गुणवान पुत्र को खो देते हैं। पुत्र का शोक इतना गहरा होता है कि उनके आगे के जीवन को और भी दुःखदायी बना देता है। वे आत्मपीड़ा से व्याकुल रहने लगते हैं। लेखक ने उनकी मनोव्यथा का सुंदर चित्रण किया है।

'' पुत्र शोक से मुंशीजी का जीवन भार स्वरूप हो गया। उस दिन से फिर उनके होठों पर हँसी न आयी। यह जीवन उन्हें व्यर्थ-सा जान पड़ता था। कचहरी जाते, मगर मुकदमों की पैरवी करने के लिए नहीं, केवल दिल बहलाने के लिए। घंटे-दो-घंटे में वहाँ से उकताकर चले आते। खाने बैठते तो कौर मुँह में न जाता। निर्मला अच्छी से अच्छी चीज पकाती पर मुंशीजी दो-चार कौर से अधिक न खा सकते। ऐसा जान पड़ता कि कौर मुँह से निकला जाता है। मंसाराम के कमरे की ओर जाते ही उनका हृदय टूक-टूक हो जाता था। जहाँ उनकी आशाओं का दीपक जलता रहता था, वहाँ अब अंधकार छाया हुआ था। उनके दो पुत्र अब भी थे, लेकिन दूध देती गाय मर गई, तो बछिया का क्या भरोसा? जब फलने-फूलने वाला वृक्ष गिर पड़ा तो नन्हें-नन्हें पौधों की क्या आशा? यों तो जवान-बूढ़े सभी मरते हैं; लेकिन दुःख इस बात का था कि उन्होंने स्वयं लड़के की जान ली। जिस दम यह बात याद आती, तो ऐसा मालूम होता कि उनकी छाती फट जायेगी—मानों हृदय बाहर निकल पड़ेगा।''

जब उनका सबसे छोटा पुत्र सियाराम घर छोड़ कर चला जाता है। उस समय तोताराम पर क्या बीतती है, उसका चित्रण देखिए।

''क्या मुंशीजी को नींद आ सकती थी? तीनों लड़कों में केवल एक बच रहा था वह भी हाथ से निकल गया, तो फिर जीवन में अंधकार के सिवाय और क्या है? कोई नाम लेनेवाला भी न रहेगा। हाँ, कैसे-कैसे रत्न हाथ से निकल गए। मुंशीजी की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी तो कोई आश्चर्य है? उस व्यापक पश्चाताप, उस सघन ग्लानि-तिमिर में आशा की एक हल्की-सी रेखा उन्हें संभाले हुए थी। किस क्षण वह लुप्त हो जायेगी कौन कह सकता है, उन पर क्या बीतेगी? उनकी उस वेदना की कल्पना कौन कर सकता?

चूँकि मुंशी तोताराम अपने किये हुए कार्य पर विचार करते। फिर सोचते हैं कि यदि अंतिम पुत्र भी नहीं लौटा तो उनकी भविष्य का क्या होगा? कौन उन्हें सहारा देगा, इन्हीं सब बातों के कारण उन्हें आत्मपीड़ा होती है।

आत्मालोचक

मुंशीजी में आत्मालोचना करने के भी गुण हैं अर्थात् वे अपने किये हुए कार्यों पर विचार करते हैं कि क्या उन्होंने जो किया वह अनुचित था, अगर अनुचित था तो किस प्रकार। उनके आत्मालोचक चरित्र को देखिए,

''उन्होंने सोचा, मुझे यह दुर्भावना उत्पन्न ही क्यों हुई? मैंने क्यों बिना किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के ऐसी भीषण कल्पना कर डाली? अच्छा, मुझे उस दशा में क्या करना चाहिए था? जो कुछ उन्होंने किया, उसके सिवा वह और क्या करते इसका वह निश्चय न कर सके। वास्तव में विवाह के बंधन में पड़ना ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना था। हाँ, यही सारे उपद्रव की जड़ हैं।''

फिर वे अपने किए कर्म को तर्क से मन ही मन उचित ठहराने का प्रयत्न करते हैं।

''मगर यह मैंने कोई अनोखी बात नहीं की। सभी स्त्री-पुरुष विवाह करते हैं उनका जीवन आनंद से कटता है। आनंद की इच्छा से ही तो हम विवाह करते हैं। मुहल्ले में सैकड़ों आदमियों ने दूसरी, तीसरी, चौथी यहाँ तक कि सातवीं शादियाँ की हैं और मुझसे भी अधिक अवस्था में। जब तक जिए, आराम ही से जिए। यह भी नहीं हुआ कि सभी स्त्री से पहले मर गए हों। दुहाज-तिहाज होने पर भी कितने ही रंडए हो गए। अगर मेरी-जैसी दशा सबकी होती, तो विवाह का नाम ही

कौन लता? मेरे पिता जी ने पचपनवें वर्ष में विवाह किया था और मेरे जन्म के समय उनकी अवस्था साठ से कम न थी। हाँ इतनी बात जरूर है कि तब और अब में कुछ अंतर हो गया है। पहले स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी न होती थीं। पति चाहे कैसा ही हो, उसे पूज्य समझती थीं; या यह बात हो कि पुरुष सब कुछ रखकर भी बेहयाई से काम लेता हो, अवश्य यही बात है। जब युवक वृद्धा के साथ प्रसन्न नहीं रह सकता; तो युवती क्यों किसी वृद्ध के साथ प्रसन्न रहने लगी।"

इस प्रकार एक ओर तो वे अपने मन को तर्क द्वारा मनाते हैं कि जो उन्होंने किया उचित किया क्योंकि ऐसा और भी लोगों ने किया है। दूसरी ओर फिर वे आत्मालोचना करके अपने कार्य को अनुचित ठहराते हैं। किंतु उनका आत्मालोचक मन यह मानने को तैयार नहीं कि वे बूढ़े हो गए हैं। देखिए—"लेकिन मैं तो कुछ ऐसा बुड्ढा न था। मुझे देखकर कोई चालीस से अधिक नहीं बता सकता। कुछ भी हो; जवानी ढल जाने पर जवान औरत से विवाह करके कुछ-न-कुछ बेहयाई जरूर करनी पड़ती है; इसमें संदेह नहीं।"

वे यह भी सोचते हैं कि अनमेल विवाह के कारण पति-पत्नी का मन नहीं मिल पाता।

"स्त्री स्वभाव से लज्जाशील होती है। जोड़ के पति पाकर वह परम्परा से हँसी दिल्लगी कर ले; उसका मन शुद्ध रहता है। बेजोड़ विवाह हो जाने से वह चाहे किसी की ओर आँख उठाकर न देखे, पर उसका चित्त दुःखी रहता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक ने मुंशी तोताराम का बड़ा स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्रण किया है। तोताराम के कार्य, उनका चिंतन, सभी स्वाभाविक है। किस प्रकार की परिस्थिति में वे क्या करते हैं तथा क्या सोचते हैं, सब स्वाभाविक बन पड़ा है। उनकी चारित्रिक दुर्बलताओं को लेखक ने कभी विवरण से तो कभी मनोविश्लेषण से और कभी संवाद के माध्यम से उभारा है।

15.5.2 गौण पात्र

अब तक हमने उपन्यास के मुख्य पात्रों का विश्लेषण किया है। अब हम गौण पात्रों का विश्लेषण करेंगे। जैसा कि हमने बताया है, गौण पात्रों की रचना लेखक अपने मुख्य पात्र की चरित्र और कथा के विकास के लिए करता है। समयानुकूल ये पात्र उपस्थित किए जाते हैं। कथा में ऐसे पात्र या तो एक बार आकर लुप्त हो जाते हैं या लगातार कहीं-कहीं उपस्थित होते रहते हैं। गौण पात्र ऐसे भी होते हैं जो कथा में आरंभ से अंत तक रहे, लेकिन उनके कार्य-व्यापार इतने सीमित रहते हैं कि उन्हें गौण पात्र की श्रेणी में ही रखा जायेगा। उदाहरणस्वरूप आप निर्मला उपन्यास की कथा में भुंगी पात्र को लें, यह पात्र वकील साहब के घर की नौकरानी है; लेखक उसे कथा में आदि से अंत के करीब तक रखता है। लेकिन उसका कार्य-व्यापार सीमित है। कभी वह कोई सूचना देने के लिए उपस्थित होती है कभी अन्य कार्य के लिए।

किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि गौण पात्र महत्वपूर्ण नहीं होते। भले ही ये कथा में कुछ देर के लिए आएँ, इनके द्वारा कथा को गति मिलती है। निर्मला उपन्यास में "मतई" नामक गौण पात्र को लीजिए। लेखक ने इस पात्र के द्वारा कथा में एक नया मोड़ उपस्थित किया है। "मतई" को उदयभानुलाल ने सजा दिलवाई थी वह सजा काटकर जेल से छूटता है। संयोग से उसी दिन उदयभानुलाल का अपनी पत्नी से वाद-विवाद होता है। वे रात्रि में घर छोड़ कर निकल पड़ते हैं। मतई उनसे बदला लेता है और उनकी हत्या कर देता है। इस प्रकार कथा में नया मोड़ उपस्थित होता है। मतई का चरित्र यहीं समाप्त हो जाता है। कथा में आगे फिर कहीं उसका जिक्र नहीं होता। इसी प्रकार हम पंडित मोटेराम को लें। इस पात्र को लेखक ने निर्मला के विवाह तक रखा है। वे निर्मला के विवाह के लिए प्रयत्नशील रहते हैं और उनके प्रयत्नों से ही निर्मला का विवाह होता है। निर्मला की बहन कृष्णा, भाई, माता कल्याणी आदि सभी पात्र समय-समय पर आते हैं। यद्यपि इन पात्रों को कथा में कम स्थान दिया गया है किंतु इनके द्वारा मुख्य पात्र के चरित्र को उभारा गया है। निर्मला की बहन कृष्णा की रचना एक ओर निर्मला के चरित्र को उभारती है वहीं डॉ. सिन्हा के पूर्व कार्यों के पश्चाताप के लिए सहायक होता है। पाठक जब कृष्णा एवं निर्मला को एक जगह पाता है तो दोनों के भाग्य की तुलना करता है और पाता है कि "निर्मला" की अपेक्षा कृष्णा भाग्यशालिनी है। डॉ. सिन्हा अपने भाई के साथ कृष्णा का विवाह करके अपने पूर्व कार्य के प्रति पश्चाताप करते हैं।

कथा कृष्णा एवं डॉक्टर सिन्हा के भाई के विवाह की बात से आगे बढ़ती है। लेखक यह भी दिखाना चाहता है कि दहेज की समस्या न रहे तो किसी लड़की का जीवन किस प्रकार सुधर जाता है। कृष्णा का परिचय हम कथा के आरंभ में ही पाते हैं लेकिन कथा को आगे बढ़ाने के लिए उसका प्रसंग फिर जोड़ा जाता है। सुधा और डॉक्टर सिन्हा को जब इस बात का पता चलता है कि निर्मला वही लड़की है जिसके साथ पहले डॉ. सिन्हा का विवाह तय हुआ था। और इस प्रकार कृष्णा के विवाह की बात होती है। इस प्रकार गौण पात्रों के द्वारा कथा आगे बढ़ती है।

अभ्यास

5 नीचे लिखे बिंदुओं के आधार पर रुक्मिणी देवी का चरित्र चित्रण कीजिए।

i) छोटे भाई के घर की विधवा मालकिन
ii) विचित्र स्वभाव की महिला
iii) ईर्ष्यालु महिला
iv) शंकालु प्रवृत्ति
v) क्रोधी स्वभाव
vi) ममतायुक्त महिला

अभ्यास

6 मंसाराम का चरित्र चित्रण कीजिए।

वह निर्भीक है, निष्कपट है; परिश्रमी तथा स्वाभिमानी युवक है।

इसी तरह उसके अन्य प्रमुख गुणों को लेते हुए लगभग 500 शब्दों में उसका चरित्र चित्रण करें।

7 सुधा उपन्यास की प्रमुख पात्रों में से हैं।

वह सहृदय, सच्ची सहेली, पतिव्रता, स्पष्टवादिनी वाकपटु तथा विनोदप्रिय महिला है उसके इन गुणों को लेते हुए लगभग 500 शब्दों में उसका चरित्र चित्रण करें। अपने उत्तर के जाँच के लिए उसे परामर्शदाता के पास भेजें।

15.6 सारांश

आशा है आपने इस इकाई को ध्यान पूर्वक पढ़ा होगा। उपन्यास के कथानक का आधार पात्र होते हैं। पात्रों के द्वारा लेखक घटनाओं को नए-नए मोड़ देता चलता है। इस पाठ में आपने उपन्यास के पात्रों के चरित्र चित्रण की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली है। अब आप जान गये होंगे कि :

- उपन्यासकार कभी स्वयं विश्लेषण द्वारा, कभी पात्रों के संवाद द्वारा, कभी पात्रों के मन में उठनेवाले भावों द्वारा और कभी पूर्व घटना की जानकारी द्वारा पात्रों का चरित्र चित्रण करता है, इसके आधार पर आप चरित्र चित्रण की उपर्युक्त सभी विधियों के बारे में बता सकते हैं।
- पात्रों के चरित्र को प्रभावशाली एवं जीवंत बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वे कथा के अनुकूल हों, स्वाभाविक लगें, उनमें प्राण हों तथा मौलिकता एवं संवेदनशीलता हो। आप चरित्र चित्रण से संबंधित इन गुणों के आधार पर किसी औपन्यासिक पात्र का चरित्र-विश्लेषण कर सकते हैं।
- निर्मला उपन्यास में लेखक ने चरित्र चित्रण की किन-किन विधियों का उपयोग किया है उसे स्पष्ट कर सकते हैं।

15.7 शब्दावली

भावनाएँ: अनुभव और स्मृति से मन में उत्पन्न होने वाला कोई विकार। ध्यान, ख्याल, विचार

मितव्ययी: थोड़ा या कम खर्च करने वाला।

दृष्टिकोण: वह अंग या कोण जिससे कोई चीज़ देखी या कोई बात सोची समझी जाय।

तथ्यपूर्ण: सच्चाई से पूर्ण, यथार्थता

तादात्म्य: एक वस्तु का दूसरी वस्तु में मिलकर उसके साथ एक हो जाना

सहृदय: दूसरों के दु:ख-सुख आदि समझने वाला

संवेदना: मन में होने वाला बोध या अनुभव। अनुभूति। किसी को कष्ट में देखकर मन में होने वाला दु:ख।

निश्छल: जो छल-कपट न जानता हो। सरल प्रकृति का। सीधा।

भावुक: भावना करने या सोचने वाला। जिसके मन में कोमल भावों की प्रबलता हो अथवा जिस पर कोमल भावों का जल्दी और अधिक प्रभाव पड़ता हो।

.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

ा प्रश्न

उपन्यासकार जब अपने पात्रों के बारे में स्वयं कुछ कहता है, अर्थात् उनके चारित्रिक गुण, अवगुण को खुद स्पष्ट करता है तब इस पद्धति को विश्लेषणात्मक पद्धति कहते हैं।

i) संवादात्मक पद्धति ii) मनोवैज्ञानिक पद्धति iii) पूर्ववृत्तात्मक

1) स्वाभाविकता
2) मौलिकता
3) संवेदना

जब किसी उपन्यासकार के पात्र मौलिक हों अर्थात् वे किसी अन्य रचना के आधार पर नहीं तैयार किए गए हों उस लेखक से पूर्व अन्य रचनाकारों ने वैसे पात्रों की रचना न की हो, तब वैसे पात्र को मौलिक कहते हैं।

यास

"मुंशीजी ने दिल में कहा—खूब समझता हूँ। तुम कल की छोकरी होकर मुझे चराने चली? दीदी का सहारा लेकर अपना मतलब पूरा करना चाहती है। बोले—मैं नहीं समझता; बोर्डिंग का नाम सुनकर क्यों लौंडे की नानी मरती है। और लड़के खुश होते हैं कि अपने दोस्तों में रहेंगे, यह उल्टे रो रहा है।"

उपर्युक्त कथन में मंसाराम का बनावटी रोष प्रकट हुआ है। वह जानता है कि पिता की गलतफहमी के कारण निर्मला को कष्ट होता है, इसलिए वह नहीं चाहता कि पिता की शंका बलवती हो और सौतेली माँ की कठिन परिस्थिति को और कठिन नहीं बनाना चाहता।

उपर्युक्त चिंतन में तोताराम के अंदर कई भाव एक साथ उभरते हैं। वे दुःखी हैं कि उनके पुत्र का स्वास्थ्य गिर गया है। चिंता है कि इसे कहाँ रखा जाये, और शंकित हैं कि घर पर निर्मला उसके पास बैठी रहेगी। दुख, चिंता एवं शंका के भाव उनके अंदर उठते हैं। और वे कुछ भी निर्णय लेने में असमर्थ हैं। इस प्रकार समग्र रूप से उनका "ढुलमुल" चरित्र उभरता है। वे क्या करें, क्या न करने की स्थिति में लटके हुए हैं।

"अगर मेरी-जैसी दशा सबकी होती, तो विवाह का नाम ही कौन लेता? मेरे पिता जी ने पचपनवें वर्ष में विवाह किया था और मेरे जन्म के समय उनकी अवस्था साठ से कम न थी। हाँ, इतना जरूर है कि तब और अब में कुछ अंतर हो गया है।"

ध प्रश्न

रुक्मिणी देवी निर्मला के पत्र शंका के कारण पढ़ा करती थी। उनकी शकालु प्रवृत्ति को यह भय रहता था कि पत्र में उनकी शिकायत लिखी होगी।

उपर्युक्त कथन द्वारा रुक्मिणी देवी के क्रोधी एवं वाचाल स्वभाव का पता चलता है। वे स्पष्टवक्ता भी हैं।

तोताराम के इस चिंतन में रुक्मिणी देवी के इस चरित्र का पता चलता है कि अनाधिकार घर की मालकिन बनना चाहती थीं, जबकि उन्हें पैसे का सही-सही हिसाब भी रखना नहीं आता था। चरित्र चित्रण की इस पद्धति को मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के अंतर्गत रखा जा सकता है। इसमें एक पात्र दूसरे पात्र के बारे में सोचता है जिससे उसका चरित्र स्पष्ट होता है।

इकाई 16 "निर्मला" : परिवेश, संरचना शिल्प

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 परिवेश
16.3 संरचना शिल्प
16.3.1 शैली
16.3.2 भाषा
16.3.3 संवाद
16.4 सारांश
16.5 शब्दावली
16.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई से पहले की इकाई में आपने उपन्यास के पात्रों के चरित्र के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली है। इस इकाई में हम आपको उपन्यास के परिवेश और संरचना शिल्प की जानकारी देंगे। संरचना शिल्प के अंतर्गत उपन्यास की शैली, भाषा एवं संवाद शामिल हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उपन्यास के परिवेश से संबंधित विशेषताओं को बता सकेंगे,
- उपन्यास की शैली का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकेंगे,
- उपन्यास की भाषा और संवाद के विषय में बता सकेंगे, और
- निर्मला उपन्यास के परिवेश, शैली, भाषा एवं संवाद का विश्लेषण कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

लेखक जिस देश, स्थान एवं समाज में रहता है उसके देश की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है। अपने समाज की परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही उसकी रचना ऊँचे दर्जे की बनती है। इस पाठ में देखेंगे कि किस प्रकार लेखक पर परिवेश का असर पड़ता है। अपनी बात को कहने के लिए प्रत्येक लेखक किसी न किसी प्रकार के भिन्न तरीके अपनाता है। इस संदर्भ में हम उपन्यास की शैलियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रेमचंद के "निर्मला" उपन्यास में किस प्रकार की शैली अपनाई है, और उसकी क्या विशेषताएँ हैं इसे भी हम इस पाठ के माध्यम से जान सकेंगे। उपन्यासकार अपनी रचना के लिए कोई न कोई भाषा अपनाता है लेकिन उसे रचना की कथावस्तु एवं प्रतिपाद्य को ध्यान में रखते हुए भाषा का उपयोग करना होता है। उपन्यास की भाषा किस प्रकार स्वाभाविक बनती है तथा इसके लिए उसमें क्या-क्या गुण होने चाहिए, उसके बारे में विश्लेषण किया जाएगा। उपन्यास के पात्रों के संवाद कितने प्रकार के होते हैं, उन्हें स्वाभाविक बनाने के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखना पड़ता है उसे भी हम विस्तृत रूप से जानेंगे। कुछ उदाहरण से हम यह भी जानने का प्रयत्न करेंगे कि निर्मला में पात्रों के संवाद कितने सटीक बन पाए हैं। आइए, पहले परिवेश के बारे में जानें।

16.2 परिवेश

किसी भी उपन्यास को भली-भाँति समझने के लिए उसका परिवेशगत अध्ययन सबसे आवश्यक है, क्योंकि यह जानना भी जरूरी है कि उपन्यास जिस समय लिखा जा रहा था, उस समय देश और समाज की क्या दशा थी। प्रत्येक लेखक चाहे वह किसी विधा में लिख रहा हो, अपने समय के परिवेश से सर्वाधिक प्रभावित होता है। इस प्रकार परिवेश की छाप उसकी कृति पर स्पष्ट दिखाई देती है। आइए सबसे पहले परिवेश शब्द को अच्छी प्रकार समझ लें।

रवेश शब्द का कोशगत पहला और मूल अर्थ होता है "घेर"। परिवेश हमारे चारों ओर के परिदृश्य का नाम है जिसके कारण हमारा जीवन है और जिसके कारण हमारी वृद्धि और कास होता है। परिवेश शब्द के पर्याय हैं—प्राकृतिक पर्यावरण, परिसर, पास-पड़ोस आदि। गर इसे हम व्यापक रूप से जाने तो इसका अर्थ होगा, वह पूरा पारिवारिक सामाजिक, धार्मिक, तिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का सामूहिक रूप जिससे कि हम जन्म से मरण क घिरे रहते हैं, प्रभावित होते हैं। गहराई से विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि दो ऐसे विशेष रण हैं जिनसे परिवेश निरंतर परिवर्तनशील और गतिशील रहता है। ये दो तत्व हैं देश और ाल। देश का अभिप्राय है वह भूमि जिस पर प्रकृति के सभी चेतन पदार्थ जन्म लेते हैं और बड़े ते हैं। इस प्रकार देश में भूमि पर रहने वाला मानव एवं उससे संबंधित सभी बातें आ जाती हैं। -तत्व परिवर्तन होता रहता है। किंतु प्रकट रूप से दिखाई नहीं पड़ता। प्रकृति के मौसम या दलते रंग, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और मानव जीवन के क्रिया-कलापों को प्रभावित करते रहते और उन्हीं के अनुसार अपना रंग भी बदलते रहते हैं।

ाहित्य मानव जीवन का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता है। उसमें भी अन्य विधाओं की अपेक्षा पन्यास मानव जीवन का यथार्थ प्रतिबिंब प्रस्तुत करने में अधिक समर्थ है। उपन्यासकार अपने पन्यास में देश एवं काल का जीता-जागता रूप प्रस्तुत करता है। आइए "निर्मला" उपन्यास के रिवेश को देखते हुए इसे समझें।

निर्मला" की कहानी भारतवर्ष की उन अधिकांश गरीब और बेबस युवतियों की कहानी है जो हेज के अभाव में किसी बूढ़े, अपाहिज, रोगी, और शराबी आदि कुपात्रों के गले बिना उसकी च्छा जाने मढ़ दी जाती हैं। प्रेमचंद ने निर्मला की कहानी जीवन के सच्चे अनुभवों की बुनियाद र खड़ी की है। इलाहाबाद के एक परिवार से उन्होंने यह कथानक लिया। प्रेमचंद का उस रिवार में बराबर आना-जाना था। प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने प्रेमचंद की जीवनी "कलम के पाही" में लिखा है—

और इसमें शक नहीं कि औरत की ज़िन्दगी का दर्द जिस तरह इस किताब में निचुड़कर आ गया वैसा मुंशी जी की और किसी किताब में मुमकिन न हुआ, न आगे न पीछे।"

पन्यास की कथा आप भली-भाँति पढ़ चुके हैं। इसके माध्यम से प्रेमचंद दो सामाजिक कुरीतियों ो प्रस्तुत करना चाहते थे। वह है—दहेज प्रथा और अनमेल विवाह। ये दोनों समस्याएँ परस्पर क दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ये दोनों प्रेमचंद के समय के समाज की कुरीतियाँ थीं। कोई भी पन्यासकार या अन्य विधा के लेखक अपने समाज की भावनाओं से अलग रहकर लेखन कार्य हीं कर सकता। समाज की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियाँ जैसा ातावरण बनाती हैं, उसका सम्मिलित प्रभाव ही परिवेश का निर्माण करता है। प्रत्येक व्यक्ति ा चिंतन, दैनिक घटनाओं की प्रतिक्रियाओं से ही प्रभावित होकर व्यावहारिक बनता है इसे वल घर या राजनीति तक ही सीमित नहीं रख सकते। इसलिए साहित्यकार भी चाहे राजनीतिक टनाएँ हों, चाहे आर्थिक विषमता हो, या धार्मिक संस्कार हो अथवा सामाजिक विघटन हो, इनमें किसी एक को ग्रहण नहीं करता, बल्कि उसे समग्र रूप में ग्रहण करता है और इसी कारण पन्यास जीवंत बनता है।

ोसवीं शताब्दी के भारत का परिवेश, अनेक ऐसे तत्व लेकर निर्मित हुआ था जिसने साहित्य के भी धाराओं को प्रभावित किया। हिंदी उपन्यास साहित्य में भी इसी परिवेश के प्रभाव का यापक रूप मिलता है और इसी युगीन परिवेश में हिंदी उपन्यास के नए युग की शुरुआत होती । प्रेमचंद इस नए युग के प्रतिनिधि उपन्यासकार थे।

ामाजिक परिवेश : "निर्मला" उपन्यास के परिवेश से पता चलता है कि उस समय हमारा समाज ंधविश्वासों तथा विकृत परंपरागत रूढ़ियों के दबाव से ग्रस्त था। दहेज की प्रथा इनमें सबसे यानक और अनिष्टकारी थी। प्रेमचंद ने दहेज प्रथा से उत्पन्न नारी जीवन के अभिशापों का चत्रण "निर्मला" में किया है। दहेज प्रथा हिंदू समाज के लिए सदा ही अभिशाप रही है। निर्मला रे तत्कालीन नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है। प्रेमचंद ने समकालीन समाज में दहेज और नमेल विवाह आदि कुप्रथाएँ थीं जिनके कारण योग्य कन्याओं का विवाह अयोग्य पुरुषों से कर देया जाता था। आपने देखा कि दहेज के कारण ही निर्मला का विवाह दुहाजू से होता है और उसका सारा जीवन दुःखदायी बन जाता है। उस समय स्त्रियों की आर्थिक दासता से समाज कड़ा हुआ था आर्थिक अभाव के कारण ही परिवारों की सुख शांति नष्ट हो जाती थी।

ात्कालीन समाज में पाखण्डी साधुओं का भी बोलबाला था। ऐसा इसलिए होता था कि जनसाधारण अन्धविश्वासों से ग्रस्त था उपन्यास की कथा में आपने देखा कि तोताराम के सबसे छोटे पुत्र को

साधु बहकाकर ले जाता है। ये साधु लुटेरे, पाखण्डी होते थे और छोटे-छोटे बच्चों को बहलाकर भगा ले जाते और उनसे गलत काम करवाते थे तथा खुद मौज करते थे। उस समय लोगों में अंधविश्वास तथा पुराने संस्कार इस प्रकार विद्यमान थे कि कभी-कभी भयानक परिणाम सामने आते थे। जैसे, सुधा के बच्चे की तबियत खराब होती है और उसे डाक्टर को दिखाने के लिए सुधा और निर्मला तैयार हो जाती हैं, लेकिन–

"उसकी बूढ़ी माता ने कहा–डाक्टर हकीम का यहाँ कुछ काम नहीं। साफ तो देख रही हूँ कि बच्चे को नजर लग गई। भला, डॉक्टर क्या करेगा।"

इस प्रकार महगूँ नामक व्यक्ति से उसकी नजर उतरवाने का प्रयत्न किया जाता है इसी में बच्चे की मृत्यु हो जाती है। तत्कालीन समाज की इस सड़ी गली परंपरा को दर्शाकर प्रेमचंद ने समाज का यथार्थ चित्रण किया है तथा इन कुरीतियों को समाप्त करने के लिए आवाज़ उठायी है।

राजनीतिक परिवेश : यद्यपि निर्मला उपन्यास के राजनीतिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं हुआ है, लेकिन वैसी बातें अवश्य मिलती हैं जिनसे कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। इस उपन्यास की रचना प्रेमचंद ने 1927 ई. में की थी। इसका प्रकाशन पहले पहल प्रयाग से प्रकाशित होने वाली सामाजिक जागरण की प्रसिद्ध पत्रिका चाँद में हुआ था। सन् 1923 में जब सरकारी नौकरी करते हुए लगभग बीस वर्ष बीत गए थे, तभी गोरखपुर में उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान के बाद सरकारी नौकरी छोड़ दी थी और अपना सारा समय राष्ट्रीय विचारों को फैलाने में लगा दिया था। तत्कालीन समाज सुधारकों एवं राजनेताओं के विचारों का प्रभाव भी प्रेमचंद पर पड़ा। उनके अन्य उपन्यासों जैसे कर्मभूमि, गबन आदि में तो स्पष्ट रूप से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण हुआ है। निर्मला में प्रेमचंद ने उन दिनों चल रहे स्वदेशी आंदोलन एवं खादी तथा चर्खे आदि के प्रसंग को ला दिया है। उपन्यास के पंद्रहवें परिच्छेद में कृष्णा और निर्मला की बातचीत होती है। जब निर्मला कृष्णा से पूछती है कि उसको वर पसंद है या नहीं? उसी वार्तालाप के दौरान निर्मला वर की तस्वीर को देखकर कहती है कि कपड़े सब खद्दर के मालूम होते हैं। कृष्णा–हाँ खद्दर के बड़े प्रेमी हैं। सुनती हूँ, पीठ पर खद्दर लाद कर देहातों में जाया करते हैं। व्याख्यान देने में बड़े चतुर हैं।

"निर्मला–तब तो तुझे भी खद्दर पहनना पड़ेगा। तुझे तो मोटे कपड़े से चिढ़ है।
कृष्णा–जब उन्हें मोटे कपड़े पसंद हैं तो मुझे क्यों चिढ़ होगी? मैंने तो चर्खा चलाना सीख लिया है।"
"निर्मला–सूत निकाल लेती है?
कृष्णा–हाँ बहन। थोड़ा निकाल लेती हूँ। जब वह खद्दर के इतने प्रेमी हैं, तो चर्खा भी जरूर चलाते होंगे। मैं न चला सकूँगी तो मुझे कितना लज्जित होना पड़ेगा।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समय देश में राजनीतिक उथल-पुथल मची हुई थी, प्रेमचंद के मानस पर भी उसका प्रभाव पड़ा रहा था। प्रेमचंद ने इसे अपनी रचनाओं में चित्रित किया है।

धार्मिक परिवेश : भारत धर्मप्रधान देश है। यहाँ की जनता में धार्मिक भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। उपन्यास में धार्मिक परिवेश का चित्रण सुन्दर ढंग से किया गया है। निर्मला की माँ कल्याणी धर्मपरायण महिला है उसे इस बात का आजीवन पश्चाताप रहता है कि उसके कारण ही उसके पति के प्राण गए। वह अपने को हत्यारिन समझती रही। उसे इस बात के लिए सदा दुःख होता रहा कि उसके व्यंग्य वाणों के कारण ही उदयभानु घर छोड़कर निकल पड़े थे। निर्मला भी एक धर्मपरायण स्त्री थी। आदर्श हिंदू स्त्री की तरह उसने अपने बूढ़े पति को ही परमेश्वर माना। प्रेमचंद ने एक अन्य महत्वपूर्ण पात्र सुधा के मुख से कहलवाया है।

"शिकायत क्यों करेगी? क्या वह उसका पति नहीं है? संसार में उसके लिए वही सब कुछ है। वह बुड्ढे हों या रोगी पर हैं तो उसके स्वामी ही। कुलवती स्त्रियाँ अपने पति की निन्दा नहीं करतीं, वह कुलटाओं का काम है।"

उस समय के समाज में धर्म को रूढ़ियों के रूप में मान लिया गया था।

भालचंद्र जैसे दुराचारी व्यक्ति भी पापकर्म से डरते हैं। जब पुरोहित जी ने उन पर धर्म के भय का अस्त्र छोड़ा और कहा, "आप लोगों में ब्राह्मणों के प्रति लेश मात्र भी श्रद्धा नहीं है। ...... जहाँ ब्राह्मण का आदर नहीं है, वहाँ कल्याण नहीं हो सकता। इस पर ब्राह्मण के शाप से बचने के लिए भालचंद्र ने पुरोहित जी को धर्म के भय से दक्षिणा दे ही दी।"

हिंदू धर्म के मानने वाले लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। उपन्यास में इसे देखा जा सकता है। जब सुधा अपने पुत्र के बारे में कहती है कि उस जन्म का कोई तपस्वी है। जब निर्मला की पुत्री

जन्म होता है तब सब विश्वास करते हैं कि मानो मंसा ने ही उसकी कोख से पुनः जन्म लिया

ा आदि में शकुन विचार जैसे धार्मिक मान्यताओं को भी लेखक ने प्रस्तुत किया है।

क्मिणी—आज कौन दिन है किसी पंडित से पूछ लिया है यात्रा है कि नहीं.... । नजर आदि ारने के प्रसंग भी धार्मिक अन्धविश्वास के अंग हैं।

धु महात्माओं पर लोगों का विश्वास था। सियाराम को स्वामी परमानद के द्वारा लुभाया जाता और वह योग विद्या से अपनी माँ के दर्शन के लिए साधु के साथ चल देता है। इस प्रकार कालीन धार्मिक परिवेश का यथार्थ चित्रण किया गया है।

र्थिक परिवेश : निर्मला की कथा में आर्थिक परिवेश का चित्रण स्पष्ट है। लेखक ने तत्कालीन ाज की आर्थिक परिस्थिति का हूबहू चित्रण किया है। आर्थिक कारण से निर्मला का विवाह टूट ता है। उदयभानुलाल तथा कल्याणी में विवाह के खर्चे को लेकर ही अनबन होती है। जबकि यभानु उधार लेकर भी विवाह में अधिक खर्च करना चाहते थे। भुवनमोहन का परिवार मध्य ं का था। वह चाहता था कि दहेज में अधिक से अधिक रुपये मिलें, चाहे पत्नी किसी भी तरह क्यों न हो? अतः तत्कालीन समाज में पैसे को ही प्रथम स्थान दिया जाता था। आर्थिक कमी कारण ही निर्मला के परिवार में नित्य कलह हुआ करते थे। यह मध्यवर्ग चाहे आर्थिक तंगी से त हो लेकिन दिखाने की प्रवृत्ति के कारण अपना रहन-सहन धनी वर्ग का रखते थे। जिसके रण से उन्हें कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती थीं। आर्थिक तंगी के कारण निर्मला अपना इलाज ठीक ह से नहीं करवा पाती और उसकी मृत्यु हो जाती है।

प्रकार समग्र रूप से निर्मला उपन्यास के परिवेश की बात करें तो यह स्पष्ट सामने आती है लेखक ने परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है।

ध प्रश्न

परिवेश का तात्पर्य दो-तीन पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

साहित्य की किस विधा में मानव जीवन से संबंधित परिवेश को विस्तृत रूप में चित्रित किया जा सकता है?

....

....

....

"कल्याणी ने अपने पत्र में लिखा—इस अभागिनी पर दया कीजिए और डूबती हुई नाव को पार लगाइए। स्वामी जी के मन में बड़ी-बड़ी कामनाएँ थीं, किंतु ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था—अब मेरी लाज आपके हाथ है। कन्या आपकी हो चुकी। मैं आप लोगों की सेवा सत्कार करने को अपना सौभाग्य समझती हूँ, लेकिन यदि इसमें कुछ कमी हो, कुछ त्रुटि हो पड़े तो मेरी दशा का विचार कीजिएगा।"

उपर्युक्त पंक्तियों में किस परिवेश का पता चलता है? नीचे दिए गए कोष्ठकों में सही (√) का चिह्न लगाइए।

i) धार्मिक ☐

ii) राजनैतिक ☐

iii) सामाजिक ☐

निर्मला तस्वीर को देखकर कहती है सब खद्दर के मालूम होते हैं। कृष्णा—हाँ खद्दर के बड़े प्रेमी हैं, सुनती हूँ, पीठ पर खद्दर लाद कर देहातों में जाया करते हैं, व्याख्यान देने में बड़े चतुर हैं।

उपर्युक्त पात्रों के कथनों में किस प्रकार के परिवेश का पता चलता है?

i) धार्मिक ☐

ii) राजनैतिक ☐

iii) सामाजिक ☐

अभ्यास

1 निर्मला में वर्णित धार्मिक परिवेश पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

2 **"बाबू उदयभानु लाल का मकान बाज़ार बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े और कमरे में दरज़ी की सुइयाँ चल रही हैं। सामने नीम के नीचे बढ़ई चारपाई बना रहा है। खपरैल में हलवाई के लिए भट्टी खोदी गई है। मेहमानों के लिए अलग-अलग मकान ठीक किया गया है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि हर मेहमान के लिए एक-एक चारपाई, कुर्सी और एक-एक मेज हो। हर तीन मेहमानों के लिए एक-एक कहार रखने की तजवीज़ हो रही है। अभी बारात में आने में एक महीने की देर है, लेकिन तैयारियाँ अभी से हो रही हैं। बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाए कि किसी को जबान हिलाने का मौका न मिले।"**

क) परिवेश का उपर्युक्त चित्रण किस प्रकार का है और क्यों? तीन पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

ख) रेखांकित पंक्ति से क्या ध्वनित हो रहा है?

i) बारातियों का स्वागत धार्मिक कार्य था।

ii) सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए ऐसा किया जाता था।

iii) बाराती उद्दण्ड होते थे।

3 "कल्याणी–दस दिन में पाँच हजार से दस हजार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाए।

उदयभानु–क्या करूँ, जग हँसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े दर्शन छोटे। फिर जब मुझसे दहेज में एक पाई नहीं लेते, तो मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि मेहमानों के आदर सत्कार में कोई बात न उठा रखूँ।"

उपर्युक्त संवाद से समाज की किस प्रथा का पता चलता है? चार-पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

4 **"मोटे–आप से ऐसी ही आशा थी। आप जैसे सज्जनों के दर्शन दुर्लभ हैं, नहीं तो आज कौन बिना दहेज के विवाह करता है।**

भाल–महाराज दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती। इनसे तो सम्बन्ध हो जाना ही लाख रुपये के बराबर है। मैं इसको अपना अहोभाग्य समझता हूँ। हाँ! कितनी उदार आत्मा थी। रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं, तिनके के बराबर परवाह नहीं की। बुरा रिवाज है, बेहद बुरा बस चले तो दहेज देने-लेने वालों को गोली मार दूँ, चाहे फाँसी

क्यों न हो जाए। पूछो, आप लड़के का विवाह करते हैं या उसे बेचते हैं। अगर आपको लड़के की शादी में दिल खोलकर खर्च करने का अरमान है तो शौक से खर्च कीजिए, लेकिन जो कुछ कीजिए अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए। नीचता है, घोर नीचता है। मेरा वश चले तो इन पापियों को गोली मार दूँ।"

क) उपर्युक्त संवादों में मोटेराम के कथन से किस बात की ओर संकेत किया गया है?

....

....

ख) रेखांकित वाक्य में वक्ता के कथन का तात्पर्य क्या है?

i) उदयभानु लाल बहुत धनी थे

ii) दहेज में अधिक धन देते

iii) रुपये उनके लिए कोई चीज न थी

iv) रुपये की चिन्ता उन्हें नहीं थी

ग) भालचंद्र के कथन से पता चलता है कि समाज में ऐसे लोग भी होते थे जो—

i) दहेज प्रथा को बुरा मानते थे

ii) दहेज प्रथा को रोकने के लिए सब कुछ कर सकते थे

iii) दहेज प्रथा के विरोध में केवल बोलते थे।

"ठेकेदार शराब के नाम पर पानी बेचे, चौबीसों घंटे दुकान खुली रखें, आपको खुश रखना काफी था। सारा कानून आपकी खुशी है।" रेखांकित वाक्य से समाज की किस स्थिति का पता चलता है।

i) अफसरों के हाथ में सभी कानून थे

ii) घूस देकर गैर कानूनी कार्य किया जाता था।

iii) सभी कानून अफसर बनाते थे

"भुवन इसमें शर्म की कौन सी बात है? रुपये किसे काटते हैं? लाख रुपये तो लाख जन्म में भी न जमा कर पाऊँगा। इस साल पास भी हो गया, तो कम से कम पाँच साल तक रुपये की सूरत नजर न आयेगी। फिर सौ-दो सौ रुपये महीने कमाने लगूँगा। पाँच छह सौ तक पहुँचते-पहुँचते उम्र के तीन भाग बीत जायेंगे। रुपये जमा करने की नौबत न आएगी। दुनिया का कुछ मजा न उठा सकूँगा। किसी धनी लड़की से शादी हो जाती तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नकद हो फिर कोई ऐसी ज्यायदाद वाली वेवा मिले, जिसके एक ही लड़की हो।"

युक्त कथन के द्वारा लेखक ने समाज के किस वर्ग के बारे में कहा है? यह वर्ग पैसे के लिए करता है? छह-सात पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

निर्मला उपन्यास में तत्कालीन भारत की राजनीतिक परिवेश का चित्रण किस प्रसंग में हुआ है? छह-सात पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

16.3 संरचना शिल्प

अब हम निर्मला के संरचना शिल्प पर विचार करेंगे। पहले की इकाइयों में आप पढ़ चुके हैं कि शैली, भाषा एवं संवाद के लिए हम संरचना शिल्प का प्रयोग कर रहे हैं। उपन्यासकार किस प्रकार से शैली, भाषा एवं संवाद का प्रयोग करके रचना को सफल बनाता है, इसे हम निर्मला उपन्यास के उदाहरणों से देखेंगे।

शैली

प्रेमचंद से पहले अधिकतर घटना-प्रधान उपन्यास लिखे जाते थे। उनमें अद्भुत, आश्चर्यचकित घटनाओं के द्वारा मनोरंजन किया जाता था। इसके प्रभाव से सामाजिक उपन्यासों में भी अप्रत्याशित घटनाएँ, संयोग, भाग्य, विधान आदि का आयोजन होता था। साथ ही परिच्छेदों के आरंभ में आलंकारिक दृश्य-वर्णन, कला के बीच-बीच में नीति उपदेश के उदाहरण, पाठकों को संबोधन, कवित्वमय, कृत्रिम संवाद वर्णनों की अधिकता आदि इन उपन्यासों के शिल्प की विशेषताएँ थीं।

प्रेमचंद ने इनमें क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। उनके उपन्यास के शिल्प में निम्नलिखित बातें दिखाई दीं।

1 उन्होंने जीवन को उसके यथार्थ परिवेश में व्यक्त किया।

2 कथानक के उपकरण दैनिक जीवन से एकत्रित किये।

3 घटनाओं में कार्य-कारण शृंखला स्थापित की।

4 पात्रों की चरित्र सृष्टि में मनोविज्ञान का प्रवेश कराया।

5 पात्र और परिस्थिति में गहरा संबंध स्थापित किया।

6 संवाद दैनिक जीवन के वार्तालाप जैसे बन गये।

7 जीवन के प्रति एक निश्चित दृष्टि दी।

इसी प्रकार शैली-शिल्प में भी यथार्थवादी और व्यावहारिक रूप दिखाई दिया। साथ ही शैली में निम्नलिखित विविधताएँ भी पाई जाती हैं, जैसे—

क) वर्णनात्मक शैली

ख) आलंकारिक शैली

ग) रेखाचित्र शैली

घ) चित्रात्मक शैली

ङ) व्यंग्यात्मक शैली, और

च) नाटकीय शैली

आप पढ़ चुके हैं कि वर्णनात्मक शैली के द्वारा कथा के विकास को तथा भावों को प्रस्तुत किया जाता है। प्रेमचंद ने अत्यंत भावपूर्ण वर्णन किये हैं। कई स्थलों पर अलंकारों के प्रयोग से मार्मिकता की वृद्धि हुई है। चरित्रों के बाह्य व्यक्तित्व की रेखाएँ अंकित करके रेखाचित्र शैली को अपनाया जाता है। जैसे—

"बाबू भालचंद्र दीवान खाने के सामने आराम कुर्सी पर नंग धड़ंग लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही स्थूल कद के आदमी थे। ऐसा मालूम होता था कि काला देव है या कोई हब्शी अफ्रीका से पकड़कर आया है। सिर से पैर तक एक ही रंग था—काला। चेहरा इतना स्याह था कि मालूम न होता था कि माथे का अंत कहाँ है और सिर का आरंभ कहाँ। बस, कोयले की एक सजीव मूर्ति थी।"

इस प्रकार लेखक ने यहाँ शब्दों द्वारा व्यक्ति का चित्र उपस्थित कर दिया है। आप इस वर्णन के सहारे अपनी कल्पना में भालचंद्र का रूप खड़ा कर सकते हैं। इस प्रकार जब किसी घटना के दृश्य का वर्णन द्वारा चित्र उपस्थित कर दिया जाय तो इसे चित्रात्मक शैली कहेंगे।
उदाहरण—"मंसाराम खाना खा रहा था। मुंशी जी तो बाहर गये, उधर वह खाना छोड़कर अपनी हॉकी का डंडा हाथ में ले, कमरे में घुस ही पड़ा और तुरंत चारपाई खींच ली। साँप मस्त था, भागने के बदले फन निकाल कर खड़ा हो गया।"

यहाँ घटना का पूरा दृश्य उपस्थित कर दिया गया है।

उपन्यासकार किसी स्थान पर पात्रों या घटनाओं द्वारा व्यंग्य की सृष्टि करता है। इसे "व्यंग्यात्मक शैली" कहते हैं। लेखक ने निर्मला उपन्यास में स्थान-स्थान पर व्यंग्य किया है। एक उदाहरण से इसे आप स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

"मोटे—एक दो दिन की कोई बात न थी। विचार भी यही था कि त्रिवेणी का स्नान करूँगा, पर बुरा न मानिए तो कहूँ—आप लोगों में ब्राह्मणों के प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं है। हमारे यजमान हैं, जो हमारा मुँह जोहते रहते हैं कि पंडित जी कोई आज्ञा दें तो उसका पालन करें। हम उनके द्वार पर पहुँच जाते हैं, तो अपना धन्यभाग समझते हैं और सारा घर छोटे-बड़े तक हमारे सेवा संस्कार में मग्न हो जाता है। जहाँ हमारा आदर नहीं, वहाँ एक क्षण ठहरना असह्य है। जहाँ ब्राह्मण का आदर नहीं, वहाँ कल्याण नहीं हो सकता।"

पंडित जी के पूरे कथन में लेखक ने व्यंग्य व्यक्त किया है। किस प्रकार धर्म का भय दिखाकर लोगों को बहकाया जाता था उसको लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली में हमारे सामने रखा है।

नाटकीय शैली के माध्यम से लेखक पात्रों के संवाद द्वारा किसी स्थान पर कथा में नये या आकस्मिक ऐसे मोड़ लाता है जिनकी पूर्व कल्पना पाठक को नहीं होती। आपने निर्मला उपन्यास में हर जगह इस शैली को देखा है। फिर भी उसका एक उदाहरण देखें।

"उदयभानु—तो मैं तुम्हारा गुलाम हूँ?
कल्याणी—तो क्या मैं तुम्हारी लौंडी हूँ?
उदयभानु—ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारे पर नाचते हैं।
कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियाँ और होंगी, जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती है।
उदयभानु—मैं कमाकर लाता हूँ, जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ। किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।
कल्याणी—तो, आप अपना घर संभालिए, ऐसे घर को मेरा दूर से सलाम है।"

आप स्पष्ट देख रहे हैं कि संवादों में नाटकीयता है। कथा एक नये मोड़ की ओर अग्रसर होती है। पति-पत्नी दोनों में विवाद बढ़ता है, पत्नी घर छोड़ने का फैसला करती है। आप इस नाटकीय शैली से प्रभावित होते हैं और आगे क्या होगा सोचने लगते हैं, फिर कथा को दिलचस्पी से पढ़ते-चलते हैं।

बोध प्रश्न

5 तीन चार पंक्तियों में शैली का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

6 "मुंशी तोताराम अन्य एकान्तसेवी मनुष्यों की भाँति विषयी जीव थे कुछ दिन तो वह निर्मला को सैर-तमाशे दिखाते रहे। लेकिन जब देखा कि इसका कुछ फल नहीं होता, तो फिर एकान्त सेवन करने लगे। दिन भर के कठिन मानसिक परिश्रम के बाद उनका चित्त आमोद-प्रमोद के लिए लालायित हो जाता, लेकिन जब अपनी विनोद-वाटिका में प्रवेश करते और उसके फूलों को मुरझाया, पौधों को सूखा और क्यारियों से धूल उड़ती हुई देखते तो उनका जी चाहता—क्यों न इस वाटिका को उजाड़ दूँ।"

उपर्युक्त अंश में लेखक ने कथा के वर्णन के लिए एक साथ दो प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। इनके नाम बताइए और वैसा नाम देने का कारण लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

7 रेखाचित्र शैली किसे कहते हैं? चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

8 "रुक्मिणी–जब तक अपना समझती थी, करती थी। अब तुमने गैर समझ लिया तो मुझे क्या पड़ी है कि तुम्हारे गले से चिपटूँ? पूछो कै दिन से दूध नहीं पिया। जाकर कमरे में देख आओ, नाश्ते के लिए जो मिठाई भेजी गई थी, वह पड़ी सड़ रही है। मालकिन समझती है, मैंने तो खाने का सामान रख दिया, कोई न खाए तो क्या मैं मुँह में डालूँ।"

रुक्मिणी देवी के उपर्युक्त कथन में लेखक ने किस शैली का प्रयोग किया है?

....

....

....

....

....

9 नाटकीय शैली किसे कहते हैं? दो-तीन पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

भाषा : उपन्यासकार अपने भावों को भाषा के द्वारा प्रकट करता है। यह उपन्यास का महत्वपूर्ण उपकरण है। यह भाव एवं विचार के वहन का माध्यम है। भाषा की विशेषताएँ हैं, स्वाभाविकता, सहजता और सरलता, उपन्यासकार भाषा को स्वाभाविक, सहज और सरल बनाने के लिए मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग करता है। साथ ही सहज, स्वाभाविक अलंकारों के प्रयोग से भाषा को सशक्त, सप्राण, रम्य और सुन्दर बनाता है। हम निर्मला उपन्यास में प्रयुक्त भाषा को दो दृष्टियों से देखेंगे:

1) कथा-वर्णन के लिए प्रयुक्त भाषा

2) संवादों के लिए प्रयुक्त भाषा

1) **कथा-वर्णन के लिए प्रयुक्त भाषा :** प्रेमचंद ने कथा-वर्णन के लिए सरल-स्वाभाविक तथा अलंकृत एवं काव्यात्मक दोनों प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है। कथा-वर्णन करते हुए वे लिखते हैं:

"विधवा का विवाह और अनाथों का रोना सुनाकर हम पाठकों का दिल न दुखाएँगे। जिसके ऊपर पड़ती है, वह रोता है, विलाप करता है, पछाड़ खाता है, यह कोई नई बात नहीं। हाँ आप चाहें तो कल्याणी के उस घोर मानसिक यातना का अनुमान कर सकते हैं, जो उसे इस विचार से हो रही थी कि वे ही अपने प्राणाधार की घातिका हैं।

आप देखें कि लेखक कथा का वर्णन कर रहा है। भाषा बोलचाल की और सरल है, आप ऐसा

आलंकारिक भाषा का एक उदाहरण देखिए:

"बालक का सरल, निष्कपट हृदय पितृप्रेम से पुलकित हो उठा मालूम हुआ कि साक्षात् भगवान खड़े हैं। नैराश्य और क्षोभ से विकल होकर उसने अपने पिता को निष्ठुर और न जाने क्या-क्या समझ रखा था।"

यहाँ भाषा काव्य जैसी हो गई है। सरल, निष्कपट, पितृप्रेम, पुलकित आदि के प्रयोग से भाषा में परिवर्तन आ गया है।

पुलकित हो जाना—खिल जाना, प्रसन्न होना के लिए प्रयुक्त।

2) **संवादों के लिए प्रयुक्त भाषा** : निर्मला उपन्यास के संवादों में लेखक ने सामान्य बोलचाल की भाषा तथा ग्रामीण एवं शहरी दोनों प्रकार की मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है।

सामान्य बोलचाल की भाषा : लेखक ने सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। सभी पात्र उर्दू मिश्रित हिंदी बोलते हैं। पात्रानुकूल भाषा में स्वाभाविकता एवं रोचकता है। एक उदाहरण देखिए।

"डॉक्टर—फिर आपने अनर्गल बातें करनी शुरू की। अरे साहब, आप बच्चे नहीं हैं—बुजुर्ग आदमी हैं, जरा धैर्य से काम लीजिए।

मुंशी जी—अच्छा डॉक्टर साहब, अब न बोलूँगा। खता हुई। आप जो चाहे कीजिए। मैंने सब कुछ आप पर छोड़ दिया। कोई उपाय ऐसा नहीं है, जिससे मैं इतना समझ सकूँ कि मेरा दिल साफ है। आप ही कह दीजिए, डॉक्टर साहब, कह दीजिए, तुम्हारा अभागा पिता बैठा रो रहा है। उसका दिल तुम्हारी तरफ से बिल्कुल साफ है। उसे कुछ भ्रम हुआ था। वह अब दूर हो गया है। बस, इतना ही कह दीजिए। मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं चुपचाप बैठा हूँ। जबान तक नहीं खोलता, लेकिन आप इतना जरूर कह दीजिए।

डॉक्टर—ईश्वर के लिए बाबू साहब, जरा सब्र कीजिए, वरना मुझे मजबूर होकर आपसे कहना पड़ेगा कि घर जाइए। जरा दफ्तर में जाकर डाक्टर को खत लिख रहा हूँ।"

आप देखिए कि उपर्युक्त संवादों में एक ओर डॉक्टर साहब अनर्गल, धैर्य, ईश्वर आदि संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हैं वहीं शुरू, बुजुर्ग, सब्र, मजबूर, खत आदि उर्दू के शब्दों का प्रयोग करते हैं।

मुंशी जी भी खता, दिल, तरफ, जरूर आद उर्दू और अभागा, भ्रम आदि सरल संस्कृत शब्दों का मिश्रित प्रयोग करते हैं।

पात्रानुकूल तथा प्रसंगानुकूल भाषा : निर्मला उपन्यास के पात्र ग्रामीण एवं शहरी मिश्रित भाषा का प्रयोग करते हैं। विशेष रूप मे नौकरों की भाषा इसी प्रकार की है।

"तीन-चार मिनट के बाद एक काना आदमी खासता हुआ आकर बोला—सरकार ई-तना नौकरी हमारे किन न होई। कहाँ तक उधार बाढ़ी लै-लै खायी। माँगत-माँगत चेथर होय गयेन।

भाल—बको मत, जाकर कुर्सी लाओ। जब कोई काम करने को कहा गया, तो रोने लगता है। कहिए पंडित जी वहाँ सब कुशल है?

मोटेराम—क्या कुशल कहूँ बाबूजी, अब कुशल कहाँ दूसरा घर मिट्टी में मिल गया।

इतने में कहार ने एक टूटा चीड़ का सन्दूक लाकर रख दिया और बोला—कुर्सी मेज हमारे नहीं उठत है।"

आप देखिए हमारे किन न होई, बाढ़ी लै-लै खायी, माँगत-माँगत चेथर होय गयेन, नहीं उठत है आदि निम्न वर्गीय भाषा है। पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल भाषा का एक सुंदर उदाहरण देखिए।

निर्मला की बच्ची की भाषा—

"बच्ची ने द्वार पर झाँककर पूछा-बापू दी तहाँ दाते हो?

मुंशी जी—दूर जाता हूँ बेटी तुम्हारे भैया को खोजने जाता हूँ।

बच्ची ने वहीं खड़े-खड़े कहा—अम बी तलेंगे।

मुंशी ने उसी स्वर में कहा—तुमको नहीं ले तलेंगे।"

बच्ची तोतली बोली में पिता से बोलती है। तोताराम प्रसंगानुकूल उसी तोतली भाषा में जवाब देते हैं।

रोचक भाषा का एक उदाहरण देखिए—"तोता अजी यह सब कर चुका। दम्पत्ति शास्त्र के सारे मंत्रों का इम्तहान ले चुका, सब कोरी गप्पें हैं।

नयन—अच्छा तो अब मेरी एक सलाह मानो। जरा अपनी सूरत बनवा लो। आजकल यहाँ एक बिजली के डॉक्टर आए हुए हैं, जो बुढ़ापे के सारे निशान मिटा देते हैं। उनकी चलती भाषा और मुहावरों का प्रयोग संवाद को रोचक बनाता है।

जब हम समग्र रूप में निर्मला की भाषा का विश्लेषण करेंगे तो पायेंगे कि उसमें सभी विशेषताएँ हैं। सरल, रोचक, प्रसंगानुकूल, व्यंग्यात्मक, चित्रात्मक, पात्रानुकूल भाषा है। साथ ही तत्सम, तद्भव, उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों का यथास्थान प्रयोग किया गया है। भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों का भी खूब प्रयोग किया गया है। जगह-जगह सूक्तियों का प्रयोग भी भाषा को सुन्दर एवं प्रभावशाली बनाना है।

उपर्युक्त बातों को हम एक-एक कर उदाहरण द्वारा देखेंगे।

सरलता, रोचकता, चित्रात्मकता एवं प्रसंगानुकूल भाषा को आप समझ गए हैं। हम यहाँ तत्सम आदि शब्दों को देखेंगे।

1) **हिंदी के तत्सम शब्दों का प्रयोग**—निर्मला में वैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है जो प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ—लज्जाशील, गंभीर, प्रसन्न, सत्कार, अज्ञात, विचित्र, अदृश्य, प्रकाश आदि।

2) **हिंदी के तद्भव शब्दों का प्रयोग**—स्वाभाविक तथा भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग निर्मला की भाषा की विशेषताओं में से एक है—उदाहरण के लिए—अम्मा, भाई-भतीजा, मुट्ठी, निठुर, फूल, मिट्टी, अंधेरा आदि।

3) **अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग**—आपने उपन्यास का वाचन करते समय अवश्य अनुभव किया होगा कि प्रेमचंद अरबी-फारसी के शब्दों का बहुलता से प्रयोग करते हैं। लेकिन उनके उर्दू के शब्द ऐसे नहीं जो प्रचलित न हों। वे या तो हमारी बोलचाल में रच-बस गये हैं या उर्दू में सामान्य प्रयोग में आते रहते हैं। अतएव उनसे हमारा परिचय है। उदाहरण के लिए परवाह, जरूर, खुशी, अलबत्ता, आतिशबाजी, मजा, रोशनी, शान, जरा, किस्मत आदि।

4) **अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग**—निर्मला में प्रेमचंद ने अंग्रेजी के ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो हिंदी में खूब प्रचलित हैं। और वे लगभग हिंदी भाषा में स्वीकृत हो चुके हैं। उदाहरण के लिए—ज्योमेट्री, बैंच, बोर्डिंग हाउस, डॉक्टर, थियेटर, मेमोरी, मेंट, कार्ड, पुलिसमैन, बटन, स्कूल आदि। इन शब्दों का प्रयोग पात्र के बौद्धिक स्तर के अनुकूल किया गया है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति अपनी बातचीत में ऐसे वाक्यों का सामान्य रूप से प्रयोग करते हैं। प्रेमचंद ने ऐसे पात्रों से ही इनका प्रयोग कराया है।

   इस प्रकार प्रेमचंद ने सरल, प्रवाहमयी एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया है।

5) **मुहावरों का प्रयोग**—भाषा को जीवंत एवं बोधगम्य बनाने के लिए उपन्यास में मुहावरों का भरपूर प्रयोग किया गया है। उपन्यास का वाचन करते समय आपने अवश्य ध्यान दिया होगा कि विचार को संप्रेषणीय बनाने के लिए लेखक ने जगह-जगह मुहावरों का प्रयोग किया है। कहीं व्यंग्य के लिए तो कहीं भाव को उभारने के लिए मुहावरों का सटीक प्रयोग मिलता है। उदाहरण से इसे समझिए। चन्द्र—मेरे साथ घूमने चल तो रास्ते में सारी बातें बता दूँ। ऐसे-ऐसे तमाशे होंगे कि देखकर तेरी आँखें खुल जाएंगी। यहाँ आँखें खुल जाना का प्रयोग सटीक है। अपनी बात मनवाने के लिए चन्द्र ने कृष्णा से ऐसी बातें कहीं।

   बाबू उदयभानु चिंतन करते हुए सोचते हैं। कई दिन से देख रहा हूँ ऐसी ही जली-कटी सुनाया करती हैं।

   यहाँ जली-कटी सुनाना, मुहावरे का प्रयोग करके लेखक ने पात्र के भावों को उभारा है। उदयभानु लाल कहना चाहते हैं कि उनकी पत्नी कठोर बातें कहती रहती है। इस स्थान पर यदि लेखक ने "कठोर बातें" या "बुराभला" शब्दों का प्रयोग किया होता तो भाषा उतनी प्रभावशाली नहीं बन पाती। आगे उदयभानु सोचते हैं "बस चल ही दूँ"। "जब देख लूँगा कि इनका सारा घमण्ड धूल में मिल गया और मिज़ाज ठंडा हो गया, तो लौट आऊँगा।" यहाँ "मिज़ाज ठंडा होना" मुहावरे के प्रयोग में व्यंग्य व्यंजित है।

सूक्तियों का प्रयोग– सूक्ति ऐसे सूत्र वाक्य होते हैं जिनमें कुछ अधिक अर्थ निहित रहता है। व्याख्या करने पर उस अर्थ का विस्तार किया जा सकता है। प्रेमचंद ने जगह-जगह सूक्तियों का प्रयोग करके भाषा में भाव गांभीर्य को ला दिया है।

उदाहरण– "स्वस्थ अंग की परवाह कौन करता है? लेकिन वह अंग जब किसी वेदना से टपकने लगता है, तो उसे ठेस और धक्के से बचाने का यत्न किया जाता है।"

इस उदाहरण में आप देखिए कि लेखक ने एक महत्वपूर्ण बात को सूत्र रूप में कहा है "स्वस्थ अंग की परवाह कौन करता है।" इसमें इस भाव को रखा है कि जब तक व्यक्ति सुखी रहता है अन्य बातों की चिन्ता नहीं करता, लेकिन जैसे ही उसे किसी कारणवश दुःख पहुँचता है तो उसके निदान के लिए तरह-तरह के उपायों के बारे में सोचने लगता है। इसी प्रकार लेखक ने जगह-जगह सूक्तियों का प्रयोग कर भाषा को गंभीर बनाया है।

इस प्रकार प्रेमचंद की भाषा सरल एवं प्रभावशाली है। उसमें कहीं कोई कृत्रिमता नहीं आने पायी है।

बोध प्रश्न

1) भाषा की एक विशेषता है सरलता, आप दो और विशेषताएँ लिखिए।

....

....

....

2) पात्रानुकूल तथा प्रसंगानुकूल भाषा का तात्पर्य क्या है? चार-पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

अभ्यास

1) "मंसाराम आकर रुक्मिणी से बोला-बुआ जी, बाबू जी ने मुझे कल से स्कूल में रहने को कहा है।
रुक्मिणी ने विस्मित होकर पूछा—क्यों?
मंसा—मैं क्या जानूँ? कहने लगे कि तुम यहाँ आवारों की तरह इधर-उधर फिरा करते हो।
रुक्मिणी—तूने कहा नहीं कि मैं कहीं नहीं जाता।
मंसा—कहा क्यों नहीं? मगर जब वह माने भी।
रुक्मिणी—तुम्हारी नई अम्माजी की कृपा होगी, और क्या?
मंसा—नहीं बुआ जी, मुझे उन पर संदेह नहीं है। वह बेचारी तो भूल से भी कभी नहीं कहती। कोई चीज माँगने जाता हूँ तो तुरंत उठकर देती है।
रुक्मिणी—तू यह त्रिया-चरित्र क्या जाने। यह उन्हीं की लगायी हुई आग है देख मैं जाकर पूछती हूँ।"

उपर्युक्त संवादों में भाषा की विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

....

2) "मुंशी जी ने रोते हुए कहा - नहीं डाक्टर साहब, यह शब्द मुँह से न निकालिए। हालात इसके दुश्मनों के नाजुक हो - ईश्वर मुझ पर इतना कोप न करेंगे। आप कलकत्ता और बंबई के डाक्टरों को तार दीजिए - जिन्दगी भर आपकी गुलामी करूँगा। यही मेरे कुल का दीपक

है। यही मेरे जीवन का आधार है। मेरा हृदय फटा जा रहा है। कोई ऐसी दवा दीजिए जिससे इसे होश आ जाए। मैं जरा अपने कानों से इसकी बात सुनूँ कि इसे क्या कष्ट हो रहा है, हाय मेरा बच्चा।''

उपर्युक्त अंश में प्रयुक्त भाषा की विशेषताओं को लिखिए।

....

....

....

....

संवाद

आप जान चुके हैं कि पात्रों के परस्पर वार्तालाप को कथोपकथन या संवाद कहते हैं। उपन्यास का यह महत्वपूर्ण तत्व है। इसका उपयोग पात्रों के मन में उठने वाले भावों, इच्छाओं, आकांक्षाओं, राग-द्वेष आदि को सजीव बनाता है। इसके उपयोग से उपन्यास में स्वाभाविकता, रोचकता, सुंदरता और नाटकीयता आती है। संवाद के बारे में प्रेमचंद का कथन है कि ''उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाए, उतना ही उपन्यास सुंदर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य को जो किसी चरित्र के मुँह से निकले उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल सरल और सूक्ष्म होना जरूरी है।''

(प्रेमचंद : साहित्य का उद्देश्य, पृ-72)

उपन्यास के संवाद किस उद्देश्य से लिखे जाते हैं पहले इसे जानें। मुख्य रूप से चार उद्देश्य से संवाद लिखे जाते हैं।

i) कथानक के विकास के लिए

ii) पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए

iii) उपन्यासकार के उद्देश्य का स्पष्टीकरण के लिए

iv) कथा में नाटकीयता लाने के लिए

उपर्युक्त बातों का हम थोड़ा बाद में निर्मला उपन्यास के संदर्भ में विस्तार से जानेंगे, इसके पहले यह जान लें कि संवाद कितने प्रकार के होते हैं।

आकार की दृष्टि से संवाद दो प्रकार के होते है;

1) लंबे संवाद 2) छोटे संवाद

लंबे संवाद : लंबे संवाद कभी-कभी बहुत बड़े हो जाते हैं। और भाषण के समान लगते हैं। लेकिन लंबे संवाद के द्वारा जहाँ कथा का विकास होता है वहीं पात्रों के चारित्रिक गुण, दोष ही प्रकट होते हैं। लेखक का विचार भी प्रकट होता है। लंबे संवाद का एक उदाहरण देखिए।

''रँगीली—साफ बात कहने में संकोच क्या? हमारी इच्छा है, नहीं करते किसी का कुछ लिया तो नहीं है? जब दूसरी जगह दस हजार नगद मिल रहे हैं, तो वहाँ क्यों न करूँ? उनकी लड़की कोई सोने की थोड़े ही है। वकील साहब जीते होते तो शरमाते-शरमाते पन्द्रह-बीस हजार दे मरते। अब वहाँ क्या रखा है?''

उपर्युक्त उदाहरण लंबा संवाद है। इसमें पात्रों का चरित्र उभरता है साथ ही कथा का विकास भी होता है। रँगीली के कथन से निर्मला के पिता के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। रँगीली वर की माता है वह भी दहेज की पक्षधर है और पुत्र की शादी वहीं करना चाहती है, जहाँ धन मिले। निर्मला से अपने पुत्र के विवाह के लिए साफ इन्कार कर देती है, इस प्रकार उसका धन के प्रति लालची चरित्र का पता चलता है। जब वह यह कहती है कि ''वकील साहब जीते होते तो शरमाते-शरमाते पन्द्रह-बीस हजार दे मारते।'' इससे निर्मला के पिता के चरित्र पर यह प्रकाश पड़ता है कि वे पुत्री के विवाह के लिए किसी प्रकार पैसे का इन्तजाम करते। लेखक का अभीष्ट यह दिखाना है, किस प्रकार दहेज प्रथा के पक्षधर किसी लड़की की जिन्दगी का महत्व नहीं समझते। वे धन को ही सब कुछ मानते हैं। संवाद में कथा का विकास इस प्रकार होता है कि निर्मला का विवाह टूट जाता है।

आप यदि उपन्यास का दुबारा वाचन करते हुए ध्यान देंगे तो पायेंगे कि निर्मला उपन्यास में जगह-जगह ऐसे संवाद हैं।

छोटे संवाद : छोटे संवाद कभी एक वाक्य के होते हैं कभी दो वाक्य के। कभी दो शब्द के भी और कभी एक शब्द के भी। लेकिन जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है इन संवादों के माध्यम से भी जहाँ कथा का विकास होता है वहीं पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। एक दो वाक्यों के संवाद के उदाहरण देखिए:

"उदयभानु—क्या तुम समझती हो कि तुम न संभालोगी तो मेरा घर ही न संभलेगा? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर संभाल सकता हूँ।
कल्याणी—कौन? अगर आज के महीनेवे दिन मिट्टी में न मिल जायं, तो कहना कोई कहती थी।"

एक अन्य उदाहरण—

"मतई—शामत मेरी नहीं आई-बोलो खाते हो कसम-एक!
उदयभानु—तुम हटते हो कि मैं पुलिसमैन को बुलाऊँ!
मतई—दो!
उदयभानु (गरजकर)—हट जा बदमाश, सामने से।
मतई—तीन!"

उपर्युक्त उदाहरण छोटे-छोटे संवादों का है। यहाँ तक कि एक शब्द का भी, आप स्वयं देखें कि इनमें कथा का विकास, पात्रों का चरित्र तथा नाटकीयता शामिल है। संवादों से पता चलता है कि घटना आगे बढ़ रही है। मतई उदयभानु को कसम खाने के लिए कहता है। वे नहीं मानते और पुलिस को बुलाने की धमकी देते हैं। मतई गिनती गिनता हुआ उन पर वार करने के लिए बढ़ता है। संवादों से स्पष्ट है कि कथा का विस्तार हो रहा है। उदयभानु का निर्भीक चरित्र तथा मतई का क्रूर चरित्र उभर का सामने आता है। एक, दो, तीन जैसे गिनती के शब्द रखकर लेखक ने यहाँ नाटकीयता ला दी है।

ऊपर हमने आकार की दृष्टि से संवादों का वर्गीकरण देखा। अब हम अन्य दृष्टि से संवादों का विश्लेषण करेंगे। हम किसी उपन्यास के संवादों को ध्यान से देखें तो पायेंगे कि कहीं लेखक ने विश्लेषण करते हुए संवादों की रचना की, कहीं नाटकीयता के लिए तो कहीं पात्रों के मानसिक ऊहापोह को सामने रखने के लिए। कभी पात्र स्वयं से भी वार्तालाप करता है तो कहीं पात्रों के भावों को प्रकट करने के लिए संवादों की रचना की गई है। आइए इन्हें एक-एक कर जानें। हम इन्हें पाँच नाम दे सकते हैं।

1) नाटकीय संवाद 2) विश्लेषण युक्त संवाद

3) आत्मालाप-परक संवाद (ऊहापोह को प्रकट करने के लिए संवाद)

4) स्वगत कथन वाले संवाद 5) भावपूर्ण संवाद।

नाटकीय संवाद : पात्रों के परस्पर वार्तालाप द्वारा जब नाटकीयता लाई जाय तो इसे नाटकीय संवाद कहते हैं। ऐसे संवादों में लेखक अपने पात्रों के लिए संकेत-हाव भाव, मनःस्थिति संबंधी विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करता। पात्रों की बातचीत से ही घटना में नाटकीयता आती है। उदाहरण,

"निर्मला—और नहीं क्या तू बैठी रहेगी। हम लड़कियाँ हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता।
कृष्णा—चन्दर भी निकाल दिया जाएगा?
निर्मला—चन्दर तो लड़का है, उसे कौन निकालेगा।
कृष्णा—तो लड़कियाँ बहुत खराब होती होंगी?
निर्मला—खराब न होती तो घर से भगाई क्यों जाती?
कृष्णा—चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भगाता? हम तुम तो कोई बदमाशी नहीं करते।"

एक अन्य उदाहरण देखिए—

"उदयभानु—तो मैं क्या तुम्हारा गुलाम हूँ?
कल्याणी—तो क्या मैं तुम्हारी लौंडी हूँ?
उदयभानु—ऐसे मर्द और होंगे जो औरतों के इशारे पर नाचते हैं।
कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियाँ और होंगी जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती हैं।"

दोनों उदाहरणों में लेखक ने संवादों के बीच में कोई संकेत नहीं रखा है। वार्तालाप से ही कथा में गति आती है।

2 **विश्लेषणात्मक संवाद** : आपने देखा होगा कि उपन्यास के पात्रों के संवाद के बीच-बीच में कभी-कभी लेखक कुछ संकेत देता रहता है जिससे पात्रों के कार्य-व्यापार, मनोभाव आदि को समझने में सहायता मिलती है। ऐसे संवादों को विश्लेषणात्मक संवाद कहते हैं। इसे उदाहरण द्वारा समझें।

"इस वक्त मंसाराम भी स्कूल से लौटा—धूप में चलने के कारण मुख पर पसीने की बूंदें आयी हुई थीं, गोरे मुखड़े पर खून की लाली दौड़ रही थी, आँखों से ज्योति सी निकलती मालूम होती थी। द्वार पर खड़ा होकर बोला—अम्मा जी, लाइए, कुछ खाने को निकालिए, जरा खेलने जाना है।

निर्मला जाकर गिलास में पानी लायी और एक तश्तरी में कुछ मेवे रखकर मंसाराम को दिये। मंसाराम जब खाकर चलने लगा तो निर्मला ने पूछा, कब तक आओगे।

मंसाराम—कह नहीं सकता, गोरों के साथ हाकी का मैच है। बारक यहाँ से बहुत दूर है।

निर्मला—भई, जल्द आना। खाना ठण्डा हो जाएगा, तो कहोगे कि मुझे भूख नहीं है।

मंसाराम ने निर्मला की ओर स्नेह भाव से देखकर कहा—मुझे देर हो जाए तो समझ लीजिएगा वहीं खा रहा हूँ। मेरे लिए बैठने की जरूरत नहीं।

वह चला गया तो निर्मला बोली—पहले तो घर में आते ही न थे, मुझसे बोलते शर्माते थे। किसी चीज की जरूरत होती, तो बाहर से ही मँगवा भेजते। जब से मैंने बुलाकर कहा तब से आने लगे हैं।

तोताराम ने चिढ़कर कहा—यह तुम्हारे पास खाने-पीने की चीजें माँगने क्यों आता है? दीदी से क्यों नहीं कहता?"

उपर्युक्त उदाहरण में पात्रों के संवाद को देखें तो आप पायेंगे कि लेखक ने अपनी ओर से कुछ जोड़ा है। जैसे मंसाराम के बारे में कुछ बातें बता कर लेखक कहता है "द्वार पर खड़ा होकर बोला"। फिर निर्मला के द्वारा किये हुए कार्य का वर्णन करता है कि वह गिलास में पानी तथा तश्तरी में मेवे लेकर आती है आगे मंसाराम के भाव का चित्रण करता है। "मंसाराम ने निर्मला की ओर स्नेह भाव से देखकर कहा, इसी प्रकार तोताराम के संवाद से पहले लेखक लिखता है कि तोताराम ने चिढ़कर कहा—" इसी प्रकार आप समझ गए कि पात्रों के संवाद के आगे, पीछे या मध्य में जब लेखक पात्रों के हाव-भाव, क्रिया-कलाप आदि के बारे में कुछ कहे तब उसे विश्लेषण युक्त संवाद कहेंगे।

3 **आत्मालाप (मानसिक ऊहापोह को प्रकट करने वाले संवाद)** : जब उपन्यास का कोई पात्र संवाद के माध्यम से मानसिक द्वंद्व को प्रकट करे तो उसे मानसिक ऊहापोह प्रकट करने वाले संवाद कहते हैं। ऐसे संवाद की एक विशेषता है कि इसमें अन्य पात्र भाग नहीं लेते। उदाहरण के लिए देखें—

"मुंशी जी तो भोजन करने गये और निर्मला द्वार की चौखट पर खड़ी सोच रही थी—भगवान क्या इन्हें सचमुच कोई भीषण रोग हो रहा है? क्या मेरी दशा को और भी दारुण बनाना चाहते हो? मैं इनकी सेवा कर सकती हूँ, सम्मान कर सकती हूँ, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूँ, लेकिन वह नहीं कर सकती, जो मेरे किये नहीं हो सकता। अवस्था का भेद मिटाना मेरे वश की बात नहीं। आखिर यह मुझसे क्या चाहते हैं—समझ गयी आह! यह बात पहले ही नहीं समझी थी, नहीं तो इनको क्यों इतनी तपस्या करनी पड़ती, क्यों इतने स्वांग करने पड़ते।"

उपर्युक्त संवाद में निर्मला का मानसिक द्वंद्व प्रकट हुआ है। आप उपन्यास में जगह-जगह ऐसे संवादों को पायेंगे।

4 **स्वगत कथन वाले संवाद** : ऐसे संवाद मानसिक द्वंद्व को प्रकट करने वाले संवाद जैसे लगते हैं लेकिन अंतर यह है कि स्वगत कथन वाले संवाद में पात्र अन्य पात्र के साथ वार्तालाप कर रहा होता है लेकिन उसके मन में भी वार्तालाप चलता रहता है। और दोनों वार्तालाप में समानता नहीं होती। पात्र बोलता कुछ और है और मन के अंदर स्वयं से कुछ और वार्तालाप कर रहा होता है। उदाहरण से आप इसे स्पष्ट समझ जायेंगे।

"निर्मला बोली—पहले तो शाम ही को पढ़ा देते थे, अब कई दिनों में एक बार आकर लिखना भी देख लेते हैं।

मुंशी जी ने दिल में कहा—खूब समझता हूँ। तुम कल की छोकरी मुझे चराने चली। दीदी का सहारा लेकर अपना मतलब पूरा करना चाहती है। बोले मैं नहीं समझता, बोर्डिंग का नाम सुनकर क्यों लौंडे की नानी मरती है और लड़के खुश होते हैं कि अब अपने दोस्तों में रहेंगे, यह उल्टे रो रहा है। अभी कुछ दिन पहले यह दिल लगाकर पढ़ता था।"

उपर्युक्त संवाद में रेखांकित अंग स्वगत कथन वाले संवाद हैं। मुंशी जी मन में कुछ और सोचते हैं और बाहर कुछ और कहते हैं।

5 **भावपूर्ण संवाद** : जिन संवादों में पात्रों के भाव उभर कर आए उन्हें भावपूर्ण संवाद कहते हैं। ऐसे संवाद निश्छल होते हैं। पात्रों के अंदर उठने वाली सच्ची भावनाएँ ही संवाद के माध्यम से बाहर निकल पड़ती हैं।

एक उदाहरण देखिए-

"मुंशी जी एक क्षण तक मंसाराम की शिथिल मुद्रा की ओर व्यथित नेत्रों से ताकते रहे, फिर सहसा उन्होंने डॉक्टर साहब का हाथ पकड़ लिया और अत्यंत दीनतापूर्ण आग्रह से बोले-डॉक्टर साहब, इस लड़के को बचा लीजिए—ईश्वर के लिए बचा लीजिए। नहीं—मेरा सर्वनाश हो जाएगा। मैं अमीर नहीं हूँ। लेकिन आप जो कहेंगे, वह हाजिर करूँगा, इसे बचा लीजिए। आप बड़े से बड़े डॉक्टर को बुलाइए और उनकी राय लीजिए, मैं सब खर्च दूँगा। इसकी यह दशा अब नहीं देखी जाती। हाय, मेरा होनहार बेटा।

डॉक्टर साहब ने करुण स्वर में कहा—बाबू साहब, मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ कि मैं इनके लिए अपनी तरफ से कोई बात उठा नहीं रख रहा हूँ। अब आप दूसरे डॉक्टरों से सलाह लेने को कहते हैं। अभी डॉक्टर लाहिरी, डॉक्टर भाटिया और डॉक्टर माथुर को बुलाता हूँ। विनायक शास्त्री को भी बुलाये लेता हूँ, लेकिन मैं आपको व्यर्थ का आश्वासन नहीं देना चाहता—हालत नाजुक है।

मुंशी जी ने रोते हुए कहा—नहीं डाक्टर साहब, यह शब्द मुँह से न निकालिये। हालत इसके दुश्मनों की नाजुक हों। ईश्वर मुझ पर इतना कोप न करेंगे। आप कलकत्ता और बंबई के डॉक्टरों को तार दीजिए, मैं ज़िन्दगी भर आपकी गुलामी करूँगा।"

आप देखिए मुंशी जी के संवाद में उनके मन की भावनाएँ ही निकल रही हैं। पुत्र के प्रति उनकी व्याकुलता का सुंदर चित्रण किया गया है।

बोध प्रश्न

12 दो पंक्तियों में "संवाद" का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

....

....

13 नाटकीय संवाद किसे कहते हैं? चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

14 **आत्मलाप परक संवाद एवं स्वगत कथन वाले संवाद का अंतर स्पष्ट कीजिए।**

....

....

....

....

....

15 दो पंक्तियों में भावपूर्ण संवाद का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

....

....

अभ्यास

10 "अबकी भी वही बूढ़ा कहार खासता हुआ आकर खड़ा हो गया और बोला—सरकार मोर तलब दै दीन जाए। ऐसी नौकरी मोसे न होई। कहाँ लौ दोरी? दौरत-दौरत गोड़ पिराय लागत है।

भालचन्द्र—कुछ काम करो या न करो। पर तलब पहले चाहिए। दिन भर पड़े खासा करो, तलब तो तुम्हारी चढ़ रही है। जाकर बाजार से एक आने की ताजी मिठाई लो। दौड़ता हुआ जा।

कहार को यह हुक्म देकर बाबू साहब घर में गए और स्त्री से बोले—वहाँ से एक पंडित जी आए हैं। यह खत लाए हैं, जरा पढ़ो तो।

पत्नी का नाम रँगीलीबाई था। गोरे रंग की प्रसन्न मुख महिला थी रँगीलीबाई बैठी पान लगा रही थी। बोली—कह दिया न कि हमें वहाँ करना मंजूर नहीं।"

उपर्युक्त संवाद किस प्रकार के हैं? कारण सहित बताइए।

....

....

....

11 "कल्याणी—बारात का सपना देख रही है क्या?
कृष्णा—वही चन्दर तो कह रहा है कि दो-तीन दिन में बारात आएगी क्या न आएगी अम्मा?
कल्याणी—एक बार तो कह दिया, सिर क्यों खाती है?"

उपर्युक्त संवाद किस प्रकार का है, कारण सहित बताइए।

....

....

....

....

....

....

अब तक हमने जाना कि संवाद कितने प्रकार के होते हैं। अब हम संवाद के गुणों को समझने का प्रयत्न करेंगे। उपन्यासकार की रचना संवाद की दृष्टि से भी उत्कृष्ट बन सके इसके लिए आवश्यक है कि उनमें कुछ मूलभूत गुण हों। हम इन्हें इस प्रकार रख सकते हैं।

1 अनुकूलता	6 मार्मिकता
2 सरलता	7 मनोरंजनयुक्तता
3 स्वाभाविकता	8 व्यंग्यपूर्णता
4 सुसंबद्धता	9 चरित्र प्रकाशन क्षमता
5 संक्षिप्तता	10 सोद्देश्यता

उपर्युक्त गुणों के द्वारा ही लेखक संवादों को सही रूप में प्रस्तुत करता है, जिससे उनकी रचना प्रभावशाली बनती है। आप जान चुके हैं कि संवादों का संबंध पात्रों, चरित्र-चित्रण तथा कला के विकास से है। इन्हीं तीन बातों को ध्यान में रख कर लिखा गया संवाद सफल होता है। आइए निर्मला उपन्यास के उदाहरणों द्वारा इसे विस्तार से समझें।

1 **अनुकूलता** : अनुकूलता से हमारा तात्पर्य उन बातों से है जिससे संवाद उचित मालूम पड़े। अर्थात् जिस परिवेश, वर्ग से पात्र का संबंध है उसी के अनुकूल संवाद का चयन हो। उदाहरण के लिए यदि पात्र पढ़ा लिखा है तो उसका संवाद कुछ और होगा। यदि पात्र अनपढ़ है तो उसका संवाद कुछ दूसरे तरीके का होगा। यदि पात्र समाज के उच्च वर्ग या निम्न वर्ग से संबंध रखता है तो उसके लिए वैसा ही संवाद लिखना आवश्यक है। स्त्री-पुरुष पात्रों के संवाद में भी भिन्नता आवश्यक है। एक उदाहरण देखिए—

'भाल—महाराज, हमसे तो ऐसा अपराध नहीं हुआ।
मोटे—अपराध नहीं हुआ। और अपराध कहते किसे हैं। अभी आप ही ने जाकर कहा कि यह महाशय तीन सेर मिठाई चट कर गये, पक्की तौल। आपने अभी खाने वाले देखे कहाँ। एक बार खिलाइये तो आँखें खुल जायँ। ऐसे महान् पुरुष पड़े हैं जो पसेरी भर मिठाई खा जाय और डकार तक न लें। एक-एक मिठाई खाने के लिए हमारी चिरौरी की जाती है, रुपये दिये जाते हैं। हम भिक्षुक ब्राह्मण नहीं हैं, जो आपके द्वार पर पड़े रहे। आपका नाम सुन कर आये थे, यह न जानते थे कि यहाँ मेरे भोजन के लाले पड़ेंगे। जाइये भगवान आपका कल्याण करें।"

मोटेराम उस पुरोहित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो धर्म का भय दिखा कर लोगों से अपना काम निकलवाते हैं। लेखक ने यहाँ मोटेराम के अनुकूल ही संवाद रखे हैं।

'निर्मला ने कहा—आज इतनी देर कहाँ लगायी? दिन भर राह देखते-देखते आँखें फूटी जाती हैं।
तोताराम ने खिड़की की ओर ताकते हुए जवाब दिया—मुकदमों के मारे दम मारने की छुट्टी नहीं मिलती। अभी एक मुकदमा और था, लेकिन मैं सिर दर्द का बहाना करके भाग खड़ा हुआ।
निर्मला—तो क्यों इतने मुकदमे लेते हो? काम उतना ही करना चाहिए जितना आराम से हो सके। प्राण देकर थोड़े ही काम किया जाता है। मत लिया करो बहुत मुकदमे। मुझे रुपये का लालच नहीं। तुम आराम से रहोगे तो बहुत रुपये मिलेंगे।
तोताराम—भाई, आती हुई लक्ष्मी भी तो नहीं ठुकराई जाती।
निर्मला—लक्ष्मी अगर रक्त और मांस की भेंट लेकर आती है तो उसका न आना ही अच्छा। मैं धन की भूखी नहीं हूँ।"

मुंशी तोताराम वकील हैं, तथा उन्होंने अधेड़ उम्र में विवाह किया है। निर्मला उनकी पत्नी है और उम्र में वकील साहब से बहुत छोटी है। उपर्युक्त संवाद की रचना लेखक ने पात्रों की अनुकूलता को ध्यान में रखकर किया है। मुंशी जी एक ओर मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं वहीं वे उन पुरुषों में से भी हैं जो वैवाहिक सुख के लिए बिना सोचे-समझे कम उम्र की कन्या से विवाह करते हैं। संयोग वश अपना और निर्मला के चेहरे एक साथ आइने में देखते हैं और झेंप जाते हैं। इन परिस्थितियों में एक चतुर वकील की भाँति वे निर्मला के प्रश्न का उत्तर देते हैं। निर्मला चाहे उम्र में वकील साहब से छोटी है किन्तु वह उनकी पत्नी है इसलिए वह पति के स्वास्थ्य का ख्याल रखती है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर संवादों की रचना की गई है।

इसी प्रकार आप ध्यान देंगे तो पायेंगे कि उपन्यास में जितने पात्र हैं और जिस वर्ग आयु या लिंग से संबंधित हैं सभी के अनुकूल संवादों की रचना की गई है।

2 **सरलता** : संवादों का एक गुण सरलता भी है। सरलता से हमारा तात्पर्य वैसे संवादों से है जिनमें कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया हो पाठक संवाद को पढ़कर सप्रसंग समझता चले।

3 **स्वाभाविकता** : जिन संवादों को पढ़कर यह अनुभव न हो कि पात्र कुछ वैसी बातें कर रहा है जो नहीं होनी चाहिए थी वे संवाद स्वाभाविक कहलाते हैं। अर्थात् पात्रों के संवाद बनावटी न लगें, पात्रों के स्वभाव के अनुकूल हों। उदाहरण के लिए मंसा एवं रुक्मिणी का यह स्वाभाविक संवाद देखें—
'रुक्मिणी ने विस्मित होकर पूछा—क्यों?
मंसा—मैं क्या जानूँ कहने लगे कि तुम यहाँ आवारों की तरह इधर-उधर फिरा करते हो।
रुक्मिणी—तूने कहा नहीं कि मैं कहीं नहीं जाता?
मंसा—कहा क्यों नहीं, मगर जब वह माने भी।"

उपर्युक्त संवाद पात्रानुकूल एवं स्वाभाविक है। मंसा शांत स्वभाव का है और रुक्मिणी उग्र स्वभाव की, इसलिए दोनों अलग-अलग तरह से बोलते हैं। एक अन्य उदाहरण देखिए—

'जियाराम ने बिगड़कर कहा—दूध बंद रहने से तो आपका महल बन रहा होगा, भोजन भी बंद कर दीजिए।
मुंशी जी—दूध पीने का शौक है, तो जाकर दुहा क्यों नहीं लाते? पानी के पैसे तो मुझसे न दिये जायेंगे।
जियाराम—मैं दूध दुहाने जाऊँ, कोई स्कूल का लड़का देख ले तब।"
जियाराम उदण्ड स्वभाव का है, इसलिए पिता से भी वह अपने स्वभाव के अनुकूल ही बात करता है। इस प्रकार संवाद स्वाभाविक होने चाहिए।

4 **सुसंबद्धता** : सुसंबद्धता से तात्पर्य यह है कि संवाद कथा एवं पात्र दोनों से जुड़े हों। उदाहरण—

''निर्मला चारपाई से उठकर बोली—आइए दीदी, बैठिए।
रुक्मणी ने खड़े कहा—मैं पूछती हूँ क्या तुम सबको घर से निकाल कर अकेले ही रहना चाहती हो।
निर्मला ने कातर भाव से कहा—क्या हुआ दीदी जी? मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा।
रुक्मणी—मंसाराम को घर से निकाले देती हो, तिस पर कहती हो मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा। क्या तुमसे इतना भी नहीं देखा जाता।''

उपर्युक्त उदाहरण में देखिए संवाद पीछे की घटना से जुड़े हुए हैं। मुंशी तोताराम मंसा को होस्टल में रखने के लिए उस पर दबाव डालते हैं। रुक्मिणी देवी को जब इसकी सूचना मिलती है तो वह तुरंत निर्मला के पास इस बारे में पूछने जाती है, क्योंकि वह निर्मला को ही इस बात के लिए दोषी समझती है। इस प्रकार कथा आगे बढ़ती है।

5 **संक्षिप्तता :** संवाद का एक गुण संक्षिप्तता भी है। यह आवश्यक नहीं कि लंबे संवादों से ही कथा आगे बढ़े। छोटे संवाद भी कहीं-कहीं प्रभावशाली होते हैं। उदाहरण के लिए जब जियाराम ने आत्महत्या कर ली है और डॉक्टर सिन्हा को इसकी सूचना मिल जाती है उस समय वे मंशी जी को केवल यह कह कर कि ''भाई साहब अब धैर्य से काम'' द्वारा इस घटना की सूचना देते हैं। इसी प्रकार जगह-जगह छोटे शब्दों द्वारा संवाद में संक्षिप्तता लायी जाती है।

6 **मार्मिकता :** जिन संवादों को पढ़कर पाठक का मन कथा पढ़ने में रम जाये वहाँ संवाद में मार्मिक गुण होता है। संवाद मन को स्पर्श करने लगे, पाठक में पात्र के प्रति सहानुभूति जाग उठे। उदाहरण—

''निर्मला ने काँपते हुए स्वर में कहा—मैं तो हूँ। भोजन करने क्यों नहीं चल रहे हो? कितनी रात गयी।
मंसाराम ने मुँह फेर कहा—मुझे भूख नहीं है।
निर्मला—यह तो मैं तीन बार भुंगी से सुन चुकी हूँ।
मंसाराम—तो चौथी बार मेरे मुँह से सुन लीजिए।
निर्मला—शाम को भी तो कुछ नहीं खाया था, भूख क्यों नहीं लगी?
मंसाराम ने व्यंग्य की हँसी हँस कर कहा—बहुत भूख लगेगी तो आयेगा कहाँ से। यह कहते-कहते मंसाराम ने कमरे का द्वार बन्द करना चाहा, लेकिन निर्मला किवाड़ों को हटाकर कमरे में चली आयी और मंसाराम का हाथ पकड़ सजल नेत्रों से विनय-मधुर स्वर में बोली—मेरे कहने से चलकर थोड़ा सा खा लो। तुम न खाओगे तो मैं भी जाकर सो रहूँगी। क्या मुझे रात भर भूखों मारना चाहते हो?

मंसाराम सोच में पड़ गया। अभी भोजन नहीं किया, मेरे ही इन्तजार में बैठी रही। पर स्नेह, वात्सल्य और विनय की देवी है या ईर्ष्या और अमंगल की मायाविनी मूर्ति। उसे अपनी माता का स्मरण हो आया। जब वह रूठ जाता था तो वे भी इसी तरह मनाने आया करती थी और जब तक न जाता था, वहाँ से न उठती थीं। वह इस विनय को अस्वीकार न कर सका बोला मेरे लिए आपको इतना कष्ट हुआ, इसका मुझे खेद है। मैं जानता कि आप मेरे इन्तजार में भूखी बैठी हैं, तो कभी खा आया होता।''

यहाँ निर्मला एवं मंसा के संवाद में मार्मिकता है। एक सौतेली माँ का सच्चे स्नेह से पूर्ण व्यवहार एवं पुत्र द्वारा वास्तविक स्थिति को जानने पर खेद प्रकट करना ऐसा है कि संवाद मन को छू लेते हैं।

7 **मनोरंजन युक्त : पाठक किसी उपन्यास की कथा को पढ़ने में गंभीरता से रम सकता है लेकिन महत्वपूर्ण एवं गंभीर विषय भी कभी-कभी उबाने लगते हैं। ऐसी हालत में कथा में कुछ ऐसे संवाद भी होने चाहिए जिससे पाठक का थोड़ा मनोरंजन भी हो सके। निर्मला उपन्यास की कथा में मुंशी जी के मित्र नयनसुख के प्रसंग से संवादों के द्वारा लेखक ने इसे उपस्थित किया है। उदाहरण—**

**''तोताराम ने गंभीर भाव में कहा—कहीं ऐसी हिमाकत न कर बैठना, नहीं तो पछताओगे। लौंडिया तो लौंडो से ही खुश रहती हैं। हम तुम अब उस काम के नहीं रहे। सच कहता हूँ मैं तो शादी करके पछता रहा हूँ। बुरी बला गले पड़ी। सोचा था, दो चार साल और जिन्दगी का मजा उठा लूँ, उल्टी आँते गले पड़ी।
नयनसुख—तुम क्या बातें करते हो? लौंडियों को पंजों में लाना क्या मुश्किल बात है, जरा सैर तमाशे दिखा दो, उनके रूप रंग की तारीफ कर दो, बस रंग जम जाय।
तोता—यह सब करके हार गया।
नयन—अच्छा, कुछ इत्र, फूल-पत्ते, चाट-वाट का भी मजा चखाया?**

तोता–अजी, यह सब कर चुका। दम्पत्ति शास्त्र के सारे मंत्रों का इम्तहान ले चुका, सब कोरी गप्पें हैं।"

दो मित्र आपस में यह विचार कर रहे हैं कि पत्नी को कैसे खुश किया जाय। यद्यपि दोनों अधेड़ उम्र के हैं, तोताराम की पत्नी उससे काफी छोटी है।

नयनसुख तरह-तरह के नुस्खे बताते हैं जिससे पत्नी को खुश किया जाय। उनकी बातें मनोरंजन पूर्ण हैं, सैर तमाशे दिखाना, इत्र, तेल, फूल आदि का प्रयोग करना इन सब बातों से मनोरंजन की सृष्टि की गई है।

8 **व्यंग्यपूर्णता** : कभी-कभी पात्र परिस्थितिवश दूसरे पात्र पर व्यंग्य करता है। संवादों के माध्यम से ऐसा करना संभव है। निर्मला उपन्यास की कथा में जब भूंगी, निर्मला द्वारा भेजी गई मिठाई लेकर मंसा के पास होस्टल पहुँचती है उस समय मंसा के संवाद में व्यंग्य है।

भूंगी–भैया, तुम तो कहते हो, यहाँ खूब खाता हूँ और मौज करता हूँ, मगर देह आधी भी नहीं रही। जैसे आये थे उसके आधे भी न रहे।
मंसाराम–यह तेरी आँखों का फेर है। देखना दो चार दिन में मुटा कर कोल्हू हो जाता हूँ कि नहीं उनसे यह भी कह देना कि रोना-धोना बंद करें मैंने सुना कि रोती हैं और खाना नहीं खाती। मुझसे बुरा कोई नहीं। मुझे घर से निकाला है तो आप चैन से रहे। चली हैं प्रेम दिखाने। मैं ऐसे त्रिया चरित्र बहुत पढ़े बैठा हूँ।"

उपर्युक्त संवाद में निर्मला पर व्यंग्य किया गया है कि उसने मंशा को घर से निकाला है और झूठे आँसू बहाती है।

9 **चरित्र प्रकाशन क्षमता** : आप जान चुके हैं कि संवाद ऐसे होने चाहिए जिनसे पात्रों का चरित्र उभरे। निर्मला उपन्यास में सभी पात्रों के चरित्र को संवादों के द्वारा उभारा गया है।

"निर्मला ने रोकर कहा–मैंने उन्हें कुछ कहा हो तो मेरी जबान कट जाय। हाँ जाकर उन्हें बुला लाइये।
रुक्मिणी ने तीव्र स्वर में कहा–तुम क्यों नहीं बुला लाती? क्या छोटी हो जाओगी? अपना होता तो क्या इसी तरह बैठी रहती?"

उपर्युक्त संवाद में जहाँ निर्मला के सरल, निष्कपट चरित्र को उभारा गया है वहीं रुक्मिणी का ईर्ष्यालु, कटुभाषिणी तथा कठोर हृदय महिला का चरित्र उभर का सामने आया है। परिस्थितिवश पात्रों के चरित्र में बदलाव भी आता है। इसे भी लेखक ने संवादों के द्वारा दिखाया है। रुक्मिणी देवी निर्मला के चरित्र को पहचान जाती है और कथा के अंत में हम देखते हैं कि इसके लिए पश्चाताप भी करती हैं।
"रुक्मिणी रोती हुई बोली–बहू, तुम्हारा कोई अपराध नहीं। ईश्वर से कहती हूँ, तुम्हारी ओर से मेरे मन में जरा भी मैल नहीं है। हाँ मैंने सदैव तुम्हारे साथ कपट किया, इसका मुझे मरते दम तक दुख रहेगा।"

10 **सोद्‌देश्यता** : कोई भी रचनाकार अपनी रचना किसी न किसी उद्‌देश्य को लेकर करता है। वह पात्रों के संवादों के माध्यम से अपने उद्‌देश्य को प्रकट करता है। निर्मला उपन्यास के संवाद भी सोद्‌देश्य हैं। दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के भयानक परिणाम को लेखक संवादों के द्वारा प्रस्तुत करता चलता है। कथा के आरंभ में हम देखते हैं कि दहेज की बात को लेकर समस्या शुरू होती है।

"कल्याणी दस दिन में पाँच हजार से दस हजार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाए।
उदयभानु–क्या करूँ जग हँसाई भी तो अच्छी नहीं लगती कोई शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े दर्शन छोटे। फिर जब वह मुझसे दहेज एक पाई नहीं लेते तो यह मेरा भी कर्त्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रखूँ।"

इस प्रकार आदि से अंत तक लेखक ने अपने उद्‌देश्य को सामने रख कर संवादों की रचना की है।

बोध प्रश्न

16 संवाद के पाँच गुण हैं सरलता, अनुकूलता, स्वाभाविकता, सुसंबद्धता, मार्मिकता। आप अन्य पाँच गुण बताइये।

17 मार्मिक संवाद का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

....

18 "रँगीलीबाई ने विस्मित होकर कहा—अजी नहीं, तीन सेर भला क्या खायेगा। आदमी है या बैल?
भाल—तीन सेर तो अपनी मुँह से कह रहा है। चार से कम न खायी होगी पक्की तोल।
रँगीली—पेट में शनीचर है क्या?
भाल—आज और रह गया तो छह सेर पर हाथ फेरेगा।"

उपर्युक्त संवाद में कौन से गुण हैं? कारण सहित बताइए।

....

....

....

....

अभ्यास

12 "चाहता हूँ, तुम्हारे लिए कोई अच्छा सा रसोइया ठीक कर दूँ।
मंसाराम—वहाँ रसोइया बहुत अच्छा भोजन पकाता है।
मुंशी जी ने कहा—अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। ऐसा न हो तो पढ़ने के पीछे स्वास्थ्य खो बैठो।
मंसाराम—वहाँ नौ बजे के बाद कोई पढ़ नहीं पाता और सबको नियम से खाना, खेलना पड़ता है।"

उपर्युक्त संवाद में सुसंबद्धता का गुण मानने के क्या आधार हो सकते हैं। समझाइए।

....

....

....

....

....

16.4 सारांश

- किसी देश का लेखक अपने परिवार एवं समाज से अवश्य प्रभावित होता है। जब वह किसी उपन्यास की रचना करता है उस समय उसकी रचना में भी परिवार एवं समाज की छाप मिलती है। आप भी निर्मला उपन्यास के परिवेश का चित्रण कर सकते हैं।
- प्रत्येक लेखक की रचना करने की अपनी रीति होती है। उसकी रचना पर उसके व्यक्तित्व की छाप रहती है। आप इस पर ध्यान दें तो उपन्यास की शैली को स्पष्ट कर सकते हैं।
- कोई भी रचनाकार किसी भाषा में रचना करता है, उपन्यास की कथावस्तु के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया जाता है। उपन्यास के पात्रों के संवाद भी उपन्यास के प्रतिपाद्य को ध्यान में रख कर किये जाते हैं। आप उपन्यास की भाषा एवं संवाद का विश्लेषण कर सकते हैं।
- निर्मला उपन्यास में परिवेश, भाषा-शैली, संवाद आदि का कितना सटीक प्रयोग किया गया है। उसे भी आप स्पष्ट कर सकते हैं।

16.5 शब्दावली

ऊँचा दर्जा : उच्च कोटि

अभिप्राय : तात्पर्य, जो कहना चाहते हैं

प्रतिबिम्ब : छाया

अपाहिज : लूला-लंगडा, काम करने के अयोग्य

बुनियाद : नींव, आधार

कुरीति : बुरी रीति, कुप्रथा, बुरी चाल

विकृत : जिसमें किसी प्रकार का विकार हो गया हो, बिगड़ा हुआ

अभिशाप : शाप दिये हुए के समान दुःखदायी स्थिति

संस्कार : पूर्व जन्म कुल मर्यादा, शिक्षा, सभ्यता आदि का मन पर पड़ने वाला प्रभाव

व्यंग्यबाण : किसी का मजाक उड़ाना, उसे हीन सिद्ध करने आदि के लिए कहा गया ऐसा कथन जो उसे पीड़ा पहुँचाये

अनबन : बिगाड़, विरोध, खटपट

झेलना : सहना

उपकरण : साधन, वह वस्तु जिसके द्वारा या जिसकी सहायता से

नाटकीय : नाटक जैसी, बहुत ही आकस्मिक रूप से परन्तु कुशलतापूर्वक और चतुरतापूर्वक किया जाने वाला कार्य

अलंकार : साहित्य लेखन के समय वर्णन करने की वह रीति जिससे भाषा या कथ्य में सुंदरता, चमत्कार तथा रोचकता आती है

तत्सम : किसी भाषा का वह शब्द जिसका व्यवहार दूसरी अथवा देशी भाषाओं में मूल रूप में या ज्यों का त्यों हो जैसे हिंदी में प्रयुक्त संस्कृत शब्द—प्रसन्न, सत्कार, क्रीड़ा, पैशाचिक।

तद्भव : किसी भाषा का वह शब्द जिसका रूप दूसरी अथवा संस्कृत का मूल शब्द दृष्टि का तद्भव रूप दीठि है। तथा निष्ठुर का निठुर

बोधगम्य : समझ में आने योग्य

सटीक : बिल्कुल ठीक

मार्मिक : मन को छू लेने वाला

16.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

परिवेश का कोशगत अर्थ है ''घेरा'', लेकिन साहित्यिक रचना के संदर्भ में हम इस शब्द का प्रयोग इस अर्थ में करते हैं कि एक लेखक अपने परिवार एवं समाज में जो कुछ देखता, सुनता है उसे अपनी रचना कौशल से उपन्यास जैसी साहित्यिक विधा में ढालता है। अतः यह परिवार तथा समाज उसका परिवेश कहलाता है।

एक लेखक अपने परिवार, समाज एवं देश में जो कुछ देखता-सुनता है उसे अपनी रचना में स्थान देता है, साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास विधा में मानव जीवन से संबंधित परिवेश को विस्तृत रूप में चित्रित कर सकता है।

iii) 4 ii)

अभ्यास

निर्मला उपन्यास में धार्मिक पाखण्ड, विश्वास, अंधविश्वास आदि से ग्रसित तत्कालीन सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्रण किया गया है। पंडित मोटेराम द्वारा भालचंद्र को धर्म का भय दिखा कर ठगना, पाखण्डी साधु द्वारा तोताराम के सबसे छोटे पुत्र को योग विद्या द्वारा माँ का दर्शन कराने का प्रलोभन देना तथा सुधा के पुत्र की तबियत खराब होने पर डॉक्टर के स्थान पर झाड़ फूँक द्वारा इलाज कराना आदि प्रसंग इसके उदाहरण हैं।

क) जब कोई लेखक उपन्यास की कथा में किसी घटना या दृश्य का वर्णन करता है तो उसे हम वर्णनात्मक चित्रण की संज्ञा देते हैं यहाँ लेखक विवाह की तैयारी का वर्णन कर रहा है, अतः यह वर्णनात्मक चित्रण है।

ख) ii

क) उपर्युक्त संवाद द्वारा समाज में व्याप्त दहेज जैसी कुप्रथा एवं उससे उत्पन्न समस्या का पता चलता है। मध्यवर्गीय परिवार में कन्या के विवाह के लिए कर्ज लेना पड़ता है फिर उसे चुकता न कर पाने पर पूरे परिवार को कष्ट भोगना पड़ता है।

4 क) उपर्युक्त संवाद में मोटेराम के कथन द्वारा यह पता चलता है कि तत्कालीन समाज में दहेज प्रथा का इतना जोर था कि इने-गिने लोग ही बिना दहेज लिए अपने पुत्र का विवाह करते थे।

ख) ii ☑

ग) iii ☑

5 ii) ☑

6 उपर्युक्त कथन में लेखक ने समाज के उस वर्ग पर व्यंग्य किया है जो शिक्षित होकर भी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के बजाय उन्हें बढ़ाते हैं। भुवनमोहन डॉक्टरी पढ़ रहा है फिर भी वह दहेज नहीं मिलने के कारण निर्मला जैसी गुणवती कन्या के साथ विवाह करने से साफ इन्कार कर देता है। वह दहेज मिलने पर किसी भी प्रकार की लड़की से विवाह करने के लिए तैयार है। यहाँ तक कि उसकी दिली इच्छा है कि कोई विधवा की कन्या मिले जिससे सारे धन पर उसका अधिकार हो जाय।

7 निर्मला उपन्यास की रचना सन् 1927 में हुई। राजनीतिक स्थिति में एक नया मोड़ आ रहा था। गांधी जी के आह्वान पर देश की जनता क्रूर अंग्रेजी शासन की समाप्ति के लिए आंदोलन कर रही थी। प्रेमचंद ने बीस साल की सरकारी नौकरी का परित्याग कर दिया था और साहित्यिक रचना द्वारा जनजागृति में लग गए थे। निर्मला उपन्यास में भी निर्मला एवं कृष्णा के वार्तालाप द्वारा उन्होंने देश की राजनीति पर प्रकाश डाला है। वार्तालाप में खादी और चर्खे के उल्लेख से स्वदेशी आंदोलन का ध्यान दिलाया गया है।

बोध प्रश्न

5 शैली का कोशगत अर्थ है, ढंग, तरीका, किंतु साहित्य के संदर्भ में इसका तात्पर्य है, "बोल या लिख कर प्रकट करने का वह विशिष्ट ढंग जिस पर वक्ता या लेखक के काल तथा समाज आदि की छाप लगी होती है"। उदाहरण के लिए भारतेंदु की शैली, प्रेमचंद की शैली।

6 उपर्युक्त अंश में लेखक ने दो प्रकार की शैली का प्रयोग किया है। वे शैलियाँ हैं—वर्णनात्मक शैली और आलंकारिक शैली। "मुंशी तोताराम से ··· हो जाता" तक वर्णनात्मक शैली है क्योंकि यहाँ से मुंशी तोताराम के बारे में वर्णन द्वारा यह बताता है कि वे ऐसे थे, ऐसा किया, ऐसा कर रहे थे। लेकिन इसके बाद इस अंश में "लेकिन जब अपनी विनोद वाटिका ··· उजाड़ दूँ" तक का वर्णन आलंकारिक शैली में है। कारण यहाँ लेख गद्य की भाषा से हटकर पद्य के समान भाषा का प्रयोग किया है। तोताराम की मनोदशा को रूपक द्वारा स्पष्ट किया गया है। वाटिका, पौधे, फूल, क्यारी आदि प्रयोग आलंकारिक हैं।

7 कोई लेखक जब शब्दों द्वारा पात्रों के बाह्य रूप को स्पष्ट करता है तब हम उसे रेखाचित्र शैली का नाम देते हैं। उदाहरण के लिए मुंशी तोताराम साँवले रंग के मोटे-ताजे आदमी थे। उम्र अभी चालीस से अधिक न थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम से सिर के बाल पका दिये थे। तोंद निकल आयी थी। इसमें तोताराम के बाह्य रूप को अंकित किया गया है।

8 उपर्युक्त कथन में लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। रुक्मिणी देवी निर्मला के ऊपर व्यंग्य कर रही हैं।

9 जब लेखक कथा का वर्णन करते समय किसी पात्र के द्वारा आकस्मिक रूप से कुशलता एवं चतुराई पूर्वक ऐसा कार्य करवाये या दृश्य में परिवर्तन करे जिसकी पूर्व कल्पना पाठक को न हो। इसे ही हम नाटकीय शैली कहते हैं।

10 स्वाभाविकता
बोलचाल की भाषा

11 उपन्यासकार अपने पात्रों के द्वारा समाज के वर्ग विशेष को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। एक शिक्षित पात्र की भाषा तथा अशिक्षित पात्र की भाषा में अंतर होता है। पात्रों की मानसिक स्तर और मनोभावों के अनुकूल भी भाषा में अंतर आता है। इसे ही पात्रानुकूल भाषा कहते हैं। प्रसंगानुकूल भाषा का तात्पर्य है कथा में घट रही घटना के अनुकूल भाषा यदि कथा में दुःख की स्थिति का वर्णन है तो भाषा भी वैसे ही होगी। यदि मनोरंजन या सुख की स्थिति का वर्णन है तो भाषा उसी के अनुसार प्रसन्नतापूर्वक और प्रवाहमय होगी।

अभ्यास

उपर्युक्त अंश में भाषा पात्रानुकूल है। मंसाराम की भाषा उसके स्वभाव के अनुकूल है, जबकि रुक्मिणी की भाषा उसके स्वभाव के अनुकूल कठोर तथा व्यंग्यपूर्ण है। "अम्मा जी की कृपा होगी, न त्रिया चरित्र क्या जाने आदि प्रयोग कठोर एवं व्यंग्यपूर्ण हैं।" रुक्मिणी निर्मला से चिढ़ती है इसलिए उसकी उदारता या विनम्रता के प्रति संदेह व्यक्त करने के लिए व्यंग्य का सहारा लेती है। यहाँ कृपा का अर्थ सचमुच कृपा नहीं है, बल्कि इस शब्द में रुक्मिणी के हृदय में निर्मला को अधिकार मिल जाने से रुष्टता का भाव है और वह उसके अधिकार को बुरा समझती है।

उपर्युक्त कथन से तोताराम की विकल मनोदशा प्रकट होती है। उनके कथन से पुत्र के स्वास्थ्य के विषय में उनकी चिन्ता तथा दयनीयता का संकेत मिलता है। शिक्षित एवं वकील होने के नाते उनकी भाषा में संस्कृत एवं अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है। एक ओर जहाँ वह ईश्वर, कोप, कुल-दीपक, हृदय, कष्ट आदि संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करते हैं, वहीं दूसरी ओर हालत, दुश्मन, नाजुक, गुलामी, जिंदगी, होश आदि अरबी-फारसी के शब्दों का। प्रचलित शब्दों के प्रयोग से भाषा सरल एवं बोधगम्य बन गई है।

बोध प्रश्न

12 उपन्यास के पात्रों के आपस में वार्तालाप को संवाद कहते हैं। किसी पात्र का अपने आप से बात करना भी संवाद माना जाता है, जिसके आत्मालाप तथा स्वगत कथन नामक दो भेद होते हैं।

13 उपन्यास के पात्रों के वार्तालाप में जब किसी अज्ञात या पहले जिसकी कल्पना न की गयी हो, ऐसी बात उपस्थिति हो जाती है और पात्र तथा पाठक को उसके घटित होने या उसके विषय में सुनने से आश्चर्य दुख या सहसा विशेष हर्ष होता है अथवा जब घटनाओं के मोड़ से कथा आगे बढ़ती है और संवादों के आगे या पीछे लेखक की ओर से कोई संकेत नहीं रहता तो ऐसे संवादों को नाटकीय संवाद कहते हैं।

14 जब उपन्यास के पात्र अकेले ही चिंतन करते हुए किसी कार्य या घटना के बारे में सोचते हैं तब उनकी इस आत्मचिंतन करते हुए बोलने की क्रिया को आत्मालाप परक संवाद कहते हैं, किंतु साथ ही साथ जब कोई पात्र बात को किसी अन्य पात्र के साथ कर रहा हो, लेकिन साथ ही साथ उसके मन में स्वयं भी वार्तालाप चल रहा हो तो ऐसे संवाद को स्वगत कथन कहते हैं।

15 किसी पात्र के मन की सच्ची स्थिति या उसके मन के भावों को प्रकट करने वाले संवाद को भावपूर्ण संवाद कहते हैं।

अभ्यास

10 उपर्युक्त संवाद "विश्लेषणात्मक संवाद" है। इनमें लेखक संवाद से पूर्व पात्रों के बारे में भी कुछ बताता चला है। जैसे "कहार को यह हुक्म देकर बाबू साहब घर में गए और स्त्री से बोले" इसी प्रकार आगे भी रंगीलीबाई का लेखक की ओर से उल्लेख है।

11 उपर्युक्त संवाद नाटकीय है। इसमें लेखक ने अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ा है। पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं और कथा आगे बढ़ती है। नाटकीयता यह है कि यद्यपि कल्याणी जानती है कि बारात नहीं आएगी क्योंकि संबंध टूट गया है, पर कृष्णा इस वास्तविक स्थिति से परिचित नहा है और वह उत्सव की कल्पना करके प्रसन्न हो रही है। कल्याणी का उत्तर अविश्वसनीय और आकस्मिक लगता है जिससे उसके हृदय के उल्लास को सहसा धक्का लगता है। उसने इस बात की कभी कल्पना न की थी।

बोध प्रश्न

16 संक्षिप्तता, मनोरंजनयुक्तता, व्यंग्यपूर्णता, चरित्र प्रकाशन क्षमता, सोद्देश्यता।

17 जिन संवादों से पाठक में कथा पढ़ने की रुचि बढ़ जाय और वह पात्रों के मनोभाव से जुड़ जाय ऐसे हृदयग्राही संवाद "मार्मिक संवाद" कहलाते हैं।

18 उपर्युक्त संवाद में मनोरंजकता का गुण है। "आदमी है या बैल", "पेट में शनीचर है क्या" आदि कथनों से मनोरंजन की सृष्टि हुई है।

अभ्यास

12 जब संवादों के द्वारा पिछली घटना आगे की घटना से जुड़ती चलती है तब वैसे संवादों में संवद्धता के गुण निहित होते हैं। उपर्युक्त संवाद में पिछली घटना जुड़ी हुई है। मंसाराम पिछली रात की घटना के कारण घर छोड़ कर होस्टल जा रहा है। मुंशी जी उससे रसोईया ठीक करने की बात कहते हैं, लेकिन मंसा कहता है कि होस्टल में रसोईया अच्छा खाना बनाता है। मंसा के होस्टल जाने के निश्चय से तोताराम के ही इच्छा पूरी हो रही है। इससे कथा भी आगे बढ़ती है। पिता-पुत्र में होस्टल की व्यवस्था, स्वास्थ्य तथा अध्ययन को लेकर जो बातें हो रही हैं वे एक दूसरे से इस प्रकार जुड़ी हुई हैं कि बात में से बात निकलती है और विकसित होती है। इस प्रकार के क्रम-निर्वाह और बातों के आपसी संबंध की रक्षा के कारण ही इस संवाद में सुसंबद्धता का गुण माना गया है।

इकाई 17 "निर्मला" : प्रतिपाद्य एवं प्रेमचंद का वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 मूल्यांकन
    17.2.1 प्रतिपाद्य
    17.2.2 शीर्षक की सार्थकता
17.3 प्रेमचंद का वैशिष्ट्य
    17.3.1 प्रेमचंद के उपन्यास
    17.3.2 प्रेमचंद के औपन्यासिक पात्र
    17.3.3 प्रेमचंद के उपन्यासों में देशकाल का चित्रण
    17.3.4 प्रेमचंद के उपन्यासों की भाषा
    17.3.5 प्रेमचंद का औपन्यासिक शिल्प
    17.3.6 प्रेमचंद के उपन्यासों की सोद्देश्यता
17.4 सारांश
17.5 शब्दावली
17.6 उपयोगी पुस्तकें
17.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

यह इकाई इस खंड की अंतिम इकाई है। अब तक आपको उपन्यास के विषय में बहुत कुछ जानकारी मिल गयी है। आशा है आप उपन्यास की परिभाषा तथा हिंदी उपन्यास के आरंभ, विकास एवं विस्तार को अच्छी प्रकार से समझ गए होंगे। आपने 12 वीं एवं 13 वीं इकाइयों में निर्मला उपन्यास का वाचन भी कर लिया है। 14 वीं, 15 वीं एवं 16 वीं इकाइयों में आपने क्रमशः उपन्यास की कथावस्तु, चरित्र चित्रण, परिवेश एवं संरचना शिल्प से संबंधित विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली है। अब हम निर्मला उपन्यास के प्रतिपाद्य एवं उपन्यासकार प्रेमचंद के वैशिष्ट्य के बारे में विचार करेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप :

- उपन्यास विधा के मूल्यांकन के बारे में बता सकेंगे,
- किसी उपन्यास के प्रतिपाद्य एवं शीर्षक का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकेंगे,
- निर्मला उपन्यास के प्रतिपाद्य तथा शीर्षक की सार्थकता का विश्लेषण कर सकेंगे,
- उपन्यासकार प्रेमचंद का वैशिष्ट्य बता सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

आपने उपन्यास खंड से संबंधित छह इकाइयों का अध्ययन कर लिया है। उनमें प्रेमचंद का उपन्यास निर्मला का वाचन भी शामिल है। आपको उपन्यास की कहानी स्पष्ट हो गई होगी। आपने यह भी अनुभव किया होगा कि लेखक इस उपन्यास के माध्यम से कुछ कहना चाहता है, या कोई संदेश हम तक पहुँचाना चाहता है। कोई भी रचनाकार चाहे वह किसी विधा में लिख रहा हो उसके लेखन के पीछे कोई न कोई संदेश रहता है। इस पाठ में हम इसी विषय पर चर्चा करेंगे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद का आगमन युगांतकारी महत्व रखता है। उनके आगमन से हिंदी उपन्यास को एक नयी दिशा मिली। उन्होंने हिंदी उपन्यास को सामाजिक यथार्थ से जोड़कर सोद्देश्यता प्रदान की। उनके उपन्यासों में जहाँ शोषित, उत्पीड़ित जनता के दुःख दर्द को स्थान दिया गया, वहीं राष्ट्रीय भावना को भी प्रस्तुत किया गया है। तत्कालीन समाज की यथार्थ स्थिति को उन्होंने हूबहू प्रस्तुत किया है। प्रथमतः उनके उपन्यास आदर्शवादी रहे, उनमें कथा के द्वारा पात्रों के चरित्र को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया। धीरे-धीरे आदर्श की जगह यथार्थता का स्थान बढ़ता गया। बाद के उपन्यासों में उन्होंने यथार्थ एवं आदर्श का समुचित मेल किया है। जीवन के प्रत्येक पक्ष का उद्घाटन उनके उपन्यासों से मिलता है किंतु महिलाओं और

किसानों के प्रति उन्होंने विशेष सहानुभूति जताई है। साहित्यकार के कर्त्तव्य के बारे में वे स्वयं कहते हैं "जो दलित है, पीड़ित हैं, वंचित हैं, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। (प्रेमचंद, कुछ विचार, सरस्वती प्रेस बनारस पृ. 10)। उनके उपन्यासों में उपर्युक्त विचार का ध्यान रखा गया है। इस पाठ के माध्यम से हम आपको किसी उपन्यास के मूल्यांकन करने से संबंधित जानकारी देंगे जिनमें उपन्यास का प्रतिपाद्य और शीर्षक की सार्थकता पर विचार किया जाएगा। निर्मला उपन्यास का प्रतिपाद्य क्या है, इस उपन्यास का शीर्षक "निर्मला" कितना सार्थक है इन्हीं बिन्दुओं पर विस्तृत जानकारी दी जाएगी। हम इस पाठ के द्वारा यह भी जानेंगे कि हिंदी उपन्यास क्षेत्र में उनकी लेखन की किन विशेषताओं ने उन्हें उपन्यास सम्राट की ऊँचाई तक पहुँचाया।

17.2 मूल्यांकन

आइए प्रथमतः हम मूल्यांकन शब्द का तात्पर्य जान लें। मूल्यांकन शब्द का अर्थ है, किसी चीज का मूल्य आँकना। अर्थात् कोई चीज कितनी अच्छी है या बुरी है इसके बारे में अपना निर्णय देना। लेकिन यहाँ मूल्यांकन से हमारा तात्पर्य है उपन्यास के प्रतिपाद्य और शीर्षक पर विचार करना न कि अपना निर्णय देना।

17.2.1 प्रतिपाद्य

किसी उपन्यास का मूल कथ्य क्या है? अर्थात् लेखक इस उपन्यास की कथा के द्वारा क्या कहना चाहता है, इसे ही हम उपन्यास का प्रतिपाद्य या उद्देश्य कहते हैं। जब हम निर्मला उपन्यास के शीर्षक को लेकर कहें तो कह सकते हैं कि इसमें निर्मला नाम की लड़की के संपूर्ण जीवन की कहानी है। लेकिन उपन्यास का कथ्य यह नहीं है। निर्मला सामान्य नारी नहीं बल्कि उस महिला वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रही है जिसे समाज की अमानुषिक व्यवस्था के कारण पीड़ित होकर प्राणोत्सर्ग करना पड़ता है। लेखक ने दहेज प्रथा एवं अनमेल विवाह जैसी सामाजिक समस्या को लिया है। साथ ही समाज की अन्य बुराइयों को कथा के माध्यम से उभारा है। उपन्यास की कथा पर संपूर्ण रूप से विचार करें तो पायेंगे कि लेखक का मूल उद्देश्य है–सामाजिक समस्याओं को दर्शाना। दहेज प्रथा जैसी बुराई से अनमेल विवाह का संबंध है। दहेज न दे सकने की स्थिति में ही किसी कन्या का अयोग्य वर के साथ विवाह करवा दिया जाता है। फिर उस अनमेल विवाह से जो समस्याएँ खड़ी होती हैं उसका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में है। हम इस उपन्यास के प्रतिपाद्य को निम्नलिखित बिंदुओं में विभक्त कर सकते हैं।

i) अमानवीय दहेज प्रथा का चित्रण
ii) अनमेल विवाह के कुप्रभाव का चित्रण
iii) सामाजिक अंधविश्वासों का चित्रण

i) अमानवीय दहेज प्रथा का चित्रण : दहेज प्रथा क्या है? इसे पहले जानें यह प्रथा बहुत पुरानी प्रथा है। लेकिन इसका आरंभिक रूप ऐसा अमानवीय नहीं था। किसी कन्या के विवाह के समय माता-पिता अपनी इच्छा से पुत्री के लिए उपहार आदि दिया करते थे। धीरे-धीरे यह परंपरा बदलने लगी। वर या वर के पिता कन्या के पिता से मुँहमाँगा धन पाने के कारण इस प्रथा में विकृति शुरू हो गई। और यह प्रथा ऐसा विकराल रूप लेकर समाज के सामने उपस्थित हो गई कि इससे कन्याओं का जीवन दूभर हो गया। दहेज की माँग पूरा न होने पर योग्य वर से विवाह टूट जाना, दहेज की रकम को पूरा करने के लिए पिता को कर्ज़ लेना और कर्ज़ न चुकाने की स्थिति में पिता की दयनीय अवस्था आदि बुराइयाँ बढ़ती चली गईं। प्रेमचंद के समय में और आज भी यह समस्या भारतीय समाज के सामने एक कठिन समस्या है। प्रेमचंद ने पहली बार इस समस्या की ओर निर्मला उपन्यास के द्वारा समाज का ध्यान आकृष्ट किया।

उदयभानु लाल अपनी पुत्री का विवाह ठीक हो जाने पर बहुत प्रसन्न हैं। कारण यह भी है कि वर पक्ष की ओर से किसी प्रकार की दहेज की माँग नहीं की गई है। इसीलिए वे खुद कुछ अधिक खर्च करना चाहते हैं। प्रतिदिन विवाह के खर्च को लेकर हिसाब लगाते हैं और प्रतिदिन रकम बढ़ती जाती है उदयभानु की पत्नी कल्याणी विवाह के खर्चे की रकम बढ़ाने से दुःखी होती है। उसे इस बात की भी चिंता है कि दूसरी पुत्री और पुत्र के लिए पैसा रखना है। साथ ही यदि कर्ज अधिक लेना पड़े तो उसे किस प्रकार चुकाया जायेगा। इन्हीं बातों को लेकर पति-पत्नी में वाद-विवाद होता है। इसी स्थान से लेखक ने दहेज के कारण आने वाली परेशानियों को दर्शाना शुरू किया है। वाद-विवाद से दुःखित हो उदयभानु घर छोड़कर निकलते हैं। अवसर पाकर मतई नामक

उनकी हत्या कर देता है। कल्याणी के लिए निर्मला का विवाह जरूरी हो जाता है। वह ता भरा पत्र लिखकर पंडित मोटेराम द्वारा भालचंद्र के पास भिजवाती है। यद्यपि भालचंद्र ुभानु के मित्र थे, लेकिन दहेज मिलने की संभावना समाप्त होते देख विवाह तोड़ देते हैं। क ने बड़े कौशल से भालचंद्र द्वारा समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व दिखाया है जो ऊपरी से दहेज प्रथा का विरोध करते हैं, लेकिन खुद दहेज के कारण बेटे का विवाह तोड़ देते हैं और ा मिलने पर ही विवाह करते हैं। निम्नलिखित संवादों से आप स्वयं इस तथ्य को पहचान ।

टे—आपसे ऐसी ही आशा थी। आप जैसे सज्जनों के दर्शन दुर्लभ हैं, नहीं तो आज कौन पिता ा दहेज का विवाह करता है।
ा—महाराज, दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती। उनसे तो सम्बन्ध हो ा ही लाखों रुपये के बराबर है। मैं इसको अपना अहोभाग्य समझता हूँ। कितनी उदार आत्मा रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं, तिनके के बराबर परवाह नहीं की। बुरा रिवाज है, ा बुरा! बस चले दहेज लेने वालों और दहेज देने वालों दोनों को ही गोली मार दूँ, चाहे फाँसी न हो जाए। पूछो आप लड़के का विवाह करते हैं या उसे बेचते हैं? अगर आपको लड़के की ी में दिल खोलकर खर्च करने का अरमान है, तो शौक से खर्च कीजिए, लेकिन जो कुछ जए, अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए। नीचता है, घोर नीचता है। बस चले तो इन पाजियों को गोली मार दूँ।"

यही भालचंद्र बातें बना कर विवाह तोड़ देते हैं।

बू साहब समझ गए कि पंडित मोटेराम कोरे पोथी के ही पंडित नहीं, वरन् व्यवहार नीति में वतुर हैं। बोले—पंडित जी, हलफ से कहता हूँ, मुझे उस लड़की से जितना प्रेम है, उतना ी लड़की से भी नहीं, लेकिन जब ईश्वर को मंजूर नहीं है, तो मेरा क्या बस है। यह मृत्यु प्रकार की अमंगल सूचना है, जो विधाता की ओर से मिली है। यह किसी आने वाली मुसीबत आकाशवाणी है। विधाता स्पष्ट रीति से कह रहा है। नहीं, जानबूझकर मक्खी नहीं निगली ा। समधिन साहब को समझाकर कह दीजिएगा, मैं उनकी आज्ञा पालन करने को तैयार हूँ, ान इसका परिणाम अच्छा न होगा। स्वार्थ के वश में अपने परम मित्र की संतान के साथ यह ाय नहीं कर सकता।"

ा ही नहीं स्वयं पढ़े-लिखे वर की क्या स्थिति है यह उसके कथन से साफ पता चलता है कि भी दहेज का प्रबल समर्थक है।

ान—शादी करनी तो चाहिए अम्माँ, पर मैं करूँगा नहीं।
ी—क्यों?
ा—इसमें शर्म की कौन-सी बात है? रुपये किसे काटते हैं? लाख रुपये तो जन्म में भी न जमा पाऊँगा। इस साल पास भी हो गया, तो कम से कम पाँच साल तक रुपये की सूरत नजर न गी। फिर सौ-दो सौ रुपये महीने कमाने लगूँगा। पाँच छः सौ तक पहुँचते-पहुँचते उम्र के भाग बीत जायेंगे। रुपये जमा करने की नौबत न आएगी। दुनिया का कुछ मजा न उठा ा। किसी धनी लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज़्यादा नहीं चाहता, बस एक ा नकद हो या फिर कोई ऐसी जायदाद वाली बेवा मिले, जिसके एक ही लड़की हो।"

ा ही नहीं, वह किसी भी लड़की से शादी के लिए तैयार है बस दहेज मिलना चाहिए। ालिखित संवाद देखिए—

ोली—चाहे औरत कैसी ही मिले?
ा—धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे वह गालियाँ भी सुनाये तो चूँ न करूँ। दुधारू गाय की किसे बुरी मालूम होती है।"

ा के कारण निर्मला का विवाह टूट जाता है। माता कल्याणी के सामने यह समस्या गंभीर हो ा है। पंडित मोटेराम दूसरे वर की तलाश करते हैं। दहेज न देना पड़े और निर्मला का विवाह ो जाए इसलिए कल्याणी दूहाजू तोताराम को पसंद करती है। भाग्य के भरोसे अपनी संतान ौंप देती है।

ान किसको प्यारी नहीं होती? कौन उसे सुखी नहीं देखना चाहता? पर जब अपना काबू भी ईश्वर का नाम लेकर वकील साहब को टीका कर आइए। आयु कुछ अधिक है, लेकिन मरना ा विधि के हाथ है।"

प्रकार दहेज न दे सकने के कारण उसका परिणाम सामने आता है, और सोलह वर्षीय निर्मला

का अनमेल विवाह हो जाता है।

ii) **अनमेल विवाह के कुप्रभाव का चित्रण** : प्रेमचंद ने निर्मला उपन्यास में अनमेल विवाह के दुष्परिणाम को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। अपने पिता के उम्र का पति पाकर निर्मला को दाम्पत्य सुख नहीं मिल पाया। उसका युवा मन विद्रोह कर उठता था।

"निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौंदर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वालामी उठती मन में आता इस घर में आग लगा दूँ।"

इस अनमेल विवाह का दुष्परिणाम उस समय और गंभीर होता जाता है जब तोताराम के मन में युवक पुत्र और पत्नी के संबंध को लेकर शंका उत्पन्न होती है। पत्नी के द्वारा उपेक्षा का भाव और निर्मला का सौतेले पुत्रों को स्नेह करना दोनों उनकी शंका को बढ़ाते हैं। इधर उनकी विधवा बहन रुक्मिणी निर्मला को इसलिए सताती रहती है क्योंकि अब घर की मालकिन वे नहीं निर्मला है। निर्मला इस प्रकार के पारिवारिक माहौल में अपने को ढालना चाहती है, लेकिन पति की शंका इस तरह बढ़ती है कि वे पुत्र को घर से बाहर रहने की सलाह देते हैं। युवा पुत्र को जब पिता की शंका का अनुमान होता है तो वह मानसिक व्याधि से पीड़ित हो जाता है। उसकी हालत दिन पर दिन बिगड़ती जाती है। डॉक्टर के लाख प्रयत्न के बावजूद उसकी मृत्यु हो जाती है। पुत्र की मृत्यु के बाद तोताराम को अपनी भूल का अहसास होता है। लेकिन पुत्र के वियोग में उनकी अवस्था गिरती ही जाती है। मुकदमे का कार्य ठीक से नहीं कर पाने के कारण आमदनी कम होती जाती है। आर्थिक तंगी से घर में दिन-रात कलह बढ़ता जाता है। दूसरा पुत्र निर्मला के सभी गहने चुरा लेता है। और जब पुलिस तहकीकात के द्वारा असली चोर का पता लगता है तो तोताराम घूस देकर मामले को दबवा देते हैं। जियाराम ग्लानि से आत्महत्या कर लेता है। तीसरा पुत्र घर के दिन-रात के कलह से ऊबकर घर छोड़ जाता है और तोताराम सारा दोष निर्मला पर डालते हैं। वे भी अंतिम पुत्र को खोने पर घर छोड़ देते हैं। निर्मला नितांत अकेली पड़ जाती है। पुत्री और रुक्मिणी देवी के साथ वह बड़ी तंगी हालत में जीवन के और कुछ दिन काटती है। अंततः बिमारी की स्थिति में वह भी प्राण त्याग देती है।

इस प्रकार दहेज और अनमेल विवाह के फलस्वरूप भरा पूरा परिवार नष्ट हो जाता है। दहेज के कारण निर्मला के जीवन में समस्याओं का आगमन होता है। सारी घटनाएँ एक दूसरे से जुड़ी हैं। समाज में ऐसी घटनाएँ और आगे न बढ़े इसे लेखक ने स्वयं निर्मला के द्वारा उसके अंतिम कथन में कहलवाया है।

"निर्मला—दीदी जी, अब मुझे किसी वैद्य की दवा फायदा न करेगी। आप मेरी चिंता न करें। बच्ची को आपकी गोद में छोड़ जाती हूँ। अगर जीती-जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा। मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न रख सकी। केवल जन्म देने भर की अपराधिनी हूँ। चाहे क्वाँरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालियेगा, पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा।"

iii) **सामाजिक अंधविश्वासों का चित्रण** : दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की समस्याओं के साथ लेखक ने उन समस्याओं का चित्रण भी किया है जिनसे समाज में गंभीर समस्याएँ पैदा होती हैं। अंधविश्वासों के कारण सुधा के बच्चे की जान भी चली जाती है। साधुओं पर विश्वास करने के कारण उनके जाल में फँस कर सियाराम घर छोड़ जाता है।

17.2.2 शीर्षक की सार्थकता

निर्मला उपन्यास का नाम इस उपन्यास की नायिका के नाम पर रखा गया है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास की कथावस्तु का तानाबाना निर्मला के संपूर्ण जीवन को लेकर ही बुना है। लेखक ने निर्मला के माध्यम से शोषित, उत्पीड़ित नारी वर्ग को पाठक के सामने रखा है। निर्मला नाम इस उपन्यास के लिए उचित ही है। आदि से अंत तक निर्मला की कथा चलती है। निर्मला के परिचय से कथा का आरंभ होता है। पिता की मृत्यु के कारण निर्मला का विवाह टूट जाता है। उसकी शादी दुहाजू तोताराम के साथ हो जाती है। परिस्थितियाँ यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ती उसके जीवन में समस्याएँ आती ही रहती हैं और उसके जीवन का अंत भी समस्याओं के बीच ही होता है। वह अपनी पुत्री को विषम स्थिति में छोड़कर प्राण त्याग देती है। इस प्रकार पूरा उपन्यास उसके जीवन से संबंधित है। इसलिए उसके नाम पर उपन्यास का शीर्षक सार्थक एवं सोद्देश्य है। सामान्यतः उपन्यास का नामकरण या तो किसी पात्र के नाम पर होता है या उस उपन्यास की कथावस्तु की किसी घटना पर। कभी उपन्यास के केन्द्रीय भाव को लेकर तो कभी, उपन्यास के उद्देश्य को लेकर नामकरण किया जाता है, हिंदी उपन्यासों में ऐतिहासिक

उपन्यासों का नामकरण उपन्यास के किसी मुख्य पात्र या स्थान पर आधारित होता है लेकिन सामाजिक उपन्यासों में नामकरण मुख्यत: उपन्यास के मूल उद्देश्य पर होता है। जैसे– गबन, कब तक पुकारूँ, मैला आँचल, नदी के द्वीप आदि।

प्रेमचंद ने भी अपने उपन्यासों का नामकरण अधिकतर मूल उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही किया है। जैसे–प्रतिज्ञा, रंगभूमि, सेवासदन, कर्मभूमि, गबन, गोदान आदि। लेकिन "निर्मला" उपन्यास का नामकरण उन्होंने उपन्यास के प्रमुख पात्र के आधार पर किया है। जैसा कि आपने देखा है निर्मला के संपूर्ण जीवन को ही लेखक ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की शिकार वही है। लेखक उसके माध्यम से अपना उद्देश्य रखता है। निर्मला का चरित्र ही प्रमुख एवं प्रभावकारी है। पाठक को आदि से अंत तक उसके साथ सहानुभूति बनी रहती है। अत: उपन्यास के विशिष्ट चरित्र की गरिमा के अनुरूप ही इसका नामकरण किया गया है। उपन्यास के सारे पात्र निर्मला के इर्द-गिर्द घूमते हैं। इसलिए विषयवस्तु के अनुकूल निर्मला नामकरण सर्वथा उपयुक्त और सार्थक है।

बोध प्रश्न

1 उपन्यास के संदर्भ में "प्रतिपाद्य" का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

2 "निर्मला" उपन्यास के द्वारा प्रेमचंद दहेज प्रथा जैसी सामाजिक समस्या का यथार्थ चित्रण करते हैं, उपन्यास में इससे संबंधित अन्य किन समस्याओं का चित्रण हुआ है?

....

....

....

3 कोई भी उपन्यासकार अपने उपन्यास का नामकरण किस आधार पर करता है?

....

....

....

4 प्रेमचंद ने "निर्मला" उपन्यास का नामकरण किस आधार पर किया है?

....

....

अभ्यास

"लेकिन विवाह तो करना ही था और हो सके तो इसी साल, नहीं तो दूसरे साल। फिर नए सिरे से तैयारी करनी पड़ेगी। अब अच्छे घर की ज़रूरत नहीं थी। अच्छे वर की ज़रूरत न थी। अभागिनी को अच्छा घर-वर कहाँ मिलना। अब किसी भाँति सिर का बोझ उतारना था, किसी भाँति लड़की को पार लगाना था–उसें कुएँ में झोंकना था। वह रूपवती है, गुणशील है, चतुर है, कुलीन है तो हुआ करे, दहेज हो तो सारे दोष, गुण हैं। प्राणों का कोई मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है। कितनी विषम भाग्यलीला है।"

उपर्युक्त अंश में समाज की किस समस्या को उठाया गया है? पाँच छह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2 "वकील साहब अपने प्रेम-प्रदर्शन में कतई कसर न रखते थे, लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बात, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकलकर उसके हृदय पर शर समान आघात करती थी।"

उपर्युक्त पंक्तियों में लेखक ने किस समस्या का वर्णन किया है?

....

....

....

....

....

17.3 प्रेमचंद का वैशिष्ट्य

निर्मला उपन्यास के रचयिता प्रेमचंद अपनी अनुपम कथा कहने की कला के कारण विश्वभर में उपन्यास प्रेमियों के प्रिय उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों में तत्कालीन देश और काल का परिवेश इतने यथार्थ रूप में समाविष्ट हो गया है कि देश-विदेश के पाठक प्रेमचंद के उपन्यासों को ही भारतीय जन-जीवन की सच्ची जानकारी प्राप्त करने के लिए बड़े चाव से पढ़ते हैं।

निर्मला उपन्यास का वाचन करते समय आपने प्रेमचंद के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त की है। हम यहाँ उनके बारे में फिर से कुछ आवश्यक सूचनाएँ देकर उनके वैशिष्ट्य की चर्चा करेंगे।

मुंशी प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 में उत्तर प्रदेश में वाराणसी के निकट लमही नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। पिता का नाम अजायबराय था। उनका बचपन और किशोरावस्था, विपरीत परिस्थिति, भारी अभावों एवं कठिनाइयों में बीता। प्रारंभिक शिक्षा उर्दू में हुई। आरंभ से ही उपन्यास पढ़ने का उन्हें बहुत शौक था और उन्हीं दिनों उन्होंने मौलाना शरर, पं. रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा एवं मौलवी मुहम्मद अली की रचनाओं को पढ़ डाला। लगभग बीस वर्ष की अवस्था से उन्होंने कहानी और उपन्यास लिखना शुरू कर दिया था और जीवन के अंतिम दिनों तक लिखते रहे। समाज का यथार्थ चित्रण उनकी आरंभिक रचनाओं में ही आरंभ हो गया था। तत्कालीन अंग्रेजी सरकार की शोषण नीतियों का पर्दाफाश उन्होंने अपनी "सोजेवतन" नामक पुस्तक में किया। यह पुस्तक जब्त कर ली गयी। प्रेमचंद ने देश भक्ति से प्रेरित हो अपनी बीस साल की नौकरी से इस्तीफा दे दिया और राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय रूप से लग गए तथा साहित्य रचना द्वारा लोगों में जनजागृति का कार्य किया। प्रारंभ में वे नवाबराय के नाम से लिखते थे। जब उन्होंने हिंदी में लिखना शुरू किया तो नाम बदल कर प्रेमचंद लिखने लगे।

प्रेमचंद ने ग्यारह उपन्यासों और लगभग चार सौ अमर कहानियों की रचना की। तीन नाटक, लेख आदि लिखने के अलावा अनुवाद का कार्य भी किया। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में उनके आगमन से युगान्तकारी बदलाव आया। अपनी रचनाओं में देश एवं काल का यथार्थ एवं प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया। भारतीय किसानों, शोषितों और दलितों के जीवन की सच्ची और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण उनकी रचनाओं में मिलता है। नारी वर्ग के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति थी।

प्रेमचंद के आगमन से पूर्व हिंदी उपन्यासों में जासूसी, ऐयारी, तिलस्मी उपन्यासों की लोकप्रियता थी। वास्तविकता से दूर इन उपन्यासों में चमत्कार, कुतूहल, अपराध जैसी घटनाओं की भरमार होती थी। पाठक का मनोरंजन कराना ही इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य था। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को इस प्रकार के माहौल से बाहर निकाला। उन्होंने उपन्यास की परिभाषा देते हुए स्वयं लिखा—"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

"कुछ विचार" प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस बनारस, पृ. 47

अपने उपन्यासों में प्रेमचंद ने आदर्श एवं यथार्थ के मेल को प्राथमिकता दी। यद्यपि प्रथमतः उन्होंने आदर्श की स्थापना के लिए ही रचनाएँ कीं लेकिन बाद में समाज का यथार्थ चित्रण किया। यथार्थ अर्थात् जो कुछ सामने है और आदर्श अर्थात् जो होना चाहिए। इन दोनों के संयोग से ही कोई रचना उच्चकोटि की हो सकती है। प्रेमचंद ने इसे "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" कहा है।

"वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश होता है। उसे आप "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" कह सकते हैं।"

कुछ विचार, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस पृ. 50

यदि किसी रचना में केवल यथार्थ का चित्रण होगा तो उससे पाठक को अरुचि हो सकती है, क्योंकि "मानव स्वभाव की एक विशेषता यह भी है कि वह जिस छल और क्षुद्रता और कपट से घिरा हुआ है, उसीकी पुनरावृत्ति उसके चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकती। वह थोड़ी देर के लिए ऐसे संसार में उड़कर पहुँच जाना चाहता है, जहाँ उसके चित्त को ऐसे कुत्सित भावों से नजात मिले वह भूल जाए कि मैं चिंताओं के बंधन में पड़ा हुआ हूँ, जहाँ उसे सज्जन, सहृदय, उदार प्राणियों के दर्शन हों, जहाँ छल और कपट विरोध और वैमनस्य का ऐसा प्राधान्य न हो।"

कुछ विचार, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस पृ. 50

और यदि केवल आदर्श की स्थापना ही की जाएगी तो उससे वास्तविकता दूर चली जायेगी।

"आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इन बातों की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें, जो सिद्धांतों की मूर्ति मात्र हों"–अर्थात् वहाँ वास्तविक स्थिति समाप्त हो जाएगी इसीलिए यथार्थ एवं आदर्श का उचित समावेश होना चाहिए। प्रेमचंद ने इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर उपन्यासों की रचना की।

यूरोप में फ्रायड, एडलर, युंग और वॉटसन आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में जो खोजें की उनका प्रभाव हिंदी उपन्यास पर भी पड़ा। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यासों में पात्रों का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया। मानव मन की सूक्ष्म भावनाओं का उद्घाटन उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उन्हीं के शब्दों में "मनोभाव के विभिन्न रूप और भिन्न-भिन्न दशाओं में उनका विकास उपन्यास के मुख्य विषय हैं।"

"कुछ विचार, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस पृ. 61"

लेखक अपनी रचना को किस प्रकार स्वाभाविकता प्रदान करता है, इस विषय में प्रेमचंद लिखते हैं "वह मानव-प्रकृति का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करता है, मनोविज्ञान का अध्ययन करता है और इसका यत्न करता है कि उसके पात्र हर हालत में और हर मौके पर, इस तरह आचरण करें, जैसे रक्त-मांस का बना मनुष्य करता है।" इकाई 15 में चरित्र चित्रण के संदर्भ में आपने निर्मला उपन्यास के पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण देखा है। फिर भी एक उदाहरण आवश्यक है जिससे आप प्रेमचंद की इस विशेषता को समझ पाएँ

"मुंशी जी भोजन करके उठे तो बहुत चिंतित थे। अगर लड़का यों दुबला हो गया, तो उसे कोई भयंकर रोग पकड़ लेगा। उन्हें रुक्मिणी पर इस समय बहुत क्रोध आ रहा था। उन्हें यही जलन है कि मैं घर की मालकिन नहीं हूँ यह नहीं समझती कि मुझे घर की मालकिन बनने का क्या अधिकार? जिसे रुपयों का हिसाब तक करना नहीं आता, वह घर की स्वामिनी कैसे बन सकती है? बनी तो थी साल भर तक मालकिन एक पाई की भी बचत न होती थी।"

उपर्युक्त पंक्तियों में तोताराम के मन में अंदर उठने वाले भावों को लेखक ने कुशलता से प्रस्तुत किया है। तोताराम उस परिस्थिति में क्या सोच सकते हैं इसका अंदाजा लेखक लगा लेता है। मानव मन की भावनाओं को इसी प्रकार पकड़ लेना और उसे पात्रों के चरित्र के लिए लिखना ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

इस खंड में पहले की पढ़ी गई इकाइयों में आपने कथावस्तु, चरित्र चित्रण, परिवेश संरचनाशिल्प आदि की विस्तृत जानकारी हासिल कर ली है। उपन्यास के उपर्युक्त तत्वो का प्रयोग प्रेमचंद ने "निर्मला" उपन्यास में किस प्रकार किया है उसकी जानकारी भी आपको मिल गयी है। अब हम लेखक के अन्य उपन्यासों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे तथा उनकी विशेषताओं का उल्लेख करेंगे, फिर समग्र रूप से प्रेमचंद की विशेषता का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

अब तक के अध्ययन से आपको यह जानकारी मिल गयी है कि प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन किया। उन्होंने अपने युग के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक

तथा सांस्कृतिक जीवन के सूक्ष्म अध्ययन एवं अनुभव से प्रेरित होकर मानव चेतना युगीन संघर्ष तथा मानवीय मन के भावों और विचारों को सरल, प्रवाहमय, सशक्त भाव में प्रस्तुत किया। आइए उनके उपन्यासों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें।

17.3.1 प्रेमचंद के उपन्यास

प्रेमा : यह उपन्यास मूलतः उर्दू में "हम खुर्मा व हम सवाब" नाम से लिखा गया था। डा. कमलकिशोर गोयनका की पुस्तक "प्रेमचंद अध्ययन की नयी दिशाएँ" के अनुसार इसका प्रकाशन काल 1907 है। यह उपन्यास विधवा विवाह से संबंधित है। इसमें प्रेमा और पूर्णा नामक दो सखियों का विवाह और वैधव्य तथा पुनर्विवाह दिखाया गया है।

सेवासदन : सेवासदन प्रेमचंद का प्रथम बहुचर्चित उपन्यास है। इसका प्रकाशन दिसबर 1918 में हुआ। यह उपन्यास सामाजिक समस्या का यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है। वेश्या समस्या को कथा का आधार बनाया गया है। दहेज जैसी सामाजिक कुप्रथा के कारण कन्याओं का जीवन बर्बाद हो जाता है वे कुपात्रों के गले मढ़ दी जाती हैं। परिस्थितियों के कारण वे दालमण्डी तक पहुँच जाती हैं। इस उपन्यास में नायिका सुमन परिस्थितिवश वेश्या बन जाती है। वेश्या का कलंक लग जाने के बाद समाज उसे दुबारा ग्रहित नहीं कर सकता। समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्तियों द्वारा वेश्या प्रथा को बनाए रखने के लिए पाखण्ड किया जाता है। इन सारी बातों का पर्दाफ़ाश किया गया है। अंत में इस उपन्यास की समाप्ति "सेवासदन" की स्थापना द्वारा की गयी है। यथार्थ से आदर्श की ओर उन्मुख इस उपन्यास में समस्या के साथ समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

वरदान : इस उपन्यास की रचना प्रेमचंद ने मूलतः उर्दू में "जलवए ईसार" के नाम से की थी। हिंदी में इसका प्रकाशन 1920 में हुआ। यह उपन्यास अनेक आकस्मिक घटनाओं से भरा हुआ है। बनारस के पुराने रईस मुंशी शालिग्राम, उनकी पुत्री सुवामा और पुत्र प्रतापचन्द्र की कन्या का इसमें वर्णन है। इसमें प्रतापचंद्र और मुंशी संजीवनलाल की पुत्री वृजरानी का प्रेम, अलगाव और प्रताप का सन्यास धारण करके बालाजी नाम से देश सेवाव्रत लेने का वर्णन है। इस उपन्यास की कथा काल्पनिक और सामाजिक यथार्थ से दूर है।

प्रेमाश्रम : इस उपन्यास का प्रकाशन काल 1922 है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने पहली बार किसान-समस्या को कथा का आधार बनाया है। किसान एवं जमींदार के संबंध के चित्रण के साथ-साथ जमींदार की पारिवारिक कथा दी गई है। पूर्वार्ध में किसानों की आर्थिक तथा सामाजिक विषमता, उनके शोषण, जमींदारों द्वारा ग्रामीण जनता के उत्पीड़न का चित्रण है। प्रेमशंकर, ज्ञानशंकर तथा मायाशंकर नामक पात्रों द्वारा जमींदारों के जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण प्रस्तुत किया गया है। जमींदार प्रेमशंकर अपना सर्वस्व त्याग कर किसानों की सेवा के लिए "प्रेमाश्रम" की स्थापना करते हैं। ज्ञानशंकर का पुत्र मायाशंकर अपने सारे अधिकार किसानों की सेवा में समर्पित कर देता है। यह उपन्यास भी यथार्थ से आदर्श की ओर बढ़ता है।

रंगभूमि : इस उपन्यास की रचना भी प्रेमचंद ने मूलतः उर्दू में "चौगाने हस्ती" के नाम से की थी। हिंदी में रंगभूमि के नाम से इसका प्रकाशन 12 अगस्त 1924 को हुआ। उपन्यास कला की दृष्टि से यह लेखक के श्रेष्ठ उपन्यासों में से एक है। इसमें पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं के साथ, प्रेम और बलिदान का आदर्श भी प्रस्तुत किया गया है। कथा का क्षेत्र विस्तृत है। तीन प्रमुख धर्मों का समावेश कर लेखक ने जहाँ धार्मिक सद्भाव को प्रस्तुत किया है वहीं ग्रामीण और पूँजीपति वर्ग के पात्रों का यथार्थ चित्रण किया है। नायक सूरदास के द्वारा सत्य, निष्ठा एवं आदर्श की स्थापना की गई है। तत्कालीन परिस्थिति एवं गांधी जी की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

कायाकल्प : इस उपन्यास का प्रकाशन काल 1926 है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं के साथ पूर्व जन्म की आश्चर्यजनक बातों को कथा का आधार बनाया है। अलौकिक एवं भावी घटनाओं के साथ इस उपन्यास में हिंदू-मुस्लिम दंगों की समस्या को भी प्रस्तुत किया गया है। अलौकिक घटनाओं के कारण इस उपन्यास में अस्वाभाविकता आ गई है।

निर्मला : लेखक के इस उपन्यास को आप पढ़ चुके हैं। इस उपन्यास की सभी विशेषताओं से भी आप परिचित हो चुके हैं। इस उपन्यास का प्रकाशन काल 1927 है। लेखक ने इसमें दहेज एवं अनमेल विवाह जैसी सामाजिक समस्या को रखा है। समस्या की प्रासंगिकता पर चिन्तन के लिए लेखक ने इस उपन्यास को यथार्थवादी रहने दिया है।

ग़बन : ग़बन प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यासों में से एक है। यह उपन्यास 1931 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में समाज के मध्यवर्ग के यथार्थ जीवन एवं समस्या को प्रस्तुत किया गया है।

मध्यवर्गीय नौकरी पेशा व्यक्ति की समस्या को यथार्थ रूप में पेश किया गया है। इस उपन्यास में महिलाओं की आभूषण-लालसा, मध्यवर्ग का मिथ्या आडम्बर, नि:स्वार्थ त्याग, देशभक्ति आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में समाज के विभिन्न वर्गों का यथार्थ चित्रण किया गया है। दयानाथ, जालपा, रमेश आदि मध्य वर्ग के पात्र हैं। खटिक देवीदीन निम्न मध्यवर्ग का पात्र है, इनके द्वारा लेखक ने उच्च आदर्श एवं बलिदान को दर्शाया है। जोहरा वैश्या है किंतु उसके द्वारा लेखक ने त्याग एवं आदर्श का सुन्दर चित्रण किया है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण। उपन्यास की समाप्ति समस्याओं के निदान के साथ किया गया है।

कर्मभूमि : कर्मभूमि का प्रकाशन 1932 में हुआ। इस उपन्यास में लेखक ने ग्रामीण एवं शहरी समाज की समस्याओं को लिया है। हिंदू-मुस्लिम एकता तथा किसानों की समस्याओं के चित्रण के साथ अछूत समस्या को प्राथमिकता दी गई है। तत्कालीन भारत के राजनीतिक आंदोलन को कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। नायक अमरकांत गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित है। सत्याग्रहियों द्वारा आंदोलन, नायक की बहन नैना की गोली लगने से मृत्यु तथा जनता की विजय के साथ उपन्यास की समाप्ति होती है।

गोदान : गोदान प्रेमचंद का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1936 में हुआ। इस उपन्यास में भारतीय किसान के जीवन को यथार्थ एवं मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय किसान की गाय रखने की लालसा तथा उसके लिए ॠण लेना फिर समस्याओं से जूझते हुए प्राण त्याग देना पाठकों के मन में करुणा का भाव भर देता है। नायक होरी तथा पत्नी धनिया की कथा को लेखक ने कथा का आधार बनाया है। महाजन वर्ग द्वारा किसानों का शोषण, तथा ज़मींदारों के वैभव का यथार्थ चित्रण है। कथा के माध्यम से यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार किसान खेती को छोड़कर मजदूर बनने के लिए मजबूर होते हैं। गाँव का उजड़ना तथा शहरों का आबाद होना नयी औद्योगिक नीति का परिणाम है। उपन्यास में पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है।

मंगल सूत्र : यह प्रेमचंद की अपूर्ण कृति है। इस उपन्यास का चार परिच्छेद लिखा जा चुका था किंतु कृति का लेखन आगे बढ़े इससे पहले ही लेखक की जीवन लीला समाप्त हो गई। अन्य उपन्यासों की भाँति इसमें भी लेखक ने सामाजिक समस्या को कथा का आधार बनाया था।

इस प्रकार प्रेमचंद के उपन्यासों के इस संक्षिप्त परिचय से आपको यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि उन्होंने मुख्य रूप से समाज में हो रहे शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाई। समाज में नारी पर हो रहे अत्याचार तथा किसानों के आर्थिक शोषण के अलावा समाज के मध्यम वर्ग के मिथ्या आडंबर का यथार्थ चित्रण किया गया। नारी समस्या के अन्तर्गत दहेज समस्या, अनमेल विवाह, विधवा समस्या, वेश्या समस्या एवं परिवार में नारी की दयनीय स्थिति को प्रेमचंद ने कथा में मुख्य स्थान दिया।

समाज में व्याप्त बुराइयों से युक्त वर्ग विशेष को उन्होंने केंद्र में रखा है। यह वर्ग समाज में घूसखोरी, बेईमानी, लूट-खसोट को अपना कर लोगों को उत्पीड़ित करते हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों में इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ, गोरखपुर, कलकत्ता जैसे शहरों का वर्णन है। इन क्षेत्रों के गाँव एवं कस्बों को उन्होंने लिया है। यदि इन शहरों एवं गाँवों, कस्बों के नाम को परिवर्तित कर दिया जाय तो यह परिवेश समस्त भारत के परिवेश को व्यक्त करेगा। प्रेमचंद के उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्गों को स्थान दिया गया है। पात्र, जमींदार, राजा, नेता, पूँजीपति, उद्योगपति, व्यापारी, पटवारी, पुलिस, वेश्याएँ, कारिन्दे, समाज सुधारक, किसान आदि वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास की कथा गाँव से शहर तक, परिवार से समाज तक, धर्म और संस्कृति से सामाजिक नियम, परंपरा, कर्तव्य एवं आदर्शों तक फैली हुयी है।

आरंभिक उपन्यासों में प्रेमचंद ने पुराने उपन्यासों की भाँति चमत्कारी एवं अनावश्यक घटनाओ तथा उपदेशात्मक पद्धति के द्वारा आदर्श की स्थापना की। समयानुकूल उनमें परिवर्तन आता गया। "सेवासदन" के बाद से उनके उपन्यासों में यथार्थ एवं आदर्श को समान रूप से अपनाया गया। अपने युग के समाज की वास्तविक स्थिति को उन्होंने उपन्यास के माध्यम से उपस्थित किया। उनके उपन्यास जीवन के सच्चे रूप को उपस्थित करने में सफल हुए।

बोध प्रश्न

5 प्रेमचंद को उपन्यास लेखन की प्रेरणा किस प्रकार मिली?

....

....

6 प्रेमचंद ने आरंभ में साहित्य लेखन का कार्य किस भाषा में किया?

i) हिंदी ☐

ii) उर्दू ☐

iii) पंजाबी ☐

iv) अरबी ☐

7 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) प्रेमचंद ने .... नामक पुस्तक में अंग्रेज़ों की शोषण नीतियों के खिलाफ लिखा।

ii) प्रेमचंद आरंभ में .... के नाम से लिखते थे।

iii) उपन्यास एवं कहानी विधा के अलावा प्रेमचंद ने तीन .... की रचना भी की।

iv) प्रेमचंद के उपन्यासों में सर्वप्रथम समाज का .... चित्रण किया गया।

v) प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में दलित, शोषित वर्ग के साथ .... और .... की समस्याओं का चित्रण किया।

अभ्यास

3 उपन्यास के संदर्भ में प्रेमचंद द्वारा स्थापित "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

4 प्रेमचंद ने उपन्यासों के माध्यम से जहाँ समाज का यथार्थ चित्रण किया वहीं पात्रों के मनोभाव का चित्रण भी किया। सात पंक्तियों में इसे समझाइए।

....

....

....

....

....

....

....

बोध प्रश्न

8 अ) प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में निम्नलिखित सामाजिक वर्गों में से किन वर्गों का सर्वाधिक चित्रण किया?

i) मध्यवर्ग

ii) उच्च वर्ग

iii) निम्न वर्ग

ब) i) प्रेमचंद ने अपने किस उपन्यास में प्रथम बार नारी समस्या को स्थान दिया?

....

....

ii) प्रेमचंद के किन्हीं दो उपन्यासों के नाम लिखिए जिनमें तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति को विशेष स्थान दिया गया है।

....

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

म i) प्रेमचंद का भारतीय किसान वर्ग की समस्याओं को चित्रित करने वाले प्रसिद्ध उपन्यास .... है।

ii) प्रेमचंद ने अपने .... उपन्यास में अछूत समस्या को प्रमुख स्थान दिया है।

iii) प्रेमचंद के उपन्यासों में .... घटनाओं के वर्णन को प्राथमिकता दी।

17.3.2 प्रेमचंद के औपन्यासिक पात्र

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में मानव चरित्र का चित्रांकन करना ही श्रेष्ठ साधन माना है। अर्थात् वे उपन्यास के पात्रों द्वारा मानव मन की वास्तविकताओं को उद्घाटित करना चाहते हैं और इस कार्य में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। मानव चरित्र के यथार्थ चित्रण के लिए उन्होंने समाज के सभी वर्गों को बहुत निकट से और सूक्ष्म निरीक्षण किया। ज़मींदार, साहूकार, दरोगा, हाकिम, पटवारी, किसान आदि वर्गों की प्रवृत्ति को वे भली-भाँति जानते थे। चूँकि उनका जीवन ग्रामीण वातावरण मे ही आरंभ हुआ इसीलिए स्वाभाविक रूप से वे ग्रामीण जीवन की विशेषताओं से परिचित थे। ग्रामीण जीवन के पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक विविध रूपों को वे भली-भाँति जानते थे। परिस्थिति के अनुकूल मानव मन में क्या परिवर्तन होता है, व्यक्ति विशेष के आकार प्रकार, वेशभूषा, आचार-व्यवहार, बोली आदि का उन्होंने निरीक्षण किया था। यही कारण है कि वे पात्रों का यथार्थ चित्रण कर पाए। प्रेमचंद के औपन्यासिक पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं।

i) अपने औपन्यासिक पात्रों की रचना उन्होंने तत्कालीन परिवेश अर्थात् उस युग के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति के अनुकूल की।

ii) मज़दूरों एवं किसान वर्ग के पात्रों के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी। अतः इन वर्गों के पात्रों के प्रति सहानुभूति तथा शोषक वर्ग यानि ज़मींदार, पटवारी वर्ग के पात्रों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया।

iii) उनके संपूर्ण औपन्यासिक पात्रों को हम मोटे रूप से दो वर्गों में रख सकते हैं—(1) शोषक (2) शोषित। उन्होंने शोषितों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है और शोषकों की कमज़ोरियों को उजागर किया है।

iv) उनके सभी पात्र सामाजिक वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सुमन, निर्मला, सूरदास, राय साहब, खन्ना, होरी, धनिया, गोबर, सोफिया सभी सामाजिक वर्गों के प्रतिनिधि हैं।

v) युगों से उपेक्षित नारी को पुरुष की सहयोगी एवं प्रेरक शक्ति के रूप में उपस्थित किया है। नारी पर हो रहे अत्याचार को दर्शाने के लिए उन्होंने सुमन, निर्मला, सुखदा, मालती, सुधा, जालपा, धनिया आदि की रचना की है। उनके नारी पात्र एक ओर सामान्य रूप से पुरुष की सहधर्मिणी हैं तो दूसरी ओर परिस्थिति के अनुसार उसमें बदलाव भी आता है। वह घर की चारदीवारी से बाहर आकर पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आंदोलन में भी सहयोग देती हैं। प्रेमचंद ने नारी पात्रों में स्वाभाविक गुण-अवगुण का यथार्थ चित्रण किया है।

vi) प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष दोनों को नायक-नायिका के रूप में रखा गया है। गोदान में होरी नायक है तो सेवासदन में सुमन नायिका है।

इस प्रकार प्रेमचंद के सभी औपन्यासिक पात्र प्रायः समाज के सभी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित किये गए हैं। अधिकांश पात्र सजीव एवं सशक्त बन पड़े हैं। मानवीय चरित्र के सूक्ष्म चित्रण के कारण ही पात्र स्वाभाविक बने हैं।

17.3.3 प्रेमचंद के उपन्यासों में देशकाल

आप यह जान चुके हैं कि उपन्यास में वास्तविकता, स्वाभाविकता एवं सजीवता लाने के लिए देशकाल एवं वातावरण का सही चित्रण होना चाहिए। उपन्यासकार जिस देशकाल एवं वातावरण को अपने उपन्यास में स्थान देता है, उसका सही-सही ज्ञान भी उसे होना चाहिए। प्रेमचंद अपने युग के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी परिवेश को भली-भाँति जानते थे। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में परिवेश का यथार्थ चित्रण हो पाया है। परिवेश का निर्माण पात्रों की वेशभूषा, शृंगार, कलाएँ, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-विचार, आहार-विहार, पर्व-उत्सव, भाषा आदि के समावेश से होता है। इन सभी बातों का समय एवं स्थान के अनुकूल चित्रण कर वे परिवेश में वास्तविकता लाते हैं। प्रेमचंद का साहित्य उनके युग के उतार-चढ़ाव तथा विविध राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों का ऐतिहासिक दस्तावेज है। इनमें

वर्ग-संघर्ष है, शोषणयुक्त समाज का चित्रण है, तत्कालीन समाज में व्याप्त पाखंड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार तथा अत्याचार से पीड़ित लोगों का चित्रण है। तत्कालीन भारतीय-स्वतंत्रता आंदोलन को उन्होंने रंगभूमि, प्रेमाश्रय, कर्मभूमि, गबन आदि उपन्यासों में प्रमुख स्थान दिया। भारतीय समाज में व्याप्त एक बड़ी बुराई अछूत समस्या को भी उन्होंने कथा का आधार बनाया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन में प्रभाव और उनकी विचारधारा को भी प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के द्वारा दर्शाया।

तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियाँ अंधविश्वास, वैमनस्य, बाहय आडंबर, झूठी मान-मर्यादा आदि सभी का यथार्थ चित्रण किया गया है। ग्राम जीवन एवं शहरी जीवन दोनों परिवेश को प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में स्थान दिया। नगर के वैभव, यातायात, मकान, कल कारखाने आदि का चित्रण किया। गाँव के पशु-पक्षी, वन, उपवन, नदी-नाले, बाढ़, खेत खलिहान सभी का यथार्थ चित्रण किया।

पात्रों के क्रिया कलापों द्वारा परिवेश को तत्कालीन देशकाल के अनुकूल बनाया गया है। लेखक जिन बातों से भली-भाँति परिचित था उसे ही अपना वर्ण्य विषय बनाया है। पात्रों के झगड़े, चौपाल, टीका-टिप्पणी, सभी परिवेश के अनुकूल हैं। आपने निर्मला उपन्यास का वाचन करते समय लेखक की इन विशेषताओं को देखा है। अन्य उपन्यासों के अध्ययन करने से भी आप इन्हीं विशेषताओं को पायेंगे।

अभ्यास

5 **प्रेमचंद के औपन्यासिक पात्रों की विशेषताओं पर सात पंक्तियाँ लिखिए।**

....

....

....

....

....

....

....

6 प्रेमचंद के उपन्यासों में देशकाल का यथार्थ चित्रण मिलता है। सात-आठ पंक्तियों में समझाइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

17.3.4 प्रेमचंद के उपन्यासों की भाषा

इस खंड की पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि भाषा उपन्यास का महत्वपूर्ण उपकरण है। यह भाव एवं विचारों के वहन का माध्यम है। लेखक कथा में स्वाभाविकता लाने के लिए भाषा को भी पात्र, घटनाएँ, देशकाल के अनुरूप रखता है। मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग कर भाषा में स्वाभाविकता लाता है। सरल, बोधगम्य एवं व्यवहारोपयोगी भाषा द्वारा ही लेखक अपनी बात पाठक तक पहुँचा सकता है।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में उपर्युक्त बातों का ध्यान रखा है। उन्होंने व्यवहारोपयोगी, पात्रानुकूल तथा मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है। प्रेमचंद आरंभ में उर्दू लिखते थे इसीलिए हिंदी में लेखन कार्य करते हुए उर्दू के शब्दों का प्रयोग स्वभावतः आ गया है। प्रेमचंद की भाषा की प्रशंसा करते हुए पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

'भाषा में बंगला का अनुकरण केवल शब्दों और मुहावरों में ही नहीं, नामों और विचारों तक में' किया जा रहा था। प्रेमचंद ने पहले-पहल इन काल्पनिक चौराहों को ठोकर मारकर तोड़ दिया, उन्होंने हिंदी को हर प्रकार से हिन्दी किया। उन्होंने हिन्दी उर्दू भेद को कम कर दिया और भाषा में नई प्राण शक्ति फूँक दी।"

आप "निर्मला : संरचना शिल्प" इकाई में लेखक की भाषागत विशेषताओं को पढ़ चुके हैं। उनके सभी साहित्यिक रचनाओं में यही विशेषताएँ पायी जाती हैं।

17.3.5 प्रेमचंद का औपन्यासिक शिल्प

आप जानते हैं कि प्रेमचंद से पहले के उपन्यासों में घटना प्रधान उपन्यासों की प्रधानता थी। विचित्र घटनाओं एवं नायक के अद्भुत कारनामों द्वारा पाठक का मनोरंजन किया जाता था। जीवन के यथार्थ से पहले के उपन्यास दूर थे। उपदेशात्मकता एवं कृत्रिम संवादों की भरमार होती थी। पात्रों में अस्वाभाविकता भरी होती थी। प्रेमचंद ने उपन्यास शिल्प को इनसे मुक्ति दिलायी। उन्होंने जीवन के यथार्थ को कथा का आधार बनाया, मानव जीवन के दैनिक क्रिया कलापों एवं घटनाओं की वास्तविकताओं को कथा में स्थान दिया। घटनाओं को कार्य कारण की शृंखला से जोड़ा। अर्थात् किस प्रकार कार्य का परिणाम तथा किस प्रकार घटनाएँ एक दूसरे से जुड़ी हैं इनमें सामंजस्य स्थापित किया। पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण कर उन्हें सजीव बनाया। पात्रों के कार्य एवं परिस्थिति में संबंध स्थापित किया। समग्र रूप से उन्होंने औपन्यासिक शिल्प को अवास्तविकता की जगह यथार्थवादी और व्यावहारिक रूप प्रदान किया। संवाद को दैनिक जीवन के वार्तालाप जैसा बनाया और जीवन को एक निश्चित दृष्टि दी। इस खंड की 16 वीं इकाई में आपने उपन्यास की शैली की विस्तृत जानकारी प्राप्त की है। प्रेमचंद का साहित्यिक रचनाओं में शैली की भिन्नता पाई जाती है। उन्होंने वर्णनात्मक, आलंकारिक, चित्रात्मक एवं व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है।

17.3.6 प्रेमचंद के उपन्यासों की सोद्देश्यता

रचनाकार अपनी रचना किसी न किसी उद्देश्य से रचता है। उपन्यास विधा मानव जीवन के चित्र को विस्तृत रूप में उपस्थित करने का सशक्त माध्यम है। स्वयं प्रेमचंद उपन्यास को मानव जीवन को व्याख्यायित करने का सशक्त माध्यम मानते हैं।

हिंदी के पहले के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना था। प्रेमचंद ने सर्वप्रथम उपन्यासों के माध्यम से जीवन दर्शन प्रस्तुत किया। उनके उपन्यासों के पीछे कोई न कोई उद्देश्य छिपा हुआ है। उपन्यास के माध्यम से यथार्थ परिवेश में जीवन को रखकर सामाजिक पात्रों की सबलता-दुर्बलता का चित्रण किया गया है। उपन्यासों में युग चेतना प्रतिबिंबित हुई है। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है।

प्रेमचंद के उपन्यासों को पढ़ने के बाद ऊपरी तौर पर यह बात स्पष्ट होती है कि उन्होंने युग की समस्याओं को ही प्रमुखता दी। लेकिन गहराई से अध्ययन करने पर यह बात भी स्पष्ट होती है कि उन्होंने तत्कालीन प्रासंगिकता के साथ-साथ मानव जीवन की शाश्वत समस्याओं को भी प्रस्तुत किया है। वे शोषण के खिलाफ मानवीय संघर्ष को ही प्रस्तुत करना चाहते हैं। उपन्यास ही नहीं उनके समग्र साहित्यिक रचनाओं के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट होती है कि उन्होंने सामाजिक स्तर पर जीवन की विविधताओं का चित्रण किया। घिसी-पिटी परंपराओं की जगह नवीन मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया। मानव के अंदर स्वाभाविक रूप से आदर्श की ओर बढ़ने की भावना को उन्होंने प्रमुख स्थान दिया। उनके उपन्यासों के अध्ययन करने के बाद यह भी पता चलता है कि मध्यवर्ग तथा निम्न वर्ग की सामाजिक विशेषताओं का विश्लेषण करना भी उनका उद्देश्य था। मानव की सबलताओं एवं दुर्बलताओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना भी उसका उद्देश्य था। प्रेमचंद ने अपने उन उपन्यासों में भी जिनमें उन्होंने तत्कालीन भारत में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन को प्रमुख स्थान दिया है, मानव में सद्वृत्ति के द्वारा संघर्ष पर विजय प्राप्त करने की प्रवृत्ति को ही प्रमुख स्थान दिया है।

इस प्रकार समग्र रूप से प्रेमचंद हिंदी साहित्य के उन विभूतियों में से थे, जिन्होंने हिंदी साहित्य को विश्व स्तर की ऊँचाई तक पहुँचाया।

प्रेमचंद के समकालीन जयशंकर प्रसाद के उपन्यास में मनोविज्ञान पर विशेष जोर दिया गया। प्रेमचंद ने शिल्प आदि की दृष्टि से हिंदी उपन्यास में जो आदर्श उपस्थित किया, उसका पालन बाद के उपन्यासकारों ने भी किया। भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यासों में प्रेमचंद के शिल्प का ही विकास हुआ।

17.4 सारांश

उपन्यास विधा साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा है। लेखक जब कोई उपन्यास लिखता है तो उसके द्वारा कोई संदेश देना चाहता है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- उपन्यास के मूल्यांकन से संबंधित विशेषताओं को बता सकते हैं।
- उपन्यास के प्रतिपाद्य के बारे में बता सकते हैं।
- उपन्यास के शीर्षक का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं। उपन्यास के नामकरण के पीछे कई कारण होते हैं। कभी लेखक उपन्यास के प्रमुख पात्र के नाम पर नामकरण करता है तो कभी उपन्यास के उद्देश्य के आधार पर और कभी उपन्यास में वर्णित घटना के आधार पर।
- प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास की अवास्तविक एवं रोमांचकारी घटनाओं के वर्णन के घेरे से बाहर निकाला। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के शोषित, उत्पीड़ित वर्ग का यथार्थ चित्रण किया। आप उपन्यास से संबंधित उन विशेषताओं का विश्लेषण कर सकते हैं जिनके कारण प्रेमचंद हिंदी उपन्यास के सम्राट कहलाए।

17.5 शब्दावली

विधा : साहित्य के विविध रूप, जैसे उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी

मूल्यांकन : किसी का मूल्य या महत्व आँकना या समझना और उसकी श्रेष्ठता-हीनता का निर्णय लेना

प्रतिनिधि : किसी की ओर से कोई काम करने के लिए नियुक्त व्यक्ति

अमानुषिक : मनुष्य के स्वभाव या आचरण के विरुद्ध

विकराल : भीषण, डरावना

बेवा : विधवा

माहौल : वातावरण या परिवेश

वियोग : प्रिय व्यक्ति से अलग होने का दुःख

विषम : बहुत कठिन, भयंकर, परस्पर विरोधी, एक दूसरे के मेल में न होना

अनुपम : उपमारहित, बेजोड़, बहुत अच्छा

युगान्तकारी : पुरानी बातें हटाकर उनके स्थान पर नई लाने या नया युग चलाने वाला

प्रामाणिक : किसी कथन या तत्व की सत्यता की स्थापना, जिसे सब लोग ठीक मानें

प्रवाहमय : चलती या गतिमान

विपथगामिनी : बुरे या खराब रास्ते पर चलने वाली, कुमार्गी

सुग्रन्थन : सुन्दर रूप से एक से दूसरे से बँधा हुआ होना, किसी कथानक की घटनाओं का क्रमिक और कार्य वर्णन रूप में एक दूसरे के साथ गुँथा होना।

17.6 उपयोगी पुस्तकें

आशा है आपने इस खंड का अध्ययन सावधानी पूर्वक किया होगा। यहाँ हम कुछ पुस्तकों के नाम दे रहे हैं, जो आपके अध्ययन के लिए उपयोगी होंगी।

प्रेमनारायण टंडन : *हिंदी उपन्यास का शिल्पगत अध्ययन*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

जनार्दन प्रसाद झा "द्विज" : *प्रेमचंद की उपन्यास कला*, वाणी मंदिर, छपरा।

डॉ. गोपाल राय : *उपन्यास का शिल्प*, बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना।

डॉ राजेश्वर गुरु : *प्रेमचंद : एक अध्ययन*, मध्य प्रदेश प्रकाशन समिति जुमेराती गेट, भोपाल।

डॉ. त्रिभुवन सिंह : *हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद*, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी।

न किशोर कोठारी : *प्रेमचंद के पात्र*, अक्षर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली।

अवस्थी : *प्रेमचंद के नारी पात्र*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

रामविलास शर्मा : *प्रेमचंद और उनका युग*, मेहरचंद मुंशीराम, दिल्ली।

रक्षापुरी : *प्रेमचंद साहित्य में व्यक्ति और समाज*, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

मन्मथनाथ गुप्त : *प्रेमचंद : व्यक्ति और साहित्यकार*, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद।

महेन्द्र भटनागर : *समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद*, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी।

.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

ध प्रश्न

कोई उपन्यासकार अपने उपन्यास के द्वारा क्या कहना चाहता है या क्या संदेश देना चाहता है, उसे ही उपन्यास का प्रतिपाद्य कहते हैं।

निर्मला उपन्यास में सामाजिक कुप्रथा दहेज के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं का चित्रण किया गया है। दहेज न दे सकने के कारण कन्याओं का अनमेल विवाह फिर उसमे उत्पन्न समस्याएँ तथा सामाजिक परिवेश का चित्रण किया गया है।

उपन्यासकार अपनी औपन्यासिक रचना का शीर्षक या तो उद्देश्य के आधार पर रखता है, या महत्वपूर्ण पात्र या महत्वपूर्ण स्थान के नाम पर उसका नामकरण करता है।

निर्मला उपन्यास का नामकरण इस उपन्यास के मुख्य पात्र "निर्मला" के नाम पर किया गया है। पूरे उपन्यास की कथा उसके जीवन से संबंधित है तथा अन्य सभी पात्र उसके चरित्र को उभारने के लिए गढ़े गए हैं इसीलिए यह नाम सार्थक है।

यास

उपर्युक्त अंश में दहेज जैसी सामाजिक कुप्रथा की समस्या को दर्शाया गया है। दहेज न दे सकने के कारण माता-पिता को कन्या के लिए योग्य वर खोजना मुश्किल होता है। वे अपनी लड़की को चाहे उसमें कितने ही गुण क्यों न हों योग्य वर के साथ विवाह नहीं करवा सकते. कारण उनके पास दहेज में देने के लिए अधिक धन नहीं है। वे अपनी कन्या का अनमेल विवाह करने को बाध्य हो जाते हैं।

उपर्युक्त अंश में अनमेल विवाह से उत्पन्न समस्या का चित्रण किया गया है। किसी युवती का उससे अधिक उम्र के पुरुष के साथ विवाह हो जाय तो वैवाहिक जीवन का सुख समाप्त हो जाता है। युवती का मन पति से कभी मिल नहीं पाता।

ध प्रश्न

प्रेमचंद को उपन्यास लिखने की प्रेरणा तत्कालीन उर्दू लेखकों मौलाना शरर, पं. रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा आदि के बड़े उपन्यासों को पढ़ने से मिली।

ii)

i) सोजेवतन, ii) नवाबराय, iii) नाटकों iv) यथार्थ v) किसान और नारी वर्ग

यास

यथार्थ का अर्थ है जो सामने है और आदर्श का अर्थ है जो होना चाहिए। प्रेमचंद ने इन दोनों को मिलाकर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा है। उनके विचार से उपन्यास में यदि समाज का केवल यथार्थ रूप ही प्रस्तुत किया जायेगा तो इससे पाठक को अरुचि हो सकती है कारण उपन्यास में वर्णित घटनाएँ तो वह प्रतिदिन देखता है। लेकिन यदि उसमें परिवर्तन करके आदर्श की स्थापना की जायेगी, अर्थात् ऐसा होना चाहिए कि बात की जायेगी तो उसमें लोगों को रुचि होगी। हर व्यक्ति में सुधार की अवस्था उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार एक रोगी को अच्छा होने की। लेकिन प्रेमचंद के अनुसार केवल आदर्श की ही स्थापना की जायेगी अर्थात् पात्रों को सामान्य स्तर से उठाकर देवता बना दिया जायेगा, उसमें केवल अच्छाइयाँ ही दिखाई जायेंगी तो इससे भी पाठक में अरुचि होगी। इसलिए यह आवश्यक है कि यथार्थ एवं आदर्श का उचित योग हो। पात्र जीवन और हाड़-मांस का बना व्यक्ति लगे। अच्छाइयाँ, बुराइयाँ सभी गुणों का उसमें योग हो। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की बात कही गई।

वह यथार्थ जो आदर्श की ओर उन्मुख हो। हर व्यक्ति में सुधार की अवस्था रहती है। वह जिस स्थिति में है उससे ऊपर उठना चाहता है। इसीलिए उपन्यास में केवल यथार्थ का ही चित्रण न हो। पात्र में परिवर्तन आए। वे बुराई से अच्छाई की ओर प्रवृत्त हों। यही आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है।

4 प्रेमचंद से पूर्व के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य था मनोरंजन प्रदान करना। प्रेमचंद ने उपन्यास विधा को इस घेरे से बाहर निकाला, उन्होंने सर्वप्रथम सामाजिक समस्याओं को "सेवासदन" के माध्यम से उठाया। पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों के विचारों का प्रभाव भी प्रथमतः उनके उपन्यासों के द्वारा मिलता है। मानव मन में उठने वाली भावनाओं का चित्रण उन्होंने अपने औपन्यासिक पात्रों के द्वारा किया।

बोध प्रश्न

8 i)

9 i) सेवासदन ii) कर्मभूमि, रंगभूमि iii) गोदान iv) रंगभूमि vi) बांह्य

अभ्यास

5 प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में कथा एवं उद्देश्य के अनुकूल पात्रों की रचना की। उनके पात्र शहरी जीवन से संबंध रखते हों या ग्रामीण जीवन से सभी उस जीवन की वास्तविक समस्याओं से जुड़े हुए हैं। उनके पात्र सामाजिक वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। चाहे मध्य वर्ग के हों, उच्च वर्ग के हों या निम्न वर्ग के, सभी अपने वर्गों के अनुकूल कार्य करते हैं। ज़मींदार, साहूकार, दरोगा, किसान, पटवारी सभी वर्गों से संबंधित पात्रों का यथार्थ चित्रण किया गया है सामाजिक समस्याओं से पीड़ित नारी वर्ग को उन्होंने उपन्यासों में विशेष स्थान दिया। अपने पात्रों को यथार्थ से आदर्श की ओर उठाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया है।

6 प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में देश एवं काल का सुंदर चित्रण किया है। चाहे शहर का वर्णन हो या गाँव का सभी वास्तविक लगते हैं। उन्होंने समाज का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। स्थान विशेष की विशेषताओं से परिचित होने के कारण युगीन परिस्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है, नगर का जीवन, कल कारखाने, यातायात, मकान का वास्तविक चित्रण किया गया है। गाँव के खेत, खलिहान, चौपाल, पशुधन, नदी, नाले आदि प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण सभी वास्तविकताओं से जुड़े हुए हैं।

7 प्रेमचंद के अपने उपन्यासों में सरल, सहज, मुहावरेदार तथा पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। बोलचाल की भाषा में प्रयोग से इसमें संप्रेषणीयता का गुण बढ़ गया है। शहर एवं ग्राम के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। उनकी भाषा में जहाँ प्रचलित संस्कृत एवं अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है वहीं देशज तथा अंग्रेज़ी के प्रचलित शब्द भी मिलते हैं। ग्रामीण, शहरी, शिक्षित, अशिक्षित सभी प्रकार के पात्रों के अनुसार भाषा का प्रयोग किया गया है। मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सहजता एवं सुंदरता आ गयी है।

8 प्रेमचंद के सभी उपन्यास किसी न किसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर लिखे गए हैं। वे उपन्यासों के माध्यम से कभी सामाजिक समस्या को उठाते हैं कभी राजनीतिक समस्या को। तत्कालीन समाज की बुराइयों को सामने लाकर उसमें सुधार की प्रकृति को जगाना ही उनका लक्ष्य है। मनुष्य की प्रवृत्ति किसी भी प्रकार की क्यों न हो उसके अंदर यह भावना अवश्य निहित है कि वह जैसा है उससे अच्छा बनना चाहता है। मानव मन के भावों को उभारते हुए उन्होंने समाज की समस्याओं को रखा है। तत्कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति तथा जन आंदोलन के चित्रण द्वारा जनता में जागृति करना भी उनके उपन्यासों का एक प्रमुख उद्देश्य था। मनुष्य की आशावादी प्रवृत्ति को भी उन्होंने ध्यान में रखा है।

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-01

हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम
हिंदी गद्य

खंड

4

हिंदी एकांकी (पहला भाग)

इकाई 18

हिन्दी एकांकी : स्वरूप और विकास 5

इकाई 19

'कौमुदी महोत्सव' (डा. राम कुमार वर्मा) : वाचन 21

इकाई 20

'कौमुदी महोत्सव' : विश्लेषण और मूल्यांकन 45

इकाई 21

'रीढ़ की हड्डी' (जगदीश चंद्र माथुर) : वाचन 60

इकाई 22 - 25 दूसरे भाग में

खंड परिचय

यह हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम-1 का चौथा खंड है। इससे पहले के खंडों में आप हिंदी गद्य के विकास तथा उसकी विविध विधाओं का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। इसके साथ ही आपने कुछ कहानियों तथा प्रेमचंद के उपन्यास निर्मला का अध्ययन भी किया है। इस खंड में हम आपको हिंदी एकांकी दे रहे हैं।

इस खंड में कुल आठ इकाइयाँ (18-25) हैं। इकाई 18 हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास के बारे में है। इस इकाई में हिंदी एकांकी लेखन की शुरुआत तथा इसकी संरचना के बारे में विवेचन करते हुए हिंदी के विविध एकांकीकारों तथा उनकी रचनाओं का परिचय दिया गया है। एकांकी के विविध प्रकारों की चर्चा भी यहाँ की गई है तथा आधुनिक नाटक के एक महत्वपूर्ण रूप रेडियो नाटक के बारे में भी यहाँ बताया गया है।

खंड की अगली सात इकाइयों में हमने पाँच एकांकी दिए हैं। इन पाँच एकांकियों के चयन के दौरान कोशिश की गई है कि पाँच प्रकार के एकांकी दिए जाएँ। इस दृष्टि से हमने डॉ. रामकुमार वर्मा का ऐतिहासिक एकांकी "कौमुदी महोत्सव", जगदीश चंद्र माथुर का सामाजिक व्यंग्यपरक एकांकी "रीढ़ की हड्डी", उपेंद्रनाथ "अश्क" का हास्य-व्यंग्य परक एकांकी "जोंक", विष्णु प्रभाकर का मनोवैज्ञानिक संघर्षपरक एकांकी "संस्कार और भावना" तथा उदय शंकर भट्ट का सामाजिक-ऐतिहासिक एकांकी "गिरती दीवारें" चुने हैं।

"कौमुदी महोत्सव" और "रीढ़ की हड्डी" से संबंधित इकाइयाँ दो-दो हैं। बाकी तीन एकांकियों से संबंधित एक-एक इकाई है। इकाई संख्या में यह अंतर सोद्देश्य रखा गया है। पहले दो एकांकियों से संबंधित पाठ हमने विस्तार से दिए हैं ताकि आप एकांकी का विश्लेषण और मूल्यांकन करने की प्रक्रिया से परिचित हो सकें। अगली तीन इकाइयों में हम चाहते हैं कि हमारे संकेत सूत्रों की सहायता से आप एकांकी का विश्लेषण-विवेचन करने का प्रयास करें।

नाटक वस्तुतः रंगमंच से अनिवार्य रूप से जुड़ी विधा है। अतः एकांकियों के विश्लेषण-मूल्यांकन में प्रस्तुति पक्ष को भी समुचित महत्व दिया गया है।

खंड के अंत में कुछ उपयोगी पुस्तकों का उल्लेख है, जो आपके ज्ञान के विस्तार के लिए उपयोगी होंगी।

इस खंड से संबद्ध दो ऑडियो पाठ तैयार किए गए हैं—"एकांकी में प्रतिपाद्य" तथा "नाट्य-भाषा और संवाद", ये ऑडियो पाठ आपके अध्ययन केंद्र में उपलब्ध हैं। इन्हें आप सुन सकते हैं।

आभार
डॉ. रामकुमार वर्मा
श्री उपेंद्रनाथ अश्क
श्री विष्णु प्रभाकर
श्रीमती प्रेमकांता माथुर
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

इकाई 18 हिंदी एकांकी : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 दृश्य विधा का विशिष्ट स्वरूप
18.3 एकांकी का संरचनागत वैशिष्ट्य
18.3.1 कथानक
18.3.2 पात्र
18.3.3 संवाद तथा भाषा शैली
18.3.4 परिवेश अथवा देशकाल
18.3.5 अभिनेयता या मंचीयता
18.3.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य
18.4 हिंदी एकांकी का विकास
18.5 एकांकी के भेद
18.6 रेडियो नाटक
18.6.1 रेडियो नाटक और एकांकी
18.6.2 रेडियो नाटक के प्रकार
18.7 सारांश
18.8 शब्दावली
18.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- दृश्य विधा के विशिष्ट स्वरूप के बारे में जान सकेंगे;
- एकांकी तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के बीच अंतर कर सकेंगे;
- एकांकी के रचनाशिल्प का विवेचन कर सकेंगे;
- एकांकी के तत्वों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- हिंदी एकांकी के विकास क्रम के विभिन्न चरणों के बारे में बता सकेंगे;
- रेडियो नाटक की विशेषताएँ समझा सकेंगे; तथा
- एकांकी और रेडियो नाटक का संबंध पहचान सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

पिछले खंडों में आप हिंदी गद्य के विकास, हिंदी कहानी तथा हिंदी उपन्यास के बारे में पढ़ चुके हैं। चौथे खंड में हम आपको गद्य साहित्य की एक अन्य विधा से परिचित करायेंगे। इस खंड में आप पाँच एकांकी पढ़ेंगे—डॉ. रामकुमार वर्मा का "कौमुदी महोत्सव", उपेंद्रनाथ अश्क का "जोंक", विष्णु प्रभाकर का "संस्कार और भावना", डॉ. जगदीशचंद्र माथुर का "रीढ़ की हड्डी" तथा उदयशंकर भट्ट का "गिरती दीवारें"। इन एकांकियों को पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना जरूरी है कि एकांकी क्या है और उसकी क्या विशेषताएँ हैं? उसका जन्म कैसे हुआ और हिंदी में उसकी शुरुआत कब हुई? इसके साथ ही हिंदी एकांकी के विकासक्रम से परिचय भी आपके लिये ज़रूरी है। इससे आप हिंदी एकांकी के विविध रूपों का समुचित मूल्यांकन कर सकेंगे।

इकाई 18 में आप हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे। यहाँ हम एकांकी तथा अन्य साहित्य विधाओं के बारे में चर्चा करेंगे। साथ ही अन्य विधाओं की तुलना में एकांकी की विशिष्टता से भी आपका परिचय कराया जाएगा। एकांकी वस्तुतः नाटक का ही एक रूप है। एक अंक का नाटक एकांकी कहलाता है। नाटक की रचना दुनिया भर के साहित्य में प्राचीन काल से होती चली आ रही है किंतु एकांकी आधुनिक युग की देन है, जो सशक्त मंचीय विधा के रूप में काफी लोकप्रिय हुई है। हिंदी में लगभग तीन-चार दशकों तक एकांकी काफी लोकप्रिय विधा रही है।

18.2 दृश्य विधा का विशिष्ट स्वरूप

एकांकी नाटक का ही एक रूप है। अतः एकांकी की चर्चा करने से पहले नाटक के बारे में थोड़ी-सी जानकारी अपेक्षित है। साहित्य के दो प्रकार होते हैं, एक वह जिसे पढ़ा या सुना जा सकता है और दूसरा वह जिसे देखा जा सकता है। पहले प्रकार के अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास आदि आते हैं और दूसरे के अंतर्गत नाटक आता है। इस तरह साहित्य का वह रूप जिसे हम पढ़ भी सकते हैं और अपनी आँखों से देख भी सकते हैं नाटक कहलाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इसे कैसे देखा जा सकता है? उत्तर होगा इसे अभिनय के माध्यम से देखा जा सकता है। अभिनय कौन करता है? उत्तर होगा अभिनेता। अभिनेता विभिन्न पात्रों का अभिनय करके नाटक की कथा को दृश्य रूप प्रदान करते हैं। इस तरह यहाँ कथा का वर्णन नहीं किया जाता, बल्कि उसे दृश्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

अभिनेता पात्रों के रूप का अनुकरण करते हैं। इसीलिए नाटक को "रूपक" भी कहा जाता है। पात्रों का यह अनुकरण, बाह्य तथा आंतरिक दोनों स्तरों पर किया जाता है। अर्थात् अभिनेता पात्रों के अनुरूप वेशभूषा, आचरण, हाव-भाव तथा भाषा का व्यवहार करते हैं और कथा को घटित होता हुआ दिखाते हैं। यह अभिनय जिस स्थल पर होता है उसे रंगमंच कहते हैं और इसे देखने वाले नाटक के दर्शक या प्रेक्षक कहलाते हैं। आपने कोई नाटक देखा होगा, रामलीला या रासलीला देखी होगी या अन्य किसी तरह का अभिनय अवश्य देखा होगा। क्या आपने कभी गौर किया है कि नाटक की क्या विशेषता होती है? आपने कहानी या उपन्यास पढ़े होंगे, नाटक भी पढ़े होंगे, कहानी सुनी होगी, क्या आपने ध्यान दिया कि जो कहानी आपने सुनी और जो नाटक आपने देखा उसमें कोई अन्तर है? क्या आपने गौर किया है कि आप कहानी पढ़ते या सुनते हैं और नाटक देखते हैं नाटक को कोई कहता या सुनाता नहीं बल्कि अभिनेता प्रत्यक्ष रूप में इसे प्रस्तुत करते हैं। इस तरह यह दृश्य माध्यम है। यहाँ घटना का वर्णन नहीं होता, हम उसे घटित होते देखते हैं। नाटक में कार्य-व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता है : पात्रों के बीच वार्तालाप द्वारा और उनके आचरण या कार्यों द्वारा। लेखक की रचना को अभिनेताओं द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। अभिनेताओं के अतिरिक्त अन्य जिन लोगों की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है वे हैं—निर्देशक, रंगसज्जाकार, प्रकाश व्यवस्थाकार, संगीत-वाद्य की व्यवस्था करने वाले आदि। नाटक की कथावस्तु कई अंकों में विभाजित होती है और अंक कई दृश्यों में विभाजित होता है।

बोध प्रश्न 1

क) नाटक में क्या खास बात होती है जो कहानी या उपन्यास में नहीं होती। प्रश्न के नीचे दिए स्थान पर अपना उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित के लिए एक शब्द लिखिए :
   i) नाटक प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति
   ii) वह स्थान जहाँ नाटक प्रस्तुत किया जाता है
   iii) वह साहित्य रूप जिसका आनंद देख कर लिया जा सके
   iv) नाटक देखने वाले व्यक्ति

18.3 एकांकी का संरचनागत वैशिष्ट्य

नाटक की कथावस्तु कई अंकों और दृश्यों में विभाजित होती है। अंकों की संख्या अक्सर पाँच या तीन होती हैं। हालाँकि अंकों का कोई प्रतिबंध नहीं है। यह संख्या पाँच या तीन से कम या अधिक भी हो सकती है। अंकों को क्रमशः दृश्यों में विभाजित किया जाता है। दृश्यों की संख्या के बारे में भी

कोई निश्चित नियम नहीं है। हाँ दृश्यों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाने से मंच पर प्रस्तुति में बाधा उत्पन्न हो सकती है। दृश्यों की योजना वस्तुतः नाटक की प्रस्तुति को दृष्टि में रख कर ही की जाती है। इसमे घटना के समय, स्थान, वातावरण आदि को प्रस्तुत किया जाता है। इस तरह नाटक का सारा कार्य-व्यापार अंकों और दृश्यों में सिमटा होता है।

आधुनिक युग में नाटक के भीतर से एक नई विधा का जन्म हुआ है। यह नई विधा एकांकी के नाम से विकसित हुई है। एकांकी का अर्थ है एक अंक का नाटक, एक से अधिक अंकों के नाटकों की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि जब तीन या पाँच या दो या चार अंकों के नाटकों को एक समान ही समझा जाता है तो एक अंक के नाटक को एक नई विधा क्यों माना जाता है? आपका प्रश्न सही है। यदि केवल अंकों की संख्या के कारण ही एकांकी एक अलग विधा माना जाए तब तो फिर अंकों के आधार पर ही कई तरह के नाटक हो सकते हैं। किंतु ऐसा नहीं है। कई अंकों के नाटक को कभी-कभी पूर्णकालिक नाटक भी कहते हैं। ऐसा अक्सर एकांकी का नाटक से भेद करने की दृष्टि से ही किया जाता है। यहाँ हम "एकांकी" और "नाटक" शब्दों का प्रयोग करेंगे। अतः "नाटक" शब्द से हमारा ताप्तर्य होगा एक से अधिक अंकों का नाटक। आधुनिक युग में एकांकी एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हुआ है। इसका शिल्पगत स्वरूप नाटक से मिलता-जुलता होता है किंतु कलेवर कहानी की भाँति संक्षिप्त होता है। नाटक और एकांकी में न केवल आकार का ही अंतर होता है अपितु कथावस्तु, पात्र संख्या आदि का अंतर भी होता है। नाटक में जीवन का विस्तृत चित्रण होता है जबकि एकांकी उसके किसी एक खंड, स्थिति अथवा संवेदना को प्रस्तुत करता है। नाटक में मूल कथा के साथ-साथ गौण अथवा प्रासंगिक कथाएँ भी चल सकती हैं किंतु एकांकी में केवल एक मूल कथानक ही होता है। नाटक की कथावस्तु के विकास में शास्त्रीय ढंग की कार्यावस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों और संधियों का निर्वाह हो सकता है। किंतु एकांकी में इसकी कोई गुंजाइश नहीं है। यहाँ तो कथा आरंभ होकर तेजी से विकसित होती हुई चरम सीमा पर पहुँच जाती है। अतः इसमें प्रभाव की सघनता और तीव्रता अत्यावश्यक होती है। इसीलिए इसमें पात्रों की संख्या भी अधिक नहीं होती। कथा विकास में योग देने वाले प्रमुख पात्र होते हैं, गौण पात्र लगभग नहीं होते अथवा होते भी हैं तो बहुत कम। एकांकी में केवल एक दृश्य ही हो सकता है या एक से अधिक दृश्य भी बदले जा सकते हैं किंतु समय और स्थान की अधिक दूरी की गुंजाइश नहीं होती। बहुधा सारी घटना एक ही स्थान पर घटती है और यदि दृश्य बदलता भी है तो अक्सर स्थान परिवर्तन नहीं होता। नाटक में स्थान परिवर्तन किया जा सकता है। नाटक का घटना का विस्तार कभी-कभी काफी लंबे समय तक चलता है। किंतु एकांकी में यह संभव नहीं। स्थान, कार्य और समय की एकता यहाँ आवश्यक है।

यद्यपि एक अंक के नाटकों का प्रचलन संस्कृत नाट्य साहित्य में मिलता है किंतु हिंदी एकांकी अपने स्वरूप और तकनीक की दृष्टि से पश्चिम की देन है। इसीलिए यह पारंपरिक लेखन पद्धति को अपनाने के लिए भी बाध्य नहीं है। इसमें जीवन के किसी एक पक्ष, किसी परिस्थिति विशेष, किसी महत्वपूर्ण घटना अथवा भाव को ऐसे ढंग से अभिव्यंजित किया जाता है कि प्रभाव की एकात्मकता और सघनता पाठक या प्रेक्षक के मन पर अमिट छाप छोड़ती है। इस तरह एकांकी की कथावस्तु इकहरी होती है कोई अप्रधान अथवा प्रासंगिक घटना या प्रसंग साथ नहीं चलता। प्रमुख कथा का विकास नाटकीय कौशल के साथ किया जाता है जिससे कुतूहल की सृष्टि होती है और कथा तेजी से चरम सीमा की ओर बढ़ती है। चरम सीमा पर पहुँच कर एकांकी का अंत हो जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है, "विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिल कर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता की भाँति फैलने की विशृंखलता नहीं है।"

इस तरह एकांकी के लेखन में एक खास तरह की टेकनीक अथवा शिल्पविधि निहित होती है। यह टेकनीक नाटकीय कौशल के साथ आकस्मिकता और कार्य व्यापार की शीघ्रता के माध्यम से कुतूहल, जिज्ञासा और विस्मय की सृष्टि करती है। परिस्थितियों के टकराव द्वारा द्वन्द्व या संघर्ष की सृष्टि करती हुई उसे चरम सीमा तक पहुँचाती है। द्वंद्व या संघर्ष बड़ा ही प्रबल और सघन होता है जिससे पाठक या दर्शक के मन में चरम परिणति जानने की तीव्र इच्छा पैदा हो जाती है। यह द्वन्द्व या संघर्ष दो तरह का हो सकता है। दो पात्रों के बीच किसी बात को लेकर संघर्ष या फिर किसी पात्र के मन में परस्पर विरोधी विचारों का संघर्ष। चरम सीमा पर पहुँचकर इस कुतूहल या जिज्ञासा का समाधान होता है और एकांकी का अंत हो जाता है।

एकांकी के तत्व : यद्यपि श्रेष्ठ साहित्यिक कृति की रचना पूरी तरह से नियमों के बंधनों में बंध कर नहीं की जाती फिर भी साहित्यिक विधा विशेष की कुछ विशेषताएँ होती हैं जो उसे अन्य

विधाओं से अलग करती है तथा अपना एक निश्चित स्वरूप प्रदान करती हैं। एकांकी का स्वरूप निम्नलिखित तत्वों द्वारा निर्धारित होता है :

1) कथानक, 2) पात्र या चरित्र-चित्रण, 3) संरचना-शिल्प—संवाद तथा भाषा-शैली, 4) देशकाल अथवा परिवेश, 5) अभिनेयता, 6) उद्देश्य या प्रतिपाद्य।

18.3.1 कथानक

एकांकी के घटनाविधान को कथावस्तु या कथानक कहते हैं। कथानक का चयन जीवन के किसी भी क्षेत्र से हो सकता है। कथा अतीत से संबंधित हो सकती है या वर्तमान से। अर्थात् लेखक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक या समसामयिक विषय को ले सकता है, उदाहरण के लिए इस खंड में जो पाँच एकांकी आप पढ़ेंगे उनमें पहले एकांकी "कौमुदी महोत्सव" की कथा प्राचीन भारतीय इतिहास से ली गई है। शेष चार एकांकी वर्तमान सामाजिक जीवन से संबंधित हैं। यह विषय सामाजिक, राजनीतिक जीवन की समस्याओं से संबंधित हो सकते है या व्यक्ति और समाज के संघर्ष से संबंधित या मानवीय राग-विराग आदि से संबंधित। कथानक में जीवन का जितना सही प्रस्तुतीकरण होगा उतना ही वह सफल होगा। बड़े नाटकों में आधिकारिक (प्रमुख) कथा के साथ-साथ अनेक प्रासंगिक (गौण) कथा या कथाएँ भी चलती हैं किंतु एकांकी में केवल आधिकारिक कथा ही चलती है। एकांकी के कथावस्तु में इकहरापन होता है और कार्य-व्यापार तीव्रता से आगे बढ़कर अंत पर पहुँच जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि एकांकी में कथा-प्रवाह उस निर्झर के समान होता है जो किसी पहाड़ी से अकस्मात् फूटता है और कुछ दूर तक दिखाई पड़ने के बाद शीघ्र ही आँखों से ओझल हो जाता है।

कथानक का अर्थ है घटनाओं अथवा कार्य-व्यापार की योजना। यह योजना इस प्रकार की जाती है कि कथा आरंभ होकर विकसित होती हुई अंत तक पहुँच जाए। इस तरह कथावस्तु के तीन चरण होते हैं—

1) आरंभ, 2) विकास और 3) अंत।

कथानक का प्रारंभ किसी घटना के मार्मिक स्थल से होता है। फिर घटनाओं के घात-प्रतिघात से जिज्ञासा, विस्मय और कुतूहलपूर्ण संघर्ष की सृष्टि द्वारा कथानक का विकास किया जाता है और चरम सीमा पर पहुँच कर उसका अंत हो जाता है। घटनाओं के विकास में जिज्ञासा या कुतूहल की सृष्टि दो विरोधी परिस्थितियों या असंगत भावनाओं के द्वंद्व अथवा संघर्ष द्वारा की जाती है।

इसलिए कथानक का आरंभ अत्यंत सशक्त, आकर्षक और प्रभावी होना चाहिए जिससे शुरू से ही दर्शक के ध्यान को पूरी तरह पकड़ ले। कथा का विकास संघर्ष के माध्यम से होता है इसीलिए संघर्ष को एकांकी की आत्मा कहा जाता है। संघर्ष दो तरह का हो सकता है—बाहरी और आंतरिक। बाहरी संघर्ष पात्रों के बीच विषम स्थितियों के कारण उत्पन्न होता है। आंतरिक संघर्ष मानसिक होता है। इसे अंतर्द्वंद्व भी कहा जाता है। इसमें दो विरोधी भावों की टकराहट होती है। इसके चित्रण के लिए मानवीय मनोविज्ञान की सूक्ष्म पकड़ अपेक्षित है। भली-भाँति विकसित होने पर आंतरिक संघर्ष बहुत ही प्रभावपूर्ण होता है। यह अंतर्द्वंद्व विचार और भावना का हो सकता है, कर्तव्य और प्रेम का हो सकता है, नैतिक दायित्व और महत्वाकांक्षा का हो सकता है, परंपरा और प्रयोगधर्मिता का हो सकता है। संघर्ष चाहे आंतरिक हो या बाह्य, परिस्थितियों की टकराहट, अनिवार्य है। संघर्ष से ही कथानक में जिज्ञासा, कुतूहल और आकस्मिकता की सृष्टि होती है और दर्शक चरम परिणति जानने के लिए उत्सुक हो जाता है।

जैसे-जैसे संघर्ष तीखा और गाढ़ा होता जाता है पाठक या दर्शक की जिज्ञासा बढ़ती जाती है और विरोधी भावनाओं या परिस्थितियों की टकराहट या द्वंद्व घना होता जाता है। संघर्ष और अंतर्द्वंद्व की समाप्ति अक्सर विरोधी स्थितियों में से किसी एक की जीत में होती है। उदाहरण के लिए 'संस्कार और भावना' एकांकी में माँ के संस्कारों पर भावना की विजय। संघर्ष की सघनता और समाप्ति का स्थल चरम सीमा (क्लाइमेक्स) कहलाता है। यहीं पर कथानक का अंत हो जाता है। यदि चरम सीमा पूर्णतया सक्षम और प्रभावपूर्ण है तो वहीं पर कथानक का अंत अनिवार्य है क्योंकि इसके बाद कथा को आगे बढ़ाना प्रभाव को कमजोर बना देता है। यदि एकांकी चरम सीमा पर समाप्त नहीं होता तो यह कथा विकास की कमी है। यदि संघर्ष एकांकी की आत्मा है तो संघर्ष कहीं न कहीं पराकाष्ठा पर पहुँचेगा ही। इसलिए श्रेष्ठ एकांकी चरम सीमा पर अवश्य पहुँचता है और चरम सीमा पर पहुँचना ही संघर्ष की परिणति है।

संकलन-त्रय : एकांकी में एक ही घटना, संवेदना या मनःस्थिति का चित्रण होता है अतः इसमें संकलन-त्रय की अपेक्षा होती है। संकलन-त्रय का अर्थ है स्थान, कार्य और समय की एकता कथा-विकास में स्थान, समय और कार्य की एकता के माध्यम से प्रभावान्विति उत्पन्न की जाती

है। इन तीनों एकताओं के संकलन को संकलन-त्रय कहा जाता है। स्थान की एकता से तात्पर्य है नाटक में घटित होने वाली घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित हों। यदि घटनाएँ कई स्थलों पर घटित होंगी तो रंगमंच पर दृश्य विधान बदलने की जरूरत हो सकती है इसके लिए समय और साधन दोनों ही जुटाने पड़ सकते हैं। समय की एकता से तात्पर्य है कि घटनाएँ एक ही समय में घटित हों। एकांकी में दृश्य अधिक हो सकते हैं किंतु उनमें समय का ज्यादा अंतराल नहीं होता। यह नहीं कि एक घटना आज घटे और दूसरी महीने भर बाद। इसी तरह कार्य की अन्विति अथवा एकता एकांकी के लिए जरूरी है। ऐसा कोई भी कार्य या घटना नहीं होनी चाहिए जो मूल कथ्य को उभारने में सहायक न हो। कथानक का आरंभ, मध्य और अंत इस ढंग से नियोजित होने चाहिएं कि तीनों मिल कर एक इकाई की सृष्टि करें। यानी कथानक का अगला भाग पिछले का प्रतिफलन होना चाहिए। संकलन-त्रय के कई लाभ हैं। इससे एकांकी की प्रभावान्विति में वृद्धि होती है, मंचन सुविधाजनक होता है क्योंकि मंच सज्जा को ज्यादा बदलने में श्रम और समय नष्ट नहीं करना पड़ता।

18.3.2 पात्र

पात्र एकांकी का अनिवार्य अंग हैं क्योंकि कथानक का विकास पात्रों के माध्यम से होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि कथावस्तु की बुनावट में पात्रों की अपरिहार्य भूमिका हो और पात्रों का चरित्र कथावस्तु के माध्यम से विकसित और प्रस्तुत हो। दूसरे शब्दों में कहें तो कथानक चरित्र का प्रतिफलन हो और चरित्र कार्य-व्यापार से विकसित हो। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि पात्र जीवन से जुड़े हों, उनके कार्यकलाप मानवीय जीवन की अभिव्यक्ति हों। वे किसी काल्पनिक मायावी दुनिया के न होकर वास्तविक मानवीय दुनिया के हों। उनके गुण, स्वभाव, कार्य आदि सहज मानवीय होने चाहिए और यदि उनके व्यक्तित्व या व्यवहार में कोई आकस्मिक परिवर्तन आता है तो वह भी कार्य-कारण संबंध पर आधारित होना चाहिए। उनकी मनःस्थिति परिस्थितियों से उत्पन्न होनी चाहिए, ऊपर से आरोपित नहीं। पात्रों के सहज चारित्रिक विकास के लिए यह नितांत आवश्यक है।

जहाँ तक पात्र चयन का सवाल है वे किसी भी वर्ग से हो सकते हैं। प्राचीन नाट्य-चिंतन में रूढ़ि थी कि प्रधान पात्र उच्च वर्ग का तथा कुलीन होना चाहिए। किंतु आधुनिक नाटक इस तरह की कोई रूढ़ि स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह रचना के माध्यम से जीवन की यथासंभव यथार्थ प्रस्तुति करना चाहता है। एकांकी पढ़ते समय आप देखेंगे कि पहले एकांकी 'कौमुदी महोत्सव' के पात्र राजन्य वर्ग के हैं या राजकर्मचारी हैं, अन्य तीन एकांकियों के पात्र मध्यवर्ग के हैं, 'गिरती दीवारें' के पात्र सामंतीय वर्ग के हैं।

एकांकी में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होती। सामान्यतः पात्र संख्या चार-पाँच से ज्यादा नहीं होती जिनमें से एक या दो प्रधान पात्र होते हैं, शेष गौण। नाटक में बहुधा प्रधान पात्र का विरोधी पात्र होता है जिसे प्रतिनायक कहा जाता है। एकांकी में प्रतिनायक का होना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि संघर्ष दो पात्रों के बीच ही हो। परिस्थितियों अथवा मनःस्थति का द्वंद्व भी हो सकता है। इसी तरह हास्य-व्यंग्य समावेश के लिए किसी पात्र का होना भी एकांकी में जरूरी नहीं है। हास्य-व्यंग्य की सृष्टि प्रमुख या गौण पात्रों के माध्यम से अथवा परिस्थितियों के माध्यम से भी की जा सकती है। "जोंक" में हास्य-व्यंग्य की सृष्टि प्रमुख पात्रों के माध्यम से ही की गई है।

पात्रों के चरित्र का विकास उनकी स्थिति, मनोविज्ञान, संस्कार और परिवेश के अनुकूल होना चाहिए। पात्र मानवीय जीवन के हों, ऐसे काल्पनिक आदर्श नहीं कि जीवन में असंभव लगे। यदि वे किसी आदर्श को स्थापित भी करें तो स्वाभाविक ढंग से। "संस्कार और भावना" एकांकी आप पढ़ेंगे, उसमें माँ का हृदय परिवर्तन बहुत बड़ी घटना है। किंतु इस आदर्श को इतने स्वाभाविक ढंग से विकसित किया गया है कि यह बिल्कुल यथार्थ बन गया है।

18.3.3 संवाद तथा भाषा शैली

संवाद एकांकी का अपरिहार्य तत्व है जिसके बिना एकांकी की रचना हो ही नहीं सकती। हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है जिसमें सब कुछ घटित होते दिखाया जाता है। कोई विवरण नहीं दिया जाता है। पात्रों द्वारा कही गई बातों के माध्यम से ही कथा का घटना व्यापार चलता है और पात्रों का चरित्र विकसित और व्यक्त होता है। इस तरह संवाद नाटक की कसौटी बन जाता है। पात्र स्वयं जो कुछ कहता है उससे तो उसके चरित्र के बारे में पता चलता ही है अन्य पात्रों की बातचीत भी उसके व्यक्तित्व को प्रकाशित करती है। अन्य साहित्यिक विधाओं में लेखक को अपनी ओर से कुछ भी कहने की छूट होती है क्योंकि अन्य विधाएँ वर्णानात्मक भी हो सकती हैं। वहाँ लेखक जितनी बात जरूरी समझता है उतनी पात्रों के मुख से कहलाता है शेष का

बयान खुद कर देता है। ऐसा करते समय वह चाहे जितना विस्तार से कह सकता है स्थिति, समस्या, वातावरण या पात्र विशेष के संबंध में टिप्पणी कर सकता है। किंतु नाटक में सब कुछ संवादों के माध्यम से ही व्यक्त होना चाहिए। दृश्यों के आरंभ में तथा बीच-बीच में दिए गए रंग-निर्देश (लेखक द्वारा दिए गए रंगमंच तथा अभिनय संबंधी संकेत) प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक होते हैं किंतु प्रमुख भूमिका संवादों की ही होती है। कथावस्तु का विकास उसके उतार-चढ़ाव और चरम सीमा की अभिव्यक्ति संवादों के माध्यम से होती है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि संवाद प्रभावपूर्ण, रोचक और स्वाभाविक तो हों ही, मर्मस्पर्शी, संक्षिप्त और वाक्पटुतापूर्ण भी हों। यदि संवाद मर्मस्पर्शी होंगे तो उनका प्रभावपूर्ण होना स्वाभाविक ही है। इसी तरह वाक्पटुतापूर्ण होने से उनमें रोचकता उत्पन्न होगी। संक्षिप्त होना इसलिए ज़रूरी है कि बोलचाल की बात आमतौर पर बहुत लंबी नहीं होती किसी गंभीर विषय पर वैचारिक वार्तालाप भी भाषण या वक्तव्य की भाँति बहुत बड़ा नहीं होगा। एकांकी का आकार छोटा होने के कारण संक्षिप्तता और भी अधिक अपेक्षित है। यहाँ अधिक विवेचन, विश्लेषण की गुंजाइश नहीं। अतः गंभीर और महत्वपूर्ण बात को भी संक्षिप्त किंतु प्रभावपूर्ण ढंग से कहना ज़रूरी है। उपर्युक्त सभी गुणों के समावेश के बावजूद संवाद स्वाभाविक होने चाहिए। स्वाभाविकता का अर्थ है सहजता। यह सहजता कई स्तरों पर हो सकती है। पहली बात तो यह कि संवाद पात्र के स्वभाव, व्यक्तित्व, शिक्षा-दीक्षा, आयु और मनःस्थिति के अनुकूल हों। दूसरे स्तर पर स्वाभाविकता से तात्पर्य है वास्तविक जीवन से निकटता। जीवन में विविध परिस्थितियों में हम जैसे आचरण-व्यवहार करते और बोलते हैं वैसी ही प्रतीति नाटक में होनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि दिन-प्रतिदिन के वार्तालाप को एकांकी में ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया जाए। ऐसा करने से वह जिज्ञासा अथवा कुतूहल उत्पन्न नहीं हो सकेगा जो एकांकी के लिए नितांत अपेक्षित है। अतः लेखक को चुनना होता है कि कथ्य का कौन-सा अंश दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हो सकेगा और पात्रों के संवादों के माध्यम से पाठक या दर्शक को सर्वाधिक संप्रेषणीय हो सकेगा। इसके लिए संवादों में स्वाभाविकता के साथ-साथ वाक् चातुर्य, बातचीत की कुशलता अपेक्षित है। पात्र से केवल उतना ही कहलाया जाए जितना कथा के विकास और पात्र के चरित्रोद्घाटन या मनोभावों के उद्घाटन के लिए अपेक्षित हो। लंबे और विचार बोझिल भाषणों से सदैव बचना चाहिए क्योंकि उनसे रोचकता कम होगी और वे दर्शकों को प्रभावित भी नहीं कर सकेंगे। वार्तालाप का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य स्थिति विशेष में अनिवार्य प्रतीत होना चाहिए। बात को इतनी सहजता और स्पष्टता से कहलाया जाना चाहिए कि पाठक या दर्शक को तुरंत समझ में आए। रंगमंच पर नाटक की सफलता या असफलता का आधार उसके संवाद ही होते हैं।

संवादों के प्रकार : संवाद कई प्रकार के होते हैं। इनमें दो पात्रों के बीच बातचीत तथा एकालाप या स्वगत कथन अधिक प्रचलित हैं। स्वगत कथन में पात्र किसी अन्य पात्र से बात नहीं करता वरन् अपने आप से ही कहता है। इसके द्वारा पात्र की मनःस्थिति उद्घाटित की जाती है, उसके मन में चल रहे द्वंद्व को व्यक्त किया जाता है।

भाषा : जहाँ तक भाषा का प्रश्न है इसे संवाद की कसौटी कहना चाहिए। पहले हम कह चुके हैं कि संवादों के माध्यम से भाषा ही नाट्य कथावस्तु को दृश्य बनाती है। दृश्य माध्यम होने के कारण यहाँ भाषा को अधिकाधिक संप्रेषणीय होना चाहिए। लिखित भाषा और उच्चारित भाषा में प्रभाव का अंतर होता है। नाटक में भाषा का मौखिक रूप प्रधान होता है। दर्शक उसे मंच पर देखता-सुनता है। पात्रों द्वारा कही गई बात दर्शक को तुरंत संप्रेषित होनी चाहिए क्योंकि सोचने विचारने का समय नहीं होता। अतः लेखक को मौखिक शब्द की प्रभाव क्षमता पर ध्यान केंद्रित करना होता है। यहीं आकर दृश्य माध्यम की भाषा पाठ्य माध्यम की भाषा से विशिष्ट हो जाती है। भाषा का प्रयोग पात्रों की मनःस्थिति, गुण, स्वभाव, संस्कार, सामाजिक स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। एकांकी का आकार छोटा होने के कारण भाषा में संप्रेषणीयता की माँग और अधिक बढ़ जाती है।

शैली : शैली का अर्थ है कथ्य को प्रस्तुत करने का ढंग। कथ्य को प्रस्तुत करने के ढंग पर दो चीजों का खास असर होता है। सर्वप्रथम तो एकांकीकार के अपने व्यक्तित्व का। हर लेखक का अपनी बात को प्रस्तुत करने का एक ख़ास ढंग होता है जो उसका अपना होता है। दूसरे वह अपने कथानक के लिए जिस विषय को चुनता है वह भी उसकी शैली को निर्धारित करता है। इस तरह शैली के कई रूप हो सकते हैं जैसे :

1 व्यंग्यात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, हास्यपरक शैली, विश्लेषणात्मक शैली आदि। नाटक में लेखक की अपनी शैली सीधे प्रस्तुत न होकर पात्रों के मुख से सामने आती है। अतः व्यंग्य, विवेचन, विश्लेषण तर्क आदि सभी संवाद के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

2 पात्रों के मनोविज्ञान की प्रस्तुति के आधार पर मनोविश्लेषणपरक शैली या भावनात्मक शैली हो सकती है।

3 विषय की दृष्टि से गंभीर विवेचन की शैली या सहज बोलचाल की शैली हो सकती है।

अभिनेयता की दृष्टि से भाषा-शैली और संवाद अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक की भाषा का लिखित पक्ष जितना महत्वपूर्ण होता है उतना ही भाषा का मौखिक पक्ष। लिखित रूप में प्रभावपूर्ण होते हुए भी यदि भाषा तथा शैली दृश्य और उच्चारित रूप में स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण न लगी तो नाटककार का सारा उद्देश्य निष्फल रहेगा। उसमें बोलचाल की सहजता, स्वाभाविकता और प्रभविष्णुता नितांत अपेक्षित है। लेखक ने यदि व्यंग्यात्मक या प्रतीकात्मक शैली अपनायी है तो यह व्यंग्य या प्रतीक दर्शक को सहज बोधगम्य होने चाहिए अन्यथा उसका अपेक्षित प्रभाव नहीं होगा। अतः संवाद पढ़ने में जितने प्रभावकारी और संप्रेषणीय हों, मंच पर प्रस्तुत होने पर भी उतने ही या उससे अधिक प्रभावकारी होने चाहिए कम नहीं।

18.3.4 परिवेश अथवा देशकाल

एकांकी का कथानक जिस समय तथा स्थान से संबंधित हो उसके वातावरण की सृष्टि परिवेश की सृष्टि कहलाती है। पात्र जिस समय के हैं, जिस स्थान और जिस वर्ग के होते हैं उसका प्रभाव उनके रहन-सहन, वेशभूषा, भाषा, विचारों आदि पर दिखाया जाना चाहिए। यदि कथानक समसामयिक जीवन से संबद्ध है तो उसमें समसामयिक परिवेश होना चाहिए और यदि ऐतिहासिक है तो इतिहास का परिवेश। उदाहरण के लिए हम पाठ्यक्रम में निर्धारित एकांकियों को देखें 'कौमुदी महोत्सव' ऐतिहासिक एकांकी है। अतः प्राचीन भारतीय जीवन, समाज, राज्यव्यवस्था आदि का परिवेश प्रस्तुत किया गया है। ''रीढ़ की हड्डी'' आधुनिक जीवन के मध्यवर्गीय परिवार की लड़की के विवाह के प्रश्न को लेकर लिखा गया है। अतः भारतीय समाज के मध्य वर्ग के परिवार के रहन-सहन, आचार-व्यवहार, सोच-विचार आदि के परिवेश को प्रस्तुत करता है। परिवेश से कथानक तथा पात्रों में विश्वसनीयता उत्पन्न होती है। अतः परिवेश की सृष्टि जितनी वास्तविक और स्वाभाविक होगी एकांकी उतना ही विश्वसनीय और सजीव होगा। जिस समय और स्थान को प्रस्तुत किया जा रहा है वह पाठक या दर्शक की कल्पना में सजीव हो उठना चाहिए।

परिवेश की सृष्टि में सावधानी लेखक के लिए नितांत ज़रूरी है। मान लीजिए किसी मध्यवर्गीय परिवार का घर प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसे 'रीढ़ की हड्डी' में रामस्वरूप के कमरे का दृश्य। यदि यहाँ लेखक कोई बहुत सजा-धजा आलीशान ड्राइंगरूम दिखा देता तो दर्शक पर इसका बड़ा ही अजीब प्रभाव पड़ता, उसे यह सहज विश्वास ही नहीं होता कि यह एक साधारण माली हालत के आदमी का घर है'

देशकाल या परिवेश एकांकी के संपूर्ण कथा व्यापार में व्याप्त रहता है। कहानी, उपन्यास आदि वर्णनात्मक विधाओं में तो देशकाल या परिवेश की सृष्टि के लिए लेखक अपनी ओर से टिप्पणी भी कर सकता है विवरण भी दे सकता है किंतु नाट्य विधा में परिवेश की सृष्टि के लिए लेखक प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कहता। इसकी सृष्टि वह दृश्य-विधान, रंग-सज्जा, पात्रों की वेशभूषा आदि के विषय में संकेत देकर तथा पात्रों की भाषा, विचार, रहन-सहन के तौर-तरीके, बातचीत की शैली आदि के माध्यम से करता है। पूरी की पूरी नाट्य-प्रक्रिया मिलकर परिवेश की सृष्टि करती है। मंचन के समय निर्देशक को भी परिवेश का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। मंच-सज्जा ध्वनि-प्रभाव, पात्रों के अभिनय आदि का भी परिवेश की सृष्टि में विशेष योगदान रहता है। परिवेश की सहज और स्वाभाविक सृष्टि के लिए आवश्यक है कि लेखक को समाज, संस्कृति, इतिहास, कला आदि की सूक्ष्म जानकारी हो। लेखक जीवन को जितनी सूक्ष्मता से देखेगा, उतनी ही सफलता से वह देशकाल की सृष्टि कर सकेगा। यदि वह इतिहास से अपना कथानक चुनता है तो उसे इतिहास के काल विशेष के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करके तत्कालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करना होगा। इतिहास का जो युग उसने लिया है उसे यह जानकारी होनी चाहिए, उसमें लोग कैसे रहते थे, किस ढंग से थे, मानवीय संबंधों का स्वरूप कैसा था, ज्ञान-विज्ञान के विकास की क्या स्थिति थी, धर्म, संस्कृति, राजनीति आदि का क्या रूप था, आर्थिक-सामाजिक संबंधों की स्थिति क्या थी। इस समस्त जानकारी के आधार पर ही वह अपने कथानक को सजीव, स्वाभाविक और विश्वसनीय बना सकता है। इसी तरह समसामयिक परिवेश की जानकारी आवश्यक है। कथानक यदि ग्रामीण जीवन का है या शहरी जीवन का है तो वहाँ के लोगों के रहन-सहन, आचार-विचार मानवीय संबंधों के स्वरूप की जानकारी के आधार पर देशकाल की सृष्टि की जानी चाहिए।

18.3.5 अभिनेयता या मंचीयता

हम पहले कह चुके हैं कि एकांकी और नाटक दृश्य विधाएँ हैं। इन्हें रंगमंच पर अभिनय द्वारा

दृश्य बनाया जाता है। यह लेखक द्वारा लिख दिए जाने मात्र से पूरा या सफल नहीं हो जाता, मंच पर प्रस्तुत होकर पूर्ण होता है। अतः अभिनेयता एकांकी का महत्वपूर्ण तत्व है। यदि कोई नाटक अथवा एकांकी सफलतापूर्वक अभिनीत नहीं हो सकता तो उसे नाटक न कह कर संवादात्मक कथा मात्र कहा जाएगा। केवल संवादों के रूप में प्रस्तुत कर देने मात्र से कोई रचना नाटक नहीं बन जाती। यह ज़रूरी होता है कि संवाद अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर स्थिति को दृश्य बनाने में सक्षम हों। नाटककार चूँकि अपनी ओर से कुछ नहीं कहता अतः कथानक में निहित द्वंद्व और उसकी चरम परिणति की अभिव्यक्ति को रंगमंचीय प्रदर्शन द्वारा अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए अभिनेता नाटक के पात्रों का रूप धारण करके अभिनय करते हैं। अभिनय का अर्थ केवल संवाद बोल देना मात्र नहीं होता। अभिनेता अपने हाव-भाव, शारीरिक चेष्टाओं, वेशभूषा आदि द्वारा संवादों को सजीव बनाता है। अभिनय कई तरह से किया जाता है: 1) मुँह से बोलकर 2) शारीरिक चेष्टाओं द्वारा 3) हाव-भाव की अभिव्यक्ति द्वारा 4) वेश-भूषा और अलंकरण द्वारा। अभिनेता जिस पात्र का अभिनय कर रहा है उसके संवादों को बोलना वाणी द्वारा अभिनय होता है। किंतु अभिनेता का उद्देश्य किसी संवाद को केवल बोल देना नहीं होता। वह संवाद द्वारा पात्र की मनःस्थिति प्रस्तुत करता है अतः अभिनेता अपनी मुख-मुद्रा और हाव-भाव द्वारा भी पात्र का अनुकरण करता है। "रीढ़ की हड्डी" एकांकी में उमा जब अपने मन की घुटन और व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए गोपाल प्रसाद को खरी-खोटी सुनाती है तो उसके मन की व्यथा उसके पूरे व्यवहार से प्रकट होती है। यही हाव-भाव द्वारा अभिनय है। इसके साथ ही अभिनेता अपनी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा अभिनय भी करते हैं जैसे 'रीढ़ की हड्डी' के आरंभिक अंश में रामस्वरूप का नौकर की सहायता से कमरे को व्यवस्थित करना या "जोंक" में अथिति को घर से हटाने के उद्देश्य से गृहस्वामिनी का बीमारी का बहाना करके लेट जाना आदि। वाणी, शरीर, हाव-भाव आदि के सभी तरह अभिनय का प्रभाव तभी पूरा होता है जब अभिनेता पात्र की वेशभूषा तथा आकार-प्रकार का भी अनुकरण करता है। "कौमुदी महोत्सव", एकांकी के आरंभ में सम्राट चंद्रगुप्त के वेश विन्यास का जो विस्तृत विवरण है उससे उनके पराक्रमी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। इसी तरह "रीढ़ की हड्डी" की उमा के साधारण से कपड़े उसके स्वाभिमानी तथा सादगीपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। इस तरह वेशभूषा तथा अलंकरण द्वारा अभिनेता पात्र के रूप का अनुकरण करता है। अभिनय के संबंध में विस्तृत चर्चा हम अगली इकाइयों में करेंगे। अभिनय जितना सजीव और स्वाभाविक होगा उतना ही सफल नाट्य प्रदर्शन होगा। सफल अभिनय की अवस्था वस्तुतः वह अवस्था है जब दर्शक यह भूल जाए कि वह मंच पर प्रदर्शन देख रहा है या घटना को वास्तविक रूप में घटित होते देख रहा है। मंचीयता की दृष्टि से नाट्य लेखक से कई प्रकार की अपेक्षाएँ की जाती हैं। इनमें कुछ तो बाह्य है और कुछ आंतरिक। बाह्य अपेक्षाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं रंग-निर्देश (रंग संकेत)। लेखक रंग-निर्देश द्वारा नाटक में घटना के समय, घटना स्थल की मंच-सज्जा, दृश्य परिवर्तन, पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान की सूचना, उनके रूपाकार, वेशभूषा, संवादों के बोलने के ढंग, लहजे आदि की सूचना देता है। यदि नाटक रेडियो के लिए लिखा हो तो ध्वनि संबंधी निदेश और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। आंतरिक अपेक्षाएँ नाटक के वस्तु-विधान, पात्र-सृष्टि, भाषा एवं संवाद-शिल्प में निहित होती हैं। नाटक जीवन की अनुकृति होता है। किंतु जीवन की घटनाओं को यथावत प्रस्तुत कर देने मात्र से नाट्य-सृजन पूरा नहीं हो जाता। उनको इस ढंग से प्रस्तुत किया जाना ज़रूरी होता है कि वे दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हों। अतः घटनाओं, स्थितियों और मनःस्थितियों को दृश्यात्मक परिप्रेक्ष्य में उभारना अपेक्षित होता है। दृश्य-विकास ऐसा न हो कि उसे मंच पर प्रस्तुत करना असंभव या अस्वाभाविक लगे। यदि एकांकी में एक ही दृश्य है फिर तो कोई दिक्कत नहीं, किंतु यदि दृश्यों की संख्या एक से अधिक हो तो दृश्य-परिवर्तन के अनुकूल मंच-सज्जा ऐसी हो जिसे आसानी से और कम समय में बदला जा सके। इसी दृष्टि से संकलन-त्रय की अपेक्षा की जाती है। संकलन-त्रय की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। संकलन-त्रय का मतलब है नाटक की कथा में स्थान, काल और कार्य की एकता, यानी एक घटना व्यापार एक स्थान पर एक समय में घटित हों। संकलन-त्रय होने पर एकांकी स्वाभाविक और मंचीय रहेगा। इसी दृष्टि से बहुत से एकांकीकार एकांकी में दृश्य परिवर्तन को उपयुक्त नहीं समझते और एक ही दृश्य का एकांकी लिखते हैं।

18.3.6 उद्देश्य या प्रतिपाद्य

किसी भी साहित्यिक कृति की रचना के पीछे रचनाकार की कोई न कोई दृष्टि अवश्य निहित रहती है। कृति की रचना मनोरंजन के लिए भी हो सकती है किन्तु मात्र मनोरंजन के अलावा भी कृतिकार का कोई न कोई प्रयोजन या उद्देश्य निहित होता है। एकांकी रचना जिस प्रयोजन या उद्देश्य को लेकर होती है या रचना में जो दृष्टि निहित दिखाई देती है वह उसका प्रतिपाद्य कहलाती है। इस तरह एकांकी के प्रतिपाद्य से तात्पर्य है कि एकांकी क्या संदेश प्रस्तुत करता है और उसके पीछे लेखक का आशय क्या है। प्रतिपाद्य के आधार पर ही कृति का महत्व निर्धारित होता है। कोई एकांकी यदि शिल्प की दृष्टि से बहुत श्रेष्ठ है किंतु किसी विशिष्ट रचना दृष्टि को

उजागर नहीं करता तो केवल शिल्प के आधार पर वह पाठक या दर्शक को पसद नही आ सकता। इसी तरह यदि प्रतिपाद्य जीवनानुभवों, श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों और संवेदनों की प्रतिष्ठा नहीं करता या उसमें निहित संदेश अत्यंत निकृष्ट और हीन दृष्टि को स्थापित करता है तो एकांकी अच्छा नहीं हो सकता।

इस तरह एकांकी में जीवन से संबंधित कोई न कोई उद्देश्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मौजूद रहता है। हाँ यह लेखक के ऊपर है कि वह अपने प्रतिपाद्य को किस तरह प्रस्तुत करता है। वह किसी समस्या को सीधे उभार कर समाधान दर्शक के ऊपर छोड़ सकता है, या फिर समाधान भी प्रस्तुत कर सकता है। ऐतिहासिक रचनाओं में प्रतिपाद्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रश्न इस बात का होता है कि ऐतिहासिक प्रसंग की वर्तमान या भावी प्रासंगिकता क्या है? आधुनिक जीवन में वह किस दृष्टि से उपयोगी है? लेखक उसके माध्यम से क्या संदेश प्रस्तुत करना चाहता है?

किसी भी एकांकी के प्रतिपाद्य को जानने के लिए उसे ध्यानपूर्वक पढ़ना या मंच प्रस्तुति को ध्यानपूर्वक देखना जरूरी है। ध्यानपूर्वक देखने या पढ़ने के बाद समझ सकेंगे कि उसमें क्या कहा गया है और लेखक उसके माध्यम से क्या संदेश देना चाहता है। लेखक के संदेश भली-भाँति समझ कर ही हम उसके साहित्यिक और सामाजिक महत्व का मूल्यांकन कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

क) एकांकी और नाटक का क्या अंतर होता है? चार-पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित में से एकांकी में क्या सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है?

i) प्रासंगिक कथा

ii) कथानक का लक्ष्यों में विभाजन

iii) चरम सीमा

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए कोष्ठक में से सही शब्दों को छाँटिए।

i) एकांकी में पात्रों की संख्या.............................. (का कोई बंधन नहीं है/काफी होती है/कम होती है)।

ii) एकांकी में लेखक.............................. (अपनी ओर से टिप्पणी देता चलता है/पात्रों के वार्तालाप के साथ-साथ रंग-निर्देश भी प्रस्तुत करता है)।

iii) संवाद का एकांकी में.............................. (कोई खास महत्व नहीं होता/बहुत अधिक महत्व होता है)।

घ) संकलन-त्रय से आप क्या समझते हैं? इससे क्या लाभ हैं?

....

....

....

....

....

18.4 हिंदी एकांकी का विकास

हिंदी में एकांकी एक स्वतंत्र और सशक्त विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। यद्यपि संस्कृत में अंक, वीथी, भाण, प्रहसन, गोष्ठी, रासक, हल्लीश आदि एक अंक के रूपकों (नाटकों) का प्रचलन था किंतु वर्तमान हिंदी एकांकी अपने स्वरूप और तकनीक की दृष्टि से पश्चिम के one act play की

देन है। पश्चिमी साहित्य में मध्यकाल में धार्मिक अभिनय के उद्देश्य से रहस्य नाटक (Mystery plays) और नीतिपरक नाटक (Morality plays) हुआ करते थे जिनकी कथा छोटी और पात्रों की संख्या सीमित होती थी। किंतु इनकी रचना साहित्यिक दृष्टि से न होकर धार्मिक दृष्टि होती थी। अतः इन्हें साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है। पश्चिम में एकांकी वस्तुतः आधुनिक युग की विधा है जिसका जन्म एक विचित्र घटना के साथ में हुआ है। पश्चिम में रंगमंच की बड़ी ही जीवंत परंपरा रही है। नाटक देखना काफी लोकप्रिय मनोरंजन था । किंतु नाटकों का अभिनय देखने के लिए सभी दर्शक अक्सर निश्चित समय पर प्रेक्षागृह नहीं पहुँच पाते थे। किंतु जो लोग समय से पहले या ठीक समय पर पहुँच जाते थे उनके मनोरंजन के लिए अक्सर कोई हास्य प्रधान या रोमांचकारी अभिनय प्रस्तुत किया जाता था। मूल नाटक शुरू होने से पहले प्रवेशिका के रूप में प्रस्तुत ये मनोरंजन प्रदर्शन पटोन्नायक या पटोत्थापक (curtain-raiser) कहलाते थे। आजकल सिनेमाघरों में जिस तरह सिनेमा शुरू होने से पहले कुछ समय समाचार (news real) और विज्ञापन आदि दिखाए जाते हैं उसी तरह ये पटोन्नायक दिखाए जाते थे। लंदन में वेस्ट एंड थिएटर में सन् 1903 में W.W. Jacob की कहानी Monkey's paw का लुई पार्कर द्वारा नाट्य रूपांतर पटोन्नायक के रूप में दिखाया गया। इस पटोन्नायक प्रस्तुति ने दर्शकों को इतना प्रभावित किया। वे जिस नाटक को देखने आए थे उसे देखे बगैर ही चले गये। इस तरह "मंकीज़ पॉ" अपनी प्रभावान्विति की सघनता और तीव्रता में पूर्णकालिक नाटक के समकक्ष रहा। इसी घटना से एकांकी (one act play) का जन्म हुआ। नाटक कंपनी के व्यवस्थापकों ने इस घटना को नाटक पर प्रहार माना और आगे से पटोन्नायकों के प्रदर्शन का बहिष्कार किया। इस तरह पटोन्नायकों का प्रदर्शन समाप्त हो गया। किंतु यहीं से एक नई, जीवंत और विशिष्ट नाट्य विद्या की शुरुआत हुई। अब एकांकी नाटक केवल हल्के मनोरंजन या रोमांचकारी घटना के प्रदर्शन का माध्यम नहीं रहे बल्कि इनमें बौद्धिकता, तार्किकता तथा नाटकीय सघनता का समावेश हुआ। तब से एकांकी अत्यंत लोकप्रिय नाट्य विधा बन गया।

एकांकी की लोकप्रियता के पीछे इसका प्रभावान्विति के साथ-साथ अन्य बाहरी कारण भी रहे हैं। औद्योगिक विकास के साथ-साथ मनुष्य का जीवन अधिकाधिक व्यस्त हो गया। ऐसी स्थिति में जहाँ वह लंबे उपन्यासों की तुलना में कहानी पढ़ना अधिक पसंद करता, वहीं बड़े नाटकों के स्थान पर थोड़े समय में ही प्रभाव की घनता से अपील करने वाले एकांकियों को अधिक पसंद करने लगा। घटना व्यापार की एकाग्रता के कारण एकांकी ने जनरुचि को तेजी से प्रभावित किया। शॉ, गाल्सवर्दी, इब्सन, कॉकमैन, सिंज, लेसिंग, ऑस्कर वाइल्ड, चेखव, गोर्की, इलियट, सार्त्र, जॉन ड्रिंकवाटर, टॉलस्टाय आदि लेखकों ने इसे समर्थ विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया।

हिंदी में एक अंक के नाटकों का लेखन भारतेंदु युग में ही शुरू हो गया था। भारतेंदु का "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति", बालकृष्ण भट्ट का "बाल विवाह", प्रताप नारायण मिश्र का "कलि कौतुक" आदि नाटक समस्या के एक पक्ष को केंद्रित करके लिखे गए हैं। किंतु एकांकी को स्वतंत्र नाट्य विधा मानकर नाट्य लेखन का प्रयास कभी शुरू नहीं हुआ था। अंक और दृश्य आदि शब्दों के प्रयोग में भी एकरूपता नहीं थी। हालाँकि प्रभाव की एकता की दृष्टि से ये नाटक आधुनिक एकांकी से बहुत दूर नहीं थे। इसलिए शिल्प की दृष्टि से एकांकी विधा के पूर्णतया अनुरूप न होने पर भी ये हिंदी एकांकी की प्रारंभिक अवस्था के द्योतक माने जाते हैं। सन् 1929 में "प्रसाद" के "एक घूँट" का प्रकाशन हुआ। एक अंक और एक ही दृश्य, अंतर्द्वंद्व, इकहरे कथानक आदि कारण यद्यपि इसे हिंदी का प्रथम एकांकी कहा गया है। किंतु आधुनिक एकांकी की शुरुआत 'एक घूँट' से नहीं मानी जा सकती। कार्य व्यापार की सघनता और क्षिप्रता के अभाव में इसे आधुनिक ढंग का एकांकी मानना उपयुक्त नहीं है।

स्वतंत्र साहित्य विधा के रूप में आधुनिक हिंदी एकांकी की शुरुआत डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी "बादल की मृत्यु" (1930) के प्रकाशन के साथ हुई। इसमें वर्मा जी ने पश्चिमी एकांकी की टेकनीक को आधार बनाया है। इसके बाद अन्य एकांकी संकलनों "दस मिनट", "नहीं का रहस्य", "पृथ्वीराज की आँखें", "चंपक", "रेशमी टाई" आदि का प्रकाशन हुआ। उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक, हास्यपरक एकांकी लिखे हैं। शिल्प की दृष्टि से पाश्चात्य एकांकी कला को अपनाने के साथ ही कथ्य की दृष्टि से वर्मा जी ने भारतीय आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है, हालाँकि उन्होंने प्राचीन भारतीय जीवन-दृष्टि और नाट्य-दृष्टि का रूढ़िबद्ध होकर पालन नहीं किया है। वे अक्सर पात्रों की चारित्रिक विलक्षणता का स्वाभाविक यथार्थ चित्रण करके अंत में उन्हें आदर्शपरक मोड़ दे देते हैं। पश्चिमी दुखांत और विस्मयजनक अंत को भी उन्होंने अपनाया है। अभिनेयता की दृष्टि से वर्मा जी के एकांकी काफी सफल हैं। स्वयं रंगमंच से संबद्ध रहने के कारण वे नाट्य प्रस्तुति की अपेक्षाओं को समझते हैं। कार्य व्यापार की सक्रियता, घटनाओं का उतार-चढ़ाव, कुतूहलपूर्ण ढंग से चरम-सीमा की सृष्टि, संकलन त्रय का निर्वाह

पात्रों के मनोभावों और मन:स्थितियों का सहज विकास, भाषा तथा संवादों की सहजता और संक्षिप्तता आदि उनके एकांकियों की विशेषताएँ हैं।

भुवनेश्वर प्रसाद का एकांकी संग्रह "कारवाँ", 1935 में प्रकाशित हुआ। इनके एकांकियों में सामाजिक जीवन, विशेष रूप से मध्यवर्गीय जीवन की विकृतियों, खोखलेपन और कृत्रिमता को उद्घाटित किया गया है। भुवनेश्वर ने जीवन और समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है। ऊपरी आदर्श के दिखावे के नीचे छिपे कलुष को वे उघाड़ कर सामने रख देते हैं। उनका व्यंग्य तीखा, कड़वा और प्रत्यक्ष होता है जिससे पाठक या दर्शक तिलमिला उठता है। उन्होंने प्रमुखतया यौन संबंधों, प्रेम विवाह आदि की समस्याओं को उठाया है। वे स्थिति का चित्रण मात्र कर देते हैं। समस्याओं का समाधान देने में उनकी रुचि नहीं है। वे मानते हैं कि समाधान वे ही ढूँढेंगे जो रोगग्रस्त हैं। पश्चिमी नाटककारों तथा मनोविश्लेषकों खासतौर पर इब्सन, शॉ, फ्राइड, डी.एच लारेंस आदि का भुवनेश्वर पर काफी प्रभाव है। उनके प्रमुख एकांकी हैं "प्रतिभा का विवाह", "श्यामा : एक वैवाहिक विडंबना", "एक साम्यहीन साम्यवादी", "शैतान" "ऊसर", "लॉटरी", "रोमांस-रोमांच" आदि। "ताँबें के कीड़े" में भुवनेश्वर ने मनुष्य की धनलोलुपता को नग्न रूप में प्रस्तुत किया है। भुवनेश्वर ने "सिकंदर", "अकबर", "आजादी की नींव" आदि ऐतिहासिक एकांकी भी लिखे हैं।

गणेश प्रसाद द्विवेदी ने भी मनोवैज्ञानिक एकांकी लिखे हैं। "सोहाग बिंदी", "वह फिर आई थी", "परदे का अपर पार्श्व" आदि में असफल प्रेम या असंतुष्ट वैवाहिक जीवन आदि की समस्याओं को उठाया गया है। भाषा के प्रति लेखक की जागरूकता ऐसी है कि "सोहाग बिंदी" में डॉक्टर, बंगला बोलता है, महाराज देहाती बोली और अन्य पात्र आम बोल-चाल की हिंदी। नाटक में लंबे समय का घटना विस्तार है जिसकी सूचना रंग-संकेत के माध्यम से दी गई है।

उदयशंकर भट्ट का पहला एकांकी संग्रह "अभिनव एकांकी नाटक" 1940 में प्रकाशित हुआ। भट्ट जी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक समस्या प्रधान तथा हास्यपरक एकांकी लिखे हैं। उनके एकांकी समाज के उच्च तथा मध्यवर्गीय जीवन की विषमताओं और विकृतियों पर लिखे गए हैं। सामाजिक समस्याओं के प्रति भट्ट जी का दृष्टिकोण यथार्थपरक है। विषय के प्रस्तुतीकरण में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता है। उनके एकांकियों में "स्त्री का हृदय", "सेठ लाभचंद्र", "दस हज़ार", "एक ही कब्र में", "बड़े आदमी की मृत्यु", "नकली और असली", "सत्य का मंदिर", "आदिम युग", "समस्या का अंत" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भट्ट जी के एकांकियों की भाषा सहज और प्रवाहपूर्ण तथा संवाद योजना स्वाभाविक है। शिल्प के संबंध में वे कृत्रिम बंधनों को अस्वीकार करते हैं इसीलिए संकलन-त्रय का बंधन भी नहीं मानते। पाश्चात्य एकांकी शिल्प का प्रभाव उन पर है। पात्रों में अंतर्द्वंद्व की सृष्टि करके वे उन्हें स्वाभाविक और विश्वसनीय बनाते हैं। अधिकांश एकांकियों की समाप्ति अवसाद में होती है जिसका प्रभाव पाठक या दर्शक पर काफी तीखा और गहरा रहता है।

गोविंद वल्लभ पंत ने सामाजिक व्यंग्य प्रधान और ऐतिहासिक-पौराणिक एकांकी लिखे हैं। उन्होंने सामाजिक समस्याओं को नग्न रूप में प्रदर्शित न करके मर्यादित रूप में सामने रखा है। जिज्ञासा और कुतूहल की सृष्टि के साथ कथानक विकास करके वे चरम सीमा पर एकांकी का अंत सुखांत या दुखांत रूप में करते हैं। उनके प्रमुख एकांकी हैं "अपराध मेरा है", "साक्षात्कार", "काला जादू", "कपड़े का आदमी", "पर्दा तोड़ क्लब" आदि।

सेठ गोविंददास ने बड़ी संख्या में एकांकी लिखे हैं। जिनमें सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, एक पात्रीय आदि एकांकी शामिल हैं। एक पात्रीय एकांकियों में पात्र की आंतरिक गुत्थियों का विश्लेषण किया गया है। सामाजिक एकांकियों में मध्यवर्गीय तथा उच्चवर्गीय समाज की कमजोरियों और कुरीतियों को प्रस्तुत किया गया है तथा ऐतिहासिक एकांकियों में अतीत की गौरव गाथा है। इनके प्रमुख एकांकियों में "शाप और वर", "प्रलय की सृष्टि", "कंगाल नहीं", "स्पर्द्धा", "अधिकार लिप्सा", "वह मरा क्यों" आदि का नाम लिया जा सकता है। इनकी भाषा सरल और सुबोध है, किंतु उसमें संवाद-सौष्ठव प्राय: नहीं है। कथा विकास में जिज्ञासा और कुतूहल का अभाव है। उनके अधिकांश एकांकियों में नाटकीयता का अभाव है वे संवादात्मक कथा मात्र है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने यथार्थवाद और बुद्धिवाद को अपनाते हुए शॉ और इब्सन का अनुकरण किया है। उन्होंने सामाजिक समस्यामूलक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है। उनके एकांकी तीन संग्रहों में संकलित हैं–"प्रलय के पंख पर", "अशोक वन" और "भगवान मनु तथा अन्य एकांकी"। मिश्र जी ने कल्पना और भावुकता का खुल कर विरोध किया है। उनके अधिकांश एकांकियों में पश्चिमी परंपरा का अतार्किक खंडन और भारतीय परंपरा का

अतिरिक्त आग्रह मिलता है। उनके पात्र इतनी बहस और तर्क-वितर्क में उलझ जाते हैं कि एकांकी संवादात्मक कथा बन कर रह जाता है, उसकी अभिनेयता नष्ट हो जाती है।

उपेंद्रनाथ "अश्क" ने एकांकी लेखन 1937 में शुरू किया। उन्होंने आधुनिक भारतीय जीवन के यथार्थ को, उसके संघर्षों, विकृतियों और उलझाव को बड़ी ही ईमानदारी तथा सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज, खासतौर से मध्यवर्गीय समाज के जीवन को उन्होंने बड़ी ही निकटता से देखा और जाना है। उसकी विसंगतियों को प्रस्तुत करने के लिए तीखे व्यंग्य का सहारा लिया है। संपूर्ण परिस्थिति में निहित व्यंग्य को वे पात्रों के मनोविज्ञान के सूक्ष्म चित्रण द्वारा उभारते हैं। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, व्यंग्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, सांकेतिक, प्रहसन आदि सभी तरह के एकांकी लिखे हैं। उनके प्रमुख एकांकियों में "पापी", "लक्ष्मी का स्वागत", "अधिकार का रक्षक", "मैमूना", "खिड़की", "सूखी डाली", "तौलिए", "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ", "अंधी गली", "साहब को जुकाम है" आदि का नाम लिया जा सकता है। वे अधिकतर पारिवारिक जीवन की समस्याओं को उठाते हैं। अक्सर वे दो विरोधी विचारधाराओं के संघर्ष की प्रस्तुति करते हैं। भाषा, संवाद, मंचन और प्रभाव की दृष्टि से उनके अधिकांश एकांकी सफल हैं।

जगदीश चंद्र माथुर ने वर्तमान जीवन की गंभीर और सामान्य समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया है। उनके अधिकांश एकांकी आधुनिक सामाजिक जीवन पर लिखे गए हैं। जीवन की विषमताओं, पारंपारिक रूढ़ियों तथा आधुनिक नये परिवर्तनों की टकराहट से उत्पन्न जटिलता और संघर्ष को उन्होंने उभारा है। कुछ एकांकियों में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लिया गया है। उनके प्रमुख एकांकी हैं "मेरी बाँसुरी", "भोर का तारा", "मकड़ी का जाला", "कलिंग विजय", "रीढ़ की हड्डी", "खंडहर", "शारदीया", "भाषण", "कबूतरखाना"। "मकड़ी का जाला" में उन्होंने नई शिल्पविधि को अपनाया है। अतीत की घटनाओं तथा अर्द्ध चेतन मन:स्थिति को स्वप्न के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पात्रों के मनोविज्ञान को उभारने में माथुर अक्सर सफल रहते हैं। उनकी भाषा, विषय तथा स्थिति के अनुकूल कहीं कल्पना प्रधान तो कहीं तीक्ष्ण व्यंग्य प्रधान है। संवाद सीधे, छोटे, बोधगम्य और मर्मस्पर्शी तथा प्रवाहपूर्ण हैं। स्वयं रंगमंच से संबद्ध रहने के कारण माथुर अपने एकांकियों में रंगमंच के प्रति काफी सजग रहे हैं। उनके रंग-निर्देश पर्याप्त स्पष्ट एवं उपयोगी होते हैं। पार्श्व संगीत का वे बड़ा ही कलात्मक और प्रतीकात्मक उपयोग करते हैं।

विष्णु प्रभाकर ने रेडियो के लिए लेखन के साथ एकांकी लेखन का आरंभ किया। आदर्श, यथार्थ और स्वाभाविकता का समन्वय करना उनके लेखन की विशेषता है। उन्होंने सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, व्यंग्यात्मक, रेडियो रूपक और बाल एकांकी लिखे हैं। इनमें "बंधन मुक्त", "प्रतिशोध", "रक्त चंदन", "माँ", "किरण और कुहासा", संस्कार और भावना", "दो किनारे", "बीमार", "शरीर का मोल", "अशोक", झाँसी की रानी", "सीमा रेखा", "प्रकाश और परछाँई", "पूर्णाहुति", "उपचेतना का छल", आदि प्रमुख हैं। पात्रों की मन:स्थिति के चित्रण पर उन्होंने ज़ोर दिया है। आधुनिक जीवन और समाज की आडंबरपूर्ण प्रदर्शन की प्रवृत्तियों को वे व्यंग्यपूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं तथा पात्रों के स्वभाव के बाहरी आडंबर पर रूढ़िग्रस्तता के पीछे निहित मानवीयता को उजागर करतें हैं। गांधीवाद में आस्था होने के कारण वह पात्रों के हृदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं।

इन एकाकीकारों के अतिरिक्त प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीनारायण लाल, सद्‌गुरुशरण अवस्थी, चंद्रगुप्त, विद्यालंकार, चतुरसेन शास्त्री, धर्मवीर भारती आदि ने अच्छे एकांकी लिखे हैं। रेडियो ऐकांकीकारों में रामवृक्ष बेनीपुरी, रेवतीशरन शर्मा, हरिश्चंद्र खन्ना, चिरंजीत, विनोद रस्तोगी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

बोध प्रश्न 3

क) हिन्दी का पहला एकांकीकार कौन है और क्यों?

....

....

....

....

ख) सही (√) या गलत (X) का निशान लगाइए।
हिन्दी में एकांकी

i) एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित है। ☐

ii) पूर्ण कालिक नाटक का अंग है। ☐

iii) संस्कृत नाटकों से आया है। ☐

iv) पश्चिम से आया है। ☐

18.5 एकांकी के भेद

एकांकी का वर्गीकरण कई तरह से किया जा सकता है। विषय वस्तु की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से तथा शिल्प की दृष्टि से। विषय वस्तु की दृष्टि से एकांकी आधुनिक जीवन से संबंधित हो सकते हैं या अतीत के जीवन से संबंधित। इन दोनों में से जीवन के विविध क्षेत्रों में से कोई क्षेत्र चुना जा सकता है जैसे सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, पौराणिक, ऐतिहासिक शैली की दृष्टि से भी एकांकी के भेद हो सकते हैं जैसे–व्यंग्यात्मक, प्रतीकात्मक, हास्यपरक।

वर्गीकरण का अन्य आधार है शिल्पविधि–अर्थात् लेखक ने एकांकी के शिल्प की किस विधि को अपनाया है। इस दृष्टि से एकांकी के कई वर्ग हो सकते हैं जैसे :

क) एक दृश्यीय एकांकी और बहुदृश्यीय एकांकी

ख) एकपात्रीय एकांकी और बहुपात्रीय एकांकी

ग) गद्य एकांकी और काव्य एकांकी।

एकपात्रीय एकांकी में सारा कार्य व्यापार एक ही पात्र द्वारा संपन्न होता है। इसलिए इसमें स्वगत-भाषण (एकालाप) की पद्धति अपनाई जाती है। सेठ गोविंददास ने कई एकपात्रीय एकांकी लिखे हैं।

काव्य एकांकी में पद्य का उपयोग किया है। इसमें काव्यात्मकता तथा गीति - तत्व की प्रधानता होती है।

18.6 रेडियो नाटक

रेडियो नाटक आधुनिक विज्ञान के युग की देन है। समय के साथ-साथ अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते हैं और अभिव्यक्ति माध्यमों में बदलाव से साहित्यिक अभिव्यक्ति में बदलाव आता है। नाटक दृश्य काव्य है और आधुनिक युग से पहले तक वह केवल देखने के लिए ही होता था किंतु रेडियो के आविष्कार ने नाटक को श्रव्य भी बना दिया। रेडियो नाटक का माध्यम ध्वनि है इसलिए इसे ध्वनि एकांकी या ध्वनि नाटक या ध्वनि रूपक भी कहा जाता है। माध्यम के अनुरूप रेडियो नाटक की शिल्पविधि और टेकनीक भी रंगमंचीय नाटक से कई दृष्टियों से भिन्न होती है। मंच पर प्रदर्शन की कई तरह की ऐसी सीमाएँ होती हैं जो रेडियो प्रस्तुति में सीमाएँ नहीं रहतीं। ध्वनि प्रभाव द्वारा उनकी सफल प्रस्तुति की जा सकती है। उदाहरण के लिए गतिशील दृश्यों जैसे रेल, जहाज आदि का चलना, फैक्ट्री आदि में काम की आवाज, प्रकृति के विविध रूपों, समुद्र की लहरों की आवाज, समुद्री तूफान की आवाज, मेघ गर्जन, वर्षा, पशु-पक्षियों आदि का पात्र के रूप में प्रवेश आदि आसानी से प्रस्तुत हो सकता है। इसी तरह समय या स्थान का अंतराल यहाँ दिखाया जा सकता है। संकलन-त्रय की यहाँ कोई बंदिश नहीं होती। दृश्य परिवर्तन की यहाँ बड़ी सुविधा होती है। इसके लिए पार्श्व संगीत की सहायता ली जाती है। पुरानी बीती घटनाओं को फ्लैश बैक पद्धति से प्रस्तुत करने की सुविधा भी रेडियो नाटक में होती है। मनोवैज्ञानिक स्थितियों की प्रस्तुति भी रेडियो नाटक में सफलता पूर्वक हो सकती है। स्वगत कथन रंगमंच पर बहुत स्वाभाविक नहीं लगते किंतु श्रव्य रूप में वे काफी स्वाभाविक लग सकते हैं। रेडियो नाटक वस्तुतः संकेत की कला है–कुछ शब्दों, ध्वनि प्रभावों या संगीत के माध्यम से संकेत दे कर श्रोता की कल्पना शक्ति को जगाया जाता है और श्रोता की कल्पना में बिंब या भाव चित्र उपस्थित कर दिया जाता है। विविध स्थितियों और भावों की अभिव्यक्ति के लिए विविध प्रकार का पार्श्व संगीत प्रस्तुत करके सफल प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इस तरह रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक की कई तरह की सीमाओं से मुक्त होता है। यह रंगमंचीय नाटक की तुलना में काफी स्वच्छन्द होता है।

दूसरी ओर रेडियो नाटक के शिल्प की अपनी कुछ विशिष्टताएँ और जटिलताएँ भी होती हैं। शारीरिक, वाणीपरक, भावनात्मक, और दृश्यविधान तथा वेशभूषापरक अभिनय (आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य में से रेडियो नाटक में वाणी का अभिनय ही प्रमुख होता है। रेडियो नाटक का रंगमंच उसके शब्दों और ध्वनि प्रभावों में ही निहित होता है। पात्रों की रंगमंच पर उपस्थिति, उनके क्रियाकलाप, उनके प्रवेश-प्रस्थान आदि की जानकारी रंगमंच के दर्शक को स्वतः मिलती रहती है किंतु रेडियो पर इन सबकी जानकारी श्रोता को दिलाते रहना पड़ता है। इसी तरह पात्र संख्या यहाँ काफी सीमित होती है। उनके स्वर, लहजे, भाषा, भाव आदि में कई स्तरों पर पृथकता अपेक्षित होती है। रेडियो नाटक में वातावरण की सृष्टि ध्वनि-प्रभावों से होती है। दृश्यावली आदि की सुविधा न होने के कारण ध्वनि प्रभावों को जितनी कल्पनाशीलता और इंद्रिय ग्राह्य सूक्ष्मता से अपनाया जाएगा उतने ही वे सफल हो सकेंगे। इसलिए यहाँ विविध प्रकार के संगीत प्रभाव का प्रयोग होता है। संवाद नाटक की आत्मा होते हैं किंतु रेडियो नाटक का आधार वाचिक अभिनय होने के कारण यहाँ संवाद और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। भावाभिव्यक्ति का सारा दायित्व भाषा को वहन करना पड़ता है। अतः भाषा जितनी सहज, सुबोध, मार्मिक, प्रभावपूर्ण और संप्रेषणीय होगी नाटक उतना ही सफल होगा। संवाद जितने छोटे, तार्किक, संवेदनशील होंगे उतना ही उनका प्रभाव अधिक होगा।

18.6.1 रेडियो नाटक और एकांकी

प्रश्न यह उठता है कि रेडियो नाटकों को एकांकियों की श्रेणी में रखा जाए अथवा नहीं। रेडियो नाटक अक्सर 10-15 मिनट की अवधि से लेकर एक घंटे तक की अवधि के लिए होते हैं। अंक-संख्या का प्रश्न रेडियो में उठता ही नहीं। आवश्यकता के अनुसार दृश्य होते हैं जिनका परिवर्तन संगीत-ध्वनि के माध्यम से किया जाता है। इसे अंतराल संगीत कहते हैं। कभी-कभी पूरा रेडियो नाटक एक ही दृश्य का भी होता है। कभी-कभी पूर्णकालिक नाटकों या कहानियों और उपन्यासों के रेडियो रूपांतर भी प्रस्तुत किए जाते हैं। अतः इन्हें मंचीय एकांकी की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता। रंगमंच और रेडियो कला की दृष्टि से दो अलग चीजें हैं। माध्यम में अतर होने के कारण दोनों के स्वरूप और संरचना में अंतर होता है। रेडियो नाटक में अंक परिवर्तन आदि की चर्चा नहीं होती इसलिए कुछ विद्वानों ने इन्हें ध्वनि-एकांकी कहा है। प्रश्न यह उठ सकता है कि जब एकांकी और रेडियो नाटक अलग-अलग चीजें हैं तो एकांकी के साथ इनकी चर्चा क्यों की जा रही है? इस संदर्भ में पहली बात तो यह है कि दोनों ही आधुनिक युग में बहुत लोकप्रिय और सशक्त माध्यम सिद्ध हुए हैं। रंगमंचीय एकांकी तथा रेडियो नाटकों ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। अधिकांश एकांकीकारों ने दोनों तरह की विधाओं में लेखन किया है, जैसे उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, डॉ. रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर आदि ने रेडियो नाटक तथा एकांकी दोनों ही लिखे हैं। रंगमंच के लिए लिखित कई नाटकों के रेडियो रूपांतर प्रसारित हुए हैं। दूसरी ओर रेडियो के लिये लिखित नाटकों को दृश्य रूप में परिणत करके एकांकी के रूप में भी प्रकाशित कराया गया है। विष्णु प्रभाकर का "संस्कार और भावना", रामकुमार वर्मा का "कौमुदी महोत्सव" ऐसे ही एकांकी हैं। हिंदी में प्रकाशित नाट्य-साहित्य में एकांकी नाटक और रेडियो नाटक का स्पष्ट अंतर नहीं हुआ है। अतः हिंदी एकांकी का विवेचन रेडियो नाटक पर विचार किये बगैर पूर्ण नहीं होता।

18.6.2 रेडियो नाटक के प्रकार

रेडियो पर होने वाली नाट्य प्रस्तुतियों के कई रूप देखने में आते हैं। इनमें प्रमुख हैं—रेडियो नाटक, रेडियो रूपक, रेडियो रूपांतर, संगीत रूपक, प्रहसन, झलकी, रेडियो फ़ीचर, मोनोलॉग आदि। ये भेद शिल्प की दृष्टि से हैं। विषय की दृष्टि से भी भेद हो सकते हैं। जैसे—सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, हास्यपरक, व्यंग्य प्रधान आदि।

प्रमुख रेडियो नाटककारों में कृष्णचंद्र, चंद्रकिशोर जैन, विष्णु प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, रेवती शरन शर्मा, हरिशचंद्र खन्ना, प्रभाकर माचवे, चिरंजीत, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, विश्वंभर मानव, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, भगवतशरण उपाध्याय, हंसकुमार तिवारी, सत्येंद्र शरद आदि का नाम लिया जा सकता है।

बोध प्रश्न 4

क) एकांकी में भेद किस-किस आधार पर किए जा सकते हैं।

....

....

....

ख) रेडियो-नाटक तथा एकांकी में क्या अंतर है?

....

....

....

....

....

ग) रेडियो नाटक तथा एकांकी में क्या संबंध है?

....

....

....

....

....

18.7 सारांश

इस इकाई में आपने हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ा है। अब आप साहित्य की दृश्य विधा के विशिष्ट स्वरूप के बारे में जानते हैं। नाटक और एकांकी के संबंध और दोनों के बीच अंतर की जानकारी भी आपको मिल गई है। अब आप एकांकी के रचनागत वैशिष्ट्य की चर्चा कर सकते हैं तथा हिंदी एकांकी के विकास के बारे में भी बता सकते हैं। एकांकी के विभिन्न भेदों के बारे में भी आपने पढ़ा है और रेडियो नाटक की सशक्त विधा से भी आपका परिचय हो गया है। इसके संरचनागत वैशिष्ट्य को भी आप अच्छी तरह पहचान गए हैं।

बोध प्रश्न 5

क) हिंदी के सात प्रमुख एकांकीकारों के नाम बताइए।

....

....

....

ख) भुवनेश्वर के एकांकियों की क्या विशेषताएँ हैं? लगभग चार-पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

ग) एकांकी के संवादों में क्या नहीं होना चाहिए।

....

....

....

....

घ) एकांकी के लिए मंचीयता क्यों जरूरी है?

....

....

....

....

18.8 शब्दावली

निर्देशक : नाटक की प्रस्तुति कराने वाला, व्यक्ति जो अभिनेताओं तथा अन्य प्रस्तुति सहयोगियों को दिशा-निर्देश देता है तथा पूरी व्यवस्था देखता है।

रंग-सज्जाकार : नाटक में रंगमंच की सजावट करने वाला व्यक्ति।

कार्यावस्थाएँ: संस्कृत नाटक में कार्य व्यापार के विकास का पाँच अवस्थाओं की चर्चा की गई है—आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

अर्थ प्रकृतियाँ : फल प्राप्ति के उद्देश्य से किए गए कार्य की दृष्टि से कथावस्तु को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है—बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य।

संधियाँ : संस्कृत नाटक में कार्यावस्थाओं का अर्थ प्रकृतियों से जोड़ने के लिए संधियाँ होती थीं।

अपरिहार्य : अनिवार्य, अवश्यंभावी।

रंग निर्देश : नाटक की प्रस्तुति की दृष्टि से लेखक द्वारा दिए गए स्थान, समय, मंच-सज्जा, पात्रों की वेश भूषा, आवागमन आदि के संबंधी निर्देश।

प्रभावान्विति : प्रभाव की एकता।

प्रेक्षागृह : नाट्यशाला, थियेटर।

नाटकीयता : नाट्य प्रस्तुति के रूप में प्रभावपूर्ण होने की क्षमता।

आडंबर : अनावश्यक दिखावा।

एकालाप : एक ही पात्र का लंबा भाषण

18.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) देखें भाग 18.2
ख) i) अभिनेता ii) रंगमंच iii) नाटक iv) दर्शक

बोध प्रश्न 2

क) देखें भाग 18.3
ख) iii)
ग) i) कम होती है ii) पात्रों के वार्तालाप के साथ-साथ रंग निर्देश भी प्रस्तुत करता है। iii) बहुत अधिक महत्व होता है।
घ) देखें भाग 18.3.6

बोध प्रश्न 3

क) देखें भाग 18.4
ख) i) (√) ii) (×) iii) (×) iv) (√)

बोध प्रश्न 4

क) देखें भाग 18.5
ख) देखें भाग 18.6
ग) देखें भाग 18.6

बोध प्रश्न 5

क) देखें भाग 18.4
ख) देखें भाग 18.4
ग) देखें भाग 18.3.3
घ) देखें भाग 18.3.5

इकाई 19 'कौमुदी महोत्सव' (डॉ. रामकुमार वर्मा) : वाचन

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 एकांकी का वाचन : 'कौमुदी महोत्सव'
19.3 एकांकी का सार
19.4 संदर्भ सहित व्याख्या
19.5 सारांश
19.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप डॉ. रामकुमार वर्मा का एकांकी 'कौमुदी महोत्सव' पढ़ेंगे। मूल पाठ के साथ-साथ हमने एकांकीकार का परिचय भी दिया है। बाद में एकांकी का सार तथा महत्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या दी गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- एकांकीकार रामकुमार वर्मा के बारे में बता सकेंगे;
- 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- इसमें इस्तेमाल हुए कठिन शब्दों, मुहावरों आदि का अर्थ बता सकेंगे और उन्हें आवश्यकतानुसार प्रयोग कर सकेंगे;
- इस एकांकी में आए ऐतिहासिक पौराणिक संदर्भों को स्पष्ट कर सकेंगे; तथा
- इसके के विविध अंशों और उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। वहाँ हमने नाट्य विधा और उसके एक अंग एकांकी की चर्चा की थी। आपने देखा था कि किस तरह नाटक अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में एक विशिष्ट विधा है। इस इकाई में हम डॉ. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकांकी 'कौमुदी महोत्सव' का वाचन करेंगे।

पिछली इकाई में हम पढ़ चुके हैं कि डॉ. रामकुमार वर्मा हिंदी एकांकी के जनक माने जाते हैं। उनका जन्म सन् 1905 में सागर, मध्य प्रदेश में हुआ था और शिक्षा मध्य प्रदेश तथा इलाहाबाद में। उन्होंने विविध विषयों पर करीब 125 एकांकी लिखे हैं। एकांकियों के अतिरिक्त उन्होंने 24 पूर्णकालिक नाटक भी लिखे हैं। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में अध्यापक रहे हैं। वे रंगकर्म से व्यावहारिक रूप से संबद्ध रहे हैं। नाटकों के अलावा उन्होंने कविता तथा आलोचना भी लिखी है। नाट्य लेखन, मंचन और अभिनय से सीधे जुड़े रहने के कारण उनके एकांकी लेखन में मंचीय आवश्यकताओं की काफी हद तक पूर्ति हुई है।

'कौमुदी महोत्सव' प्राचीन भारतीय इतिहास पर आधारित एकांकी है। इसमें चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा नंद को पराजित करके मौर्य साम्राज्य की स्थापना का प्रसंग लिया गया है। चंद्रगुप्त ने अपने शासन की स्थापना के अवसर पर एक उत्सव मनाने की योजना बनायी है। इस उत्सव में कुसुमपुर की जनता और शासक वर्ग सम्मिलित रूप से भाग लेंगे जिससे सद्भाव की स्थापना हो सके। आगे हम इस एकांकी का वाचन करेंगे। आप देखेंगे कि लेखक ने सबसे पहले नाटक के पात्रों का परिचय दिया है फिर रंगमंच संबंधी निर्देश दिये हैं और उसके बाद वसुगुप्त तथा यशोवर्मन के वार्तालाप से एकांकी आरंभ होता है। एकांकी में आये कठिन शब्दों, मुहावरों आदि के अर्थ हम मूलपाठ के नीचे दे रहे हैं। मूलपाठ के बायीं ओर एकांकी के विकास के विभिन्न चरणों, रूप और कथ्य आदि संबंधी विशेषताओं के संकेत दिये गये हैं। इनसे आपको एकांकी के विकास की दिशा समझने में मदद मिलेगी। बोध प्रश्न भी साथ-साथ दिए गए हैं ताकि आप जाँच कर सकें कि एकांकी आपने ध्यान से पढ़ा है या नहीं।

एकांकी के वाचन के बाद उसका सार दिया गया है जिससे कि आप उसके कथ्य को एक बार फि से दोहरा सकें। इसके बाद हम एकांकी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करेंगे। व्याख्या में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करेंगे।

सबसे पहले आप एकांकी को एक बार पढ़ लीजिए जिससे इसके कथ्य और पात्रों की जानकारी आपको मिल सके। तत्पश्चात इसे फिर से ध्यानपूर्वक पढ़ते हुए आप एकांकी की भाषा, कठिन शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों तथा ऐतिहासिक पौराणिक संदर्भों पर ध्यान दीजिए। मूल पाठ के नीचे दिए गए शब्दार्थ तथा बायीं ओर दी गई भाषा, भाव, अर्थ और संदर्भ की विशेषताओं को देखिए। साथ ही पाठ के नीचे दी गई टिप्पणियों को गौर से पढ़िए। एकांकी में आये ऐतिहासिक-पौराणिक संदर्भों को ध्यान से पढ़िए। इससे आपको एकांकी का अर्थ समझने तथा शिल्प-संरचना को पहचानने में मदद मिलेगी। एकांकी को तीसरी बार तब पढ़िए जब आप इसका पूरा विश्लेषण पढ़ चुकें। यह विश्लेषण इकाई 20 में दिया गया है।

19.2 एकांकी का वाचन : 'कौमुदी महोत्सव'[1]

चरित्र

सम्राट् चंद्रगुप्त : कुसुमपुर के मौर्य सम्राट्
चाणक्य : सम्राट् चंद्रगुप्त के महामंत्री
वसुगुप्त : कुसुमपुर के समाहर्त्ता
यशोवर्मन : कुसुमपुर के अंतपाल
पुष्पदंत : कुसुमपुर के कार्यान्तिक
अलका : राजनर्तकी
सैनिक और दौवारिक

(समय : ई. पू. 322)

चन्द्रगुप्त के स्वागत में जनता का उत्साह

(बाहर चारों ओर कोलाहल हो रहा है। बीच-बीच में **तुरही**[2] का **नाद**[3] हो उठता है। शंख और घंटों की आवाज भी सुन पड़ती है। धीरे-धीरे यह ध्वनि क्षीण होती है।)
(राज-कक्ष में **समाहर्त्ता**[4] वसुगुप्त और **अंतपाल**[5] यशोवर्मन बातें कर रहे हैं।)

वसुगुप्त : आज कुसुमपुर की जनता का कोलाहल कितना उभरा हुआ है! ढाल के मध्य भाग की भाँति वह किसी भी तलवार का वार रोकने के लिए आगे बढ़ आया है। कुसुमपुर का उत्साह एक ढाल की तरह है जिस पर विद्रोह की तलवार भी कुंठित हो जायेगी। अब तो अंतपाल यशोवर्मन का संदेह दूर हो गया होगा।

यशोवर्मन : वसुगुप्त! संदेह पानी का बुलबुला नहीं है जो एक क्षण में भंग हो जाता है। संदेह तो **धूमकेतु**[6] की रेखा है जो आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली रहती है, और धूमकेतु जानते हो किस बात का प्रतीक है? भय का, आशंका का, अमंगल का!

वसुगुप्त : किंतु भय, आशंका और अमंगल तो नहीं हैं। नंद वंश का विनाश होते ही ये **ढाक के तीन पात**[7] की तरह अलग हो गये।

यशोवर्मन : अलग-अलग भले ही हो गये हों पर हैं तो!

वसुगुप्त : अब रहे भी नहीं। जब शक, यवन, पारस और वाह्लीक राजाओं के साथ **महाराज चंद्रगुप्त**[8] ने कुसुमपुर में प्रवेश किया तो सारी प्रजा ने उनका स्वागत किया। क्या इस कोलाहल में तुमने प्रजा जनों के उत्साह की सरिता उमड़ते हुए नहीं देखी?

यशोवर्मन : देखी, किन्तु इस उत्साह के बीच ऐसे कंठ भी हो सकते हैं जिनमें व्यंग्य और परिहास की ध्वनि हो। **नंद**[9] के प्रति राजभक्ति अभी निष्प्राण नहीं हुई है। हरी घास में **कुश**[10] और कंटक भी होंगे।

वसुगुप्त : तो वे निर्मूल कर दिये जायेंगे।

आशंका (नाटकीय व्यंग्य)

यशोवर्मन : किंतु आपको क्या ज्ञात नहीं है कि महाराज नंद के मंत्री राक्षस की नीति छद्मवेश

---

1 कौमुदी महोत्सव—शरद पूर्णिमा को मनाया जाने वाला दीपोत्सव, 2 तुरही—मुँह से फूँक कर बजाया जाने वाला वाद्य, 3 नाद—ध्वनि, 4 समाहर्ता—प्राचीन काल में राज्य कर इकट्ठा करने वाला कर्मचारी, 5 अंतपाल—राज्य की सीमा रक्षा के लिए नियुक्त कर्मचारी, 6 धूमकेतु—पुच्छल तारा जो अमंगल का सूचक माना जाता है, 7 ढाक के तीन पात की तरह (मुहावरा)—हमेशा की तरह, 8 महाराज चंद्रगुप्त—सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य, जिन्होंने नंद को हरा कर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की, 9 नंद—नंद वंश का अंतिम शासक जिसे चंद्रगुप्त ने हराया, 10 कुश—कड़ी नुकीली पत्तियों वाली घास।

धारण कर चलती है? नंद नहीं हैं किंतु नंद के मंत्री तो हैं जो छिपकर कुसुमपुर से बाहर चले गये हैं!

वसुगुप्त : तो हमारे पास भी पहचानने वाली आँखें हैं। (**जनरव**[1] फिर बढ़ता है) देखा, यह जनरव बढ़ रहा है! वातायन बंद कर दो।

यशोवर्मन : हाँ, बात ही नहीं सुन पड़ती। (**वातायन**[2] बंद करते हैं)

वसुगुप्त : तो सम्राट चंद्रगुप्त ने जब कुसुमपुर में प्रवेश किया तो पहला कार्य तो यहाँ की शासन व्यवस्था ठीक करना है।

यशोवर्मन : आचार्य **चाणक्य**[3] के मस्तिष्क में राजनीति के न जाने कितने व्यूह प्रतिदिन बनकर बिगड़ते हैं, उनसे अधिक राजनीति की व्यवस्था कौन कर सकता है?

वसुगुप्त : तो क्या सम्राट् चंद्रगुप्त का मस्तिष्क केवल बाहुबल का केंद्र ही है?

यशोवर्मन : हाँ, आचार्य चाणक्य की नीति और सम्राट् चंद्रगुप्त के बाहुबल ने ही नंद वंश को समाप्त किया है। नंद वंश की विलासिता-संध्या सम्राट् चंद्रगुप्त की यश-चंद्रिका से अधिक देर तक नहीं रुक सकी।

(नेपथ्य में 'सम्राट् चंद्रगुप्त की जय' का घोष)

वसुगुप्त : (उत्सुकता से) सम्राट् आ गये! तो क्या जनता का इतना कोलाहल उन्हीं के स्वागत के लिए था? वातायन खोलकर देखो, यशोवर्मन।

यशोवर्मन : मैं देखता हूँ। (वातायन खोलते हैं। जनरव फिर तीव्रता से सुनायी पड़ता है) हाँ, जनता उत्सुकता से पुष्पों के हार उछाल रही है! महाराज ने **अंतरंग**[4] **प्रकोष्ठ**[5] **सिंहद्वार**[6] से प्रवेश कर लिया है; उनका वेश इस समय दर्शनीय है। **विस्तीर्ण ललाट**[7], उठी हुई नासिका और बड़े-बड़े अरुण नेत्र। वे नागरिकों से कुछ कह भी रहे हैं। कहते समय उनकी वाणी में वीरत्व उसी प्रकार गुंजायमान होता है जैसे दिशाओं में दूर से आती हुई प्रतिध्वनि सिमटकर अंतिम स्वर में गूंजती है। उनकी भौंहों में स्वाभाविक रूप से बल पड़े हुए हैं जैसे दृष्टि के ऊपर आकांक्षाएँ वक्र होकर दुहरी हो गयी हैं। घुंघराले मुक्त केशों पर मुकुट है जिसकी कलँगी सिर के हिलने मात्र से लज्जाशील नारी की दृष्टि की भाँति झुक जाती है। भुजदंडों में शक्ति का संचय है, ज्ञात होता है, जैसे वे राज्य के **मेरुदंड**[8] हैं। सैनिकों जैसा वेश हृदय पर मोतियों की माला, कमर में मखमली म्यान के भीतर **खंग**[9]! बड़ा उत्साहपूर्ण वेश-विन्यास है उनका!

वसुगुप्त : (प्रसन्नता से) सचमुच, सम्राट् वीर रस के **प्रतीक**[10] हैं! वह **दौवारिक**[11] आया।

(दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक : महाराज की जय! सम्राट् का आगमन हो रहा है।

वसुगुप्त : हम लोग भी उनके स्वागत के लिए उत्सुक हैं। तुम जाओ, बाहरी द्वार पर सम्राट् पर पुष्प-वर्षा हो।

दौवारिक : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

यशोवर्मन : सम्राट् ने **तक्षशिला**[12] में ग्रीक सैन्य-संचालन का जो कौशल देखा है, उस कौशल के बल पर तो वे समस्त भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। उन्होंने विदेशी राजनीति को स्वीकार कर किसी भविष्य कार्यक्रम की नींव डाली है। यह बहुत कम लोग जानते हैं।

ऐसा माना जाता है कि चन्द्रगुप्त ने सिल्युकस की पुत्री कार्नेलिया से विवाह किया था।

वसुगुप्त : राजनीति के साथ नारी! यही तुम्हारे कहने का तात्पर्य है?

(दबी हुई सम्मिलित हँसी। सम्राट् की जय-ध्वनि के बाद सम्राट् चंद्रगुप्त का कार्यान्तिक पुष्पदत्त के साथ प्रवेश)

वसुगुप्त
और : (सम्मिलित स्वर में) सम्राट् की जय!
यशोवर्मन

चंद्रगुप्त : समाहर्त्ता वसुगुप्त! कुसुमपुरी का वैभव मैंने देखा। मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध की भैरवी[13] ने काषाय[14] वस्त्र धारण कर लिए हैं और वह सन्यासिनी हो गयी है। नगर की शोभा मलिन है जैसे तलवार की झनकार वायु में विलीन हो गयी है। नागरिकों का यह उल्लास[15] श्रृगालों[16] का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है। नागरिकों से कहला दो कि वे अब अपने घर जाएँ।

---

1 जनरव–जनता का शोर, 2 वातायन–खिड़की, 3 आचार्य चाणक्य–कौटिल्य अथवा विष्णुगुप्त नामक प्रसिद्ध विद्वान तथा कूटनीतिज्ञ जिन्होंने नंदवंश का विनाश करने में चंद्रगुप्त मौर्य की सहायता की, 4 अंतरंग–भीतरी, 5 प्रकोष्ठ–भवन या प्रासाद के मुख्य द्वार के पास का कमरा या आँगन, 6 सिंहद्वार–प्रधान द्वार, सदर दरवाज़ा, 7 विस्तीर्ण ललाट–चौड़ा माथा, 8 मेरुदंड–रीढ़, 9 खंग–तलवार, 10 प्रतीक–प्रतिरूप, 11 दौवारिक–द्वारपाल, 12 तक्षशिला–प्रसिद्ध प्राचीन नगर जो सिंधु नदी के पश्चिम में गंधार देश की राजधानी थी। यह आधुनिक पाकिस्तान के रावलपिंडी के निकट स्थित था। प्राचीन भारत में ज्ञान के दो प्रमुख केंद्र थे–नालंदा विद्यापीठ और तक्षशिला विद्यापीठ। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत होने के कारण विदेशी आक्रमण अक्सर तक्षशिला के मार्ग से होते थे, 13 भैरवी–दुर्गा का एक रूप, 14 काषाय–गेरुआ रंग का, 15 उल्लास-उमंग, हर्ष, 16 श्रृगाल–गीदड़।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट्! (प्रस्थान)
(धीरे-धीरे जनरव शांत हो जाता है)

चंद्रगुप्त : और अंतपाल यशोवर्मन! जो तेज मैंने ग्रीक सैनिकों के सेवकों में दखा था वह कुसुमपुर के प्रतिष्ठित नागरिकों तक में नहीं है। यहाँ के व्यक्तियों में स्पष्ट बात कहने का साहस नहीं है। एक छल है, एक विडंबना है जो सोन नदी की भाँति कुसुमपुर को घेरे हुए है। उसे बंधनमुक्त करो, **यशोवर्मन!**

यशोवर्मन : मुझे विश्वास है, सम्राट्। आचार्य चाणक्य की इस नीति से **कुसुमपुर**[1] एक कुसुम के समान सुंदर और आपकी कीर्ति की भाँति निर्मल हो जायेगा।
(वसुगुप्त का प्रवेश)

नन्द शासन भोग-विलास और अव्यवस्था पर टिका था जिसका अन्त करके चन्द्रगुप्त सुव्यवस्था की स्थापना करना चाहता था।

चंद्रगुप्त : संभव है। आर्य चाणक्य की नीति ने कुसुमपुर की राजनीति में ऐसे **चक्रव्यूह**[2] की रचना की है जिसमें **अराजकता**[3] का पथ मृत्यु-दीवार पर जाकर समाप्त होता है और उस मृत्यु-दीवार की नींव में जानते हो, क्या है? समस्त नंद वंश **चिर-निद्रा**[4] में शयन कर रहा है।

वसुगुप्त : और उस नंद वंश की आँखों में विलासिता का मद अंतिम क्षणों तक रहा है।

चंद्रगुप्त : मुझे इस बात का दुख है किंतु राजनीति कृपाण की धार का मार्ग है। जो व्यक्ति विलासिता का बोझ अपने सिर पर रख कर चलता है, वह उस कृपाण को निमंत्रण देता है कि वह उसके शरीर के दो टुकड़े कर दे। मैं आचार्य चाणक्य के चक्रव्यूह की मृत्यु-दीवार को जीवन का प्रकाश-स्तंभ बनाना चाहता हूँ।

वसुगुप्त : सम्राट् के बाहुबल में और आचार्य चाणक्य की नीति में यह क्षमता है।

चंद्रगुप्त : आचार्य चाणक्य की सहायता से जो कुछ भी अभी तक हुआ है, उसके प्रति नागरिकों को असंतोष तो नहीं होना चाहिए। तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की सभी बाधाएँ दूर करना चाहता हूँ। शासन का मापदंड प्रजा का संतोष और सुख होना चाहिए।

यशोवर्मन : सम्राट का कथन सत्य है।

चंद्रगुप्त : इसीलिए मैं एक महोत्सव का आयोजन करना चाहता हूँ, कौमुदी महोत्सव। शरद ऋतु की आज पूर्णिमा है। इसलिए समाहर्त्ता वसुगुप्त के प्रस्ताव के अनुसार मैंने **मध्याह्न**[5] में इस निर्णय की घोषणा कर दी है। प्रकृति की इस **चंद्रमयी निर्मलता**[6] में जनता के हृदय की समस्त पाप-वासनाएँ धुल जाएँ। कौमुदी महोत्सव, इस भाँति, कुसुमपुर का महान् राजनीतिक पर्व है।

वसुगुप्त : सम्राट्! कुसुमपुर के सिंहद्वार ने अभी तक श्रृगालों का स्वागत किया है। आपके प्रवेश ने सिंहद्वार का नाम सार्थक किया।

चंद्रगुप्त : तुम प्रसन्न कर देने वाली बात कह सकते हो, वसुगुप्त? इसीलिए मैंने तुम्हें कुसुमपुर का नागरिक न होने पर भी कर एकत्र करने वाले समाहर्त्ता का नवीन पद दिया है। तुम मधुर बातें कहकर अच्छी तरह 'कर' एकत्र कर सकते हो।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की कृपा है।

जनमत के बारे में पता लगाना चाहता है

चंद्रगुप्त : फिर प्रजा का संतोष ही मेरे सुख का **अग्रदूत**[7] है। **(कार्यान्तिक पुष्पदंत को संबोधित करते हुए)** कार्यान्तिक पुष्पदंत! कौमुदी महोत्सव के लिए कुसुमपुर के नागरिकों में उत्सुकता है?

पुष्पदंत : सम्राट्! जिस समय से कौमुदी महोत्सव का **संवाद**[8] नागरिकों के समीप पहुँचा है, उस समय से प्रत्येक नागरिक ने शूद्र महापद्मनंद की क्रूरता के उपसंहार में आपकी उदारता का **भरत वाक्य**[9], जोड़ दिया है। सम्राट् ने आर्य चाणक्य की सहायता से शस्त्र और पृथ्वी का उद्धार किया है। आपका कुसुमपुर में प्रवेश शस्त्र-विजय का सूचक है जिसमें शास्त्र का संतोष और पृथ्वी का कल्याण है।

जनता का हृदय जीतने की आशा

यशोवर्मन : प्रजा-वर्ग में से कुछ व्यक्ति नंद वंश के समर्थक हो सकते हैं और नंद वंश के विनाश से उनका **क्षुब्ध**[10] होना स्वाभाविक है, इसलिए कौमुदी महोत्सव के संबंध में सम्राट् की घोषणा असंतोष को सुख और ऐश्वर्य से भरकर उसमें राजभक्ति की तरंग उठा सकती है। कौमुदी महोत्सव में कुसुमपुर के निवासी अपनी नगरी की शोभा देखकर अपने वैर-विरोध को भूल सकते हैं। नगरी का ऐश्वर्य देखकर उनके विचारों की दिशा में परिवर्तन हो सकता है। किंतु हमें यह उत्सव सतर्कता से देखना चाहिए।

वसुगुप्त : सतर्कता से देखने की ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है। नगरी का ऐश्वर्य जननी का ऐश्वर्य है। जननी का ऐश्वर्य देखकर किस पुत्र को प्रसन्नता न होगी? अपरिचित व्यक्ति की ओर से आयी हुई कल्याण-कामना भी जब रुचिकर ज्ञात होती है तो सम्राट्! आप जैसे उदारमना सम्राट्

---

1 कुसुमपुर—पटना या पाटलिपुत्र का पुराना नाम, 2 चक्रव्यूह—प्राचीन समय में युद्ध में सेना-संचालन की ऐसी घेराबंदी जिससे शत्रु पक्ष का बाहर निकलना कठिन हो। महाभारत में अभिमन्यु कौरवों के चक्रव्यूह में फँस गया था जहाँ सात महारथियों ने उसे मार डाला, 3 अराजकता—उचित शासन व्यवस्था का अभाव, 4 चिर-निद्रा—हमेशा की नींद यानी मृत्यु, 5 मध्याह्न—दोपहर, 6 चंद्रमयी निर्मलता—स्वच्छ चांदनी, 7 अग्रदूत—वह व्यक्ति जो आगे बढ़ कर किसी के आने की सूचना दे, 8 संवाद—सूचना, 9 भरत वाक्य—प्राचीन नाटकों की समाप्ति पर आशीर्वचन के रूप में भारत वाक्य कहा जाता था, 10 क्षुब्ध—उत्तेजित अशांत।

की ओर से की गयी **कल्याण-कामना**[1] नागरिकों के हृदय में सम्राट् के प्रति भक्ति और श्रद्धा की **मंदाकिनी**[2] प्रवाहित किये बिना नहीं रहेगी।

'कौमुदी महोत्सव' (डॉ. रामकुमार वर्मा) : वाचन

चंद्रगुप्त : ऐसा ही हो! (कार्यान्तिक पुष्पदंत से) क्यों कार्यान्तिक पुष्पदंत! कौमुदी महोत्सव का क्या प्रबंध किया गया है?

पुष्पदंत : सम्राट्! कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कुसुमपुर को सजाने में नायक ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। सोन और गंगा के संगम पर एक शत नौकाओं को सम्राट् के शुभ नाम के आकार में सजाकर उन पर चालीस हाथ ऊपर आकाश-दीपों की व्यवस्था की गयी है जिससे शरद-चंद्रिका के हास के साथ सम्राट् का नाम भी दीपों का आलोक-मंडल बनाता हुआ नागरिकों के हृदयों में प्रवेश कर जाये।

दीपों की व्यापक सजावट कौमुदी महोत्सव वस्तुतः दीपोत्सव होता है।

चंद्रगुप्त : यह मनोवैज्ञानिक **चातुर्य**[3] है! और?

पुष्पदंत : नगर के **काष्ठ-प्राचीर**[4] के चौंसठ द्वारों पर मंगल-कलशों की तरंगें सुसज्जित होंगी। दूर से ऐसा ज्ञात होगा कि कुसुमपुर प्रकाश का एक सरोवर है जिसमें चारों ओर दीप-किरणों की चौंसठ तरंगें प्रवाहित हो रही हैं!

चंद्रगुप्त : यह सौंदर्य रचना सराहनीय है!

पुष्पदंत : सम्राट्! प्राचीर पर जो पांच सौ सत्तर **अलिंद**[5] हैं उनमें नगर की उतनी ही बालाएँ **मणिजटित**[6] आभूषणों से अपने को सुसज्जित कर प्रकाश के आलोक में नृत्य करेंगी। उनके नृत्य में जब उनके रत्न प्रकाश की किरणों से आलोकित होंगे तो ज्ञात होगा जैसे किरणों के कमलों में प्रकाश-बिंदुओं के भ्रमर क्रीड़ा कर रहे हैं।

चंद्रगुप्त : यह तो बहुत सुंदर होगा?

पुष्पदंत : और सम्राट्! प्राचीर के चारों ओर जो सोन नदी की नहर है उसमें सहस्रों दीप-दान होंगे। ज्ञात होगा जैसे नगर के चारों ओर द्वीपों की आकाश-गंगा बहती जा रही है।

वसुगुप्त : सम्राट्! नायक पुरस्कार का अधिकारी है।

चंद्रगुप्त : निस्संदेह! और कार्यान्तिक पुष्पदंत! तुम इस बात की घोषणा कर दो कि इस महोत्सव में जितने भी **पण**[7] व्यय किये जायें, वे **राजकोष**[8] से व्यय न होकर मेरे **'चंद्र-कोष'**[9] से व्यय किये जाएँ, यद्यपि इस उत्सव से प्रजा-वर्ग का मनोरंजन होगा तथापि इसका व्यय-भार मैं वहन करूँगा।

सम्राट की जनहित चिंता के उत्सव के आयोजन पर वे राजकोष से धन नहीं व्यय करना चाहते क्योंकि राजकोष का उपयोग लोक-कल्याण और लोक-रक्षा के कार्यों के लिए होना चाहिए।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की उदारता है। शूद्र राजा महापद्म तो प्रजा से **सहस्र-सहस्र**[10] पण लेकर उन्हें अपने विलास में व्यय करते थे और प्रजाजनों को उसी अवसर पर प्राणदंड का पुरस्कार मिलता था। अपने को एक राष्ट्र घोषित करते हुए भी वे प्रजाजनों के हृदयों में **अणु मात्र**[11] भी स्थान नहीं बना सके थे। यही अवस्था उनके पुत्र धननंद के समय में थी।

चंद्रगुप्त : वसुगुप्त! अपने समारोह को इन अरुचिकर चर्चाओं से **क्षतविक्षत मत होने दो।**[12]

वसुगुप्त : मुझसे भूल हुई, सम्राट्! मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

चंद्रगुप्त : और कार्यान्तिक पुष्पदंत! प्रजा-भवनों का शृंगार कैसा होगा?

पुष्पदंत : सम्राट्! प्रजा-भवनों की श्रेणी में विविध रंग के प्रकाश-**तोरणों**[13] की व्यवस्था है। ऐसा ज्ञात होगा जैसे रात्रि में भी सम्राट् की राजधानी में सप्त रंगों के इंद्रधनुष विविध नृत्य-मुद्राओं में सजे हैं।

वसुगुप्त : और इस अवसर पर सम्राट् के समक्ष नंद वंश की राजनर्तकी के नृत्य की व्यवस्था भी तो होनी चाहिए?

यशोवर्मन : यह समय तो नगरी की शोभा देखने का होगा, नर्तकी की शोभा देखने का नहीं।

वसुगुप्त : नगरी की शोभा देखने के **अनन्तर**[14] सम्राट् विश्राम भी तो चाहेंगे! विश्राम के क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्तकी के नृत्य की आवश्यकता भी होगी।

चंद्रगुप्त : कार्यान्तिक पुष्पदंत! जाओ और नायक से कौमुदी महोत्सव की व्यवस्था शीघ्र करने के लिए कहो! मेरे 'चंद्र-कोष' से उसे पांच सहस्र पण के पुरस्कार की सूचना भी दो। कौमुदी महोत्सव के प्रारंभ का संकेत मुझे **तूर्यनाद**[15] से मिलना चाहिए।

पुष्पदंत : जो आज्ञा, सम्राट्! (प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : नायक वास्तव में पुरस्कार का अधिकारी है। कुसुमपुर में ऐसी सौंदर्य-रचना संभवतः

---

1 कल्याण-कामना—भलाई की इच्छा, 2 मंदाकिनी—पुराणों के अनुसार गंगा की वह धारा जो स्वर्ग में बहती है, 3चातुर्य—चतुराई, 4 काष्ठ-प्राचीर—लकड़ी की चार-दीवारी, परकोटा, 5 अलिंद—बाहरी दरवाजे के सामने का चौतरा या छज्जा, 6 मणिजटित—मणियाँ जड़े हुए, 7 पण—प्राचीन काल में चलने वाला सिक्का,

8 राजकोष—सरकारी खजाना, 9 चंद्रकोष—सम्राट का निजी कोष, 10 सहस्र—हज़ार, 11 अणु मात्र—थोड़ा सा भी, रंज मात्र भी, 12 क्षत-विक्षत मत होने दो-रंग में भंग मत होने दो, 13 तोरण—वंदनवार, पत्तियों आदि से बनी मालाएँ जो सजावट के लिये खंभों और दीवारों पर लटकाई जाती हैं, 14 अनन्तर—पश्चात,
15 सूर्यनाद—तूरही की आवाज़।

पहली बार होगी! क्यों, वसुगुप्त?

वसुगुप्त : निस्संदेह, सम्राट्! कुसुमपुर में रहते मेरा इतना जीवन व्यतीत हुआ किंतु महाराज नंद विलासिता की थाह पाकर भी कभी अपनी नगरी का ऐसा शृंगार नहीं किया। यह श्रेय आपके ही शासन को होगा कि कुसुमपुर सचमुच सौंदर्य का कुसुम बन सकेगा।

चंद्रगुप्त : वसुगुप्त! तुम्हारी प्रशंसा **अतिशयोक्तियों**[1] से भरी होती है। इतनी प्रशंसा सुनकर मुझे कभी-कभी संदेह होने लगता है।

वसुगुप्त : किस संबंध में, सम्राट्?

चंद्रगुप्त : जो तुम कहते हो, उसकी यथार्थता में।

वसुगुप्त : सम्राट् परीक्षा करके देख लें। सत्य को सत्य कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सम्राट्! और फिर सम्राट् भी तो स्पष्टवक्ता हैं! सम्राट् स्वयं इस बात को समझते होंगे।

चंद्रगुप्त : चंद्रगुप्त रणनीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझना चाहता, वसुगुप्त! समाहर्त्ता के नवीन पद पर तुम्हारी नियुक्ति के संबंध में भी महामंत्री चाणक्य ही समझें। इस संबंध में उनसे पूछने का मुझे अवकाश ही नहीं मिला।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य से पूछना बहुत आवश्यक था, सम्राट्!

वसुगुप्त : यशोवर्मन! तुम्हें मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। तुम मुझे युद्ध के लिए प्रेरित करते हो!

यशोवर्मन : सम्राट् के सेवक और आचार्य महामंत्री चाणक्य के शिष्य होने के नाते मैं **द्वंद्व-युद्ध**[2] के लिए प्रस्तुत हूँ, वसुगुप्त! सम्राट्! मैं द्वंद्व की आज्ञा चाहता हूँ।

चंद्रगुप्त : यशोवर्मन! यह राजकक्ष है, **समरांगण**[3] नहीं! कौमुदी महोत्सव को रक्त का अभिषेक नहीं चाहिए! तुम्हें भी इतने शीघ्र क्षुब्ध नहीं होना चाहिए।

वसुगुप्त : सम्राट्! मैं क्षमा चाहता हूँ। किंतु सत्य की रक्षा हो।

चंद्रगुप्त : अवश्य होगी और आज कौमुदी महोत्सव में तो सौंदर्य की भी रक्षा होगी! हाँ, तुम राजनर्तकी के संबंध में क्या कह रहे थे?

वसुगुप्त : सेवक यही निवेदन कर रहा था, सम्राट् कि सम्राट् के विश्राम-क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्तकी के नृत्य की आवश्यकता है!

चंद्रगुप्त : हाँ, होनी चाहिए।

वसुगुप्त : तो सम्राट्! मैंने उसकी सज्जा के लिए विशेष प्रबंध करा दिया है। वह राजप्रसाद के उत्तर-कक्ष में वेशभूषा से सुसज्जित है।

चंद्रगुप्त : मेरी इच्छाओं के पूर्व ही कार्य की आयोजना करने वाले वसुगुप्त! मैं तुम से प्रसन्न हूँ। कौमुदी महोत्सव में सदैव मेरे साथ रहोगे।

वसुगुप्त : यह मेरा सौभाग्य है, सम्राट्!

चंद्रगुप्त : इस अवसर पर मुझे तक्षशिला का स्मरण हो आता है, जहाँ अठारह विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सहस्रों विद्यार्थी थे। वहाँ मेरे एक मित्र थे। तुमने भी उनका नाम सुना होगा। प्रसिद्ध **संस्कृतज्ञ**[4] **कात्यायन**[5]।

वसुगुप्त : वे तो व्याकरण-निर्माता पाणिनि के अभ्याससिद्ध शिष्य प्रसिद्ध है, सम्राट्!

चंद्रगुप्त : हाँ, मैं **आयुर्वेद**[6], **धनुर्वेद**[7] और **शल्य**[8] सीखता था और कात्यायन वेद और व्याकरण पढ़ते थे। पाणिनि के व्याकरण सूत्र भाषा और साहित्य के पूर्व ही चलते थे। उसी प्रकार तुम्हारे कार्य भी मेरी इच्छा के पूर्व ही हो जाते हैं।

वसुगुप्त : आप मुझे आदर देते हैं, प्रभु!

चंद्रगुप्त : वहीं आचार्य चाणक्य से मैत्री हुई। **नीति-निष्णात**[9] आर्य चाणक्य के समान बुद्धि और **अंतर्दृष्टि**[10] में आज समस्त आर्यावर्त में एक भी व्यक्ति नहीं है। यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे आचार्य और महामंत्री हैं।

यशोवर्मन : सम्राट्! आचार्य चाणक्य की नीति अमर होने की क्षमता रखती है। राजनीति के साथ आयुर्वेद आदि में भी आचार्य चाणक्य निपुण हैं। चीन के एक राजकुमार अपनी नेत्र-पीड़ा की चिकित्सा कराने के लिए तक्षशिला आये थे। आचार्य चाणक्य ने एक सप्ताह की चिकित्सा में ही उन्हें स्पष्ट दृष्टि प्रदान की।

चंद्रगुप्त : यह मैं जानता हूँ। उनकी राजनीति पर मुग्ध होकर तक्षशिला शासक आम्भीक उन्हें तक्षशिला में ही रखना चाहता था। किंतु उन्होंने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि हम दोनों एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करेंगे।

---

1 निसंदेह—इसमें कोई संदेह नहीं, 2अतिशयोक्ति—बढ़ा-चढ़ा कर कही गई बात, 3 द्वंद्व युद्ध—दो व्यक्तियों के बीच परस्पर युद्ध, 4समरांगण—युद्ध भूमि, 5 संस्कृतज्ञ—संस्कृत के विद्वान, 6 काध्यायन'वररुचि कात्यायन जिन्होंने प्राचीन संस्कृत वैयाकरण पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक (व्याख्या ग्रंथ) लिखा, 7 आयुर्वेद—भारतीय चिकित्सा-शास्त्र, 8 धनुर्वेद—वह शास्त्र जिसमें धनुष चलाने की विधा के बारे में बताया जाए, 9 शल्य—शस्त्र चिकित्सा, बाण अथवा शल्य निकालना; 10 नीति-निष्णात—नीति के ज्ञाता, 11 अंतर्दृष्टि—अंतर्मुखी दृष्टि, ज्ञान चक्षु।

यशोवर्मन : और सम्राट्! उनका कथन अंत में कितना सत्य निकला!

वसुगुप्त : सत्य क्यों न होता? मानवीय हृदय को पहचानने की अंतर्दृष्टि उनमें इतनी अधिक है कि वे एक ही क्षण में उसका संपूर्ण कार्यक्रम स्पष्टतः बतला सकते हैं। वे कार्य करने की शैली जानते हैं। अपूर्व शक्ति, अपूर्व साहस और अपूर्व बुद्धि का विचित्र **समन्वय**[1] उनमें हुआ है।

यशोवर्मन : वे **नर-रत्न**[2] हैं, सम्राट्! आपके सहयोग से वे राज्य को **निष्कंटक**[3] बना देंगे।

चंद्रगुप्त : मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूँ, किंतु कौमुदी महोत्सव के संबंध में भी मैं आचार्य चाणक्य से परामर्श नहीं कर सका। संग्राम की उलझनों ने अवकाश ही नहीं दिया किंतु इसकी सूचना तो उन्हें अवश्य मिल चुकी होगी!

वसुगुप्त : वे आपकी इच्छा का समर्थन ही करेंगे। कौमुदी महोत्सव की उपयोगिता और सामयिकता तो वे अपनी अंतर्दृष्टि से अवश्य ही देख चुके होंगे। तो अब समय अधिक हो रहा है। सम्राट्, राजनर्तकी के नृत्य के संबंध में क्या निर्णय करते हैं?

चंद्रगुप्त : उसका क्या नाम है?

वसुगुप्त : 'अलका', सम्राट्। वह **अनिंद्य**[4] सुंदरी और **अद्वितीय**[5] नृत्यकला की साम्राज्ञी है।

चंद्रगुप्त : मैं पहले उसे देखना चाहूँगा।

वसुगुप्त : अवश्य, सम्राट्! वह राजप्रसाद के उत्तर-कक्ष में वेशभूषा से सुसज्जित है। आज्ञा हो तो उसे सम्राट् की सेवा में निरीक्षणार्थ उपस्थित करूँ?

चंद्रगुप्त : ऐसा ही हो।

वसुगुप्त : जो आज्ञा। मैं उसे अभी सम्राट् की सेवा में उपस्थित करता हूँ।

(वसुगुप्त का प्रसन्नता के साथ प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : अंतपाल यशोवर्मन! आज राजनर्तकी अलका का नृत्य देखकर कुसुमपुर की उत्कृष्ट नृत्यकला का परिचय पा सकूँगा।

यशोवर्मन : मैं सम्राट् की सेवा में एक निवेदन करना चाहता हूँ।

चंद्रगुप्त : निवेदन करो।

यशोवर्मन : विलासी नंद वंश की राजनीति में यह राजनर्तकी अलका है।

चंद्रगुप्त : यह राजनर्तकी अलका?

यशोवर्मन : हाँ, सम्राट्! राजनर्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि वह नंद वंश के विनाश का कारण बनी और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती।

चंद्रगुप्त : निर्दोष? वह सब प्रकार से दोषी कही जानी चाहिए। **गौतम**[6] ने **अहिल्या**[7] को शाप क्यों दिया? क्या अहिल्या ने अपने सौंदर्य की रक्षा नहीं की थी, फिर क्यों उसने **इंद्र**[8] को नहीं पहचाना? **शची**[9] का सौभाग्य अप्सराओं को बाँटने वाले इंद्र की लालसा का भी परिचय चाहिए? वैसे ही क्या अलका महाराज नंद को नहीं पहचान सकी? क्या महाराज नंद की आँखों में उसके अंगराग की अरुण रेखाएँ विद्युत् बनकर नहीं चमक उठीं? यशोवर्मन! तुम जानते हो आकाश की उल्का प्रकाश से ओतप्रोत रहती है किंतु जब वह उदित होती है तो समस्त संसार में अमंगल की आशंका क्यों होती है?

यशोवर्मन : जब सम्राट् ऐसा सोचते हैं तो उसके नृत्य की अनुमति क्यों दे रहे हैं?

चंद्रगुप्त : केवल कौमुदी महोत्सव की शोभा-संपन्न करने के लिए और कुसुमपुर की जनता के मन में यह संतोष उत्पन्न करने के लिए कि सम्राट् चंद्रगुप्त ने महाराज नंद के आश्रितों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया। तुम जानते हो, यशोवर्मन! महाराज नंद के लिए जो विष था, उसे मैं अमृत में **परिणत करना**[10] चाहता हूँ।

यशोवर्मन : सम्राट् तक्षशिला के स्नातक हैं। सम्राट् जानते हैं कि राजनीति में राजनर्तकी का क्या स्थान है!

चंद्रगुप्त : वही स्थान जो कृपाण की धार को ढँकने के लिए म्यान का होता है। राजनीति रूपी कठोर कृपाण का आतंक छिपाने के लिए राजनर्तकी रूपी आवरण आवश्यक है किंतु वह **आवरण**[11] कृपाण की धार को कुंठित नहीं करता। राजनीति की **परुषता**[12] प्रजा की दृष्टि से ओझल रहना आवश्यक है।

यशोवर्मन : सत्य है, सम्राट्!

चंद्रगुप्त : किंतु महाराज नंद की राजनीति राजनर्तकी से **कुंठित**[13] हो गयी। तलवार की म्यान

---

1 समन्वय–मेल, 2 निष्कंटक–निर्विघ्न, काँटों से रहित, 3 नर-रत्न–पुरुषों में रत्न यानी सामान्य व्यक्तियों से बहुत अधिक श्रेष्ठ व्यक्ति, 4 अनिंद्य–निर्दोष, प्रशंसनीय, 5 अद्वितीय–अनोखी, 6 गौतम–एक प्राचीन ऋषि, 7 अहिल्या–गौतम की पत्नी, 8 इंद्र–देवताओं का राजा, 9 शची–इंद्र की पत्नी, 10 परिणति करना–बदलना, 11 आवरण–पर्दा, 12 परुषता–कठोरता, 13 कुंठित–कुंद, भोथरा।

टिप्पणी–एक बार देवताओं के राजा इंद्र ने गौतम का रूप धारण करके धोखे से अहिल्या के साथ संयोग किया। ऋषि गौतम को जब इस घटना का पता चला तो उन्होंने शाप दिया कि अहिल्या पत्थर हो जाए।

बनकर रह गयी, मैं राजनर्तकी को म्यान बनाकर रखना चाहता हूँ। (रुककर) क्या कारण है कौमुदी महोत्सव के प्रारंभ की सूचना तूर्य द्वारा नहीं सुन पड़ी?

(वसुगुप्त का प्रवेश)

वसुगुप्त : सम्राट्! राजनर्तकी सेवा में उपस्थित है।

चंद्रगुप्त : उपस्थित करो। वह मेरे कक्ष के वातावरण को संगीत और नृत्य में मुखरित करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट्! (प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : अंतपाल यशोवर्मन! नृत्य और संगीत कौमुदी महोत्सव की वह प्रस्तावना है जिसमें उमंग की **रूपरेखा**[1] **मंगल**[2] के रंग में सुसज्जित होती है। नृत्य मेरी मनोहर भावनायें हैं जिनमें सुख का रहस्य जागता है!

(वसुगुप्त के साथ राजनर्तकी अलका का प्रवेश)

अलका : सम्राट् की सेवा में अलका का प्रणाम स्वीकार हो! (अत्यंत सुकुमार भाव से प्रणाम करती है)

चंद्रगुप्त : (हाथ उठाकर) कुसुमपुर की श्री और शोभा की **अधिवासिनी**[3] बनो। (यशोवर्मन से) तुम जा सकते हो।

यशोवर्मन : जो आज्ञा सम्राट्! मेरा निवेदन है कि इस नृत्य-समारोह में आचार्य चाणक्य भी सम्मिलित हों।

चंद्रगुप्त : (हँसकर) आचार्य चाणक्य? राजनीति को कविता से मिलाना चाहते हो? मुझे कोई आपत्ति नहीं। यदि चाहो तो उन्हें यहाँ भेज सकते हो। वे भी राजनीति के कुचक्रों से थक गये होंगे, उन्हें भी विश्राम की आवश्यकता होगी। राजनीति का मस्तिष्क आज नृत्य की कविता से हृदय की सहानुभूति प्राप्त करे!

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट्! (प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : राजनीति और कविता! (राजनर्तकी से) क्यों राजनर्तकी! तुम राजनीति की ताल पर नृत्य कर सकती हो?

अलका : सम्राट्! अभी तक तो राजनीति ही मेरे नृत्य की ताल थी किंतु मैंने इसकी ओर कभी ध्यान दिया ही नहीं। राजनर्तकी का राजनीति से क्या संबंध, सम्राट्! वह तो राज्य की **अनुचरी**[4] मात्र है।

चंद्रगुप्त : (हँसकर) इन्हीं **छद्मवेशी**[5] शब्दों में अनुचरी स्वामिनी बन जाती है, राजनर्तकी! महाराज नंद तुम पर मोहित थे या तुम महाराज नंद पर मोहित थीं?

अलका : सम्राट् मुझे क्षमा करें। सच्ची नारी मोहित नहीं होना चाहती, वह आत्म-समर्पण करना चाहती है। जो नारी मोहित होती है, वह अपने रूप का व्यापार करती है, हृदय का **समर्पण**[6] नहीं।

चंद्रगुप्त : तुम किस व्यापार में विश्वास करती हो—रूप के व्यापार में या हृदय के व्यापार में?

अलका : हृदय का व्यापार नहीं होता, सम्राट्!

चंद्रगुप्त : तो हृदय का समर्पण सही!

अलका : उस समर्पण की कोई भाषा नहीं होती, सम्राट्! जिस समर्पण में भाषा होती है, वह व्यापार बन जाता है, और हृदय का व्यापार कभी नहीं होता!

चंद्रगुप्त : पर महाराज नंद तो हृदय का व्यापार करते थे और उस व्यापार में अपना सारा साम्राज्य हार गये! क्या यह बात सत्य नहीं है?

अलका : सत्य है, सम्राट्! किंतु पुरुष तो व्यापारी है, वह अपने व्यापार में सब कुछ लुटा सकता है।

चंद्रगुप्त : पुरुषों के प्रति तुम्हारी बहुत हीन दृष्टि है, राजनर्तकी!

अलका : उसी प्रकार जैसे पुरुषों की नारियों के प्रति हीन दृष्टि है, सम्राट्! वे नारी को विलासिता की सामग्री बनाकर छोड़ देते है।

चंद्रगुप्त : किंतु कोई नारी बलपूर्वक विलासिता की सामग्री नहीं बनायी जा सकती। वह अपनी विजय के लिए विलासिता की सामग्री बनती है और दोष पुरुषों को देती है!

अलका : सम्राट् राजनीति के आचार्य हैं और सेविका राजनीति के पैरों से कुचली हुई धूल है, सम्राट्! मैं क्या निवेदन कर सकती हूँ!

चंद्रगुप्त : किंतु राजनर्तकी! धूल भी सिर पर चढ़ सकती है।

अलका : हाँ, सम्राट् जब वह पैरों से ठुकराई जाती है। किंतु सेविका का यह अधिकार नहीं।

चंद्रगुप्त : अधिकार नहीं, राजनर्तकी! यह तो उसकी गति है। गति में अधिकर का **आडंबर**[7] नहीं

---

1 रूपरेखा—किसी कार्य अथवा योजना का आरंभिक रूप, 2 मंगल—भलाई, कल्याण, 3 अधिवासिनी—स्वामिनी, 4 अनुचरी—सेविका, 5 छद्मवेशी—बनावटी वेश धारण किए, कपट वेश धारण किये, 6 समर्पण—आदरपूर्वक भेंट करना, दान करना, 7 आडम्बर—ढोंग, ऊपरी दिखावा।

होता, उसमें शक्ति की विद्युत् होती है। और तुममें वह शक्ति की विद्युत् है जिसने आकाश का हृदय चीरते हुए तड़पकर नंद जैसे विशाल शाल वृक्ष को धराशायी कर दिया।
अलका : तब तो मुझे विद्युत् की भाँति ही पृथ्वी में विलीन हो जाना चाहिए, सम्राट्!
चंद्रगुप्त : किंतु राजनर्तकी महासती सीता नहीं बन सकती जो भूमि में विलीन हो जाये। राजनर्तकी को राज्य का शृंगार करना पड़ता है।
अलका : यह मेरे जीवन का अभिशाप है, सम्राट्! ऐसे फूलों का क्या सौंदर्य जो किसी शव पर बिखेर दिये जाते हैं। आज आपके चरणों पर गिरकर मैं अपने जीवन से मुक्त हो जाऊँगी।
चंद्रगुप्त : निराशा की बातें न करो, राजनर्तकी! तुम जानती हो आज कौमुदी महोत्सव है। कुसुमपुर की जनता मेरे साथ आनंद-विभोर हो जाना चाहती है। तुम्हें मधुर गायन से वातावरण को गुंजित करना है।
अलका : सम्राट् की जो आज्ञा, किंतु आज से मैं राजनर्तकी का पद त्याग दूँगी और आपके चरणों की धूल में शयन कर अमर हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त का शौर्य एवं वीरता

चंद्रगुप्त : राजनर्तकी! तुम्हारा यह वार्तालाप महाराज नंद से नहीं हो रहा, सैनिक चंद्रगुप्त से हो रहा है। मुझे अपने चरणों की धूल वीरों की परंपरा के लिए छोड़नी है, राजनर्तकियों की परंपरा के लिए नहीं। किंतु मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। कुसुमपुर के नागरिकों को नृत्य-शिक्षा दो और उसका **मंगलाचरण**[1] आज कौमुदी महोत्सव में तुम्हारे नृत्य से हो। नृत्य प्रारंभ करो, जिससे कुसुमपुर का वायु-मंडल तुम्हारे **नूपुरों**[2] के स्वरों का वाहक बनकर कौमुदी महोत्सव का निमंत्रण प्रत्येक दिशा में पहुँचा दे।
वसुगुप्त : अलका! तुम्हें कुसुमपुर के आदर्श नृत्य का परिचय सम्राट् को देना है। इस समय तुम्हें ऐसा नृत्य करना है कि सम्राट् नृत्य-विभोर होकर अपने जीवन के समस्त **विषाद**[3] को भूल जायें।
चंद्रगुप्त : मुझे तो कोई विषाद नहीं है, वसुगुप्त!
वसुगुप्त : सम्राट् को विषाद ही क्या हो सकता है! सम्राट् तो सैनिक हैं। सैनिक को विषाद कैसा! मैं तो यही कहना चाहता था कि कुसुमपुर के नागरिकों के हित चिंतन में लगा हुआ आपका मन जो थका हुआ है ···
चंद्रगुप्त : ठीक है। राजनर्तकी, नृत्य प्रारंभ हो!
अलका : जो आज्ञा सम्राट् की! (प्रण प कर नृत्य प्रारंभ करती है। कुछ देर नृत्य करने के बाद मधुर कंठ से गीत गाती है)

आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है **अलि**[4] का **गुंजन**[5]!
सजीली थी मधुवन की गली,
समीरन[6] धीरे-धीरे चली,
फूल के पास खिल गयी कली,
और नभ से संध्या ने उतर,
लगाया आँखों में **अंजन**[7]!
आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन!

(थोड़ी देर तक नृत्य होता रहता है। अंत में सम्राट् के मुख से प्रशंसा के शब्द निकलते हैं)
चंद्रगुप्त : बहुत सुंदर, राजनर्तकी अलका! तुम जितनी सुंदर हो, उतना ही सुंदर तुम्हारा नृत्य है। यह लो अपना पुरस्कार!
(चंद्रगुप्त अपने गले से मोतियों की माला उतारते हैं। सहसा आचार्य चाणक्य का प्रवेश)

कथा में आकस्मिक परिवर्तन, कथा अचानक नया मोड़ लेती है।

चाणक्य : पुरस्कार नहीं दिया जायेगा, सम्राट्!
चंद्रगुप्त : (आश्चर्य से रुककर) महामंत्री चाणक्य!
चाणक्य : सम्राट्! आग बुझ जाने पर भी आग की राख गरम रहती है, उसे तुम हाथ में नहीं उठा सकते। तुम इतने थोड़े समय में कैसे मान बैठे कि कुसुमपुर की आग इतनी शीतल भस्म हो गयी है कि उसमें कुसुमों की क्यारियाँ सजायी जाएँ।
चंद्रगुप्त : महामंत्री, चंद्रगुप्त ने कुसुमों की क्यारियों में नहीं, समरांगण में अपने जीवन का वैभव देखा है। उसने नूपुरों की झंकार में नहीं, तलवारों की झंकार में अपने जीवन का संगीत गाया है। आपने यह कैसे समझ लिया कि चंद्रगुप्त के क्षणिक मनोविनोद में उसका समरांगण कुसुम की क्यारी बन गया? आपको यह समझना चाहिए कि यह क्षणिक विश्राम भविष्य के युद्ध की भूमिका है।

---

1 मंगलाचरण–किसी शुभ काम को शुरू करने से पहले मंगल-कामना से की जाने वाली देव स्तुति, ग्रंथ के आरंभ में लिखा जाने वाला मांगलिक पद, 2 नूपुर–पैरों में पहना जाने वाला आभूषण, घुँघरू,
3 विषाद—अवसाद, उदासी, 4 अलि-भौंरा, 5 गुंजन—गुंजार, 6 समीरन—हवा, 7 अंजन—काजल।
टिप्पणी–ऐसा माना जाता है कि सीता पृथ्वी में उत्पन्न हुई थीं और अंत में पृथ्वी में ही समा गयी थीं।

चाणक्य : और सम्राट् चंद्रगुप्त! यदि इस क्षणिक विश्राम में ही जीवन का अंत हो गया तो? तुम्हारे भविष्य के वैभव का समरांगण ही कहीं तुम्हारे शव का श्मशान बन गया तो इस विश्राम के क्षण को तुम क्या कहोगे?
चंद्रगुप्त : आर्य, विश्राम के क्षणों की सीमा क्या और कितनी है, यह जानने के लिए चंद्रगुप्त के पास पर्याप्त **विवेक**[1]
चाणक्य : (बीच ही में) ··· नहीं है। यही समझकर मैं अपने साथ सैनिक लाया हूँ। (पुकारकर) सैनिको! राजनर्तकी और समाहर्त्ता को अपने नियंत्रण में लो!
(सैनिक नेपथ्य से निकलकर आगे बढ़ते हैं)
वसुगुप्त : सम्राट्, राजमर्यादा भंग हो रही है, रक्षा कीजिए!
चंद्रगुप्त : महामंत्री, वसुगुप्त अपने नवीन समाहर्त्ता हैं!
चाणक्य : किंतु इस समय वे बंदी है। सैनिको, दोनों को नियंत्रण में लो। यदि कोई विरोध हो तो बल-प्रयोग हो!
वसुगुप्त : (करुण स्वर में) मैं निर्दोष हूँ, मैं निर्दोष हूँ, सम्राट्! महामंत्री! मैं निर्दोष हूँ।
अलका : (अत्यंत करुण स्वर में) मेरा स्पर्श कोई न करे। मैं नारी हूँ। नारी की मर्यादा सुरक्षित हो, सम्राट्! नारी की मर्यादा सुरक्षित हो! मैं स्वयं नियंत्रण में होती हूँ। हाय, नारी नियंत्रण में, सदैव नियंत्रण में, जीवन-भर नियंत्रण में! (विह्वल हो जाती है)
चंद्रगुप्त : (आगे बढ़कर) आर्य चाणक्य ···
चाणक्य : कुछ मत कहो इस समय, सम्राट् चंद्रगुप्त! चाणक्य अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता है। सैनिको! दोनों को नियंत्रण में लेकर दूसरे कक्ष में जाओ।
सैनिक : जो आज्ञा!
(दोनों को बंदी कर सैनिकों का प्रस्थान)
चंद्रगुप्त : यह राजमर्यादा की सबसे बड़ी **अवहेलना**[2] है, महामंत्री! जिस राजमर्यादा की पूजा हमने रक्त चढ़ाकर की है, उसी राजमर्यादा को तुच्छ सैनिक अपने पैरों की धूल से कलंकित करें, यह कैसी राजनीति है! आज कौमुदी महोत्सव के अवसर पर ···
चाणक्य : कौमुदी महोत्सव?
चंद्रगुप्त : हाँ, कौमुदी महोत्सव? क्या आपने मेरी घोषणा नहीं सुनी?
चाणक्य : वह सुनने योग्य नहीं थी।
चंद्रगुप्त : आप राजमर्यादा का इतना अपमान कैसे कर रहे हैं, महामंत्री! कौमुदी महोत्सव की घोषणा कुसुमपुर में मेरी प्रथम **राज-घोषणा**[3] है।
चाणक्य : वह राज-घोषणा प्रारंभ होने से पूर्व ही समाप्त हो गयी।
चंद्रगुप्त : (आश्चर्य से) समाप्त हो गयी! किसने यह साहस किया?
चाणक्य : मैंने, आर्य चाणक्य ने!
चंद्रगुप्त : इसीलिए मुझे घोषणा का तूर्य नहीं सुन पड़ा! तो आपने कौमुदी महोत्सव की घोषणा नहीं होने दी?
चाणक्य : नहीं। मैंने ही घोषणा नहीं होने दी।
चंद्रगुप्त : मैं कारण जानना चाहता हूँ।
चाणक्य : मैं कारण नहीं बतला सकता।
चंद्रगुप्त : सम्राट् कौन है, चंद्रगुप्त या चाणक्य?
चाणक्य : चंद्रगुप्त।
चंद्रगुप्त : फिर सम्राट् चंद्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है?
चाणक्य : इसलिए कि वह आज्ञा किसी मचले बालक के हठ की तरह है।
चंद्रगुप्त : फिर भी उसकी रक्षा चाहिए।
चाणक्य : नहीं, बालक आग पकड़ना चाहता है। उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकेगी।
चंद्रगुप्त : यह तुम्हारा गर्व है, महामंत्री!
चाणक्य : यह तुम्हारा अज्ञान है, सम्राट्!
चंद्रगुप्त : (क्रुद्ध होकर) महामंत्री! कुसुमपुर की विजय में तुम्हारा हाथ रहा है, तो क्या इतनी छोटी-सी विजय ने ही तुम्हारे गर्व की चिंगारी को फूँक मारकर लपट में परिवर्तित कर दिया? यह गर्व उस चिता की ज्वाला है जिसमें तुम्हारी राजनीति जलकर भस्म हो सकती है!
चाणक्य : मुझे इसकी चिंता नहीं है, सम्राट! गर्व मेरे **अंतःकरण**[4] का अधिकार है। वह राज्य से अनुशासित नहीं है। किंतु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि चाणक्य के गर्व की चिंगारी स्वर्ग के

---

1 विवेक–बुद्धि, समझ, 2 अवहेलना–अनादर, तिरस्कार, 3 राज-घोषणा–राजा के पद से की गई घोषणा यानी राजा की आज्ञा, 4 अंतःकरण–हृदय।

राज्य को प्राप्त करके भी लपट नहीं बनेगी। हाँ, अपमान के हल्के झोंके से ही वह **दावाग्नि**[1] बनकर तुम्हारे वैभव के **नंदन वन**[2] को क्षण-भर में भस्म कर सकती है। क्या तुम नंद वंश के विनाश की पुनरावृत्ति देखना चाहते हो?

चंद्रगुप्त : आर्य चाणक्य! सैनिक चंद्रगुप्त विलासी नंद नहीं है जो पतन के गर्त के मुख पर खड़ा होकर हल्की-सी राजनीति के धक्के की प्रतीक्षा करे। मौर्य चंद्रगुप्त **हिमाद्रि**[3] की तरह सुदृढ़ है जिसे महामंत्री चाणक्य की कुटिल राजनीति रूपी आँधियों के झोंके एक कण-भर भी विचलित नहीं कर सकते।

चाणक्य : मौर्य चंद्रगुप्त! क्षत्रियत्व क्या इतना पतित हो गया कि वह ब्राह्मणत्व पर पदाघात करे? क्या तुम जानते हो कि मौर्य हिमाद्रि की भाँति सुदृढ़ कैसे हो पाया? उसकी सुदृढ़ता को धारण करने वाली पृथ्वी इसी ब्राह्मण की राजनीति है। यदि यह शक्ति एक क्षण के लिए अलग हो जाये तो हिमाद्रि इतने वेग से नीचे गिरेगा कि वह अपने साथ **समीपवर्ती**[4] वृक्षों को भी लेकर समुद्रतल में चला जायेगा और तब समुद्र की तरंगें इसी ब्राह्मण के चरणों में लौटने के लिए आयेंगी और यह ब्राह्मण उस ओर देखेगा भी नहीं।

चंद्रगुप्त : आर्य चाणक्य! संसार में जितने प्रतापशाली राज्य हुए हैं क्या वे सब महामंत्री चाणक्य की राजनीति के बल पर ही हुए हैं? और जहाँ महामंत्री चाणक्य नहीं हैं, वहाँ किसी राज्य की स्थापना भी नहीं है? क्या सारे राज्यों की शक्ति महामंत्री चाणक्य की शक्ति से ही भिक्षा माँगकर संसार में चली है और क्या चंद्रगुप्त इतना हीन है कि उस शक्ति के बल पर ही विजय प्राप्त करता है? तब जाने दो ऐसी शक्ति को। उसे मैं आज ही दूर करता हूँ। महामंत्री चाणक्य! तुम महामंत्री पद से मुक्त किये गये।

चाणक्य : मौर्य! लो अपना शस्त्र! (फेंक देते हैं) यह कलंक इसी समय दूर करता हूँ। राजमंत्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आने वाले चंद्रगुप्त! क्या मैं अपनी शिखा खोलकर विनाश की फिर प्रतिज्ञा करूँ? जिस ब्राह्मण की शिखा-सर्पिणी ने नंद वंश को एक ही **दंशन**[5] में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है? जिस चंद्रगुप्त को अपना आत्मीय समझकर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया, उसी चंद्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूँ! वाह रे ब्राह्मण! **ब्रह्म-ज्ञान**[6] में जीवित रहने वाला आज राज्य के **कुचक्रों**[7] से लांछित हो रहा है। आज अपने सृष्टि-सागर का विष मैं ही पी रहा हूँ। किंतु चंद्रगुप्त! मुझमें **कालकूट**[8] को भी पी जाने वाले **नीलकंठ**[9] की शक्ति है। समझते हो?

चंद्रगुप्त : समझता हूँ, चाणक्य! (शस्त्र उठाते हुए) यह शस्त्र अब मेरे अधिकार में है। आज मैं समस्त राजनीति अपने बाहुबल में केंद्रित कर कुसुमपुर का शासन करूँगा और विद्रोह के सर्पों को जलाने के लिए महायज्ञ करूँगा।

चाणक्य : करो, इसी समय से करो वह महायज्ञ और उसमें तुम भी विनष्ट हो जाओ! आज कौमुदी महोत्सव करो और अपने जीवन समाहर्त्ता और राजनर्तकी के रूप में अपनी मृत्यु को निमंत्रण दो।

चंद्रगुप्त : मेरे आनंदोत्सव से ईर्ष्या करने वाले चाणक्य! तुम यही कहो! ब्राह्मण को इन ऐश्वर्यों से द्वेष होना स्वाभाविक है।

चाणक्य : आत्म-चिंतन में जो ऐश्वर्य है, क्षत्रिय! वह इन तुच्छ भड़कीले वैभवों में नहीं है—वैभव जो अपने साथ मृत्यु लिये हुए है! शत्रु के गुप्तचरों और **विषकन्याओं**[10] पर विश्वास करने वाला सम्राट् एक ही पदक्षेप में मृत्यु का आलिंगन उसी भाँति करता है जैसे एक ही उछाल में पतंगा दीप-शिखा के भीतर जलती हुई मृत्यु में भस्म हो जाता है। तुम भी भस्म हो जाओ और अपने वैभव का जला हुआ काला धुआँ अपने पीछे छोड़ जाओ!

अपने प्रयासों द्वारा बनाये सम्राट द्वारा खुद ही अपमानित हो रहा हूँ। किंतु इस अपमान रूपी विष को पी रहा हूँ क्योंकि जन कल्याण चाहता हूँ।

जिस तरह जनमेजय ने नागों के अंत के लिए नाग यज्ञ किया उसी तरह मैं विद्रोह का अंत करने के लिए शस्त्र-ग्रहण रूपी महायज्ञ करूँगा।

चाणक्य द्वारा रहस्योद्घाटन

---

1 दावाग्नि—वन में लगने वाली भीषण आग जो समूचे वन—वहाँ की वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं को अपनी लपट में ले लेती है। यह आग अक्सर बाँस आदि के रगड़ खाने से स्वतः लग जाती है, 2 नंदन वन—स्वर्ग में इंद्र का उद्यान, 3 हिमाद्रि—बर्फ से ढका हिमालय पर्वत, 4 समीपवर्ती—आस-पास के, 5 दंशन—दाँत से काट लेना, 6 ब्रह्म ज्ञान—ब्रह्म को जानना, परम तत्व का ज्ञान, 7 कुचक्र—षड्यंत्र, 8 कालकूट—अत्यंत भयंकर विष, 9 नीलकंठ—शिव का एक नाम नीलकंठ है। ऐसा माना जाता है कि समुद्र मंथन के दौरान बहुत से रत्नों के साथ-साथ विष भी प्राप्त हुआ था। यह अत्यंत भयानक विष था। इस विष से पृथ्वी पर किसी का अनिष्ट न हो इस आशय से शिव ने इसे पी लिया था। विष के कारण उनका कंठ (गला) नीला हो गया था, 10 विषकन्या—वह स्त्री जिसके शरीर में इस आशय से विष प्रविष्ट कराया जाता है कि उसके निकट संपर्क में आने वाला या उसके साथ संभोग करने वाला व्यक्ति तुरंत मर जाये। माना जाता है कि विषकन्या प्राचीन राजनीति का अंग होती थी। राजा लोग अपने शत्रु के लिए उसका प्रयोग करते थे।

टिप्पणी—"शिखा सर्पिणी" शब्दों में भाषा का व्यंजनाश्रित प्रयोग हुआ है। शिखा सर्पिणी का अर्थ है शिखा रूपी सर्पिणी। नंद द्वारा अपमानित होने पर चाणक्य ने अपनी शिखा खोल कर प्रतिज्ञा की कि वह नंद वंश को समाप्त करके ही शिखा बाँधेंगे। इस तरह नंद के लिए चाणक्य की शिखा सर्पिणी विषैली नागिन सिद्ध हुई।

चंद्रगुप्त : अपनी राजनीति में अविश्वासी बने हुए, चाणक्य! तुम प्रत्येक व्यक्ति को गुप्तचर और प्रत्येक नारी को विषकन्या समझ सकते हो! राज्य-सीमा की रेखा पर रेंगती हुई तुम्हारी आँखों की पुतलियाँ काले कीड़े की तरह केवल निरीह जीवों की हिंसा करना ही जानती हैं। महामंत्री की विशेषता···

दो रास्ते हैं—अपमान का बदला ले या क्षमा कर दे और राजनीति से अलग हो जाए

चाणक्य : महामंत्री मत कहो, मौर्य! मैं अब तुम्हारा महामंत्री नहीं हूँ। मैं भी तुम्हें सम्राट नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल एक ब्राह्मण हूँ। वह ब्राह्मण जिसकी शिखा बहुत दिनों तक खुली रही और वह तभी बाँधी गयी जब उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नंद वंश का विनाश कर दिया। अब उसके सामने केवल दो ही मार्ग हैं। या तो वह पुनः अपनी शिखा खोलकर मौर्य वंश के विनाश की प्रतिज्ञा करे या क्षितिज की भाँति अपनी बाहुओं को फैलाकर नक्षत्रों के नेत्रों से विश्वभरा पृथ्वी को अपनी करुणा और शांति से सींचे। तब समस्त सृष्टि से उसका राज्य होगा, पशु-पक्षी उसके सहचर होंगे और वह वायु के झकोरों में झूमकर सामगान करता हुआ तुम्हें क्षमा करेगा।

चंद्रगुप्त : यह तपोवन नहीं है, आर्य! और चंद्रगुप्त क्षमा का न तो पात्र है, न अभिलाषी। अब तपोवन के **होमकुंड**[1] में हिंसा करो या कुश-कंटक चरने वाले हरिणों को क्षमा करो, किंतु जाने के पूर्व अपने नवीन समाहर्त्ता वसुगुप्त तथा राजनर्तकी अलका पर लगाये हुए लांछन का **निराकरण**[2] करना होगा! और यदि यह **लांछन**[3] असत्य निकला तो राज्य का दंडविधान अपराधी को पहचानता है। यह मेरा अंतिम आदेश है।

चाणक्य : अपने नवीन महामंत्री को प्रथम आदेश दो, मौर्य! मैं तुम्हारे समक्ष सत्य के उद्घाटन के लिये बाध्य नहीं हूँ।

चंद्रगुप्त : जो ब्राह्मण सत्य के उद्घाटन को अपना धर्म न समझे, उसे मैं किस संज्ञा से संबोधित करूँ?

चाणक्य : सत्य का उद्घाटन मैं अपनी इच्छा से कर सकता हूँ। किंतु इस उद्घाटन के अनंतर में एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। यह वातावरण अभिशाप बनकर मेरे रोम-रोम में तीव्र **प्रतिहिंसा**[4] की ज्वाला उत्पन्न कर रहा है।

चंद्रगुप्त : सर्वप्रथम प्रमाण उपस्थित किया जाये!

चाणक्य : (पुकारकर) सैनिक!

(सैनिक का प्रवेश)

सैनिक : आज्ञा महाराज!

चाणक्य : समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्तकी अलका को उपस्थित करो!

सैनिक : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

चाणक्य में यह देखने की शक्ति है कि जो कुछ प्रत्यक्ष घटित हो रहा है उसके पीछे क्या निहित है।

चाणक्य : चंद्रगुप्त प्रजा के **संस्कार**[5] जल्दी नहीं छूटते। इस समय भी महाराज नंद से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति कुसुमपुर में विद्रोह की लपटों के **स्फुलिंग**[6] बने हुए हैं। राजमंत्री राक्षस कुसुमपुर के बाहर रहकर भी कुसुमपुर के नागरिकों में अविश्वास के बीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है। कुसुमपुर के समस्त कार्यों में षड्यंत्रों का जाल जयकार के छद्मवेश में चारों ओर घूम रहा है और तुम कौमुदी महोत्सव में असावधान होकर विषकन्या का स्पर्श करना चाहते हो! चंद्रगुप्त मैं अपने **निस्पृह**[7] नेत्रों से सब-कुछ देख रहा हूँ और तुम देखकर भी कौमुदी महोत्सव की शीतलता में **हलाहल**[8] पान करने जा रहे हो! मैं फिर यही कहना चाहता हूँ···

(सैनिक का वसुगुप्त और अलका के साथ प्रवेश)

अच्छा! समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्तकी अलका!

सैनिक! तुम जाकर द्वार पर अपना स्थान ग्रहण करो।

(सैनिक का प्रणाम कर प्रस्थान)

(वसुगुप्त को संबोधित करते हुए) समाहर्त्ता वसुगुप्त! मुझे दुख है कि मैंने तुम्हें सैनिकों के नियंत्रण में रखा। मैं जानता हूँ कि तुम सम्राट् चंद्रगुप्त के विश्वासपात्र नवीन समाहर्त्ता हो!

वसुगुप्त : मैं समाहर्त्ता नहीं हूँ, महामंत्री! यदि समाहर्त्ता होता तो सम्राट् समाहर्त्ता का अपमान इस भाँति नहीं देख सकते थे!

अलका : (करुण स्वर में) और नारी का अपमान आज तक कुसुमपुर के राजकक्ष में नहीं हुआ! मैं अपमानित हुई हूँ, सम्राट्!

चंद्रगुप्त : (दृढ़ता से) निस्संदेह! मैं दोनों के अपमान का **प्रतिकार**[9] करूँगा।

चाणक्य : (वसुगुप्त से) सम्राट् से तुमने आश्वासन पा लिया है, समाहर्त्ता! और (राजनर्तकी से) राजनर्तकी तुम्हें भी सम्राट् की बाहुओं की शीतल छाया प्राप्त हो चुकी है; किंतु (वसुगुप्त से) मैं जानना चाहता हूँ, समाहर्त्ता! राजनर्तकी से तुम्हारा परिचय कितना पुराना है?

वसुगुप्त : मैं राजनर्तकी का नाम भी नहीं जानता, महामंत्री! मुझे तो कौमुदी महोत्सव की घोषणा

---

1 होमकुंड—हवन करने के लिये बना हुआ कुंड, 2 निराकरण—हटाना, दूर करना, निवारण, 3 लाँछन—दोष, कलंक, 4 प्रतिहिंसा—बदले की भावना, 5 संस्कार—मानसिक बनावट, 6 स्फुलिंग—चिंगारी, 7 निस्पृह—बिना किसी लोभ के, 8 हलाहल—विष, 9 प्रतिकार—बदला चुकाना।

के कुछ क्षण पूर्व राजनर्तकी का परिचय मिला।
चाणक्य : तुम कुसुमपुर के निवासी हो, समाहर्त्ता!
वसुगुप्त : कुसुमपुर के एक ग्राम अमरावती का निवासी हूँ। मैं वहाँ का अंतपाल था।
चाणक्य : तो तुम कुसुमपुर में कब से निवास करते हो?
वसुगुप्त : मैंने कहा न महामंत्री! मैं कुसुमपुर का नहीं, अमरावती का निवासी हूँ।
चाणक्य : सम्राट् चंद्रगुप्त ने तुम्हें कुसुमपुर में पाया या अमरावती में? उन्होंने तुम्हें अपना समाहर्त्ता बनाने में कुसुमपुर की नागरिकता को ही ध्यान में रखा होगा?
वसुगुप्त : मैं कुसुमपुर में निवास नहीं करता, महामंत्री! मैं अमरावती से कुसुमपुर आया अवश्य करता हूँ।

रहस्योद्‌घाटन की ओर बढ़ते हैं

चाणक्य : वर्ष में कितनी बार आया करते हो?
वसुगुप्त : मैं कह नहीं सकता।
चाणक्य : (कठोर स्वर में) प्रश्न की **अवहेलना**[1] नहीं हो सकती। ठीक उत्तर दो।
वसुगुप्त : महाराज नंद के प्रमुख उत्सवों में आया करता था।
चाणक्य : गत वर्ष वसंतोत्सव में सम्मिलित हुए थे? अमरावती के अंतपाल!
वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री!
चाणक्य : वसंतोत्सव में राजनर्तकी अलका ने नृत्य किया था। तुमने उसे देखा था?
वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री।
चाणक्य : तब तुम अलका के नाम से परिचित हो?
वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री!

संवादों के माध्यम से स्थिति के तनाव को उभारा गया है। उत्तर-प्रत्युत्तर की तार्किकता पर ध्यान दीजिए।

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि मैं अलका का नाम भी नहीं जानता और कहा कि कौमुदी महोत्सव के एक क्षण पूर्व राजनर्तकी का परिचय मिला!
वसुगुप्त : मैं राजनीति की बातें प्रकट नही करता!
चाणक्य : (हंसकर) बड़े राजनीतिज्ञ हो! अच्छा, राजनीति की बातें मत कहो। सीधा उत्तर दो, तुम राजमंत्री राक्षस के गुप्तचर कब हुए?
वसुगुप्त : महामंत्री मैं दुष्ट राक्षस को जानता भी नहीं हूँ।
चाणक्य : उसी तरह जिस तरह तुम राजनर्तकी को नहीं जानते थे?
वसुगुप्त : (चंद्रगुप्त से) सम्राट्! मेरे सम्मान की रक्षा कीजिये।
चंद्रगुप्त : मैं रक्षा करूँगा। पहले महामंत्री आचार्य चाणक्य के प्रश्नों के उत्तर दे दो।
वसुगुप्त : मैं उत्तर देने में असमर्थ हूँ, सम्राट्! कौमुदी महोत्सव के इस अवसर पर मैंने अधिक **आसव**[2]-पान कर लिया है। इसी कारण मेरे उत्तर ठीक नहीं है।
चाणक्य : कोई हानि नहीं, समाहर्त्ता' मैं तुम्हें और भी आसव-पान करने के लिए दूँगा, जिससे तुम्हारे लिए यह कौमुदी महोत्सव और भी **मंगलमय**[3] हो।
वसुगुप्त : मैं अधिक आसव-पान करना **राजधर्म**[4] के प्रतिकूल समझता हूँ, महामंत्री!
चाणक्य : अभी तुमने कहा कि अधिक आसव-पान करने के कारण मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता। अब कहते हो, मैं अधिक आसव-पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ!
वसुगुप्त : मैं राजनीति के रहस्य आपके समक्ष खोलने में असमर्थ हूँ।
चाणक्य : बार-बार राजनीति! प्रत्येक प्रश्न में राजनीति! राज्य का समाहर्त्ता राज्य के महामंत्री से राजतीति के रहस्य नहीं कहना चाहता? और आसव-पान करने में भी तुम्हारी राजनीति है! हाँ, तुम्हारी नहीं, मेरी है। समाहर्त्ता! यदि तुम नहीं चाहते तो मैं तुमसे राजनीति के रहस्य खोलने के लिए नहीं कहूँगा। कविता की बातें कहूँगा। कविता की बातें कर सकते हो? उत्तर दो, जो आसव **वन्य**[5] कुसुमों की सुगंधि लिये हुए है, वह इतना मादक क्यों होता है?
वसुगुप्त : मैं नहीं जानता, महामंत्री!
चाणक्य : तुम नहीं जानते, मैं जानता हूँ। जो आसव वन्य कुसुमों की सुगंधि लिए हुए है वह इतना मादक इसलिए है कि उसे सुंदरियाँ अपने हाथों से पान कराती है, ऐसी सुंदरियाँ जिनके नेत्रों में आसव है। वे तुम्हारे आसव को देखते हुए अपने नेत्रों का आसव उसमें ढालकर उसे और भी मादक बना देती हैं।
वसुगुप्त : आप तो राजनीति और कविता दोनों में ही पारंगत है, महामंत्री!
चाणक्य : चाणक्य की सूखी शिराओं में कविता कहाँ! किंतु तुम्हारी इच्छानुसार मैं राजनीति के रहस्यों के बदले तुम्हें कविता देना चाहता हूँ। एक बात और पूछूँ? सुंदरियों के नेत्रों में अधिक मादकता है या अधरों में?
वसुगुप्त : इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, महामंत्री!

---

1 अवहेलना—उपेक्षा, 2 आसव—मदिरा, 3 मंगलमय—आनंददायक, 4 राजधर्म—राज्य के प्रति कर्तव्य, 5 वन्य—जंगली।

चाणक्य : राजनीति के रहस्यों से भी कठिन, समाहर्त्ता! जिसमें तुम **पारंगत**[1] हो। **अमरावती के** अंतपाल और महाराज नंद के वसंतोत्सव में सम्मिलित होने वाले वसुगुप्त के लिए यह **प्रश्न** कठिन नहीं है। महाराज नंद के **वसंतोत्सव**[2] में **'अनंग क्रीड़ा'**[3] का आयोजन हुआ था?

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री!

चाणक्य : और तुम उसमें सम्मिलित हुए थे। तब तो तुम जानते ही होगे कि सुंदरियों के नेत्रों से अधिक अधरों में मादकता होती है। होती है न, समाहर्त्ता? (तीव्र स्वर में) उत्तर दो!

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री!

चाणक्य : तो जो आसव सुंदरियाँ अपने अधरों से लगाकर देती है उसमें और भी अधिक मादकता होती है? (तीव्र स्वर में) उत्तर दो!

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री!

चाणक्य : अब मुझे तुमसे कोई प्रश्न नहीं पूछना। तुमसे इतने प्रश्न पूछकर मैंने तुम्हें जो कष्ट दिया है, उसके लिए मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। और वह पुरस्कार यह है कि तुम राजनर्तकी अलका के अधरों से स्पर्श किये गये मादक आसव का एक घूँट···

अलका : (विह्वल होकर) क्षमा कीजिये महामंत्री! मैं आसव का स्पर्श नहीं करूँगी। आज तक न मैंने आसव-पान किया है और न पान कराया है। मैं क्षमा की भीख माँगती हूँ, महामंत्री!

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव में पुरस्कार मिलता है, देवी! भीख नहीं। (पुकारकर) सैनिक! (सैनिक का प्रवेश) आसव का एक **चषक**[4] उपस्थित करो।

सैनिक : जो आज्ञा! (प्रस्थान)

अलका : (बिलखकर) महामंत्री, मेरा जीवन अभिशाप से परिपूर्ण है। मैं राजनर्तकी बनकर नारी भी नहीं रह पायी। मैं संसार की सबसे बड़ी विडंबना हूँ, मैं पाप की कालिमा हूँ, मैं **रौरव**[5] की ज्वाला हूँ! मैं···मैं···

चाणक्य : नहीं देवी! तुम महाराज नंद की राजनर्तकी हो! अनिंद्य सुंदरी, कलापूर्ण नृत्य की सम्राज्ञी! हाँ, मुझे दुख है कि तुम्हारा जीवन···(सैनिक चषक लेकर आता है) क्या ले आये चषक? हाँ, मैं अपने साथ ही तो लाया था आसव और चषक! लो तुम इसका पान करो, राजनर्तकी!

अलका : महामंत्री! मुझे आसव-पान न कराओ, मुझे विष दे दो! भयानक हलाहल दे दो! उससे शांति मिलेगी। मेरी जिह्वा पर **सर्प-दंशन**[6] चाहिए, सर्प-दंशन! सर्प-दंशन, महामंत्री!

चाणक्य : सर्प-दंशन तुम्हें नहीं चाहिए, राजनर्तकी! किसी और को चाहिए। (सैनिक से) सैनिक! बलपूर्वक यह आसव राजनर्तकी को पान कराओ! (सैनिक राजनर्तकी को बलपूर्वक आसव-पान कराता है। अनिच्छापूर्ण लड़खड़ाती हुई साँस में मदिरा-पान करने की आवाज) बस रहने दो! (सैनिक राजनर्तकी के अधरों से चषक हटाता है) अब यह आसव राजनर्तकी के अधरों को छूकर और भी मादक बन गया। अब कौमुदी महोत्सव के समाहर्त्ता वसुगुप्त को उनका पुरस्कार चाहिये। सैनिक! यह शेष आसव समाहर्त्ता वसुगुप्त पान करेंगे।

वसुगुप्त : सम्राट्! मेरी रक्षा कीजिये। मैं यह आसव-पान नहीं करूँगा, नहीं करूँगा!

चाणक्य : सैनिक! वसुगुप्त को शेष आसव बलपूर्वक पान कराओ!

(सैनिक बलपूर्वक आसव-पान कराते हैं। घुटते कंठ की आवाज।)

वसुगुप्त : (लड़खड़ाते शब्दों में) ओह! घोर···हलाहल···आग की···ज्वाला! सर्प दंशन··· सर्प···दंशन···महामंत्री चाणक्य! तुम राजमंत्री···राक्षस···विजयी···हुए। कौमुदी···महो···त्सव··· नहीं···हो···सका। अलका···मुझे···क्षमा। कौमुदी···महो···त्सव···कौमुदी···म···हो···त्स···व··· (प्राण छूट जाते हैं)।

रहस्योद्घाटन

चंद्रगुप्त : ओह विषकन्या! राजनर्तकी विषकन्या है! अधरों से स्पर्श किया गया आसव हलाहल···बन गया! समाहर्त्ता···

चाणक्य : समाहर्त्ता अब इस संसार में नहीं है, चंद्रगुप्त! अब अलका···

अलका : सम्राट्! क्षमा कीजिये! महामंत्री, प्राणों की भिक्षा दीजिये! मैं निर्दोष हूँ, मैं निर्दोष हूँ! सम्राट्! मैं आपके चरण चूम-कर···(चरणों पर गिरने के लिए आगे बढ़ती है)

चरम सीमा

चाणक्य : पीछे हटो! पीछे हटो चंद्रगुप्त! (चंद्रगुप्त पीछे हटते हैं) यह तुम्हारे पैरों में अपने दांत चुभाकर तुम्हें मृत्यु-मुख में ढकेल देगी। यह इसका अंतिम प्रयोग है। नारी रूप में भयानक सर्पिणी विषकन्या! राजमंत्री राक्षस ने कौमुदी महोत्सव का प्रस्ताव वसुगुप्त से कराकर असावधान चंद्रगुप्त को विषकन्या के प्रयोग से नष्ट करने की चाल सोची थी। सैनिकों! राजनर्तकी को बंदी करो। इसका प्रयोग शत्रु पर किया जायेगा। (सैनिक राजनर्तकी को बंदी करते हैं) समाहर्त्ता वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर था और राजनर्तकी अलका विषकन्या! इस सत्य का उद्घाटन मैंने

---

1 पारंगत—पूर्णज्ञान प्राप्त,निपुण, 2 वसंतोत्सव—प्राचीन समय में वसंत ऋतु में प्रायः प्रतिदिन उत्सव मनाए जाते थे। वसंत के इस उत्सव को मदनोत्सव भी कहा जाता था। इस उत्सव में कामदेव की पूजा की जाती थी, 3 अनंग क्रीड़ा—मदनोत्सव (अनंग या मदन कामदेव को कहा जाता है), 4 चषक—मदिरा पीने का पात्र, 5 रौरव—कपट, भय, एक भीषण नरक, 6 सर्प-दंशन—साँप द्वारा काटना।

अपनी इच्छा से किया है और इस उद्घाटन के अनतंर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा! मेरा मार्ग छोड़ दो। हटो! तपोवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। चंद्रगुप्त! अपने विश्वासपात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का अंतिम संस्कार और कौमुदी महोत्सव का आयोजन दोनों साथ-साथ करो और अपना राज्य संभालो! (प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : (विह्वल स्वर में) आर्य चाणक्य! महामंत्री चाणक्य! चंद्रगुप्त को तुम्हारी आवश्यकता है महामंत्री चाणक्य के बिना यह राज्य नष्ट हो जायेगा, चंद्रगुप्त नष्ट हो जायेगा। महामंत्री चाणक्य! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा! (चाणक्य के पीछे शीघ्रता से जाते हैं। उनकी ध्वनि क्रमशः क्षीण होती सुनायी पड़ती है) कौमुदी महोत्सव नहीं होगा! ... कौमुदी महोत्सव नहीं होगा!! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा!!!

बोध प्रश्न 1

क) वसुगुप्त और यशोवर्मन के वार्तालाप में यशोवर्मन के निम्नलिखित वाक्य किस बात का संकेत करते हैं? सही (✓) या गलत (×) का निशान लगा कर उत्तर दीजिए।
"किन्तु आपको ज्ञात नहीं है कि महाराज नंद के मंत्री राक्षस की नीति छद्मवेश धारण कर चलती है। नंद नहीं है किंतु नंद के मंत्री तो हैं जो छिप कर कुसुमपुर के बाहर चले गये हैं।"

i) कुसुमपुर में चंद्रगुप्त के प्रति किसी प्रकार का द्वेष-भाव नहीं है।

ii) जनता में नंद के प्रति राजभक्ति पूरी तरह मौजूद है।

iii) लोग चंद्रगुप्त के प्रति आक्रोश व्यक्त करना चाहते हैं।

iv) चंद्रगुप्त के विरुद्ध षड्यंत्र हो सकता है।

ख) चंद्रगुप्त महोत्सव का आयोजन क्यों करना चाहता है? दो-तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

ग) चंद्रगुप्त उत्सव का व्यय-भार क्यों वहन करना चाहता है?

....

....

....

घ) यशोवर्मन यह क्यों कहता है कि वसुगुप्त की समाहर्त्ता पद पर नियुक्ति के संबंध में पहले चाणक्य से पूछ लिया जाना चाहिए था?

....

....

....

बोध प्रश्न-2

क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर उनके सामने दिए गए स्थान पर दीजिए।

i) वसुगुप्त कौमुदी-महोत्सव में राजनर्तकी के नृत्य की व्यवस्था क्यों करना चाहता है?

....

....

ii) चाणक्य के अचानक प्रवेश और राजनर्तकी को पुरस्कार न देने की आज्ञा देने पर चंद्रगुप्त की क्या प्रतिक्रिया होती है?

....

....

....

....

नृत्य समारोह में आचार्य चाणक्य की उपस्थिति आवश्यक है। सम्राट की आज्ञा से अलका नृत्य और गीत प्रस्तुत करती हैं। चंद्रगुप्त नृत्य से प्रसन्न होकर अपने गले से मोतियों की माला उतार कर अलका को पुरस्कार देना चाहता है किंतु उसी समय चाणक्य आ जाता है और घोषणा करता है कि पुरस्कार नहीं दिया जाएगा। वह चंद्रगुप्त को सावधान करता है कि वह यह न समझे कि समस्त विरोधों का अंत हो चुका है। तभी चाणक्य अपने साथ आये सैनिकों को आदेश देता है कि राजनर्तकी अलका तथा समाहर्त्ता वसुगुप्त को बंदी बनाया जाये। चंद्रगुप्त, वसुगुप्त और अलका के विरोध के बावजूद वे बंदी बनाये जाते हैं। चाणक्य सूचना देते हैं कि कौमुदी महोत्सव की घोषणा रद्द कर दी गई है। चंद्रगुप्त इसे राजमर्यादा की अवहेलना मानता है किंतु चाणक्य का मत है कि यह राजाज्ञा किसी मचले हुए बालक की हठ की तरह है, और यदि कोई बालक हठ करके आग पकड़ना चाहता है तो उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकती। चंद्रगुप्त समझता है कि चाणक्य को चंद्रगुप्त के आनंद और ऐश्वर्य से ईर्ष्या है। चंद्रगुप्त को अपने शौर्य और पराक्रम पर अत्यधिक विश्वास है। वह चाणक्य का अपमान कर देता है। चाणक्य महामंत्री पद से त्याग-पत्र देते हैं और सम्राट द्वारा दिया गया अस्त्र फेंक देता है। किंतु इसके बाद भी चंद्रगुप्त को चेतावनी देते हैं कि कौमुदी महोत्सव के माध्यम से चंद्रगुप्त अमंगल को निमंत्रण दे रहे हैं। वे अपना शत्रु और मित्र पहचानने में भूल कर रहे हैं। शत्रु के गुप्तचरों और विषकन्याओं पर भरोसा करके शीघ्र ही अपना अंत बुलाना चाहते हैं। किंतु चंद्रगुप्त इसे अब भी चाणक्य के अविश्वासी स्वभाव का भ्रम मानते हैं और कहते हैं कि यदि वसुगुप्त और अलका पर लगाया गया लांछन झूठ निकला तो सम्राट अपने महामंत्री चाणक्य को भी दंड देने में न चूकेंगे। अंत में चाणक्य सिद्ध कर देते हैं कि अलका विषकन्या है और वसुगुप्त नंद के मंत्री राक्षस का गुप्तचर। राक्षस ने वसुगुप्त के सहयोग से विषकन्या का प्रयोग करके चंद्रगुप्त का जीवन समाप्त करने की योजना बनाई है और चंद्रगुप्त असावधान होकर अपने अंत को निमंत्रण दे रहे हैं। अलका द्वारा झूठी की गई मदिरा का पान वसुगुप्त को जबरदस्ती आसव पान कराया जाता है वसुगुप्त तुरंत ही मर जाता है। अलका चंद्रगुप्त के पैरों में विषदंत चुभा कर उसे मारना चाहती है, किंतु चाणक्य चंद्रगुप्त को सावधान करके बचा लेते हैं और मंत्री पद त्याग कर तुरंत ही तपोवन में जाना चाहते हैं। किंतु चंद्रगुप्त उनसे अनुरोध करते हैं कि चाणक्य के बिना चंद्रगुप्त तथा राज्य की रक्षा असंभव है, इसलिए चाणक्य न जाएँ। साथ-साथ यह घोषणा भी करते हैं कि कौमुदी महोत्सव का आयोजन नहीं किया जाएगा।

19.4 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1

"समाहर्ता वसुगुप्त कुसुमपुरी का वैभव मैंने देखा। मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध भैरवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिये हैं और वह सन्यासिनी हो गई है। नगर की शोभा मलीन है जैसे तलवार की झंकार वायु में विलीन हो गई है। नागरिकों का यह उल्लास श्रृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है। नागरिकों से कहला दो कि अब वे अपने घर चले जावें।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ डा. रामकुमार वर्मा के एकांकी "कौमुदी महोत्सव" से ली गई हैं। कौमुदी महोत्सव डॉ. वर्मा का ऐतिहासिक एकांकी है। यह प्राचीन भारतीय इतिहास के मौर्यकाल से संबंधित है। नंद वंश के अंत के पश्चात् चंद्रगुप्त मौर्य कुसुमपुर की गद्दी पर बैठा। प्रस्तुत एकांकी में वर्मा जी ने इतिहास को आधार बनाते हुए कल्पना का सहारा लिया है यानी इतिहास की मूल घटना और प्रमुख पात्र तो लिये हैं साथ ही उस घटना से संबंधित कुछ संभावित पात्रों और घटनाओं की कल्पना की है।

प्रसंग : सम्राट चंद्रगुप्त के कुसुमपुर में प्रवेश के समय कुसुमपुर की जनता में काफी उत्साह दिखाई देता है। चारों ओर इतना कोलाहल है कि बात नहीं सुनाई देती। जनता पुष्पहार उछालकर उनका स्वागत करती है चंद्रगुप्त का पूरा व्यक्तित्व शौर्य और पराक्रम की प्रतिमूर्ति बना हुआ है। राजकक्ष में प्रदेश करने पर अंतपाल यशोवर्मन और समाहर्त्ता वसुगुप्त उनका स्वागत करते हैं। कुसुमपुर नगर और वहाँ की जनता के संबंध में चंद्रगुप्त ये वाक्य समाहर्त्ता वसुगुप्त से कहते हैं।

व्याख्या : कुसुमपुर नगर के ऐश्वर्य को देखकर ऐसा लगता है कि युद्ध भैरवी यानी युद्ध की देवी ने गेरुआ वस्त्र पहन कर सन्यास धारण कर लिया है। नंद शासक विलासी थे। वे न तो जन सामान्य के हित की चिंता करते थे और न ही जन कल्याण के लिए युद्ध करने में अपना गौरव समझते थे। जिस देश का शासक निरंकुश और विलासी हो वहाँ की जनता में भी शौर्य और

अपनी इच्छा से किया है और इस उद्घाटन के अनतंर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा! मेरा मार्ग छोड़ दो। हटो! तपोवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। चंद्रगुप्त! अपने विश्वासपात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का अंतिम संस्कार और कौमुदी महोत्सव का आयोजन दोनों साथ-साथ करो और अपना राज्य संभालो! (प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : (विह्वल स्वर में) आर्य चाणक्य! महामंत्री चाणक्य! चंद्रगुप्त को तुम्हारी आवश्यकता है महामंत्री चाणक्य के बिना यह राज्य नष्ट हो जायेगा, चंद्रगुप्त नष्ट हो जायेगा। महामंत्री चाणक्य! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा! (चाणक्य के पीछे शीघ्रता से जाते हैं। उनकी ध्वनि क्रमशः क्षीण होती सुनायी पड़ती है) कौमुदी महोत्सव नहीं होगा! ··· कौमुदी महोत्सव नहीं होगा!! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा!!!

बोध प्रश्न 1

क) वसुगुप्त और यशोवर्मन के वार्तालाप में यशोवर्मन के निम्नलिखित वाक्य किस बात का संकेत करते हैं? सही (✓) या गलत (×) का निशान लगा कर उत्तर दीजिए।
"किन्तु आपको ज्ञात नहीं है कि महाराज नंद के मंत्री राक्षस की नीति छद्मवेश धारण कर चलती है। नंद नहीं है किंतु नंद के मंत्री तो हैं जो छिप कर कुसुमपुर के बाहर चले गये हैं।"

i) कुसुमपुर में चंद्रगुप्त के प्रति किसी प्रकार का द्वेष-भाव नहीं है।

ii) जनता में नंद के प्रति राजभक्ति पूरी तरह मौजूद है।

iii) लोग चंद्रगुप्त के प्रति आक्रोश व्यक्त करना चाहते हैं।

iv) चंद्रगुप्त के विरुद्ध षड्यंत्र हो सकता है।

ख) चंद्रगुप्त महोत्सव का आयोजन क्यों करना चाहता है? दो-तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

ग) चंद्रगुप्त उत्सव का व्यय-भार क्यों वहन करना चाहता है?

....

....

....

घ) यशोवर्मन यह क्यों कहता है कि वसुगुप्त की समाहर्त्ता पद पर नियुक्ति के संबंध में पहले चाणक्य से पूछ लिया जाना चाहिए था?

....

....

....

बोध प्रश्न-2

क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर उनके सामने दिए गए स्थान पर दीजिए।

i) वसुगुप्त कौमुदी-महोत्सव में राजनर्तकी के नृत्य की व्यवस्था क्यों करना चाहता है?

....

....

ii) चाणक्य के अचानक प्रवेश और राजनर्तकी को पुरस्कार न देने की आज्ञा देने पर चंद्रगुप्त की क्या प्रतिक्रिया होती है?

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित के बारे में अधिक से अधिक लगभग बीस शब्दों में बताइए

i) राक्षस

ii) विषकन्या

iii) राजकोष

iv) राजनर्तकी

ग) चंद्रगुप्त को कुसुमपुर के नागरिकों का उल्लास श्रृगालों का कोलाहल क्यों प्रतीत होता है?

i) उनमें उत्साह की कमी के कारण

ii) उनमें बहुत अधिक उत्साह के कारण

iii) उनमें वीरता और शौर्य की कमी के कारण

घ) चाणक्य द्वारा कौमुदी महोत्सव में हस्तक्षेप किस बात का सूचक है?

i) उनकी दूर दृष्टि का

ii) उत्सवों के प्रति उनकी उदासीनता का

iii) ऊपर से अनुकूल दिखाई देने वाली परिस्थितियों के पीछे चल रहे दुष्चक्रों को देखने की क्षमता का

iv) चंद्रगुप्त से ईर्ष्या का

बोध प्रश्न 3

क) अधिक से अधिक दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए

i) चाणक्य अलका और वसुगुप्त को बंदी बनाने का आदेश सैनिकों को क्यों देता है?

....

....

ii) चंद्रगुप्त को चाणक्य का यह व्यवहार क्यों पसंद नहीं आता?

....

....

iii) चाणक्य महामंत्री पद क्यों त्याग देता है?

....

....

ख) नीचे कुछ वाक्य दिए जा रहे हैं वे मूल पाठ से लिए गए हैं। उनमें से प्रत्येक के बारे में बताइए कि वह किस पात्र के वाक्य हैं और उसने वह वाक्य क्यों कहा हैं?

i) 'वसुगुप्त! तुम्हारी प्रशंसा अतिशयोक्तियों से भरी होती है। इतनी प्रशंसा सुनकर मुझे कभी-कभी संदेह होने लगता है।'

....

....

....

....

....

ii) 'विलासी नंद-वंश की राजनीति में यह राजनर्तकी अलका है।'

....

....

....

....

....

iii) 'आग बुझ जाने पर भी आग की राख गर्म रहती है तुम उसे हाथ में नहीं रख सकते।

....

....

....

....

....

iv) 'आज मैं अपने सृष्टि-सागर का विष पी रहा हूँ।'

....

....

....

....

....

v) राजनर्तकी बन कर मैं नारी भी नहीं रह पाई।'

....

....

....

....

....

vi) 'अपने विश्वासपात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का अंतिम संस्कार और कौमुदी-महोत्सव का आयोजन दोनों साथ-साथ करो और अपना राज्य सँभालो।'

....

....

....

....

19.3 एकांकी का सार

एकांकी का आरंभ कुसुमपुर के नये समाहर्ता वसुगुप्त और अंतपाल यशोवर्मन के वार्तालाप के साथ होता है। वे सम्राट चंद्रगुप्त के कुसुमपुर में आगमन के समय जनता के उल्लास और उत्साह की चर्चा करते हैं। यद्यपि यशोवर्मन को संदेह है कि जनता में ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिनमें नंद के प्रति स्वामिभक्ति हो तथा जो चंद्रगुप्त के विरोधी हों। फिर सम्राट और कार्यांतिक पुष्पदंत का प्रवेश होता है। चंद्रगुप्त को कुसुमपुर की जनता के व्यवहार में शौर्य और तेजस्विता का अभाव दिखायी देता है। नंद की विलासिता और अराजकतापूर्ण शासन के स्थान पर चंद्रगुप्त सुशासन की व्यवस्था और जनता के सुख-संपन्नता को स्थापित करना चाहता है। इसकी शुरुआत वह कौमुदी महोत्सव नामक राजनीतिक पर्व के आयोजन से करना चाहता है जिसमें शासक वर्ग तथा जन सामान्य सामूहिक रूप से भाग लेंगे। उसका मानना है कि इससे नंद वंश के संहार के बाद जनता के मन में उत्पन्न भावों को दूर किया जा सकेगा और जनता में नये शासक के प्रति श्रद्धा और भक्ति भाव उत्पन्न हो सकेगा। इसीलिए वह कुसुमपुर नगर की अपूर्व सजावट के आदेश देता है। साथ ही इस महोत्सव पर होने वाले संपूर्ण व्यय का वहन स्वयं करना चाहता है।

समाहर्त्ता वसुगुप्त इस अवसर पर राजनर्तकी के नृत्य के आयोजन का प्रस्ताव रखता है जिसे चंद्रगुप्त स्वीकार कर लेता है और अनिंद्य सुंदरी नर्तकी अलका को देखना चाहता है। यशोवर्मन संकेत देकर चंद्रगुप्त को सावधान करना चाहता है कि विलासी नंद वंश की राजनीति में राजनर्तकी अलका की महत्वपूर्ण भूमिका है। किंतु नंद के आश्रितों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करके चंद्रगुप्त जनता का विश्वास जीतना चाहता है। यशोवर्मन फिर भी कहता है कि

नृत्य समारोह में आचार्य चाणक्य की उपस्थिति आवश्यक है। सम्राट की आज्ञा से अलका नृत्य और गीत प्रस्तुत करती हैं। चंद्रगुप्त नृत्य से प्रसन्न होकर अपने गले से मोतियों की माला उतार कर अलका को पुरस्कार देना चाहता है किंतु उसी समय चाणक्य आ जाता है और घोषणा करता है कि पुरस्कार नहीं दिया जाएगा। वह चंद्रगुप्त को सावधान करता है कि वह यह न समझे कि समस्त विरोधों का अंत हो चुका है। तभी चाणक्य अपने साथ आये सैनिकों को आदेश देता है कि राजनर्तकी अलका तथा समाहर्त्ता वसुगुप्त को बंदी बनाया जाये। चंद्रगुप्त, वसुगुप्त और अलका के विरोध के बावजूद वे बंदी बनाये जाते हैं। चाणक्य सूचना देते हैं कि कौमुदी महोत्सव की घोषणा रद्द कर दी गई है। चंद्रगुप्त इसे राजमर्यादा की अवहेलना मानता है किंतु चाणक्य का मत है कि यह राजाज्ञा किसी मचले हुए बालक की हठ की तरह है, और यदि कोई बालक हठ करके आग पकड़ना चाहता है तो उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकती। चंद्रगुप्त समझता है कि चाणक्य को चंद्रगुप्त के आनंद और ऐश्वर्य से ईर्ष्या है। चंद्रगुप्त को अपने शौर्य और पराक्रम पर अत्यधिक विश्वास है। वह चाणक्य का अपमान कर देता है। चाणक्य महामंत्री पद से त्याग-पत्र देते हैं और सम्राट द्वारा दिया गया अस्त्र फेंक देता है। किंतु इसके बाद भी चंद्रगुप्त को चेतावनी देते हैं कि कौमुदी महोत्सव के माध्यम से चंद्रगुप्त अमंगल को निमंत्रण दे रहे हैं। वे अपना शत्रु और मित्र पहचानने में भूल कर रहे हैं। शत्रु के गुप्तचरों और विषकन्याओं पर भरोसा करके शीघ्र ही अपना अंत बुलाना चाहते हैं। किंतु चंद्रगुप्त इसे अब भी चाणक्य के अविश्वासी स्वभाव का भ्रम मानते हैं और कहते हैं कि यदि वसुगुप्त और अलका पर लगाया गया लांछन झूठ निकला तो सम्राट अपने महामंत्री चाणक्य को भी दंड देने में न चूकेंगे। अंत में चाणक्य सिद्ध कर देते हैं कि अलका विषकन्या है और वसुगुप्त नंद के मंत्री राक्षस का गुप्तचर। राक्षस ने वसुगुप्त के सहयोग से विषकन्या का प्रयोग करके चंद्रगुप्त का जीवन समाप्त करने की योजना बनाई है और चंद्रगुप्त असावधान होकर अपने अंत को निमंत्रण दे रहे हैं। अलका द्वारा झूठी की गई मदिरा का पान वसुगुप्त को जबरदस्ती आसव पान कराया जाता है वसुगुप्त तुरंत ही मर जाता है। अलका चंद्रगुप्त के पैरों में विषदंत चुभा कर उसे मारना चाहती है, किंतु चाणक्य चंद्रगुप्त को सावधान करके बचा लेते हैं और मंत्री पद त्याग कर तुरंत ही तपोवन में जाना चाहते हैं। किंतु चंद्रगुप्त उनसे अनुरोध करते हैं कि चाणक्य के बिना चंद्रगुप्त तथा राज्य की रक्षा असंभव है, इसलिए चाणक्य न जाएँ। साथ-साथ यह घोषणा भी करते हैं कि कौमुदी महोत्सव का आयोजन नहीं किया जाएगा।

19.4 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1

"समाहर्ता वसुगुप्त कुसुमपुरी का वैभव मैंने देखा। मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध भैरवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिये हैं और वह सन्यासिनी हो गई है। नगर की शोभा मलीन है जैसे तलवार की झंकार वायु में विलीन हो गई है। नागरिकों का यह उल्लास श्रृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है। नागरिकों से कहना कि अब वे अपने घर चले जावें।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ डा. रामकुमार वर्मा के एकांकी "कौमुदी महोत्सव" से ली गई हैं। कौमुदी महोत्सव डॉ. वर्मा का ऐतिहासिक एकांकी है। यह प्राचीन भारतीय इतिहास के मौर्यकाल से संबंधित है। नंद वंश के अंत के पश्चात् चंद्रगुप्त मौर्य कुसुमपुर की गद्दी पर बैठा। प्रस्तुत एकांकी में वर्मा जी ने इतिहास को आधार बनाते हुए कल्पना का सहारा लिया है यानी इतिहास की मूल घटना और प्रमुख पात्र तो लिये हैं साथ ही उस घटना से संबंधित कुछ संभावित पात्रों और घटनाओं की कल्पना की है।

प्रसंग : सम्राट चंद्रगुप्त के कुसुमपुर में प्रवेश के समय कुसुमपुर की जनता में काफी उत्साह दिखाई देता है। चारों ओर इतना कोलाहल है कि बात नहीं सुनाई देती। जनता पुष्पहार उछालकर उनका स्वागत करती है चंद्रगुप्त का पूरा व्यक्तित्व शौर्य और पराक्रम की प्रतिमूर्ति बना हुआ है। राजकक्ष में प्रवेश करने पर अंतपाल यशोवर्मन और समाहर्त्ता वसुगुप्त उनका स्वागत करते हैं। कुसुमपुर नगर और वहाँ की जनता के संबंध में चंद्रगुप्त ये वाक्य समाहर्त्ता वसुगुप्त से कहते हैं।

व्याख्या : कुसुमपुर नगर के ऐश्वर्य को देखकर ऐसा लगता है कि युद्ध भैरवी यानी युद्ध की देवी ने गेरुआ वस्त्र पहन कर सन्यास धारण कर लिया है। नंद शासक विलासी थे। वे न तो जन सामान्य के हित की चिंता करते थे और न ही जन कल्याण के लिए युद्ध करने में अपना गौरव समझते थे। जिस देश का शासक निरंकुश और विलासी हो वहाँ की जनता में भी शौर्य और

वीरता का अक्सर अभाव होता है क्योंकि शासक अपना समय, शक्ति और साधन भोग-विलास के साधन जुटाने में लगा रहता है वह जनता में श्रेष्ठ मनोभावों के विकास का प्रयत्न ही नहीं करता। अतः न तो ऐसे देश में ज्ञान और बुद्धि का विकास हो पाता है न ही वीरता और पराक्रम का। वहाँ मानवीय गुणों की बजाय कायरता विकसित होती है। इसीलिए चंद्रगुप्त कहते हैं कि नंद के द्वारा शासित देश को देख कर लगता है कि रण चंडी दुर्गा ने मानो गेरुआ वस्त्र पहन कर सन्यास धारण कर लिया है अर्थात् यहाँ के लोगों में न तो युद्ध के प्रति उत्साह है न ही वीरता का तेज। वे अन्याय और अत्याचार के विरोध के लिये तलवार उठाने की बजाय अन्याय और अत्याचार सहते रहते हैं। किंतु वीरता और शौर्य के बिना कोई भी वैभव-विलास सुन्दर नहीं लग सकता। इसीलिए चंद्रगुप्त कहते हैं कि तलवार की झंकार के बिना नगर की शोभा मलीन है और ऐसा लगता है कि तलवार की झंकार हवा में खो गई है यानी कहीं भी वीरता के कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ते। सम्राट के आगमन के समय उनके स्वागत में नागरिकों की प्रसन्नता और उमंग का व्यवहार भी गीदड़ों के शोर जैसा लग रहा है। उनमें वीरता के तेज के स्थान पर कायरता और पशुता दिखाई देती है जिसे मनुष्यता प्रदान करने की जरूरत है। मनुष्यता प्रदान करने का यहाँ अर्थ है कि श्रेष्ठ मानवीय गुणों का समावेश करना अर्थात् बुद्धि, विद्या, धैर्य, वीरता आदि गुणों का विकास करना। एक जिम्मेदार शासक की यह पहचान होती है कि वह अपनी जनता के हित का ध्यान रखे। न केवल उसकी रक्षा करें बल्कि उसके कल्याण और विकास का प्रयास भी करें। अतः चंद्रगुप्त द्वारा मनुष्यता के विकास की इच्छा जिम्मेदार शासक की इच्छा है। अंत में चंद्रगुप्त आज्ञा देते हैं कि लोगों से कह दिया जाये कि वे अपने घर जाएँ।

विशेष :

1 ऐतिहासिक नाटक होने के कारण भाषा संस्कृतनिष्ठ है।
2 इन वाक्यों से चंद्रगुप्त के पराक्रमी और उत्तरदायी शासक होने की झलक मिलती है।
3 भैरवी—भैरवी देवी दुर्गा का एक नाम है। दुर्गा को रणचंडी भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि दुष्टों का दमन करने के लिए दुर्गा युद्ध भूमि में पधारती है और रणचंडी रूप धारण करती है। यहाँ युद्ध भैरवी शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि युद्ध की आवश्यकता अत्याचारियों और दुष्टों का अंत करने के लिए होती है केवल शौर्य प्रदर्शन या रक्त बहाने मात्र के लिए नहीं।

उद्धरण 2

"चंद्रगुप्त! प्रजा के संस्कार जल्दी नहीं छूटते। इस समय भी महाराज नंद से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति कुसुमपुर में विद्रोह की लपटों के स्फुलिंग बने हुए हैं राजमंत्री राक्षस कुसुमपुर के नागरिकों में अविश्वास के बीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है। कुसुमपुर के समस्त कार्यों में षड्यंत्र का जाल जयकार के छद्मवेश में चारों ओर घूम रहा है और तुम कौमुदी महोत्सव में असावधान हो कर विषकन्या का स्पर्श करना चाहते हो। चंद्रगुप्त! मैं अपने निस्पृह नेत्रों से सब कुछ देख रहा हूँ और तुम देख कर भी कौमुदी महोत्सव की शीतलता में हलाहल पान करने जा रहे हो।"

संदर्भ : (पिछले उद्धरण की भाँति)

प्रसंग : चंद्रगुप्त कौमुदी महोत्सव के आयोजन की घोषणा कर देते हैं। समाहर्त्ता वसुगुप्त इस अवसर पर राजनर्तकी अलका के नृत्य का प्रस्ताव रखता है। अंतपाल यशोवर्मन द्वारा विरोध के बावजूद यह प्रस्ताव चंद्रगुप्त स्वीकार कर लेता है। अलका के नृत्य और गायन पर प्रसन्न होकर चंद्रगुप्त उसे मोतियों का हार पुरस्कार के रूप में देना चाहता है। सहसा उसी समय महामंत्री आचार्य चाणक्य का प्रवेश होता है और वह घोषणा करता है कि पुरस्कार नहीं दिया जाएगा। यह भी बताता है कि उसने कौमुदी महोत्सव न मनाये जाने की घोषणा कर दी है। वह सैनिकों को आदेश देता है कि अलका को बंदी बनाया जाए। चंद्रगुप्त को चाणक्य का यह व्यवहार राजाज्ञा अवहेलना तथा राजा के प्रति अपमानपूर्ण प्रतीत होता है। वह चाणक्य की भर्त्सना करता है। इस पर चाणक्य अत्यंत खिन्न होकर महामंत्री का पद त्याग देता है किंतु वह चंद्रगुप्त को चेतावनी देता है कि कुसुमपुर में सम्राट के विरुद्ध षड्यंत्र चल रहे हैं। चंद्रगुप्त चाणक्य की इस बात का कारण ईर्ष्या और द्वेष समझता है और घोषणा करता है कि यदि चाणक्य का यह आरोप गलत सिद्ध हुआ कि वसुगुप्त शत्रु का गुप्तचर है और अलका विषकन्या है, तो उसे दंड दिया जाएगा। चाणक्य का कहना है कि अपने कथन का प्रमाण उपस्थित करने के बाद वह तुरंत वहाँ से चला जाएगा। चाणक्य की सहायता से चंद्रगुप्त मौर्य साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ और चाणक्य अब भी उनका हितैषी है इसीलिए वह चंद्रगुप्त को सावधान करता है कि वह सही स्थिति को देखने में भूल कर रहा है और कहता है—

व्याख्या : कुसुमपुर पर अब तक नंद का शासन था। यहाँ की जनता में नंद के प्रति राजभक्ति

होना स्वाभाविक है। अब चंद्रगुप्त के सम्राट बन जाने पर जनता चंद्रगुप्त को पसंद तो कर सकती है किंतु चंद्रगुप्त के प्रति पूर्ण राजभक्ति उत्पन्न होने में थोड़ा समय लग सकता है। प्रजा के संस्कार जल्दी नहीं छूटते यानी उसकी मानसिक बनावट, उसके सोचने समझने के ढंग को बदलने में या नये शासक के प्रति निष्ठा उत्पन्न होने में समय लगता है। चंद्रगुप्त ने नंद को समाप्त किया है अतः कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं कि जो चंद्रगुप्त के इस कार्य से अप्रसन्न हो। इस समय भी कुछ लोगों में नंद के प्रति सहानुभूति है और वे चंद्रगुप्त के प्रति विद्रोह का स्फुलिंग यानी चिनगारी बने हुए हैं। चिनगारी अवसर पाते ही लपट का रूप धारण कर लेती है। इसी तरह ये लोग भी अवसर पाते ही विद्रोह कर सकते हैं और चंद्रगुप्त से बदला ले सकते हैं। नंद का राजमंत्री राक्षस नागरिकों के हृदय में मौजूद अविश्वास के बीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है, अर्थात नागरिकों के मन में जो विद्रोह का बीज है उसे अपनी नीति के बल पर आगे बढ़ाने का काम कर रहा है। ज़मीन में बीज मौजूद हो और उसे अनुकूल जल तथा खाद मिलें तो उसके अंकुरित होने की पूरी संभावना होती है। अविश्वास का बीज नीति का जल पाकर आसानी से अंकुरित हो सकता है। नंद का राज मंत्री राक्षस राजनीति और कूटनीति में निपुण है अतः वह जनता के हृदय में मौजूद अविश्वास को विद्रोह में बदलने में आसानी से सफल हो सकता है। कुसुमपुर की जनता में उत्साह दिखाई देता है, सभी ओर से सम्राट की जयकार सुनाई देती है किंतु यह सच्ची नहीं है। सभी कार्यों में षड्यंत्र विद्यमान है जो इस जयकार की आड़ में छिपा हुआ है। षड्यंत्र ने मानो जयकार का छद्मवेश धारण कर लिया है। इसलिए असलियत सम्राट को दिखाई नहीं देती। कौमुदी महोत्सव के हर्षोल्लास के बीच असावधान होकर सम्राट विषकन्या का स्पर्श कर लेना चाहता है। चाणक्य कहता है कि उसे किसी तरह का लोभ नहीं है इसलिए उसकी आँखें वास्तविकता को देख पा रही हैं। किंतु चंद्रगुप्त देखकर भी अनदेखी कर रहा है। वह हर्ष और उत्साह भरी जयकार के पीछे छिपे षड्यंत्रों को देखना या महसूस करना नहीं चाह रहा और कौमुदी महोत्सव के आनंद उल्लास की शीतलता में इतना तल्लीन है कि राजनर्तकी के रूप में विषकन्या को पहचानना ही नहीं चाह रहा। इस तरह जान बूझकर हलाहल या विष पीने को तत्पर है।

विशेष :

1 इन पंक्तियों से चाणक्य की दूरदर्शिता का—जो सामने दिखाई देता है उसके पीछे जो कुछ हो रहा है उसे देखने की शक्ति का, परिचय मिलता है।

2 इस उद्धरण में ऐतिहासिक परंपरागत संदर्भ भी आया है जैसे—ऐसा माना जाता है कि विषकन्या प्राचीन राजनीति का अंग होती थी। राजा अपने शत्रु के लिए उनका प्रयोग करते थे। विष कन्या ऐसी स्त्री होती है जिसमें विष का प्रवेश इस आशय से करा दिया जाता है कि उसका स्पर्श करने वाला या उसके साथ संभोग करने वाला व्यक्ति तुरंत मर जाये।

3 भाषा संस्कृतनिष्ठ किंतु स्वाभाविक है।

नोट : यहाँ हमने दो उद्धरणों की व्याख्या दी है। उसी ढंग से आप इस एकांकी के अन्य अंशों की व्याख्या कर सकते हैं। आगे हम कुछ अन्य उद्धरण दे रहे हैं इनकी व्याख्या कीजिए।

अभ्यास

"राजनर्तकी तुम्हारा यह वार्तालाप महाराज नंद से नहीं हो रहा, सैनिक चंद्रगुप्त से हो रहा है। मुझे अपने चरणों की धूल वीरों की परंपरा के लिए छोड़नी है, राजनर्तकियों की परंपरा के लिए नहीं, किंतु मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। कुसुमपुर के नागरिकों को नृत्य की शिक्षा दो और उसका मंगलाचरण आज कौमुदी महोत्सव में तुम्हारे नृत्य से हो। नृत्य का प्रारंभ करो, जिससे कुसुमपुर का वायुमंडल तुम्हारे नूपुरों के स्वरों का वाहक बन कर कौमुदी महोत्सव का निमंत्रण प्रत्येक दिशा में पहुँचा दे।"

संदर्भ

एकांकी का नाम ....

....

लेखक का नाम ....

....

एकांकीकार का योगदान ....

....

एकांकी का प्रतिपाद्य ....

....

प्रसंग :

कौमुदी महोत्सव में राजनर्तकी के नृत्य का आयोजन

....

चंद्रगुप्त और अलका का वार्तालाप

....

व्याख्या :

सम्राट के रूप में नंद और चंद्रगुप्त के दृष्टिकोण में अंतर

....

....

जनता के सम्मुख वीरता का आदर्श स्थापित करना

....

....

कलाओं का समुचित स्थान

....

....

उत्सव के माध्यम से जन सामान्य में सद्भाव की स्थापना प्रयास

....

....

विशेष :

1 चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व की जानकारी

....

....

2 नंद का प्रसंग

....

....

3 "मंगलाचरण" शब्द का अर्थ, यहाँ उसके प्रयोग से तात्पर्य

....

....

4 भाषा (ऐतिहासिक विषय के संदर्भ में)

....

....

उद्धरण 2

मौर्य। लो अपना शस्त्र (फेंक देते हैं)। यह कलंक इसी समय दूर करता हूँ। राजमंत्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आने वाले चंद्रगुप्त। क्या मैं अपनी शिखा खोल कर विनाश की फिर प्रतिज्ञा करूँ? जिस ब्राह्मण की शिखा-सर्पिणी ने नंदवंश को एक ही दंशन में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है? जिस चंद्रगुप्त को अपना आत्मीय समझ कर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया, उसी चंद्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूँ?

संदर्भ : पहले उद्धरण की भाँति

....

....

....

....

प्रसंग : चाणक्य द्वारा कौमुदी महोत्सव रोक दिए जाने की घोषणा

....

....

चंद्रगुप्त का इस बात पर क्रोधित होना

....

....

चंद्रगुप्त द्वारा चाणक्य का अपमान

....

....

व्याख्या : महामंत्री पद को त्यागना

....

....

नंदवंश से अपमान का बदला लेने का प्रसंग और चंद्रगुप्त को चेतावनी

....

....

चंद्रगुप्त के प्रति क्रोध और स्नेह भाव दोनों के बीच द्वंद्व

....

....

विशेष :

1 नंद और चाणक्य की कथा का संदर्भ

....

....

चाणक्य का व्यक्तित्व-आत्म सम्मान और स्नेह भाव

....

....

भाषा (काव्यात्मक गद्य)

....

....

19.5 सारांश

इस इकाई में आपने कौमुदी महोत्सव एकांकी का वाचन किया। इसके अतिरिक्त एकांकीकार रामकुमार वर्मा का संक्षिप्त परिचय भी प्राप्त किया। अब आप 'कौमुदी महोत्सव' के कथावस्तु को अपने शब्दों में लिख सकते हैं। इसमें आए कठिन शब्दों का अर्थ समझते हैं। पाठ में आए विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों के विषय में आपको जानकारी मिल गई है। अब आप एकांकी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकते हैं और उन अंशों की शिल्पगत विशेषताएँ बता सकते हैं।

19.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) i) (×), ii) (×), iii) (×), iv) (√) ।

ख) नंद का शासन अराजकता और अत्याचार पर आधारित था। इस कारण जनता में असंतोष

या विद्वेष का भाव हो सकता था। सम्राट चंद्रगुप्त कौमुदी महोत्सव का आयोजन करके जनता में सद्भाव उत्पन्न करना चाहता है।

ग) जिससे कि जनता के मन में यह विश्वास पैदा हो जाए कि राजा जनता के धन यानी "राजकोष" का उपयोग शासन व्यवस्था पर करना चाहता है उत्सव त्यौहारों पर नहीं।

घ) यशोवर्मन को संदेह है कि वसुगुप्त नंद के मंत्री राक्षस के साथ मिल कर कोई षड्यंत्र रच सकता है। यदि चाणक्य से इस मामले में सलाह ली गई तो वह दूर दृष्टि से काम लेता और वसुगुप्त को समाहर्त्ता बनाने की राय न देता।

बोध प्रश्न 2

क) i) नंद का समर्थक होने के कारण वसुगुप्त चंद्रगुप्त का विरोधी है। कौमुदी महोत्सव में राजनर्तकी के रूप में विषकन्या को ला कर वह चंद्रगुप्त का अंत करना चाहता है।

ii) चंद्रगुप्त को वसुगुप्त अथवा अलका पर किसी प्रकार का संदेह नहीं है। अतः वह समझता है कि चाणक्य ने यह व्यवहार ईर्ष्या से प्रेरित होकर किया है। वह क्रोधित होकर चाणक्य का अपमान कर देता है।

ख) i) राक्षस नंद का मंत्री था और चंद्रगुप्त को समाप्त करना चाहता था।

ii) वह स्त्री जिसके शरीर में विष का प्रवेश इस उद्देश्य से कराया जाए कि उसके संसर्ग में आने वाले की मृत्यु हो जाए।

iii) राजा का कोष यानी सरकारी खजाना जो शासन और सेना की व्यवस्था तथा सार्वजनिक कार्यों पर व्यय के लिए होता है।

iv) संगीत, नृत्य आदि में निपुण स्त्री जो राजकीय उत्सवों पर या राजदरबार में नृत्य करती थी।

ग) iii)

घ) iii)

बोध प्रश्न 3

क) i) क्योंकि वह जानता है कि ये दोनों चंद्रगुप्त के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं।

ii) क्योंकि चंद्रगुप्त को सच्चाई का पता नहीं है।

iii) क्योंकि चंद्रगुप्त आक्रोश में आकर उनका अपमान कर देते हैं।

ख) i) यह चंद्रगुप्त का कथन है। चंद्रगुप्त कौमुदी महोत्सव के आयोजन पर कुसुमपुर नगर की बहुत सुंदर सजावट करना चाहता है। इसके ऊपर आने वाला व्यय वे राजकोष से न करके अपने चंद्रकोष से करना चाहता है। वसुगुप्त उनकी योजना की बहुत ही अधिक प्रशंसा करता है तभी वह चंद्रगुप्त को उसकी बात कहता है।

ii) यह यशोवर्मन का कथन है। यशोवर्मन को राक्षस तथा वसुगुप्त की योजना के बारे में संदेह है। इसलिए वह चंद्रगुप्त को चेतावनी देते हुए कहता है कि महोत्सव में राजनर्तकी के नृत्य को आयोजन के माध्यम से वसुगुप्त चंद्रगुप्त का अनिष्ट कर सकता है। वह अप्रत्यक्ष रूप से बताता है कि विलासी राजा नंद इस राजनर्तकी अलका को अपने राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयुक्त करता था।

iii) यह चाणक्य का कथन हैं। चंद्रगुप्त सोचता है कि चाणक्य ईर्ष्यावश कौमुदी महोत्सव का विरोध करता है किंतु चाणक्य चंद्रगुप्त के हितैषी हैं। वे उन्हें चेतावनी देता है कि नंद के अंत के बाद भी कुसुमपुर में चंद्रगुप्त के प्रति विरोध पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है और वहाँ के लोगों पर पूरी तरह विश्वास उसी ढंग से नहीं किया जा सकता जिस तरह कि आग के बुझ जाने पर गर्म राख को हथेली पर नहीं रखा जा सकता।

iv) यह चंद्रगुप्त का कथन है। चंद्रगुप्त द्वारा अपमानित किए जाने पर चाणक्य को बड़ा ही क्षोभ होता है। इसलिए वह कहता है कि उसने अपनी भरपूर सहायता देकर जिस चंद्रगुप्त को मगध का सम्राट बनाया वही उनके साथ कितना दुर्व्यवहार कर रहा है। अब भी वह चंद्रगुप्त का हितैषी है किंतु चंद्रगुप्त उसका सम्मान तक नहीं कर सका। उन्होंने जिस सागर की रचना की उससे निकलने वाला विष भी उसे ही पीना पड़ रहा है।

v) यह अलका का कथन है। जब चाणक्य आदेश देता है कि राजनर्तकी अलका के अधरों के स्पर्श किया गया आसव वसुगुप्त को पिलाया जाए तो अलका मदिरा पान करने से

इनकार करती है और कहती है कि राजनर्तकी बनकर वह केवल राजनीति की चालों का माध्यम बन गई है एक सामान्य स्त्री नहीं रही। वह अब विषकन्या है जिसका उपयोग केवल राजनीति के प्रयोजन से हो सकता है। वह चाहे भी तो सामान्य स्त्री का जीवन नहीं जी सकती।

vi) यह चाणक्य का कथन है। जब वसुगुप्त अलका की झूठी मदिरा पीकर जाता है तो यह रहस्य खुल जाता है वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर है और अलका विषकन्या। चाणक्य सिद्ध कर देते हैं कि उन्होंने कौमुदी महोत्सव क्यों नहीं होने दिया। यह वाक्य वे उनकी भूल का एहसास कराने के लिए कहता है।

इकाई 20 'कौमुदी महोत्सव' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 कथानक
    20.2.1 आरंभ
    20.2.2 विकास
    20.2.3 संघर्ष की परिणति
    20.2.3 संकलन-त्रय का निर्वाह
20.3 चरित्र चित्रण
    20.3.1 चंद्रगुप्त
    20.3.2 चाणक्य
    20.3.3 वसुगुप्त
20.4 परिवेश
20.5 संरचना शिल्प
    20.5.1 भाषा
    20.5.2 शैली
    20.5.3 संवाद
20.6 अभिनेयता
20.7 मूल्यांकन
20.8 सारांश
20.9 शब्दावली
20.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी का वाचन किया। आशा है कि आप इस एकांकी को भली-भाँति समझ गए होंगे। इस इकाई में हम एकांकी के तत्वों की दृष्टि से कौमुदी महोत्सव का मूल्यांकन और विश्लेषण करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'कौमुदी महोत्सव' की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे;
- इसके पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे;
- इसके परिवेश की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- इसके संरचना शिल्प को समझ सकेंगे;
- अभिनेयता की दृष्टि से 'कौमुदी महोत्सव' का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- एकांकीकार की दृष्टि और एकांकी के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे;
- एकांकी के शीर्षक की सार्थकता के बारे में अपना मत दे सकेंगे; और
- उपर्युक्त तत्वों की दृष्टि से अन्य एकांकियों के विश्लेषण का प्रयास कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

आपने डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी 'कौमुदी महोत्सव' का ध्यानपूर्वक वाचन किया। आप अच्छी तरह जान गए हैं कि लेखक इस एकांकी के माध्यम से क्या कहना चाहता है। आपको यह पता लग गया है कि यह नाटक प्राचीन भारतीय इतिहास के मौर्यकाल से संबंधित है। चंद्रगुप्त और चाणक्य दो पात्र ऐतिहासिक हैं शेष वसुगुप्त, अलका, यशोवर्मन, पुष्पदंत आदि काल्पनिक पात्र हैं।

20.2 कथानक

इकाई 18 में एकांकी के विभिन्न तत्वों की चर्चा करते समय हमने कथावस्तु के बारे में भी विचार किया था। एकांकी में प्रस्तुत घटना ही उसका कथावस्तु अथवा कथानक है। "कौमुदी महोत्सव" का कथानक ऐतिहासिक है। यह प्राचीन भारतीय इतिहास के मौर्यकाल से संबंधित है। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की सहायता से नंद वंश के अंतिम शासक, अन्यायी और अत्याचारी नंद को समाप्त किया और मौर्य वंश की स्थापना की। प्रस्तुत कथावस्तु चंद्रगुप्त के राज्यारोहण से ही संबंधित है।

इतिहास से कथानक चुनने के बावजूद साहित्यकार को अपनी कल्पना के प्रयोग की छूट होती है। वह इतिहास में कल्पना का रंग दे सकता है। क्योंकि वह इतिहास नहीं लिख रहा साहित्यिक कृति की रचना कर रहा है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि वह ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मोड़ सकता है या उन्हें बिल्कुल विपरीत रूप में प्रस्तुत कर सकता है। ऐसा करने से तो कृति की विश्वसनीयता समाप्त हो सकती है। अतः ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए कल्पना का समावेश ही उचित होता है।

प्रस्तुत एकांकी में 'कौमुदी महोत्सव' के आयोजन की व्यवस्था, विषकन्या का प्रसंग आदि काल्पनिक प्रसंग हैं। प्राचीन समय में राजा लोग अपने शत्रु का अंत करने के लिए विषकन्या का प्रयोग करते थे। यहाँ भी एकांकीकार ने कल्पना की है कि नंद के प्रति सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति जिनमें नंद का मंत्री राक्षस प्रमुख हैं—सम्राट चंद्रगुप्त के प्रति विद्रोह कर सकता है और विषकन्या का प्रयोग करके चंद्रगुप्त को समाप्त कर सकता है।

एकांकी के तत्वों की चर्चा करते समय हमने विचार किया था कि एकांकी में कथानक की घटनाएँ सीधी नहीं बढ़ती, उनमें उतार-चढ़ाव आता है। इस उतार-चढ़ाव की दिशा अंत में एक चरम बिंदु की ओर होती है। इस दृष्टि से कार्य व्यापार की तीन अवस्थाएँ होती हैं—आरंभ, विकास और अंत या संघर्ष की परिणति। आगे हम इस विकासक्रम के विश्लेषण का प्रयास करेंगे।

20.2.1 आरंभ

नाटक में कार्य व्यापार पात्रों के बीच वार्तालाप और उनके कार्यकलाप के माध्यम से आगे बढ़ता है। अतः लेखक सबसे पहले पात्रों से हमारा परिचय कराता है फिर स्थान, समय, स्थिति आदि के बारे में रंग-निर्देश देता है। इस दृष्टि से 'कौमुदी महोत्सव' को देखने पर हम पाते हैं कि चंद्रगुप्त, चाणक्य, यशोवर्मन आदि पात्रों का परिचय कराने के बाद सम्राट चंद्रगुप्त के कुसुमपुर में प्रवेश के समय जनता के उल्लास की चर्चा लेखक ने की है। इस एकांकी का आरंभ समाहर्त्ता वसुगुप्त और अंतपाल यशोवर्मन के वार्तालाप से होता है। दोनों की बातचीत से स्पष्ट होता है कि कुसुमपुर के लोगों में सम्राट चंद्रगुप्त के प्रति काफी उत्साह है किंतु फिर भी चंद्रगुप्त के विरोधियों का पूर्णतया अंत नहीं हो गया है। कहीं से भी विद्रोह हो सकता है। यशोवर्मन के मन में संदेह है कि विद्रोह की ज्वाला कहीं सुलग रही है और अवसर पाते ही प्रज्वलित हो सकती है किंतु वसुगुप्त का कहना है कि यह यशोवर्मन का संदेह है और जनता में यदि कोई विरोध है भी तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा। तभी चंद्रगुप्त कार्यांतिक पुष्पदंत के साथ प्रवेश करता है। जनता के उत्साहपूर्ण व्यवहार में चंद्रगुप्त को वीरता एवं शौर्य का अभाव दिखाई देता है, उसे उसमें एक तरह की छल और विडम्बना का अहसास होता है। नंद द्वारा स्थापित अव्यवस्था और भोगविलास की नीतियों को समाप्त करके चंद्रगुप्त सुव्यवस्था और सुशासन की स्थापना करना चाहता है जिससे जनसामान्य के मन का क्षोभ समाप्त हो। यह बात हमें चंद्रगुप्त के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट होती है :

> "चंद्रगुप्त : आचार्य चाणक्य की सहायता से जो कुछ अभी तक हुआ है, उसके प्रति नागरिकों में असंतोष तो नहीं होना चाहिए। तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की सभी बाधाएँ दूर करना चाहता हूँ। शासन का मापदण्ड प्रजा का संतोष और सुख होना चाहिए।"

जनता में सद्भाव की स्थापना के लिए चंद्रगुप्त कौमुदी महोत्सव के आयोजन की घोषणा के आदेश देता है। यहीं हमें पता चलता है कि कौमुदी महोत्सव के आयोजन का प्रस्ताव वसुगुप्त ने दिया था। पुष्पदंत की बातचीत से यह भी पता चलता है कि इस घोषणा से लोग काफी प्रसन्न हैं। किंतु इसी समय यशोवर्मन चंद्रगुप्त को सलाह देता है कि उत्सव को देखने में सतर्कता रखनी चाहिए क्योंकि जनता में कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं जो नंदवंश के विनाश से क्षुब्ध हों। हो सकता है यह उत्सव उन लोगों में चंद्रगुप्त के प्रति राजभक्ति पैदा कर दे और वे वैरभाव या

विरोध को भूल जाएँ। किंतु फिर भी उनके प्रति निश्चिंत नहीं रहा जा सकता। इसी समय वसुगुप्त कहता है कि सतर्कता की कोई जरूरत नहीं।

कार्यांतिक पुष्पदंत सम्राट को कौमुदी महोत्सव की भव्य सजावट के बारे में बताता है और चंद्रगुप्त घोषणा करता है कि इस उत्सव पर खर्च होने वाली सारी धनराशि सम्राट के व्यक्तिगत कोष से खर्च की जाएगी। इसी समय वसुगुप्त एक और प्रस्ताव रखता है कि 'कौमुदी महोत्सव' के अवसर पर राजनर्तकी के नृत्य की भी व्यवस्था होनी चाहिए और चंद्रगुप्त इसकी अनुमति दे देता है। यहीं यशोवर्मन चंद्रगुप्त को आगाह करता है कि :

"**यशोवर्मन :** मैं सम्राट की सेवा में एक निवेदन करना चाहता हूँ।
चंद्रगुप्त : निवेदन करो।
यशोवर्मन : विलासी नंद-वंश की राजनीति में यह राजनर्तकी अलका है।
चंद्रगुप्त : यह राजनर्तकी अलका?
यशोवर्मन : हाँ सम्राट! राजनर्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि वह नंद वंश के विनाश का कारण बनी। और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती।"

इस वार्तालाप पर ध्यान दें तो हमें कुछ बातों के महत्वपूर्ण संकेत मिलते हैं। राजनर्तकी अलका कोई साधारण स्त्री नहीं है। विलासी शासक नंद इसे अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करता था और नंदवंश के पतन में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। साथ ही हमें यह भी संकेत मिलता है कि वसुगुप्त किसी विशेष प्रयोजन को लेकर सक्रिय है। इस तरह हमें यह अहसास होने लगता है कि स्थितियाँ सामान्य रूप से नहीं चल रहीं कोई रहस्य है जिसका संकेत यशोवर्मन करना चाहता है। यह रहस्य क्या है? यह जानने के लिए हम आगे बढ़ते हैं।

20.2.2 विकास

यशोवर्मन से बातचीत करते हुए चंद्रगुप्त एकदम चौंक कर रुकता है और कहता है– "क्या कारण है कि मुझे कौमुदी महोत्सव के प्रारंभ की सूचना तूर्यनाद से नहीं सुन पड़ी।"
इसी समय वसुगुप्त राजनर्तकी अलका को प्रस्तुत करता है। चंद्रगुप्त कौमुदी महोत्सव का आरंभ अलका के नृत्य की झंकार से करने का आदेश देता है। अलका गीत गाती हैं फिर नृत्य करती है। चंद्रगुप्त उसकी कला से प्रसन्न होकर पुरस्कार के रूप में उसे अपने गले की मोतियों की माला देना चाहता है किंतु उसी समय अचानक चाणक्य का प्रवेश होता है और चाणक्य घोषणा करता है कि पुरस्कार नहीं दिया जाएगा। इस तरह कथानक अचानक नाटकीय मोड़ लेता है और संघर्ष की शुरुआत हो जाती है। चंद्रगुप्त को चाणक्य की यह बात बिल्कुल पसंद नहीं आती। जब चंद्रगुप्त को पता चलता है कि चाणक्य ने कौमुदी महोत्सव की घोषणा होने ही नहीं दी तो उसे लगता है कि महामंत्री हो कर चाणक्य राज मर्यादा की अवहेलना कर रहा है। दोनों एक दूसरे के मित्र और हितैषी हैं किंतु चंद्रगुप्त को ऐसा महसूस होने लगता है कि चाणक्य अपने आपको राजा से भी ऊपर समझने लगा है :

चंद्रगुप्त : सम्राट् कौन है, चंद्रगुप्त या चाणक्य?
चाणक्य : चंद्रगुप्त
चंद्रगुप्त : फिर सम्राट चंद्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है?
चाणक्य : इसलिए कि वह आज्ञा किसी मचले बालक के हठ की तरह है।
चंद्रगुप्त : फिर भी उसकी रक्षा करनी चाहिए।
चाणक्य : नहीं बालक आग पकड़ना चाहता है। उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकती।
चंद्रगुप्त : यह तुम्हारा गर्व है, महामंत्री
चाणक्य : यह तुम्हारा अज्ञान है, सम्राट।
चंद्रगुप्त : (क्रुद्ध हो कर) महामंत्री! कुसुमपुर की विजय में तुम्हारा हाथ रहा है तो क्या इतनी छोटी-सी विजय ने तुम्हारे गर्व की चिनगारी को फूँक मार कर लपट में परिवर्तित कर दिया? यह गर्व उस चिता की ज्वाला है जिसमें तुम्हारी राजनीति जल कर भस्म हो सकती है।

इस वार्तालाप से हमें क्या पता चलता है? सबसे पहले तो हमें यह पता चलता है कि कोई ऐसी खास बात है जो चाणक्य की समझ में आ रही है किंतु चंद्रगुप्त की समझ में बिल्कुल नहीं आ रही। चाणक्य चंद्रगुप्त की रक्षा का प्रयास कर रहा है और उन्हें इस बात की चिंता नहीं कि उनका व्यवहार चंद्रगुप्त को अच्छा लगेगा अथवा नहीं। किंतु स्थिति से अनभिज्ञ होने के कारण चंद्रगुप्त को लग रहा है कि चाणक्य को प्रमाद हो गया है और वह सम्राट की अवहेलना कर रहा है।

यहाँ पहुँच कर पूरी स्थिति में तनाव पैदा होता है यह तनाव सम्राट और महामंत्री के व्यक्तित्व की टकराहट में व्यक्त होता है। आरंभ से ही यशोवर्मन की बातों और वसुगुप्त के व्यवहार से हमारे मन में एक तरह का संदेह पैदा हुआ था कि कोई रहस्य है कोई जटिल विरोध की स्थिति है। चाणक्य के व्यवहार से निश्चित हो गया कि कहीं कोई गड़बड़ चल रही है किंतु यह गड़बड़ और विरोध की स्थिति क्या है इसका पता अभी तक नहीं लगा है। चंद्रगुप्त और चाणक्य में काफी देर तक विवाद होता है। राजाज्ञा की अवहेलना के कारण चंद्रगुप्त स्वयं को अपमानित महसूस करता है बदले में चाणक्य का अपमान कर देता है। अपमान से क्रोधित चाणक्य चंद्रगुप्त को ध्यान दिलाता है कि उसकी प्रतिशोध की प्रतिज्ञा कितनी भयानक होती है इसका प्रमाण नंद वंश के पतन से मिल चुका है।

किंतु इसी समय हम चाणक्य के व्यक्तित्व का दूसरा रूप देखते हैं जिस चंद्रगुप्त को उसने स्वयं अपने प्रयास से कुसुमपुर का सम्राट बनाया उसके द्वारा अपमानित होने पर भी वह बदला नहीं लेना चाहता और अपमान से उत्पन्न क्रोध उसी तरह अपने भीतर पी जाता है जिस तरह शिव ने विषपान कर लिया था।

वह महामंत्री पद छोड़ने के बाद भी चाणक्य चंद्रगुप्त की सहायता करता है। चंद्रगुप्त के सर पर मँडरा रही विपत्ति को दूर करने के लिए चाणक्य यह रहस्य खोल देता है कि वसुगुप्त शत्रु का गुप्तचर है और राजनर्तकी विषकन्या है।

किंतु चाणक्य और चंद्रगुप्त के बीच वैचारिक विरोध और व्यक्तित्व की टकराहट इतने पर ही खत्म नहीं हो जाती। चंद्रगुप्त चाणक्य की बात मानने को तैयार नहीं है वह समझता है कि चाणक्य ईर्ष्यालु और अविश्वासी है इसलिए वह वसुगुप्त और अलका पर लांछन लगा रहा है।

20.2.3 संघर्ष की परिणति यानी कथानक का अंत

चाणक्य द्वारा रहस्योद्‌घाटन कर दिए जाने पर संघर्ष खत्म नहीं होता। हमें लगता है कि स्थिति में और ज्यादा तनाव पैदा हो रहा है। चंद्रगुप्त चाणक्य से प्रमाण चाहता है। चाणक्य वसुगुप्त और अलका को सम्राट के सम्मुख प्रस्तुत कराता है और वसुगुप्त से पूछताछ करता है उत्तर-प्रत्युत्तर से नाटकीय स्थिति में तनाव पैदा होता है। हम चरम सीमा की ओर बढ़ते हैं। अंत में चाणक्य अलका की झूठी मदिरा वसुगुप्त को जबरदस्ती पिलवाता है। तुरंत ही वसुगुप्त की मृत्यु हो जाती है इस तरह सत्य का उद्‌घाटन हो जाता है कि वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर है और अलका विषकन्या। किंतु कथानक यहीं समाप्त नहीं हो जाता। अलका एक बार फिर चंद्रगुप्त पर वार करने का प्रयास करती है। क्षमा याचना करने का ढोंग करती हुई चंद्रगुप्त के पैरों में गिरना चाहती हैं। किंतु चाणक्य इसी समय सावधान करता है कि चंद्रगुप्त पीछे हटो अन्यथा यह पैर में दाँत चुभा कर विषदंशन कर देगी।

अब चंद्रगुप्त को अपनी भूल का बोध होता है और वह महसूस करता है कि चाणक्य की सहायता के बगैर उसका साम्राज्य सुरक्षित न रह सकेगा। एकांकी का अंत चंद्रगुप्त के इस वाक्य से होता है "कौमुदी महोत्सव" नहीं होगा।

20.2.4 संकलन-त्रय का निर्वाह

स्थान, समय और कार्य की एकता का निर्वाह 'कौमुदी महोत्सव' में किया गया है। समस्त घटनाचक्र कुसुमपुर के राजकक्ष में और एक ही समय में चलता है। 'कौमुदी महोत्सव' के आयोजन की घोषणा, तैयारी, राजनर्तकी के नृत्य के आयोजन की घोषणा, चाणक्य द्वारा स्थिति को उलट देना, षड्‌यंत्र का उद्‌घाटन आदि में कार्यव्यापार बिना किसी बिखराव के साथ आगे बढ़ता है।

ऊपर हमने कथावस्तु का जो विश्लेषण किया उससे आपको 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी में घटनाओं के उतार-चढ़ाव की नाटकीय स्थितियों को समझने में मदद मिलेगी।

बोध प्रश्न 1

क) 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी में यशोवर्मन का निम्नलिखित कथन किस बात के सूचक हैं? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

"किंतु आपको ज्ञात नहीं कि महाराज नंद के मंत्री राक्षस की नीति छद्मवेश धारण करके चलती है? नंद नहीं तो नंद के मंत्री तो हैं जो छिपकर कुसुमपुर से बाहर चले गये हैं।"

....

....

....

....

....

ख) वसुगुप्त की क्या योजना है?

....

....

....

....

....

ग) चंद्रगुप्त को "कौमुदी महोत्सव" की घोषणा का तूर्यनाद क्यों नहीं सुनाई पड़ा?

....

....

....

....

....

20.3 चरित्र चित्रण

इकाई 18 में हम पढ़ चुके हैं कि एकांकी में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होती। प्रमुख पात्रों के अलावा एक दो गौण पात्र होते हैं। "कौमुदी महोत्सव" में छः पात्र हैं वसुगुप्त, यशोवर्मन, पुष्पदंत और इनके अलावा सैनिक, दौवारिक आदि हैं जो केवल कुछ क्षणों के लिए ही आते हैं। चंद्रगुप्त, चाणक्य और वसुगुप्त की भूमिका प्रमुख है। यशोवर्मन और अलका क्रमशः इन तीनों के पूरक पात्रों के रूप में आते हैं। यशोवर्मन चंद्रगुप्त को खतरे के लिए निरंतर आगाह करता है राजनर्तकी अलका वसुगुप्त के षड्यंत्र का माध्यम है। इस तरह दोनों की कथा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। कार्यातिक पुष्पदंत मुख्यतया गौण पात्र हैं। आगे हम इन पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करेंगे।

20.3.1 चंद्रगुप्त

चंद्रगुप्त इस एकांकी का प्रमुख पात्र है। एकांकी की सभी घटनाएँ चंद्रगुप्त के इर्द-गिर्द घूमती हैं अतः इसे एकांकी का नायक कहा जा सकता है। हम पहले कह आये हैं कि नाटक में (चाहे वह एकांकी हो या पूर्णकालिक) किसी पात्र का चरित्र दो तरह से उभर कर आता है—उसके अपने संवादों तथा आचरण द्वारा और अन्य पात्रों के वार्तालाप द्वारा। लेखक स्वयं किसी पात्र के बारे में कोई वक्तव्य नहीं देता। यदि आवश्यक हो तो पात्र के रूपाकार या गतिविधियों के संबंध में रंग-निर्देश दे देता है। यहाँ भी चंद्रगुप्त से हमारा सर्वप्रथम परिचय यशोवर्मन और वसुगुप्त के वार्तालाप के माध्यम से होता है। यशोवर्मन की बातों से हमें पता चलता है चंद्रगुप्त का व्यक्तित्व एक वीर योद्धा का है जिसमें शौर्य और उत्साह का तेज है। इसके साथ ही हमें यह भी पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने तक्षशिला में ग्रीक सैन्य संचालन पद्धति की जानकारी प्राप्त कर ली है तथा विदेशी राजनीति को भी स्वीकार किया है।

इसके बाद चंद्रगुप्त का मंच पर प्रवेश होता है। कुसुमपुर में उसे वह शौर्य और पराक्रम नहीं दिखाई देता है जो ग्रीक सैनिकों में था। यहीं हमें चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं का पता चलता है जो उसके वचनों से प्रकट होती है :

> "नागरिकों का उल्लास शृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है।"
> "तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की सभी बाधाएँ दूर करना चाहता हूँ। शासन का मापदंड प्रजा का संतोष और सुख होना चाहिए।"

पहली बात तो चंद्रगुप्त कुसुमपुर के नागरिकों को मनुष्यता प्रदान करना चाहता है। मनुष्यता प्रदान करने का तात्पर्य है उनमें श्रेष्ठ मानवीय गुणों का विकास करना चाहता है। चंद्रगुप्त से पहले कुसुमपुर पर नंदवंश का शासन था। विलासी नंद का शासन अराजकतापूर्ण था क्योंकि अपने भोग-विलास में मस्त रहने के कारण शासक न तो जनता के हितों के बारे में सोचता था न ही उनकी बौद्धिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति के बारे में/विद्या, बुद्धि शौर्य, पराक्रम आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों के विकास के अवसर समाज में सभी नागरिकों को मिले इसकी व्यवस्था शासन के स्तर पर होनी चाहिए। चंद्रगुप्त शासक के इस दायित्व को अनुभव कर रहा है इसीलिए वह जनसामान्य में पाशविकता के स्थान पर मनुष्यता की स्थापना करने की बात कहता है।

उसका दूसरा कथन भी उसकी उत्तरदायित्व की भावना का सूचक है। कुशल शासक की जिम्मेदारी होती है कि वह अपने राज्य की सभी बाधाएँ दूर करे। जिस शासन व्यवस्था में प्रजा सुखी है संतुष्ट है निश्चिंत ही वह शासन व्यवस्था बहुत उत्तम है। इस कथन से पता चलता है कि शूरवीर होने के साथ-साथ चंद्रगुप्त एक जिम्मेदार, कुशल और प्रजा हितैषी शासक है। वह मानता है कि "प्रजा का संतोष ही मेरे सुख का अग्रदूत है।"

इसके बाद हम देखते हैं कि जनता के बीच सद्भाव स्थापित करने के लिए चंद्रगुप्त कौमुदी महोत्सव का आयोजन करना चाहता है। एक शासन का अंत होकर नए शासन की स्थापना के दौरान सत्ता परिवर्तन में जो हिंसात्मक कार्रवाइयाँ होती हैं उनसे जन सामान्य में क्षोभ, आतंक आदि का व्याप्त हो जाना स्वाभाविक ही है। नंदवंश के अंत और मौर्य साम्राज्य की स्थापना के दौरान ऐसी ही घटनाएँ घटी थीं। जनता में व्याप्त इन भय, निराशा या विद्वेष के भावों को दूर करने के लिए चंद्रगुप्त शरद पूर्णिमा के दिन उत्सव के आयोजन की घोषणा करता है जिससे कि "प्रकृति की इस चंद्रमयी निर्मलता में जनता के हृदय की समस्त पाप वासनाएँ धुल जावें।" इससे स्पष्ट होता है कि चंद्रगुप्त जनता में अपने नए शासक (यानी चंद्रगुप्त) के प्रति विश्वास और निष्ठा उत्पन्न करना चाहता है। किंतु इसी समय वह इस बात के प्रति भी सचेत है कि इस उत्सव में राजकोष से धन व्यय न किया जाए बल्कि इस पर आने वाला खर्च स्वयं सम्राट के कोष से किया जाए। इससे हमें पता चलता है कि चंद्रगुप्त शासक के रूप में अपने कर्त्तव्यों के प्रति कितना जागरूक है। "राजकोष" का धन जनता का धन है और उसका व्यय जनता के कार्यों यानी शासन, सेना और न्याय व्यवस्था पर किया जाना चाहिए न कि उत्सवों के आयोजन पर या आनंद उल्लास पर। इसीलिए चंद्रगुप्त प्रजा के मनोरंजन पर अपने व्यक्तिगत कोष से धन व्यय करने का आदेश देता है। इस कार्य से चंद्रगुप्त की कर्त्तव्य निष्ठा का पता तो चलता ही है उसकी कुशल शासन क्षमता का भी पता चलता है क्योंकि जब जनता को पता चलेगा कि सम्राट प्रारंभ से ही जनता के प्रति कर्त्तव्यपरायण है तो जनता में भी सम्राट के प्रति निष्ठा और कर्त्तव्य भावना जागेगी। इसी से 'कौमुदी महोत्सव' के अवसर पर नगर की भव्य सजावट के प्रति चंद्रगुप्त काफी उत्सुक है। वसुगुप्त इस अवसर पर राजनर्तकी के नृत्य का प्रस्ताव रखता है तो चंद्रगुप्त सहमत हो जाता है क्योंकि वह कला और सौंदर्य के प्रति भी अनास्था नहीं व्यक्त करना चाहता। सुशासन व्यवस्था में कलाओं के उचित विका[illegible] का अवसर होता है यह बात चंद्रगुप्त सिद्ध करना चाहता है। यशोवर्मन द्वारा दी गई चेतावनी की उपेक्षा करते हुए वह नृत्य आयोजन की अनुमति दे देता है। यहीं हमें चंद्रगुप्त के चरित्र के एक अन्य पहलू का पता चलता है। वह सहज विश्वास कर लेने वाला व्यक्ति है। अन्य लोगों के आचरण पर संदेह नहीं करता। किसी के द्वारा चेतावनी दिए जाने पर भी आसानी से सचेत नहीं होता। वसुगुप्त के प्रति उसके मन में कभी-कभी हल्का-सा संदेह उठता है तब भी वह इस बात को स्वीकार नहीं करना चाहता कि विद्रोह के बीज अंदर ही अंदर अंकुरित हो रहे हैं। यह स्थिति चंद्रगुप्त के चरित्र में दूरदर्शिता की कमी और गहरी अंतर्दृष्टि के अभाव की सूचक है। जिस बात को यशोवर्मन समझता है और जिसे चाणक्य बहुत अच्छी तरह जानता है यह बात अंत तक चंद्रगुप्त की समझ में नहीं आती। वह वसुगुप्त और अलका के षड्यंत्र से अनजान ही बना रहता है। यहाँ तक कि अपनी दूरदर्शिता की कमी में वह चाणक्य का अपमान भी कर देता है। तक्षशिला में चाणक्य चंद्रगुप्त के गुरु रह चुके हैं। मौर्य साम्राज्य की स्थापना भी चंद्रगुप्त ने चाणक्य की सहायता से ही की है और महामंत्री के रूप में 'कौमुदी महोत्सव' को रोक कर तथा अलका और वसुगुप्त को बंदी बनाकर भी वह चंद्रगुप्त के मार्ग में आ रही भयंकर विपदाओं को ही दूर करना चाहता है। किंतु कौमुदी महोत्सव के आयोजन में चाणक्य का हस्तक्षेप चंद्रगुप्त को बिल्कुल नागवार गुज़रता है। वह समझने लगता है कि चाणक्य घोर अविश्वासी, ईर्ष्यालु और हिंसाप्रिय व्यक्ति है:

> "अपनी राजनीति में अविश्वासी बने हुए चाणक्य। तुम प्रत्येक व्यक्ति को गुप्तचर और प्रत्येक नारी को विषकन्या समझ सकते हो। राज्य-सीमा की रेखा पर रेंगती हुई तुम्हारी आँखों की पुतलियाँ काले कीड़े की तरह केवल निरीह जीवों की हिंसा ही करना जानती हैं।"

चंद्रगुप्त का यह कथन वस्तुतः किसी दूरदर्शी, धैर्यवान और विवेकपूर्ण सम्राट का कथन प्रतीत नहीं होता। यह ऐसे चिड़चिड़े व्यक्ति का क्रोध दिखाई देता है जो अपनी इच्छा की पूर्ति न होने पर बेकाबू हो जाता है। जब चाणक्य प्रमाणित कर देता है कि अलका विषकन्या है और वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर तब चंद्रगुप्त को अपनी भूल का अहसास होता है। और वह स्वीकार करता है

> "महामंत्री चाणक्य! चंद्रगुप्त को तुम्हारी आवश्यकता है। महामंत्री चाणक्य के बिना यह राज्य नष्ट हो जाएगा।"

चंद्रगुप्त के चरित्र की एक अन्य विशेषता का भी हमें पता चलता है। जिस काम का निर्णय वह लेता है उसके प्रति किसी का विरोध नहीं चाहता। कौमुदी महोत्सव के आयोजन का चाणक्य द्वारा विरोध उसे नितांत अनुचित और अवहेलनापूर्ण लगता है। यद्यपि किसी काम को करने से पहले चाणक्य से परामर्श करना चाहिए यह अहसास उसे रहता है। वसुगुप्त की समाहर्त्ता पद पर नियुक्ति तथा कौमुदी महोत्सव की घोषणा के बारे में उसने परामर्श नहीं किया यह बात वह आरंभ में स्वीकार करता है। किंतु आरंभ में हमें चंद्रगुप्त के जिस आत्मविश्वासपूर्ण सक्षम व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं उसका विकास आगे नहीं दिखाई देता। एकांकी के अंत तक पहुँचते-पहुँचते वह काफी कमजोर और ज़िद्दी किस्म का व्यक्ति दिखाई देने लगता है।

20.3.2 चाणक्य

कौमुदी महोत्सव का दूसरा प्रमुख पात्र है चाणक्य। इस एकांकी में चाणक्य का प्रवेश तब होता है जब कथा मध्य तक पहुँच जाती है किंतु अन्य पात्रों से उसके बारे में हम आरंभ से ही सुनते हैं। तक्षशिला के, गुरुकुल में चाणक्य चंद्रगुप्त का आचार्य तथा मित्र रह चुका था। उसी की सहायता से चंद्रगुप्त नंदवंश का अंत करके मौर्य साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ है। आरंभ में वसुगुप्त तथा यशोवर्मन की बातचीत से तथा उसके बाद चंद्रगुप्त के कथनों से हम जान जाते हैं कि चाणक्य राजनीति का श्रेष्ठतम विद्वान तथा अनूठी अंतर्दृष्टि और बुद्धिमता संपन्न व्यक्ति है तथा सम्राट चंद्रगुप्त का महामंत्री है। उसी के नीति-कौशल से नंद के अन्याय और अत्याचार पूर्ण शासन का अंत हुआ है।

चाणक्य का मंच पर प्रवेश बड़े ही नाटकीय ढंग से होता है। अलका के नृत्य पर प्रसन्न होकर चंद्रगुप्त उसे पुरस्कार देना ही चाहता है कि सहसा चाणक्य प्रवेश करके कहता है "पुरस्कार नहीं दिया जाएगा सम्राट!" यहीं पर घटनाएँ एक नया मोड़ लेती हैं। चाणक्य चंद्रगुप्त को समझाता है कि उसके जीवन के लिए खतरा है और सैनिकों को आज्ञा देकर वसुगुप्त तथा अलका को बंदी बना लेता है। वसुगुप्त, अलका और चंद्रगुप्त आदि लोगों के विरोध के बावजूद चाणक्य का कथन है :

> "कुछ मत कहो इस समय सम्राट चंद्रगुप्त! चाणक्य अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता है।"

इसके साथ ही चाणक्य यह भी बता देता है कि उसने 'कौमुदी महोत्सव' का आयोजन रद्द कर दिया है। वह चंद्रगुप्त को भावी संकट के प्रति आगाह करता है और चंद्रगुप्त द्वारा बुरी तरह से अपमानित किए जाने के बावजूद वह राष्ट्र अथवा सम्राट का अमंगल नहीं चाहता। अपमान से वह क्रोध की भयंकर ज्वाला में जलने लगता है और महामंत्री का पद त्याग देता है। चंद्रगुप्त को याद भी दिलाता है कि चाणक्य का क्रोध और प्रतिशोध कितना भयंकर है इसका प्रमाण है नंदवंश का समूल अंत। किंतु वह अपने द्वारा ही रचे संसार का विध्वंस नहीं करना चाहता और घोर अपमान को विष की तरह पी जाता है यही चाणक्य की महानता है। वह जो कुछ कर रहा है चंद्रगुप्त की रक्षा के लिए। किंतु चंद्रगुप्त नासमझ हो कर अपने व्यंग्य-वचनों से उसे प्रताड़ित किए जा रहा है। चाणक्य अपनी शक्ति से भली-भाँति परिचित है किंतु वह मौर्यवंश का विनाश करने की प्रतिज्ञा न लेकर करुणा और शांति का मार्ग अपनाने के बारे में सोचता है।

इतने पर भी चंद्रगुप्त कहता है कि यदि उसके द्वारा लगाया गया आक्षेप गलत निकला तो उसे दंड दिया जाएगा। चाणक्य किसी विवशता से नहीं अपितु अपनी इच्छा से सत्य का उद्घाटन करने को तैयार हो जाता है किंतु एक शर्त पर :

> "इस उद्घाटन के अनंतर में एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। यह वातावरण अभिशाप बनकर मेरे रोम-रोम में प्रतिहिंसा की ज्वाला उत्पन्न कर रहा है।"

और रहस्योद्घाटन के बाद वह तुरंत चला जाता है। चाणक्य के संपूर्ण व्यवहार से उसका जो चरित्र हमारे सामने उभर कर आता है उसकी विशेषताएँ हैं—दूरदर्शिता, चतुराई, सावधानी, स्वाभिमान, विवेक, धैर्य, निःस्वार्थता, क्षमाशीलता और नीतिपटुता।

अब हम चंद्रगुप्त से चाणक्य के चरित्र की तुलना करते हैं तो देखते हैं कि चंद्रगुप्त की तुलना में चाणक्य का व्यक्तित्व कितना बड़ा है। चाणक्य वह सब कर पाने में सक्षम है जो चंद्रगुप्त समझ भी नहीं पाता। इन सबसे बढ़ कर चाणक्य की विशेषता है निःस्वार्थ भाव से जन कल्याण की ओर प्रवृत्त रहना। वह अपने लिए नहीं, चंद्रगुप्त की भलाई के लिए सक्रिय है।

20.3.3 वसुगुप्त

वसुगुप्त एकांकी का अन्य महत्वपूर्ण पात्र है। वह कुसुमपुर का समाहर्त्ता है तथा एकांकी में आरंभ से अंत तक मौजूद रहता है। नंद के महामंत्री राक्षस द्वारा बनाए गए चंद्रगुप्त की हत्या के षड्यंत्र में उसकी प्रमुख भूमिका है। इस तरह वसुगुप्त चंद्रगुप्त का विरोधी है किंतु चंद्रगुप्त को यह बात एकांकी के अंत में पता चलती है। वसुगुप्त चंद्रगुप्त का विश्वासपात्र बना रहता है। उसके चरित्र में एक खास तरह की वाक्पटुता (बातचीत की कुशलता) है। इसी से वह चंद्रगुप्त से अपनी बात मनवा लेता है। कौमुदी महोत्सव का आयोजन चंद्रगुप्त ने उसी के सुझाव पर किया है। फिर आयोजन में राजनर्तकी के नृत्य के प्रस्ताव को भी वह बड़ी चतुराई के साथ रखता है और चंद्रगुप्त से इसकी सहमति दिलाने में सफल हो जाता है। इस तरह वसुगुप्त की सभी योजनाएँ चंद्रगुप्त पर सफल हैं। किंतु चाणक्य की विलक्षण बुद्धि के आगे वसुगुप्त की चतुराई नहीं चल पाती। चाणक्य के प्रश्नों का सीधे उत्तर न देकर वसुगुप्त उसे बातों में उलझाना चाहता है किंतु चाणक्य सबके समक्ष रहस्योद्घाटन में सफल हो जाता है। वह वसुगुप्त की चाल से उसी का अंत करा देता है।

'कौमुदी महोत्सव' के इन तीन पात्रों के चरित्र का विश्लेषण पढ़ने के बाद अब यशोवर्मन और अलका का चरित्र विश्लेषण आप स्वयं कर सकते हैं।

20.4 परिवेश

हम पढ़ चुके हैं कि परिवेश अथवा देशकाल का सजीव और स्वाभाविक चित्रण एकांकी में प्रभावपूर्णता और विश्वसनीयता में सहायक होता है। ऐतिहासिक कथावस्तु में देशकाल और भी अधिक महत्वपूर्ण इसलिए होता है कि पात्र जिस समय के हैं उस समय के लगें, घटनाएँ जिस समय की हैं उसी समय की लगें, अपने समय के विपरीत न लगें। "कौमुदी महोत्सव" मौर्य साम्राज्य के आरंभ के काल से संबंधित है। इस समय के परिवेश को भाषा, भाव, आचार-व्यवहार आदि सभी स्तरों पर उभारा गया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ है। व्यक्तियों, स्थान, वस्तुओं, कर्मचारियों आदि के नाम और पदनाम प्राचीन भारतीय युग का संकेत करते हैं। एकांकी के आरंभ में ही लेखक ने बता दिया है कि यह घटना 322 ईसा पूर्व से संबंधित है। चंद्रगुप्त की वीरता और पराक्रम, नंद के शासन में कुसुमपुर में फैला क्लेश का वातावरण, राजनीति के छल-कपट, विषकन्याओं का प्रयोग तक्षशिला के गुरुकुल में आयुर्विज्ञान, युद्धविद्या, व्याकरण आदि की शिक्षा आदि के माध्यम से प्राचीन भारत का सजीव सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक परिवेश प्रस्तुत हुआ है। कौमुदी महोत्सव में दीपों की सजावट की योजना, नंद के वसंतोत्सवों और मदनोत्सवों की चर्चा पुष्पदंत द्वारा नगर की सजावट के विवरण और अलका के गायन तथा नृत्य आदि की चर्चा के माध्यम से तत्कालीन समाज और संस्कृति की तस्वीर प्रस्तुत की गई है। चंद्रगुप्त द्वारा मौर्य कालीन शासन और सुव्यवस्था, चाणक्य द्वारा राजनीति और कूटनीति की जटिल प्रक्रियाओं को प्रस्तुत किया गया है। इस तरह परिवेश के सृजन द्वारा इतिहास का सजीव चित्र उपस्थित किया गया है।

बोध प्रश्न 2

i) निम्नलिखित कथनों से चंद्रगुप्त के चरित्र की कौन-कौन सी विशेषताएँ उभरती हैं।

   क) "प्रजा का संतोष ही मेरे सुख का अग्रदूत है"

   ख) "आज कौमुदी महोत्सव में तो सौंदर्य की भी रक्षा होगी"

   ग) "आर्य चाणक्य! सैनिक चंद्रगुप्त विलासी नंद नहीं है जो पतन के गर्त के मुख पर खड़ा होकर हल्की-सी राजनीति के धक्के की प्रतीक्षा करें। मौर्य चंद्रगुप्त हिमाद्रि की तरह सुदृढ़ है जिसे महामंत्री चाणक्य की कुटिल राजनीति रूपी आँधियों के झोंके एक क्षण भी विचलित नहीं कर सकते।

ii) चाणक्य के व्यक्तित्व में वे कौन-सी विशेषताएँ हैं जो चंद्रगुप्त में नहीं हैं। लगभग सात-आठ पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

iii) "मुझे इसकी चिंता नहीं है, सम्राट! गर्व मेरे अंत:करण का अधिकार है। वह राज्य से अनुशासित नहीं है। किंतु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि चाणक्य के गर्व की चिनगारी स्वर्ग के राज्य को प्राप्त करके भी लपट नहीं बनेगी। हाँ, अपमान के हल्के झोंके से ही यह दावाग्नि बन कर तुम्हारे वैभव के नंदन वन को क्षण भर में भस्म कर सकती है। क्या तुम नंदवंश के विनाश की पुनरावृत्ति देखना चाहते हो।"
उपर्युक्त पंक्तियाँ चाणक्य की किन विशेषताओं की सूचक हैं। सही (✓) और (×) गलत का निशान लगाइए।

क) घमंड

ख) स्वाभिमान

ग) प्रतिशोध

घ) निस्वार्थता

ङ) शक्ति और सामर्थ्य

च) दीनता

छ) स्वार्थपरता

ज) छल-कपट

झ) कूटनीति

iv) कौमुदी महोत्सव में ऐतिहासिक परिवेश प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने किन-किन चीजों का सहारा लिया है?

....

....

....

....

....

20.5 संरचना शिल्प

इकाई 18 में हमने नाट्य विधा में संवाद तथा भाषा शैली के महत्व की चर्चा की थी। आगे हम 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी की भाषा शैली और संवादों की विशेषताओं का विवेचन करेंगे।

20.5.1 भाषा

हम जान चुके हैं कि यह एकांकी ऐतिहासिक विषय को लेकर लिखा गया है। किसी रचना का विषय लेखक की भाषा को अवश्य प्रभावित करता है। लेखक जिन व्यक्तियों, जिन कार्यों और स्थितियों को प्रस्तुत करता है उनके अनुकूल अपनी भाषा को ढालता है। इसलिए रचना यदि पुराने समय से संबंधित है तो उस समय का वातावरण पैदा करने के लिए उस समय की वस्तुओं, स्थानों, आचार व्यवहार आदि का समावेश किया जाता है।

प्रस्तुत एकांकी की भाषा में भी ऐतिहासिकता का स्वर मौजूद है। यहाँ मेरुदंड, शृगाल, अलिंद

समरागण, आसव, स्फुलिंग आदि तत्सम शब्दों की प्रधानता है। भवनों, स्थानों, वस्तुओं और कर्मचारियों के नाम संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में हैं, जैसे—वातायन, प्रकोष्ठ सिंह द्वार, खंग, अंतपाल, कार्यांतिक आदि।

'कौमुदी महोत्सव' राजनीतिक विषय को लेकर लिखा गया एकांकी है तथा राजनीतिक षड्यंत्र, विषकन्या का प्रयोग आदि कूटनीतिक चालें यहाँ प्रस्तुत की गई हैं फिर भी इसकी भाषा में राजनीति की व्यावहारिकता की अपेक्षा काव्यात्मकता अधिक है। रामकुमार वर्मा नाटक लेखक होने के साथ-साथ कवि भी हैं। इसी से उनकी भाषा में काव्यात्मक अलंकरण और भावमयता की प्रधानता है। 'कौमुदी महोत्सव' के गद्य में कविता के समान उपमाएँ और रूपक सर्वत्र विद्यमान हैं। इससे कहीं-कहीं तो बहुत अच्छे बिंबों की सृष्टि हुई है जैसे :

> "मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध भैरवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिए हैं और वह संन्यासिनी हो गई है। नगर की शोभा मलीन है जैसे तलवार की झंकार वायु में विलीन हो गई है।"

यहाँ युद्ध की देवी के संन्यास लेकर गेरुआ वस्त्र पहनने का बिंब और तलवार की खनक हवा में गायब हो जाने का बिंब दर्शक या पाठक की कल्पना में एकदम बन सकता है। इसी तरह उत्सव के हर्ष उल्लास में किसी तरह के खून-खराबे या वैमनस्य से बचने की बात बड़े अच्छे ढंग से कही गई है। किंतु भाषा की लगातार अतिरिक्त सजावट से कहीं-कहीं स्पष्टता और सहजता को नुकसान पहुँचा है। उदाहरण के लिए नीचे लिखी पंक्तियों को देखिए :

> "चन्द्रगुप्त, अंतपाल यशोवर्मन! नृत्य और संगीत कौमुदी महोत्सव की वह प्रस्तावना है जिसमें उमंग की रूपरेखा मंगल के रंग में सुसज्जित होती है। नृत्य ऐसी मनोहर भावनाएँ हैं जिनमें सुख का रहस्य जागता है।"

यहाँ उमंग की रूपरेखा का मंगल के रंग में सुसज्जित होना कोई स्पष्ट बिंब नहीं बनाता। पूरी बात एक तरह का शब्द जाल प्रतीत होती है।

20.5.2 शैली

'कौमुदी महोत्सव' की नाट्य शैली के प्रमुख गुण हैं : विषय वस्तु की स्पष्टता, संक्षिप्तता और घटनाओं तथा प्रसंगों का मार्मिक प्रस्तुतीकरण। यद्यपि एकांकी ऐतिहासिक राजनीतिक विषय को लेकर लिखा गया है किंतु इसकी शैली भावप्रधान तथा आलंकारिक है। पात्रों के चरित्र, स्थितियों और मनोभावों को काफी विश्लेषण विवेचन के माध्यम से उभारा गया है। यदि वर्मा जी ने काव्यात्मकता द्वारा अतिरिक्त चमक-दमक न पैदा की होती तो यह एकांकी आलंकारिक शैली के चमत्कार से बच गया होता। किंतु ऐसा लगता है कि सरल और प्रसन्न शैली से विषय-वस्तु, संवाद आदि के प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण की कला के बावजूद उनका कवि स्वभाव उन पर हावी रहा है। परिणाम यह हुआ कि संवादों में विशेष रूप से चंद्रगुप्त और चाणक्य के वार्तालाप में गद्य की भावमय और व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। राजनीतिक संवादों में प्रायः सीधी, सपाट और व्यंग्यात्मक शैली अपनाई गई है।

20.5.3 संवाद

हम यह पढ़ चुके हैं कि संवाद एकांकी का महत्वपूर्ण तत्व होता है। एकांकीकार अपने कथ्य को अपने पात्रों के मुख से जिस कौशल से कहला पाता है उसी में एकांकीकार की सफलता निहित होती है। "कौमुदी महोत्सव" के संवादों में हमें कुछ खास बातें नजर आती हैं :

i) अक्सर पात्रों ने अपनी बात को काफी अलंकृत ढंग से कहा है। उपमाओं, रूपकों के कारण कहीं-कहीं संवाद काफी लंबे भी हो गए हैं। यद्यपि कुछ स्थितियों में लंबे तथा भाव प्रधान संवाद भी काफी प्रभावपूर्ण हैं जैसे अपमान की ज्वाला से जलते चाणक्य का यह कथन—

> "मौर्य। लो अपना शस्त्र (फेंक देते हैं) यह कलंक इसी समय दूर करता हूँ। राजमंत्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आने वाले चंद्रगुप्त। क्या मैं अपनी शिखा खोल कर विनाश की फिर प्रतिज्ञा करूँ। जिस ब्राह्मण की शिखा सर्पिणी ने नंदवंश को एक ही दंशन में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है? जिस चंद्रगुप्त को अपना आत्मीय समझ कर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया उसी चंद्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूँ? वाह रे ब्राह्मण। ब्रह्म ज्ञान में जीवित रहने वाला आज राज्य के कुचक्रों से लांछित हो रहा है। आज अपने सृष्टि सागर का विष मैं पी ही रहा हूँ, किंतु चंद्रगुप्त। मुझमें कालकूट को भी पी जाने वाले नीलकंठ की शक्ति है। समझते हो?"

ii) लेकिन जब चंद्रगुप्त अपनी नीतियों या योजनाओं का व्यापक विवरण देता है या चाणक्य से लगातार बहस करता चला जाता है तो लंबे, अलंकृत और पौराणिक कथाओं के संदर्भों से युक्त संवाद बोझिल से लग उठते हैं। यशोवर्मन और चंद्रगुप्त का ऐसा ही एक संवाद नीचे दिया जा रहा है–

> "**यशोवर्मन :** हाँ सम्राट। राजनर्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि वह नंदवंश के विनाश का कारण बनी। और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती।
> **चंद्रगुप्त :** निर्दोष? वह सब प्रकार से दोषी कही जानी चाहिए। गौतम ने अहिल्या को शाप क्यों दिया? क्या अहिल्या ने अपने सदाचार से अपने सौंदर्य की रक्षा नहीं की थी, फिर क्यों उसने इंद्र को नहीं पहचाना। शची का सौभाग्य अप्सराओं को बाँटने वाले इंद्र की लालसा का भी परिचय चाहिए। वैसे ही क्या अलका महाराज नंद को नहीं पहचान सकी? क्या महाराज नंद की आँखों में उसके अंगराग की अरुण रेखाएँ विद्युत बन कर नहीं चमक उठीं? यशोवर्मन तुम जानते हो आकाश की उल्का प्रकाश से ओतप्रोत रहती है, किंतु जब वह उदित होती है तो समस्त संसार में अमंगल की आशंका क्यों होती है?"

चंद्रगुप्त तथा अलका के बीच संवाद लंबे तो नहीं किंतु कार्य-व्यापार के तेजी से आगे बढ़ने में बाधक बनते हैं। इसी तरह चंद्रगुप्त और चाणक्य के बीच काफी लंबी कटु बहस होती है और चंद्रगुप्त चाणक्य से बहुत अधिक अपशब्द कहता है। यदि वह वार्तालाप इतना लंबा न होता तब भी एकांकी की प्रभावन्विति में कोई क्षति न होती।

'एकांकी के कुछ अंशों में संवाद बड़े ही सार्थक, रोचक और प्रभावपूर्ण हैं। वहाँ वार्तालाप की सहजता के साथ-साथ व्यंग्य की वक्रता भी है। अलका और वसुगुप्त के बंदी बनाए जाने के बाद चंद्रगुप्त और चाणक्य का वार्तालाप ऐसा ही है। पूरी स्थिति नाटकीयतापूर्ण मोड़ लेती है। चंद्रगुप्त को अपने आत्मसम्मान और राजमर्यादा की रक्षा न होने पर क्रोध आता है किंतु चाणक्य अपनी कर्त्तव्य निष्ठा में अडिग है।'

> "**चाणक्य :** कौमुदी महोत्सव!
> **चंद्रगुप्त** हाँ कौमुदी महोत्सव। क्या आपने मेरी घोषणा नहीं सुनी।
> **चाणक्य :** वह सुनने योग्य नहीं थी।
> **चंद्रगुप्त :** आप राजमर्यादा का इतना अपमान कैसे कर रहे हैं, महामंत्री। कौमुदी महोत्सव की घोषणा कुसुमपुर में मेरी प्रथम राज घोषणा है।
> **चाणक्य :** वह राज घोषणा प्रारंभ होने से पूर्व ही समाप्त हो गई।
> **चंद्रगुप्त :** (आश्चर्य से) समाप्त हो गई। किसने यह साहस किया?
> **चाणक्य :** मैंने, आर्य चाणक्य ने।
> **चंद्रगुप्त :** इसीलिए मुझे घोषणा का तूर्यनाद नहीं सुन पड़ा। तो आपने कौमुदी महोत्सव की घोषणा नहीं होने दी।
> **चाणक्य :** नहीं, मैंने ही घोषणा नहीं होने दी।
> **चंद्रगुप्त :** मैं कारण जानना चाहता हूँ।
> **चाणक्य :** मैं कारण नहीं बतला सकता।
> **चंद्रगुप्त :** सम्राट कौन है, चंद्रगुप्त या चाणक्य?
> **चाणक्य :** चंद्रगुप्त।
> **चंद्रगुप्त :** फिर सम्राट चंद्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है।
> **चाणक्य :** इसलिए कि वह आज्ञा किसी मचले बालक के हठ की तरह है।
> **चंद्रगुप्त :** फिर भी उसकी रक्षा होनी चाहिए।
> **चाणक्य :** नहीं, बालक आग पकड़ना चाहता है। उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकेगी।"

इसी तरह चाणक्य और वसुगुप्त के वार्तालाप में भी स्थिति के तनाव को उत्तर-प्रत्युत्तर के माध्यम से उभारा गया है। यही कारण है कि यह एकांकी जैसे-जैसे चरम सीमा की ओर बढ़ता है वैसे-वैसे काफी प्रभावपूर्ण होता जाता है।

बोध प्रश्न 3

i) 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी की भाषा की चार प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

ii) निम्नलिखित संवाद मच पर कैसा प्रभाव देंगे?
चंद्रगुप्त : राजनीति और कविता। (राजनर्तकी से) क्यों राजनर्तकी! तुम राजनीति की ताल पर नृत्य कर सकती हो?
अलका : सम्राट्! अभी तक तो राजनीति ही मेरे नृत्य की ताल थी। किन्तु मैंने इसकी ओर कभी ध्यान दिया ही नहीं। राजनर्तकी का राजनीति से क्या संबंध, सम्राट्! वह तो राज्य की अनुचरी-मात्र है।
चंद्रगुप्त : (हँसकर) इन्हीं छद्मवेशी शब्दों से अनुचरी स्वामिनी वन जाती है, राजनर्तकी! महाराज नंद तुम पर मोहित थे या तुम महाराज नन्द पर मोहित थीं!
अलका : सम्राट् मुझे क्षमा करें। सच्ची नारी मोहित नहीं होना चाहती, वह आत्म-समर्पण करना चाहती है। जो नारी मोहित होती है, वह अपने रूप का व्यापार करती है, हृदय का समर्पण नहीं।
चंद्रगुप्त : तुम किस व्यापार में विश्वास करती हो—रूप के व्यापार में या हृदय के व्यापार में?

....

....

....

....

iii) निम्नलिखित वार्तालाप को पढ़िए :
वसुगुप्त : मैं कुसुमपुर में निवास नहीं करता, महामंत्री! मैं अमरावती से कुसुमपुर आया अवश्य करता हूँ।
चाणक्य : वर्ष में कितनी बार आया करते हो?
वसुगुप्त : मैं कह नहीं सकता।
चाणक्य : (कठोर स्वर में) प्रश्न की अवहेलना नहीं हो सकती। ठीक उत्तर दो।
वसुगुप्त : महाराज नन्द के प्रमुख उत्सवों में आया करता था।
चाणक्य : गत वर्ष वसंतोत्सव में सम्मिलित हुए थे? अमरावती के अन्तपाल।
वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री!
चाणक्य : वसन्तोत्सव में राजनर्तकी अलका ने नृत्य किया था। तुमने उसे देखा था?
वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री।
चाणक्य : तब तुम अलका के नाम से परिचित हो।
वसुगुप्त : हाँ महामन्त्री।
चाणक्य : अभी तुमने कहा कि मैं अलका का नाम भी नहीं जानता और कहा कि कौमुदी महोत्सव के एक क्षण पूर्व राजनर्तकी का परिचय मिला?
वसुगुप्त : मैं राजनीति की बातें प्रकट नहीं करता।
चाणक्य : (हँसकर) बड़े राजनीतिज्ञ हो। अच्छा, राजनीति की बातें मत कहो। सीधा उत्तर दो, तुम राजमंत्री राक्षस के गुप्तचर कब हुए?
वसुगुप्त : महामंत्री मैं दुष्ट राक्षस को जानता भी नहीं हूँ।
चाणक्य : उसी तरह जिस तरह राजनर्तकी को नहीं जानते थे।

सही (√) या गलत (×) का निशान लगा कर बताइए कि उपर्युक्त वार्तालाप
क) बोझिल संवादों को प्रस्तुत करता है
ख) तीव्र संघर्ष और तनाव को प्रस्तुत करता है
ग) मंच पर प्रभावहीन होगा
घ) पाठक या दर्शक में जिज्ञासा की सृष्टि करता है
ङ) एकांकी को प्रभावपूर्ण बनाता है
च) उत्तर-प्रत्युत्तर के माध्यम से कथावस्तु को सक्रियता प्रदान करता है।

20.6 अभिनेयता या मंचीयता

डॉ. रामकुमार वर्मा स्वयं रंगमंच से जुड़े रहे हैं अतः उन्हें मंचीय आवश्यकताओं की व्यावहारिक जानकारी है। "कौमुदी महोत्सव" में उन्होंने बड़े ही स्पष्ट और सार्थक रंग-निर्देश दिए हैं। पात्र संख्या कम है। दृश्य एक है। घटनाएँ एक ही स्थान पर घटती है। अतः मंच सज्जा आदि की भी कोई समस्या नहीं है। कथा-विकास में कुतूहल तथा द्वंद्व के माध्यम से नाटकीयता की सृष्टि हुई

है। चाणक्य का सहसा प्रवेश और वसुगुप्त और अलका को बंदी बनाना कथा को आकस्मिक मोड़ प्रदान करता है और दर्शक की जिज्ञासा बढ़ती है जिसका समाधान अंत में चरम सीमा पर पहुँच कर रहस्योद्घाटन द्वारा होता है। चाणक्य और चंद्रगुप्त के बीच वार्तालाप में द्वंद्व की सृष्टि होती है। यद्यपि यह वार्तालाप अत्यधिक तीखी कटूक्तियों से पूर्ण तथा विस्तृत है जिससे इसकी प्रभावशीलता कम हुई है। इसी तरह चंद्रगुप्त और अलका का वार्तालाप बहुत लंबा चलता है और घटना व्यापार थोड़ी देर के लिए रुक-सा गया है। इस दौरान पाठक या दर्शक की जिज्ञासा कायम रखना आसानी से संभव प्रतीत नहीं होता। यहाँ संवाद काव्यात्मक होने के कारण भाषण या वाद-विवाद से प्रतीत होते हैं। अलका के गायन और नृत्य आदि के समावेश से एकांकी की रंगमंचीय अपेक्षाएँ बढ़ जाती हैं। ऐसी अभिनेत्री अपेक्षित है जो न केवल अभिनय में, बल्कि गायन और नृत्य में भी कुशल हो। यहाँ एक और बात विचारणीय है कौमुदी महोत्सव वर्मा जी ने मूलतः रेडियो के लिए लिखा था। इसी से इसमें ध्वनि प्रभावों का विशेष ध्यान रखा गया है। नृत्य-गायन की दृष्टि से भी यह रेडियो के लिए एक संभावना पूर्ण एकांकी है। क्योंकि वहाँ यह जरूरी नहीं होगा कि अलका की भूमिका कर रही अभिनेत्री ही नृत्य और गायन प्रस्तुत करें।

20.7 'कौमुदी महोत्सव' का मूल्यांकन

हम 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी का विश्लेषण कर चुके हैं। आगे हम लेखक की दृष्टि, एकांकी के प्रतिपाद्य और शीर्षक की सार्थकता के संबंध में विचार करेंगे।

एकांकी का प्रतिपाद्य

चंद्रगुप्त मौर्य को लेकर हिंदी में पहले भी नाटक लिखे जा चुके हैं। वर्मा जी से पहले जयशंकर प्रसाद इस विषय पर 'कल्याणी परिणय' और 'चंद्रगुप्त' नाटक लिख चुके थे। अतः सवाल यह उठता है चंद्रगुप्त मौर्य के प्रसंग को अपने नाटक का विषय बनाने के पीछे वर्मा जी का क्या उद्देश्य था। प्रसाद जी के नाटक मौर्य शासन की स्थापना और चंद्रगुप्त की विजय पर आकर समाप्त हो जाते हैं। वर्मा जी इस एकांकी माध्यम से दिखाना चाहते हैं कि मौर्य शासन की स्थापना करके चंद्रगुप्त ने प्रजा के सुख और संतोष को अपने शासन का आधार बनाया। इस तरह शासक के रूप में चंद्रगुप्त के उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार को एकांकी के केंद्र में रखा गया है। विलासी नंद के अन्याय और अत्याचार पूर्ण शासन का अंत करने के लिए चंद्रगुप्त को शस्त्र बल का सहारा लेना पड़ा था। किंतु अब शांति और व्यवस्था स्थापित करना ही उनका उद्देश्य है। कौमुदी महोत्सव का आयोजन जनता के मन में क्षोभ और क्लेश को दूर करके द्वेष और उल्लास के संचार के लिये ही किया जा रहा है। पर इसमें राजकोष का धन व्यय नहीं होना चाहिए क्योंकि वह धन तो जनहित कार्यों तथा जनता की सुरक्षा पर व्यय के लिए है। इस अवसर पर नगर का भव्य शृंगार लोगों के मन में उत्साह जगाने में सहायक होगा। इस समय नृत्य और संगीत का आयोजन स्वीकार करके चंद्रगुप्त कलाओं को प्रोत्साहन देना चाहता है। सुशासन-व्यवस्था में सभी कलाओं को पनपने का भरपूर अवसर होता है। कुसुमपुर में चंद्रगुप्त की हत्या का प्रयास प्रसाद के 'चंद्रगुप्त' नाटक में भी दिखाया गया है। चाणक्य के नीति कौशल से ही चंद्रगुप्त इस घातक प्रहार से बच सका और उसके स्थान पर मालविका को आत्मबलिदान करना पड़ा। यहाँ वर्मा जी ने विषकन्या का प्रसंग ला कर प्राचीन भारतीय राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

वसुगुप्त और अलका के प्रति सम्मान भावना भी एक हद तक चंद्रगुप्त की न्यायप्रियता की ही सूचक है। इसके माध्यम से लेखक शासक और जनता के संबंधों को स्पष्ट करना चाहता है और इस बात पर बल देता है कि शासक को उत्तरदायी होना चाहिए। चाणक्य की नीति कुशलता और सतर्कता के माध्यम से भी लेखक सुशासन व्यवस्था के महत्व को ही रेखांकित करता है। ध्यान देने की बात है कि इतिहास को दोहराना मात्र रामकुमार वर्मा का उद्देश्य नहीं है शासन व्यवस्था के लिए चाणक्य जैसे बुद्धिमान और त्यागी राजनीतिज्ञ और चंद्रगुप्त जैसे कर्तव्यनिष्ठ शासक वर्ग की आज भी आवश्यकता है। चाणक्य और चंद्रगुप्त के माध्यम से वह वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों की ओर भी संकेत करता है।

एकांकी का शीर्षक

एकांकी की समस्त घटनाएँ कौमुदी महोत्सव के आयोजन के इर्द-गिर्द घूमती हैं। पहले महोत्सव के आयोजन की तैयारी में और फिर चाणक्य द्वारा इसे रद्द कर दिए जाने की सूचना मिलने पर चाणक्य और चंद्रगुप्त के बीच विवाद में। वसुगुप्त भी अपने षड्यंत्र को सफल बनाने के लिए इस कौमुदी महोत्सव आयोजन का सहारा लेता है और चंद्रगुप्त के समक्ष इस आयोजन का प्रस्ताव करता है और अंत में जब षड्यंत्र खुल जाता है तब एकांकी का अंत चंद्रगुप्त के वाक्य 'कौमुदी

महोत्सव' नहीं होगा! की पुनरावृत्ति के साथ होता है। इस तरह कौमुदी महोत्सव समस्त घटना-व्यापार के केंद्र में रहता है। इस दृष्टि से एकांकी का शीर्षक सार्थक है।

बोध प्रश्न 4

i) 'कौमुदी महोत्सव' को सफलता से मंचित करने में जो थोड़ी बहुत बाधाएँ आ सकती हैं वह कौन-सी हैं?

....

....

....

ii) 'कौमुदी महोत्सव' शीर्षक की क्या सार्थकता है?

....

....

....

20.8 सारांश

इस इकाई में हमने 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी का विश्लेषण और मूल्यांकन किया। कथावस्तु, पात्र, भाषा, शैली और संवाद, अभिनेयता, संकलन-त्रय आदि की दृष्टि से एकांकी के विश्लेषण के पश्चात् एकांकी के प्रतिपाद्य लेखक की मूल दृष्टि और उसके शीर्षक की उपयुक्तता पर भी हमने विचार किया। अब आप 'कौमुदी महोत्सव' की विविध विशेषताओं को अच्छी तरह समझ गए होंगे। यह भी जान गए होंगे कि एकांकी का विश्लेषण और मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है यदि आप चाहें तो किसी अन्य एकांकी का विश्लेषण करने का प्रयास कर सकते हैं।

20.9 शब्दावली

अंतर्दृष्टि : सूक्ष्म दृष्टि, व्यावहारिक ज्ञान, जानकारी

नागवार : अरुचिकर, जो अनुकूल न हो

वैमनस्य : वैर

कटूक्ति : कड़वी बात

20.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) यशोवर्मन के वाक्य सूचित करते हैं कि नंद वंश का अंत हो जाने के बावजूद कुसुमपुर में चंद्रगुप्त के विरोध का अंत नहीं हो गया है। नंद का महामंत्री राक्षस मौजूद है और वह कूटनीति में निपुण है। वह अवश्य कोई षड्यंत्र रच रहा होगा। इसीलिए वह छिप कर कुसुमपुर से बाहर चला गया है।

ख) वसुगुप्त ने राक्षस के साथ मिल कर चंद्रगुप्त की हत्या की योजना बनाई है। इसके लिए वह राजनर्तकी के रूप में विषकन्या का प्रयोग करना चाहता है।

ग) चंद्रगुप्त को "कौमुदी महोत्सव" की घोषणा का तूर्यनाद इसलिए नहीं सुनाई पड़ा कि चाणक्य आदेश दे देता है कि कौमुदी महोत्सव न मनाया जाए।

बोध प्रश्न 2

i) क) चंद्रगुप्त अपनी शासन व्यवस्था में प्रजा के सुख और संतोष को सबसे ऊँचा स्थान देता है।

ख) कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कला और सौंदर्य को महत्व [illegible] करके चंद्रगुप्त

सिद्ध करना चाहता है कि वह न केवल वीर पराक्रमी शासक है अपितु कला और सौंदर्य का गुणग्राही भी है।

ग) यह वाक्य चंद्रगुप्त के आत्म-विश्वास के साथ-साथ उसके व्यक्तित्व की कमजोरी को भी प्रकट करते हैं। चाणक्य के प्रति सम्मान और विश्वास का भाव उसके मन से बड़ी जल्दी समाप्त हो जाता है।

ii) चंद्रगुप्त की तुलना में चाणक्य बहुत दूरदर्शी, नीति-कुशल और समझदार है। कुसुमपुर में आनंद और उल्लास के पीछे सुलग रही विद्रोह की चिनगारी को चंद्रगुप्त अनदेखा कर देता है। यशोवर्मन द्वारा समझाए जाने पर भी वह इस बात पर गौर नहीं करता। किंतु चाणक्य प्रत्यक्ष स्थिति के पीछे घट रही हर घटना पर गौर करता है। विद्रोह की शंका को निर्मूल नहीं समझता। चाणक्य में एक और विशेषता है जो चंद्रगुप्त में नहीं है। यह है चाणक्य की उदारता और चंद्रगुप्त के प्रति स्नेह भावना। चंद्रगुप्त छोटी-सी घटना से इतना क्रुद्ध हो जाता है कि चाणक्य को ईर्ष्यालु, कुटिल, घमंडी और क्षुद्र समझने लगता है। धैर्यपूर्वक स्थिति को देखना समझना ही नहीं चाहता और चाणक्य को अपना प्रतिद्वंद्वी मानने लगता है। ऐसा लगता है कि चंद्रगुप्त को अपने सम्मान के सिवा चाणक्य के सम्मान का ध्यान ही नहीं। किंतु चाणक्य उसके इस व्यवहार को क्षमा करता है क्योंकि उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं वह घातक षड्यंत्र से चंद्रगुप्त की रक्षा करना चाहता है।

iii) क) (×) ख) (√) ग) (×) घ) (√) ङ) (√) च) (×) छ) (×) ज) (×) झ) (×)

iv) लेखक ने भाषा, स्थान एवं व्यक्तियों के नामों, पदनामों, आचार-व्यवहार, क्रीड़ा-उत्सव, प्राचीन भारतीय समाज, राजनीति, संस्कृति, तथा कला आदि के माध्यम से ऐतिहासिक परिवेश को प्रस्तुत किया है।

बोध प्रश्न 3

i) 1 तत्सम शब्दों का प्रयोग 2 काव्यात्मक अलंकरण 3 भावनात्मकता 4 बिम्बों का प्रयोग

ii) चंद्रगुप्त और अलका का यह संवाद एकांकी के कार्य-व्यापार को आगे बढ़ाने की बजाय भावनात्मक वाद-विवाद प्रस्तुत करता है। अतः यह दर्शक की जिज्ञासा और आकर्षण को खींचे रहने में अधिक सक्षम नहीं होगा।

iii) क) (×) ख) (√) ग) (×) घ) (√) ङ) (√) च) (√)

बोध प्रश्न 4

i) भावनात्मकता पूर्ण लंबे संवाद, जो वाद-विवाद की स्थिति तक पहुँच गए हैं और जिनके कारण कार्य-व्यापार लगभग ठहर गया है, मंचन की सफलता में बाधक होंगे।

ii) एकांकी का संपूर्ण घटना व्यापार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से (यानी चंद्रगुप्त और चाणक्य के कार्यकलाप तथा वसुगुप्त और अलका के षड्यंत्र के माध्यम से) कौमुदी महोत्सव के आयोजन के इर्द-गिर्द चलता है। अतः शीर्षक उपयुक्त तथा सार्थक है।

इकाई 21 'रीढ़ की हड्डी' (जगदीश चंद्र माथुर) : वाचन

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 एकांकी का वाचन : 'रीढ़ की हड्डी'
21.3 एकांकी का सार
21.4 संदर्भ सहित व्याख्या
21.5 सारांश
21.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- एकांकीकार जगदीश चंद्र माथुर के बारे में बता सकेंगे;
- 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का कथासार अपने शब्दों में बता सकेंगे;
- एकांकी में इस्तेमाल हुए कठिन शब्दों, मुहावरों आदि का अर्थ बता सकेंगे; और
- एकांकी के विविध अंशों और उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी 'कौमुदी महोत्सव' का वाचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन कर चुके हैं। इस एकांकी में आप जगदीशचंद्र माथुर के एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' का वाचन करेंगे। आप देखेंगे कि विषय तथा प्रस्तुति की दृष्टि से यह एकांकी पिछले एकांकी से कुछ भिन्न है। वर्मा जी ने प्राचीन युग के प्रसंग को चुना था। यहाँ माथुर जी ने आज के जमाने की घटना को अपने एकांकी का विषय बनाया है।

हिंदी एकांकी के आरंभिक दौर के एकांकीकारों में जगदीशचंद्र माथुर एक जाना-पहचाना नाम है। उनका जन्म 16 जुलाई, 1917 को खुर्जा, जिला बुलंदशहर में तथा निधन 14 मई, 1978 को दिल्ली में हुआ था। माथुर जी की आरंभिक शिक्षा खुर्जा में तथा उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। सन् 1941 में वे आई.सी.एस. हुए तथा सन् 1956 से 1962 तक आकाशवाणी के महानिदेशक रहे। माथुर जी भारतीय प्रशासनिक सेवा से भी संबद्ध रहे। किंतु उनके कार्यों के गंभीर दायित्व भी उन्हें साहित्य सेवा से विमुख नहीं कर सके। उन्होंने हिंदी नाटक और एकांकी को अनेक सुंदर रचनाओं से समृद्ध किया। 'कोणार्क' और 'शारदीया' जैसे नाटकों के प्रकाशन ने हिंदी नाट्य-लेखन को एक महत्वपूर्ण दिशा प्रदान की। उनके कई एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए। जिनमें 'भोर का तारा' और 'ओ मेरे सपने' नामक संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जगदीशचंद्र माथुर के एकांकियों तथा नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें जीवन और समाज के ज्वलंत, सार्थक और गंभीर प्रश्नों को विषयवस्तु के रूप में चुना गया है और उन्हें ऐसे नाटकीय कौशल, भाषा की सजीवता और विविधता के साथ प्रस्तुत किया गया है कि ये एकांकी रंगमंच पर बहुत जीवंत और प्रभावपूर्ण रूप में सामने आते हैं।

'रीढ़ की हड्डी' एकांकी माथुर जी के 'भोर का तारा' नामक संकलन से लिया गया है। इस संग्रह में उनके 1934 से 1943 तक लिखे गए पाँच एकांकी संकलित हैं। इन एकांकियों में विषय की विविधता है। 'रीढ़ की हड्डी' विशुद्ध सामाजिक एकांकी है। यहाँ समाज की उस घृणित मनोवृत्ति को प्रस्तुत किया गया है जो स्त्रियों को पुरुष की तुलना में काफी निचले स्तर का मानती है। हमारी सामाजिक व्यवस्था में विवाह संबंध तय करते समय लड़कियों को पशुओं के समान निरीह और बेजानदार चीजों से बदतर समझ कर उनका मोल-भाव किया जाता है। इस एकांकी के माध्यम से माथुर जी ने समाज की इस प्रवृत्ति पर कठोर और सशक्त व्यंग्य किया है।

आगे हम एकांकी का वाचन करेंगे और देखेंगे कि लेखक ने अपने व्यंग्य को किस ढंग से प्रस्तुत किया है।

21.2 एकांकी का वाचन : रीढ़ की हड्डी

पात्र-परिचय

उमा : लडकी
रामस्वरूप : लड़की का पिता
प्रेमा : लड़की की माँ
शंकर : लड़का
गोपाल प्रसाद : लड़के का बाप
रतन : रामस्वरूप का नौकर

(मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नजर आती है, वह अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं। एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।)

घर के लोग किसी मेहमान के आतिथ्य की तैयारी में व्यस्त हैं।

रामस्वरूप : अबे, धीरे-धीरे चल।—अब तख्त को उधर मोड़ दे—उधर।—बस, बस।
(तख्त के रखे जाने की आवाज आती है)
नौकर : बिछा दूँ साहब?
रामस्वरूप : (जरा तेज आवाज में) और क्या करेगा? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो देर से पहुँचा था क्या?—बिछा दूँ साब?—और यह पसीना किस लिए बहाया है?
नौकर : (तख्त बिछाता है) ही-ही-ही।
रामस्वरूप : हँसता क्यों है?—अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं। कलसों से नहाता था लोटों की तरह। यह तख्त क्या चीज है?—उसे सीधा कर—यों—यों—हाँ, बस।—और सुन, बहू जी से दरी माँग ला, उसके ऊपर बिछाने के लिए—चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही।

(नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच में मेजपोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते साफ करते हैं। कुर्सियों पर भी दो-चार हाथ लगाते हैं। सहसा घर की मालकिन प्रेमा का आना। **गंदुमी**[1] रंग, छोटा कद। चेहरे और आवाज से जाहिर होता है कि किसी काम में बहुत व्यस्त है। उनके पीछे-पीछे **भीगी बिल्ली**[2] की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ। बाबू रामस्वरूप दोनों की तरफ देखने लगते हैं।)

प्रेमा : मैं कहती हूँ, तुम्हें इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड़ गई। एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में—
रामस्वरूप : धोती?
प्रेमा : हाँ अभी तो बदलकर आए हो और फिर न जाने किस लिए—
रामस्वरूप : लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने?
प्रेमा : यही तो कह रहा था रतन।
रामस्वरूप : क्यों बे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है? मैंने कहा था—धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे माँग ला।—अब तेरे लिए दिमाग कहाँ से लाऊँ! उल्लू कहीं का!
प्रेमा : अच्छा, जा, पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रखे हैं न; उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला।
रतन : और दरी?
प्रेमा : दरी तो यहीं रखी है कोने में। वह पड़ी तो है।
रामस्वरूप : (दरी उठाते हुए) और बीबी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी।—जल्दी जा। (रतन जाता है। पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं।)
प्रेमा : लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाये पड़ी है।
रामस्वरूप : मुँह फुलाए?—और तुम उसकी माँ किस मर्ज की दवा हो? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आए हैं। अब तुम्हारी बेवाकूफी से सारी मेहनत बेकार जाए तो मुझे दोष मत देना।
प्रेमा : तो मैं ही क्या करूँ? सारे जतन करके हार गई। तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखा कर इतना सिर चढ़ा रखा है। मेरी समझ में तो ये पढ़ाई-लिखाई के **जंजाल**[3] आते नहीं। अपना जमाना अच्छा था। 'आ', 'ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो **'स्त्री-सुबोधिनी'**[4] पढ़ ली। सच पूछो तो 'स्त्री-सुबोधिनी' में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—ऐसी बातें कि क्या तुम्हारे बी० ए०, एम० ए० की

शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

1 गंदुमी—गेहुँआ, 2 भीगी बिल्ली बनना (मुहावरा)—डर जाना, 3 जंजाल—झंझट, 4 "स्त्री-सुबोधिनी"—सन्नूलाल गुप्त द्वारा लिखित तथा नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित एक पुस्तक जिसमें स्त्रियों के ज्ञानवर्धन के लिए विविध विषयों की जानकारी दी गई है।

पढ़ाई में होंगी। और आजकल के तो **लच्छन**[1] ही अनोखे हैं।

रामस्वरूप : ग्रामोफोन बाजा होता है न?

प्रेमा : क्यों?

रामस्वरूप : दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ। उसे एक बार चलाकर जब चाहे रोक लो और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ। उसका रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

प्रेमा : हटो भी! तुम्हें **ठिठोली**[2] सूझती रहती है। यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में।

रामस्वरूप : तो हुआ क्या?

प्रेमा : तुम्हीं ने तो कहा था कि जरा ठीक-ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी ही सुन्दर हो, बिना **टीमटाम**[3] के भला कौन पूछता है। इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रखा था। पर उसे तो इन चीजों से न जाने किस जनम की नफरत है। मेरा कहना था कि आंचल में मुँह लपेट लेट गई। भई, मैं तो बाज आई तुम्हारी इस लड़की से।

रामस्वरूप : न जाने कैसा इसका दिमाग है। वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो **पौडर**[4] का कारबार चलता है।

प्रेमा : अरे मैंने पहले ही कहा था **ईंट्रेंस**[5] ही पास करा लेते—लड़की अपने हाथ रहती, और उतनी परेशानी उठानी न पड़ती। पर तुम तो—

रामस्वरूप : (बात काटकर) चुप, चुप—(दरवाजे में झाँकते हुए) तुम्हें कतई अपनी जबान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने जिक्र और ही ढंग से होगा। मगर तुम तो अभी से सब कुछ उगले देती हो। उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी।

प्रेमा : अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी। जैसी तुम्हारी मर्जी हो करना। बस मुझे तो मेरा काम बता दो।

रामस्वरूप : अच्छा तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है। पान लेकर भेज देना उसे। और नाश्ता तो तैयार है न? (रतन का आना) आ गया रतन!—इधर ला, इधर। बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल।—पकड़ तो जरा उधर से (चद्दर बिछाते हैं)

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज्यादा खाएँगे नहीं। कुछ नमकीन चीजें बना दी हैं। फल रखे ही हैं। चाय तैयार है और टोस्ट भी। मगर हाँ मक्खन? मक्खन तो आया ही नहीं।

रामस्वरूप : क्या कहा? मक्खन नहीं आया? तुम्हें भी किस वक्त याद आई है। जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं। अब बताओ रतन मक्खन लाए कि यहाँ का काम करें। दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरों के मारे—

लड़के वालों का दृष्टिकोण

प्रेमा : यहाँ का काम कौन ज्यादा है? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही, बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर-वाले कमरे में 'ट्रे' में रखा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी। एकाध चीज खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आएगा।—दो आदमी ही तो हैं?

रामस्वरूप : हाँ, एक तो बाबू गोपाल प्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना कि जरा करीने से आए। ये लोग जरा ऐसे ही हैं। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके **दकियानूसी ख्यालों**[6] पर। खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, **सभा-सोसाइटियों**[7] में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

स्त्री शिक्षा का विरोध

प्रेमा : और लड़का?

रामस्वरूप : बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी० एस-सी० के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है मैडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, **तालीम**[8] का दूसरा। क्या करूँ मजबूरी है। मतलब अपना है, वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी—

रतन : (जो अब तक दरवाजे के पास चुपचाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबूजी, बाबूजी!

रामस्वरूप : क्या है?

रतन : कोई आए हैं।

रामस्वरूप : (दरवाजे से बाहर झाँककर, जल्दी मुँह अन्दर करते हुए), अरे, ऐ प्रेमा, वे आ भी गए। (नौकर पर नजर पड़ते ही) और तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ! गया नहीं मक्खन लाने?—सब चौपट कर दिया।—अबे, उधर से नहीं, अन्दर के दरवाजे से जा। (नौकर अन्दर जाता है)—और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी।

---

1 लच्छन—लक्षण शब्द का तद्भव रूप, 2 ठिठोली—मज़ाक, 3 टीमटाम—ऊपरी सजावट, 4 पौडर—अंग्रेजी शब्द "पाउडर" का तद्भव रूप, 5 ईन्ट्रेंस—(अंग्रेजी शब्द एंट्रेंस का तद्भव रूप) एंट्रेंस—बारहवीं कक्षा। 6 दकियानूसी ख्याल—नवीनता विरोधी विचारधारा, 7 सभा-सोसाइटियों में जाना—शिक्षित, प्रबुद्ध और अपने को प्रगतिशील मानने वाले वर्ग के सामूहिक कार्यक्रमों में हिस्सेदारी लेना, 8 तालीम—शिक्षा।

(प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ जाती है। उसकी धोती जमीन पर रखे बाजे से अटक जाती है)
प्रेमा : ऊँह। यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कंबख्त!
रामस्वरूप : तुम जाओ, मैं रख देता हूँ!—जल्दी।
(प्रेमा जाती है। बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक)
रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। आइए, आइए!—हँ-हँ-हँ।
(बाबू गोपाल प्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आँखों से **लोक-चतुराई**[1] टपकती है। आवाज से मालूम होता है काफी अनुभवी और **फितरती**[2] महाशय है। उनका लड़का कुछ **खीस निपोरने**[3] वाले नौजवानों में से है। आवाज पतली है और खिसियाहट-भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।)

गोपाल प्रसाद और शंकर के व्यक्तित्व का परिचय

रामस्वरूप : (अपने दोनों हाथ मलते हुए) हँ-हँ इधर **तशरीफ लाइए**,[4] इधर—। (बाबू गोपाल प्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है)
रामस्वरूप : यह बेंत!—लाइए मुझे दीजिए। (कोने में रख देते हैं। सब बैठते हैं।) हँ-हँ!—मकान ढूँढ़ने में कुछ तकलीफ तो नहीं हुई?
गो० प्रसाद : **(खंखार कर)**[5] नहीं। ताँगेवाला जानता था। और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नहीं?
रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ तो दी—
गो० प्रसाद : अरे नहीं साहब! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।
रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ! यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके—हँ-हँ—सेवक ही हैं। हँ-हँ! (थोड़ी देर बाद लड़के की तरफ मुखातिब होकर) और कहिए, शंकर बाबू कितने दिनों की और छुट्टियाँ हैं?
शंकर : जी, कालेज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं। **'वीक एंड'**[6] में चला आया था।
रामस्वरूप : तो आपका कोर्स खत्म होने में तो अब साल भर रहा होगा?
शंकर : जी, यही कोई साल दो साल।
रामस्वरूप : साल, दो साल?
शंकर : हँ-हँ-हँ!—जी, एकाध साल का **'मार्जिन'**[7] रखता हूँ।
गो० प्रसाद : बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताएँ, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं। एक हमारा जमाना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी ही भूख!
रामस्वरूप : कचौड़ियाँ भी तो उस जमाने में पैसे की दो आती थीं।
गो० प्रसाद : जनाब यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी **बालाई**[8] आती थी और अकेले दो आने की हजम करने की ताकत थी, अकेले! और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह होते हैं स्कूलों में। तब न कोई वालीबाल जानता था, न टेनिस, न बेडमिण्टन। बस कभी हाकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाए कि यह लड़का कमजोर है।

गोपाल प्रसाद पुरानी पीढ़ी के उन लोगों में से हैं जो हर बात में अपने को युवा लोगों से बेहतर समझते हैं और बढ़ा-चढ़ाकर अपनी तारीफ करते हैं।

(शंकर और रामस्वरूप खीस निपोरते हैं)
रामस्वरूप : जी हाँ! उस जमाने की बात ही दूसरी थी। हँ-हँ
गो० प्रसाद : (जोशीली आवाज में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गई। बारह घंटे! जनाब मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने का **मैट्रिक**[9] भी वह अंग्रेजी लिखता था **फर्राटे की**[10] कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबिला नहीं कर सकते।
रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ। यह तो है ही।
गो० प्रसाद : माफ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस जमाने की जब याद आती है, अपने को **जब्त करना**[11] मुश्किल हो जाता है।
रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ!—जी हाँ, वह तो रंगीन जमाना था, रंगीन जमाना। हँ-हँ-हँ—
(शंकर भी ही-ही करता है)
गो० प्रसाद : (एक साथ अपनी आवाज और तरीका बदलते हुए) अच्छा तो साहब, फिर **'बिजनेस'**[12] की बातचीत हो जाए।
रामस्वरूप : (चौंक कर) बिजनेस? बिज—(समझकर) ओह!—अच्छा, अच्छा। लेकिन जरा नाश्ता तो कर लीजिए।
गो० प्रसाद : यह सब आप क्या **तकल्लुफ**[13] करते हैं!

विवाह के रिश्ते को भी एक तरह का व्यापार बना रखा है।

---

1 लोक-चतुराई—दुनियादारी, 2 फितरती—चालाक, धूर्त, 3 खीस निपोरना (मुहावरा)—निर्लज्जतापूर्वक हँसना, बनावटी हँसी हँसना, 4 तशरीफ लाइए—पधारिए, 5 खँखार कर—गला साफ करके, 6 वीक एंड (अंग्रेजी शब्द)—सप्ताह के अंत में, 7 मार्जिन (अंग्रेजी शब्द)—गुंजाइश, 8 बालाई—मलाई, 9 मैट्रिक (अंग्रेजी शब्द)—दसवीं कक्षा, 10 फर्राटे की—बिना किसी रुकावट के, 11 जब्त करना—सँभालना, 12 बिजनेस (अंग्रेजी शब्द)—व्यापार या व्यवसाय, 13 तकल्लुफ—औपचारिकता।

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ! तकल्लुफ किस बात का। हँ-हँ! यह तो मेरी बड़ी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये। वरना मैं किस काबिल हूँ। हँ-हँ!—माफ कीजिएगा, जरा अभी हाजिर हुआ। (अन्दर जाते हैं)

गो० प्रसाद : (थोड़ी देर बाद दबी आवाज में) आदमी तो भला है। मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है।

शंकर : जी—

(कुछ खँखार कर इधर-उधर देखता है)

गो० प्रसाद : क्यों क्या हुआ?

शंकर : कुछ नहीं।

गो० प्रसाद : झुक कर क्यों बैठते हो? ब्याह तय करने आए हो; कमर सीधी करके बैठो। तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर की **'बेक बोन'**[1]—(इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय की 'ट्रे' लिए हुए। मेज पर रख देते हैं)

गो० प्रसाद : आखिर आप माने नहीं!

रामस्वरूप : (चाय प्याले में डालते हुए) हँ-हँ-हँ! आपको विलायती पसन्द है या हिन्दुस्तानी?

गो० प्रसाद : नहीं-नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए। और चीनी भी ज्यादा डालिएगा। मुझे तो भई यह नया फैशन पसन्द नहीं। एक तो वैसे ही चाय में पानी काफी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाए तो जायका क्या रहेगा?

रामस्वरूप : हँ-हँ, कहते तो आप सही हैं।

(प्याला पकड़ाते हैं)

शंकर : (खँखार कर) सुना है, सरकार अब ज्यादा चीनी लेने वाले पर **'टेक्स'**[2] लगाएगी।

गो० प्रसाद : (चाय पीते हुए) हूँ। सरकार जो चाहे सो कर ले, पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

रामस्वरूप : (शंकर को प्याला पकड़ाते हुए) वह क्या?

गो० प्रसाद : खूबसूरती पर टैक्स। (रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं)। मजाक नहीं, साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देने वाले चूँ भी न करें। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर छोड़ दिया जाये कि अपनी खूबसूरती के **'स्टेंण्डर्ड'**[3] के **माफिक**[4] अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

रामस्वरूप : (जोर से हँसते हुए) वाह-वाह! खूब सोचा आपने! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के जमाने में तो यह कभी उठता भी न था। (तश्तरी गोपाल प्रसाद की तरफ बढ़ाते हैं) लीजिए।

गो० प्रसाद : (समोसा उठाते हुए) कभी नहीं साहब, कभी नहीं।

रामस्वरूप : (शंकर की तरफ **मुखातिब होकर**)[5] आपका क्या ख्याल है शंकर बाबू?

शंकर : किस मामले में?

रामस्वरूप : यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गो० प्रसाद : (बीच में ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आप से पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना **निहायत**[6] जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पौडर वगैरह लगाए, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम आप मान भी जाएँ, मगर घर की औरतें तो राजी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है?

रामस्वरूप : जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गो० प्रसाद : देखना क्या। जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

रामस्वरूप : हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है। हँ-हँ।

गो० प्रसाद : और जायचा (जन्म पत्र) तो मिल ही गया होगा?

रामस्वरूप : जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुर जी के चरणों में रख दिया। बस, **खुदबखुद**[7] मिला हुआ समझिए।

गो० प्रसाद : यह ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक। (थोड़ी देर रुककर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह गलत है न?

रामस्वरूप : (चौंककर) क्या?

गो० प्रसाद : यही पढ़ाई-लिखाई के बारे में।—जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को! बस हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिए—क्यों शंकर?

---

1 बैक बोन (अंग्रेज़ी शब्द)—रीढ़ की हड्डी, 2 टैक्स (अंग्रेज़ी शब्द)—कर, 3 स्टैंडर्ड (अंग्रेज़ी शब्द)—स्तर, 4 माफिक—अनुसार, 5 मुखातिब होकर—किसी की ओर बात कहने, सुनने या देखने के लिए प्रवृत्त हो कर, 6 निहायत—अत्यंत, 7 खुदबखुद—अपने आप।

'रीढ़ की हड्डी' (जगदीश चंद्र माथुर) : वाचन

शंकर : जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं।

रामस्वरूप : नौकरी का तो सवाल भी नहीं उठता।

गो० प्रसाद : और क्या साहब! देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि जब आपने अपने लड़कों को बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट[1] लीजिए। भला पूछिए इन अकल के ठेकेदारों[2] से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात। अरे मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेजी अखबार पढ़ने लगीं और 'पॉलिटिक्स'[3] वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।

दिमागी पिछड़ापन, पुरुषों को स्त्रियों से जन्मजात श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति

रामस्वरूप : जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नहीं। –हैं-हैं-हैं। (शंकर भी हँसता है, मगर गोपाल प्रसाद गंभीर हो जाते हैं।)

गो० प्रसाद : हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनियाँ में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीजों में से एक है।

रामस्वरूप : (शंकर से) चाय और लीजिए।

शंकर : धन्यवाद। पी चुका।

रामस्वरूप (गोपाल प्रसाद से) आप?

गो० प्रसाद : बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिए।

रामस्वरूप : आपने तो कुछ खाया ही नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बताएँ, वह मक्खन–।

गो० प्रसाद : नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं और फिर टोस्ट-बोस्ट मैं खाता भी नहीं।

रामस्वरूप : हैं-हैं। (मेज को एक तरफ सरका देते हैं। फिर अन्दर के दरवाजे की तरफ मुँह कर जरा जोर से) अरे, जरा पान भिजवा देना–सिगरेट मंगवाऊँ?

गो० प्रसाद : जी नहीं।

(पान की तश्तरी हाथों में लिए उमा आती है। सादगी के कपड़े। गर्दन झुकी हुई। बाबू गोपाल प्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँख छिपा कर उसे ताक रहे हैं।)

रामस्वरूप : हैं-हैं–यही, हैं-हैं, आपकी लड़की है। लाओ बेटी, पान मुझे दो।

(उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे चौंक उठते हैं।)

गो० प्रसाद :
शंकर : } (एक साथ) चश्मा!!!

रामस्वरूप : (जरा सकपकाकर) जी, वह तो–वह–पिछले महीने में उसकी आँखें दुखनी आ गई थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गो० प्रसाद : पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ?

रामस्वरूप : नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज किया न।

गो० प्रसाद : (संतुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में) बैठो, बेटी।

रामस्वरूप : वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे के पास।

(उमा बैठती है)

गो० प्रसाद : चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है। हाँ, कुछ गाना-बजाना सीखा है?

रामस्वरूप : जी हाँ, सितार भी, और बाजा भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

(उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर के बाद मीरा का मशहूर गीत मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई गाना शुरू कर देती है। स्वर से जाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है। यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झेंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एकदम रुक जाती है।)

उमा की हर तरह से जाँच करता है।

रामस्वरूप : क्यों क्या हुआ? गाने को पूरा करो उमा!

गो० प्रसाद : नहीं नहीं, साहब काफी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

(उमा सितार रखकर अन्दर जाने को बढ़ती है)

गो० प्रसाद : अभी ठहरो, बेटी!

रामस्वरूप : थोड़ा और बैठी रहो उमा!

---

1 ग्रेजुएट (अंग्रेज़ी शब्द)–बी० ए० पास यानी स्नातक, 2 अक्ल के ठेकेदार (मुहावरा)–अपने को बहुत बुद्धिमान समझने वाले व्यक्ति (यहाँ भाषा का व्यंग्यात्मक प्रयोग किया गया है, लेखक कहना चाहता है कि गोपाल प्रसाद स्वयं को अक्ल का ठेकेदार समझता है), 3 पालिटिक्स (अंग्रेज़ी शब्द)–राजनीति।

(उमा बैठती है)
गो० प्रसाद : (उमा से) तो तुमने पेंटिंग-वेंटिंग[1] भी सीखी है?
(उमा चुप)
रामस्वरूप : हाँ, वह तो आपको बताना भूल ही गया। यह जो तस्वीर टँगी हुई है; कुत्तेवाली, इसी ने खींची है। और वह उस दीवार पर भी।
गो० प्रसाद : हूँ। यह तो बहुत अच्छा है और सिलाई वगैरह?
रामस्वरूप : सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीजें भी। हैं-हैं-हैं।
गो० प्रसाद : ठीक है। लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते हैं? (उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं लेकिन उमा चुप है, उसी तरह गर्दन झुकाए। गोपाल प्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप **सकपकाते हैं**)[2]।
रामस्वरूप : जवाब दे, उमा। (गो० प्रसाद से) हैं-हैं, जरा शरमाती है। इनाम तो इसने—

कथानक में नाटकीय मोड़

गो० प्रसाद : (जरा रूखी आवाज में) जरा मुँह भी तो खोलना चाहिए।
रामस्वरूप : उमा देखो, आप क्या कह रहे हैं। जवाब दो न!

बेजान चीज़ों से भी बदतर हालत

उमा : (हल्की लेकिन मजबूत आवाज में) क्या जवाब दूँ बाबूजी! जब कुर्सी-मेज बिकती हैं तब दूकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीदार को दिखला देता है। पसंद आ गई तो अच्छा है। वरना...
रामस्वरूप : (चौंककर खड़े हो जाते हैं) उमा, उमा!
उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी। ...ये जो महाशय मेरे खरीदार बन कर आए हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता? क्या उनके चोट नहीं लगती? क्या वे **बेबस**[3] भेड़-बकरियाँ हैं जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भाल कर खरीदते हैं!
गो० प्रसाद : (ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?
उमा : (तेज आवाज में) जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं? और जरा अपने इन **साहबजादे**[4] से पूछिए कि पिछली फरवरी में ये लड़कियों के **होस्टल**[5] के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाए गए थे।
शंकर : बाबूजी चलिए।
गो० प्रसाद : लड़कियों के होस्टल में?—क्या तुम कालेज में पढ़ी हो? (रामस्वरूप चुप)।
उमा : जी हाँ मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह तांक-झाँक कर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्जत—अपने मान का ख्याल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना **मुँह छिपा**[6] कर भागे थे।
रामस्वरूप : उमा, उमा!!
गो० प्रसाद : (खड़े होकर गुस्से में) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी० ए० पास है, और आपने मुझे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए, मेरी छड़ी कहाँ है। मैं चलता हूँ। (छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं) बी० ए० पास! उफ्फोह! गजब हो जाता। झूठ का भी कुछ ठिकाना है! आओ बेटे, चलें।
(दरवाजे की ओर बढ़ते हैं)
उमा : जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे की रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं ...यानी बैकबोन, बैकबोन! (बाबू गोपाल प्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन: दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते हैं। उमा **सहसा**[7] चुप हो जाती लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में **तबदील हो**[8] जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।)
प्रेमा : उमा, उमा! ...रो रही है?
(यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है)
रतन : बाबू जी, मक्खन!
(सब रतन की ओर देखते हैं और पर्दा गिरता है)

बोध प्रश्न 1

क) प्रेमा तथा रामस्वरूप का नीचे दिया गया वार्तालाप किस बात का सूचक है? सही (√) अथवा गलत (×) का निशान लगा कर उत्तर दीजिए।

---

1 पेंटिंग (अंग्रेज़ी शब्द)—चित्रकला, 2 सकपकाना—दुविधा या असमंजस में पड़ जाना, 3 बेबस—परवश, पराधीन, 4 साहबजादा—रईस व्यक्ति का पुत्र, 5 हास्टल (अंग्रेज़ी शब्द)—छात्रावास, 6 मुँह छिपाना (मुहावरा)—लज्जित होकर भागना, 7 सहसा—अचानक, 8 तब्दील—बदल जाना

[illegible]ा : लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाये पड़ी है।
[illegible]मस्वरूप : मुँह फुलाए?—और तुम उसकी माँ किस मर्ज की दवा हो? जैसे-जैसे करके तो वे [illegible]ग पकड़ में आए हैं। अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाए तो मुझे दोष मत देना।

i) उमा को यह पसंद नहीं आ रहा कि लोग उसे देखने आ रहे हैं। ☐

ii) उसके पिता को उसके लिए वर ढूँढ़ने में किसी तरह की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। ☐

iii) लड़के वाले बहुत मुश्किल से रामस्वरूप की लड़की के रिश्ते की बात चलाने को तैयार हुये हैं। ☐

) प्रेमा के निम्नलिखित कथन से हमें समाज में व्याप्त कैसे विचारों का पता चलता है?

"**प्रेमा :** अरे मैंने पहले ही कहा था इंट्रेंस ही पास करा लेते—लड़की अपने हाथ रहती, और उतनी परेशानी उठानी न पड़ती। पर तुम तो···"

i) लड़कियों को ज्यादा पढ़ाने लिखाने से उनका बौद्धिक विकास होता है। ☐

ii) पढ़-लिख कर लड़कियाँ मनमानी करने लगती हैं। ☐

iii) पढ़ी-लिखी लड़कियाँ माँ-बाप के लिए समस्या बन जाती हैं। ☐

) निम्नलिखित वाक्य किसके हैं और किस बात के सूचक हैं? वाक्यों के नीचे दिए गए स्थान पर उत्तर दीजिए।

i) गुस्सा तो मुझे आता है इनके दकियानूसी ख्यालों पर।

....
....
....
....

ii) मतलब अपना है, वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी···

....
....
....
....

iii) हैं-हैं-हैं।—जी, एकाध साल का "मार्जिन" रखता हूँ।

....
....
....
....

iv) अच्छा तो साहब, फिर "बिजनेस" की बातचीत हो जाए।

....
....
....
....

v) चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है। हाँ कुछ गाना-बजाना सीखा

....

....

....

....

बोध प्रश्न 2

क) "झुक कर क्यों बैठते हो? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो" यह बात किसने, किससे और क्यों कही?

....

....

....

....

ख) "मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को"। यह बात किसने, किससे और क्यों कही?

....

....

....

....

बोध प्रश्न 3

क) गोपाल प्रसाद उमा को किस-किस दृष्टि से जाँच करता है?

....

....

....

....

ख) उमा गाते-गाते एकदम रुक क्यों जाती है?

....

....

....

....

ग) रामस्वरूप गोपाल प्रसाद की हर बात में हाँ-में-हाँ क्यों मिलाते हैं?

....

....

....

....

घ) उमा लड़कियों को बेबस भेड़-बकरियाँ क्यों मानती है?

....

....

....

....

बोध प्रश्न 4

सही (√) या (×) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

क) "आदमी तो भला है। मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है"।
गोपाल प्रसाद के इस वाक्य से उसके अपने चरित्र के बारे में पता चलता है कि वह:
   i) काफी भला आदमी है
   ii) स्वार्थी और लोभी आदमी है
   iii) धूर्त और चालाक है।

ख) "क्या जवाब दूँ बाबूजी। जब कुर्सी-मेज बिकती हैं तब दूकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीदार को दिखला देता है। पसंद आ गई तो अच्छा है। वरना..."
उमा का यह कथन सूचित करता है कि उसे लड़के और उसके पिता का व्यवहार:
   i) अपमानजनक लग रहा है
   ii) ठीक लग रहा है
   iii) अमानुषिक लग रहा है।

21.3 एकांकी का सार

एकांकी का आरंभ रामस्वरूप के घर में मेहमानों के आतिथ्य की तैयारी से होता है। रामस्वरूप कभी नौकर पर झुंझलाता, कभी चीज़ों को व्यवस्थित करता तो कभी प्रेमा को हिदायतें देता है। उसी समय प्रेमा की बातों से पता चलता है कि उमा इस सारी व्यवस्था से नाराज होकर मुँह फुलाए पड़ी है। सज-धज कर प्रदर्शन की वस्तु बनना उसे पसंद नहीं आ रहा। प्रेमा का कहना है कि पढ़-लिख जाने के कारण उमा अपने माता-पिता की बात नहीं मान रही। तभी रामस्वरूप प्रेमा को टोक देता है कि मेहमानों के सामने उमा की शिक्षा की चर्चा नहीं करनी है।

फिर वे दोनों मेहमनों के नाश्ते की व्यवस्था में लग जाते हैं। बाकी सब चीजें तो तैयार है बस टोस्ट के लिए मक्खन मँगाना है जो रतन तुरंत जाकर ले आएगा। तभी हमें पता चलता है मेहमान के रूप में दो व्यक्ति आ रहे हैं एक तो लड़का और दूसरा उसका पिता। दोनों पढ़े-लिखे होने के बावजूद बड़े दकियानूसी विचारों के हैं। ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करने के पक्ष में नहीं है। इतने में गोपालप्रसाद और उनका पुत्र शंकर आ जाते हैं। रामस्वरूप अपनी बातचीत और व्यवहार से उनकी पूरी-पूरी खातिर करने की कोशिश करता है। शंकर लखनऊ मेडीकल कालेज में पढ़ रहा है। स्वास्थ्य और व्यक्तित्व दोनों ही दृष्टियों से कमजोर हैं। पढ़ाई-लिखाई में भी अच्छा नहीं है।

गोपाल प्रसाद अपनी युवावस्था के दिनों के किस्से बढ़ा-चढ़ाकर सुनाने लगता है। रामस्वरूप भी उसकी हाँ-में-हाँ मिलाता है। रामस्वरूप जब चाय-नाश्ता लेने के लिए अंदर जाता है तो गोपाल प्रसाद धीरे-से कहता है कि रामस्वरूप आदमी तो ठीक लग रहा है, माली हालत भी खराब नहीं लग रही है, लड़की ठीक हो तो रिश्ता किया जा सकता है। तभी वह शंकर को ध्यान दिलाता है कि झुक कर बैठने की जरूरत नहीं है। ब्याह करने आया है तो कमर सीधी करके, तन कर बैठे।

चाय-नाश्ता करते हुए गोपाल प्रसाद कहता है कि शंकर की शादी वह ऐसी लड़की से करना चाहता है जो ज्यादा पढ़ी-लिखी न हो, क्योंकि बहू से नौकरी तो करानी नहीं है। किंतु लड़की खूबसूरत जरूर होनी चाहिए। ज्यादा पढ़ी-लिखी होगी तो उसके नखरे कौन उठाएगा। उसके विचार में लड़के और लड़कियाँ बराबर नहीं हैं। आदमियों का तो काम ही है पढ़-लिख कर काबिल बनना किंतु स्त्रियों को इसकी क्या जरूरत है। दुनिया में कुछ ऐसी चीज़ें हैं जो केवल पुरुषों के लिये ही है, स्त्रियों के लिये नहीं। ऊँची शिक्षा भी ऐसी ही चीज़ है।

जब वे नाश्ता कर चुकते हैं तब उमा पान की तश्तरी लेकर आती है। उसकी आँखों पर चश्मा देख कर पिता-पुत्र दोनों चौंक उठते हैं कि कहीं चश्मा पढ़ाई-लिखाई की वजह से तो नहीं लगा। रामस्वरूप झूठ कह देता है कि थोड़े दिन पहले उमा की आँखें दुखनी आ गई थीं इसलिए चश्मा लगाना पड़ा। फिर गोपाल प्रसाद उमा की परीक्षा लेना शुरू करता है। उसकी चाल-ढाल, शक्ल-सूरत आदि को पास करते हुए पूछता है कि उसे गाना-बजाना आता है कि नहीं। उमा

सितार बजा कर गाना सुनाती है। काफी ऊंचे स्वर में गाते हुए उमा की नजर शंकर से मिलती तो वह गाना एकदम बंद कर देती है और अंदर जाने लगती है तो गोपाल प्रसाद के कहने पर रामस्वरूप उसे रोक देता है। फिर गोपाल प्रसाद पता लगाता है कि उसे सिलाई, पेंटिंग आदि आती है या नहीं। कोई इनाम वगैरह जीते हैं या नहीं। उमा चुप रहती है। रामस्वरूप कहता है कि उमा लज्जावश चुप है। किंतु गोपाल प्रसाद को उमा की चुप्पी बिल्कुल पसंद नहीं आती और वह रूखी आवाज में कहता है "जरा मुँह भी तो खोलना चाहिए"। रामस्वरूप फिर उमा से जवाब देने के लिए कहता है तो उमा के भीतर दबा आक्रोश बाहर आ जाता है और वह कह उठती है कि क्या जवाब दे? उसकी स्थिति तो उन बेजान चीज़ों या भेड़-बकरियों की सी है जो बिक्री के लिए रखी हैं। लड़कियों की भावनाओं की परवाह किये बगैर उन्हें विवाह के लिए इस तरह पसंद-नापसंद किया जाता है मानों उन्हें खरीदा जा रहा हो। यह सुनकर गोपाल प्रसाद को गुस्सा आता है और वह रामस्वरूप से कहता है कि उमा उसकी बेइज्जती कर रही है। किंतु उमा उसे ध्यान दिलाती है कि इस तरह जाँच-परख करके इतनी देर से वह भी तो उमा की बेइज्जती कर रहा है, खासतौर से उस स्थिति में जबकि उसका पुत्र शंकर (जिसके लिए वह उमा की इतनी नाप-जोख कर रहा है) चरित्रहीन और कायर है। लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द चक्कर काटते पकड़ा गया तो उसने नौकरानी के पैर पकड़ लिये। होस्टल के जिक्र से गोपाल प्रसाद को पता चलता है कि उमा कालेज में पढ़ी है। वह रामस्वरूप पर दोषारोपण करता है कि उमा को मैट्रिक पास बताकर उसके साथ धोखा किया जा रहा है। बी० ए० पास लड़की से यदि कहीं उसके बेटे का रिश्ता तय हो जाता तो गजब हो जाता। यह कहकर वे दोनों जाने लगते हैं। उमा दृढ़ता के साथ कहती है कि उसने बी० ए० पास किया है यह कोई गलत काम नहीं है। गोपाल प्रसाद से वह कहती है कि वे लोग जरूर चले जाएँ और घर जाकर देखें कि शंकर के रीढ़ की हड्डी है या नहीं। यह सुन कर गोपाल प्रसाद को अपनी बेबसी पर गुस्सा आता है और शंकर खिसिया कर रुआँसा हो उठता है। उमा की उत्तेजना धीरे-धीरे सिसकियों में बदल जाती है। रतन मक्खन लेकर आ जाता है। यहीं पर एकांकी समाप्त हो जाता है।

21.4 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1

"और क्या साहब! देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि जब आपने अपने लड़कों को बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। अरे मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेजी अखबार पढ़ने लगीं और 'पॉलिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री जगदीशचंद्र माथुर के एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' से ली गई हैं। माथुर जी ने विविध प्रकार के एकांकी लिखे हैं। भारतीय समाज के विभिन्न ज्वलंत प्रश्नों को उन्होंने अपने एकांकियों का विषय बनाया है। प्रस्तुत एकांकी में माथुर जी ने विवाह के लिए लड़की पसंद करने की प्रथा पर व्यंग्य किया है। इसलिए उन्होंने शंकर तथा उसके पिता गोपाल प्रसाद द्वारा उमा को देखने आने की स्थिति को एकांकी का विषय बनाया है।

प्रसंग : गोपाल प्रसाद रामस्वरूप को बताता है कि अपने लड़के के विवाह के मामले में उसकी निश्चित विचारधारा है। लड़की का सुंदर होना बहुत जरूरी है किंतु उसे ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं होना चाहिए। ज्यादा से ज्यादा मैट्रिक पास हो। उन्हें बहू चाहिए मेम साहब नहीं। ज्यादा पढ़ी लिखी लड़की मेम साहब की तरह व्यवहार करेगी। उसके नखरों को कौन उठाएगा। शंकर का कहना है कि उसे अपनी पत्नी से नौकरी तो करानी नहीं फिर ज्यादा पढ़ाई-लिखाई की क्या जरूरत है। इसलिए गोपाल प्रसाद रामस्वरूप से कहता है :

व्याख्या : लोग उससे पूछते हैं कि जब उसने अपने लड़कों को ऊँची शिक्षा दिलाई है उन्हें बी० ए०, एम० ए० पास कराया है तो उनकी शादी भी उनके मेल खाती पढ़ी-लिखी लड़कियों से करनी चाहिए। इस तरह उसे अपने बेटों के लिए ग्रेजुएट बहुएँ लानी चाहिए। ऐसा सुझाव देने वाले लोग अपने आप को बहुत ज्यादा अक्लमंद समझते हैं किंतु वास्तव में वे बहुत अक्लमंद नहीं हैं। वे यह नहीं जानते कि लड़कों और लड़कियों को बराबरी की शिक्षा की जरूरत नहीं है। इस मामले में स्त्री-पुरुष बराबर नहीं है। पुरुषों का तो काम ही है शिक्षा पाकर योग्य बनना। किंतु यदि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान शिक्षा पाकर योग्य बन जाएँगी, अंग्रेजी के अखबार पढ़ने लगेंगी, राजनीति पर बहस करने लगेंगी तो घर-बार और गृहस्थी कौन सँभालेगा? स्त्रियों का काम तो

घर गृहस्थी सँभालना है बौद्धिक चर्चा करना नहीं। स्त्रियाँ पुरुषों के समकक्ष नहीं हो सकतीं। यह अंतर प्राकृतिक है जो सभी बड़े प्राणियों में होता है। मोर के पंख होते हैं मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं शेरनी के नहीं। यानी प्रकृति ने नर को नारी से श्रेष्ठ बनाया है। यह जन्मजात अंतर है जो कायम रहना चाहिए। इसे दूर करने की कोशिश उचित नहीं है। इस तरह गोपाल प्रसाद पुरुष को स्त्री से जन्मजात श्रेष्ठ मानता है।

विशेष :

1 इन वाक्यों से गोपाल प्रसाद के दिमागी पिछड़ेपन की झलक मिलती है।

2 भारतीय समाज की दकियानूसी विचारधारा का पता चलता है।

3 गोपाल प्रसाद के माध्यम से लेखक ने समाज की पिछड़ी हुई मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया है।

4 भाषा में बोलचाल की सहजता है। अंग्रेजी, उर्दू आदि के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। एक मुहावरे का प्रयोग हुआ है–"अक्ल के ठेकेदार" यानी अपने आप को बहुत अक्लमंद समझने वाला व्यक्ति।

उद्धरण 2

"जी हाँ मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नहीं किया, चोरी नहीं की और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँक कर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्जत–अपने मान का ख्याल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़ कर अपना मुँह छिपा कर भागे थे।"

संदर्भ : (पिछले उद्धरण की भाँति)

प्रसंग : गोपाल प्रसाद के दकियानूसी ख्यालों की वजह से रामस्वरूप ने उसे यह नहीं बताया कि उमा बी० ए० पास है। उमा जब गोपाल प्रसाद और शंकर के सामने आती है तो गोपाल प्रसाद उसकी खूब परीक्षा लेता है। गाना-बजाना, सिलाई-कढ़ाई, चित्रकारी आदि सब में उसकी निपुणता की जाँच करने के बाद वह पूछता है कि उसने कोई इनाम वगैरह जीते हैं कि नहीं। उमा गोपाल प्रसाद के हर तरह के व्यवहार को चुपचाप बर्दाश्त करती रहती है। उसके पिता रामस्वरूप ही ज्यादातर सवालों का जवाब देते हैं। किंतु गोपाल प्रसाद जोर देता है कि उमा ही उसकी बात का उत्तर दे। रामस्वरूप उमा से बोलने के लिए कहता है तो उमा का आक्रोश बाहर आ जाता है। वह कहती है कि वह क्या बोले। उसकी स्थिति बिक्री के लिए रखी बेजानदार चीजों के समान है जिन्हें बोलने का अधिकार नहीं इस पर गोपाल प्रसाद कहता है कि उमा उसकी बेइज्जती कर रही है तो उमा उत्तेजित होकर कह देती है कि जिस तरह से गोपाल प्रसाद उसकी नाप-जोख कर रहे हैं उस तरह क्या उमा की बेइज्जती नहीं हो रही। फिर जरा अपने सुपुत्र की ओर भी देखें जो पिछली फरवरी में लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द घूमते हुए पकड़ा गया था। होस्टल का नाम सुनते ही गोपाल प्रसाद चौंक उठता है कि उमा कालेज में पढ़ी है? तो उमा उत्तर देती है :

व्याख्या : हाँ वह कालेज में पढ़ी है और उसने बी० ए० पास किया है। किंतु बी० ए० पास करना कोई बुरा काम नहीं है जिसे छिपाया जाए या जिसके लिए शर्म महसूस की जाए। पढ़ना-लिखना कोई पाप या अपराध नहीं है। उसने शंकर की तरह कायरतापूर्ण कार्य नहीं किया, उसे अपने आत्म-सम्मान का ख्याल है। वह ऐसा कोई काम नहीं करती जिससे उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचे। किंतु शंकर को तो अपनी इज्जत की भी परवाह नहीं है। जब वह लड़कियों के होस्टल के आस-पास शरारतपूर्ण व्यवहार करता पकड़ा गया तो दंड से बचने के लिए उसने नौकरानी के पैर पकड़ लिए। इस तरह वह गोपाल प्रसाद को ध्यान दिलाना चाहती है कि उमा की इतनी जाँच-पड़ताल करते समय वह यह भी ध्यान रखें कि उसका लड़का कैसा है। साथ ही लड़कियों की पढ़ाई-लिखाई के प्रति भी अपना दृष्टिकोण बदलें।

विशेष:

1 ये वाक्य एक शिक्षित लड़की के आत्म-विश्वास और आक्रोश के सूचक हैं। इनसे समाज की बदलती हुई चेतना का पता चलता है।

2 भाषा आवेगपूर्ण है किंतु इसमें बोलचाल की सहजता है।

3 यहाँ "मुँह छिपाना" मुहावरा प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ है लज्जित होना।

नोट : यहाँ हमने दो उद्धरणों की व्याख्या दे दी है। आगे हम इस एकांकी के कुछ अन्य अंश दे रहे हैं इनकी व्याख्या कीजिए।

उद्धरण - 1
हाँ, एक तो बाबू गोपाल प्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना कि जरा करीने से आए। ये लोग जरा ऐसे ही हैं। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी ख्यालों पर। खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, सभा-सोसाइटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

संदर्भ : एकांकी का नाम

लेखक का नाम

एकांकीकार का योगदान

एकांकी का प्रतिपाद्य

प्रसंग : रामस्वरूप के घर में मेहमान आने वाले हैं उनके स्वागत की तैयारी...

रामस्वरूप और उसकी पत्नी प्रेमा का वार्तालाप

व्याख्या : रामस्वरूप द्वारा अपनी पत्नी को दी जाने वाली सलाह

मेहमानों के बारे में रामस्वरूप के विचार

गोपाल प्रसाद और उनके पुत्र का मत

विशेष :
1 गोपाल प्रसाद तथा शंकर के विचारों की जानकारी

2 सामाजिक विचारधारा

3 भाषा

उद्धरण - 2
अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी। ...ये जो महाशय मेरे खरीददार बन कर आए हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता? क्या उनके चोट नहीं लगती? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भाल कर खरीदते हैं।

संदर्भ : पहले उद्धरण की भाँति

प्रसंग : गोपाल प्रसाद को ज़ोर देने पर उमा का बोलना

गोपाल प्रसाद के व्यवहार का विरोध

रामस्वरूप का चौंकना

व्याख्या : अपनी बात पर दृढ़ रहते हुए गोपाल प्रसाद को खरी-खरी सुनाना

लड़कियों की भावनाओं की उपेक्षा के प्रति विरोध प्रकट करना

लड़कियों की निरीह पशुओं जैसी स्थिति को स्पष्ट करना

विशेष :
1 स्त्रियों को पुरुषों से हीन समझने की मनोवृत्ति पर प्रत्यक्ष प्रहार

2 उमा का साहस और दृढ़ता

3 भाषा

21.5 सारांश

इस इकाई में आपने जगदीशचंद्र माथुर के एकांकी "रीढ़ की हड्डी" का वाचन किया। साथ ही एकांकीकार का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। ऐतिहासिक और सामाजिक एकांकी के अंतर को भी आप समझ गए होंगे। अब आप रीढ़ की हड्डी का कथावस्तु अपने शब्दों में बता सकते हैं। इसके विभिन्न अंशों की व्याख्या कर सकते हैं तथा उनकी शिल्पगत विशेषताएँ बता सकते हैं।

21.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

क) i) (√) ii) (×) iii) (√)

ख) i) (×) ii) (√) iii) (√)

ग) i) यह रामस्वरूप का कथन है। अपनी लड़की के लिए उचित वर की तलाश में उसे काफी कठिनाई उठानी पड़ी है। अब जो लोग लड़की देखने आ रहे हैं वे भी पढ़े-लिखे होने के बावजूद काफी पिछड़े विचारों के हैं और लड़कियों की उच्च शिक्षा के विरोधी हैं। रामस्वरूप को उनका यह दृष्टिकोण पसंद नहीं है किंतु मजबूरी है कि उसे अपनी लड़की की शादी करनी है।

ii) यह रामस्वरूप का कथन है। उसे अपनी लड़की उमा की शादी के लिए कोई उपयुक्त लड़का ढूँढ़ना है। अतः उसे झूठ भी बोलना पड़ा है कि उसकी लड़की ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है। यदि उसे अपनी बेटी के विवाह की मजबूरी न होती तो वह उन लोगों को खरी-खरी सुनाता जो शिक्षा पर पुरुषों का एकाधिकार मानते हैं।

iii) यह शंकर का वाक्य है। शंकर काफी समय से लखनऊ मेडीकल कालेज में पढ़ रहा है। रामस्वरूप पूछता है कि अब तो उसका कोर्स पूरा होने में केवल एक वर्ष बचा होगा। किंतु सच्चाई यह है कि शंकर भली-भाँति पढ़ नहीं रहा। अतः वह कहता है कि अभी साल-दो-साल बाकी हैं। वह निर्धारित समय में अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाता। इसलिए एकाध साल अधिक लगाने की गुंजाइश रख कर चलता है।

iv) यह गोपाल प्रसाद का कथन है और सूचित करता है कि वह विवाह को सामाजिक या वैयक्तिक संबंध न मानकर व्यापार मानता है। व्यापार में उसे लाभ होना चाहिए घाटा नहीं।

v) यह गोपाल प्रसाद का कथन है। वह उमा की हर तरह से नाप-जोख करता है उसकी चाल-ढाल, शक्ल-सूरत, विविध विषयों में निपुणता आदि। यह वाक्य लड़कियों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का सूचक है।

बोध प्रश्न 2

क) यह बात गोपाल प्रसाद ने शंकर से कही है। शंकर की शारीरिक बनावट ही ऐसी है कि उसकी कमर झुकी हुई है किंतु गोपाल प्रसाद की राय में लड़का होना ही उसकी श्रेष्ठता का प्रतीक है अतः जब ब्याह की बातचीत करने आए हैं तो गर्व से तन कर बैठना चाहिए।

ख) यह बात गोपाल प्रसाद ने रामस्वरूप से कही है। वह अपने लड़के की शादी पढ़ी-लिखी लड़की से नहीं करना चाहता। उसकी राय में पढ़ी-लिखी लड़की के नखरे होते हैं वह अपने आपको अक्लमंद समझती है और यह नखरे उठाना गोपाल प्रसाद को बर्दाश्त नहीं है।

बोध प्रश्न 3

क) गोपाल प्रसाद उमा की चाल-ढाल और शक्ल-सूरत की तो जाँच करता ही है उसकी गाने-बजाने, चित्रकला, सिलाई-कढ़ाई आदि की भी जाँच करता है।

ख) गाना गाते-गाते उमा की निगाह शंकर से मिल जाती है। अचानक वह गाना बंद कर देती है क्योंकि वह शंकर को पहचान जाती है और उसका कायरतापूर्ण व्यवहार उमा को ध्यान आ जाता है।

ग) रामस्वरूप हर बात में गोपाल प्रसाद की हाँ-में-हाँ मिलाता है क्योंकि वह चाहता है कि किसी भी तरह उमा का रिश्ता हो जाए।

घ) उमा लड़कियों को बेबस भेड़-बकरियाँ मानती है क्योंकि शादी के बारे में उनकी राय का कोई मायने नहीं है। सब तरह का अधिकार पुरुष वर्ग को है। लड़की को देखने के बहाने वे उसकी जाँच इस तरह करते हैं मानो कोई भेड़-बकरी खरीद रहे हों।

बोध प्रश्न 4

क) i) (×) ii) (√) iii) (√)

ख) i) (√) ii) (×) iii) (√)

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद यू जी एच आई - 01

हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम
हिंदी गद्य

खंड
4

हिंदी एकांकी (दूसरा भाग)

इकाई 18 - 21 पहले भाग में

इकाई 22
'रीढ़ की हड्डी' : विश्लेषण और मूल्यांकन 74

इकाई 23
'जोंक' (उपेंद्रनाथ 'अश्क') : वाचन एवं विश्लेषण 88

इकाई 24
'संस्कार और भावना' (विष्णु प्रभाकर) : वाचन एवं विश्लेषण 117

इकाई 25
'गिरती दीवारें' (उदयशंकर भट्ट) : वाचन एवं विश्लेषण 138

इकाई 22 'रीढ़ की हड्डी' : विश्लेषण एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 कथानक
- 22.2.1 आरंभ
- 22.2.2 विकास
- 22.2.3 परिणति

22.3 चरित्र-चित्रण
- 22.3.1 उमा
- 22.3.2 गोपाल प्रसाद

22.4 परिवेश
22.5 संरचना शिल्प
- 22.5.1 भाषा
- 22.5.2 शैली
- 22.5.3 संवाद

22.6 अभिनेयता
22.7 मूल्यांकन
22.8 सारांश
22.9 शब्दावली
22.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का वाचन किया। आप इसके कथ्य को भली-भाँति समझ गए होंगे। इस इकाई में हम एकांकी के तत्वों के आधार पर 'रीढ़ की हड्डी' का विश्लेषण और मूल्यांकन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'रीढ़ की हड्डी' के कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे;
- इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण कर सकेंगे;
- इसके परिवेश की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- इसकी भाषा-शैली और संवादों की विशेषताएँ समझा सकेंगे;
- अभिनेयता की दृष्टि से 'रीढ़ की हड्डी' की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- एकांकीकार की दृष्टि और एकांकी के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे;
- इसके शीर्षक की सार्थकता के बारे में अपना मत बता सकेंगे;
- उपर्युक्त तत्वों के आधार पर अन्य एकांकियों के विश्लेषण का प्रयास कर सकेंगे

22.1 प्रस्तावना

इकाई 21 में हमने 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का ध्यानपूर्वक वाचन किया। इससे पहले हमने ' कौमुदी महोत्सव ' का वाचन एवं विश्लेषण किया था। दोनों एकांकियों की तुलना करने पर हम देखते हैं कि ये एकांकी भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमियों को लेकर लिखे गए हैं। 'कौमुदी महोत्सव' प्राचीन भारतीय इतिहास से संबंधित था जब कि 'रीढ़ की हड्डी' आधुनिक युग के भारतीय समाज के एक मध्यवर्गीय परिवार का चित्र प्रस्तुत करता है। विषय की भिन्नता से पूरी रचना के कलेवर में भिन्नता आती है। यह भिन्नता पात्रों की मनःस्थिति, भाषा, परिवेश, प्रतिपाद्य आदि सभी स्तरों पर देखी जा सकती है। इस इकाई में हम कथावस्तु, पात्रों के चरित्र-चित्रण, संरचना-शिल्प अभिनेयता आदि की दृष्टि से 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का विश्लेषण और मूल्यांकन करेंगे।

2.2 कथानक

छली इकाई में 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का वाचन करते समय आपने इसके कथानक, पात्रों, ाषा आदि पर ध्यान दिया होगा। इस एकांकी का कथानक एक मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित । रामस्वरूप और प्रेमा की बेटी उमा को विवाह के लिए देखने शंकर और उसके पिता गोपाल ाद आने वाले हैं। प्रेमा और रामस्वरूप अतिथियों के सत्कार की पूरी तैयारी करते हैं। वे चाहते कि लड़की का रिश्ता तय हो जाए। इन दोनों की बातचीत से हमें कुछ बातें पता चलती हैं। चे लिखे वाक्यों पर ध्यान दीजिए :

) **प्रेमा :** दरी तो यहीं रखी है कोने में। वह पड़ी तो है।
रामस्वरूप : (दरी उठाते हुए) और बीबी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी। जल्दी जा। (रतन जाता है पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं)
प्रेमा : लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाए पड़ी है।
रामस्वरूप : मुँह फुलाए? और तुम उसकी माँ किस मर्ज की दवा हो? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आए हैं। अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाए तो मुझे दोष मत देना।
प्रेमा : तो मैं ही क्या करूँ सारे जतन करके हार गई। तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखा कर इतना सिर चढ़ा रखा है। मेरी समझ में तो ये पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं।

) **प्रेमा :** अरे मैंने पहले ही कहा था इंट्रेंस पास करा लेते—लड़की अपने हाथ में रहती, और उतनी परेशानी न उठानी पड़ती। पर तुम तो—
रामस्वरूप : (बात काटकर) चुप, चुप—(दरवाजे में झाँकते हुए) तुम्हें कतई अपनी जबान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने जिक्र और ही ढंग से होगा। मगर तुम तो अभी से सब कुछ उगले देती हो। उनके आने तक न जाने क्या हाल करोगी।

ब हम देखते हैं कि ऊपर उद्धृत वार्तालाप के अंशों से हमें क्या-क्या जानकारी मिलती है। ाता-पिता की ओर से पूरी तैयारी के बावजूद भी उमा मुँह फुलाए पड़ी है यानी वह असंतुष्ट है। सके असंतोष का कारण क्या है? रामस्वरूप के कथन "जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में ाए हैं", से हमें पता चलता है कि लड़का और उसके पिता बहुत मुश्किल से रामस्वरूप की ड़की से रिश्ते की बातचीत के लिए राजी हुए हैं। इस वाक्य से और भी कई बातों का आभास में मिलता है। रामस्वरूप को उमा के विवाह के संबंध में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ हा है। वह कई लड़कों से उमा के विवाह की बातचीत का प्रयास कर चुका है और उसका प्रयास फल नहीं हुआ है। ये लोग भी सहजता से नहीं, बल्कि काफी मुश्किल से रामस्वरूप की लड़की ो देखने को तैयार हुए हैं। इसलिए अब अगर उमा अपनी अनिच्छा ज़ाहिर करती है तो मस्वरूप की सारी मेहनत बेकार हो जाएगी। इसलिए वे प्रेमा से कहता है कि पूरी कोशिश रके उमा को तैयार करो। प्रेमा का मानना है कि पढ़-लिख जाने के कारण उमा अपने ाता-पिता की बात नहीं मान रही और अपनी चला रही है। यदि वह ज्यादा पढ़ी-लिखी न होती ो वैसा ही करती जैसा माँ-बाप चाहते। यहीं रामस्वरूप प्रेमा से पढ़ाई-लिखाई के संबंध में चुप हने को कहते हैं और ध्यान दिलाते हैं कि लड़के वालों से उन्होंने और ढंग से चर्चा की है। यह और ढंग" क्या है? इसका अभी पता नहीं।

ागे रामस्वरूप की बातों से पता चलता है कि जो व्यक्ति लड़की देखने आ रहे हैं वे पुराने और क्रियाशील विचारों के हैं। स्वयं पढ़े लिखे हैं किंतु अपने लड़के की शादी ज्यादा पढ़ी-लिखी ड़की से नहीं करना चाहते। रामस्वरूप को इन लोगों की विचारधारा पसंद नहीं किंतु उसकी जबूरी है कि उसे अपनी लड़की का विवाह करना है।

भी लड़का—शंकर—और उसके पिता गोपाल प्रसाद आते हैं। शंकर मेडीकल कालेज में पढ़ रहा है कंतु पढ़ाई-लिखाई में उसकी ज्यादा दिलचस्पी नहीं है वह अपनी कक्षा पास करने में एकाध साल ा मार्जिन रख कर चलता है। गोपाल प्रसाद की दिलचस्पी रामस्वरूप द्वारा की जा रही ातिरदारी में न होकर "बिजनेस" में यानी रिश्ते के संबंध में बातचीत में है। वह खूबसूरत, तुर, गुणवान लड़की से अपने लड़के का विवाह करना चाहता है। किंतु उसकी एक पक्की शर्त है क लड़की ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं होनी चाहिए। ज्यादा से ज्यादा मैट्रिक हो। उसे अपने पुत्रवधू से ौकरी तो करानी नहीं है फिर पढ़ी-लिखी लड़की के नखरे कौन उठाए। उसके ख्याल से स्त्रियों ो पुरुषों की बराबरी करने की जरूरत नहीं है क्योंकि कुछ चीजों का अधिकार केवल पुरुषों को ी होता है।

जब उमा उनके सामने आती है तब वह उसकी अच्छी खासी जाँच-पड़ताल करता है, शक्ल-सूरत, चाल-ढाल, गाना-बजाना, पेंटिंग, सिलाई आदि सभी की जाँच होती है। उमा को चश्मा लगाए देख कर पिता-पुत्र चौंक उठते हैं कि कहीं ज्यादा पढ़ाई-लिखाई की वजह से तो चश्मा नहीं लगा। उनकी बातचीत का उत्तर रामस्वरूप ही देते हैं। उमा चुप है किंतु गोपाल प्रसाद उसके बोलने-चालने का भी इम्तहान लेना चाहते हैं सबके कहने पर भी वह थोड़ी देर तक चुप रहती है। किंतु बार-बार पूछे जाने पर वह बोलती है।

यहीं कथानक नया मोड़ लेता है। उमा गोपाल प्रसाद के व्यवहार के प्रति अपना असंतोष व्यक्त करती है और कहती है कि लड़की की स्थिति वैसी ही है जैसे बाजार में बिक रही किसी भी निर्जीव वस्तु की। उसकी भावनाओं, उसके मान-अपमान और उसकी परवशता का ध्यान रखे बगैर बेझिझक रूप से उसके विवाह का बिजनिस किया जा रहा है। क्या उसकी स्थिति कसाई द्वारा खरीदे जा रहे पशुओं जैसी है? उमा के इस व्यवहार पर गोपाल प्रसाद नाराज हो जाते हैं कि उनकी बेइज्जती की गई है। किंतु उमा फिर उनसे प्रश्न करती है कि क्या लड़कियों को अपनी बेइज्जती नहीं लगती जब उनकी इस तरह नाप-तौल की जाती है। इसी समय उमा शंकर के उस आचरण का पर्दाफाश भी कर देती है जब वह लड़कियों के होस्टल के आस-पास शरारत करता पकड़ा गया था।

गोपाल प्रसाद को जब पता चलता है कि उमा बी० ए० पास है तो वह रामस्वरूप पर दोष लगाता है कि उसने सच्चाई छिपाई है। यदि यह झूठ न खुलता और बी० ए० पास लड़की से शंकर का विवाह हो जाता तो गजब हो जाता। वे पिता-पुत्र जाने लगते हैं। उमा उन पर व्यंग्य करती हुई कहती है कि वे चले जाएँ और घर जा कर पता लगाएँ कि उनके बेटे की "रीढ़ की हड्डी' है कि नहीं।

इस तरह चरम सीमा पर पहुँच कर एकांकी समाप्त हो जाता है।

एकांकी का कथानक छोटा तथा प्रभावपूर्ण है। एक ही दृश्य है। सारी घटनाएँ रामस्वरूप की बैठक में लगातार घटती हैं। इस तरह स्थान, समय और कार्य की एकता का निर्वाह किया गया है। उमा की चुप्पी और रामस्वरूप तथा गोपाल प्रसाद के आग्रह पर बोलने पर कथानक अचानक नाटकीय मोड़ लेता है और जिज्ञासा तथा कौतुहल की सृष्टि होती है।

घटनाएँ तेजी से आगे बढ़ती हैं और कार्य व्यापार की सक्रियता निरंतर बनी रहती हैं। अंत में जब लड़का और उसके पिता चले जाते हैं और उमा भावावेग में सिसकियाँ भरने लगती हैं तभी रतन का अचानक प्रवेश होता है और वह कहता है "बाबू जी मक्खन"। रतन का यह वाक्य तनाव में व्यंग्य की सृष्टि करता है।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर नीचे दिये गये स्थान पर दीजिए:

क) रामस्वरूप यह बात क्यों छिपाता है कि उमा ने बी० ए० पास किया है।

....

....

....

....

....

ख) गोपाल प्रसाद अपने लड़के का विवाह पढ़ी लिखी लड़की से क्यों नहीं करना चाहता?

....

....

....

....

....

ग) उमा गोपाल प्रसाद से यह क्यों कहती है कि घर जा कर देखिए कि आपके बेटे की 'रीढ़ की हड्डी' है या नहीं?

....

....

....

....

....

22.3 चरित्र-चित्रण

यदि 'कौमुदी महोत्सव' के पात्रों से 'रीढ़ की हड्डी' के पात्रों की तुलना करें तो हमें दोनों में कुछ अंतर दिखाई देता है। क्या आपने गौर किया है कि यह अंतर किस तरह का है। आइए हम दोनों एकांकियों के पात्रों को देखें। 'कौमुदी महोत्सव' के पात्र शासक वर्ग के हैं। सम्राट, महामंत्री कार्यातिक, समाहर्त्ता आदि या तो राजन्य वर्ग के हैं या राजकाज से संबंधित हैं। इसके विपरीत 'रीढ़ की हड्डी' सामाजिक एकांकी है। इसलिए इसके पात्र हमारी रोजमर्रा की जिंदगी के व्यक्ति हैं। अपने आचार-विचार और व्यवहार से वे हमें अपने आस-पास के लोगों के समान दिखाई देते हैं। 'रीढ़ की हड्डी' में कुल 6 पात्र हैं। जिनमें रतन की भूमिका बहुत गौण है। शेष उमा, रामस्वरूप और गोपाल प्रसाद की प्रमुख भूमिका है तथा प्रेमा और शंकर सहायक पात्रों के रूप में हैं। आगे हम एकांकी के आधार पर इन पात्रों का चरित्र-चित्रण करेंगे।

22.3.1 उमा

उमा इस एकांकी में मुख्य पात्र है। समस्त घटनाएँ उसी के आस-पास घूमती हैं। उमा से हमारा परिचय रामस्वरूप और प्रेमा के वार्तालाप के माध्यम से होता है। हमें पता चलता है कि जो कुछ हो रहा है उससे उमा असंतुष्ट है। वह सज-धज कर प्रदर्शन की वस्तु बन कर शंकर और उसके पिता के सामने नहीं आना चाहती। यहीं हमें यह भी पता चलता है कि वह पढ़ी-लिखी लड़की है। हम उसे देखते तब हैं जब वह गोपाल प्रसाद तथा शंकर के सामने पान की तश्तरी लेकर आती है। उसके व्यक्तित्व में सादगी है। गोपाल प्रसाद हर तरह से जाँच पड़ताल करता है और सर्वगुण सम्पन्नता की अपेक्षा करता है। वह चुपचाप रहती है किंतु इस पर भी गोपाल प्रसाद कहता है कि 'जरा मुँह भी तो खोलना चाहिए' और रामस्वरूप आग्रह करता है कि उमा को गोपाल प्रसाद की बातचीत का जवाब देना चाहिए तो उमा के मन का दबा हुआ आक्रोश निकल पड़ता है। वह बाजार में बेची जा रही बेजान चीजों से भी बदतर अपनी स्थिति पर असंतोष ज़ाहिर करती है। उमा के निम्नलिखित कथनों को देखें :

> **उमा :** (हल्की लेकिन मजबूत आवाज में) क्या जवाब दूँ बाबूजी। जब कुर्सी-मेज बिकती हैं तब दुकानदार कुर्सी मेज से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीददार को दिखला देता है पसंद आ गई तो अच्छा है। वरना...
> **रामस्वरूप :** (चौंककर खड़े हो जाते हैं) उमा, उमा।
> **उमा :** अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी। ये जो महाशय मेरे खरीददार बन कर आए हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता क्या उनके चोट नहीं लगती? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं जिन्हें कसाई अच्छी तरह देखभाल कर खरीदते हैं।
> **गोपाल प्रसाद :** (ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?
> **उमा :** (तेज आवाज में) जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तौल कर रहे हैं? और जरा अपने इन साहबजादे से पूछिए कि पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाए गए थे।
> **शंकर :** बाबूजी चलिए।
> **गोपाल प्रसाद :** लड़कियों के होस्टल में? क्या तुम कालेज में पढ़ी हो? (रामस्वरूप चुप)
> **उमा :** जी हाँ मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है कोई पाप नहीं किया, चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँक कर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्जत अपने मान का ख्याल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

उमा के उपर्युक्त कथनों से हमें उसके चरित्र की कई विशेषताओं का पता चलता है। लड़कियों के प्रति हो रहे अपमानजनक अन्याय को वह सामाजिक परंपरा समझ कर आसानी से स्वीकार नहीं करती। बुद्धिमानी से विरोध करती है और गोपाल प्रसाद को ध्यान दिलाती है कि विवाह के लिए लड़की को पसंद करने या नापसंद करने की पद्धति में लड़की की भावनाओं, उसके सम्मान का

कोई स्थान नहीं है। लड़कियों को निर्जीव वस्तुओं या पशुओं की भाँति नाप-तौल करने का पुरुषों को कोई अधिकार नहीं है, खास तौर से उनको जो अपने को केवल पुरुष होने के नाते श्रेष्ठ मानते हैं।

यहीं उसकी एक अन्य विशेषता, उसका स्वाभिमान, प्रकट होता है। वह अपनी बेइज्जती का विरोध करते हुए शंकर के कायरतापूर्ण व्यवहार का पर्दाफाश कर देती है। गोपाल प्रसाद जब चौंकते हैं कि यह बात उनसे छिपाई गई है कि उमा कालेज में पढ़ी है तो उमा दृढ़ता से कहती है कि उसने कालेज में शिक्षा प्राप्त की है और बी० ए० पास किया है। यह कोई बुरी बात नहीं जिसे वह छिपाए। उसने शंकर की तरह कोई कायरता का काम नहीं किया है क्योंकि उसे अपने सम्मान का ख्याल है। उमा का यह व्यवहार उसके साहस और आत्म-विश्वास का प्रतीक है। इस तरह वह एक सुशिक्षित, बुद्धिमान और समझदार लड़की है।

22.3.2 गोपाल प्रसाद

गोपाल प्रसाद "रीढ़ की हड्डी" का प्रमुख पुरुष पात्र है। अपने पुत्र शंकर के रिश्ते के लिए लड़की देखने आता है। रामस्वरूप और प्रेमा की बातचीत से पता चलता है कि गोपाल प्रसाद इस रिश्ते की बातचीत चलाने के लिए मुश्किल से तैयार हुआ है। स्वयं लेखक ने रंग-संकेतों में गोपाल प्रसा का परिचय इस तरह दिया है :

> "आँखों से लोक चतुराई टपकती है। आवाज से लगता है कि काफी अनुभवी और फितरती महाशय हैं।"

रामस्वरूप के घर पहुँच कर वह काफी दुनियादारी पूर्ण व्यवहार करता है। अपनी हर बात को सही समझता है और मानता है कि जो लोग उसकी तरह नहीं सोचते वे गलत हैं। यही कारण है कि वह अपनी जवानी के ज़माने की तारीफ काफी बढ़-चढ़ कर करता है। रिश्ते की बातचीत को बिजनिस की बातचीत मानता है। वह पढ़ा-लिखा है वकील है, किंतु विचारों से काफी दकियानूस किस्म का आदमी है। रामस्वरूप के स्वभाव, आर्थिक स्थिति आदि के बारे में आश्वस्त हो जाने के बाद वह बताता है कि उसे अपने लड़के का विवाह कैसी लड़की से करना है।

> **गोपाल प्रसाद :** यह ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक। (थोड़ी देर रुक कर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह गलत है न?
> **रामस्वरूप :** (चौंक कर) क्या?
> **गोपाल प्रसाद :** यही पढ़ाई-लिखाई के बारे में। जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज़्यादा पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को। बस हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिए—क्यों शंकर?
> **शंकर :** जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं।
> **रामस्वरूप :** नौकरी का तो सवाल भी नहीं उठता।
> **गोपाल प्रसाद :** और क्या साहब। देखिए कुछ लोग मुझ से कहते हैं कि जब आपने —कों को बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेजी अखबार पढ़ने लगी और पॉलिटिक्स बगैरह पर बहस करने लगीं तब तो चल चुकी गृहस्थी। जनाब मोर के पंख होते हैं मोरनी के नहीं। शेर के बाल होते हैं शेरनी के नहीं।
> **रामस्वरूप :** जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नहीं। हैं-हैं-हैं। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीजों में से एक है।"

गोपाल प्रसाद के इन कथनों से हमें पता चलता है कि वह शिक्षित स्त्रियों के बिल्कुल खिलाफ है। वह अपने बेटे की शादी उच्च शिक्षा प्राप्त लड़की से करने को हरगिज तैयार नहीं। मगर ऐसा क्यों? वह मानता है कि लड़के-लड़कियों या स्त्री-पुरुष का दर्जा समान नहीं है। दुनिया में कुछ ऐसी बातें हैं जो केवल पुरुषों के लिए सुरक्षित हैं और ऊँची शिक्षा भी उन चीजों में से एक है। उसके विचार से यदि स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर पढ़-लिख लेंगी और प्रबुद्ध हो जाएँगी—अंग्रेजी अखबार पढ़ लेंगी या राजनीति समझने लगेंगी तो वे पुरुषों की बराबरी करने लगेंगी। जब वे पुरुषों के बराबर हो जाएंगी तो घर-गृहस्थी कौन देखेगा। इस तरह वह पुरुषों को स्त्रियों से जन्मजात श्रेष्ठ मानता है। अपने मत की पुष्टि के लिए शेर और मोर का उदाहरण भी देता है। गोपाल प्रसाद के यह विचार उसके दिमागी पिछड़ेपन के सूचक हैं। वह विवेक और बुद्धि की बजाए रूढ़िवादी ढंग से सोचता है और अपने सोच को बिल्कुल सही मानता है। पढ़े-लिखे व्यक्ति में जो जागरूकता और विचारों की व्यापकता होनी चाहिए वह गोपाल प्रसाद में नहीं है।

जब उमा उसके सामने आती है तब वह बेझिझक होकर उसकी हर तरह से जाँच करता है—चश्मा, पढ़ाई-लिखाई की वजह से तो नहीं लगा, चाल में कोई खराबी तो नहीं, शक्ल खूबसूरत है, गाना-बजाना, पेंटिंग, सिलाई सभी कुछ आता है कि नहीं, और इस पर भी कुछ इनाम जीते हैं कि नहीं। इन बातों का जवाब भी वह उमा के मुँह से सुनना चाहता है। जब उसे पता चलता है कि उमा बी० ए० पास है तो आरोप लगाता है कि रामस्वरूप ने उसके साथ दगा किया। उसे इस बात की बिल्कुल परवाह नहीं कि उसका यह व्यवहार दूसरों को कैसा लगता है। वह तो यह मान बैठा है कि जो कुछ वह कर रहा है ठीक है।

गोपाल प्रसाद की एक और विशेषता यह है कि लड़की में तो वह सभी गुणों की तलाश कर रहा है पर इस बात की उसे बिल्कुल परवाह नहीं कि वे सभी उसके लड़के में हैं या नहीं। उदाहरण के लिए उसका कहना है "लड़की का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है" भले ही लड़के की कमर झुकी हो, आवाज पतली हो और खिसियाहट भरी हो। लड़के का स्वास्थ्य कमजोर है पढ़ाई-लिखाई में भी वह तेज नहीं है। मगर उसके लिए हिदायत केवल इतनी ही है "झुक कर क्यों बैठते हो? ब्याह तय करने आये हो कमर सीधी करके बैठो"।

अभी हमने उमा तथा गोपाल प्रसाद के चरित्र का विश्लेषण किया। अब एकांकी के शेष चरित्र का विश्लेषण आप स्वयं कर सकते हैं। उनके कथनों, आचार-व्यवहार आदि पर ध्यान देने पर उनके चरित्र की जो विशेषताएँ आप अनुभव करें वे ही आपके विश्लेषण का आधार होंगी।

22.4 परिवेश

'रीढ़ की हड्डी' एक मध्यवर्गीय भारतीय परिवार को लेकर लिखा गया सामाजिक एकांकी है। यहाँ हमें आधुनिक युग का वातावरण दिखाई देता है। 'कौमुदी महोत्सव' में प्राचीन युग का वातावरण था किंतु 'रीढ़ की हड्डी' के पात्र, घटनाएँ, भाषा आदि हमारे अपने जमाने की हैं। इसलिए यह हमारे ज्यादा निकट महसूस होता है। माथुर जी ने यह एकांकी 1940 के आस-पास लिखा था। उस समय के मध्यवर्गीय परिवार का चित्र इसमें मिलता है। मंच-सज्जा, लोगों के रहन-सहन आचार-व्यवहार आदि से उस समय की मानसिकता को उभारा गया है। यह मध्यवर्गीय परिवार में लड़की के विवाह में आने वाली कठिनाइयों को प्रस्तुत करता है। हमारे समाज में स्थायी रूप से मान्यता प्राप्त लड़की-लड़के में भेदभाव की मनोवृत्तियों पर यहाँ प्रहार किया गया है। इसके लिए वर पक्ष के लोगों की धूर्तता की हद तक पहुँची हुई स्वार्थपरकता को केंद्र में रखते हुए सामाजिक परिवेश को प्रस्तुत किया गया है। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक तक आते-आते भारतीय समाज में कई तरह के बदलाव आ रहे थे। स्त्रियों के लिए पुरुषों के समान अधिकारों की माँग सामाजिक स्वतंत्रता और शिक्षा आदि का भी व्यापक स्तर पर प्रसार हो रहा था। समाज के जागरूक और बुद्धिमान लोग इसे निहायत जरूरी समझ कर इस पर जोर दे रहे थे। किंतु दूसरी ओर ऐसा वर्ग भी था जो बदलती हुई स्थितियों से समझौता नहीं करना चाहता था। बदलाव आ जाने से उसे अपना एकाधिकार खंडित होता दिखाई देता था। ऐसे ही वर्ग के व्यक्ति हैं गोपाल प्रसाद और शंकर। प्रेमा भी ज्यादा पढ़ाई-लिखाई को उचित नहीं समझती। किंतु प्रेमा के इस ढंग से सोचने के पीछे स्वार्थपरता की चालाकी नहीं बल्कि उसका अपना अज्ञान है।

आधुनिकता विरोधी और प्रगति विरोधी वर्ग हर मामले में अपने पुराने जमाने की बात करता है और यह सिद्ध करना चाहता है कि उसके जमाने में हर चीज बेहतर थी। 'रीढ़ की हड्डी' में गोपाल प्रसाद इसी वर्ग का प्रनिनिधित्व करता है।

आपने गौर किया होगा कि इस एकांकी में 'कौमुदी महोत्सव' की भाँति कोई पात्र विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं। पात्रों के चरित्र भारतीय समाज की स्थिति विशेष को उभारने में सहायक हैं। इस तरह यहाँ पात्र या कथानक उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना कि परिवेश महत्वपूर्ण है। यह भारतीय मध्यवर्गीय परिवार का परिवेश है। इस समाज में एक तरह की रूढ़िग्रस्तता का वातावरण व्याप्त है। शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही तरह के व्यक्ति इस रूढ़िग्रस्तता के शिकार हैं। इसीलिए अपने सोच पर किसी तरह के तर्क का विवेक लागू नहीं करते।

एकांकी की घटनाओं पर यदि हम आज के संदर्भों में विचार करें तो हमें लगेगा कि भला यह क्या छिपाने की बात है कि लड़की ग्रेजुएट है। शिक्षित होना गर्व की बात है अपराध नहीं। किंतु चौथे दशक के आस-पास के दिनों में भारतीय समाज की मनोवृत्तियों के अपने अंतर्विरोध थे और उस समय के परिवेश की दृष्टि से यह बात असंगत नहीं लगती। उस वक्त का समाज बदलाव को

इतनी सहजता से स्वीकार नहीं कर पा रहा था। पिछड़ी हुई दकियानूसी विचारधारा एक बड़ी बाधा बन कर खड़ी थी। बदलाव और रूढ़ियों के संघर्ष तथा तनाव को 'रीढ़ की हड्डी' का परिवेश बड़े ही व्यंग्यात्मक और तीखे ढंग से उभारता है।

बोध प्रश्न 2

क) "जी हाँ मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी.ए. पास किया है कोई पाप नहीं किया, चोरी नहीं की और न ही आपके पुत्र की तरह ताक-झाँक कर कायरता दिखाई।"

इस कथन से उमा की किन विशेषताओं का पता चलता है? सही (√) और गलत (×) का निशान लगा कर बताइए :

i) उदंडता

ii) दृढ़ता

iii) स्वाभिमान

iv) पिछड़ापन

v) आत्म-विश्वास

vi) आक्रोश

vii) बुद्धिमत्ता

viii) झगड़ालूपन

ख) गोपालप्रसाद के निम्नलिखित वाक्यों से हमें उसके चरित्र की किस विशेषता का पता चलता है?

i) "जनाब मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।"

....

....

ii) "बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था।

....

....

ग) 'रीढ़ की हड्डी' में हमें भारतीय समाज का कैसा चित्र मिलता है?

....

....

....

....

....

....

22.5 संरचना शिल्प

संरचना शिल्प के अन्तर्गत भाषा, शैली तथा संवाद पर विचार किया जाता है। सामाजिक विषय को लेकर लिखे जाने के कारण इस एकांकी की भाषा-शैली और संवाद 'कौमुदी महोत्सव' से भिन्न हैं। आइए देखें यह भिन्नता किस प्रकार की है।

22.5.1 भाषा

'रीढ़ की हड्डी' के पात्र मध्यवर्गीय परिवार के हैं। विषय वस्तु भी सामान्य जीवन की घटना से संबंधित है। आधुनिक समाज के वातावरण से संबद्ध होने के कारण इस एकांकी की भाषा हमें अपने जीवन के अधिक निकट दिखाई देती है। इसमें आम बोलचाल की भाषा की सहजता और

सरलता है। शब्द-चयन रोजमर्रा की भाषा से किया गया है। इसीलिए अंग्रेजी, उर्दू आदि के शब्द सहजता से प्रयुक्त हुए हैं। तारीफ, तकल्लुफ, फितरती, तालीम जैसे उर्दू शब्दों और मार्जिन, स्टैंडर्ड, बिजनेस, बैकवोन जैसे अंग्रेजी शब्दों का बखूबी प्रयोग हुआ है। प्रेमा पढ़ी लिखी नहीं है अतः उसके द्वारा प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द तद्भव रूप में आए हैं, जैसे—पौडर, ईंट्रेस आदि।

रोजमर्रा की बातचीत में हम कई बार किसी शब्द पर बल देने के लिए उसे दोहराते हैं किंतु दोहराते समय अक्सर उस शब्द के पहले वर्ण के स्थान पर कोई अन्य वर्ण इस्तेमाल करते हैं यह प्रवृत्ति ' रीढ़ की हड्डी ' की भाषा में देखने में आती है। इसे हम नीचे लिखे शब्दों में देख सकते है :

पौडर-वौडर, टोस्ट-वोस्ट, पढ़ाई-वढ़ाई, पेंटिंग-वेंटिंग, इनाम-विनाम, मकान-वकान।

आम बोलचाल में इस्तेमाल होने वाले मुहावरे भी इस एकांकी में इस्तेमाल हुए है जैसे—बाज आना, मुँह फुलाना, खीसें निपोरना, कोरी-कोरी सुनाना, काँटों में घसीटना, सेर पर सवा सेर होना।

'रीढ़ की हड्डी' की भाषा संपूर्ण नाटकीय परिस्थिति के व्यंग्य को उभारने में पूरी तरह सक्षम है। पात्रों ने अपनी स्थिति, स्वभाव और मनोदशा के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। रामस्वरूप किसी भी तरह से अपनी बेटी का रिश्ता तय कर देना चाहता है इसलिए उसकी भाषा में व्यावहारिक चतुराई दिखाई देती है। नीचे हम रामस्वरूप और उसकी पत्नी के बीच बातचीत को देखें :

> **रामस्वरूप :** बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी. एस. सी. के बाद लखनऊ में ही पढ़ता है मेडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ मजबूरी है। मतलब अपना है, वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी

किंतु गोपाल प्रसाद और शंकर से बातचीत करते हुए रामस्वरूप की भाषा का दूसरा ही रंग है :

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। यह लीजिए आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके—हँ-हँ—सेवक ही हैं। हँ-हँ।

गोपाल प्रसाद की भाषा में लोक चतुराई और धूर्तता है वहीं उमा की भाषा में आहत स्वाभिमान की उत्तेजनापूर्ण भावनात्मकता।

22.5.2 शैली

'रीढ़ की हड्डी' की शैली की प्रमुख विशेषता है सामान्य वार्तालाप की सहजता । इस एकांकी का संपूर्ण कथ्य एक सामाजिक व्यंग्य है। अतः माथुर जी ने व्यंग्यात्मक शैली को अपनाया है। व्यंग्य की सृष्टि प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही ढंगों से की गई है। प्रत्यक्ष ढंग से तो उमा लड़के और उसके पिता को खरी-खोटी सुनाती है। परोक्ष रूप से व्यंग्य की सृष्टि पूरे नाट्य-व्यापार में की गई है। गोपाल प्रसाद और शंकर के आतिथ्य की तैयारी, आने पर उनका पूरा तौर-तरीका, बातचीत, सोचने का ढंग आदि सभी लेखक के व्यंग्य के लक्ष्य हैं। इस व्यंग्य को उभारने के लिए प्रतीकात्मक शैली का सहारा लिया गया है। गोपाल प्रसाद शंकर से कहता है—"झुक कर क्यों बैठते हो? ब्याह करने आये हो, कमर सीधी करके बेठो।" शंकर खींसे निपोरने वाला, आत्म-विश्वास विहीन कमजोर व्यक्ति है। उसकी रीढ़ की हड्डी न होना प्रतीक है उसकी पौरूषविहीनता का, यानी उसमें सामान्य पुरुष के व्यक्तित्व की गरिमा और आत्म-सम्मान की भावना का अभाव।

22.5.3 संवाद

हम चर्चा कर चुके हैं कि संवादों की एकांकी में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रोज़मर्रा के जीवन को विषय बनाकर लिखे गए एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' के संवादों में आम बोलचाल की सहजता और संप्रेषणीयता है। न तो इनमें 'कौमुदी-महोत्सव' के संवादों जैसी अतिशय भावात्मकता है और न ही अनावश्यक विस्तार। पात्रों ने लंबे भाषण नहीं दिए। अपनी स्थिति और स्वभाव के अनुकूल ही बातचीत की है। इसलिए संवाद पात्रों के चरित्र के उद्घाटन और कथानक को आगे बढ़ाने में सर्वथा सफल रहे हैं। गोपाल प्रसाद या रामस्वरूप कभी-कभी अपने पिछले जमाने के बारे में बढ़-चढ़ कर बातें करते हैं। इससे उनकी स्वभावगत विशेषताएँ ही उभर कर सामने आती हैं। नीचे दिया गया उदाहरण देखें :

रामस्वरूप : जी हाँ। उस जमाने की बात ही दूसरा था। ह-ह
गोपाल प्रसाद : (जोशीली आवाज में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे तो बारह घंटे की "सिटिंग" हो गई। बारह घंटे। जनाब मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने में मैट्रिक भी वह अंग्रेजी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम. ए. भी मुकाबिला नहीं कर सकते।
रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ, यह तो है ही।
गोपाल प्रसाद : माफ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप उस जमाने की जब याद आती हैं तो अपने को जब्त करना मुश्किल हो जाता है।
रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। जी हाँ, वह तो रंगीन जमाना था, रंगीन जमाना हँ-हँ-हँ।
(शंकर भी ही-ही करता है)

यह वार्तालाप एक ओर से तो गोपाल प्रसाद की ढींग हाँकने की प्रवृत्ति को सूचित करता है दूसरा रामस्वरूप के मानसिक तनाव की स्थिति को भी सूचित करता है। चूँकि वह किसी भी तरह अपनी बेटी का रिश्ता तय करना चाहता है अतः वह गोपाल प्रसाद और शंकर को खुश करने के लिए हर बात में हाँ में हाँ मिलाता है।

उमा के वचनों में भावावेग और उत्तेजना है। उसके मन में दबी कसक को अचानक फूटने का मौका मिलता है और वह अपना आक्रोश प्रकट करती है। उसके संवाद भावनाओं के बोझ से दबे नहीं बल्कि तीखे, व्यंग्यात्मक और उत्तेजनापूर्ण होने के कारण ज्यादा प्रभावपूर्ण और संप्रेषणीय हैं। वाक्य छोटे-छोटे, सीधे और सहज बोधगम्य हैं। उनमें भाषा की सज-धज नहीं है भावों की मार्मिक व्यंजना है उदाहरण के लिए हम नीचे दिए कथन को देख सकते हैं :

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी। ये जो महाशय मेरे खरीददार बन कर आए हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता? क्या उनके चोट नहीं लगती क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं जिन्हें कसाई अच्छी तरह देखभाल कर खरीदते हैं।
गोपाल प्रसाद : (ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?
उमा : (तेज आवाज में) जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तौल कर रहे हैं? और जरा अपने इस साहबजादे से पूछिए कि पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाये गए थे।
शंकर : बाबूजी चलिए।
गोपाल प्रसाद : लड़कियों के होस्टल में? क्या तुम कालेज में पढ़ी हो?
(रामस्वरूप चुप)
उमा : जी हाँ मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी. ए. पास किया है ...

यहाँ हमें ऐसा नहीं लगता है कि कोई शब्द फालतू प्रयुक्त हुआ है, कोई वाक्य अतिरिक्त है। अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए जो बात जरूरी थी वही कही गई है।

इस तरह संवाद बड़े ही सार्थक और सारगर्भित हैं। बोलचाल की सहजता और रवानी है।

बोध प्रश्न 3

क) 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी की भाषा की चार प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

ख) लेखक ने कौन-सी शैली का प्रयोग किया है।

....

....

....

....

....

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

i) 'रीढ़ की हड्डी' के संवाद .... हैं।(लंबे, दार्शनिक, काव्यात्मक, सार्थक)

ii) जगदीशचंद्र माथुर ने यहाँ .... भाषा अपनाई है। (विश्लेषणात्मक, भावात्मक, बोलचाल की)

घ) 'रीढ़ की हड्डी' की निम्नलिखित विशेषताओं को प्रस्तुत करने वाले अंश उद्धृत कीजिए—

i) बढ़-चढ़ कर तारीफ करने की प्रवृत्ति जाहिर करने वाले संवाद

....

....

....

ii) आवेग पूर्ण भाषा

....

....

....

22.6 अभिनेयता

माथुर जी लंबे समय तक रंगमंच तथा रेडियो से व्यावहारिक रूप से जुड़े रहे थे। रंग प्रदर्शनों में सक्रिय भाग लेने के कारण वे रंगमंच की आवश्यकताओं से भलीभाँति परिचित थे। यही कारण है कि रंगमंचीय अपेक्षाओं की पूर्ति उनके नाटकों तथा एकांकियों की सहज विशेषता है। उनके अधिकांश नाटक और एकांकी मंच पर कई बार अभिनीत हो चुके हैं तथा रेडियो पर प्रसारित हो चुके हैं।

'रीढ़ की हड्डी' में भी हम इन विशेषताओं को देख सकते हैं। इस एकांकी में केवल एक ही दृश्य है। मंच सज्जा, पात्रों की वेशभूषा तथा अभिनय के संबंध में लेखक ने बड़े ही स्पष्ट रंग निर्देश दिए हैं, जिनसे परिवेश, संवादों को बोलने में वाणी के उतार-चढ़ाव, शारीरिक अभिनय तथा भावों के अभिनय में सहायता मिलती है। पात्रों की हुलिया संबंधी निर्देश भी पात्रों के चरित्र को उभारने में सहायक हैं। उदाहरण के लिए नीचे दी गई पँक्तियों को पढ़ें:

> "उनका लड़का कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानों में से है। आवाज पतली है और खिसियाहट भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।"

इनसे हमें शंकर के व्यक्तित्व के बारे में काफी जानकारी मिल जाती है।

कथानक, पात्र-विधान, भाषा-शैली और संवाद सभी दृष्टियों से 'रीढ़ की हड्डी' रंगमंच पर सफल एकांकी है। समसामयिक जीवन का प्रसंग उठाने के कारण कथानक काफी रोचक और प्रभावपूर्ण है। मंच सज्जा के लिए ज्यादा साधन जुटाने की जरूरत नहीं। सभी घटनाएँ एक स्थान पर लगातार आगे बढ़ती हैं। कार्य व्यापार में आरंभ से अंत तक सक्रियता बनी रहती है।

उमा द्वारा सहसा प्रकट किया गया विरोध कथानक में नया मोड़ देता है जिससे जिज्ञासा और कुतूहल की सृष्टि होती है। संवाद छोटे, स्वाभाविक तथा व्यंग्यात्मक हैं। भाषा रंगमंचीय प्रभाव की दृष्टि से बहुत उपयुक्त है। सहज बोलचाल की भाषा अभिनेता के लिए कोई कठिनाई पैदा नहीं करती तथा दर्शक को भली-भाँति संप्रेषणीय है।

लेखक ने चरम सीमा को खास ढंग से प्रभावपूर्ण बनाया है। उमा जब सच-सच कह कर गोपाल प्रसाद को खरी-खोटी सुना देती है तो गोपाल प्रसाद चिढ़ जाता है और शंकर अपनी कमजोरी के उद्घाटन के कारण खिसिया जाता है, दोनों जाने लगते हैं। उमा शंकर पर व्यंग्य करती हुई क्रोध से सिसकने लगती है। तभी रामस्वरूप का नौकर मक्खन लेकर बाजार से लौटता है और अचानक घुस कर कहता है 'बाबूजी, मक्खन!' रतन के ये शब्द संपूर्ण वातावरण में व्याप्त तनाव को और गहरा कर देते हैं।

इस तरह रंगमंचीय अपेक्षाओं तथा दर्शक पर पड़ने वाले समग्र प्रभाव की दृष्टि से 'रीढ़ की हड्डी' पर एक सफल एकांकी है।

बोध प्रश्न 4

अभिनेयता की दृष्टि से 'कौमुदी महोत्सव' तथा 'रीढ़ की हड्डी' एकांकियों की तुलना कीजिए। अपना उत्तर लगभग 7-8 पंक्तियों में दीजिए

....

....

....

....

....

....

....

....

22.7 मूल्यांकन

अभी हमने कथानक, परिवेश, संरचना शिल्प तथा अभिनेयता की दृष्टि से 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का विश्लेषण किया। आगे हम लेखक की दृष्टि, प्रतिपाद्य और शीर्षक की दृष्टि से इसका मूल्यांकन करेंगे।

प्रतिपाद्य : 'रीढ़ की हड्डी' के वाचन एवं विश्लेषण के बाद अब आप समझ गये होंगे कि इस एकांकी लिखने का उद्देश्य क्या है। यानी इसके माध्यम से वह क्या कहना चाहता है। लड़के और उसके पिता का उमा को देखने आने का आयोजन करके लेखक किस बात की ओर हमारा ध्यान केंद्रित करना चाहता है। लड़कियों की विवश स्थिति की ओर संकेत करके लेखक भारतीय समाज की उस घृणित मनोवृत्ति को उजागर करता है जिसमें विवाह के लिए लड़की देखने के बहाने उसका मोल-भाव किया जाता है। जिस तरह हम कोई चीज खरीदने बाजार जाते हैं और पसंद करते समय उसे खूब अच्छी तरह देख-भाल लेते हैं या उसकी अजमाइश कर लेते हैं उसी तरह लड़कियों को देखने और जाँचने परखने की पद्धति हमारे प्रतिष्ठित समाज में बनी हुई है। इस पूरी प्रक्रिया में इस बात का बिल्कुल भी ख्याल नहीं रखा जाता कि लड़की और उसके माँ-बाप की भावनाओं को कोई ठेस पहुँच रही है या नहीं। न ही इस बात पर गौर किया जाता है कि जिस लड़के के रिश्ते के लिए लड़की को इस तरह प्रदर्शन की वस्तु बनाकर परखा जा रहा है वह स्वयं उस लड़की के योग्य है अथवा नहीं। ऐसी स्थिति में लड़कियों की हालत निरीह पशुओं या बेजान चीजों से भी बदतर है।

शिक्षा, बुद्धिमत्ता, शारीरिक सौंदर्य, निपुणता आदि सभी की दृष्टि से उमा शंकर से बहुत बेहतर है। फिर भी शंकर के लिए उसे पसंद करने या नापसंद करने का अधिकार शंकर और उसके पिता को ही है। उमा को अपनी राय देने का कोई अधिकार ही नहीं है। शंकर न तो पढ़ाई-लिखाई में ही उमा के बराबर है और न ही उसमें चरित्र की दृढ़ता और आत्म-विश्वास है। स्वास्थ्य भी उसका ज्यादा अच्छा नहीं हैं फिर भी महज लड़के का पिता होने के नाते गोपाल प्रसाद अपने आप को रामस्वरूप से श्रेष्ठ समझते हैं। वे शंकर से कहते भी हैं "झुक कर क्यों बैठते हो? ब्याह तय करने आये हो कमर सीधी करके बैठो।"

यह पुरुष वर्ग को स्त्रियों से जन्मजात श्रेष्ठ मानने की मनोवृत्ति है। इसी कारण स्त्रियों को न तो पुरुषों के समान ऊँची शिक्षा पाने का अधिकार है और न ही अखबार पढ़ने और राजनीति की चर्चा समझने का। यदि वे कम पढ़ी-लिखी होंगी तो स्वाभाविक ही है कि उच्च शिक्षा प्राप्त पुरुष वर्ग उन्हें मनमाने ढंग से बेवकूफ सिद्ध कर सकेगा। स्त्रियों के प्रति इस अमानवीय दृष्टिकोण को उजागर करना ही लेखक का उद्देश्य था।

शीर्षक : प्रश्न यह उठता है कि इस एकांकी का शीर्षक 'रीढ़ की हड्डी' कहाँ तक सार्थक है। शरीर रचना विज्ञान के अनुसार मनुष्य के शरीर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण हड्डी रीढ़ की हड्डी है। शरीर की सभी हड्डियाँ इनसे जुड़ी होती हैं। जिन प्राणियों के रीढ़ की हड्डी नहीं होती वे सीधे खड़े नहीं हो सकते। रीढ़ की हड्डी के असंतुलित होने से पूरी शरीर रचना में असंतुलन आ जाता है। इस तरह यह हमारे शरीर के संतुलन और शक्ति का आधार है। अंग्रेजी में "Backbone" शब्द को अक्सर मुहावरे के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। असंतुलित अथवा मूल्यविहीन सामाजिक स्थिति को society without backbone कहा जाता है।

जगदीशचंद्र माथुर ने भी 'रीढ़ की हड्डी' शब्द का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। शंकर के पिता तथा उमा से कहलाया है कि शंकर के रीढ़ की हड्डी ही नहीं है। रीढ़ की हड्डी न होने का तात्पर्य है शक्ति, दृढ़ता और संतुलन का अभाव। अर्थात् विद्या, बुद्धि, चरित्र, आत्म-सम्मान की भावना आदि किसी भी दृष्टि से शंकर में दृढ़ता नहीं है। ऐसे व्यक्ति के विवाह के लिए सर्वगुण संपन्न, रूपवती और विनम्र कन्या की अपेक्षा की जा रही है और यह अपेक्षा समाज में भली-भाँति मान्यता प्राप्त है। यह स्थिति जिस समाज की तस्वीर प्रस्तुत करती है वह निश्चय ही आधारविहीन, असंतुलित और नगण्य समाज है। उस समाज की रीढ़ में कोई न कोई कमी जरूर है। इस दृष्टि से यह शीर्षक काफी सार्थक, सांकेतिक और अर्थवत्तापूर्ण है। जिस तरह चारित्रिक दृढ़ता के अभाव में शंकर को बिना रीढ़ की हड्डी का आदमी कहा जा सकता है उसी तरह स्त्रियों के प्रति असम्मानपूर्ण और अमानवीय दृष्टिकोण को मान्यता प्रदान करने वाले हमारे समाज को भी रीढ़ विहीन समाज कहा जा सकता है।

बोध प्रश्न 5

क) 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी के माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ख) इस एकांकी का नाम 'रीढ़ की हड्डी' क्यों रखा गया है?

....

....

....

....

....

....

22.8 सारांश

इस इकाई में हमने कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, परिवेश, भाषा, शैली, संवाद अभिनेयता की दृष्टि से 'रीढ़ की हड्डी' का विश्लेषण किया तथा लेखक की मूल दृष्टि और एकांकी के शीर्षक की सार्थकता का मूल्यांकन किया। अब आप एकांकी के विभिन्न तत्वों तथा लेखक की मूल सृष्टि के आधार पर एकांकी के विश्लेषण एवं मूल्यांकन की पद्धति से परिचित हो गए हैं और किसी भी एकांकी को पढ़ कर उसके विश्लेषण और मूल्यांकन का प्रयास कर सकते हैं।

22.9 शब्दावली

पर्दाफाश करना : रहस्य का उद्घाटन करना

निहायत : बहुत अधिक

रोजमर्रा : नित्यप्रति, दैनिक

अतिशय : अत्यधिक

आक्रोश : क्रोध

22.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क) गोपाल प्रसाद और उनका पुत्र शंकर खुद शिक्षित होने के बावजूद बड़े ही दकियानूसी विचारों के व्यक्ति हैं। वे स्त्रियों की ज्यादा शिक्षा के बिल्कुल खिलाफ हैं और मैट्रिक से ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की से शंकर का विवाह करने के बिल्कुल पक्ष में नहीं हैं। इसलिए रामस्वरूप उमा की उच्च शिक्षा की बात उनसे छिपाता है।

ख) गोपाल प्रसाद मानते हैं कि स्त्री की तुलना में पुरुष जन्मजात श्रेष्ठ होता है। दुनिया में कुछ काम ऐसे होते हैं जो पुरुषों के लिये हैं स्त्रियों के लिये नहीं। उनकी राय में ऊँची शिक्षा पाकर काबिल बनने का अधिकार केवल पुरुषों को हैं। यदि स्त्रियाँ भी ज्यादा पढ़-लिख कर योग्य बन जाएँगी तो वे पुरुषों की बराबरी करने लगेंगी। अंग्रेजी अखबार पढ़ेंगी, पॉलिटिक्स पर बहस करेंगी और गृहस्थी नहीं सँभाल पाएँगी।

ग) शंकर को अपने सम्मान का बिल्कुल ख्याल नहीं है। लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हुए जब वह पकड़ा गया तो नौकरानी के पैर पकड़ लिये। यहाँ जब उमा को देखने आया है तो अपने पिता के दकियानूसी ढंग के व्यवहार का भी बिल्कुल विरोध नहीं करता। उसका अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। उमा बी. ए. पास है इस बात की जानकारी मिलने पर पिता के साथ तुरंत वापस चल देता है। इसलिए उमा कहती है कि शंकर बिल्कुल व्यक्तित्वहीन, बिना रीढ़ का आदमी है।

बोध प्रश्न 2

क) i) (×) ii) (✓) iii) (✓) iv) (×) v) (✓) vi) (✓) vii) (✓) viii) (×)

ख) i) गोपाल प्रसाद पुरुषों को स्त्रियों से श्रेष्ठ समझता है और मानता है कि प्रकृति ने ही नर को नारी की तुलना में कुछ विशेषता प्रदान की है जिसे कायम रखा जाना चाहिए।
ii) उसे दूसरों की भावनाओं की बिल्कुल परवाह नहीं है। उमा के आक्रोश व्यक्त कर देने पर उसे अपनी बेइज्जती तो लगती है किंतु अपने किसी काम में कोई कमी नजर नहीं आती। न ही उसे दूसरे की इज्जत की चिंता है।

ग) 'रीढ़ की हड्डी' में हमें भारतीय समाज की उस दूषित मनोवृत्ति का चित्र मिलता है जो लड़कों को लड़कियों से श्रेष्ठ मानती हैं। इस व्यवस्था में विवाह के लिए लड़की देखने का अर्थ है बेवश पशुओं या बेजान चीजों की तरह उनका मोल-भाव करना या उनकी जाँच पड़ताल करना। लड़कियों के मान या उनकी इच्छा-अनिच्छा की कोई परवाह नहीं की जाती।

बोध प्रश्न 3

क) i) आम बोलचाल की भाषा की सहजता और सरलता
ii) उर्दू, अंग्रेजी आदि के शब्दों का प्रयोग
iii) मुहावरों का प्रयोग
iv) पात्रों के व्यक्तित्व के अनुकूल भाषा

ख) 'रीढ़ की हड्डी' में लेखक ने व्यंग्यात्मक और प्रतीकात्मक शैली अपनाई है।

ग) i) सार्थक, ii) बोलचाल की

घ) i) **गो० प्रसाद :** जनाब यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी बालाई आती थी और अकेले दो आने की हजम करने की ताकत थी, अकेले! अब तो बहुतेरे खेल बगैरह होते हैं स्कूलों में। तब न कोई बालीवाल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। बस कभी हाकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल की कोई कह जाए कि यह लड़का कमजोर है।
(शंकर और रामस्वरूप खीस निपोरते हैं)
रामस्वरूप : जी हाँ। उस जमाने की बात ही दूसरी थी। हँ-हँ।
गो० प्रसाद : (जोशीली आवाज में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे बारह घंटे की सीटिंग हो गई। बारह घंटे। जनाब मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने का मैट्रिक भी वह अंग्रेजी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम. ए. भी मुकाबिला नहीं कर सकते।
रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ। यह तो है ही।
गो० प्रसाद : माफ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस जमाने की जब याद आती है, अपने को जब्त करना मुश्किल हो जाता है।

ii) **उमा :** जी हाँ मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी. ए. पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँक कर कायरता दिखाई है। मझे अपनी इज्जत, अपने मान का ख्याल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपा कर भागे थे।
रामस्वरूप : उमा, उमा!!
गो० प्रसाद : (खड़े होकर गुस्से में) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी. ए. पास है, और आपने मुझे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक पास। लाइए, मेरी छड़ी कहाँ है। मैं चलता हूँ। (छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं) बी. ए. पास। उफ्फोह। गजब हो जाता। झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलें।
(दरवाजे की ओर बढ़ते हैं।)
उमा : जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइगा कि आपके लाड़ले की रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं ... यानी बैकबोन, बैकबोन। (बाबू गोपाल प्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं और बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में तबदील हो जाती है।)

बोध प्रश्न 4

ऐतिहासिक एकांकी होने के कारण 'कौमुदी महोत्सव' की मंच सज्जा में ऐतिहासिक परिवेश की सृष्टि करनी होगी। 'रीढ़ की हड्डी' के लिए एक कमरे में मामूली सजावट एक तख्त और तीन चार कुर्सियों की जरूरत होगी।

'रीढ़ की हड्डी' की तुलना में 'कौमुदी महोत्सव' काफी लंबा एकांकी है ऐतिहासिक कथानक के कारण इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है। संवाद काव्यात्मक और विश्लेषणपरक हैं जो रंगमंच पर अधिक प्रभावी नहीं होंगे। इसके विपरीत 'रीढ़ की हड्डी' की भाषा सरल, सहज आम बोलचाल की है। संवाद छोटे तथा रोचक हैं। प्रभाव की दृष्टि से 'रीढ़ की हड्डी', 'कौमुदी महोत्सव' से बेहतर एकांकी है।

बोध प्रश्न 5

i) 'रीढ़ की हड्डी' के माध्यम से लेखक ने भारतीय समाज में लड़की के विवाह के लिए देखने और पसंद करने की उस स्थिति पर व्यंग्य किया है जिसमें लड़की की भावनाओं और सम्मान की परवाह किये बगैर उसका मोल भाव किया जाता है। योग्यता, गुण, रूप आदि की दृष्टि से लड़के और लड़की की कोई बराबरी नहीं समझी जाती।

ii) एकांकी का शीर्षक 'रीढ़ की हड्डी' अपने आप में प्रतीकात्मक है। शंकर की बौद्धिक, शारीरिक और चारित्रिक अयोग्यता के कारण कहा गया है कि उसमें 'रीढ़ की हड्डी' नहीं है। दूसरी ओर गोपाल प्रसाद जैसे दकियानूसी और आत्म-सीमित व्यक्तियों को स्वीकृति प्रदान करने वाली सामाजिक व्यवस्था अपने में असंतुलित है। ऐसा समाज रीढ़ विहीन समाज कहा जा सकता है। इस तरह यह शीर्षक दोहरे अर्थ में सार्थक है।

इकाई 23 'जोंक' (उपेंद्रनाथ 'अश्क') : वाचन एवं विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 एकांकी का वाचन : जोंक
23.3 एकांकी का सार
23.4 एकांकी की सप्रसंग व्याख्या
23.5 कथानक
23.6 पात्र
23.7 परिवेश
23.8 संरचना-शिल्प
23.9 अभिनेयता
23.10 मूल्यांकन
23.11 सारांश
23.12 शब्दावली
23.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- एकांकीकार उपेंद्रनाथ अश्क के बारे में जानकारी दे सकेंगे;
- उनके एकांकी 'जोंक' की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- एकांकी में प्रयुक्त कठिन शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों का अर्थ बता सकेंगे;
- एकांकी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे;
- इसके कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे;
- इसके प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण कर सकेंगे;
- इसके परिवेश और संरचना शिल्प की विशेषताएँ बता सकेंगे, और
- एकांकी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण करके इसके शीर्षक की उपयुक्तता का निर्णय कर सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आप 'कौमुदी महोत्सव' तथा 'रीढ़ की हड्डी' नामक दो एकांकियों का विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में हम आपको एक अन्य एकांकी दे रहे हैं—उपेंद्रनाथ 'अश्क' का एकांकी 'जोंक'। अब तक जो दो एकांकी आपने पढ़े हैं उनमें से एक ऐतिहासिक था और दूसरा सामाजिक-व्यंग्यात्मक। इस इकाई में आप एक अन्य प्रकार का एकांकी पढ़ेंगे जो पिछले एकांकियों जैसा गंभीर न होकर हास्यपरक है।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' हिन्दी के सुप्रसिद्ध एकांकीकार हैं। नाटकों के अलावा उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि भी लिखे हैं। किंतु प्रमुख रूप से उन्हें नाटककार के रूप में ही जाना जाता है। उनका जन्म 14 दिसंबर, 1910 को जालंधर में हुआ था। उन्होंने बी. ए., एल. एल. बी. परीक्षा पास की। कुछ समय के लिए अध्यापन कार्य किया तथा पत्रकारिता की। 1941 में उन्होंने आकाशवाणी में नौकरी शुरू की तथा 1945 में फिल्म जगत् में लेखन कार्य के लिए बंबई चले गये। 1953 के आसपास उन्होंने इलाहाबाद में नीलाभ प्रकाशन शुरू किया।

'अश्क' जी ने उर्दू तथा हिंदी दोनों में लेखन किया है। यद्यपि उन्होंने लिखना काफी पहले शुरू कर दिया था, किंतु उनकी श्रेष्ठ रचनाओं की शुरुआत सन् 1936 से हुई और लगभग तीन दशक तक लगातार साहित्य की विविध विधाओं में वे महत्वपूर्ण योगदान देते रहे। 'अश्क' जी बड़े ही प्रतिभा संपन्न और जागरूक नाटककार हैं। उनकी नाटक कला में एक खास तरह का अपनापन

दिखाई देता है यानी कुछ ऐसी खास चीज़ दिखाई देती है जो हमें अपने आसपास की नज़दीकी महसूस होती है। उनके एकांकी सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं। कथानक प्राय: दैनिक जीवन से लिए गये हैं। रोजमर्रा के जीवन की साधारण-सी प्रतीत होने वाली घटनाएँ उनके एकांकियों का विषय हैं। किंतु इन साधारण-सी घटनाओं को उन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा और कुशल संरचना शिल्प के द्वारा बड़े ही सजीव और प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत किया है। परिवेश को उन्होंने खुली आँखों से देखा है और समस्याओं को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। व्यक्ति मनोविज्ञान की उन्हें बड़ी अच्छी पकड़ है।

उनके अधिकांश एकांकी रंगमंच पर बार-बार सफलतापूर्वक प्रस्तुत किये जा चुके हैं। प्रस्तुत एकांकी 'जोंक' सन् 1940 में लिखा गया था। यह हास्यपरक एकांकी है। इसमें उठाई गई समस्या बड़ी साधारण समस्या है। हम सब के जीवन में कभी न कभी ऐसा मौका आता है जब हम बिन बुलाये मेहमान से परेशान होते हैं। आतिथ्य करने की हमारी सीमा होती है किंतु शिष्टाचारवश हम उस व्यक्ति से यह भी नहीं कह पाते कि वह वापस चला जाए। इसी उलझन को 'अश्क' जी ने हास्य-व्यंग के माध्यम से उठाया है। आगे हम इस एकांकी का वाचन करेंगे और विभिन्न तत्वों के आधार पर इसका विश्लेषण करते हुए मूल्यांकन करेंगे। इस इकाई में विश्लेषण की पद्धति पहले की अपेक्षा भिन्न होगी। पिछले एकांकियों का वाचन एवं मूल्यांकन और विश्लेषण हमने दो-दो इकाइयों में किया था। किंतु इस एकांकी का वाचन और विश्लेषण हम एक ही इकाई में करेंगे।

23.2 एकांकी का वाचन : 'जोंक'[1]

पात्र

भोलानाथ, बनवारी लाल
प्रोफ़ेसर आनन्द, कमला
एक पंजाबी, एक हिन्दुस्तानी, एक मारवाड़ी तथा अन्य लोग

स्थान : भोलानाथ के निवास-स्थान का बरामदा।

पहला दृश्य

(पर्दा उठने पर हमें जो बरामदा दिखायी देता है, वह एक **आयताकार**[2] कमरे जैसा है। सबसे पहले दृष्टि जिस चीज पर जाती है, वह दो गोल स्तम्भ हैं, जो दर्शकों की ओर को बने हैं। इनके कारण वह खुली तरफ तीन टुकड़ों में बँटी दिखायी देती है। इन स्तम्भों की मदद से मोटे सरकण्डों की टाट-जड़ी तीन बड़ी-बड़ी चिकें टँगी हैं। सौभाग्य से चिकें गोल की हुई हैं और ऊपर बँधी हैं। इसीलिए हम इस बरामदे-नुमा कमरे में होने वाला सब कार्य-व्यापार देख सकते हैं।

स्तम्भों और ऊपर गोल की हुई चिकों से निगाह हटायें तो सामने दायें-बायें दो दरवाजे दिखायी देते हैं, जो दो कमरों को जाते हैं। दायीं दीवार में एक दरवाजा दर्शकों की ओर को है, जो नीचे से आने वाली सीढ़ियों में खुलता है। दूसरा कोने में रसोई-घर को जाता है। दरवाजे पुरानी तर्ज के हैं। उनके ऊपर रोशनदान हैं, जिनके शीशे जाने कब के टूटे हुए हैं। हाँ, उनकी जगह गत्ते के टुकड़े लगे हुए हैं।

सामने के दोनों दरवाजों के मध्य एक चारपाई बिछी है, जिस पर खेस, दरी, दोहती लगी है और सिरहाने एक गोल तकिया रखा है।

बायीं दीवार के साथ बेंत की दो कुर्सियाँ और बेंत ही की एक तिपाई रखी है। दोनों चीज़ें पुरानी हैं। उनका **रोगन**[3] जगह-जगह से उखड़ गया है।

पर्दा उठने पर हम प्रोफ़ेसर आनन्द को तिपाई के पास रखी कुर्सी पर बैठे एक समाचार-पत्र के पन्ने उलटते देखते हैं।

प्रो० आनन्द शक्ल-सूरत से प्रोफ़ेसर मालूम होते हों, सो बात नहीं। शिक्षा जब से बढ़ी और हिन्दुस्तानियों के भोजन की मात्रा घटी है, तब से कॉलेजों में ऐसे छात्र आने लगे हैं, जिनको उनकी माएँ आसानी से आधा टिकट ले कर अपने पास जनाने डिब्बे में बैठा सकती हैं। प्रोफ़ेसर

1 जोंक—पानी का एक कीड़ा जो प्राणियों की देह में चिपक कर उनका रक्त पीता है। 2 आयताकार—चौकोर, 3 रोगन—वार्निश, पालिश

आनन्द शायद छात्रावास में ऐसी ही किस्म के छात्र थे। अभी-अभी एम. ए. कर के पढ़ाने लगे हैं, इसलिए उनकी अवस्था में कुछ विशेष अंतर नहीं आया। उन्हें कोई भी मैट्रिक का छात्र समझ सकता है और इस समय तो वे प्रोफ़ेसर की वेश-भूषा में भी नहीं हैं। एक तहमद और कमीज़ पहने, शायद हजामत बना कर बैठे हैं। क्योंकि न सिर्फ़ साबुन की सफ़ेदी उनके चेहरे पर लगी दिखायी देती है, बल्कि तिपाई पर पड़ा हजामत का खुला सामान भी इसी बात की गवाही देता है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद भोलानाथ दायीं ओर के कमरे से प्रवेश करता है।

शक्ल-सूरत से भोलानाथ प्रोफ़ेसर साहब से कुछ मोटा-ताजा है, पर जो बुद्धिमत्ता प्रोफ़ेसर साहब के चेहरे से टपकती है, उसका वहाँ सर्वथा अभाव है—सीधा-सादा सनकी-सा आदमी है, कन्धे झटकने की आदत है। ऐसे आदमियों को लोग कभी-कभी **जनमुरीद**[1] भी कह दिया करते हैं। चेहरे से उसके घबराहट टपक रही है।
(आनन्द पूर्ववत् समाचार-पत्र में निमग्न है।)
भोलानाथ : (परेशानी के स्वर में) यार यह फिर आ गया! तुम मेरी कुछ मदद करो—भगवान के लिए!
आनन्द : (समाचार-पत्र रख कर) कौन है यह?
(भोलानाथ परेशान-सा चारपाई में धँस जाता है।)
भोलानाथ : यह एक बार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता।
आनन्द : कुछ पता भी चले, कौन है?
भोलानाथ : अरे कौन क्या, **राहों**[2] का आदमी है।
आनन्द : राहों का—तो यों कहो कि तुम्हारे **वतनी**[3] हैं।
भोलानाथ : अब वतनी को तो हजारों लोग मेरे वतनी हैं और कमरे... (कन्धे झटक कर) मेरे पास सिर्फ़ यही दो हैं।
आनन्द : तो क्या इनसे जान-पहचान नहीं?
(उठ कर बरामदे में घूमते हैं।)
भोलानाथ : बस, इस बात का चोर हूँ कि अपने छोटे भाई से इसके कारनामे सुनता रहा हूँ और...
आनन्द : (रुक कर) पर तुमने कहा न कि फिर आ गया, तो इसका मतलब यह है कि ये साहब पहले भी तुम्हें **मेज़बानी**[4] का सौभाग्य प्रदान कर चुके हैं।
भोलानाथ : (कन्धे झटकते हुए, हँस कर) अब क्या बताऊँ, जरा बैठो तो विस्तार से कुछ कहूँ!
(आनंद चारपाई पर बैठना चाहते हैं।)
भोलानाथ : वहाँ क्या बैठते हो, इधर कुर्सी पर बैठो।
आनन्द : (चारपाई पर बैठ कर **गाव तकिया**[5] बगल में लेते हुए) मैं यहीं अच्छा हूँ, तुम कहो।
भोलानाथ : (कुर्सी घसीट कर उसके पास बैठते हुए कद्रे हँस कर **सरगोशी में**[6]) बात यह है कि वह मेरा छोटा भाई है न परसराम, जैसा वह आवारा है, वैसे ही उसके दोस्त हैं। उसका एक मित्र है सोम या मोम या क्या जाने क्या, वह जब भी आता था, अपने इस भाई की बड़ी प्रशंसा करता था।
आनन्द : देश भक्त हैं?
भोलानाथ : खाक!
आनन्द : कवि?
भोलानाथ : इसकी सात **पुश्तों**[7] में किसी ने कविता का नाम नहीं सुना!
आनन्द : तो वक्ता, डॉक्टर, हकीम, वैद्य...
भोलानाथ : (चिढ़ कर) तुम सुनते तो हो नहीं और ले उड़ते हो, वो थे न मशहूर ऐक्टर मास्टर रहमत! यह उनके साथ रह चुका है।
आनन्द : (ठहाका लगा कर) तो ये **ऐक्टर**[8] हैं!
भोलानाथ : (कन्धे झटक कर) अब यह तो मुझे मालूम नहीं कि इसने मास्टर रहमत के प्रसिद्ध नाटक 'खून का बदला खून' और 'दर्दे जिगर' में कोई पार्ट किया है या नहीं, पर सुना था कि यह उनका **दायाँ हाथ**[9] है।
आनन्द : इस बात से तुम्हें क्या दिलचस्पी थी?
भोलानाथ : (खिन्न हँसी के साथ) अरे बचपना था और क्या! जब हम मैट्रिक में पढ़ते थे तो

---

1 जनमुरीद (उर्दू का मुहावरा)—बीबी का गुलाम, 2 राहों—भोलानाथ का मूल निवास स्थान, 3 वतनी—वतन के देश का, 4 मेज़बानी—आतिथ्य, 5 गाव तकिया—मसनद, गोल तकिया, 6 सरगोशी (उर्दू शब्द)—फुसफुसाकर, 7 पुश्तों—पीढ़ियाँ, 8 ऐक्टर (अंग्रेजी शब्द)—अभिनेता, 9 दायाँ हाथ—बहुत करीबी व्यक्ति जो किसी व्यकित के अधिकांश काम करता हो

रहमत के नाटक पढ़ने का बहुत शौक था और यद्यपि उन्हें देखने का मौका न मिलता था...

आनन्द : 'खून का बदला खून' और 'दर्दे जिगर!'

(व्यंग्य से हँसते हैं।)

भोलानाथ : अरे भाई, उन दिनों हमारे लिए तो वे **कालिदास**[1] और **शेक्सपियर**[2] के बराबर थे। उनके नाटक पढ़ कर और मुहल्ले के एक **रसीली आवाज**[3] वाले लड़के से उनके गाने सुन कर हम उनकी कला का **रसास्वादन**[4] कर लिया करते थे।

आनन्द : (हँस कर) और उनके अज्ञात प्रशंसकों में थे?

भोलानाथ : तुम तो जानते हो कि प्रसिद्ध लेखकों, नेताओं और अभिनेताओं को लोग साधारण आदमियों में कुछ ऊँचा ही समझते हैं, और उनसे तो दूर रहा, उनके साथ रहने वालों तक से बात कर के फूले नहीं समाते। फिर यह तो मास्टर रहमत का दायाँ हाथ था...

आनन्द : ('अब समाप्त भी करो यह भूमिका' के-से स्वर में) तो इनसे तुम्हारी भेंट हुई?

(फिर उठ कर घूमने लगते हैं।)

भोलानाथ : भेंट! तुम इसे भेंट कह सकते हो। हमारे शहर के हैं न डॉक्टर किशोरी...

आनन्द : (रुक कर) शहर नहीं, कस्बा कहो! राहों कस्बा है।

भोलानाथ : (चिढ़ कर) अरे हाँ-हाँ, तो मैंने इसे डॉक्टर किशोरीलाल की दुकान पर बैठे देखा, इसकी बातें दिलचस्पी से सुनीं और शायद एक-दो बातों का उत्तर भी दिया था, बस...

आनन्द : फिर तुम इन्हें घर ले आये?

भोलानाथ : (और भी चिढ़ कर) अरे कहाँ, तुम बात भी करने दोगे। इस बात को तो दस वर्ष बीत गये। उसके बाद तो यह पिछले वर्ष मिला और तुम अच्छी तरह जानते हो कि गत वर्ष मैं किस मुसीबत के दिन काट रहा था। चंगड़ मुहल्ले का वह पीपल-वेहड़ा और उसमें वह लाला ज्वाला दास का **जहन्नुमी**[5] मकान और उसकी वे दो अँधेरी कोठरियाँ, जिनमें न कोई रोशनदान था और न खिड़की, और गर्मियों में बाहर गली में सोना पड़ता था।

आनन्द : (ऊब कर) पर बात तो तुम इनसे मिलने की कर रहे थे?

भोलानाथ : हाँ, उन्हीं दिनों जब मैं दिन-भर नौकरी की खोज में घूमता था, यह एक दिन पीपल-वेहड़ा के पास ही चंगड़ मुहल्ले में मिल गया और दूर ही से इसने 'नमस्कार' किया। मैं जल्दी में तो था, पर क्षण भर के लिए रुक गया।

आनन्द : तो कहने का मतलब यह...

भोलानाथ : (अपनी बात जारी रखते हुए) इसने बड़े **तपाक से**[6] हाथ मिलाया और कहा कि डॉक्टर किशोरीलाल आपकी बड़ी प्रशंसा किया करते हैं। आप मुझे पहचान तो गये हैं—? मैंने कहा—हाँ-हाँ मास्टर रहमत... कहने लगा—बीमार है बेचारा दर्दे-गुर्दा से!

आनन्द : दर्दे **जिगर**[7] से नहीं?

(हँसते हैं।)

भोलानाथ : (व्यंग्य की ओर ध्यान न दे कर) मैंने खेद प्रकट किया और पूछा कि सुनाइए कैसे आये? कहने लगा मुझे भी दर्दे-गुर्दा की शिकायत है!

आनन्द : (ठहाका लगा कर) वह किसी ने कहा है न कि **खरबूज़े को देख कर खरबूज़ा रंग बदलता है**।

भोलानाथ : मैंने भी अफ़सोस ज़ाहिर किया। कहने लगा—कर्नल माथुर को दिखाने आया हूँ। कल चला जाऊँगा। मैंने कहा—तो आइए कुछ पानी-वानी पीजिए। कहने लगा—लाला बिहारीलाल राह देखते होंगे, पर चलिए अपने वतनी का अनुरोध कैसे टाला जा सकता है।

आनन्द : (ठहाका लगाते हैं) बिहारीलाल कौन थे?

भोलानाथ : (जल कर) जाने कोई थे भी या नहीं। मेरे तो **पाँव तले से धरती निकल**[8] गयी! बड़े ही जरूरी काम से जा रहा था और मैंने तो यों ही शिष्टाचार-वश पानी के लिए पूछा था। खैर ले आया और **पेशबन्दी**[9] के तौर पर मैंने पत्नी से केवल ठंडे पानी का गिलास लाने के लिए कहा। पानी पी कर ये महाशय वहीं गली में बिछी हुई चारपाई पर लेट गये। मुझे जल्दी जाना था, मैंने सकुचाते-सकुचाते कहा—मुझे...अ...जरा जल्दी है, आप किधर जा रहे हैं? लेकिन इसने बात काट कर और टाँगें फैलाते हुए कहा—हाँ-हाँ आप शौक से हो आइए, मैं थक गया हूँ, ज़रा आराम करूँगा।...

'जोंक' (उपेंद्रनाथ 'अश्क') : वाचन एवं विश्लेषण

नाटक लेखकों के प्रति जन सामान्य का दृष्टिकोण

दोहरा व्यवहार ऊपर कुछ और मन में कुछ

---

1 कालिदास—संस्कृत के महान कवि-नाटककार, 2 शेक्सपियर—अंग्रेजी के महान कवि-नाटककार, 3 रसीली आवाज—मधुर स्वर, कानों को अच्छी लगने वाली आवाज, 4 रसास्वादन (रस आस्वादन)—आनंद लेना, 5 जहन्नुमी—नारकीय, नरक की तरह कष्टप्रद, 6 तपाक से—उत्साह से, प्रेम से, 7 जिगर—कलेजा, दिल, 8 पाँव तले से धरती निकल जाना (मुहावरा)—होश उड़ जाना, 9 पेशबन्दी—दूरदर्शिता, बचाव की युक्ति जो पहले से की जाए

टिप्पणी 'खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है' (लोकोक्ति) अन्य लोगों के व्यवहार को देखकर अपना व्यवहार बदल लेना

आनन्द : (हँस कर) खूब!

भोलानाथ : (कन्धे झटका कर) तुम होते तो मेरी सूरत देखते। नयी-नयी शादी हुई थी और ये हमारे वतनी...

[आनन्द फिर ठहाका लगाते हैं।]

भोलानाथ : मरता क्या न करता। मुझे तो जल्दी थी, हार कर चला गया। वापस आया तो ये मज़े में बिस्तरा बिछवा कर सो रहा था और पत्नी बेचारी अन्दर गर्मी में तप रही थी। पहुँचा तो कहने लगी—आपका इतना गहरा दोस्त तो मैंने देखा नहीं। आपके जाने के बाद कहने लगा—तुम तो शायद 'नवाँ शहर' की हो? मैं चुप रही तो बोला—फिर तो हमारी बहन हुई।

आनन्द : बहन!

भोलानाथ : अब कमला मुझसे पूछने लगी कि ये है कौन? मैं क्या बताता? इतना कह कर चुप हो रहा कि हमारा वतनी है। चारपाइयाँ हमारे पास सिर्फ़ दो थीं। आखिर वह ग़रीब सख़्त गर्मी में भी अन्दर फ़र्श पर सोयी! ख़याल था कि दूसरे दिन चला जायेगा, लेकिन पूरे सात दिन रहा और जब गया तो मैंने कसम खा कर कमला से कहा कि अब कभी नहीं आयेगा। लेकिन यह फिर आ धमका है और कमला...

(कमला दायीं ओर के कमरे से प्रवेश करती है।)

कमला : मैं पूछती हूँ, आप चुपचाप इधर आ कर बैठ गये हैं और वह मुझे इस तरह हुक्म दे रहा है, जैसे मैं उसकी मोल ली हुई **बाँदी**[1] हूँ—'कमला पानी ला दो,' 'कमला हाथ धुला दो,' 'कमला यह कर दो, कमला वो कर दो!' यह है कौन? आप तो कहते थे, मैं इसे जानता तक नहीं, फिर यह क्यों इधर मुँह उठाये चला आता है? इसे कोई और ठौर-ठिकाना नहीं?

भोलानाथ : (घबराकर और कन्धे झटका कर) अब बताओ...

(उठ कर खड़ा हो जाता है।)

सामान्य आर्थिक स्थिति की सीमा

आनन्द : तुम ठहरो भाभी, मुझे सोचने दो।

(उठ कर माथे पर हाथ रखे सोचते हुए घूमते हैं।)

कमला : आप सोच कर करेंगे क्या? यह कोई इनका पुराना यार-ग़ार होगा। मुझे इसी बात से चिढ़ है कि आखिर ये मुझसे छिपाते क्यों हैं? क्या मैं इनके मित्रों को घर से निकाल देती हूँ?

(चारपाई के किनारे बैठ जाती है।)

आनन्द : देखो भाभी...

कमला : मैं कुछ नहीं देखती, आप देखिए! आपसे हमारा कोई पर्दा नहीं। हमारे पास कमरे दो हैं और फालतू बिस्तर एक भी नहीं। फिर आप भी यहीं हैं। इनका यह वतनी तो बिस्तर बिछवा कर सो रहेगा और मैं पड़ी ठिठुरा करूँगी इसी बरामदे में।

आनन्द : देखो भाभी, यह इनका मित्र नहीं, यह मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ।

कमला : तो फिर ये उसे साफ़ **जवाब**[2] क्यों नहीं देते?

आनन्द : इनसे यह हो सकता तब न?

भोलानाथ : (जो इस बीच इधर-उधर घूमता रहा है, रुक कर और कन्धे झटका कर) हाँ, अब वतनी आदमी है...

कमला : वतनी है तो...

आनन्द : देखो झगड़ने से कुछ न बनेगा। इस आदमी को **धता बतानी**[3] चाहिए।

कमला : यही तो मैं कहती हूँ।

आनन्द : यह इनसे हो चुका। इन अतिथि महोदय की खबर तो किसी दूसरी तरह ली जायेगी।

(कुछ क्षण मौन—जिसमें आनन्द सोचते हैं और भोलानाथ अँगड़ाई लेता है, फिर—)

आनन्द : (धीमे स्वर में) मैं पूछता हूँ वह कर क्या रहा है?

कमला : शायद बाहर गया है।

आनन्द : (जैसे तरकीब सूझ गयी है, चुटकी बजा कर) मैं कहता हूँ भाभी, तुम यहीं लिहाफ़ ले कर चुपचाप लेट जाओ और यदि कराह सको तो थोड़ी देर बाद कराहती भी जाओ। (भोलानाथ से) देखो भाई, तुम कह देना कि मुझे भूख नहीं। मैं बहाना कर दूँगा कि जी भारी होने से मैं उपवास से हूँ और बस...

(सीढ़ियों से पाँवों की चाप आती है।)

आनन्द : (मुड़ कर) मैं कहता हूँ, जल्दी करो! (एक-एक शब्द पर जोर दे कर) ज...ल...दी करो! इन्हीं कपड़ों समेत लेट जाओ।

(कमला वहीं चारपाई पर लेट जाती है। आनन्द अन्दर से लिहाफ़ ला कर उस पर डाल देते हैं। हाथ में दो लौकियाँ लिये बनवारीलाल प्रवेश करता है।)

भोलानाथ : आइए, आइए! किधर चले गये थे आप? ये हैं मेरे मित्र श्री आनन्द, जालन्धर में प्रोफ़ेसर हैं, यहाँ प्रिंसिपल गिरधारीलाल से मिलने आये हैं—और... (बनवारीलाल की ओर संकेत

---

1 बाँदी—दासी, 2 जवाब देना—इनकार करना, 3 धता बताना (मुहावरा)—टाल देना, चलता करना

कर के) ये हैं श्री बनवारीलाल—मेरे वतनी! किसी जमाने में प्रसिद्ध अभिनेता मास्टर रहमत के साथ...

आनन्द और बनवारीलाल : (एक साथ) आपसे मिल कर बड़ी ख़ुशी हुई।

(दोनों जरा हँसते हैं।)

भोलानाथ : ये आप क्या उठा लाये इतनी लौकियाँ?...

(कमला धीमे से कराहती है।)

बनवारीलाल : (मुड़ कर और चौंक कर) क्या बात है?

भोलानाथ : (स्वर में चिन्ता) इन्हें अचानक दौरा पड़ गया, बड़ी मुश्किल से होश आया है। प्रायः पड़ जाया करता है दौरा...**हिस्टीरिया**[1]...

बनवारीलाल : तो आप इलाज-उपचार...?

भोलानाथ : इलाज-उपचार बहुत हुआ। कर्नल... (फिर बात के रुख़ को बदल कर) ये तो बीमार पड़ गयीं और... (ज़रा हँस कर) लौकियाँ आप इतनी उठा लाये हैं। (फिर आनंद से) क्यों भाई आनन्द, तुम तो कहते थे...

आनन्द : मैं तो आज उपवास से हूँ, तबीयत मेरी कुछ भारी है।

भोलानाथ : मैं भी खाने के मूड में नहीं।

बनवारीलाल : (मुड़ कर रसोई-घर की ओर कदम उठाते हुए) लौकी की खीर... हिस्टीरिया में बड़ा गुण करती है। और मैं पकाता भी अच्छी हूँ। (जरा हँस कर) साथ ही अपने लिए भी दो रोटियाँ सेंक लूँगा और तरकारी भी... लौकी ही की बन जायेगी। मेरा तो खयाल है आप भी खायें, मज़ा न आ जाये तो नाम नहीं। अन्दर अँगीठी तो होगी ही, कोयलों की आँच पर लौकी की खीर बनती भी ऐसी है कि क्या कहूँ!

बनवारीलाल उन लोगों की चाल समझ गया

(रसोई-घर में चला जाता है।)

आनन्द : (धीरे-से) यह ऐसे न जायेगा।

बनवारीलाल : (रसोई-घर से) क्यों भई, मसाला कहाँ है?

कमला : (लेटे-लेटे) कह दो, खत्म हो गया है!

भोलानाथ : (जरा ऊँचे स्वर से) मसाला तो दोस्त, खत्म हो गया है!

बनवारीलाल : (अन्दर से) और घी कहाँ है?

कमला : कह दो खत्म हो गया है।

भोलानाथ : (कन्धे झटका कर) अब यह कैसे कह दूँ?

आनन्द : (भोलानाथ से, ऊँचे स्वर में) अरे घी नहीं लाये तुम, सवेरे ही भाभी ने कहा था कि घी खत्म हो गया है, कैसे गृहस्थ हो तुम!

(धीरे-से शरारत-भरी हँसी-हँसता है।)

बनवारीलाल : (दरवाजे से झाँक कर) अच्छा एक आने[2] का घी कम-से-कम आज के लिए तो लेता आऊँ। मसाला भी नहीं, और चीनी भी... मेरा ख़याल है... नहीं! और दूध भी शायद... मैं जा कर चन्द मिनटों में सब लाया। ये जब तक कुछ खायेंगी नहीं, इनकी कमजोरी दूर न होगी।

(चला जाता है।)

आनन्द : (आश्चर्य से) यह अजीब मेहमान है, जो मेहमान के साथ मेजबान के कर्त्तव्य भी निभा रहा है और अपनी जेब से!...

भोलानाथ : मैं कहता हूँ आनन्द यह जोंक—जोंक! कोई और तरकीब भिड़ाओ। पाँच आने खर्च कर देगा तो क्या हुआ! पिछले साल जाते-जाते मुझसे पाँच रुपये ले गया था।

कमला : (चारपाई से उछल कर) दिये थे आपने पाँच रुपये!

भोलानाथ : (कन्धे झटका कर) अब मैं...

कमला : और मैं पाँच पैसे माँगती हूँ तो नहीं मिलते!

भोलानाथ : अब वतनी...!

कमला : (क्रोध से) तो भुगतिए, पाँच क्या मेरी तरफ़ से पाँच सौ दे दीजिए। बस मुझे **मायके**[3] छोड़ आइए!

आनन्द : (उल्लास से उछल कर) ओह! (ताली बजा कर) **स्प्लेण्डिड**[4]... मायके... ठीक है। जल्दी करो, भाभी को ले कर किसी पड़ोसी के यहाँ चले जाओ और वह आया तो मैं कह दूँगा, भाभी की तबियत बहुत खराब हो गयी थी, आखिर भाई साहब उन्हें मायके छोड़ने चले गये—क्यों!

(दाद पाने की इच्छा से दोनों की ओर देखते हैं।)

भोलानाथ : हाँ, यह तरकीब खूब है (पत्नी से) तुम ज़रा अन्दर पड़ोसिन से बातें करना, मैं कुछ

---

1 हिस्टीरिया—एक प्रकार का रोग जिसमें रोगी को अचानक दौरा पड़ जाता है, 2 नाटक यदि आजकल खेला जाय तो आज की महँगाई के अनुसार एक आने के बदले 'पाँच रुपये का' कहना होगा, और ऐसे ही दूसरे परिवर्तन अनिवार्य होंगे। जैसे पाँच रुपये के स्थान पर पचास रुपये आदि 3 मायके—माँ के घर, 4 स्प्लेण्डिड (अंग्रेजी शब्द)—खूब, बहुत बढ़िया

देर के लिए उनके पति के पास बैठक में बैठ जाऊँगा। (आनन्द से) किन्तु मित्र, मैं कहता हूँ वह गया तो?

आनन्द : उसके देवता भी जायेंगे। तुम्हारे जाते ही ताला लगा कर मैं भी खिसक जाऊँगा—बस!

कमला : वाह! ताला लगा कर आप चले जायेंगे तो जो बर्तन वह ले गया है—वो? नहीं आप यों कहना कि वे चले गये हैं, मैं भी जा रहा हूँ। बस निकाल कर घास मण्डी तक छोड़ आना।

भोलानाथ : घास-मण्डी तक! यह ठीक है!

(ठहाका मारता है।)

आनन्द : हाँ-हाँ, पर तुम जल्दी करो, वह आ जायेगा।

भोलानाथ : हाँ-हाँ, जल्दी करो।

कमला : मैं जरा साड़ी बदल आऊँ!

भोलानाथ : मैं कहता हूँ साड़ी बदलने की ज़रूरत नहीं, तुम सचमुच मायके नहीं जा रही हो! और वे हमारे पड़ोसी तुम्हें इन कपड़ों में कई बार देख चुके हैं।

कमला : मैं पूछती हूँ...

आनन्द : हाँ-हाँ, वहीं पूछना। चलो-चलो...

(दोनों को धकेलते हुए सीढ़ियों की तरफ़ ले जाते हैं।)

(पर्दा)

दूसरा दृश्य

(पर्दा उसी बरामदे में उठता है। एक कुर्सी पर प्रो० आनन्द बैठे हैं, दूसरी कुर्सी पर उनके पैर हैं। उनके दायीं ओर तिपाई पर जूठे खाली बर्तन रखे हैं। उस समय जब पर्दा उठता है, वे सिगरेट सुलगाने की फ़िराक में हैं।)

आनन्द : (उस दियासलाई को धरती पर पटक कर, जो बुझ गयी है) हूँ!

(भोलानाथ सीढ़ियों के दरवाजे से झाँकता है।)

भोलानाथ : मैं कहता हूँ, हमें वहाँ बैठे-बैठे एक घण्टा हो चुका है और तुमने अभी तक आवाज़ नहीं दी। (उछल कर आनन्द उसके पास जाते हैं।)

आनन्द : (सरगोशी में) मैं कहता हूँ, धीरे बोलो! वह रसोई-घर में बैठा खाना खा रहा है।

(दोनों बरामदे के बीच में आ जाते हैं।)

भोलानाथ : (बर्तनों की ओर देख कर) और यह तुम?...

आनन्द : मैंने भी उपवास खोल लिया। कमबख्त लौकी की खीर तो ऐसी **लज़ीज**[1] बनाता है कि क्या कहूँ!

भोलानाथ : लेकिन...

आनन्द : लेकिन क्या? जो तय हुआ था, उसी के मुताबिक मैंने सब कुछ किया। पर वह एक ही हरामी है।

भोलानाथ : (सोचते हुए) तो गया नहीं?

आनन्द : वह इस तरह आसानी से न जायेगा, ऐसे को साफ़ जवाब...

भोलानाथ : लेकिन शिष्टता भी कोई चीज़ है... तुम नहीं समझते आनन्द...

(सिर खुजाते हुए कमरे में घूमने लगता है।)

आनन्द : साफ़ जवाब नहीं दे सकते तो भुगतो!

भोलानाथ : तुमने उससे कहा नहीं कि भाभी की तबियत...

आनन्द : कहा क्यों नहीं। जब वह सब चीज़ें ले कर वापस आया तो मैंने बुरा-सा मुँह बना कर कहा—भाभी की तबियत तो बड़ी खराब हो गयी। उन्होंने कहा—मैं तो मायके जाऊँगी, और वे ठहरे बीवी के गुलाम, उसी क्षण ले कर चले गये।

भोलानाथ : (आक्रोश से) बीवी के गुलाम!

आनन्द : (हँस कर और भी धीरे से भेद-भरे स्वर में) अरे, वह तो मैंने **महज़**[2] बात बनाने के लिए कहा था।

भोलानाथ : (दिल-ही-दिल में क्रोध के घूँट पी कर) हूँ!

आनन्द : यह कह कर मैं ताला उठाने के लिए बढ़ा और वह रसोई-घर में चला गया। मैंने ताला हाथों में उछालते हुए कहा—मैं तो जा रहा हूँ। कहने लगा—खाना तो खाते जाइएगा, लौकी की खीर का मज़ा...

भोलानाथ : और तुम्हारे मुँह में पानी भर आया?

आनन्द : नहीं, मैंने कहा—मैं तो जाऊँगा।

भोलानाथ : फिर?

आनन्द : उसने बेफ़िक्री से अंगीठी में कोयले डाल कर उन्हें सुलगाते हुए कहा—अच्छा तो हो

---

1 लज़ीज (उर्दू शब्द)—स्वादिष्ट, 2 महज़ (उर्दू शब्द)—केवल

आइए, पर आ जाइएगा जल्दी, ठण्डी खीर का क्या मज़ा आयेगा!
भोलानाथ : (गुस्से से दाँत पीस कर) हूँ!
आनन्द : तब मैंने दिल में सोचा कि यह इस तरह न जायेगा। कोई दूसरी तरकीब भिड़ानी पड़ेगी। चाहिए तो यह था कि मैं ताले लगा कर उसे बाहर बरामदे में मिलता, पर भाभी की दो तश्तरियों ने...
भोलानाथ : (**व्यग्रता**[1] से) फिर-फिर...
आनन्द : फिर क्या, मैंने सोचा कि इसे यहाँ छोड़ कर घर से नहीं जाना चाहिए, कोई चीज़ ही न उठा कर **चम्पत हो जाये**,[2] इसलिए बात बदल कर मैंने कहा—वैसे जाने की मुझे कोई जल्दी नहीं। यह आपने ठीक कहा कि खीर का मजा ताज़ी पकी ही में है। लाइए, देखें तो सही आप खीर कैसी बनाते हैं! बस, उसने खीर तैयार की, लौकी ही की सब्जी पकायी और हलकी-सुबक रोटियाँ सेंकी—कमबख्त ग़ज़ब की रसोई बनाता है।
भोलानाथ : (कन्धे झटका कर **निराशातिरेक**[3] से) अब...
(सिर नीचे किये घूमता है।)
आनन्द : अब क्या, तुम भी निश्चिन्त हो कर चढ़ा जाओ। भूखे पेट कुछ न सूझेगा, तर माल अन्दर जाये तो...
(अन्दर कमरे से बनवारी रूमाल से हाथ पोंछता हुआ प्रवेश करता है।)
बनवारीलाल : (चौंक कर) अरे! गये नहीं आप?
भोलानाथ : (जैसे कब्र से) गाड़ी मिस कर गये।
बनवारीलाल : और कमलाजी...?
भोलानाथ : (चिढ़ कर) उन्हें फिर दौरा पड़ गया।
बनवारीलाल : (गम्भीरता से) ओहो! तो कहाँ...
भोलानाथ : वेटिंग-रूम में बैठा आया हूँ। दूसरी गाड़ी देर से जाती थी, इसलिए...
बनवारीलाल : (खेद के साथ अन्दर को मुड़ता हुआ) एक डिब्बे में खीर डाल कर बन्द किये देता हूँ, साथ ले जाइए, विश्वास कीजिए, लौकी की खीर हिस्टीरिया के दौरे में बड़ा लाभ करती है, फिर वे सुबह से भूखी भी तो होंगी।
भोलानाथ : (क्रोध को छिपाते हुए) नहीं, कष्ट न कीजिए, मैं दवाई के साथ थोड़ा-सा दूध पिला आया हूँ।
बनवारीलाल : आप ही लीजिए। (आनन्द की ओर देख कर) क्यों प्रोफ़ेसर साहब इन्होंने भी तो सुबह का...
भोलानाथ : (**अन्यमनस्कता**[4] से) मैं तो खाने के मूड में नहीं!
बनवारीलाल : (खिन्न हुए बिना) क्यों न हो! (तनिक हँस कर) वो एक बार किसी ने एक फ़कीर से पूछा था—खाने का ठीक समय कौन-सा है? उसने उत्तर दिया—अमीर का जब मन हो और गरीब को जब मिले। आप ठहरे धनी-मानी और हम... (हिं-हिं करते हुए) निर्धन! अच्छा, पान तो लेंगे न?
भोलानाथ : (रूखेपन से) मैं पान नहीं खाता।
बनवारीलाल : (मुस्करा कर) और आप प्रोफ़ेसर साहब?
आनन्द : (जो बहुत खा गया है) मुझे कोई आपत्ति नहीं।
बनवारीलाल : अच्छा मैं नीचे **पनवाड़ी**[5] से पान ले आऊँ...
(बेपरवाही से हँसता हुआ चला जाता है।)
भोलानाथ : (कन्धे झाड़ कर) मैं कहता हूँ अब...
आनन्द : (चुप)
भोलानाथ : (व्यग्रता से) आखिर अब क्या किया जाये? वह कब तक पड़ोसी के यहाँ बैठी रहेगी? तुम तो मजे से खाना खा कर कुर्सी पर डट गये हो और हमारी आँतें...
आनन्द : भई खाना खाने के बाद मेरी तो सोचने-समझने की शक्ति जवाब दे जाती है, मैं तो सोऊँगा।
(उठते हैं।)
भोलानाथ : पर तुम कहते थे, इसकी खबर लूँगा...
आनन्द : (फिर बैठ कर) वो तो जरूर लूँगा, पर दो-चार पल को आँख लग जाये तो कुछ सूझे।
(**तन्द्रिल**[6] आँखों से भोलानाथ की ओर देखते और हँसते हैं। भोलानाथ निराश-सा हाथ कमर के पीछे रखे सोचता हुआ घूमता है।)
भोलानाथ : उठो, हो चुका तुमसे। बाहर ताला लगाये देते हैं। खुद रो-पीट कर चला जायेगा। मैं और कमला किसी होटल में खाना खा लेंगे।

---

1 व्यग्रता—व्याकुलता, 2 चंपत होना (मुहावरा)—गायब होना, 3 निराशातिरेक—अत्यधिक निराशा से,
4 अन्यमनस्कता—अनमनापन, 5 पनवाड़ी—पान बेचने वाला, 6 तंद्रिल—नींद से झुकी, सुस्ती भरी

आनन्द : (कुर्सी पर पीछे की ओर लेट कर जम्हाई लेते हुए) तो फिर मुझे क्यों घसीटते हो? मुझे नींद लगी है।
(फिर कुर्सी से उठते हैं।)
भोलानाथ : (जो बहुत तेजी से कमरे में घूम रहा है, अचानक रुक कर) आखिर क्या मतलब है तुम्हारा?
आनन्द : (फिर कुर्सी में धँस जाते हैं) अरे भाई तुम बाहर ताला लगा कर जाना चाहते हो, लगा जाओ। उस कमरे को अन्दर से बन्द कर जाओ और इस कमरे में बाहर से ताला लगा दो। किचन को भी ताला लगा दो। मुझे तीन बजे प्रिंसिपल गिरधारीलाल से मिलने जाना है। तब मैं उस कमरे से निकल कर उस पर भी बाहर से ताला लगाता जाऊँगा! अब जल्दी करो, नहीं तो वह आ जायेगा।
(उठ कर बायीं ओर कमरे में चले जाते हैं।)
आनन्द : (अन्दर से) लो, मैं लेट गया। अब पान स्वप्न ही में खाऊँगा।
(भोलानाथ कुछ क्षण तक घूमता है फिर तेजी से वह भी अन्दर चला जाता है। उसकी क्रोध से भरी चिड़चिड़ी आवाज़ आती है।)
भोलानाथ : ताले कहाँ हैं?...मैं कहता हूँ—ताले कहाँ हैं?...कमबख़्त ताले...मिल गये...मिल गये!!
(ताले हाथ में लिये आता है। और उँगली से चाबियों का गुच्छा घुमाता है।)
आनन्द : (अन्दर से) अरे देखो यह उसका बैग बाहर रखते जाओ, नहीं तो इसी बहाने आ जायेगा।
(भोलानाथ फिर अन्दर जाता है और कपड़े का एक पुराना, भरा-सा हैण्ड बैग ले कर आता है। **हैण्ड बैग**[1] को बाहर दीवार के साथ टिका देता है। चारपाई का बिस्तर और गोल तकिया उठा कर अन्दर रखता है और दरवाज़ा बन्द करके ताला लगाने लगाता है कि अन्दर से प्रोफ़ेसर आनन्द की आवाज़ आती है।)
आनन्द : सुनो-सुनो!
भोलानाथ : (फिर जल्दी से किवाड़ खोल कर) कहो!
आनन्द : (जो उठ कर दरवाज़े में आ गये हैं) अरे बर्तनों को तो अन्दर रखते जाओ!
(भोलानाथ जल्दी से बर्तन उठा कर देता है।)
आनन्द : (बर्तन ले कर) और यह तिपाई और कुर्सियाँ भी दे दो।
(भोलानाथ जल्दी-जल्दी तिपाई और कुर्सियाँ देता है। फिर एक ताला कमरे को लगाता है और दूसरा हाथ में लिये **किचन**[2] की ओर बढ़ता है। जल्दी में चारपाई से ठोकर खाता है। झुँझला कर उसे उठा कर दीवार से खड़ी कर देता है। फिर किचन को ताला लगाता है और चाबियों का गुच्छा लिये, उसे घुमाता हुआ चला जाता है।
कहीं बाहर **घड़ियाल**[3] 'टन-टन' करके दो बजाता है। बनवारीलाल मुँह में पान दबाये और कागज़ में लिपटी पान की एक **गिलौरी**[4] एक हाथ में थामे सीढ़ियों से दाखिल होता है।
बनवारीलाल : (दरवाज़े बन्द देख कर आवाज़ देता है।) भोलानाथ! भोलानाथ!!
(फिर कमरे में ताला लगा और बाहर अपना बैग पड़ा देख कर चौंकता है, मुस्कराता है। फिर अपने आप :)
— : ख़ैर, अभी तो मैं सोऊँगा।
(चारपाई खींच कर बिछाता है, जो दूसरे कमरे के दरवाजे को बिल्कुल रोक लेती है। उस पर लेट कर सिगरेट सुलगाता है और एक-दो कश लगा कर करवट बदल लेता है।)

(पर्दा गिरता है।)

(कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है और बनवारीलाल गहरी नींद में सोया दिखायी देता है, उसके खर्राटों की आवाज़ साफ़-साफ़ सुनायी देती है।)

(पर्दा)

तीसरा दृश्य

(पर्दा धीरे-धीरे उठता है। दृश्य वही। बनवारीलाल करवट बदलता है। अन्दर घड़ी में तीन बजते हैं, वह धूप की ओर देखता है।)
बनवारीलाल : (अपने आप से) ओह, धूप कहाँ तक चली गयी!
(जिस दरवाज़े पर ताला लगा है, उसके रोशन-दान का गत्ता हिलता है और किसी का हाथ बाहर निकलता है। वह चुपचाप करवट बदल लेता है।

---

1 हैंड बैग (अंग्रेजी शब्द)—हाथ में उठाया जा सकने वाला थैला, 2 किचन (अंग्रेजी शब्द)—रसोई घर, 3 घड़ियाल—दीवार पर टाँगने वाली घडी, 4 गिलौरी—पान का तिकौना या चौकोना बीड़ा

'जोंक' (उपेंद्रनाथ 'अश्क'): वाचन एवं विश्लेषण

दोहरा व्यवहार (कथानक में नया मोड़)

...ते को हटा कर प्रो० आनन्द सूट-बूट पहने रोशनदान से बड़ी कठिनाई से उतरने का प्रयास करते हैं। बनवारीलाल आधा उठ कर उन्हें देखता है। उसकी आँखों में शैतानी चमक आ जाती है, फिर लेट जाता है। प्रोफ़ेसर आनन्द की टाँगें बाहर आ जाती हैं।)

बनवारीलाल : (जैसे किसी की आहट से चौंक कर) कौन है? (फिर चौंक कर और उठ कर) कौन! कौन रोशनदान से अन्दर दाखिल होने की कोशिश कर रहा है? (शोर मचाता हुआ उछल कर चारपाई से उतरता है) चोर... चोर... दौड़ियो...भागियो!

आनन्द : मैं हूँ आनन्द।

(आवाज़ गले में फँसी हुई-सी है।)

बनवारीलाल : (बरामदे के सिरे पर आ कर **पूर्ववत्**[1] घबराये स्वर में चिल्लाते हुए) चोर दौड़ियो... भागियो!!

(आनन्द **भयाक्रान्त**[2] वहीं रुक जाते हैं। चार-पाँच आदमियों के भागते आने का स्वर। एक मारवाड़ी, एक हिंदुस्तानी और दो-एक पंजाबी सीढ़ियों से प्रवेश करते हैं।)

मारवाड़ी : (जिसकी साँस अब भी फूल रही है) कोई छे बाबू शाब, काई छे?

हिन्दुस्तानी : क्या बात है भाई, क्या बात है?

पंजाबी : (सब को पीछे धकेल कर) की **गल्ल**[3] ऐ, की गल्ल ऐ, **किद्धर**[4] चोरी हुई है, किद्धर?

आनन्द को सबक सिखाने का प्रयास

बनवारीलाल : (आनन्द की ओर संकेत कर के) यह देखिए आजकल के **जण्टलमैन**[5] बेकार। कोई काम न मिला तो यही पेशा अपना लिया। दिन-दहाड़े डाका डाल रहे हैं। मेरे मित्र हैं न पण्डित भोलानाथ। मैं उनसे मिलने के लिए आ रहा था। देखता हूँ तो ये अन्दर घुसे जा रहे हैं। यह बैग शायद पहले निकाल कर रख चुके थे। (व्यंग्य से आनन्द की ओर देख कर) उतरिए साहब, अब ज़रा **चन्द दिन**[6] **बड़े घर**[7] की रोटियाँ तोड़िए!

हिन्दुस्तानी : (आगे बढ़ कर) यह बैग उठा रहे थे?

बनवारीलाल : न-न इसे हाथ न लगाइएगा। इसमें सब गहने भरे होंगे। पुलिस ही आ कर खोलेगी।

आनन्द : (जो बिल्कुल घबरा गया है) मैं...मैं...

मारवाड़ी : अबे शाला, मैं-मैं क्या, नीचे तो उतर! मार-मार कर भूस बना देंगे!

हिन्दुस्तानी : (दार्शनिक भाव से) आजकल की बेकारी ने नौजवानों को चोर और डाकू बना दिया है!

पंजाबी : **ओए, उत्तर ओए! ओथेई की टंगेया होया एँ। सूट ते वेक्खो जिवें नाहडू खाँ दा साला होंदा ए!**[8]

(आगे बढ़ कर आनन्द को पाँव से पकड़ कर घसीटता है। वे धम्म् से फर्श पर आ गिरते हैं। पंजाबी युवक गर्दन पकड़ उन्हें खड़ा कर के दो-चार चौरस थप्पड़ उनके मुँह पर लगा देता है।)

आनन्द : (क्रोध और अपमान से जल कर) मैं पण्डित भोलानाथ का मित्र प्रो० आनन्द...

पंजाबी : चल-चल प्रोफ़ेसर दा बच्चा, ज़ाके थानेवालियाँ नूँ दस्सीं कि तूँ प्रोफ़ेसर हैं **जाँ प्रिंसिपल**

(सब ठहाका मारते हैं।)

बनवारीलाल : मैं भी उनका मित्र हूँ, लेकिन उनकी अनुपस्थिति में मकान नहीं तोड़ता फिरता।

मारवाड़ी : आजकल जमानो ऐसोई छे बाबूजी! **काई कराये जाय!**[10]

बनवारीलाल : (गरज कर) क्या किया जाये? मैं अभी पुलिस को टेलीफ़ोन करता हूँ। आप इसे पकड़ रखें। (जाते हुए) और देखिए बैग को हाथ न लगाइएगा।

(जाता है। कई और व्यक्ति आते हैं।)

आने वाले : क्या बात है? क्या हुआ? क्या हुआ?

मारवाड़ी : यह चोर चौड़-दिहाड़ चोरी कर रहो छो शाब!

हिन्दुस्तानी : (व्यंग्य से) जण्टलमेन चोर!

आनन्द : मैं कहता हूँ...

पंजाबी : (एक और थप्पड़ जमा कर) तूँ की कहना एँ? नाले चोर, नाले चतुर!

(भीड़ को चीरता हुआ भोलानाथ आता है।)

भोलानाथ : क्या बात है? क्या बात है?

---

1 पूर्ववत–पहले की तरह, 2 भयाक्रांत–डर के मारे घबरा कर, 3 गल्ल (पंजाबी शब्द)–बात, 4 किद्धर (पंजाबी शब्द)–कहाँ, 5 जंटलमैन (अंग्रेजी शब्द)–शरीफ आदमी, 6 चन्द दिन–कुछ दिन, 7 बड़े घर (व्यंग्यात्मक भाषा प्रयोग)–जेलखाना, 8 अबे उतर बे, वहीं क्या टँगा हुआ है। सूट तो देखो, जैसे नाहडू खाँ का साला हो, 9 चल-चल प्रोफ़ेसर का बच्चा, जा कर थाने वालों को बताना कि तू प्रोफ़ेसर है या प्रिंसिपल!, 10 आजकल जमाना ऐसा ही है बाबूजी, क्या किया जाय।

टिप्पणी : 'बड़े घर की रोटियाँ तोड़ना' मुहावरागत प्रयोग है। इसका अर्थ होता है जेल में रहना। जेल का भोजन बहुत ही बेस्वाद और घटिया होता है। इसलिए 'जेल की रोटियाँ तोड़ना' जैसे मुहावरे का प्रयोग होता है।

मारवाड़ी : बच गया छे शाब, थाके चोरी कर रहया छा।
हिन्दुस्तानी : समझिए बच गए। आपके मित्र ने इसे ठीक मौके पर चोरी करते हुए पकड़ लिया।
आनन्द : (जिसका साहस भोलानाथ के आने से बढ़ गया है) मैं कहता हूँ...
मारवाड़ी : (लपक कर) तूँ कहे छे...
हिन्दुस्तानी : (अदा से) यह कहता है...
पंजाबी : एह केहंदा ए (चबा-चबा कर) एह केहंदा ए!... नाले चोर, नाले चतुर! इह हैण्ड बेग **कित्थे लै चलेया सी**[1]?
(सब हँसते हैं।)
भोलानाथ : (बढ़ कर पंजाबी की गिरफ़्त से आनन्द को छुड़ाता हुआ) छोड़िए, छोड़िए आप सब जाइए। ये मेरे मित्र हैं, मैं इनसे निबट लूँगा!
हिन्दुस्तानी : लेकिन चोरी...
भोलानाथ : मैं कहता हूँ, इन्होंने कोई चोरी नहीं की। आप जाइए। मेरी पत्नी को आना है और आप सीढ़ियाँ रोके हैं।
(सब बड़बड़ाते हुए अनिच्छापूर्वक धीरे-धीरे चले जाते हैं।)
पंजाबी : (रुक कर) पर ओह बाबू!
भोलानाथ : (चीख कर) वह शैतान गया नहीं?
(पंजाबी जल्दी-जल्दी चला जाता है।)
आनन्द : वह तो पुलिस में रिपोर्ट लिखाने गया है।
भोलानाथ : आखिर हुआ क्या?
आनन्द : होता क्या, सब उसी की बदमाशी है।
भोलानाथ : आखिर बात क्या हुई?
आनन्द : होती क्या? तुम्हारे जाने के बाद मैं लेट गया तो कुछ ही देर बाद वह आया। पहले तुम्हें आवाजें दीं, फिर शायद ताला देख कर बड़बड़ाया और चारपाई घसीट कर बिल्कुल उस दरवाजे के आगे बिछा कर लेट गया। मैं...
भोलानाथ : तुम्हारे साथ ऐसा ही होना चाहिए था। कहा था न चलो हमारे साथ!
आनन्द : (अपनी बात जारी रखते हुए) साढ़े तीन बजे मुझे प्रिंसिपल साहब से मिलना था और वह खर्राटे ले रहा था। हार कर मैं तैयार हुआ, पर जाऊँ किधर से? मैं तिपाई रख कर रोशनदान तक चढ़ा, फिर उतरने लगा था कि उसे बाहर ही सोते छोड़ कर चल दूँ।
भोलानाथ : और वह तुम्हारा भी गुरु निकला! मैंने कहा था न कि अव्वल दर्जे का पाजी है?
आनन्द : उसने तो शोर मचा दिया, इतने आदमी इकट्ठे कर लिये और उस पंजाबी ने तो कई थप्पड़ मेरे मुँह पर जड़ दिये।
(बनवारीलाल प्रवेश करता है।)
बनवारी : (जैसे कुछ जानता ही नहीं) ये अजीब दोस्त हैं आपके। यह तो सब कुछ उठा कर ही ले चले थे।
भोलानाथ : आपको शर्म नहीं आती। ये तो अन्दर ही थे।
बनवारी : पर मुझे क्या पता था, मैंने आवाज़ें दीं, ये बोले तक नहीं।
भोलानाथ : सो रहे होंगे।
बनवारी : तो जब जगे थे, तब मुझे आवाज देते, रोशनदान से उतरने की क्या जरूरत थी...
भोलानाथ : अच्छा हटाइए इस मामले को। कमला की तबियत खराब हो रही है, मैं इसी गाड़ी से उसे गुरदासपुर ले जाऊँगा। चलो आनन्द तुम मेरे साथ चलो। अब प्रिंसिपल साहब से कल मिल लेना।
बनवारी : आप गुरदासपुर जा रहे हैं? आपकी ससुराल तो नवाँ शहर है?
भोलानाथ : वहाँ कमला के बड़े भाई रहते हैं।
बनवारी : (चौंक कर) भाई!
भोलानाथ : म्यूनिसिपल कमेटी[2] में हेडक्लर्क हैं।
बनवारी : म्यूनिसिपल कमेटी में! (उल्लास से हलकी-सी ताली बजा कर) यह आपने अच्छी खबर सुनायी। मैं स्वयं परेशान था। वहाँ म्यूनिसिपल कमेटी में मुझे काम है। गुरदासपुर मेरा कोई परिचित नहीं था। अब आप साथ होंगे तो सब कुछ आसानी से हो जायेगा। ठहरिए मैं यह बैग उठा लूँ।
(बढ़ कर बैग उठाता है।)

1940 ई. (पर्दा)

---

1 यह कहता है . . . एक चोर ऊपर से चतुर! यह हैण्ड बैग कहा ले जा रहा था? 2 म्यूनिसिपल कमैटी (अंग्रेजी शब्द)–नगरपालिका की समिति, नगर पालिका वह संस्था है जो किसी शहर के स्थानीय प्रशासन को नियंत्रित करती है।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर उनके नीचे दिए गये स्थान पर दीजिए।

क) भोलानाथ क्यों परेशान है?

i) ....

ii) ....

iii) ....

iv) ....

ख) बनवारीलाल से छुटकारा पाने के लिए उसने क्या-क्या उपाय किए हैं?

i) ....

ii) ....

iii) ....

iv) ....

23.3 एकांकी का सार

भोलानाथ मध्य वर्ग का व्यक्ति है जिसके आर्थिक साधन सीमित हैं। वह दो कमरों के छोटे से घर में अपनी पत्नी कमला के साथ रहता है। उनके साथ भोलानाथ के मित्र प्रो० आनंद भी हैं। आनंद कुर्सी पर बैठा अखबार पढ़ रहा है। तभी भोलानाथ घबराया हुआ आता है और आनंद को बताता है कि घर में एक बिना बुलाया मेहमान आ गया है। यह मेहमान बनवारीलाल है जो पहले भी उनके घर आ चुका है। बनवारीलाल जब एक बार आ जाता है तो जाने का नाम ही नहीं लेता। पहले जब आया था तो कहता था कि एक दिन ठहरेगा किंतु पूरे सात दिन ठहरा। भोलानाथ की नई-नई शादी हुई थी वह नौकरी की तलाश में था। जिस घर में रहता था वह उन पति-पत्नी के लिए ही काफी असुविधाजनक था। फिर बनवारीलाल के सात दिन ठहरने से उन दोनों को बहुत कठिनाई हुई। अब फिर से बनवारीलाल के आ जाने पर भोलानाथ की पत्नी बहुत ज्यादा नाराज है। भोलानाथ चाहता है कि वह किसी तरह चला जाए। बनवारीलाल भोलानाथ के मूल निवास स्थान यानी राहों का निवासी है। वतनी यानी अपने ही शहर का होने के कारण भोलानाथ बनवारीलाल से खुलकर यह भी नहीं कहना चाहता कि वह चला जाए। किंतु ऊपरी शिष्टाचार बनाए रखते हुए वह ऐसी कोई युक्ति करना चाहता है कि बनवारीलाल तुरंत चला जाए। अपने मित्र आनंद की सलाह से तरह-तरह की चालें चलता है, बहाने बनाता है। बनवारीलाल सभी बहानों को समझता हुआ उन लोगों से ज्यादा होशियार सिद्ध होता है। वह उनके घर पर जम जाता है और आनंद पर चोरी का आरोप लगाकर उसे पड़ोसियों से पिटवा देता है। जब कोई उपाय काम नहीं आता और अंत में भोलानाथ कहता है कि वह गुरदासपुर जा रहा है तो बनवारीलाल उसके साथ गुरदासपुर भी चलने को तैयार हो जाता है।

23.4 सप्रसंग व्याख्या

पिछली इकाइयों में आप सप्रसंग व्याख्या करना सीख चुके हैं। यहाँ हम कुछ उद्धरण दे रहे हैं। उनके साथ कुछ संकेत भी दे रहे हैं। संकेतों से सहायता लेकर सप्रसंग व्याख्या कीजिए। पहले उद्धरण में हमने संदर्भ, प्रसंग आदि के संकेत दिए हैं, व्याख्या करके बताई है। दूसरे में व्याख्या भी आपको संकेतों के आधार पर स्वयं करनी है।

उद्धरण - 1

"अरे भाई, उन दिनों हमारे लिए तो वे कालिदास और शेक्सपियर के बराबर थे। उनके नाटक पढ़कर और मुहल्ले के एक रसीली आवाज वाले लड़के से उनके गाने सुनकर हम उनकी कला का रसास्वादन कर लिया करते थे।"

संदर्भ:

एकांकी का नाम

....

....

लेखक का नाम

....

....

लेखक का परिचय

....

....

एकांकी का परिचय

....

....

प्रसंग :

किन पात्रों का वार्तालाप चल रहा है

....

....

किस विषय में चल रहा है

....

....

प्रस्तुत उद्धरण किस पात्र का कथन है

....

....

व्याख्या करते समय सबसे पहले पता लगाना चाहिए कि उद्धरण में कही गयी प्रमुख बात क्या है। लेखक इन वाक्यों के माध्यम से क्या कहना चाहता है। यह पता लग जानें पर उस बात का आशय स्पष्ट करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

व्याख्या : अपनी किशोरावस्था के समय की चर्चा करते हुए भोलानाथ बताता है कि किस तरह उस जमाने में मास्टर रहमत बड़े ही प्रसिद्ध नाटककार और अभिनेता थे। लोग उन्हें बहुत बड़ा लेखक समझते थे और उनकी रचनाओं को बड़े शौक से पढ़ते थे। जो सम्मान पढ़े लिखे लोगों में शेक्सपियर तथा कालिदास जैसे महान नाटककारों को प्राप्त है वही उस समय के किशोरों में मास्टर रहमत को प्राप्त था। वे लोग रहमत के नाटक शौक से पढ़ते थे और अपने मुहल्ले के किसी ऐसे लड़के से, जिसकी आवाज अच्छी होती, उनके गाने सुनते थे। जिन लोगों को मास्टर रहमत के नाटक देखने का अवसर न मिल पाता वे इसी तरह उनके नाटकों का आनंद उठा लेते थे।

विशेष :

1 प्रस्तुत उद्धरण उस जमाने का संकेत करता है जब सिनेमा, रेडियो आदि मनोरंजन के साधन नहीं थे। अश्क जी ने यह एकांकी 1940 में लिखा था। यहाँ भोलानाथ अपने लड़कपन के दिनों की चर्चा कर रहा है। जाहिर है कि 1925 के आसपास के ज़माने का जिक्र हो सकता है। इन दिनों पारसी नाटक कंपनियाँ बड़ी लोकप्रिय थीं। इन कंपनियों के नाटक खेलने वाले आम जनता में विशिष्ट व्यक्ति के रूप में लोकप्रिय थे। इस तरह ये पंक्तियाँ एक ज़माने की लोकरुचि को व्यक्त करती हैं।

2 शैली व्यंग्यात्मक है। किसी नाटक खेलने वाले को विश्व के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों के समान समझना अपने आप में मज़ाक का विषय है।

3 इस उद्धरण में दो विशिष्ट नाम आए हैं—कालिदास—संस्कृत के महान कवि और नाटककार हैं। शेक्सपियर—अंग्रेज़ी के महान कवि और नाटककार हैं।

अभ्यास 1

निम्नलिखित उद्धरण की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

उद्धरण

"क्यों न हो! (हँस कर) वो एक बार किसी ने एक फकीर से पूछा था—खाने का ठीक समय

कौन-सा है? उसने उत्तर दिया—अमीर का जब मन हो और गरीब को जब मिले। आप ठहरे धनी-मानी और हम... (हिं-हिं करते हुए) निर्धन!"

संदर्भ : पिछले उद्धरण की भाँति

....

....

प्रसंग : वार्तालाप किन पात्रों में चल रहा है

....

....

किस विषय पर चल रहा है

....

....

किस पात्र का कथन है

....

....

व्याख्या : ऊपर हमने एक उद्धरण की व्याख्या की। इस उद्धरण की व्याख्या का प्रयास कीजिए। हम आपको संकेत दे रहे हैं।
उद्धरण में कही गई प्रमुख बात क्या है?

1) अमीर का जब मन हो तब भोजन का समय
2) गरीब को जब मिले तब भोजन का समय
3) आप ठहरे धनी-मानी और हम... निर्धन

अब इन तीनों बातों का अर्थ अपने शब्दों में स्पष्ट करने की कोशिश कीजिए।

1 **अमीर का जब मन हो तब भोजन का समय :** अमीर आदमी के पास इतना पैसा होता है कि वह जब जो चाहे वह खरीद कर खा सकता है इसलिए भोजन का सबसे उपयुक्त समय तब है जब उसका मन हो।

2 **गरीब को जब मिले तब भोजन का समय :** गरीब व्यक्ति को दो वक्त की रोटी के लिए पैसे जुटाना मुश्किल होता है। इसलिए जब भी उसे रोटी मिल जाए तभी उसके खाने का सबसे उपयुक्त समय है।

3 **आप ठहरे धनी-मानी और हम...निर्धन :** इस वाक्य में बनवारीलाल जो कुछ कह रहा है उसका आशय कुछ और है। शब्दों का सीधा अर्थ यहाँ पर्याप्त नहीं है। उनमें निहित अर्थ तलाशने की जरूरत है। भोलानाथ को वह धनी-मानी क्यों कह रहा है। वह जबरदस्ती उसका मेहमान बना है। उसे यह पता है कि भोलानाथ उससे परेशान है। उसे पता है कि भोलानाथ और कमला दोनो भूखे हैं इस पर भी भोलानाथ कह रहा है कि मैं तो खाने के मूड में नहीं। यहाँ इन शब्दों से वह भोलानाथ को धीरे से चिढ़ाने की कोशिश कर रहा है इसलिए उसे धनी-मानी और अपने को निर्धन कह रहा है। इन संकेतों के आधार पर इस उद्धरण की व्याख्या कीजिए।

विशेष :

1 कथ्य

....

....

2 भाषा

....

....

3 शैली

....

....

23.5 कथावस्तु

'जोंक' का वाचन करने के बाद आपने महसूस किया होगा कि यह एकांकी पहले दो एकांकियों से काफी भिन्न है। विषय की दृष्टि से 'कौमुदी महोत्सव' में ऐतिहासिक-राजनीतिक समस्याओं को उठाया गया है। 'रीढ़ की हड्डी' में समाज में व्याप्त कुरीतियों और पिछड़ी हुई विचारधारा पर व्यंग्य किया गया है। 'जोंक' भी सामाजिक एकांकी है। इसका कथानक आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित है। अतिथि-सत्कार और शिष्टाचार तथा पारिवारिक समस्याओं के बीच द्वंद्व की सृष्टि यहाँ हास्य-व्यंग्य के माध्यम से की गई है। 'रीढ़ की हड्डी' की तरह 'जोंक' भी व्यंग्य प्रधान-एकांकी है किंतु दोनों में व्यंग्य स्वरूप अलग-अलग है। 'रीढ़ की हड्डी' में व्यंग्य बहुत तीखा और गहरा है क्योंकि यहाँ उस सामाजिक व्यवस्था का चित्र है जिसमें सुधार की ज़रूरत है। 'जोंक' में निहित व्यंग्य वैसा तीखा नहीं है। यहाँ व्यंग्य की सृष्टि हास्य के माध्यम से की गई है।

यही कारण है कि इस एकांकी में पहले दो एकांकियों के समान गंभीर घटनाविधान नहीं। कथानक का विषय हमारा अपना रोजमर्रा का जीवन है। घर में मेहमान आना हमारी जिंदगी की आम बात है। घर में किसी प्रियजन के आने से हम बहुत प्रसन्न होते हैं उसके अतिथि-सत्कार में जुट जाते हैं। किंतु कभी-कभी ऐसी स्थिति भी होती है कि मेहमान का आना हमें अच्छा नहीं लगता। इस स्थिति के कई कारण हो सकते हैं जैसे हमारे पास समय, साधन या स्थान की कमी या आने वाले मेहमान का स्वभाव या हमारी अपनी कोई व्यक्तिगत मजबूरी या हमारा स्वभाव। किंतु विचित्र बात यह है कि हम शिष्टाचार भी बनाए रखना चाहते हैं, मेहमान का अपमान नहीं करना चाहते। 'जोंक' में भी ऐसी ही कुछ स्थितियों को उठाया गया है।

'जोंक' तीन दृश्यों का एकांकी है। तीनों दृश्य भोलानाथ के घर के बरामदे के हैं। अतः दृश्य परिवर्तन के बावजूद मंच-सज्जा बदलने की जरूरत नहीं।

एकांकी का आरंभ

एकांकी का आरंभ भोलानाथ और आनंद की बातचीत से होता है। भोलानाथ काफी परेशान है और आनंद से मदद चाहता है। उसकी परेशानी का कारण यह है कि बनवारीलाल उसके घर आ गया है। बनवारीलाल उसका वतनी है यानी राहों का निवासी है। वतनी के आने पर परेशान होने की क्या बात है? इसका पता भोलानाथ के नीचे लिखे वाक्यों से चलता है :

"यह एक बार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता"
"अब वतनी को तो हज़ारों लोग मेरे वतनी हैं और कमरे... (कंधे झटक कर) मेरे पास सिर्फ यही दो हैं"

"ख्याल था कि दूसरे दिन चला जाएगा, लेकिन पूरे सात दिन रहा और जब गया तो मैंने कसम खाकर कमला से कहा कि अब कभी नहीं आएगा। लेकिन यह फिर आ धमका है और कमला..."

एकांकी के उपर्युक्त अंशों से हमें कुछ बातों का पता चलता है। बनवारीलाल और भोलानाथ एक ही स्थान के निवासी हैं। इसी कारण बनवारीलाल भोलानाथ के घर आया है। वह पहले भी भोलानाथ के घर आ चुका है। भोलानाथ की पत्नी कमला बनवारीलाल के ठहरने का काफी विरोध कर चुकी है। भोलानाथ उसे विश्वास दिला चुका है कि बनवारीलाल से उसका केवल वतनी संबंध है और वह दोबारा नहीं आएगा। किंतु जब वह दोबारा आया है तो कमला भोलानाथ से झगड़ रही है। उनके पास केवल दो कमरे हैं इसलिए इस तरह आकर चिपक जाने वाले मेहमानों के कारण उन्हें बड़ी परेशानी होती है। यहीं हमें पता चलता है कि भोलानाथ का बनवारीलाल से केवल थोड़ा-सा परिचय है और बनवारीलाल मास्टर रहमत नामक एक मशहूर ऐक्टर का निकटतम साथी है। इसी कारण दस वर्ष पहले भोलानाथ ने बनवारीलाल से बातचीत में काफी दिलचस्पी दिखाई थी। पिछले वर्ष जब वह भोलानाथ को मिला तो भोलानाथ ने शिष्टतावश उसे अपने-अपने घर चलने के लिए कह दिया था और बनवारीलाल एक बार आ गया तो सात दिन रुका रहा था। ज़ाहिर है कि बनवारीलाल काफी बेझिझक और बेफिक्र किस्म का मेहमान है।

इतने में हम देखते हैं कि भोलानाथ की पत्नी कमला आती है और चाहती है भोलानाथ बनवारीलाल से जाने के लिए कह दे। किंतु भोलानाथ अपने वतनी से इस तरह का व्यवहार नहीं करना चाहता।

कथानक का विकास

आनंद सुझाव देता है कि "इस आदमी को धता बतानी चाहिए" और बहाना बनाने की कोई तरकीब सोचने लगता है। उसे पता लगता है कि बनवारी लाल बाहर गया है तो सुझाव देता है :

"मैं कहता हूँ भाभी, तुम यहीं लिहाफ लेकर चुपचाप लेट जाओ और यदि कराह सको तो

थोड़ी देर बाद कराहती भी जाओ। (भोलानाथ से) देखो भाई तुम कह देना कि मुझे भूख नहीं है। मैं बहाना कर दूँगा कि जी भारी होने से मैं उपवास कर रहा हूँ।"

बनवारीलाल लौट कर आता है तो उनकी योजना को विफल कर देता है। बने बनाए भोजन का इंतजार किये बगैर वह स्वयं भोजन बनाने को तैयार हो जाता है।

वे अगली चाल चलते हैं और बहाने बना देते हैं कि रसोईघर में तो घी, चीनी, मसाला आदि सब कुछ खत्म हो गया है। पर बनवारीलाल भी कम नहीं। कहता है कि वह स्वयं लौकी की खीर बनाएगा। लौकी की खीर कमला के हिस्टीरिया के दौरे में गुणकारी होगी और जब तक वह कुछ खाएगी नहीं कमज़ोरी दूर नहीं होगी। इतना कहकर वह खुद ही बाजार से सामान लाने चल देता है।

अब एक विचित्र स्थिति पैदा हो गई है–

आनंद : (आश्चर्य से) यह अजीब मेहमान है, जो मेहमान के साथ मेजबान के कर्त्तव्य भी निभा रहा है और अपनी जेब से...
भोलानाथ : मैं कहता हूँ आनंद यह जोंक है–जोंक। और कोई तरकीब भिड़ाओ। पाँच आने खर्च कर देगा तो क्या हुआ। पिछले साल जाते-जाते मुझ से पाँच रुपए ले गया था।
कमला : (चारपाई से उछल कर) दिये थे आपने पाँच रुपये।

इन वाक्यों से बनवारीलाल का चिपकू स्वभाव उजागर होता है। कमला को गुस्सा आता है और भोलानाथ की परेशानी और ज्यादा बढ़ जाती है। पाँच रुपये देने की पुरानी घटना को जानकर कमला क्रोधवश कहती है कि उसे मायके छोड़ आया जाए। यहीं से आनंद को नई युक्ति सूझती है कि मायके के बहाने वे लोग पड़ोसी के घर चले जाएँ और आनंद भी कहीं चला जाए। ताला बंद मिलेगा तो मेहमान खुद ही वापस चला जाएगा। किंतु यह तरकीब पूरी तरह लागू नहीं हो पाती। बनवारीलाल घी आदि सामान खरीदने के लिए कुछ बर्तन अपने साथ ले गया है। कमला कहती है कि वे दोनों मायके के बहाने पड़ोसी के घर चले जाते हैं किंतु आनंद बनवारीलाल के आने तक वहीं रहे और उससे वे बर्तन ले ले। फिर ताला बंद करके बनवारीलाल को घासमंडी तक पहुँचा आए। कमला और भोलानाथ जाते हैं। पहला दृश्य यहीं पर खत्म हो जाता है।

अगला दृश्य उसी बरामदे का है। कमला और भोलानाथ पड़ोसी के घर बैठे-बैठे ऊब गये तो भोलानाथ देखने आया है कि अब तक बनवारीलाल गया या नहीं। किंतु आकर देखता है कि वह खाना बनाकर आनंद को खिला चुका है और खुद खा रहा है। भोलानाथ को वापस आया देखकर बनवारीलाल पूछता है कि वे लोग गए नहीं। भोलानाथ बहाना बना देता है कि गाड़ी छूट गई। बनवारीलाल तुरंत कहता है कि थोड़ी खीर कमला के लिए लेता जाए वह सुबह की भूखी होगी। भोलानाथ बहाना बनाता है कि उसे दूध पिला दिया है। वह इस समय भूख प्यास सब कुछ भूल कर किसी तरह बनवारीलाल से छुटकारा पाना चाहता है किंतु बनवारीलाल भी अपने आप में एक ही है :

"**बनवारीलाल :** आप ही लीजिए। (आनंद की ओर देखकर) क्यों प्रोफेसर साहब इन्होंने भी तो सुबह का...
भोलानाथ : (अन्यमयस्कता से) मैं तो खाने के मूड में नहीं।
बनवारीलाल : (खिन्न हुए बिना) क्यों न हो। (तनिक हँस कर) वो एक बार किसी ने एक फकीर से पूछा था–खाने का ठीक समय कौन-सा है? उसने उत्तर दिया–अमीर का जब मन हो और गरीब को जब मिले आप ठहरे धनी-मानी और हम... (हिं-हिं करते हुए) निर्धन! अच्छा पान तो लेंगे न?"

आइए देखें एकांकी के इन अंशों से हमें क्या पता चलता है–

बनवारीलाल को यह बात अच्छी तरह समझ में आ गई है कि भोलानाथ उससे छुटकारा पाना चाहता है। किंतु ऊपरी शिष्टाचार बनाए रखना चाहता है, साफ-साफ यह भी नहीं कहता कि बनवारीलाल चला जाए इसलिए झूठे बहाने बना रहा है। इसलिए बनवारीलाल भी निश्चिंत होकर ठहर गया है और अपने मेज़बानों के साथ पूरे शिष्टाचार और सहयोग का व्यवहार कर रहा है। उनकी परेशानी और खीज की परवाह किए बगैर आराम से भोजन बना-खा रहा है। साथ ही ऊपर से यह भी दिखा रहा है कि उसे अपने मेजबानों की सुख-सुविधा का बड़ा ध्यान है। अपने मेज़बान को धनी-मानी और अपने आप को निर्धन बता कर उसने भोलानाथ पर एक तीखा किंतु मीठा व्यंग्य भी कर दिया है।

जब बनवारीलाल पान खाने बाहर जाता है तो आनंद और भोलानाथ उसे भगाने की एक और युक्ति सोचते हैं। उसका बैग बाहर रख देते हैं और घर का ताला बंद करके जाना चाहते हैं। किंतु अब

आनंद को सुस्ती आ रही है और वह थोड़ी देर सोने के बाद बाहर जाना चाहता है। वह भोलानाथ से कहता है कि घर का ताला बाहर से बंद कर दिया जाए, आनंद को जब प्रिंसिपल से मिलने जाना होगा तो वह दूसरे दरवाजे से बाहर निकल जाएगा। भोलानाथ ताले बंद करके चला जाता है। बनवारीलाल जब लौटता है तो देखता है कि घर के ताले बंद हैं और उसका बैग बाहर पड़ा है। वह समझ जाता है कि उसे भगाने की नई तरकीब है, मुस्करा कर अपने आप से कहता है "खैर, अभी तो मैं सोऊँगा।" अपनी चारपाई इस तरह बिछाता है कि दूसरे कमरे का दरवाजा बिल्कुल रुक जाता है।

तीसरे दृश्य में जब बनवारीलाल करवट बदल कर जागता है तो देखता है कि जिस कमरे का ताला बंद है उसके रोशनदान का गत्ता हटा कर प्रोफेसर आनंद बाहर निकल रहे हैं। बनवारीलाल को शरारत सूझती है :

कथानक में अचानक नया मोड़

बनवारीलाल : (जैसे किसी की आहट से चौंक कर) कौन है? (फिर चौंक कर उठ कर) कौन! कौन रोशनदान से अंदर दाखिल होने की कोशिश कर रहा है? (शोर मचाता हुआ उछल कर चारपाई से उतरता है। (चोर चोर दौड़ियो भागियो !)
आनन्द : मैं हूँ आनंद। (आवाज गले में फँसी हुई सी है)
बनवारीलाल : (बरामदे के सिरे पर आकर पूर्ववत् घबराये स्वर में चिल्लाते हुए) चोर दौड़ियो भागियो!

इस तरह बनवारीलाल अचानक एक नई शरारत करके आनंद को मुश्किल में डाल देता है। बनवारीलाल की घबराई आवाज सुन कर कई लोग मदद के लिए दौड़ आते हैं आनंद को चोर मान कर उसे मारने-पीटने लगते हैं। बनवारीलाल यह कह कर चला जाता है कि पुलिस में रिपोर्ट लिखाने जा रहा है।

तभी भोलानाथ आता है तो पूरी घटना को देख कर चौंकता है। आनंद को उन लोगों की गिरफ्त से छुड़ा कर बताता है कि आनंद उसका मित्र है और उसने कोई चोरी नहीं की। उन लोगों से जाने के लिए कहता है। आनंद उसे बनवारीलाल की करतूत बताता है। तभी बनवारीलाल आकर इस तरह व्यवहार करता है जैसे कुछ जानता ही नहीं।

एकांकी की परिणति

भोलानाथ फिर से नया बहाना बनाता है। धीरे-धीरे एकांकी चरम सीमा की ओर बढ़ता है।

भोलानाथ : अच्छा हटाइए इस मामले को। कमला की तबियत खराब हो रही है, मैं इसी गाड़ी से उसे गुरदासपुर ले जाऊँगा। चलो आनंद तुम मेरे साथ चलो। अब प्रिंसिपल साहब से कल मिल लेना।
बनवारीलाल : आप गुरदासपुर जा रहे हैं? आपकी ससुराल तो नवां शहर है?
भोलानाथ : वहाँ कमला के बड़े भाई रहते हैं।
बनवारीलाल : (चौंक कर) भाई!
भोलानाथ : म्यूनिसिपैलिटी में हैड क्लर्क हैं।

भोलानाथ समझ रहा है कि इस बार उसकी तरकीब काम आ जाएगी क्योंकि उसने बनवारीलाल से सब कुछ साफ-साफ कह दिया है। किंतु बनवारीलाल और भी ज्यादा होशियार है।

चरम सीमा

बनवारीलाल : म्यूनिसिपल कमेटी में! (उल्लास से हल्की-सी ताली बजा कर) यह आपने अच्छी खबर सुनाई। मैं स्वयं परेशान था। वहाँ म्युनिसिपल कमेटी में मुझे काम है। गुरदासपुर में मेरा कोई परिचित नहीं था। अब आप साथ होंगे तो सब कुछ आसानी से हो जाएगा। ठहरिए मैं यह बैग उठा लूँ। (बढ़कर बैग उठाता है)।

यहीं पर एकांकी समाप्त हो जाता है। भोलानाथ के सभी उपाय बेकार जाते हैं। दिखावटी शिष्टाचार की परिणति उस चरम स्थिति में होती है जब जोंक की तरह चिपके मेहमान से छुटकारे का कोई उपाय नहीं रहता।

इस तरह "जोंक" का कथानक एक छोटी-सी बात को बड़े ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। घटना कोई खास नहीं है, किंतु ऐसी है जिसे हम सब महसूस करते हैं कि किसी न किसी स्तर पर यह हम सबसे जुड़ी है। कहीं-न-कहीं हम भी ऐसा व्यवहार करते हैं।

अभ्यास 2

सही (✓) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

क) बनवारीलाल से भोलानाथ का परिचय
   i) बहुत घनिष्ठ था
   ii) साथ पढ़ने के कारण था

iii) मशहूर ऐक्टर रहमत का साथी होने के कारण था

iv) पड़ोसी होने के कारण था

ख) कमला बनवारीलाल के आने से इसलिए परेशान है कि

i) वह झगड़ालू है

ii) उसे किसी व्यक्ति का घर में आना-जाना पसंद नहीं है

iii) बनवारीलाल आ जाए तो सबको तंग करता है

iv) फालतू बिस्तर न होने के कारण उसे सर्दी में ठिठुरना पड़ेगा

ग) बनवारीलाल का स्वयं भोजन बनाने का निर्णय इस बात का सूचक है कि

i) वह कमला और भोलानाथ की सहायता करना चाहता है

ii) उसे बहुत भूख लगी है

iii) वह भोजन बनाने में बहुत निपुण है

iv) वह भोलानाथ की चाल समझ गया है

अभ्यास 3

'रीढ़ की हड्डी' और 'जोंक' दोनों एकांकियों का कथानक मध्यवर्गीय परिवार में आए मेहमानों से संबंधित है। इन दोनों के मेहमानों और मेजबानों की तुलना कीजिए। अपना उत्तर लगभग दस पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

23.6 चरित्र चित्रण

'जोंक' एकांकी में चार पात्र हैं भोलानाथ, कमला, बनवारीलाल और आनंद। इसके अलावा पंजाबी, मारवाड़ी और हिंदुस्तानी व्यक्ति थोड़ी देर के लिए आते हैं। प्रमुख भूमिका भोलानाथ और बनवारीलाल की है। आनंद और कमला उनके सहायक रूप में हैं। आनंद और भोलानाथ के व्यक्तित्व का कुछ परिचय लेखक ने अपने रंग-संकेतों में भी दिया है। बनवारीलाल और कमला के बारे में हम केवल एकांकी के कथानक और संवादों द्वारा जान पाते हैं।

जिस तरह यह एकांकी अपने कथावस्तु में पिछले दो एकांकियों से भिन्न है उसी तरह चरित्र-सृष्टि में भी। कथावस्तु का विश्लेषण करते समय हम चर्चा कर चुके हैं कि यहाँ लेखक किसी गंभीर समस्या का विवेचन विश्लेषण नहीं करना चाहता वह हलके-फुलके हास्य के माध्यम से जीवन के एक यथार्थ को प्रस्तुत करना चाहता है। इसलिए उसने संक्षिप्त किंतु मार्मिक प्रसंग को बड़े ही सरल और सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। अतः उसने पात्रों के चरित्र की जिन विशेषताओं को केंद्र में रखा है वे यथार्थ और स्वाभाविक होते हुए भी जटिल नहीं हैं। वे अन्य पात्रों के या हमारे भीतर आक्रोश नहीं जगाती बस हलके से गुदगुदाती हैं। गोपाल प्रसाद या शंकर के व्यवहार से हम घृणा करते हैं किंतु बनवारीलाल या भोलानाथ के व्यवहार पर हम हँसते हैं।

आगे हम इन पात्रों की विशेषताओं के आधार पर इनके चरित्र चित्रण का प्रयास करेंगे।

भोलानाथ

एकांकी के आरंभ में भोलानाथ का परिचय देते हुए लेखक ने बताया है कि भोलानाथ "सीधा-सादा सनकी-सा आदमी है, कंधे झटकने की आदत है। ऐसे आदमियों को लोग कभी-कभी जनमुरीद भी कह दिया करते हैं"।

"जो बुद्धिमत्ता प्रोफेसर साहब के चेहरे से टपकती है उसका वहाँ (भोलानाथ के चेहरे पर) सर्वथा अभाव है"।

ऊपर उद्धृत रंग-संकेतों में लेखक ने भोलानाथ की चार विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाया है–

1 वह ज्यादा बुद्धिमान या चतुर नहीं है।

2 सीधा-सादा है।

3 सनकी है।

4 जनमुरीद है।

आइए अब देखें कि एकांकी में भोलानाथ के आचार-व्यवहार और वार्तालाप से उसकी क्या विशेषताएँ उभरती हैं। एकांकी के शुरू से लेकर अंत तक वह एक ही समस्या से जूझता है – किस तरह बनवारीलाल को अपने घर से भगाया जाए। इस समस्या से घबराने के सिवाए इसके समाधान का कोई रास्ता उसे नहीं सूझता और वह पूरी तरह आनंद की मदद पर आश्रित है :

> "तुम मेरी कुछ मदद करो–भगवान के लिए।"
> "मैं कहता हूँ आनंद यह जोंक है–जोंक। कोई और तरकीब भिड़ाओ"।

आनंद की बताई सब तरकीबों को वह अपनाता जाता है और चाहता है किसी तरह बनवारीलाल से छुट्टी मिले। कमला कहती है कि साफ-साफ कह दो कि चला जाए किंतु वह बनवारीलाल से अशिष्टतापूर्वक पेश नहीं आना चाहता। वह एक मिलनसार व्यक्ति है और शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार में विश्वास रखता है। अपने वतन के आदमी से रुखेपन से पेश नहीं आना चाहता। हालाँकि महसूस करता है "अब वतनी को तो हज़ारों लोग मेरे वतनी हैं और कमरे··· (कंधे झटक कर) मेरे पास सिर्फ़ यही दो हैं।" पीछे-पीछे से बनवारीलाल को भगाने के उपाय करता है किंतु सामने कहता है–"आइए, आइए! किधर चले गए थे आप।"

जब बनवारीलाल उसे दस साल बाद मिला तो बिना सोचे समझे तुरंत शिष्टतावश कह दिया "आइए कुछ पानी-वानी पीजिए।" पर जैसे ही बनवारीलाल चलने को तैयार हो गया तो भोलानाथ घबरा गया :

> "मेरे तो पाँव तले से धरती निकली गयी। बड़े ही ज़रूरी काम से जा रहा था और मैंने तो यों ही शिष्टाचारवश पानी के लिए पूछा था।"

इससे पता चलता है भोलानाथ का शिष्टाचार दिखावटी है। वह बिना सोचे समझे शिष्टाचारवश किसी को बुलाने लगता है और जब व्यक्ति आ जाता है तो वह घबरा जाता है। उसमें इतना नैतिक साहस नहीं है कि सहज-सच्चा व्यवहार कर सके। वतनी आदमी के प्रति वह अपना कुछ दायित्व समझता है किंतु अपनी पत्नी के क्रोध से भी घबराता है :

> "तुम होते तो मेरी सूरत देखते। नयी-नयी शादी हुई थी और ये हमारे वतनी···"
>
> "जब गया तो मैंने कसम खाकर कमला से कहा कि अब कभी नहीं आएगा। लेकिन यह फिर आ धमका है और कमला···"

बनवारीलाल से उसका बहुत थोड़ा परिचय है किंतु वतनी होने के नाते उससे शिष्टता का दिखावा ज़रूरी समझता है। उधर कमला का विरोध भी नहीं सहना चाहता इसलिए बनवारीलाल को भगाने के सभी उपाय करता है।

बनवारीलाल

वस्तुतः इस एकांकी का मुख्य पात्र बनवारीलाल ही है। सभी घटनाएँ उसी के इर्द-गिर्द घूमती हैं। भोलानाथ की बातचीत से पता चलता है कि बनवारीलाल

- उसका वतनी है
- मास्टर रहमत का दायाँ हाथ है
- एक बार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता
- जोंक की तरह चिपक जाता है

अपने व्यवहार में बनवारीलाल काफी मिलनसार, व्यवहारकुशल और चतुर है। किसी भी अवसर का तुरंत लाभ उठाता है। विरोधी स्थिति को अपने अनुकूल ढाल लेता है। मान-अपमान की बहुत चिंता किये बगैर अपना काम अपने ढंग से करता है। जैसे ही भोलानाथ ने कहा कि कुछ पानी-वानी पीजिए तुरंत वह आने को तैयार हो गया। बहुत होशियारी से उत्तर दिया :

"लाला बिहारी लाल राह देखते होंगे, पर चलिए अपने बतनी का अनुरोध कैसे टाला जा सकता है" भोलानाथ की पत्नी को तुरंत अपनी बहन बना लिया और उनके घर आराम से ठहर गया। इस बात की कोई परवाह नहीं की कि उन लोगों को परेशानी होगी। इस तरह अपनी सुख-सुविधा के बारे में सोचता है दूसरों की नहीं।

अपनी सुविधा के लिए वह विरोधी परिस्थितियों को भी होशियारी से अपने अनुकूल बना लेता है। आनंद और भोलानाथ की सभी चालें वह समझता है किंतु ज़ाहिर नहीं होने देता। भोजन तैयार न मिलने की गुंजाइश देखता है तो स्वयं बनाता है और सबसे खाने का आग्रह इस तरह करता है मानो उन सभी का बहुत ध्यान रखता हो। आनंद से कहता है :

"खाना तो खाते जाइए, लौकी की खीर का मजा···"

"अच्छा तो हो आइए, पर आइएगा जल्दी, ठंडी खीर का क्या मजा आएगा।"

भोलानाथ से कहता है :

"एक डिब्बे में खीर डाल कर बंद किये देता हूँ, साथ ले जाइए, विश्वास कीजिए, लौकी की खीर हिस्टीरिया के दौरे में बड़ा लाभ करती है, फिर वे सुबह से भूखी भी तो होंगी"।

जब ताला बंद देखता है तो बाहर ही चारपाई बिछा कर सो जाता है। जब भोलानाथ गुरदासपुर जाने लगता है तो वहाँ भी अपने काम के बहाने साथ चल देता है।

इस तरह चतुराई से हर मौके का लाभ उठाता है। साथ ही साथ उन लोगों को सबक भी सिखाता जाता है। भोलानाथ और कमला अपने घर से बाहर भूखे बैठे हैं और बनवारीलाल उनके घर में आराम से खाना बनाता,खाता और सोता है। आनंद को खिड़की से बाहर निकलते देख कर शोर मचा देता है कि वह चोर है और खिड़की के रास्ते अंदर जाकर चोरी करने की कोशिश कर रहा है। सब कुछ जानते हुए वह ऐसा व्यवहार करता है जैसे कुछ पता ही नहीं। भीड़ इकट्ठी हो जाती है और बनवारीलाल पुलिस में रिपोर्ट करने के बहाने वहाँ से खिसक लेता है।

हर स्थिति का समाधान तुरंत और बड़ी चतुराई से करने की क्षमता उसमें है। उसके चरित्र की कमी यह है कि वह स्वार्थी है अपनी ज़रूरत का ध्यान तो रखता है किंतु दूसरे की कठिनाइयों या समस्याओं का ध्यान नहीं रखता। भोलानाथ से उसका बहुत ही कम परिचय है फिर भी बेझिझक होकर सात दिन तक उसके घर ठहरा रहा। भोलानाथ की मजबूरी थी उसके पास छोटा मकान था उसकी पत्नी को गर्मी के मौसम में बिना खिड़की-रोशनदान वाले कमरे में जमीन पर सोना पड़ता था। बनवारीलाल ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

अब वह दोबारा आया है तो फिर से उनकी यही समस्या है उनके पास दो चारपाइयाँ हैं, बिस्तर भी सीमित हैं आनंद भी उनके घर ठहरा हुआ है। इस तरह बनवारीलाल इतना आत्म–सीमित व्यक्ति है कि सिवाय अपने किसी और के बारे में सोचता ही नहीं।

वास्तव में भोलानाथ और बनवारीलाल दोनों ही ऐसे व्यक्ति हैं जो ऊपर से कुछ और व्यवहार करते हैं और उनके मन में कुछ और है। जिस तरह भोलानाथ की शिष्टता ऊपरी है उसी तरह बनवारीलाल की व्यवहारकुशलता और बेफिक्री भी। मन से भोलानाथ किसी कठिनाई में नहीं चाहता है। दोनों ही तरह के व्यक्ति वास्तव में होते हैं। यह एकांकी सन् 1940 में लिखा गया था। उस वक्त ऐसे व्यक्ति मौजूद थे। आज लगभग 50 वर्ष बाद भी हम महसूस करते हैं कि दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं है। दोनों ही अपनी तरह के टाइप पात्र हैं।

अभ्यास 4

नीचे एकांकी के कुछ अंश दिए जा रहे हैं उनके आधार पर कमला के चरित्र की विशेषताएँ बताइए :

1 • "मैं पूछती हूँ, आप चुपचाप इधर आकर बैठ गये हैं और वह मुझे इस तरह हुक्म दे रहा है जैसे मैं उसकी मोल ली हुई बाँदी हूँ।"

2 • "तो फिर ये उसे साफ जवाब क्यों नहीं दे देते"

3 **कमला :** (चारपाई से उछल कर) दिये थे आपने पाँच रुपये।
भोलानाथ : (कंधे झटक कर) अब मैं···

कमला : और मैं पाँच पैसे माँगती हूँ तो नहीं मिलते।
भोलानाथ : अब वतनी ...।
कमला : (क्रोध से) भुगतिए, पाँच क्या मेरी तरफ से पाँच सौ दीजिए। बस मुझे मायके छोड़ आइए।"

4 "वाह! ताला लगाकर आप चले जाएँगे तो जो बर्तन वह ले गया है—वो? नहीं आप यों कहना कि वे चले गये हैं और मैं भी जा रहा हूँ। बस निकाल कर घास की मंडी तक छोड़ आना।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

अभ्यास 5

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर उनके नीचे दिए स्थान पर दीजिए:

क) भोलानाथ मास्टर रहमत के मित्र के प्रति क्यों आकृष्ट था?

....
....
....
....

ख) वतनी के प्रति भोलानाथ अपना क्या दायित्व समझता है?

....
....
....
....

ग) कमला आनंद से घर पर ही रुकने को क्यों कहती है?

....
....
....
....
....

घ) बनवारी लाल आनंद के साथ शरारत क्यों करता है?

....
....
....
....

23.7 परिवेश

'जोंक' का परिवेश सन् 1940 के मध्यवर्गीय भारतीय परिवार का परिवेश है। निम्न मध्यवर्गीय परिवार में मेहमान का आना अक्सर असुविधाजनक होता है। सीमित आर्थिक साधनों वाले परिवार के पास अक्सर इतनी चीजें नहीं होतीं कि कई दिनों तक ठहरने वाले मेहमान का आतिथ्य स्वयं बिना कोई कष्ट उठाए कर पाए। यह स्थिति सन् 1940 में थी, इससे पहले भी रही होगी और अब भी है। अतः यहाँ परिवेश देश और काल की अपेक्षा वर्ग विशेष की परिस्थितियों से ज्यादा जुड़ा हुआ है। भोलानाथ के दो कमरों के छोटे से मकान में, फालतू बिस्तर एक भी नहीं है। यदि मेहमान ठहरेगा तो बिस्तर उसे देने होंगे और गृहणी को सर्दी में बरामदे में ठिठुरना पड़ेगा। पहले भी जब यह व्यक्ति सात दिन ठहरा था तो :

> "ये मजे में बिस्तरा बिछवा कर सो रहा था और मेरी पत्नी बेचारी अंदर तप रही थी"
> "चारपाइयाँ हमारे पास सिर्फ़ दो थीं। आखिर वह गरीब सख्त गर्मी में भी अंदर फर्श पर सोई।"

मेहमान का विरोध भोलानाथ की बजाए उसकी पत्नी ज्यादा करती है। भोलानाथ शिष्टाचार नहीं छोड़ना चाहता किंतु पत्नी बार-बार कहती है कि साफ-साफ जवाब दे दिया जाये। यह स्थिति मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुषों की वास्तविक मानसिकता को प्रस्तुत करती है। स्त्री तथा पुरुष दोनों को समस्या का सामना अपने-अपने ढंग से करना पड़ता है इसलिए उनकी प्रतिक्रिया भी अपनी-अपनी तरह की होती है। भारतीय शहरों या महानगरों में रहने वाले अधिकांश परिवारों का संबंध आज भी गाँवों या छोटे कस्बों से है। क्योंकि इनमें अधिकांश परिवारों के लोग गाँवों या कस्बों से रोज़गार के लिये आकर शहरों में बस गए हैं। ऐसी स्थिति में उनके वतनी (यानी गाँव या कस्बे के) लोग अक्सर उनके यहाँ आना अपना अधिकार मानते हैं। किंतु इन शहरी मध्यवर्गीय परिवारों की अपनी समस्याएँ हैं। छोटे घर, सीमित वस्तुएँ, सीमित आर्थिक साधन आदि के कारण इन मेहमानों से ऊपरी शिष्टाचार निर्वाह करते हुए भी मन से इनका स्वागत करने में वे असमर्थ रहते हैं। बाह्य समाज के अधिक संपर्क में रहने के कारण पुरुष शिष्टाचार में कमी नहीं आने देना चाहते। किंतु घर के भीतर की वास्तविक कठिनाइयों के कारण स्त्रियाँ शिष्टाचार की हद को पार करती प्रतीत होती हैं। मध्यवर्गीय परिवेश की सृष्टि लेखक ने पात्रों की स्थिति, आचार-व्यवहार, भाषा-स्वभाव आदि सभी के माध्यम से की है :

1 **कमला** : "आप देखिए! आपसे हमारा कोई पर्दा नहीं। हमारे पास दो कमरे हैं और फालतू बिस्तर एक भी नहीं। फिर आप भी यहीं हैं। इनका यह वतनी तो बिस्तर बिछवा कर सो रहेगा और मैं पड़ी ठिठुरा करूँगी इस बरामदे में।"

2 **कमला** : (चारपाई से उछल कर) दिये थे आपने पाँच रुपये।
भोलानाथ : (कंधे झटका कर) अब मैं ···
कमला : और मैं पाँच पैसे माँगती हूँ तो नहीं मिलते।

परिवेश की सृष्टि के लिए एक अन्य माध्यम भी लेखक ने अपनाया है। भोलानाथ का बनवारीलाल से परिचय मास्टर रहमत के कारण है। सन् 1920-30 के दिनों में पारसी थियेटर कंपनियाँ बड़ी लोकप्रिय थीं। इन कंपनियों में नाटक खेलने वालों को लोग विशिष्ट व्यक्ति समझते थे। यहाँ तक कि इन नाटकों के अभिनेताओं के साथ रहने वालों को भी सामान्य से श्रेष्ठ व्यक्ति समझा जाता था। इस एकांकी में ऐसे ही एक विशिष्ट व्यक्ति यानी "खून का बदला खून", "दर्दे ज़िगर" नाटक करने वाले मशहूर ऐक्टर मास्टर रहमत का युवा वर्ग पर इतना गहरा असर दिखाया गया है कि लोग उनके करीबी मित्रों तक से बातचीत करके अपने आप को महान समझते थे।

इस तरह 'जोंक' का परिवेश आधुनिक भारतीय समाज की जीती जागती तस्वीर प्रस्तुत करता है। पात्र, उनकी समस्याएँ, उनका व्यवहार हमें अपने आस-पास का महसूस होता है।

अभ्यास 6

i) 'जोंक' एकांकी का परिवेश भारतीय समाज के किस वर्ग से संबंधित है?

....

....

....

ii) मेहमान के आकर ठहर जाने से समस्या क्यों खड़ी हो जाती है?

....

....

....

iii) मास्टर रहमत का दाँया हाथ होना इस एकांकी के परिवेश की दृष्टि से किस तरह महत्वपूर्ण है ?

....

....

....

....

....

23.8 संरचना शिल्प

भाषा

'जोंक' के वाचन और कथानक, पात्र तथा परिवेशगत विश्लेषण के दौरान हम देख चुके हैं कि यह एकांकी हमारे रोजमर्रा के जीवन की, हमारे आस-पास की घटनाओं से संबंधित है। इसे हम अपने काफी नज़दीक पाते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि इसकी भाषा हमारे आस-पास की भाषा हो यानी वह भाषा हो जो हम जीवन में आम बोलचाल में इस्तेमाल करते हैं। इस एकांकी की भाषा सहज, सरल और स्पष्ट तो है ही पात्रों व स्थितियों के अनुकूल भी है।

अश्क जी जानते हैं कि नाटक में भाषा का निरर्थक प्रयोग नहीं होना चाहिए। इसलिए उनका हर वाक्य, हर शब्द अपने आप में सार्थक और संप्रेषणीय होता है। उनके पात्र लंबे भाषण नहीं देते, किसी जटिल शब्दजाल में नहीं फँसते। छोटे-छोटे वाक्य, आम बोलचाल की लय और शब्दावली, भाव या विचार की संप्रेषणीयता उनकी भाषा की विशेषताएँ हैं। पात्र अपने गुण, स्वभाव और परिस्थिति के अनुसार भाषा बोलते हैं। उनका लहजा भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितने उनके शब्द :

> **भोलानाथ :** (स्वर म चिंता) इन्हें अचानक दौरा पड़ गया, बड़ी मुश्किल से होश आया है। प्रायः पड़ जाया करता है दौरा···हिस्टीरिया···
> **बनवारीलाल :** तो आप इलाज उपचार···?
> **भोलानाथ :** इलाज-उपचार बहुत हुआ। कर्नल··· (फिर बात का रुख बदल कर) ये तो बीमार पड़ गयीं और··· (जरा हँस कर) लौकियाँ आप इतनी उठा लाये हैं। (फिर आनंद से) क्यों भाई आनंद, तुम तो कहते थे···

भोलानाथ की खीज और परेशानी और बनवारीलाल की मस्त बेफिक्री उनके शब्दों के साथ-साथ उनके बातचीत के लहजे से भी प्रकट होती है।

अश्क जी की भाषा की दूसरी विशेषता है–व्यंग्यात्मकता। वे शब्दों का प्रयोग इतने पैनेपन से करते हैं कि पात्र सामान्य रूप से जो कह रहा है या कर रहा है उसमें निहित व्यंग्य पाठक या दर्शक को सीधे संप्रेषणीय हो जाता है।

आम बोलचाल में हम अक्सर अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए मुहावरों या कहावतों का प्रयोग करते हैं, उर्दू, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस तरह का प्रयोग अश्क जी ने भी बड़ी स्वाभाविकता के साथ किया है। यहाँ "धता बताना", "चंपत हो जाना", "दायाँ हाथ होना" आदि मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं। अश्क जी उर्दू और हिंदी दोनों के लेखक हैं। अतः उनकी भाषा में उर्दू हिंदी का मिलाजुला रूप मिलता है जिसे आमतौर पर हिंदुस्तानी कहा जाता है। वतनी, मेजबानी, तर माल, जहन्नुमी, दर्दे-गुर्दा, पेशबंदी, दाखिल होना जैसे उर्दू के शब्दों का प्रयोग तथा रसास्वादन, व्यग्रता, उपचार, भयाक्रांत जैसे संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग साथ-साथ हुआ है। स्प्लेंडिड, प्रोफेसर, किचन आदि अंग्रेजी शब्द आए हैं। अंग्रेजी शब्दों के तद्भव रूप भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे "जंटलमैन"।

एक नया प्रयोग इस नाटक में यह हुआ है कि अश्क जी ने पंजाबी, मारवाड़ी और हिंदुस्तानी पात्रों का समावेश करके उनकी प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग कराया है। इस प्रयोग में स्थानीय शब्दावली के साथ लहजे की विशेषता का भी ध्यान रखा है। विशेष रूप से पंजाबी पात्र की यह विशेषता काफी रोचक हैं।-

"चल प्रोफेसर दा बच्चा, जाके थाने वालियाँ नूँ दस्सीं कि तूँ प्रोफेसर हैं जाँ प्रिंसिपल।"

झुँझलाहट और खीज व्यक्त करने के लिए आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली गालियाँ भी प्रयुक्त की गई हैं।

"कमबख्त लौकी की खीर भी तो ऐसी लज़ीज़ बनाता है कि क्या कहूँ।"

"वह एक ही हरामी है"

शैली

'जोंक' का वाचन करते समय आपने महसूस किया होगा कि अश्क जी की शैली की प्रधान विशेषता है विनोद वृत्ति। वे समस्या को गंभीर उलझन के रूप में न उठा कर हलके मज़ाक के रूप में उठाते हैं। मध्यवर्गीय परिवार की वास्तविक समस्या इस एकांकी में उठाई गई है। पर लेखक ने उसे बड़े सहज किंतु व्यंग्यात्मक ढंग मे प्रस्तुत किया है। सीमित आर्थिक साधनों के कारण उत्पन्न समस्या के साथ-साथ मानवीय स्वभाव को भी नज़दीकी से प्रस्तुत किया गया है। बनवारीलाल जैसे स्वार्थी मेहमान, भोलानाथ जैसे शिष्टाचार प्रिय मेजबान और आनंद जैसे युक्ति-उपाय भिड़ाने वाले चतुर व्यक्तियों पर हास्यपरक ढंग से व्यंग्य किया गया है। फलतः यह एकांकी आरंभ से अंत तक बड़ा ही रोचक और मनोरंजक बन गया है। गंभीर और सहज़-सरल के अनोखे मेल के कारण इसकी शैली हास्यपरक और व्यंग्यात्मक है। हम मानते हैं कि जीवन में ऐसा होता है, यह भी जानते हैं कि किसी न किमी स्तर पर हम सभी इस तरह का व्यवहार करते हैं।

संवाद

क्या आप बता सकते हैं कि 'जोंक' के संवादों में आपने क्या खास बात देखी जो अन्य एकांकियों में नहीं है। आइए हम इसके कुछ संवादों पर ध्यान दें :

आनंद : देखो भाभी, यह इनका मित्र नहीं, यह मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ।
कमला : तो फिर ये उसे साफ जवाब क्यों नहीं देते?
आनंद : इनसे यह हो मकता तब न?
भोलानाथ : (जो इस बीच इधर-उधर घूम रहा है, रुक कर और दे [illegible]टक कर) हाँ, अब वतनी आदमी है...।
कमला : वतनी है तो...।
आनंद : देखो झगड़ने से कुछ नहीं बनेगा। इस आदमी को धता बतानी चाहिए।
कमला : यही तो मैं कहती हूँ।

अब हम गौर करें तो पायेंगे कि यह संवाद छोटे-छोटे और स्वाभाविक हैं। कार्य-व्यापार को आगे बढ़ाने में सहायक हैं। भोलानाथ अपने वतनी व्यक्ति से साफ-साफ कहने में असमर्थ है कि वह चला जाए। आनंद कहता है कि इस आदमी को धता बतानी चाहिए। हमें पता लगता है कि आनंद धता बताने की कोई योजना बनाने वाला है। वह योजना क्या होगी? यह अगले संवादों से पता चलेगा।

कहीं-कहीं वाक्य अधूरे छोड़ दिए गए हैं या एक-दो शब्दों के ही वाक्य बनाए गए हैं। इससे संवादों में बोलचाल की सहजता आई है और अर्थ का विस्तार हुआ है। बोलने वाले पात्र के मन की उलझन का अनुमान यहाँ पाठक या दर्शक स्वयं अपनी कल्पना और विचार शक्ति के माध्यम से लगाता है।

लेखक इन संवादों में किसी शब्दजाल या भाषा के आडंबर में नहीं बहकता। बल्कि पात्रों की मनोभूमिका और अर्थ को सारगर्भित ढंग से प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि ये संवाद हास्यपरक और मनोरंजक होने के साथ-साथ प्रभाव में बड़े चुटीले हैं :

(क) **आनंद :** साफ जवाब नहीं दे सकते तो भुगतो
भोलानाथ : तुमने उससे कहा नहीं कि भाभी की तबियत...
आनंद : कहा क्यों नहीं। जब वह सब चीज़ें लेकर वापस आया तो मैंने बुरा-सा मुँह बना कर कहा—भाभी की तबियत बड़ी खराब हो गई। उन्होंने कहा मैं तो मायके जाऊँगी, और वे ठहरे बीबी के गुलाम, उसी क्षण ले कर चले गए।

भोलानाथ : (आक्रोश) बीबी के गुलाम!

आनंद : (हँस कर और भी धीरे से भेद भरे स्वर में) अरे, वह तो मैंने महज बात बनाने के लिए कहा था।

(ख) **बनवारीलाल :** (मुड़ कर रसोई घर की ओर कदम बढ़ाते हुए) लौकी की खीर ··· हिस्टीरिया में बड़ा गुण करती है। और मैं पकाता भी अच्छी हूँ। (जरा हँस कर) साथ ही अपने लिए दो रोटियाँ भी सेंक लूँगा और तरकारी भी ··· लौकी ही बन जाएगी। मेरा तो ख्याल है आप भी खाएँ, मजा न आ जाए तो नाम नहीं।

यहाँ भोलानाथ, आनंद और बनवारीलाल तीनों के कथनों में निहित व्यंग्यार्थ को संवाद इतने पैनेपन से उभारने में समर्थ हैं कि दर्शक पर उनका प्रभाव काफी गहरा पड़ता है। वस्तुतः इस एकांकी की शक्ति ही इसके संवाद है। स्थिति बड़ी सपाट-सी है कि एक व्यक्ति को घर से भगाना हैं किंतु संवादों ने इसे बड़ा ही नाटकीय और प्रभावपूर्ण बना दिया है ।

23.9 अभिनेयता

अभिनेयता की दृष्टि से 'जोंक' बड़ा ही उपयुक्त और सफल एकांकी है। व्यंग्य-विनोद की शैली में प्रस्तुत इस यथार्थपरक एकांकी को बड़े ही अच्छे ढंग से रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। तीनों दृश्य एक ही स्थान पर घटित होते हैं। मध्यवर्गीय परिवार के घर की मंच सज्जा के विषय में लेखक ने पर्याप्त निर्देश दिये हैं। कथानक में स्थान, समय और कार्य की एकता है। अभिनय की दृष्टि से लेखक द्वारा दिए गए रंग-निर्देश बड़े ही उपयोगी हैं। संवादों के साथ-साथ स्वर के उतार-चढ़ाव और चित्त की खिन्नता, हर्ष, उल्लास, शरारत आदि के अनुकूल भावाभिनय के निर्देशों को उचित ढंग से पालन करने पर इस एकांकी का अभिनय बड़ा ही प्रभावपूर्ण हो सकता है। लेखक की भाषा रंगमंच की ज़रूरतों के सर्वथा उपयुक्त है। अभिनेता इसे आसानी से अनुकरण कर सकते हैं तथा दर्शक बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस तरह भाषा, भाव और कथा तीनों ही पर्याप्त संप्रेषणीय हैं। कई प्रदेशों के पात्र अपनी-अपनी भाषा खास ढंग से बोलते हैं। रंगमंच की दृष्टि से यह स्थिति काफी रोचक है। बनवारीलाल द्वारा आनंद के साथ की गई शरारत इस एकांकी को काफी मनोरंजक बना देती है।

23.10 मूल्य ङ्कन

प्रतिपाद्य : एकांकी ढ़ने से यह तो स्पष्ट ही है कि लेखक का उद्देश्य व्यंग्य करना है। सवाल यह है कि यह व्यंग्य किस पर है। भोलानाथ पर या कमला पर या आनंद पर या बनवारीलाल पर। वस्तुतः यह व्यंग्य मनुष्य की दोहरे व्यवहार की प्रवृत्ति पर है। व्यक्ति ऊपर से बड़ा शिष्ट और भला दिखाई देना चाहता है भले ही उसके मन में कुछ भी हो। भोलानाथ और आनंद बनवारीलाल को तुरंत भगाना चाहते हैं। किंतु सामने देखकर भोलानाथ कहता है :

"आइए, आइए! किधर चले गए थे आप?"

आनंद और बनवारीलाल एक दूसरे से कहते हैं : "आप से मिल कर बड़ी खुशी हुई"

यह खुशी कितनी है इसका अनुमान दोनों के कार्यों से लग रहा है।

इस दोहरे व्यवहार-मन में चिढ़चिड़ाहट और ऊपर से दिखावटी शिष्टाचार की प्रवृत्ति का ही

इस दोहरे व्यवहार—मन में चिढ़चिड़ाहट और ऊपर से दिखावटी शिष्टाचार की प्रवृत्ति का ही

व्यवहार का दोहरापन बनवारीलाल में भी है। वह जबरदस्ती मेहमान बना हुआ है वह जानता है कि लोग उससे परेशान हैं किंतु ऊपर से ज़ाहिर करता है कि उसे भोलानाथ और कमला की बहुत परवाह है। आनंद के साथ तो उसका दोहरा व्यवहार बदमाशी की हद तक पहुँच जाता है। आनंद को अच्छी तरह जानते हुए भी वह उसे थोड़ी देर के लिए चोर सिद्ध कर देता है और लोग उसकी पिटाई भी कर देते हैं।

यह व्यंग्य मध्यवर्गीय स्थितियों को लेकर प्रस्तुत किया गया है और उसकी समस्याओं को लेकर उठाया गया है। किंतु अपने व्यापक रूप में यह मानव स्वभाव पर व्यंग्य है उच्चवर्ग या साधन संपन्न व्यक्ति की समस्याएँ भिन्न हो सकती हैं। उसकी भोलानाथ या कमला जैसी मजबूरी नहीं है, इसलिए हो सकता है वह मेहमान नवाज़ी में इस तरह का दोहरापन न बरते। किंतु उसके व्यवहार में अन्य स्तरों पर दोहरापन मिल सकता है। अपने सहज भावों को हम दूसरों पर प्रकट

नहीं होने देना चाहते क्योंकि दूसरे की निगाह में भले बने रहना चाहते हैं। साथ ही दूसरों के कारण अपने आपको कोई तकलीफ़ भी नहीं देना चाहते। परिणाम यह होता है कि उलझन और खीज में बने रहते हैं।

शीर्षक

इस एकांकी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। जोंक पानी में रहने वाला ऐसा कीड़ा होता है जो अन्य प्राणियों की देह से चिपक कर उनका खून पीता है। एक बार यदि जोंक चिपक जाए तो उसे आसानी से छुटाना संभव नहीं होता। यहाँ बनवारीलाल जोंक की तरह चिपका हुआ मेहमान है जिससे पीछा छुटाना भोलानाथ के लिए असंभव हो गया है। भोलानाथ ने हर तरकीब की किंतु बनवारीलाल से छुटकारा न पा सका। इस तरह एकांकी का शीर्षक बड़ा ही सार्थक है। पूरा घटना व्यापार बनवारीलाल से छुटकारा पाने के लिए घटता है किंतु बनवारीलाल जोंक की तरह चिपका है जो छूटने का नाम ही नहीं लेता।

अभ्यास 7

सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए।

क) 'अश्क' जी की भाषा

i) मुहावरेदार है

ii) इसमें बोलचाल की रवानी है

iii) गूढ़-गंभीर है

iv) पात्रानुकूल है

v) जटिल है

ख) इसमें

i) व्यंग्यात्मकता है

ii) संप्रेषणीयता है

iii) कठिन शब्दों का प्रयोग है

iv) उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृतनिष्ठ हिंदी के शब्दों का मिला – जुला प्रयोग है

v) स्थानीय भाषा का मेल नहीं है।

अभ्यास 8

क) 'जोंक' के संवादों की तीन विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

ख) अभिनेयता की दृष्टि से इस एकांकी की भाषा शैली और संवादों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

अभ्यास 9

'जोंक' एकांकी में लेखक का उद्देश्य मानव स्वभाव की किन विशिष्ट प्रवृत्तियों को उभारना है?

....

....

....

....

....

23.11 सारांश

इस इकाई में आपने 'जोंक' एकांकी का वाचन और विश्लेषण किया। अब आप इस एकांकी के कठिन शब्दों और मुहावरों का अर्थ सीख गए हैं। इसकी कथावस्तु, पात्रों के चरित्र, प्रतिपाद्य, भाषा, शैली आदि की विशेषताएँ बता सकते हैं। हास्य-व्यंग्यपरक एकांकी तथा अन्य एकांकियों के बीच अतर कर सकते हैं। विविध विशेषताओं के आधार पर 'जोंक' एकांकी का विवेचन कर सकते हैं। इस एकांकी की दृष्टि से अश्क जी की एकांकी कला की विशेषताएँ बता सकते हैं।

23.12 शब्दावली

युक्ति : उपाय, तरकीब

टाइप पात्र : किसी खास प्रकार, वर्ग या मनोवृत्ति की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र

मेजबान : आतिथ्य करने वाला व्यक्ति

23.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) i) क्योंकि उसके घर एक चिपकू मेहमान बनवारीलाल आ गया है।
   ii) बनवारीलाल एक बार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता।
   iii) भोलानाथ कमला से कह चुका था कि बनवारीलाल फिर नहीं आएगा।
   iv) कमला कह रही है कि बनवारीलाल को साफ जवाब दे दो।

ख) i) पत्नी की बीमारी का बहाना और भोजन न बनने की व्यवस्था।
   ii) घर से गायब हो जाना।
   iii) बनवारीलाल का सामान बाहर रख कर घर का ताला बंद कर देना।
   iv) साफ-साफ कह देना कि दूसरे शहर जा रहा है।

अभ्यास 2

क) iii)   ख) vi)   ग) iv)

अभ्यास 3

'रीढ़ की हड्डी' में मेहमान गोपाल प्रसाद और शंकर रामस्वरूप के आग्रह पर आते हैं। रामस्वरूप अपनी बेटी उमा का रिश्ता तय करना चाहता है। अतः वह हर संभव कोशिश करता है कि किसी तरह गोपाल प्रसाद शंकर का ब्याह उमा से करने को तैयार हो जाए। वह उनके आतिथ्य की पूरी-पूरी तैयारी करता है। उनकी हर बात में हाँ-में-हाँ मिलाता है। यहाँ तक कि उनसे झूठ कह देता है कि उमा केवल मैट्रिक पास है। वह हर तरह से मेहमान को प्रसन्न करना चाहता है। किंतु 'जोंक' में आए मेहमान में मेजबान भोलानाथ की कोई दिलचस्पी नहीं है। वह मेहमान से शिष्टता का व्यवहार तो करना चाहता है किंतु उससे हर हालत में छुटकारा पाना चाहता है। इसके लिए वह आनंद की सलाह से तरह-तरह की चालें चलता है।

अभ्यास 4

कमला निम्न मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला स्त्री-पात्र है। मेहमान के आने से उत्पन्न कठिनाइयों को वह तुरंत समाप्त करना चाहती है। इसलिए चाहती है कि बनवारीलाल फौरन चला जाए। भोलानाथ का शिष्टता का आचरण उसे पसंद नहीं इसलिए कहती है :

"तो फिर ये उसे साफ जवाब क्यों नहीं दे देते।"

भोलानाथ में जो थोड़ी-बहुत सहनशक्ति दिखाई देती है कमला में उसका अभाव है। बनवारीलाल का कोई काम बताना कमला को सख्त नागवार गुज़र रहा है। उसे लगता है कि बनवारीलाल उससे ऐसा व्यवहार कर रहा है मानों वह उसकी दासी हो।

वह थोड़ी झगड़ालू भी है, मेहमान के कारण वह अपने पति से झगड़ती है। उसे शक है भोलानाथ सही ... र नहीं बताते, "मुझे इसी बात की चिढ़ है कि आखिर ये मुझसे छिपाते क्यों हैं"? बनवारीलाल को पाँच रुपये देने की बात सुन कर वह मायके जाने की धमकी देती है। इससे पता चलता है कि वह भोलानाथ पर मनोवैज्ञानिक रूप से दबाव डालना चाहती है। उसमें धैर्य की कमी है और चाहती है कि हर स्थिति तुरंत उसके अनुकूल हो जाए।

कमला में गहरी सूझ-बूझ की भी कमी है। जब सब लोग ताला बंद करके जाने की योजना बनाते हैं तो उसे उन बर्तनों का ध्यान आता है जो बनवारीलाल अपने साथ ले गया है। नतीजा यह होता कि बनवारीलाल को आनंद घर पर ही मिल जाता है और वह आराम से ठहर कर खाना बनाता-खाता है। उसको भगाने की सारी योजना बेकार हो जाती है।

अभ्यास 5

क) मास्टर रहमत एक मशहूर ऐक्टर था। उस ज़माने में नाटक खेलने वालों के प्रति लोगों के मन में विशेष आकर्षण होता था। वे उन्हें बहुत विशिष्ट और अपने से बहुत ऊँचा व्यक्ति समझते थे।

ख) भोलानाथ का विचार है कि वतनी से बहुत शिष्टतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। घर आये वतनी से यह कह देना अशिष्टता है कि हमारे घर से चले जाओ। वतनी होने के नाते वह बनवारीलाल को पाँच रुपये भी देता है।

ग) बनवारीलाल अपने साथ सामान खरीदने के लिये दो तश्तरियाँ भी ले गया है। कमला को डर है कि यदि सब लोग चले जाएँगे तो उसकी तश्तरियों का क्या होगा इसलिए वह आनंद से घर पर ही रुकने को कहती है।

घ) बनवारीलाल समझ गया है कि उसे भगाने के लिए जो प्रयास भोलानाथ कर रहा है उसमें आनंद भी शरीक है, जबकि आनंद भी उनके घर आया हुआ एक मेहमान है। इसलिए अवसर पा कर वह आनंद को सबक सिखाना चाहता है।

अभ्यास 6

i) 'जोंक' एकांकी का परिवेश भारतीय समाज के निम्न मध्य वर्ग से संबंधित है।

ii) इस वर्ग के लोगों के आर्थिक साधन सीमित होते हैं। उनके पास रहने के लिए सीमित जगह होती है। अतः घर आए मेहमान के लिए चारपाई, बिस्तर आदि की व्यवस्था करने में अक्सर गृहणी को स्वयं मुसीबत उठानी पड़ती है।

iii) बनवारीलाल मास्टर रहमत का नज़दीकी व्यक्ति है इसलिए उसे मास्टर रहमत का दायाँ हाथ कहा गया है। पारसी नाटक कंपनियों के समय में नाटक खेलने वाले वे व्यक्ति बेहद लोकप्रिय होते थे। सब लोग तो उनसे मिल नहीं पाते या उनके नाटक देख नहीं पाते थे। जिस किसी को उनके नजदीकी व्यक्ति से मिलने या बातचीत करने का मौका भी मिल जाता तो वह समझता कि किसी महान व्यक्ति से मिल लिया है। यह इस शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक के लोगों की मानसिक स्थिति को सूचित करता है अतः परिवेश की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

अभ्यास 7

क) i) (√) ii) (√) iii) (×) iv) (√) v) (×)

ख) i) (√) ii) (√) iii) (×) iv) (√) v) (×)

अभ्यास 8

क) 1 संवाद छोटे-छोटे और स्वाभाविक हैं।
 2 अधूरे वाक्यों या एक दो शब्दों का संवाद के रूप में सार्थक प्रयोग है।
 3 ये संवाद अपने प्रभाव में बड़े चुटीले हैं।

ख) अभिनेयता की दृष्टि से 'जोंक' बड़ा ही अच्छा एकांकी है। लेखक द्वारा दिए गए रंगसज्जा

तथा अभिनय संबंधी निर्देश बड़े ही सार्थक और उपयोगी हैं। घटनाएँ और स्थितियाँ अभिनय की दृष्टि से प्रभावपूर्ण हैं। भाषा-संवाद और हास्य-व्यंग्यपरक शैली रंग-प्रस्तुति तथा प्रभाव की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त है।

अभ्यास-9

इस एकांकी के माध्यम से लेखक मानवीय व्यवहार के दोहरेपन को उभारना चाहता है। व्यक्ति जो चाहता है उसे वह अपने व्यवहार से सीधे स्पष्ट नहीं करता। उसके मन में कुछ होती है आचरण कुछ और करता है। भोलानाथ का ऊपरी शिष्टाचार तथा पीछे-पीछे से मेहमान को भगाने की योजना इसी प्रवृत्ति को प्रस्तुत करते हैं।

इकाई 24 'संस्कार और भावना' (विष्णु प्रभाकर) : वाचन एवं विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य
24.1 प्रस्तावना
24.2 एकांकी का वाचन : 'संस्कार और भावना'
24.3 एकांकी का सार
24.4 संदर्भ सहित व्याख्या
24.5 कथानक
24.6 चरित्र चित्रण
24.7 परिवेश
24.8 संरचना शिल्प
24.9 अभिनेयता
24.10 मूल्यांकन
24.11 सारांश
24.12 शब्दावली
24.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- एकांकीकार विष्णु प्रभाकर के बारे में जानकारी दे सकेंगे;
- उनके एकांकी 'संस्कार और भावना' का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- एकांकी में प्रयुक्त कठिन शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों का अर्थ बता सकेंगे;
- एकांकी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे;
- इसके कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे;
- इसके पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे;
- इसके परिवेश और संरचना शिल्प की विशेषताएँ बता सकेंगे, और
- एकांकी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण करके इसके शीर्षक की उपयुक्तता का निर्णय कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आप डॉ. रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर तथा उपेंद्रनाथ अश्क के एकांकी पढ़ चुके हैं। विषय एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से ये एकांकी एक दूसरे से काफी भिन्न थे। इस इकाई में आप विष्णु प्रभाकर के एकांकी 'संस्कार और भावना' का वाचन और विश्लेषण करेंगे।

विष्णु जी हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार, जीवनीकार और एकांकी लेखक हैं। उनका जन्म 21 जून, 1912 को मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) जिले के मीरनपुर नामक ग्राम में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा पंजाब में हुई। स्वाधीनता संग्राम में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में लेखन किया है। कथाकार और नाटककार दोनों के रूप में वे प्रसिद्ध हैं। विष्णु जी की विचारधारा का झुकाव गांधी विचार-दर्शन की ओर है। अतः उनकी रचनाओं में मानवीय उत्थान के लिए आदर्शोन्मुखता रहती है। यद्यपि उनकी मूल भावभूमि यथार्थपरक है पर वे मनुष्य के हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं और मानते हैं कि जब मनुष्य अपनी भूल को पहचान लेता है तो उसमें सुधार अवश्य करता है। इस तरह उनकी कहानियों और नाटकों में मानवीय संवेदना, मानवीय मूल्यों और जीवन की कोमल अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है।

विष्णु प्रभाकर की प्रमुख रचनाएँ हैं—'आदि और अंत', 'संघर्ष के बाद' (कहानी संग्रह), 'नव

प्रभात', 'डाक्टर' (नाटक) 'जाने अनजाने' (स्केच और संस्मरण), 'प्रकाश और परछाइयाँ' (एकांकी संग्रह)। किंतु उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि बंगला उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' से मिली।

एकांकी लेखन की शुरुआत उन्होंने रेडियो एकांकी लेखन से की थी। उनके प्रमुख एकांकी हैं 'युगसंधि', 'सीमारेखा', 'संस्कार और भावना', 'जहाँ दया पाप है', 'उपचेतना का छल', 'पूर्णाहुति', 'वीरपूजा', 'दरिंदा' आदि। सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक आदि सभी तरह के विषयों को लेकर उन्होंने एकांकियों की रचना की है।

'संस्कार और भावना' उनका सामाजिक-मनोवैज्ञानिक एकांकी है। मानवीय स्वभाव के दो पक्षों—परंपरागत संस्कारों और हृदय की मूल भावनाओं—के द्वंद्व को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। मानवीय मनोविज्ञान के साथ-साथ यह एकांकी भारतीय समाज की रूढ़िबद्ध मानसिकता और उसमें उत्पन्न हुई बदलाव की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है।

मूलतः लेखक ने इस प्रसंग को लेकर 1936 में कहानी लिखी थी—"संघर्ष के बाद"। यह कहानी एक सच्ची घटना पर आधारित थी। सन् पचास के आस-पास लेखक ने इस कहानी को रेडियो नाटक का रूप दिया। बाद में इसे दृश्य एकांकी के रूप में तैयार करके प्रकाशित कराया।

आगे हम एकांकी का वाचन करेंगे।

24.2 एकांकी का वाचन : 'संस्कार और भावना'

पात्र

मॉं : संक्रांति काल[1] की एक हिंदू नारी।
अतुल : माँ का छोटा पुत्र।
उमा : पुत्रवधू; अतुल की पत्नी।
नौकर और मिसरानी

(स्टेज पर एक मध्यवर्गीय परिवार के घर के आँगन का दृश्य। पूर्व की ओर दो कमरे हैं, जिनके द्वार बंद हैं। पश्चिम भाग का द्वार बाहर जाता है, वह भी बंद है। उत्तर भाग में रसोई के आगे बरामदा है। दक्षिण में बड़ा बरामदा है, जिसका एक द्वार बैठक में जाता है, दूसरा बाहर। जो कुछ दिखाई देता है, वह स्वच्छ, सुन्दर और उच्च स्थिति का प्रतीक है। बैठक में एक सोफे का एक अंश दृष्टि में आता है। रसोई के पास स्वच्छता है और आलमारी में उचित सामान व्यवस्थित रूप से रखा हुआ है। आंगन में एक ओर पलंग पड़ा है, दूसरी ओर दो कुर्सियाँ तथा एक छोटा टेबुल। टेबुल पर नाश्ते के खाली बरतन हैं। पलंग पर उमा लेटी है। वह युवती और रूपवती है। पर्दा उठते समय वह कोहनी पर भार टिकाये शून्य में ताकती दिखाई देती है। साड़ी अस्त-व्यस्त है। कुंडलाकार[2] कर्णफूल[3] केशों में होकर कपोल पर आ गया है। आगे एक खुली पुस्तक है। वह पढ़ते-पढ़ते सोचने लगी है। सहसा धीरे से फुसफुसाती है।)

उमा : (अपने से बातें करती-सी)—जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है, वे ही बातें हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।
(फुसफुसाकर वह फिर पुस्तक देखती है; फिर शून्य में दृष्टि गड़ा देती है। उसकी आँखें गंभीर हैं, उसके मुख पर आनेवाली संध्या की रक्तिम[4] आभा[5] सौंदर्य बखेर रही है। वह इतनी खोयी हुई है कि नौकर रसोई के बरामदे से आकर बरतन उठा ले जाता है, पर वह नहीं देखती। उसका सिर उसी तरह खुला रहता है और विदा की किरण कर्णफूल पर चमकती है। उसी चमक में केशों की स्निग्धता[6] उभर आती है। तभी पश्चिम वाला बाहर का द्वार खुलता है। माँ अंदर आती हैं। वे वृद्धा हैं। उनका मुख वेदना[7] से पूर्ण है; आँखों में पीड़ा है और शरीर में थकान। उन्होंने साड़ी पर गरम चादर ओढ़ी है। उनकी पगध्वनि[8] सुनकर उमा चौंककर उठती और आंचल ठीक करती है। माँ उसी के पास आकर धम्म से बैठ जाती हैं। बैठती-बैठती कहती हैं।)

1 संक्रांति काल—नए और पुराने मूल्यों और संस्कारों के बीच कशमकश का काल 2 कुंडलाकार—कुंडल के आकार का, गोल 3 कर्णफूल—कान में पहनने का गहना 4 रक्तिम—लाल रंग की, लालिमा 5 आभा—चमक 6 स्निग्धता—चिकनाई, 7 वेदना—कष्ट, दुःख, परेशानी, 8 पगध्वनि—पैरों की आहट

पुत्र की बीमारी की बात सुनकर मातृत्व के कर्तव्य की भावना का जागना

माँ : (भरांया स्वर)[1] तूने सुना उमा?
उमा : (अचरज)[2] क्या माता जी?
माँ : पिछले महीने अविनाश बहुत बीमार रहा था।
उमा : सच?
माँ : हाँ।
उमा : उन्होंने तो कुछ नहीं बताया।
माँ : वह क्या बताता! वह क्या वहाँ जाता है!
उमा : फिर भी सुना तो होगा! आपसे किसने कहा?
माँ : मैं कुमार के घर गयी थी। वहीं उसकी मिसरानी ने मुझे बताया। कहने लगी–तुम्हारा बड़ा बेटा तो बहुत बीमार रहा; मरकर बचा है। सुनकर मैं शर्म से गड़ गयी। मेरा बेटा बीमार रहे और मुझे पता भी न लगे। (आँसू भर आते हैं, स्वर लड़खड़ाता है) बचपन में उसे कभी-कभी खाँसी भी हो जाती थी, तो मैं कई-कई दिन तक न खाती थी, न सोती थी। वे **बहुतेरा**[3] समझाते थे, नाराज भी हो जाते थे, पर जी नहीं मानता था; और अब ··· (आगे बोला नहीं जाता। फूट-फूटकर रो पड़ती है। उमा करुणा से द्रवित उनको सम्हालती है।)
उमा : (सांत्वना से भीगा स्वर) माताजी, माताजी! रोओ मत : न, इसमें आपका क्या अपराध है?
माँ : (उसी तरह) अपराध और किसका है? सब मुझी को दोष देते हैं। मिसरानी कह रही थी–बहू कैसी भी हो, पर अपने प्राण देकर उसने पति को बचा लिया है। अकेली थी, पर किसी के आगे **हाथ पसारने**[4] नहीं गयी। केवल एक-दो बार मिसरानी ने दवा ला दी थी, वरना स्वयं दवा लाती थी, घर का काम करती थी और फिर अविनाश को देखती थी ···
उमा : (टोक कर) पर माताजी! भाई साहब को क्या हुआ था?
माँ : हैजा।
उमा : (चौंकती है) ··· हैजा ··· आ ··· ।
माँ : मर कर बचा है, बेटी। दस दिन बीत गये, पर अभी तक दफ्तर नहीं जाता।
उमा : कैसा अचरज है, उन्हें पता भी नहीं लगा।!
माँ : पता लगा भी हो तो क्या वह बताने वाला है!
उमा : (चोट खाकर) पर माताजी, यह तो ···
माँ : (विद्रूप से) मैं जानती हूँ। मेरे ही तो बेटे हैं। माया-ममता किसी को भी नहीं छू गयी है। हर बात में देश, धर्म और कर्त्तव्य की **दुहाई**[5] देना उन्होंने सीखा है। आखिर इनका बाप भी तो ऐसा ही **निर्मम**[6] था। मुझे याद है, जिस समय अतुल छोटा-सा लड़का रहा था, बचने की कोई आशा नहीं थी, उस समय वे शांत मन उसको धरती पर लिटाने के लिए सामान हटा रहे थे। दुनिया ने दाँतों तले उँगली दबाकर कहा था–ऐसा भी क्या बाप, जो अपने बेटे के लिए भी नहीं रोता। उसी बाप के ये बेटे हैं। मुझे सदा उन्होंने माया-ममता में फँसी हुई कहकर कोसा है। सदा मेरी निन्दा की है।
(चोट पर चोट खाकर उमा **तिलमिलाती**[7] है। उसके भाव पलटते हैं, करुणा पहले खीज, फिर हल्के रोष में बदल जाती है।)
उमा : लेकिन माताजी! इसमें सब दोष भाभी का है।
माँ : वह तो है ही, पर बहू ···
उमा : (बात काटकर) मैं अच्छी तरह जानती हूँ, वे देखने में बड़ी भोली लगती हैं परन्तु ···
माँ : (चौंककर) भोली ···
उमा : हाँ, बहुत भोली, माताजी! बहुत प्यारी। जो एक बार देख लेता है वह फिर उस रूप को नहीं भूला सकता। बार-बार देखने को मन करता है। बड़ी-बड़ी काली आँखें; उनमें **शैशव**[8] की भोली मुस्कराहट, अनजान में ही लज्जा से लाल हुए **कपोलों**[9] पर रहने वाली हँसी ···
माँ : (और भी अचरज) पर उमा! तूने क्या अविनाश की बहू को देखा है?
उमा : (सम्हलकर) हाँ, माताजी।
माँ : कब?
उमा : एक दिन जब आप उनसे गुस्सा होकर बहुत दुखी हो रही थीं तब मैं भाभी के पास गयी थी। दोपहर का समय था; आप सो गयी थीं। सच माताजी! तब उनके रूप को देखकर मैं चौंक उठी थी। बंगाली इतने सुन्दर होते हैं। मुझे देखकर वे मुस्करायीं, फिर गले में आंचल डालकर प्रणाम किया और जब मैंने अपना परिचय दिया तो **गद्गद**[10] हो उठीं। मुझे छाती से लगा लिया ···

---

1 भर्राया स्वर–रुआसेपन के कारण स्वर में स्पष्ट न होना 2 अचरज–आश्चर्य 3 बहुतेरा–बहुत का तदभव रूप 4 हाथ पसारना (मुहावरा)–मदद माँगना 5 दुहाई–शपथ दिलाना, कष्ट में सहायता की माँग करना 6 निर्मम–निष्ठुर, ममता रहित, सख़्त, भावुकता-विहीन 7 तिलमिलाना–बेचैन होना 8 शैशव–बचपन 9 कपोल–गाल 10 गदगद–प्रसन्न

माँ : (वही विस्मय का स्वर) पर तूने तो मुझे कभी नहीं बताया!
उमा : बतलाना ही नहीं चाहती थी।
माँ : क्यों?
उमा : क्योंकि मैं उनसे लड़ने गयी थी।
माँ : (भौंचक) लड़ने गयी थी! ···
उमा : जी हाँ! मैं उनसे लड़ने गयी थी, क्योंकि वे आपके दुःख का कारण थीं। वे न होतीं तो बड़े भइया आपसे अलग कैसे होते। यही बात मैंने उनसे भी कह दी थी।
माँ : (उत्सुक) सच?
उमा : जी हाँ।
माँ : तब?
उमा : तब पहले तो वे मेरी बात सुनकर मुस्करा दीं, फिर बोलीं—'इसमें मेरा क्या दोष है? यह तो ··· ।' मुझे तब क्रोध आ रहा था। बात काटकर मैंने कहा—'दोष तुम्हारा नहीं है तो किसका है? तुम न चाहतीं तो बड़े भइया माँ को कैसे छोड़ देते। तुम अब भी चाहो तो सब कुछ ठीक हो सकता है। तुम उन्हें छोड़ सकती हो। तुम ··· तुम ···'
माँ : (चौंकती है) उमा, उमा! यह कहा तुमने ··· ?
उमा : (भावावेश) हाँ, मैंने स्पष्ट कहा था। माँ को बेटे से अलग करना पाप है, माँ का हृदय तोड़ना **अत्याचार**[1] है। उस अत्याचार को दूर करने के लिए प्राण भी देने पड़े तो कम हैं।
माँ : (उत्सुकता) तो उसने क्या कहा?
उमा : वह बोलीं—'बहिन, मैं जानती हूँ माँ-बेटे के संबंध से बढ़कर कोई संबंध नहीं है। पर पति से बढ़कर पत्नी के लिए भी और कुछ नहीं है; पति भी वह जिसके लिए उसने समाज की ही नहीं, वरन् अपने हृदय की **साक्षी**[2] दी है; जिसे वह प्यार करती है। उसके कहने पर वह प्राण दे सकती है, परन्तु उसको दुःखी करके वह किसी को सुखी करने की कल्पना नहीं कर सकती। करेगी तो वह पापिन है। सोचो, तुम स्वयं पत्नी हो। यद्यपि तुमने मेरी तरह पति का वरण नहीं किया है, फिर भी तुम उन्हें प्यार करती हो ··· ।' मुझे यह बात बुरी लगी, मैंने कहा—'सब पत्नियाँ अपने पतियों को प्यार करती हैं, मैं भी करती हूँ, प्राणों से अधिक प्यार करती हूँ।' सुनकर वे घबरायी नहीं, चौंकी भी नहीं, बोलीं—'सबकी बात मैं नहीं कहती; इतना अधिकार मेरा नहीं है, पर यह मैं जानती हूँ, तुम अपने पति को प्यार करती हो, तभी तो यहाँ आयी हो। मैं अतुल को भी जानती हूँ, उनका भाई वह भी। कई बार मेरे पास आया है।'
माँ : (हठात् चौंककर) अतुल वहाँ गया है!
उमा : हाँ, माताजी, उन्होंने यही कहा था। मुझे भी अचरज हुआ था। मैंने पूछा—'वे यहाँ आते हैं?' वे हँसकर बोलीं—'डरो नहीं। वे भाई के पास नहीं आते; दफ्तर के काम से आते हैं। तुम्हारी बातें उन्होंने ही मुझे बतायी है। मैं जानती हूँ, तुम उन्हें प्यार करती हो। सोचो तो; कोई तुमसे कहे, तुम अतुल को छोड़ दो, क्योंकि उनकी माँ और उनका परिवार इस विवाह मे नाराज है तो क्या तुम ··· ।
मैं आगे न सुन सकी। मैंने चिल्लाकर कहा—'भाभी बस करो ···' पर उन्होंने बात पूरी करके दम लिया, बोलीं—'तो क्या तुम उन्हें छोड़ दोगी? बोलो ···'
तब मैंने **त्रस्त**[3] होकर कहा था—'नहीं भाभी! मैं नहीं छोड़ सकूँगी! चाहूँ तब भी नहीं।' सुनकर वे मुस्करायीं, कहने लगीं—'अच्छा! अब छोड़ो इन बातों को। अभी तो आयी हो और तभी ले बैठी ये पचड़े। आओ अंदर चलें।' पर माताजी! मुझे न जाने क्या हो रहा था। मेरा **अंतर्मन**[4] काँपने लगा था; मैं उन्हें देखती थी तो जैसे **मोहिनी-सी**[5] छा जाती थी। मैं थी भी और नहीं भी थी! **मोह-ग्रस्त**[6] आदमी होता भी है और नहीं भी होता। पर हुआ यही, मैं वहाँ न ठहर सकी। वह पुकारती ही रह गयीं।
माँ : (स्वप्न से जागकर) तो तुम चली आयीं?
उमा : हाँ।

'संस्कार और भावना' के बीच संघर्ष की शुरुआत

माँ : (गंभीर वेदना का स्वर) उमा! पर तुम वहाँ हो तो आयीं। अतुल भी जाता है; तुम सब जाते हो; तुम जो निर्मम हो और मैं जो मोह-ममता में फँसी हुई हूँ, उसकी सूरत को तरसती हूँ। कैसी उल्टी बात है?

---

1 अत्याचार—अनुचित आचरण, अन्याय 2 साक्षी—गवाही 3 त्रस्त—डरा हुआ 4 अंतर्मन—भीतरी मन
5 मोहिनी-सी—जादू, सम्मोहन, 6 मोह—ग्रस्त-ममता या स्नेह के वश में होना

टिप्पणी : मनोविज्ञान के अनुसार हमारे मन के तीन रूप होते हैं—चेतन पूर्व चेतन और अचेतन। चेतन मन हमारे समस्त कार्यव्यापारों को प्रेरित और संचालित करता है। अचेतन मन भी हमारे मन का सक्रिय हिस्सा है जो हमारे व्यवहार को प्रभावित करता है किंतु हम इस प्रभाव के प्रति सचेत नहीं होते। इसलिए विस्तार और महत्व की दृष्टि से चेतन की अपेक्षा अचेतन अधिक श्रेष्ठ है।

'संस्कार और भावना' (विष्णु प्रभाकर) वाचन एवं विश्लेषण

उमा : (क्षमा याचना का स्वर) पर माताजी! हम क्या उनसे मिलने गये थे? हम तो ···

माँ : (बीच में टोककर) कहते हैं, **चेतन**[1] से **अचेतन**[2] अधिक शक्तिशाली है। उसमें अधिक आकर्षण है। इसीलिए तुम एक-दूसरे के प्रति खिंचे। चाहे वह प्रेम था, चाहे घृणा थी, पर असल बात **रक्त के खिंचाव**[3] की थी, वह होकर रही। काश कि ··· (स्वर डूबता है) काश कि मैं निर्मम हो सकती; काश कि मैं संस्कारों की दासता से मुक्त हो सकती। हो पाती तो कुल, धर्म और जाति का भूत मुझे तंग न करता और मैं अपने बेटे से न बिछुड़ती। स्वयं उसने मुझसे कहा था—'संस्कारों की दासता सबसे भयंकर शत्रु है।'

उमा : यह बड़े भइया ने कहा था?

माँ : हाँ, उसी ने कहा था। मैंने उसे बहुत समझाया, अपने प्रेम की दुहाई दी, पर वह सदा यही कहता रहा—'माँ! संतान का पालन माँ-बाप का नैतिक कर्त्तव्य है। वे किसी पर कोई अहसान नहीं करते, केवल **राष्ट्र का ऋण** चुकाते हैं। वे ऋण मुक्त हों, यही उनका **परितोष**[4] है। इससे अधिक मोह है, इसीलिए पाप है, पर मैं क्या करूँ। मैं जो इससे अधिक है, उसी को पाने को आतुर हूँ। मैं ही क्यों सभी माता-पिता यही चाहते हैं। तभी मैं समझती हूँ उस **डाकिन**[5] ने मेरे बेटे को मुझसे छीना है। पर वास्तव में दोष उसका नहीं है।

उमा : माताजी! लगता तो मुझे भी ऐसा ही है।

(अतुल का प्रवेश। स्वस्थ युवक; सांवला रंग, मुख पर दृढ़ता और आँखों में सौम्यता। उसे देखकर उमा उठती है। क्षण भर उसे देखती है। वह सदा की तरह शांत है। फिर रसोई की ओर चली जाती है। अतुल सीधे आकर कुर्सी पर बैठ जाता है और माँ को देखकर कहता है।)

अ० : क्या बन रहा है, माताजी?

माँ : (अनसुना करके) तूने सुना रे?

अ० : क्या?

माँ : अविनाश बहुत बीमार था।

(स्वर भीग जाता है।)

अ० : (जूता खोलते-खोलते) हाँ। उन्हें हैजा हो गया था।

माँ : (अचरज) तू जानता था!

अ० : हाँ।

माँ : तूने मुझसे कहा तक नहीं।

अ० : तुमसे कहता, क्यों?

माँ : क्यों, क्या मैं उसकी माँ नहीं थी?

अ० : (मुस्कराता है) माँ तो हो, पर सुनकर क्या करतीं? क्या उनके पास जातीं?

(माँ सहसा जवाब नहीं देती। अतुल फिर कहता है।)

अ० : मैं जानता था, तुम वहाँ नहीं जा सकोगी और जाने से भी क्या होता है। जब तक तुम उस नीची श्रेणी की **विजातीय**[6] भाभी को घर नहीं ला सकतीं, तब तक प्रेम और ममता की दुहाई व्यर्थ है। तुम सब निर्मम हो निर्मम ···

माँ : (बीच में रोक कर) मैं निर्मम हूँ?

अ० : निर्मम ही नहीं, कायर भी। जिन संस्कारों में तुम पली हो, उन्हें तोड़ने की शक्ति तुममें नहीं है माँ!

(उमा फिर प्रवेश करती है; उसके हाथ में चाय की ट्रे है, जिसे वह कमरे में ले जा रही है, पर बात सुनकर रुकती है। कहती है :)

उमा : लेकिन आप में तो है; आप तो वहाँ गये होंगे?

अ० : मुझे वहाँ जाने के लिए कोई काम नहीं था, इसलिए नहीं गया।

उमा : } (एक साथ) आप भी नहीं गये! (प्याले झनझनाते हैं) हैं, तू भी नहीं गया!
माँ : }

'संस्कार और भावना' के बीच संघर्ष की शुरुआत

अ० : जाकर क्या करता?

---

1 चेतन—चेतन मन, जाग्रत 2 अचेतन-अचेतन मन—बेहोश (सुप्त) 3 रक्त का खिंचाव—रक्त संबंध के कारण भावनात्मक लगाव 4 परितोष—संतोष, तृप्ति 5 डाकिन—चुड़ैल 6 विजातीय-दूसरी जाति के

टिप्पणी : राष्ट्र का ऋण—नागरिकों का राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। प्राचीन युग में यह माना जाता था कि मनुष्य को अपने जीवन में तीन तरह का ऋण चुकाना होता है देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण। पितृ ऋण को वह अपने वंश का विस्तार करके यानि संतान उत्पन्न करके चुकाता है। ऋषि ऋण को वह विद्या-अध्ययन और अध्ययन के माध्यम से चुकाता है। आधुनिक काल में लेखक ने राष्ट्र के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्य के रूप में राष्ट्र ऋण की कल्पना की है।

उमा : (विद्रूप से) भाई के मरने का समाचार सुनकर भी आपका हृदय नहीं पसीजता?
अ० : (शाँत स्वर) उमा, यदि तुम भाई साहब को जानती होतीं तो ऐसी बात नहीं कहतीं। मुझे तो क्या, वे मेरे डाक्टर को भी अपने पास नहीं आने देते।
उमा : लेकिन फिर भी आप उनके भाई थे, आपको देखकर उन्हें शाँति मिलती। वे ···
अ० : (उठता है और नौकर को पुकारता है) रामसिंह, पानी ले आओ।
(शीघ्रता से कोई चलता है। आवाज आती है।)
रामसिंह : लाया, सरकार।
अ० : (उमा की ओर मुड़कर) देखो उमा, भाभी से बढ़कर भइया का और कोई नहीं है, यह कटु सत्य हमें स्वीकार करना ही चाहिए। इसलिए उनके होते हमें कुछ भी करने का अधिकार नहीं था और न है।

(उमा त्रस्त होकर चली जाती है। माँ भी उठती है। नौकर पानी ले आया है। अतुल हाथ-मुँह धोने लगता है। कई क्षण केवल पानी गिरने की शब्द होता रहता है। फिर बाहर का द्वार खुलता है। मिसरानी प्रवेश करती है। **प्रौढ़ा**[1] है और एक फटी हुई ऊनी चादर ओढ़े है। सिमटी-सी अतुल को देखती हुई अन्दर चली जाती है। अतुल उसे देखकर भी नहीं देखता। फिर अन्दर से बातें करने का स्वर उठता है, शीघ्र ही वह तीव्र हो जाता है। सूर्य की किरणें धीरे-धीरे विदा देती हैं। संध्या विश्व के रंगमंच पर प्रवेश करती है, थके विश्व को **सहलाने**[2] के लिए। तभी माँ कमरे से बाहर आती है। वे अब और भी उद्विग्न हैं। उनके पैर डगमगाते हैं। वाणी रूंध[3] जाती है।)
माँ : अतुल! तूने और भी सुना?
अ० : क्या माँ?
माँ : अब अविनाश अच्छा हुआ तो उसकी बहू बीमार पड़ गयी। कहते हैं, उसके बचने की कोई आशा नहीं है।
माँ : हाँ, सुना तो है।

(उमा का प्रवेश)

उमा : क्या सुना है?
अ० : यही कि भाभी **मरणासन्न**[4] हैं।
उमा : (चकित) क्या—?
माँ : तो तुझे यह भी पता है?
अ० : हाँ माताजी, मुझे पता है और यह भी पता है कि अपने प्राण खपा कर भाभी ने भइया को तो बचा लिया था, परन्तु भइया के पास भाभी को बचाने के लिए प्राण नहीं हैं।
माँ : (अनसुना करके) अतुल, लो अविनाश की बहू मर जायेगी?
अ० : सुना तो ऐसा ही है।
(उमा अचरज से माँ को देखती है, फिर पति को)
उमा : आप क्या कह रहे हैं? आप वहाँ क्यों नहीं गये? नहीं नहीं, आप वहाँ जाइये।
अ० : (उसी तरह शाँत) कोई लाभ नहीं होगा उमा! भइया में एक दोष है—वे जो कहते हैं, करना जानते हैं। उनके पास पैसा नहीं है, परन्तु उसके लिए वे किसी के आगे हाथ नहीं पसारेंगे। वे फौलाद के समान हैं, जो टूट जाता है पर झुकता नहीं।
उमा : (काँपकर) लेकिन भाभी को कुछ हो गया तो ··· ?
अ० : (गम्भीर) भाभी को कुछ हो गया तो ··· तो क्या होगा? (सहसा काँपकर) नहीं उमा। इससे आगे सोचने का अधिकार मुझे नहीं है।
(सहसा माँ आगे बढ़ जाती है।)
माँ : लेकिन मुझे तो है।
अ० : (उसी तरह) अधिकार तो तुम्हें भी नहीं है माँ। पर तुम सोचो तो तुम्हें कोई रोक भी नहीं सकता।
माँ : (उद्विग्न) तो मैं सोचती हूँ, अविनाश की बहू को कुछ हो गया तो ··· तो शायद अविनाश भी ···
(आगे शब्द नहीं निकलते। वाणी फट पड़ती है। उमा अवाक् उन्हें देखती है।)
उमा : (चकित दुखित)—माताजी, माताजी!
माँ : हाँ बेटी! मैं उसे जानती हूँ, वह नहीं बचेगा, नहीं बचेगा।
उमा : (कंपित स्वर) माताजी, आप क्या कह रही हैं?
अ० : (गम्भीर) माँ! तुम इतना जानती हो?

---

1 प्रौढ़ा—प्रौढ़ अवस्था की स्त्री, 2 सहलाना—धीरे-धीरे हाथ फेरना या गुदगुदाना, 3 रुँधना—रुकना, 4 मरणासन्न—मृत्यु के निकट

माँ : हाँ उमा, अतुल! मैं ठीक कह रही हूँ। वह नहीं बचेगा। उसे बचाने की शक्ति केवल मुझी में है, केवल मुझी में ...

(फिर अचरज)

उमा : } एक साथ माँ ...
अ० :

माँ : (उसी तरह) अतुल, इसीलिए कहती हूँ, तू एक बार मुझे उसके पास ले चल। वह निर्मम है, पर मैं माँ हूँ। मुझे निर्मम नहीं होना चाहिए। मैं उसके पास चलूँगी।

(उमा हर्ष से काँपती है। अतुल उसी तरह गंभीर है।)

उमा : माँ, तुम कितनी अच्छी हो!

अ० : (गंभीर) अभी चलो माँ; पर चलने से पहले एक बात सोच लो: यदि तुम उस नीच कुल की विजातीय भाभी को इस घर में नहीं ला सकीं तो जाने से कुछ नहीं होगा।

माँ : (अपेक्षाकृत शांत) जानती हूँ अतुल! इसीलिए तो जा रही हूँ।

अ० : (हर्षित स्वर) ऐसी बात है तो चलो माँ, अभी चलो। (पुकार कर) रामसिंह! ताँगा लाओ, अभी इसी वक्त। और उमा, तुम भी चलो, शीघ्र उमा ...

(कहता हुआ वह बड़े कमरे से होकर बाहर जाता है। उसकी आँखें भर आयी हैं। माँ और उमा कई क्षण तक शून्य में ताकती रहती हैं। वातावरण में शाँति और **स्निग्धता**[1] है। सहसा उमा को पुस्तक के वाक्य याद आ जाते हैं वह फुसफुसाती है।)

उमा : जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है, तब चाहे किसी कारण से भी हो, हम उन्हीं बातों को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।

(उसका मुख प्रकाश से मुखरित हो उठता है। नौकर ने पीछे से स्विच दबा दिया है। यहीं पर परदा गिर जाता है।)

बोध प्रश्न 1

i) अविनाश की बीमारी की सूचना माँ को देर से क्यों मिलती है?

....

....

....

....

ii) उमा अविनाश की बहू से मिलने क्यों जाती है?

....

....

....

....

iii) अतुल और उमा बड़े भाई के घर जाते हैं यह बात सुन कर माँ की क्या प्रतिक्रिया होती है?

....

....

....

....

iv) माँ अपने बेटों को निर्मम क्यों समझती है?

....

....

....

....

---

1 स्निग्धता—स्नेह युक्तता

v) अविनाश की बहू की बीमारी की बात सुनकर अतुल उसकी मदद के लिए क्यों नहीं चल पड़ता?

....

....

....

....

vi) माँ उस स्थिति में क्या करती है?

....

....

....

....

24.3 एकांकी का सार

अभी आपने 'संस्कार और भावना' का वाचन किया। आशा है आपने इसे अच्छी तरह समझ लिया होगा। अब आप इस एकांकी का सार लिखने का प्रयास कीजिए। पिछली इकाइयों में एकांकियों का सार आपको लिख कर दिया था। उसी ढंग पर आप इस एकांकी के सार को प्रस्तुत करने का प्रयास कीजिए। बताइए कि एकांकी में जो तीन पात्र हैं उनकी बातचीत और कार्य व्यापारों से क्या मुख्य बात सामने उभर कर आती है? इसके लिए कुछ संकेत हम आपको दे रहे हैं। सबसे पहले हम बताएँगे कि एकांकी की कथा के प्रमुख बिंदु कौन से हैं?

1) माँ के संस्कार और स्वभाव

2) माँ की परेशानी का कारण
   i) उसके बड़े बेटे अविनाश की बीमारी की खबर
   ii) बेटों का स्वभाव

3) माँ के आश्चर्य का कारण
   i) उमा का बड़ी बहू से चुपचाप मिलना
   ii) उस पर आरोप लगाना कि उसने माँ-बेटे को अलग कर दिया है।
   iii) यह पता लगना कि छोटा बेटा अतुल भी अपने बड़े भाई के घर जाता है।

4) माँ के भीतर अंतर्द्वंद्व और तनाव–छोटा बेटा और बहू बड़े बेटे अविनाश के घर जाते हैं माँ नहीं जाती किंतु उसे मिलने को तरसती है।

5) संस्कार और भावना के बीच संघर्ष

6) अविनाश की बहू की बीमारी की खबर सुनकर माँ के अंतर्द्वंद्व का बढ़ जाना

7) भावना की संस्कार पर विजय

अभ्यास 1
इन संकेत सूत्रों के आधार पर एकांकी का सार लिखने का प्रयास कीजिए।

24.4 संदर्भ सहित व्याख्या

आशा है आपने "संस्कार और भावना" का वाचन ध्यानपूर्वक किया होगा। अब हम इसके कुछ अंश यहाँ उद्धृत करेंगे और चाहेंगे कि इन अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या आप स्वयं करें। इससे पहले की इकाइयों में कुछ उद्धरणों की व्याख्या हमने आपको करके दिखाई थी। आप जान चुके हैं कि व्याख्या किस तरह की जाती है। नीचे हम एकांकी के कुछ अंश दे रहे हैं उनकी संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

अभ्यास 2

''कहते हैं, चेतन से अचेतन अधिक शक्तिशाली होता है। उसमें अधिक आकर्षण है। इसीलिए तुम एक दूसरे के प्रति खिंचे। चाहे वह प्रेम था, चाहे घृणा थी, पर असल बात रक्त के खिंचाव की थी, वह होकर रही। काश कि मैं निर्मम हो सकती, काश कि मैं संस्कारों की दासता से मुक्त हो सकती। हो पाती तो कुल, धर्म और जाति का भूत मुझे तंग न करता और मैं अपने बेटे से न बिछुड़ती। स्वयं उसने मुझ से कहा था—''संस्कारों की दासता सबसे भयंकर शत्रु है।''

'संस्कार और भावना' (विष्णु प्रभाकर) वाचन एवं विश्लेषण

संदर्भ

....

....

....

....

प्रसंग

....

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

विशेष

....

....

....

मूल भाव

....

....

....

भाषा

....

....

शैली

....

....

....

'चेतन'

....

....

....

'अचेतन'

....

....

....

'रक्त का खिंचाव'

....

....

....

"जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है, वे ही बातें हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।"

संदर्भ

....

....

....

प्रसंग

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

विशेष

....

....

....

24.5 कथानक

'संस्कार और भावना' मध्यवर्गीय परिवार को आधार बना कर लिखा गया एकांकी है। एक ही दृश्य वाले इस एकांकी का समस्त घटना व्यापार घर के आंगन में घटता है। वस्तुतः यहाँ घटना व्यापार बाह्य न होकर आंतरिक है। बाहरी घटनाएँ तो माध्यम मात्र हैं जो प्रमुख आंतरिक घटना यानी मनःस्थिति परिवर्तन में सहायक बनती है। इस दृष्टि से यह एकांकी पहले तीन एकांकियों से बिल्कुल अलग है। वहाँ कार्य व्यापार पात्रों के भीतर और बाहर दोनों जगह चलता है। संघर्ष वहाँ व्यक्ति और व्यक्ति के बीच या व्यक्ति और परिस्थिति के बीच है। 'कौमुदी महोत्सव' में चंद्रगुप्त और चाणक्य के बीच, 'रीढ़ की हड्डी' में उमा तथा गोपाल प्रसाद के बीच या 'जोंक' में मेजबान और मेहमान के बीच। किंतु यहाँ संघर्ष माँ के मन में है, उसके संस्कार और भावना के बीच है। यह संघर्ष किस तरह आरंभ होकर विकसित होता है और इसकी परिणति क्या है यह जानने के लिए आगे हम कथावस्तु का विश्लेषण करेंगे।

एकांकी का आरंभ

एकांकी उमा और माँ की बातचीत से शुरू होता है। जिसमें वे अविनाश की बीमारी की चर्चा करती हैं। अविनाश कौन है। इस बात का पता एकांकी को आगे पढ़ने पर चलता है। अविनाश थोड़े दिन पहले बीमार पड़ा था उसकी पत्नी जी जान से प्रयत्न करके उसे बचा पायी। उसकी बीमारी की खबर उसकी माँ को देर से क्यों मिली? अब बेटा ठीक हो गया है तो माँ को खुश होनी

चाहिए। अब वह परेशान क्यों है? उसकी क्या मजबूरी है? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो अभी हमारे दिमाग में रह-रह कर उठ रहे हैं। उमा यानी छोटे बेटे अतुल की बहू को आश्चर्य होता है कि बीमारी का पता उसके पति अतुल को नहीं लगा। किंतु माँ का कहना है कि पता लग जाए तो भी क्या अतुल उसे बताएगा। वह अपने दोनों पुत्रों के भावुकता रहित स्वभाव से परेशान है। जैसा मोह माँ के भीतर पुत्रों के लिए है वैसा पुत्रों में उसके लिए नहीं है। इस बात का उसे कष्ट है।

एकांकी का विकास

यहीं उमा, भाभी (यानी अविनाश की बहू) के आकर्षक व्यक्तित्व के बारे में माँ को बताती है। यह जानकर माँ को ताज्जुब होता है कि उमा उससे मिलने गई थी। किंतु उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता जब वह सुनती है कि उमा उससे लड़ने गई थी :

> "जी हाँ! मैं उनसे, लड़ने गई थी, क्योंकि वे आपके दुःख का कारण थीं। वे न होती तो बड़े भइया आप से अलग कैसे होते। यही बात मैंने उनसे भी कह दी थी।"

> "दोष तुम्हारा नहीं तो किसका है? तुम न चाहती तो बड़े भइया माँ को कैसे छोड़ देते। तुम अब बी चाहो तो सब कुछ ठीक हो सकता है। तुम उन्हें छोड़ सकती हो।"

यहाँ हमें पता चलता है कि अविनाश पत्नी के कारण अपनी माँ से अलग हुआ है। माँ का हृदय इस घटना से टूट गया है। छोटा पुत्र और उसकी बहू माँ के साथ रहते हैं। माँ अपने बड़े बेटे को स्वीकार करने को तैयार है किंतु उसकी बहू को नहीं। माँ को जब यह पता चलता है कि अतुल भी अपने बड़े भाई के पास जाता है तो अचानक चौंक उठती है। उमा जब बताती है कि किस प्रकार अविनाश की बहू ने उसे यह बात समझाई कि माँ बेटे के संबंध तोड़ने में उसका हाथ नहीं है तो माँ स्वप्न की तरह खोई उसकी बात सुनती रहती है और भीतर ही भीतर द्रवित होती रहती है। उसके मन की वेदना और बढ़ जाती है वह अपने आप से परेशान हो उठती है। उसका छोटा बेटा और छोटी बहू दोनों वहाँ जाते हैं, वे माँ की भाँति मोहग्रस्त नहीं है फिर भी मिलने जाते हैं। माँ को बेटे अविनाश से अत्यधिक प्यार है फिर भी उसकी शक्ल देखने को तरसती है। कुछ चीज़ है जो उसे बाँधे हुए हैं, छटपटाहट के बावजूद उसे अपने बेटे के पास न जाने के लिए मजबूर किये हैं। यह क्या मजबूरी है? इसका पता हमें अभी नहीं चला है।

उमा अपनी सफाई देते हुए कहती है कि वे दोनों उनसे मिलने नहीं गये थे। वह स्वयं तो माँ की कठिनाई का समाधान ढूँढने गयी थी और अतुल दफ्तर के काम से गया था। वह सिद्ध करना चाहती है कि वे पति-पत्नी माँ के साथ हैं। किंतु तभी माँ के मन की हलचल सामने आती है :

> "काश कि मैं निर्मम हो सकती; काश कि मैं संस्कारों की दासता से मुक्त हो सकती। हो पाती तो कुल, धर्म और जाति का भूत मुझे तंग न करता और मैं अपने बेटे से न बिछुड़ती। स्वयं उसने मुझसे कहा था–"संस्कारों की दासता सबसे भयंकर शत्रु है।"

इन वाक्यों से हमारे काफी प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है। माँ और बेटे को कौन दूर किये हुए हैं? माँ के संस्कार। उसके ये संस्कार क्या हैं? कुल, धर्म और जाति के बारे में उसके रूढ़ अपरिवर्तनशील विचार। माँ अपनी परंपरागत मानसिकता के प्रति कठोर और निर्मम नहीं हो पाती। इसलिए वह उनमें किसी तरह के बदलाव के विषय में सोच ही नहीं पाती। उसके संस्कारों और पुत्र के प्रति स्नेह के बीच भयंकर संघर्ष है। संस्कारों के दबाव ने उसे अपने पुत्र से अलग कर दिया है। वह अपने पुत्र पर ममता का नैतिक दबाव डालना चाहती थी किंतु वह दबाव असफल रहा। माँ सोचती रही है कि उसका बेटा निर्मम है और बहू ने चुड़ैल बन कर माँ से बेटा छीन लिया है। किंतु जब वह देखती है कि छोटा बेटा-बहू उनके पास किसी आकर्षण से खिंचे आते हैं (चाहे वह अवचेतन का ही आकर्षण क्यों न हो) तो उसे लगता है कि वास्तव में दोष अविनाश की बहू का नहीं उसके अपने संस्कारों का है।

वह कहती है कि जब छोटा बेटा अतुल जानता था कि बड़ा भाई बीमार है फिर भी उसने माँ को क्यों नहीं बताया तो वह उत्तर देता है कि बताने का कोई फायदा नहीं होता। क्योंकि जाति-पाति के संबंध में माँ के विचार इतने रूढ़ हैं कि वह विजातीय बहू को (जिसे वह अपने से नीची जाति का मानती है) घर में लाने को हरगिज तैयार नहीं। अपने संस्कारों से टकराने की, उन्हें तोड़ने की शक्ति उसमें नहीं है।

यह पूछे जाने पर कि वह स्वयं तो अपने भाई की बीमारी में उसकी सहायता करने गया होगा, अतुल इन्कार कर देता है। वह कहता है कि हम लोगों को यह कटु सत्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि भाभी से बढ़ कर कोई दूसरा व्यक्ति भाई के लिए नहीं है। उन पर भाभी का सर्वाधिक अधिकार है।

तभी मिसरानी से माँ को पता चलता है कि अविनाश की बहू सख्त बीमार है और मृत्यु से संघर्ष कर रही है। यह बात अतुल जानता है और यह भी जानता है कि भाई के पास इतनी शक्ति और साधन नहीं कि अपनी पत्नी की भली-भाँति देखभाल कर सके या इलाज करा सकें। पैसे की कमी है किंतु किसी से मांगेंगे नहीं। उमा घबराती है कि भाभी की जान खतरे में हैं किंतु अतुल कहता है कि इस विषय में सोचने का अधिकार उसे नहीं है क्योंकि वह कुछ कर नहीं सकता।

यहीं माँ का हृदय परिवर्तित होने लगता है। वह सोचती है कि बहू को कुछ हो गया तो शायद अविनाश भी न बच सकेगा, उसका हृदय टूट जाएगा। वह महसूस करती है कि अविनाश को बचाने की शक्ति केवल उसी में है इसलिए वह उसके पास जाने को और विजातीय बहू को स्वीकार करने को तैयार हो जाती है।

एकांकी उमा के इन शब्दों के साथ समाप्त हो जाता है—

> "जिन बातों का हम प्राण दे कर विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है, तब चाहे किसी कारण भी हो हम उन्हीं बातों को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।"

आपने गौर किया होगा कि इस एकांकी का कथावस्तु दो स्तरों पर चलता है। एक हमारे सामने मंच पर और दूसरा अप्रत्यक्ष, जिसकी सूचना हमें मिलती है। अविनाश और उसकी बहू मंच पर नहीं आते। उनके बारे में जानकारी हमें अन्य पात्रों के माध्यम से मिलती है। कथावस्तु में इस तरह पता चलने वाली घटनाओं को सूच्य घटनाएँ कहा जाता है। ये सूच्य घटनाएँ यद्यपि सामने घटित होती नहीं दिखाई जाती किंतु कथानक में इनकी महत्वपूर्ण या अनिवार्य भूमिका होती है। हर घटना को दृश्य रूप में प्रस्तुत करना स्थान और समय की एकता के निर्वाह की दृष्टि से तथा नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से असंभव तथा कभी-कभी बाधापूर्ण होता है। इसीलिए सूच्य घटनाओं की योजना की जाती है।

प्रस्तुत एकांकी में माँ के अंतः संघर्ष का आधार उसका बड़ा बेटा अविनाश तथा उसकी पत्नी है। इस तरह कथानक में उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। इस भूमिका का निर्वाह उन्हें पृष्ठभूमि में रख कर किया गया है। अविनाश और उसकी पत्नी के स्वभाव, परिस्थिति, समस्या आदि को सूच्य रूप में प्रस्तुत करके लेखक ने संकलन-त्रय का निर्वाह किया है।

बोध प्रश्न 2

क) इस एकांकी में माँ की मूल समस्या क्या है?

....

....

....

....

....

ख) क्या अतुल माँ के व्यवहार से सहमत है?

....

....

....

....

ग) माँ के इस कथन का क्या तात्पर्य है :
"हाँ उमा, अतुल! मैं ठीक कह रही हूँ। वह नहीं बचेगा। उसे बचाने की शक्ति केवल मुझी में है, केवल मुझी में..."

....

....

....

....

....

घ) संकलन-त्रय के निर्वाह के लिए लेखक ने क्या युक्ति अपनाई है?

....

....

....

....

....

24.6 चरित्र चित्रण

'संस्कार और भावना' में तीन पात्र हैं माँ, उसका छोटा बेटा अतुल तथा उसकी पत्नी उमा। नौकर और मिसरानी आदि बहुत ही थोड़ी देर के लिए आते हैं। बड़ा बेटा अविनाश और उसकी पत्नी की चर्चा अन्य पात्रों के माध्यम से होती है अतः वे एकांकी के प्रत्यक्ष पात्र नहीं है। प्रमुख पात्र माँ है।

एकांकी के वाचन के समय आपने गौर किया होगा कि इसका प्रमुख पात्र माँ पहले एकांकियों के पात्रों, यानी कमला, प्रेमा, उमा, अलका आदि से भिन्न है। माँ एक ओर तो समाज के वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करती है, दूसरी ओर मानवीय स्वभाव की एक प्रवृत्ति विशेष–मातृत्व–का। उसका द्वंद्व बाहरी न होकर भीतरी है। उपर्युक्त अन्य एकांकियों के पात्र भी अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं किंतु वे अपने आप से जूझते नहीं वे अपनी स्थितियों और समस्याओं से जूझते हैं। किंतु माँ अपने आप से जूझती है। प्रश्न यह है कि वह अपने आप से क्यों जूझती है। इसका निर्णय आप एकांकी के आधार पर माँ के चरित्र का विश्लेषण करके कर सकते हैं। आइए अब इस एकांकी के पात्रों के चरित्र विश्लेषण का प्रयास करें :

माँ

माँ इस एकांकी का प्रमुख पात्र है। उसके चरित्र को तीन पक्षों से इस एकांकी में उद्घाटित किया गया है :

i) मातृत्व के रूप में
ii) सास के रूप में
iii) सक्रांति काल की स्त्री के रूप में

पहले पक्ष यानी माँ के रूप में उसके स्वभाव का परिचय हमें उसके निम्नलिखित कथनों से मिलता है। जब उसे पता चला कि उसका पुत्र बहुत बीमार रहा; मर कर बचा है तो

> "सुनकर मैं शर्म से गड़ गई। मेरा बेटा बीमार रहे और मुझे पता भी न चले (आँसू भर आते हैं स्वर लड़खड़ाता है) बचपन में उसे कभी-कभी खाँसी हो जाती थी, तो मैं कई-कई दिन तक न खाती थी, न सोती थी। वे बहुतेरा समझाते थे, नाराज भी हो जाते थे, पर जी न मानता था, और अब···(आगे बोला नहीं जाता, फूट-फूट कर रो पड़ती है)।"

> "तुम सब जाते हो; तुम जो निर्मम हो और मैं जो मोह-ममता में फँसी हुई हूँ, उसकी सूरत को तरसती हूँ।"

आइए देखें कि इन कथनों से हमें माँ के चरित्र की किन विशेषताओं का पता चलता है।

अपने पुत्र को वह अत्यधिक प्यार करती है उसकी बीमारी की बात सुन कर छटपटा जाती है। पुत्र के कष्ट से बेखबर रहने के लिए अपने आप को लज्जित महसूस करती है। बचपन में पुत्र के प्रति अपनी लगन की तुलना अपने वर्तमान व्यवहार से करती है। ममता के आग्रहवश पुत्र को देखने को तरसती है।

उसके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है सास का रूप हालाँकि इस रूप में भी उसका मातृत्व पक्ष प्रबल है। बेटे से बिछुड़ने के लिए बहू को दोषी मानती है–"उस डाकिनी ने मेरे बेटे को मुझ से छीना है।" पुत्र ने विजातीय लड़की से विवाह किया है। इसके लिए वह बेटा और बहू दोनों को बराबर ज़िम्मेदार नहीं मानती। केवल बहू को ज़िम्मेदार मानती है। इसलिए बहुत गुस्सा है और गुस्से से दुखी है। बेटा बहू अलग रहते हैं क्योंकि माँ बहू को स्वीकार नहीं करना चाहती। बेटा बहू को नहीं छोड़ता, माँ को छोड़ देता है। उसका छोटा भाई इस सत्य को सहज स्वीकार करता है कि "भाभी से बढ़कर भइया का कोई नहीं" किंतु माँ इस बात को स्वीकार नहीं करना चाहती। वह यह नहीं चाहती कि उसके बेटे पर किसी अन्य ऐसे व्यक्ति का अधिकार हो जिसे वह नहीं पसंद

करती। यही कारण है कि जब बेटे ने विजातीय विवाह किया तो "उसने बहुत समझाया, अपने प्रेम की दुहाई दी।" वह अपने बेटों को इसलिए निर्मम समझती है कि वे माँ के मोह को नहीं समझते। बहू द्वारा की गई अविनाश की देखभाल भी उसे बहू के प्रति इतना उदार नहीं बनाती जितना कि बेटे से मिलने की तड़प पैदा करती है क्योंकि सब लोग उसी को दोष दे रहे हैं। जब अंत में बहू की भयंकर बीमारी की खबर मिलती है तो उसे सत्य का बोध होता है कि बहू को कुछ हुआ तो बेटे का क्या होगा और वह बहू को अपने पास ले आने को तैयार हो जाती है।

माँ के व्यक्तित्व का तीसरा पक्ष है संक्रांति काल की हिंदू स्त्री का। इस पक्ष को समझने के लिए हमें संक्रांति काल को समझना होगा। संक्रांति काल का अर्थ है—पुरानी जर्जरित रूढ़ियों और नई चेतना के बीच संघर्ष का काल, इसमें पुरानी रूढ़ियाँ पूरी तरह नष्ट नहीं हो पाती और नई चेतना उभर कर आकार ग्रहण करना चाहती है किंतु उसे पूर्ण स्वीकृति प्राप्त नहीं होती। हम सभी जानते हैं कि भारतीय हिंदू समाज कई जातियों-प्रजातियों में विभाजित रहा है। जाति-पाँति ने इतना जटिल और अमानुषिक रूप ग्रहण कर लिया था कि उच्च जातियों के लोग अपने को जन्मजात श्रेष्ठ मानते और निम्न जातियों को बहुत नीचा। ऐसी मान्यता ने ही अस्पृश्यता जैसी घृणित व्यवस्था को जन्म दिया था। किंतु आधुनिक युग में आकर भारतीय समाज की इस कुप्रथा को दूर करने के लिए व्यापक प्रयास हुए। नई पीढ़ी के प्रगतिशील बुद्धिमान लोग जाति-पाँति के भेदभाव को समाप्त करने और अछूतोद्धार करने के लिए कृत संकल्प हुए। बदलाव की इस चेतना और पुराने संस्कारों के बीच कशमकश का काल ही संक्रांति काल कहलाता है। जाति प्रथा के अलावा अन्य सामाजिक बुराइयों को भी समूल नष्ट करने का प्रयास इस युग में तेजी से चल रहा था। संक्रांति काल में यह बदलाव किस तरह आ रहा था इसकी झलक हम माँ के व्यक्तित्व में पाते हैं। कुल, धर्म और जाति के संस्कार उसके मन में इतने गहरे हैं कि वह अपने बेटे को त्याग सकती है किंतु "नीची श्रेणी" की लड़की को अपनी बहू के रूप में स्वीकार नहीं करती। वह दुःखी है। ममता उसे बेटे से अलग नहीं होने देना चाहती। किंतु जाति-पाँति के बंधन, कुलीनता की जंजीर उसे इतनी सख़्ती से जकड़े हुए हैं कि वह छटपटाती है, तरसती है, रोती है। वह मानती है कि रक्त संबंधों में एक तरह का खिंचाव होता है इसी कारण उमा और अतुल अविनाश की ओर खिंचे। किंतु उसके मन पर वे जीवन मूल्य हावी हैं जिनमें वह बचपन से लेकर अब तक जीती रही है। वह कहती है :

> "काश कि मैं निमर्म हो सकती; काश कि मैं संस्कारों की दासता से मुक्त हो सकती। हो पाती तो कुल, धर्म और जाति का भूत मुझे तंग न करता और मैं अपने बेटे से न बिछुड़ती।"

अंत में उसका हृदय बदलता है। ममता की विजय होती है और माँ संस्कारों की जंजीर को तोड़ कर बेटे को मुसीबत से उबारने को तैयार हो जाती है। बेटा मुसीबत से तभी उबर सकता है जब बहू की देखभाल की जाए। बहू की देखभाल के लिए उसका इलाज कराने के लिए माँ उसे अपने घर में लाने को तैयार हो जाती है।

यहाँ माँ उस पीढ़ी के अधिकांश भारतीय माता-पिता का प्रतिनिधित्व करती है जो बदलाव को आसानी से स्वीकार नहीं कर पा रहे थे किंतु अपनी भावनाओं से मजबूर थे और नई स्थितियों को बड़ी कठिनाई से स्वीकार कर पाए थे।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित वाक्यों से माँ के चरित्र की कौन-सी विशेषताओं का पता चलता है—सही (√) या (×) का निशान लगा कर बताइए—

"सुनकर मैं शर्म से गड़ गई। मेरा बेटा बीमार रहे और मुझे पता भी न लगे।"

क) बेटे से स्नेह
ख) बेटे के प्रति कर्तव्य भावना
ग) बेटे के प्रति क्रोध
घ) पारिवारिक दायित्व
ङ) उदासीनता
च) दिमागी पिछड़ापन

उमा और अतुल

उमा और अतुल की भूमिका इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि वे माँ के हृदय परिवर्तन में सहायक बनते हैं। अतुल नई पीढ़ी के उन युवकों का प्रतिनिधित्व करता है जो कुरीतियों के सुधार के लिए सामाजिक परिवर्तन को उचित मानता है और पुरानी पीढ़ी के लोगों को उनकी भूलों का ध्यान दिलाता है उनको सुधार के लिए प्रेरित करता है।

उमा पारंपरिक ढंग के पारिवारिक संबंधों को तोड़ना उचित नहीं समझती। माँ-बेटे को मिलाने के लिए वह अविनाश की पत्नी को सलाह देती है कि अपने पति को छोड़ दे। किंतु अविनाश की पत्नी जब पूछती है कि क्या उमा स्वयं अपने पति को छोड़ सकती तो उमा को अपनी भूल का अहसास होता है। वह अविनाश की पत्नी को पसंद करती है साथ ही अपनी सास को भी दु:खी नहीं देखना चाहती।

अभ्यास 3

उमा और अतुल के चरित्र का मूल आधार उपर्युक्त बिंदु हैं। एकांकी को एक बार फिर से पढ़िए और इन दोनों के चरित्र के विश्लेषण का प्रयास कीजिए।

क) अतुल

....

....

....

....

....

....

ख) उमा

....

....

....

....

....

....

24.7 परिवेश

'संस्कार और भावना' के वाचन से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि यह एकांकी आधुनिक भारतीय समाज के परिवेश को प्रस्तुत करता है। आधुनिक काल में हमारा समाज कई तरह के परिवर्तनों से गुजरा है। जाति-पाँति संबंधी रूढ़ियों का विघटन इनमें से एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। सामाजिक मूल्यों में बदलाव की प्रक्रिया के दौरान उस समाज के सदस्यों को कई तरह के बाहरी और भीतरी संघर्षों से गुजरना पड़ता है। प्रस्तुत एकांकी भी एक ऐसे ही संघर्ष को प्रस्तुत करता है। मध्यवर्गीय हिंदू परिवार की एक स्त्री में मातृत्व की भावना और धर्म जाति और कुलीनता के रूढ़ संस्कारों के बीच द्वंद्व के माध्यम से लेखक ने आधुनिक भारतीय समाज में जाति प्रथा की रूढ़ियों के टूटने की प्रक्रिया का बहुत स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है। संक्रांति काल का परिवेश मानवीय मनोविज्ञान की सहायता से प्रस्तुत किया गया है। बचपन से व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उसके रीति-रिवाज, सोच-विचार, और मान्यताएँ उस व्यक्ति की पूरी मानसिक बनावट यानी संस्कारों को निर्मित करती हैं। ये संस्कार इतने हावी हो जाते हैं कि व्यक्ति अपने सबसे अधिक प्रियजन को छोड़ने को तैयार हो जाता है किंतु संस्कारों को तोडने का नैतिक साहस उसमें नहीं होता। छोटा बेटा अतुल यह बात माँ से कहता भी है :

"**माँ :** (बीच में टोक कर) मैं निर्मम हूँ?
अतुल : निर्मम ही नहीं, कायर भी। जिन संस्कारों में तुम पली हो, उन्हें तोड़ने की शक्ति तुम में नहीं है माँ।"

किंतु एक स्थिति ऐसी आती है जब भावना हर दीवार को लाँघ जाती है और संस्कारों की हार होती है। संस्कार और भावना का यह द्वंद्व काफी स्वाभाविक है। भारतीय परिवेश को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने यहाँ हिंदू स्त्री का प्रसंग लिया है क्योंकि हिंदुओं में इस तरह रूढ़ियों की जकड़न बहुत अधिक रही है। वस्तुत: इस तरह का द्वंद्व हर समाज के लोगों को किसी न किसी स्तर पर झेलना पड़ता है। हाँ उनकी भावनाओं और संस्कारों का स्वरूप और परिस्थितियाँ अलग-अलग हो सकती हैं।

इस तरह परिवेश की दृष्टि से यह एकांकी बहुत जीवंत और सार्थक है। आज के ज़माने में कुल

जाति या धर्म को लेकर माँ की यह ज़िद काफी अस्वाभाविक प्रतीत हो सकती है। किंतु हमें ध्यान रखना होगा कि यह कथानक लगभग पचास वर्ष से अधिक समय पहले लिखा गया था। 1936 में लेखक ने इसे कहानी के रूप में लिखा और बाद में इसका नाट्य-रूपांतर प्रस्तुत किया। उस समय में देश काल की दृष्टि से यह परिवेश बड़ा ही यथार्थ और प्रासंगिक है।

बोध प्रश्न 4

निम्नलिखित कथन को पढ़िए और पाँच पंक्तियों में बताइए कि संक्रांतिकालीन भारतीय परिवेश को वह किस रूप में प्रस्तुत करता है?

"जिन संस्कारों में तुम पली हो, उन्हें तोड़ने की शक्ति तुम में नहीं है माँ।"

....

....

....

....

....

24.8 संरचना-शिल्प

भाषा : भाषा की दृष्टि से आपने अनुभव किया होगा कि यह एकांकी पिछले एकांकियों से भिन्न है। यहाँ लेखक किसी स्थिति पर व्यंग्य नहीं कर रहा है एक पात्र की मनःस्थिति को उद्घाटित कर रहा है। भाषा में घरेलू बातचीत का अपनापन है। भावना की गहराई है। किंतु वैसी वाक्पटुता या रोचकता नहीं जैसे 'रीढ़ की हड्डी' या 'जोंक' में है। अर्थ के अनेक स्तर भी नहीं। पात्र जो कहता है उसका वही अर्थ होता है। विष्णु जी भाषा की अभिधा शक्ति से काम लेते हैं। व्यंजना या लक्षणा शक्ति से नहीं। उनकी भाषा की विशेषता है सादगी, स्पष्टता और सरलता। इसमें विचार और अभिव्यक्ति की स्वच्छता है। भावों या विचारों में कोई उलझाव या जटिलता नहीं इसलिए भाषा में भी जटिलता नहीं है। नीचे लिखे वाक्यों को पढ़िए

> "मैंने उसे बहुत समझाया, अपने प्रेम की दुहाई दी, पर वह सदा यही कहता रहा– 'माँ! संतान का पालन माँ-बाप का नैतिक कर्तव्य है। वे किसी पर कोई अहसान नहीं करते, केवल राष्ट्र का ऋण चुकाते हैं। वे ऋणमुक्त हों, यही उनका परितोष है। इससे अधिक मोह है इसलिए पाप है।' पर मैं क्या करूँ। मैं जो इससे अधिक पाने के लिए आतुर हूँ। मैं ही क्यों सभी माता-पिता यही चाहते हैं।"

यहाँ माता-पिता और पुत्र के मनोविज्ञान को लेखक सीधे शब्दों में प्रस्तुत करता है। कोई शब्दजाल नहीं है। बड़े ही सहज ढंग, बोलचाल की भाषा में बात कही गई है। काफी सख्त किंतु सच बात को सीधे ढंग से कह दिया गया है।

वाक्य छोटे-छोटे हैं पात्रों की भावनाओं की गहराई को प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। शब्द चयन में स्वाभाविकता है। तत्सम और तद्भव दोनों ही प्रकार के शब्दों का प्रयोग है। "हाथ पसारना" या "टूट जाना पर झुकना नहीं" जैसे मुहावरों का भी सार्थक ढंग से उपयोग किया गया है।

शैली : पिछले एकांकियों की शैलीगत विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यदि हम इस एकांकी पर गौर करें तो हम देखेंगे कि 'संस्कार और भावना' में न तो 'कौमुदी महोत्सव' जैसी भावनात्मकता है न 'रीढ़ की हड्डी' जैसी तीखी कठोर व्यंग्यात्मकता और न ही 'जोंक' जैसी हास्यपरक चुटीली व्यंग्यात्मकता। फिर इस एकांकी की शैली कैसी है? एक स्त्री गहरे अंतर्द्वंद्व से गुज़र रही है उसकी ममता और मान्यताओं के बीच गहरी कशमकश है। अपनी संस्कारगत मान्यताओं के प्रति दृढ़ होने के कारण अपने पुत्र के प्रति निष्ठुर है किंतु पुत्र की बीमारी में उसके प्रति अपना कर्तव्य न निभाने के कारण आत्मग्लानि और आत्मपीड़ा का शिकार है। उसका अंतर्द्वंद्व ही इस एकांकी का मूल विषय है। **आत्म-विवेचन** की शैली बड़ी ही मनोवैज्ञानिक और सहज है। संस्कारों और भावनाओं की कशमकश और नए-पुराने मूल्यों की टकराहट को लेखक ने बड़े स्वाभाविक और आत्मीय ढंग से प्रस्तुत किया है।

संस्कारों की जकड़ से छूटने की प्रक्रिया परिस्थितियों के भीतर से निकली है। माँ का हृदय परिवर्तन अकस्मात् होते हुए भी आरोपित नहीं प्रतीत होता क्योंकि जो परिस्थितियाँ बन चुकी हैं उनमें कोई भी माँ ऐसा ही व्यवहार करती।

संवाद : 'संस्कार और भावना' के संवाद पात्रों की मनःस्थिति और घटना व्यापार के अनुकूल हैं। ये परिस्थिति के तनाव और संघर्ष को गहराई से उभारते हैं। इनमें 'जोंक' के संवादों जैसा चुटीलापन या 'कौमुदी महोत्सव' के संवादों जैसा काव्यात्मकता नहीं है। किंतु यहाँ विचार की स्पष्टता और भाव की मार्मिक गहराई है। पात्र के मन के भीतर की उथल-पुथल की वेदना है। हमारी जिज्ञासा और कौतुहल को बाँधे रखने वाला पैनापन या वाक्‌विदग्धता इनमें नहीं है किंतु भावनाओं को प्रभावित करने वाली गहनता है।

उमा : आप क्या कह रहे हैं? आप वहाँ गए क्यों नहीं? नहीं,नहीं आप वहाँ जाइए।
अतुल : (उसी तरह शांत) कोई लाभ नहीं होगा उमा! भइया में एक दोष है— वे जो कहते हैं, करना जानते हैं। उनके पास पैसा नहीं है परंतु वे उसके लिए किसी के आगे हाथ नहीं पसारेंगे। वे फौलाद के समान हैं जो टूट जाता है पर झुकता नहीं।
उमा : (काँप कर) लेकिन भाभी को कुछ हो गया तो... ?
अतुल : (गंभीर) भाभी को कुछ हो गया तो तो क्या होगा? (सहसा काँप कर) नहीं उमा। इससे आगे सोचने का अधिकार मुझे नहीं है।
(सहसा माँ आगे बढ़ जाती है)
माँ : लेकिन मुझे तो है।

यहाँ तीनों पात्रों का वार्तालाप स्थिति की विश्वसनीयता, सहजता और मानसिक द्वंद्व को अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति देता है। यही कारण है कि बहुत छोटे-छोटे संवाद (जहाँ लेखन दो तीन शब्दों का ही प्रयोग किया है) अपने प्रभाव की दृष्टि से काफी सपाट हैं। किंतु जहां पात्र किसी स्थिति या प्रश्न पर विचार करते हैं वहाँ संवाद प्रभावपूर्ण हैं :

माँ : (अचरज) तू जानता था।
अतुल : हाँ!
माँ : तूने मुझ से कहा तक नहीं।
अतुल : तुमसे कहता क्यों?
माँ : क्यों, क्या मैं उसकी माँ नहीं थी?
अतुल : (मुस्कराता है) माँ तो हो, पर सुनकर क्या करतीं? क्या उनके पास जातीं?
(माँ सहसा जवाब नहीं देती। अतुल फिर कहता है)
अतुल : मैं जानता था, तुम वहाँ नहीं जा सकोगी और जाने से भी क्या होता है। जब तक तुम उस नीची श्रेणी की विजातीय भाभी को घर नहीं ला सकतीं, तब तक प्रेम और ममता की दुहाई व्यर्थ है। तुम सब निर्मम हो निर्मम..."

अतुल के मन के आक्रोश को व्यक्त करने में उसका यह संवाद पूरी तरह सक्षम है।

बोध प्रश्न 5

क) संस्कार और भावना' एकांकी की तीन भाषागत विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

ख) सही (√) या गलत (×) के निशान लगाकर उत्तर दीजिए :
इस एकांकी की शैली

i) व्यंग्यात्मक है
ii) विश्लेषणात्मक है
iii) हास्यपरक है
iv) मनोवैज्ञानिक है

ग) इस एकांकी के संवाद

i) काव्यात्मक हैं
ii) चुटीले हैं

iii) अभिधापरक हैं

iv) प्रभावपूर्ण हैं।

24.9 अभिनेयता

आप जानते हैं कि 'संस्कार और भावना' पहले रेडियो प्रस्तुति के लिये तैयार किया गया था। इसे रेडियो से प्रसारित भी किया गया। बाद में दृश्य संकेत जोड़कर इसे प्रकाशित कराया गया। अतः इस एकांकी की अभिनेयता की जाँच हमें रेडियो तथा रंगमंच दोनों की दृष्टि से करनी चाहिए। रेडियो प्रस्तुति की दृष्टि से श्रव्य संकेतों की सावधानी लेखक ने बरती है। पात्रों के स्वर के उतार-चढ़ाव, मनोभाव के अनुसार स्वर में परिवर्तन, लहजे में परिवर्तन आदि के संबंध में लेखक ने पर्याप्त संकेत दिए हैं। एकांकी के आरंभ तथा अंत में उमा का संवाद दृश्य प्रभाव की अपेक्षा श्रव्य प्रभाव की दृष्टि से ज्यादा महत्वपूर्ण है।

मंच-संकेत अपेक्षाकृत लंबे हैं और उतने उपयोगी नहीं जितने कि श्रव्य संकेत। आरंभ में उमा की भाव-भंगिमा का काफी विस्तृत विवरण है जो एकांकी की मूल संवेदना से बहुत संबद्ध नहीं है।

एकांकी में एक दृश्य है पूरी घटनाएँ एक स्थान पर लगातार घटती हैं। कई महत्वपूर्ण घटनाओं को सूच्य रूप में प्रस्तुत करके लेखक ने स्थान, काल और कार्य की एकता का निर्वाह किया है। इससे प्रस्तुति में सुविधा तथा प्रभाव में एकता बनी रहेगी। माँ के मन की हलचल और संघर्ष को भाषा की स्वच्छता और सादगी से प्रस्तुत किया गया। इससे पूरी अनुभूति की गहराई दर्शक या श्रोता को शीघ्र ही संप्रेषणीय हो जाती है। इसे रंगमंच पर सुविधापूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है।

24.10 मूल्यांकन

'संस्कार और भावना' के वाचन और विश्लेषण के दौरान आप समझ गए होंगे कि यहाँ लेखक का उद्देश्य पुरानी रूढ़िवादी विचारधारा और नए जीवन मूल्यों की टकराहट प्रस्तुत करना है। अतः इस टकराहट से उत्पन्न जीवनदृष्टि ही इस एकांकी का प्रतिपाद्य है। यहाँ लेखक ने सामाजिक अंतर्विरोधों और विसंगतियों को व्यक्ति मनःस्थितियों के साथ गहराई से जोड़ कर उजागर किया है। कुल, जाति, धर्म विषयक कट्टर संस्कार व्यक्ति के सोच को इतना संकीर्ण बना देते हैं कि वह बुद्धि, विवेक और विचार सब कुछ त्याग कर अन्य जाति और धर्म के व्यक्तियों को अपने से काफी छोटा मानने लगता है और अपनी श्रेष्ठता को हर कीमत पर कायम रखना चाहता है इसी विसंगत स्थिति को लेखक ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। माँ की मनोभूमिका का बदलाव बड़े सहज ढंग से उभरा है। एकांकी के आरंभ और अंत में उमा के कथन पर ध्यान दें।

"जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है, तब चाहे किसी कारण से हो, हम उन्हीं को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं"।

यहाँ एकांकी के प्रतिपाद्य को लेखक ने सार रूप में प्रस्तुत कर दिया है। एकांकी इन्हीं शब्दों से शुरू होता है और इन्हीं के साथ समाप्त होता है। पूरे एकांकी के संदर्भ में इन वाक्यों पर विचार कीजिए।

कुल, जाति, धर्म संबंधी पुरानी जर्जर मानसिकता का त्याग और मनुष्य मात्र को सम्माननीय मानकर अपनाने की मानवतावादी दृष्टि की स्वीकृति को लेखक ने किसी बाहरी दबाव का परिणाम नहीं माना बल्कि व्यक्ति की आंतरिक आवश्यकता को सिद्ध किया है। अपने संस्कारों में जकड़ी हुई माँ छटपटाती है, अपनी भावनाओं से जूझती है। अंत में उसका ममत्व और दायित्व बोध उसके संस्कारों पर विजय पा लेता है। माँ की यह परिणति काफी स्वाभाविक प्रतीत होती है। वस्तुतः यह एक दायित्व निर्वाह की परंपरा है कोई अहसान नहीं। भारतीय सामाजिक संदर्भों में यह प्रतिपाद्य बड़ा ही सार्थक और प्रासंगिक है। बदलते हुए सामाजिक मूल्य कई स्तरों पर प्रकट होते हैं। माता-पित और संतान के संबंधों के प्रति भी लेखक का दृष्टिकोण नितांत पारंपरिक नहीं है। पुत्र माता-पिता की आज्ञा पालन करे यह उपयुक्त और स्वीकृत मान्यता है। किंतु इस आज्ञापालन में उसके अपने विवेक, अपने व्यक्तित्व की भी रक्षा होनी चाहिए। पिता की आज्ञा या माता की आज्ञा को आँख बंद करके स्वीकार करने या ममता का नैतिक आग्रह ज़बरदस्ती मानने की प्रवृत्ति का भी लेखक

ने विरोध किया है। इस बारे में अविनाश के विचार माँ द्वारा बताए गए हैं कि माँ-बाप को यह सिद्ध करने का प्रयास नहीं करना चाहिए कि बच्चे का पालन-पोषण करके उन्होंने बच्चे पर अहसान किया है। वस्तुतः उन्होंने राष्ट्र का ऋण चुकाया जिसे उनके बच्चे भी अवसर मिलने पर चुकाएँगे। राष्ट्र का ऋण चुकाने पर उन्हें संतोष करना चाहिए कि उन्होंने राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया। पितृऋण और ऋषिऋण आदि की प्राचीन संकल्पनाओं के साथ राष्ट्रऋण की संकल्पना आधुनिक जीवनदृष्टि और प्रगतिशील विचारों का परिणाम है।

शीर्षक : किसी रचना के शीर्षक की प्रासंगिकता और सार्थकता इसमें निहित होती है कि वह रचना की मूल संवेदना को किसी हद तक उजागर करता है। इस दृष्टि से 'संस्कार और भावना' का शीर्षक कितना उपर्युक्त है इस बात की जाँच आप स्वयं कर सकते हैं। एकांकी के विश्लेषण करते समय आप जान चुके हैं कि इस एकांकी का मूल कथ्य क्या है, किन भावों को केंद्र में रखते हुए इसकी संरचना हुई है। उन भावों की यह शीर्षक कहाँ तक अभिव्यक्ति करता है।

अभ्यास 3

'संस्कार और भावना' एकांकी के शीर्षक की उपयुक्तता चार-पाँच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

बोध प्रश्न 6

क) अभिनेयता की दृष्टि से 'संस्कार और भावना' पर लगभग चार-पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

ख) 'संस्कार और भावना' के माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है?

....

....

....

....

24.11 सारांश

इस इकाई में आपने विष्णु प्रभाकर के एकांकी 'संस्कार और भावना' का वाचन और विश्लेषण किया है। इस एकांकी का मूल कथ्य अब आपकी समझ में आ गया है। आप इसकी केंद्रीय संवेदना से परिचित हो चुके हैं। अब आप एकांकी के महत्वपूर्ण प्रसंगों की व्याख्या कर सकते हैं। इसके कथानक, पात्रों के चरित्र, परिवेश और संरचना शिल्प की विशेषताएँ आप बता सकते हैं। इसमें निहित वास्तविकता का मूल्यांकन भी आप कर सकते हैं और इसके प्रतिपाद्य की प्रासंगिकता के बारे में भी बता सकते हैं।

24.12 शब्दावली

कशमकश – खींचतान, संघर्ष

आत्म-विवेचन – अपनी भावनाओं का विवेचन-विश्लेषण

24.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) अविनाश और माँ अलग-अलग रहते हैं और एक दूसरे से मिलते-जुलते नहीं।

ii) वह माँ को प्रसन्न देखना चाहती है उसको नाराजगी और कष्ट को दूर करना चाहती है इसलिए अविनाश की बहू से झगड़ना चाहती है।

iii) जब माँ को यह पता चलता है कि अतुल और उमा दोनों ही बड़े भाई से मिलते-जुलते हैं, केवल वही नहीं मिलती-जुलती तो उसके संस्कारों और भावनाओं में संघर्ष हो उठता है।

iv) अनिवाश और अतुल में वह उतना मोह नहीं पाती जितना अपने आप में। वे अपने विवेक से काम लेते हैं माँ के आग्रह से प्रेरित होकर नहीं।

v) अतुल माँ के साथ रहता है, बड़े भाई अविनाश की पत्नी बीमार है वह जानता है कि माँ औ बड़े भाई दोनों अपनी-अपनी ज़िद पर है। माँ विजातीय बहू को घर में नहीं ला सकती। ऐसी स्थिति में अविनाश किसी तरह की सहायता स्वीकार नहीं कर सकता।

vi) माँ सोचती है कि यदि बहू को कुछ हो गया तो अविनाश भी न बचेगा। इसलिए बहू को अपने घर में बुलाकर लाने के लिए चल पड़ती है।

अभ्यास 1

एक माँ के दो बेटे हैं अविनाश और अतुल। अविनाश ने विजातीय लड़की से विवाह किया है। मां इस बात को हरगिज स्वीकार नहीं करती। इसलिए अविनाश उससे अलग रहता है। छोटा बेटा अतुल और उसकी पत्नी उमा माँ के साथ रहते हैं। माँ को बहुत दुख होता है कि बड़े बेटे की भयानक बीमारी की खबर उसे बहुत देर से मिली है। माँ होकर भी वह अपने बेटे की देखभाल तक नहीं कर सकी। उसे पता चलता है कि अतुल और उमा बड़े भाई-भाभी से मिलते हैं। उसके स संस्कार और पुत्र स्नेह के बीच संघर्ष होता है। जाति, धर्म आदि के बारे में वह अपने संस्कारों को छोड़ना नहीं चाहती इसलिए अपने बेटे से मिलने को तरसती है। तभी उसे पता चलता है कि अविनाश की बहू सख्त बीमार है। बहू का जीवन संकट में है। सोचती है कि यदि बहू को कुछ हो गया तो बेटा भी न बच सकेगा। बेटे को बचाने की भावना इतनी प्रबल हो जाती है कि वह अपने रूढ़ संस्कारों की जंजीर तोड़ कर बहू को अपने घर ले आने को तैयार हो जाती है।

अभ्यास 2

एकांकी के इन अंशों की व्याख्या स्वयं कीजिए। इसके लिए एकांकी को फिर से पढ़िए। कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं उनकी सहायता लीजिए। मूल पाठ के साथ दी गई टिप्पणियों की सहायता लीजिए।

बोध प्रश्न 2

क) माँ की मूल समस्या यह है कि एक ओर तो वह अपने रूढ़ संस्कार—जाति, धर्म और कुल के बारे में अपनी परंपरागत विचारधारा बदलना नहीं चाहती, दूसरी ओर वह अपने पुत्र को पूरी तरह छोड़ना नहीं चाहती। उसके संस्कार और भावना का संघर्ष ही उसकी समस्या है।

ख) अतुल यद्यपि माँ के साथ रहता है किंतु माँ की विचारधारा से सहमत नहीं है। वह माँ से कहता है कि जिन संस्कारों में वह पली है उन्हें तोड़ने की शक्ति उसमें नहीं है। वह चाहता है कि माँ विजातीय भाभी को स्वीकार कर ले किंतु माँ पर ऐसा करने के लिए दबाव नहीं डालता।

ग) अविनाश की पत्नी बीमार है। अतुल की बातचीत से माँ जान जाती है कि अविनाश के पास इतने आर्थिक साधन नहीं कि बहू का इलाज ढंग से करा सके। यदि वह न बची तो अविनाश का दिल टूट जाएगा। वह कहती है कि अविनाश को बचाने की शक्ति केवल उसी में है। यानी यदि वह उसकी बहू को स्वीकार कर लेती है तो माँ-बेटे के बीच की दूरी समाप्त हो जाएगी और वह बहू के इलाज के लिए माँ की सहायता स्वीकार कर लेगा।

घ) लेखक ने कथानक की काफी घटनाओं को सूच्य रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें पूरे एकांकी का घटना व्यापार एक ही स्थान पर लगातार चला है और संकलन-त्रय का निर्वाह हो सकता है।

बोध प्रश्न 3

क) (✓) ख) (✓) ग) (×) घ) (✓) ङ) (×) च) (×)

अभ्यास 3

अतुल : अतुल माँ का छोटा बेटा है। माँ और बड़ा बेटा अलग-अलग रहते हैं। अतुल यद्यपि माँ के साथ रहता है तथापि मन से वह अपने बड़े भाई का विरोधी नहीं है। बड़े भाई के घर केवल दफ्तर के काम से ही जाता है। बीमारी के समय भी वह बड़े भाई की सेवा के लिए नहीं जाता, क्योंकि जानता है कि भाई बड़ा स्वाभिमानी है इन लोगों से कोई मदद नहीं लेगा। अपने भाई के स्वाभिमान को चोट नहीं पहुँचाना चाहता है। किंतु माँ को सदैव ध्यान दिलाता रहता है कि उसके संस्कार उस पर हावी हैं। भाभी के प्रति माँ के व्यवहार से भी सहमत नहीं है। किंतु उसके ऊपर कोई दबाव नहीं डालता। अतुल के स्वभाव की विशेषता है कि वह अपनी राय किसी पर आरोपित नहीं करता।

उमा : उमा पारंपरिक ढंग के पारिवारिक संबंधों को तोड़ना उपयुक्त नहीं समझती। इसलिए अविनाश की बहू के प्रति उसका दृष्टिकोण उतना निष्पक्ष नहीं है जितना कि अतुल का। माँ के कष्ट को देखकर उमा अविनाश की वहू से यह कहने जाती है कि उसने माँ-बेटे को अलग कर दिया है यह उसकी गलती है। अब भी चाहे तो वह उन दोनों का मेल करा सकती है। यदि वह अविनाश को छोड़ दे तो माँ अविनाश को स्वीकार कर सकती है। किंतु अविनाश की पत्नी जब पूछती है कि क्या उमा किसी के कहने पर अपने पति को छोड़ सकती है तो उमा को अपनी भूल का अहसास होता है। उसके प्रति सारा विद्वेष समाप्त हो जाता है। वह अविनाश की पत्नी को पसंद करती है। किंतु अपनी सास को भी दुखी नहीं देखना चाहती। उसकी विचारधारा माँ की तरह रूढ़ नहीं है किंतु अतुल की तरह तर्कसंगत भी नहीं है।

बोध प्रश्न 4

संक्रांति कालीन भारतीय समाज की स्थिति यह थी कि पुरानी जर्जर रूढ़ियाँ पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाई थीं, जाति-पाँति, ऊँच-नीच आदि के संबंध में माँ की अपरिवर्तनशील विचारधारा इस तथ्य की सूचक है। दूसरी ओर नई प्रगतिशील विचारों का उदय हो चुका था जो पुरानी असंगत और अनुचित रूढ़ियों के लिए कृत संकल्प थे। संस्कारों को तोड़ने की क्षमता इसी संक्रांति कालीन चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। पुरानी पीढ़ी की माँ में यह क्षमता नहीं है किंतु नई पीढ़ी के अतुल और अविनाश में यह विद्यमान है।

बोध प्रश्न 5

क) i) भाषा सरल, सहज और स्वाभाविक है।
   ii) इसमें भाषा की अभिधा शक्ति से काम लिया गया है।
   iii) पात्रों की भावनाओं की गहराई को प्रस्तुत करने में सक्षम है।

ख) i) (×) ii) (×) iii) (×) iv) (√)

ग) i) (×) ii) (×) iii) (√) iv) (√)

अभ्यास 3

यह एकांकी माँ के संस्कारों और भावनाओं के संघर्ष पर आधारित है। दोनों के बीच के तनाव की चरम परिणति संस्कार पर भावना की विजय में हुई है। यह परिणति काफी स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत हुई। एकांकी की मूल संवेदना का झलक इसके शीर्षक से प्रकट होती है। यही इसके शीर्षक की सार्थकता है।

बोध प्रश्न 6

क) "संस्कार और भावना" रेडियो नाटक तथा मंचीय नाटक दोनों ही रूपों में अभिनेय है। श्रव्य प्रस्तुति के लिए रंग संकेत काफी उपयोगी हैं। दृश्य प्रस्तुति संबंधी रंग संकेत अपेक्षाकृत उतने उपयुक्त नहीं हैं। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से यह एकांकी अभिनेय और प्रभावपूर्ण है।

ख) एकांकी के आरंभ और अंत में उमा का कथन देखें।

इकाई 25 'गिरती दीवारें' (उदयशंकर भट्ट) : वाचन एवं विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 एकांकी का वाचन
25.3 एकांकी का सार
25.4 संदर्भ सहित व्याख्या
25.5 कथानक
25.6 पात्र
25.7 परिवेश
25.8 संरचना शिल्प
25.9 अभिनेयता
25.10 मूल्यांकन
25.11 सारांश
25.12 शब्दावली
25.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- एकांकीकार उदयशंकर भट्ट के बारे में जानकारी दे सकेंगे,
- उनके एकांकी 'गिरती दीवारें' का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे,
- एकांकी में इस्तेमाल हुए कठिन शब्दों और मुहावरों का अर्थ बता सकेंगे,
- एकांकी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे,
- एकांकी के कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे,
- पात्रों का चरित्र-चित्रण कर सकेंगे,
- इसके परिवेश और संरचना शिल्प की विशेषताएँ बता सकेंगे, और
- एकांकी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण करके इसके शीर्षक की उपयुक्तता का निर्णय कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

चौथे खंड की अंतिम इकाई में आप उदयशंकर भट्ट के एकांकी 'गिरती दीवारें' का वाचन एवं विश्लेषण करेंगे। अब तक जिन चार एकांकियों का अध्ययन-विश्लेषण आपने किया है उनसे यह एकांकी अपने कथ्य और संरचना में भिन्न है। यह ऐतिहासिक-परिवेश का एकांकी है। किंतु 'कौमुदी महोत्सव' जैसी ऐतिहासिकता इसमें नहीं है। यह सामाजिक वास्तविकताओं का एकांकी है किंतु 'जोंक' या 'रीढ़ की हड्डी' जैसी सामाजिक समस्या यहाँ नहीं है। अपनी मूल संवेदना में यह थोड़ा बहुत 'संस्कार और भावना' से मिलता है। किंतु वैसी मनोवैज्ञानिक उलझन भी यहाँ नहीं है। एकांकी की वास्तविकता क्या है। इसे हम एकांकी के वाचन और विश्लेषण के माध्यम से जानेंगे।

हिंदी के सुपरिचित नाटककार, उपन्यासकार और कवि उदयशंकर भट्ट का जन्म सन् 1898 में इटावा में हुआ था। साहित्य के संस्कार उन्हें अपने पिता फतेहशंकर भट्ट से मिले। अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत उन्होंने ब्रज भाषा में कविता लेखन से की। काशी हिंदू विश्वविद्यालय से बी.ए. तथा पंजाब से शास्त्री परीक्षाएँ पास करके उन्होंने लाहौर में कई कालेजों में अध्यापन कार्य किया तथा स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया। स्वाधीन भारत में वे आकाशवाणी के सलाहकार और निर्देशक रहे। उनका निधन सन् 1966 में हुआ।

उनकी काव्य रचनाओं में 'मानसी', 'अमृत और विष' नाटकों में 'विक्रमादित्य', 'अंतहीन अंत' और 'कमला' तथा उपन्यासों में 'सागर, लहरें और मनुष्य' और 'लोक परलोक' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके एकांकी नाटकों के कई संग्रह–'स्त्री का हृदय', 'आदिम युग', 'धूमशिखा', 'पर्दे के पीछे', 'समस्या का अंत', 'आज का आदमी', 'अंधकार और प्रकाश' आदि नामों से प्रकाशित हैं। अपने गीति नाट्यों के लिए भट्ट जी को विशिष्ट ख्याति मिली है। 'मत्स्य गंधा', 'विश्वामित्र' और 'राधा' में उनकी साहित्यिक प्रतिभा का विशिष्ट निखार मिलता है।

भट्ट जी ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक प्रतीकात्मक, समस्याप्रधान, हास्यपूर्ण एकांकी लिखे हैं। वैदिक युग की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से लेकर आधुनिक युग तक की समस्याओं को उन्होंने अपने एकांकियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अपने एकांकियों में भट्ट जी युग विशेष की सामाजिक, सामाजिक-सांस्कृतिक दुर्बलताओं, विकृतियों और विद्रूपताओं को उजागर करते हुए उनके सुधार की आवश्यकता पर बल देते हैं। रचनाकार के रूप में भट्ट जी में प्राचीनता और नवीनता, आदर्श और यथार्थ का संयोग है और व्यक्ति के सामाजिक दायित्वों और प्रगतिशील जीवन दृष्टि की स्वीकृति है। युग विशेष की दुर्बलताओं के उद्घाटन और राष्ट्रीय सामाजिक गिरी दशा के कारणों की तलाश की प्रवृत्ति उनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषता है। यह विशेषता प्रस्तुत एकांकी में भी मौजूद है। भारतीय समाज के पिछड़े रहने का एक प्रमुख कारण पतनशील सामंतीय मनोवृत्ति है। अपनी जन्मजात श्रेष्ठता के भ्रम को पागलपन की हद तक कायम रखना और किसी भी प्रकार के नयेपन का पूर्णतः बहिष्कार वस्तुतः प्रगति विरोधी और ज्ञान-विज्ञान विरोधी दृष्टि का सूचक है जो मनुष्य और समाज के विकास और उन्नति के लिए घातक है।

25.2 एकांकी का वाचन : 'गिरती दीवारें'

पात्र

राव साहब : 19वीं शताब्दी के एक **रूढ़िधारी**[1] **कुल**[2] का स्वामी–**कुलपति**[3]।
विजय मोहन : राव साहब का बड़ा लड़का जो अपने वंश की मर्यादा पर चलने की चेष्टा करता है।
प्रेद्युम्न कुमार : राव साहब का छोटा लड़का जो नयी परिस्थितियों में रह कर बड़ा हुआ है।
मुन्शी : राव साहब का पुराना मुन्शी।
रामनारायण : राव साहब का नौकर।
कान्ता : प्रद्युम्न कुमार की लड़की–राव साहब की पोती।
मिस साहब : कान्ता की ईसाई अध्यापिका।
रामनारायण की लड़की, कन्या, नौकर आदि।

[एक पुराने रईस का कमरा–देशी ढंग से सजा हुआ। जमीन पर एक तरफ मोटा गद्दा बिछा है जो आधे से अधिक कमरे को घेरे हुए है। दरवाजे के पास किनारे-किनारे बेंत की बनी हुई कुर्सियां रखी हुई हैं। गद्दे पर **गाव-तकियों**[4] की कतार ठीक ढंग से रखी है। एक तरफ कोने में एक मेज पर ताँबे का लोटा रखा है।

दीवार पर विभिन्न प्रकार के चित्र लगे हैं। एक ओर उस वंश के पूर्वजों के चित्र लगे हैं। प्रायः प्रत्येक चित्र में उस हिस्से के पूर्वज **चोगा**[5] पहिने हुए हैं। कान को ढँके हुए एक विशेष नोकवाला साफा है। ऐसी नोक **जनसाधारण**[6] अपनी पगड़ी में नहीं रखते। यही इस परिवार की विशेषता है–चोगा और पगड़ी।

कमरे के वातावरण को देखकर ज्ञात होता है कि पुरानी रूढ़ियों को पालना इस कुल का परम लक्ष्य है। कोई बात जो अब तक नहीं हुई इस घर में नहीं हो सकती; जिस ढंग से बात करने का नियम है उसी ढंग से बात करना सिखाया जाता है। प्रत्येक लड़के को यही सीखना होता है कि इस कुल की परम्परा क्या है? परम्परा के विरुद्ध कुछ नहीं होता।

रूढ़िवादी मानसिकता जो किसी भी नए परिवर्तन की विरोधी है

1 रूढ़िधारी–परंपरा से चली आती हुई जड़ प्रथाओं और विश्वासों को धारण करने वाला (मानने वाला)
2 कुल–घराला, वंश, परिवार, 3 कुलपति–परिवार का स्वामी, (आजकल यह शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता, शिक्षा संस्थाओं के संदर्भ में प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ होता है विश्वविद्यालय का प्रधान यानी (वाइस चांसलर),
4 गाव-तकिया–गोल तकिया, मसनद 5 चोगा–एक तरह की लंबी पोशाक जो ऊपर से घुटनों तक आती है,
6 जनसाधारण–सामान्य व्यक्ति.

कुलपति अस्सी-पिचासी वर्ष के एक व्यक्ति हैं। उनका शरीर शिथिल है। अपने पूर्वजों की पोशाक में कालीन पर बैठते हैं। उनकी आज्ञा है कि कोई व्यक्ति उस कमरे में जोर से न बोले, बिल्कुल धीरे **अदब कायदे**[1] से आये। जूते दरवाजे के पास उतारे। यदि जूते न उतारने हों तो दीवार के किनारे-किनारे लगी हुई कुर्सियों पर बैठे।

सामंतीय कुलीनता के नाम पर लकीर के फकीर होने की प्रवृत्ति

यही इस कुल तथा कमरे की रक्षा का उपाय है। उस कमरे में स्त्रियाँ नहीं आ सकतीं। छोटी-छोटी लड़कियाँ भी नहीं। उनके लिए उस कमरे के पीछे बड़े कमरे में उठने-बैठने का स्थान निश्चित है।

मुख्य कमरे के साथ एक छोटा कमरा है जिसमें कुलपति का पुराना मुंशी बैठा रहता है। उसके सामने रजिस्टर-बहियाँ एक डेस्क पर फैली हैं। वह छोटा कमरा उस कमरे से दिखाई देता है। केवल मान-रक्षा के लिए एक पर्दा डाल दिया गया है। आवश्यकता होने पर पर्दा हटा दिया जाता है। पर ऐसा बहुत कम होता है, प्रायः उस समय जब बड़े आदमी घर पर नहीं रहते। एक बात और! उस घर का कोई भी व्यक्ति पैदल नहीं चल सकता। उसे गाड़ी पर जाना होगा।

राव साहब के परिवार की खानदानी कुलीनता

कहा जाता है, उनके पूर्वज किसी राजा के यहाँ एक बड़े पद पर नियुक्त थे। महाराजा उनको बहुत मानते थे। यहाँ तक कि महलों और अपने घर के सिवा वे कभी पैदल नहीं चले। सदा बन्द गाड़ी में चलते। नगर के बहुत से व्यक्तियों ने उनको नहीं देखा था।

श्रेष्ठ कुलीन पूर्वजों के अवशेषों को सुरक्षित कर उनकी परंपरा को सुरक्षित रखने की भावना

तब से कुल का बड़ा लड़का जो घर का मालिक होता था, इस नियम का पालन करता था। फिर भी पैदल चलना, बिन चोगे-पगड़ी के **दीवानखाने**[2] में आना असम्भव समझा जाता था। वृद्ध का एक लड़का था जो उसी नियम का पालन करता था। गृहस्वामी प्रायः कभी-नभी उस कमरे में आता था।

कमरे में उत्तर की तरफ क्रमशः तीन आसन (कालीन) गाव-तकियों के साथ बिछे हैं। उस पर क्रमशः वंश के पूर्वज बैठा करते थे। प्रत्येक आसन पर पूर्वजों के चोगे-पगड़ी और खड़ाऊँ रखी हैं। खड़ाऊँ पर फूल चढ़े हैं। चौथा आसान ठीक इसी प्रकार का गृहपति का है। उसके साथ ही लड़के का आसन है। गृहपति के आसन पर तीन गाव-तकिए और लड़के के आसन पर एक **नक्कासीदार**[3] डेस्क है।

उस कमरे में घुसने का कायदा यह है कि सिवा **गृहपति**[4] के जो भी व्यक्ति उस कमरे में आये, उसे तीन बार झुक कर प्रणाम करना पड़ता है। गृहपति के आसन के पास गोल कटोरा और एक छोटा-सा डंडा रखा है। स्वामी जब किसी को बुलाना चाहते हैं तो कटोरे को डंडे से बजाते हैं।

[इस समय कमरा खाली है। एक नौकर है जो कमरे की धूल झाड़ रहा है। वह प्रत्येक आसन के पास जा कर तीन बार झुक कर प्रणाम करता है, फिर सब चीजों को साफ करता है। साफ करते हुए कभी-कभी सीटी बजाता है, बोलता नहीं। एकाएक नौकर की लड़की रोती हुई दौड़ी आती है।]

लड़की : (जोर से) काका, काका ओह काका!

नौकर : (डर से मुँह पर उँगली रखकर) चुप!

लड़की का कमरे में प्रवेश परिवार के नियमों के हिसाब से अनहोनी घटना

लड़की : काका भैया **चौतरे**[5] से गिर पड़ा, काका उसके खून निकल आया। अम्मा बुला रही है। चलो जल्दी।

नौकर : (बहुत धीरे से) तू जा, मैं आया। **राँड**[6] कहीं की चिल्ला रही है। जा ···!

लड़की : चलो न काका, चलो।

नौकर : जा ···! (उसी स्वर में। पास जाकर कमरे से बाहर कर देता है। लड़की रोती-रोती चली जाती है।)

[सहसा पीछे वृद्ध राव साहब का प्रवेश]

राव साहब का भयभीत होना

राव साहब : (धीरे से) रामनारायण! यह क्या? अरे तुमने यह क्या किया? तुम्हे मालूम है आज तक इस कमरे में कोई जोर से नहीं बोला। गजब हो गया रे। (स्वयं काँपने-सा लगता है) देखते हो हमारे पूर्वज इसमें रहते हैं। (इतना कहने के साथ प्रत्येक आसन को झुक-झुक कर प्रणाम करते हैं। रामनारायण एकदम स्वामी का आना जान कर काँपने लगता है।)

राव साहब : यह तो बुरा हुआ! बहुत बुरा! (बैठकर डंडे से कटोरा बजाते हैं) ठहरो! तुम इस कमरे से नहीं जा सकते। ठहरो, ठहरो! (घंटी की आवाज से वृद्ध मुंशी आ जाता है। आने पर वह

1 अदब कायदे—आदर-सम्मान के तौर तरीके, 2 दीवान खाना—बड़े रईसों का बैठने का कमरा, 3 नक्कासीदार—लकड़ी पर खुदाई करके बनाए गए बेल-बूटे, 4 गृहपति—घर का स्वामी, 5 चौतरा—चबूतरे क तद्भव रूप, 6 राँड (गाली)—वह स्त्री जिसके पति की मृत्यु हो गई हो।

भी तीन बार झुक कर प्रणाम करता है) मुंशी, सुनो मुंशी रामनारायण ने मेरे वंश की प्रथा को तोड़ा है। सुनो मुंशी, इसने परम्परा से चली आई प्रथा को तोड़ डाला है। इस कमरे में मेरे पूर्वज निवास करते हैं। (इसके साथ प्रत्येक आसन की ओर हाथ उठाता है, मानो उन्हें प्रणाम कर रहा हो) मैंने कोई भी व्यक्ति इस कमरे में जोर से बोलते नहीं देखा—अपने समय में ही नहीं, पिता जी के समय में भी।

मुंशी : मैं स्वयं पचास वर्ष से रह रहा हूँ, श्रीमान्! मैंने आज तक ऐसा अनर्थ नहीं देखा। यह तो बहुत बुरी बात है।

राव साहब : न जाने क्या होने वाला है?

मुंशी : मुझे रात से ही भयंकर स्वप्न आ रहे हैं। प्रातःकाल यह हो गया।

नौकर : महाराज क्षमा चाहता हूँ।

राव साहब : कभी ऐसा नहीं हुआ। हम लोग सदा से **मर्यादा**[1] का पालन करने आये हैं। इसको मेरे सामने से हटा दो, मुंशी। ओह वह देखो, ओह वह देखो। पिता, पितामह, **प्रपितामह**[2] के चोगे क्रोध से हिल रहे हैं। देखते हो न? अरे (ऊपर देखकर) सब पूर्वजों के चित्र मेरी ओर क्रोध से देख रहे हैं। न जाने क्या होने वाला है।

अपने मन के भय से कल्पना कर उठता है

[मुंशी नौकर को हाथ से पकड़ कर बाहर निकाल देता है]

मुंशी : **अनर्थ**[3] यहीं तक नहीं हुआ। रामनारायण की लड़की आ गई!

राव साहब : (डर के मारे आँखें बन्द कर लेता है। काँपता हुआ) लड़की आ गई? क्या वह लड़की थी मुंशी? (बैठकर) अब क्या होगा। गजब हो गया। अनर्थ हो गया। (चित्रों की ओर झपकती हुई आँखों से देखता हुआ) मर्यादा भंग हो गई। (डर के मारे दूसरी बार कटोरा बजा देता है) हैं, यह क्या हुआ। दूसरी बार कटोरा क्यों बज उठा? ऐसा कभी नहीं हुआ, यह अनहोनी बात है मुंशी।

मुंशी : जी! अनहोनी बात है। न जाने क्या होने वाला है? ऐसा तो इस घर में कभी नहीं हुआ?

राव साहब : हाँ, रामनारायण के दण्ड की व्यवस्था करनी होगी। भयंकर बातें हो रही हैं इस घर में। देखो, विजयमोहन कहाँ है? रात में एक भयंकर स्वप्न देखा था, मुंशी! (एकदम गाव-तकिये का सहारा लेकर आँखें बन्द कर लेता है। चेहरा पीला पड़ जाता है। मुंशी पंखा करने लगता है। रामनारायण कटोरे की आवाज सुनकर लौट आता है) अरे, यह फिर आ गया? फिर आ गया यह! इसने मेरे सारे स्वप्न भंग कर दिये। जा दुष्ट, तूने मेरे जीवन का अंतिम सुख छीन लिया। दूर हो (राव साहब के लड़के का **अस्त-व्यस्त**[4] अवस्था में प्रवेश) अरे! यह क्या? चोगा फट कैसे गया, विजय? गजब हो गया। न जाने क्या होने वाला है।

अनिष्ट की आशंका

विजय मोहन : (खेद के साथ तीन बार पूर्वजों की गद्दी को प्रणाम करके) न जाने क्या होने वाला है, पिताजी! आज मुझे जीवन में पहली बार पैदल चलना पड़ा। सब लोग देख रहे थे।

फिर से मर्यादा टूटती दिखाई दी

मुंशी : वंश की प्रतिष्ठा सब नष्ट हो गई, महाराज! चोगा फट गया।

राव साहब : न जाने क्या होने वाला है! (तकिये पर से सिर ढुलक जाता है। सब लोग सम्हालने दौड़ते हैं।)

विजय मोहन : न जाने क्या होने वाला है, मुंशी! रास्ते में आते-आते मेरी गाड़ी एक दूसरी गाड़ी से टकरा गई! लोगों ने मुझे देख लिया। ओह मेरा चोगा फट गया! बहुत ही अशुभ चिन्ह है, मुंशी!

मुंशी : हाँ बाबू! न जाने क्या होने वाला है। आज सवेरे रामनारायण की लड़की कमरे में घुस आई और चिल्लाने लगी।

विजय मोहन : हैं (आश्चर्य से) हैं! ऐसा क्यों?

मुंशी : हाँ बाबू! लक्षण अच्छे नहीं हैं। इस घर ने सदा मर्यादा का पालन किया है। आज तक किसी ने भी इन पूर्वजों के साथ जोर से बातें नहीं कीं।

विजय मोहन : मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ, इस घर की प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते नज़र आ रहे हैं।

राव साहब : (चैतन्य होकर) क्या कहा? प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते नजर आ रहे हैं। मेरे रहते ही क्या, विजय मोहन! नहीं ऐसा न कहो। (चित्रों को प्रणाम करते हुए) क्रोध न कीजिए। मैंने भरसक इस घर की मर्यादा की रक्षा की है। तुम्हारी आज्ञा का पालन किया है। देखो विजय, रामनारायण बिना खाये-पीये मेरे इन पूर्वजों के सामने हाथ जोड़े मौन खड़ा रहेगा। समझे! यही हमारे वंश का दण्ड है उसके लिए, जो हमारे नियम भंग करते हैं (चुप रहता है) मैंने सुना है, देखा नहीं, कि दादा जी के समय में कोई सम्बन्धी इस कमरे में घुस कर जोर से चिल्लाया तो उन्होंने उसे सात दिन तक **निराहार**[5] रहकर खड़े रहने का आदेश दिया था। जब वह मूर्छित हो गया तो उसे खाट से बाँध कर खाट खड़ी कर दी गई थी। वंश-मर्यादा का तोड़ना साधारण बात नहीं, विजय!

छोटे से अपराध का कितना विकट दंड

---

1 मर्यादा—प्रतिष्ठा, गौरव 2 प्रपितामह—पितामह के पिता, परदादा 3 अनर्थ—विपत्ति, अमंगल, अनुचित 4 अस्त-व्यस्त—अव्यवस्थित 5 निराहार—बिना कुछ खाये पिये (निः + आहार)

विजय मोहन : यथार्थ है, पिताजी।

मुंशी : मैं पचास वर्ष से इस घर का अन्न खा रहा हूँ। मैंने कभी नहीं देखा किसी ने वंश-मर्यादा में **बट्टा लगाया**[1] हो, वंश की मर्यादा में धक्का लगाकर उसे पीछे धकेला हो, आखिर यह महाराज के **कोषाध्यक्ष**[2] का कुल है। मुझे याद है पुराने स्वामी कभी भी बाहर नहीं निकले।

पूर्वजों की महानता का विवरण

एक बार गाँव के बाहर लोगों ने उनके दर्शनों की इच्छा प्रकट की तब वे पालकी में बैठकर एक बार गाँव गये। केवल एक बार। वहाँ भी गाँव के लोगों ने उनके दर्शन पर्दे से किये। उस समय गाँव के लोगों को ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे भगवान् उतर आये हों। बाहर वे कभी न निकलते। अंग्रेजों के दरबार में भी वे जाते रहे। सरकार बहादुर ने उनके मिलने का खास प्रबंध किया था। उनसे कह दिया था कि आपके आने की कोई आवश्यकता नहीं है। सरकार आप पर बहुत खुश है।

अंग्रेजी शासक वर्ग के प्रति दृष्टिकोण

राव साहब : तुम ठीक कहते हो, मुंशी। यही बात है। तब से मैं इसी तरह बाहर आता-जाता रहा हूँ। तीस वर्ष पूर्व जब मैं तीर्थ यात्रा को गया तब भी पालकी ही में यात्रा की। एक बार चलते-चलते हमारे पालकी वाले कीचड़ में फँस गये। उस समय गाँव वालों ने ही मेरी सहायता की मैं पालकी से नहीं उतरा। मेरा विश्वास है जब तक हम अपनी वंश-मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक हमारा नाश नहीं होगा। मेरे प्रपितामह ने एक बार स्पष्ट कहा था, हमारा वंश बहुत ही ऊँचा है—हम लोग साधारण मनुष्यों से नहीं हैं। हमारे ऊपर विशेष कृपा करके ईश्वर ने हमारे वंश का निर्माण किया है। यही कारण है इस वंश को आज तक कभी पतन का दुःख नहीं देखना पड़ा।

चाहे दूसरे को कितनी ही परेशानी हो स्वयं अपनी वंश मर्यादा पालन ज़रूरी है।

विजय मोहन : यथार्थ है। मेरी ही समस्या को लो। मैंने आज तक उन्हीं नियमों का पालन किया है। आज न जाने कहाँ से यह सब हो गया!

राव साहब : मुझे डर है कि प्रद्युम्न कुमार हमारे इस वंश की रक्षा कर सकेगा या नहीं? वह अंग्रेजी पढ़कर तहसीलदार हो गया है। मेरे मना करने पर भी वह राजकुमार कॉलिज में पढ़ने गया था। हमारे घर में कोई भी घर से बाहर पढ़ने नहीं गया। सदा घर पर ही अध्यापक रखकर पढ़ाया जाता रहा है। केवल इसीलिए कि मर्यादा भंग न हो। बाहर का वातावरण तो विष से भरा होता है ना, मुंशी।

दुराग्रहपूर्ण तर्क

मुंशी : जी।

राव साहब : न जाने कोई क्या कह दे? क्या परिस्थिति हो? हम लोग साधारण मनुष्य नहीं हैं। इसलिए अखबार नहीं मंगाते। मैंने कोई समाचार-पत्र नहीं पढ़ा।

शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

विजय मोहन : मैंने भूल से एक बार समाचार-पत्र पढ़ा था। तभी मैंने देखा कि समाचार-पत्रों में बहुत-सी बातें झूठी होती हैं। उदाहरण के लिए यह कि अमुक देश में अकाल पड़ गया; हजारों लोग भूखों मर गये। भला यह कोई बात है! उस जगह का अनाज कहाँ गया? देश में हजारों की संख्या में बाल-विधवाएँ हैं—बाल-विधवाएँ! मैंने नहीं सुना हमारे नगर में दो-चार भी बाल-विधवाएँ हों। इन समाचारों से क्या है,. मैं पूछता हूँ। एक बार किसी ने लिखा कि आदमी हवाई जहाज से उड़ने लगा है। भला यह भी विश्वास करने की बात है? कभी ऐसा भी हो सकता है कि आदमी उड़ने लगे। आखिर कौन-सी चीज है जिस पर बैठकर आदमी उड़ेगा!

मुंशी : गप्प है—बिलकुल गप्प है। न जाने सरकार ने क्यों इस पर रोकथाम न लगाई!

राव साहब : भाई **कलियुग**[3] है, कलियुग में जो न सुनने में आए थोड़ा है। शिव! शिव!! न जाने क्या होने वाला है? सुना है रेल नाम की कोई चीज बनी है जो जल्दी ही एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा देती है? मैं कहता हूँ कि हमें इधर-उधर जाने की आवश्यकता क्या है? हमारे घर में क्या नहीं है?

विजय मोहन : (पिता से) एक बार एक अंग्रेज हमारे घर में आ गया, जिन दिनों आप तीर्थ-यात्रा को गये थे। तो मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। क्या करूँ? कहाँ बिठाऊँ? मैंने बाहर **दालान**[4] में तख्त बिछवाये। गद्दी कालीन, ठीक तरह जमा दिये। यहाँ मैं उससे मिला। उसके बाद सारा घर गोबर से पुतवाया, सब कपड़े धुलवाये। गंगा जल छिड़कवाया। तब कहीं जाकर घर पवित्र हुआ, घर की मर्यादा है।

पिता की अनुपस्थिति में विजयमोहन कठिनाई में पड़ गया

मुंशी : मैं भी तो था।

पाखंड की हद तक पहुँची पवित्रता

राव साहब : मुझे गर्व है तुम जैसे पुत्र मेरे घर में हुए। फिर भी इस कमरे में तो ऐसे अनजाने को

---

1 बट्टा लगाना (मुहावरा)—प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाना दोष का कलंक लगाना 2 कोषाध्यक्ष—कोष या खजाने का प्रधान अधिकारी, खजांची, 3 कलियुग—पुराणों में वर्णित चार युगों (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग, कलियुग) में से अंतिम युग जो आजकल चल रहा है, माना जाता है कि यह युग नैतिक मूल्यों के ह्रास का युग है, 4 दालान—बरामदा।

टिप्पणी : विजय मोहन का अंग्रेजों के प्रति व्यवहार दो बातें प्रकट करता है। एक ओर तो घर की पवित्रता को पाखंड की हद तक सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति अंग्रेज को घर के बाहर दालान में बिठाना। दूसरी ओर अंग्रेज़ों को प्रसन्न रखने की सामंती मनोवृत्ति का भी सूचक है।

आने का अधिकार ही नहीं है। अच्छा हुआ उसने हमारे पूर्वजों के चित्र देखने के आग्रह नहीं किया, नहीं तो बड़ी कठिनाई आती।

विजय मोहन: उसने कहा था कि हमें अपना घर दिखाओ। मैंने कहा—पिता जी घर में नहीं हैं, मकान की चाबी उनके ही पास है। वे तीर्थ-यात्रा को गये हैं। मैं स्वयं उससे दूर एक ओर तख्त पर बैठा था। जब उसने मिलाने को हाथ उठाया तो मैंने दूर से ही हाथ जोड़ दिये उसके पास नहीं गया। फिर भी मैंने सब कपड़ों के साथ स्नान किया। क्या करता? अंग्रेज नाराज हो जाता तो न जाने क्या होता?

राव साहब : अब न जाने क्या होने वाला है? हम लोगों को अपनी मर्यादा न छोड़नी चाहिए, विजय!

[एक नौकर का प्रवेश]

नौकर : (तीन बार सबको प्रणाम करके) श्रीमान् छोटे राजा पधार रहे हैं।

राव साहब : प्रद्युम्न आया है क्या? अच्छा।

विजय मोहन : आज ठीक तीन वर्ष बाद लौट रहा है। न जाने कैसा होगा?

मुंशी : अब अंग्रेजों से बात करने में हमें सुविधा होगी।

[प्रद्युम्न कुमार का प्रवेश, चालीस वर्ष की **वयस**;[1] कोट-पतलून पहने; सिर पर टोप। उसे देखते ही जाने लोग उसे पहचानते नहीं हैं, आश्चर्य से **अभिभूत**[2]। केवल पिता को प्रणाम करता है और किसी को नहीं।]

प्रद्युम्न कुमार : (केवल हाथ जोड़ता हुआ जूते उतार कर पिता के पास आ जाता है। चोगा और पगड़ी उसके सिर पर नहीं है। वह उन लोगों के लिए आश्चर्य की बात है) मेरा तबादला दूसरी जगह हो रहा था, मैंने सोचा, चलूं आपसे मिल लूं। कहिए आपका स्वास्थ्य कैसा है? और भैया तुम? तुम्हारे भी बाल सफेद हो रहे हैं। आजकल बड़ा काम रहता है, या तो भागदौड़ या फिर दफ्तर का ढेरों काम। सिर उठाने को भी समय नहीं मिलता। आप बड़ी हैरानी से मेरी ओर देख रहे हैं। ओह समझा शायद इसलिए कि मैंने टोप नहीं उतारा? ठीक कायदा यह है कि जब अपने से बड़ों के सामने जायें तो टोप उतार लेना चाहिए। बात यह है कि जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ मुझसे बड़ा कोई नहीं है। इसलिए जब कोई बड़ा अफसर आता है तो मुझे टोप उतार देना होता है। (टोप उतार कर) क्यों, आप कोई बोल नहीं रहे हैं। क्या बात है? समझा, शायद इसलिए कि मैंने टोप पहन लिया है—अंग्रेज बन गया हूँ। क्या किया जाए पिताजी, अंग्रेजों के साथ रहकर ऐसा करना पड़ता है। न करूँ तो गाँव वालों पर **रोब न जमा**[3] पाऊँ। रही चोगे की बात, यह तो वहाँ तमाशा ही होता। मैं मजबूर हूँ।

[राव साहब सिर हिलाते हैं जैसे अभी ढुलक कर गिर पड़ेंगे और मुंशी आँखें फाड़ कर देखते हैं।]

विजय मोहन : तुमने वंश की मर्यादा नष्ट कर दी प्रद्युम्न! तुम पिता के सामने इस वेश में आए! आने के पहले तुम्हें दो बार सोच लेना चाहिए था। अच्छा होता यदि तुम न आते।

प्रद्युम्न कुमार : (आश्चर्य से) सुनो भैया मैं क्यों न आता? यह मेरा घर है मेरी जायदाद है। मैं क्यों न आता? मैं **रंडियों**[4] जैसी **पेसवाज**[5] पहनकर **कचहरी**[6] नहीं जा सकता। सिर पर व्यर्थ का गट्ठर नहीं रख सकता। समय बदल गया है, हमको भी बदलना चाहिए। क्या रक्खा है इन पुरानी बातों में।

विजय मोहन : तो तुम्हारे विचार में पुरानी बातें बुरी होती हैं, तुम्हारा शरीर भी तो चालीस साल पुराना हो गया है, उसे क्यों नहीं छोड़ देते?

[पिता और मुंशी इस तर्क पर प्रसन्न होते हैं।]

प्रद्युम्न कुमार : यह भी विचित्र तर्क है। क्या शरीर छोड़ना न छोड़ना मेरे हाथ में है? उस ईश्वर ने शरीर दिया है, जब चाहेगा ले लेगा। जब उसे लेना होता है तो वह यह थोड़े ही देखता है कि शरीर नया है या पुराना।

[दोनों उदास हो जाते हैं]

विजय मोहन : तब यही कैसे कह सकते हो कि पुरानी बात बुरी हैं। हम भी पिता जी भी तो मनुष्य हैं, हमें यह बातें बुरा दिखाई नहीं देतीं।

प्रद्युम्न कुमार : आप लोग घर रहते हैं। मुझे बाहर आना-जाना होता है, लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है। मुझे **समय के साथ चलना**[7] होगा। मैं पैदल भी चलता हूँ, गाड़ी में भी चलता हूँ।

राव साहब : (आश्चर्य से) पैदल भी! न जाने क्या होने वाला है इस घर का! (तकिए पर मुँह लटका कर गिर पड़ते हैं।)

विजय मोहन : (एकदम दौड़कर पिता को सम्हालता है, मुंशी पंखा करता है) बड़ा अनर्थ हो रहा है। देखो, देखो, प्रद्युम्न, पूर्वजों के चित्र क्रोध से हमको देख रहे हैं। उनके कपड़े क्रोध से हिल रहे

'गिरती दीवारें' (उदयशंकर भट्ट) : वाचन एवं विश्लेषण

अंग्रेजों के प्रति दृष्टिकोण

पारिवारिक वेशभूषा और अदब कायदे की रूढ़ियों से मुक्ति

नये पुराने की टकराहट

---

1 वयस—उम्र, 2 अभिभूत—चकित या स्तब्ध, 3 रोब जमाना (मुहावरा)—महत्व, शक्ति आदि का ऐसा प्रदर्शन जो औरों को आतंकित करे। 4 रंडियाँ—वेश्याएँ, 5 पेसवाज (पेशवाज का तद्भव रूप)—वेश्याओं, नर्तकियों का घाघरा, 6 कचहरी—न्यायालय, अदालत 7 समय के साथ चलना (मुहावरा)—बदलती परिस्थितियों के अनुकूल बदलना।

हैं। कमरे का वातावरण गुम-सुम हो गया है। हमारी **वाणी सूखी**[1] जा रही है। क्या तुम कुछ भी नहीं देखते! अच्छा तुम इस घर से चले जाओ।

[राव साहब होश में आते हैं। प्रद्युम्न उनकी तरफ देखता है—देखता ही रहता है। फिर एक बार चित्रों की ओर देखता है। इतने में एक लड़की प्रद्युम्न कुमार की जो, लगभग 10 वर्ष की है, कमरे में दौड़ती हुई आ जाती है। कन्या एक फ्राक पहने है, अंग्रेजी ढंग के बाल कटे हैं। टांगे खाली, जूते पहने चली आती है, उसके साथ उसकी ईसाई अध्यापिका भी घुसती है। दोनों जूते पहिने भीतर आ जाती हैं और लड़की उसे सब चित्र आदि दिखाती है।]

कान्ता : देखती हो मिस साहब, ये मेरे बाबा हैं! बाबा, ओ बाबा!

कान्ता : (बाबा के पास दौड़ती हुई रुककर) ये हम लोगों के बाप-दादों की तस्वीरें हैं। अरे बाबू जी, आप भी बैठे हैं! गुम-सुम चुप-चाप!

मिस : (आश्चर्य में देखकर) बेबी, **स्ट्रेंज ड्रेस! हाउ आक्वर्ड इट लुक्स!**[2] [सब लोग चित्र लिखे से रह जाते हैं मानो उन्हें काठ मार गया हो। जैसे ही वह कमरे में आने लगी थी नौकर उन्हें रोकने आया था साहस न होने के कारण बाहर दरवाजे पर खड़ा हो गया, वहां खड़ा रहता है।]

विजय मोहन : कान्ता, बाहर जाओ! जाओ बाहर!

मुंशी : मिस साहब, बाहर आइए।

राव साहब : न जाने क्या होने वाला है? आज स्वप्न सत्य हो रहा है। मैं अब ... और ... (सिर लुढ़क जाता है) और न ... ही (डर से दोनों स्त्रियाँ बाहर चली जाती हैं। सब राव साहब को सम्हालते हैं प्रद्युम्न भी पिता के पास आ जाता है) तुम मुझे मत छुओ प्रद्युम्न, हाथ मत लगाओ। मुझे इसी कमरे में मरना होगा। बाहर मत ले जाना! मेरे पिता, पितामह, प्रपितामह इसी कमरे में मरे थे—इन्हीं आसनों पर! यही वंश की मर्यादा है। [हाथ चित्रों को प्रणाम करने के लिए उठते हैं] नहीं अब और नहीं। सब समाप्त हो चुका! वं ... श ... की ... म ... र्या ... दा [मर जाता है। सब **चित्राभिभूत**[3]—से खड़े रहते हैं।]

बोध प्रश्न 1

क) राव साहब यह क्यों कहते हैं—"गजब हो गया रे?"

....

....

....

....

ख) रामनारायण के लिए राव साहब ने किस तरह के दंड की व्यवस्था की है?

....

....

....

....

ग) राव साहव के पूर्वजों की क्या विशेषता थी?

....

....

....

....

घ) राव साहब के दोनों पुत्रों में क्या अंतर है?

....

....

....

....

---

1 वाणी सूखना (मुहावरा)—मुँह से शब्द न निकलना, रुंधना, 2 विचित्र वेशभूषा है यह यह कितनी भद्दी दिखाई देती है, 3 चित्राभिभूत—चित्र की तरह स्तब्ध।

ङ) कुल की मर्यादा किस-किस तरह से भंग हुई है?

....

....

....

....

बोध प्रश्न 2

क) निम्नलिखित का उत्तर सही (√) या गलत (×) का निशान लगा कर दीजिए:

i) राव साहब के कमरे में हर कोई घुस सकता है।

ii) परिवार का नियम तोड़ने वाले को राव साहब माफ कर देते हैं।

iii) इस परिवार के सदस्यों को विशेष तरह की वेशभूषा पहनना जरूरी है।

iv) राव साहब के परिवार के लोग हमेशा बंद गाड़ी में ही चलते हैं।

v) वे लोग रोज अख़बार पढ़ते हैं।

vi) बच्चों को पढ़ने के लिए विद्यालय भेजना वे उचित नहीं समझते।

25.3 एकांकी का सार

"गिरती दीवारें" एकांकी पढ़ने के बाद आप इस एकांकी का सार स्वयं लिख सकते हैं। पिछले एकांकियों का सार हमने आपको दिया था। इससे आप समझ गये होंगे कि सार लिखते समय किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए। आगे हम इस एकांकी के कथा सूत्र के प्रमुख बिंदुओं का उल्लेख कर रहे हैं। एकांकी का सार लिखते समय आप इन कथा सूत्रों की मदद ले सकते हैं।

- राव साहब की पारिवारिक पृष्ठभूमि
- परिवार के नियम-कायदे, तौर-तरीके और मानसिक बनावट
- कमरे का विवरण
- नौकर रामनारायण की लड़की का अचानक कमरे में प्रवेश
- चली आती परंपरा का अचानक टूट जाना
- राव साहब की प्रतिक्रिया
- अनिष्ट की आशंका
- विजय मोहन का फटा चोगा देख कर राव साहब की घबराहट का बढ़ना
- मर्यादा और प्रतिष्ठा समाप्त होने का भय
- रामनारायण को पूर्वजों के नियमों के अनुसार दंड
- पूर्वजों की महानता का उल्लेख
- राव साहब और उनके बड़े पुत्र द्वारा अपनी वंश मर्यादा का विधिवत् पालन
- वंश मर्यादा के पालन और वंश की श्रेष्ठता कायम रखने से ही अनिष्ट से बच सकने का विश्वास
- बाहरी वातावरण से बचने का हर संभव प्रयास
- शिक्षा, समाचार पत्र, रेलगाड़ी आदि से दूर रहना
- अंग्रेज के आने का प्रसंग
- प्रद्युम्न कुमार द्वारा मर्यादा तोड़ा जाना
- प्रद्युम्न कुमार के नए विचार
- कांता और मिस साहब का प्रवेश
- पूर्वजों की अवज्ञा के अपराध बोध की चरम सीमा के कारण राव साहब का भयभीत होना घबरा कर दम तोड़ देना

अभ्यास1

प्रद्युम्न कुमार के आ जाने से संबंधित घटना का सार लगभग आठ पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

25.4 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1

"तुम ठीक कहते हो, मुंशी। यही बात है। तब से मैं भी इसी तरह बाहर आता-जाता रहा हूँ। तीस वर्ष पूर्व जब मैं तीर्थ-यात्रा को गया तब भी पालकी ही में यात्रा की। एक बार चलते-चलते हमारे पालकी वाले कीचड़ में फँस गये। उस समय गाँव वालों ने ही मेरी सहायता की, मैं पालकी से नहीं उतरा। मेरा विश्वास है जब तक हम अपनी वंश-मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक हमारा नाश नहीं होगा। मेरे प्रपितामह ने एक बार स्पष्ट कहा था, हमारा वंश बहुत ही ऊँचा है—हम लोग साधारण मनुष्यों से नहीं हैं। हमारे ऊपर विशेष कृपा करके ईश्वर ने हमारे वंश का निर्माण किया है। यही कारण है कि इस वंश को आज तक कभी पतन का दुख नहीं देखना पड़ा।"

संदर्भ :

लेखक के विषय में

....

....

एकांकी के विषय में

....

....

....

प्रसंग :

एकांकी का कथ्य

....

....

....

किस पात्र का किससे कथन है

....

....

....

व्याख्या :

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष :

मूल भाव

....

....

भाषा

....

....

शैली

....

....

अन्य

....

....

उद्धरण 2

"एक बार एक अंग्रेज हमारे घर में आ गया, जिन दिनों आप तीर्थ-यात्रा को गए थे। तो मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। क्या करूँ? कहाँ बिठाऊँ? मैंने बाहर दालान में तख़्त बिछवाये। गद्दी कालीन। ठीक तरह जमा दिये। यहाँ मैं उससे मिला। उसके बाद सारा घर गोबर से पुतवाया, सब कपड़े धुलवाये। गंगाजल छिड़कवाया। तब कहीं जा कर घर पवित्र हुआ, घर की मर्यादा है।"

संदर्भ

....

....

....

....

प्रसंग

....

....

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

....

विशेष :

मूलभाव

....

....

भाषा

....

....

शैली

....

....

अन्य

....

....

25.5 कथानक

अभी आपने 'गिरती दीवारें' नामक एकांकी का वाचन किया, इसके महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या भी की। उन्नीसवीं सदी के एक रईस परिवार से संबंधित होने के कारण यह ऐतिहासिक एकांकी है। इससे पहले भी आप एक ऐतिहासिक एकांकी 'कौमुदी महोत्सव' पढ़ चुके हैं। दोनों एकांकी ऐतिहासिक होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न हैं। संभव है कि आपने इस पर ध्यान दिया हो—सबसे पहली बात तो यह कि 'कौमुदी महोत्सव' का कथानक प्राचीन भारतीय इतिहास से चुना गया है। वह 322 ई.पू. से संबंधित है जबकि 'गिरती दीवारें' आधुनिक भारतीय इतिहास से संबंधित है। किंतु समय के अंतर से ज्यादा महत्वपूर्ण एक बात और है। 'कौमुदी महोत्सव' का संबंध राजनीतिक जीवन से है, राज्यारोहण की घटना, उससे संबद्ध षड्यंत्र की योजना आदि के कारण वह ऐतिहासिक-राजनीतिक एकांकी है। इसके पात्र या तो राजन्य वर्ग के हैं या राजकाज से संबंधित है, जैसे सम्राट, महामंत्री, राजकीय कर्मचारी, राजनर्तकी आदि। 'गिरती दीवारें' सामाजिक इतिहास को प्रस्तुत करने वाला एकांकी है। इसके पात्र सामंतीय वर्ग के हैं। घटनाएँ उनके अपने जीवन और मनोभूमिका से संबंधित हैं। लेखक ने यहाँ वर्ग विशेष की मनोवृत्ति को उभारा है जो तत्कालीन समाज में वर्ग विशेष की मानसिक बनावट का प्रतिनिधित्व करती है। इस मनोभूमिका के माध्यम से रूढ़ियों के पालन और क्रमशः उनमें हुए परिवर्तन को प्रस्तुत किया गया है।

'गिरती दीवारें' एक दृश्य का एकांकी है जिसकी सभी घटनाएँ राव साहब के कमरे में घटती हैं। मंच सज्जा तथा वातावरण संबंधी विस्तृत रंग-निर्देशों के साथ-साथ लेखक ने परिवार की विस्तृत पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की है। एकांकी के आरंभ मे पहले लेखक द्वारा परिवार का व्यापक परिचय दिया गया है। इसमें परिवार के इतिहास तथा वर्तमान की जानकारी दी गई है। कमरे के चित्रों तथा अन्य सामग्री से पता चलता है कि इस परिवार के लोग, सामान्य लोगों से भिन्न ढंग से रहते हैं। वेशभूषा, आचरण, रहन-सहन, सोच-विचार आदि सभी में अपनी खास परंपरा का पालन करना, पुरानी चली आती हुई रूढ़ियों को यथावत् कायम रखना इस कुल का परम लक्ष्य है। ऐसा विश्वास है कि इस परंपरा का पालन करते रहने से कुल की श्रेष्ठता की रक्षा होती रहेगी। परंपरा पालन के दो तरीके यहाँ अपनाए जाते हैं। पहला तो इस कमरे के विशिष्ट ढंग के वातावरण को पूरी तरह सुरक्षित रख के, दूसरा परिवार के व्यक्तियों के व्यवहार और आचरण में परंपरा के पूरी तरह पालन द्वारा। लेखक स्वंयं अपने वक्तव्य में बता देता है कि परिवार में अपनाए जाने वाले नियम क्या हैं :

- ऐसा कोई भी काम या घटना या व्यवहार इस घर में नहीं होना चाहिए जो अब तक नहीं हुआ।
- इस परिवार के सदस्यों को खास तरह की वेशभूषा—चोगा तथा विशेष नोकवाला साफा ही—पहननी है।
- घर के भीतर ही पैदल चलना है, घर के बाहर बंद गाड़ी में ही निकलना है।
- कमरे की सजावट में कोई रद्दोबदल नहीं हो सकती, जो चीज़ जहाँ जिस ढंग से रखी है वैसे ही रखी जाए।
- कमरे में अदब-कायदे से घुसा जाए, जूते दरवाजे के पास उतारे जाएँ। कमरे में घुस कर पूर्वजों के आसनों को तीन बार झुक कर प्रणाम किया जाए।
- स्त्रियों का कमरे में प्रवेश वर्जित है। कोई छोटी सी लड़की भी नहीं आ सकती।

कुलपति रावसाहब और उनका पुत्र विजय मोहन इन नियमों इन नियमों का अक्षरशः पालन करते हैं। वे मानते हैं कि इन नियमों को रंचमात्र भी भंग करने से मर्यादा टूट जाएगी और परिवार की श्रेष्ठता कायम न रह सकेगी।

एकांकी का आरंभ

एकांकी का आरंभ बड़े ही नाटकीय ढंग से होता है। परिवार के जो विशिष्ट कायदे बताए गए हैं उन्हें तोड़कर ही एकांकी शुरू होता है। नौकर रामनारायण की लड़की रोती हुई कमरे में घुस आती है। ज़ोर से आवाज़ देती है "काका, काका ओह. काका!" कहती है कि भाई गिर पड़ा है; उ गहरी चोट लगी है इसलिए माँ बुला रही है। रामनारायण उसे जाने के लिए धीरे मे कहता है किंतु

वह खड़ी है। रामनारायण जोर से कहता है "जा ....." और उसे कमरे से बाहर निकाल देता है। सहसा राव साहब आ जाते हैं। लड़की के प्रवेश और ज़ोर से बोलने के कारण मर्यादा भंग हो गई है। रामनारायण स्वामी के डर से भयभीत होकर काँपने लगता है। राव साहब मर्यादा भंग होने के कारण अनिष्ट के डर से भयभीत हो जाते हैं। वे मानते हैं कि इस कमरे में उनके पूर्वज निवास करते हैं और परंपरा का पालन करने से वे प्रसन्न रहते हैं। परंपरा भंग होने से पूर्वज अप्रसन्न हो जाएँगे :

- "सुनो मुंशी रामनारायण ने मेरे वंश की प्रथा को तोड़ा है।"
- "कभी ऐसा नहीं हुआ। हम लोग सदा से मर्यादा का पालन करते आए हैं। इसको मेरे सामने से हटा दो मुंशी। ओह। वह देखो, ओह वह देखो। पिता, पितामह, प्रपितामह के चोगे क्रोध से हिल रहे हैं। देखते हो न? अरे (ऊपर देख कर) सब पूर्वजों के चित्र मेरी ओर क्रोध से देख रहे हैं। न जाने क्या होने वाला है।"

नयी बात का होना राव साहब के पूरे व्यक्तित्व को अस्त-व्यस्त कर देता है। उन्हें निर्जीव चीज़ें भी हिलती और क्रोध करती महसूस होती हैं।

एकांकी का विकास

डर के मारे राव साहब का चेहरा पीला पड़ गया है। अनिष्ट से बचने के लिए वे रामनारायण को दंड देने की बात सोचते हैं तभी दूसरी अनहोनी हो जाती है। उनका पुत्र विजय मोहन आता है। उसका हाल-बेहाल है चोगा फटा हुआ है। उसकी गाड़ी किसी अन्य गाड़ी से टकरा गई, उसे पैदल चलना पड़ा और आम लोगों ने उसे देख लिया। अब वंश की प्रतिष्ठा को एक और धक्का लगा। परंपरागत पोशाक फट गई, पैदल न चलने का नियम भंग हुआ। राव साहब के पुत्र को लोगों ने देख लिया। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। मुंशी, जो बहुत ज़माने से इस परिवार में रह रहा था, भी मर्यादा टूटने के कारण परेशान दिखाई देता है। राव साहब की घबराहट बढ़ती है। अनिष्ट से बचाव के उपाय के लिये वे रामनारायण को दंड देने की व्यवस्था करते हैं। यह दंड भी वंश की प्रथा के अनुसार ही दिया जाएगा :

> "देखो, विजय, रामनारायण बिना खाये-पीये मेरे इन पूर्वजों के सामने हाथ जोड़े मौन खड़ा रहेगा। समझे! यही हमारे वंश का दंड है उनके लिए, जो हमारे नियम भंग करते हैं (चुप रहता है) मैंने सुना है, देखा नहीं, कि दादा जी के समय में कोई संबंधी इस कमरे में घुस कर जोर से चिल्लाया तो उन्होंने उसे सात दिन तक निराहार रहकर खड़े रहने का आदेश दिया था। जब वह मूर्च्छित हो गया तो उसे खाट से बाँध कर खाट खड़ी कर दी गई थी। वंश मर्यादा तोड़ना साधारण बात नहीं, विजय!"

इस तरह दंड की व्यवस्था भी वंश की परंपरा के अनुसार होती है क्योंकि उससे अलग हटकर नहीं हो सकती। चाटुकार मुंशी पूर्वजों की श्रेष्ठता के किस्से सुनाता है। राव साहब और विजय मोहन बताते हैं कि किस तरह वे भरसक प्रयत्न करके पूर्वजों के नक्श-ए-कदम पर चलते हैं उनसे थोड़ा बहुत आगे या पीछे नहीं। पूर्वज महाराज के कोषाध्यक्ष थे, वे कभी बाहर नहीं निकलते थे न कभी लोगों के सामने आते थे। इसलिए राव साहब भी तीर्थ यात्रा के लिए पालकी में गए और कहारों के कीचड़ में फँस जाने पर भी पालकी के बाहर नहीं निकले। विजय मोहन भी बाहरी हवा से अपने को दूर रखता है। बाहरी दुनिया के संपर्क से बचने की भरपूर कोशिश यह परिवार करता है। क्योंकि बाहर के वातावरण को दूषित मानता है। इस संबंध में एकांकी का निम्नलिखित अंश देखिए :

राव साहब : न जाने कोई क्या कह दे? क्या परिस्थिति हो? हम लोग साधारण मनुष्य नहीं हैं। इसलिए अखबार नहीं मँगाते। मैंने कोई समाचार-पत्र नहीं पढ़ा।
विजय मोहन : मैंने भूल से एक बार समाचार-पत्र पढ़ा था। तभी मैंने देखा कि समाचार-पत्रों में बहुत-सी बातें झूठी होती हैं। उदाहरण के लिए यह कि अमुक देश में अकाल पड़ गया; हजारों लोग भूखों मर गये। भला यह कोई बात है! उस जगह का अनाज कहाँ गया? देश में हजारों की संख्या में बाल-विधवाएँ हैं—बाल-विधवाएँ। मैंने नहीं सुना हमारे नगर में दो-चार भी बाल-विधवाएँ हों। इन समाचारों से क्या है, मैं पूछता हूँ। एक बार किसी ने लिखा कि आदमी हवाई जहाज से उड़ने लगा है। भला यह भी विश्वास करने की बात है? कभी ऐसा भी हो सकता है कि आदमी उड़ने लगे। आखिर कौन-सी चीज जिस पर बैठ के आदमी उड़ेगा!
मुंशी : गप्प है—बिलकुल गप्प है। न जाने सरकार ने क्यों इस पर रोकथाम न लगाई !
राव साहब : भाई कलियुग है; कलियुग में जो न सुनने में आए थोड़ा है। शिव! शिव!! न जाने क्या होने वाला है? सुना है रेल नाम की कोई चीज बनी है जो जल्दी ही एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा देती है? मैं कहता हूँ कि हमें इधर-उधर जाने की आवश्यकता क्या है? हमारे घर में क्या नहीं है?

राव साहब और विजय मोहन के इस वार्तालाप से स्पष्ट है कि अपनी पारिवारिक श्रेष्ठता की मर्यादा की रक्षा के नाम पर वे लोग अपने आपको कूप-मंडूक बनाए हुए हैं। विज्ञान की नई खोजों के कारण बदली जीवन पद्धति को स्वीकार करने की बजाए उससे बच कर चलना चाहते हैं और ऐसा करने के लिए अपने ही ढंग के तर्क प्रस्तुत करते हैं चाहे वे तर्क सही हों अथवा निराधार। राव साहब के वंश में कोई विद्यालय में पढ़ने नहीं गया था। घर पर ही अध्यापक रख कर शिक्षा दिला दी जाती थी। किंतु छोटे बेटे प्रद्युम्न कुमार ने उनकी बात नहीं मानी। कालेज में पढ़ने गया और अब पढ़ लिखकर तहसीलदार बन गया है। राव साहब को डर है कि कहीं वह वंश मर्यादा में बट्टा न लगाये। विजय मोहन ने तो हर तरह से मर्यादा सुरक्षित रखी है। पिता की अनुपस्थिति में एक बार एक अंग्रेज़ उनके घर आया था। विजय मोहन बताता है कि किस तरह उसने पूर्वजों के कमरे को उसकी परछाईं से भी बचाया, स्वयं उसका स्पर्श नहीं किया दूर से ही बात की, उसके चले जाने पर पूरा घर पवित्र कराया, स्वयं सब कपड़ों के साथ स्नान किया। यह भी डर था कि अंग्रेज़ नाराज न हो जाए। इसलिए उसकी पूरी खातिरदारी करनी पड़ी थी।

कथानक में आकस्मिक मोड़

तभी राव साहब का छोटा पुत्र प्रद्युम्न कुमार उनसे मिलने आता है। उसकी वेशभूषा देखकर सबको आश्चर्य होता है। कुल की परंपरागत पोशाक चोगा न पहन कर उसने कोट-पतलून पहनी है सिर पर पगड़ी की बजाए टोप लगाया है। पूर्वजों को पारंपरिक ढंग से प्रणाम करने की बजाए केवल पिता को प्रणाम किया है। वह बताता है कि अंग्रज़ों के साथ उसे इसी ढंग से रहना पड़ता है अन्यथा वह गाँव वालों पर रोब नहीं जमा पाएगा। परंपरागत चोगे में वह तामाशा बन जाएगा।

राव साहब अपने पुत्र के इस व्यवहार को सहन नहीं कर पाते। उसकी वेशभूषा और आचरण को देख कर उन्हें गहरा सदमा पहुँचता है। घबराहट में वे कुछ बोल नहीं पाते केवल सिर हिलाते हैं। विजय मोहन प्रद्युम्न को उसकी गलती का ध्यान दिलाता है और कहता है कि इस तरह आने से बेहतर होता कि प्रद्युम्न आता ही नहीं। प्रद्युम्न कहता है कि उन्हें वक्त के अनुसार बदलना चाहिए। किंतु पुरानी बातों का विरोध विजय मोहन को उचित नहीं लगता। प्रद्युम्न समझाता है कि वे लोग घर में रहते हैं इसलिए पुरानी परंपराओं का पूरी तरह पालन कर सकते हैं। उसे बाहर आना-जाना पड़ता है। बहुत से लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है। इसलिए पुराने नियमों का पूरी तरह पालन संभव नहीं। ज़रूरत पड़ने पर वह पैदल भी चलता है। राव साहब बदलाव से बहुत घबराते हैं :

राव साहब : आश्चर्य से पैदल भी। न जाने क्या होने वाला है इस घर का! (तकिए पर मुँह लटकाकर गिर पड़ता है)।

राव साहब बेहोश हो जाते हैं और विजय मोहन को लगता है कि प्रद्युम्न के व्यवहार से पूर्वज नाराज हो गए हैं। परिवार का अमंगल निश्चित है। वह कहता है:

> "देखो, देखो, प्रद्युम्न मूर्वजों के चित्र क्रोध से हमको देख रहे हैं। उनके कपड़े क्रोध से हिल रहे हैं। कमरे का वातावरण गुमसुम हो गया है। हमारी वाणी सूखी जा रही है। क्या तुम कुछ भी नहीं देखते। अच्छा तुम इस घर से चले जाओ।"

एकांकी की परिणति

चरम सीमा

राव साहब अभी होश में आए ही हैं कि प्रद्युम्न की लड़की और उसकी इसाई अध्यापिका कमरे में घुस आती है। एक बार फिर मर्यादा भंग हो जाती है। विजय मोहन और मुंशी उन्हें बाहर निकालते हैं। राव साहब को लगता है कि डरावना सपना सच हो रहा है। वंश मर्यादा की रक्षा में वे असमर्थ हैं और मर्यादा न रहने पर वंश का पतन हो जाएगा।

राव साहब : न जाने क्या होने वाला है। आज स्वप्न सत्य हो रहा है। मैं अब ··· और ··· (सिर लुढ़क जाता है) और न ··· ही (डर से दोनों स्त्रियाँ बाहर चली जाती हैं। सब राव साहब को सम्हालते हैं, प्रद्युम्न भी पिता के पास आ जाता है) तुम मुझे मत छुओ प्रद्युम्न, हाथ मत लगाओ। मुझे इसी कमरे में मरना होगा। बाहर मत ले जाना! मेरे पिता, पितामह, प्रपितामह इसी कमरे में मरे थे—इन्हीं आसनों पर! यही वंश की मर्यादा है। [हाथ चित्रों को प्रणाम करने के लिए उठते हैं] नहीं अब और नहीं! सब समाप्त हो चुका! वं ··· श ··· की ··· म ··· र्या ··· दा [मर जाता है। सब चित्राभिभूत से खड़े रहते हैं।]

इस तरह परंपरा के साथ-साथ राव साहब का भी अंत हो जाता है।

बोध प्रश्न 3

क) i) ऐसी कोई बात जो पहले कभी न हुई हो राव साहब के घर में क्यों नहीं हो सकती?

....

....

....

....

....

ii) प्रद्युम्न कुमार से राव साहब को क्या डर है?

....

....

....

....

....

ख) राव साहब के निम्नलिखित वाक्यों को पढ़िये और बताइए कि वे ऐसा क्यों कहते हैं :
"तुम मुझे हाथ मत लगाओ प्रद्युम्न। मुझे इसी कमरे में मरना होगा। बाहर मत ले जाना।"

....

....

....

....

....

ग) "देखो, देखो, प्रद्युम्न, पूर्वजों के चित्र क्रोध से हमको देख रहे हैं। उनके कपड़े क्रोध से हिल रहे हैं। कमरे का वातावरण गुमसुम हो गया है। हमारी वाणी सूखी जा रही है। क्या तुम कुछ भी नहीं देखते।"

लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए कि यह किस का कथन है और किस बात का सूचक है।

....

....

....

....

....

25.6 पात्र

'गिरती दीवारें' में कुल 7 पात्र हैं। इनमें रामनारायण, उसकी लड़की, कांता और मिस साहब की भूमिका बहुत ही छोटी किंतु कथानक के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रमुख भूमिका राव साहब और उनके पुत्रों की है। राव साहब और उनका छोटा पुत्र प्रद्युम्न दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। बड़ा पुत्र विजय मोहन तथा मुंशी दो अलग पात्र होकर भी राव साहब की विचारधारा के पूरक हैं। वस्तुत: इस एकांकी का कोई पात्र अपना विशिष्ट व्यक्तित्व लेकर नहीं उभरा है। एक परिवेश है जिसकी सृष्टि में ये पात्र सहायक हुए हैं। यही कारण है कि स्थिति को पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने के अतिरिक्त लेखक को स्वयं परिवेश की पृष्ठभूमि का वर्णन करना पड़ा है। एकांकी के सभी पात्र उस परिवेश के निर्माण में सहायक हुए हैं। अत: उनके चरित्र की विशेषताएँ भी उस सामंतीय वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसका परिवेश इस एकांकी के माध्यम से प्रस्तुत किया है तथा जिसमें किसी तरह का बदलाव सहजता से नहीं आ पाता। आगे हम इन पात्रों की विशेषताओं का विश्लेषण करेंगे।

राव साहब

राव साहब इस एकांकी के केंद्रीय पात्र हैं क्योंकि एकांकी में हुई समस्त घटनाओं का प्रभाव प्रमुखतया उन्हीं पर पड़ता है। वे परिवार के प्रधान व्यक्ति हैं और परिवार में चली आती हुई रूढ़ियों का निर्वाह करना ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं। ऐसा करके वे अपनी वंशानुगत **श्रेष्ठता को बनाए रखे हैं**। इसलिए अपने पिता, पितामह, प्रपितामह के आचार-विचार से रंच मात्र अलग हटना अपराध समझते हैं, पूर्वजों के कार्य उनके द्वारा कही जाने वाली बातें राव साहब के लिए आप्त वचन हैं।

"मेरा विश्वास है जब तक हम अपनी वंश-मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक हमारा नाश नहीं होगा। मेरे प्रपितामह ने एक बार स्पष्ट कहा था, हमारा वंश बहुत ही ऊँचा है—हम लोग साधारण मनुष्यों से नहीं हैं। हमारे ऊपर विशेष कृपा करके ईश्वर ने हमारे वंश का निर्माण किया है। यही कारण है कि इस वंश को आज तक पतन का दुःख नहीं देखना पड़ा।"

वंश की मर्यादा का पालन करते हुए ही राव साहब का जीवन व्यतीत हुआ है। एक दिन सहसा रामनारायण की लड़की के कमरे में प्रवेश और ज़ोर से बोलने पर राव साहब विचलित हो जाते हैं। जीवन भर उन्होंने जिस मर्यादा की रक्षा की थी वह भंग हो जाती है। वे अत्यधिक विकल होते हैं। रामनारायण के बारे में कहते हैं :

" इसने मेरे सारे स्वप्न भंग कर दिए। जा दुष्ट तूने मेरे जीवन का अंतिम सुख छीन लिया"

इस छोटी सी घटना का उन पर इतना गहरा असर होता है कि भयभीत हो उठते हैं कि कुल की मर्यादा समाप्त हो जाने से पूर्वज अप्रसन्न हो गये हैं। वे क्रोध कर रहे हैं उनके चित्रों और वस्त्रों से क्रोध प्रकट हो रहा है। भय और घबराहट के कारण वे यह तक नहीं सोच पाते कि चोगे या चित्र जैसी निर्जीव वस्तुओं में कोई प्रतिक्रिया कैसे हो सकती है। राव साहब की यह स्थिति उनमें विवेक और तर्क के अभाव की सूचक है। भय के कारण वे अस्वस्थ होने लगते हैं। पुत्र विजय मोहन के चोगे के फटने से उनकी शंका और बढ़ जाती है। किसी घोर अनिष्ट की सूचना मानकर वे और घबराते हैं यहाँ तक कि डंडे से कटोरा दूसरी बार बजा देने की अत्यधिक सामान्य-सी बात को भी वे अनहोनी बात समझते हैं। पूर्वजों को प्रसन्न करने के लिये वे रामनारायण को वही दंड देते हैं जो परंपरानुसार मान्य है।

नौकर को दंड देकर जैसे-तैसे वे पूर्वजों को प्रसन्न करना चाहते हैं। किंतु जब छोटा बेटा प्रद्युम्न कुमार पुरानी सभी परंपराओं को अमान्य सिद्ध करता हुआ नए ढंग की वेशभूषा पहने और नया आचरण करता दिखाई देता है तो राव साहब को गहरा सदमा लगता है वे गश खा कर गिर जाते हैं। इस पर भी जब प्रद्युम्न की लड़की और उसकी अध्यापिका कमरे में घुस आती हैं तो राव साहब को अपना जीवन निरर्थक दिखाई देने लगता है। जीवन भर की कमाई हुई मर्यादा एक पल में चूर-चूर हो जाती है। उन्हें डर था कि पढ़ लिख जाने के कारण प्रद्युम्न कहीं वंश की परंपरा न तोड़ दे। उनका दुःस्वप्न सच हो गया। वे और नहीं जी सकते, जीना नहीं चाहते। मर्यादा की दीवार गिर जाती है।

राव साहब की मर्यादा वस्तुतः एक अंधी मर्यादा है जो संकुचित और समाज-विरोधी है। वे कुलीनता के अंधकार के सहारे जी रहे हैं और वह अंधकार ही उनकी नियति है जो अंत में उन्हें लील लेती है। वे बुद्धिविरोधी सामंतवाद के प्रतीक हैं।

इस तरह राव साहब एक ऐसी पीढ़ी के प्रतीक हैं जो अंधी होकर रूढ़ियों के पीछे चल रही है। रूढ़ियाँ छूटते ही उसे लगता है कि उसके हाथ की लाठी छूट गई है और वह निराश्रय हो गया है। ऐसी स्थिति में घबराकर दम तोड़ देने के सिवाए कोई चारा उनके पास नहीं बचता।

विजय मोहन

विजय मोहन अपने पिता का ही प्रतिरूप है। वह सहायक पात्र है जो अपने पिता का पूरक है। उसका अपना अलग कोई व्यक्तित्व नहीं। कथानक की किसी घटना को आगे बढ़ाने में उसकी कोई भूमिका नहीं है। पिता की हाँ में हाँ मिला कर उनकी बात को ही दृढ़ता से स्थापित करता है।

प्रद्युम्न कुमार

प्रद्युम्न कुमार के निम्नलिखित वाक्यों को पढ़िए :

सुनो भैया मैं क्यों न आता? यह मेरा घर है मेरी जायदाद है। मैं क्यों न आता? मैं रेडियो जैसी पेसवाज पहन कर कचहरी नहीं जा सकता। सिर पर व्यर्थ का गट्ठर नहीं रख सकता। समय बदल गया है, हमको भी बदलना चाहिए।"

इन वाक्यों से हमें क्या पता चलता है?

छोटा बेटा प्रद्युम्न कुमार राव साहब के विपरीत विचारधारा का व्यक्ति है। उनकी इच्छा के विरुद्ध पढ़ा लिखा है, तहसीलदार हो गया है। नए जमाने के साथ चलने में विश्वास रखता है। अतः परिवार की परंपरागत रूढ़ियों को बदलने में उसे कोई अपराधबोध नहीं है। क्योंकि वह

जानता है कि पुराने अर्थहीन रीति-रिवाज़ों को ढोने का कोई फायदा नहीं। व्यक्ति यदि समय के साथ-साथ बदलता नहीं है तो पिछड़ जाता है, हँसी का पात्र बनता है और अपने जीवन में सफल नहीं हो पाता। संपूर्णता में उसका व्यक्तित्व गतिशील तत्वों से निर्मित हुआ है।

बोध प्रश्न 4

क) i) राव साहब के जीवन का लक्ष्य क्या है?

....

....

....

....

ii) वे इसमें कहाँ तक सफल होते हैं?

....

....

....

....

ख) "गिरती दीवारें" के राव साहब और "संस्कार और भावना" की माँ दोनों ही अपने संस्कारों के दास हैं। किंतु अपने संस्कारों को दोनों अलग-अलग तरह से जी रहे हैं। इन दोनों पात्रों की तुलना कीजिए। अपना उत्तर लगभग दस पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

25.7 परिवेश

हम चर्चा कर चुके हैं कि "गिरती दीवारें" एकांकी घटना प्रधान या चरित्र प्रधान एकांकी न होकर परिवेश प्रधान एकांकी है। पुराने रईस के कमरे की हर चीज़ सामंतीय वातावरण को प्रस्तुत करती है। घर के विशिष्ट नियम-कायदे, अदब-शिष्टाचार, वेशभूषा आदि सब इस वातावरण को सजीवता प्रदान करते हैं। परिवार के सदस्यों और कर्मचारियों का इन रूढ़ कायदों के प्रति आग्रह क्रमशः उस मानसिकता को प्रकट करता है जो हर तरह की नवीनता, प्रगति, विज्ञान और परिवर्तन की विरोधी है। लकीर के फकीर बने रहने की मनोवृत्ति ही इस परिवेश का मूल आधार है। महाराजा के कोषाध्यक्ष के वंशज होने के कारण कुल की श्रेष्ठता और जन सामान्य से भिन्न होने की भावना पतनशील सामंतीय मनोवृत्ति की सूचक है। यह वर्ग अपनी रूढ़ियों में इस कदर जकड़ा है कि उनको बदलने की बात तो दूर रही रूढ़ियों के टूटते ही वह स्वयं भी टूट जाता है। उन्नीसवीं सदी के परिप्रेक्ष्य में यह परिवेश देशकाल की दृष्टि से प्रासंगिक है। इस काल में पुरानी रूढ़ियाँ समाप्त हो रही थीं और नई चेतना का उदय हो रहा था। विज्ञान और शिक्षा के प्रचार, सामाजिक सांस्कृतिक जागरण की चेतना के प्रसार और सुधार आंदोलनों के कारण भारतीय समाज में नए परिवर्तन हो रहे थे। किंतु पुरानी पीढ़ी का बहुत बड़ा वर्ग ऐसा था जो नए को स्वीकार करने में अपने आप को सर्वथा अक्षम पा रहा था। किंतु नई चेतना का उदय अवश्यंभावी था। इसी मानसिकता और यथार्थ को इस एकांकी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। घर के बाहर की दुनिया के संपर्क से डरना, लोगों से न मिलना-जुलना, समाचार-पत्र की सूचनाओं को बेबुनियाद

मानना, विज्ञान की सहायता से उपलब्ध नए संपर्क माध्यमों या यातायात के साधनों से परहेज आदि हर बदलाव से अपने को बचाने की प्रवृत्ति के सूचक हैं। पुरानी हर बात हर पद्धति को यथावत् कायम रखने की लालसा वस्तुतः ध्वस्त होती हुई अनावश्यक रूढ़ियों से चिपटे रहने की प्रवृत्ति है जो बहुत समय तक नहीं चल सकती। नए बदलाव को रोका नहीं जा सकता क्योंकि परिस्थितियाँ बदल गई हैं, समय बदल गया है। रामनारायण की लड़की और कांता का प्रवेश नई पीढ़ी द्वारा नए परिवर्तन की सूचना का प्रतीक है और राव साहब का मरना पुरानी, जर्जर रूढ़ परंपरा की दीवारों के गिरने का प्रतीक है।

उन्नीसवीं सदी के सामंतीय परिवेश को एक अन्य ढंग से भी प्रस्तुत किया गया है। राव साहब और विजय मोहन परंपरा का अंधानुकरण करते हैं। और प्रद्युम्न कुमार नये विचारों का व्यक्ति है पर तीनों में ही अंग्रेजों के प्रति एक तरह का सम्मान भाव है। वे अंग्रेजों का रोब मानते हैं, उनके दरबार में जाना-आना रोब की बात समझते हैं और उनके नाराज होने का खतरा महसूस करते हैं। औपनिवेशिक काल की सामंतीय मनोभूमिका का यह बड़ा वास्तविक चित्रण है।

इस तरह "गिरती दीवारें" अपने परिवेश को प्रासंगिक और सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। असामान्य ढंग से रूढ़ियों के निर्वाह की प्रवृत्ति दिखा कर लेखक ने परिवेश के प्रति प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक रूख अपनाया है।

बोध प्रश्न 5

क) "आप लोग घर में रहते हैं। मुझे बाहर आना-जाना होता है, लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है। मुझे समय के साथ चलना होगा।"

प्रद्युम्न कुमार के इस कथन से हमें 'गिरती दीवारें' की परिवेशगत विशेषताओं की क्या जानकारी मिलती है? लगभग 8-10 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

25.8 संरचना-शिल्प

भाषा

हम चर्चा कर चुके हैं कि एकांकी की (या किसी भी कृति की) भाषा उसके कथ्य के अनुरूप होती है। लेखक अपनी मूल संवेदना के अनुरूप शिल्प की तलाश करता है। 'गिरती दीवारें' परिवेश प्रधान एकांकी है। अपरिवर्तनशील सामंतीय परिवेश की अभिव्यक्ति पात्रों के वार्तालाप, मानसिकता और घर की साज-सज्जा आदि के माध्यम से हुई है। लेखक ने इसका विस्तृत विवरण भी दिया है।

पात्रों का वार्तालाप और व्यवहार भी परिवेश को विवरण देने में सहायक है। इसलिए एकांकी की भाषा में वर्णनात्मकता है। वर्णन करते समय सीधी और स्पष्ट भाषा का आश्रय लिया गया है। सामंतीय मनोवृत्तियों पर व्यंग्य किया गया है। व्यंग्य के लिए भट्ट जी भाषा की अभिधा शक्ति का सहारा लेते हैं। इसलिए वे अपने पात्रों से जो कुछ कहलाना चाहते हैं उसका सीधा अर्थ होता है। कोई अन्य अर्थ निकलने की संभावना अक्सर नहीं होती। उपेंद्रनाथ 'अश्क' की भाषा जैसा पैनापन या तीखी व्यंग्यात्मकता उनकी भाषा में नहीं है। 'गिरती दीवारें' में निहित व्यंग्य भाषा के पैनेपन में व्याप्त न होकर पूरी स्थिति में व्याप्त है। नीचे दिए गए वाक्यों को पढ़िए:

"मुझे याद है पुराने स्वामी कभी भी बाहर नहीं निकले। एक बार बाहर के लोगों ने उनके दर्शनों की इच्छा प्रकट की तब वे पालकी में बैठ कर गये। केवल एक बार। वहाँ भी गाँव के लोगों ने उनके दर्शन पर्दे से किये। उस समय गाँव के लोगों को ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे भगवान उतर आये हों। बाहर वे कभी न निकलते।"

मुंशी के कथन का यह अंश सामंतों की स्थिति प्रस्तुत करता है। पूर्वजों की इतनी महानता का विवरण देकर लेखक ने सामंतीय व्यवहार की निरर्थकता ज़ाहिर की है और इस तरह अप्रत्यक्ष ढंग से व्यंग्य किया है। यह व्यंग्य सहज होते हुए भी प्रभावपूर्ण है। लेखक जो चाहता है उसे संप्रेषित करने में भाषा सक्षम है।

शब्दावली आम बोलचाल की है। तत्सम और तद्भव दोनों तरह के हिंदी शब्दों के अलावा उर्दू शब्दों का प्रयोग भी हुआ है जैसे अदब-कायदा, दीवानखाना, कचहरी आदि।

बोलचाल की भाषा के मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं जैसे बट्टा लगाना, रोब जमाना आदि।

वाक्य छोटे, स्पष्ट, व्यवस्थित तथा प्रभावपूर्ण हैं। भाषा पात्रों के गुण, स्वभाव, मनःस्थिति और सामाजिक स्थिति के अनुकूल है। विजय मोहन और प्रद्युम्न कुमार की भाषा की तुलना करने पर यह अंतर स्पष्ट देखा जा सकता है विजय मोहन परंपरा से इस कदर चिपका है कि उसके विवेक और तर्कबुद्धि का ह्रास हो गया है।

विजय मोहन : तो तुम्हारे विचार में पुरानी बातें बुरी होती हैं,"तुम्हारा शरीर भी चालीस साल पुराना हो गया है उसे क्यों नहीं छोड़ देते।"

विजय मोहन का यह तर्क कितना बेढंगा है हम खुद महसूस करते हैं। इसकी तुलना में प्रद्युम्न कुमार का तर्क काफी संगत प्रतीत होता है।

प्रद्युम्न कुमार : आप लोग घर में रहते हैं। मुझे बाहर आना-जाना होता है, लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है। मुझे समय के साथ चलना होगा। मैं पैदल भी चलता हूँ, गाड़ी में भी चलता हूँ ..."

मिस साहब अंग्रजीदाँ हैं अतः अंग्रेजी बोलती हैं :
"बेबी, स्ट्रेंज ड्रेस! हाउ आकवर्ड इट लुक्स।"

शैली :
'गिरती दीवारें' एकांकी के कथानक पात्रों और परिवेश की चर्चा करते समय हम देख चुके हैं कि किस तरह लेखक ने सामंतीय रूढ़िवादी और झूठी श्रेष्ठता की भावना को अपने व्यंग्य का विषय बनाया है। इसकी शैली व्यंग्यात्मक है। किंतु व्यंग्य यहाँ वर्णन और विवरण के माध्यम से अधिक उभारा गया है, सक्रिय कार्य व्यापार के माध्यम से कम। कार्य व्यापार के नाम पर तो केवल राव साहब की घबराहट, बेचैनी और अंत में उनकी मृत्यु ही दिखाई गई है। सक्रियता के स्थान पर वर्णनात्मकता अधिक है। पात्रों के बारे में हम उनके कार्यों से कम, वचनों से अधिक जानते हैं। इसलिए इस एकांकी की शैली खास ढंग से विवरण प्रधान है। पूर्वजों की श्रेष्ठता-विवरण तथा उनकी परंपरा पालन करने का विवरण पात्रों ने दिया है। यहाँ तक कि लेखक ने भी आरंभ में पृष्ठभूमि के रूप में काफी लंबा विवरण दिया है। किंतु इस विवरणात्मकता ने एकांकी की केंद्रीय संवेदना को ठेस नहीं पहुँचाई है। सामंतीय सोच की विडंबना का परिवेश बड़ी ही सहजता से उभरा है और कथ्य में निहित व्यंग्य पूरी तरह संप्रेषणीय बन गया है। इस एकांकी की व्यंग्यात्मक शैली की यह विशेषता है कि यह व्यंग्य सहज प्रसन्न शैली (वह शैली जो तीखी चुभन न पैदा करे) के माध्यम से उभारा गया है। इसके लिए लेखक ने कई प्रतीकों का सहारा लिया है। दीवारें गिरना प्रतीक है, कमरे का वातावरण अपने आप में प्रतीक है, छोटी लड़कियों को कमरे में घुसना प्रतीक है, पूर्वजों के चोगे और पगड़ियाँ मृत प्रायः अतीत के प्रतीक हैं। इस तरह की प्रतीकात्मक शैली ने व्यंग्य को प्रभावपूर्ण बनाया है।

संवाद :
'गिरती दीवारें' के संवाद परिस्थिति एवं पात्रों के अनुकूल हैं। बात को सहज रूप में प्रस्तुत करके कथानक को आगे बढ़ाते हैं। किसी तरह का वाग्जाल या चमत्कार पैदा करने का प्रयास न करते हुए भट्ट जी ने पात्रों की मनोभूमिका को बड़े ही स्पष्ट ढंग से प्रस्तुत कराया है। परंपरागत नियम-कायदों के प्रति राव साहब की असीम निष्ठा को और इन नियमों के भंग होते ही उनके मन में उत्पन्न घबराहट और भय को प्रस्तुत करने में उनके संवाद पूरी तरह सक्षम हैं :

राव साहब : (डर के मारे आँखें बंद कर लेता है। काँपता हुआ) लड़की आ गई? क्या वह लड़की थी मुंशी (बैठकर) अब क्या होगा, गजब हो गया। अनर्थ हो गया। (चित्रों की ओर झपकती हुई आँखों से देखता हुआ) मर्यादा भंग हो गई। (डर के मारे दूसरी बार कटोरा बजा देता है) हैं, यह क्या हुआ! दूसरी बार कटोरा क्यों बज उठा? ऐसा कभी नहीं हुआ, यह अनहोनी बात है मुंशी।"

अतिरिक्त आस्था और भय के कारण राव साहब के संवाद कहीं-कहीं भावुकता प्रधान हैं। प्रद्युम्न कुमार और विजय मोहन के संवादों से स्थिति का तनाव उभरता है। मुंशी के संवादों में चाटुकारिता है वह हर बात में या तो हाँ में हाँ मिलाता है या श्रेष्ठता का बढ़ा-चढ़ा कर बयान करता है।

इस एकांकी के अधिकतर संवाद विवरण प्रधान हैं। विशेष रूप से राव साहब या विजय मोहन या तो किसी पिछली स्थिति का विवरण देते हैं और रूढ़ियों से चिपकने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं या फिर बदलती हुई स्थिति से घबराहट व्यक्त करते हैं। विवरणात्मकता के कारण ये संवाद काफी लंबे हैं। छोटे संवाद या तो सूचना के रूप में है या फिर किसी पात्र के कथन की पुष्टि के रूप में जैसे राव साहब या विजय मोहन की बात का मुंशी द्वारा समर्थन। चुटीलापन इन संवादों में नहीं है। तर्क-वितर्क का पैनापन भी नहीं है। प्रद्युम्न कुमार अपने रहन-सहन में परिवर्तन के जो तर्क देता है उनके विरोध में विजय मोहन के तर्क काफी सपाट और बेतुके लगते हैं :

विजय मोहन : तुमने वंश की मर्यादा नष्ट कर दी प्रद्युम्न! तुम पिता के सामने इस वेश में आए! आने के पहले तुम्हें दो बार सोच लेना चाहिए था। अच्छा होता यदि तुम न आते।
प्रद्युम्न कुमार : (आश्चर्य से) सुनो भैया मैं क्यों न आता? यह मेरा घर है मेरी जायदाद है। मैं क्यों न आता? मैं रंडियों जैसी पोशाक पहनकर कचहरी नहीं जा सकता। सिर पर व्यर्थ का गट्ठर नहीं रख सकता। समय बदल गया है, हमको भी बदलना चाहिए। क्या रक्खा है इन पुरानी बातों में।
विजय मोहन : तो तुम्हारे विचार में पुरानी बातें बुरी होती हैं, तुम्हारा शरीर भी तो चालीस साल पुराना हो गया है, उसे क्यों नहीं छोड़ देते?

[पिता और मुंशी इस तर्क पर प्रसन्न होते हैं।]

प्रद्युम्न कुमार : यह भी विचित्र तर्क है। क्या शरीर छोड़ना न छोड़ना मेरे हाथ में है? उस ईश्वर ने शरीर दिया है, जब चाहेगा ले लेगा। जब उसे लेना होता है तो वह यह थोड़े ही देखता है कि शरीर नया है या पुराना।

[दोनों उदास हो जाते हैं]

विजय मोहन : तब यह कैसे कह सकते हो कि पुरानी बात बुरी हैं। हम भी, पिता जी भी तो मनुष्य. हैं, हमें यह बातें बुरी दिखाई नहीं देतीं।
प्रद्युम्न कुमार : आप लोग घर रहते हैं। मुझे बाहर आना-जाना होता है लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है। मुझे समय के साथ चलना होगा। मैं पैदल भी चलता हूँ, गाड़ी में भी चलता हूँ।

'गिरती दीवारें' के संवाद किसी विशिष्ट कौतुहल की सृष्टि तो नहीं करते क्योंकि कथ्य में ही जिज्ञासा या कौतुहल की सृष्टि की गई है। कथानक की मूल संवेदना को कायम रखने में संवाद सक्षम हैं। ये संवाद रंगमंच पर प्रस्तुति के अनुकूल हैं क्योंकि उनमें वाचक रूप में प्रस्तुत होने की क्षमता है। दर्शक को यह पुरी तरह संप्रेषणीय हैं।

25.9 अभिनेयता

अभिनेतया की दृष्टि से 'गिरती दीवारें' कहाँ तक सफल है इस पर विचार करने के लिए सबसे पहले हम देखें कि लेखक के रंग संकेत कहाँ तक उपयोगी हैं। आपने गौर किया होगा कि इस एकांकी में दिए गए रंग संकेत अन्य एकांकियों की तुलना में काफी विस्तृत हैं। लगभग दो पृष्ठ में लेखक ने रईस के कमरे और उसमें रहने वाले व्यक्तियों का विवरण दिया है। क्या आप बता सकते हैं ऐसा क्यों किया गया है?

उत्तर देने में हम आपकी सहायता करते हैं। हम चर्चा कर चुके हैं कि यह परिवेश प्रधान एकांकी है। एक वर्ग विशेष और उसकी मनोवृत्ति विशेष पर व्यंग्य परिवेश के माध्यम से किया गया है। ऐसी स्थिति में इस एकांकी की प्रस्तुति में परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। मंच सज्जा इस ढंग की होनी चाहिए कि वह स्वयं एक तरह का मूक अभिनय प्रस्तुत करे। यानी कमरे का पूरा वातावरण एक सजीव रूढ़िबद्ध सामंतीय परिवेश हमारे सामने प्रस्तुत करे। इस दृष्टि से लेखक ने विस्तृत रंग निर्देश दिए हैं। यह बताया है कि इस परिवार का परम लक्ष्य है पुरानी रूढ़ियों का पालन। रूढ़ियों का खंडन यहाँ भयंकर अपराध है। रूढ़ियाँ किस रूप में सुरक्षित हैं इसका विवरण नाटक

शुरू होने से पहले मिल जाता है। रंगमंच पर इस वातावरण की सृष्टि के साथ ही परिवार की विचारधारा और प्रवृत्ति के विषय में पर्दे के पीछे से कमेंट्री देनी होगी ताकि दर्शक एकांकी के परिवेश में भली-भाँति प्रविष्ट हो जाए और रामनारायण की लड़की के प्रसंग और उसके परिणामों और प्रभाव को गहराई तक समझ सके। इस तरह 'गिरती दीवारें' की रंग-प्रस्तुति में सूच्य स्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

कथानक 'पात्र' भाषा और संवाद की दृष्टि से यह एकांकी मंच पर सुविधा से अभिनेय है। पात्रों के लिए विविध प्रकार के अभिनेय संबंधी रंग संकेत उपयोगी हैं। स्थान, समय और कार्य की एकता का निर्वाह किया गया है।

अभ्यास 2

'गिरती दीवारें' में प्रयुक्त निम्नलिखित मुहावरों को अपने वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए।

समय के साथ चलना ....

....

बट्टा लगाना ....

....

रोब जमाना ....

....

बोध प्रश्न 6

''हाँ'' या ''नहीं'' में से एक को काटकर उत्तर दीजिए।

क) भट्ट जी की भाषा :

i) अलंकृत है — हाँ/नहीं

ii) सीधी और सहज है — हाँ/नहीं

iii) सम्प्रेषणीय है — हाँ/नहीं

iv) वाक्पटुतापूर्ण है — हाँ/नहीं

ख) 'गिरती दीवारें' एकांकी की शैली:

i) वर्णनात्मक है — हाँ/नहीं

ii) व्यंग्यात्मक है — हाँ/नहीं

iii) हास्यपरक है — हाँ/नहीं

ग) रिक्त स्थान भरिए:

i) 'गिरती दीवारें' के संवाद .... हैं। (वर्णनात्मक/चुटीले)

ii) अधिकांश संवाद .... हैं। (लंबे/वागवैदग्ध्यपूर्ण)

घ) मुंशी और प्रद्युम्न कुमार के संवादों में क्या अंतर है?

....

....

....

....

बोध प्रश्न 7

'गिरती दीवारें' को प्रस्तुत करते समय मंच सज्जा में किन बातों का विशेष ध्यान रखना होगा।

....

....

....

....

....

25.10 मूल्यांकन

प्रतिपाद्य

'गिरती दीवारें' के वाचन और विश्लेषण के दौरान आप जान गए होंगे कि इस एकांकी के माध्यम से लेखक हमारे समक्ष क्या प्रस्तुत करना चाहता है। राव साहब के परिवार की रूढ़िगत मर्यादाओं के निर्वाह की प्रवृत्ति और इस मर्यादा को भंग होते देख कर अंत में प्राण दे देने की घटना क्या सूचित करती है? राव साहब जैसे लोगों को हम में से बहुतों ने वास्तविक जीवन में देखा है। हाँ यह हो सकता है कि उनकी रूढ़िवादिता किसी दूसरे क्षेत्र में हो। तो क्या लेखक हमें रूढ़िवादी प्रवृत्तियों की चरम सीमा दिखाना चाहता है? क्या उसका उद्देश्य राव साहब को गौरवान्वित करना है कि वह प्राण दे सकते हैं किंतु अपनी वंश मर्यादा को नष्ट नहीं होने दे सकते? लेखक ने अपनी ओर से कोई निष्कर्ष नहीं दिया। उसने दो विचारधाराओं के पात्रों के बीच टकराहट प्रस्तुत कर दी है, दो छोटी बालिकाओं (रामनारायण की लड़की और कांता) तथा मिस साहब के प्रवेश की घटना प्रस्तुत कर दी है और इस सब का परिणाम राव साहब की मृत्यु के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। इसके माध्यम से वह क्या कहना चाहता है? यह जानने के लिए एकांकी के निम्नलिखित अंशों को ध्यान से पढ़िए :

i) "कमरे का वातावरण देखकर ज्ञात होता है कि पुरानी रूढ़ियों को पालना इस कुल का परम लक्ष्य है। कोई बात जो अब तक नहीं हुई इस घर में नहीं हो सकती। ······परंपरा के विरुद्ध कुछ नहीं होता।"

ii) "मेरा विश्वास है कि जब तक हम अपनी वंश मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक हमारा नाश नहीं होगा।"

iii) "मैं पचास वर्ष से इस घर का अन्न खा रहा हूँ। मैंने कभी नहीं देखा कि किसी ने वंश की मर्यादा को बट्टा लगाया हो, वंश की मर्यादा में धक्का लगा कर उसे पीछे धकेला हो, आखिर यह महाराज के कोषाध्यक्ष का कुल है। मुझे याद है पुराने स्वामी कभी भी बाहर नहीं निकले ··· अंग्रेजों के दरबार में भी वे जाते रहे। सरकार ने उनके मिलने का खास प्रबंध किया था। उनसे कह दिया था कि आपके आने की कोई आवश्यकता नहीं। सरकार आप पर बहुत खुश है।"

iv) "अंग्रेज नाराज हो जाता तो न जाने क्या होता।"

v) "समय बदल गया है, हमको भी बदलना चाहिए। क्या रखा है इन पुरानी बातों में।"

पुरानी श्रेष्ठता का मिथ्या दंभ प्रस्तुत करके लेखक ने एक विकृत आभिजात्यवाद की तस्वीर प्रस्तुत की है। पूर्वज महान थे उनका अनुकरण करके स्वयं भी महान बना रहा जा सकता है। यह प्रवृत्ति स्वस्थ विकास की प्रवृत्ति नहीं है। लकीर के फकीर बने रह कर व्यक्ति विकास और नवप्रवर्तन का मार्ग रोक देता है। अपनी बुद्धि, विवेक और ज्ञान का विकास करना बंद कर देता है। दुनिया में हो रहे बदलाव से अपने को बचाना चाहता है और कुएँ में रहने वाले मेंढक की तरह अज्ञान बना रहता है। यह प्रवृत्ति कितनी घातक है इसका प्रमाण राव साहब हैं। वे छोटी सी घटना से इतने विकल और भयभीत हो जाते हैं कि समझदारी और विवेक से काम ही नहीं लेते। निर्जीव वस्तुएँ—चोगे और पगड़ियाँ उन्हें हिलती दिखाई देती हैं। चित्रों में क्रोध का भाव दिखाई देता है। वस्तुतः यह उनके अपने मन का भय है जिसे वे इन चीजों पर इतना अधिक आरोपित करते हैं कि वास्तविकता का सामना ही नहीं कर पाते। उनका दम तोड़ देना किसी मान-मर्यादा के लिए मर मिट जाने वाली शहादत नहीं है। यह तो एक कायर व्यक्ति का घबराकर दम तोड़ देना है। यदि विवेक का इस्तेमाल करते तो समझते कि प्रद्युम्न कुमार ने कोई गलत काम नहीं किया। किंतु राव साहब तो उस जर्जर रूढ़ि की दीवार का प्रतीक हैं जो जरा से झटके से ढह गई। दीवार की नींव वस्तुतः इतनी कमजोर हो चुकी थी कि उसमें खड़े रहने की शक्ति नहीं रही थी।

राव साहब के परिवार का प्रत्येक आचरण वस्तुतः हास्य का विषय है क्योंकि वह सोच समझ कर नहीं, अंधी नकल के रूप में किया जाता है। इस तरह के आचरण की निरर्थकता को सिद्ध करने के लिए लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप से इसका मजाक उड़ाया। स्त्रियों से पुरुषों को श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति पर भी व्यंग्य किया है। कमरे मे छोटी लड़कियों तक का प्रवेश वर्जित है। अंग्रेजी शासन के प्रति

पूर्वजों के तथा इसी पीढ़ी के सम्मान भाव के माध्यम से सामंतीय मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया है। ऐतिहासिक सत्य है कि भारतीय सामंतों के विशिष्ट वर्ग ने अंग्रेजों के प्रति पूरी वफादारी और निष्ठा प्रमाणित की थी।

रामनारायण की लड़की और कांता नई पीढ़ी द्वारा जाने-अनजाने में लाए जाने वाले बदलाव की प्रतीक हैं। गति, विकास और परिवर्तन जीवन के अनिवार्य अंग हैं। इनको न स्वीकार करने पर राव साहब को गिरती दीवारों के समान स्वतः ढह जाना पड़ता है। यही दिखाना इस एकांकी का उद्देश्य है।

शीर्षक :
एकांकी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। किसी भी समाज में सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन की प्रक्रिया किस तरह स्वाभाविक रूप से चलती है और इस परिवर्तन को रोकना किस तरह असंभव हो जाता है यही इस एकांकी में दिखाया गया है। जिस तरह कोई भवन जब अत्यधिक पुराना हो जाता है तो मरम्मत का भरसक प्रयत्न करने के बावजूद एक दिन उसकी दीवारें अनायास ही गिर उठती हैं उसी तरह समाज में पुराने रीति-रिवाज, मान्यताएँ और विचारधाराएँ भी एक समय के बाद निरर्थक और अनुपयोगी हो जाती हैं। वे धीरे-धीरे स्वतः ही समाप्त होने लगती हैं और उनका स्थान नई मान्यताएँ और विचारधाराएँ ले लेती हैं। इस दृष्टि से इस एकांकी का शीर्षक बड़ा सार्थक है। पुरानी रूढ़ियों का ढहना और उनके रक्षक राव साहब का मर जाना ही दीवारों का गिरना है।

बोध प्रश्न 8

i) 'गिरती दीवारें' में उदय शंकर भट्ट ने किस वर्ग पर व्यंग्य किया है।
....
....

ii) किन दो विचारधाराओं की टकराहट यहाँ प्रस्तुत की गई है?
....
....

iii) रामनारायण की लड़की और कांता का प्रवेश किस बात का सूचक है?
....
....

iv) राव साहब की मृत्यु किस बात की सूचक है?
....
....

v) ' गिरती दीवारें ' एकांकी शीर्षक की क्या सार्थकता है?
....
....

25.11 सारांश

इस इकाई में आपने उदय शंकर भट्ट के एकांकी गिरती दीवारें का वाचान एवं विश्लेषण किया है। इसमें प्रयुक्त कठिन शब्दों और मुहावरों का अर्थ आप समझ गए हैं। इसके कथानक में निहित सामंतीय परिवेश पर व्यंग्य को आप समझ गए हैं। आप इसके पात्रों के चरित्र का विश्लेषण कर सकते हैं और समाज में उनकी प्रासंगिकता के बारे में बता सकते हैं। निरर्थक रूढ़ियों को आँख मूंद कर अपनाए रहने के दुष्परिणाम बता सकते हैं। सामाजिक चेतना में बदलाव के महत्व को आप समझ सकते हैं तथा गिरती दीवारें शीर्षक की सार्थकता बता सकते हैं।

25.12 शब्दावली

संवेदना : अनुभूति, ज्ञान

वक्तव्य : कथन

अनिष्ट : हानिकर, बुरा अमंगल

अपराधबोध : अपराधी होने का अहसास

वाचाल : बात-चीत का चमत्कार

शहादत : शहीद हो जाना

25.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) राव साहब के घर में सदा से मर्यादा का पालन होता रहा है। पूर्वजों के कमरे में कभी कोई जोर से नहीं बोला। जब रामनारायण को जोर से बोलते सुनते हैं तो उन्हें लगता है कि कमरे की मर्यादा भंग हो गई।

ख) रामनारायण के लिए रावसाहब ने अपने पूर्वजों की परंपरा के अनुसार दंड की व्यवस्था की है। पूर्वजों के चित्र के सामने वह बिना खाये-पीये हाथ जोड़ कर खड़ा रहेगा।

ग) राव साहब का कुल महाराज के कोषाध्यक्ष का कुल है। उनके पूर्वज कभी किसी के सामने नहीं निकलते थे उन्हें किसी भी आम व्यक्ति ने नहीं देखा था। एक बार वे अंग्रेजों से मिलने गये थे। उनके कुल की श्रेष्ठता का ध्यान रखते हुए अंग्रेजों ने उनसे मिलने का खास प्रबंध किया था। और कहा था कि सरकार उनसे बहुत खुश है।

घ) राव साहब का बड़ा पुत्र विजय मोहन सदैव वंश की मर्यादा का निर्वाह करता रहा है। ऐसा कोई काम नहीं होने दिया जिससे वंश को बट्टा लगे। किंतु उनका छोटा पुत्र प्रद्युम्न कुमार पुरानी रूढ़ियों का पालन नहीं करता। परिवार की प्रथा को तोड़ कर उसने कालेज में शिक्षा पाई। तहसीलदार बनने के बाद नये जमाने का रहन-सहन और वेषभूषा अपना ली है। वह पुरानी बातों से चिपके रहने के पक्ष में नहीं हैं।

ङ) एकांकी के आरंभ में ही रामनारायण की लड़की के प्रवेश और रामनारायण के जोर से बोलने के कारण पहली बार कुल की मर्यादा भंग हो गई। उसके बाद गाड़ी खराब हो जाने के कारण विजय मोहन को पैदल चलना पड़ा, लोगों ने उसे देख लिया, चोगा फट गया तो दोबारा कुल की मर्यादा भंग हुई। फिर प्रद्युम्न कुमार ने नयी वेषभूषा तथा नये ढंग के शिष्टाचार के साथ कमरे में प्रवेश किया तो कुल की मर्यादा भंग हो गई। आखिर में जब कांता अपनी मिस साहब के साथ कमरे में घुस आई तो कुल की मर्यादा पूरी तरह नष्ट हो गई।

बोध प्रश्न 2

i) (×) ii) (×) iii) (√) iv) (√) v) (×) vi) (√)

अभ्यास 1

जब राव साहब का छोटा बेटा प्रद्युम्न कुमार ग़ैर-परंपरागत वेशभूषा में घर आ जाता है और केवल पिता को प्रणाम करता है और किसी को नहीं तो घर में सदस्य उसके व्यवहार पर ताज्जुब करते हैं। वह बताता है कि उसे समय और स्थिति के अनुकूल व्यवहार करना पड़ता है। किंतु राव साहब को उसके इस व्यवहार से गहरी ठेस पहुँचती है क्योंकि उसने परिवार की मर्यादा भंग की है। विजय मोहन कहता है कि पूर्वज उसके इस व्यवहार से अप्रसन्न हैं बेहतर होता कि वह न आता। प्रद्युम्न कहता है कि पुरानी रूढ़ियों की गठरी सिर पर लाद कर व्यक्ति आज के जमाने में नहीं चल सकता। किंतु तभी उसकी बेटी कांता और मिस साहब कमरे में घुस आती हैं। पहले से हो रही अनिष्टकारी घटनाओं और प्रद्युम्न कुमार के व्यवहार से व्यथित राव साहब मर्यादा टूटने की इस चरम सीमा को बर्दाश्त नहीं कर पाते और दम तोड़ देते हैं। मरते-मरते भी वह मर्यादा का पालन करते हैं और प्रद्युम्न कुमार के स्पर्श से अपने को बचाते हैं।

बोध प्रश्न 3

क) i) राव साहब मानते हैं कि जब तक वे लोग वंश मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक उनके कुल पर कोई विपत्ति नहीं आएगी। इसलिए उनके घर में ऐसी कोई बात नहीं हो सकती जो पहले नहीं हुई।

ii) परिवार की परंपरा के माने बगैर प्रद्युम्न कुमार कालेज में पढ़ा और तहसीलदार हो गया है। अब राव साहब को डर है कि कहीं वह कुल के नियम कायदों को पालन करने में असमर्थ न सिद्ध हो।

ख) जीवन भर राव साहब उसी तरह रहे हैं जिस तरह उनके पूर्वज रहते थे। अब उनके परिवार की मर्यादा की रक्षा नहीं हो पा रही इससे उनका मनोबल टूट जाता है। जीवन में उनकी आस्था नहीं रही। वे नहीं चाहते कि प्रद्युम्न कुमार उन्हें छुए क्योंकि प्रद्युम्न परिवार की मर्यादा को कायम नहीं रख सकता। उनके पूर्वज उसी कमरे में मरे थे। अतः वे नहीं चाहते कि जीवन के अंतिम क्षणों में उस कमरे से बाहर जाकर पूर्वजों की परंपरा को तोड़ें।

ग) यह विजय मोहन का कथन है। जब प्रद्युम्न कुमार घर पर आता है तो उसके आचरण और वेशभूषा को देख कर विजय मोहन उसे ध्यान दिलाता है कि उसके व्यवहार से पूर्वज क्रोधित हो रहे हैं। यह कथन विजय मोहन की रूढ़िवादिता और विवेकशून्यता का सूचक है। उसे निर्जीव वस्तुओं में ऐसे परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं जो असंभव हैं। विवेकहीन भय के मनोविज्ञान के कारण उसे लग रहा है कि वह बोल नहीं पा रहा कमरे के वातावरण में घुटन पैदा हो गई है।

बोध प्रश्न 4

क) i) पुरानी रूढ़ियों का पालन करना राव साहब के जीवन का लक्ष्य है। जब रूढ़ियाँ टूटने लगती हैं तो राव साहब भी दम तोड़ देते हैं।

ii) राव साहब जीवन भर पुरानी रूढ़ियों का पालन करते रहते हैं किंतु एक दिन ऐसा आता है कि वे असमर्थ सिद्ध होते हैं। वे देखते हैं कि उनका अपना बेटा नए जमाने के हिसाब से रहने लगा है। छोटी लड़कियाँ कमरे में घुस आती हैं राव साहब यह सब बर्दाश्त नहीं कर पाते और उन जर्जर दीवारों की तरह दम तोड़ देते हैं जिनमें कायम रहने की क्षमता नहीं है।

ख) जाति, धर्म और कुल आदि के विषय में बचपन मे जो संस्कार मिले हैं उन्हें 'संस्कार और भावना' एकांकी की 'माँ' तोड़ना नहीं चाहती। बड़े पुत्र अविनाश ने विजातीय लड़की से विवाह किया है इस बात को माँ स्वीकार नहीं करती पुत्र को छोड़ देती है। अपने विचारों में काफी दृढ़ है। ममता को त्याग देना चाहती है किंतु संस्कारों को नहीं। पुत्र की बीमारी की खबर सुनती है तो उससे मिलने को तरसती है किंतु संस्कारों की दीवार को लाँघना नहीं चाहती। वह ममतामयी होते हुए भी काफी सख्त है। किंतु पुत्र के अनिष्ट की आशंका उसकी सख्ती को झकझोर देती है। बहू मरणासन्न है। यदि उसे कुछ हो गया तो बेटा भी न बचेगा यह सोच कर माँ संस्कारों को पीछे धकेल देती है। बहू को स्वीकार कर लेती है। 'गिरती दीवारें' के राव साहब अपने श्रेष्ठ पूर्वजों की मर्यादा को कायम रखना ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं। इस तरह से माँ और राव साहब में समानता है दोनों पुराने सोच से लिपटे हैं। किंतु राव साहब में माँ जैसी दृढ़ता नहीं है। माँ के भीतर विवेक है, भावना है। उसके संस्कार और भावना परस्पर टकराते हैं और भावना की विजय होती है। किंतु राव साहब के मन में कोई द्वंद्व नहीं। परंपरा टूटने पर वे इतने डरते और घबराते हैं कि उनका विवेक बिल्कुल समाप्त हो जाता है धैर्य टूट जाता है। वे न तो स्थितियों से संघर्ष कर सकते हैं और न ही अपने को बदल सकते हैं। कायरतापूर्ण ढंग से मर जाते हैं। उनके व्यक्तित्व में गतिशीलता नहीं है। यदि पाठक या दर्शक पर पड़ने वाले प्रभाव की तुलना करें तो माँ हमारे लिए स्वीकार्य पात्र है जबकि राव साहब अस्वीकार्य। उनके आचरण पर हम हँसते हैं उनकी मृत्यु पर हमें सहानुभूति नहीं क्योंकि हम महसूस करते हैं जो वक्त के अनुकूल मुड़ नहीं सकता वह स्वयं ही समाप्त हो जाएगा।

बोध प्रश्न 5

'गिरती दीवारें' एकांकी में सामंतीय रूढ़िवादी दृष्टि की निरर्थकता को दिखाया गया है और यह भी दिखाया गया है कि किस तरह परिवर्तन अपने आप आता है। प्रद्युम्न कुमार की उपर्युक्त पंक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि पुरानी बातों के साथ एक सीमा तक ही संबद्ध रहा जा सकता है। समाज तथा जीवन स्थितियों में आए बदलाव के साथ व्यक्ति को भी बदलना पड़ता है। यह बदलाव जरूरी है अन्यथा व्यक्ति समाज से कट जाता है। प्रद्युम्न कुमार ने अपने आप को बदल लिया है इसलिए वह जीवन में प्रगति करने में सक्षम है। उसके पिता और भाई पुरानी रूढ़ियों से चिपके हैं इसलिए दुनिया से, समाज से और अपने निकटतम व्यक्तियों से कट गये हैं स्वयं अपनी नियति का शिकार बन गए हैं।

अभ्यास 2

समय के साथ चलना

जो लोग समय के साथ नहीं चल सकते वे अपने समाज की प्रगति में योगदान नहीं दे पाते।

बट्टा लगाना

ईमानदार व्यक्ति ऐसा कोई काम नहीं करता जिससे उसके ईमान को बट्टा लगे।

रोब जमाना

कई अफसरों की अपने कर्मचारियों पर रोब जमाने की आदत होती है।

बोध प्रश्न 6

क i) नहीं, ii) हाँ , iii) हाँ , iv) नहीं

ख) i) हाँ , ii) हाँ , iii) नहीं

ग) i) वर्णनात्मक · ii) लंबे

घ) मुंशी हर बात में राव साहब की हाँ में हाँ मिलाता है। उसके संवाद चाटुकारितापूर्ण हैं। किंतु प्रद्युम्न कुमार के संवादों में तार्किकता है। वह जो कुछ कर रहा है उसके लिए उसके पास समुचित तर्क या उत्तर है।

बोध प्रश्न 7

'गिरती दीवारें' परिवेश प्रधान एकांकी है। अतः इसे रंगमंच पर प्रस्तुत करते समय ध्यान रखना पड़ेगा कि इसका परिवेश रंगमंच पर इस ढंग से उभरे कि अभिनेताओं के अभिनय से पहले ही दर्शक को परिवेश का आभास होने लगे। कमरे का वातारण सजीव ढंग से उभारा जाए कुल की परंपरा के विषय में पर्दे के पीछे से कमैंट्री दी जाए ताकि जैसे ही एकांकी शुरू हो वैसे ही दर्शक स्थिति की विडंबना को समझ सके।

बोध प्रश्न 8

i) इस एकांकी में भट्ट जी ने पतनशील सामत वर्ग पर व्यंग्य किया है।

ii) रूढ़िवादी तथा परिवर्तनशील विचारधाराओं की टकराहट यहाँ प्रस्तुत की गई है।

iii) रामनारायण की लड़की और कांता का प्रवेश नई पीढ़ी द्वारा स्वतः लाये जा रहे परिवर्तन का सूचक है।

iv) राव साहब की मृत्यु पुरानी रूढ़ियों के स्वतः समाप्त होने की सूचक है।

v) उस एकांकी के माध्यम से लेखक पुरानी अर्थहीन रूढ़ियों का ढहना दिखाना चाहता है। राव साहब की मृत्यु रूढ़िवादी परंपरा के अंत की प्रतीक है। ये रूढ़ियाँ ऐसी जर्जर हो गई थीं जैसे किसी बहुत पुराने भवन की जीर्णशीर्ण दीवारें। हल्के से झटके से ये रूढ़ियाँ दीवारों की भाँति गिर गईं। यही इस शीर्षक की सार्थकता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. रामचरण महेन्द्र, *हिंदी एकांकी और एकांकीकार*, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
डॉ. सिद्धनाथ कुमार, *हिंदी एकांकी की शिल्पविधि का विकास*, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली
डॉ. रमा सूद, *हिंदी एकांकी और एकांकीकार*, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर
डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, *"हिन्दी के प्रतिनिधि एकांकीकार"*, शारदा प्रकाशन, दिल्ली
डॉ. सत्येंद्र, *हिन्दी एकांकी*, साहित्य रत्न भंडार, आगरा
डॉ. पुष्प लता श्रीवास्तव, *हिंदी एकांकी और डॉ. राम कुमार वर्मा*, पराग प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशन, जयपुर

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

यू जी एच आई - 01
हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड
5
हिंदी नाटक

इकाई 26

हिंदी नाटक : स्वरूप और विकास 5

इकाई 27

"ध्रुवस्वामिनी" (जयशंकर 'प्रसाद') : वाचन एवं व्याख्या 32

इकाई 28

"ध्रुवस्वामिनी" : कथानक 62

इकाई 29

"ध्रुवस्वामिनी" : चरित्र-चित्रण 73

इकाई 30

"ध्रुवस्वामिनी" : परिवेश तथा संरचना शिल्प 85

इकाई 31

"ध्रुवस्वामिनी" : प्रतिपाद्य और अभिनेयता 99

इकाई 32

"ध्रुवस्वामिनी" : रचना दृष्टि की सार्थकता और नवीनता 114

खंड परिचय

यह हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम का पाँचवा खंड है। इसमें आप नाटक पढ़ेंगे। हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास की जानकारी के साथ इस खंड में हम आपको जयशंकर 'प्रसाद' का नाटक "ध्रुवस्वामिनी" भी दे रहे हैं। इससे पहले के खंडों में आप कहानी, उपन्यास तथा एकांकी पढ़ चुके हैं। एकांकी पढ़ते समय आप नाट्य विधा की सामान्य विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। नाटक के विशिष्ट स्वरूप के अलावा इस खंड में साहित्य की विभिन्न विधाओं से नाटक के संबंध की चर्चा भी की गई है।

इस खंड में कुल सात (26-32) इकाइयाँ हैं। इकाई 26 हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास से संबंधित है। नाटक की स्वरूपगत विशेषताओं का उल्लेख करते हुए यहाँ प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य नाट्य दृष्टियों की चर्चा की गई है। यह बताया गया है कि किस तरह हिंदी नाटक ने इन दोनों से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी अपना निजी स्वरूप निर्मित किया है। हिंदी नाटक के विकास के विभिन्न चरणों का परिचय देते समय प्रमुख रचनाकारों, युगीन परिस्थितियों और नाटक के क्षेत्र में उनके योगदान का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। विभिन्न युगों में नाट्य-रचना के क्षेत्र में आये बदलावों तथा उनके कारणों को जाँचने, परखने का प्रयास भी किया गया है।

इकाई 27-32 "ध्रुवस्वामिनी" नाटक से संबंधित हैं। इकाई 27 में मूल नाटक दिया गया है। लेखक द्वारा लिखी गयी भूमिका (सूचना) नाटक के साथ ही दी गई है। नाटक को भली-भाँति समझने के लिए इस भूमिका को पढ़ना उपयोगी होगा। इकाई 28-31 में इस नाटक की संरचनागत विशिष्टताओं का विवेचन-विश्लेषण है। इकाई 28 "ध्रुवस्वामिनी" की कथा के चयन और विकास से संबंधित है। इकाई 29 में इस नाटक के विभिन्न पात्रों का चरित्र चित्रण है। इकाई 30 में इसके देश-काल, भाषा शैली और संवादों पर विचार किया गया है। इकाई 31 में "ध्रुवस्वामिनी" के प्रतिपाद्य और रंगमंचीय विशेषताओं को जाँचने, परखने का प्रयास किया गया है। इकाई 32 में "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का समग्रता में मूल्यांकन करते हुए इस बात पर भी विचार किया गया है कि 'प्रसाद' के नाटकों में "ध्रुवस्वामिनी" का क्या स्थान है।

"ध्रुवस्वामिनी" पर चर्चा के माध्यम से इस खंड मे नाटककार के रूप में 'प्रसाद' की उपलब्धियों और सीमाओं पर विचार किया गया है।

खंड के अंत में कुछ उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है। ये पुस्तकें आपके ज्ञान के विस्तार में उपयोगी होंगी।

इस खंड से संबद्ध ऑडियो-वीडियो कार्यक्रम आपके अध्ययन केंद्र पर उपलब्ध हैं। वीडियो "हिंदी नाट्य साहित्य" ऑडियो "जयशंकर प्रसाद : व्यक्ति और रचनाकार"। हिंदी नाटक और नाटककार जयशंकर 'प्रसाद' के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए ये कार्यक्रम उपयोगी होंगे।

इस खंड को पढ़ते समय एक और बात का ध्यान रखें। "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का नामकरण इसकी प्रमुख नारी पात्र ध्रुवस्वामिनी के नाम पर किया गया है। अतः ध्यान रखें जब उद्धरण चिह्नों ("   ") के भीतर ध्रुवस्वामिनी शब्द आए तो यह नाटक के लिए है और जब बिना उद्धरण चिह्नों के आए तो यह पात्र के लिये है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

जयशंकर 'प्रसाद'

मोहन राकेश

इकाई 26 हिंदी नाटक : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 साहित्य की अन्य विधाएँ और नाटक
 26.2.1 प्रत्यक्षता
 26.2.2 प्रभाव की सघनता और तीव्रता
 26.2.3 सामूहिकता
 26.2.4 नाटक की रचना प्रक्रिया और दर्शक
 26.2.5 नाट्य प्रस्तुति और दर्शक
 26.2.6 विभिन्न कलाओं का समावेश
 26.2.7 सजीवता
 26.2.8 संवादात्मकता
 26.2.9 तात्कालिकता
26.3 नाटक और रंगमंच का संबंध
26.4 नाटक और उपन्यास
26.5 नाटक के तत्व
 26.5.1 कथावस्तु
 26.5.2 पात्र
 26.5.3 परिवेश
 26.5.4 भाषा, शैली और संवाद
 26.5.5 अभिनेयता और मंचीयता
 26.5.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य
26.6 नाटक के प्रकार
26.7 हिंदी नाटक का विकास
 26.7.1 भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक
 26.7.2 'प्रसाद' युगीन हिंदी नाटक
 26.7.3 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक
26.8 सारांश
26.9 शब्दावली
26.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी नाटक के स्वरूप के विषय में विस्तृत जानकारी दे सकेंगे;
- अन्य साहित्यिक विधाओं के संदर्भ में नाटक की विशेषताओं को पहचान सकेंगे;
- नाटक और उपन्यास में अंतर बता सकेंगे;
- नाटक के विभिन्न तत्वों की चर्चा कर सकेंगे;
- नाटक के विभिन्न प्रकारों को पहचान सकेंगे;
- हिंदी नाटक के विकास के विभिन्न चरणों की विशेषताएँ बता सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

पिछले खंड में आप हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ चुके हैं साथ ही पाँच एकांकियों का अध्ययन भी आपने किया है। एकांकियों के वाचन, विश्लेषण और मूल्यांकन के दौरान आपने दृश्य विधा के विशिष्ट स्वरूप और उसकी विवेचन पद्धति का परिचय प्राप्त कर लिया है। इस पाँचवे खंड में हम हिंदी नाटक के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे तथा जयशंकर 'प्रसाद' के नाटक "ध्रुवस्वामिनी" का वाचन, विश्लेषण और मूल्यांकन करेंगे। इकाई 18 में हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ते समय आप जान चुके हैं कि नाटक साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में विशिष्ट विधा होती है और एकांकी वस्तुतः नाटक का ही एक प्रकार है। आप पढ़ चुके हैं कि एकांकी का जन्म आधुनिक युग में हुआ और शिल्प तथा तकनीक की दृष्टि से हिंदी एकांकी शिल्प पश्चिम से प्रभावित है। किंतु नाटक का अस्तित्व दुनिया

भर के साहित्य में प्राचीन काल से मौजूद है। वह प्राचीन काल से मनुष्य का सहचर रहा है। अपार सुख-दुख के गहन क्षणों में जैसे मनुष्य की वाणी से अनायास कविता फूट पड़ी उसी तरह गहन भावों की शारीरिक मानसिक अभिव्यक्ति के लिए नृत्य और नाटक की शुरुआत हुई। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ साहित्य की उन्नति होती गई और महाकाव्यों तथा नाट्यकृतियों का सृजन हुआ। श्रेष्ठ रचनात्मक साहित्य के आने के बाद उसके कुछ सामान्य सिद्धांत निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार कविता और नाटक के रचना-सिद्धांतों की परंपरा विकसित हुई।

विभिन्न युगों में हुए सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तनों के अनुरूप नाटक की रचना प्रक्रिया में बदलाव आते रहे और नाट्य सिद्धांतों में तथानुरूप परिवर्तन होते रहे। इस तरह नाटक ने आज जो स्वरूप ग्रहण किया है वह एक लंबी परंपरा और समय के साथ-साथ परंपरा में हुए आंतरिक और बाह्य परिवर्तनों का स्वाभाविक परिणाम है। ऐसी स्थिति में हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास की चर्चा करते समय हमें प्राचीन और मध्ययुगीन नाट्य परंपरा को भी ध्यान में रखना होगा।

26.2 साहित्य की अन्य विधाएँ और नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक एक विशिष्ट साहित्यिक विधा है। यहाँ हम उसकी विशिष्टता के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। यह जानकारी नाटक की रचना प्रक्रिया को समझने में सहायक होगी। साथ ही किसी भी नाट्य कृति के विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए भी सही दिशा प्रदान करेगी।

26.2.1 प्रत्यक्षता

साहित्य की अन्य विधाओं यानी कविता, कहानी और उपन्यास आदि को हम पढ़ या सुन सकते हैं जब कि नाटक को पढ़ने और सुनने के अतिरिक्त हम अपनी आँखों से देख भी सकते हैं। सभी साहित्यिक विधाओं का माध्यम शब्द होता है, किंतु नाटक में शब्द के साथ-साथ रूप भी समाहित होता है। अन्य साहित्यिक विधाएँ शब्दों द्वारा, कल्पना की सहायता से, हमारे हृदय अथवा कल्पना में भाव चित्र उपस्थित करती हैं, जबकि नाटक स्थिति-परिस्थिति को हमारे सामने साक्षात् दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम जीवन की घटनाओं को वास्तव में घटित होता देख रहे हैं। इंद्रियों के आधार पर पड़ने वाले इस प्रभाव को ध्यान में रखते हुए प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य के दो विभाग किए हैं — श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। संस्कृत साहित्य में नाटक को भी काव्य ही माना गया है और उसे दृश्य काव्य की श्रेणी में रखा गया है। इस तरह कविता और नाटक का भेद श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य के रूप में किया गया है। 'श्रव्य काव्य' शब्द उन दिनों की स्मृति को सुरक्षित रखे हुए है जब साहित्य में लिखित परंपरा की बजाए मौखिक (गायन की) परंपरा का प्रचलन अधिक रहा होगा। प्राचीन समय में कविता जन समुदाय के समक्ष गाकर सुनाई जाती थी। उदाहरण के लिए, महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित आदिकाव्य "रामायण" को लव-कुश आरंभ में गाकर ही सुनाते हैं। माना जाता है कि उन्होंने इसे रामचंद्र के दरबार में गाकर सुनाया था।

नाटक को 'दृश्य काव्य' इसलिए कहा गया कि दर्शक विशेषतः उसे आँख और कान दोनों इंद्रियों से ग्रहण करता है। उसे सुनने के साथ-साथ देखा भी जा सकता है।

आज जब साहित्य की काव्य के अतिरिक्त अन्य अनेक विधाएँ सामने आ गयी हैं और वह मुद्रित होकर सुगमता प्राप्त होने के कारण सुनने की बजाए पढ़ने की वस्तु अधिक हो गया है तब इसे "श्रव्य काव्य" कहना बहुत तर्क संगत नहीं रहा। इसी तरह आज नाटक को "दृश्य काव्य" की बजाए दृश्य विधा कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि आज नाटक को गद्य साहित्य का प्रमुख भेद माना जाता है। यद्यपि पद्य नाटक और गीति नाट्य भी नाटक के प्रकार हैं, किंतु अब मुख्य रूप से नाटक गद्य की ही एक विधा मानी जाती है।

26.2.2 प्रभाव की सघनता और तीव्रता

ऊपर हम कह चुके हैं कि अन्य साहित्यिक विधा शब्दों के माध्यम से हमारी कल्पना में बिंब या भावचित्र उत्पन्न करती है जिसे हम अनुभव करते हैं। किंतु नाटक हमारे सामने प्रत्यक्ष होता है। इसमें हमें कल्पना का उतना सहारा नहीं लेना पड़ता जितना अन्य विधाओं में। स्वाभाविक है कि जो हम सुनते या पढ़ते हैं उसकी तुलना में जो हम देखते हैं उसका प्रभाव ज्यादा होता है। यह लोक सिद्ध अनुभव है कि प्रत्यक्ष और मूर्त का प्रभाव अप्रत्यक्ष और अमूर्त की अपेक्षा अधिक होता ही है। यही कारण है कि नाटक की प्रभाव क्षमता अन्य किसी भी विधा से अधिक होती है। इस अंतर को हम आधुनिक युग में रेडियो और टेलीविजन की तुलना से समझ सकते हैं।

26.2.3 सामूहिकता

नाटक में भाषा के माध्यम से लेखक जो कुछ दर्शकों तक पहुँचाना चाहता है उसे अभिनेता अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक में सामाजिकता अन्य विधाओं से अधिक होती है। कविता, कहानी या उपन्यास को हम अकेले में बैठकर पढ़ सकते हैं, पर नाटक का आस्वादन एकांत में नहीं किया जा सकता। यह एक सामूहिक कला है जिसमें लेखक के अलावा रंगकर्मियों (निर्देशक, अभिनेता मंडली, मंच-सज्जाकार, प्रकाश व्यवस्थापक, संगीत वादकार आदि) की पूरी-पूरी सक्रिय भूमिका होती है।

26.2.4 नाटक की रचना प्रक्रिया और दर्शक

दर्शक इस सामूहिक कला के अनिवार्य अंग होते हैं। लेखक तथा रंगकर्मियों के संपूर्ण प्रयास दर्शक को केंद्र में रख कर चलते हैं। कोई नाट्य प्रस्तुति कितनी ही अच्छी क्यों न हो, उसकी सफलता और सार्थकता सिद्ध करने के लिए दर्शक समूह की उपस्थिति अनिवार्य है।

दर्शकों के संबंध में ख़ास बात यह है कि नाटक देखने आए विभिन्न व्यक्ति एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न होते हैं। उनके आयु-वर्ग, शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक स्तर में काफी विविधता होती है। इसी कारण उनके सोच-विचार, पसंद-नापसंद और रुचियाँ भी एक दूसरे से अलग-अलग हो सकती हैं। लोग एक साथ बैठकर नाट्य-प्रस्तुति को देखते हैं। दर्शक समूह की इस विशिष्टता का असर नाटक की रचना प्रक्रिया पर पड़ता है। वैविध्यपरक दर्शक समूह को एक साथ प्रभावित करने के लिए नाटक में तीव्र प्रभावोत्पादकता नितांत अपेक्षित होती है। नाटक में प्रभावोत्पादन की क्षमता लाने के लिए लेखक तथा रंगकर्मी दोनों का योग आवश्यक है।

26.2.5 नाट्य प्रस्तुति और दर्शक

नाटक में दर्शक की अहम् स्थिति एक अन्य दृष्टि से भी होती है। दर्शकों का व्यवहार नाट्य प्रदर्शन को प्रभावित करता है। रंगशाला (नाट्यगृह) में बैठे दर्शकों की प्रस्तुति को देखकर जो भी तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है वह अभिनेताओं को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित अवश्य करती है। इस तरह दर्शक और प्रस्तोता के बीच स्थापित होने वाला प्रत्यक्ष तादात्म्य नाट्य प्रस्तुति का महत्वपूर्ण अंग बन जाता है। इस दृष्टि से नाटक आधुनिक विज्ञान के युग के विभिन्न तकनीकी दृश्य माध्यमों की तुलना में विशिष्ट होता है। सिनेमा या टेलीविजन देख रहे दर्शक और नाटक देख रहे दर्शक में यही अंतर होता है। प्रस्तुत करने वाले और देखने वाले के बीच जीवंत संपर्क एक दूसरे को खास तरह से प्रभावित करता है। यही कारण है कि नाटक जन सामान्य को अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में ज्यादा प्रभावित कर पाता है। नाटक की इस विशेषता के आधार पर ही संस्कृत के आचार्यों ने नाटक की अन्य विधाओं की तुलना में श्रेष्ठ बताते हुए कहा है — "काव्येषु नाटकम् रम्यम्।" अथात् काव्यों में नाटक सबसे अधिक रमणीय होता है।

26.2.6 विभिन्न कलाओं का समावेश

सामूहिक कला होने के कारण नाटक में विभिन्न कलाओं का अनिवार्य समावेश रहता है। नाटक देखते समय हमारा ध्यान अक्सर केवल अभिनेताओं की ओर जाता है। किंतु अभिनताओं के अलावा और भी कई व्यक्ति होते हैं जो नाटक की प्रस्तुति में सहायता करते हैं। नाटक के लिए उपयुक्त रंगमंच की सजावट करने के लिए स्थापत्य कला और चित्रकला आदि में कुशल व्यक्तियों की जरूरत पड़ती है। पात्रों की वेशभूषा तथा शृंगार के लिए खास तरह के विशेषज्ञ अपेक्षित होते हैं। गीत, नृत्य आदि की प्रस्तुति में सहायता के लिए संगीत वाद्य के क्षेत्र में कुशल लोगों की जरूरत होती है। मंच पर प्रकाश तथा ध्वनि-प्रभाव, माइक आदि की व्यवस्था के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग में बिजली के प्रकाश तथा वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग के कारण प्रकाश व्यवस्था की संपूर्ण नाट्य प्रभाव में बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह ध्यान रखना जरूरी होता है कि मंच के किस भाग पर कब, कितना और किस ढंग का प्रकाश दिया जाए कि अभिनेताओं का अभिनय अधिक से अधिक यथार्थ, सजीव और प्रभावपूर्ण हो सके। पर्दे के पीछे से सक्रिय प्रकाश व्यवस्थापक अपने कार्य में उतनी ही लगन और निष्ठा के साथ संलग्न रहता है जितना हमारी आँखों के सामने मंच पर उपस्थित अभिनेता। नाट्य प्रस्तुति को सफल बनाने में उसका भरपूर योगदान होता है।

26.2.7 सजीवता

नाटक की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें जीवन की वास्तविकता का अनुकरण जीते-जागते साधनों द्वारा किया जाता है। अन्य विधाएँ जीवन का अनुकरण शब्दों के माध्यम से उसका वर्णन करके करती हैं जबकि नाटक में घटनाओं को घटित होते दिखाया जाता है। अभिनेता वेशभूषा और रूप सज्जा द्वारा पात्रों का रूप धारण करते हैं और उनके आचार-व्यवहार तथा बातचीत आदि का अनुकरण करते हैं। इस तरह नाटक में जीवन के कार्य व्यापारों की प्रत्यक्ष क्रियाशील सजीवता होती है उनका विवरण नहीं होता। प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने अवस्था के अनुकरण को नाटक कहा है — "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्" (दशरूपक 1/7)। यह अवस्था शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार की होती है। इसलिए अनुकरण चार प्रकार के अभिनय — आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य द्वारा किया जाता है। इस तरह नाटक में अभिनय की प्रधानता होती है या फिर यह भी कहा जा सकता है कि अभिनय से ही नाटक बनता है।

26.2.8 संवादात्मकता

नाटक एक संवादात्मक कला है। यहाँ संपूर्ण स्थिति का उद्घाटन पात्रों के संवादों तथा कार्यकलाप से होता है। अन्य विधाओं में लेखक स्वयं भी विवरण दे सकता है, पृष्ठभूमि के संकेत कर सकता है, पात्रों के कार्यों पर टिप्पणी कर सकता है, किंतु नाटक में ऐसा नहीं होता। नाटककार अपनी ओर से केवल रंग संकेत देता है जो दृश्य-सज्जा, वातावरण, पात्रों के रूपाकार, अभिनय आदि से संबंधित होते हैं। प्रमुख कार्य-व्यापार संवादों के माध्यम से ही चलता है।

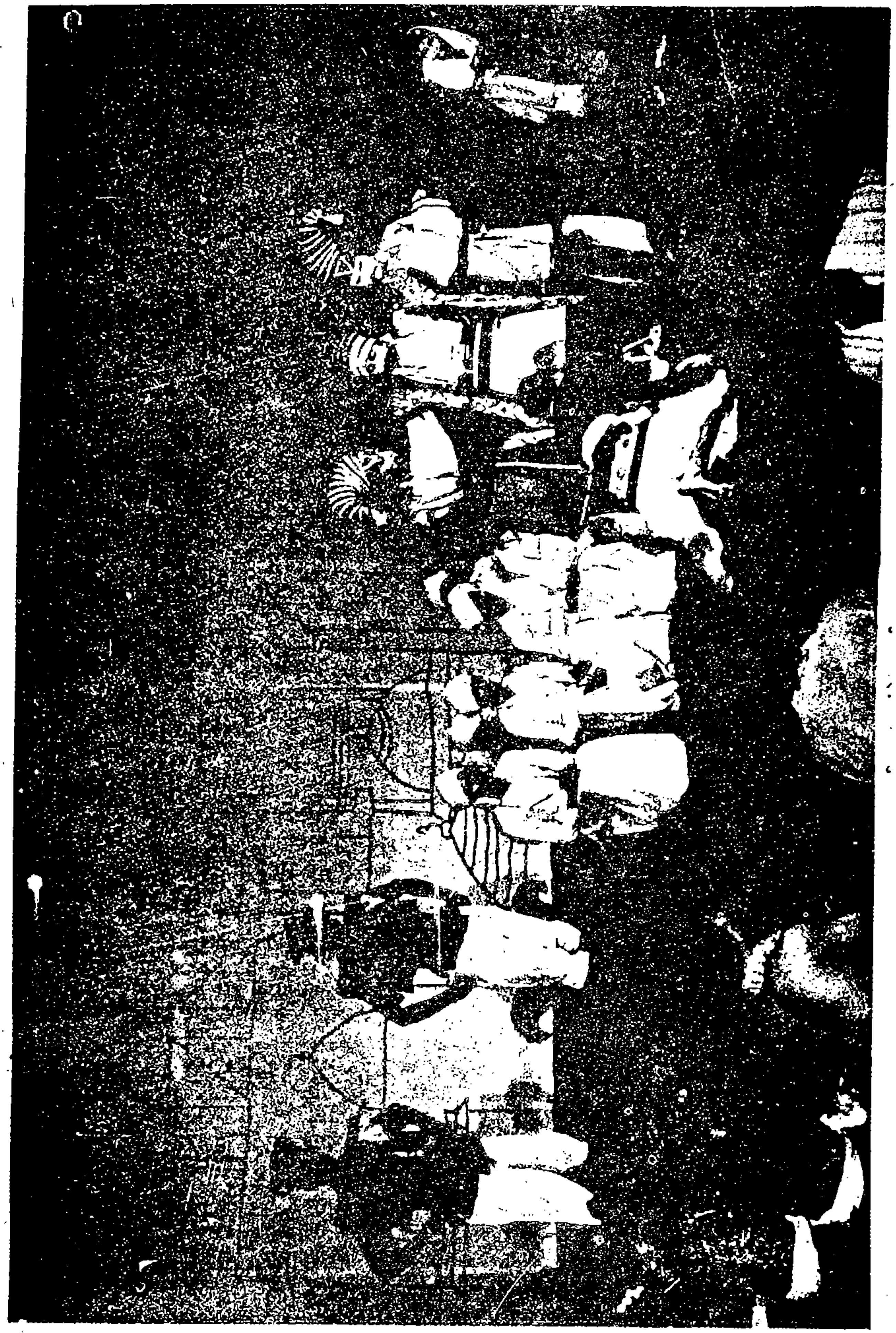

26.2.9 तात्कालिकता

हम कह चुके हैं कि साहित्य की अन्य विधाएँ पढ़ने के लिए होती हैं किंतु नाटक देखने के लिए। पढ़ते समय यदि कोई बात समझ में नहीं आती या ध्यान से चूक जाती है तो उसे दोबारा पढ़ा जा सकता है या रुक-रुक कर कई अंतरालों में पढ़ा जा सकता है। किंतु नाटक में एक बार प्रस्तुत स्थिति अथवा संवाद दोहराया नहीं जाता। दर्शक को उसे तुरंत समझना होता है। अतः स्थिति, भाषा, शैली, संवाद या प्रस्तुति मे तत्काल संप्रेषणीयता की क्षमता अपेक्षित होती है।

बोध प्रश्न 1

क) प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य के कौन से दो विभाग किए? नाटक इनमें से किसके अंतर्गत आता है?

....

....

....

ख) क्या आज भी नाटक को काव्य की श्रेणी में रखा जाता है? यदि नहीं तो क्यों?

....

....

....

....

ग) दर्शक नाटक की प्रस्तुति को किस तरह प्रभावित करते हैं?

....

....

....

....

26.3 नाटक और रंगमंच का संबंध

दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक की रचना प्रक्रिया की अपनी मौलिक विशेषताएँ होती हैं। रंगमंचीयता अथवा प्रस्तुति पक्ष नाट्य रचना प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नाटक साहित्य की वह विधा है जिसकी सफलता की जाँच रंगमंच पर होती है। जो रचना अभिनेय नहीं यानी जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत न किया जा सकता हो वह नाटक नहीं कही जा सकती, भले ही वह संवादों के माध्यम से क्यों न प्रस्तुत की गई हो। इस दृष्टि से नाटक और रंगमंच में घनिष्ट संबंध होता है। ये दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि रंगमंचीय परिस्थितियों का बदलाव नाटक को प्रभावित करता है और नाट्य लेखन की प्रवृत्तियों का बदलाव रंगमंच को बदल देता है। रंगमंच युग विशेष की जनरुचि और तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक स्थितियों पर आधारित रहता है। यही कारण है कि नाटक का स्वरूप हर युग में बदलता रहता है। 16वीं शताब्दी में इंग्लैंड में रंगमंच काफी लोकप्रिय था। परिणामस्वरूप उस युग में शेक्सपियर जैसे प्रतिभासम्पन्न नाटककार हुए और उन्होंने अपूर्व नाटकों की रचना की जो आज भी विश्व साहित्य की अमूल्य धरोहर बने हुए हैं। किंतु कुछ समय बाद इंग्लैंड में थियेटर में तालेबंदी हो गई। 40 वर्ष तक थियेटर बन्द रहने के कारण रंगमंचीय गतिविधियाँ ठप्प रहीं। बाद में जब रेस्टोरेशन युग में रंग कर्म फिर से शुरू हुआ तो नाटक की शक्ल ही बदली हुई थी।

26.4 नाटक और उपन्यास

खंड तीन में आप उपन्यास के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। इसके अलावा आपने प्रेमचंद के उपन्यास "निर्मला" का वाचन एवं विश्लेषण भी किया है। इस खंड में जयशंकर 'प्रसाद' का नाटक "ध्रुवस्वामिनी" पढ़ेंगे। नाटक तथा उपन्यास दोनों ही गद्य विधाएं आज बहुत लोकप्रिय हैं। यहाँ हम दोनों की तुलना प्रस्तुत कर रहे हैं। नाटक की तुलना में उपन्यास काफी नई विधा है। नाट्य लेखन और प्रस्तुति की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। किंतु हिंदी में उपन्यास की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई है। अंग्रेजी साहित्य के परिचय के माध्यम से पहले पहल बंगला में उपन्यास लेखन आरंभ हुआ। बंगला के माध्यम से वह हिंदी में आया। स्वरूप की दृष्टि से इन दोनों में कुछ समानताएं हैं जैसे दोनों के लिए कथानक, पात्र आदि अपेक्षित होते हैं। किंतु नाटक और उपन्यास अपनी मूल प्रकृति संवेदना और प्रभाव में भिन्न होते हैं। उपन्यास की रचना केवल पढ़ने के लिए होती है जबकि नाटक की रचना रंगमंच पर

अभिनय के लिए होती है। इसलिए उपन्यास तो अपने आप में पूर्ण होता है जबकि नाटक रंगमंच में प्रस्तुत होकर ही पूर्ण होता है। उपन्यास का कथानक प्रायः अतीत में घटित होता है। अतः भूतकालिक क्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं। नाटक में घटनाएँ अतीत की होने पर भी वर्तमान में हमारी आँखों के सामने घटित दिखाई जाती हैं। अतः यहाँ विवरण या वर्णन मात्र न होकर पुनः सृजन होता है। उपन्यासकार के पास केवल शब्द ही होते हैं। नाटककार के शब्दों की पूर्ति और पुष्टि अभिनय द्वारा की जाती है जिससे नाटक में सजीवता का समावेश होता है। इस तरह दोनों में कथावस्तु भाषा शैली, पात्र आदि तत्व होने के बावजूद रूप रचना की विशिष्टता के कारण इन तत्वों में भी एक स्तर पर भेद हो जाता है।

उपन्यास के संबंध में आकार की कोई सीमा नहीं है। वह हजार पृष्ठों का भी हो सकता है और सौ-डेढ़ सौ पृष्ठों का लघु उपन्यास भी। उसे हम लगातार भी पढ़ा सकते हैं और रुक कर यानी उसे हम एक बैठक में भी पढ़ सकते हैं और कई सप्ताह का समय लगाकर धीरे-धीरे भी पढ़ सकते हैं। किंतु नाटक को हम एक बार में ही देखते हैं। नाट्यगृह में हम दो तीन घंटे से अधिक समय के लिए नहीं बैठ सकते इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि नाटक की घटनाएँ गति के साथ आगे बढ़ें। दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए उनमें जिज्ञासा, कौतूहल और आकस्मिकता निरंतर बनी रहे। यदि दर्शक ऊब जाएँगे और बीच में ही उठकर जाने लगेंगे तो पूरा नाट्य कर्म ही असफल हो जाएगा। यदि हम उपन्यास को पसंद नहीं करते और उसे अधूरा छोड़ देते हैं तो इसका किसी अन्य व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किंतु यदि नाटक के दर्शक अधूरी प्रस्तुति के बीच में उठकर चले जाते हैं (भले ही सब न जाएं पर यदि अधिकांश चले जाते हैं) तो रंगकर्मियों पर अपने असफल हो जाने का गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। उनका मनोबल ही गिर जाता है। नाटक की रचना प्रक्रिया में इस तथ्य का ध्यान रखा जाना अपेक्षित होता है।

नाटक के पात्रों के बारे में लेखक स्वयं कुछ नहीं कहता। उनका चरित्र उनके संवादों और व्यवहार से उद्घाटित होता है। किसी पात्र के अपने संवाद से तो उसके चरित्र की जानकारी मिलती ही है अन्य पात्रों द्वारा कही गई बातों से भी उसके चरित्र का पता चलता है। पात्रों के क्रियाकलाप और शारीरिक चेष्टाएँ भी उनके चरित्र को प्रस्तुत करती हैं। उपन्यासकार की दोहरी सुविधा होती है। पात्रों के कथोपकथन तथा कार्यकलाप के द्वारा उनके चरित्र के उद्घाटन के साथ-साथ वह चरित्र-चित्रण की विश्लेषणात्मक पद्धति भी अपनाता है यानी पात्रों के चरित्र का विश्लेषण स्वयं भी करता है। वह जब आवश्यक समझता है तब स्वयं नाटक के पात्रों में शामिल हो जाता है और उनके भाव-विचार आदि को स्पष्ट करने के लिए उनके संबंध में टीका-टिप्पणी करता चलता है। इस तरह नाटककार परोक्ष या नाटकीय ढंग काम में लाता है और उपन्यासकार परोक्ष के साथ-साथ साक्षात् या विश्लेषणात्मक ढंग भी।

रूप-रचना के अंतर के कारण उपन्यास और नाटक के संवादों में भी भेद हो जाता है। हम कह चुके हैं कि नाटककार के शब्दों की पूर्ति अभिनय द्वारा होती है। अतः भाषा के लिखित रूप की बजाए उसका मौखिक रूप प्रधान होता है। भाषा के मौखिक रूप में स्वर का उतार-चढ़ाव, लहजा, शारीरिक भाव-भंगिमा आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए नाटक में वार्तालाप कहीं-कहीं शब्दों से ज्यादा उसकी प्रस्तुति पर आश्रित होता है। वाक्य कभी-कभी अपूर्ण भी हो सकते हैं तथा प्रसंग और परिस्थिति के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर संवाद एक हद तक लंबे भी हो सकते हैं। उपन्यास का माध्यम लिखित भाषा होती है। इसलिए लिखित भाषा की सभी विशेषताएँ वहाँ आ जाती हैं।

उपन्यासकार अपने पात्रों की मनःस्थिति को उभारने के लिए संवादों के अलावा कभी-कभी पत्र-व्यवहार का भी सहारा लेता है। पात्रों के आपसी पत्र उनके चरित्र-चित्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कई बार ये पत्र कई-कई पृष्ठों के भी होते हैं। किंतु नाटककार के पास यह सुविधा नहीं होती। कभी-कभी किसी विशेष सूचना के लिए या कथा विकास में आकस्मिक मोड़ लाने के लिए यदि वह पत्र का इस्तेमाल करता भी है जैसे ऐतिहासिक नाटकों में एक राजा से दूसरे राजा के पास दूत द्वारा पत्र भेजते हैं और इन पत्रों को मंच पर पढ़ा भी जाता है, तो यह पत्र बहुत ही संक्षिप्त होना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

नीचे दिये गये वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) i) नाटक और रंगमंच में .... होता है।

ii) नाटक का स्वरूप हर युग में .... रहता है।

iii) नाटक और उपन्यास दोनों ही .... साहित्य की विधाएँ हैं।

ख) i) उपन्यास में आकार की कोई सीमा नहीं होती किंतु नाटक में यह सीमा होती है। क्यों?

....

....

....

....

ii) नाटक और उपन्यास के संवादों में क्या अंतर होता है?

....

....

....

....

26.5 नाटक के तत्व

नाट्य रचना अथवा किसी भी साहित्यिक कृति को किन्हीं निश्चित तत्वों के भीतर "फिट" करके मूल्यांकित करना बहुत आसान और सदैव उपयुक्त नहीं होता। कारण, प्रतिभावान साहित्यकार नियमों में पूरी तरह बँध कर नहीं चलता, और फिर समय तथा स्थितियों के बदलाव के साथ-साथ रचना दृष्टि में भी बदलाव आते रहते है। रचनाकार नए से नए प्रयोग करते रहते हैं। फिर भी विविध साहित्यिक विधाओं की कुछ संरचनात्मक विशिष्टताएँ होती हैं जो एक दूसरे से अलग पहचान बनाती है तथा प्रत्येक विधा को उसका अपना निश्चित स्वरूप प्रदान करती है। कृति के विश्लेषण विवेचन के सामान्य मानदंड निर्धारित करने में इन संरचनागत विशिष्टताओं को आधार बनाया जाता है। रचनाकार द्वारा किए गए नए प्रयोगों को भी इन संरचनागत विशिष्टताओं के भीतर और बाहर जाँचा-परखा जाता है।

हम बता चुके हैं कि नाटक खेलने की परंपरा दुनिया भर में प्राचीन काल से चली आ रही है। यही कारण है कि अधिकांश देशों के प्राचीन साहित्य में नाट्य लेखन प्रचुर मात्रा में हुआ तथा नाट्य सिद्धांतों की चर्चा काव्य सिद्धांतों की चर्चा के साथ-साथ ही शुरू हो गई। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि नाटक का स्वरूप परंपरा और प्रयोग के आधार पर निर्मित और रूपांतरित होता रहता। हिंदी नाटक की स्थिति भी ऐसी ही है इसके स्वरूप निर्माण में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य दृष्टियों का योग रहा है। अतः भारतीय और पाश्चात्य नाट्य तत्वों की संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। भारतीय नाट्य सिद्धांत संस्कृत के नाटकों के आधार पर निर्मित हुए थे तथा पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों का आधार यूनानी नाटक थे।

भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन अनिवार्य तत्व माने हैं — वस्तु, नेता और रस। वस्तु का अर्थ है कथावस्तु, नेता यानी पात्र और रस यानी रचना से उत्पन्न होने वाले प्रभाव या उसकी अनुभूति। अर्थात् रचनाकार द्वारा अनुभूत सत्य की दर्शक अथवा पाठक को प्रतीति अथवा अनुभूति।

पाश्चात्य आचार्यों ने नाटक के छः तत्व माने हैं : कथावस्तु, पात्र, देशकाल, संवाद, शैली और उद्देश्य। इसके अलावा वहाँ संकलन-त्रय यानी नाटक में स्थान, समय और काल की एकता पर भी जोर दिया गया है।

पश्चिम में सुखांत और दुखांत दो तरह के नाटकों का प्रचलन रहा है जो क्रमशः कामदी (Comedy) और त्रासदी (Tragedy) कहलाते हैं। किंतु संस्कृत नाटक में त्रासदी को सैद्धांतिक स्तर पर स्वीकार नहीं किया गया था। नायक का पतन अथवा उसकी मृत्यु दिखाना भारतीय नाट्य दृष्टि के अनुकूल न था। जबकि पश्चिम में त्रासदी को कामदी के श्रेष्ठ और बृहत्तर रचना स्वीकार किया गया और उसके माध्यम से मानवीय भावों के परिष्कार की संकल्पना की गई।

रचना-दृष्टि के इस भेद के अनुरूप ही पूर्वी और पश्चिमी नाट्य तत्वों में अलग-अलग तरह की विशिष्टताएँ विकसित हुईं। पश्चिमी नाटक में द्वंद्व अथवा संघर्ष को प्रधानता दी गई और भारतीय नाटक में रसानुभूति को।

हिंदी नाटककारों ने न तो भारतीय नाट्य सिद्धांतों को पूर्णतया स्वीकार किया है, न पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों का अंधानुकरण ही किया है। दोनों ही दृष्टियों को अपनाते हुए उन्होंने स्थिति और प्रसंग के अनुकूल अपने नाटकों की रचना की है। इस तरह नाटक के तत्वों के भीतर दोनों नाट्य दृष्टियों का समावेश हुआ है। साथ ही परंपरा से छूट लेकर नए प्रयोग भी किये गये हैं।

26.5.1 कथावस्तु

कथानक का अर्थ है घटनाओं या कार्य-व्यापार की योजना। लेखक अपनी कथावस्तु का चयन जीवन के किसी भी क्षेत्र से कर सकता है। समाज, राजनीति, इतिहास, मनोविज्ञान आदि किसी को भी वह अपने नाटक का विषय बना सकता है। हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक में जीवन की क्रियाशील सजीवता होती है। जीवन की घटनाएँ उसमें दृश्य रूप में प्रस्तुत होती हैं। ऐसी स्थिति में नाटककार जिस कथ्य को चुनता है उसका संपूर्ण घटना व्यापार दृश्य रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। नाटक और उपन्यास की तुलना के दौरान हमने बताया था कि उपन्यास का पाठक उसे कई बार बीच में से छोड़-छोड़ कर भी पढ़ सकता है किंतु नाटक एक बार में ही देखा जाता है। अतः उसका समय दो-तीन घंटे से अधिक नहीं होना चाहिए। ऐसी स्थिति में नाटककार अपने कथ्य का कुछ अंश दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है तथा कुछ की सूचना देता है। जो स्थितियाँ प्रमुखतया दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हो सकती हैं उन्हें दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। शेष आवश्यक स्थितियों और कार्यकलापों की सूचना पात्रों द्वारा प्रस्तुत कराता है इस तरह कथानक में कार्य-व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता है, दृश्य घटनाओं के माध्यम से और सूच्य घटनाओं के माध्यम से। पिछले खंड में आपने "संस्कार और भावना" एकांकी पढ़ा था। इसमें अविनाश से संबंधित कथानक दो प्रकार का है — आधिकारिक और प्रासंगिक। आधिकारिक कथानक का संबंध नाटक के मुख्य कार्य या उद्देश्य से होता है। यह कथा नाटक के प्रधान पात्रों से संबंधित होती है। प्रासंगिक कथा का अर्थ है प्रसंगवश आयी हुई या गौण कथा। इस कथा का सीधा संबंध नायक अथवा नायिका से न होकर अन्य पात्रों से होता है किंतु प्रासंगिक कथा नाटक की मूल कथा यानी आधिकारिक कथा से सर्वथा स्वतंत्र नहीं होती बल्कि यह मूलकथा की गति को आगे बढ़ाने में सहायक होती है। अगली इकाई में आप जयशंकर 'प्रसाद' का नाटक "ध्रुवस्वामिनी" पढ़ेंगे। ध्रुवस्वामिनी में कोमा और शकराज की कथा प्रासंगिक कथा के रूप में प्रस्तुत की गयी है।

कथावस्तु में कार्य-व्यापार के समुचित नियोजन के लिए प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने कार्यावस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों और संधियों की व्यवस्था की थी। इस तरह फल की प्राप्ति की इच्छा से किए गए कार्य की पाँच अवस्थाएं मानी गईं (आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा नियताप्ति और फलागम) कथानक को पाँच भागों में विभक्त किया गया। बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक अर्थ प्रकृतियाँ वस्तुतः नाटक के कार्य-व्यापार की सिद्धि के उपायों या साधनों से संबंध रखती हैं।

पश्चिमी नाटक में भी कार्य की छः अवस्थाएँ मानी गई हैं जो कथावस्तु के

1) प्रमुख कार्य व्यापार को प्रकट करके (Exposition)
2) संघर्ष का सूत्रपात करती हुई (Rise and development of conflict)
3) कार्य को चरम सीमा की ओर बढ़ाती हैं (Crisis—falling of action)
4) चरम सीमा पर पहुंच कर संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और संघर्ष के दो पक्षों में से एक के ह्रास की शुरुआत होने लगती है और दूसरे की सफलता की संभावना बढ़ने लगती है।
5) यह अवस्था भयंकर अंत (Catastrophe) के रूप में समाप्त होती है।

कथावस्तु में कार्य-व्यापार और घटनाओं के नियोजन की यह व्यवस्था वस्तुतः समग्र नाट्य प्रभाव को दृष्टि में रखकर की गई थी। आधुनिक नाटककार ने इसे स्वीकार नहीं किया है। फिर भी वह अपने कथा सूत्रों को इस ढंग से अवश्य पिरोता है कि समग्रता में प्रभाव की अन्विति उत्पन्न हो सके। इसलिए आज नाटक में कार्य-व्यापार की तीन स्थितियाँ महत्वपूर्ण होती हैं: 1) आरंभ 2) विकास और 3) परिणति अथवा अन्त।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर चार-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

क) कथावस्तु के दो प्रकार कौन से हैं? उनसे आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

ख) नाटक में कार्य-व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता है। दोनों तरह की घटनाओं के बारे में बताइए।

....

....

....

....

ग) कथा विकास की तीन स्थितियाँ कौन सी हैं?

....

....

....

....

26.5.2 पात्र

पात्र नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। नाटक के अन्य सभी तत्व पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते हैं। उनके आचार-व्यवहार और वार्तालाप से नाटक की कथावस्तु निर्मित होती है। नाटक का प्रधान पुरुष पात्र नायक कहलाता है और प्रधान स्त्री पात्र नायिका। नायक और नायिका के अतिरिक्त नाटक में मुख्य पात्र भी होते हैं जिनमें से कुछ नायक के सहयोगी पात्र होते हैं और कुछ प्रतिकूल अथवा विरोधी पात्र। प्रमुख विरोधी पात्र खलनायक या प्रतिनायक कहलाता है। इन पात्रों के अलावा एक और विशिष्ट पात्र नाटकों में होता है जिसे विदूषक कहते हैं। विदूषक भारतीय तथा पश्चिमी दोनों ही नाट्य परंपराओं में मौजूद है। अंग्रेजी में इसे Clown कहा जाता है। शेक्सपियर के नाटकों में इसे Fool भी कहा गया है। विदूषक हास्य व्यंग्य की सृष्टि के अलावा समग्र नाट्य व्यापार में प्रमुख भूमिका निभाता है। अपने बेडोल रूपाकार से और हंसोड़ स्वभाव से दर्शकों का मनोरंजन करने के अलावा वह नायक का मित्र और सहयोगी होता है। उसकी भूलों पर व्यंग्य करता है और जरूरत के वक्त उसकी मदद करता है। आधुनिक नाटकों में विदूषक को एक अलग पात्र के रूप में प्रस्तुत करना जरूरी नहीं रह गया है। प्रधान या गौण पात्रों में से किसी से विदूषक का कार्य पूरा करा लिया जाता है। बहुत से नाटकों में विदूषक की भूमिका होती ही नहीं है।

पात्रों की संख्या के संबंध में नाटक में कोई निश्चित नियम नहीं होता। कथावस्तु की आवश्यकताओं के अनुरूप पात्रों की योजना की जाती है। इतना ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए कि उतने ही पात्र रखे जाएँ जितने कार्य-व्यापार के विकास के

लिए जरूरी हों। कोई भी पात्र फालतू प्रतीत नहीं होना चाहिए। इसी तरह पात्रों की संख्या इतनी अधिक न हो जाए कि नाटक के समग्र प्रभाव में विघ्न पड़े अथवा रंगमंच पर पात्रों की भीड़-भाड़ दिखाई दे। घटनाओं की जरूरत के हिसाब से ही पात्र होने चाहिएँ। इसके लिए यह आवश्यक है कि पात्रों के कार्य से कथानक विकसित हो और वे कथानक के अनिवार्य अंग हों।

नाट्य शास्त्र में नायक के विशिष्ट उदात्त गुणों की चर्चा की गई है। पश्चिम की प्राचीन नाट्य परंपरा भी नायक में श्रेष्ठ गुणों की अपेक्षा करती है। किंतु आधुनिक नाटक इस तरह की बंदिश को स्वीकार नहीं करता। महान नायक की परिकल्पना को भटकते हुए सामान्य मानवीय दुर्बलताओं का समावेश नायक में कराया गया है। यथार्थवादी नाट्य दृष्टि तथा विभिन्न सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और मानवतावादी विचारधाराओं के प्रभावस्वरूप आज नायक का स्थान प्रधान पात्र ने ले लिया है।

26.5.3 परिवेश

परिवेश नाटकों का महत्वपूर्ण तत्व है। नाटक में प्रस्तुत घटनाएं वर्णित न होकर प्रत्यक्ष रूप में सामने आती हैं। कथानक चाहे प्राचीन काल से संबद्ध हो या समसामयिक जीवन से नाटक में वह वर्तमान के रूप में ही दृश्य और मूर्त होता है। अतः जिस समय, समाज और परिस्थिति को लिया गया हो वह हमारे सामने साकार हो उठनी चाहिए। उस काल-खंड विशेष का समग्र परिवेश, उसकी सभ्यता-संस्कृति, आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन और वैचारिक सरोकार की जीवंत अनुभूति नाट्य प्रस्तुति के माध्यम से होनी चाहिए। साथ ही उनकी प्रासंगिकता और विश्वसनीयता भी स्थापित होनी चाहिए। परिवेश की सृष्टि नाटक के कथ्य, घटनाओं, पात्रों के रूप, वेश विन्यास, भाषा, संवाद, शैली, मंच-सज्जा आदि सभी के द्वारा की जाती है और थोड़ी देर के लिए हम उस नाटक के समय, समाज और स्थिति में प्रवेश कर लेते हैं। देश काल या परिवेश की सृष्टि जितनी उपयुक्त होगी नाटक उतना ही सार्थक होगा। आधार पाठ्यक्रम में आपने जयशंकर प्रसाद का नाटक "चंद्रगुप्त" पढ़ा है। इस खंड में आप उनका नाटक "ध्रुवस्वामिनी" पढ़ेंगे। आप गौर करेंगे कि इन नाटकों का समस्त वातावरण मौर्य तथा गुप्त कालीन भारतीय समाज को प्रस्तुत करता है। साथ ही भारतीय मुक्ति संग्राम के सांस्कृतिक-सामाजिक नवजागरण के परिवेश की भी सृष्टि करता है।

26.5.4 भाषा, शैली और संवाद

भाषा

नाटक में भाषा को बड़ा ही गंभीर दायित्व वहन करना पड़ता है। दृश्य विधा के कारण नाटक में हमारा भाषा से जीवित साक्षात्कार होता है। भाषा के लिखित रूप के बजाए यहाँ उसके मौखिक रूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लिखित भाषा और मौखिक भाषा के स्वरूप और प्रभाव में अंतर होता है। किंतु नाटक में दोनों का समन्वय अपेक्षित होता है। जो बात पात्र कहे वह दर्शक को तुरंत संप्रेषणीय हो, इसलिए उसमें स्पष्टता नितांत अपेक्षित है। इसके साथ ही उसमें सार्थक सारगर्भितता भी हो जो दर्शकों को प्रभावित कर सके। यानी किसी भी गंभीर या महत्वपूर्ण बात को पूरी सहजता और स्पष्टता से इस प्रकार कहा जाए कि उसकी बोलचाल की लय समाप्त न हो। दूसरी ओर भाषा से एक अन्य महत्वपूर्ण अपेक्षा और की जाती कि वह पात्रानुकूल तथा परिवेश के उपयुक्त हो। यानी पात्रों के गुण, स्वभाव, शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक हैसियत, मानसिक दशा के अनुकूल हो तथा जिस समय और समाज के वे पात्र हों उस समय और समाज के अनुरूप हो। पिछले खंड में आपने कई एकांकी पढ़े हैं। इनमें "कौमुदी महोत्सव" और "जोंक" की भाषा की तुलना से आप यह बात अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

शैली

किसी भी कृति में कथ्य को प्रस्तुत करने का ढंग शैली कहलाता है। शैली नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है। कोई भी बात अपने आप में जितनी महत्वपूर्ण होती है उतना ही उसे प्रस्तुत करने का ढंग भी महत्वपूर्ण होता है। शैली में दो चीजों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है: लेखक का अपना व्यक्तित्व और उसके द्वारा चुना गया विषय। विषय के अनुरूप शैली गंभीर विवेचन युक्त, विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक या व्यंग्यात्मक होती है। शैली के कई भेद होते हैं। उदाहरण के लिए प्रतीकात्मक शैली, हास्यपरक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, विचारपरक शैली, मनोविश्लेषणपरक शैली, भावनात्मक शैली प्रसन्न शैली, पांडित्यपूर्ण शैली, तर्कपूर्ण शैली, खंडन-मंडन की शैली, बोलचाल की शैली।

यह आवश्यक नहीं कि लेखक एक ही प्रकार की शैली अपनाए। एक साथ कई तरह की शैलियों का प्रयोग भी किया जा सकता है या एक ही कृति में स्थान-स्थान पर अलग-अलग शैलियाँ भी प्रयुक्त हो सकती हैं। आपको याद होगा कि "गिरती दीवारें" एकांकी में उदयशंकर भट्ट ने प्रतीकात्मक, विवरणात्मक और व्यंग्यात्मक तीनों शैलियों का एक साथ प्रयोग किया है। इसी तरह 'प्रसाद' जी के "चंद्रगुप्त" नाटक में तर्क-वितर्क पूर्ण शैली, व्यंग्यपूर्ण शैली, विश्लेषणात्मक शैली और भावनात्मक शैली साथ-साथ चलती रही हैं।

संवाद

संवाद अथवा कथोपकथन को नाटक का प्राण कहा जाता है। उसके बिना नाटक हो ही नहीं सकता। हमारे जीवन में वाणी का जो महत्व है वही नाटक में संवादों का है। अन्य साहित्यिक विधाओं में लेखक अपनी ओर से भी कुछ कहता है किंतु नाटक का लेखक सब कुछ पात्रों के माध्यम से ही कहलाता है। पात्रों का व्यवहार और वाणी ही लेखक के कथ्य को दर्शक तक पहुंचाती है। पात्रों के चरित्र के उद्घाटन में संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी पात्र के वचनों से उसके अपने बारे में परिचय मिलता है। साथ ही जो कुछ वह अन्य पात्रों के बारे में कहता है, उससे अन्य पात्रों के बारे

में जानकारी मिलती है। यह जानकारी सदैव ही सीधी और स्पष्ट नहीं होती। लेखक सदैव भाषा की अभिधा शक्ति से ही काम नहीं लेता वह व्यंजनात्मक और लाक्षणिक ढंग से भी बात कहलाता है। "ध्रुवस्वामिनी" का रामगुप्त से निम्नलिखित संवाद देखिए:

"इस प्रथम संभाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज! किंतु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री-संप्रदान से ही बढ़ा है?"

ध्रुवस्वामिनी के ये वाक्य रामगुप्त के चरित्र की कई विशेषताओं को प्रकट करते हैं।

संवाद को नाटक की कसौटी माना जाता है क्योंकि कथ्य की संप्रेषणीयता में संवाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संवाद इतने लंबे नहीं होने चाहिए कि भाषा के मौखिक रूप यानी बोलने की दृष्टि से अस्वाभाविक हो जाएं और दर्शक ऊबने लगे। न ही इतने विचार बोझिल होने चाहिए कि अस्पष्ट हो जाएं उनमें बोलचाल की सहजता अपेक्षित है। इसका यह अर्थ नहीं कि नाटक संवाद केवल रोजमर्रा के साधारण वार्तालाप की तरह ही हों। गौर करने की बात यह है कि दैनिक जीवन में भिन्न-भिन्न स्थितियों और स्तरों पर हमारी बातचीत का स्वरूप और शैली भिन्न-भिन्न होते हैं। परिवार, विद्यालय, कार्यालय, सार्वजनिक स्थल, मित्र मंडली, विचार-गोष्ठी आदि जैसे विभिन्न स्थलों पर हमारी भाषा और वार्तालाप की शैली अलग-अलग होती है। इसी तरह, अध्यापक, डाक्टर, राजनीतिक नेता, संगीतज्ञ, साहित्यकार, न्यायाधीश, दार्शनिक विचारक आदि विभिन्न सामाजिक हैसियतों के लोगों की बातचीत में अपने-अपने ढंग की विशिष्टता होती है यदि नाटककार जीवन के इस वैविध्य को भली-भाँति देखता और अनुभव करता है तो उसके नाटकों और संवाद जीवन स्थितियों के अनुकूल और यथार्थ होंगे।

संवादों का प्रस्तुति पक्ष भी नाटक में बड़ी अहम भूमिका रखता है। लेखक को चुनना होता है कि समग्र कथ्य का कौन सा अंश दृश्य और मौखिक रूप में सर्वाधिक संप्रेषणीय और प्रभावपूर्ण हो सकेगा। संवादों में स्वाभाविकता के साथ-साथ, वाक्चातुर्य (यानी बातचीत की कुशलता) अपेक्षित है। रंगमंच पर नाटक की सफलता या असफलता का आधार काफी हद तक उसके संवाद होते हैं।

संवादों के प्रकार

प्राचीन भारतीय नाटकों में तीन प्रकार के संवादों की चर्चा की गई है (1) सर्व श्राव्य (2) नियत श्राव्य (3) अश्राव्य। संवादों की ये तीन श्रेणियाँ मंच पर उपस्थित अन्य पात्रों के सुनने की दृष्टि से निर्धारित की गई है। दर्शक इन तीनों तरह के संवाद सुनते हैं। सर्व श्राव्य मंच पर उपस्थित सभी पात्रों के सुनने के लिए होता है। नियत श्राव्य कुछ पात्रों के सुनने के लिए और अश्राव्य मंच पर खड़े किसी अन्य पात्र के सुनने के लिए नहीं होता केवल दर्शकों के सुनने के लिए होता है। इसे "स्वगत भाषण" भी कहा जाता है। इसका प्रचलन भारतीय नाटक और पश्चिमी नाटक दोनों में ही खूब रहा है। आजकल स्वगत भाषण शैली प्रचलित है। हालांकि इसे मनोविज्ञान की दृष्टि से ज्यादा प्रभावपूर्ण नहीं माना जाता।

26.5.5 अभिनेयता और मंचीयता

हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है इसलिए मंचीयता या रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत होने की क्षमता नाटक का अनिवार्य अंग है। अन्य साहित्यिक विधाओं की रचना लिख दिए जाने पर पूर्ण हो जाती है किंतु नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत होकर पूर्ण होता है। इस तरह नाटक और रंगमंच में घनिष्ठ संबंध होता है। जो कृति रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत नहीं की जा सकती अथवा जो दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण नहीं है उसे नाटक नहीं कहा जा सकता भले ही वह संवादों के रूप में क्यों न लिखी गई हो। इसलिए नाटक में रंगमंचीय संभावनाएँ होनी चाहिए। यद्यपि रंग-प्रस्तुति एक सामूहिक कला है किंतु उन सामूहिक कला के लिए मूल आधार नाटककार द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। अतः नाट्य कृति ऐसी होनी चाहिए कि दृश्य रूप में प्रस्तुत और प्रभावी हो सके। उसके पात्रों की योजना इस प्रकार हो कि अभिनेता उनका भली-भाँति अभिनय कर सके। अभिनय चार तरह का होता है :

1) आंगिक — शारीरिक चेष्टाओं द्वारा
2) वाचिक — वाणी द्वारा यानी संवाद बोलकर
3) सात्विक — विविध भावों की हाव-भाव द्वारा अभिव्यक्ति से
4) आहार्य — वेशभूषा, शृंगार और साज-सज्जा द्वारा

नाटक की स्थितियाँ और संवाद ऐसे होने चाहिए कि अभिनेता उन्हें सहज ही आत्मसात् कर सकें और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत कर सकें। संवाद बोल देना ही अभिनय की दृष्टि से पर्याप्त नहीं होता। उनके अनुकूल शारीरिक मानसिक चेष्टाएँ और भावों का अभिनय अपेक्षित होता है। इसके लिए लेखक द्वारा दिए गए रंग-निर्देश सहायक होते हैं। रंग-निर्देश ऐसे हों कि अभिनय को अधिक सजीव बनाने में निर्देशक तथा रंग-कर्मियों के सहायक हो सकें। दृश्य परिवर्तन इस तरह न हो कि मंच पर साज-सज्जा को बार-बार बदलने की जरूरत पड़े। विभिन्न सुदूर स्थलों को एक के बाद एक करके मंच पर प्रस्तुत करने से गड़बड़ी पैदा हो सकती है। दृश्य संख्या भी बहुत अधिक न हो। अंक विभाजन और दृश्य विभाजन समुचित हो। आजकल बहुत से नाटककार बार-बार दृश्य परिवर्तन उपयुक्त नहीं समझते और केवल अंक परिवर्तन ही प्रस्तुत करते हैं। संकलन त्रय — यानी स्थान, काल और कार्य की एकता की योजना भी मंचन की सुविधा की दृष्टि से ही अपेक्षित मानी गई है। यद्यपि नाटककारों ने इस बंधन को सदैव स्वीकार नहीं किया। पश्चिम की इस संकल्पना को स्वयं शेक्सपियर ने ही नहीं माना।

26.5.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य

किसी भी रचना के पीछे रचनाकार की रचना-दृष्टि निहित होती है। रचना जिस उद्देश्य अथवा उद्देश्यों को लेकर की जाती है अथवा रचनाकार उसके माध्यम से जो कुछ कहना चाहता है वही उस रचना का प्रतिपाद्य होता है। प्रतिपाद्य के आधार पर ही कृति का महत्व अथवा उसकी मूल्यवत्ता निर्धारित होती है। उसमें निहित जीवनानुभव, मानवीय मूल्य और संवेदन ही उसकी प्रासंगिकता निर्धारित करते हैं। संस्कृत नाटक में रस को इसीलिए वस्तु और नेता से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। रस की प्रक्रिया में रचनाकार द्वारा अनुभव किए गए सत्य को नाट्य रचना द्वारा पाठक या दर्शक तक संप्रेषित किया जाता है। लेखक की अनुभूति से पाठक अनुभूति के तदाकार होने की इस प्रक्रिया को ही रसानुभूति कहा जाता है।

पश्चिम के नाट्य सिद्धांतों में करुणा और त्रास के माध्यम से विरेचन या भाव-परिष्कार करना त्रासदी का उद्देश्य माना गया था। ये दोनों दृष्टियाँ वस्तुतः नाटक के उद्देश्य को केंद्र में रखकर चलती हैं।

आधुनिक नाटककारों ने सिद्धांतों के जटिल बंधन को अस्वीकार कर दिया है किंतु किसी नाटक में जो अनुभूति अथवा जीवन सत्य प्रतिपादित किया गया है वह समाज के लिए किस दृष्टि से प्रासंगिक और उपयोगी है? इस प्रश्न का उत्तर ही उस नाटक के महत्व को निर्धारित करता है। उसमें प्रस्तुत भाव बोध, मन स्थितियाँ परिस्थितियाँ और वास्तविकताएँ जीवन के किन्हीं महत्वपूर्ण प्रश्नों या समस्याओं को जिस हद तक उजागर करती है, उन पर सोचने के लिए मजबूर करती है या मानव मूल्यों को उद्घाटित और स्थापित करती हैं उस हद तक ही वह नाटक समाज के लिए सार्थक और प्रासंगिक होगा।

नाटक के विभिन्न पात्र अपनी-अपनी स्थितियों में जो कुछ कहते और करते हैं उसके भीतर निहित आशय को पकड़ने पर ही इस लेखकीय दृष्टि का पता लगा सकते हैं। कभी-कभी तो लेखक स्वयं समाधान प्रस्तुत करके अपने उद्देश्य को सीधे स्पष्ट कर देता है किंतु कभी-कभी वह केवल समस्या को उभार कर छोड़ देता है। दर्शक के मन में उस समस्या के प्रति बेचैनी या आकुलता मात्र उत्पन्न कर देता है और दर्शक से अपेक्षा करता है कि जीवन में उठने वाले प्रश्नों या समस्याओं का समाधान वह स्वयं ढूँढे। "रीढ़ की हड्डी" एकांकी में जगदीशचंद्र माथुर ने ऐसा ही किया है। मराठी के प्रसिद्ध नाटककार विजय तेंदुलकर के नाटक भी इसी प्रकार के हैं।

ऐतिहासिक नाटकों में प्रतिपाद्य और भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। इतिहास की घटना की पुनरावृत्ति मात्र लेखक का उद्देश्य नहीं होता। उसके माध्यम से लेखक वर्तमान के किसी प्रसंग, समस्या या परिस्थिति को उजागर करता है। उदाहरण के लिए चंद्रगुप्त नाटक में प्रसादजी ने राष्ट्रोद्धार के प्रश्न को उठाया है। यूनानी आक्रमण से देश की रक्षा और नंद के अत्याचार पूर्ण शासन में शोषित जनता के उद्धार के प्रश्न ब्रिटिश शासन और औपनिवेशिक शोषण से भारतीय जनता की मुक्ति की समस्या के संदर्भ में पर्याप्त प्रासंगिक और समसामयिक हैं। अतः इतिहास की घटनाओं की मूल्यवत्ता उसके वर्तमान संदर्भों के कारण है।

किसी नाटक में प्रतिपाद्य को समझने और उसका मूल्यांकन करने के लिए नाटक को ध्यान से पढ़ना या मंच पर उसकी प्रस्तुति देखना आवश्यक है।

बोध प्रश्न 4

क) निम्नलिखित के बारे में अधिक से अधिक आठ-दस शब्दों में बताइए।

i) नायक

ii) नायिका

iii) खलनायक

iv) विदूषक

....

....

....

....

ख) परिवेश की सृष्टि किस-किस माध्यम से की जाती है?

....

....

....

ग) नाटक की भाषा अन्य साहित्य माध्यमों की भाषा से किस प्रकार विशिष्ट होती है?

....

....

....

घ) निम्नलिखित से आप क्या समझते हैं? लगभग तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

i) पात्र और परिस्थिति के अनुकूल संवाद

ii) स्वगत कथन

....

....

....

....

....

....

ङ) अभिनय के चार प्रकार कौन से हैं?

....

....

....

....

26.6 नाटक के प्रकार

आपने कुछ नाटक अवश्य देखे होंगे। यह महसूस किया होगा कि नाटक कई तरह के होते हैं। कुछ नाटकों को आप किसी थिएटर अथवा रंगमंच पर प्रस्तुत होते देखते हैं। साथ ही कुछ नाटक आपने ऐसे भी देखे होंगे जिनके अभिनय के लिए किसी थिएटर या रंगशाला की जरूरत नहीं है। आपने रामलीला या रासलीला देखी होगी, नौटंकी, बिदेसिया या तमाशा आदि देखे होंगे या नुक्कड़ नाटक देखे होंगे। इनकी प्रस्तुति किसी भी खुली जगह में हो जाती है। जरूरत हो तो कुछ तख्त आदि डाल कर मंच बना लिया जाता है नहीं तो लोग दायरा बना कर खड़े हो जाते हैं या बैठ जाते हैं और अभिनेता बीच में खड़े होकर अभिनय करते हैं। इसके अलावा आपने टेलीविजन पर नाटक देखे होंगे या रेडियो पर नाटक सुने होंगे। इस तरह के नाटकों के कई भेद होते हैं जैसे साहित्यिक नाटक और लोक नाटक। कृति के रूप में प्रस्तुत नाट्य रचनाएँ पहली श्रेणी में आती हैं और जन जीवन में अभिनय की परंपरा के रूप में व्याप्त नाटक जैसे — रामलीला, रासलीला आदि दूसरी श्रेणी में। साहित्यिक नाटक कई प्रकार के होते हैं। वस्तुतः इनके भेदों का निर्धारण कई आधारों पर किया जा सकता है। जैसे,

1) **स्वरूप के आधार पर** — सुखांत नाटक, दुखांत नाटक, दुःख-सुखांत नाटक, प्रहसनपरक नाटक
2) **विषय के आधार पर** — ऐतिहासिक नाटक, पौराणिक नाटक, सामाजिक नाटक, राजनीतिक नाटक, धार्मिक नाटक
3) **शैली के आधार पर** — हास्यपरक नाटक, व्यंग्यपरक नाटक, प्रतीकात्मक नाटक, मनोविश्लेषणपरक नाटक
4) **अंकों के आधार पर** — एकांकी नाटक, अनेकांकी नाटक (जिसे वस्तुतः "नाटक" ही कहा जाता है)
5) **पात्रों के आधार पर** — एक पात्रीय नाटक, बहु पात्रीय नाटक
6) **गद्य-पद्य के आधार पर** — गद्य नाटक, पद्य नाटक, गीति नाटक
7) **प्रयोगों के आधार पर** — समस्या नाटक, नुक्कड़ नाटक, एब्सर्ड नाटक
8) **प्रस्तुति माध्यम के आधार पर** — रंगमंचीय नाटक, रेडियो नाटक, टेलीविजन नाटक

नाटकों के ये प्रकार उनकी विशिष्टताओं को स्पष्ट करने के लिए निर्धारित किए गए हैं। अतः यह नहीं समझना चाहिए कि कोई नाटक उपर्युक्त में से किसी एक ही प्रकार का हो सकता है। किसी भी नाटक में विभिन्न दृष्टियों से कई तरह की विशिष्टताएँ होती हैं, जैसे कोई नाटक राजनीतिक होने के साथ-साथ प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक भी हो सकता है। उसे समस्या नाटक के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है और नुक्कड़ के रूप में भी।

26.7 हिंदी नाटक का विकास

हिन्दी साहित्य का इतिहास यद्यपि एक हजार वर्ष से अधिक पुराना है किंतु अठाहरवीं शताब्दी तक यहाँ काव्य रचना की ही प्रधानता रही। ब्रजभाषा में लिखित थोड़े बहुत पद्य नाटक मिलते हैं किंतु रंगमंच की दृष्टि से इन्हें नाममात्र का ही नाटक

कहा जा सकता है। कहना न होगा कि हिंदी में विधिवत् नाट्य लेखन उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही शुरू हुआ। हिंदी नाटक के विकास को हम निम्नलिखित ढंग से कालक्रमानुसार विभाजित कर सकते हैं:

i) भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक
ii) प्रसाद युगीन हिंदी नाटक
iii) प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

26.7.1 भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक

हिंदी नाटक की सशक्त परंपरा भारतेंदु युग में शुरू हुई। इस काल के सभी प्रतिभासंपन्न रचनाकारों ने गद्य की विविध विधाओं में योगदान दिया किंतु केंद्रीय विधा नाटक ही रही। प्राचीन संस्कृत, बंगला, मराठी, अंग्रेजी नाटकों से प्रभाव ग्रहण करते हुए नाटक का नया ढाँचा निर्मित हुआ। ब्रजभाषा पद्य की रूढ़ियों से मुक्ति पाकर खड़ी बोली गद्य में नाट्य लेखन की शुरुआत हुई। मौलिक नाट्य लेखन के साथ-साथ संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला में प्रचुर मात्रा में अनुवाद हुआ। भारतेंदु न केवल आधुनिक हिंदी नाटक के जनक हैं बल्कि हिंदी नाट्य परंपरा में जागरण सुधार युग की संपूर्ण चेतना को प्रतिष्ठित करने वाले अग्रदूत भी हैं। भारतेंदु से पहले महाराज विश्वनाथ सिंह का "आनंद रघुनंदन" और गोपाल चंद्र गिरिधरदास का "नहुष" नाटक मिलते हैं किंतु ये दोनों ही ब्रजभाषा में लिखित हैं और नाटयकला की कसौटी पर भी खरे नहीं उतरते। भारतेंदु ने अपनी नवजागरणपरक चेतना तथा दृष्टि की आधुनिकता से नाट्यकला को जनप्रियता तथा कलात्मकता प्रदान की। उन्होंने मौलिक तथा अनूदित दोनों ही तरह के नाटक हिंदी को दिये। उनके मौलिक नाटकों में "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति", "विषस्य विषमौषधम्", "चंद्रावली", "भारत दुर्दशा", "नीलदेवी", "सती प्रताप", "अंधेर नगरी", तथा संस्कृत से अनुवादों में "रत्नावली", "पाखंड विडंबन", "मुद्राक्षस", "धनंजय विजय", "कर्पूर मंजरी" बंगला से अनुवादों में "भारत जननी", "विद्या सुंदर", "सत्य हरिश्चंद्र" उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी से अनुवादों में शेक्सपियर के "मर्चेंट ऑफ वेनिस" का "दुर्लभ बंधु" नाम से अनुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

नाटक के माध्यम से भारतेंदु ने अपने समय की समस्याओं को जन सामान्य के सामने रखा। समाज में व्याप्त बुराइयों, अधिकारी वर्ग के शासन और शासकीय अत्याचार पर व्यंग्य करते हुये उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में नाटक और रंगमंच की भूमिका का बड़ा ही सार्थक उपयोग किया। वे रंगमंच की प्रभाव शक्ति को पहचानते थे। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने अपने समय और समाज की अनेक समस्याओं को जाँचा-परखा तथा जन सामान्य को राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख किया।

भारतेंदु के नाटकों की प्रमुख विशेषता है प्राचीन और नवीन का समन्वय। उनके नाटक संस्कृत नाट्य शैली से काफी प्रभावित हैं किन्तु पश्चिमी नाट्य शैली को भी उन्होंने दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। आवश्यकतानुसार दोनों को अपनाया है। उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और श्रृंगारपरक नाटकों की रचना की है। वस्तु विन्यास में अर्थ, प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और संधियों के बंधन में बंध कर नहीं चले हैं। पात्र सृष्टि में उन्होंने भारतीय आदर्शवाद और पश्चिमी यथार्थवाद दोनों का आश्रय लिया है। पात्र चरित्र विकास में उतार-चढ़ाव नहीं है। फिर भी किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र अपने आप में बड़े यथार्थ और जीवंत हैं। जैसे, उनके ब्राह्मण पात्र समाज को रूढ़ियों में जकड़ते हैं और अपने पेट का पालन ही सर्वोपरि समझते हैं। ऐसे पात्रों के द्वारा लेखक ने व्यंग्य की सृष्टि की है। " अंधेर नगरी" का जात बेचनें वाला ब्राह्मण इसका उदाहरण है। भारतेंदु का महत्व इस बात में है कि उहोंने विभिन्न वर्गो, व्यवसायों और जातियों के लोगों को उनकी प्रधान विशेषताओं के साथ पहली बार रंगमंच पर एक साथ प्रस्तुत किया है। उनके संवाद गद्य-पद्य दोनों में हैं। भाषा प्रयोग पात्रानुसार है। कविताओं और गीतों का खूब प्रयोग किया गया है।

भारतेंदु के लेखन ने उनके समसामयिक रचनाकारों को प्रभावित किया। पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमधन, शीतला प्रसाद त्रिपाठी, बालकृष्ण भट्ट आदि ने भारतेंदु का अनुसरण किया और नाटक लेखन तथा प्रस्तुतिकरण की धूम सी मच गई। भारतेंदु ने नाटक लेखन के अलावा नाट्य सिद्धांतों पर भी विचार किया तथा नाट्य मंडली की स्थापना की। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र और प्रेमधन भी अभिनय की व्यवस्था तो करते ही थे स्वयं अभिनय भी करते थे। इस तरह वे तत्कालीन पारसी रंगमंच की कुरीतियों के विरोध में जनरुचि का परिष्कार करने में भरसक संलग्न थे।

भारतेंदु युगीन नाटककार

भारतेंदु ने नाटक के क्षेत्र में जो पथ प्रदर्शन किया उसका सिलसिला जारी रहा। नाट्य दिशाएँ वे ही रहीं जिनकी शुरुआत भारतेंदु ने की थी और इस युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय चेतनापरक और व्यंग्यात्मक नाटकों के अलावा प्रेम प्रधान नाटक भी लिखे गये। इस युग के नाटकों का मूलस्वर नीतिपरक रहा। आगे हम इस युग के प्रमुख नाटककारों और उनके नाटकों के बारे में पढ़ेंगे।

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक तथा प्रहसन लिखे तथा बंगला के दो नाटकों का अनुवाद किया। इनके प्रमुख नाटक हैं — "दमयंती स्वयंवर", "वेणी संहार", "किरातार्जुनीय", "वृहन्नला", "जैसा काम वैसा परिणाम", "नई रोशनी का विष" आदि। अपने नाटकों में भट्टजी ने प्रधानतया संस्कृत नाट्य प्रणाली को अपनाया है। उनके 'प्रहसन' तीखे हैं और सामाजिक कुरीतियों तथा पाखंड पर व्यंग्य करते हैं।

राधाकृष्णदास ने "महाराणा प्रतापसिंह", "महारानी पद्मावती", तथा "दुःखिनी बाला" रूपक नामक नाटकों की रचना की। इनमें पहले दो ऐतिहासिक हैं। तीसरा नाटक दुखांत है। इसमें सामाजिक व्यंग्य को उभारा गया है।

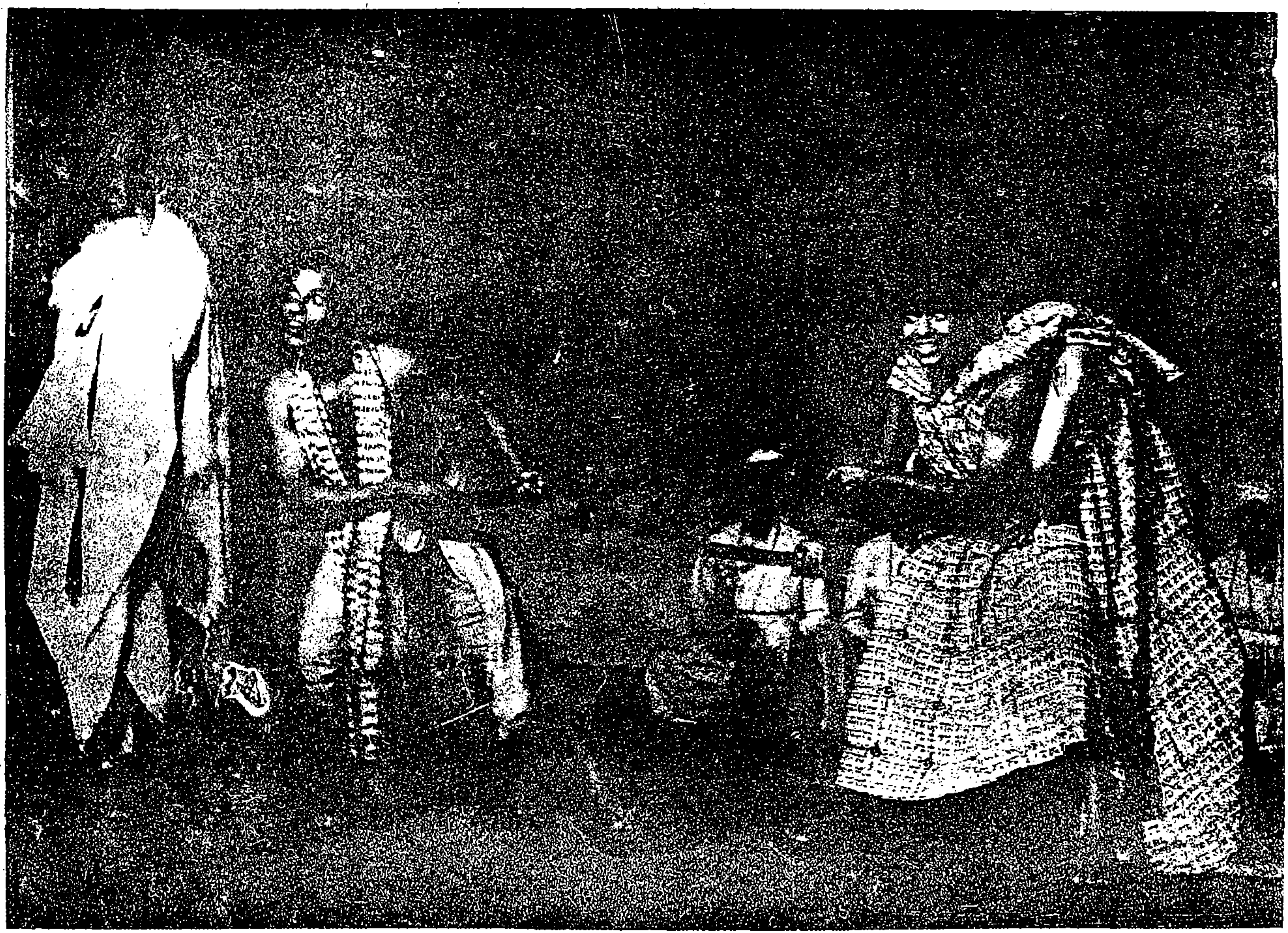

चित्र 4 : अंधेर नगरी का दृश्य

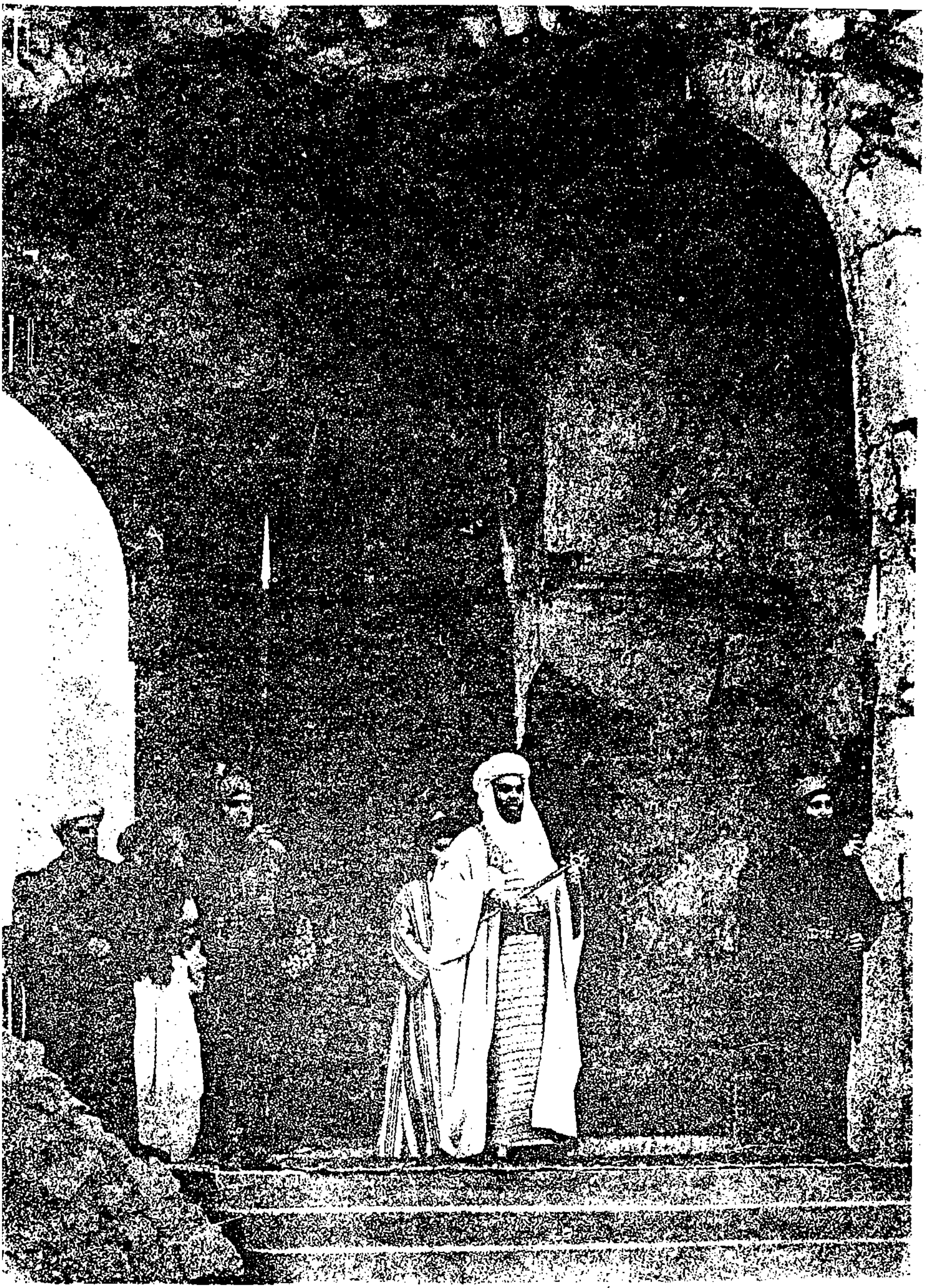

चित्र 5 . तुग़लक का दृश्य

पंडित प्रतापनारायण मिश्र लेखन में भारतेंदु को अपना आदर्श मानते थे और अपनी विनोदप्रियता तथा व्यंग्य-वक्रता के लिए प्रसिद्ध थे। "हमीर हठ", "गौ संकट नाटक", "कलि कौतुक रूपक", "जुआरी खुआरी प्रहसन" आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। लाला श्री निवासदास ने "रणधीर और प्रेम मोहिनी" नामक दुखांत नाटक की रचना की। यह उस समय काफी लोकप्रिय हुआ और कई बार मंच पर प्रस्तुत किया गया। इसके उर्दू और गुजराती अनुवाद भी हुए। उन्होंने "संयोगिता स्वयंवर" — तथा "प्रहलाद चरित्र" नामक पौराणिक नाटक भी लिखे।

काशीनाथ खत्री ने एक अंक के लघु रूपकों की रचना की। इनमें "ग्राम पाठशाला", "निकृष्ट नौकरी", "सिंधु देश की राजकुमारियाँ", "गुन्नौर की रानी" प्रमुख हैं। खत्री जी स्वभाव से सुधारवादी थे। इसलिए उनकी रचनाओं में सुधार की प्रेरणा ही प्रमुख है। इनका "बाल विधवा संताप" नाटक ईश्वरचंद्र विद्यासागर की प्रेरणा से लिखा गया था।

राधाचरण गोस्वामी ने "अमरसिंह राठौर", "श्रीदामा", "तन मन धन गोसाई के अर्पण" और "बूढ़े मुँह मुहासे" नाटकों की रचना की। देवकीनंदन खत्री ने "सीताहरण", "रुक्मिणी हरण", "कंस वध", "बाल विवाह", "स्त्री चरित्र" "सैंकड़ों के दस-दस" आदि नाटक लिखे।

यहाँ हमने इस युग के कुछ प्रमुख नाटककारों के कुछ तत्वों का उल्लेख किया है। इनके अलावा भी नाटक लिखे गये। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेंदु युग के सभी लेखकों ने नाटक लिखे। विषय तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से इन नाटकों का उद्देश्य समाज का सुधार और परिष्कार तथा आदर्श की स्थापना था। पौराणिक विषयों तथा राम और कृष्ण की लीलाओं पर लिखे नाटकों का उद्देश्य विस्मृत संस्कृति का स्मरण कराना था। ऐतिहासिक नाटकों का प्रमुख उद्देश्य भारतीय महापुरुषों के विस्मृत प्राय गौरव की याद दिलाकर जन जीवन में आत्म-गौरव की भावना जगाना था। सामाजिक व्यंग्यात्मक नाटकों द्वारा कुरीतियों, पाखंड और भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रयास किया गया। यही कारण है कि अनेक नाटकों में बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह या स्त्रियों की दीन दशा, पर्दा प्रथा आदि के प्रश्न को उठाया गया है देश-दुर्दशा संबंधी नाटकों द्वारा देश के प्रति कर्त्तव्य और राष्ट्रीयता की भावना को जगाने का प्रयास किया गया है। रोमानी प्रेम संबंधी नाटक उपदेश प्रधान होते हुए भी रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृत्ति का ही विस्तार हैं।

इस तरह इन नाटकों के सृजन के पीछे तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का विशेष योग था।

नाटकों के अनुवाद

मौलिक नाटक लेखन के साथ-साथ संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद की जो परंपरा भारतेंदु ने शुरू की थी वह उनके बाद भी लंबे समय तक चलती रही। संस्कृत से "रत्नावली", "प्रबोध चंद्रोदय", "अभिज्ञान शाकुन्तलम्", "मालविकानिमित्र", "मृच्छकटिकम्", "उत्तर रामचरित", "मुद्राराक्षस", "कर्पूर मंजरी" — आदि के अनुवाद हुए।

बंगला से माइकेल मधुसूदन दत्त के "शर्मिष्ठा" और "पद्मावती" का अनुवाद बालकृष्ण भट्ट ने किया। "एई की सभ्यता बोले" का अनुवाद "क्या इसी को सभ्यता कहते हैं" के नाम से ब्रजनाथ ने किया। लक्ष्मीनारायण चक्रवर्ती के नाटक "नवाब सिराजुद्दौला" का अनुवाद शिवनंदन त्रिपाठी ने किया। ब्रहमनंदन सहाय ने "सप्तम प्रतिभा" और "बूढ़ा वर" का अनुवाद किया।

अंग्रेजी से शेक्सपियर के "किंगलियर", "ओथेलो", "मर्चेंट ऑफ वेनिस", "एज यू लाइक इट", "रोमियों एंड ज्यूलियट" के अनुवाद किए गए। जोसोफ एडीसन के "केटो" नाटक का अनुवाद तोताराम ने "केटो वृतांत" नाम से किया।

प्रचुर मात्रा में अनुवादों ने हिंदी नाटक को विषय और शिल्प की विविधता से संपन्न किया। साथ ही बाद के हिंदी नाटककारों पर इन अनुवादों का प्रभाव भी कम नहीं पड़ा है।

26.7.2 'प्रसाद' युगीन हिंदी नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि भारतेंदु के बाद काफी समय तक हिंदी नाटक की दिशा वही रही जो भारतेंदु ने निर्धारित कर दी थी। द्विवेदी युग में नाट्य कर्म की गति बहुत मंद रही। जयशंकर 'प्रसाद' के आविर्भाव के साथ हिंदी नाटक के क्षेत्र में एक नये युग की शुरुआत होती है। भारतेंदु के नाटकों में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक नवजागरण की चेतना की जो झलक दिखाई देती है उसका समग्र, प्रखर और उत्कृष्ट रूप 'प्रसाद' के नाटकों में मिलता है। इतिहास, संस्कृति और दर्शन के गहन अध्ययन और विश्लेषण को आधार बनाते हुए 'प्रसाद' ने उन्हें अपने साहित्य में नई अर्थवत्ता प्रदान की। इतिहास का 'प्रसाद' ने बृहत्तर उपयोग किया। अपने नाटक "विशाख" की भूमिका में उन्होंने लिखा है "इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संघटित करने में अत्यंत लाभदायक होता है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।"

इस कथन को 'प्रसाद' की मनोभूमिका की संकल्पबद्ध घोषणा कहा जा सकता है उनका नाट्य सृजन सन् 1910-11 में शुरू हो गया था। "सज्जन", "प्रायश्चित", "कल्याणी परिणय", "करुणालय", "राज्यश्री" आदि वस्तुतः उनके प्रयोग काल की रचनाएँ हैं। सन् 1921 में "विशाख" — के प्रकाशन से हिंदी नाटक के क्षेत्र में नई उद्भावनाओं की शुरुआत होती है। इसके बाद सन् 1933 तक का समय 'प्रसाद' के नाट्य लेखन का उत्कर्ष काल है। इसमें "अजात शत्रु" (1922), "जनमेजय का नागयज्ञ" (1923), "कामना" (1923-24), "स्कंदगुप्त" (1928), "एक घूँट" (1929), "चंद्रगुप्त" (1931), "ध्रुवस्वामिनी" (1933) की रचना हुई।

'प्रसाद' जी स्वच्छंदतावादी दृष्टि के नाटककार हैं। कथ्य, शिल्प, संवेदना और भाषा सभी क्षेत्रों में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह उनके नाटकों का प्रधान स्वर है। पूर्वी और पश्चिमी नाट्य तत्वों का समन्वय करते हुए उन्होंने अपने लिए एक नयी नाट्य दृष्टि की तलाश की। अपने समय की हर धड़कन को पहचानते हुए उन्होंने सभी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण सुधार आंदोलनों को अपने नाटकों में वाणी दी। देशभक्ति, राष्ट्रोद्धार की भावना, साम्राज्यवादी शोषण का विरोध, नारी जागरण, सामाजिक समता की भावना, तथा श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की स्थापना उनके नाटकों का प्रबल स्वर है। उनके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व मिला है। इनसे पहले के नाटकों में पात्रों का व्यक्तित्व नाटककार के व्यक्तित्व से स्वतंत्र नहीं हो पाया था। किंतु 'प्रसाद' के पात्रों का निजी व्यक्तित्व है जो वैयक्तिक होते हुए भी विश्वजनीन है, क्योंकि उसे मनोवैज्ञानिक आधार मिला है।

भाषा और संवादों की दृष्टि से 'प्रसाद' ने हिंदी नाटक के क्षेत्र में नए प्रयोग किए हैं। ऐतिहासिक-सांस्कृतिक देशकाल से संबद्ध होने के कारण उनकी नाट्य भाषा प्रसंगानुकूल संस्कृतनिष्ठ है और कठिन होते हुए भी पात्रानुकूल। सभी पात्र गहन-गंभीर, बिंब प्रधान और प्रतीकात्मक भाषा नहीं बोलते। पात्रों की स्थिति, मनोभूमिका और प्रसंग के अनुसार शैली कहीं भाव प्रधान, कहीं व्याख्यापरक, कहीं विश्लेषणपरक और कहीं 'वार्तालाप' की रवानी लिए हुए है। संवादों पर प्रसाद के कवि-कथाकार व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनमें एक खास तरह का तार्किक पैनापन और साहित्यिक सुरुचिपूर्णता है।

अभिनेयता की दृष्टि से 'प्रसाद' के नाटक विवाद का विषय रहे हैं। उनकी भाषा, दृश्य विधान और रंगमंचीय परिकल्पना पर काफी प्रश्न चिह्न लगाए गए हैं। आरंभ में दो-चार बार प्रस्तुति के बाद लंबे समय तक इन नाटकों को प्रस्तुत नहीं किया गया क्योंकि हिंदी के पास अपना कोई रंगमंच नहीं था। किंतु आज यह स्थिति नहीं है। छठे दशक से हिंदी में रंग कर्म की पुनः शुरुआत हुई और आज नए रंगकर्मी यह मानने लगे हैं कि 'प्रसाद' के नाटकों में व्यापक रंगमंचीय संभावनाएं हैं जिनकी तलाश के लिए निर्देशकों और अभिनेताओं की लगन और परिश्रम की आवश्यकता है। हिन्दी के प्रमुख निर्देशकों ने उनके कई नाटकों की प्रस्तुतियाँ की हैं।

प्रसाद युगीन अन्य नाटककार

'प्रसाद' जी के समसामयिक हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाटकों में सांस्कृतिक अखंडता को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। मध्यकालीन इतिहास से अपनी कथावस्तु चुनते हुए उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता को केंद्र में रखा है। "रक्षाबंधन", "प्रतिशोध", "स्वप्न भंग", "आहुति", जैसे नाटकों की संवाद योजना तथा चरित्र योजना में राष्ट्रीय जागरण का स्वर प्रधान है। इनकी भाषा बोलचाल की भाषा के निकट है।

गीति नाट्य

गद्य नाटकों के अलावा 'प्रसाद' जी ने "करुणालय" की रचना करके हिंदी गीति नाट्य परंपरा की भी शुरुआत की थी। इस युग में मैथिलीशरण गुप्त ने "अनघ" तथा उदय शंकर भट्ट ने "विश्वामित्र", "राधा", 'मत्स्यगंधा' आदि की तथा सियारामशरण गुप्त ने युद्ध की समस्या को लेकर "उन्मुक्त" नामक श्रेष्ठ गीति नाट्य की रचना की।

समस्या नाटक

'प्रसाद' के समकालीन लेखकों में नये गद्य प्रयोग करने वालों में लक्ष्मीनारायण मिश्र का नाम प्रमुख है 'प्रसाद' की इतिहास दृष्टि और स्वच्छंदतावादी दृष्टि के विरुद्ध बगावत के स्वर में मिश्र जी ने यथार्थवादी बुद्धिवादी नाटकों पर जोर दिया और अंग्रेजी के "Problem Play" के अनुकरण पर उन्होंने हिंदी में समस्या नाटकों की रचना की। उनके प्रमुख नाटक हैं, "राक्षस का मंदिर", "सिंदूर की होली", "सन्यासी", "मुक्ति का रहस्य" आदि। समसामयिक समाज की किसी ज्वलंत समस्या को प्रस्तुत करने वाले इन नाटकों में भावुकतापरक रोमानी दृष्टि से बचने का भरपूर प्रयास है।

'प्रसाद' युग के अन्य नाटककारों में सुदर्शन, सेठ गोविंददास, बद्रीनाथ मिश्र, बलदेव प्रसाद मिश्र आदि का नाम लिया जा सकता है। रंगमंच तथा साहित्यिक महत्व के अभाव में इन नाटकों का ऐतिहासिक महत्व है।

अनुवाद

अनुवाद की भी इस युग में महत्वपूर्ण परंपरा बनी रही। संस्कृत नाटकों के अनुवादों के साथ-साथ एक ओर मॉलियर, गाल्सवर्दी, मेतरलिंक आदि के नाटकों के अनुवादों से हिंदी नाट्य साहित्य समृद्ध हुआ और दूसरी ओर बंगला से द्विजेंद्रलाल राय के नाटकों के अनुवादों की धूम रही। अनुवादकों में श्री सीताराम का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

बोध प्रश्न 5

क) भारतेंदु को आधुनिक हिंदी नाटक का जनक क्यों कहा जाता है?

....

....

....

....

....

ख) भारतेंदु तथा उनके युग के नाटककारों ने हिंदी नाटक को किस-किस दृष्टि से समृद्ध किया?

....

....

....

....

....

....

....

....

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति सही शब्द चुन कर कीजिए।

i) 'प्रसाद' जी .... दृष्टि के नाटककार हैं। (स्वच्छंदतावादी/यथार्थवादी)

ii) उन्होंने .... को अपने नाटकों का आधार बनाया। (इतिहास/धर्म)

iii) भाषा और संवादों की दृष्टि से उन्होंने .... किया। (परंपरा का पालन/नया प्रयोग)

iv) उनके नाटकों की अभिनेयता .... रही है। (निर्विवाद/विवाद का विषय)

घ) 'प्रसाद' जी के समय के दो प्रमुख नाटककारों के नाम बताइए।

....

....

26.7.3 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि 'प्रसाद' जी ने जिस स्वच्छंदतावादी नाट्य परंपरा की शुरुआत की थी उसके विरुद्ध लक्ष्मीनारायण मिश्र ने बुद्धिवाद का नारा बुलंद किया। किंतु मिश्र जी अपने प्रयोग में बहुत सफल न हो सके और स्वयं पौराणिक नाटकों की ओर लौट पड़े।

प्रसादोत्तर हिंदी नाटकों में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है एकांकी लेखन की शुरुआत। एकांकीकारों में डा. रामकुमार वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, भुवनेश्वर, उदयशंकर भट्ट आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एकांकीकारों के बारे में विस्तृत जानकारी आप खंड चार में प्राप्त कर सकते हैं।

हिंदी नाटक में अपेक्षाकृत सार्थक दौर चौथे दशक के अंतिम चरण में शुरू हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप जो सामाजिक, राजनीतिक, विचारपरक जागरूकता उत्पन्न हुई उससे देश के बौद्धिक मानसिक जीवन में व्यापक परिवर्तन हुआ। जीवन और साहित्य के रिश्ते को नये ढंग से देखा-परखा गया साथ ही नाटक और रंगमंच के संबंध को गहराई से महसूस किया गया। नाटक के विषय में इस बदलती हुई चेतना की अभिव्यक्ति उपेंद्रनाथ अश्क के नाटकों में मिलती है। "अंजोदीदी" "स्वर्ग की झलक", "छठा बेटा", "कैद", "उड़ान", "अलग-अलग रास्ते" आदि में मध्य वर्ग की साधारण रोजमर्रा की जिंदगी की समस्याओं और चिन्ताओं को हास्य व्यंग्य के पैनेपन के साथ उभारा गया है। परिस्थिति की सूक्ष्म पकड़, बोलचाल की जीवंत भाषा, रंगमंच पर सहज अभिनेयता आदि इनके नाटकों की विशेषताएँ हैं।

नाटक को रंगमंच से जोड़ने के 'अश्क' जी के प्रयास को जगदीशचंद्र माथुर ने आगे बढ़ाया। उनका नाटक "कोणार्क" हिंदी नाट्य साहित्य के विकास की एक महत्वपूर्ण मंजिल है। प्राचीन युग के माध्यम से समसामयिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए यहाँ लेखक ने घटनाओं, पात्रों और भाषा के अर्थ के लिए विविध स्तर और आयाम प्रदान किये हैं। उनके अगले नाटक "शारदीया" और "पहला राजा" भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर ही लिखे गये हैं।

इसी समय धर्मवीर भारती का काव्य नाटक "अंधा युग" (1955) आया। कविता और नाटक के बीच गहरे रिश्ते को इसने पहली बार रंगमंच पर सिद्ध किया। "अंधा युग" के अनेक सफल प्रदर्शन हुए। इसी से प्रेरित होकर दुष्यंत कुमार ने "एक कंठ विषपायी" नामक काव्य नाटक लिखा। सुमित्रानंदन पंत ने भी कई काव्य नाटक लिखे जिसमें 'शिल्पी' अधिक प्रसिद्ध हुआ।

नाटक और रंगमंच के रिश्ते को पहचानते हुए सार्थक नाट्य सृजन करने वालों में प्रमुख नाम है, मोहन राकेश का। इतिहास, कविता और नाटक के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए गहन मानवीय भावों की सार्थक अभिव्यक्ति की जो परंपरा जयशंकर 'प्रसाद' ने शुरू की थी तथा स्वाभाविकता और नाटकीयता, यथार्थपरकता और काव्यात्मकता का जो मिश्रण जगदीशचंद्र माथुर ने किया था उसका अगला चरण मोहन राकेश के नाटकों में मिलता है "आषाढ़ का एक दिन" और "लहरों का राजहंस" तथा "आधे अधूरे" ने हिंदी नाटक और रंगमंच को विस्तृत आयाम दिया। जीवन की गहन मार्मिक अनुभूतियों के तीखे बोध को अतीत और वर्तमान में एक साथ तलाश करने का सार्थक प्रयास हिंदी नाटक में पहली बार इतनी

चित्र 6 : "ध्रुवस्वामिनी" का मंचन

सफलतापूर्वक किया गया। समसामयिक जीवन स्थितियों की कशमकश को व्यक्त करने वाले उनके नाटक "आधे अधूरे" ने हिंदी नाटक को नया मुहावरा देते हुए हिंदी रंगमंच को नया दर्शक वर्ग प्रदान किया।

इसी समय लक्ष्मीनारायण लाल ने नाट्य लेखन और नाट्य-संचालन (प्रदर्शन और प्रशिक्षण) के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका आरंभ की। भारतेंदु के बाद एक बार फिर नाटक और रंग कर्म एक दूसरे से व्यावहारिक रूप में जुड़े। उनके नाटकों में "अंधा कुआं", "तीन आँखों वाली मछली", "मादा कैक्टस", "तोता मैना", "रातरानी", "मिस्टर अभिमन्यु", "दर्पण" आदि प्रमुख हैं।

रंगमंच के इस नए आंदोलन ने विष्णु प्रभाकर को भी प्रभावित किया। मौलिक नाटक लेखन के अलावा उन्होंने विभिन्न महत्वपूर्ण उपन्यासों और कहानियों के नाट्य रूपांतर प्रस्तुत किए। इनमें प्रेमचंद के "गबन" और "गोदान" के नाट्य रूपांतर "चंद्रहार" और "होरी" तथा प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की बंगला कहानी "देवी" का नाट्य रूपांतर "देवी" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण नाटक लेखकों और उनकी प्रमुख कृतियों में विनोद रस्तोगी के "नए हाथ", नरेश मेहता के "सुबह के घंटे" और "खंडित यात्राएं" लक्ष्मीकांत वर्मा के "खाली कुर्सी की आत्मा", शिवप्रसाद सिंह के "घाटियाँ गूंजती हैं", मन्नू भंडारी के "बिना दीवारों का घर", सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के "बकरी" मुद्राराक्षस के "तिलचट्टा" शंकर शेष के "एक और द्रोणाचार्य", भीष्म साहनी के "हानुश" तथा "कबिरा खड़ा बाजार में", सुरेंद्र वर्मा के "सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक", मणि मधुकर के "रस गंधर्व" रेवतीशरण शर्मा का "चिराग की लौ" ज्ञानदेव अग्निहोत्री के "नेफा की एक शाम", प्रभात कुमार भट्टाचार्य के "काठ महल", सुशील कुमार सिंह के "सिंहासन खाली है", आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अनुवाद

आज हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में अनुवादों की महत्वपूर्ण भूमिका है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा संगीत नाटक अकादमियों तथा विविध अव्यावसायिक संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत होने वाले नाटकों में बड़ी संख्या अनूदित नाटकों की होती है। बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के नाटक बड़ी संख्या में अनूदित होकर हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत होते हैं। भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी से भी प्रचुर मात्रा में अनुवाद होते रहते हैं। इस तरह हिंदी दर्शक को रवीन्द्रनाथ, शंभु मित्र, बादल सरकार, गिरीश कर्नाड, विजय तेंदुलकर, मॉलियर, टॉलस्टाय, ओ नील, इब्सन, चेखव, आयनेस्को, शेक्सपियर आदि रचनाकारों की कृतियाँ निरंतर उपलब्ध होती रहती हैं।

सन् 1960 के बाद नाटक और रंगमंच के इतिहास में नई उपलब्धियों का दौर शुरू हुआ। जीवन की गहन और बुनियादी समस्याओं को गहरे और व्यापक स्तर पर प्रस्तुत करने के अलावा स्त्री-पुरुष संबंधों का सूक्ष्म विश्लेषण-विवेचन और उनकी जाँच-पड़ताल की गई। नाटक को रंगमंच से ज्यादा से ज्यादा जोड़ने और नए-नए रंग प्रयोग करने के प्रयास किए गए हैं। कलकत्ता, बंबई, दिल्ली, मद्रास जैसे महानगरों में शुरू रंग आंदोलनों का विस्तार छोटे शहरों और कस्बों तक हुआ है। इब्राहीम अल्काजी, सत्यदेव दुबे, श्यामानंद जालान, प्रतिभा अग्रवाल, हबीब तनवीर, शीला भाटिया, ब.व. कारंत, ओम शिवपुरी, दीनानाथ, सई परांजपे, राम गोपाल बजाज, लक्ष्मीनारायण लाल, अमाल अल्लाना, बी.एम. शाह, बलराज पंडित आदि नाट्य निर्देशकों ने सफल प्रस्तुतियाँ की हैं। नाटक की परंपरागत शास्त्रीय पद्धतियों के साथ-साथ लोक नाट्य शैलियों में प्रस्तुति भी इन दिनों काफी लोकप्रिय हुई है। इन क्षेत्रों में पहल हबीब तनवीर ने की। उसके बाद छत्तीसगढ़ी नाचा शैली, राजस्थानी ख्याल शैली, कर्नाटक की यक्षगान शैली, उत्तर प्रदेश की नौटंकी शैली आदि में बहुत ही सफल प्रस्तुतियाँ हुई हैं।

हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत अनूदित नाटकों में गिरीश कर्नाड का "तुगलक" और "हयवदन", आद्य रंगाचार्य का "सुनो जनमेजय", विजय तेंदुलकर का "खामोश अदालत जारी है", "घासी राम कोतवाल", "सखाराम बाइंडर", बादल सरकार का "जुलूस", ब्रेख्त का "खड़िया का घेरा", टॉलस्टाय का "पाप और प्रकाश", मॉलियर का "कंजूस" और "बीबियों का मदरसा", शेक्सपियर का "वरनम वन" आदि विशेष रूप से चर्चित रहे हैं।

आज हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत होने वाले नाटकों में अनूदित नाटकों की संख्या मौलिक नाटकों के लगभग बराबर ही होती है। विविध भाषाओं के संस्कारों के इस सम्मिश्रण से हिंदी रंगमंच तथा नाटक के लिए नई दिशाओं की संभावनाएँ खुल रही हैं।

रंगशालाओं में नाट्य प्रस्तुति के अलावा अन्य प्रस्तुति माध्यम भी आज हिंदी में बहुत तेजी से सक्रिय तथा काफी हद तक लोकप्रिय हैं। इनमें नुक्कड़ नाटकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जन सामान्य की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी समस्याओं को उठा कर जनचेतना जगाने वाले ये नाटक सभी तरह की साहित्यिक और रंगमंचीय रूढ़ियों से मुक्त हैं। गली, मोहल्ले या पार्क के किसी कोने में अनौपचारिक रूप में अभिनीत होने वाले इन नाटकों में लोक नाटकों की भाँति जन मानस की गहरी पकड़ होती है।

आज नाटक का अत्यधिक लोकप्रिय रूप टेलीविजन सीरियलों (धारावाहिकों) तथा टेलीविजन नाटकों के रूप में मिलता है। केवल ध्वनि प्रभावों पर आधारित होने के कारण रेडियो नाटक भी आज दूरदर्शन सीरियलों से पीछे रह गए हैं। तकनीकी साधनों के प्रयोग ने यहाँ रंग प्रस्तुति की सभी सीमाओं को दूर कर दिया है। साथ ही इसके माध्यम से नाटक बहुत व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचा है। अब तक दर्शक को नाटक देखने जाना पड़ता था किंतु दूरदर्शन ने नाटक को दर्शक के घर तक पहुँचा दिया है। फर्क इतना है कि इस माध्यम में दर्शक और अभिनेता का जीवंत संपर्क समाप्त हो गया है। इस दृष्टि से नाटक सिनेमा के अधिक करीब हो गया है।

चित्र 7 : ऑथेलो दृश्य

चित्र ८ : अंधायुग का प्रदर्शन

चित्र ९ · हानुस का [illegible]

बोध प्रश्न 6

क) प्रसादोत्तर हिंदी रंगमंच की पाँच प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित नाटकों के लेखकों के नाम बताइए :

i) अंजोदीदी
ii) कोणार्क
iii) आषाढ़ का एक दिन
iv) मादा कैक्टस
v) हानुश

ग) निम्नलिखित व्यक्ति किस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं?

i) रामकुमार वर्मा
ii) इब्राहीम अल्काजी
iii) ब. व. कारंत
iv) मोहन राकेश

घ) i) तीन लोक नाट्य शैलियों के नाम बताइए तथा यह भी बताइए कि वे किस प्रदेश से संबंधित हैं।

....

....

ii) भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनूदित तीन नाटकों के नाम बताइए जो रंगमंच पर काफी लोकप्रिय हुए हों।

....

....

ङ) नुक्कड़ नाटक के बारे में चार पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

26.8 सारांश

इस इकाई में आपने नाट्य विधा की विशिष्टता के बारे में जानकारी प्राप्त की। अब आप जान गए हैं कि नाटक को आमने-सामने देखा जा सकता है। इस कारण इसका असर बहुत तेज होता है। इसमें बहुत से रंगकर्मियों का सहयोगी प्रयास अपेक्षित होता है तथा दर्शक भी इसे सामूहिक रूप से देखते हैं। इस तरह यह साहित्य की अन्य विधाओं से विशिष्ट है। रंगमंच और नाटक के अन्योन्याश्रित संबंध के बारे में भी आप जान गये हैं। नाटक के विभिन्न तत्वों के बारे में आपने पढ़ा है और अब आप समझ गये हैं कि प्राचीन भारतीय और पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों से प्रभाव ग्रहण करने के बावजूद हिंदी नाटक का अपना स्वरूप है। इसके तत्वों—कथानक, पात्र, परिवेश, भाषा-शैली, संवाद, मंचीयता और प्रतिपाद्य — के बारे में भी आप जानते हैं। हिंदी नाटक के विकास के विभिन्न चरणों से भी आपका परिचय हो गया है। अब आप बता सकते हैं कि कैसे भारतेन्दु ने हिंदी नाटक के क्षेत्र में एक नई शुरुआत की तथा अपने समय के लगभग सभी लेखकों को नाट्य रचना की ओर आकृष्ट किया। उसके बाद कैसे जयशंकर 'प्रसाद' ने हिंदी नाटक को नई दिशा दी। आजादी के बाद हिंदी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में हुए विभिन्न परिवर्तनों की चर्चा भी आप कर सकते हैं।

26.9 शब्दावली

अनायास : बिना कोई प्रयास किए।

आदि काव्य : महर्षि वाल्मीकि रचित "रामायण"।

सघनता : गहनता और घनापन, प्रभाव का पूर्णतया व्यापक होना।

लोक सिद्ध : समाज द्वारा स्वीकृत।

तादात्म्य : अभिन्नता, परस्पर एक होने का भाव, साहित्य में रचनाकार या रचना को प्रस्तुत करने वाले के भावों से पाठक या दर्शक के भावों की अभिन्नता।

स्थापत्य कला : वास्तुकला, भवन निर्माण कला।

विरेचन (भाव परिष्कार) : अरस्तू के अनुसार भावों को शुद्ध करने की प्रक्रिया

रस : भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार साहित्य में भाव के आस्वादन को रस कहते हैं।

संवेदन : अनुभूति, ज्ञान।

बृहत्तर : व्यापक रूप में।

विश्वजनीन : सबके लिए उपयुक्त, सबके लिए लाभदायक।

लोक नाट्य शैली : लोक नाटक उन नाटकों को कहते हैं जिनका प्रचलन समाज में लोक परंपरा के रूप में होता है जैसे — उत्तर प्रदेश में खेला जाने वाला लोक नाटक नौटंकी या रामलीला या रासलीला, बंगाल में खेला जाने वाला जात्रा। इन नाटकों में किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन नहीं होता। प्रस्तुति के नियम भी रूढ़ नहीं होते।

26.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। पहली श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं जिन्हें सुना या पढ़ा जा सके। दूसरी श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं जिन्हें पढ़ने और सुनने के साथ-साथ देखा भी जा सकता हो। नाटक दूसरी श्रेणी यानी दृश्य काव्य के अंतर्गत आता है।

ख) प्राचीन युग में यद्यपि नाटक को "दृश्य काव्य" कहा गया था किंतु आज यह गद्य के अंतर्गत आता है। हालाँकि पद्य नाटक भी लिखे जाते हैं किंतु मुख्यतः यह गद्य विधा ही है।

ग) नाटक को देखकर दर्शकों पर जो तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है उसका अभिनेताओं पर मनोवैज्ञानिक असर पड़ता है जो उनकी गतिविधियों और कला को प्रभावित करता है। इस तरह अभिनेताओं और दर्शकों के बीच स्थापित जीवंत संपर्क समग्र नाट्य प्रस्तुति पर प्रभाव डालता है।

बोध प्रश्न 2

क) i) घनिष्ठ संबंध, ii) बदलता, iii) गद्य

ख) i) उपन्यास का पाठक उसे कई बैठकों में समाप्त कर सकता है इसलिए यदि उसका आकार बड़ा हो तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता यदि इन बैठकों में समय का काफी अन्तराल हो तो वह पिछले पृष्ठों को पलट कर देख भी सकता है। नाटक का दर्शक उसे एक बार में ही देखता है। यदि कोई अंतराल होता भी है तो वह कुछ मिनटों का होता है। अतः नाटक का आकार इतना होना चाहिए कि उसे एक बैठक में सुविधापूर्वक देखा जा सके।

ii) नाटक में भाषा के लिखित रूप की बजाए मौखिक रूप प्रधान होता है क्योंकि नाटककार के शब्दों की पूर्ति अभिनय द्वारा होती है। किंतु उपन्यास का माध्यम लिखित भाषा होती है। वहाँ संवाद लंबे हो सकते हैं। उनमें विवेचन विश्लेषण आदि की संभावना नाटक के संवादों की अपेक्षा ज्यादा होती है।

बोध प्रश्न 3

क) कथावस्तु दो प्रकार की होती है — आधिकारिक कथावस्तु और प्रासंगिक कथावस्तु। आधिकारिक कथावस्तु प्रमुख कथावस्तु होती है जिसका संबंध नाटक की मूल घटनाओं और प्रधान पात्रों से होता है। प्रासंगिक कथावस्तु गौण कथावस्तु होती है। अन्य पात्रों से संबंधित होने के बावजूद यह आधिकारिक कथावस्तु से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होती, बल्कि उसे आगे बढ़ाने में सहायक होती है।

ख) नाटक की घटनाएँ दो तरह की होती हैं, दृश्य घटनाएँ और सूच्य घटनाएँ। जो घटनाएँ दर्शकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करके दिखाई जाती हैं वे दृश्य घटनाएँ कहलाती हैं। जो घटनाएँ सामने घटित होती दिखाई नहीं जाती केवल सूचित की जाती हैं, वे सूच्य घटनाएँ कहलाती हैं। समग्र नाट्य-व्यापार दोनों तरह की घटनाओं से मिल कर बनता है।

ग) कथावस्तु की तीन स्थितियाँ होती हैं — आरंभ, विकास और परिणति। कार्य-व्यापार जहाँ शुरू होता है वह आरंभ की स्थिति होती है। कार्य आगे बढ़ने की प्रक्रिया विकास कहलाती है और अंत में कार्य जहाँ पहुंचता है यानी जो परिणाम मिलता है उसे परिणति कहते हैं।

बोध प्रश्न 4

क) i) नायक — नाटक का प्रधान पुरुष पात्र नायक कहलाता है।
ii) नायिका — नाटक की प्रधान स्त्री पात्र नायिका कहलाती है।
iii) खलनायक — नायक का विरोधी पात्र खलनायक होता है।
iv) विदूषक — विदूषक हास्य-व्यंग्य की सृष्टि करने वाला पात्र होता है।

ख) परिवेश की सृष्टि नाटक के कथ्य, घटनाओं, पात्रों के रूप, वेश-विन्यास, विचारधारा, भाषा, शैली, संवाद, मंच सज्जा आदि के माध्यम से की जाती है।

ग) नाटक में भाषा के लिखित रूप की बजाए मौखिक रूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए उसमें बोलचाल की लय तथा तात्कालिक संप्रेषणीयता अपेक्षित होती है।

घ) i) भिन्न स्थितियों और अवसरों पर हमारे वार्तालाप का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। परिवार, मित्र-मंडली, कार्यालय, विचार गोष्ठी आदि में हम अलग-अलग बातचीत और लहजे का इस्तेमाल करते हैं। ऐसी स्थिति में नाटक में भी संवाद, पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिए।
ii) जो संवाद मंच पर खड़े किसी अन्य पात्र के सुनने के लिए न होकर केवल दर्शकों के सुनने के लिए होता है उसे 'स्वगत कथन' कहते हैं।

ङ) अभिनय के चार प्रकार हैं —
1) आंगिक अभिनय — यानी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा अभिनय
2) वाचिक अभिनय — वाणी द्वारा यानी संवाद बोलकर अभिनय
3) सात्विक अभिनय — विभिन्न भावनाओं की हाव-भाव पूर्ण अभिव्यक्ति
4) आहार्य अभिनय — वेशभूषा, श्रृंगार और साज-सज्जा द्वारा अभिनय

बोध प्रश्न 5

क) भारतेंदु से पहले हिंदी में जो थोड़े बहुत नाटक मिलते हैं वे नाट्यकला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, साथ ही वे ब्रजभाषा में लिखित हैं। भारतेंदु ने पहली बार जागरण सुधार युग की संपूर्ण चेतना को नाटक में प्रतिष्ठित किया। नाटक को जनप्रियता और कलात्मकता प्रदान करते हुए उसे समाज सुधार और नव-जागरण की चेतना का वाहक बनाया।

ख) उन्होंने नाटक को प्राचीन भारतीय नाटक की परंपरा से जोड़ते हुए पश्चिमी नाट्य कला का भी समावेश किया। नाटक को रंगमंच से जोड़ा और रंग-प्रस्तुति के लिए नाट्य मंडलियां स्थापित कीं। पारसी नाटक की बुराइयों का विरोध करके जन रुचि का परिष्कार किया। मौलिक नाट्य लेखन के अलावा संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओ और अंग्रेजी से अनुवाद किए।

ग) i) स्वच्छंदतावादी ii) इतिहास iii) नया प्रयोग iv) विवाद का विषय

घ) हरिकृष्ण प्रेमी और लक्ष्मीनारायण मिश्र

बोध प्रश्न 6

क) 1) एकांकी लेखन की शुरुआत 2) नाटक को रंगमंच से जोड़ने का प्रयास 3) लोक नाट्य शैलियों की लोकप्रियता 4) नुक्कड़ नाटकों की शुरुआत 5) कहानियों उपन्यासों आदि के नाट्य रूपांतरों की प्रस्तुतियाँ।

ख) i) उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ii) जगदीशचंद्र माथुर iii) मोहन राकेश iv) लक्ष्मीनारायण लाल v) भीष्म साहनी

ग) i) एकांकी लेखन के लिए ii) नाट्य निर्देशन के लिए iii) नाट्य निर्देशन के लिए iv) नाटककार के रूप में

घ) छत्तीसगढ़ की "नाचा", राजस्थान की "ख्याल" और कर्नाटक की "यक्षगान"

ङ) विजय तेंदुलकर का "खामोश अदालत जारी है"
गिरीश कर्नाड का "तुगलक"
बादल सरकार का "जुलूस"

च) नुक्कड़ नाटकों के अभिनय के लिए किसी खास रंगमंच की जरूरत नहीं होती। गली मोहल्ले, पार्क आदि के किसी कोने में इनका अभिनय हो जाता है। ये नाटक जन सामान्य की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं को उठा कर जन चेतना जाग्रत करते हैं। इसलिए इनमें जन मानस की गहरी पकड़ होती है।

इकाई 27 "ध्रुवस्वामिनी" (जयशंकर 'प्रसाद') वाचन एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य
27.1 प्रस्तावना
27.2 "ध्रुवस्वामिनी" नाटक
27.3 संदर्भ सहित व्याख्या
27.4 सारांश
27.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

इस इकाई में "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का वाचन करने के बाद आप :

- जयशंकर 'प्रसाद' के बारे में सामान्य जानकारी दे सकेंगे;
- बता सकेंगे कि "ध्रुवस्वामिनी" नाटक लिखते समय उन्होंने किन ऐतिहासिक-साहित्यिक स्रोतों को आधार बनाया;
- "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की कथा बता सकेंगे;
- इसकी विभिन्न घटनाओं और पात्रों के विषय में चर्चा कर सकेंगे;
- इसके विविध अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे;
- इसमें प्रयुक्त कठिन शब्दों और मुहावरों का अर्थ बता सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। आपने पढ़ा है कि हिंदी नाटक की विकास यात्रा में जयशंकर 'प्रसाद' एक महत्वपूर्ण नाम है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850-1884) के बाद कुछ समय तक हिंदी में नाटक लेखन की गति मंद पड़ गई। लगभग दो-ढाई दशक तक नाट्य लेखन और रंगकर्म न के बराबर ही रहा। 'प्रसाद' जी ने हिंदी नाटक को नयी दिशा, नए विषय, नयी भाषा और नयी भाव-भंगिमा प्रदान की। यही कारण है कि एक काल-खंड विशेष को (1910-1933 ई.) हिंदी नाटक के क्षेत्र में "प्रसाद युग" के नाम से जाना जाता है।

लेखक परिचय

जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म सन् 1889 ई. में काशी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। यह परिवार तंबाकू का व्यापार करता था और "सुँघनी साहु" के नाम से प्रसिद्ध था। बचपन से ही उन्हें साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण मिला था। संगीत, कला और कविता के इस माहौल ने उन्हें जो सुरुचिपूर्ण संस्कार दिये थे उनको 'प्रसाद' ने अपने गहन अध्ययन और असाधारण प्रतिभा के बल पर अत्यधिक गहराई और व्यापकता से विकसित किया। बचपन में उनकी अधिकांश शिक्षा घर पर ही हुई। कुछ समय के लिए वे क्वींस कालेज, वाराणसी में भी पढ़े। स्वाध्याय से उन्होंने संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी और उर्दू का गंभीर ज्ञान प्राप्त किया। वे दर्शन और इतिहास के अच्छे विद्वान थे। साहित्य की सभी विधाओं को उन्होंने अपनी लेखनी से समृद्ध किया। कविता और नाटक के क्षेत्र में युग प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त करने के साथ कथा साहित्य और निबंध के क्षेत्र में भी उनका अपूर्व योगदान है। "छायावाद" नामक काव्य आंदोलन के प्रमुख कवि के रूप में उन्होंने "झरना", "आंसू", "लहर", और "कामायनी" जैसी अप्रतिम कृतियों की रचना की। "कंकाल", "तितली" और "इरावती" (अधूरा) उपन्यासों के साथ ही बड़ी संख्या में कहानियां लिखीं। इनमें "पुरस्कार", "आकाशदीप", "आँधी", "गुंडा" आदि विशेष रूप से लोकप्रिय हुई। 'प्रसाद' जी के निबंधों का संग्रह 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध" के नाम से प्रकाशित है। उनके नाटकों के बारे में हम पिछली इकाई में चर्चा कर चुके हैं। भाषा, भाव, कथ्य और शिल्प सभी दृष्टियों से उन्होंने हिंदी नाटक को समृद्ध बनाया। उन्होंने लगभग बारह नाटकों की रचना की जिनमें "राज्यश्री", "जनमेजय का नाग यज्ञ", 'कामायनी', "विशाख", "स्कंदगुप्त". "चन्द्रगुप्त" और "ध्रुवस्वामिनी" प्रमुख हैं। साहित्य की विविध विधाओं में लेखन करने वाले 'प्रसाद' ने हिंदी साहित्य के बहुमुखी विकास में योगदान दिया। लगभग तीन दशक तक उन्होंने हिंदी साहित्य की सेवा की। हिंदी साहित्य को अपनी अमूल्य कृतियों से वे और भी अधिक समृद्ध बनाते किंतु 15 नवंबर सन् 1937 को मात्र 48 वर्ष की अल्पायु में उनका निधन हो गया।

इस इकाई में प्रस्तुत उनका नाटक "ध्रुवस्वामिनी" सन् 1933 ई. में प्रकाशित हुआ था। यह नाटक अपने स्वरूप और संरचना में 'प्रसाद' के अन्य नाटकों से भिन्न है। इसीलिए इसे 'प्रसाद' का विशिष्ट नाट्य प्रयोग माना जाता है।

"ध्रुवस्वामिनी" ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक है। इसकी कथा प्राचीन भारतीय इतिहास के गुप्त शासन काल से चुनी गई है। इतिहास की नवीन खोजों के आधार पर पता चला है कि सम्राट समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् थोड़े समय के लिए उसका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त सम्राट बना था। किंतु शक्ति, सामर्थ्य, पौरुष और विवेक-बुद्धि के अभाव में उसे जल्दी ही सम्राट पद से अपदस्थ होना पड़ा। फिर समुद्रगुप्त का छोटा पुत्र चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य सम्राट बना। रामगुप्त जैसे पतित और गौरवहीन पति से ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति तथा चंद्रगुप्त के साथ उसके पुनर्विवाह आदि प्रश्न इस नाटक के मूल आधार हैं।

नाटक की "सूचना" (भूमिका) में ही लेखक ने स्पष्ट किया है कि उनके कथ्य का आधार विशाखदत्त का नाटक "देवीचंद्रगुप्त" तथा राजशेखर और बाणभट्ट आदि की रचनाओं में आए संदर्भ हैं। ये संदर्भ नारद, पराशर आदि की स्मृतियों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित सामाजिक व्यवस्था के आधार पर प्रमाणित होने के कारण इतिहास सम्मत हैं। प्रो. राखालदास बनर्जी, प्रो. अल्तेकर, श्री जायसवाल और श्री भंडारकर आदि इतिहासविदों ने इस पुनर्विवाह को ऐतिहासिक घटना माना है।

आगे आप "ध्रुवस्वामिनी" का वाचन करेंगे।

ध्रुवस्वामिनी
(जयशंकर 'प्रसाद')
सूचना

विशाखदत्त द्वारा रचित "देवीचन्द्रगुप्त" नाटक के कुछ अंश 'शृंगार-प्रकाश' और 'नाट्य-दर्पण' से सन् 1923 की ऐतिहासिक पत्रिकाओं में जब उद्धृत हुये तब चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के जीवन के सम्बन्ध में जो नयी बातें प्रकाश में आयीं, उनसे इतिहास के विद्वानों में अच्छी हलचल मच गयी। शास्त्रीय मनोवृत्ति वालों को, चन्द्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी का पुनर्लग्न असम्भव, विलक्षण और कुरुचिपूर्ण मालूम हुआ। यहाँ तक कि आठवीं शताब्दी के सञ्जन ताम्रपत्र —

हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद्देवीं स दनस्तथा
लक्षं कोटिमलेखनम् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः

के पाठ में सन्देह किया जाने लगा।

किन्तु जिस ऐतिहासिक घटना का वर्णन करते हुए सातवीं शताब्दी में बाणभट्ट ने लिखा है —

अरिपुरेच परकलत्रकामुकं कामिनीवेश-
श्चन्द्रगुप्तो शकपतिमशातयत्।

और ग्यारहवीं शताब्दी में राजशेखर ने भी लिखा है —

दत्वारुद्ध गतिं खसाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीम्।
यस्मात् खण्डित साहसो निवर्तते श्रीरामगुप्तोनृपः

वह घटना केवल जनश्रुति कह कर नहीं उड़ायी जा सकती।

विशाखदत्त को तो श्री जायसवाल ने चन्द्रगुप्त की सभा का राजकवि और उसके "देवीचन्द्रगुप्त" को जीवनचित्रण नाटक भी माना है। यह प्रश्न अवश्य ही कुछ कुतूहल से भरा हुआ है कि विशाखदत्त ने अपने दोनों नाटकों का नायक चन्द्रगुप्त नामधारी व्यक्ति को ही क्यों बनाया। परन्तु श्री तैलंग ने तो विशाखदत्त को सातवीं शताब्दी के अवन्ति वर्मा का आश्रित कवि माना है। क्योंकि "मुद्राराक्षस" की किसी प्राचीन प्रति में उन्हें मुद्राराक्षस के भरत वाक्य 'प्ार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' के स्थान पर 'प्रार्थिवोऽवन्तिवर्मा' भी मिला। विशाखदत्त के आलोचक लोग उसे एक प्रामाणिक ऐतिहासिक नाटककार मानते हैं। उसके लिखे हुये नाटक में इतिहास का अंश कुछ न हो, ऐसा तो नहीं माना जा सकता। राखालदास बनर्जी, प्रोफेसर अल्तेकर और श्री जायसवाल इत्यादि ने, अन्य प्रामाणिक आधार मिलने के कारण ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के पुनर्लग्न को ऐतिहासिक तथ्य मान लिया है। यह कहना कि रामगुप्त नाम का कोई राजा गुप्तों की वंशावली में नहीं मिलता और न किसी अभिलेख में उसका वर्णन आया है, कोई अर्थ नहीं रखता। समुद्रगुप्त के शासन का उल्लंघन करके, कुछ दिनों तक साम्राज्य में उत्पात मचाकर, जो राजनीति के क्षेत्र में अन्तर्धान हो गया हो; उसका अभिलेख वंशावली में न मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। हाँ, भण्डारकरजी तो कहते हैं कि उसके लघु-काल-व्यापी शासन का सूचक सिक्का भी चला था। 'काच' के नाम से प्रसिद्ध गुप्त सिक्के मिलते हैं, वे रामगुप्त के ही हैं। राम के स्थान पर भ्रम से काच पढ़ा जा रहा था। इसलिए बाणभट्ट की वर्णित घटना अर्थात् स्त्री-वेश धारण करके चन्द्रगुप्त का पर-कलत्र कामुक शकराज को मारना और ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह इत्यादि के ऐतिहासिक सत्य होने में सन्देह नहीं रह गया है। और मुझे तो इसका स्वयं चन्द्रगुप्त की ओर से एक प्रमाण मिलता है। चन्द्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर 'रूपकृती' शब्द का उल्लेख है। रूप और आकृति का जॉन एलन् ने खींच-तानकर जो शारीरिक और आध्यात्मिक अर्थ किया है, वह व्यर्थ है। 'रूपकृती' विरुद का उल्लेख करके चन्द्रगुप्त अपने उस साहसिक कार्य को स्वीकृति देता है जो ध्रुवस्वामिनी की रक्षा के लिए उसने रूप बदलकर किया है, और जिसका पिछले काल के लेखकों ने भी समय-समय पर समर्थन किया है।

विशाखदत्त के "देवीचन्द्रगुप्त" नाटक का जितना अंश प्रकाश में आया है, उसे देखकर अबुलहसन अली की बर्कमारिस वाली कथा का मिलान करके नई ऐतिहासिक विद्वानों ने शास्त्रीय दृष्टिकोण रखने वाले आलोचकों को उत्तर देते हुए ध्रुवदेवी के पुनर्लग्न को ऐतिहासिक तथ्य तो मान लिया है, किन्तु भण्डारकरजी ने पराशर और नारद की स्मृतियों से उस काल की सामाजिक व्यवस्था में पुनर्लग्न होने का प्रमाण भी दिया है। शास्त्रों में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों तरह की बातें मिल

सकती है, परन्तु जिस प्रथा के लिये विधि और निषेध दोनों तरह की सूचनायें मिले; तो इतिहास की दृष्टि से वह उस काल में सम्भाव्य मानी जायगी। हाँ, समय-समय पर उनमें विरोध और सुधार हुये होंगे और होते रहेंगे। मुझे तो केवल यही देखना है कि इस घटना की सम्भावना इतिहास की दृष्टि से उचित है कि नहीं।

भारतीय दृष्टिकोण को सुरक्षित रखने वाले विशाखदत्त जैसे पण्डित ने जब अपने नाटक में लिखा है —

रम्यांचारतिकारिणीच करुणाशोकेन नीता दशाम्
तत्कालोपगतेन राहुशिरसा गुप्तेव चांद्रीकला।
पत्युः क्लीवजनोचितेन चरितेनानेव पुंसः सतो
लज्जाकोपविषाद भीत्यरतिभिः क्षेत्रीकृता ताम्यते।।

तो उस नाटक के सम्पूर्ण सामने न रहने पर भी, जिससे कि उसके परिणाम का निश्चित पता लगे, उस काल की सामाजिक व्यवस्था का तो अंशतः स्पष्टीकरण हो ही जाता है।
नारद और पराशर के वचन —

अपत्यार्थम् स्त्रियः सृष्टाः स्त्री क्षेत्रं बीजिनो नराः
क्षेत्रं बीजवते देयं नाबीजी क्षेत्रमर्हति। (नारद)
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतितै पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते। (पराशर)

के प्रकाश में जब "देवीचन्द्रगुप्त" नाटक के ऊपर वाले श्लोक का अर्थ किया जाए तो वह घटना अधिक स्पष्ट हो जाती है। रम्या है किन्तु अरतिकारिणी है, में जो श्लेष है, उसमें शास्त्र-व्यवस्था जनित ध्वनि है और पति के क्लीव जनोचित चरित का उल्लेख, साथ-ही-साथ क्षेत्रीकृता-जैसा पारिभाषिक शब्द, नाटककार ने कुछ सोचकर ही लिखा होगा।

भण्डारकर और जायसवाल जी, दोनों ने ही अपने लेखों में विधवा के साथ पुनर्लग्न होने की व्यवस्था मान कर ध्रुवदेवी का पुनर्लग्न स्वीकार किया है। किन्तु स्मृति की ही उक्त व्यवस्था में अन्य पति ग्रहण करने के लिये पाँच आपत्तियों का उल्लेख किया है, उनमें केवल मृत्यु होने पर ही तो विधवा का पुनर्लग्न होगा। अन्य चार आपतियाँ तो पति के जीवन काल में ही उपस्थित होती हैं।

उधर जायसवाल जी चन्द्रगुप्त द्वारा रामगुप्त का वध भी नहीं मानना चाहते, तब "देवीचन्द्रगुप्त" — नाटक की कथा का उपसंहार कैसे हुआ होगा? वैवाहिक विषयों का उल्लेख स्मृतियों को छोड़कर क्या और कहीं नहीं है? क्योंकि स्मृतियों के सम्बन्ध में तो यह भी कहा जा सकता है कि वे इस युग के लिये नहीं, दूसरे युग के लिये हैं। परन्तु इसी कलियुग के विधान-ग्रंथ आचार्य कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में मुझे स्मृतियों की पुष्टि मिली।

किस अवस्था में एक पति दूसरी स्त्री ग्रहण कर सकता है, इसका अनुसंधान करते हुए, धर्मस्थीय प्रकरण के विवाहसंयुक्त में आचार्य कौटिल्य लिखते हैं —

वर्षाण्यष्टा वप्रजायमानामपुत्राम वंध्यां चाकांक्षेत्

दशविन्दु,

द्वादश कन्या प्रसविनीम्। ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विंदेत्।

8 वर्ष तक वन्धया, 10 वर्ष विन्दु अर्थात् नश्यत्प्रसूति, 12 वर्ष तक कन्या प्रसविनी की प्रतीक्षा करके पुत्रार्थी दूसरी स्त्री ग्रहण कर सकता है। पुरुषों का अधिकार बताकर स्त्रियों के अधिकार की घोषणा भी उसी अध्याय के अन्त में है।

नीचत्वम् परदेशम् वा प्रस्थितो राजकिल्विषी।
प्राणाभिहंता पतितस्त्याज्यः क्लीवोऽपिवापतिः।।

इसका मेल पराशर या नारद के वाक्यों से मिलता है। इन्हीं अवस्थाओं में पति को छोड़ने का अधिकार स्त्रियों को था। क्योंकि 'अर्थशास्त्र' में, आगे जो मोक्ष ... Divorce का प्रसंग आता है, उसमें न्यायालय सम्भवतः 'अमोक्षा भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या भार्यायाश्च भ..., परस्परं द्वे... ' के आधार पर आदेश देता था। किन्तु साधारण द्वेष से भी जहाँ अन्य चार विवाहों में मोक्ष हो सकते थे वहां धर्म ... में केवल इन्हीं अवस्थाओं में पति त्याज्य समझा जाता था। नहीं तो 'अमोक्षोहि धर्म-विवाहानाम्' के अनुसार धर्म-विवा... में मोक्ष नहीं होता था। दमयन्ती के पुनर्लग्न की घोषणा भी पति के नष्ट या परदेश प्रस्थित होने पर ही की गयी थी।

जायसवालजी अबुलहसन अली की यह बात नहीं मानते कि चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त की हत्या की होगी। उनका कहना है कि चन्द्रगुप्त तो भरत की तरह बड़े भाई के लिए गद्दी छोड़ चुका था। उनका अनुमान है कि "Very likely, it came about in the form of popular uprising"

अब नाटककार के 'अरतिकारिणी' और 'क्लीव' आदि शब्द घटना के परिणति की क्या सूचना देते हैं, यह विचारणीय है। बहुत सम्भव है कि अबुलहसन की कथा का आधार "देवीचन्द्रगुप्त" नाटक ही हो। क्योंकि अबुलहसन के लिखने के पहले उक्त नाटक का होना माना जा सकता है।

यह ठीक है कि हमारे आचार और धर्मशास्त्र की व्यवहारिकता की परम्परा विच्छिन्न-सी है। आगे जितने सुधार या समाजशास्त्र के परीक्षात्मक प्रयोग देखे या सुने जाते हैं, उन्हें अचिन्तित और नवीन समझ कर हम बहुत शीघ्र अभारतीय कह देते हैं, किन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि प्राचीन आर्यावर्त ने समाज की दीर्घकालव्यापिनी परम्परा में प्रायः प्रत्येक विधान का परीक्षात्मक प्रयोग किया है। तात्कालिक कल्याणकारी परिवर्तन भी हुए हैं। इसीलिए डेढ़ हजार वर्ष पहले यह होना अस्वाभाविक नहीं

था। क्या होना चाहिये और कैसा होगा, यह तो व्यवस्थापक विचार करें; किन्तु इतिहास के आधार पर जो कुछ हो चुका या जिस घटना के घटित होने की सम्भावना है, उसी को लेकर इस नाटक की कथा-वस्तु का विकास किया गया है!

भण्डारकरजी का मत है कि यह युद्ध गोमती की घाटी में अलमोड़ा जिले के कार्तिकेयपुर के समीप हुआ। जायसवालजी का मत है कि यह युद्ध 374 ई. से लेकर 380 ई. के बीच में काँगड़ा जिले के अबिवाल स्थान में हुआ था, जहाँ कि प्रथम सिक्ख-युद्ध भी हुआ था।

प्रयाग की प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की साम्राज्य-नीति में विजित राजाओं के आत्म-निवेदन 'कन्योपायन दान' ग्रहण करने का उल्लेख है। मैंने ध्रुवस्वामिनी के गुप्तकुल में आने का वही कारण माना है।

विशाखदत्त ने ध्रुवदेवी नाम लिखा है; किन्तु मुझे ध्रुवस्वामिनी नाम जो राजशेखर के मुक्तक में आया है, स्त्रीजनोचित, सुन्दर, आदर-सूचक और सार्थक प्रतीत हुआ। इसीलिए मैंने उसी का व्यवहार किया है।

पात्र परिचय

चंद्रगुप्त
रामगुप्त
शिखरस्वामी
पुरोहित
शकराज
खिंगल
मिहिरदेव
ध्रुवस्वामिनी
मंदाकिनी
कोमा
सामंत कुमार, शक-सामंत, प्रतिहारी,
प्रहरी, दासी, कुबड़ा, बौना, हिजड़ा,

प्रथम अंक

(**शिविर**[1] का पिछला भाग, जिसके पीछे पर्वतमाला की **प्राचीर**[2] है, शिविर का एक कोना दिखलाई दे रहा है। जिससे सटा हुआ **चंद्रातप**[3] टँगा है। मोटी-मोटी रेशमी डोरियों से सुनहले काम के परदे खम्भों से बँधे हैं। दो-तीन सुन्दर मञ्च रक्खे हुए हैं। चन्द्रातप और पहाड़ी के बीच छोटा-सा **कुञ्ज**[4]: पहाड़ी पर से एक पतली जलधारा उस हरियाली में बहती है। झरने के पास शिलाओं से चिपकी हुई लता की डालियाँ पवन में हिल रही हैं। दो-चार छोटे-बड़े वृक्ष, जिन पर फूलों से लदी हुई सेवती की लता छोटा-सा झुरमुट बना रही है। शिविर के कोने से ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश। पीछे-पीछे एक लम्बी और कुरूप स्त्री चुपचाप नंगी तलवार लिये आती)

ध्रुवस्वामिनी—**(सामने पर्वत की ओर देख कर)** सीधा तना हुआ, अपने **प्रभुत्व**[5] की साकार कठोरता, **अभ्रभेदी**[6] **उन्मुक्त**[7] शिखर! और इन क्षुद्र कोमल **निरीह**[8] लताओं और पौधों को इसके चरण में लोटना ही चाहिए न! **(साथवाली खड्गधारिणी की ओर देखकर)** क्यों, मन्दाकिनी नहीं आई? **(वह उत्तर नहीं देती है)** बोलती क्यों नहीं? यह तो मैं जानती हूँ, कि इस राजकुल के अन्तःपुर में मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान **सञ्चित**[9] रहा, जो मुझे आते ही मिला; किन्तु क्या तुम-जैसी दासियों से भी वही मिलेगा? इसी शैलमाला की तरह मौन रहने का अभिनय तुम न करो, बोलो! **(वह दाँत निकालकर विनय प्रकट करती हुई कुछ और आगे बढ़ने का संकेत करती है)** अरे, यह क्या: मेरे भाग्य-विधाता! यह कैसा **इन्द्रजाल**[10] उस दिन राजमहापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे जो आशीर्वाद दिया था, क्या वह अभिशाप था? इस राजकीय **अन्तःपुर**[11] में सब जैसे एक रहस्य छिपाये हुये चलते बोलते हैं और मौन हो जाते हैं; **(खड्गधारिणी विवशता और भय का अभिनय करती हुई आगे बढ़ने का संकेत करती है)** तो क्या तुम मूक हो? तुम कुछ बोल न सको, मेरी बातों का उत्तर भी न दो, इसलिए तुम मेरी सेवा में नियुक्त की गयी हो? वह असह्य है। इस राजकुल में एक भी सम्पूर्ण मनुष्यता का **निदर्शन**[12] न मिलेगा क्या? जिधर देखो कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूँगे और बहरे। **(चिढ़ती हुई ध्रुवस्वामिनी आगे बढ़कर झरने के किनारे बैठ जाती है, खड्गधारिणी भी इधर-उधर देखकर ध्रुवस्वामिनी के पैरों के समीप बैठती है)**

स्थिति की विडम्बना
विवाह के बाद दिया गया आशीर्वाद अभिशाप प्रतीत होता है।

व्यंग्य-सहज मानवीयता का अभाव

खड्गधारिणी—**(सशंक चारों ओर देखती हुई)** देवि, प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं होता, कभी-कभी मौन रह जाना बुरी बात नहीं है। मुझे अपनी दासी समझिये। **अवरोध**[13] के भीतर मैं गूँगी हूँ। यहाँ **संदिग्ध**[14] न रहने के लिये मुझे ऐसा ही करना पड़ता है।

---

1 सेना के ठहरने के लिए लगाया गया तंबू; 2 परकोटा, चहारदीवारी; 3 चांदनी, वितान (धूप, तेज हवा आदि से बचने के लिए छत की तरह ताना गया मोटा कपड़ा। आजकल इसका इस्तेमाल सार्वजनिक समारोहों में शामियाने के ऊपर किया जाता है); 4 बगीचा; 5 स्वामित्व, गौरव; 6 गगनचुंबी; 7 बंधन रहित, स्वतंत्र; 8 इच्छारहित, उदासीन, चेष्टा रहित; 9 इकट्ठा किया हुआ, जमा किया हुआ; 10 जादू; 11 राजमहल का जनानखाना, हरम; 12 उदाहरण; 13 रुकावट; 14 संदेहपूर्ण।

ध्रुवस्वामिनी — अरे, तो क्या तुम बोलती भी हो? पर यह तो कहो, यह कपट-आचरण किस लिये?

खड्गधारिणी — एक पीड़ित की प्रार्थना सुनाने के लिये। कुमार चन्द्रगुप्त को आप भूल न गयी होंगी।

ध्रुवस्वामिनी — **(उत्कण्ठा[1] से)** वही न, जो मुझे बन्दिनी बनाने के लिये गये थे।

खड्गधारिणी — **(दाँतों से जीभ दबाकर)** यह आप क्या कह रही हैं? उनको तो स्वयम् अपने भीषण भविष्य का पता नहीं। प्रत्येक क्षण उनके प्राणों पर सन्देह करता है। उन्होंने पूछा है कि मेरा क्या अपराध है।

ध्रुवस्वामिनी — **(उदासी की मुस्कराहट के साथ)** अपराध!? मैं क्या बताऊँ! तो क्या कुमार भी बन्दी हैं?

खड्गधारिणी — कुछ-कुछ वैसा ही है देवि! राजाधिराज से कहकर क्या आप उनका कुछ उपकार कर सकेंगी।

रामगुप्त का अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार

ध्रुवस्वामिनी — भला मैं क्या कर सकूँगी? मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना **अनुग्रह**[2] है, यह भी मैं आज तक न जान सकी, मैंने तो कभी उनका मधुर **सम्भाषण**[3] सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में **उन्मत्त**[4], उन्हें अपने आनन्द से अवकाश कहाँ!

खड्गधारिणी — तब तो **अदृष्ट**[5] ही कुमार के जीवन का सहायक होगा। उन्होंने पिता का दिया हुआ **स्वत्व**[6] और राज्य का अधिकार तो छोड़ ही दिया; इसके साथ अपनी एक अमूल्य **निधि**[7] भी। **(कहते-कहते सहसा रुक जाती है)**

ध्रुवस्वामिनी — अपनी अमूल्य निधि! वह क्या?

खड्गधारिणी—वह अत्यन्त गुप्त है देवि, किन्तु मैं प्राणों की भीख माँगती हुई कह सकूँगी।

ध्रुवस्वामिनी—**(कुछ सोचकर)** तो जाने दो, छिपी हुई बातों से मैं घबरा उठी हूँ। हाँ, मैंने उन्हें देखा था, **वह निरभ्र**[8] **प्राची**[9] का **बाल-अरुण**[10]। आह! **राज-चक्र**[11] सबको पीसता है, पिसने दो, हम **निस्सहायों**[12] को और दुर्बलों को पिसने दो।

खड्गधारिणी — देवि, वह **वल्लरी**[13] जो झरने के समीप पहाड़ी पर चढ़ गयी है, उसकी नन्हीं-नन्हीं पत्तियों को ध्यान से देखने पर आप समझ जायेंगी कि वह काई की जाति की है। प्राणों की क्षमता बढ़ा लेने पर वही काई जो **फिसलन**[14] बन कर गिरा सकती थी, अब दूसरों के ऊपर चढ़ने का **अवलम्ब**[15] बन गयी है।

राक्षसी वृत्तियां कहाँ से आ जाती है।

ध्रुवस्वामिनी — **(आकाश की ओर देखकर)** वह, बहुत दूर की बात है। आह, कितनी कठोरता है! मनुष्य के हृदय में देवता को हटा कर राक्षस कहाँ से घुस आता है? कुमार की **स्निग्ध**[16] सरल, और सुन्दर मूर्ति को देख कर कोई भी प्रेम से **पुलकित**[17] हो सकता है। किन्तु, उन्हीं का भाई? आश्चर्य?

खड्गधारिणी — कुमार को इतने में ही सन्तोष होगा कि उन्हें कोई विश्वासपूर्वक स्मरण कर लेता है। रही **अभ्युदय**[18] की बात, सो तो उनको अपने बाहु-बल और भाग्य पर ही विश्वास है।

ध्रुवस्वामिनी — किन्तु उन्हें कोई ऐसा साहस का काम न करना चाहिये जिसमें उनकी परिस्थिति और भी भयानक हो जाय।

(खड्गधारिणी खड़ी होती है)

— अच्छा, तो अब तू जा और अपने मौन संकेत से किसी दासी को यहाँ भेज दे। मैं अभी यहीं बैठना चाहती हूँ।

(खड्गधारिणी नमस्कार करके जाती है। और एक दासी का प्रवेश)

दासी — **(हाथ जोड़कर)** देवि, सायंकाल हो चला है। वनस्पतियाँ शिथिल होने लगी हैं। देखिये न **व्योम-विहारी**[19] पक्षियों का झुण्ड भी अपने **नीड़ों**[20] में प्रसन्न **कोलाहल**[21] से लौट रहा है। क्या भीतर चलने की अभी इच्छा नहीं है?

ध्रुवस्वामिनी की मानसिक स्थिति

ध्रुवस्वामिनी — चलूँगी क्यों नहीं? किन्तु मेरा नीड़ कहाँ? यह तो **स्वर्ण-पिंजर**[22] है।

(करुण भाव से उठकर दासी के कन्धे पर हाथ रखकर चलने को उद्यत होती है। नेपथ्य में कोलाहल — 'महादेवी' कहाँ है, उन्हें कौन बुलाने गयी है?)

ध्रुवस्वामिनी — है-है, यह उतावली कैसी?

प्रतिहारी — **(प्रवेश करके घबराहट से)** **भट्टारक**[23] इधर आये हैं क्या?

ध्रुवस्वामिनी — **(व्यंग्य से मुस्कराती हुई)** मेरे अंचल में तो छिपे नहीं है। देखो किसी कुंज में ढूँढो।

प्रतिहारी — **(सम्भ्रम से)** अरे महादेवी, क्षमा कीजिए। युद्ध-सम्बन्धी एक आवश्यक संवाद देने के लिए महाराज को खोजती हुई मैं इधर आ गयी हूँ।

ध्रुवस्वामिनी — होंगे कहीं, यहां तो नहीं हैं।

(उदास भाव से दासी के साथ ध्रुवस्वामिनी का प्रस्थान। दूसरी ओर से खड्गधारिणी का पुनः प्रवेश और कुंज में से अपना उत्तरीय सँभालता हुआ रामगुप्त निकल कर एक बार प्रतिहारी[24] की ओर फिर खड्गधारिणी की ओर देखता है)

प्रतिहारी — जय हो देव! एक चिन्ताजनक समाचार निवेदन करने के लिए **अमात्य**[25] ने मुझे भेजा है।

रामगुप्त के मन में शंका

रामगुप्त — **(झुँझला कर)** चिन्ता करते-करते देखता हूँ कि मुझे मर जाना पड़ेगा! ठहरो **(खड्गधारिणी से)** हाँ जी, तुमने अपना काम तो अच्छा किया, किन्तु मैं समझ न सका कि चन्द्रगुप्त को वह अब भी प्यार करती है या नहीं?

(खड्गधारिणी प्रतिहारी की ओर देखकर चुप रह जाती है)

शासकीय दायित्वों की उपेक्षा

रामगुप्त — **(प्रतिहारी की ओर क्रोध से देखता हुआ)** तुमसे मैंने कह न दिया कि अभी मुझे अवकाश नहीं, ठहर कर आना।

---

1 उत्सुकता; 2 कृपा; 3 बातचीत; 4 नशे में चूर; 5 भाग्य, नियति; 6 स्वामित्व; 7 खजाना [अमूल्य निधि - बहुत ही महत्वपूर्ण वस्तु]; 8 मेघरहित, जिसमें बादल न हो; 9 पूरब; 10 सुबह का सूरज, अभी-अभी निकला सूरज; 11 शासन; 12 जिसका कोई नही; 13 बेल, लता; 14 फिसलन; 15 सहारा; 16 स्नेहपूर्ण; 17 प्रेम या हर्ष से रोमांच होना (रोएं उभर अपना); 18 उन्नति, समृद्धि, मनोरथ की पूर्ति; 19 आकाश में उड़ने वाले; 20 घोंसलों; 21 शोर; 22 सोने का पिंजरा; 23 राजा; 24 द्वारपाल का काम करने वाली स्त्री; 25 मंत्री

प्रतिहारी — राजाधिराज! शकों ने किसी पहाड़ी राह से उतर कर नीचे का **गिरि-पथ**[1] रोक लिया है। हम लोगों के शिविर का सम्बन्ध **राज-पथ**[2] से छूट गया है। शकों ने दोनों ही ओर से घेर लिया है।

रामगुप्त — दोनों ओर से घिरा रहने में शिविर और भी सुरक्षित है। मूर्ख! चुप रह **(खड्गधारिणी से)** ध्रुवदेवी, क्या मन-ही-मन चन्द्रगुप्त को ···· है न मेरा सन्देह ठीक?

प्रतिहारी — **(हाथ जोड़कर)** अपराध क्षमा हो देव! अमात्य, **युद्ध-परिषद्**[3] में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

रामगुप्त — **(हृदय पर हाथ रखकर)** युद्ध तो यहाँ भी चल रहा है, देखता नहीं जगत् की अनुपम सुन्दरी मुझसे स्नेह नहीं करती और मैं हूँ इस देश का **राजाधिराज**[4]!

प्रतिहारी — महाराज, शकराज का सन्देश लेकर एक दूत भी आया है।

शकालु स्वभाव

रामगुप्त — आह! किन्तु ध्रुवदेवी! उसके मन में टीस है **(कुछ सोचकर)** जो स्त्री दूसरे के शासन में रहकर और प्रेम किसी अन्य पुरुष से करती है; उसमें एक गम्भीर और व्यापक रस **उद्वेलित**[5] रहता होगा। वही तो नहीं, जो चन्द्रगुप्त से प्रेम करेगी वह स्त्री न जाने कब चोट कर बैठे? भीतर-भीतर न जाने कितने **कुचक्र**[6] घूमने लगेंगे। **(खड्गधारिणी से)** सुना न, ध्रुवदेवी से कह देना चाहिये कि वह मुझे और मुझसे ही प्यार करे। केवल **महादेवी**[7] बन जाना ठीक नहीं।

(खड्गधारिणी का प्रतिहारी के साथ प्रस्थान और शिखरस्वामी का प्रवेश)

शिखरस्वामी — कुछ आवश्यक बातें करनी हैं देव!

आत्मसीमित व्यक्तित्व

रामगुप्त — **(चिन्ता से उँगली दिखाते हुए, जैसे अपने-आप बातें कर रहा हो)** ध्रुवदेवी को लेकर क्या **साम्राज्य**[8] से भी हाथ धोना पड़ेगा! नहीं तो फिर? **(कुछ सोचने लगता है)** ठीक तो, **सहसा**[9] मेरे राजदण्ड ग्रहण कर लेने से पुरोहित, अमात्य और सेनापति लोग छिपा हुआ विद्रोह-भाव रखते हैं। **(शिखर से)** है न? केवल एक तुम्हीं मेरे विश्वासपात्र हो। समझा न? यही गिरि-पथ सब झगड़ों का अन्तिम निर्णय करेगा। क्यों अमात्य, जिसकी भुजाओं में बल न हो, उसके मस्तिष्क में तो कुछ होना चाहिये?

शिखरस्वामी — **(एक पत्र देकर)** पहले इसे पढ़ लीजिये। **(रामगुप्त पत्र पढ़ते जैसे आश्चर्य से चौंक उठता है)**। चौंकिये मत, यह घटना इतनी आकस्मिक है कि कुछ सोचने का अवसर नहीं मिलता।

रामगुप्त — **(ठहर कर)** है तो ऐसा ही; किन्तु एक बार ही मेरे **प्रतिकूल**[10] भी नहीं मुझे इसकी सम्भावना पहले से भी थी।

शिखरस्वामी — **(आश्चर्य से)** ऐं? तब तो महाराज ने अवश्य ही कुछ सोच लिया होगा। **मेघसंकुल**[11] आकाश की तरह जिसका भविष्य घिरा हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली के समान चमकना ही चाहिये।

रामगुप्त — **(सशंक)** कह दूँ! सोचा तो है मैंने; परन्तु क्या तुम उसका समर्थन करोगे?

शिखरस्वामी — यदि **नीति-युक्त**[12] हुआ तो अवश्य समर्थन करूँगा। सबके विरुद्ध रहने पर भी स्वर्गीय आर्य समुद्रगुप्त की आज्ञा के प्रतिकूल मैंने ही आपका समर्थन किया था। नीति-सिद्धान्त के आधार पर ज्येष्ठ राजपुत्र को।

रामगुप्त — **(बात काट कर)** वह तो—वह तो मैं जानता हूँ, किन्तु इस समय जो प्रश्न सामने आ गया है, उस पर विचार करना चाहिये। यह तुम जानते हो कि मेरी इस विजय-यात्रा का कोई गुप्त उद्देश्य है। उसकी सफलता भी सामने दिखाई पड़ रही है। हाँ, थोड़ा-सा साहस चाहिये।

शिखरस्वामी — वह क्या?

आत्मसीमित व्यक्तित्व

रामगुप्त — शक-दूत सन्धि के लिए जो प्रमाण चाहता हो, उसे अस्वीकार न करना चाहिये। ऐसा करने में इस संकट के बहाने जितना विरोधी प्रकृति है उस सबको हम लोग सहज में ही हटा सकेंगे।

शिखरस्वामी — भविष्य के लिये यह चाहे अच्छा हो; किन्तु इस समय तो हम लोगों को बहुत-से विघ्नों का सामना करना पड़ेगा।

रामगुप्त — **(हँसकर)** तब तुम्हारी बुद्धि कब काम में आयेगी? और हाँ, चन्द्रगुप्त के मनोभाव का कुछ पता लगा?

शिखरस्वामी — कोई नयी बात तो नहीं।

शंका

रामगुप्त — मैं देखता हूँ कि मुझे पहले अपने अन्तःपुर के ही विद्रोह का दमन करना होगा। **(निःश्वास लेकर)** ध्रुवदेवी के हृदय में चन्द्रगुप्त की आकांक्षा धीरे-धीरे जाग रही है।

शिखरस्वामी — यह असम्भव नहीं; किन्तु महाराज! इस समय आपको दूत से **साक्षात करके**[13] उपस्थित राजनीति पर ध्यान देना चाहिए। यह एक विचित्र बात है कि प्रबल पक्ष संधि के लिए प्रस्ताव भेजे।

रामगुप्त — विचित्र हो चाहे सचित्र, अमात्य, तुम्हारी राजनीतिज्ञता इसी में है कि भीतर और बाहर के सब शत्रु एक ही चाल में परास्त हों। तो चलो।

(दोनों का प्रस्थान! मन्दाकिनी का सशंक भाव से प्रवेश)

मंदाकिनी का अपना कोई स्वार्थ नहीं। कर्तव्य पालन के लिए जीना ही उसके [illegible] का लक्ष्य है।

मन्दाकिनी — **(चारों ओर देख कर)** भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिये साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है! सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक **छल-छन्द**[14] की धूल उड़ती है। **(कुछ सोचकर)** कुमार चन्द्रगुप्त को यह सब समाचार शीघ्र ही मिलना चाहिये। गूँगी के अभिनय में महादेवी के हृदय का आवरण तनिक-सा हटा है, किन्तु वह थोड़ा-सा स्निग्ध भाव भी कुमार के लिये कम महत्व नहीं रखता। कुमार चन्द्रगुप्त! कितना समर्पण का भाव है उसमें? और उसका बड़ा भाई रामगुप्त! कपटाचारी रामगुप्त! जो करता है इस **कलुषित**[15]

---

1 दर्रा, पर्वतों के बीच का तंग रास्ता; 2 मुख्य सड़क, राजमार्ग; 3 [illegible] 4 राजाओं का राजा; 5 छलकना; 6 षड्यंत्र; 7 राजा की प्रधान पत्नी, पटरानी; 8 वह राज्य जिसके अधीन बहुत से देश हों और जिसमें किसी एक सम्राट का शासन हो; 9 अचानक, एकाएक; 10 खिलाफ़, विपरीत, विरुद्ध 11 बादलों से घिरे हुये; 12 शासन की पद्धति के उपयुक्त; 13 मिलकर; 14 छल-कपट; 15 दूषित, गंदा।

वातावरण से कहीं दूर, **विस्मृत**[1] में अपने को छिपा लूँ। पर मन्दा! तुझे **विधाता**[2] ने क्यों बनाया? **(सोचने लगती है)** नहीं, मुझे हृदय कठोर करके अपना कर्तव्य करने के लिये यहाँ रुकना होगा। न्याय का दुर्बल पक्ष ग्रहण करना होगा।

(गाती है)

यह कसक अरे आँसू सह जा।
बनकर विनम्र अभिमान मुझे
मेरा अस्तित्व बता, रह जा।
बन प्रेम छलक कोने-कोने
अपनी नीरव गाथा कह जा।
करुणा बन दुखिया वसुधा पर
शीतलता फैलाता बह जा।

(जाती है। ध्रुवस्वामिनी का उदास भाव से धीरे-धीरे प्रवेश) पीछे एक परिचारिका[3] पान का डिब्बा और दूसरी चमर लिये आती है। ध्रुवस्वामिनी एक मंच पर बैठकर अधरों पर उंगली रखकर कुछ सोचने लगती है और चमरधारिणी चमर चलाने लगती है)

ध्रुवस्वामिनी — **(दूसरी परिचारिका से)** हाँ, क्या कहा! शिखरस्वामी कुछ कहना चाहते हैं? कह दो कल सुनूँगी, आज नहीं।

परिचारिका — जैसी आज्ञा। तो मैं कह आऊँ कि अमात्य से कल महादेवी बातें करेंगी?

व्यंग्य

ध्रुवस्वामिनी — **(कुछ सोचकर)** ठहरो तो, वह गुप्त-साम्राज्य का अमात्य है, उससे आज ही भेंट करना होगा। हाँ, यह तो बताओ, तुम्हारे राजकुल में नियम क्या है? पहले अमात्य की मन्त्रणा सुननी पड़ती है, तब राजा से भेंट होती है?

परिचारिका — **(दाँतों से जीभ दबाकर)** ऐसा नियम तो मैंने नहीं सुना। यह युद्ध-शिविर है न? परमभट्टारक को अवसर न मिला होगा। महादेवी! आपको सन्देह न करना चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी — मैं महादेवी ही हूँ न? यदि यह सत्य है तो क्या तुम मेरी आज्ञा से कुमार चन्द्रगुप्त को यहाँ बुला सकती हो? मैं चाहती हूँ कि अमात्य के साथ ही कुमार से भी कुछ बातें कर लूँ।

परिचारिका — क्षमा कीजिये, इसके लिए तो पहले अमात्य से पूछना होगा।

(ध्रुवस्वामिनी क्रोध से उसकी ओर देखने लगती है और वह पान का डिब्बा रख कर चली जाती है। एक बौने का कुबड़े और हिजड़े के साथ प्रवेश)

बौने, हिजड़े, कुबड़े के माध्यम से लेखक राजकुल का पतनशील परिवेश प्रस्तुत करना चाहता है। उनका दिग्विजय का नाटक पूरी स्थिति पर व्यंग्य भी करता है।

कुबड़ा — युद्ध! भयानक युद्ध!

बौना — हो रहा है कि कहीं होगा मित्र!

हिजड़ा — बहनों, यहीं युद्ध करके दिखाओ न, महादेवी भी देख लें।

बौना — **(कुबड़े से)** सुनता है रे! तू अपना **हिमाचल**[4] इधर कर दे—मैं **दिग्विजय**[5] करने के लिए **कुबेर**[6] पर चढ़ाई करूँगा।

(उसके कूबड़ को दबाता है और कुबड़ा अपने घुटनों और हाथों के बल बैठ जाता है। हिजड़ा कुबड़े की पीठ पर बैठता है। बौना एक मोर्छल[7] लेकर तलवार की तरह उसे घुमाने लगता है)

हिजड़ा — अरे! यह तो मैं हूँ **नल-कूबर**[8] की वधू! दिग्विजयी वीर, क्या तुम स्त्री से युद्ध करोगे? लौट जाओ, कल आना। मेरे श्वसुर और **आर्यपुत्र**[9] दोनों ही **उर्वशी**[10] और **रम्भा**[11] के अभिसार से अभी नहीं आये। कुछ आज ही तो युद्ध करने का शुभ मूहुर्त नहीं है।

बौना — **(मोर्छल से पटा घुमाता हुआ)** नहीं; आज ही युद्ध होगा। तुम स्त्री नहीं हो, तुम्हारी उँगलियाँ तो मेरी तलवार से भी अधिक चल रही हैं। कूबड़ तुम्हारे नीचे हैं। तब मैं कैसे मान लूँ कि तुम न तो नल-कुबर हो और न कुबेर! तुम्हारे वस्त्रों से मैं धोखा न खा जाऊँगा। तुम पुरुष हो, युद्ध करो!

हिजड़ा — **(उसी तरह मटकते हुये)** अरे मैं स्त्री हूँ। बहनों, कोई मुझसे ब्याह भले ही कर सकता है, लड़ाई मैं क्या जानूँ।

(दासी के साथ शिखरस्वामी का प्रवेश)

शिखरस्वामी — महादेवी की जय हो!

(दूसरी ओर से एक युवती दासी के कन्धे का सहारा लिये कुछ-कुछ मदिरा के नशे में रामगुप्त का प्रवेश। मुस्कराता हुआ बौने का खेल देखने लगता है। ध्रुवस्वामिनी उठकर खड़ी हो जाती है और शिखरस्वामी रामगुप्त को संकेत करता है)

रामगुप्त — **(कुछ भर्राये हुये कण्ठ से)** महादेवी की जय हो!

ध्रुवस्वामिनी — स्वागत महाराज!

(रामगुप्त एक मंच पर बैठ जाता है और शिखरस्वामी ध्रुवस्वामिनी के इस उदासीन शिष्टाचार से चकित होकर सिर खुजलाने लगता है)

---

1 भूल जाना; 2 ईश्वर, सृष्टा; 3 सेविका; 4 हिमालय पर्वत (व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग। "कूबड़" के लिए "हिमाचल" शब्द प्रयुक्त हुआ है); 5 वीरता दिखलाने और महत्व स्थापित करने के उद्देश्य से राजाओं का अपनी सेना लेकर निकल पड़ना और अन्य राजाओं को हरा कर चारों दिशाओं में अपना साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास; 6 धन और समृद्धि के देवता; 7 मोर के पंखों का चमर; 8 कुबेर का पुत्र, 9 प्राचीन [illegible] प्रयुक्त संबोधन 10 इंद्रलोक की प्रसिद्ध अप्सरा 11 एक अन्य अप्सरा

कुबड़ा — दोहाई राजाधिराज की! मुझ हिमालय का कूबड़ दुखने लगा। न तो यह नल-कूबर की वधू मेरे कूबर से उठती है और न तो यह बौना मुझे विजय ही कर लेता है।

रामगुप्त — **(हँसते हुए)** वाह रे वामन वीर! यहाँ दिग्विजय का नाटक खेला जा रहा है क्या?

बौना — **(अकड़कर) वामन**[1] के बलि-विजय की गाथा और तीन पगों की महिमा सब लोग जानते हैं। मैं भी तीन लात में इसका कूबर सीधा कर सकता हूँ।

कुबड़ा — लगा दे भाई बौना! फिर यह अचल **हेमकूट**[2] बनना तो छूट जाय।

हिजड़ा — देखो जी, मैं नल-कूबर की वधू इस पर बैठी हूँ।

बौना — झूठ! युद्ध के डर से पुरुष होकर भी यह स्त्री बन गया है।

हिजड़ा — मैं तो पहले ही कह चुकी कि मैं युद्ध करना नहीं जानती।

बौना — तुम नल-कूबर की स्त्री हो न, तो अपनी विजय का उपहार समझ कर मैं तुम्हारा हरण कर लूँगा। **(और लोगों की ओर देखकर उसका हाथ पकड़ कर खींचता हुआ)** ठीक होगा न? कदाचित् यह धर्म के विरुद्ध न होगा।

नाटकीय भविष्य कथन (Dramatic Irony) विजय उपहार में स्त्री लेना तथा शकराज द्वारा ध्रुवस्वामिनी को उपहार स्वरूप मांगा जाना

(रामगुप्त ठठाकर हँसने लगता है)

ध्रुवस्वामिनी — **(क्रोध से कड़क कर)** निकलो! अभी निकलो, यहाँ ऐसी निर्लज्जता का नाटक मैं नहीं देखना चाहती। **(शिखरस्वामी की ओर भी सक्रोध**[3] **देखती है। शिखर के संकेत करने पर वे सब भाग जाते हैं)**

रामगुप्त — अरे, ओ दिग्विजयी! सुन तो **(उठ कर ताली पीटता हुआ हँसने लगता है। ध्रुवस्वामिनी क्षोभ और घृणा से मुँह फिरा लेती है। शिखरस्वामी के संकेत से दासी मदिरा का पात्र ले आती है, उसे देख कर प्रसन्नता से आँखे फाड़ कर शिखर की ओर अपना हाथ बढ़ा देता है)** अमात्य, आज ही महादेवी के पास मैं आया और आप भी पहुँच गये, यह एक विलक्षण घटना है। है न? **(पात्र लेकर पीता है)**

रामगुप्त की चालाकी और धूर्तता, जिसमें शिखरस्वामी का सहयोग है

शिखरस्वामी — देव, मैं इस समय एक आवश्यक कार्य से आया हूँ।

रामगुप्त — ओह, मैं तो भूल ही गया था! वह बर्बर शकराज क्या चाहता है? मैं आक्रमण न करूँ, इतना ही तो? जाने दो, युद्ध कोई अच्छी बात तो नहीं!

शिखरस्वामी — वह और भी कुछ चाहता है।

रामगुप्त — क्या कुछ सहायता भी माँग रहा है?

शिखरस्वामी — **(सिर झुका कर गम्भीरता से)** नहीं देव, वह बहुत ही **असंगत**[4] और अशिष्ट **याचना**[5] कर रहा है।

रामगुप्त — क्या? कुछ कहो भी।

शिखरस्वामी — क्षमा हो महाराज! दूत तो **अवध्य**[6] होता है; इसलिये उसका सन्देश सुनना ही पड़ा। वह कहता था कि शकराज से महादेवी ध्रुवस्वामिनी का **(रुक कर ध्रुवस्वामिनी की ओर देखने लगता है। ध्रुवस्वामिनी सिर हिला कर कहने की आज्ञा देती है)** विवाह-सम्बन्ध **स्थिर**[7] हो चुका था, बीच में ही आर्य समुद्रगुप्त की विजय यात्रा में महादेवी के पिता जी ने उपहार में गुप्तकुल में भेज दिया, इसलिए महादेवी को वह।

रामगुप्त — ऐं, क्या कहते हो अमात्य? क्या वह महादेवी को मांगता है।

शिखरस्वामी — हाँ देव! साथ ही वह अपने **सामन्तों**[8] के लिए मगध के सामन्तों की स्त्रियों को माँगता है।

रामगुप्त — **(श्वास लेकर)** ठीक ही है, जब उसके यहाँ सामन्त हैं, तब उन लोगों के लिए भी स्त्रियाँ चाहिएँ। हां, क्या यह सच है कि महादेवी के पिता ने शकराज से इनका सम्बन्ध स्थिर कर लिया था?

शिखरस्वामी — यह तो मुझे नहीं मालूम?

(ध्रुवस्वामिनी रोष से फूलती हुई टहलने लगती है)

रामगुप्त — महादेवी, अमात्य क्या पूछ रहे हैं?

ध्रुवस्वामिनी — इस प्रथम सम्भाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज! किन्तु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त-साम्राज्य क्या **स्त्री-सम्प्रदान**[9] से ही बढ़ा है?

व्यंग्य

रामगुप्त — **(झेंपकर हंसता हुआ)** हें-हें-हें, बताइये अमात्य जी!

शिखरस्वामी — मैं क्या कहूँ? शत्रु-पक्ष का यही सन्धि-सन्देश है। यदि स्वीकार न हो तो युद्ध कीजिये। शिविर दोनों ओर से घिर गया है। उसकी बातें मानिये, या मर कर भी अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा कीजिये। दूसरा कोई उपाय नहीं।

रामगुप्त — **(चौंककर)** क्या प्राण देने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं? ऊँहूँ, तब तो महादेवी से पूछिये।

ध्रुवस्वामिनी — **(तीव्र स्वर से)** और आप लोग, कुबड़ों, बौनों और नपुंसकों का नृत्य देखेंगे। मैं जानना चाहती हूँ किसने सुख-दुख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा **अग्नि-वेदी**[10] के सामने की है?

रामगुप्त — **(चारों ओर देखकर)** किसने की है, कोई बोलता क्यों नहीं?

---

1 बौना आदमी, वामनावतार; 2 हिमालय के उत्तर का एक पर्वत; 3 क्रोध से; 4 अनुचित; 5 माँगना; 6 वध के अयोग्य (दूत का वध नहीं किया जाता); 7 तय, निश्चित; 8 किसी सम्राट द्वारा अपने अधीन सरदारों या राजाओं को दी गई पदवी; 9 देना, प्रदान करना; 10 यज्ञ इत्यादि के लिये तैयार किया हुआ स्थान जिसमें अग्नि प्रज्वलित हो। विवाह की वेदी।

टिप्पणी : वामनावतार की कथा — राजा बलि ने जब इंद्रादि देवों को परास्त करके स्वर्ग पर अधिकार कर लिया तो वे सहायता के लिए विष्णु के पास गये। विष्णु वामन (बौने) के अवतार के रूप में राजा बलि के पास गये और उनसे तीन पग भूमि दान में माँगी। दो पगों में उन्होंने सारी पृथ्वी को नाप लिया और कहा कि तीसरे पग के लिए भूमि कहाँ है तब राजा बलि ने उन्हें स्वयं अपना शरीर अर्पित किया और वामन ने तीसरा पग बढ़ा कर बलि के सिर पर रखा। इस तरह बलि का दर्प दलन किया। बलि की विनम्रता और दानशीलता पर प्रसन्न होकर उन्हें इंद्र बनने का आशीर्वाद किया।

ध्रुवस्वामिनी — तो क्या मैं राजाधिराज रामगुप्त की महादेवी नहीं हूँ?

रामगुप्त — क्यों नहीं? परन्तु रामगुप्त ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा न की होगी। मैं तो उस दिन **द्राक्षासव**[1] में डुबकी लगा रहा था। पुरोहितों ने न जाने क्या-क्या पढ़ा दिया होगा। उन सब बातों का बोझ मेरे सिर पर! **(सिर हिलाकर)** कदापि नहीं।

ध्रुवस्वामिनी — **(निस्सहाय होकर हीनता से शिखरस्वामी के प्रति)** यह तो हुई राजा की व्यवस्था, अब सुनूँ मन्त्री महोदय क्या कहते हैं।

शिखरस्वामी — मैं कहूँगा देवी, अवसर देख कर राज्य की रक्षा करने वाली उचित **सम्मति**[2] दे देना ही तो मेरा कर्तव्य है। राजनीति के सिद्धान्त से राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है। उसके लिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सब का विसर्जन किया जा सकता है। किन्तु **राज-विसर्जन**[3] अन्तिम उपाय है।

रामगुप्त — **(प्रसन्नता से)** वाह! क्या कहा तुमने! तभी तो लोग तुम्हें **नीति-शास्त्र**[4] का **बृहस्पति**[5] समझते हैं!

ध्रुवस्वामिनी — अमात्य, तुम बृहस्पति हो चाहे **शुक्र**[6] किन्तु धूर्त होने से ही क्या मनुष्य भूल नहीं करता? आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र को पहचानने में तुमने भूल तो नहीं की? सिंहासन पर भ्रम से किसी दूसरे को तो नहीं बिठा दिया!

रामगुप्त — **(आश्चर्य से)** क्या? क्या?? क्या???

ध्रुवस्वामिनी का चरित्र अन्याय का विरोध

ध्रुवस्वामिनी — कुछ नहीं मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी **पशु-सम्पत्ति समझकर**[7] उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव, नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। हाँ तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी।

शिखरस्वामी — **(मुँह बना कर)** ऊँह, राजनीति में ऐसी बातों को स्थान नहीं। जब तक नियमों के अनुकूल सन्धि का पूर्ण रूप से पालन न किया जाय, तब तक सन्धि का कोई अर्थ ही नहीं।

ध्रुवस्वामिनी — देखती हूँ कि इस राष्ट्र-रक्षा-यज्ञ में रानी की बलि होगी ही।

शिखरस्वामी — दूसरा कोई उपाय नहीं।

ध्रुवस्वामिनी — **(क्रोध से पैर पटक कर)** उपाय नहीं, तो न हो निर्लज्ज अमात्य फिर ऐसा प्रस्ताव मैं सुनना नहीं चाहती।

रामगुप्त — **(चौंक कर)** इस छोटी सी बात के लिए इतना बड़ा उपद्रव! **(दासी की ओर देख कर)** मेरा तो कण्ठ सूखने लगा।

(वह मदिरा देती है)

ध्रुवस्वामिनी — **(दृढ़ता से)** अच्छा, तो अब मैं चाहती हूँ कि अमात्य अपने मन्त्रणा-गृह में जायें मैं केवल रानी ही नहीं, किन्तु स्त्री भी हूँ; मुझे अपने को पति कहने वाले पुरुष से कुछ कहना है, राजा से नहीं।

(शिखरस्वामी का दासियों के साथ प्रस्थान)

रामगुप्त — ठहरो जी, मैं भी चलता हूँ **(उठना चाहता है। ध्रुवस्वामिनी उसका हाथ पकड़ कर रोक लेती है)** तुम मुझसे क्या कहना चाहती हो?

अधिकार की माँग

ध्रुवस्वामिनी — **(ठहर कर)** अकेले यहाँ भय लगता है क्या? बैठिये, सुनिये। मेरे पिता ने उपहार-स्वरूप कन्या-दान किया था। किन्तु गुप्त-सम्राट क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देंगे? **(घुटने के बल बैठकर)** देखिये, मेरी ओर देखिये। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए **प्राणों का पण लगा**[8] सके।

रामगुप्त का चरित्र स्वार्थ और आत्मसीमित

रामगुप्त — **(उसे देखता हुआ)** तुम सुन्दर हो, ओह, कितनी सुन्दर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता—तुम्हारा नारीत्व—अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिये मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ **कदाचित**[9] तुम यह नहीं जानती हो।

ध्रुवस्वामिनी — **(उसके पैरों को पकड़कर)** मैं गुप्त-कुल की वधू होकर इस राज-परिवार में आयी हूँ। इसी विश्वास पर।

रामगुप्त — **(उसे रोक कर)** वह सब मैं नहीं सुनना चाहता।

ध्रुवस्वामिनी — मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ, कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई; किन्तु वह मेरा **अहंकार**[10] चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी। राज्य और सम्पत्ति रहने पर राजा को — पुरुष को बहुत-सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं; किन्तु व्यक्ति का **मान**[11] नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।

रामगुप्त — **(घबराकर उसका हाथ हटाता हुआ)** ओह, तुम्हारा यह **घातक**[12] स्पर्श बहुत ही उत्तेजनापूर्ण है! मैं, — नहीं। तुम मेरी रानी? नहीं, नहीं। जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?

साहस, दृढ़ता और आत्म विश्वास। अन्याय का विरोध

ध्रुवस्वामिनी — **(खड़ी होकर रोष से)** निर्लज्ज! **मद्यप**[13]!! **क्लीव**[14]!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? **(ठहर कर)** नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु, **शीतल-मणि**[15] नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी। **(रशना[16] से कृपाणी निकाल लेती है)**।

---

1 अंगूर का आसव (मदिरा); 2 राय; 3 परित्याग, छोड़ना; 4 वह शास्त्र जिसमें आचरण संबंधी नियमों का विधान हो, राजनीति संबंधी शास्त्र; 5 देवताओं के गुरू; 6 शुक्राचार्य, दैत्यों के गुरु; 7 संपति समझना (मुहावरा) (तद्भव रूप) (भेड़-बकरी समझना); 8 प्राणों का पण लगाना (मुहावरा) (तदभव रूप प्राणों की बाजी लगाना); 9 शायद; 10 गर्व, घमंड; 11 आत्म-सम्मान; 12 हत्यारा, जीवन के लिए हानिकर; 13 शराबी; 14 कायर, नपुंसक; 15 शीतलता प्रदान करने वाली वस्तु, चन्द्र कांत मणि; 16 करधनी

रामगुप्त — **(भयभीत होकर पीछे हटता हुआ)** तो क्या तुम मेरी हत्या करोगी?

ध्रुवस्वामिनी — तुम्हारी हत्या? नहीं, तुम जिओ। भेड़ की तरह तुम्हारा क्षुद्र जीवन! उसे न लूँगी! मैं अपना ही जीवन समाप्त करूँगी।

स्वार्थपरता

रामगुप्त — किन्तु तुम्हारे मर जाने पर उस **बर्बर**[1] शकराज के पास किसको भेजा जायगा? नहीं, नहीं, ऐसा न करो। हत्या! हत्या!! दौड़ो! दौड़ो!! **(भागता हुआ निकल जाता है : दूसरी ओर से वेग सहित चन्द्रगुप्त का प्रवेश)**

चन्द्रगुप्त — हत्या! कैसी हत्या!! **(ध्रुवस्वामिनी को देखकर)** यह क्या? महादेवी ठहरिये!

ध्रुवस्वामिनी — कुमार, इसी समय तुम्हें भी आना था! **(सकरुण देखती हुई)** मैं प्रार्थना करती हूँ कि तुम यहाँ से चले जाओ! मुझे अपने अपमान में **निर्वसन**[2] — नग्न देखने का किसी पुरुष को अधिकार नहीं! मुझे मृत्यु की चादर से अपने को ढँक लेने दो।

चन्द्रगुप्त — किन्तु क्या कारण सुनने का मैं अधिकारी नहीं हूँ?

ध्रुवस्वामिनी — सुनोगे? **(ठहर कर सोचती हुई)** नहीं, अभी आत्महत्या नहीं करूँगी। यह तीखी छुरी इस **अतृप्त**[3] हृदय में **विकासोन्मुख**[4] कुसुम में विषैले कीट के डंक की तरह चुभा दूँ या नहीं, इस पर विचार करूँगी। यदि नहीं तो मेरी दुर्दशा का पुरस्कार क्या कुछ और है? हाँ जीवन के लिए कृतज्ञ, उपकृत और आभारी होकर किसी के अभिमानपूर्ण आत्म-विज्ञापन का भार ढोती रहूँ—यही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है? छुटकारा नहीं? जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगा ही? तो क्या यह मेरा जीवन भी अपना नहीं है?

जीने की इच्छा और अहं के बीच अंतर्द्वंद्व

चन्द्रगुप्त — देवि, जीवन विश्व की सम्पत्ति है। प्रसाद से, क्षणिक **आवेश**[5] से, या दुःख की कठिनाइयों से उसे नष्ट करना ठीक तो नहीं। गुप्त-कुल-लक्ष्मी आज यह **छिन्नमस्ता**[6] का अवतार किसलिये धारण करना चाहती है? सुनूँ भी?

ध्रुवस्वामिनी — नहीं, मैं न मरूँगी। क्योंकि तुम आ गये हो मेरी **शिविका**[7] के साथ चामर-सज्जित अश्व पर चढ़कर तुम्हीं उस दिन आये थे? तुम्हारा विश्वासपूर्ण मुखमण्डल मेरे साथ आने में क्यों इतना प्रसन्न था?

चन्द्रगुप्त — मैं गुप्त-कुल-वधू को आदरसहित ले आने के लिए गया था फिर प्रसन्न क्यों न होता?

ध्रुवस्वामिनी — तो फिर आज मुझे शक-शिविर में पहुँचाने के लिए उसी प्रकार तुमको मेरे साथ चलना होगा। **(आँखों से आँसू पोंछती है)**

चन्द्रगुप्त — **(आश्चर्य से)** यह कैसा **परिहास**[8]!

ध्रुवस्वामिनी — कुमार! यह परिहास नहीं, राजा की आज्ञा है। शकराज को मेरी अत्यन्त आवश्यकता है। यह **अवरोध**[9], बिना मेरे उपहार दिये नहीं हट सकता।

चन्द्रगुप्त — **(आवेश से)** यह नहीं हो सकता। महादेवी! जिस मर्यादा के लिए — जिस महत्व को स्थिर रखने के लिए, मैंने **राजदण्ड**[10] ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया; उसका यह अपमान! मेरे जीवित रहते आर्य समुद्रगुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह **पद-दलित**[11] न होना पड़ेगा। **(ठहर कर)** और भी एक बात है! मेरे हृदय के अन्धकार में प्रथम किरण-सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था, उसको भी मैंने केवल इसीलिए भूलने का प्रयत्न किया कि — **(सहसा चुप हो जाता है।)**

चन्द्रगुप्त का चरित्र—विनम्रता, कर्तव्य-परायणता, ध्रुवस्वामिनी के प्रति स्नेह

ध्रुवस्वामिनी — **(आँख बन्द किये हुए कुतूहल-भरी प्रसन्नता से)** हाँ—हाँ कहो—कहो।

(शिखरस्वामी के साथ रामगुप्त का प्रवेश)

रामगुप्त — देखो तो कुमार! यह भी कोई बात है? आत्महत्या कितना बड़ा अपराध है।

चन्द्रगुप्त — और आप से तो वह भी नहीं करते बनता!

रामगुप्त — **(शिखरस्वामी से)** देखो, कुमार के मन में छिपा हुआ **कलुष**[12] कितना-कितना भयानक है?

शिखरस्वामी — कुमार, विनय गुप्त-कुल का सर्वोत्तम **गृह-विधान**[13] है, उसे न भूलना चाहिये!

चन्द्रगुप्त — **(व्यंग्य से हँसकर)** अमात्य, तभी तो तुमने व्यवस्था दी है कि महादेवी को देकर भी सन्धि की जाय! क्यों, यही तो विनय की **पराकाष्ठा**[14] है? ऐसा विनय **प्रवंचकों**[15] का **आवरण**[16] है, जिसमें शील न हो। और शील परस्पर सम्मान की घोषणा करता है। कापुरुष! आर्य समुद्रगुप्त का सम्मान।

शिखरस्वामी — **(बीच में बात काट कर)** उसके लिए मुझे प्राणदण्ड दिया जाय! मैं उसे **अविचल**[17] भाव से ग्रहण करूँगा; परन्तु राजा और राष्ट्र की रक्षा होनी चाहिये।

मन्दाकिनी — **(प्रवेश करके)** राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उस राज की रक्षा होनी चाहिये। अमात्य यह कैसी विवशता है! तुम मृत्यु दण्ड के लिये उत्सुक! महादेवी आत्महत्या करने के लिये प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखो। बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वनाश!

चन्द्रगुप्त — आहा; मन्दा! भला तू कहाँ से यह उत्साह भरी बात कहने के लिये आ गयी? ठीक तो है अमात्य! सुनो, यह स्त्री क्या कह रही है?

रामगुप्त — **(अपने हाथों को मसलते हुये)** दुरभिसन्धि, छल, मेरे प्राण लेने का कौशल!

चन्द्रगुप्त — तब आओ, हम स्त्री बन जायें और बैठ कर रोयें।

हिजड़ा — **(प्रवेश करके)** कुमार, स्त्री बनना सहज नहीं है। कुछ दिनों तक मुससे सीखना होगा। **(सबका मुँह देखता है और शिखरस्वामी के मुँह पर हाथ फेरता है)** ऊहूँ, तुम नहीं बन सकते। तुम्हारे ऊपर बड़ा कठोर आवरण

---

1 असभ्य, जंगली; 2 वस्त्रहीन; 3 जो तृप्त या संतुष्ट न हो; 4 जो विकसित हो रहा है; 5 क्रोध; 6 देवी (शक्ति) का एक रूप; 7 पालकी; 8 मजाक; 9 बाधा; 10 राजा होने के प्रमाण के रूप में राजा द्वारा गृहीत दण्ड राज्याधिकार; 11 पैरों के नीचे रौंदा हुआ, जो दबा कर हीन कर दिया गया हो; 12 पाप; 13 पारिवारिक नियम; 14 चरम सीमा, हद;, 15 ठग, धूर्त; 16 पर्दा, ढकने या छिपाने का साधन, 17 .अचल, स्थिर।

है। **(कुमार के समीप जा कर)** कुमार! मैं शपथ खाकर कह सकती हूँ कि यदि मैं अपने हाथों से सजा दूँ तो आपको देख कर महादेवी का भ्रम हो जाय।

(चन्द्रगुप्त उसका कान पकड़ कर बाहर कर देता है।)

ध्रुवस्वामिनी — उसे छोड़ दो कुमार। यहाँ पर एक वही नपुंसक तो नहीं है। बहुत-से लोगों में से किसको-किसको निकालोगे?
(चन्द्रगुप्त उसे छोड़ कर चिन्तित-सा टहलने लगता है और शिखरस्वामी रामगुप्त के कानों में कुछ कहता है)
चन्द्रगुप्त — **(सहसा खड़े होकर)** अमात्य, तो तुम्हारी ही बात रही। हाँ, उसमें तुम्हारे सहयोगी हिजड़े की भी सम्मति मुझे अच्छी लगी। मैं ध्रुवस्वामिनी बन कर अन्य सामन्त कुमारों के साथ शकराज के पास जाऊँगा। यदि मैं सफल हुआ तब तो कोई बात ही नहीं, अन्यथा, मेरी मृत्यु के बाद तुम लोग जैसा उचित समझना, वैसा करना।
ध्रुवस्वामिनी — **(चन्द्रगुप्त को अपनी भुजाओं में पकड़ कर)** नहीं, मैं तुमको न जाने दूँगी। मेरे क्षुद्र, दुर्बल नारी-जीवन का सम्मान बचाने के लिए इतने बड़े बलिदान की आवश्यकता नहीं।
रामगुप्त — **(आश्चर्य और क्रोध से)** छोड़ो, छोड़ो यह कैसा अनर्थ! सबके सामने यह कैसी निर्लज्जता!
ध्रुवस्वामिनी — **(चन्द्रगुप्त को छोड़ती हुई जैसे चैतन्य हो कर)** यह पाप है? जो मेरे लिए अपनी बलि दे सकता हो, जो मेरे स्नेह **(ठहर कर)** अथवा इससे क्या? शकराज क्या मुझे देवी बना कर भक्ति-भाव से मेरी पूजा करेगा! वाह रे लज्जाशील पुरुष!
(शिखरस्वामी फिर रामगुप्त के कान में कुछ कहता है। रामगुप्त स्वीकारसूचक सिर हिलाता है)
शिखरस्वामी — राजाधिराज, आज्ञा दीजिये, यही एक उपाय है, जिसे कुमार बता रहे हैं। किन्तु राजनीति की दृष्टि से महादेवी का भी वहाँ जाना आवश्यक है।
चन्द्रगुप्त — **(क्रोध से)** क्यों आवश्यक है! यदि उन्हें जाना ही पड़ा तो फिर मेरे जाने से क्या लाभ!. तब मैं न जाऊँगा।
रामगुप्त — नहीं यह मेरी आज्ञा है। सामन्त कुमारों के साथ जाने के लिये प्रस्तुत हो जाओ।
ध्रुवस्वामिनी — तो कुमार! हम लोगों का चलना निश्चित ही है अब इसमें विलम्ब की आवश्यकता नहीं।

(चन्द्रगुप्त का प्रस्थान। ध्रुवस्वामिनी मंच पर बैठ कर रोने लगती है)

रामगुप्त — अब यह कैसा अभिनय! मुझे तो पहले से ही शंका थी, और आज तो तुमने मेरी आँखें भी खोल दीं।
ध्रुवस्वामिनी — अनार्य! निष्ठुर[1] मुझे कलंक-कालिमा के कारागार में बन्द कर, मर्म वाक्य के धुँयें से दम घोंट कर मार डालने की आशा न करो। आज मेरी असहायता मुझे अमृत पिलाकर मेरा निर्लज्ज जीवन बढ़ाने के लिए तत्पर है। **(उठकर, हाथ से निकल जाने का संकेत करती हुई)** जाओ मैं एकान्त चाहती हूँ।

(शिखरस्वामी के साथ रामगुप्त का प्रस्थान)

ध्रुवस्वामिनी — कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंगन! कितने सन्तोष से भरा था! नियति ने अज्ञात भाव से मानों लू से तपी हुई वसुधा[2] को क्षितिज[3] के निर्जन से सायंकालीन शीतल आकाश से मिला दिया हो। **(ठहर कर)** जिस वायुविहीन प्रदेश में उखड़ी हुई साँसों पर बन्धन हो— अर्गला[4] हो वहाँ रहते-रहते यह जीवन असह्य हो गया था। तो भी मरूँगी नहीं। संसार के कुछ दिन विधाता के विधान[5] में अपने लिये सुरक्षित करा लूँगी। कुमार! तुमने वही किया, जिसे मैं बचाती रही। तुम्हारे उपकार और स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ। ओह, **(हृदय पर उँगली रख कर)** इस वक्षस्थल में दो हृदय हैं क्या? जब अन्तरंग 'हां' करना चाहता है, तब ऊपरी मन 'ना' क्यों कहला देता है?
चन्द्रगुप्त — **(प्रवेश कर के)** महादेवि, हम लोग प्रस्तुत हैं किन्तु ध्रुवस्वामिनी के साथ शक-शिविर में जाने के लिये हम लोग सहमत नहीं।
ध्रुवस्वामिनी — **(हँस कर)** राजा की आज्ञा मान लेना ही पर्याप्त नहीं। रानी की भी एक बात न मानोगे? मैंने तो पहले ही कुमार से प्रार्थना की थी कि मुझे जैसे ले आये हो; उसी तरह पहुँचा भी दो।
चन्द्रगुप्त — नहीं — मैं अकेला ही आऊँगा।
ध्रुवस्वामिनी — कुमार! यह मृत्यु और निर्वासन[6] का सुख, तुम अकेले ही लोगे, ऐसा नहीं हो सकता। राजा की इच्छा क्या है, यह जानते हो? मुझसे और तुमसे एक साथ ही छुटकारा। तो फिर वही क्यों न हो? हम दोनों ही चलेंगे। मृत्यु के गह्वर[7] में प्रवेश करने के समय मैं भी तुम्हारी ज्योति बन कर बुझ जाने की कामना रखती हूँ। और भी एक विनोद, प्रलय का परिहास, देख सकूँगी। मेरी सहचरी, तुम्हारा वह ध्रुवस्वामिनी का वेश, ध्रुवस्वामिनी ही न देखे तो किस काम का?

(दोनों हाथों से चन्द्रगुप्त का चिबुक[8] पकड़ कर सकरुण देखती है)

चन्द्रगुप्त — **(अधखुली आँखों से देखता हुआ)** तो फिर चलो।
(सामन्त कुमारों के आगे-आगे मन्दाकिनी का गम्भीर स्वर से गाते हुये प्रवेश)

पैरों के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले
संकीर्ण कगारों के नीचे, शत-शत झरने बेमेल चले
सन्नाटे में हो विकल पवन, पादप निज पद हों चूम रहे
तब भी गिरि-पथ का अथक पथिक, ऊपर ऊँचे सब झेल चले

---

1 बेरहम; 2 धरती; 3 वह, स्थान जहाँ धरती और आकाश मिले हुये दिखाई देते हैं; 4 बाँधने की जंजीर, बंधन; 5 कानून
6 देश निकाला; 7 गुफा, छिपने लायक अंधेरी जगह; 8 ठुड्डी

पृथ्वी की आँखों में बन कर छाया का पुतला बढ़ता हो
सूने तम में हो ज्योति बना, अपनी प्रतिमा को गढ़ता हो
पीड़ा की धूल उड़ाता-सा, बाधाओं को ठुकराता-सा
कष्टों पर कुछ मुसक्याता-सा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
खिलते हों क्षत के फूल वहाँ बन व्यथा तमिस्रा के तारे
पद-पद पर ताण्डव नर्तन हो, स्वर सप्तक होवें लय सारे
भैरव रव से हो व्याप्त दिशा, हो काँप रही भय-चकित निशा
खिलते हो क्षत के फूल वहाँ बन व्यथा तमिस्रा के तारे,
पद-पद पर ताण्डव नर्तन हो, स्वर सप्तक होवें लय सारे
भैरव रव से ही व्याप्त दिशा हो काँप रही भय-चकित निशा
हो स्वेद धार बहती कपिशा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
विचलित हो अचल न मौन रहे निष्ठुर शृंगार उतरता हो
क्रन्दन कम्पन न पुकार बने, निज साहस पर निर्भरता हो
अपनी ज्वाला को आप पिये नव-नीलकण्ठ की छाप लिये
विश्राम शान्ति को शाप दिये, ऊपर ऊंचे सब झेल चले।

(चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी सबका धीरे-धीरे प्रस्थान अकेली मन्दाकिनी खड़ी रह जाती है)

[पटाक्षेप]

द्वितीय अंक

(शक दुर्ग के भीतर सुनहले काम वाले खम्भों पर एक दालान, बीच में छोटी-छोटी दो सीढ़ियाँ, उसी के सामने काश्मीरी खुदाई का सुन्दर लकड़ी का सिंहासन : बीच के दो खम्भे खुले हुये हैं, उनके दोनों ओर मोटे-मोटे चित्र बने हुए तिब्बती ढंग के रेशमी पर्दे पड़े हैं। सामने बीच में छोटा-सा आंगन की तरह, जिसके दोनों ओर क्यारियाँ उनमें दो-चार पौधे और लताएँ फूलों से लदी दिखाई पड़ती हैं)

कोमा — **(धीरे-धीरे पौधों को देखती हुई प्रवेश करके)** इन्हें सींचना पड़ता है, नहीं तो इनकी रुखाई और मलिनता सौन्दर्य पर आवरण डाल देती है। **(देखकर)** आज तो इनके पत्ते धुले हुए भी नहीं हैं। इनमें फूल, जैसे मुकुलित[1] होकर ही रह गये हैं। खिलखिलाकर हँसने का मानों इन्हें बल नहीं। **(सोचकर)** ठीक, इधर कई दिनों से महाराज अपने युद्ध-विग्रह[2] में लगे हुये हैं और मैं भी यहाँ नहीं आयी, तो फिर इनकी चिन्ता कौन करता है? उस दिन मैंने यहाँ दो मंच और भी रख देने के लिए कहा था, पर सुनता कौन है। सब जैसे रक्त के प्यासे[3]! प्राण लेने और देने में पागल! बसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा तो वास्तविक जीवन नहीं है? **(सीढ़ी पर बैठकर सोचने लगती है)** प्रणय[4]! प्रेम! जब सामने से आते हुये तीव्र आलोक की तरह आँखो में प्रकाश पुंज[5] उँडेल देता है, तब सामने की सब वस्तुयें और भी अस्पष्ट हो जाती हैं। अपनी ओर से कोई भी प्रकाश की किरण नहीं। तब वही केवल वही! हो पागलपन, भूल हो, दुःख मिले, प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच-समझ कर चलना, दोनों बराबर है। सुना है, दोनों ही संसार के चतुरों की दृष्टि में मूर्ख बनते हैं, तब कोमा, तू किसे अच्छा समझती है?

स्वच्छंतावादी प्रेम

(गाती है)

यौवन! तेरी चंचल छाया
इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस तू है लाया
मेरे प्याले में मद बनकर कब तू छली समाया
जीवन-वंशी के छिद्रों में स्वर बनकर लहराया
पल भर रुकने वाले! कह तू पथिक! कहाँ से आया।

(चुप होकर आँखे बन्द किये तन्मय होकर बैठी रह जाती है। शकराज का प्रवेश। हाथ में एक लम्बी तलवार लिये हुये चिन्तित भाव से आकर इस तरह खड़ा होता है, जिससे कोमा को नहीं देखता)

शकराज — खिंगल अभी नहीं आया, क्या वह बन्दी तो नहीं कर लिया गया? नहीं, यदि ये अन्धे नहीं हैं तो उन्हें अपने सिर पर खड़ी विपत्ति दिखाई देनी चाहिये **(सोचकर)** विपत्ति! केवल उन्हीं पर तो नहीं है, हम लोगों को भी रक्त की नदी बहानी पड़ेगी। चित्त बड़ा चंचल हो रहा है। तो बैठ जाऊँ? इस एकान्त में अपने बिखरे हुये मन को सँभाल लूँ? **(इधर-उधर देखता है, कोमा आहट पा कर उठ खड़ी होती है। उसे देख कर)** अरे, कोमा! कोमा!

कोमा — हाँ, महाराज! क्या आज्ञा है?

---

1 अधखिल, 2 युद्ध तथा वैर-विरोध; 3 खून बहाने को तत्पर, युद्ध और मारकाट करने वाले; 4 शृंगारिक प्रेम;
5 ढेर, अत्यधिक मात्रा

शकराज — **(उसे स्निग्ध भाव से देखकर)** आज्ञा नहीं, कोमा! तुम्हें आज्ञा न दूँगा! तुम रूठी हुई-सी क्यों बोल रही हो।
कोमा — रूठने का **सुहाग**[1] मुझे मिला कब?
शकराज — आजकल मैं जैसी भीषण परिस्थिति में हूँ, उसमें **अन्यमनस्क**[2] होना स्वाभाविक है, तुम्हें यह न भूल जाना चाहिये।
कोमा — तो क्या आपकी दुश्चिन्ताओं में मेरा भाग नहीं? मुझे उससे अलग रखने से क्या वह परिस्थिति कुछ सरल हो रही है?
शकराज — तुम्हारे हृदय को उन दुर्भावनाओं में डाल कर व्यथित नहीं करना चाहता। मेरे सामने जीवन-मरण का प्रश्न है।
कोमा — प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते। मैं तो समझती हूँ, मनुष्य उन्हें जीवन के लिए उपयोगी समझता है। मकड़ी की तरह लटकने के लिए अपने-आप ही जाला बुनता है। जीवन का प्राथमिक प्रसन्न उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य को आमन्त्रित करता है। उससे उदासीन न होना चाहिये महाराज!
शकराज — सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं। मैं तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ! पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है। हाँ, मैं इस युद्ध के लिए उत्सुक नहीं था कोमा, मैं ही दिग्विजय के लिये नहीं निकला था।
कोमा — संसार के नियम के अनुसार आप अपने से महान के सम्मुख थोड़ा-सा विनीत बनकर इस उपद्रव से अलग रह सकते थे।
शकराज — यही तो मुझ से नहीं हो सकता।
कोमा — अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?
शकराज — **(चिढ़कर)** यह शिक्षा अभी रहने दो कोमा, किसी से बड़ा नहीं हूँ तो छोटा भी नहीं बनना चाहता। तुम अभी तक पाषाणी प्रतिमा की तरह वहीं खड़ी हो, मेरे पास आओ।
कोमा — **पाषाणी**[3]! हाँ, राजा! पाषाणी के भीतर भी कितने मधुर स्रोत बहते रहते हैं। उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति —
शकराज — किन्तु मुझे तो इस समय स्फूर्ति के लिए एक प्याला मदिरा ही चाहिये।
(कोमा एक छोटा-सा मंच रख देखती है और चली जाती है। शकराज मंच पर बैठ जाता है। खिंगल का प्रवेश)
कोमा — **(स्थिर दृष्टि से देखती हुई)** मैं आती हूँ। आप बैठिये।
शकराज — कहो जी, क्या समाचार है।
खिंगल — महाराज! मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि हम लोगों का अवरोध दृढ़ है। उन्हें दो में से एक करना ही होगा। या तो अपने प्राण दें अन्यथा मेरे सन्धि के नियमों को स्वीकार करें।
शकराज — **(उत्सुकता से)** तो वे समझ गये?
खिंगल — दूसरा उपाय ही क्या था। यह **छोकड़ा**[4] रामगुप्त, समुद्रगुप्त ही तरह दिग्विजय करने निकला था। उसे इन बीहड़ घाटियों का परिचय नहीं मिला था। किन्तु सब बातों को समझ कर वह आपके नियमों को मानने के लिए बाध्य हुआ।
शकराज — **(प्रसन्नता से उठकर उसके दोनों हाथ पकड़ लेता है)** ऐ, तुम सच कहते हो! मुझे आशा नहीं। क्या मेरा दूसरा प्रस्ताव भी रामगुप्त ने मान लिया?
(स्वर्ण के कलश में मदिरा लेकर कोमा चुपके से आकर पीछे खड़ी हो जाती है)

खिंगल — हाँ महाराज! उसने माँगे हुए सब उपहारों को देना स्वीकार किया और ध्रुवस्वामिनी भी आपकी सेवा में शीघ्र ही उपस्थित होती है।
(कोमा चौंक उठती है और शकराज प्रसन्नता से खिंगल के हाथों को झकझोरने लगता है)
शकराज — खिंगल। तुमने कितना सुन्दर समाचार सुनाया। आज **देवपुत्रों**[5] की स्वर्गीय आत्माएँ प्रसन्न होंगी। उनकी पराजयों का यह **प्रतिशोध**[6] है। हम लोग गुप्तों की दृष्टि में जंगली, बर्बर और असभ्य हैं तो फिर मेरी **प्रतिहिंसा**[7] भी बर्बरता के ही अनुकूल होगी। हाँ, मैंने अपने शूर-सामन्तों के लिए स्त्रियाँ भी मांगी थीं।
खिंगल — वे भी साथ आयेंगी।
शकराज — तो फिर सोने की **झाँझ**[8] वाली नाच का प्रबन्ध करो, इस विजय का उत्सव मनाया जाय और मेरे सामन्तों को भी शीघ्र बुला लाओ।
(खिंगल का प्रस्थान : शकराज अपनी प्रसन्नता में उद्विग्न[9] सा इधर-उधर टहलने लगता है और कोमा अपना कलश लिये हुए धीरे-धीरे सिंहासन के पास आकर खड़ी हो जाती है। चार सामन्तों का प्रवेश। दूसरी ओर से नर्तकियों का दल आता है। शकराज उनकी ओर ही देखता हुआ सिंहासन पर बैठ जाता है। सामन्त लोग उसके पैरों के नीचे सीढ़ियों पर बैठते हैं। नर्तकियां नाचती हुई गाती हैं)

अस्ताचल पर युवती सन्ध्या की खुली अलक घुँघराली है
लो; मानिक मदिरा की धारा अब बहने लगी निराली है
भर ली पहाड़ियों ने अपनी झीलों की रत्नमयी प्याली
झुक चली चूमने बल्लरियों से लिपटी तरु की डाली है
यह लगा पिघलने मानिनियों का हृदय मृदु प्रणय-रोष भरा
वे हँसती हुई दुलार-भरी मधु लहर उठाने वाली हैं

---

1 सौभाग्य; 2 अनमना; 3 पत्थर की; 4 कच्ची उम्र और अक्ल का लड़का; 5 देवताओं के पुत्र, पूर्वजों के लिए सम्मानपूर्वक प्रयुक्त शब्द; 6 बदला; 7 बदला, हिंसा के बदले हिंसा; 8 दो तश्तरी जैसी टुकड़ों से बना मंजीरे जैसा बाजा; 9 उत्तेजित, परेशान, बेचैन

भरने निकले हैं प्यार-भरे जोड़े कुञ्जों की झुरमुट से
इस मधुर अँधेरे में अब तक क्या इनकी प्याली खाली है
भर उठीं प्यालियाँ, सुमनों ने सौरभ मकरन्द मिलाया है
कामिनियों ने अनुराग-भरे अधरों से उन्हें लगा ली है
बसुधा मदमाती हुई उधर आकाश लगा देखो झुकने
सब झूम रहे अपने सुख में तूने क्यों बाधा डाली है

(नर्तकियाँ जाने लगती हैं)

एक सामन्त — श्रीमान्! इतनी बड़ी विजय के अवसर पर इस सूखे उत्सव से सन्तोष नहीं होता, जब कि कलश सामने भरा हुआ रखा है।

शकराज — ठीक है, इन लोगों को केवल कहकर ही नहीं, प्यालियाँ भर कर भी देनी चाहिये।

(सब पीते हैं और नर्तकियाँ एक-एक को सानुरोध पान कराती हैं)

सामंतीय परिवेश

दूसरा सामन्त — श्रीमान् की आज्ञा मानने के अतिरिक्त दूसरी गति नहीं। उन्होंने समझ से काम लिया, नहीं तो हम लोगों को इस रात की कालिमा में रक्त की लाली मिलानी पड़ती।

तीसरा सामन्त — क्यों बक-बक करते हो? चुप-चाप इस बिना परिश्रम की विजय का आनन्द लो। लड़ना पड़ता तो सारी हेंकड़ी भूल जाती।

दूसरा सामन्त — **(क्रोध से लड़खड़ाता हुआ उठता है)** हमसे!

तीसरा सामन्त — हाँ जी तुमसे!

दूसरा सामन्त — तो फिर आओ तुम्हीं से निपट लें **(सब परस्पर लड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। शकराज खिंगल को संकेत करता है। वह उन लोगों को बाहर लिवा जाता है। तूर्यनाद)**

शकराज — रात्रि के आगमन की सूचना हो गयी। दुर्ग का द्वार अब शीघ्र ही बन्द होगा। अब तो हृदय अधीर हो रहा है। खिंगल!

(खिंगल का पुनः प्रवेश)

खिंगल — दुर्ग तोरण में शिविकायें आ गयी हैं।

शकराज — **(गर्व से)** तब विलम्ब क्यों? उन्हें अभी ले आओ।

खिंगल — **(सविनय)** किन्तु रानी की एक प्रार्थना है।

शकराज — क्या!

खिंगल — वह पहले केवल श्रीमान् से ही सीधे भेंट करना चाहती हैं। उसकी मर्यादा...

शकराज — **(ठठाकर हँसते हुए)** क्या कहा? मर्यादा? भाग्य ने झुकने के लिए जिन्हें परवश कर दिया है, उन लोगों के मन में मर्यादा का ध्यान और भी अधिक रहता है। यह उनकी दयनीय दशा है।

खिंगल — वह श्रीमान की रानी होने के लिये आ रही है।

शकराज — **(हँस कर)** अच्छा, तुम मध्यस्थ हो न! तुम्हारी बात मान कर मैं उससे एकान्त में ही भेंट करूँगा जाओ।

(खिंगल का प्रस्थान)

कोमा — महाराज! मुझे क्या आज्ञा है।

शकराज — **(चौंक कर)** अरे, तुम अभी यहीं खड़ी हो? मैं तो जैसे भूल ही गया था। हृदय चंचल हो रहा है। मेरे समीप आओ कोमा!

कोमा — नयी रानी के आगमन की प्रसन्नता से?

शकराज — **(सँभल कर)** नयी रानी का आना क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगा कोमा?

कोमा — **(निर्विकार भाव से)** संसार में बहुत-सी बातें बिना अच्छी हुये भी अच्छी लगती हैं, और बहुत-सी अच्छी बातें बुरी मालूम पड़ती हैं।

शकराज — **(झुँझला कर)** तुम तो आचार्य मिहिरदेव की तरह दार्शनिकों की-सी बातें कर रही हो!

कोमा — वे मेरे पिता-तुल्य हैं, उन्हीं की शिक्षा में मैं पली हूँ। हाँ ठीक है, जो बातें राजा को अच्छी लगें, वे ही मुझे भी रुचनी ही चाहिये।

शकराज — **(अव्यवस्थित होकर)** अच्छा, तुम इतनी अनुभूतिमयी हो, यह मैं आज जान सका।

कोमा — राजा, तुम्हारी स्नेह-सूचनाओं की सहज प्रसन्नता और मधुर **आलापों**[1] ने जिस दिन मन में नीरस और नीरव शून्य के संगीत की, वसन्त की और **मकरन्द**[2] की सृष्टि की थी, उसी दिन से मैं अनुभूतिमयी बन गयी हूँ। क्या वह मेरा भ्रम था? कह दो — कह दो कि वह तेरी भूल थी।

(उत्तेजित कोमा सिर उठा कर राजा से आँख मिलाती है)

शकराज — **(संकोच से)** नहीं कोमा, वह भ्रम नहीं था। मैं सचमुच तुम्हें प्यार करता हूँ।

कोमा — **(उसी तरह)** तब भी यह बात?

शकराज — **(सशंक)** कौन-सी बात?

कोमा — वही जो आज होने जा रहा है! मेरे राजा! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से **विच्छिन्न**[3] कराकर अपने गर्व की तृप्ति के लिये कैसा अनर्थ कर रहे हो?

शकराज — **(हँस कर बात उड़ाते हुए)** पगली कोमा! वह मेरी राजनीति का प्रतिशोध है।

1 कथन, बातचीत, संगीत के सातों स्वर; 2 फूलों का रस, मधु; 3 अलग।

स्त्री के सम्मान के प्रश्न

कोमा — **(दृढ़ता से)** किन्तु, राजनीति का प्रतिशोध, क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता?
शकराज — जो विषय न समझ में आवे, उस पर विवाद न करो।
कोमा — **(खिन्न होकर)** मैं क्यों न करूँ। **(ठहर कर)** किन्तु नहीं, मुझे विवाद करने का अधिकार नहीं। यह मैं समझ गयी।

(वह दुःखी होकर जाना चाहती है कि दूसरी ओर से मिहिरदेव का प्रवेश)

शकराज — **(संभ्रम से खड़ा होकर)** धर्मपूज्य! मैं वन्दना करता हूँ।
मिहिरदेव — **कल्याण**[1] हो! **(कोमा के सिर पर हाथ रखकर)** बेटी! मैं तो तुझको ही देखने चला आया। तू उदास क्यों है?

(शकराज की ओर गूढ़ दृष्टि से देखने लगता है)

सामंतीय मनोवृत्ति

शकराज — आचार्य! रामगुप्त का **दर्प दलन करने**[2] के लिये, मैंने ध्रुवस्वामिनी को उपहार में भेजने की आज्ञा दी थी। आज रामगुप्त की रानी मेरे दुर्ग में आयी है। कोमा को इसमें आपत्ति है।

मिहिरदेव — **(गम्भीरता से)** ऐसे काम में तो आपत्ति होनी ही चाहिये राजा! स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करोगे, उसका फल क्या अच्छा होगा? और भी, यह अपनी भावी पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा।
शकराज — **(क्षोभ से)** भावी पत्नी?
मिहिरदेव — अरे, क्या तुम इस क्षणिक सफलता से **प्रमत्त**[3] हो जाओगे? क्या तुमने अपने आचार्य की प्रतिपालिता कुमारी के साथ स्नेह का सम्बन्ध नहीं स्थापित किया है? क्या इसमें भी सन्देह है। राजा! स्त्रियों का स्नेह — विश्वास भंग कर देना, कोमल **तंतु**[4] को तोड़ने से भी सहज है, परन्तु सावधान होकर उसके परिणाम को भी सोच लो।
शकराज — मैं समझता हूँ कि आप मेरे राजनीतिक कामों में **हस्तक्षेप**[5] न करें तो अच्छा हो।

मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा

मिहिरदेव — राजनीति? राजनीति ही मनुष्यों के लिये सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे **नीति**[6] से भी **हाथ न धो बैठो**[7] जिसका विश्वमानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है। राजनीति की साधारण **छलनाओं**[8] से सफलता प्राप्त करके क्षण भर के लिये तुम अपने को चतुर समझ लेने की भूल कर सकते हो। परन्तु इस **भीषण**[9] संसार में एक प्रेम करने वाले हृदय को खो देना, सबसे बड़ी हानि है। शकराज! दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।
शकराज — बस, बहुत हो चुका! आपके महत्व की भी एक सीमा होगी। अब आप यहाँ से नहीं जाते हैं, तो मैं ही चला जाता हूँ **(प्रस्थान)**।

प्रकृति के प्रति स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण

मिहिरदेव — चल कोमा! हम लोगों को लताओं, वृक्षों और चट्टानों से छाया और सहानुभूति मिलेगी। इस दुर्ग से बाहर चल।
कोमा — **(गद्‌गद् कण्ठ से)** पिता जी! **(खड़ी रहती है)**
मिहिरदेव — बेटी! हृदय को सँभाल। कष्ट सहन करने के लिये प्रस्तुत हो जा। **प्रतारणा**[10] में बड़ा मोह होता है। उसे छोड़ने को मन नहीं करता। कोमा! छल का **बहिरंग**[11] सुन्दर होता है — विनीत और आकर्षक भी; पर दुखदायी और हृदय को **बेधने**[12] के लिये। इस बन्धन को तोड़ डाल।

अंतर्द्वंद्व शकराज को त्याग दे या नहीं

कोमा — **(सकरुण)** तोड़ डालूँ पिताजी! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही **दुलार**[13] भरी **बल्लरी**[14], मेरे आँख बन्द कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गयी है। दे दूँ एक झटका — उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जायें और वह **छिन्न**[15] होकर धूल में लोटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!

प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण

मिहिरदेव — **(निश्वास लेकर आकाश को देखते हुए)** यहाँ तेरी भलाई होती, तो मैं चलने के लिए न कहता। हम लोग अखरोट की छाया में बैठेंगे — झरनों के किनारे, **दाख**[16] के कुञ्जों में विश्राम करेंगे। जब नीले आकाश में मेघों के टुकड़े, मानसरोवर जाने वाले हंसों का अभिनय करेंगे, तब तू अपनी तकली पर ऊन कातती हुई, कहानी कहेगी और मैं सुनूँगा।
कोमा — तो चलूँ! **(एक बार चारों ओर देख कर)** एक घड़ी के लिए मुझे···
मिहिरदेव — **(ऊब कर आकाश की ओर देखता हुआ)** तू नहीं मानती। यह देख, **नील**[17] **लोहित**[18] रंग का **धूमकेतु**[19] **अविचल**[20] भाव से इस दुर्ग की ओर कैसा भयानक संकेत कर रहा है।
कोमा — **(उधर देखते हुए)** तब भी एक क्षण मुझे···
मिहिरदेव — पागल लड़की! अच्छा, मैं फिर आऊँगा। तू सोच ले, विचार कर ले **(जाता है)**।
कोमा — जाना ही होगा! तब यह मन की उलझन क्यों अमंगल का अभिशाप अपनी क्रूर हँसी से इस दुर्ग को कँपा देगा, और सुख के स्वप्न **विलीन**[21] हो जायेंगे। मेरे यहां रहने से उन्हें अपने भावों को छिपाने के लिए बनावटी व्यवहार करना होगा; पग-पग पर अपमानित हो कर मेरा हृदय उसे सह नहीं सकेगा। तो चलूँ। यही ठीक है! पिताजी! ठहरिये, मैं आती हूँ।
शकराज — **(प्रवेश करके)** कोमा?
कोमा — जाती हूँ, राजा!
शकराज — कहाँ? आचार्य के पास? मालूम होता है कि वे बहुत ही दुखी हो कर चले गये हैं।
कोमा — धूमकेतु को दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा है कि तुम्हारे दुर्ग में रहने से अमंगल होगा।

---

1 भला, मंगल या शुभ; 2 घमंड चूर करना; 3 मतवाला, नशे या घमंड में चूर; 4 धागा, रेशा; 5 दूसरों की बात या उनके काम में दखल देना; 6 व्यवहार की वह पद्धति जिसमें अपना कल्याण हो और समाज को भी कोई बाधा न पहुँचे; 9 खो देना; 8 धोखा; 9 डरावना; 10 वंचना, ठगी; 11 बाहरी रूप; 12 छेद करना, घाव करना; 13 प्यार; 14 बेल; 15 कट कर अलग गिरना; 16 अंगूर, द्राक्षा [सं.], 17 नीला, 18 लाल, 19 पुच्छल तारा। यह माना जाता है कि आकाश में पुच्छल तारा दिखाई देना अमंगल का सूचक होता है, 20 शांत, स्थिर, 21 छिपना, खोना, नष्ट होना।
हाथ धो बैठना मुहावरा

शकराज — **(भयभीत होकर उसे देखता हुआ)** आह! भयावनी पूँछवाला धूमकेतु! आकाश का उच्छृंखल पर्यटक! नक्षत्रलोक का अभिशाप! कोमा! आचार्य को बुलाओ। वे जो आदेश देंगे, वही मैं करूँगा। इस अमंगल की शान्ति होनी चाहिए।

कोमा — वे बहुत चिढ़ गये हैं। अब उनको प्रसन्न करना सहज नहीं है। वे मुझे अपने साथ लिवा जाने के लिए मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।

शकराज — कोमा! तुम कहाँ जाओगी?

कोमा — पिताजी के साथ।

शकराज — और मेरा प्यार, मेरा स्नेह, सब भुला दोगी? इस अमंगल की शान्ति करने के लिये आचार्य को न समझाओगी?

मानव मूल्यों की स्थापना, अन्याय और अनाचार का दृढ़ता से विरोध

कोमा — **(खिन्न होकर)** प्रेम का नाम न लो! वह एक पीड़ा थी जो छूट गयी। उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी। राजा, मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मैं तो दर्प[1] से दीप्त[2] तुम्हारी महत्वमयी पुरुष-मूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी! इस **स्वार्थ-मलिन**[3] कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं। अपने तेज की अग्नि में जो सब कुछ भस्म कर सकता हो, उस दृढ़ता का, आकाश के नक्षत्र कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। तुम आशंका-मात्र से दुर्बल -- कम्पित और भयभीत हो।

शकराज — **(धूमकेतु को बार-बार देखता हुआ)** भयानक! कोमा, मुझे बचाओ!

कोमा — जाती हूँ महाराज! पिताजी मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।

(जाती है। शकराज अपने सिंहासन पर हताश होकर बैठ जाता है)

प्रहरी — **(प्रवेश करके)** महाराज! ध्रुवस्वामिनी ने पूछा है कि एकान्त हो तो आऊँ।

शकराज — हाँ कह दो कि यहाँ एकान्त है। और देखो, यहाँ दूसरा कोई न आने पावे।

(प्रहरी जाता है : शकराज चंचल होकर टहलने लगता है। धूमकेतु की ओर दृष्टि जाती है तो भयभीत होकर बैठ जाता है)

शकराज — तो इसका कोई उपाय नहीं? न जाने क्यों मेरा हृदय घबरा रहा है। कोमा को समझा-बुझा कर ले आना चाहिये **(सोच कर)** किन्तु इधर ध्रुवस्वामिनी जो आ रही है! तो भी देखूँ, यदि कोमा प्रसन्न हो जाय ···· **(जाता है)**

(स्त्री-वेश में चन्द्रगुप्त आगे और पीछे ध्रुवस्वामिनी स्वर्ण-खचित उत्तरीय में सब अंग छिपाये हुये आती है। केवल खुले हुये मुँह पर प्रसन्न चेष्टा दिखाई देती है)

नाटकीय व्यंग्य — शकराज को रहस्य का पता नहीं किन्तु दर्शकों को पता है

चन्द्रगुप्त — तुम आज कितनी प्रसन्न हो।

ध्रुवस्वामिनी — और तुम क्या नहीं?

चन्द्रगुप्त — मेरे जीवन-**निशीथ**[4] का **ध्रुव-नक्षत्र**[5] इस घोर अन्धकार में अपनी स्थिर उज्जवलता से चमक रहा है। आज महोत्सव है न?

ध्रुवस्वामिनी — लौट जाओ, इस तुच्छ नारी-जीवन के लिये इतने महान् **उत्सर्ग**[6] की आवश्यकता नहीं।

चन्द्रगुप्त — देवी! यह तुम्हारा क्षणिक मोह है। मेरी परीक्षा न लो! मेरे शरीर ने चाहे जो रूप धारण किया हो, किन्तु हृदय निश्छल है।

ध्रुवस्वामिनी — अपनी कामना की वस्तु न पाकर यह आत्महत्या जैसा प्रसंग तो नहीं है।

चन्द्रगुप्त — तीखे वचनों से मर्माहत कर के भी आज कोई मुझे इस मृत्यु-पथ से विमुख नहीं कर सकता! मैं केवल अपना कर्तव्य करूँ, इसी में मुझे सुख है। **(ध्रुवस्वामिनी संकेत करती है। शकराज का प्रवेश। दोनो चुप हो जाते हैं। वह दोनों को चकित होकर देखता है)**

शकराज — मैं किसको रानी समझूँ रूप का ऐसा तीव्र आलोक! नहीं मैंने कभी नहीं देखा था। इसमें कौन ध्रुवस्वामिनी है?

ध्रुवस्वामिनी — यह मैं आ गयी हूँ।

चन्द्रगुप्त — **(हँसकर)** शकराज को तुम धोखा नहीं दे सकती हो। ध्रुवस्वामिनी कौन है? यह अन्धा भी बता सकता है।

ध्रुवस्वामिनी — **(आश्चर्य से)** चन्द्रे! तुमको क्या हो गया है? यहां आने पर तुम्हारी इच्छा रानी बनने की हो गई है? या मुझे शकराज से बचा लेने के लिये यह तुम्हारी स्वामिभक्ति है?

(शकराज चकित हो कर दोनों की ओर देखता है)

चन्द्रगुप्त — कौन जाने तुम्हीं ऐसा कर रही हो?

ध्रुवस्वामिनी की विवशता

ध्रुवस्वामिनी — चन्द्रे! तुम मुझे दोनों ओर से नष्ट न करो। यहाँ से लौट जाने पर भी क्या मैं गुप्तकुल के अन्तःपुर में रह पाऊँगी?

चन्द्रगुप्त — चन्द्रे कह कर मुझको पुकारने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है? यह अच्छा झगड़ा तुमने फैलाया। इसीलिये मैंने एकान्त में मिलने की प्रार्थना की थी।

ध्रुवस्वामिनी — तो क्या मैं यहाँ भी छली जाऊँगी?

शकराज — ठहरो, **(दोनों को ध्यान से देखता हुआ)** क्या चिन्ता यदि मैं दोनों को ही रानी समझ लूँ?

ध्रुवस्वामिनी — ऐं ···

चन्द्रगुप्त — ऐं ···

शकराज — क्यों? इसमें क्या बुरी बात है?

चन्द्रगुप्त — जी नहीं, यह नहीं हो सकता। ध्रुवस्वामिनी कौन है, पहले इसका निर्णय होना चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी — **(क्रोध से)** चन्द्रे! मेरे भाग्य के आकाश में धूमकेतु-सी अपनी गति बन्द करो।

शकराज — **(धूमकेतु की ओर देखकर भयभीत-सा)** ओह भयानक! **(व्यग्र भाव से टहलने लगता है)**

---

1 गर्व, 2 जगमगाती, 3 स्वार्थ से मैली 4 आधी रात (जीवन निशीथ — जीवन रूपी रात्रि) 5 ध्रुव तारा जो सदा उत्तर दिशा में एक स्थान पर स्थित रहता है। ध्रुव नक्षत्र दृढ़ता का प्रतीक है। चन्द्रगुप्त भी अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिए दृढ़ संकल्प है, 6 त्याग

चन्द्रगुप्त — **(शकराज की पीठ पर हाथ रखकर)** सुनिये ....
ध्रुवस्वामिनी — चन्द्रे!
चन्द्रगुप्त — इस धमकी से तो कोई लाभ नहीं।
ध्रुवस्वामिनी — तो फिर मेरा और तुम्हारा जीवन-मरण साथ ही होगा।
चन्द्रगुप्त — तो डरता कौन है **(दोनों ही शीघ्र कटार निकाल लेते हैं)**।
शकराज — **(घबराकर)** हैं, यह क्या? तुम लोग यह क्या कर रही हो? ठहरो! आचार्य ने ठीक कहा है, आज शुभ मुहूर्त नहीं। मैं कल विश्वसनीय व्यक्ति को बुला कर इसका निश्चय कर लूँगा। आज तुम लोग विश्राम करो।
ध्रुवस्वामिनी — नहीं, इसका निश्चय तो आज ही होना चाहिये।
शकराज — **(बीच में खड़ा होकर)** मैं कहता हूँ न।
चन्द्रगुप्त — वाह रे कहने वाले!
(ध्रुवस्वामिनी मानो चन्द्रगुप्त के आक्रमण से भयभीत होकर पीछे हटती है और तूर्यनाद करती है। शकराज आश्चर्य से उसे सुनता हुआ सहसा घूम कर चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़ लेता है। ध्रुवस्वामिनी झटके से चन्द्रगुप्त का उत्तरीय खींच लेती है और चन्द्रगुप्त हाथ छुड़ाकर शकराज को घेर लेता है)
चन्द्रगुप्त — **(चकित-सा)** ऐं, यह तुम कौन प्रवंचक?
शकराज — मैं हूँ, चन्द्रगुप्त, तुम्हारा काल। मैं अकेला आया हूँ, तुम्हारी वीरता की परीक्षा लेने। सावधान!
(शकराज भी कटार निकाल कर युद्ध के लिए अग्रसर होता है। युद्ध, और शकराज की मृत्यु। बाहर दुर्ग में कोलाहल। 'ध्रुवस्वामिनी की जय' का हल्ला मचाते हुए रक्तात्त कलेवर सामन्त कुमारों का प्रवेश, ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त को घेर कर समवेत स्वर से 'ध्रुवस्वामिनी की जय हो!')

(पटापेक्ष)

तृतीय अंक

(शक। दुर्ग के भीतर एक प्रकोष्ठ। तीन मंच में दो खाली और एक पर ध्रुवस्वामिनी पादपीठ[1] के ऊपर बायें पैर पर दाहिना पैर रखकर अधरों से ऊँगली लगाये चिन्ता में निमग्न बैठी है। बाहर कुछ कोलाहल होता है)

सैनिक — **(प्रवेश करके)** महादेवी की जय हो!
ध्रुवस्वामिनी — **(चौंककर)** क्या?
सैनिक — विजय का समाचार सुनकर राजाधिराज भी दुर्ग में आ गये हैं। अभी तो वे सैनिकों से बातें कर रहे हैं। उन्होंने पूछा है महादेवी कहाँ हैं। आपकी जैसी आज्ञा हो; क्योंकि कुमार ने कहा है ....।
ध्रुवस्वामिनी — क्या कहा है? यही न कि मुझसे पूछ कर राजा यहाँ आने पावें? ठीक है, अभी मैं बहुत थकी हूँ। **(सैनिक जाने लगता है, उसे रोक कर)** और सुनो तो; तुमने यह नहीं बताया कि कुमार के घाव अब कैसे हैं?
सैनिक — घाव चिन्ताजनक नहीं हैं, उन पर पट्टियां बँध चुकी हैं। कुमार प्रधान-मण्डप में विश्राम कर रहे हैं।
ध्रुवस्वामिनी — अच्छा जाओ; **(सैनिक का प्रस्थान)**।
मन्दाकिनी — **(सहसा प्रवेश करके)** भाभी, बधाई हो! **(जैसे भूल कर गई हो)** नहीं; नहीं! महादेवी, क्षमा कीजिए।
ध्रुवस्वामिनी — मन्दा! भूल से ही तुमने आज एक प्यारी बात कह दी। उसे क्या लौटा लेना चाहती हो? आह! यदि वह सत्य होती?

(पुरोहित का प्रवेश)

मन्दाकिनी — क्या इसमें भी सन्देह है?
ध्रुवस्वामिनी — मुझे तो सन्देह का **इन्द्रजाल**[2] ही दिखलायी पड़ रही है। मैं न तो महादेवी हूँ और न तुम्हारी भाभी **(पुरोहित को देखकर चुप रह जाती है)**।
पुरोहित — **(आश्चर्य से इधर-उधर देखता हुआ)** तब मैं क्या करूं?
मन्दाकिनी — क्यों, आपको कुछ कहना है क्या?
पुरोहित — ऐसे उपद्रवों के बाद शान्तिकर्म होना आवश्यक है। इसीलिए मैं **स्वस्त्ययन**[3] करने आया था; किन्तु आप तो कहती हैं कि मैं महादेवी ही नहीं हूँ।
ध्रुवस्वामिनी — **(तीखे स्वर में)** पुरोहित जी! मैं राजनीति नहीं जानती; किन्तु इतना समझती हूँ कि जो रानी शत्रु के लिए उपहार में भेज दी जाती है, वह महादेवी की उच्च पदवी से पहले ही वंचित हो गयी होगी।
मन्दाकिनी — किन्तु आप तो भाभी होना भी अस्वीकार करती हैं।
ध्रुवस्वामिनी — भाभी कहने का तुम्हें रोग हो तो कह लो। क्योंकि इन्हीं पुरोहित जी ने उस दिन कुछ मंत्रों को पढ़ा था। उस दिन के बाद मुझे कभी राजा से सरल सम्भाषण करने का अवसर ही न मिला। हाँ, न जाने मेरे किस अपराध पर

---

1 ऊँचे आसन के पास रखी जाने वाली छोटी चौकी या आधार जिस पर पैर रखते हैं, 2 कोई अद्भुत आकर्षण किन्तु भ्रम में डालने वाला काम।
3 एक धार्मिक कृत्य जो किसी विशिष्ट कार्य में कल्याण की भावना से किया जाय।

सन्दिग्ध-चित्त[1] होकर उन्होंने जब मुझे निर्वासित किया, तभी मैंने उनसे अपने स्त्री होने के अधिकार की रक्षा की भीख माँगी थी। वह भी न मिली और मैं **बलि-पशु**[2] की तरह, अकरुण आज्ञा की डोरी में बँधी हुई शक-दुर्ग में भेज दी गयी। तब भी मुझे तुम भाभी कहना चाहती हो?

मन्दाकिनी — **(सिर झुका कर)** यह **गर्हित**[3] और ग्लानि-जनक प्रसंग है।

पुरोहित — यह मैं क्या सुन रहा हूँ? मुझे तो यह जान कर प्रसन्नता हुई थी की वीर रमणी की तरह, अपने साहस के बल पर महादेवी ने इस दुर्ग पर अधिकार किया है।

ध्रुवस्वामिनी — आप झूठ बोलते हैं!

पुरोहित — **(आश्चर्य से)** मैं और झूठ!

ध्रुवस्वामिनी — हाँ, आप और झूठ, नहीं स्वयं आप ही मिथ्या हैं।

पुरोहित — **(हँस कर)** क्या आप वेदान्त की बात कहती हैं? तब तो संसार मिथ्या है ही।

ध्रुवस्वामिनी — **(क्रोध से)** संसार मिथ्या है या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु आप, आपका कर्मकाण्ड और आपके शास्त्र क्या सत्य हैं, जो सदैव रक्षणीया स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है? **धर्म शास्त्र पर प्रश्न चिह्न**

पुरोहित — **(मन्दाकिनी से)** बेटी! तुम्हीं बताओ, यह मेरा भ्रम है या महादेवी का रोष?

ध्रुवस्वामिनी — रोष है, हाँ मैं रोष से जली जा रही हूँ। इतना बड़ा उपहास — धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की यह **पैशाचिक**[4] परीक्षा मुझसे बलपूर्वक ली गयी है। पुरोहित! तुमने जो मेरा राक्षस-विवाह कराया है, उसका उत्सव भी कितना सुन्दर है! यह **जन-संहार**[5] देखो, अभी उस **प्रकोष्ठ**[6] में रक्त से सनी हुई शकराज की **लोथ**[7] पड़ी होगी। कितने ही सैनिक दम तोड़ते होंगे, और इस रक्तधारा में तिरती हुई मैं राक्षसी-सी साँस ले रही हूँ। तुम्हारा स्वस्त्ययन मुझे शान्ति देगा? **स्त्री के अधिकारों की माँग**

मन्दाकिनी — आर्य! आप बोलते क्यों नहीं? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म-बन्धन में बाँधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार — कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलम्ब माँग सकें? क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप सन्तुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं। **धार्मिक सामाजिक व्यवस्था प्रश्न चिह्न**

पुरोहित — नहीं, स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्ण अधिकार, रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है।

ध्रुवस्वामिनी — खेल हो या न हो, किन्तु एक क्लीव पति के द्वारा **परित्यक्ता**[8] नारी का मृत्यु-मुख में जाना ही मंगल है। उसे स्वस्त्ययन और शान्ति की आवश्यकता नहीं।

पुरोहित — **(आश्चर्य से)** यह मैं क्या सुन रहा हूँ? विश्वास नहीं होता। यदि ये बातें सत्य हैं, तब तो मुझे फिर एक बार धर्मशास्त्र को देखना पड़ेगा। **(प्रस्थान)**

(मिहिरदेव के साथ कोमा का प्रवेश)

ध्रुवस्वामिनी — तुम लोग कौन हो?

कोमा — मैं पराजित शक-जाति की एक बालिका हूँ।

ध्रुवस्वामिनी — और

कोमा — और मैंने प्रेम किया था।

ध्रुवस्वामिनी — इस घोर अपराध का तुम्हें क्या दण्ड मिला?

कोमा — वही, जो स्त्रियों को प्रायः मिला करता है — निराशा **निष्पीड़न**[9] और उपहास!! रानी, मैं तुमसे भीख माँगने आयी हूँ।

ध्रुवस्वामिनी — शत्रुओं के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। अधिक हठ करने पर दण्ड मिलना भी असम्भव नहीं।

मिहिरदेव — **(दीर्घ निःश्वास लेकर)** पागल लड़की, हो चुका न? अब भी तू न चलेगी?

(कोमा सिर झुका लेती है)

मन्दाकिनी — तुम चाहता क्या हो?

कोमा — रानी तुम भी स्त्री हो। क्या स्त्री की व्यथा न समझोगी? आज तुम्हारी विजय का अन्धकार तुम्हारे **शाश्वत**[10] स्त्रीत्व को ढँक ले, किन्तु सबके जीवन में एक बार प्रेम की दीपावली जलती है। जली होगी अवश्य। तुम्हारी भी जीवन में वह **आलोक**[11] का महोत्सव आया होगा, जिसमें हृदय-हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और **सर्वस्व**[12] दान करने का उत्साह रखता है। मुझे शकराज का शव चाहिये।

ध्रुवस्वामिनी — **(सोच कर)** जलो, प्रेम के नाम पर जलना चाहती हो तो तुम उस शव को ले जा कर जलो। जीवित रहने पर मालूम होता है कि तुम्हें अधिक शीतलता मिल चुकी है। अवश्य तुम्हारा जीवन धन्य है। **(सैनिक से)** इसे ले जाने दो।

(कोमा का प्रस्थान)

---

1 चित्त होकर, संदेह करके; 2 वह पशु जिसका किसी देवता को भेंट चढ़ाने के लिए वध किया जाता है; 3 बुरा; 4 राक्षसी; 5 कत्ले आम; 6 इमारत के भीतर का आँगन या कमरा; 7 शव; 8 त्यागी हुई; 9 शोषण; 10 जो सदा स्थायी है; 11 प्रकाश; 12 सब कुछ।

टिप्पणी : वेदांत दर्शन का वह सिद्धांत जिसके अनुसार ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या कहा गया है।
बलिपशु (मुहावरा) - बलि का बकरा

मन्दाकिनी — स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और **अवलम्ब**[1] खोजने वाले हाथों से यह पुरुषों के चरणों को पकड़ती हैं और वह सदैव ही इनको **तिरस्कार**[2] घृणा, और दुर्दशा की भिक्षा से **उपकृत**[3] करता है। तब भी यह बावली मानती है?

पंरपरा से चली आती निरर्थक रूढ़ियों का विरोध

ध्रुवस्वामिनी — भूल है — भ्रम है। **(ठहर कर)** किन्तु उसका कारण भी है। पराधीनता की एक परम्परा-सी उनकी नस-नस में — उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गयी है। उन्हें समझ कर भी भूल करनी पड़ती है। क्या वह मेरी भूल न थी — जब मुझे निर्वासित किया गया, तब मैं अपनी **आत्म-मर्यादा**[4] के लिए कितनी तड़प रही थी और राजाधिराज रामगुप्त के चरणों में रक्षा के लिये गिरी; पर कोई उपाय चला? नहीं। पुरुषों की प्रभुता का जाल मुझे अपने निर्दिष्ट पथ पर ले ही आया। मन्दा! दुर्ग की विजय मेरी सफलता है या मेरा दुर्भाग्य इसे मैं नहीं समझ सकी हूँ। राजा से मैं सामना नहीं चाहती। पृथ्वी-तल से जैसे एक साकार घृणा निकल कर मुझे अपने पीछे लौट चलने का संकेत कर रही है। क्यों, क्या यह मेरे मन का कलुष है? क्या मैं मानसिक पाप कर रही हूँ?

(उन्मत्त भाव से प्रस्थान)

मन्दाकिनी — नारी-हृदय, जिसके मध्य बिन्दु से सट कर, शास्त्र का एक मन्त्र कील की तरह गढ़ गया है और उसे अपने सरल प्रवर्तन-चक्र में घूमने से रोक रहा निश्चय ही वह कुमार चन्द्रगुप्त की अनुरागिनी है।

चन्द्रगुप्त — **(सहसा प्रवेश करके)** कौन? — मन्दा!

मन्दाकिनी — अरे कुमार! अभी थोड़ा विश्राम करते।

चन्द्रगुप्त — **(बैठते हुए)** विश्राम! मुझे कहाँ विश्राम? मैं अभी यहाँ से प्रस्थान करने वाला हूँ। मेरा कर्त्तव्य पूर्ण हो चुका। यहाँ मेरा ठहरना अच्छा नहीं।

मन्दाकिनी — किन्तु, भाभी की जो बुरी दशा है।

चन्द्रगुप्त — क्यों, उन्हें क्या हुआ? **(मन्दाकिनी चुप रहती है)** बोलो, मुझे अवकाश नहीं! राजाधिराज का सामना होते ही क्या हो जायेगा — मैं नहीं कह सकता। क्योंकि अब यह राजनीतिक छल-प्रपंच मैं नहीं सह सकता।

मन्दाकिनी — किन्तु, उन्हें इस असहाय अवस्था में छोड़कर आपका जाना क्या उचित होगा? और ···· **(चुप रह जाती है)**

चन्द्रगुप्त — और क्या? वही क्यों नहीं कहती हो?

मन्दाकिनी — तो क्या उसे भी कहना होगा? महादेवी बनने के पहले ध्रुवस्वामिनी का जो मनोभाव था, वह क्या आप से छिपा है?

चन्द्रगुप्त — किन्तु मन्दाकिनी! उसकी चर्चा करने से क्या लाभ?

चन्द्रगुप्त का अंतर्द्वंद्व

मन्दाकिनी — हृदय में नैतिक साहस — वास्तविक प्रेरणा और पौरुष की पुकार एकत्र करके सोचिये तो कुमार, कि अब आपको क्या करना चाहिये? **(चन्द्रगुप्त चिन्तित भाव से टहलने लगता है। नेपथ्य में कुछ लोगों के आने-जाने का शब्द और कोलाहल)** देखूँ तो यह क्या है? और महादेवी कहाँ गयी? **(प्रस्थान)**

चन्द्रगुप्त — **विधान**[5] की स्याही का एक बिन्दु गिर कर भाग्य-लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। मैं आज यह स्वीकार करने में भी संकुचित हो रहा हूँ कि ध्रुवदेवी मेरी है। **(ठहर कर)** हाँ, वह मेरी है। उसे मैंने आरम्भ से ही अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार किया है। मेरे हृदय के गहन **अन्तस्तल**[6] से निकली हुई यह मूक स्वीकृति आज बोल रही है। मैं पुरुष हूँ? नहीं मैं अपनी आँखों से अपना वैभव और अधिकार दूसरों को अन्याय से छीनते देख रहा हूँ। और मेरी **वाग्दत्ता**[7] पत्नी मेरे ही अनुत्साह से आज मेरी नहीं रही। नहीं, यह शील का कपट, मोह और प्रवंचना है। मैं जो हूँ, वही तो नहीं स्पष्ट रूप से प्रकट कर सका। यह कैसी विडम्बना है! विनय के आवरण में मेरी कायरता अपने को कब तक छिपा सकेगी?

(एक ओर से मन्दाकिनी का प्रवेश)

मन्दाकिनी — शकराज का शव लेकर जाते हुये आचार्य और उसकी कन्या का राजाधिराज के साथी सैनिकों ने वध कर डाला!

ध्रुवस्वामिनी — **(दूसरी ओर से प्रवेश करके)** ऐं।

(सामन्त कुमारों का प्रवेश)

सामन्त कुमार — **(सब एक साथ ही)** स्वामिनी! आपकी आज्ञा के विरुद्ध राजाधिराज ने निरीह शकों का संहार करवा दिया है।

व्यंग्य

ध्रुवस्वामिनी — फिर आप लोग इतने चंचल क्यों हैं? राजा को आज्ञा देनी चाहिये और प्रजा को **नत-मस्तक**[8] होकर उसे मानना होगा।

सामन्त कुमार — किन्तु अब वह असह्य है। **राजसत्ता**[9] के **अस्तित्व**[10] की घोषणा के लिए इतना भयंकर प्रदर्शन। मैं तो कहूँगा, इस दुर्ग में आपकी आज्ञा के बिना राजा का आना अन्याय है।

अत्याचार पूर्णसत्ता का विरोध

ध्रुवस्वामिनी — मेरे वीर सहायकों! मैं तो स्वयं एक **परित्यक्ता**[11] और **हतभागिनी**[12] स्त्री हूँ। मुझे तो अपनी स्थिति की कल्पना से भी **क्षोभ**[13] हो रहा है। मैं क्या कहूँ?

सामन्त कुमार — मैं सच कहता हूँ, रामगुप्त-जैसे राजपद को कलुषित करने वाले के लिये मेरे हृदय में तनिक भी श्रद्धा नहीं। विजय का उत्साह दिखाने यहाँ वे किस मुँह से आये, जो हिंसक, **पाखण्डी**[14], **क्षीव**[15] और क्लीव हैं।

---

1 सहारा, आश्रय; 2 अपमान, अनादर; 3 जिसका उपकार किया गया हो; 4 आत्म-सम्मान; 5 नियम; 6 आन्तरिक भाग, गहन अन्तस्तल-अनन्त गहराई; 7 वाग्दत्ता कन्या जिसके विवाह की बात किसी के साथ तय की जा चुकी हो; 8 सिर झुकाकर; 9 राजशक्ति, राज्य की सत्ता; 10 मौजूदगी होना; 11 पति द्वारा त्यागी हुई; 12 भाग्यहीन; 13 क्रोध मिश्रित दुःख; 14 धोखेबाज, धूर्त; 15 उन्मत्त, मद में अंधा (मदांध), कायर।

रामगुप्त — **(सहसा शिखरस्वामी के साथ प्रवेश करके)** क्या कहा? फिर से तो कहना!

सामन्त कुमार — गुप्त-काल के गौरव को कलंक-कालिमा के सागर में **निमज्जित**[1] करने वाले!

शिखरस्वामी — **(उसे बीच ही में रोककर)** चुप रहो! क्या तुम लोग किसी के **बहकाने**[2] से आवेश में आ गये हो? **(चन्द्रगुप्त की ओर देखकर)** कुमार! यह क्या हो रहा है?

(चन्द्रगुप्त उत्तर देने की चेष्टा करके चुप रह जाता है)

रामगुप्त — **दुर्विनीत**[3], पाखण्डी, **पामरो**[4], तुम्हें इस धृष्टता का क्रूर दण्ड भोगना पड़ेगा। **(नेपथ्य की ओर देखकर)** इन विद्रोहियों को बन्दी करो।

(रामगुप्त के सैनिक आकर सामन्त कुमारों को बन्दी बनाते हैं। रामगुप्त का संकेत पा कर सैनिक लोग चन्द्रगुप्त की ओर भी बढ़ते हैं और चन्द्रगुप्त शृंखला में बँध जाता है)

ध्रुवस्वामिनी — कुमार! मैं कहती हूँ कि तुम **प्रतिवाद**[5] करो। किस अपराध के लिए यह दण्ड ग्रहण कर रहे हो?

(चन्द्रगुप्त एक दीर्घ निःश्वास लेकर चुप रह जाता है)

रामगुप्त की धूर्तता

रामगुप्त — **(हँसकर)** कुचक्र करने वाले क्या बोलेंगे?

ध्रुवस्वामिनी — और जो लोग बोल सकते हैं, जो अपनी पवित्रता की **दुन्दुभी बजाते**[6] हैं, वे सब-के-सब साधु होते हैं न? **(चन्द्रगुप्त से)** कुमार! तुम्हारी जिह्वा पर कोई बन्धन नहीं। कहते क्यों नहीं कि मेरा यही अपराध है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया?

रामगुप्त — महादेवी!

ध्रुवस्वामिनी — **(उसे न सुनते हुए चन्द्रगुप्त से)** झटक दो इन **लौह-शृंखलाओं**[7] को! यह मिथ्या ढोंग कोई नहीं सहेगा। तुम्हारा **क्रुद्ध दुर्दैव**[8] भी नहीं।

रामगुप्त — **(डाँट कर)** महादेवी! चुप रहो!

विद्रोह का स्वर

ध्रुवस्वामिनी — **(तेजस्विता से)** कौन महादेवी! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी ही हूँ? जो, शकराज की शय्या के लिये **क्रीतदासी**[9] की तरह भेजी गयी हो वह भी महादेवी! आश्चर्य!

शिखरस्वामी — देवि, इस राजनीतिक चातुरी में जो सफलता ... ।

ध्रुवस्वामिनी — **(पैर पटक कर)** चुप रहो। प्रवंचना के पुतले! स्वार्थ के घृणित **प्रपंच**[10] चुप रहो।

रामगुप्त — तो तुम महादेवी नहीं हो न?

ध्रुवस्वामिनी — नहीं। मनुष्य की दी हुई उपाधि मैं लौटा देती हूँ।

रामगुप्त — और मेरी **सहधर्मिणी**[11]?

ध्रुवस्वामिनी — धर्म ही इसका निर्णय करेगा!

रामगुप्त — ऐं, क्या इसमें भी सन्देह!

ध्रुवस्वामिनी — उसे अपने हृदय से पूछिये कि क्या मैं वास्तव में सहधर्मिणी हूँ?

स्त्री के अधिकारों की माँग

(पुरोहित का प्रवेश सामने सबको देखकर चौंक उठता है। शिखरस्वामी उसे चले जाने का संकेत करता है)

पुरोहित — नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। प्राणि-मात्र के अन्तस्तल में जाग्रत रहने वाले महान् विचारक धर्म की आज्ञा, मैं न टाल सकूँगा। अभी जो प्रश्न अपनी गम्भीरता में भीषण होकर आप लोगों को विचलित कर रहा है, मैं ही उसका उत्तर देने का अधिकारी हूँ। विवाह का धर्मशास्त्र से घनिष्ट सम्बन्ध है।

चरम सीमा

ध्रुवस्वामिनी — आप सत्यवादी ब्राह्मण हैं। कृपा करके बतलाइये ... ।

शिखरस्वामी — **(विनय से उसे रोककर)** मैं समझता हूँ कि यह विवाद अधिक बढ़ाने से कोई लाभ नहीं!

ध्रुवस्वामिनी — नहीं, मेरी इच्छा इस विवाद का अन्त करने की है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिये कि मैं कौन हूँ।

रामगुप्त — ध्रुवस्वामिनी, निर्लज्जता की भी एक सीमा होती है।

ध्रुवस्वामिनी — मेरी निर्लज्जता का दायित्व क्लीव कापुरुष पर है। स्त्री की लज्जा लूटने वाले दस्यु के लिये मैं ... ।

रामगुप्त — **(रोककर)** चुप रहो! तुम्हारा पर-पुरुष में **अनुरक्त**[12] हृदय अत्यन्त कलुषित हो गया है। तुम काल-सर्पिणी-सी स्त्री! ओह, तुम्हें धर्म का तनिक भी भय नहीं। शिखर ! इसे भी बन्दी करो।

पुरोहित — ठहरिये! महाराज, ठहरिए! धर्म की ही बात मैं सोच रहा था।

शिखरस्वामी — **(क्रोध से)** मैं कहता हूँ कि तुम चुप न रहोगे, तो तुम्हारी भी यही दशा होगी।

(सैनिक आगे बढ़ता है)

मन्दाकिनी — **(उसे रोक कर)** महाराज, **पुरुषार्थ**[13] का इतना बड़ा प्रहसन! अबला पर ऐसा अत्याचार!!! यह गुप्त-सम्राट के लिए शोभा नहीं देता।

रामगुप्त — **(सैनिक से)** क्या देखते हो जी!

(सैनिक आगे बढ़ता है और चन्द्रगुप्त आवेश में आकर लौह-शृंखला तोड़ डालता है। सब आश्चर्य और भय से देखते हैं)

समाधान का आरंभ - कथा चरम परिणति की ओर बढ़ती है।

चन्द्रगुप्त — मैं भी आर्य समुद्रगुप्त का पुत्र हूँ। और शिखरस्वामी, तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मैं ही उनके द्वारा निर्वाचित युवराज भी हूँ। तुम्हारी नीचता अब **असह्य**[14] है। तुम अपने राजा को लेकर इस दुर्ग से सकुशल बाहर चले जाओ। यहाँ अब मैं ही शकराज के समस्त अधिकारों का स्वामी हूँ।

---

1 डुबोना; 2 बातों में फुसलाना; 3 अशिष्ट; 4 दुष्ट, पाजी, नीच; 5 विरोध; 6 नगाड़ा बजाना (यहाँ इसका प्रयोग मुहावरे के रूप में हुआ है और तारीफ करने से है। बोलचाल की भाषा में अक्सर "डंका पीटना" शब्द का इस्तेमाल किया जाता है); 7 लोहे की जंजीर; 8 दुर्भाग्य; 9 खरीदी हुई दासी; 10 छल; 11 पत्नी; 12 अनुराग युक्त, प्रेमरत; 13 पौरुष, पराक्रम, शक्ति, सामर्थ्य; 14 न सहने योग्य।

रामगुप्त — **(भयभीत होकर चारों ओर देखता हुआ)** क्या?
ध्रुवस्वामिनी — **(चन्द्रगुप्त से)** यही तो कुमार!
चन्द्रगुप्त — **(सैनिकों को डपट कर)** इन सामन्त कुमारों को मुक्त करो!
(सैनिक वैसा ही करते हैं और शिखरस्वामी के संकेत से रामगुप्त धीरे-धीरे भय से पीछे हटता हुआ बाहर चला जाता है)
शिखरस्वामी — कुमार! इस कलह को मिटाने के लिये हम लोगों को परिषद् का निर्णय माननीय होना चाहिये। मुझे आपके **अधिपत्य**[1] से कोई विरोध नहीं है, किन्तु सब काम विधान के अनुकूल होना चाहिये। मैं **कुल-वृद्धों**[2] को और सामन्तों को, जो यहाँ उपस्थित हैं, लिवा लाने जाता हूँ।

(प्रस्थान)

(सैनिक लोग और भी मंच ले आते हैं और सामन्त कुमार अपने खड्गों को खींचकर चन्द्रगुप्त के पीछे खड़े हो जाते हैं। ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त परस्पर एक दूसरे को देखते हुये खड़े रहते हैं। परिषद् के साथ रामगुप्त का प्रवेश। सब लोग मंच पर बैठते हैं)
पुरोहित — कुमार! आसन ग्रहण कीजिये।
चन्द्रगुप्त — मैं अभियुक्त हूँ।
शिखरस्वामी — बीती हुई बातों को भूल जाने में ही भलाई है। भाई-भाई की तरह गले से लग कर गुप्त-कुल का गौरव बढ़ाइये।
चन्द्रगुप्त — अमात्य, तुम गौरव किसको कहते हो? वह है कहाँ? रोग-जर्जर शरीर पर **अलंकारों**[3] की सजावट, **मलिनता**[4] और कलुष की ढेरी पर बाहरी कुंकुम-केसर का लेप गौरव नहीं बढ़ता। **कुटिलता**[5] की **प्रतिमूर्ति**[6], बोलो! मेरी वाग्दत्ता पत्नी और पिता-द्वारा दिये हुये मेरे सिंहासन का **अपहरण**[7] किसके संकेत से हुआ? और छल से ....।
रामगुप्त — यह उन्मत्त **प्रलाप**[8] बन्द करो। चन्द्रगुप्त तुम मेरे भाई ही हो न! मैं तुमको क्षमा करता हूँ।
चन्द्रगुप्त — मैं उसे मांगता नहीं और क्षमा देने का अधिकार भी तुम्हारा नहीं रहा। आज तुम राजा नहीं हो। तुम्हारे पाप प्रायश्चित की पुकार कर रहे हैं। न्यायपूर्ण निर्णय के लिये प्रतीक्षा करो और **अभियुक्त**[9] बनकर अपने अपराधों को सुनो।
मन्दाकिनी — **(ध्रुवस्वामिनी को आगे खींच कर)** यह है गुप्तकुल की वधू।
रामगुप्त — मन्दा!
मन्दाकिनी — राजा का भय, मन्दा का गला नहीं घोंट सकता। तुम लोगों को यदि कुछ भी बुद्धि होती, तो इस अपनी कुल-मर्यादा, नारी को, शत्रु के दुर्ग में यों न भेजते। भगवान् ने स्त्रियों को उत्पन्न करते ही अधिकारों से **वंचित**[10] नहीं किया है। किन्तु तुम लोगों की **दस्यु-वृत्ति**[11] ने उन्हें लूटा है। इस परिषद् में मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड़ कर जिन लोगों ने **राज-किल्विष**[12] किया हो उन्हें दण्ड मिलना चाहिये।
शिखरस्वामी — तुम क्या कह रही हो?
मन्दाकिनी — मैं तुम लोगों की नीचता की गाथा सुना रही हूँ। अनार्य! सुन नहीं सकते? तुम्हारी प्रवंचनाओं ने जिस नरक की सृष्टि की है उसका अन्त समीप है। यह साम्राज्य किसका है? आर्य समुद्रगुप्त ने किसे युवराज बनाया था? चन्द्रगुप्त को या इस क्लीव रामगुप्त को जिसने छल और बल से विवाह करके भी इस नारी को अन्य पुरुष की अनुरागिनी बताकर दण्ड देने के लिए आज्ञा दी है। वही रामगुप्त, जिसने कापुरुषों की तरह इस स्त्री को शत्रु के दुर्ग में बिना विरोध किये भेज दिया था, तुम्हारे गुप्त साम्राज्य का सम्राट है! और वह ध्रुवस्वामिनी! जिसे कुछ दिनों तक तुम लोगों ने महादेवी कह कर सम्बोधित किया है, वह क्या है? कौन है? और उसका कैसा अस्तित्व है? कहीं **धर्मशास्त्र**[13] हो तो उसका मुँह खुलना चाहिये।
पुरोहित — शिखर, मुझे अब भी बोलने दोगे या नहीं। मैं राज्य के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता। वह तुम्हारी राजनीति जाने। किन्तु इस विवाह के सम्बन्ध में तो मुझे कुछ कहना ही चाहिये।
गुप्तकुल का एक वृद्ध — कहिए देव, आप ही तो धर्मशास्त्र के मुख हैं।
पुरोहित — विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह **पददलित**[14] नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म-विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते; परन्तु यह सम्बन्ध उन प्रमाणों से भी विहीन है। और भी **(रामगुप्त को देखकर)** यह रामगुप्त मृत और **प्रव्रजित**[15] तो नहीं; पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।
रामगुप्त — **(खड़ा होकर क्रोध से)** मूर्ख! तुमको मृत्यु का भय नहीं!
पुरोहित — तनिक भी नहीं! ब्राह्मण केवल धर्म से भयभीत है। अन्य किसी भी शक्ति को वह तुच्छ समझता है। तुम्हारे बधिक मुझे धार्मिक सत्य कहने से रोक नहीं सकते। उन्हें बुलाओ, मैं प्रस्तुत हूँ।
मन्दाकिनी — धन्य हो ब्रह्मदेव!
शिखरस्वामी — किन्तु निर्भीक पुरोहित, तुम क्लीव शब्द का प्रयोग कर रहे हो!
पुरोहित — **(हँसकर)** राजनीतिक दस्यु! तुम शास्त्रार्थ न करो। क्लीव! श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्लीव किसलिये कहा था? जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकगामिनी बनने के लिये भेजने में कुछ संकोच नहीं, वह क्लीव नहीं तो और क्या है? मैं स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।

---

1 प्रभुत्व; 2 परिवार के बुजुर्ग; 3 आभूषण; 4 मैल; 5 चालबाजी, दुष्टता; 6 प्रतिमा; 7 छीन लेना; 8 निरर्थक बात; बकवास; 9 जिस पर किसी अपराध का अभियोग लगाया गया हो, मुल्जिम; 10 हीन, रहित; 11 डाकू का पेशा, लुटेरापन; 12 राजनीतिक अपराध; 13 वह आप्त ग्रंथ जिसमें मनुष्य के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, दाय-विधान आदि की व्यवस्था हो (मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियां); 14 पैरों के नीचे कुचलना, नष्ट-भ्रष्ट; 15 जो बाहर चला गया हो।

परिषद् के सब लोग — अनार्य, पतित[1] और क्लीव रामगुप्त, गुप्त साम्राज्य के पवित्र राज्य-सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं।

रामगुप्त — **(सशंक और भयभीत-सा इधर-उधर देखकर)** तुम सब पाखण्डी हो, विद्रोही हो। मैं अपने न्यायपूर्ण अधिकार को तुम्हारे-जैसे कुत्तों के भौंकने पर न छोड़ दूँगा।

शिखरस्वामी — किन्तु परिषद् का विचार तो मानना ही होगा।

रामगुप्त — **(रोने के स्वर में)** शिखर! तुम भी ऐसा कहते हो? नहीं, मैं यह न मानूँगा।

ध्रुवस्वामिनी — रामगुप्त तुम अभी इस दुर्ग के बाहर जाओ।

रामगुप्त — ऐं! यह परिवर्तन? तो मैं सचमुच क्लीव हूँ क्या?

(धीरे-धीरे हटता हुआ चन्द्रगुप्त के पीछे पहुँचकर उसे कटार निकाल कर मारना चाहता है चन्द्रगुप्त को विपन्न देखकर कुछ लोग चिल्ला उठते हैं। जब तक चन्द्रगुप्त घूमता है तब तक एक सामन्त कुमार रामगुप्त पर प्रहार[2] करके चन्द्रगुप्त की रक्षा कर लेता है; रामगुप्त गिर पड़ता है)

सामन्त-कुमार — राजाधिराज चन्द्रगुप्त की जय!

परिषद् — महादेवी ध्रुवस्वामिनी की जय!

(पटाक्षेप)

बोध प्रश्न 1

क) ध्रुवस्वामिनी से रामगुप्त की पहली बार बातचीत कब होती है?

....

....

....

....

ख) शकराज ने क्या संधि-प्रस्ताव भेजा है?

....

....

....

ग) चंद्रगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी की रक्षा का क्या उपाय सोचा है?

....

....

....

....

घ) कोमा खिन्न होकर क्यों चली जाती है?

....

....

....

....

ङ) पुरोहित तथा परिषद् के सदस्य क्या निर्णय देते हैं?

....

....

....

....

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित वाक्यों को पढ़िए और बताइए कि वे किस पात्र के वचन हैं और उसने वह वचन क्यों कहे हैं?

क) "किन्तु मेरा नीड़ कहाँ है? यह तो स्वर्ण-पिंजर है?"

....

....

1 आचार से भ्रष्ट व्यक्ति, 2 वार, आघात।

....

....

ख) "हाँ यह तो बताओ, तुम्हारे राजकुल में नियम क्या है? पहले अमात्य की मंत्रणा सुननी पड़ती है फिर राजा से भेंट होती है?"

....

....

....

....

ग) शकराज क्या मुझे देवी बना कर भक्तिभाव से मेरी पूजा करेगा। वाह रे लज्जाशील पुरुष!

....

....

....

....

घ) वह देख, नील लोहित रंग का धूमकेतु अविचल भाव से इस दुर्ग की ओर कैसा भयानक संकेत कर रहा है?

....

....

....

....

ङ) उसे अपने हृदय से पूछिए क्या मैं वास्तव में सहधर्मिणी हूँ।

....

....

....

....

....

27.3 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1

"निर्लज्ज! मद्यप!! क्लीव!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहर कर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूंगी। मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतल-मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूंगी।

संदर्भ

प्रस्तुत पंक्तियां श्री जयशंकर 'प्रसाद' के नाटक "ध्रुवस्वामिनी" से ली गई हैं। 'प्रसाद' जी हिंदी के प्रमुख नाटककार हैं। उन्होंने कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटकों की रचना की है। प्रस्तुत नाटक "ध्रुवस्वामिनी" गुप्त युगीन इतिहास से संबंधित है।

प्रसंग

सम्राट समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उनका बड़ा पुत्र रामगुप्त सिंहासन पर बैठा और उसका विवाह ध्रुवस्वामिनी से हुआ। रामगुप्त में सुयोग्य शासक के सभी गुणों का अभाव है। मद्यपान और भोग विलास ही उसके जीवन का लक्ष्य है। महादेवी ध्रुवस्वामिनी के प्रति भी उसका व्यवहार अपमानजनक है। उसे शंका है कि महादेवी के हृदय में कुमार चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम भाव है। उसी समय सूचना मिलती है कि उनके शिविर को शकों ने घेर लिया है बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं है। अब दो ही रास्ते रह गए हैं या तो युद्ध करके शकों को पराजित किया जाए या फिर उनका संधि-प्रस्ताव स्वीकार किया जाए। संधि के प्रमाणस्वरूप शकराज ने महादेवी ध्रुवस्वामिनी को माँगा है। कायर रामगुप्त में युद्ध करने का साहस और पराक्रम तो नहीं है। किन्तु उसे राजसिंहासन का लोभ है। किसी भी कीमत पर राजाधिराज बना रहना चाहता है। वह संधि की शर्त स्वीकार करने को तैयार हो गया है। ध्रुवस्वामिनी को यह सुनकर अत्यंत कष्ट होता है। वह रामगुप्त को ध्यान दिलाती है कि अपनी पत्नी को उपहार में देने में उसका अपना ही अपमान है किन्तु रामगुप्त पर कोई असर नहीं होता। वह

रक्षा की भीख माँगती है, अनुरोध करती है कि अपना अहं त्याग कर वह राजा के विलास की सहचरी बनने को प्रस्तुत है। किन्तु कायर रामगुप्त किसी भी कीमत पर शकराज से युद्ध में मुकाबला नहीं करना चाहता क्योंकि उसे दुनिया में सबसे ज्यादा अपने प्राण प्यारे हैं। भले ही सम्मान रहे या न रहे। वह अपने प्राणों को संकट में नहीं डाल सकता। इसलिए उसका आदेश है कि ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास जाना ही होगा। असहाय अवस्था में विवश ध्रुवस्वामिनी क्षोभ, क्रोध और घृणा से तिलमिला उठती है।

व्याख्या

अपमान से आहत और परिस्थितियों से विवश ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से कटु वचन कहती है। बेशर्म, कायर, नपुंसक और मद्यप संबोधनों का प्रयोग करके वह अपना क्रोध प्रकट करती है। वह विनम्रता का आवरण उतार कर फेंक देती है। स्थिति को यथावत् स्वीकार कर लेने वाला मध्ययुगीन बोध यहां नहीं है। एक जागरूक साहसी स्त्री की भाँति वह अपने प्रति हो रहे अपमान और अन्याय का विरोध करती है। रामगुप्त के आचरण की निंदा करती है। एक क्षण के लिए उसमें बेबसी दिखाई देती है, जब वह कहती है : "ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं।" तुरंत ही उसका आत्म विश्वास जागता है। वह दृढ़ता से कहती है कि वह स्वयं अपनी रक्षा करेगी। बौद्धिक रूप से जागरूक आधुनिक स्त्री की भाँति वह कहती है कि वह कोई निर्जीव वस्तु नहीं जिसे उपहार में दे दिया जाए। वह कोई शीतलता प्रदान करने वाला रत्न भी नहीं है जिसे कोई व्यक्ति जब चाहे दूसरे को दे दे! "शीतल मणि" से तात्पर्य ऐसी चीज़ से है जो किसी व्यक्ति के सुख और आराम के लिए उसे उपलब्ध कराई जाए। जब वह कहती है कि उसमें रक्त की तरल लालिमा है यानी वह मनुष्य है, उसके साथ बेजान चीज़ों जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता तो इसका तात्पर्य है कि स्त्री होने के नाते वह केवल पुरुष की विलासिता का साधन नहीं है जिसे उपहार के रूप में दिया जाए। व्यक्ति के रूप में उसकी अपनी स्वतंत्रता की रक्षा होनी चाहिए। यह उसका मानवीय अधिकार है। मनुष्य और बेजान चीज़ों में क्या अंतर है? यही न कि मनुष्य सुख-दुख , मान-अपमान अनुभव करता है, उसमें सोचने विचारने की शक्ति है क्योंकि उसके पास हृदय होता है। हृदय उष्ण होने का अर्थ है कि हृदय में भाव की ऊष्मा होती है आत्मसम्मान की भावना होती है। आत्मसम्मान उस पवित्र ज्योति की तरह होता है जो मनुष्य को व्यक्ति के रूप में अपनी सार्थकता का अहसास कराता है। उसमें श्रेष्ठ जीवन मूल्यों का संचार करता है जिसकी ध्रुवस्वामिनी रक्षा करना चाहती है। आत्मसम्मान की रक्षा के लिए जब किसी अन्य व्यक्ति की सहायता नहीं मिलती तो वह स्वयं ही अपनी रक्षा का दृढ़ निश्चय करती है।

विशेष

1) इस गद्यांश में ध्रुवस्वामिनी के हृदय के कई भावों — क्रोध, विवशता और आत्मविश्वास — को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। मानवीय मनोविज्ञान की दृष्टि से यह बहुत स्वाभाविक चित्रण है।

2) इससे ध्रुवस्वामिनी के चरित्र की विशेषता अर्थात् उसके विश्वास और दृढ़ता का पता चलता है।

3) यह लेखक के आधुनिक भावबोध का सूचक है।

4) यहाँ भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा सांकेतिक है। "शीतल-मणि", "रक्त की तरल लालिमा" आदि बिम्ब बहुल शब्दों ने भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का विस्तार किया है। यानी ये शब्द हमारी कल्पना में एक तरह का भाव चित्र प्रस्तुत करते हैं।

5) ध्रुवस्वामिनी के इस कथन में आधुनिक भारतीय नारी जागरण का संकेत भी मिलता है।

उद्धरण 2

"राजनीति? राजनीति ही मनुष्यों के लिए सब कुछ नहीं। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो, जिसका विश्व मानव के साथ व्यापक संबंध है। राजनीति की साधारण छलनाओं से सफलता प्राप्त करके क्षण भर के लिए तुम अपने को चतुर समझ लेने की भूल कर सकते हो। परन्तु इस भीषण संसार में प्रेम करने वाले हृदय को खो देना, सबसे बड़ी हानि है। शकराज! दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।"

संदर्भ : पूर्व प्रसंग की भाँति

प्रसंग

शकराज ने अपने संधि-प्रस्ताव में रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी की माँग की थी। उसे खिंगल से पता चलता है कि ध्रुवस्वामिनी आ गई है तो वह अपनी विजय के प्रसाद में कोमा की उपेक्षा करता है। कोमा और मिहिरदेव समझाते हैं कि गुप्त सम्राट का गर्व चूर करने के लिए किसी स्त्री का सम्मान नष्ट करना उचित नहीं। मिहिरदेव ध्यान दिलाते हैं कि शकराज का ऐसा करना अपनी भावी पत्नी (कोमा) के प्रति अत्याचार होगा। किन्तु शकराज अपने राजनीतिक कार्यों में मिहिरदेव का हस्तक्षेप नहीं चाहता। फिर भी मिहिरदेव उसे सही मार्ग पर चलने की सलाह देते हुए आगाह करते हैं।

व्याख्या

यहाँ मिहिरदेव मानवतावादी मूल्यों को जीवन में सर्वोच्च स्थान प्रदान करने की प्रेरणा देते हैं। इसलिए वे कहते हैं कि अपने आप में महत्वपूर्ण होते हुए भी राजनीति मनुष्य के लिए सब कुछ नहीं है। वह एक साधन हो सकती है किन्तु साध्य नहीं। राजनीति को जीवन का लक्ष्य मान लेने पर मनुष्य नीति यानी उन बृहत्तर जीवन मूल्यों से कट जाता है, जो संपूर्ण मानवता के लिए कल्याणप्रद हैं। इसलिए वे शकराज को सावधान करते हैं कि राजनीति के पीछे कहीं नीति से हाथ न धो बैठना। नीति को अपनाने पर व्यक्ति ऐसा व्यवहार करेगा जिससे उसकी अपनी भलाई हो और किसी दूसरे का भी अहित न हो। यदि नीति का पालन नहीं होगा तो समाज में सदाचरण और सद्व्यवहार समाप्त हो जाएगा। जीवन के वे उच्चतर मूल्य समाप्त हो जाएँगे जो मनुष्यता को गरिमा प्रदान करते हैं। राजनीति के सामान्य छल-कपट के माध्यम से सफलता पाकर थोड़ी देर के लिए मनुष्य अपने को बहुत समर्थ और कुशल समझ सकता है। किन्तु यह उसकी भूल होगी क्योंकि यह सफलता उसके जीवन की चरम उपलब्धि नहीं है। अन्य सहयोगी मनुष्यों का विश्वास और स्नेह पा सकना जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है क्योंकि एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की स्पर्धा में मनुष्य नीति को छोड़ कर छल-कपटपूर्ण मार्ग अपनाने लगता है। छल-कपट के कारण भयंकर जान पड़ने वाले इस संसार में किसी प्रेम करने वाले व्यक्ति को खोना सबसे बड़ी हानि है। निष्कपट प्रेम करने वाले व्यक्ति मुश्किल से मिलते हैं इसीलिए उनका विश्वास भंग करना जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि को खो देना है। मिहिरदेव शकराज को उचित मार्ग दिखाते हुए कहते हैं कि दो प्रेम करने वाले हृदयों के बीच स्वर्गीय ज्योति विद्यमान रहती है। उनके बीच कोई छल-कपट राग-द्वेष या स्वार्थ नहीं होता प्रवंचना का कोई आवरण नहीं होता। स्वर्गीय ज्योति से यहाँ किसी दिव्य अथवा अलौलिक चीज़ का बोध नहीं कराया गया बल्कि इसके माध्यम से प्रेम की उदारता की ओर संकेत किया गया है।

विशेष

1) प्रस्तुत गद्यांश 'प्रसाद' जी की मानवतावादी जीवन दृष्टि का सूचक है।

2) प्रेम के उदात्त रूप की चर्चा की गई है जिसमें किसी तरह के कलुष की कोई संभावना नहीं।

3) शैली विचार और विश्लेषण प्रधान है।

4) i) भाषा में भाव और विचार की ऊर्जा के साथ-साथ बोलचाल की रवानी है।
   ii) "हाथ धो बैठना" मुहावरा प्रयुक्त हुआ है इसका अर्थ है खो देना।

उद्धरण 3

"इस प्रथम संभाषण के लिए कृतज्ञ हुई महाराज! किन्तु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री-संप्रदान से ही बढ़ा है?"

संदर्भ .... (पहले की भाँति)

....

....

....

....

प्रसंग

शकों ने रामगुप्त के शिविर को दोनों तरफ से घेर लिया है। पहाड़ी रास्ता बिल्कुल बंद हो गया है। ऐसी स्थिति में रामगुप्त के पास दो ही विकल्प हैं युद्ध करके शकों को परास्त करे या उनका संधि-प्रस्ताव स्वीकार करे। रामगुप्त को शंका है कि ध्रुवस्वामिनी महादेवी बन जाने के बावजूद चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है और किसी भी समय उसके लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है। इसलिए वह भीतर बाहर के सभी शत्रुओं को एक ही चाल में परास्त करना चाहता है। शकराज का संधि-प्रस्ताव स्वीकार करके वह ध्रुवस्वामिनी उसके पास भेजने को तैयार है। वह योजना बना कर शिखरस्वामी के साथ ध्रुवस्वामिनी से मिलने आता है। इससे पहले वह उसके पास कभी नहीं आया। कभी उसने ध्रुवस्वामिनी से बातचीत भी नहीं की। अब ध्रुवस्वामिनी के पास आकर दोनों इस तरह व्यवहार कर रहे हैं कि वे अचानक ही वहाँ पहुँचे हैं। शिखरस्वामी शकराज के प्रस्ताव की सूचना देता है। रामगुप्त ऐसा व्यवहार करता है जैसे वह कुछ जानता ही नहीं। ध्रुवस्वामिनी उन दोनों के व्यवहार से अत्यंत क्षुब्ध होती है।

व्याख्या

रामगुप्त द्वारा उपेक्षा और अपमान की वेदना से ध्रुवस्वामिनी पहले ही क्षुब्ध थी, ऊपर से इस व्यवहार को पाकर वह रामगुप्त पर व्यंग्य करती है कि इस प्रथम संभाषण के लिए अपने पति की कृतज्ञ है। यहाँ "कृतज्ञ" शब्द का व्यंजनाश्रित प्रयोग है। वह अपने सामान्य अर्थ से विपरीत अर्थ का द्योतक है। शाब्दिक अर्थ है कि वह रामगुप्त की कृपा का उपकार स्वीकार कर रही है किन्तु निहित अर्थ है कि यह वस्तुतः उसकी कृपा नहीं अत्याचार है जिससे उसे अपार कष्ट पहुँचा है। इस वाक्य से वह रामगुप्त को उलाहना देती है कि अब तक उसने एक बार भी अपनी पत्नी से बात नहीं की। पहली बार जो बात की है वह भी कितनी स्नेह विहीन, अनुत्तरदायित्वपूर्ण और अपमानजनक है। अपने अगले वाक्य में वह और भी तीखा व्यंग्य करती है कि अपने शौर्य और पराक्रम के लिए विख्यात गुप्त साम्राज्य का विस्तार क्या अपनी कुल-वधुओं को (अन्य

लोगों को) भेंट में देकर किया गया है। इस तरह वह रामगुप्त के संपूर्ण व्यक्तित्व को ललकारती है। यहाँ कटु व्यंग्य के माध्यम से भर्त्सना की गई है। यह प्रश्न वस्तुतः प्रश्न मात्र नहीं है। यहाँ रामगुप्त को उसकी कायरता और धृष्टता का अहसास कराने का प्रयास है। गुप्त साम्राज्य के अद्वितीय गौरव को स्मरण कराके रामगुप्त को उसके छोटेपन का अहसास कराने की कोशिश की है।

विशेष

1) प्रस्तुत वाक्य तीखे व्यंग्य का अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

2) भाषा की व्यंजना शक्ति कितनी प्रबल होती है यह यहाँ देखा जा सकता है। दो वाक्यों में जो कुछ कह दिया गया उसे अभिधापरक प्रयोग के द्वारा पूरे पैराग्राफ में नहीं कहा जा सकता था।

3) तत्सम शब्दों का प्रयोग होते हुए भी भाषा में बोलचाल की सहजता है।

उद्धरण 4

"कौन महादेवी! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी ही हूँ? जो शकराज की शैय्या के लिए क्रीतदासी की तरह भेजी गई हो, वह भी महादेवी! आश्चर्य!"

संदर्भ

पूर्व उद्धरण की भाँति

....

....

....

....

प्रसंग

चन्द्रगुप्त द्वारा शकों पर विजय की सूचना पाकर रामगुप्त अपने सैनिकों के साथ दुर्ग में आ जाता है। वहाँ निरीह शकों की हत्या कराके अपनी शक्ति का मिथ्या प्रदर्शन करता है। जब सामंत कुमार उसके इस आचरण का विरोध करते हैं तो वह उन्हें बंदी बनवा लेता है। फिर वह सैनिकों को आदेश देकर चन्द्रगुप्त को भी बंदी बनवा लेता है। ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त से प्रतिवाद करने के लिए कहती है किन्तु वह चुप रहता है। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को डाँटते हुए कहता है "महादेवी! चुप रहो।" तब ध्रुवस्वामिनी दृढ़तापूर्वक पूछती है।

व्याख्या

"महादेवी" का संबोधन उसके लिए कहाँ तक और किस तरह उपयुक्त है? क्या इतना सब हो जाने के बाद भी वह महादेवी बनी रह सकती है? महादेवी वह पदवी है जो किसी राजा की रानी को दी जाती है, उसे राजा के समकक्ष सम्मान मिलता है। किन्तु राजा रामगुप्त ने महादेवी को शकराज के पास उपहार स्वरूप भेज दिया, वैसे ही जैसे किसी खरीदी हुई दासी को किसी भी व्यक्ति के पास भेज दिया जाए। उसे न तो पत्नी का अधिकार मिला, न ही महादेवी का। पति होने के नाते रामगुप्त को अपने और अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा करनी चाहिए थी न कि शकराज के भोग-विलास के साधन के रूप में उसके पास जाने का आदेश देना चाहिए था और राजाधिराज होने के नाते उसे महादेवी के गौरव की रक्षा जी-जान से करनी चाहिए थी। भोग-विलास के उपहार के रूप में भेजी गई स्त्री का स्थान खरीदी हुई दासी से अधिक नहीं है। जो स्त्री किसी दूसरे को दे दी गई वह अपने पूर्व गौरव और पद दोनों से वंचित की जा चुकी है। उसे पूर्व सम्मानपूर्ण नाम "महादेवी" से पुकारना न केवल अनाधिकारपूर्ण चेष्टा है, बल्कि रामगुप्त की निर्लज्जता का सूचक भी है। ध्रुवस्वामिनी का यह कथन रामगुप्त के प्रति धिक्कार का संकेत है। इस बात को ध्रुवस्वामिनी व्यंग्यपूर्वक कहती है कि उसे आश्चर्य है कि शकराज की शैय्या के लिए यानी उसके विलास के लिए भेजे जाने के बावजूद भी क्या रामगुप्त उस पर अपना अधिकार समझता है।

विशेष

1) इस कथन के माध्यम से ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त पर व्यंग्य करने के साथ-साथ पुरुष के अधिकारों की व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाती है और स्त्री के अधिकारों की अप्रत्यक्ष रूप से माँग करती है।

2) भाषा में बोलचाल की सहजता है।

3) शैली व्यंग्यात्मक है।

अभ्यास

नीचे "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के कुछ अंश उद्धृत किए जा रहे हैं, उनकी संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

उद्धरण 1

"भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है। सच है-वीरता जब भागती है तो उसके पैरों से छल-छंद की धूल उड़ती है।"

संदर्भ

नाटक और नाटककार की चर्चा

....

....

....

....

प्रसंग

प्रस्तुत कथन किस पात्र का है।

....

....

....

....

किस प्रसंग में उसने यह बात किसे कही है?

....

....

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष

1) कथन की विशेषता (उसका मूल भाव)

....

....

2) भाषा

....

....

3) शैली

....

....

4) अन्य

....

....

....

उद्धरण 2

"कुछ नहीं, मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते। हाँ तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊंगी।"

संदर्भ

नाटक और नाटककार की चर्चा

....

....

....

....

प्रस्तुत कथन किस पात्र का है?

....

किस प्रसंग में उसने यह बात किससे कही है?

....

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष

1) कथ्य का मूल भाव

....

....

2) भाषा

....

....

3) शैली

....

....

अन्य

....

....

उद्धरण 3

"तोड़ डालूँ पिताजी! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी बल्लरी, मेरे आँख बंद कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गई है। दे दूँ एक झटका — उसकी हरी-भरी पत्तियां कुचल जाएँ और वह छिन्न होकर धूल में लोटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!"

संदर्भ

....

....

....

....

प्रसंग

....

....

....

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष

1) मूलभाव

....

....

....

2) भाषा

....

....

3) शैली

....

....

....

4) अन्य

....

....

....

27.4 सारांश

इस इकाई में आपने नाटककार जयशंकर 'प्रसाद' तथा उनके नाटक "ध्रुवस्वामिनी" के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की। फिर आपने "ध्रुवस्वामिनी" का वाचन किया। वाचन करते समय इसमें प्रयुक्त कठिन शब्दों के अर्थ जाने और इसमें आए विभिन्न ऐतिहासिक पौराणिक संदर्भों की जानकारी प्राप्त की। अब आप इसकी भाषा-शैली और कथ्य से परिचय प्राप्त हो गए हैं। कथा में आए महत्वपूर्ण मोड़ों, और विविध पात्रों की वैयक्तिक विशेषताओं पर आपने गौर किया होगा। यदि वैसा नहीं कर पाये हैं तो इस नाटक को एक बार फिर से पढ़ें। हालाँकि इन पक्षों की विस्तृत चर्चा हम अगली इकाइयों में करेंगे, फिर भी मूल नाटक को अच्छी तरह समझना आपके लिए जरूरी है। ऐसा करके ही आप इस नाटक के किसी अंश की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे। हमने यहाँ आपको कुछ अंशों की व्याख्या करके दिखाई है। उस व्याख्या को ध्यान से पढ़ें। इससे आपको पता लगेगा कि किसी गद्यांश की व्याख्या करते समय उसके कठिन शब्दों के स्थान पर सही शब्दों का प्रयोग कर देना मात्र पर्याप्त नहीं है। उन शब्दों के पीछे निहित लेखकीय आशय को पकड़ना भी जरूरी है। कई बार लेखक बड़ी सांकेतिक भाषा का प्रयोग करता है। उन संकेतों को पकड़ कर हम उनमें निहितार्थ का भली-भाँति पता लगा सकेंगे।

27.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) देखें, पृ. 38
ख) देखें, पृ. 39
ग) देखें, पृ. 42
घ) देखें, पृ. 46
ङ) देखें, पृ. 53

बोध प्रश्न 2

क) यह ध्रुवस्वामिनी का कथन है। गुप्तकुल की वधु तथा राजाधिराज रामगुप्त की महादेवी बन जाने पर ध्रुवस्वामिनी को बड़ा ही अपमानपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है इसलिए वह अपने आपको सोने के पिंजरे में कैद पंछी की भाँति महसूस करती है।

ख) यह ध्रुवस्वामिनी का कथन है। उसके विवाह को कई दिन हो चुके हैं किन्तु उसके पति राजाधिराज रामगुप्त ने उससे अभी तक एक बार भी बातचीत नहीं की है। उसे इस अपमान की पीड़ा है। तभी सेविका कहती है कि अमात्य उससे मिलना चाहते हैं। इस पर ध्रुवस्वामिनी यह व्यंग्य भरे वचन कहती है।

ग) वह व्यंग्यपूर्ण वचन ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से कहती है। उसकी रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग को तैयार चन्द्रगुप्त के प्रति उसका स्नेहभाव प्रकट हो जाता है। रामगुप्त इसके लिए उसे लज्जित करने का प्रयास करता है तो ध्रुवस्वामिनी ये क्रोधपूर्ण व्यंग्य वचन कहती है।

घ) यह मिहिरदेव का कथन है। शकराज के अनीतिपूर्ण कार्यों के परिणामस्वरूप भावी अनिष्ट की ओर ध्यान दिलाते हुए वे कोमा को सावधान करते हैं कि उसकी भलाई यहाँ से चले जाने में ही है।

ङ) ध्रुवस्वामिनी के यह वचन नारी जाग्रति की भावना के सूचक हैं। वह रामगुप्त को ध्यान दिलाती है कि इतने अन्याय के बावजूद भी क्या उसका हृदय ध्रुवस्वामिनी पर अपना अधिकार समझता है और यदि समझता है तो यह गलत है।

इकाई 28 "ध्रुवस्वामिनी" : कथानक

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 कथावस्तु के स्रोत (वस्तु चयन)
28.3 नाटक की कथा का सार
28.4 कथावस्तु का सार
28.4.1 कथा का आरंभ
28.4.2 कथा का विकास
28.4.3 कथा की परिणति
28.5 कथावस्तु का विश्लेषण
28.5.1 अंक-दृश्य योजना
28.5.2 दृश्य और सूच्य घटनाएँ
28.5.3 आधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु
28.5.4 विविध नाटकीय युक्तियों का प्रयोग
28.5.5 संकलन-त्रय
28.5.6 कथावस्तु विकास की परंपरागत प्रविधियाँ
28.5.7 कार्य-व्यापार की तीव्रता और आद्योपांत संघर्ष
28.6 सारांश
28.7 शब्दावली
28.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बता सकेंगे कि "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की कथा का चयन किन ऐतिहासिक स्रोतों से किया गया है;
- "ध्रुवस्वामिनी" की कथा का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- कथावस्तु संघटन के विभिन्न चरणों का उल्लेख कर सकेंगे;
- कथावस्तु योजना का विश्लेषण कर सकेंगे।

28.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने जयशंकर 'प्रसाद' के नाटक "ध्रुवस्वामिनी" का वाचन किया तथा इसके महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या की। इस इकाई में हम "ध्रुवस्वामिनी" की कथावस्तु का विश्लेषण करेंगे। यानी आप पढ़ेंगे कि कथा किन स्रोतों से ली गई है, उसमें किन महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया गया है तथा विविध कथा सूत्रों को किस ढंग से विकसित किया गया है, परिस्थितियों और मनोभूमिकाओं में अंतःसंबंध का विकास तथा घटनाओं में कारण-कार्य संबंध का निर्वाह किस रूप में हुआ है। वस्तु-संघटन-शिल्प की दृष्टि से नाटक की विवेचना करने के साथ ही अंक-दृश्य-विधान और प्रस्तुति-पक्ष पर भी विचार किया जाएगा।

28.2 कथावस्तु के स्रोत (वस्तु चयन)

"ध्रुवस्वामिनी" की कथा गुप्त-युगीन इतिहास से ली गई है। सम्राट समुद्रगुप्त के पुत्र रामगुप्त और चन्द्रगुप्त तथा गुप्त-कुल-वधु ध्रुवस्वामिनी से संबंधित कथावस्तु ऐतिहासिक-सांस्कृतिक प्रमाणों पर आधारित है। संस्कृत नाटककार विशाखदत्त के नाटक "देवी चन्द्रगुप्त" के कुछ अंशों का प्रकाशन सन् 1923 में कुछ ऐतिहासिक पत्रिकाओं में हुआ जिससे गुप्तवंश के बारे में अब तक अज्ञात कुछ तथ्य प्रकाश में आये। इस जानकारी ने इतिहासकारों को तथ्यों पर नए ढंग से

साधने को विवश किया। राजशेखर और बाणभट्ट के प्रमाणों तथा नारद स्मृति, पराशर स्मृति, कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" आदि के आधार पर उन्होंने कुछ निष्कर्ष इस प्रकार निकाले:

1) समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य के शासन के बीच में कुछ समय के लिए रामगुप्त नामक सम्राट हुआ।

2) रामगुप्त ने अपनी पत्नी को शकराज को भेंट स्वरूप भेजा।

3) चन्द्रगुप्त ने स्त्री वेश में आकर शकराज का वध किया और ध्रुवस्वामिनी की उससे रक्षा की।

4) चन्द्रगुप्त से ध्रुवस्वामिनी का पुनर्लग्न (पुनर्विवाह) हुआ।

रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के "मोक्ष" (आधुनिक भाषा में "तलाक" अथवा "विवाह-विच्छेद") तथा चन्द्रगुप्त से पुनर्विवाह की पुष्टि से संबंधित अन्य तथ्यों का हवाला लेखक ने नाटक की भूमिका में प्रस्तुत किया है और कहा है : "इतिहास के आधार पर जो कुछ हो चुका है या जिस घटना के घटित होने की संभावना है उसी को लेकर इस नाटक के कथावस्तु का विकास किया गया है।"

28.3 नाटक की कथा का सार

सम्राट समुद्रगुप्त ने अपना उत्तराधिकारी अपने बड़े पुत्र रामगुप्त को न चुनकर छोटे पुत्र चन्द्रगुप्त को चुना था, किन्तु सम्राट की मृत्यु के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया और रामगुप्त सम्राट बना। समुद्रगुप्त की साम्राज्य नीति के अनुसार विजित राजा लोग विजयी राजा को उपहार के रूप में कन्यादान करते थे। इसी तरह ध्रुवस्वामिनी गुप्तकुल में आयी। उसका विवाह चन्द्रगुप्त से होना था किन्तु रामगुप्त के सम्राट बन जाने पर उसका विवाह रामगुप्त से हुआ है। पौरुष विहीन और विलासी होने के कारण रामगुप्त शासन का दायित्व वहन करने में तो असमर्थ सिद्ध होता ही है अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी से भी सम्मानपूर्ण व्यवहार नहीं करता। उसे शंका है कि कहीं ध्रुवस्वामिनी के मन में अब भी चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम तो नहीं है। इसलिए वह ध्रुवस्वामिनी पर पहरा रखता है और उसके मनोभाव को जानने के लिए खड्गधारिणी स्त्री को भेजता है। रामगुप्त को भय है कि यदि वह चन्द्रगुप्त से प्रेम करेगी तो उसके अपने लिए कुचक्र रच सकती है।

तभी सूचना मिलती है कि शकों ने शिविर को दोनों ओर से घेर लिया है। शक-दूत संधि-प्रस्ताव लाता है जिसमें शकराज ने अपने लिए ध्रुवस्वामिनी की तथा अपने सामंतों के लिए मगध के सामंतों की स्त्रियों की माँग की है। यदि वे दे दीं जाएँ तो संधि हो सकती है। ध्रुवस्वामिनी के समक्ष जब यह प्रस्ताव आता है तो वह अपमान की पीड़ा से कराह उठती है। वह अपेक्षा करती है कि रामगुप्त अपनी पत्नी और कुल की मर्यादा की रक्षा करेगा। किन्तु जब रामगुप्त उसे शकराज को भेंट करने के लिए तैयार हो जाता है तो वह उससे सम्मान की रक्षा की भीख माँगती है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा की भीख न मिलने पर वह आत्महत्या को तत्पर हो उठती है। तभी चन्द्रगुप्त आकर रोकता है। रामगुप्त और शिखरस्वामी के कायरतापूर्ण प्रस्ताव को जानकर चन्द्रगुप्त क्रोधित होता है। गुप्त कुल की मर्यादा और ध्रुवस्वामिनी के सम्मान की रक्षा को अपना दायित्व मानता हुआ वह प्रस्ताव करता है कि वह स्वयं ध्रुवस्वामिनी के वेश में सामंत कुमारों के साथ शकराज के पास जाएगा। आत्म बलिदान करके भी ध्रुवस्वामिनी की रक्षा के चन्द्रगुप्त के प्रस्ताव को देखकर ध्रुवस्वामिनी के मन में चन्द्रगुप्त के प्रति विद्यमान स्नेहभाव व्यक्त हो जाता है। वह चन्द्रगुप्त को अपनी भुजाओं में पकड़ कर अनुरोध करती है कि इतने बड़े बलिदान की जरूरत नहीं है। रामगुप्त और शिखरस्वामी को चन्द्रगुप्त का यह प्रस्ताव उचित लगता है किन्तु उसका विचार है कि ध्रुवस्वामिनी को भी साथ भेज दिया जाए। इससे वे ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त दोनों से छुटकारा पा सकेंगे। चन्द्रगुप्त की योजना सफल होती है। वीरतापूर्वक वह शकराज को समाप्त कर देता है और शक दुर्ग उसके आधिपत्य में आ जाता है।

विजय की सूचना पाकर रामगुप्त, शिखरस्वामी, मंदाकिनी आदि भी वहाँ आते हैं ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से मिलना नहीं चाहती। क्रोध और घृणा की अग्नि में उसका हृदय मानो जल उठा है। रामगुप्त अपने सैनिकों को आज्ञा देकर निरीह सैनिकों का वध करवा देता है। सामंत कुमार रामगुप्त के इस आचरण का विरोध करते हैं। रामगुप्त सैनिकों को आज्ञा देकर चन्द्रगुप्त सहित सामंत कुमारों को बंदी बनवा लेता है। ध्रुवस्वामिनी इसका विरोध करती है। रामगुप्त उसे चुप रहने का आदेश देता है। ध्रुवस्वामिनी कहती है कि वह उसी क्षण से महादेवी नहीं रही जब से उसे शकराज को उपहारस्वरूप भेंट कर दिया गया था। रामगुप्त के पूछने पर कि क्या वह उसकी पत्नी नहीं है? ध्रुवस्वामिनी उत्तर देती है कि इस प्रश्न का उत्तर रामगुप्त को अपने हृदय से माँगना चाहिए। इस अवसर पर पुरोहित आता है और इस प्रश्न का उत्तर देना चाहता है। शिखरस्वामी इस विवाद को रोक देने की सलाह देता है किन्तु ध्रुवस्वामिनी जोर देती है कि यह निर्णय हो ही जाना चाहिए। इस पर रामगुप्त सैनिकों को आदेश देता है कि ध्रुवस्वामिनी को भी बंदी बनाया जाए। तभी चन्द्रगुप्त आवेश में आकर और लौह-शृंखला तोड़ डालता है। सैनिकों को आदेश देकर सामंत कुमारों को मुक्त कराता है। शिखरस्वामी तथा रामगुप्त को दुर्ग छोड़ कर जाने का आदेश देता है और दुर्ग पर अपना आधिपत्य घोषित करता है। पुरोहित क्लीव और पतित रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की अनुमति देता है परिषद् के सदस्य रामगुप्त को राज्य-सिंहासन के अनुपयुक्त घोषित करते हैं। इसी अवसर पर रामगुप्त चन्द्रगुप्त का वध करने का प्रयास करता है, किन्तु सामंतकुमार रामगुप्त पर प्रहार करके चन्द्रगुप्त की रक्षा कर लेता है। रामगुप्त चोट खा कर गिर पड़ता है। अंततः परिषद् चन्द्रगुप्त को राजाधिराज और ध्रुवस्वामिनी को महादेवी घोषित करती है।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर उनके नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए :

क) "ध्रुवस्वामिनी" की कथावस्तु भारतीय इतिहास के किस युग से ली गई है?

....

....

....

ख) रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी के प्रति कैसा व्यवहार है?

....

....

....

....

ग) ध्रुवस्वामिनी के निम्नलिखित वाक्य किस बात के सूचक हैं :

i) "मैं न तो महादेवी हूँ और न तुम्हारी भाभी"

....

....

....

....

ii) "नहीं मेरी इच्छा इस विवाद को अंत करने की है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिए कि मैं कौन हूँ"

....

....

....

....

28.4 कथावस्तु का संघटन

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक का घटना व्यापार विजय-यात्रा शिविर तथा शक दुर्ग में घटित होता है। इस नाटक की कथावस्तु तीन अंकों में विभाजित है। प्रत्येक अंक में एक ही दृश्य है। दृश्य की समस्त घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित होती हैं। मंच-सज्जा के विषय में लेखक ने सुस्पष्ट संकेत दिए हैं। घटना के समय का उल्लेख रंग संकेतों में नहीं किया गया है।

28.4.1 कथा का आरंभ

नाटक की शुरूआत में ही हम स्थिति की जटिलता और गंभीरता से परिचित होते हैं। नाटक के निम्नलिखित अंशों पर ध्यान दीजिए।

"इस राजकुल के अंतःपुर में मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान संचित रहा, जो मुझे आते ही मिला"

"उस दिन राजमहापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे जो आशीर्वाद दिया था, क्या वह अभिशाप था? इस राजकीय अंतःपुर में सब जैसे एक रहस्य छिपाए हुए चलते हैं, बोलते हैं और मौन हो जाते हैं"

"इस राजकुल में एक भी संपूर्ण मनुष्यता का निदर्शन न मिलेगा क्या? जिधर देखो कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूँगे और बहरे......"

राजकुल के अंतःपुर में सामान्य मानवीय संबंधों का अभाव है। कुछ दिन पूर्व ही ध्रुवस्वामिनी का विवाह राजाधिराज रामगुप्त से हुआ है। किंतु महादेवी बन जाना उसके जीवन की विचित्र विडंबना बन गयी है। वह नहीं समझ पा रही कि विवाह के समय राजपुरोहित द्वारा दिया गया आशीर्वाद वास्तव में आशीर्वाद था अथवा अभिशाप। उपेक्षा और अपमान की वेदना सहने को अभिशप्त ध्रुवस्वामिनी को सारा परिवेश एक जटिल रहस्य छिपाए प्रतीत हो रहा है। विकृत मानवीय व्यवहार के इस परिवेश में मनुष्यता दुर्लभ दिखाई दे रही है। महादेवी बन जाने के बावजूद ध्रुवस्वामिनी को अभी तक अपने पति राजाधिराज रामगुप्त से बातचीत का अवसर तक नहीं मिला। विलास और मदिरा में उन्मत्त रामगुप्त के पास अपनी पत्नी के लिए समय ही नहीं! ध्रुवस्वामिनी की सेवा में नियुक्त परिचारिकाएँ उसके ऊपर पहरा और जासूसी कर रही हैं। खड्गधारिणी रहस्यात्मक व्यवहार करके चन्द्रगुप्त के प्रति ध्रुवस्वामिनी का मनोभाव जानना चाहती है। वह वास्तव में चन्द्रगुप्त के लिए कार्य कर रही है या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, यह बात अभी पता नहीं।

"मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना अनुग्रह है यह भी मैं आज तक न जान सकी, मैंने तो कभी उनका मधुर संभाषण सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्मत्त उन्हें अपने आनंद से अवकाश कहाँ?"

यहीं हमें कुछ अन्य तथ्यों का भी पता चलता है। पिता यानी सम्राट समुद्रगुप्त की इच्छा के अनुसार राज्य का अधिकार चन्द्रगुप्त को मिला था किन्तु उसने स्वयं यह अधिकार छोड़ दिया है। यदि चन्द्रगुप्त सम्राट बना होता तो ध्रुवस्वामिनी का विवाह उसी से हुआ होता। किन्तु ऐसा न होने से चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी दोनों ही जटिल विडंबना के शिकार हो गये हैं।

"राजचक्र सबको पीसता है, पिसने दो, हम निस्सहायों को और दुर्बलों को पिसने दो।"

चन्द्रगुप्त के प्रति ध्रुवस्वामिनी के सहज आकर्षण का पता भी हमें यहीं लगता है :

"हाँ मैंने उन्हें देखा था, वह निरभ्र प्राची का बाल अरुण!"

हमें ध्रुवस्वामिनी के इस वाक्य से रामगुप्त और चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के आपसी अंतर का भी पता लगता है :

"कुमार की स्निग्ध, सरल और सुंदर मूर्ति को देखकर कोई भी प्रेम पुलकित हो सकता है। किंतु उन्हीं का भाई? आश्चर्य!"

यहीं हमें यह भी पता चलता है कि रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी के प्रति शंकालु है। खड्गधारिणी के माध्यम से उसने यह पता लगाने का प्रयास किया है कि क्या ध्रुवस्वामिनी के हृदय में चन्द्रगुप्त के प्रति अब भी अनुराग है। उसे भय है कि ध्रुवस्वामिनी के मन में चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम है तो वह कभी भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

यहीं पर कथानक नया मोड़ लेता है। यह सूचना मिलती है कि शकों ने शिविर को घेर लिया है। बच निकलने के सारे रास्ते बंद हैं। दो ही स्थितियाँ संभव हैं या तो शकों से युद्ध करके उन्हें परास्त किया जाए या उनका संधि-प्रस्ताव माना जाए। यह संधि-प्रस्ताव क्या है? उसका अभी पता नहीं है। रामगुप्त संधि-प्रस्ताव को स्वीकार कर लेना चाहता है, क्योंकि वह भीतर-बाहर के सभी शत्रुओं को एक ही चाल में समाप्त करना चाहता है। ये भीतर-बाहर के शत्रु कौन हैं? बाहर का शत्रु तो स्पष्ट ही शकराज है किन्तु प्रश्न यह है कि अंदर के शत्रु कौन हैं? इसका संकेत भी रामगुप्त के इस कथन में मिलता है :

"देखता हूँ कि मुझे पहले अपने अंतःपुर के विद्रोह का दमन करना होगा। (निःश्वास लेकर) ध्रुवदेवी के हृदय में चन्द्रगुप्त की इच्छा धीरे-धीरे जाग रही है।"

ये अंदर के शत्रु हैं चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी।

28.4.2 कथा का विकास

अब तक हमें ध्रुवस्वामिनी की स्थिति और रामगुप्त के आशय का पता लग चुका है। आगे कथा के विकास के साथ हमें पता चलेगा कि अपने इस इरादे को पूरा करने के लिए वह क्या करता है। रामगुप्त और शिखरस्वामी ध्रुवस्वामिनी के पास पहुंच कर शकराज के संधि-प्रस्ताव का उल्लेख करते हैं जिसके अनुसार वह चाहता है कि संधि-प्रमाण के रूप में ध्रुवस्वामिनी उसके पास भेजी जाए। बौने, हिजड़े और कुबड़े के माध्यम से लेखक ने भावी स्थिति की विडंबना का संकेत पहले ही करा दिया था। जिससे राजा और अमात्य द्वारा प्रस्तुत इस प्रस्ताव का प्रभाव ज्यादा गहरा हो जाता है। ध्रुवस्वामिनी इस प्रस्ताव को सुनकर क्रोध से तमतमाती हुई व्यंग्य वाक्य कहती है :

"इस प्रथम संभाषण के लिए कृतज्ञ हुई महाराज, किन्तु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री-संप्रदान से ही आगे बढ़ा है"

लेकिन अपनी धूर्ततापूर्ण चाल के लिए दृढ़ रामगुप्त और शिखरस्वामी पर इस बात का कोई असर नहीं पड़ता। वह रामगुप्त को उसकी मर्यादा और आत्म-सम्मान का ध्यान दिलाती है, अपने स्त्रीत्व की रक्षा के लिए अनुनय-विनय करती है, अपने आप को पूर्णतया समर्पित करने का आश्वासन देती है, किन्तु रामगुप्त टस से मस नहीं होता। उसका मत है :

"जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?"

घोर अपमान की पीड़ा से विवश ध्रुवस्वामिनी आत्महत्या करना चाहती है, तभी चन्द्रगुप्त आकर उसे रोकता है। जानना चाहता है कि बात क्या है? चन्द्रगुप्त को देखकर ध्रुवस्वामिनी के हृदय में द्वंद्व शुरू हो जाता है। अपमान और पीड़ा की चरम अवस्था में अपने जीवन को निरर्थक समझ रही ध्रुवस्वामिनी आत्महत्या के विचार को छोड़ देती है। असहाय अवस्था में जैसे कोई आश्रय दिखाई पड़ने लगता है। वह चन्द्रगुप्त से कहती है जिस तरह प्रसन्नतापूर्वक वह ध्रुवस्वामिनी को उसके पिता के घर से उपहारस्वरूप ले आया था उसी तरह प्रसन्नतापूर्वक शकराज के पास पहुँचाने भी उसे चलना होगा। अपने संपूर्ण त्याग के बावजूद समुद्रगुप्त के गौरव को इस तरह नष्ट होते देखकर चन्द्रगुप्त आवेश में आ जाता है। गुप्तकुल के गौरव की रक्षा और ध्रुवस्वामिनी की रक्षा के दायित्व का निर्वाह करने को वह तत्पर हो उठता है। मंदाकिनी आकर राष्ट्र और सम्मान की रक्षा में प्राण देने के लिये प्रोत्साहित करती है। रामगुप्त कहता है कि यह सब उसके प्राण लेने की योजना है। चन्द्रगुप्त उसकी कायरता पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि यदि राष्ट्र रक्षा में प्राणों की बाजी लगाने को तैयार नहीं तो स्त्री बन कर घर में बैठ जाए। इसी समय हिजड़ा आकर कहता है कि स्त्री बन जाना सबके लिये सरल नहीं किन्तु यदि चन्द्रगुप्त स्त्री-वेश धारण करे तो सचमुच महादेवी का भ्रम हो जाएगा। यहीं से चन्द्रगुप्त को युक्ति सूझती है। वह छद्मवेश में शकराज के पास जा कर समस्या का समाधान करने की योजना बनाता है।

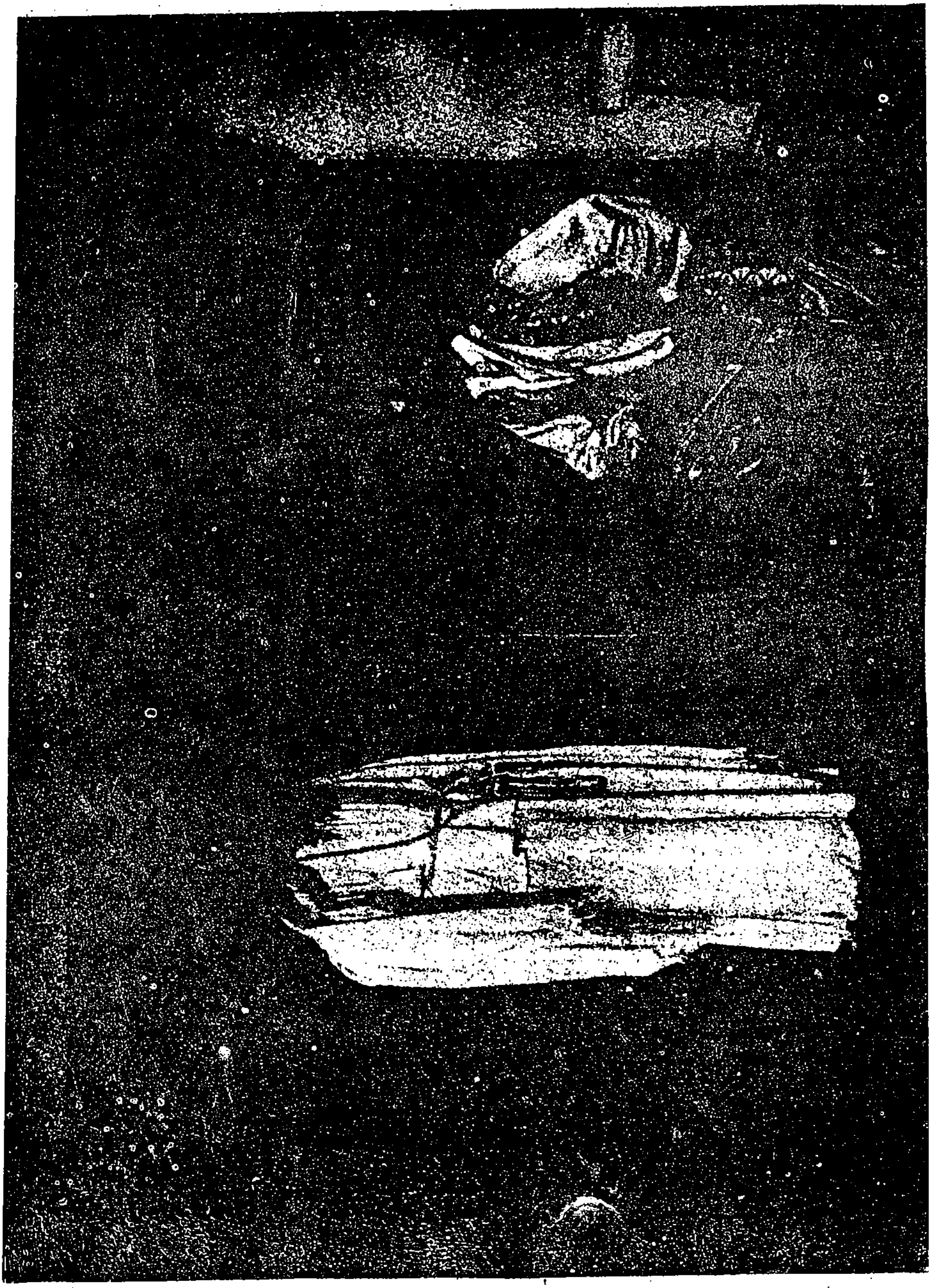

"अमात्य! तो तुम्हारी बात ही रही। हाँ, उसमें तुम्हारे सहयोगी हिजड़े की भी सम्मति मुझे अच्छी लगी। मैं ध्रुवस्वामिनी बन कर अन्य सामंत कुमारों के साथ शकराज के पास जाऊंगा। यदि मैं सफल हुआ तो कोई बात नहीं, अन्यथा मेरी मृत्यु के बाद तुम लोग जैसा उचित समझना, वैसा करना।"

चन्द्रगुप्त के इस बलिदानपूर्ण भाव को देखकर ध्रुवस्वामिनी का उसके प्रति स्नेह, कृतज्ञता और उपकार का मनोभाव प्रकट हो जाता है। एक क्षण के लिए उसे अपनी भुजाओं में पकड़कर वह कहती है कि उसके लिए इतने बड़े बलिदान की आवश्यकता नहीं।

शिखरस्वामी और रामगुप्त चन्द्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी को भी भेजना चाहते हैं। चन्द्रगुप्त विरोध पूर्वक कहता है कि यदि महादेवी को ही जाना है तो उसके जाने का क्या लाभ? किन्तु रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त दोनों से एक साथ छुटकारा पाना चाहता है और दोनों को सामंत कुमारों के साथ जाने की आज्ञा देता है।

ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त के प्रति अनुराग पूरी तरह स्पष्ट है। उसका अंतर्द्वंद्व अब अपनी निश्चित दिशा पा लेता है। चन्द्रगुप्त के अकेले जाने के आग्रह पर वह कहती है कि जब राजा हम दोनों से एक साथ छुटकारा पाना चाहता है तो हम दोनों ही चलेंगे, क्योंकि "मृत्यु के गह्वर में प्रवेश करते समय मैं तुम्हारी ज्योति बन कर बुझ जाने की कामना रखती हूँ।"

सामंत कुमारों के साथ ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त जाते हैं और प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

द्वितीय अंक की घटनाएँ शक-दुर्ग में घटित होती हैं। यहाँ हमारा परिचय नए पात्रों—कोमा, शकराज, मिहिरदेव, खिङ्गल आदि से होता है। कोमा के हृदय में शकराज के प्रति अनुराग तथा पूर्ण समर्पण के भाव हैं किन्तु शकराज की निर्मम और क्रूर महत्वाकांक्षा से वह आहत होती है। उसे समझाती है कि राजनीतिक प्रतिशोध की भावना से उद्विग्न होकर ध्रुवस्वामिनी का सम्मान नष्ट करना अनुचित है। किन्तु अपनी विजय और ध्रुवस्वामिनी को प्राप्त करने की संभावना के प्रमाद में शकराज कोमा तथा आचार्य मिहिरदेव का अपमान कर देता है। दोनों खिन्न तथा रुष्ट होकर चले जाते हैं। जाते समय मिहिरदेव शकराज को ··चेत करते हैं कि राजनीति के नाम पर नीति से भी हाथ न धो बैठना। लेखक ने कोमा के इन वचनों के माध्यम से 'नाटकीय भविष्यवाणी' का आभास दिया है— "अमंगल का अभिशाप अपनी क्रूर हँसी से इस दुर्ग को कंपा देगा और सुख स्वप्न विलीन हो जाएंगे।" साथ ही नाटकीय व्यंग्य (Dramatic irony) के रूप में अमंगल सूचक धूमकेतु का संकेत किया है।

शकराज धूमकेतू से भयभीत होता है। उसी क्षण स्त्री वेश में चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी उसके कक्ष में प्रवेश करते हैं। थोड़ी देर के लिए शकराज के लिए रहस्य बना रहता है कि ध्रुवस्वामिनी कौन-सी है। दोनों के अपने आप को ध्रुवस्वामिनी सिद्ध करने के प्रयास में ध्रुवस्वामिनी तूर्यनाद करती हुई चन्द्रगुप्त का उत्तरीय खींच लेती है। शकराज से चन्द्रगुप्त का युद्ध होता है और शकराज की मृत्यु हो जाती है। शिविकाओं में छिपे सामंत कुमार निकल कर शकों को परास्त करते हुए आकर "ध्रुवस्वामिनी की जय" बोलते हैं। दूसरा अंक यहीं समाप्त हो जाता है। ध्रुवस्वामिनी शकराज द्वारा अपमानित होने से तो बच गई है पर क्या वह इस विजय से प्रसन्न है? यदि नहीं तो इसकी क्या परिणति है? इसका पता हमें अगले अंक में लगेगा।

28.4.3 कथा की परिणति

तीसरे अंक की घटनाएँ भी शक-दुर्ग में घटित होती हैं। पहले और दूसरे अंक में उठाये गये व्यापक प्रश्नों का समाधान तीसरे अंक में मिलता है। यों तो ध्रुवस्वामिनी के आत्मसम्मान और गुप्तकुल की रक्षा की समस्या के समाधान का जो प्रश्न पहले अंक में उठा था उसका समाधान दूसरे अंक में हो गया है। दोनों की रक्षा चन्द्रगुप्त के प्रयास से हो गई। किन्तु नाटक में उठाए गए मूल प्रश्नों का समाधान अभी शेष है। मूल प्रश्न है—ध्रुवस्वामिनी की वास्तविक स्थिति का प्रश्न और राष्ट्र की रक्षा में अयोग्य और कापुरूष राजा को सिंहासन पर बैठाए रखने का प्रश्न। कोई पति यदि अपनी पत्नी को किसी अन्य पुरुष को उपहारस्वरूप भेंट कर देता है तो भी क्या वह उसका पति कहलाने का अधिकारी है? इस असहाय स्थिति में स्त्री की क्या हैसियत है? इस राक्षसी वैवाहिक बंधन से उसकी मुक्ति हो सकती है अथवा नहीं? दूसरी ओर क्या अयोग्य और कापुरुष शासक को पदच्युत किया जा सकता है?

इन्हीं दोनों प्रश्नों का उत्तर तीसरे अंक में दिया गया है। घटना क्रम इस तरह चलता है। विजय का समाचार सुनकर रामगुप्त तथा अन्य लोग भी शक दुर्ग में पहुँच जाते हैं। ध्रुवस्वामिनी राजा का सामना नहीं करना चाहती। रोष और घृणा से वह जली जा रही है। जो स्त्री बलि चढ़ाए जा रहे पशु की तरह क्रूरतापूर्वक शकराज को उपहारस्वरूप भेज दी गई वह अपनी स्थिति से क्षुब्ध क्यों न हो। शांतिकर्म के लिए आये पुरोहित के समक्ष मंदाकिनी उस विधान पर प्रश्न चिह्न लगाती है जो विवाह के नाम पर स्त्री को पराधीनता और परवशता के शिकंजे में जकड़ लेता है।

"जिन स्त्रियों को धर्म-बंधन में बाँधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार—कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ आपत्ति में अवलंब माँग सकें? क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से आप उन्हें संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम कर लेते हैं।"

पुरोहित एक बार पुनः धर्मशास्त्र देखने को विवश होता है। इसी समय कोमा शकराज का शव माँगने आती है। कटु व्यवहार के बावजूद ध्रुवस्वामिनी उसे शव ले जाने की अनुमति दे देती है।

अपना कार्य पूरा समझकर चन्द्रगुप्त जाना चाहता है किन्तु मंदाकिनी ध्रुवस्वामिनी के मनोभाव का संकेत करके उसे अपने कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करती है। चन्द्रगुप्त को अपनी चुप्पी के कारण हो रहे अन्याय का ध्यान आता है। रामगुप्त शकराज

का शव ले जा रहे मिहिरदेव और कोमा तथा अन्य निरीह शकों की हत्या करा देता है। सामंत कुमार इस भयंकर नरसंहार का विरोध करते हैं और रामगुप्त के प्रति अपना अविश्वास प्रकट करते हैं। रामगुप्त सैनिकों को आज्ञा देकर सामंत कुमारों तथा चन्द्रगुप्त को बंदी बनाता है। ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त से प्रतिवाद के लिए कहती है। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को चुप रहने की आज्ञा देता है। ध्रुवस्वामिनी विरोध करती है। रामगुप्त उसे भी बंदी बनाने के आदेश देता है। कथानक चरम सीमा पर पहुँचता है ध्रुवस्वामिनी को बंदी बनाने के प्रयास का मंदाकिनी विरोध करती है। अन्याय की पराकाष्ठा देख कर चन्द्रगुप्त अपने आप को बंधन से मुक्त करते हुए अपने आधिपत्य की घोषणा करता है। कथानक समस्याओं के समाधान की ओर बढ़ता है। परिषद् बुलाई जाती है। पुरोहित गौरवहीन, पतित और क्लीव रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति का निर्णय देता है क्योंकि यह विवाह एक भ्रांतिपूर्ण बंधन सिद्ध हुआ है। परिषद् के सदस्य रामगुप्त को राजसिंहासन के अनुपयुक्त घोषित करते हैं। रामगुप्त चन्द्रगुप्त को मारने का प्रयास करता है, तभी सामंत कुमार उसका वध कर देते हैं। सामंत कुमार तथा परिषद् चन्द्रगुप्त को राजाधिराज और ध्रुवस्वामिनी को महादेवी घोषित करते हैं। यहाँ लेखक ने बड़ी चतुराई से चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के पुनर्लग्न (पुनर्विवाह) का संकेत किया है।

28.5 कथावस्तु का विश्लेषण

28.5.1 अंक दृश्य योजना

अभी हमने "ध्रुवस्वामिनी" की कथावस्तु के संघटन की चर्चा की। हम देख चुके हैं कि नाटक के तीन अंकों का कार्य-व्यापार किस तरह कारण-कार्य संबंध की शृंखला में जुड़ा है। तीनों अंकों में केवल एक-एक दृश्य है। प्रत्येक अंक मूल कथावस्तु का वहन करने के साथ-साथ अपने आप में आंशिक पूर्णता का वाहक भी बना है। प्रत्येक अंक का आरंभ जिन समस्याओं को उठाता है, उनका उत्तर भी उस अंक की समाप्ति पर मिल जाता है। पहले अंक में तीन प्रश्न उठाये गये हैं — ध्रुवस्वामिनी की विवश अवस्था, रामगुप्त का संदेहपूर्ण दृष्टिकोण और शक अवरोध तथा संधि-प्रस्ताव। इन तीनों प्रश्नों का समाधान अंक के अंत में चन्द्रगुप्त के माध्यम से मिल जाता है।

दूसरे अंक में विरोधी पक्ष से साक्षात्कार होता है। पहले अंक में हम शकराज से परिचित हो चुके हैं। उसके गुण-स्वभाव आदि की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। पहले अंक में दी गई सूचनाओं का विस्तार हमें दूसरे अंक में देखने को मिलता है। इस अंक में कोमा के प्रसंग द्वारा नारी समस्या को और अधिक व्यापक रूप प्रदान किया गया है। कोमा के प्रेम की असफलता के माध्यम से नारी के प्रश्न को नए सिरे से उठाया गया है। एक ओर तो ध्रुवस्वामिनी और चंद्रगुप्त में विश्वास और आत्मविश्वास की भावना का उत्साह है, दूसरी ओर शकराज की प्रवंचना के कारण कोमा और शकराज की "दुलार भरी वल्लरी" का एक झटके से टूट जाना है।

पहले अंक की घटनाओं से दूसरा अंक सहज कारण-कार्य संबंध से जुड़ता है और कथा आगे बढ़ती है। संधि-प्रस्ताव की स्वीकृति की सूचना से शकराज का उन्मत्त हो उठना, पूर्व योजना के अनुसार ध्रुवस्वामिनी के साथ स्त्री वेश में चंद्रगुप्त का आना, शकराज का वध करके शक दुर्ग पर अधिकार करना आदि घटनाएँ पिछले अंक में निर्दिष्ट कार्यों को पूरा करती हैं।

तीसरे अंक के संबंध में हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि यह पहले दो अंकों में उठे मूल प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करता है। यह अंक वस्तुतः नाटक की प्रमुख समस्याओं को वैचारिक धरातल पर उठाता है और उनके तर्क सम्मत, न्याय-सम्मत और विवेक-सम्मत समाधान प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक कथा को लेखक ने बड़ी ही दक्षता से सुगठित कलात्मक बुनावट प्रदान की है।

प्रत्येक अंक की शुरुआत नए पात्रों और नए-नए तथा महत्वपूर्ण विषयों के साथ होती है। इसी तरह हर अंक का अंत अपने आप में पूर्णता लिए हुए है। यह पूर्णता अंत में नाटक की समग्र पूर्णता में और प्रभाव में सहायक बनती है। प्रत्येक अंक में उठे प्रश्न का उत्तर उसके अंत में मिल जाता है। इसलिए हर अंक की अपनी अंतर्योजना बड़ी ही प्रभावपूर्ण है।

28.5.2 दृश्य और सूच्य घटनाएँ

कथानक में दृश्य और सूच्य घटनाओं का नियोजन बड़ी कुशलता से हुआ है जिससे अनावश्यक विस्तार से बचते हुए दृश्य अंशों को व्यापक रूप से प्रभावी बनाया जा सकता है। प्रमुख सूच्य घटनाएँ दो हैं, पहले अंक में शकदूत का संधि-प्रस्ताव ले कर आना। तीसरे अंक में रामगुप्त के आदेश से कोमा, मिहिरदेव तथा शक सैनिकों की हत्या। इन दोनों घटनाओं को सूच्य रख कर नाटककार अनावश्यक विस्तार से बच सका है। यदि ये घटनाएँ प्रत्यक्ष रूप से दिखाई जाती तो भी समग्र नाट्यव्यापार में उतनी ही महत्वपूर्ण होतीं, जितनी अब हैं। फिर दृश्य रूप में इन्हें प्रस्तुत करने से प्रस्तुति में समय और साधन अवश्य अधिक लगाने पड़ते।

28.5.3 आधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु

आधिकारिक कथा के अंतःसूत्र प्रासंगिक कथा के साथ इस तरह जोड़े गए हैं कि वे दोनों एक हो गई हैं। कोमा का प्रासंगिक कथासूत्र ध्रुवस्वामिनी के मूल कथासूत्र से अलग होते हुए भी उसका अंग बन गया है। दोनों कथाएँ नारी समस्या को लेकर चलती हैं। ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से नारी के सम्मान और अधिकार का जो प्रश्न उठता है, कोमा के माध्यम से उसका

दूसरा रूप दिखाई देता है। ध्रुवस्वामिनी अपने प्रति हो रहे अपमान का दृढ़ता से विरोध करती है और अपनी मुक्ति की राह ढूँढ़ती है। कोमा शकराज के अपेक्षापूर्ण व्यवहार का विरोध करके चली तो जाती है, किन्तु शकराज से अलग अपना मार्ग नहीं खोज पाती। फलतः शकराज का शव ले जाकर प्रेम के नाम पर जलना चाहती है। दोनों कथाओं ने मिलकर जिन विरोधी स्थितियों की सृष्टि की है वे कथावस्तु के संघर्ष को तीखा और नाटकीय बनाने में सफल हुई हैं। हिजड़े, बौने और कुब्बड़े का प्रसंग भी हास्य व्यंग्य की सृष्टि के साथ ही मूल कथावस्तु का अंग बन जाता है। एक ओर तो यह परिवेश को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है दूसरी ओर कथा विकास में योग देता है क्योंकि चंद्रगुप्त की रक्षा की युक्ति हिजड़े के माध्यम से ही सूझती है।

28.5.4 विविध नाटकीय युक्तियों का प्रयोग

कथानक में रोचकता और कुतूहल निरंतर बनाए रखने के लिए लेखक ने कई तरह की युक्तियों का प्रयोग किया है जैसे नाटकीय व्यंग्य, आकस्मिक मोड़, परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से कथा का विकास आदि।

नाटकीय व्यंग्य के उदाहरण के तौर पर कुब्बड़े, बौने, हिजड़े के प्रसंग के अन्तर्गत विजयोपहार के रूप में नलकूबर वधू के अपहरण का प्रसंग, मिहिरदेव द्वारा भविष्य कथन और अमंगल की सूचना का प्रसंग, चन्द्रगुप्त का ध्रुवस्वामिनी के वेश में जाने का प्रसंग आदि देखे जा सकते हैं।

कथा में आकस्मिक मोड़ के उदाहरण के रूप में अनेक प्रसंगों को लिया जा सकता है। कथा एक दिशा में आगे बढ़ रही होती है कि कोई पात्र आकर उसे एकदम नई दिशा दे देता है — उदाहरण के लिए चन्द्रगुप्त का शक-दुर्ग में जाने के लिए प्रस्तुत होना, धूमकेतु देखकर शकराज का भयभीत होना, चंद्रगुप्त का लौह शृंखलाओं को तोड़ कर अपने आधिपत्य की घोषणा करना, पुरोहित का निर्णय, परिषद् का निर्णय आदि। जहाँ तक परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से कथा के विकास का प्रश्न है "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का समग्र कार्य-व्यापार इसका उदाहरण है। राजकुल के अंतःपुर में अपमान और वेदना से आहत ध्रुवस्वामिनी को शक शिविर में भेजने के लिए मजबूर किया जाना, आत्म-सम्मान की रक्षा के प्रयास में उसका छटपटाना और अंतिम उपाय के रूप में आत्महत्या का प्रयास करना उसी क्षण चंद्रगुप्त का आ जाना और ध्रुवस्वामिनी का हृदय-परिवर्तन होना आदि ऐसी सहज स्थितियाँ हैं जो परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से पैदा हुई हैं और जिन्होंने कथानक में अंतर्बाह्य संघर्ष की सृष्टि की है।

चंद्रगुप्त से ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति का प्रसंग भी इसी तरह परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से विकसित किया गया है जिससे घटनाओं के तार्किक औचित्य के साथ-साथ रोचकता बनी रही है।

28.5.5 संकलन-त्रय

संकल-त्रय क्या होता है इस के बारे में आप पिछले खंड (हिंदी एकांकी) में पढ़ चुके हैं। स्थान, समय और कार्य की एकता पश्चिमी नाटक की एक रूढ़ि होती थी। किंतु इसका पूरी तरह से पालन वहाँ के सब नाटककारों ने भी नहीं किया। स्वच्छंदतावादी नाटककारों ने तो इस परंपरा से पूरी छूट ली। स्वयं शेक्सपियर के नाटकों में ही समय और स्थान की काफी विविधता और व्यापकता है।

'प्रसाद' जी भी संकलन-त्रय की रूढ़ि को नहीं स्वीकार करते। ऐतिहासिक नाटकों में तो नाटककार ऐतिहासिक घटनाओं के बंधन में बँधा होता है। अतः एक ही समय और स्थान पर घटनाओं को घटित होते नहीं दिखा सकता। 'चन्द्रगुप्त' नाटक का ही उदाहरण लें। घटनाएँ तक्षशिला से मगध तक फैली हैं, उनमें समय का भी काफी विस्तार है। सिकंदर के पर्वतेश्वर से युद्ध से लेकर सिल्यूकस के चंद्रगुप्त से युद्ध तक का लंबा समय है।

हाँ कार्य की अन्विति और प्रभाव की अन्विति जरूर ऐसी शर्तें हैं जो किसी नाट्य कृति को सफल बनाने के लिए अपेक्षित हैं।

"ध्रुवस्वामिनी" में संकलन-त्रय का भी 'प्रसाद' ने काफी हद तक निर्वाह किया है। कार्य स्थल युद्ध शिविर और शक-दुर्ग है जिनमें बहुत ज्यादा दूरी होने की संभावना नहीं है। घटनाओं का क्रम भी निरंतर चलता है इसलिए न तो कथा में ठहराव आता है न ही कार्य-व्यापार में समय का अनावश्यक विस्तार है। किन्तु समय के बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख 'प्रसाद' जी ने नहीं किया। नाटक के आरंभ में ध्रुवस्वामिनी और दासी के वार्तालाप से सायंकाल का संकेत मिलता है :.

"देवि सायंकाल हो चला है। वनस्पतियाँ शिथिल होने लगी हैं। देखिए न, व्योम-विहारी पक्षियों का झुंड भी अपने नीड़ों में प्रसन्न कोलाहल से लौट रहा है। क्या भीतर चलने की अभी इच्छा नहीं।"

किन्तु रात्रि के इस संकेत के पश्चात् आगे स्पष्ट नहीं कि कार्य-व्यापार उसी रात्रि में चलता रहा है या अगले दिन चला है। यदि शकदूत सायंकाल में पहुँचा है और रामगुप्त तथा शिखरस्वामी का ध्रुवस्वामिनी से वार्तालाप उसी वक्त हुआ है तो भी दूसरे अंक की घटनाएँ अगले रोज की हो सकती हैं। इस स्थिति का संदर्भ कोमा के पौधों को सींचने, शकराज द्वारा नृत्य का आयोजन कराए जाने आदि घटनाओं से मिलता है। तत्पश्चात् तीसरे अंक की घटनाएँ उसी रोज़ की भी हो सकती हैं और अगले रोज़ की भी।

किन्तु समय संबंधी इस विचार का ज्यादा अवकाश नाटक को पढ़ने या देखने के दौरान हमें नहीं मिलता, क्योंकि कार्य-व्यापार की शृंखला निरंतरता से आगे बढ़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कथावस्तु एक वेगवती नदी की भाँति आद्यंत वेग के साथ प्रवाहित होकर अंतिम परिणति को प्राप्त हुई है। इस कार्यान्विति से प्रभाव की समग्रता और एकता उत्पन्न होती है।

28.5.6 कथावस्तु के विकास की परंपरागत प्रविधियाँ

प्राचीन संस्कृत नाटक में कथावस्तु के विकास और समुचित नियोजन के लिए कार्यावस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों और संधियों की योजना की जाती थी। "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में खोजने पर ये कार्यावस्थाएँ भी सहजता से मिल सकती हैं। प्रथम अंक में आरंभ और प्रयत्न, द्वितीय अंक में प्रयत्न का विस्तार तथा प्राप्त्याशा और तृतीय अंक में नियताप्ति तथा फलागम नाम की कार्यावस्थाएं मिलती हैं। इसी क्रम में अर्थ प्रकृतियाँ तथा संधियाँ भी खोजी जा सकती हैं। कोमा, मिहिरदेव और शक सैनिकों की हत्या को सूच्य प्रसंग के रूप में प्रस्तुत करके लेखक ने नाट्यवर्जना की रूढ़ि का पालन किया है। किन्तु शकराज तथा रामगुप्त का वध दृश्य रूप में दिखाकर नाट्यवर्जना को तोड़ा भी है। इससे स्पष्ट होता है कि लेखक न तो परंपरा को यथावत में मानने को तैयार है न ही उसे पूरी तरह छोड़ देने को। जहाँ उपयुक्त समझता है उसे स्वीकार करता है। कोमा, मिहिरदेव तथा शक सैनिकों की हत्या निरीह प्राणियों की हत्या है जिससे दर्शक या पाठक के मन को ठेस पहुँचती है। अतः इसे सामने घटित होते नहीं दिखाया गया। दूसरी ओर शकराज और रामगुप्त जैसे खल पात्रों का वध दर्शक को अनुचित नहीं प्रतीत होता इसलिए इसे दृश्य रूप में दिखाया गया है।

वस्तुतः 'प्रसाद' शास्त्रीय रूढ़ियों में बंध कर चलने वाले रचनाकार नहीं हैं। प्रभाव की अन्विति की दृष्टि से जो कुछ उपयुक्त समझते हैं उसका नाटक में समावेश करते हैं।

28.5.7 कार्य-व्यापार की तीव्रता और आद्योपांत संघर्ष

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक कार्य-व्यापार की शृंखला इतनी सघनता, तीव्रता और सक्रियता से चलती है कि पाठक अथवा दर्शक के मन-मस्तिष्क को और कुछ सोचने-समझने का अवकाश नहीं रहता। कार्य-व्यापार में कहीं भी ठहराव नहीं आता। एक घटना में से दूसरी, दूसरी में से तीसरी घटनाएँ निरंतर निकल कर आती रहती हैं। शकराज के दुर्ग में नृत्य आयोजन के समय कुछ क्षणों के लिए कार्य की गति धीमी पड़ती दिखाई देती है। किंतु यह आयोजन पतनशील दरबारी परिवेश की सृष्टि में सहायक बनता है और समग्र नाट्य परिवेश की सृष्टि में सक्रिय भूमिका निभाता है।

कार्य-व्यापार की यह सक्रियता आरंभ से लेकर अंत तक चल रहे संघर्ष के माध्यम से कायम हुई है। यह संघर्ष बाहरी और भीतरी दोनों तरह का है। द्वंद्व या संघर्ष को विषम स्थितियों के माध्यम से प्रभावपूर्ण बनाया गया है। एक ओर ध्रुवस्वामिनी का अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से बाहरी द्वंद्व है, उसके सम्मान की रक्षा का प्रश्न है और दूसरी ओर उसके मन के भीतर चलने वाला द्वंद्व है। चन्द्रगुप्त के प्रति आरंभ से ही उसके मन में अनुराग था। रामगुप्त से विवाह हो जाने पर वह प्रतिकूल परिस्थिति में पड़ गई। एक ओर रामगुप्त द्वारा मिली उपेक्षा और अपमान की पीड़ा है तो दूसरी ओर चन्द्रगुप्त द्वारा मिला रक्षा का आश्वासन। दो विषम परिस्थितियों से जूझती हुई ध्रुवस्वामिनी का अंतर्द्वंद्व है — "जब अंतर्मन... 'हाँ' कहना चाहता है ऊपरी मन 'ना' क्यों कहला देता है"। कोमा और शकराज के प्रसंग में भी विषय स्थितियों ने द्वंद्व को प्रखर और गाढ़ा रूप प्रदान किया है।

कथा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है कुतूहल और जिज्ञासा भी बढ़ती जाती है। मानवीय हृदय की विविध भाव-दशाओं तथा मानवीय संबंधों के विविध पक्षों के उद्घाटन के साथ-साथ जीवन और समाज के कई महत्वपूर्ण प्रश्न उभर कर सामने आए हैं और उनके समाधान भी प्रस्तुत हुए हैं।

भारतीय और पाश्चात्य नाट्य दृष्टियों का मेल 'प्रसाद' जी के नाटकों की विशेषता है। इस नाटक में भी यह विशेषता मौजूद है। इसमें हम कथावस्तु की प्राचीन भारतीय पद्धतियों को भी तलाश सकते हैं। दूसरी ओर संघर्ष, द्वंद्व और बौद्धिकता के समावेश के कारण यह नाटक पश्चिम के यथार्थवादी समस्या नाटक के निकट भी दिखाई देता है।

बोध प्रश्न 2

क) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की अंक-योजना की कथानक के विकास में क्या भूमिका है? लगभग 7 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

ख) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के कथानक की दो सूच्य घटनाएँ बताइए।

....

....

....

....

....

....

ग) कोमा का प्रसंग "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की मूल कथावस्तु से किस तरह संबद्ध है? लगभग चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

बोध प्रश्न 3

"हाँ" या "नहीं" में उत्तर दीजिए।

ध्रुवस्वामिनी नाटक के कथानक में

i) कार्य-व्यापार सक्रियता से आगे बढ़ता है।

ii) लेखक ने संकलन-त्रय का पूरी तरह निर्वाह किया है।

iii) अंतर्द्वंद्व और बाहरी संघर्ष की सृष्टि की गई है।

iv) घटनाएँ आरोपित हैं।

v) परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से कथा-विकास किया गया है।

vi) नाट्यवर्जनाओं का पालन किया गया है।

28.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की कथावस्तु कहाँ से ली गई तथा ऐतिहासिक स्रोतों का लेखक ने किस तरह से इस्तेमाल किया है। कथावस्तु के विकास के विभिन्न चरणों का अध्ययन करने के बाद आपने कथावस्तु का विश्लेषण किया। तथा विविध पहलुओं से कथावस्तु का निरीक्षण-परीक्षण किया। आपने जान लिया कि किस तरह नाटकीय कौशल के प्रयोग तथा जिज्ञासा, और कुतूहल के समावेश से लेखक एक प्रभावपूर्ण नाटक लिखने में सफल हुआ है।

28.7 शब्दावली

संघटन : गठन, बनावट।

नाटकीय व्यंग्य अथवा नाटकीय भविष्य कथन : नाटकीय व्यंग्य वस्तुतः नाट्य-व्यापार की एक तकनीक है। कभी-कभी कोई सूचना दर्शक को तो दे दी जाती है किंतु कुछ पात्रों से गुप्त रखी जाती है। इस तरह कुछ पात्र तथा, दर्शक तो उस विषय में जानते हैं किंतु अन्य पात्र नहीं जानते। इससे किसी पात्र के चरित्र तथा उसके उद्देश्यों और अभिप्रायों के बारे में जानकारी मिलती है तथा कार्य के संभावित परिणामों का भी आभास होता है।

आरंभ : संस्कृत नाट्य पद्धति के अनुसार पहली कार्यावस्था जिसमें नायक अपने लक्ष्य की प्राप्ति की इच्छा प्रकट करता है।

प्रयत्न : दूसरी कार्यावस्था जिसमें उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गंभीर प्रयास करता है।

प्राप्त्याशा : इष्ट प्राप्ति के लिए किये गये प्रयास और संघर्ष उस अवस्था में पहुँच जाते हैं जहाँ लक्ष्य प्राप्ति की संभावना उत्पन्न होने लगती है।

नियताप्ति : इस कार्यावस्था में अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में केवल एक बाधा शेष रह जाती है।

फलागम : अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की अवस्था।

नाट्यवर्जना : कुछ दृश्यों को रंगमंच पर प्रस्तुत करना वर्जित था क्योंकि दर्शक पर उसका अरुचिकर और दुखप्रद प्रभाव पड़ता है अथवा उससे कार्य-व्यापार में ठहराव आ जाता है। ऐसे दृश्य हैं — युद्ध, हत्या, तेलमर्दन, भोजन आदि।

आद्योपांत : आरंभ से अंत तक (आदि + उपांत)

28.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की कथावस्तु प्राचीन भारतीय इतिहास के गुप्त युग से संबंधित है।

ख) रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी के साथ बड़ा ही अनुत्तरदायित्वपूर्ण और अपमानजनक व्यवहार करता है। विवाह के उपरांत काफी समय तक वह ध्रुवस्वामिनी से बात तक नहीं करता। उसे शक है कि वह चंद्रगुप्त से प्यार करती है। अतः उसे शकराज के पास भेज कर उससे छुटकारा पाना चाहता है। वह ध्रुवस्वामिनी के सम्मान की रक्षा की बिल्कुल परवाह नहीं करता।

ग) i) ध्रुवस्वामिनी के ये वाक्य उसकी जागरूकता और अधिकार बोध के सूचक हैं। शकराज के पास भेजे जाने के अपमान को वह झेलती है और उसी अपमान की प्रतिक्रियावश कहती है कि वह महादेवी नहीं है। वस्तुतः यदि उसे महादेवी या राजाधिराज की पत्नी के रूप में सम्मान दिया जाता तो उसके आत्मसम्मान की रक्षा की गई होती। उसे निर्जीव वस्तु के समान उपहार में न दिया जाता।

ii) यह वाक्य ध्रुवस्वामिनी के अपने अधिकार की मांग का सूचक है। वह दृढ़ता और साहस से कहती है कि निर्णय होना चाहिए कि उसकी वास्तविक स्थिति क्या है। पति द्वारा परित्याग करके उपहारस्वरूप शकराज के पास भेजे जाने के बाद भी क्या रामगुप्त का उस पर कोई अधिकार है।

बोध प्रश्न 2

क) "ध्रुवस्वामिनी" के तीन अंक वस्तुतः अपने आप में पूर्ण हैं और तीनों मिल कर एक समग्र कथानक को निर्मित करते हैं। पहले अंक में उठी समस्याओं का समाधान अंक के अंत में प्रस्तुत हो जाता है। पहला अंक दूसरे अंक की सूचनाओं का विस्तार करता है तथा कोमा और शकराज के प्रेम प्रसंग के माध्यम से स्त्री की विषम स्थिति को प्रस्तुत करता है। तीसरा अंक पहले दो अंकों में उठे प्रश्नों के समाधान के रूप में प्रस्तुत हुआ है। तीनों अंक अपने आप में पूर्ण होते हुए भी परस्पर कारण-कार्य संबंध से जुड़े हैं।

ख) (1) शकराज का संधि-प्रस्ताव गुप्त शिविर में मिलना (2) कोमा और मिहिरदेव तथा शक सैनिकों की हत्या।

ग) ऊपर से देखने में कोमा और शकराज का प्रसंग ध्रुवस्वामिनी की मूल कथा से असंबद्ध प्रतीत हो सकता है किंतु यह मूल कथा से पूरी तरह संबद्ध है। कोमा की शकराज द्वारा उपेक्षा के माध्यम से लेखक एक बार फिर नाटक के मूल प्रश्न स्त्री के अधिकार और सम्मान के प्रश्न को उभारता है। दोनों को विषम स्थिति में रखा गया है।

बोध प्रश्न 3

i) हाँ, ii) नहीं, iii) हां, iv) नहीं, v) हाँ, vi) नहीं।

इकाई 29 "ध्रुवस्वामिनी" : चरित्र-चित्रण

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य
29.1 प्रस्तावना
29.2 चरित्र-चित्रण की शिल्पविधि
29.3 'प्रसाद' जी की पात्र-सृष्टि की विशेषताएँ
29.4 "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के पात्र
29.4.1 ध्रुवस्वामिनी
29.4.2 रामगुप्त
29.4.3 चंद्रगुप्त
29.5 सारांश
29.6 शब्दावली
29.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

29.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- नाटक में चरित्र-चित्रण की शिल्पविधि की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- 'प्रसाद' जी के नाटकों में पात्र-सृष्टि की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण कर सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हम "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का वाचन और उसके कथावस्तु का विश्लेषण कर चुके हैं। कथावस्तु के उपरांत नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है चरित्र-चित्रण। पात्रों के माध्यम से ही कथावस्तु बनती है। नाटक का समस्त कार्य-व्यापार पात्रों से उत्पन्न होता है और उसकी सफलता-विफलता भी पात्रों पर ही निर्भर करती है। उसमें परिस्थितियों अथवा घटनाओं का अलग से कोई अर्थ नहीं होता। उन्हें पात्रों से ही अर्थ प्राप्त होता है। पात्रों से रचनाकार के भावों और विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है। इस तरह पात्रों का चरित्र, उनका व्यक्तित्व, उनकी इच्छा शक्ति ही नाटक के संपूर्ण कार्य-व्यापार में प्रतिफलित होती है और कथावस्तु और पात्र एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। जब कभी इनके इस आपसी संबंध में असंतुलन होता है तभी नाट्य रचना में असंगति उत्पन्न हो जाती है। इस बात को हम यों समझ सकते हैं कि कभी-कभी हमें ऐसा लगता है कि कोई पात्र किसी नाट्य-कृति में अनिवार्य भूमिका नहीं निभा रहा — यानी इस पात्र या उससे संबंधित घटनाओं को यदि निकाल भी दिया जाए तो इससे नाटक की कथावस्तु में कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा। स्पष्ट है कि उस चरित्र के व्यक्तित्व ने कथावस्तु के निर्माण में कोई सार्थक भूमिका अदा नहीं की, वह एक अतिरिक्त पात्र है और उससे संबंधित घटनाएँ संपूर्ण कथावृत्त का अनिवार्य अंग न होकर ऊपर से आरोपित हैं। इस दृष्टि से नाटक में प्रमुख पात्रों की तो महत्वपूर्ण भूमिका होती ही है, गौण पात्र भी महत्वहीन नहीं होते। समग्र नाट्य व्यापार के घटनासूत्रों में वे कहीं-न-कहीं अनिवार्य रूप से जुड़े होते हैं। इस बात को हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं।

अभी हमने "ध्रुवस्वामिनी" का वाचन किया है। इसके पात्रों पर गौर करने पर हम पाएँगे कि थोड़ी देर के लिए आये गौण पात्रों तक की भूमिका का अपना महत्व है। मिहिरदेव कुछ क्षणों के लिए ही आता है किन्तु उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। एक ओर तो वह शकराज को पथ-भ्रष्ट होने से बचाने का प्रयास करता है, उसके अनीतिपूर्ण कार्यों के भयंकर परिणाम के रूप में धूमकेतु का संकेत है और दूसरी ओर वह कोमा को छलकपट विद्वेष के वातावरण से दूर होकर प्रकृति के साहचर्य में उन्मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा देता है। इसी तरह बौने, कुबड़े या हिजड़े केवल अभद्र परिहास के लिए ही प्रस्तुत नहीं होते। उनके माध्यम से लेखक अंतःपुर की पतनशील स्थितियों का संकेत देता है। साथ ही दिग्विजय और विजय के उपहार में नल-कूबर की स्त्री का हरण करने का अभिनय द्वारा नाटक के प्रमुख घटना व्यापार — शकराज को ध्रुवस्वामिनी उपहार में देना — व्यंग्य किया गया है।

29.2 चरित्र-चित्रण की शिल्पविधि

पात्रों के चरित्र-चित्रण के चार पक्ष अथवा रूप होते हैं :

1) पात्रों का बाह्य स्वरूप 2) भाषा और संवाद 3) कार्य 4) अन्य पात्रों का मत

1) पात्रों के व्यक्तित्व के बारे में हमें सर्वप्रथम जानकारी लेखक द्वारा रंग-संकेतों में दिए गए विवरणों से मिलती है। अभिनय के समय इसी को आधार बनाया जाता है और पात्र के बाह्य रूप, आकार, वेशभूषा, स्वभाव, उम्र आदि का परिचय पाठक या दर्शक को प्रत्यक्ष रूप से और तत्काल मिल जाता है।

2) चरित्र उद्घाटन का दूसरा पक्ष है भाषा या वाणी। पात्र जिस तरह की भाषा बोलता है, जो कुछ कहता है, जिस लहजे और भंगिमा में बोलता है तथा जिस तरह की आवाज में बोलता है, उससे उसके चरित्र की एक-एक खास पहचान उस का एक खास ढंग का एक बिंब दर्शक के मन में निर्मित हो जाता है।

   स्वगत कथन की पद्धति भी पात्र के मन के भावों के उद्घाटन में सहायक होती है। इस पद्धति में पात्र कभी-कभी आत्म-विश्लेषण भी करता है। हालाँकि आजकल यह पद्धति बहुत लोकप्रिय नहीं रही है।

3) पात्रों के कार्यों से उनके अंतर्बाह्य व्यक्तित्व का पता चलता है। उनका व्यवहार, उनके छोटे-छोटे कार्य, विभिन्न स्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाएँ उनके व्यक्तित्व और मनोभावों को प्रकट करती हैं।

4) किसी पात्र के बारे में अन्य पात्र क्या सोचते हैं, क्या प्रतिक्रिया रखते हैं या क्या कहते हैं, इससे उसके चरित्र के बारे में जानकारी मिलती है।

अतः किसी पात्र के चरित्र का विश्लेषण करते समय उपर्युक्त चारों पक्षों में विद्यमान दृष्टियों से विचार किया जाना चाहिए। यद्यपि यह अनिवार्य शर्त नहीं है कि रचनाकार उक्त चारों पक्षों को समान रूप से प्रस्तुत करे। कुछ रचनाकार पात्र के बाह्यरूपाकार का विस्तृत परिचय देते हैं, कुछ नहीं देते। वे चरित्र-चित्रण के अन्य पक्षों से अधिक काम लेते हैं। वस्तुतः यह रचनाकार अथवा रचना का दोष नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि शिल्प अथवा माध्यम के चयन में रचनाकार पूर्णतया स्वतंत्र होता है। कभी-कभी कथ्य का नयापन स्वतः नया शिल्प लाता है। अतः देखा यह जाना चाहिए कि जिस प्रविधि अथवा पक्ष को लेखक ने अपनाया है उसके द्वारा वह कहाँ तक सफल हुआ है। उदाहरण के लिए 'प्रसाद' जी ने "ध्रुवस्वामिनी" में किसी पात्र के व्यक्तित्व का कोई संकेत, अपनी ओर से नहीं दिया। स्वयं पात्रों के मुख से, उनके संवादों, आचार-व्यवहार और परिवेश के तनाव के माध्यम से उनके चरित्र का चित्रण किया है। रामगुप्त की विलास प्रियता, आत्म-सीमित स्वार्थपरता और कायरता उसके अपने कार्यों से प्रकट हुई है, लेखकीय विवरण द्वारा नहीं।

29.3 'प्रसाद' जी की पात्र-सृष्टि की विशेषताएँ

पिछली इकाइयों में हम चर्चा कर चुके हैं कि जयशंकर 'प्रसाद' ने हिंदी नाटक के क्षेत्र में पहली बार पात्रों को उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। उनसे पहले के नाटकों के पात्र नाटककार के व्यक्तित्व से अलग नहीं हो पाते थे। उनमें कोई खास उतार-चढ़ाव नहीं दिखाई देता था। वे प्रायः अपने वर्ग या व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करने वाले टाइप पात्र या आदर्श पात्र होते थे। 'प्रसाद' जी ने पात्रों को उनका निजी व्यक्तित्व प्रदान किया। अंतर्द्वंद्व और बाहरी संघर्ष के माध्यम से इन पात्रों में व्यक्तिगत मानवीय विशिष्टताओं की सृष्टि की। यही कारण है कि विभिन्न वर्गों, स्थितियों, प्रवृत्तियों और श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों का भी उनके नाटकों में अपना-अपना खास व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। उन्हें केवल अच्छे या बुरे पात्रों या दैवीय और आसुरी वृत्तियों वाले पात्रों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि लेखक ने उनमें उदात्त गुणों के साथ-साथ सहज मानवीय दुर्बलताओं, आकांक्षाओं और अभिलाषाओं का भी समावेश किया है। उनके सभी पात्र अपनी निजी विशेषताएँ रखते हैं जैसे चन्द्रगुप्त मौर्य, स्कंदगुप्त, गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त तीनों पात्र वीर, पराक्रमी, देशभक्त और बलिदान की भावना से प्रेरित हैं किंतु तीनों का अपना-अपना खास व्यक्तित्व है। इसी तरह रामगुप्त और शकराज दोनों खलपात्र हैं, किंतु दोनों बिल्कुल अपने ढंग के हैं।

उनके पात्र ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों तरह के हैं। घटनाएँ प्रमुख रूप से ऐतिहासिक हैं। इस ऐतिहासिक घटनावली के भीतर भी पात्रों को सजीव और स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त हुआ है। 'प्रसाद' के पात्रों की सृष्टि में उनके समय और समाज ने बड़ी ही विशिष्ट और महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। उनके नाटकों का रचनाकाल भारतीय इतिहास में जागरण-सुधार का काल था। कहना न होगा कि नवजागरण की चेतना समूचे भारतीय जनमानस में व्याप्त थी। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में पुरानी जर्जर रूढ़ियों से मुक्ति की कामना इस युग की प्रमुख आकांक्षा थी। 'प्रसाद' के नाटकों के पात्र इसी स्वच्छंदतावादी चेतना के वाहक बने हैं। उनके चरित्र-चित्रण की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और समाज सुधार आंदोलन की चेतना है। इसलिए इन पात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में (1) साम्राज्यवाद, निरंकुशतंत्र और पूँजीवादी भोगवाद के विरोध, (2) आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा, (3) नारी जागरण, उसके सम्मान स्वातंत्र्य और समता की भावना तथा (4) प्रेम और सौंदर्य की स्वच्छंदतावादी दृष्टि का व्यापक योगदान रहा है। यही कारण है कि उनके

ऐतिहासिक पात्र भी इतिहास के प्रतिरूप मात्र नहीं हैं। आधुनिक जीवन के विचार आदर्शों ने उन्हें सजीव, सक्रिय और संघर्षशील बनाया है।

बोध प्रश्न 1

क) नाटक में कथावस्तु और पात्रों का क्या संबंध होता है?

....

....

....

....

ख) चरित्र-चित्रण के चार पक्ष अथवा रूप कौन से हैं?

....

....

....

....

ग) 'प्रसाद' के नाटकों के पात्रों में ऐसी क्या खास बात है जो उनसे पहले के नाटकों के पात्रों में नहीं मिलती।

....

....

....

....

29.4 "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के पात्र

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक में पात्रों की संख्या ज्यादा नहीं है इसमें ध्रुवस्वामिनी, मंदाकिनी और कोमा तीन स्त्री पात्र हैं तथा रामगुप्त, चंद्रगुप्त, शिखरस्वामी, शकराज, खिंगिल, मिहिरदेव और पुरोहित सात पुरुष पात्र हैं। इनके अलावा हिजड़ा, बौना, कुबड़ा, प्रतिहारी, खड्गधारिणी सामंत कुमार, शक-सामंत आदि थोड़ी-थोड़ी देर के लिए आए हैं। इन सब पात्रों में से प्रमुख पात्र तीन ही हैं : ध्रुवस्वामिनी, रामगुप्त, और चंद्रगुप्त। नाटक के कार्य-व्यापार में इनकी मुख्य भूमिका है। शिखरस्वामी शकराज और कोमा इन प्रमुख पात्रों के कार्यों को विस्तार प्रदान करने के लिए आये हैं। शेष पात्रों की भूमिका छोटी, किंतु कथा-विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

29.4.1 ध्रुवस्वामिनी

नाटक का केंद्रीय पात्र ध्रुवस्वामिनी अथवा ध्रुवदेवी है। नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक समस्त कार्य-व्यापार मूल रूप से उसी से संबंधित है तथा कार्य-व्यापार की चरम परिणति का प्रभाव भी प्रमुख रूप से उसी पर पड़ता है। नाटक के अन्य सभी पात्र उसके व्यक्तित्व को भली-भाँति समझने में सहायता देने के लिए हैं।

ध्रुवस्वामिनी के चरित्र पर विचार करते समय हमें उसकी परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना होगा। आरंभ से ही उसे हम विरोधी स्थितियों से जूझता पाते हैं। भीतर और बाहर के दोहरे संघर्ष से टकरा कर कभी वह भीतर से टूटती हुई तो कभी अनुकूल परिस्थिति की आशा में सँभलती हुई दिखाई पड़ती है। रामगुप्त का व्यवहार उसके अंतःसंघर्ष को एक असह्य विवशता में बदल देता है उपेक्षित और अपमानित स्थिति में वह अपने आपको बंदिनी महसूस करती है:

"वही न, जो मुझे बंदिनी बनाने के लिए गए थे।"
"राजचक्र सबको पीसता है, पिसने दो, हम निस्सहायों को और दुर्बलों को पिसने दो।"
"किन्तु मेरा नीड़ कहाँ? यह तो स्वर्ण-पिंजर है।"

"यह तो मैं जानती हूँ कि इस राजकुल के अंतःपुर में मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान संचित रहा जो आते ही मुझे मिला।"

किंतु इस अपमान और उपेक्षा को चुपचाप सहते जाने की मध्ययुगीन प्रवृत्ति ध्रुवस्वामिनी में नहीं है। वह अपनी वेदना और आक्रोश को लगातार प्रकट करती है। तर्क और विवेक का पैनापन उसमें निरंतर विद्यमान रहता है। अपनी असह्य पीड़ा को वह व्यंग्य भरे वचनों से व्यक्त करती हुई कहती है:

"हाँ यह तो बताओ, तुम्हारे राजकुल में नियम क्या है? पहले अमात्य की मंत्रणा सुननी पड़ती है, तब राजा से भेंट होती है?"

चित्र 11 : "ध्रुवस्वामिनी"–रामगुप्त से विनय करती हुई ध्रुवस्वामिनी

"इस प्रथम संभाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज! किंतु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री-संप्रदान से ही बढ़ा है?"

"मैं तो अपने प्राणों का मूल्य ही नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना अनुग्रह है, यह भी मैं आज तक न जान सकी। मैंने तो कभी उनका मुधर संभाषण सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्मत्त उन्हें अपने आनंद से अवकाश कहाँ।"

इन वाक्यों से हमें पता चलता है कि वह अपनी विवश स्थिति को अपनी किस्मत मान कर चुप बैठने वाली स्त्री नहीं है। अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाली जागरूक स्त्री है। उसमें आधुनिक स्त्री की सजगता है। जो अपने प्रति हो रहे अन्याय के प्रति सचेत है — उसका विरोध करती है। शकराज के पास उपहारस्वरूप भेजे जाने के प्रस्ताव को सुन कर तीखे शब्दों में कहती है :

"मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु संपत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता।"

पति होने के नाते रामगुप्त को अपनी पत्नी के प्रति कर्तव्य का भी ध्यान दिलाती है और पत्नी के रूप में अपने अधिकारों की माँग भी करती है :

"मैं जानना चाहती हूँ कि किसने सुख-दुख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्निवेदी के सामने की है?"

"तो क्या मैं राजाधिराज रामगुप्त की महादेवी नहीं हूँ?"

"मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके।"

अपने अधिकार की माँग करता हुआ ध्रुवस्वामिनी का व्यक्तित्व यहाँ "पति को परमेश्वर" मानने वाली उस सामंतीय मनोवृत्ति के विरुद्ध खड़ा है जो पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों के सम्मान के प्रति पूर्णतया उदासीन थी, और जिसके अंतर्गत द्रौपदी जैसी स्त्रियाँ अपने प्रति हो रहे अन्याय और अपमान को सहती आ रही थीं। जिस सामंतीय दृष्टिकोण के अनुसार पुरुष स्त्री को अपनी संपत्ति समझता था और केवल उपभोग की वस्तु मानता था, सम्मान और गौरव देना तो दूर उसे सामान्य मनुष्य का दर्जा देने तक को तैयार न था, उस अन्याय और शोषण की पूरी परंपरा पर प्रश्न चिह्न लगाती हुई ध्रुवस्वामिनी आत्म-सम्मान की रक्षा और मानव मुक्ति की भावना को जीवन का चरम लक्ष्य मानती है। इसीलिए वह रामगुप्त को ध्यान दिलाती है कि पत्नी को उपहार में देना वस्तुतः स्वयं रामगुप्त के लिए लज्जाजनक बात होगी।

"मेरे पिता ने उपहारस्वरूप कन्यादान किया था। किंतु गुप्त सम्राट क्या अपनी पत्नी उपहार में देंगे?"

"मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो।"

"राज्य और संपत्ति रहने पर राजा को, पुरुष को बहुत सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं; किंतु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।"

शकराज जैसे नारी लोलुप व्यक्ति से अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए वह रामगुप्त के समक्ष संपूर्ण समर्पण की मुद्रा में कहती है "मैं स्वीकार करती हूँ कि मैं तुम्हारे विलास की सहचरी न हो सकी। वह मेरा अहंकार था जो चूर्ण हो गया।" किंतु इतने पर भी असफल रहने पर वह हार कर बैठ नहीं जाती। घोर विपत्ति की स्थिति में उसके भीतर की शक्ति जाग्रत होती है, उसका आत्म-विश्वास दृढ़ होता है। आवेश और क्रोध में रामगुप्त को ललकारती हुई वह स्वयं अपनी रक्षा का मार्ग ढूँढती है।

"निर्लज्ज! मद्यप!! क्लीव!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहर कर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी! मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतलमणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।"

ध्रुवस्वामिनी के व्यक्तित्व में हमें नारी हृदय के विविध पक्षों का बहुत सजीव और मनोवैज्ञानिक और यथार्थ रूप मिलता है। पति द्वारा हर तरह से अपमानित होने के बावजूद एक स्थान पर हम उसे रक्षा की भीख माँगते पाते हैं, जहाँ वह अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए अपने अहं को विसर्जित करना स्वीकार करती है।

रामगुप्त की ओर से कोई आश्रय न मिलने पर उसके मनोविज्ञान का दूसरा पक्ष दिखाई देता है। चरम क्रोध और बेबसी के क्षणों में आत्महत्या की ओर उन्मुख होती है। किंतु तभी चन्द्रगुप्त के सहसा आ जाने पर तिलमिला उठती है :

"मुझे अपने अपमान में निर्वसन—नग्न देखने का किसी पुरुष को अधिकार नहीं।"

पर चंद्रगुप्त को देखकर उसके मन की एक और तह खुलती है। चरम आवेश के इस क्षण में ठहर कर एक बार सोचने का मौका उसे मिलता है। अपनी असहाय अवस्था में जैसे आशा की किरण दिखाई देती है और अहं और जीवन जीने की इच्छा के बीच आत्म-संघर्ष से जूझती हुई वह कहती है :

"नहीं, अभी आत्महत्या नहीं करूँगी। जब तुम आ गए हो तो थोड़ा ठहरूँगी। यह तीखी छुरी इस अतृप्त हृदय में, विकासोन्मुख कुसुम में विषैले कीट के डंक की तरह चुभा दूँ या नहीं, इस पर विचार करूँगी। यदि नहीं तो क्या मेरी दुर्दशा का पुरस्कार कुछ और है? हाँ, जीवन के लिए कृतज्ञ, उपकृत और आभारी हो कर किसी के अभिमानपूर्ण आत्म-विज्ञापन का भार ढोती

रहूँ — यही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है? छुटकारा नहीं? जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगा ही? तो क्या यह मेरा जीवन भी अपना नहीं।"

ध्रुवस्वामिनी परिस्थितियों से हार मानने वाले नारी व्यक्तित्व का प्रतीक नहीं है। एक क्षण आक्रोश में आत्महत्या का प्रयास उस हालत में करती है जब जीवन और आत्म-सम्मान में से किसी एक को चुनना है। किंतु चंद्रगुप्त को देखकर उसे लगता है कि कोई और उपाय हो सकता है और वह आत्महत्या का विचार छोड़ देती है। उसका अहं कृतज्ञता का भार ढोने में आहत होता है। फिर भी वह जीवन से पलायन करने वाला पात्र नहीं है, उसमें कठिन परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए भी जीने की लालसा है। वह भाग्य के भरोसे चुप बैठने वाली या ईश्वर का सहारा खोजते हुए अकर्मण्य रहने वाली स्त्री नहीं है। अपनी स्थितियों से संघर्ष करते हुए मार्ग खोजने वाली कर्मण्यता और साहस उस में है। उसे पता लग गया है कि रामगुप्त उससे छुटकारा पाना चाहता है। इसलिए चंद्रगुप्त के मना करने के बावजूद वह कहती है कि वह भी शक-दुर्ग में जाएगी। यहाँ वह अवांछित है और वहाँ वह "मृत्यु के गह्वर में" चंद्रगुप्त की "ज्योति बन कर बुझ जाना चाहती है।" इस तरह वह विपरीत परिस्थितियों में अपना मार्ग स्वयं निकालती है। शकराज से मुक्त हो जाने और शक-दुर्ग पर विजय पा लेने के बाद वह परिस्थितियों को चुप होकर स्वीकार नहीं करती। इस प्रश्न को उठाती है कि जो स्त्री उपहारस्वरूप भेज दी गई हो उसके ऊपर उसके पति का अधिकार किस तरह हो सकता है?,

"कौन महादेवी! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी ही हूँ? जो शकराज की शय्या के लिए क्रीतदासी की तरह भेजी गई हो वह भी महादेवी! आश्चर्य!"

"उसे अपने हृदय से पूछिये क्या मैं वास्तव में सहधर्मिणी हूँ?"

"धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की पैशाचिक परीक्षा मुझ से बलपूर्वक ली गई है।"

दृढ़ता के साथ न्याय माँगती हुई वह कहती है कि उसकी स्थिति के बारे में निर्णय होना चाहिए;

"नहीं मेरी इच्छा इस विवाद का अंत करने की है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिए कि मैं कौन हूँ।"

ध्रुवस्वामिनी का व्यक्तित्व एक आधुनिक साहसी स्त्री का व्यक्तित्व है जिसमें अन्याय के खिलाफ खड़े होने का नैतिक साहस है। रामगुप्त की कायरता के लिए वह उसे लज्जित करने का प्रयास करती है :

"यह पाप है? जो मेरे लिए अपनी बलि दे सकता है, जो मेरे स्नेह (ठहर कर) अथवा इससे क्या? शकराज क्या देवी बना कर भक्ति भाव से मेरी पूजा करेगा! वाह रे लज्जाशील पुरुष।"

"मेरी निर्लज्जता का दायित्व क्लीव, कापुरुष पर है। स्त्री की लज्जा लूटने वाले दस्यु के लिए मैं.....।"

अपने आक्रोश को वह व्यंग्यात्मक भाषा में व्यक्त करती है, बौद्धिक प्रखरता के साथ-साथ उसमें वाक्-चातुर्य है। रामगुप्त पर ही नहीं स्त्री का अपमान करने वाली पूरी व्यवस्था पर वह इतने तीखे व्यंग्य करती है कि सुनने वाले तिलमिला उठते हैं।

"अमात्य तुम बृहस्पति हो चाहे शुक्र किंतु धूर्त होने से क्या मनुष्य भूल नहीं करता? आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र को पहचानने में तुमने भूल तो नहीं की? सिंहासन पर भ्रम से किसी दूसरे को तो नहीं बिठा दिया।"

"आप लोग इतने चंचल क्यों हैं? राजा को आज्ञा देनी चाहिए और प्रजा को नतमस्तक होकर उसे मानना होगा।"

चन्द्रगुप्त को भी वह शकराज के संधि-प्रस्ताव की सूचना बड़ी चतुराई से यह कहते हुए देती है कि जिस तरह वह उसे उसके पिता के घर से लाया था उसी तरह शक शिविर तक पहुँचाने भी जाना होगा। कारण शकराज को उसकी अत्यधिक आवश्यकता है।

ध्रुवस्वामिनी के चरित्र की एक अन्य विशेषता उसके भीतर चलने वाला अंतर्द्वंद्व है। चंद्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी होने के कारण वह आरंभ से ही चंद्रगुप्त के प्रति अनुरक्त थी। किंतु परिस्थितियों के बदलाव के कारण उसका विवाह रामगुप्त से हुआ और सहज दांपत्य संबंधों के स्थान पर उसे घोर अपमान और उपेक्षा मिली। असहाय अवस्था में चंद्रगुप्त की ओर से सहायता का प्रस्ताव मिलते ही उसके मन का संचित स्नेह भाव जाग उठता है। सामाजिक बंधनों की मर्यादा और हृदय की सहज भावना का द्वंद्व उसके मन में चलने लगता है।

"कुमार! तुमने वही किया जिसे मैं बचाती रही। तुम्हारे उपकार और स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ। ओह, (हृदय पर उँगली रख कर) इस वक्षस्थल में दो हृदय हैं क्या? जब अंतरंग 'हाँ' करना चाहता है, तब ऊपरी मन 'ना' क्यों कहला देता है?"

हृदय के सहज अनुराग और रूढ़ सामाजिक मर्यादा का यह द्वंद्व उसके भीतर काफी देर तक तूफान की भाँति उमड़ता-घुमड़ता है किन्तु अंत में वह इसका तार्किक उत्तर खोजने में सफल होती है। नए विचारों और संस्कारों के बीच विद्यमान द्वंद्व का समाधान तब होता है जब वह परित्यक्ता हो जाने के बाद न्याय की माँग करती है और पूछती है कि उसकी वास्तविक हैसियत क्या है?

इस तरह हम देखते हैं कि ध्रुवस्वामिनी के चरित्र में नारी मन का मनोविज्ञान और आधुनिक युग की बौद्धिक चेतना का बड़ा ही स्वाभाविक मेल हुआ है। 'प्रसाद' के अपने समय की नारी चेतना की पूरी अनुगूँज उसके चरित्र में मिलती है। एक ओर तो नारी के अधिकारों की माँग और उनके लिए संघर्ष है तथा दूसरी ओर अतृप्त प्रेम और जीवन जीने की लालसा है।

स्वच्छंदतावादी युग की सभी विशेषताएँ उसके चरित्र में अपने प्रखर वेग के साथ स्पंदित होती हैं। रूढ़ियों से टकराती हुई वह मुक्ति के लिए संघर्ष करती है और अपना रास्ता स्वयं बनाती है। उसका चरित्र धर्मशास्त्रों और अनुशासनों पर प्रश्न-चिह्न लगाते हुए विकसित होता है। "पुरुषों की प्रभुता जाल" उसे "अपने निर्दिष्ट पथ पर ले आया" है। उसका व्यक्तित्व सामंती

भोगवाद की प्रवृत्तियों के विरुद्ध खड़ा है। वस्तुतः ध्रुवस्वामिनी मध्ययुगीन नारी का प्रतीक न होकर आधुनिक नारी का प्रतीक है जिसमें बुद्धि और हृदय का विशिष्ट संतुलन दिखाई देता है।

बोध प्रश्न 2

क) "हाँ" या "नहीं" लिख कर उत्तर दीजिए।

i) ध्रुवस्वामिनी अन्याय या अत्याचार को चुपचाप सहने वाली स्त्री है।

ii) वह अपना आक्रोश प्रकट करती है।

iii) व्यंग्यात्मक भाषा बोलती है।

iv) उसे भोग-विलास का जीवन पसंद है।

v) वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है।

vi) उसमें आत्म-सम्मान की भावना है।

ख) ध्रुवस्वामिनी के अंतर्द्वंद्व का क्या कारण है? उसकी परिणति किस तरह हुई है। पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

ग) ध्रुवस्वामिनी के चरित्र की चार विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

29.4.2 रामगुप्त

रामगुप्त "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का प्रमुख पुरुष पात्र है। नाटक के केंद्रीय पात्र यानी ध्रुवस्वामिनी से संबंधित अधिकांश प्रश्न रामगुप्त से जुड़े हैं। ध्रुवस्वामिनी के जीवन की समस्याओं के मूल में रामगुप्त है, इसलिए संपूर्ण कार्य-व्यापार में उसकी भूमिका का महत्व है।

रामगुप्त के चरित्र में 'प्रसाद' ने कई तरह की प्रवृत्तियों का मेल किया है। ऊपर से देखने पर वह एक दुर्बल चरित्र, अयोग्य, अनुत्तरदायी और विलासी व्यक्ति प्रतीत होता है। किंतु रामगुप्त का चरित्र इतना ही नहीं, इसके अतिरिक्त कुछ और भी है। उसके चरित्र के बारे में जानकारी स्वयं उसके कार्यों और वचनों से तो मिलती ही है, अन्य पात्रों द्वारा उसके संबंध में कही गई बातों से भी मिलती है। नाटक के आरंभ में ध्रुवस्वामिनी के निम्नलिखित कथन पर ध्यान दें :

"राजा का मुझ पर कितना अनुग्रह है यह भी मैं आज तक न जान सकी, मैंने तो कभी उनका मधुर संभाषण सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्मत्त, उन्हें अपने आनंद से अवकाश कहाँ।"

इससे हमें रामगुप्त के चरित्र की कई विशेषताओं का पता चलता है — (1) अपनी पत्नी के प्रति उसका व्यवहार उपेक्षापूर्ण और अमानवीय है। (2) वह मद्यप (शराबी) है (3) वह विलासप्रिय है, अपना सारा समय विलासिनियों के साथ बिताता है।

खड्गधारिणी और प्रतिहारी से बात करते हुए हमें उसकी अन्य विशेषताओं का पता चलता है। वह शंकालु स्वभाव का है। उसे संदेह है कि उससे विवाह कर लेने के बावजूद ध्रुवस्वामिनी चंद्रगुप्त से प्यार करती है। ऐसी स्थिति में उसे यह शंका भी है कि कहीं ध्रुवस्वामिनी उसके विरुद्ध कोई षड्यंत्र तो नहीं रच रही :

"जो स्त्री किसी दूसरे के शासन में रहकर और प्रेम किसी अन्य पुरुष से करती है; उसमें एक गंभीर और व्यापक रस उद्वेलित रहता होगा। वही तो···· नहीं, जो चंद्रगुप्त से प्रेम करेगी वह स्त्री न जाने कब चोट कर बैठे? भीतर-भीतर न जाने कितने कुचक्र घूमने लगेंगे।"

रामगुप्त का यह कथन उसके शंकालु स्वभाव के साथ-साथ स्वयं अपने बारे में उसके चौकन्नेपन का भी सूचक है। अपने हित और स्वार्थ का उसे पूरा ध्यान है।

यहीं पर प्रतिहारी से बातचीत के दौरान हमें पता चलता है कि उसमें राजकाज के प्रति उपेक्षा का भाव है। शकों द्वारा शिविर को घेर लिए जाने की सूचना का उस पर कोई असर नहीं होता। उसे केवल अपनी चिंता है। उसका कथन "दोनों ओर से घिरा रहने में शिविर और भी सुरक्षित है" कदाचित् उसकी मूर्खता का परिचायक हो सकता है। किंतु उसका अगला कथन

पढ़ कर हमें पता चलता है कि वह काफी चालाक और आत्म-केंद्रित व्यक्ति है। अपने मार्ग को बाधा रहित बनाने में उसकी बुद्धि बड़ी तेजी से काम करती है।

"ध्रुवस्वामिनी को लेकर क्या साम्राज्य से भी हाथ धोना पड़ेगा! नहीं तो फिर? (कुछ सोचने लगता है) ठीक तो, सहसा मेरे राजदंड ग्रहण कर लेने से पुरोहित, अमात्य और सेनापति लोग छिपा हुआ विद्रोह-भाव रखते हैं। (शिखर से) हैं न? केवल एक तुम्हीं मेरे विश्वास पात्र हो। समझा न? यही गिरि-पथ सब झगड़ों का अंतिम निर्णय करेगा। क्यों अमात्य, जिसकी भुजाओं में बल न हो, उसके मस्तिष्क में तो कुछ होना चाहिए?"

अपने प्रति हर तरह के विरोध को समाप्त करने के लिए वह पूरी तरह से सक्रिय है और हर विद्रोह का दमन शक्ति से नहीं, बुद्धि कौशल से करना चाहता है। शक-अवरोध के संकट को दूर करने के बहाने सभी विरोधों को दूर करना चाहता है। शकराज के प्रस्ताव का विरोध न करके उसे स्वीकार कर लेना रामगुप्त की कई प्रवृत्तियों का सूचक है। वह पराक्रमी और साहसी नहीं है। युद्ध करने या प्राणों को संकट में डालने की वीरता भी उसमें नहीं है, किंतु नीति-अनीति, अच्छे-बुरे का विचार किए बगैर अपना स्वार्थ सिद्ध करने की धूर्तता और चालाकी उसमें है। वह शिखरस्वामी से कहता है :

"अमात्य, तुम्हारी राजनीतिज्ञता इसी में है कि भीतर और बाहर के सब शत्रु एक ही चाल में परास्त हों।"

अपनी चालाकी में वह मर्यादा और गौरव की सीमा लाँघ जाता है। निर्लज्जतापूर्वक ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास भेजने को तैयार हो जाता है। ध्रुवस्वामिनी उसे पति के रूप में उसके कर्तव्य का ध्यान दिलाती है, रक्षा की भीख माँगती है। किंतु स्वार्थी और आत्म-केंद्रित रामगुप्त निर्ममता पूर्वक कहता है :

"तुम्हारा नारीत्व — अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिये मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित् तुम यह नहीं जानती हो।"

ध्रुवस्वामिनी की अनुनय-विनय रामगुप्त सुनना नहीं चाहता। वह आत्म-सम्मान का ध्यान दिलाती है किंतु रामगुप्त को अपने आत्म-सम्मान की कोई परवाह नहीं। दूसरे व्यक्ति की भावनाओं की, उनके सम्मान की उसे चिंता नहीं। उसके सामने केवल एक ही चीज है अपना स्वार्थ, अपनी राजसत्ता जो किसी भी कीमत पर बनी रहनी चाहिए। वह निर्लज्जतापूर्वक कहता है :

"तुम, मेरी रानी? नहीं, नहीं जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?"

अपमान और आक्रोश से पीड़ित ध्रुवस्वामिनी जब आत्महत्या करना चाहती है तब भी रामगुप्त की ओर से हम किसी तरह की सहानुभूति अथवा करुणा के स्थान पर उसके नितांत स्वार्थ प्रेरित शब्द सुनते हैं :

"किंतु तुम्हारे मर जाने पर उस बर्बर शकराज के पास किसे भेजा जाएगा? नहीं-नहीं, ऐसा न करो।"

वह मान रहा है कि शकराज बर्बर है किंतु ध्रुवस्वामिनी को शकराज की बर्बरता से बचाने की उसमें किंचितमात्र भी इच्छा नहीं है। अपने शंकालु और पतित स्वभाव के कारण उसे हर समय लगता है कि सभी लोग उसके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे हैं उसके प्राण लेने की कोशिश कर रहे हैं।

मानवीय गौरव और उदात्त गुणों का रामगुप्त में नितांत अभाव है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी लज्जाजनक कार्य को करते हुए भी वह स्वयं को लज्जित अनुभव नहीं करता। कपट उसके आचरण का अनिवार्य अंग है। स्वयं शिखरस्वामी के साथ योजना बना कर ध्रुवस्वामिनी के पास जाता है किंतु सिद्ध करना चाहता है कि शकराज के प्रस्ताव के विषय में कोई जानकारी नहीं। चंद्रगुप्त जब अपने प्राणों की बाजी लगा कर गुप्त कुल की मर्यादा की रक्षा करने को तैयार हो जाता है तब भी वह शिखरस्वामी के इस प्रस्ताव से सहमत होता है कि चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी दोनों शक शिविर में जाएँ। ऐसा करके वह चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी दोनों से एक साथ छुटकारा पाना चाहता है।

चंद्रगुप्त के पराक्रम से शक-दुर्ग पर विजय के पश्चात् रामगुप्त जब वहाँ पहुँचता है तो कोमा, मिहिरदेव और शक सैनिकों की नृशंस हत्या करवाकर अपनी क्रूरता का परिचय देता है। अपने पाखंडपूर्ण और क्लीव आचरण के पश्चात् भी ध्रुवस्वामिनी पर पति के रूप में अपना अधिकार समझता है और उस पर लांछन लगाता है कि वह चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है :

"ध्रुवस्वामिनी, निर्लज्जता की भी एक सीमा होती है।"

"चुप रहो! तुम्हारा पर-पुरुष अनुरक्त हृदय अत्यंत कलुषित हो गया है। तुम काल-सर्पिणी सी स्त्री! ओह तुम्हें धर्म का तनिक भी भय नहीं।"

उसके इन वचनों से स्पष्ट होता है कि ध्रुवस्वामिनी के प्रति अपने व्यवहार पर उसे तनिक भी लज्जा या खेद नहीं है, किसी तरह का पश्चाताप या ग्लानि नहीं है — उल्टे वह ध्रुवस्वामिनी को ही लज्जित करने का प्रयास कर रहा है।

स्वार्थ प्रेरित निरंकुशता उसके चरित्र की एक अन्य विशेषता है। सामंत कुमार जब उसके कायरतापूर्वक व्यवहार की भर्त्सना करते हैं तो निरंकुशतापूर्वक आदेश दे कर वह सामंत कुमारों तथा चंद्रगुप्त को भी बंदी बनवा लेता है। ध्रुवस्वामिनी जब उसके कुकर्मों का ध्यान दिलाती हुई अपने लिये न्याय की माँग करती है और पुरोहित से अपना मत व्यक्त करने को कहती है तो रामगुप्त उसे भी बंदी बनाने का आदेश सैनिकों को दे देता है।

वह इतना दुस्साहसी है कि अपने हर कार्य को सही समझता है। राजा के रूप में अपने कर्तव्यों के पालन में असमर्थ तथा

पति के रूप में अपने दायित्वों के निर्वाह में असफल रहने पर भी वह राजसिंहासन और ध्रुवस्वामिनी पर अपना वैध अधिकार समझता है। कायर और डरपोक होने के बावजूद अन्याय और अनाचार करने से नहीं चूकता। अंत में जब परिषद् के सदस्य उसे राज्य सिंहासन के अयोग्य घोषित करते हैं तथा पुरोहित निर्णय देता है कि ध्रुवस्वामिनी पर उसका कोई अधिकार नहीं तो भी वह इस निर्णय को चुपचाप स्वीकार नहीं करता, क्योंकि अपनी गलतियों के लिए उसमें किसी तरह का अपराध बोध नहीं है। सत्तालोलुप होकर वह चुपके से चंद्रगुप्त का वध करने का प्रयास करता है।

लेखक ने रामगुप्त के चरित्र का विकास बड़े ही मनोवैज्ञानिक और यथार्थ ढंग से किया है। अयोग्य व्यक्ति को जब सत्ता और अधिकार मिल जाता है तब उसका दुरुपयोग वह किस तरह करता है इसका जीता-जागता उदाहरण है रामगुप्त। अपने अधिकार के खो जाने का भय उसे सदा लगा रहता है। अपने बाहुबल और विवेक का सहारा न होने पर वह सदैव सशंक और भयभीत रहता है। अपनी सारी बुद्धि इसी बात में लगाये रहता है कि किस तरह अपना अधिकार और सत्ता कायम रखी जाए। समस्त श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों को वह दूर फेंक देता है। मूल्यांधता की स्थिति (मूल्यों को अनदेखा करने की स्थिति) किस तरह सजीव हो उठती है यह रामगुप्त के चरित्र में देखा जा सकता है। मंदाकिनी के शब्द "सच है वीरता जब भागती है तब उसके पैरों से छल-छंद की धूल उड़ती है" मूल्यांधता का बड़ा ही सजीव बिंब प्रस्तुत करते हैं।

रामगुप्त सामंतवादी पतनशील स्थितियों का प्रतीक चरित्र है। ध्रुवस्वामिनी के विरोध में खड़े होने के कारण खलनायक की भूमिका निभाता है। उसके धूर्त, मदोन्मत, आत्मसीमित, आत्मकेंद्रित और स्वार्थपरायण व्यक्तित्व में हर तरह की मर्यादा और गौरव का अभाव है। साथ ही इसमें अन्य खलपात्रों जैसी शक्ति और सामर्थ्य का भी अभाव है। नाटक के अन्य खलपात्र शकराज की तरह बाहुबल का भरोसा भी उसे नहीं है।

29.4.3 चंद्रगुप्त

चंद्रगुप्त "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के प्रमुख पुरुष पात्रों में से एक है। नाटक के प्रधान कार्य-व्यापार में उसका महत्वपूर्ण योगदान है। वस्तुतः वह रामगुप्त के प्रतियोगी पात्र के रूप में प्रस्तुत हुआ है। रामगुप्त की जो कमजोरियाँ हैं या जिन कार्यों को करने में रामगुप्त असमर्थ है उन कार्यों को चंद्रगुप्त बहुत सफलतापूर्वक पूरा करता है। उसका व्यक्तित्व रामगुप्त के बिल्कुल विपरीत है।

शौर्य, पराक्रम, गौरव, उदात्तगुण, आत्म-सम्मान, त्याग, निःस्वार्थता, कर्तव्यपरायणता, दूसरों का सम्मान, उनके लिए बलिदान होने की भावना आदि सभी श्रेष्ठ गुणों का उसके भीतर समावेश है। इस तरह लेखक ने दो विरोधी पात्रों को आमने-सामने खड़ा करके एक-दूसरे के चरित्र की विशेषताओं को बड़ी नाटकीयता के साथ उभारा है।

नाटकीय कार्य-व्यापार में भी ये दोनों पात्र ऐसी ही विपरीत स्थितियों में रखे गए हैं। अधिकांश समस्याएँ रामगुप्त के कारण उत्पन्न हुई हैं और उनके समाधान के रूप में चंद्रगुप्त उपस्थित हुआ है। शक आक्रमण से गुप्त साम्राज्य की रक्षा और ध्रुवस्वामिनी के सम्मान की रक्षा दोनों ही समस्याएँ रामगुप्त की कायरता के कारण उत्पन्न हुई हैं। चंद्रगुप्त अपने शौर्य, पराक्रम, त्याग और बलिदान की भावना से इन कठिनाइयों को दूर करता है। रामगुप्त जैसे क्लीव, पतित और गौरवहीन पति से मुक्ति पाने की ध्रुवस्वामिनी की मूल-समस्या का समाधान यद्यपि पुरोहित के माध्यम से होता है, किंतु उसके जीवन को नई दिशा चंद्रगुप्त से पुनर्लग्न के माध्यम से ही मिलती है। चंद्रगुप्त के प्रति उसके हृदय में अनुराग और वैवाहिक बंधन के बीच चलने वाला अंतर्द्वंद्व भी इसी स्थिति में समाधान पाता है।

चंद्रगुप्त के चरित्र में नायक के सभी उदात्त गुण विद्यमान हैं, किंतु 'प्रसाद' ने यहाँ प्राचीन धीरोदात्त नायक की परिकल्पना का रूढ़िबद्ध पालन नहीं किया है। सर्व-प्रथम तो इस नाटक का केंद्रीय पात्र कोई पुरुष न होकर ध्रुवस्वामिनी है। दूसरे सभी श्रेष्ठ गुणों के बावजूद चंद्रगुप्त के चरित्र में अपने अधिकारों के प्रति एक तरह की उदासीनता है जिसके कारण वह पिता से मिले राज्याधिकार को स्वयं ही छोड़ देता है। साथ ही अपनी वाग्दत्ता पत्नी — जिसे उसने अपनी संपूर्ण भावना से प्यार किया था — का विवाह भी रामगुप्त से हो जाने देता है। शक दुर्ग पर आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद भी वह अपने अधिकार के प्रति तब तक उदासीन बना रहता है। जब तक कि रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को बंदी बनाने की आज्ञा नहीं दे देता। ध्रुवस्वामिनी के प्रति अपने भावों को भी वह दबाए रहता है। अंत में मंदाकिनी के बार-बार प्रेरित करने पर उसका मनोभाव प्रकट होता है और वह अपनी उदासीनता के प्रति सचेत होता है :

"विधान की स्याही का एक बिंदु गिर कर भाग्य-लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। मैं आज यह स्वीकार करने में भी संकुचित हो रहा हूँ कि ध्रुवदेवी मेरी है। (ठहर कर) हाँ, वह मेरी है, उसे मैंने आरंभ से ही अपनी संपूर्ण भावना से प्यार किया है। मेरे हृदय के गहन अंतस्तल से निकली हुई यह मूक स्वीकृति आज बोल रही है। मैं पुरुष हूँ? नहीं, मैं अपनी आँखों से अपना वैभव और अधिकार दूसरों को अन्याय से छीनते देख रहा हूँ और मेरी वाग्दत्ता पत्नी मेरे ही अनुत्साह से आज मेरी नहीं रही। नहीं, यह शील का कपट, मोह और प्रवंचना है। मैं जो हूँ, वही तो नहीं स्पष्ट रूप से प्रकट कर सका। यह कैसी विडंबना है। विनय के आवरण में मेरी कायरता अपने को कब तक छिपा सकेगी।"

चंद्रगुप्त की अपने अधिकारों के प्रति यह उदासीनता 'प्रसाद' के नाटकों के पात्रों की खास विशेषता है। स्कंदगुप्त में भी अपने अधिकारों के प्रति उदासीनता दिखाई देती है। हालाँकि इससे इन पात्रों की कर्तव्य भावना में कोई कमी नहीं आती। अवसर आते ही वे पूरी शक्ति से अपने कर्तव्यों को पूरा करने में जुट जाते हैं। किंतु यह उदासीनता चंद्रगुप्त को अकर्मण्य या कर्तव्य-विमुख नहीं बनाती। वह केवल अपने अधिकारों के लिए उदासीन है दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य के लिए नहीं। इस तथ्य का प्रमाण है उसका शक शिविर में जाना और राष्ट्र तथा स्त्री के सम्मान की रक्षा करना। रामगुप्त द्वारा अकारण बंदी बनाए जाने पर भी वह कुछ क्षण के लिए अन्याय बर्दाश्त करता है किंतु जैसे ही ध्रुवस्वामिनी पर बंदी बनाए जाने का अत्याचार शुरू होता है वह लौह शृंखलाओं को तोड़कर अपने आधिपत्य की घोषणा करता है :

"तुम्हारी नीचता अब असह्य है। तुम अपने राजा को लेकर इस दुर्ग से सकुशल बाहर चले जाओ। यहाँ अब मैं ही शकराज के समस्त अधिकारों का स्वामी हूँ।"

चंद्रगुप्त को 'प्रसाद' ने ऐसे निर्मल व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है जिसमें सभी श्रेष्ठ गुणों का समावेश है। विवेक बुद्धि, सही निर्णय लेने की क्षमता और आत्म विश्वास आदि के साथ ही उसमें वीरता, शौर्य, पराक्रम, स्वाभिमान आत्म-बलिदान और कर्तव्यपरायणता जैसे श्रेष्ठ मानवीय गुण भी हैं।

राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के दौरान जो जागरण-सुधार की चेतना भारतीय जनमानस में व्याप्त थी, उसी की अभिव्यक्ति 'प्रसाद' ने अपने अधिकांश पात्रों के माध्यम से की है। चंद्रगुप्त भी इसी चेतना का वाहक है। गांधी और तिलक का वह युग बलिदान और त्याग का युग था, अधिकार सुख भोगने का नहीं। युग की यह चेतना चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में बड़ी प्रखरता से प्रकट हुई दिखाई देती है।

बोध प्रश्न 3

क) क्या रामगुप्त अपने प्रति भी उतना ही गैर जिम्मेदार है जितना कि दूसरे व्यक्तियों के प्रति?

....
....
....
....
....
....

ख) अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति रामगुप्त का क्या दृष्टिकोण है?

....
....
....
....
....
....

ग) चंद्रगुप्त के चरित्र में जागरण-सुधार युग की कौन-सी विशेषताएँ दिखाई देती हैं?

....
....
....
....
....

अभ्यास

नीचे "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के कुछ अंशों को उद्धृत किया जा रहा है तथा कुछ घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है। उनके आधार पर शकराज के चरित्र की विशेषताएँ बताइए। अपना उत्तर नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए।

- संधि-प्रस्ताव की शर्तें
- खिंगल की प्रतीक्षा में चित्त की चंचलता
- पुरुषार्थ को सबका नियामक समझना
- किसी के सामने विनीत न होना
- सोने की झाँझ वाली नाच का प्रबंध
- मिहिरदेव का अपमान
- धूमकेतु से भयभीत होना।

"आज देवपुत्रों की स्वर्गीय आत्माएँ प्रसन्न होंगी। उनकी पराजयों का यह प्रतिशोध है। हम लोग गुप्तों की दृष्टि में जंगली, बर्बर और असभ्य हैं तो फिर मेरी प्रतिहिंसा भी बर्बरता के अनुकूल ही होगी।"
"जो विषय न समझ में आये, उस पर विवाद न करो।"

"मैं समझता हूँ आप मेरे राजनीतिक कार्यों में हस्तक्षेप न करें तो अच्छा है (धूमकेतु को बार-बार देखता हुआ) भयानक! कोमा मुझे बचाओ।"

"और मेरा प्यार, मेरा स्नेह सब भुला दोगी? इस अमंगल की शांति करने के लिए आचार्य को न समझाओगी?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

29.5 सारांश

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक में चरित्र-चित्रण संबंधी इस इकाई में आपने कथानक और चरित्र-चित्रण के आपसी संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त की। आप जान गये हैं कि पात्र और कथानक एक दूसरे के पूरक होने चाहिए। नाटकों में पात्रों के चरित्र-चित्रण की शिल्पविधि के विषय में भी आप पढ़ चुके हैं। अब आप यह समझ गये हैं कि जयशंकर 'प्रसाद' अपने नाटकों के पात्रों के चरित्र को किन खास बिंदुओं से उभारते हैं। "ध्रुवस्वामिनी" के प्रमुख पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को आप देख चुके हैं। इस तरह आप जान गए हैं कि पात्र का चरित्र-चित्रण किस तरह किया जाता है। यानी उसकी अंतर्बाह्य व्यक्तित्व की विशेषताओं का मूल्यांकन करने के लिए किन बातों पर ध्यान देना जरूरी है।

29.6 शब्दावली

प्रतिरूप : अनुकृति, नकल।

साम्राज्यवाद : किसी राज्य द्वारा अन्य देशों को उद्योग, व्यापार विस्तार द्वारा पराधीन बना लिया जाना और फिर उनका शासक बन जाना।

निरंकुशतंत्र : ऐसा शासन जिसमें संपूर्ण सत्ता शासक के हाथ में केंद्रित हो, शासितों का कोई प्रतिनिधित्व न हो।

स्वच्छंदतावादी दृष्टि : साहित्य की ऐसी रूढ़ियों और परंपराओं को अस्वीकार करने वाला दृष्टिकोण जो अनुपयोगी और निरर्थक हो गई हैं।

पूँजीवाद : ऐसा शासन जिसमें उत्पादन, वितरण और विनिमय पूँजीपतियों या उनके निगमों के हाथ में हो और कीमतों का नियमन बाजार के उतार-चढ़ाव पर आश्रित हो।

अंत:संघर्ष : मन में चलने वाला संघर्ष।

अकर्मण्य : कर्म के अयोग्य, आलसी।

आत्मकेंद्रित : अपने आप तक सीमित, किसी और की चिंता न करने वाला।

उदात्त : श्रेष्ठ, महान।

29.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) नाटकों में पात्रों के कार्यों के माध्यम से कथावस्तु विकसित होती है और सफलता-असफलता भी पात्रों पर निर्भर होती है। जब कभी इनके आपसी संबंध में असंतुलन पैदा होता है तब नाट्य-रचना में असंगति उत्पन्न हो जाती है।

ख) पात्रों का चरित्र-चित्रण चार तरह से किया जाता है — (1) पात्रों के बाह्य स्वरूप (2) उनकी भाषा और संवाद (3) उनके कार्य (4) अन्य पात्रों का मत, यानी किसी पात्र के बारे में अन्य पात्रों द्वारा कही गई बात।

ग) 'प्रसाद' जी से पहले के नाटकों में पात्रों का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं होता था। वे नाटककार के व्यक्तित्व से लिपटे हुए थे। किंतु 'प्रसाद' ने हिंदी नाटक में पहली बार पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व दिया। इन पात्रों की व्यक्तिगत विशिष्टताओं की सृष्टि अंतर्द्वंद्व और बहिर्द्वंद्व के माध्यम से की गई है।

बोध प्रश्न 2

क) i) नहीं, ii) हाँ, iii) हाँ, iv) नहीं, v) हाँ, vi) हाँ।

ख) ध्रुवस्वामिनी के ह्रदय में चन्द्रगुप्त के प्रति अनुराग है किन्तु रामगुप्त की पत्नी होने के कारण वह ह्रदय की भावना को दबा देती है। रामगुप्त के अमानवीय व्यवहार और चंद्रगुप्त के निःस्वार्थ बलिदान को देख कर उसके मन में प्रेम और मर्यादा के बीच द्वंद्व शुरू हो जाता है। अंत में वह इस द्वंद्व का तार्किक उत्तर खोजने में तब सफल होती है जब परित्यक्ता होने के बाद वह न्याय की मांग करती है।

ग) 1) बौद्धिक जागरूकता 2) आत्म-सम्मान की भावना 3) साहस और दृढ़ता 4) अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की शक्ति।

बोध प्रश्न 3

क) रामगुप्त को अपनें सिवाए किसी अन्य व्यक्ति की चिंता नहीं है। वह अपनी सत्ता और अधिकार को कायम रखना चाहता है किंतु अपनी पत्नी के प्रति अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाता। शकराज द्वारा भेंट स्वरूप मांगे जाने पर वह उसे भेज देता है। अपने विरुद्ध किसी तरह के किसी भी विद्रोह एवं कुचक्र की संभावना तक को समाप्त करने का प्रयास करता है। दूसरों के प्रति गैर जिम्मेदार है किंतु अपने प्रति पूर्णतया सचेत और सक्रिय है।

ख) रामगुप्त को केवल अपने अधिकारों का ध्यान है कर्तव्यों का नहीं उसे यह भी परवाह नहीं कि उसका अधिकार उचित या न्यायसंगत है भी या नहीं। राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन है तथा पत्नी के प्रति अपने कर्तव्यों की भी उसे कोई परवाह नहीं। इतने पर भी वह चाहता है कि राजा होने के नाते सब उसकी हर बात मानें, चाहे वह कितनी ही गलत क्यों न हो।

ग) 'प्रसाद' जी का समय स्वाधीनता संग्राम और जागरण-सुधार का युग था जिसमें त्याग और बलिदान की भावना प्रमुख थी — भोग या सुख की भावना का कोई स्थान नहीं था। चंद्रगुप्त का चरित्र इन्हीं विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है। वह पिता द्वारा दिए गए अधिकार को त्याग देता है, किंतु कर्तव्य पालन के लिए अपने प्राण देने को सदैव तत्पर रहता है।

इकाई 30 "ध्रुवस्वामिनी" : परिवेश तथा संरचना-शिल्प

30.0 उद्देश्य
30.1 प्रस्तावना
30.2 ऐतिहासिक नाटक और परिवेश
30.3 "ध्रुवस्वामिनी" का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आधुनिक परिवेश
30.4 "ध्रुवस्वामिनी" का संरचना-शिल्प
30.4.1 भाषा
30.4.2 शैली
30.4.3 संवाद
30.4.4 गीत
30.5 सारांश
30.6 शब्दावली
30.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- साहित्यिक 'रचना' का उसके परिवेश के साथ संबंध बता सकेंगे;
- चर्चा कर सकेंगे कि "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का परिवेश कैसा है तथा नाटक के कार्य-व्यापार में इसने क्या भूमिका अदा की है?
- "ध्रुवस्वामिनी" की भाषागत विशेषताएँ बता सकेंगे;
- इसकी शैली का विवेचन कर सकेंगे;
- इसके संवादों का विश्लेषण कर सकेंगे।

30.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हम "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की कथावस्तु और उसके चरित्र-चित्रण का विश्लेषण कर चुके हैं। इस इकाई में हम परिवेश तथा संरचना-शिल्प की दृष्टि से इसका विवेचन करेंगे। परिवेश के माध्यम से कोई कृति जीवन के सामाजिक संदर्भों से जुड़ती है। नाटक की घटनाएँ, उसके पात्रों का आचार-व्यवहार, उनकी भाषा-शैली आदि के माध्यम से एक विशिष्ट परिवेश की सृष्टि होती है जो उसे विश्वसनीयता और सजीवता प्रदान करती है। कथानक का चयन जीवन के जिस क्षेत्र से किया जाता है उस क्षेत्र विशेष के देश और काल, परिस्थितियों और जीवन पद्धतियों का प्रतिनिधित्व परिवेश के माध्यम से होता है। पिछले खंड में हमने पाँच एकांकी पढ़े हैं। आपने गौर किया होगा कि प्रत्येक एकांकी अपने परिवेश की वास्तविकताओं और संरचना में दूसरे से भिन्न है। इसके पात्रों के आचार-व्यवहार, उनकी भाषा आदि जीवन स्थिति विशेष को प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए "जोंक" मध्यवर्गीय परिवार के जीवन को प्रस्तुत करता है तो "गिरती दीवारें" सामंतीय परिवेश की विवेकशून्य रूढ़िग्रस्तता को। इस खास तरह के परिवेश ने इनको अलग-अलग पहचान प्रदान की है साथ ही इन्हें जीवन और समाज के यथार्थ से जोड़ा है। हमें महसूस होता है कि जीवन में हम कहीं न कहीं ऐसी स्थितियों और ऐसे पात्रों को देखते हैं। उनकी भाषा और उनके कार्यकलाप जीवन के एक चित्र विशेष की एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं कि हम थोड़ी देर के लिए अपने आप को उनके समय और समाज का हिस्सा महसूस करने लगते हैं। इस तरह किसी रचना को सार्थकता प्रदान करने में उसके परिवेश और संरचना-शिल्प का व्यापक योगदान होता है।

30.2 ऐतिहासिक नाटक और परिवेश

अन्य विधाओं की तुलना में नाटक में परिवेश कई दृष्टियों से अधिक महत्वपूर्ण होता है। नाटक रंगमंच पर सजीव रूप में प्रस्तुत होता है। दर्शक जो कुछ देख रहा है वह उसे समय और समाज की दृष्टि से या देश और काल की दृष्टि से विश्वसनीय और सार्थक महसूस होना चाहिए।

अगर नाटक ऐतिहासिक सांस्कृतिक विषय से संबद्ध है तो परिवेश का प्रश्न और ज्यादा गम्भीर तथा महत्वपूर्ण हो जाता है। नाटककार ने जिस युग और समाज से कथा चुनी है उस युग और समाज की जीवन पद्धतियों, उसके लोगों के सोचने-विचारने के तरीके उस समय विद्यमान ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा, संस्कृति और कलाओं, उस समय की राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक परिस्थितियों, इतिहास के कालक्रमानुसार घटी घटनाओं, सामाजिक, धार्मिक रीति-रिवाजों और रहन-सहन के ढंग आदि की प्रामाणिकता नाटक की अनिवार्य शर्त बन जाती है। इतिहास के तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने की छूट रचनाकार को नहीं होती। इतिहास प्रसिद्ध पात्रों और उनसे संबंधित घटनाओं का सही प्रस्तुतीकरण नाटककार को करना होता है।

किन्तु यहीं दूसरी महत्वपूर्ण बात यह भी है कि सृजनात्मक साहित्यकार को कल्पना का सहारा लेने की सुविधा होती है क्योंकि वह इतिहास की पुस्तक नहीं लिख रहा, साहित्यिक कृति की रचना कर रहा है। घटनाओं और तारीखों का यथावत बयान कर देना मात्र उसका काम नहीं है। वह कल्पना का समुचित प्रयोग करते हुए काल्पनिक पात्रों तथा घटनाओं का समावेश कर सकता है। इस विषय में ध्यान रखने की बात यह होती है कि काल्पनिक प्रसंगों तथा पात्रों से इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं और व्यक्तियों के संबंध में कोई भ्रांति उत्पन्न न हो। उनकी कोई ऐसी गलत तस्वीर न खड़ी हो जो इतिहास अथवा समय के बिल्कुल विपरीत प्रतीत हो और ये काल्पनिक प्रसंग संभाव्यता के आधार पर रखे गए हों यानी उस परिवेश, समय और समाज में उन घटनाओं के होने की संभावना हो। उस समाज को प्रवृत्तियों या पद्धतियों, विचारधाराओं और विश्वासों तथा उस समय के साहित्य और संस्कृति में वैसी घटनाओं के प्रचलन की संभावना रही हो। उन घटनाओं का उस समय घटित होना अविश्वसनीय प्रतीत न हो। उदाहरण के लिए डा. रामकुमार वर्मा लिखित "कौमुदी महोत्सव" एकांकी में विषकन्या का प्रसंग चन्द्रगुप्त मौर्य से संबंधित इतिहास-प्रसिद्ध घटना नहीं है। किन्तु राजाओं और शत्रुओं को परास्त करने की राजनीतिक चाल के रूप में विषकन्या के प्रयोग का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। अतः यह बात असंभव और अविश्वसनीय नहीं लगती।

ऐतिहासिक परिवेश से जुड़ा एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न होता है उसकी वर्तमान प्रासंगिकता का यानी आज के दर्शक या पाठक के लिए इतिहास की वे घटनाएँ क्यों महत्वपूर्ण हैं। इस तरह इतिहास का विषय चुनने पर लेखक को दोहरे दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है— (1) जिस समय का इतिहास कथानक का आधार बनाया है उसके परिवेश की सृष्टि का तथा (2) जिस समय में रचना की जा रही है उस समय में यानी तत्कालीनता में उस कथानक की सार्थकता का। साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि इतिहास पर नाटककार का वर्तमान हावी न हो जाए। वह इतिहास और वर्तमान दोनों के बीच संतुलन स्थापित करता है, उनके बीच संवाद स्थापित करता है और काल-सापेक्ष (समय विशेष के लिए सापेक्ष) मूल्यों के भीतर से जीवन-सापेक्ष (जीवन में सदैव सार्थक रहने वाले) मूल्यों को तलाशता है। वह तलाशता है कि इतिहास के प्रसंग हमारे वर्तमान जीवन संदर्भों में किस तरह उपयोगी हो सकते हैं। हमें वह किन कालजयी मूल्यों और शाश्वत सत्यों से परिचित करा सकता है।

30.3 "ध्रुवस्वामिनी" का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आधुनिक परिवेश

'प्रसाद' के अन्य नाटकों की भाँति "ध्रुवस्वामिनी" का कथावृत्त भी इतिहास से चुना गया है। उन्होंने इतिहास को मानवीय अस्मिता बोध के रूप में (अस्मिता की पहचान के रूप में) ग्रहण किया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानवीय स्वतंत्रता पर जब-जब आघात हुआ है तब-तब क्रांति और युद्ध हुए हैं। स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता के कालजयी मूल्यों से इतिहास बना है। नाटककार 'प्रसाद' जिस युग में हुए उस समय भारत अंग्रेजों का गुलाम था। राजनीतिक गुलामी, आर्थिक शोषण और सामाजिक-सांस्कृतिक रुढ़ियों के बीच घुटता भारतीय जनमानस स्वतंत्रता के लिए बेचैन था। 'प्रसाद' जी ने इस चेतना को परंपरा और इतिहास के सूत्रों में संबद्ध करते हुए वर्तमान के संदर्भों में प्रासंगिकता प्रदान की। इतिहास में उन्होंने पराधीनता से मुक्ति का संकेत सर्वत्र पाया। इसलिए वर्तमान में नवजागरण की चेतना को सही दिशा प्रदान करने और स्वातंत्र्यपरक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने इतिहास को अपने नाटकों का आधार बनाया है। अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने सन् 1921 में प्रकाशित अपने नाटक "विशाख" की भूमिका में लिखा है—"इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है, क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमें हमें पूर्ण संदेह है। ···· मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने कि हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।"

इसी दृष्टि का परिणाम है कि उनके नाटकों में इतिहास और वर्तमान एक दूसरे में रिल-मिल गए हैं। यहाँ हम अपने आपको एक साथ दो धरातलों पर पाते हैं—प्राचीन इतिहास के युग में और वर्तमान युग में। "ध्रुवस्वामिनी" का कथावृत्त गुप्त युग से संबंधित है। नाटक के प्रमुख प्रश्न इतिहास सम्मत प्रश्न हैं। यह बात लेखक ने भूमिका (सूचना) में न केवल पूरी तरह स्पष्ट कर दी है वरन् इसे विभिन्न इतिहासकारों के मतों और ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध भी कर दिया है—"इतिहास के आधार पर जो कुछ हो चुका है या जिस घटना के घटित होने की संभावना है, उसी को लेकर इस नाटक की कथावस्तु का विकास किया गया है।"

ऐसा करते समय नाटककार ने देश और काल को काफी विस्तृत रूप में मूर्तिमान कर दिया है। यहाँ हम एक युग विशेष की संपूर्ण चेतना में प्रविष्ट हो जाते हैं।

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक में गुप्त युगीन जीवन के कई परिदृश्य उपस्थित हुए हैं। इनकी क्रमबद्ध चर्चा हम आगे करेंगे। नाटक के आरंभ में हमें पर्वत प्रदेश में युद्ध का परिवेश दिखाई देता है। पहाड़, नदी, झरनों और वनस्पतियों के बीच "शिविर" में केवल राजा और उसके सैनिक तथा युद्ध परिषद् ही नहीं उसका अंतःपुर भी मौजूद है। महादेवी, दास-दासियों और उनके साथ-साथ विलासिनियाँ भी हैं। विलास के सभी उपादान तथा कुंज मौजूद हैं। अंतःपुर और उसके भीतरी वातावरण से पतनशील, राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों का परिचय मिलता है। स्वच्छ और स्वस्थ मानवीय संबंधों के स्थान पर एक ओर शंका, जासूसी, अपमान और प्रवंचना का वातावरण है और दूसरी ओर कुबड़ों, बौनों और नपुंसकों का फूहड़ हास-परिहास। राजनीतिक परिस्थितियों का अपकर्ष यहाँ देखने को मिलता है। राजा अपने दायित्वों से विमुख है, शकराज अवसर पाकर प्रतिशोध की अग्नि में मानवीय संबंधों की गरिमा और उष्णता को झोंक देता है। राजनीति के नाम पर प्रवंचना, प्रतारणा और गौरवहीनता का नग्न नृत्य दिखाई देता है। मंदाकिनी का कथन पूरी-स्थिति का स्पष्ट बिंब प्रस्तुत करता है :

"सच है, वीरता जब भागती है तो उसके पैरों से राजनीतिक छल-छंद की धूल उड़ती है।"

मिहिरदेव शकराज को राजनीति के पीछे नीति को न खो देने का ध्यान दिलाते हैं किन्तु प्रतिहिंसा और वासना की आँधी में वह कोमा के सच्चे प्रेम को भी ठुकरा देता है।

नैतिक मूल्यों के ह्रास की इस अवस्था में मानवीय सहानुभूति और सहिष्णुता दुर्लभ दिखाई देती है। कहीं सम्राट आतंक और सत्ता के प्रदर्शन के लिए निरीह शकों की हत्या कराता दिखाई देता है तो कहीं चन्द्रगुप्त के वध का प्रयास करता है।

समुद्रगुप्तकालीन वैभव और मर्यादा की झलक भी बीच-बीच में दिखाई देती है। समुद्रगुप्त द्वारा दिग्विजय की सूचना भी मिलती है। विजित राजा द्वारा विजयी राजा के उपहार देने की परंपरा का पता चलता है। उपहार में अन्य वस्तुओं के साथ कन्या भी दी जाती थी। "ध्रुवस्वामिनी" इसी तरह उपहार में भेजी गयी थी।

"आर्य समुदरगुप्त की विजय यात्रा में महादेवी के पिता जी ने उपहार में गुप्तकुल में भेज दिया था।"

"मेरे पिता ने उपहारस्वरूप कन्यादान दिया था।"

वेश बदल कर शक दुर्ग में चन्द्रगुप्त के जाने और शकराज को समाप्त करने की घटना में राजनीतिक चतुराई के एक अन्य पक्ष का पता चलता है। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के कई तरह के चित्र इस नाटक में मिलते हैं। एक ओर अन्याय और अत्याचार से पीड़ित ध्रुवस्वामिनी है तो दूसरी ओर संपूर्ण भावना से समर्पण के बाद उपेक्षित कोमा तथा तीसरी ओर न्याय और कर्तव्य के लिए जीने वाली मंदाकिनी।

रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति के माध्यम से तत्कालीन समाज में विवाह-विच्छेद तथा स्त्रियों की स्थिति का चित्र मिलता है:

"यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं, गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।"

रामगुप्त की विलासपूर्ण जीवनचर्या तथा शकराज के दरबार में नृत्य आदि के आयोजन से स्त्रियों की स्थिति का एक अन्य पक्ष और उभर कर आता है।

कार्य-व्यापार की स्थितियों और पात्रों के रहन-सहन के अतिरिक्त देश काल को प्रस्तुत करने का एक और अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम है, भाषा। भाषा के स्तर पर युग विशेष को जीवंत रूप में खड़ा कर देना 'प्रसाद' की खास विशेषता है। तत्सम शब्दावली का प्रयोग एक खास तरह से परिवेश सृष्टि में सहायक हुआ है। विभिन्न वस्तुओं के नामों, विभिन्न पदाधिकारियों और कर्मचारियों के पदनामों और नित्य-प्रति जीवन व्यवहार की भाषा में तत्सम शब्दावली की प्रधानता है। उदाहरण के लिए 'चन्द्रातप', 'प्रकोष्ठ', 'पादपीठ' 'परम भट्टारक', 'अमात्य', 'सामंत कुमार', 'प्रतिहारी', 'मुखमंडल', 'वल्लरी', 'युद्ध-विग्रह', 'क्लीव' आदि प्रयोगों को देखा जा सकता है। ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिवेश के निर्माण में तो 'प्रसाद' की भाषा एक खास तरह की भूमिका अदा करती ही है, आवेश तथा व्यंग्य और विडंबना के परिवेश की सृष्टि में भी उनकी भाषा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तद्युगीन रीति-रिवाजों, विश्वासों और मान्यताओं के माध्यम से परिवेश सृष्टि के रूप में स्वस्त्ययन आदि का उल्लेख है। धूमकेतु के अमंगलकारी प्रभाव का प्रसंग युगीन विश्वासों का संकेत करता है। नल-कूबर, बृहस्पति, आदि पौराणिक संदर्भ सामाजिक मान्यताओं को प्रस्तुत करते हैं। हिजड़े, बौने, कुबड़े आदि के प्रसंग राजकीय अंतःपुर की स्थितियों को प्रस्तुत करते हैं।

इस समग्र ऐतिहासिक परिवेश के साथ-साथ नाटक 'प्रसाद' के समसामयिक परिवेश को भी लेकर चलता है। छायावादी युग का एक महत्वपूर्ण अंग था प्रेम और सौंदर्य। स्वच्छंदतावादी दृष्टि ने प्रकृति और मनुष्य दोनों के प्रति जिस उन्मुक्त प्रेम का प्रसार किया था उसकी व्यापक प्रस्तुति "ध्रुवस्वामिनी" में हुई है। कोमा का पूरा व्यक्तित्व ही इस उद्देश्य से निर्मित हुआ है। प्रेम करने की ऋतु को वह पूरी तरह जी लेना चाहती है, क्योंकि "दो प्रेम करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास होता है।" किन्तु छल-छंद के वातावरण में उसके प्रेम की दुलार भरी बल्लरी हरी-भरी नहीं रह पाती और मिहिरदेव उसे प्रकृति में सहानुभूति खोजने को प्रेरित करते हैं।

"चल कोमा! हम लोगों को लताओं, वृक्षों और चट्टानों से छाया और सहानुभूति मिलेगी।"

प्रकृति की ओर उन्मुख होने की यह प्रेरणा वस्तुतः जीवन के प्राकृतिक सौंदर्य की रक्षा की प्रेरणा है। राजनीतिक दाव-पेंच और लिप्साएँ जीवन में विकृतियाँ लाती हैं। उसके सहज सौंदर्य की रक्षा प्रकृति ही करती है। यही कारण है कि युद्ध और

घोर प्रपंच के वातावरण में भी वन, नदी, पर्वत आदि जीवन के अनिवार्य अंग बने हुए हैं। नाटक के आरंभ में गुप्त शिविर ऐसे ही वातावरण में स्थित है।

ऐतिहासिक परिवेश के साथ-साथ आधुनिक परिवेश भी नाटक में समानांतर रूप से हुई है। वर्तमान सामाजिक आंदोलनों का प्रभाव कई रूपों में दिखाई देता है। पूरा का पूरा कथानक स्वतंत्रता की रक्षा और मुक्तिपरक जीवन मूल्यों की स्थापना को समर्पित है। नारी जागरण की चेतना तीनों ही पात्रों के माध्यम से प्रकट हुई है। ध्रुवस्वामिनी, कोमा और मंदाकिनी द्वारा तीन भिन्न-भिन्न स्तरों पर यह जागरण और मुक्ति कामना का परिवेश निर्मित हुआ है। ये तीन स्वर हैं पुरुष वर्ग की पशुता से नारी की मुक्ति ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से, नारी अहं और स्वाभिमान की रक्षा कोमा के माध्यम से और राष्ट्रीय सामाजिक दायित्वों के प्रति जागरूकता मंदाकिनी के माध्यम से।

बोध प्रश्न 1

पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए

क) नाट्य रचना परिवेश से किस रूप में संबद्ध होती है?

....
....
....
....
....

ख) ऐतिहासिक नाटककार इतिहास से किस हद तक छूट ले सकता है?

....
....
....
....
....

ग) 'प्रसाद' जी के नाटकों में इतिहास आधुनिक युग से किस तरह जुड़ा है?

....
....
....
....

घ) निम्नलिखित घटनाओं से हमें "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के परिवेश के संबंध में क्या पता चलता है?

i) शकराज का संधि-प्रस्ताव भेजना।

....
....

ii) रामगुप्त द्वारा संधि-प्रस्ताव स्वीकार किया जाना।

....
....

iii) ध्रुवस्वामिनी का गुप्त काल में उपहारस्वरूप जाना।

....
....

iv) धूमकेतु दिखाई देना।

....
....

v) पुरोहित का कहना कि ध्रुवस्वामिनी पर रामगुप्त का कोई अधिकार नहीं।

....
....

vi) रामगुप्त को सिंहासनच्युत किया जाना।

....

....

30.4 "ध्रुवस्वामिनी" का संरचना-शिल्प

संरचना-शिल्प के तीन पक्ष हैं भाषा, शैली और संवाद। आगे हम एक-एक करके इन तीनों पर विचार करेंगे।

30.4.1 भाषा

ऐतिहासिक कथा चयन के कारण 'प्रसाद' जी ने देशकाल के अनुरूप भाषा की योजना की है। यह "ध्रुवस्वामिनी" की ही नहीं 'प्रसाद' के सभी नाटकों की विशेषता है। वे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश को काफी हद तक भाषा के माध्यम से निर्मित करते हैं। शब्दावली तथा अर्थ-बोध दोनों ही स्तरों पर भाषा परिवेश की सृष्टि करती है। इस प्रयोजन से संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है। आधुनिक उर्दू मिश्रित शब्दावली प्राचीन परिवेश की सृष्टि में सहायक नहीं हो सकती, बल्कि उससे परिवेश की विश्वसनीयता को खतरा पैदा होगा। रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति के लिए ही यदि लेखक "तलाक" जैसे शब्द का प्रयोग करता तो यह घटना आधुनिक जमाने के ज्यादा नजदीक प्रतीत होती। किन्तु, ऐतिहासिक नाटक में आधुनिक भावों की व्यंजना के लिए उस काल की भाषा का इस्तेमाल बेहतर होता है। जिस काल से उस नाटक का कथानक लिया गया हो।

"सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर!"

"मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी मूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी। इस स्वार्थ-मलिन कलुष भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं।"

इनके अलावा और बहुत से उदाहरण यत्र-तत्र मिल जाते हैं। जैसे "मेघ-संकुल, अन्धकार", "व्योम-विहारी पक्षी", "निरभ्र प्राची", "स्त्री-संप्रदान", "विकासोन्मुख कुसुम", "दुलार भरी वल्लरी", "आकाश का उच्छृंखल पर्यटक", "जीवन निशीथ", "राजकिल्विषी क्लीव" आदि।

यहाँ गौर करने की बात यह है कि आम बोलचाल की शब्दावली भी उतनी ही प्रचुरता से प्रयुक्त हुई है। ऊपर के वाक्यांशों में आये तत्सम शब्दों का बोलचाल के तद्भव शब्दों से बड़ा सहज संबंध स्थापित हुआ है। संस्कृत शब्दावली ऊपर से आरोपित न होकर मूल कथ्य की संरचना और लय का अनिवार्य अंग बन गई है। "इस स्वार्थ-मलिन कलुष-भरी मूर्ति से मेरा कोई परिचय नहीं।" इस वाक्य में कोई भी शब्द अतिरिक्त अथवा आरोपित नहीं है। शब्द के अर्थ और ध्वनि की लेखक को पहचान है वह "मेघ-संकुल आकाश" कहता है यदि 'मेघ संकुल व्योम' कहता तो उक्ति में इतनी सहजता न रहती। इसी तरह "दुलार भरी वल्लरी" में केवल "वल्लरी" तत्सम शब्द है, 'दुलार' और 'भरी' दोनों ही आम बोलचाल के शब्दों से मिल कर अर्थ की एक खास लय पैदा होती है। इसकी जगह स्नेह भरी या प्रेम भरी या अन्य कोई शब्द उतना सहज प्रतीत नहीं होता। इस तरह संस्कृत निष्ठता और बोलचाल की शब्दावली का मिला-जुला रूप "ध्रुवस्वामिनी" की भाषा की एक खास उपलब्धि है।

इस भाषा की अन्य विशेषता है बिंबों और प्रतीकों का सहज और सशक्त प्रयोग। शब्द अपने अर्थ के साथ जो चित्र हमारी कल्पना में उपस्थित करते हैं उसे बिंब कहते हैं। "निरभ्र प्राची का बाल अरुण" से हमारे मन में सुबह के खुले (मेघ रहित) आकाश में तुरंत निकले सूर्य का चित्र उपस्थित हो उठता है। इसी तरह निम्नलिखित वाक्य पर ध्यान दीजिए :

"मुझे कलंक-कालिमा के कारागार में बंद कर, मर्म वाक्य के धुएँ से दम घोंटकर मार डालने की आशा न करो।"

इस वाक्य को पढ़ कर कई बिंब हमारी कल्पना में बनते हैं—कारागार में बंद होने का, धुएँ से दम घोट कर मारने के प्रयास का। यदि लेखक चाहता तो सीधे वाक्य का प्रयोग करता "मुझ पर कलंक न लगाओ"। किन्तु तब वह ध्रुवस्वामिनी की असहाय अवस्था का उतना मार्मिक और प्रभावपूर्ण चित्र न खींच पाता जितना यहाँ खींच पाया है। रामगुप्त के अन्याय और अत्याचार की बड़ी तीखी और यथार्थ तस्वीर यहाँ बनती है। यह भाषा निश्चय ही अलंकृत भाषा है, किन्तु ध्रुवस्वामिनी की आहत मन की स्थिति और आवेग को व्यक्त करने में पूर्णयता सक्षम है।

"ध्रुवस्वामिनी" की भाषा की अन्य विशेषताएँ हैं प्रतीकात्मकता, व्यंजनात्मकता और सांकेतिकता। प्रतीक का अर्थ है, अमूर्त विचार, संकल्पना, स्थिति आदि को प्रस्तुत करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला मूर्त आकार या डिजाइन या वस्तु। रचनाकार विविध सूक्ष्म भावों या स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करता है। इस तरह बात को सीधे ढंग से न कह कर संकेतात्मक या व्यंजनात्मक ढंग से कहा जाता है। इसमें भाषा की संप्रेषणीयता बढ़ती है। पाठक या दर्शक शब्दों का सीधे अर्थ ग्रहण करने की बजाय उनसे संकेत ग्रहण करता है उनमें निहित अर्थ को खोजता है। उदाहरण के लिए नीचे लिखे वाक्यों पर ध्यान दीजिए।

"कितना अनुभूतिपूर्ण था वह क्षण का आलिंगन! कितने संतोष से भरा था! नियति ने अज्ञात भाव से मानो लू से तपी हुई वसुधा को क्षितिज के निर्जन से सायंकालीन शीतल आकाश से मिला दिया हो।"

यहाँ ध्रुवस्वामिनी के अपमान और वेदनापूर्ण जीवन में एक क्षण के लिए मिले सुख की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकात्मकता का सहारा लिया गया है। "लू से जलती हुई वसुधा" असह्य वेदना और अपमानपूर्ण जीवन जी रही ध्रुवस्वामिनी का प्रतीक है—"सायंकालीन शीतल आकाश" चन्द्रगुप्त के बलिदानपूर्ण प्रस्ताव का प्रतीक है। इस तरह के प्रयोग नाटक में जगह-जगह मिलते हैं।

बिंब प्रतीकों की इस योजना के माध्यम से भाषा में काव्यात्मकता की सृष्टि हुई है। उसमें भाव की तीव्रता और अनुभूति की गहराई है। शकराज द्वारा उपेक्षित कोमा से मिहिरदेव चलने को कहते हैं। उसके मन से उठे प्रेम और आत्म-सम्मान के द्वंद्व की अभिव्यक्ति बड़े गहन संवेदनात्मक बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से होती है।

"तोड़ डालूँ, पिताजी! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी वल्लरी मेरे आँख बंद कर चलने से मेरे ही पैरों में उलझ गयी है। दे दूँ एक झटका—उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जाएं और वह छिन्न-भिन्न होकर धूल में लोटने लगे? न, ऐसी कठोर आज्ञा न दो।"

गद्य में लिखे होने पर भी यहाँ कविता की सी प्रभावात्मकता मौजूद है। इन सब काव्यात्मक गुणों के बावजूद "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की भाषा में भावनात्मकता को अतिक्रम होकर बौद्धिक तार्किकता है। लेखक पात्रों को मात्र भावना के आवेग में बहने नहीं देता। बुद्धि भावना पर नियंत्रण करता है। बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग तर्कों को पैना बनाने के लिए किया गया है। उनसे स्थिति की विडंबना और व्यंग्यात्मकता ज्यादा तेजी से उभर कर आती है। उदाहरण के लिए नीचे लिखे वाक्यों पर ध्यान दीजिए :

"मैं बलि-पशु की तरह अकरुण आज्ञा की डोरी में बँधी हुई शक दुर्ग में भेज दी गई।"
"किन्तु नीड़ कहाँ? यह तो स्वर्ण-पिंजर है।"

"ध्रुवस्वामिनी" की भाषा की अन्य विशेषता है लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग। ऐसा भाषा को सहज और स्वाभाविक बनाने के लिए तथा उसमें बोलचाल की भाषा का पुट लाने के लिए किया गया है। जैसे :

"मेरे आँचल में तो छुपे नहीं", "नीति से हाथ धो बैठना।" "पशुसंपत्ति समझ कर" "बलि-पशु की तरह" आदि तथा "प्राण पण लगाना" "रक्त की नदी बहाना", "दुंदभी बजाना" आदि।

"ध्रुवस्वामिनी" की भाषा की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि भाषा यहाँ भावों के अनुरूप सरल या कठिन होती रही है। सभी पात्रों की भाषा में तत्सम शब्दावली का प्रयोग होने के बावजूद उनकी भाषा एक सी नहीं है। भाव की गंभीरता के अनुसार उसमें कहीं भावनामयता, कहीं व्यंग्यात्मकता, कहीं स्वार्थपरता, कहीं दृढ़ता, तो कहीं विनोदप्रियता मिलती है। शिखरस्वामी, कोमा, शकराज, मिहिरदेव, ध्रुवस्वामिनी, रामगुप्त, मंदाकिनी और हिजड़े, बौने या कुबड़े आदि सब की भाषा के अलग-अलग स्तर हैं जो उनकी अपनी-अपनी मनोभूमिका से जुड़े हैं। शब्द-चयन से ज्यादा शब्दों का प्रयोग महत्वपूर्ण है। 'प्रसाद' के नाटकों की भाषा पर अक्सर आलोचकों द्वारा दोष लगाया जाता है कि उनके सभी पात्रों की भाषा समान होती है। यह दोष "ध्रुवस्वामिनी" के पात्रों पर भी लगाया गया है। किन्तु यह दोष बहुत उचित इसलिए नहीं कि भाषा केवल शब्दों से नहीं बनती। जब हम यह महसूस करते हैं कि विविध पात्रों की भाषा में अर्थ के स्तर पर एक खास विशिष्टता है जो उनके पूरे व्यक्तित्व की परिचायक है तब यह कहना बेकार है कि सब की भाषा समान है।

उपर्युक्त व्यंजनाश्रित, सांकेतिक, प्रतीकात्मक और बिंब-प्रधान प्रयोगों के बावजूद "ध्रुवस्वामिनी" की भाषा सहज प्रवाहमय है। तीसरे अंक में पहुँच कर तो भाषा का बिल्कुल बदला हुआ रूप मिलता है जिसमें तर्क का पैनापन है, बुद्धि की प्रखरता और विवेक का तीखा प्रहार है, कल्पना या काव्यात्मकता का कोई आवरण नहीं है।

बोध प्रश्न 2

क) 'प्रसाद' जी ने "ध्रुवस्वामिनी" में तत्सम शब्दावली की प्रधानता क्यों रखी है? लगभग चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

ख) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की बिंब-प्रधान भाषा का एक उदाहरण नाटक का कोई अंश उद्धृत करके दीजिए। बताइए कि उक्त अंश को पढ़ कर आपकी कल्पना में क्या बिंब बनता है? अपना उत्तर अधिक से अधिक आठ पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

ग) "ध्रुवस्वामिनी" में प्रयुक्त तीन मुहावरे खोजिए और यह भी बताइए कि आजकल बोलचाल की भाषा में उन्हें किस रूप में इस्तेमाल किया जाता है?

....

....

....

....

30.4.2 शैली

हम कह चुके हैं कि "ध्रुवस्वामिनी" 'प्रसाद' का एक विशिष्ट नाट्य प्रयोग है जो उनके पिछले नाटकों की परंपरा में रहते हुए भी उनसे काफी भिन्न है। भाषा-शैली और संवाद के स्तर पर यह प्रयोग अपने आप में विशिष्ट है। पिछले नाटकों की संस्कृतनिष्ठ शैली यहाँ मौजूद है। किन्तु उसे बोलचाल की शैली की लय प्रदान की गई है। यह लय शब्द चयन से लेकर वाक्य विन्यास तक के स्तर पर विद्यमान हैं उदाहरण के लिए नीचे दिए गए उद्धरण को देखिए :

चन्द्रगुप्त : (प्रवेश करके) महादेवि, हम लोग प्रस्तुत हैं किन्तु ध्रुवस्वामिनी के साथ शक-शिविर में जाने के लिए हम लोग सहमत नहीं।

ध्रुवस्वामिनी : (हंसकर) राजा की आज्ञा मान लेना ही पर्याप्त नहीं। रानी की भी एक बात न मानोगे? मैंने तो पहले ही कुमार से प्रार्थना की थी कि मुझे जैसे ले आये हो; उसी तरह पहुँचा भी दो।

चन्द्रगुप्त : नहीं, मैं अकेला ही जाऊँगा।

ध्रुवस्वामिनी : कुमार! यह मृत्यु और निर्वासन का सुख, तुम अकेले ही लोगे, ऐसा नहीं हो सकता। राजा की इच्छा क्या है, यह जानते हो? मुझसे और तुमसे एक साथ ही छुटकारा। तो फिर वही क्यों न हो? हम दोनों ही चलेंगे। मृत्यु के गह्वर में प्रवेश करने के समय मैं भी तुम्हारी ज्योति बनकर बुझ जाने की कामना रखती हूँ। और भी एक विनोद, प्रलय का परिहास देख सकूँगी। मेरी सहचरी, तुम्हारा वह ध्रुवस्वामिनी का वेश, ध्रुवस्वामिनी ही न देखे तो किस काम का?

कई तरह के प्रतीकों के प्रयोग करके लेखक ने प्रतीकात्मक शैली को अपनाया है। नाटक के आरंभ में ही पर्वत को प्रभुत्व और दृढ़ता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धूमकेतु को अमंगल की सूचना के प्रतीक के रूप में दिखाया गया है। बौने, कुबड़े और हिजड़े के संपूर्ण प्रसंग को रामगुप्त की कायरता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मिहिरदेव द्वारा कोमा को प्रकृति की छाया में शरण लेने की प्रेरणा दिया जाना उन स्वच्छंदतावादी जीवन दृष्टि का प्रतीक है जिसमें मनुष्य अपने ही द्वारा बनाई छल-छंद पूर्ण व्यवस्था से त्रस्त होकर प्रकृति के विद्वेषहीन उन्मुक्त वातावरण में सहानुभूति की तलाश करता है :

"हम लोग अखरोट की छाया में बैठेंगे — झरनों के किनारे, दाख के कुंजों में विश्राम करेंगे। जब नीले आकाश में मेघों के टुकड़े, मानसरोवर जानेवाले हंसों का अभिनय करेंगे, तब तू अपनी तकली पर ऊन कातती हुई कहानी कहेगी और मैं सुनूँगा।"

रामगुप्त और उसकी व्यवस्था अंग्रेजों के निरंकुश शासन तंत्र के भीतर फैले अन्याय और अत्याचार का प्रतीक है। रामगुप्त को अपदस्थ करना, उस जन चेतना का प्रतीक है जो अन्यायी और अयोग्य शासक को हटाने के लिए जी-जान से तत्पर थी। ध्रुवस्वामिनी की समस्याएँ जागरण-सुधार युग में स्त्रियों की समस्याओं के सुधार और समाज में उनको सम्मानित स्थिति प्रदान करने के लिए चल रहे आंदोलनों की प्रतीक है।

इस विविध स्तरीय प्रतीकात्मकता के लिए पात्रों में भी प्रतीकात्मकता का समावेश किया गया है। अनेक समसामयिक प्रश्नों से सीधे टकराने के कारण "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में तार्किक-बौद्धिक शैली को प्रधानता मिली है। कोमा जैसा भावनामय व्यक्तित्व केवल निःस्वार्थ प्रेम के लिए ही सृजित हुआ प्रतीत होता है किन्तु उसके माध्यम से भी नारी समस्या को उठाया गया है। स्त्री की उपेक्षापूर्ण स्थिति को प्रकाश में लाया गया है। सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक प्रश्नों के विवेक संगत और तार्किक हल खोजती हुई ध्रुवस्वामिनी और मंदाकिनी इस बुद्धि प्रधान शैली का माध्यम बनती हैं। उदाहरण स्वरूप नीचे दिए गए कथनों को देखा जा सकता है :

मंदाकिनी : राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उसकी रक्षा होनी चाहिए। अमात्य यह कैसी विवशता है। तुम मृत्युदंड के लिए उत्सुक! महादेवि आत्महत्या करने के लिए प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अंतिम बल से परीक्षा कर देखो। बचोगे तो राष्ट्र और समाज भी बचेगा नहीं तो सर्वनाश।"

व्यंग्य वक्रोक्तिपूर्ण शैली ध्रुवस्वामिनी के कथनों मे मिलती है। रामगुप्त तथा शिखरस्वामी की धूर्तता और कपटपूर्ण आचरण की वह कभी तो सीधे और तीखे शब्दों में निंदा करती है कभी व्यंजनाश्रित वक्रोक्तिपूर्ण शब्दों में।

व्यंग्य का परिहासपूर्ण रूप, कुबड़े, हिजड़े और बौने के प्रसंग में दिखाई देता है जहाँ वह नलकूबर की वधू को विजय के उपहारस्वरूप हरण करके ले जाने की बात कहता है।

संवेदना के धरातल पर "ध्रुवस्वामिनी" मूलतः यथार्थवादी शैली का नाटक है। अपने समय के सत्यों को यह बौद्धिकता के धरातल पर प्रस्तुत करता है। यथार्थवाद के मूल भाव—मानवीय वेदना की अभिव्यक्ति और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाना—को यह कथ्य और शिल्प दोनों के धरातल पर प्रखरता के साथ प्रकट करता है। इस दृष्टि से यह 'प्रसाद' के अन्य नाटकों से भिन्न है तथा पश्चिमी यथार्थपरक और समस्या नाटक की शैली के निकट है।

बोध प्रश्न 3

क) "हाँ" या "नहीं" में उत्तर दीजिए।
"ध्रुवस्वामिनी" नाटक की शैली
 i) प्रतीकात्मक है
 ii) भावना-प्रधान है
 iii) यथार्थपरक है
 iv) तार्किक और बौद्धिक है
 v) व्यंग्यात्मक है
 vi) विश्लेषणात्मक है।

ख) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक से संस्कृतनिष्ठ शैली और बोलचाल की शैली को प्रस्तुत करने वाले दो अंश छाँटिए।

....

....

....

....

....

....

ग) निम्नलिखित उद्धरण किस तरह की शैली का उदाहरण है :
"उसे छोड़ दो कुमार! यहाँ पर एक वही नपुंसक तो नहीं है। बहुत से लोगों में से किसको-किसको निकालोगे।"

....

....

30.4.3 संवाद

हम चर्चा कर चुके हैं कि संवाद नाटक का अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व होता है क्योंकि कथा का संपूर्ण ताना-बाना संवादों के रूप में ही बुना जाता है। कार्य-व्यापार की सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थितियाँ और चरित्र की सूक्ष्म से सूक्ष्म विशेषताएँ संवादों द्वारा ही प्रस्तुत की जाती हैं। इस दृष्टि से नाटक के संवादों से दो प्रकार की अपेक्षा प्रमुख रूप से की जाती है—संवाद कथानक को आगे बढ़ाने से सहायक हों और पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करें।

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक के संवादों पर उपर्युक्त दोनों दृष्टियों से गौर करने पर हम पाएँगे कि ये दोनों विशेषताएँ यहाँ मौजूद हैं। उदाहरण के लिए ध्रुवस्वामिनी का निम्नलिखित कथन देखें :

"(खड़ी होकर रोष से) निर्लज्ज! मद्यप!! क्लीव!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं। (ठहर कर) नहीं मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी! मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतलमणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।"

इन वाक्यों द्वारा कई प्रयोजन सिद्ध होते हैं। ध्रुवस्वामिनी की स्थिति का पता चलता है। नाटकीय कार्य-व्यापार का संकेत मिलता है कि रामगुप्त द्वारा रक्षा की कोई संभावना न मिलने पर असहाय ध्रुवस्वामिनी को अपने सम्मान की रक्षा का मार्ग स्वयं खोजना है। इसके साथ ही यहाँ ध्रुवस्वामिनी के चरित्र का भी पता चलता है कि वह अन्याय को चुपचाप सहन नहीं करेगी, आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए भरसक प्रयास स्वयं ही करेगी। उसकी चारित्रिक दृढ़ता और निर्भयता का भी पता लगता है। रामगुप्त के लिए प्रयुक्त संबोधन उसके मन के भीतर छिपे आक्रोश और मार्मिक वेदना को व्यक्त करते हैं। इस तरह नाटकीय स्थिति की तीव्रता को उभारने में संवाद पूर्णतया सक्षम हैं।

"ध्रुवस्वामिनी" के सवादों में अनावश्यक विस्तार या दार्शनिकता नहीं है। 'प्रसाद' के अन्य नाटकों में दार्शनिक सिद्धांतों के खंडन-मंडन की प्रवृत्ति मिलती है जिससे कहीं-कहीं संवाद लंबे हो गए हैं किन्तु "ध्रुवस्वामिनी" में ऐसी स्थिति नहीं है। विवाह संबंध के प्रश्न को लेकर हुई चर्चा एक पात्र का लंबा कथन न होकर कई पात्रों के संवादों के रूप में प्रस्तुत हुई है जिससे तार्किकता और बोलचाल की व्यावहारिकता दोनों ही कायम हैं।

मंदाकिनी : "आर्य आप बोलते क्यों नहीं? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म बंधन बाँध कर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिवाद — कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते,

जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलंब माँग सकें? क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं।"

पुरोहित : *"नहीं, स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है।"*

इसी तरह शकराज तथा मिहिरदेव के राजनीति के दुरुपयोग संबंधी वार्तालाप को बड़े ही व्यावहारिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिससे शकराज की उच्छृंखलता और उद्दण्डता तथा मिहिरदेव के औचित्य और नीतिपरायणता के दर्शन होते हैं। दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली भी इस नाटक में नहीं मिलती। गहन काव्यात्मक गद्य-गीत जो 'प्रसाद' के अधिकांश नाटकों में आये है "ध्रुवस्वामिनी" में नहीं हैं। यहाँ संवादों में काव्यात्मक गहनता है, सांकेतिक प्रतीकात्मक व्यंजनाश्रित भाषा है किन्तु कल्पना की उड़ान या विचारों की दुरूहता या अस्पष्टता नहीं है।

संवादों को जिस तरह विचारों की बोझिलता से बचाने में लेखक सफल हुआ है उसी तरह भावातिरेक से उसे सफलता मिली है। कोमा जैसे भावनामय पात्र के संवादों में भी नितांत भावुकता न होकर मानवीय मूल्यों की तार्किकता है। प्रेम को जीवन की चरम उपलब्धि मानने वाली कोमा मात्र महत्व के प्रदर्शन के लिए "प्राण लेने और देने में पागल" लोगों को देखकर खिन्न होती है। उसके संवादों में भावों की गहनता के साथ-साथ उदात्त जीवन मूल्यों की दृढ़ता है।

"प्रेम का नाम न लो। वह एक पीड़ा थी जो छूट गई। उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जाएगी। राजा मैं, तुम्हें प्यार नहीं करती मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरुष-मूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों में खड़े रहने की दृढ़ता थी। इस स्वार्थ-मलिन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं। अपने तेज की अग्नि में जो सब कुछ भस्म कर सकता हो, उस दृढ़ता का, आकाश के नक्षत्र कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। तुम आशंका मात्र से दुर्बल कंपित और भयभीत हो"

कोमा का यह संवाद विस्तृत होने के बावजूद प्रभावपूर्ण इसलिए है कि इसमें मात्र भावना का वेग ही नहीं है स्वाभिमान और न्याय की रक्षा के लिए त्याग का भाव भी विद्यमान है। भले ही इस त्याग में कितनी ही पीड़ा क्यों न मिली हो। इसमें ज्ञान प्रदर्शन की प्रवृत्ति से भाषण नहीं दिया गया, शकराज को सही मार्ग दिखाने का प्रयास किया गया है।

नाटक के अधिकांश संवाद छोटे और चुटीले हैं। उनमें परिस्थिति और संवेदना की गहराई को पैनेपन से उभारने की क्षमता है। उदाहरण के लिए जब शक-संदेश सुनते हुए शिखरस्वामी कहता है कि संधि-प्रस्ताव स्वीकार करने या युद्ध करने के सिवाए कोई चारा नहीं, उस परिस्थिति में रामगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के संवाद देखिए।

रामगुप्त : *(चौंककर) क्या प्राण देने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं? तब तो महादेवी से पूछिए।*

ध्रुवस्वामिनी : *(तीव्र स्वर में) और आप लोग, कुबड़ों, बौनों और नपुंसकों का नृत्य देखेंगे। मैं जानना चाहती हूँ किसने सुख-दुख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्नि वेदी के सामने की है?*

रामगुप्त : *(चारों ओर देखकर) किसने की है, कोई बोलता क्यों नहीं?*

ध्रुवस्वामिनी : *तो क्या मैं राजाधिराज रामगुप्त की महादेवी नहीं हूँ?*

रामगुप्त : *क्यों नहीं? परन्तु रामगुप्त ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा न की होगी। मैं तो उस दिन द्राक्षासव में डुबकी लगा रहा था। पुरोहितों ने न जाने क्या-क्या पढ़ दिया होगा। उन सब बातों का बोझ मेरे सिर पर (सिर हिलाकर) कदापि नहीं।*

ध्रुवस्वामिनी : *(निस्सहाय होकर दीनता से शिखरस्वामी के प्रति) यह तो हुई राजा की व्यवस्था, अब सुनूँ मंत्री महोदय क्या कहते हैं।*

रामगुप्त की धूर्तता, धृष्टता, कायरता और उत्तरदायित्वहीनता तथा ध्रुवस्वामिनी की असहाय, विवश, बैचेन और आक्रोश पूर्ण स्थिति को संवाद बड़े तीखे ढंग से उभारते हैं।

संवादों में भाषा अथवा विषय की अस्पष्टता अथवा संदिग्धता नहीं है। स्पष्ट और सहज ढंग के कारण इनका पैनापन या तीखापन ज्यादा प्रभावपूर्ण हो गया है। ऊपर दिये गये उदाहरण में ध्रुवस्वामिनी सीधे शब्दों में अपने अधिकार की माँग करती है और उसके न मिलने पर अपनी तिलमिलाहट और आक्रोश को संवेदना के पूरे आवेग के साथ स्पष्ट करती है *"अमात्य, तुम बृहस्पति हो चाहे शुक्र, किन्तु धूर्त होने से क्या मनुष्य भूल नहीं करता? आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र को पहचानने में क्या तुमने भूल नहीं की। सिंहासन पर भूल से किसी दूसरे को तो नहीं बिठा दिया?"*

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक के संवादों की प्रमुख विशेषता है व्यंग्यात्मकता। हृदय की खीज और आक्रोश को व्यक्त करने के लिए व्यंग्य बड़ा पैना अस्त्र होता है। यहाँ हमें व्यंग्य के कई रूप मिलते हैं :

i) चुटीले विनोदपूर्ण व्यंग्य जो अपनी लय से श्रोता को तिलमिला देते हैं। उदाहरण के लिए प्रतिहारी के पूछने पर "भट्टारक इधर आये हैं क्या?" का उत्तर :

"मेरे आँचल में तो छिपे नहीं हैं। देखो किसी कुंज में ढूँढ़ो।"
या पारिचारिका द्वारा सूचना मिलने पर कि अमात्य मिलने आना चाहते हैं, ध्रुवस्वामिनी का कहना।

"तुम्हारे राजकुल में नियम क्या है? पहले अमात्य की मंत्रण सुननी पड़ती है, तब राजा से भेंट होती है?"

ii) **आक्रोशपूर्ण कटूक्तिपरक प्रत्यक्ष व्यंग्य** जो सीधे प्रहार करते हैं। जैसे, ध्रुवस्वामिनी का यह कथन :

"उसे छोड़ दो कुमार! यहाँ पर एक वही नपुंसक तो नहीं है। बहुत से लोगों में किसको-किसको निकालोगे? फिर आप लोग इतने चंचल क्यों हैं? राजा को आज्ञा देनी चाहिए और प्रजा को नतमस्तक होकर उसे मानना होगा।"

"इस प्रथम संभाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज? किन्तु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री संप्रदान से ही बढ़ा है?"

iii) **बौने, कुबड़े, हिजड़े, के संवादों में फूहड़ व्यंग्य**

"बौना — (कुबड़े से) सुनता है रे! तू अपना हिमाचल इधर कर दे—मैं दिग्विजय करने के लिए कुबेर पर चढ़ाई करूँगा।"

"बौना — (अकड़कर) वामन के बलि-विजय की गाथा और तीन पगों की महिमा सब लोग जानते हैं। मैं भी तीन लात में इसका कूबर सीधा कर सकता हूँ।

कुबड़ा—लगा दे भाई बौने! फिर यह अचल हेमकूट बनना तो छूट जाए।

हिजड़ा — देखो जी, मैं नल-कूबर की वधू इस पर बैठी हूँ।

बौना — झूठ! युद्ध के डर से पुरुष होकर भी यह स्त्री बन गया है।

हिजड़ा — मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मैं युद्ध करना नहीं जानती।

बौना — तुम नल-कूबर की स्त्री हो न, तो अपनी विजय या उपहार समझ कर मैं तुम्हारा हरण कर लूँगा (और लोगों की ओर देखकर उसका हाथ पकड़ कर खींचता हुआ) ठीक होगा न? कदाचित यह धर्म के विरुद्ध न होगा।"

यह हास-परिहास रामगुप्त के संपूर्ण आचरण पर अप्रत्यक्ष व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

नाटक के सभी पात्रों के संवाद उनके विशिष्ट मनोविज्ञान को उभारते हैं। इसी से इन पात्रों का अपना निजी व्यक्तित्व विकसित हो सका है। विभिन्न पात्रों के भीतर चल रहे अंतर्द्वंद्व की बड़ी प्रखर अभिव्यक्ति संवादों के माध्यम से हुई है। ध्रुवस्वामिनी के भीतर चन्द्रगुप्त के प्रति अनुराग को लेकर उठने वाला द्वंद्व तथा कोमा में उपेक्षित स्थिति को सहते जाने और अहं की रक्षा का द्वंद्व उनके संवादों से बड़ी स्पष्टता से व्यक्त हुआ है :

"जिस वायु विहीन प्रदेश में उखड़ी हुई सांसों पर बंधन हो—अर्गला हो, वहाँ रहते-रहते यह जीवन असह्य हो गया था। तो भी मरूँगी नहीं। संसार के कुछ दिन विधाता के विधान में अपने लिए सुरक्षित करा लूँगी। कुमार तुमने वही किया, जिसे मैं बचाती रही। तुम्हारे उपकार और स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ। ओह, (हृदय पर उंगली रख कर) इस वक्षस्थल में दो हृदय है क्या? जब अंतरंग "हाँ" करना चाहता है तो ऊपरी मन "ना" क्यों कहला देता है?"

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक के संवादों की एक खास विशेषता यह है कि संवाद परिस्थितियों के भीतर से उपजे हैं ऊपर से आरोपित नहीं है। कथ्य के भीतर के बौद्धिक ढाँचे में ये संवाद वैचारिक तनाव पैदा करते हैं। दूसरे शब्दों में समस्याओं के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण को तर्क-वितर्क के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। भावों की उष्णता को तर्क की कसौटी पर कसते हैं। अर्थात् अनुभूतियों की गहराई को भावुक ढंग से प्रस्तुत न करके तार्किकता से प्रस्तुत करते हैं। केवल बौद्धिक बहस प्रस्तुत नहीं करते, स्थिति-परिस्थिति की गंभीरता को उभारते हैं। आपने "कौमुदी महोत्सव" में चाणक्य और चन्द्रगुप्त के संवादों पर गौर किया होगा। दोनों ही भावावेग की भाषा बोलते हैं। किन्तु "ध्रुवस्वामिनी" में ऐसा नहीं है। स्थिति की गंभीरता के अनुसार पात्र की भाषा गंभीर या भावात्मक हुई है। नीचे दिये गये उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

ध्रुवस्वामिनी — "और जो लोग बोल सकते हैं जो आपकी पवित्रता की दुंदुभी बजाते हैं वे सबके सब साधु होते है न? (चन्द्रगुप्त से) कुमार तुम्हारी जिह्वा पर कोई बंधन नहीं। कहते क्यों नहीं कि मेरा यही अपराध है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया?

रामगुप्त — महादेवी!

ध्रुवस्वामिनी — (उसे न सुनते हुए चन्द्रगुप्त से) झटक दो इन लौह शृंखलाओं को। यह मिथ्या ढोंग कोई नहीं सहेगा। तुम्हारा क्रुद्ध दुर्दैव भी नहीं।

रामगुप्त — (डाँटकर) महादेवी! चुप रहो।

ध्रुवस्वामिनी — (तेजस्विता से) कौन महादेवी! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी हूँ? जो शकराज की शैय्या के लिए क्रीतदासी की तरह भेजी गई हो, वह भी महादेवी! आश्चर्य!

शिखरस्वामी — देवि, इस राजनीतिक चातुरी में जो सफलता

ध्रुवस्वामिनी — (पैर पटक कर) चुप रहो! प्रवंचना के पुतले स्वार्थ के घृणित प्रपंच! चुप रहो!!

यह बहस मात्र बहस के लिए नहीं है। जीवन स्थिति की विडंबना पर टिप्पणी है। तर्क, व्यंग्य और आक्रोश से उपजे तीखेपन के कारण संवादों में त्वरित संप्रेषणीयता, स्पष्टता और सहजता है। थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ कह दिया गया है।

संवादों का विकास विरोधी स्थितियों के माध्यम से हुआ है। दो भिन्न दृष्टिकोणों—सामंतवादी और स्वाधीनता परक मूल्यों के टकराव के कारण परिस्थितियों का जो घात-प्रतिघात उत्पन्न हुआ है उससे संवादों में उत्तर-प्रत्युत्तर की परस्पर टकराहट

पैदा हुई है। जीवन यथार्थ से जुड़े कठोर किन्तु गंभीर प्रश्नों का हल खोजने का कारण संवादों में वास्तवपन की सार्थकता का समावेश हुआ है और बोलचाल की लय पैदा हुई है। नीचे दिए गए उदाहरणों पर ध्यान दीजिए :

(i) *रामगुप्त — देखो तो कुमार! यह भी कोई बात है? आत्महत्या कितना बड़ा अपराध है।*
चन्द्रगुप्त — और आप से तो वह भी नहीं करते बनता।

(ii) *रामगुप्त — तो तुम महादेवी नहीं हो न?*
ध्रुवस्वामिनी — नहीं! मनुष्य की दी गई उपाधि मैं लौटा देती हूँ।
रामगुप्त — और मेरी सहधर्मिणी?
ध्रुवस्वामिनी — धर्म ही इसका निर्णय करेगा।
रामगुप्त — ऐं, क्या इसमें भी संदेह?
ध्रुवस्वामिनी — उसे अपने हृदय से पूछिए कि क्या मैं वास्तव में आपकी सहधर्मिणी हूँ।

ऐसे में संवाद अर्थ और प्रभाव की दृष्टि से तो बहुत उपयुक्त है ही अभिनेयता की दृष्टि से भी बहुत उपयुक्त हैं। अभिनेतागण यदि विषय और परिस्थिति के अनुकूल वाणी के उतार-चढ़ाव और लहजे का प्रयोग करें तो सभी बहुत सहज और स्वाभाविक प्रस्तुति संभव है।

स्वगत कथन

"ध्रुवस्वामिनी" में 'प्रसाद' जी ने स्वगत कथनों का भी कई स्थानों पर प्रयोग किया है। स्वगत कथन क्या होता, इसके बारे में आप इकाई 26 में पढ़ चुके हैं। स्वगत कथन का प्रयोग अक्सर पात्र की मनःस्थिति को दर्शक या पाठक के समक्ष लाने के लिए किया जाता है। जिन सूक्ष्म या गूढ़ भावों या मनोदशाओं को सामान्य संवादों द्वारा व्यंजित नहीं किया जा सकता उनको स्वगत कथनों द्वारा व्यक्त किया जाता है। पात्र के मन के भीतर उठने वाली हलचल और संघर्ष यानी अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति भी स्वगत के माध्यम से होती है। नाटक का आरंभ ही ध्रुवस्वामिनी के स्वगत कथन से हुआ है। मन की कशमकश को व्यक्त करती हुई वह कहती है :

"सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर। और इन क्षुद्र कोमल निरीह लताओं और पौधों को तो इसके चरणों में लोटना ही चाहिए न।"

यह स्वगत कथन ध्रुवस्वामिनी के प्रमुख प्रश्न हृदय के अनुराग और सामाजिक मर्यादा के बीच संघर्ष की पृष्ठभूमि बन कर आया है।

नाटक के लगभग सभी पात्रों—ध्रुवस्वामिनी, कोमा, मंदाकिनी, रामगुप्त, शकराज, चन्द्रगुप्त, ने अपनी मनःस्थिति स्वगत कथनों द्वारा प्रकट की है। कभी-कभी तो पात्रों को जानबूझ कर कुछ क्षणों के लिए मंच पर अकेला रखा गया है ताकि वे अपने उद्‌गारों मुखर होकर व्यक्त कर सकें। इसमें इन पात्रों के व्यक्तित्व की रेखाएँ स्पष्टता से उभर सकी हैं।

रामगुप्त — (चिंता से उँगली को हिलाते हुए, जैसे अपने आप से बातें कर रहा हो) ध्रुवदेवी को लेकर क्या साम्राज्य से भी हाथ धोना पड़ेगा। नहीं तो फिर?

दूसरे अंक के आरंभ में कोमा का लंबा स्वगत कथन आरंभ में तो विवरणात्मक है किन्तु आगे चल कर यह कोमा के अनुभूतिमय व्यक्तित्व का परिचायक हो जाता है।

सूक्तियाँ

जीवनानुभवों से निकली सूक्तियाँ 'प्रसाद' के नाटकों के संवादों में अक्सर पायी जाती हैं। "ध्रुवस्वामिनी" में भी ऐसी सूक्तियाँ स्थान-स्थान पर मिलती हैं। उदाहरण के लिए,

"सच है वीरता जब भागती है तो उसके पैरों से छल-छंद की धूल उड़ती है" (मंदाकिनी)

"मेघ संकुल आकाश की तरह जिसका भविष्य घिरा हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली की तरह चमकना ही चाहिए" (शिखरस्वामी)

"दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है" (मिहिरदेव)

"जिसकी भुजाओं में बल न हो उसके मस्तिष्क में तो कुछ होना चाहिए" (रामगुप्त)

30.4.4 गीत

संवादों के अलावा नाटककार द्वारा अपनाया जाने वाला अभिव्यक्ति का एक अन्य माध्यम है, गीत-योजना। पाश्चात्य आचार्य अरस्तु ने तो गीत को नाटक के अनिवार्य तत्वों में से एक माना है। नाटकों में गीत योजना कई तरह से की जाती है—(i) किसी एक पात्र द्वारा गाए जाने वाले गीतों के रूप में (ii) कई पात्रों द्वारा समवेत स्वर में गाए जाने वाले गीतों के रूप में (iii) नृत्य, गान आदि के आयोजन के रूप में।

गीत पात्रों की मनोदशा का बोध कराते हैं, कथावस्तु को आगे बढ़ाने में या कथा के विभिन्न सूत्रों को जोड़ने में सहायक होते हैं तथा परिवेश की सृष्टि करते हैं।

"ध्रुवस्वामिनी" में 'प्रसाद' ने चार गीतों की सृष्टि की है। इनमें से दो गीत मंदाकिनी ने गाये हैं, एक कोमा ने और एक नर्तकियों ने। मंदाकिनी के गीत मनोभूमिका को प्रस्तुत करने के साथ-साथ नाट्य व्यापार के अनिवार्य अंग के रूप

में प्रस्तुत हुए हैं। मंदाकिनी का व्यक्तित्व जनहित में समर्पित होने वाला व्यक्तित्व है न्याय की माँग और राष्ट्रहित ही उसका उद्देश्य है, और इस उद्देश्य को ही यह गीत प्रसारित करते हैं। कोमा का गीत

"यौवन तेरी चंचल छाया
इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस तू है लाया "

"प्रणय के तीव्र आलोक में" "जीवन के प्राथमिक प्रसन्न उल्लास" को आमंत्रित करते हुए उसे पूरी तरह जी लेने की कामना व्यक्त करता है और कोमा के व्यक्तित्व की रेखाओं के गाढ़े रंग को उभारता है।

नर्तकियों का गीत सामंतीय भोग-विलास के परिवेश को प्रस्तुत करने के साथ ही संध्या के समय प्रकृति के विविध रूपों का सुंदर चित्र प्रस्तुत करता है।

बिंबों की उदारता और अर्थवत्ता की दृष्टि से "ध्रुवस्वामिनी" के गीतों का विशेषकर मंदाकिनी के दूसरे गीत का विशेष महत्व है :

"पैरों के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले
संकीर्ण कगारों के नीचे, शत-शत झरने बेमेल चले
अपनी ज्वाला को आप पिये नव नीलकंठ की छाप लिये
विश्राम शांति को शाप दिये, ऊपर ऊँचे सब झेल चले।"

प्रलय का जो दृश्य और श्रव्य बिंब यहाँ प्रस्तुत हुआ है वह संपूर्ण नाटकीय स्थिति से बनने वाले बिंब का अनिवार्य अंग बन गया है। अपमान, कपट, प्रवंचना और प्रतारणा की आँधी में अपना पथ बनाते हुए चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी की दृढ़ता को ये प्रलय के बिंब बड़ी प्रखरता से अभिव्यक्त करते हैं।

बोध प्रश्न 4

क) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में व्यंग्यात्मक संवादों के किन्हीं तीन रूपों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित अंश को पढ़िए और इसके आधार पर "ध्रुवस्वामिनी' नाटक के संवादों की विशेषता बताइए।

ध्रुवस्वामिनी — आप सत्यवादी ब्राह्मण हैं कृपा करके बतलाइये"।
शिखरस्वामी — (विनय से उसे रोककर) मैं समझता हूँ कि यह विवाद अधिक बढ़ाने से कोई लाभ नहीं।
ध्रुवस्वामिनी — नहीं, मेरी इच्छा इस विवाद का अन्त करने की है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिए कि मैं कौन हूँ।
रामगुप्त — ध्रुवस्वामिनी, निर्लज्जता की भी एक सीमा होती है।
ध्रुवस्वामिनी — मेरी निर्लज्जता का दायित्व क्लीव कापुरुष पर है। स्त्री की लज्जा लूटने वाले दस्यु के लिए मैं"।

....

....

....

....

ग) पात्रों का मनोविज्ञान प्रकट करने वाले संवाद का एक उदाहरण "ध्रुवस्वामिनी" से दीजिए।

....

....

....

....

घ) कोमा के मन की हलचल प्रस्तुत करने वाले स्वगत कथन का उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

....

ङ) "हाँ" या "नहीं" में उत्तर दीजिए।
"ध्रुवस्वामिनी" नाटक के संवाद
i) यथार्थपरक हैं
ii) काव्यात्मक हैं
iii) तर्क और बुद्धि पर आधारित हैं
iv) चुटीले हैं
v) दार्शनिक गूढ़ता लिए हुए हैं
vi) बोलचाल की सहजता युक्त हैं।

30.5 सारांश

इस इकाई में आपने "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के परिवेश तथा संरचना-शिल्प का अध्ययन किया है। अब आप जान गए हैं कि नाट्य रचना में परिवेश की क्या भूमिका होती है। ऐतिहासिक नाटक का परिवेश किस तरह विशिष्ट होता है, इतिहास को आधुनिक युग में किस तरह प्रासंगिकता प्रदान की जाती है। 'प्रसाद' के इस नए नाट्य प्रयोग का आपने भाषा, शैली और संवादों की दृष्टि से विवेचन-विश्लेषण किया है। आपने देखा कि नाटककार ने किस तरह भाषा को कई स्तरों पर सार्थकता प्रदान की है। बिंब, प्रतीक, व्यंजना और यथार्थ के मेल को एक साथ समेटने वाली विशिष्ट शैली का परिचय भी आपने प्राप्त किया है। संवादों के स्तर पर नाटक की व्यावहारिकता, व्यंग्यात्मकता, यथार्थपरकता और सांकेतिकता को भी आपने जाँचा-परखा है। आपने गौर किया होगा कि संवाद संपूर्ण नाट्य प्रक्रिया का अविभाज्य अंग हैं और कार्य की गति को आगे बढ़ाते हैं। पिछले खंड में प्रस्तुत "गिरती दीवारें" और "कौमुदी महोत्सव" एकांकी के संवादों से तुलना करने पर आप पाएँगे कि "गिरती दीवारें" के वर्णनात्मक संवादों तथा "कौमुदी महोत्सव" में भावमय संवादों की तुलना में ये संवाद किस तरह विचार और कार्य को समानांतर रूप से आगे बढ़ाते हैं।

30.6 शब्दावली

अमूर्त : जिसका कोई रूप या आकार न हो।
संकल्पना : किसी विषय से संबंधित कोई विचार या अमूर्त सिद्धांत

समवेत गान : मिल कर गाना।

अस्मिता : अपने आप की पहचान। वे सब मान्यताएँ, विशेषताएँ और विचार जो किसी व्यक्ति या जाति को दूसरों से अलग पहचान बनाते हैं।

प्रासंगिकता : (i) किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थिति का किसी अन्य व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थिति के लिए महत्व या उसकी सार्थकता जैसे किसी देश और काल में किसी अतीत घटना का संगत प्रतीत होना। (ii) किसी प्रयोजन विशेष के लिए या किन्हीं नियमों के अनुसार उचित या सही।

30.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) परिवेश के माध्यम से नाट्य कृति जीवन के सामाजिक संदर्भों से जुड़ती है। कार्य-व्यापार की घटनाएँ, पात्रों का व्यवहार, उनके सामाजिक विचार और उनकी भाषा शैली के माध्यम से निर्मित परिवेश नाटक को विश्वसनीयता प्रदान करता है।

ख) इतिहास के कालक्रमानुसार घटी घटनाओं की प्रामाणिकता नाटक की अनिवार्य शर्त बन जाती है क्योंकि तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने की छूट नाटककार के पास नहीं होती है। किंतु वह संभवता के आधार पर कल्पना का प्रयोग कर सकता है। काल्पनिक प्रसंगों तथा पात्रों का समावेश इस हद तक कर सकता है कि इतिहास की प्रामाणिकता खंडित न हो।

ग) 'प्रसाद' का उद्देश्य इतिहास का वितरण प्रस्तुत करना मात्र नहीं है। इतिहास के माध्यम से वे आधुनिक जीवन के ज्वलंत प्रश्नों को प्रस्तुत करते हैं। अतः इतिहास वर्तमान को वाणी देने के माध्यम के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

घ) i) राजनीतिक प्रतिशोध और प्रपंच का परिवेश
ii) राजनीतिक अधःपतन और नैतिक मूल्यों के ह्रास का परिवेश स्वार्थ और प्रवंचना का परिवेश
iii) विजय के उपहारस्वरूप कन्यादान की परंपरा का प्रचलन (राजनीतिक सामाजिक रीति-रिवाज)

iv) सामाजिक मान्यता कि धूमकेतु अमंगलकारी होता है
v) अपात्र पति से पत्नी को मुक्ति मिलने की परंपरा
vi) अयोग्य और अपात्र शासक को शासन से हटाए जाने की परंपरा

बोध प्रश्न 2

क) "ध्रुवस्वामिनी" ऐतिहासिक नाटक है इसमें ऐतिहासिक देश काल को प्रस्तुत करने के लिए तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इसके अलावा यह छायावाद युग में लिखा गया नाटक है। 'प्रसाद' जी स्वयं छायावादी कवि हैं। उस समय संस्कृत की तत्सम शब्दावली का व्यापक रूप में प्रचलन था।

ख) "मेरे हृदय के अंधकार में प्रथम किरण सी आकर जिसने अज्ञात से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था।" इस अंश को पढ़ कर सूर्योदय की पहली किरण के आने पर रात्रि के अंधेरे के दूर होने का बिंब बनता है।

ग) i) पशु संपत्ति समझना — भेड़-बकरी समझना
ii) बलि पशु की तरह — बलि के बकरे की तरह
iii) प्राण पण लगाना — जान की बाजी लगाना

बोध प्रश्न 3

क) i) हां, ii) नहीं, iii) हाँ, iv) हाँ, v) हाँ, vi) नहीं

ख) संस्कृतनिष्ठ शैली
"राजा तुम्हारी स्नेह सूचनाओं की सहज प्रसन्नता और मधुर आलापों ने जिस दिन मन के नीरस शून्य में संगीत, वसंत की ओर मकरंद की सृष्टि की थी, उसी दिन से मैं अनुभूतिमयी बन गई हूँ।"

ग) बोलचाल की शैली
"ऐसे काम में तो आपत्ति होनी ही चाहिए राजा। स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करोगे, उसका फल क्या अच्छा होगा? और भी यह अपनी भावी पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा।"

घ) व्यंग्यात्मक शैली

बोध प्रश्न 4

क) 1) चुटीले विनोदपूर्ण व्यंग्य 2) आक्रोशपूर्ण कटूक्तिपरक व्यंग्य (3) फूहड़ हास्यपरक व्यंग्य

ख) इन संवादों में :
1) बोलचाल की सहजता है
2) तार्किकता है
3) व्यंग्यात्मकता है
4) कथा को आगे बढ़ाने और
5) पात्रों के चरित्र को व्यक्त करने की क्षमता है।

ग) "आह। किंतु ध्रुवदेवी! उसके मन में टीस है। (कुछ सोचकर) जो स्त्री दूसरे के शासन में रहकर प्रेम किसी अन्य पुरुष से करती है उसमें एक गंभीर और व्यापक रस उद्वेलित रहता होगा। वही तो····· नहीं, जो चन्द्रगुप्त से प्रेम करेगी वह स्त्री न जाने कब घोट कर बैठे? भीतर-भीतर न जाने कितने कुचक्र घूमने लगेंगे। (खड्गधारिणी से) सुना न, ध्रुवदेवी से कह देना चाहिए कि वह मुझे और मुझ से ही प्यार करे। केवल महादेवी बन जाना ठीक नहीं।"

घ) "तोड़ डालूँ पिता जी! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी वल्लरी, मेरे आँख बंद कर चलने से मेरे ही पैरों में उलझ गई है। दे दूँ एक झटका — उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जाएँ और वह छिन्न-भिन्न होकर धूल में लोटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो।"

ङ) i) हाँ, ii) नहीं, iii) हाँ, iv हाँ, v) नहीं, vi) हाँ।

इकाई 31 : "ध्रुवस्वामिनी" प्रतिपाद्य और अभिनेयता

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य
31.1 प्रस्तावना
31.2 "ध्रुवस्वामिनी" का प्रतिपाद्य
31.2.1 नारी जागरण की चेतना
31.2.2 अयोग्य और भ्रष्ट शासक से मुक्ति
31.2.3 यथार्थपरक जीवन दृष्टि
31.3 "ध्रुवस्वामिनी" की अभिनेयता
31.3.1 लेखक का नया प्रयोग
31.3.2 पारसी रंग-परिकल्पना का प्रभाव
31.3.3 रंग-संभावनाओं की तलाश के बिन्दु
31.3.4 "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में रंग-संभावनाओं की खोज।
31.4 सारांश
31.5 शब्दावली
31.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

31.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे;
- यह बता सकेंगे कि यह प्रतिपाद्य क्यों प्रासंगिक है;
- "ध्रुवस्वामिनी" की रंगमंचीय विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे;
- 'प्रसाद' की रंग-परिकल्पना का विवेचन कर सकेंगे।

31.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने "ध्रुवस्वामिनी" के परिवेश और संरचना-शिल्प का विश्लेषण किया है। इतिहास और वर्तमान के संदर्भों को एक साथ प्रस्तुत करते हुए प्राचीन और नवीन परिवेश की एक साथ सृष्टि करने वाले इस नाटक की विशिष्ट भाषा, शैली, संवाद-योजना का विवेचन करने के बाद अब हम इसके प्रतिपाद्य की चर्चा करेंगे तथा इसकी रंगमंचीय संभावनाओं पर विचार करेंगे। नाटक के तत्वों की चर्चा करते समय हमने कहा था कि प्रतिपाद्य किसी भी रचना का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व होता है। प्रतिपाद्य पर विचार करके ही हम जान सकते हैं कि उस रचना का उद्देश्य क्या है! उसके माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है और क्यों कहना चाहता है। वे कौन से सामाजिक और वैचारिक सरोकार हैं जिन्होंने लेखक को उस रचना के लिए प्रेरित किया है। उन सरोकारों की उस रचना के लेखन के समय क्या प्रासंगिकता थी और आज क्या प्रासंगिकता है यानी समग्र कथ्य किस अर्थ में सार्थक है?

अभिनेयता नाटक का महत्वपूर्ण तत्व इसलिए है कि कोई भी नाट्य कृति रंगमंच पर प्रस्तुत होकर ही पूर्ण होती है। हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है अतः जब तक किसी नाट्य कृति में रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए जाने की संभावनाएँ न हों तब तक उसे नाटक नहीं कहा जा सकता, वह एक संवादात्मक कथा मात्र होगी। रंगमंचीय संभावनाओं से तात्पर्य है कि उस कृति का कथानक ऐसा हो कि दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हो सके। यानी कार्य-व्यापार जब मंच पर प्रस्तुत किया जाए तो दर्शक की रुचि, संस्कार और संवेदना को प्रभावित कर सके। उसकी भाषा शैली और संवाद ऐसे हों कि अभिनेता उन्हें सहज रूप से आत्मसात करके प्रस्तुत कर सकें। वाणी के उतार-चढ़ाव, शब्दों के उच्चारण, वाक्य-योजना, लहजे आदि की भली-भाँति अनुकृति कर सकें। नाटक का कथ्य ऐसा हो कि दर्शक को प्रासंगिक और सार्थक प्रतीत हो। इसके साथ ही उसमें ऐसा कुछ न हो जिसे मंचित करने में तकनीकी दृष्टि से बाधाएँ उत्पन्न हों। यानी दृश्य-योजना, मंच-सज्जा, दृश्य-सूच्य घटनाएँ आदि ऐसी हों कि मंच पर बिल्कुल यथार्थ अथवा सार्थक हों।

31.2 "ध्रुवस्वामिनी" का प्रतिपाद्य

पिछली इकाइयों में हम चर्चा कर चुके हैं कि इतिहास को अपने नाटकों का विषय बनाने के पीछे 'प्रसाद' का उद्देश्य इतिहास की घटनाओं को दोहराना नहीं था। इतिहास को वे वर्तमान के लिए "आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत

लाभदायक" मानते थे। वर्तमान के निर्माण में इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः वर्तमान की समस्याओं के लिए समाधान खोजने में इतिहास का अध्ययन और अन्वेषण बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। इतिहास में कई तरह की परंपराएँ साथ-साथ सक्रिय रहती हैं। इन्हें मोटे तौर पर दो रूपों में देखा जा सकता है — पहली, रूढ़िवादी परंपराएँ या रीतिवाद को प्रश्रय देने वाली परंपराएँ और दूसरी, रूढ़ि विरोधी, प्रगतिशील लोक जागरण वाली परंपराएँ। इन दोनों परंपराओं में लगातार संघर्ष चलता है लेकिन जीत सदैव प्रगतिशील परंपरा की होती है क्योंकि प्रगतिशील परंपरा में प्रयोगशीलता और सर्जनात्मक के पनपने और बढ़ने का खुला अवसर मिलता है। इसलिए समर्थ रचनाकार परंपरा के इस उत्तमांश को यानी प्रगतिशील लोकजागरणवादी मूल्यों को ग्रहण करता है और उन्हें वर्तमान संदर्भों में सार्थक प्रयोगों का आधार बनाता है। 'प्रसाद' जी ने इतिहास को इसी दृष्टि से ग्रहण किया है। "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट कहा है

"हमारे आचार और धर्मशास्त्र की व्यावहारिकता की परंपरा विच्छिन्न सी है। आगे जितने सुधार या समाजशास्त्र के परीक्षात्मक प्रयोग देखे या सुने जाते हैं, उन्हें अचिंतित और नवीन समझ कर हम बहुत शीघ्र अभारतीय कह देते हैं, किन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि प्राचीन आर्यावर्त ने समाज की दीर्घकाल व्यापिनी परंपरा में प्रायः प्रत्येक विधानों का परीक्षात्मक प्रयोग किया है। तात्कालिक कल्याणकारी परिवर्तन भी हुए हैं। इसलिए डेढ़ हजार वर्ष पहले यह होना अस्वाभाविक नहीं है। क्या होना चाहिए और कैसे होगा, यह तो व्यवस्थापक विचार करें, किन्तु इतिहास के आधार पर जो कुछ हो चुका है या जिस घटना के घटित होने की संभावना है उसी को लेकर इस नाटक की कथावस्तु का विकास किया गया है"*

प्रश्न यह उठता है कि इतिहास सम्मत प्रमाणों और तर्कों के आधार पर कथावस्तु के विकास द्वारा लेखक क्या संदेश देना चाहता है? "ध्रुवस्वामिनी" के माध्यम से वह आधुनिक जीवन के किन सार्थक संदर्भों को उद्घाटित करना चाहता है? उनकी हमारे वर्तमान जीवन में क्या प्रासंगिकता है? आगे हम इन्हीं प्रश्नों के विभिन्न पहलुओं पर विचार करेंगे।

31.2.1 नारी जागरण की चेतना

भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के साथ जनमानस में व्याप्त नव-जागरण की चेतना की अभिव्यक्ति को 'प्रसाद' ने अपने अन्य नाटकों की भाँति इस नाटक में भी वाणी दी है। राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ मानवीय स्वतंत्रता की माँग प्रसाद युग का प्रबल स्वर था। हर तरह के रूढ़िवाद से मुक्ति की भावना और मनुष्य होने के नाते व्यक्ति के सम्मान की भावना को यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक जागरण-सुधार युग का एक महत्वपूर्ण पक्ष था समाज के पद-दलित शोषित वर्गों के उन्नयन का प्रयास। भारतीय समाज में कुछ वर्ग ऐसे थे जो युगों से उत्पीड़न और अन्याय का शिकार होते चले आ रहे थे। अछूत और नारी, ये दोनों ही समाज की ऐसी कठिन समस्याएँ थीं जिनका समाधान इस युग के हर जागरूक विचारक, सुधारक, रचनाकार, पत्रकार और नेता ने किया था। स्त्रियों के प्रति हो रहे अन्याय और अनाचार का विरोध, उन्हें पुरुषों के अधीन मानने की प्रवृत्ति का खंडन, उनके अधिकारों की रक्षा की माँग, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती से लेकर रवीन्द्रनाथ, शरतचन्द्र, मैथिलिशरण गुप्त तक सभी करते चले आए हैं।

हम पहले भी कह चुके हैं कि युग की हर चेतना 'प्रसाद' के साहित्य में अपनी पूरी गति और लय के साथ स्पंदित हुई थी। नारी मुक्ति के प्रश्न को वे अपने नाटकों में आरंभ से ही किसी न किसी रूप में उठाते रहे थे। नारी जीवन को उन्होंने विभिन्न कोणों से जाँचने का प्रयास किया था। कभी सरमा द्वारा वासुकि ('जनमेजय का नाग यज्ञ में') से प्रत्यक्ष शब्दों में अधिकार की माँग के माध्यम से तो कभी नारी पात्रों के संवेदनशील अहं के रूप में ("स्कंदगुप्त" नाटक में देवसेना अहं पर हल्की सी ठेस भी बर्दाश्त नहीं कर पाती चाहे जीवन भर आत्मपीड़न ही क्यों न सहन करना पड़े)। स्त्रियों के संबंध में नवीन विचारों को प्रकट करते रहने के अतिरिक्त 'प्रसाद' मानवतावादी दृष्टि को भी अपने सभी नाटकों में स्थान-स्थान पर समाहित करते रहे हैं। किंतु "ध्रुवस्वामिनी" में आकर उन्होंने नारी के सामाजिक शोषण के प्रश्न को केंद्रीय संवेदना के रूप में रखा है। समय की इस कठोरतम समस्या को उठाना और इसका समाधान खोजना ही "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का प्रमुख प्रतिपाद्य है। स्त्री के सम्मान और अधिकारों की माँग यहाँ विविध पात्रों द्वारा बड़े स्पष्ट शब्दों में की गई है। ध्रुवस्वामिनी युगों से पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार का खुलकर विरोध करती है। उसके निम्नांकित कथन इसका प्रमाण हैं :

"पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मुझ पर नहीं चल सकता।"

"पराधीनता की एक परंपरा-सी उनकी नस-नस में — उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गई है। उन्हें समझकर भी भूल करनी पड़ती है।"

"इतना बड़ा उपहास — धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की यह पैशाचिक परीक्षा, मुझसे बलपूर्वक ली गई।"

"पुरुषों की प्रभुता का जाल मुझे अपने निर्दिष्ट पर ले ही आया।"

ध्रुवस्वामिनी के कथनों के उपर्युक्त अंश लेखक के दृष्टिकोण के कई पक्ष हमारे सामने रखते हैं। सबसे पहले कथन में ध्रुवस्वामिनी स्त्रियों को पुरुषों की बराबरी का दर्जा न मिलने की स्थिति का विरोध करती है। पुरुष सुख-सुविधा के लिए

* यह पता है ध्रुवस्वामिनी के संदर्भ का मुख्तार

स्त्रियों से जो मनमाना व्यवहार करता है उसे निर्जीव वस्तुओं या बेबस पशुओं की तरह अपने उपभोग की वस्तु मानता है, उसे सहन करने को ध्रुवस्वामिनी तैयार नहीं है। इस तरह वह पुरुषों की भोगवादी प्रवृत्ति का विरोध करती है।

दूसरे कथन में वह उस मनोभूमि की चर्चा करती है जिसके कारण स्त्रियाँ अपने आपको पुरुषों के समकक्ष समझने का साहस ही नहीं कर पातीं। इतने लम्बे समय से पुरुषों को उनसे श्रेष्ठ सिद्ध किया जाता रहा है कि अब वे बराबरी की किसी माँग को पेश करने की जरूरत भी नहीं समझ पातीं। उनके मन-मस्तिष्क में यह बात युगों से चली आती एक परंपरा की भाँति घर कर गई है कि वे पुरुषों के अधीन हैं और इस अधीनता को वे सहजता से स्वीकार करने लगी हैं।

तीसरे अंश में धर्मशास्त्रों के उस रूढ़िवाद का विरोध है जिसके द्वारा विवाह के नाम पर स्त्री को इस हद तक पुरुष के अधीन बना दिया जाता है कि उसे हर स्थिति में पुरुष की आज्ञा माननी पड़ती है। भले ही वह आज्ञा कितनी ही अन्याय और अनाचारपूर्ण, कितनी ही अकरुण और ममतारहित या कितनी ही नृशंस क्यों न हो।

चौथे अंश में पुरुष के प्रभुत्व के इस कुटिल जाल से मुक्ति का संकेत है। स्त्री के उस आत्मविश्वास का स्वर है जिसके बल पर वह समस्त रूढ़ियों को साहसपूर्वक तोड़ देती है।

इस बदलती हुई मानसिकता को पुष्ट और व्यापक रूप प्रदान करने के लिए मंदाकिनी जैसे पात्र की सृष्टि की गई है। विवाह और धर्म के विधान के नाम पर स्त्रियों की स्वतंत्रता और अधिकारों के हनन पर प्रश्न चिह्न लगाती हुई वह पूछती है कि यदि स्त्री किसी विपत्ति में हो तो इस धार्मिक विधान के अंतर्गत उसके लिए कोई सहारा है भी या नहीं?

"जिन स्त्रियों को धर्म-बन्धन में बाँध कर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार — कोई संरक्षण "नहीं" छोड़ते। जिससे वे स्त्रियाँ आपत्ति में अवलंब माँग सकें। क्या भविष्य में सहयोग की कोरी कल्पना से ही उन्हें आप संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं"

मंदाकिनी का यह कथन, स्त्री की सामाजिक स्थिति के संबंध में कई मूलभूत प्रश्नों को उभारता है। विवाह को एक धर्म बंधन मानना या विवाह के परिणामस्वरूप स्त्री का अपनी स्वतंत्रता या अपना कोई अधिकार न रहना, स्त्री का अपने पति के अधीन होना, उसे अपनी इच्छा-अनिच्छा, सहमति-असहमति व्यक्ति करने की कोई सुविधा प्राप्त न होना आदि।

मंदाकिनी धर्मशास्त्र प्रणीत इन रीतियों के खिलाफ आवाज उठाती हुई माँग करती है कि विवाह के नाम पर यदि स्त्रियों को संरक्षण या सहयोग नहीं मिलता तो उस आपातस्थिति में धर्म उनकी सहायता या रक्षा की क्या व्यवस्था करता है? क्या धर्म केवल उनके अधिकारों को छीनने के लिए ही है या उन्हें कोई सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी है? यदि वह उन्हें कोई सुरक्षा प्रदान करता है तो उस सुरक्षा की व्यवस्था कौन सी है? इन प्रश्नों के माध्यम से वह धर्म के नियामक राज पुरोहित को प्रेरित करती है कि धर्मशास्त्रों के प्रगतिशील पक्ष की तलाश करें और ध्रुवस्वामिनी को उसका अधिकार प्रदान करें। स्त्री-पुरुषों की समानता की माँग मंदाकिनी एक अन्य कथन में भी करती है :

"भगवान ने स्त्रियों को उत्पन्न करके ही अधिकारों से वंचित नहीं किया है। किन्तु तुम लोगों की दस्यु वृत्ति ने ही उन्हें लूटा है"

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक में प्रसाद का उद्देश्य स्त्री के प्रति परम्परागत पिछड़ी हुई दृष्टि या मध्ययुगीन बोध का खंडन करके आधुनिक भाव बोध की स्थापना करना है इसलिए मंदाकिनी और ध्रुवस्वामिनी स्त्री की स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा की उपर्युक्त ढंग से माँग करती हैं और सामाजिक संबंधों के व्यवस्थापकों को विवश करती है कि वे स्त्रियों के अपेक्षित अधिकार उन्हें प्रदान करें। वे परिस्थितियों से संघर्ष करती हैं और उन्हें अपने अनुकूल मोड़ती हैं। नारी हृदय के कोमलतम पक्ष के प्रतिनिधि पात्र कोमा में यह संघर्ष दूसरे ढंग से व्यक्त हुआ है। वह अपने अधिकार की रक्षा की अपेक्षा करती है। शकराज को सही मार्ग दिखाने का प्रयास करती है। शकराज द्वारा उपेक्षित और अपमानित होकर जीने के बजाए वह उससे अलग मार्ग चुनना पसंद करती है अपने आँसुओं से सींची हुई दुलार भरी वल्लरी को झटकती हुई कहती है :

"प्रेम का नाम न लो। वह एक पीड़ा थी जो छूट गई। उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जाएगी।"

राजनीतिक प्रतिशोध के लिए ध्रुवस्वामिनी का सम्मान नष्ट करने का विरोध कोमा और मिहिरदेव दोनों करते हैं। दोनों ही उस मध्ययुगीन दृष्टि का विरोध करते हैं जिसमें स्त्री को केवल भोग की वस्तु समझकर उससे चाहे जब जैसा व्यवहार किया जा सकता था। नाटक के निम्नलिखित अंश पर ध्यान दें :

"शकराज — आचार्य! रामगुप्त का दर्प दलन करने के लिए मैंने ध्रुवस्वामिनी को उपहार में भेजने की उसे आज्ञा दी थी। आज रामगुप्त की रानी मेरे दुर्ग में आई है। कोमा को इसमें आपत्ति है।
मिहिरदेव — (गंभीरता से) ऐसे काम में आपत्ति तो होनी ही चाहिए। राजा! स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करोगे उसका फल क्या अच्छा होगा? और भी, यह अपनी भावी पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा।"

यहाँ स्त्रियों पर अत्याचार को लेखक ने कई बिंदुओं से उठाया है। शत्रु के गर्व को चूर करने के लिए उसकी पत्नी को उपहारस्वरूप माँगते समय अपने और शत्रु के गर्व की ओर तो ध्यान दिया है किन्तु जिस स्त्री को उपहारस्वरूप माँगा गया है उस स्त्री के सम्मान की कोई परवाह नहीं की गयी, वह तो जैसे भोग की वस्तु है जिसकी अपनी कोई प्रतिष्ठा ही नहीं। दूसरी ओर अपनी भावी पत्नी अर्थात् कोमा की भावनाओं की कोई परवाह नहीं है। यह ख्याल ही नहीं कि ऐसा करने से कोमा का भी अपमान हो रहा है। स्त्री के सम्मान की कोई परवाह न करने की इस सामंतीय प्रवृत्ति को 'प्रसाद' ने यहाँ रामगुप्त और शकराज दोनों के माध्यम से प्रस्तुत किया है और पूरा नाट्यविधान स्त्री के प्रति इस अपमानपूर्ण व्यवहार के रूप में खड़ा किया है।

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक का प्रमुख उद्देश्य स्त्री की स्वाधीनता और समता की, उसके सम्मान और अधिकारों की रक्षा की जरूरत को उजागर करना है। इसके लिए 'प्रसाद' ने अपने समय और समाज में व्याप्त कुछ ज्वलंत प्रश्नों को नाटक का प्रमुख विषय बनाया है। पहला प्रश्न तो है स्त्री की ऐसे विवाह से मुक्ति जो उसकी इच्छा के बगैर हुआ हो और जिसके कारण उसका जीवन असह्य हो गया हो। जो पति अपनी पत्नी को उसके सहज अधिकार प्रदान नहीं करता उसके सम्मान और मर्यादा की रक्षा नहीं कर सकता, उसे उपहार में किसी अन्य व्यक्ति को दे देता है उसका अपनी पत्नी पर कोई अधिकार नहीं। ऐसी हालत में स्त्री अपने नारकीय जीवन से मुक्ति पा सकती है। उसका विवाह-विच्छेद हो सकता है यानी उसे तलाक मिल सकता है। इसके साथ ही 'प्रसाद' ने बहुपत्नी प्रथा का भी विरोध किया है। शकराज द्वारा ध्रुवस्वामिनी को उपहारस्वरूप प्राप्त करके अपने अंतःपुर में रखने का कोमा विरोध करती है और शकराज के प्रेम को झटककर चली जाती है। मिहिरदेव भी शकराज से कहते हैं कि "यह अपनी भावी पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा।" यह पूरा प्रसंग बहु-विवाह की प्रथा के विरोध में खड़ा है।

इसके अतिरिक्त यहाँ लेखक ने अपने समय के एक और सुधार आंदोलन को मुखरित किया है। भावनामय प्रेम की प्रतीक कोमा संपूर्ण निराशा, निष्पीड़न और उपहास को प्रतिदान के रूप में पाकर भी अंत में शकराज का शव लेने जाती है। ध्रुवस्वामिनी उसे शव ले जाने की अनुमति दे देती है किन्तु वह कोमा के इस दृष्टिकोण को सहजता से स्वीकार नहीं करती। मंदाकिनी के कहने पर कि स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं, ध्रुवस्वामिनी कहती है कि यह स्त्रियों की "एक भूल है, भ्रम है" और इस भ्रम के मूल में है पराधीनता की वह भावना जो उनकी नस-नस में समायी हुई है। उसी के कारण वे जानबूझकर भूल करती हैं। इस घटना से लेखक ने उस मध्ययुगीन मानसिकता का विरोध किया है जो सती प्रथा को गौरवपूर्ण ठहराती थी।

इस तरह अपने समय के स्त्री सुधार आंदोलनों के चार पक्ष "ध्रुवस्वामिनी" में प्रतिपाद्य के रूप में आए हैं:

1) स्त्रियों को तलाक पाने का अधिकार
2) पुनर्विवाह का अधिकार
3) बुह-विवाह का विरोध
4) सती-प्रथा का विरोध

स्त्रियों के संबंध में बदली हुई धारणाओं की अभिव्यक्ति का एक और पक्ष भी 'प्रसाद' के नाटकों में मिलता है। स्त्रियों के प्रति उदारता और सम्मान रखने वाले लेखकगण अब तक उसे केवल दया का पात्र मानते चले आ रहे थे। उसे पुरुष के समकक्ष स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं मिल पा रहा था। 'प्रसाद' ने नारी को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। उसे किसी की मेहरबानी के लिए हाथ पसारे न दिखाकर अपने अधिकारों की माँग करते हुए प्रस्तुत किया है। ध्रुवस्वामिनी जहाँ रामगुप्त के समक्ष समर्पण भी करती है वहाँ भी अधिकार की माँग है कहना न होगा कि रामगुप्त को पति के रूप में अपने दायित्व का बोध कराने का प्रयास है:

"देखिए, मेरी ओर देखिए। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके"।

यहाँ विवाह के सामाजिक बंधन को स्वीकार करते हुए उसके भीतर से अधिकार की माँग की गई है। यहाँ दैन्य भाव नहीं है आत्मसम्मान की सीधी पुकार है। ध्रुवस्वामिनी के रूप में आधुनिक स्त्री को अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की रक्षा के लिए तन कर खड़ा दिखाया गया है। नारी को वे गुड़िया के रूप में प्रस्तुत न करके साहस और कर्मण्यता की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मंदाकिनी संपूर्ण अव्यवस्था और अत्याचार का सीधा मुकाबला करने के लिए खड़ी है क्योंकि उसे "हृदय कठोर करके अपना कर्तव्य करने के लिए यहाँ रुकना होगा। न्याय का दुर्बल पक्ष ग्रहण करना होगा"। ध्रुवस्वामिनी का यदि कोई रक्षक नहीं तो वह अपने आत्म-सम्मान की रक्षा स्वयं ही करेगी, भले ही इसके लिए प्राण क्यों न देने पड़ें।

31.2.2 अयोग्य और भ्रष्ट शासक से मुक्ति

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक इस तथ्य को रेखांकित करता है कि जब शासन की बागडोर किसी अयोग्य व्यक्ति के हाथ में चली जाती है तो जन-सामान्य के हित असुरक्षित हो जाते हैं। आंतरिक अव्यवस्था तो रहती ही है। विदेशी आक्रमणों का संकट भी उभर आता है और पराधीनता का द्वार खुल जाता है। अयोग्य व्यक्ति अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए किसी भी तरह के भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में नहीं चूकता। वह तो रामगुप्त की भांति कहता है —"जिसकी भुजाओं में बल न हो उसके मस्तिष्क में तो कुछ होना ही चाहिए"। भले ही यह "कुछ" कितना ही अनीतिपूर्ण क्यों न हो।

निरंकुश अराजकता की इस स्थिति में नवजागरण की चेतना का स्वर प्रबल होता है और स्वाधीनता की रक्षा की माँग सर्वोपरि मूल्य के रूप में प्रस्तुत होती है। मुक्ति की इस चेतना को राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता आंदोलन के स्वर के साथ संपृक्त किया गया है। राजा के कर्तव्यों और अधिकारों को परिभाषित करने के साथ-साथ यथास्थितिवाद का खंडन करते हुए आमूल परिवर्तन की माँग की गई है। राजा के कर्तव्यों और अधिकारों के प्रश्न को उठाया गया है और इस प्रश्न को जनमत के परिप्रेक्ष्य में विवेचित-विश्लेषित किया गया है। मंदाकिनी समय-समय पर यह मुक्तिकामी क्रांतिकारी स्वर लेकर उभरती है:

"मूर्खों ने स्वार्थ के लिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है।"

"राजा का भय मंदा का गला नहीं घोट सकता।"

"राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तबभी उस राजा की रक्षा होनी चाहिए।"

"आमात्य यह कैसी विवशता है। तुम मृत्युदंड के लिए उत्सुक। महादेवी आत्महत्या करने के लिए प्रस्तुत। फिर यह हिचक क्यों? एक बार अंतिम बल से परीक्षा कर देखो। बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान भी बचेगा नहीं तो सर्वनाश"।

"इस परिषद् में मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड़कर जिन लोगों ने राजकिल्विष किया हो उन्हें दंड मिलना चाहिए।

अयोग्य शासक की व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न, राष्ट्र के सम्मान और स्वाभिमान के लिए प्राण अर्पित करने की माँग, अक्षम और अपराधी शासक को दंडित करने की माँग, 'प्रसाद' के समय के सर्वाधिक ज्वलंत प्रश्न थे जो इस नाटक की मूल समस्याओं के रूप में उभर कर आए हैं। राष्ट्र की रक्षा और अयोग्य शासक को पदच्युत करने के राज परिषद् के अधिकार को "ध्रुवस्वामिनी" में प्रतिपादित किया गया है। साथ ही प्राण पण लगा कर राष्ट्र की सेवा में समर्पित होने की प्रेरणा दी गई है। मंदाकिनी और चन्द्रगुप्त दोनों पात्र इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही हैं। अन्याय सहने वाले अहिंसावाद का विरोध करते हुए कर्म सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने वाली यह जीवन दृष्टि राजनीतिक क्षेत्र में तिलक युग का प्रतिनिधित्व करती है। इस तरह यह मानवतावादी जीवन दर्शन की स्थापना करते हुए आमूल परिवर्तनवाद (Radicalism) की माँग करती है। मानव मुक्ति का संदेश देती है।

31.2.3 यथार्थपरक जीवन दृष्टि

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक 'प्रसाद' की यथार्थपरक जीवन दृष्टि को प्रस्तुत करता है। व्यक्ति और राष्ट्र की समस्याओं का समाधान बुद्धिपरक चेतना से दिया गया है। भाववाद का खंडन करते हुए तर्क और यथार्थ की पुष्टि की गई है। ध्रुवस्वामिनी बुद्धिवादी स्त्री है जो अपनी विकट समस्याओं से जूझती है और रास्ता निकालती है उनसे पलायन नहीं करती। स्त्री व्यक्तित्व के कोमल पक्ष की प्रतीक कोमा भी अपनी पूरी संवेदनात्मक हलचल के बावजूद शकराज के गलत कामों से समझौता नहीं करती :

"राजा मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी मूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी। इस स्वार्थमलिन कलुष भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं।"

हर तरह के रूढ़िवाद और रीतिवाद का खंडन करते हुए मानवतावादी मूल्यों की स्थापना की गई है। सामंतीय भोगवाद और व्यक्तिवाद का विरोध करते हुए लोक जागरण की परंपरा में स्वच्छंदतावादी तत्वों की महत्व-प्रतिष्ठा करना परंपरा के मूल्यवान अंतःसूत्रों की खोज करना है। आधुनिक युग के प्रश्नों का समाधान परंपरा के प्रगतिशील ग्राह्य पक्षों द्वारा कराया गया है। इस तरह जातीय अस्मिता की पहचान कराने का प्रयास किया गया है।

बोध प्रश्न 1

i) ध्रुवस्वामिनी के कथन के ऐसे दो अंशों को उद्धृत कीजिए जो स्त्री-पुरुष की असमानता का विरोध करते हैं।

....

....

....

....

....

....

....

ii) नाटक को पढ़कर रामगुप्त के कथनों में से ऐसा अंश छाँटिए जिससे प्रमाणित हो कि वह स्त्री को अपनी संपत्ति का ही एक हिस्सा समझता है।

....

....

....

....

बोध प्रश्न 2

नोट : लगभग पांच: छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

i) निम्नलिखित कथन "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के किस पात्र का है और यह किस बात का सूचक है?

"आर्य! आप बोलते क्यों नहीं? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म-बंधन में बाँधकर उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते,

जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलंब माँग सकें। क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं।"

....

....

....

....

ii) स्त्री के अधिकारों के हनन का विरोध कोमा किस तरह करती है?

....

....

....

....

....

....

iii) ध्रुवस्वामिनी" नाटक में लेखक का शासक वर्ग के प्रति क्या दृष्टिकोण है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

iv) 'हाँ' या 'नहीं' में उत्तर दीजिए।
'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में लेखक का उद्देश्य—
क) परंपरा के प्रगतिशील मूल्यों को स्वीकार करना है।
ख) स्त्री-पुरुष को असमान मानना है।
ग) स्त्री के अधिकारों की माँग करना है।
घ) सामंतीय मूल्यों के स्थान पर मानवतावादी मूल्यों को स्वीकार करना है।

31.3 "ध्रुवस्वामिनी" की अभिनेयता

हम चर्चा कर चुके हैं कि किस तरह अभिनेयता नाटक का महत्वपूर्ण तत्व होता है। कोई भी नाट्य रचना मंच पर प्रस्तुत होकर ही पूर्णता और सार्थकता पाती है, इसलिए नाटक में रंगमंचीय संभावनाएँ अवश्य होनी चाहिए। आगे हम "ध्रुवस्वामिनी" पर इसी दृष्टि से विचार करेंगे।

31.3.1 लेखक का नया प्रयोग

'प्रसाद' के नाटकों की रंगमंचीयता काफी समय तक विवाद का विषय बनी रही। यह माना जाता रहा कि घटना-विस्तार, दृश्यों की अधिकता, लंबे संवाद, भाषा की क्लिष्टता, स्वगत कथन और गीतों के विस्तार आदि के कारण उनके नाटक रंगमंचीय नहीं हैं। नाटकों की अभिनेयता संबंधी ये आक्षेप 'प्रसाद' के जीवन काल में लगाए जा चुके थे। इसलिए अपने अगले नाटक "ध्रुवस्वामिनी" की रचना करते समय 'प्रसाद' रंगमंचीय पक्ष के प्रति विशेष रूप से सतर्क थे। घटना विस्तार, प्रासंगिक कथाओं, पात्रों की संख्या, स्थान, कार्य और समय की योजना, संवाद और गीतों की योजना आदि सभी की दृष्टि से नाटककार ने यहाँ विशेष सावधानी बरती है। अतः 'प्रसाद' के अन्य नाटकों की तुलना में यह एक विशिष्ट और सजग नाट्य प्रयोग है। लेखक ने इसकी रचना करते समय रंगमंच की एक परिकल्पना को अपने ध्यान में रखा है। मंच सज्जा के लिए निर्देश दिए हैं। अभिनय की दृष्टि से पर्याप्त संकेत भी यहाँ मौजूद हैं। प्रत्येक पात्र के बोलते समय उसकी तदनुकूल मनःस्थिति का संकेत दिया गया है। भावाविनय के साथ ही आंगिक अभिनय के भी स्पष्ट संकेत दिए गए हैं। तीन अंकों के इस नाटक में तीन ही दृश्य हैं, अतः बार-बार मंच-सज्जा परिवर्तन की जरूरत नहीं है। मंच-सज्जा भी अधिकांशतः पर्दों के माध्यम से की जाने वाली है जो क्रमशः पहले से दूसरे और दूसरे से तीसरे दृश्य में सरल होती गई है। प्रथम अंक में वन, नदी, पर्वत आदि की पृष्ठभूमि में पुष्प शिविर के दृश्य की तुलना में तृतीय अंक में दुर्ग के प्रकोष्ठ का दृश्य काफी सरल है।

31.3.2 पारसी रंग-परिकल्पना का प्रभाव

"ध्रुवस्वामिनी" के इस संपूर्ण दृश्य-विधान में लेखक की परिकल्पना के केन्द्र में पारसी रंगमंच रहा है क्योंकि उस समय रंगमंच का वही एक सक्रिय रूप मौजूद था। पारसी रंगमंच में कई तरह के लिपटवाँ पर्दों द्वारा रंगमंच की व्यवस्था की

चित्र 12 : "ध्रुवस्वामिनी"–ध्रुवस्वामिनी और चंद्रगुप्त

जाती थी। ये पर्दे ही वस्तुतः राजभवन, युद्धभूमि, उद्यान, वन तथा ऐसे ही अन्य स्थानों की पृष्ठभूमि निर्मित करते थे। मंच पर ज्यादा साज-सामान इकट्ठा करने की बजाए वहाँ चित्रकारी किए हुए पर्दों से वातावरण की सृष्टि की जाती थी। कई तरह के पर्दे एक के बाद एक करके लगे होते थे। जिस स्थल के दृश्य की अपेक्षा होती, उसी की पृष्ठ भूमि का पर्दा गिरा दिया जाता था। ध्यान रखने की बात है कि पर्दे मंच के सामने वाले पर्दे के अतिरिक्त होते थे जिसके उठने पर नाटक शुरू होता है और गिरने पर समाप्त हो जाता है। दृश्य बदलने पर अन्य स्थल के लिए अपेक्षित पर्दा सामने आ जाता था। उदाहरण के लिए यदि पहला दृश्य राजमहल का है, दूसरा जंगल का, तीसरा युद्ध भूमि का और चौथा फिर राजमहल का तो पर्दों को इसी क्रम में लगाया जाता था और पहला दृश्य समाप्त होने ही पहला पर्दा उठ जाता और जंगल का दृश्य सामने आ जाता था। जब जंगल का पर्दा उठा दिया जाता तो अगले दृश्य के लिए युद्ध-भूमि की दृश्यावली सामने आती। अगला राजमहल का दृश्य दिखाने के लिए फिर से पहले पर्दे को सामने गिराया जाता था। ये पर्दे इस तरह व्यवस्थित किए जाते थे कि इन्हें आजकल बरामदों में लगने वाली चिक की भाँति लपेटते हुए ऊपर उठाया जा सकता था और उसी तरह खोल कर नीचे गिराया जा सकता था। "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के तीन दृश्यों में भी इसी तरह के तीन पर्दों की व्यवस्था लेखक के ध्यान में रही है। पहला पर्दा वन-प्रदेश का होगा, दूसरा दुर्ग के भीतर के दालान का और तीसरा प्रकोष्ठ का। इन तीनों को क्रमशः अंक-दृश्य बदलने पर उठाया जाएगा। दोबारा गिराने की जरूरत नहीं है, क्योंकि बार-बार दृश्य परिवर्तन नहीं है।

31.3.3 रंग-संभावनाओं की तलाश के बिन्दु

किसी नाट्य कृति के मंचन के लिए यह जरूरी नहीं कि निर्देशक हू-ब-हू वैसी ही दृश्यावली प्रस्तुत करे जैसी नाटककार ने सुझाई है। कारण, नाट्यकृति की रंगमंचीय संभावना केवल उसकी दृश्य परिकल्पना और मंच-सज्जा तक ही सीमित नहीं होती। ये तो उसे मंचित करने के कुछ उपादान मात्र हैं जिन्हें निर्देशक अपनी रुचि, साधनों तथा सृजनात्मक परिकल्पना के आधार पर निर्मित करता है। समय के साथ-साथ प्रदर्शन विधियाँ बदलती रहती हैं और नाट्य निर्देशक नए-नए प्रयोग करते रहते हैं। वे तलाश करते रहते हैं कि किस तरह की रंग-सज्जा की जाए कि नाटक अधिक से अधिक सार्थक रूप में जीवंत हो और प्रस्तुति ज्यादा से ज्यादा प्रभावी बन सके। प्रयोग की यह मनोवृत्ति ही निर्देशक को प्रेरित करती है कि किसी नाट्यकृति को विभिन्न नाट्य शैलियों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास करे। कभी वह परंपरागत नाट्य शैली की ओर प्रेरित होता है तो कभी लोक नाट्य शैली की ओर। कहने का तात्पर्य यह है कि अभिनेयता की संभावनाएँ कृति में ही मौजूद होती हैं। निर्देशक और रंगकर्मी उन संभावनाओं को अपनी क्षमताओं और श्रम के बल पर जीवंत और प्रभावपूर्ण बनाते हैं। इसलिए अभिनेयता की जाँच करते समय केवल रंग संकेतों आदि की जांच करने की बजाए कृति को समग्रता में जांचा-परखा जाना चाहिए। यानी यह देखा जाना चाहिए कि उसका कार्य-व्यापार अभिनेताओं द्वारा किस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रस्तुत होने पर वह दर्शक पर क्या प्रभाव डाल सकता है। उसके पात्रों का चरित्र किस रूप में उभर कर सामने आता है, उनके माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है। जो कुछ लेखक कहना चाहता है उसे कहने में वह कहाँ तक सफल हुआ है यानी जिस भाषा और शिल्प के माध्यम से कहा गया है उसे अभिनेता किस तरह रूपायित कर सकते हैं। रूपायित होने पर वह दर्शकों को किस हद तक तथा किस रूप में संप्रेषणीय होती है। उस पूरी नाट्य कृति की प्रासंगिकता क्या है उसे दर्शक क्यों देखना चाहता है। इन सभी बिन्दुओं से नाटक की अभिनेयता की जाँच-परख करके ही हम उसकी रंग-संभावनाओं का विश्लेषण-मूल्यांकन कर सकते हैं।

31.3.4 "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में रंग-संभावनाओं की खोज

"ध्रुवस्वामिनी" के कथानक पर रंगमंचीय दृष्टि से विचार करने पर हम पाएँगे कि यहाँ कार्य-व्यापार की सघनता और क्षिप्रता है। प्रधान कथा के अलावा प्रासंगिक कथा केवल एक है—शकराज और कोमा की कथा। किन्तु शकराज को खलनायक के रूप में रखने के कारण यह प्रसंग भी मूल कथा का अनिवार्य अंग बनकर सामने आया है। कोमा के माध्यम से शकराज के चरित्र के कई पक्षों का उद्घाटन हो सका है। ध्रुवस्वामिनी की अंतर्व्यथा से शुरू होती हुई कथा तेजी से आगे बढ़ती है। धीरे-धीरे महादेवी का आत्म-संघर्ष बाह्य-संघर्ष का रूप ले लेता है और वह आत्म-सम्मान की रक्षा के प्रश्न से जूझती दिखाई देती है छल-कपट प्रवंचना और राजनीतिक छल-छंद के गहराते हुए वातावरण में चन्द्रगुप्त आकर कथा को आकस्मिक मोड़ प्रदान करता है। इससे हमारी जिज्ञासा को एक नयी कुतूहलपूर्ण दिशा मिलती है। रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त जैसे दो विपरीत चरित्रों के माध्यम से आगे बढ़ते हुए द्वंद्व के समाधान का मार्ग दिखाई देता है। दूसरे अंक में कोमा और शकराज का प्रसंग थोड़ी देर के लिए कथा में ठहराव सा लाता दिखाई देता है। परंतु इसके माध्यम से परिवेश की सृष्टि करके लेखक विभिन्न विरोधी स्थितियों को सफल बनाने में समर्थ होता है। शकराज की स्वार्थपरता और धूर्तता के समक्ष कोमा की अनुभूतिमय त्यागमयी प्रेम की व्यापकता और उदात्तता फिर एक विरोधी स्थिति को प्रस्तुत करती है। कोमा का कठोर आत्मपीड़न का निर्णय कार्य-व्यापार में पुनः एक नया मोड़ लाता है और घटनाएँ तेजी से आगे बढ़ती हुई ध्रुवस्वामिनी के आगमन तथा शकराज की मृत्यु पर जाकर समाप्त होती हैं। तीसरा अंक पहले अंक में उठी समस्या का व्यापक समाधान प्रस्तुत करता है। रामगुप्त द्वारा उपेक्षित, परित्यक्त और प्रताड़ित ध्रुवस्वामिनी शकराज की प्रवंचना के जाल से तो मुक्त हो गई है किन्तु आगे उसके जीवन का मार्ग क्या है? पति द्वारा परित्याग के बाद अब पति का उस पर क्या अधिकार है? यदि कोई अधिकार है तो क्यों है? यदि नहीं है तो उस स्त्री की वास्तविक स्थिति क्या है, आदि-आदि अनेक प्रश्नों को उठाते हुए उनका समाधान खोजते समय वाद-विवाद और तर्क के बीच कार्य-व्यापार की सक्रियता धीमी नहीं पड़ी है। रामगुप्त के आगमन, निरीह शकों की हत्या, सामंत कुमारों द्वारा रामगुप्त का विरोध, चन्द्रगुप्त तथा सामंत कुमारों को बंदी बनाया जाना, ध्रुवस्वामिनी पर अब भी अधिकार जताने का प्रयास, चन्द्रगुप्त द्वारा विरोध और विद्रोह आदि घटनाएँ एक के बाद

चित्र 13 : "ध्रुवस्वामिनी" –आत्महत्या का प्रयत्न करती हुई ध्रुवस्वामिनी

चित्र 14 : "ध्रुवस्वामिनी"—कोमा और शकराज

एक करके तेजी से आगे आती हैं। अंत में ध्रुवस्वामिनी की राक्षस विवाह से मुक्ति का पुरोहित द्वारा दिया गया निर्णय और रामगुप्त के राज सिंहासन से हटाने का राज परिषद् का निर्णय नाट्य व्यापार को निश्चित दिशा प्रदान करता है।

यह संपूर्ण घटना व्यापार दृश्य रूप में प्रस्तुत होने की व्यापक संभावनाएँ रखता है। आरंभ से लेकर अंत तक व्याप्त संघर्ष, सक्रियता और सघनता के साथ जिज्ञासा अथवा कुतूहल की सृष्टि करने के अलावा दर्शक की चेतना को निरंतर बाँधे रहने की क्षमता इसमें मौजूद है। आगे क्या होने वाला है इसकी जिज्ञासा उसे निरंतर बनी रहती है। स्थान, काल और कार्य संबंधी बिखराव कथानक में नहीं है। हर एक दृश्य की घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित होती हैं। समय विस्तार बहुत ही सीमित है। कार्य-व्यापार निरंतरता से आगे बढ़ता हुआ चरम परिस्थिति पर पहुँचता है। कार्य की एकता और सघनता समग्र प्रभाव की एकता उत्पन्न करती है जो किसी भी नाट्य प्रस्तुति में अनिवार्य रूप से अपेक्षित होती है।

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक के पात्र-विधान पर अभिनेयता की दृष्टि से विचार करने पर हमें व्यापक संभावनाएँ दिखाई पड़ती हैं। पात्रों के चरित्र का विकास यहाँ सीधा सपाट नहीं है। यह बात हम चरित्र-चित्रण संबंधी इकाई में कर चुके हैं। उनके चरित्र की रेखाएँ वक्र हैं। उनका अंतर्द्वंद्व तथा विविध परिस्थितिओं के घात-प्रतिघात से उनके व्यक्तित्व में आने वाला उतार-चढ़ाव न केवल उन्हें मानवीय व्यक्तित्व प्रदान करता है बल्कि कथा विकास में आद्योपांत कुतूहल बनाए रखता है। उनके चरित्र के विविध पहलू हमारे सामने उभर कर आते हैं जिससे हर पात्र का एक निजी व्यक्तित्व बनता है। यह निजी व्यक्तित्व चाहे वह प्रशंसनीय हो अथवा निंदनीय, ग्राह्य हो अथवा अग्राह्य, अपनी एक खास ढंग की छाप दर्शक पर छोड़ता है और हम जीवन के विविध चित्र अपने सामने उपस्थित पाते हैं। यद्यपि ध्रुवस्वामिनी जैसे पात्र का अभिनय करने के लिए किसी भी अभिनेत्री के लिए पर्याप्त श्रम और लगन की जरूरत पड़ेगी किन्तु उसके चरित्र को आत्मसात करके उसकी मनःस्थितियों तथा संघर्षों की गहराई की अनुभूति करते हुए यदि ध्रुवस्वामिनी का अभिनय किया जाता है तो यह अपने आप में सार्थक कलानुभव सिद्ध हो सकता है। कोमा, शकराज, रामगुप्त आदि पात्रों के अभिनय भी अभिनेताओं से पर्याप्त लगन की अपेक्षा रखते हैं। दो खल पात्र हैं किन्तु दोनों के चरित्रों की रेखाएँ अपने आप में विशिष्ट हैं। उनकी इन विशिष्टताओं को अपने-अपने ढंग से उभार पाना ही अभिनेताओं की सफलता होगी। इसी तरह प्रेम के लिए जीने-मरने वाली कोमा के चरित्र में उदात्त जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा और आत्म-गौरव की सृष्टि अभिनय के धरातल पर स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आ जाती है।

नाटक के अन्य पात्रों का अभिनय भी यदि इसी तरह निष्ठा और श्रम के साथ किया जाए तो इन पात्रों को बड़े ही जीवंत रूप में सामने रखा जा सकता है।

भाषा और संवादों को लेकर 'प्रसाद' के नाटकों पर आरंभ से ही प्रश्न चिह्न लगाया जाता रहा है। यह माना जाता रहा है कि उनकी भाषा कठिन है और संवाद भाव तथा विचार बोझिल। इससे उन्हें मंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत करना असंभव है। आलोचकों का कहना है कि 'प्रसाद' के भीतर का कवि और दार्शनिक उनके नाटककार व्यक्तित्व में प्रवेश कर जाता है और वे गद्य में काव्यात्मकता की सृष्टि करते हैं। किन्तु जिस तरह कथानक, पात्र आदि की दृष्टि से "ध्रुवस्वामिनी" 'प्रसाद' का नया प्रयोग है उसी तरह भाषा की दृष्टि से भी यह उनका नया प्रयोग है। अन्य नाटकों जैसे गद्यगीत या लम्बे दार्शनिक संवाद यहाँ नहीं हैं। बौद्धिकता को प्रधान आधार के रूप में अपनाने के कारण "ध्रुवस्वामिनी" की भाषा में तर्क और व्यंग्य-वक्रोक्ति का पैनापन है। पात्र भावना या दर्शन की गहनता में खोते नहीं हैं। विवाह-विच्छेद के महत्वपूर्ण प्रश्न को शास्त्रों के प्रमाणों के आधार पर सुलझाते समय भी मंदाकिनी और पुरोहित के छोटे-छोटे संवादों द्वारा तर्क-वितर्क का सहारा लिया गया है। प्रथम तथा द्वितीय अंक के आरंभ में क्रमशः ध्रुवस्वामिनी और कोमा के स्वगत कथन लम्बे हैं। किन्तु परिवेश की सृष्टि तथा इन पात्रों की मनःस्थिति को उभारने में उनकी व्यापक भूमिका है। कार्य-व्यापार को तेजी से आगे बढ़ाने वाले संवादों के बीच ये स्वगत कथन रुकावट नहीं उत्पन्न करते। भाषा कहीं भी विचार बोझिल नहीं हुई है। स्थिति की जटिलता और तनाव भाषा के भीतर से सहज ही फूट पड़ते हैं। संस्कृतनिष्ठ शब्दों की प्रधानता परिवेश की सृष्टि में योगदान देती है। संप्रेषणीय भाषा में प्रस्तुत बौद्धिक प्रखरता दर्शक के दिल-दिमाग में तेजी से झनझनाहट पैदा करके उसे जीवन और समाज के ज्वलंत प्रश्नों पर सोचने को विवश करती है। "ध्रुवस्वामिनी" के संवाद अभिनेताओं के लिए समस्या नहीं वरन् एक प्रकार की चुनौती हैं जिसे प्रतिभावान अभिनेता झेलना चाहता है और उसे झेलकर अपनी अभिनय कला को सफल और सार्थक बनाना चाहता है। संवादों के अनुकूल मनःस्थिति के संबंध में लेखक द्वारा दिए गए रंग-संकेत अभिनेताओं के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होंगे।

तीखे संवेगपूर्ण संवाद अभिनेताओं के भावों के उतार-चढ़ाव को प्रस्तुत करने की क्षमता की कसौटी बन सकते हैं। जहाँ तीखेपन और आवेश की यह स्थिति नाटक को रंगमंच के ज्यादा से ज्यादा अनुकूल बनाती है वहीं व्यंग्यात्मकता और वक्रोक्ति उसे अधिक से अधिक प्रभावपूर्णता प्रदान करती है।

अभिनय की दृष्टि से 'प्रसाद' के नाटकों पर बोझ माने जाने वाले गीत भी इस नाटक में अधिक नहीं हैं। कुल मिलाकर चार गीत हैं। दो मंदाकिनी के, एक कोमा का और एक नर्तकियों का। गीत परिवेश और मनःस्थिति को प्रकाशित करने और प्रभावपूर्ण बनाने का अतिरिक्त माध्यम होते हैं। आधुनिक युग के निर्देशक तो गीतों को नाट्य प्रस्तुति की बाधा न मानकर उनका सार्थक प्रयोग करना अधिक पसंद करते हैं। 'प्रसाद' के नाटकों के ही कई प्रदर्शनों से यह बात सिद्ध भी हुई है। प्रसिद्ध रंग-निर्देशक बा.वा. कारंत ने जब भारत भवन, भोपाल के रंगमंडल द्वारा "स्कंदगुप्त" तथा "विशाख" की प्रस्तुतियां कराई तो इन नाटकों के गीतों के अलावा अन्य नाटकों तथा काव्य संग्रहों के गीतों का भी समावेश किया। इसीतरह "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के गीतों का भी रंगमंच पर सार्थक उपयोग किया जा सकता है। "ध्रुवस्वामिनी" के प्रतिपाद्य की रंगमंचीयता पर विचार करते समय प्रश्न उठता है कि प्रतिपाद्य कितना प्रासंगिक है और क्यों प्रासंगिक है। सामाजिक

व्यवस्था के भीतर से उठने वाले कुछ बुनियादी सवालों को उठाते हुए उनके तर्कसंगत, विधि-सम्मत और शास्त्र-सम्मत समाधान प्रस्तुत करने के कारण "ध्रुवस्वामिनी" का कथ्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना इतिहास के उस युग में तथा जितना प्रसाद के युग में था। अनाचारी, अन्यायी पति से स्त्री की मुक्ति और अयोग्य अनुत्तरदायी शासक से जनता की मुक्ति दो ऐसे मुद्दे हैं जो रूढ़िवादी, सामंतवादी अपरिवर्तनशील मूल्यों का खंडन करते हुए प्रगतिशील मानवतावादी मूल्यों की स्थापना करते हैं। यही इस नाटक की सामाजिक अपील है जो इसकी रंगमंचीय सार्थकता सिद्ध करती है।

ध्रुवस्वामिनी की प्रस्तुति

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में रंगमंचीयता की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। प्रतिभावान निर्देशक और कुशल रंगकर्मियों के लगन और श्रम की सहायता से इस नाटक को सफलतापूर्वक मंचित किया जा सकता है। विभिन्न परिस्थितियों, स्वभावों, रुचियों और क्षमताओं वाले निर्देशकों तथा अभिनेताओं द्वारा समय-समय पर इसका अभिनय किया भी जाता रहा है और हर प्रस्तुति अपने आप में एक नवीन अनुभव रही है। इसकी कुछ उल्लेखनीय प्रस्तुतियाँ हैं :

"भारतेन्दु नाटक मंडली" द्वारा प्रस्तुति :

"ध्रुवस्वामिनी" के प्रकाशन से पूर्व पाडुलिपि के आधार पर इसका अभिनय काशी की भारतेन्दु नाटक मंडली ने किया। इसका निर्देशन बाबू बालकृष्ण दास (बल्ली बाबू) ने किया।

"फाइन आर्ट्स थियेटर" द्वारा सन् 1962 में प्रस्तुति
के.वी. चंद्रा द्वारा सन् 1976 में प्रस्तुति तथा
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली के तत्वाधान में देवेन्द्र कुमार द्वारा प्रस्तुति

बोध प्रश्न 3

नोट : लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

i) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में अभिनेयता की दृष्टि से 'प्रसाद' ने क्या नई चीज शामिल की है जो इससे पहले के अपने नाटकों में शामिल नहीं थी?

....
....
....
....
....

ii) "ध्रुवस्वामिनी" की दृश्य-परिकल्पना पर किसका प्रभाव है?

....
....
....
....
....

iii) क्या निर्देशक नाटककार द्वारा सुझाई गई दृश्य-परिकल्पना को शत-प्रतिशत मानने के लिए बाध्य है?

....
....
....
....
....

बोध प्रश्न 4

क) सही (√) या गलत (×) का निशान लगा कर उत्तर दीजिए।

i) "ध्रुवस्वामिनी" का कार्य-व्यापार बड़ी धीमी गति से चलता है
ii) लेखक ने इसमें अत्यधिक गीत रखे हैं।
iii) रामगुप्त और शकराज दो अलग अलग तरह के खल पात्र हैं।

iv) ध्रुवस्वामिनी की भाषा विचार बोझिल है।
v) इसकी भाषा में तार्किकता और बौद्धिकता है।

ख) अधिक से अधिक चार-पांच शब्दों में बताइए।
i) "ध्रुवस्वामिनी" में कितने अंक और कितने दृश्य हैं?

....

ii) इसमें कुल कितने गीत हैं?

....

iii) क्या "ध्रुवस्वामिनी" नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा चुका है?

....

iv) इस नाटक में प्रसाद ने प्रमुख रूप से किस चीज का विरोध किया है?

....

v) लेखक यहाँ कौन से मूल्यों को प्रतिपादित करना चाहता है?

....

बोध प्रश्न 5

i) "ध्रुवस्वामिनी" के संवाद रंगमंच की दृष्टि से क्यों उपयुक्त हैं?

....
....
....
....
....

ii) इसकी कथावस्तु में कौन-सी रंगमंचीय विशिष्टताएँ हैं?

....
....
....
....
....

31.4 सारांश

इस इकाई में आपने "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के प्रतिपाद्य तथा उसकी अभिनेयता का विवेचन किया। आपने पढ़ा कि लेखक ने किस तरह ऐतिहासिक विषय वस्तु को आधुनिक जीवन संदर्भों में अर्थवत्ता प्रदान की है। आधुनिक युग के कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाते हुए उनके तर्क सम्मत समाधान प्रस्तुत किए हैं। नारी-पुरुष की समानता, नारी के अधिकारों की रक्षा, उसके आत्मसम्मान की रक्षा आदि की माँग को नाटक का प्रबल स्वर बनाते हुए लेखक ने सामंतवादी निरंकुशतंत्र का विरोध किया है। यह सिद्ध किया है कि अयोग्य और भ्रष्ट शासक बने रहने का अधिकार नहीं है।

अभिनेयता की दृष्टि से "ध्रुवस्वामिनी" का विश्लेषण करते समय आपने पढ़ा कि किस तरह यह 'प्रसाद' का एक नया नाट्य प्रयोग है। इसकी रंग-परिकल्पना पर पारसी रंग दृष्टि का प्रभाव है। आपने यह भी पता लगाया कि किसी नाटक में रंगमंचीय संभावनाएँ किन-किन बिन्दुओं से तलाशी जानी चाहिए। फिर आपने "ध्रुवस्वामिनी" की कथावस्तु, पात्र-विधान, भाषा, प्रतिपाद्य आदि का रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में विवेचन-विश्लेषण किया।

31.5 शब्दावली

आत्मसात करना : अच्छी तरह समझ कर अपना लेना, ऐक्य स्थापित कर लेना।
रीतिवाद : पुराने नियमों और पद्धतियों की रूढ़ पद्धति जिसमें परिवर्तन का बहुत ही कम अवकाश हो।

आर्यावर्त : मध्य और उत्तर भारत
पद दलित : पैरों तले कुचला हुआ यानि अन्याय और अनाचार का शिकार, दबाया हुआ।
निष्पीड़न : दबाना।
भावाभिनय : भावों का अभिनय
पारसी रंगमंच : उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें-आठवें दशक से लेकर बीसवीं सदी के चौथे दशक तक पारसी नाटक कंपनियों द्वारा खेले जाने वाले नाटक। इन कंपनियों ने अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी में ही सर्वाधिक नाट्य लेखन और प्रस्तुतियाँ कीं। इसलिए इन्हें पारसी-हिन्दी रंगमंच भी कहा जाता है। हिन्दी के पास उस समय अपना कोई रंगमंच न होने के कारण ये हिन्दी प्रदेशों में बहुत लोकप्रिय रहे। इन्होंने हिन्दी रंगमंच को कुछ हद तक प्रभावित भी किया।
क्षिप्रता : शीघ्र गति, तेज गति।
आत्मपीड़न : अपने आप को कष्ट देना।
वक्र : आड़ी-तिरछी।
गद्यगीत : ऐसा गद्य जिसमें शिल्प और अनुभूति के स्तर पर काव्यात्मकता हो, काव्य के गुणों से युक्त गद्य रचना।
एकालाप : एक पात्र द्वारा बोला जाने वाला लम्बा संवाद जो अन्य पात्रों को थोड़ी देर के लिए बोलने से रोक देता है।
तर्क संगत : तर्क के आधार पर उचित।
विधि सम्मत : कानून या विधि के अनुसार सही।
शास्त्र सम्मत : धर्म शास्त्रों और विधि शास्त्रों के आधार पर सही।

31.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) "पराधीनता की एक परंपरा भी उनकी नस-नस में—उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गई है। उन्हें समझकर भी भूल करनी पड़ती है।"

"कुछ नहीं, मैं केवल यहीं कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है वह मुझ पर नहीं चल सकता।"

ii) "जाओ तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। उसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?

बोध प्रश्न 2

i) यह मंदाकिनी का कथन है। यह स्त्रियों के अधिकारों के प्रति जागरूकता का सूचक है। परंपरागत व्यवस्था के अनुसार विवाह के उपरांत पुरुष का अपनी स्त्री पर सहयोगपूर्ण अधिकार माना जाता था। किन्तु यदि सहयोग की स्थिति न हो, स्त्री किसी विपत्ति में हो और उसे पति की ओर से सहायता या संरक्षण न मिले तो धर्मशास्त्र या धर्म के नियामक उसके लिए किस मार्ग की व्यवस्था करेंगे। इस तरह यहाँ धर्मानुसार निर्धारित स्थितियों पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है।

ii) जब कोमा को पता चलता है कि शकराज ध्रुवस्वामिनी को अपने पास बुलाकर रामगुप्त का घमंड चूर करना चाहता है तो पहले तो समझाती है कि प्रतिशोध के लिए किसी स्त्री का सम्मान नष्ट करना उचित नहीं। दूसरी ओर वह स्वयं को भी अपमानित महसूस करती है कि उसके रहते हुए शकराज नयी रानी प्राप्त करना चाह रहा है। इस स्थिति के विरोध में वह शकराज को छोड़कर जाने का निर्णय लेती है क्योंकि वह पग-पग पर अपमानित होकर जीना नहीं चाहती।

iii) लेखक का मत मंदाकिनी के इस प्रश्न में निहित है "राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है तब भी उस राजा की रक्षा होनी चाहिए।" इस नाटक के माध्यम से उन्होंने कहा है कि अयोग्य और अन्यायी शासक को राज सिंहासन पर रहने का अधिकार नहीं। इसीलिए नाटक के अंत में परिषद् रामगुप्त को शासक के पद से हटाने का निर्णय देती है।

iv) क) हाँ, ख) नहीं, ग) हाँ, घ) हाँ।

बोध प्रश्न 3

i) इस नाटक में प्रसाद ने रंगमंच की सज्जा के संबंध में निर्देश दिए हैं। संवादों के साथ-साथ पात्रों की मनःस्थिति संबंधी संकेत किए हैं जिससे अभिनेताओं को उन पात्रों का अभिनय करने में सुविधा रहेगी। इसके साथ ही आंगिक अभिनय के संकेत भी दिए हैं।

ii) "ध्रुवस्वामिनी" की दृश्य-परिकल्पना पर पारसी रंगमंच का प्रभाव है। इसलिए इसकी दृश्य परिकल्पना लिपटवाँ परदों वाली है। जिसमें विभिन्न स्थानों को चित्रित परदों के माध्यम से सूचित किया जाता था। युद्धभूमि, राजभवन, राजमार्ग, वन आदि के दृश्यों के अनुकूल परदा रंगमंच पर पृष्ठभूमि के रूप में मौजूद होता था।

iii) किसी नाट्य निर्देशक के लिए यह बंदिश नहीं कि वह नाटककार द्वारा सुझाई गई दृश्य-परिकल्पना को शत-प्रतिशत

स्वीकार करे। यदि ऐसा करेगा तो उसे अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का और नाट्य कृति में निहित रंग-संभावनाओं को तलाशने का अवसर ही नहीं मिलेगा। फिर समय के साथ-साथ प्रदर्शन विधियाँ भी बदलती हैं और निर्देशक नए-नए प्रयोग करना चाहते हैं।

बोध प्रश्न 4

क) (i) √ (ii) × (iii) √ (iv) × (v) √

ख) i) तीन अंक और तीन दृश्य
ii) चार गीत
iii) हाँ
iv) स्त्रियों के प्रति असमानता का।
v) प्रगतिशील मानवतावादी मूल्यों को।

बोध प्रश्न 5

i) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के संवाद रंगमंच के लिए उपयुक्त हैं क्योंकि ये संवाद बहुत लम्बें नहीं हैं। इनमें दार्शनिकता की विचार बोझिलता नहीं है। इनमें व्यंग्य-वक्रोक्ति और तर्क की प्रधानता तथा बौद्धिकता है।

ii) "ध्रुवस्वामिनी" की कथावस्तु सुगठित और इकहरी है। प्रासंगिक कथा मूल कथा का ही अंग है। कार्य-व्यापार बहुत तेजी से चलता है। शुरू से अंत तक जिज्ञासा और कूतूहल, दोनों बने रहते हैं। अंतर्द्वंद्व तथा बाहरी संघर्ष के कारण कथा में कहीं भी ठहराव नहीं आता इसलिए यह कथानक रंगमंचीय दृष्टि से उपयुक्त हैं।

इकाई 32 "ध्रुवस्वामिनी" : रचना दृष्टि की नवीनता और सार्थकता

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य
32.1 प्रस्तावना
32.2 परंपरा का अनुकरण और नया प्रयोग
33.3 समस्या नाटक के रूप में "ध्रुवस्वामिनी"
 32.3.1 समस्या नाटक क्या है?
 32.3.2 हिंदी में समस्या नाटक की शुरुआत
 32.3.3 'प्रसाद' जी का बदलता दृष्टिकोण
 32.3.4 "ध्रुवस्वामिनी" में समस्या नाटक की विशेषताएँ
 32.3.5 "ध्रुवस्वामिनी" समस्या नाटक से किस स्तर पर भिन्न है
32.4 नाटक का शीर्षक
32.5 मूल्यांकन
32.6 सारांश
32.7 शब्दावली
32.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

32.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि :

- "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में किस तरह परंपरा का अनुकरण करते हुए नया प्रयोग किया गया है;
- समस्या नाटक क्या है तथा "ध्रुवस्वामिनी" को समस्या नाटक माना जा सकता है अथवा नहीं;
- "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का शीर्षक उपयुक्त है अथवा नहीं तथा "ध्रुवस्वामिनी" किस दृष्टि से महत्वपूर्ण है?
- क्या "ध्रुवस्वामिनी" 'प्रसाद' का महत्वपूर्ण नाटक है?
- हिंदी नाट्य परंपरा और 'प्रसाद' के नाटकों में इसका क्या स्थान है?

32.1 प्रस्तावना

नाटक के विविध तत्वों के आधार पर "ध्रुवस्वामिनी" का विश्लेषण पिछली इकाइयों में आप कर चुके हैं। इसकी कथावस्तु, पात्रों, संरचना शिल्प, परिवेश आदि पर विस्तार से विचार करने के बाद अब हमें यह देखना है कि समग्रता में यह नाटक क्या बन सका है यानी इस कृति के माध्यम से लेखक ने जो कुछ कहा है उसका स्वरूप कैसा है? क्या इस नाटक का हिंदी नाटक की विकास यात्रा में कोई महत्वपूर्ण योगदान है? यदि "हाँ" तो वह कथा के स्तर पर है या शिल्प के स्तर पर या दोनों के स्तर पर? इसके साथ ही हम यह भी देखने का प्रयास करेंगे कि भारतीय नाट्य परंपरा और पश्चिमी नाट्य-परंपरा के संदर्भ में तथा 'प्रसाद' की अपनी नाट्य दृष्टि के संदर्भ में यह नाटक कहाँ ठहरता है। नाटक के एक विशिष्ट रूप "समस्या नाटक" की दृष्टि से भी "ध्रुवस्वामिनी" पर विचार किया जाएगा। साथ ही इसके शीर्षक की उपयुक्तता की जाँच की जाएगी।

32.2 परंपरा का अनुकरण और नया प्रयोग

हम चर्चा कर चुके हैं कि 'प्रसाद' स्वच्छंदतावादी दृष्टि के नाटककार थे। उनके लिए परंपरा एक अर्जित सांस्कृतिक ऐतिहासिक बोध के रूप थी और वे परंपरा का पालन वहीं तक उचित समझते थे जहाँ तक वह आधुनिक जीवन मूल्यों और स्थितियों के अनुकूल हो। विचार करने पर हम पाते हैं कि यह दृष्टि हमें "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में कई स्तरों पर दिखाई देती है।

एक ओर तो 'प्रसाद' भारतीय नाट्य पद्धति के अनुसार [illegible] के पात्रों का चयन करते हैं। प्रधान पात्रों—ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रगुप्त में क्रमशः धीरोदात्त नायक-नायिका के श्रेष्ठ गुणों का समावेश करते हैं, चन्द्रगुप्त को कर्तव्यपरायण, लोक [illegible]कारी, श्रेष्ठ गुणसंपन्न व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। दूसरी ओर वे अपने पात्रों को मानवीय मनोविज्ञान के यथार्थ ढांचे में चित्रित करते हैं। पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं के साथ-साथ उनकी मानसिक हलचल की सृष्टि करते हैं। सदपात्रों में यह अंतर्द्वंद्व कहीं तो परंपरागत नैतिक मूल्यों और भावना के बीच है तो कहीं भावना और अहं के बीच। ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रगुप्त, कोमा तीनों में इसे देखा जा सकता है। शिखरस्वामी में धूर्तता और राजनीतिक कुचक्रों के बावजूद सद-असद

का विवेक दिखाई देता है। इस तरह प्रसाद जीवन-यथार्थ की सृष्टि करने के लिए द्वंद्वमूलक व्यक्ति-वैचित्र्य की महत्व प्रतिष्ठा करते हैं। उनके अंतर्द्वंद्व और बहिर्द्वंद्व के माध्यम से कार्य व्यापार को सहज बनाते हैं।

तर्क और यथार्थ को वे दृष्टि से ओझल नहीं होने देते। पूरी नाट्य कृति में परंपरा की जीवंत स्वीकृति और प्रयोग की प्रगतिशीलता एक-दूसरे से ऐसी रिल-मिल गई है कि परस्पर सहयोग के रूप में निरंतर दिखाई देती है।

यहाँ विसंगतियों और विडंबनाओं के चित्र हमारी मानसिकता को झकझोरते हैं किन्तु हमें निराशापूर्ण दिशाहीनता के बंजर में नहीं पहुंचाते। एक सुसंगत परिवर्तन की ओर प्रेरित करते हैं। नाटक का समग्र प्रभाव नैराश्य का न होकर शक्ति, प्रेरणा और संतोष का है। यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ यहाँ लोक मंगलपरक मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा से आस्थावादी जीवन दृष्टि की स्थापना की गई है। यही कारण है कि जहां हिंदी में समस्या नाटकों (जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे) के प्रतिष्ठापक लक्ष्मीनारायण मिश्र के नारी पात्र वैवाहिक मर्यादा की परंपरागत कैद से किसी भी हालत में मुक्त नहीं हो पाते, अपनी बौद्धिक विवशताओं में बंद उनके भीतर ही छटपटाते हैं, वहीं 'प्रसाद' की ध्रुवस्वामिनी राक्षस-विवाह से मुक्ति का मार्ग पा लेती है। चन्द्रगुप्त में उदात्त मानव के सभी गुणों की प्रतिष्ठा करने के बावजूद उन्होंने नाटक का केंद्रीय पात्र ध्रुवस्वामिनी को बनाया है। उसके अपने जीवन की समस्याएँ इतनी प्रबल हैं कि उसके व्यक्तित्व के भीतर लोकमंगलकारी व्यक्तित्व को उभरने का अवसर नहीं देतीं। इस कार्य के लिए उन्होंने एक अन्य पात्र मंदाकिनी की सृष्टि की है।

कथावस्तु के विकास में भी हम प्राचीन और नवीन के इस समन्वय को देख सकते हैं। आरंभ से ही तनाव, संघर्ष और सक्रियता का वातावरण निर्मित किया गया है, जो पश्चिमी नाटक की विशेषता रही है। किन्तु इस नाटक का अंत पश्चिमी ढंग की निर्गति (denouement) में नहीं होता। एक के बाद एक समस्याओं के समाधान के बाद अंत में (फल प्राप्ति में) प्राचीन भारतीय परंपरा का पालन दिखाई देता है।

कभी लेखक रंगमंच पर युद्ध, वध आदि के प्रसंग दिखा कर नाट्य-वर्जनाओं से छूट लेता दिखाई देता है तो कभी आधुनिक समाज की समस्याओं को क्रांतिकारी ढंग से प्रस्तुत करने और उसके हल खोजने में पारंपरिक प्रमाणों की सहायता लेता है। यह इसीलिए संभव हो सका है कि लेखक ने किसी भी परंपरा या प्रविधि से पूरी तरह बंधने की प्रवृत्ति नहीं अपनाई है। यदि 'प्रसाद' पश्चिमी समस्या नाटक को पूरी तरह अपनाते तो मिश्र जी की भाँति वे भी अपने पात्रों के लिए कोई रास्ता न खोज पाते। किन्तु उनका प्रयोगशील मन हर परिपाटी और प्रभाव को अपनी शर्तों पर स्वीकार करता है, उसका अंधानुकरण नहीं करता। इसी प्रवृत्ति के कारण 'प्रसाद' के नाटकों में भारतीय रस-दृष्टि और पश्चिम की व्यक्ति-वैचित्र्य की प्रवृत्ति दोनों का सामंजस्य मिलता है। व्यक्तित्व की निजी विशेषताओं से निर्मित उनके पात्र प्राचीन भारतीय नाटक को धीरोदात्त, धीर ललित, धीरोद्धत और धीरप्रशांत नायकों की परिकल्पना से भी एकदम भिन्न नहीं है। वहाँ व्यक्ति और समाज के द्वंद्व का नग्न और कुरूप चित्र नहीं है। समाज की रूढ़ और गलित मान्यताओं को समाप्त करने के लिए द्वंद्व है जिसकी परिणति लोक-कल्याण और राष्ट्रोद्धार में हुई है।

बोध प्रश्न 1

सही (✓) या गलत (×) का निशान लगा कर उत्तर दीजिए।

क) 'प्रसाद' जी

i) प्राचीन नाट्य-पद्धति का पूर्णतया पालन करते हैं।
ii) अपने पात्रों को मानवीय मनोविज्ञान के अनुरूप चित्रित करते हैं।
iii) उनमें अंतर्द्वंद्व की सृष्टि करते हैं।
iv) तर्क और यथार्थ का आधार ग्रहण नहीं करते।

ख) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में

i) परंपरा का प्रयोग एक दूसरे में रिल-मिल गए हैं।
ii) नैराश्यजनक प्रभाव की सृष्टि की गई है।
iii) लोकमंगल परक मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है।
iv) नाट्य वर्जनाओं का पूर्णतया पालन किया गया है।

ग) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की कथावस्तु में प्राचीन भारतीय परंपरा और पश्चिमी दृष्टि का समन्वय किस रूप में दिखाई देता है? लगभग पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....

32.3 समस्या नाटक के रूप में "ध्रुवस्वामिनी"

"ध्रुवस्वामिनी" के प्रतिपाद्य के विवेचन के दौरान हम चर्चा कर चुके हैं कि यह नाटक नारी की सामाजिक स्थिति, वैवाहिक स्थिति और उसके अधिकार की समस्याओं को लेकर चला है। साथ ही शासक के दायित्वों से संबंधित समस्याओं को भी यहाँ उठाया गया है। समस्या को केंद्र में रख कर चलने के कारण कुछ आलोचकों ने इसे "समस्या नाटक" माना। आपके मन में सहज ही प्रश्न उठा होगा कि "समस्या नाटक" से क्या तात्पर्य है।

32.3.1 समस्या नाटक क्या है?

समस्या नाटक (Problem play) एक खास तरह का नाटक है जिसका जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पश्चिम में एक नाट्यान्दोलन के रूप में हुआ। इस नाट्य-धारा के प्रमुख नाटककार थे इब्सन, बर्नार्ड शॉ और गाल्सवर्दी। समस्या नाटक के माध्यम से रंगमंच यथार्थवादी और बुद्धिवादी विचारभूमि से जुड़ा। समस्या नाटक यथार्थपरक दृष्टि का नाटक होता है, जिसमें जीवन के ज्वलंत प्रश्नों से जूझती किसी समस्या को अपने नग्न यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य होता है। जैसे इब्सन के नाटक "दि डॉल्स हाउस" में स्त्री की सामाजिक स्थिति की समस्या को उठाया गया है या गाल्सवर्दी के "जस्टिस" में आर्थिक विषमता की समस्या को। इस नाट्य विधा के अंतर्गत आने वाले नाटकों की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं :

i) समसामयिक जीवन से कथावस्तु का चयन
ii) रंगमंच की यथार्थवादी शैली को अपनाना
iii) समसामयिक सामाजिक जीवन के ज्वलंत प्रश्नों का बौद्धिक ईमानदारी से उदघाटन
iv) रूढ़ सामाजिक प्रथाओं में बंधे जीवन की विभीषिकाओं, प्रवंचनाओं और खोखलेपन की प्रस्तुत के माध्यम से व्यक्ति और समाज के बीच द्वंद्व को दिखाना
v) यथास्थितिवाद का विरोध
vi) बद्धमूल परंपरावादी धारणाओं पर व्यंग्य
vii) नये-पुराने विचारों का द्वंद्व
viii) प्राचीन ढर्रेदार रूढ़िबद्ध आदर्शों तथा आधुनिक बौद्धिक-वैज्ञानिक और दृष्टिकोण का द्वंद्व। रूढ़ि-विध्वंसक स्वर
ix) शिल्प के स्तर पर वास्तविकता की भ्रांति उत्पन्न करना
x) जीवन का यथातथ्य चित्रण
xi) अभिनय और क्रियाव्यापार में स्थूल अभिनय प्रदर्शन की बजाए सांकेतिक मुद्राओं की प्रधानता। मूक अभिनय और अर्द्धोक्तियों के रूप में व्यक्त वाचिक अभिनय
xii) यथार्थपरक संवाद योजना व्यंग्य वक्रोक्तिपूर्ण तर्क-वितर्क की प्रधानता, भावुकता का विरोध । स्वगत कथनों का बहिष्कार
xiii) सहज बोलचाल की भाषा
xiv) गीतों का प्रयोग न होना
xv) नैराश्य व्यंजक प्रभाव की सृष्टि
xvi) जीवन की यथार्थ समस्या को अपनी संपूर्ण विकृतियों, विडंबनाओं और असंगतियों के साथ प्रस्तुत कर दिया जाता है। उनका समाधान नहीं किया जाता। इस तरह दर्शक को समाधान खोजने को प्रेरित किया जाता है।
xvii) रंग-संकेतों की योजना
xviii) संकलन-त्रय का निर्वाह
xix) समस्या के प्रति 'लेखकीय वक्तव्य' की नाटक की भूमिका के रूप में प्रस्तुति।

32.3.2 हिंदी में समस्या नाटक की शुरूआत

हिंदी में समस्या नाटक को सशक्त रूप में लाने का श्रेय लक्ष्मीनारायण मिश्र के सन् 1931 में छपे नाटक "सन्यासी" तथा "राक्षस का मंदिर" को प्राप्त है। उसके बाद कुछ अन्य नाटककारों ने भी इस दिशा में प्रयोग किए। इस तरह कथ्य और शिल्प के स्तर पर हिंदी नाटक के क्षेत्र में एक नया आंदोलन शुरू हुआ। इस क्षेत्र में अन्य नाटककारों के कार्य के बावजूद वर्चस्व मिश्र जी का ही रहा। उन्होंने "सिंदूर की होली", 'मुक्ति का रहस्य' आदि अन्य समस्या नाटक भी लिखे। किन्तु बुद्धिवाद का नारा बुलंद करने के बावजूद मिश्र जी भावुकता से पीछा नहीं छुड़ा पाए।

32.3.3 'प्रसाद' जी का बदलता दृष्टिकोण

स्पष्ट है कि जिस समय "ध्रुवस्वामिनी" का प्रकाशन हुआ उस समय मिश्र जी के दो समस्या नाटक आ चुके थे और हिन्दी में यथार्थवादी रंगमंच तथा समस्या नाटकों का आंदोलन जोर पकड़ने लगा था। अपने समय की धड़कनों को सदैव उनकी पूरी गति के साथ साहित्य में उतारने वाले 'प्रसाद' इस परिवेश से प्रभावित हुए। इसके अलावा बहुत से आलोचक उनके

नाटकों को रंगमंचीय दृष्टि से दुःसाध्य ठहराते चले आ रहे थे। इस कारण भी उनके मन में रंगमंचीय दृष्टि से व्यावहारिक नाट्य रचना की इच्छा होना स्वाभाविक ही था। ध्यान रखने की बात यह है कि 'प्रसाद' ऐसे रचनाकार नहीं थे जो किसी भी नयी बात को केवल उसके नयेपन के कारण ही स्वीकार कर लें। वे उसकी उपयुक्तता और प्रासंगिकता को बराबर दृष्टि में रखते थे। इसीलिए नये को ग्रहण करते हुए भी पुराने का पूर्णतया बहिष्कार करना उनके स्वभाव का गुण न था। कहना न होगा कि उनकी इस दृष्टि का परिणाम है "ध्रुवस्वामिनी" नाटक।

32.3.4 "ध्रुवस्वामिनी" में समस्या नाटक की विशेषताएँ

इस नाटक में उन्होंने भारतीय समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या को उठाया है और उसे बौद्धिक यथार्थपरक रूप में प्रस्तुत किया है। जिस तरह पश्चिमी यथार्थवादी नाटक जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं को अपने नग्न रूप में प्रस्तुत करते हैं उस तरह "ध्रुवस्वामिनी" में भी स्त्री की दलित-शोषित स्थिति को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इतना ही नहीं "ध्रुवस्वामिनी" की स्थिति को व्यक्ति और समाज के द्वंद्व के रूप में रखा गया है। समाज और परिवार में उसका क्या स्थान है? इसी प्रश्न को लेकर नाटक चला है और इसके साथ ही जुड़ी हुई दूसरी समस्या उभरकर सामने आई है—शासक-शासित के संबंधों की।

परिस्थितियों को भावुक स्वीकृति न देकर उनके प्रति तर्कपूर्ण विरोध प्रस्तुत किया गया है और विवाह के नाम पर चली आती हुई दासता की मनोवृत्ति का खंडन किया गया है। इस तरह यहाँ बुद्धिवाद से प्रेरित वैचारिक तार्किकता का स्वर प्रधान है।

वास्तव में शिल्प के स्तर पर भी पिछले नाटकों की प्रवृत्ति को छोड़ते हुए नया प्रयोग हुआ है। इकहरा कथानक, कम संख्या में पात्र, रंग-संकेतों की स्पष्ट योजना, स्थान, समय और कार्य की एकता आदि के आधार पर लेखक यथार्थवादी नाटक की ओर प्रवृत्त होता-सा प्रतीत होता है। भाषा में बोलचाल की सहजता और संवादों में बौद्धिकता और तर्क की प्रधानता है। अभिनय के लिए सांकेतिक मुद्राओं के संकेत हैं। अधूरे वाक्यों का प्रयोग भी खूब है जो पात्र के भीतरी वैचारिक टकराव का अहसास कराते हैं। उदाहरण के लिए नीचे लिखे वाक्यों पर ध्यान दीजिए :

"देवि इस राजनीतिक चातुरी में जो सफलता ... 'स्त्री की लज्जा लूटने वाले' वस्तु के लिए मैं ...."

32.3.5 "ध्रुवस्वामिनी" समस्या नाटक से किस स्तर पर भिन्न है

उपर्युक्त विशेषताओं को देखते हुए कुछ आलोचकों ने, जिनमें डॉ. विश्वनाथ मिश्र प्रमुख हैं, "ध्रुवस्वामिनी" को समस्या नाटक मान लिया। किन्तु किसी प्रवृत्ति की कुछ विशेषताएँ मिलने मात्र से ही किसी रचना को उस प्रवृत्ति के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के कई ऐसे पक्ष हैं जिसके कारण यह समस्या नाटक की श्रेणी से भिन्न रचना सिद्ध होती है। आगे हम उनकी चर्चा करेंगे :

इसकी कथावस्तु समसामयिक जीवन से न लेकर इतिहास से ली गई है। अतः इसके पात्र रोजमर्रा की जिंदगी के पात्र न होकर राजन्य वर्ग के पात्र हैं।

लेखक यहाँ समस्याओं को न केवल प्रस्तुत करता है बल्कि उनका समाधान भी सुझाता है। इस तरह रूढ़िवाद के विरोध के बावजूद परंपरा का पूर्ण बहिष्कार नहीं है। समस्या का समाधान भी धर्म शास्त्रों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इस तरह यहाँ एक ओर तो समस्या का बौद्धिक विश्लेषण है, दूसरी ओर धर्मशास्त्र का तर्क और बुद्धि सम्मत प्रमाण प्रस्तुत करते हुए समस्या का समाधान है। राजा-प्रजा संबंधों का भी तर्क और न्यायसंगत समाधान प्रस्तुत किया गया है। इस तरह 'प्रसाद' ने समस्या को अपने ढंग में प्रस्तुत किया है। पश्चिमी समस्या नाटक के रूढ़ ढांचे में वे नहीं बंधे हैं।

समस्याओं का समुचित समाधान मिल जाने के कारण नाटक की समाप्ति पश्चिमी समस्या नाटक जैसी निराशापूर्ण और कष्टप्रद प्रभाव नहीं छोड़ती। इसके विपरीत समुचित फल प्राप्ति के अनुरूप संतोषप्रद और आनंददायक प्रभाव पड़ता है। जहाँ हमारा मन-मस्तिष्क जीवन के ज्वलंत प्रश्नों से जूझता है वहीं उनके समुचित समाधान द्वारा हमें एक सही रास्ता दिखाई देता है। यथार्थ और आदर्श को यहाँ लेखक एक दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत करता है। विरोधी रूप में नहीं।

बुद्धिवाद को प्रमुखता देते हुए भी यहाँ हृदय पक्ष को दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया गया। "ध्रुवस्वामिनी" में बुद्धि और हृदय के द्वंद्व के समावेश के अलावा लेखक ने कोमा जैसे पात्र की सृष्टि की है जिसका मूल स्वर हृदय पक्ष का ही है। कोमा जैसी नारी पात्र में जिस ढंग का जीवन-स्पंदन दिखाई देता है वह जीवन के प्रति एक विशेष अनुराग को अभिव्यक्त करता है। द्वंद्व, कर्तव्य और राष्ट्रभक्ति तीनों का सामंजस्य प्रसाद जी के चिन्तन का एक महत्वपूर्ण पक्ष ही बन कर सामने आता है।

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक का पूरा ढाँचा 'प्रसाद' जी के प्रयोगशील मन की एक रचनात्मक उपलब्धि है। वे पश्चिम के बने-बनाये ढाँचे नहीं लेते। शिल्प के स्तर पर भी स्वगत कथन और गीतों की योजना समस्या नाटकों के विपरीत ही है। यह सही है कि 'प्रसाद' के अन्य नाटकों की तुलना में यह प्रवृत्ति यहाँ कम है, किन्तु इसे उन्होंने स्वीकार तो किया ही है।

बोध प्रश्न 2

क) समस्या नाटकों की शुरूआत कब और कहाँ हुई? प्रमुख समस्या नाटककारों का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

ख) हिंदी में समस्या नाटक लेखन की शुरूआत किसने की? उनके दो नाटकों के नाम बताइए।

....

....

....

....

....

ग) समस्या नाटक की प्रमुख विशेषता लगभग सात पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

घ) 'प्रसाद' जी की नाट्य रचना दृष्टि में बदलाव क्यों और किस तरह आया?

....

....

....

....

....

ङ) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक को समस्या नाटक क्यों कहा गया? लगभग पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

च) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक समस्या नाट्य शैली में किस स्तर पर भिन्न है। पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

32.4 नाटक का शीर्षक

'प्रसाद' अपने नाटकों का नाम अक्सर उनके प्रमुख पात्र के नाम पर रखते हैं। "राज्य श्री", "अजातशत्रु", "कामना", "स्कंदगुप्त", "चन्द्रगुप्त", "ध्रुवस्वामिनी" आदि नाम इसके उदाहरण हैं। नाटक का केंद्रीय पात्र होने के साथ-साथ, कामना को छोड़ कर, सभी पात्र इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। नाटक का कार्य-व्यापार प्रमुख रूप से इनसे संबंधित है। इस दृष्टि से इस प्रकार का नामकरण पर्याप्त उपयुक्त प्रतीत होता है।

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक का केंद्रीय पात्र ध्रुवस्वामिनी है। चन्द्रगुप्त उसके सहायक के रूप में आया है और रामगुप्त विरोधी पात्र के रूप में। नाटक में प्रमुख संघर्ष ध्रुवस्वामिनी का ही है। भारतीय नारी की समस्या का प्रकटन ध्रुवस्वामिनी की समस्या के रूप में हुआ है और समस्या के समाधान का प्रभाव भी प्रमुख रूप से ध्रुवस्वामिनी पर ही पड़ा है। इस तरह मुख्य फल-प्राप्ति उसे ही हुई है—राक्षस विवाह से मुक्ति और महादेवी पद की सम्मानपूर्ण प्राप्ति दोनों की भोक्ता प्रमुख से ध्रुवस्वामिनी है। यद्यपि चन्द्रगुप्त को भी सम्राट का पद प्राप्त होता तथापि उसकी प्राप्ति के लिए वह नाटक में कहीं भी प्रयत्नशील नहीं दिखाई देता। पिता से मिला अधिकार वह स्वेच्छा से छोड़ चुका है और अपनी स्थिति से संतुष्ट भी है। ध्रुवस्वामिनी के प्रति उसका प्रेम भी परिस्थितियों की प्रेरणा से प्रकट होता है। उसकी रक्षा में भी वह कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर ही प्रवृत्त होता है। व्यक्तिगत राग-विराग के कारण नहीं। अंत में शकदुर्ग पर अपने आधिपत्य की घोषणा भी मंदाकिनी की प्रेरणा और परिस्थितियों के दवाब से करता है। उसे राजाधिराज पद परिषद् के निर्णय द्वारा प्रदान किया जाता है। स्वयं वह रामगुप्त को पदच्युत करने का कभी कोई प्रयत्न नहीं करता। इस तरह फल-प्राप्ति की प्रमुख भोक्ता ध्रुवस्वामिनी ही है। इस तरह फल-प्राप्ति की दृष्टि से यह नायिका-प्रधान नाटक है। नायिका-प्रधान नाटक होने के कारण भी इसका "ध्रुवस्वामिनी" नामकरण सर्वथा उपयुक्त है।

'प्रसाद' यदि चाहते तो समस्या पर आधारित नाम भी रख सकते थे, किंतु यह न तो 'प्रसाद' की प्रवृत्ति के अधिक अनुकूल होता और न ही समस्याओं का एक साथ प्रतिनिधित्व कर पाता। चूंकि सभी समस्याएँ ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से प्रस्तुत हुई हैं इसलिए भी यह नाम उपयुक्त प्रतीत होता है।

32.5 मूल्यांकन

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक समग्रता में देखने पर हम पाते हैं कि यह एक सफल नाट्य प्रयोग है। कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से इसमें एक ख़ास तरह की पूर्णता है। इसके कथानक में न तो "राज्य श्री" या "अजातशत्रु" के कथानक जैसा बिखराव है और न ही "चन्द्रगुप्त" के कथानक जैसा विस्तार। घटनाएँ, पात्र और परिस्थितयाँ एक दूसरे के पूरक बन कर आए हैं। व्यंग्य, वक्रोक्ति और व्यंजना को माध्यम बनाती हुई भाषा स्थितियों की जटिलता और संवेदना को गहनता के साथ प्रस्तुत करती है, आवेग और आवेश को बुद्धि और तर्क से नियंत्रित करती है। वहाँ भावना की तन्मयता को आत्म-विस्तार और आत्म-सम्मान के साथ जोड़ कर संश्लिष्ट रूप प्रदान किया गया है। वास्तव में इस नाटक में वस्तु-तत्व और रूप-तत्व में एक खास तरह का संतुलन स्थापित हुआ है जो 'प्रसाद' के अन्य अधिकांश नाटकों में इस कौशल से नहीं हो पाया। "चन्द्रगुप्त" और "स्कंदगुप्त" नाटकों में वस्तु-तत्व की वैचारिकता बड़ी प्रबल और अर्थवान होते हुए भी रूप-तत्व इस वैचारिकता से अलग प्रतीत होता है। उन नाटकों में रंग-प्रस्तुति करते समय निर्देशक को काफी संपादन-संशोधन की जरूरत पड़ती है, किन्तु "ध्रुवस्वामिनी" के साथ ऐसी समस्या नहीं उठती। इस में ऐसा लगता है कि वस्तु-तत्व अपना रूप अपने साथ लाया है, वैसे ही जैसे फूल अपना रंग अपने साथ लाता है। इसीलिए यहाँ कुछ भी आरोपित प्रतीत नहीं होता। कथ्य, संवेदना, शिल्प, रंगमंचीय आयाम आदि एक दूसरे से अभिन्न हैं।

इस नाटक की दिलचस्प बात यह भी है कि शिल्प अपने आप में कसावट लिए हुए है। यही कारण है कि **बिंब-बहुल, प्रतीक-प्रधान** काव्यात्मक गहनता से युक्त भाषा के बावजूद सहज द्वंद्व और संघर्ष की कमी नहीं है। दोनों के संयोग से एक तरह का कलात्मक औचित्य उत्पन्न हुआ है जो अपने आप में काफी संभावनापूर्ण है। कारण, नाट्य भाषा ने स्वाभाविक रूप में विचार को सम्प्रेषित करने की शक्ति प्राप्त कर ली है।

"ध्रुवस्वामिनी" की समग्र नाट्यानुभूति में तीव्र गति का सौंदर्य है। घटनाएँ तेजी से दौड़ती प्रतीत होती हैं। कार्य-व्यापार की यह क्षिप्रता नाटक की कसौटी मानी जाती है। इस गति के साथ ही यहाँ अनुभूति का खरापन मौजूद है। जीवन यथार्थ की पकड़ नाटक के समग्र कथ्य के प्रति विश्वसनीयता उत्पन्न करती है। समग्र स्थिति की संवेदना में अनुभूति की प्रामाणिकता है। इसलिए यह नाटक सभी तरह के भाववाद या आदर्श के अतिरेक से मुक्त होकर यथार्थ की भूमि पर खड़ा है। इस नाटक को पढ़कर या रंगमंच पर देखकर ऐसा अनुभव होता है कि नाटक प्रौढ़ होता हुआ छायावादी भावुकता को छोड़कर वैचारिकता की ओर बढ़ रहा था और गहरी सामाजिकता के लिए रास्ता निकाल रहा था। उसकी दृष्टि व्यक्तिवाद से हटकर लोक-मंगल की ओर विस्तार पा रही थी। यह बदलाव 'प्रसाद' के नाटकों में भी सार्थक सृजनात्मक और प्रामाणिकता के साथ दिखाई देता है। "ध्रुवस्वामिनी" में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। देवसेना या कल्याणी की तुलना में ध्रुवस्वामिनी के व्यक्तित्व में यह स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है।

आर्य संस्कृति के प्रति भी उस ढंग का आकर्षण इस नाटक में नहीं है जैसा पिछले नाटकों में मिलता रहा है। यहाँ आर्य संस्कृति का गुणगान ही उस तरह से नहीं है। 'प्रसाद' का पूरा चिंतन एक चुनौती के सामने मानो यहाँ खड़ा है और वे मौजूदा प्रश्नों से सीधे-सीधे टकरा रहे हैं। यह एहसास बराबर होता है कि यहाँ भावना, बौद्धिकता और यथार्थ की आँच में पक कर काफी खरी हो चुकी है। सांस्कृतिक-सामाजिक बोध यहाँ जीवन यथार्थ की समस्या के माध्यम से सृजनात्मक यथार्थ के रूप में प्रकट हुआ है।

यह नाटक 'प्रसाद' के कठोरतम आलोचकों तक को दोषदर्शन का बहुत अवसर नहीं देता। इसका कारण है इसके आंतरिक और बाह्य कला तत्व की कसावट। इसकी तथ्यगत और कथ्यगत संवेदना बाहर से आरोपित नहीं है। अनुभव की ठोस गहराई से यह पूरी नाट्यकृति निर्मित हुई है। साथ ही इसका सृजन तत्व भी कम चौंकाने वाला नहीं।

आधुनिकता

"ध्रुवस्वामिनी" की आधुनिकता न केवल इतिहास के प्रसंगों को आधुनिक जीवन संदर्भों से जोड़ने में है, बल्कि समग्र कथ्य में निहित विचारों को लेकर भी है। स्त्री-पुरुष संबंधों के प्रति मध्ययुगीन दृष्टि को पूरी तरह से नकारने की प्रवृत्ति यहाँ मौजूद है। ध्रुवस्वामिनी अपने प्रति हो रहे अन्याय को चुपचाप सहन नहीं कर पाती, उसका खुल कर विरोध करती है। ठीक से देखा जाए तो कोमा भी अपने स्तर पर नाटक में इस तरह का ही विरोध जाहिर करती है। मंदाकिनी का तो संपूर्ण व्यक्तित्व ही इस विरोध को लेकर निर्मित हुआ है। वह तो दूसरों के प्रति हो रहे अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए ही जैसे जन्मी है।

'प्रसाद' के समकालीन इतिहास पर दृष्टि डालने पर हम देखते हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में सन् 1930 के बाद एक नया मोड़ आया। उस नये मोड़ में तमाम जागरण सुधार आंदोलन जोर पकड़ रहे थे। फलतः यह पूरा का पूरा युग ही सत्याग्रह युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में पूरे भारतीय चिंतन को जाँचने-परखने के लिए एक तरह की हलचल मौजूद थी। "ध्रुवस्वामिनी" में भी यह हलचल दिखाई देती है। नाटककार भारतीय धर्मशास्त्र और आचार शास्त्र को जाँचता-परखता दिखाई देता है।

नवजागरण की लहर के साथ जागृत होने वाली मुक्ति चेतना हर तरह की परतंत्रता के विरुद्ध संघर्षरत दिखाई दे रही थी उसी चेतना को ध्रुवस्वामिनी में देखा जा सकता है। देश भक्ति और राष्ट्रोद्धार की उमंग चन्द्रगुप्त में दिखाई देती है तो नारी स्वाधीनता की लगन ध्रुवस्वामिनी, मंदाकिनी और कोमा में। मंदाकिनी और ध्रुवस्वामिनी चिंतनशील है, हर स्थिति और घटना पर विचार करती है। वे विवाह को ईश्वर का बनाया अंतिम विधान नहीं मानतीं। उनके विचार से विवाह शास्त्रों के मंत्रों का ऐसा बंधन नहीं है कि मनुष्यता की गरिमा को पीछे छोड़ दे। इस नाटक के माध्यम से लेखक सिद्ध करना चाहता है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था में जो खामियाँ है उन्हें बदला जा सकता है। यदि स्त्रियाँ प्रबुद्ध हों, उनमें शिक्षा, ज्ञान और जाग्रति का विस्तार हो तो वे अपनी स्थिति को बदल सकती हैं। विवाह के साथ जुड़ा भाग्यवाद या नरकवाद बदला जाना चाहिए और बदला जा सकता है ध्रुवस्वामिनी और मंदाकिनी इसी सामाजिक बदलाव के लिए भूमि तैयार करती हैं।

बोध प्रश्न 3

क) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के शीर्षक की उपयुक्तता पर चार पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

ख) "हाँ" या "नहीं" में से एक को काट कर उत्तर दीजिए। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में

i) वस्तु तत्व और रूप तत्व में संतुलन स्थापित हुआ है — हां / नहीं

ii) कथ्यात्मक गहनता के कारण भाषा में शिथिलता है — हां / नहीं

iii) अनुभूति की प्रामाणिकता है — हां / नहीं

iv) बुद्धिवादी और यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाया गया है — हां / नहीं

ग) "ध्रुवस्वामिनी" में धर्मशास्त्र की जाँच-परख किस बात की सूचक है?

....

....

....

....

....

घ) वैवाहिक संबंधों के प्रति यहाँ कैसा दृष्टिकोण अपनाया गया है?

....

....

....

....

....

32.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि जयशंकर 'प्रसाद' अपने नाटकों मे किस तरह परंपरागत नाट्य को अपनाते हुए नए प्रयोग करते हैं। "ध्रुवस्वामिनी" में यह प्रयोग किस तरह किया गया है। आपने समस्या नाटक की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की तथा यह अध्ययन किया कि किन कारणों से कुछ आलोचकों ने "ध्रुवस्वामिनी" को समस्या नाटक माना। आपने यह भी पढ़ा कि ध्रुवस्वामिनी को समस्या नाटक मानने में और कौन-सी कठिनाइयाँ हैं। इसके अलावा आपने इस नाटक के शीर्षक की उपयुक्तता पर विचार किया। आपने यह भी पढ़ा कि समग्रता में "ध्रुवस्वामिनी" नाटक क्यों महत्वपूर्ण है तथा यहाँ लेखक की दृष्टि किस तरह आधुनिक है। आप यह जान गए हैं कि इस नाटक में वे कौन सी विशेषताएँ हैं जो किसी अन्य नाटक में नहीं है।

32.7 शब्दावली

अर्द्धोक्तियाँ : अधूरे वाक्य, अधूरे कथन।

बद्धमूल : जिसने जड़ पकड़ ली हो यानी जिसमें बदलाव की गुंजाइश न हो।

यथास्थितिवाद : परिवर्तन विरोधी दृष्टिकोण या विचारधारा।

सांकेतिक मुद्राएँ : किसी भाव विशेष की अभिव्यक्ति के संकेत के लिए निर्धारित शारीरिक मुद्राएँ।

मूक अभिनय : बिना कोई शब्द उच्चारण किए चुपचाप भावों का अभिनय।

32.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ×

ख) i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ×

ग) नाटक की कथावस्तु में आरंभ से अंत तक संघर्ष और तनाव विद्यमान रहता है, यह पश्चिमी नाटक की विशेषता है। किन्तु संघर्ष और तनाव की परिणति निगति में न होकर भारतीय ढंग से फलागम में होती है एक के बाद एक करके समस्याओं का समाधान होता जाता है।

बोध प्रश्न 2

क) समस्या नाटकों की शुरूआत 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पश्चिम में हुई। प्रमुख समस्या नाटककार हैं : इब्सन, बर्नार्ड शॉ और गाल्सवर्दी।

ख) हिन्दी में समस्या नाटक लेखन की शुरूआत लक्ष्मीनारायण मिश्र ने की। इनके दो प्रमुख समस्या नाटक हैं— "सिंदूर की होली" और "राक्षस का मंदिर"।

ग) समस्या नाटक यथार्थवाद और बुद्धिवाद पर आधारित होते हैं। इनमें कथ्य और शिल्प दोनों के स्तर पर यथार्थवादी रंगमंच की शैली अपनाई जाती है। इनका कथानक समसामयिक जीवन से चुना जाता है। समाज की ज्वलंत समस्याओं का ईमानदारी से उद्घाटन करने वाले इन नाटकों में व्यक्ति और समाज के बीच द्वंद्व दिखाया जाता है। ये रूढ़िवाद और यथास्थितिवाद का विरोध करते हैं। यथार्थपरक संवाद योजना और तर्क-वितर्क शैली अपनाई जाती है। भाषा सहज बोलचाल की होती है। गीतों का प्रयोग नहीं होता।

घ) "ध्रुवस्वामिनी" की रचना के दौरान हिन्दी में यथार्थवाद और समस्या नाटक लेखन की धूम थी। 'प्रसाद' के नाटकों की रंगमंचीयता पर काफी प्रश्न लगाए जा चुके थे। इन दोनों ही स्थितियों का प्रभाव उन पर पड़ा, किन्तु वे किसी नए प्रभाव को आँख मूद कर अपनाने के पक्ष में न थे। अतः उन्होंने बदलाव को अपनी शर्तों पर स्वीकार किया।

ङ) "ध्रुवस्वामिनी" में स्त्री के अधिकारों की समस्या तथा राजा-प्रजा संबंधों की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। समस्याओं को प्रस्तुत करने के यथार्थपरक और बौद्धिक तरीकों तथा भाषा में व्यंग्य-वक्रोक्ति और तर्क की प्रधानता है। शिल्प के स्तर पर भी इसमें 'प्रसाद' के पहले नाटकों जैसा विस्तार और बिखराव नहीं है। इसीलिए कुछ आलोचकों ने इसे समस्या नाटक कहा है।

च) "ध्रुवस्वामिनी" की कथावस्तु इतिहास से संबंधित है। समस्याओं को प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनका समाधान भी सुझाया गया है। समाधान परंपरा स्वीकृत है। गीतों का प्रयोग किया गया है। निराशाजनक प्रभाव नहीं है। यथार्थ और आदर्श का मेल है। स्वगत कथनों का प्रयोग है।

बोध प्रश्न 3

क) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का शीर्षक प्रधान पात्र के नाम पर है इस नाटक की सभी समस्याएँ प्रमुख रूप से ध्रुवस्वामिनी से संबंधित हैं। अंत में, फल प्राप्ति भी ध्रुवस्वामिनी को ही होती है। इस दृष्टि से यह शीर्षक उपयुक्त है।

ख) i) हाँ ii) नहीं iii) हाँ iv) हाँ

ग) "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में मंदाकिनी और ध्रुवस्वामिनी विवाह की धर्मसम्मत व्यवस्था पर प्रश्न-चिह्न लगाती हैं। पुरोहित धर्मशास्त्र को अंतिम फैसला न मानकर ध्रुवस्वामिनी के लिए राक्षस विवाह से मुक्ति का निर्णय लेता है। यह बात परंपरा में अंधभक्ति न रखकर उसे आधुनिक तार्किक दृष्टि से देखने की बुद्धिवादी दृष्टि की सूचक है।

घ) यहाँ वैवाहिक संबंधों के प्रति मध्ययुगीन दृष्टिकोण नहीं है जिनके अनुसार स्त्री-पुरुष के हर तरह के अन्याय को भाग्य समझ कर मानने को बाध्य हैं। यहाँ वैवाहिक संबंधों के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसके अनुसार स्त्री अपने प्रति हो रहे अन्याय का दृढ़ता से विरोध करती है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 डॉ. बच्चन सिंह, *"हिन्दी नाटक"*, लोकभारती प्रकाशन: इलाहाबाद।

2 डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, *"प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन"*, सरस्वती मंदिर, वाराणसी।

3 डॉ. गोविंद चातक, *"प्रसादः नाट्य और रंग-शिल्प"*, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली।

4 डॉ. रमेश चंद्र शाह *"जय शंकर प्रसाद"* साहित्य अकादमी, दिल्ली।

5 डॉ. सिद्धनाथ कुमार, *"प्रसाद के नाटक"*, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया, दिल्ली।

6 डॉ. रीतारानी पालीवाल, *'रंगमंच और जयशंकर "प्रसाद" के नाटक*, साहित्य निधि, दिल्ली।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

यू जी एच आई - 01
हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड

6

हिंदी निबंध

इकाई 33

हिंदी निबंध : स्वरूप और विकास 5

इकाई 34

बातचीत (बालकृष्ण भट्ट): वाचन एवं विश्लेषण 23

इकाई 35

मित्रता (रामचंद्र शुक्ल): वाचन 36

इकाई 36

मित्रता : विश्लेषण एवं मूल्यांकन 47

इकाई 37

नाखून क्यों बढ़ते हैं ? (हजारीप्रसाद द्विवेदी): वाचन 57

इकाई 38

नाखून क्यों बढ़ते हैं ? : विश्लेषण एवं मूल्यांकन 67

इकाई 39

एक था पेड़ और एक था ठूँठ! (कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'): वाचन एवं विश्लेषण 79

इकाई 40

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है (विद्यानिवास मिश्र): वाचन एवं विश्लेषण 91

खंड 6 का परिचय

यह हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम 1 (हिंदी गद्य) का छठा और अंतिम खंड है। इसमें आप हिंदी के पाँच प्रतिनिधि निबंधों का अध्ययन करेंगे। खंड की पहली इकाई (इकाई 33) में निबंध के स्वरूप और हिंदी निबंध के विकास का परिचय दिया गया है। इस इकाई से आपको हिंदी में निबंध के विकास का परिचय तो मिलेगा ही, साथ ही आपको वह आधार प्राप्त होगा, जिससे आप निबंध का विश्लेषण और मूल्यांकन कर सकेंगे।

आप निबंधों का ध्यानपूर्वक वाचन कीजिए और समझने की कोशिश कीजिए कि निबंधकार ने निबंध के माध्यम से क्या कहा है। निबंधों में आए कठिन शब्दों का अर्थ दिया गया है, संस्कृत या अन्य भाषा में आए पद्यों का सरल अनुवाद दे दिया गया है, किसी लेखक या महापुरुष का उल्लेख जहाँ भी आया है, वहाँ टिप्पणी में उसके बारे में बता दिया गया है, इनसे आपको निबंधों को समझने में मदद मिलेगी। निबंधों के साथ दिये गये बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए, इनसे आपको यह मालूम हो सकेगा कि आपने निबंध को कितना समझा है। निबंध के वाचन के बाद निबंध का सार दिया गया है, जिससे कि आप निबंध के केंद्रीय भाव को पहचान सकेंगे। इकाइयों में निबंधों के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या दी गयी है ताकि आप स्वयं निबंधों की व्याख्या कर सकें।

निबंध में निहित भावों और विचारों का विश्लेषण "अंतर्वस्तु" के अंतर्गत किया गया है। निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव प्रत्यक्ष और गहरा होता है। विश्लेषण के अंतर्गत इस पर भी विचार किया गया है। निबंधकार की रचना के संरचनात्मक वैशिष्ट्य को समझने के लिए "संरचना शिल्प" के अंतर्गत भाषा और शैली पर विचार किया गया है तथा अंत में निबंध के केंद्रीय भाव का विश्लेषण "प्रतिपाद्य" के अंतर्गत किया गया है। विश्लेषण पक्ष को पढ़ने से न केवल आपको निबंधों को समझने में मदद मिलेगी बल्कि आपकी आलोचनात्मक क्षमता का विकास भी होगा। इसके लिए बोध प्रश्नों के साथ-साथ अभ्यास भी दिये गये हैं। इकाई के अंत में बोध प्रश्नों और अभ्यासों के उत्तर दिये गये हैं वे उत्तर आवश्यक नहीं कि आपके उत्तर से हू-ब-हू मिलें। आप यह अवश्य देख लीजिए कि आपके उत्तर में भी कमोबेश वे ही बातें हों, जो नमूने के उत्तर में है। अगर आप अपने उत्तर से संतुष्ट हैं तो अपने अध्ययन को आगे जारी रखिए।

इस खंड में उपयोगी पुस्तकों की सूची एक साथ इकाई 40 के अंत में दी गयी है। संभव हो तो आप इन पुस्तकों का अध्ययन भी कीजिए, इससे आपको अध्ययन में और अधिक सहायता मिलेगी।

निबंधों की भाषा-शैली पर एक श्रव्य-पाठ भी तैयार किया गया है, आप उसे अवश्य सुनें। इससे आपको निबंधों की भाषा-शैली को समझने में मदद मिलेगी।

आप अपने पाठ्यक्रम में रखे गये निबंधकारों और हिंदी के अन्य निबंधकारों के निबंधों को भी पढ़िए और उन पर विचार कीजिए।

इकाई 33 हिंदी निबंध : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य
33.1 प्रस्तावना
33.2 निबंध का रचनागत वैशिष्ट्य
- 33.2.1 अर्थ और परिभाषा
- 33.2.2 विचारात्मक एवं भावात्मक आधार
- 33.2.3 लेखक का व्यक्तित्व
- 33.2.4 शैली
- 33.2.5 भाषा

33.3 निबंध के भेद
- 33.3.1 विषयवस्तु के आधार पर
- 33.3.2 लेखकीय व्यक्तित्व के आधार पर
- 33.3.3 शैली के आधार पर
- 33.3.4 भाषा के आधार पर

33.4 हिंदी निबंध का विकास
- 33.4.1 शुक्ल-पूर्व युग
- 33.4.2 शुक्ल युग
- 33.4.3 शुक्लोत्तर युग

33.5 सारांश
33.6 शब्दावली
33.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

यह ऐच्छिक पाठ्यक्रम का अंतिम खंड है। इस खंड में आप निबंधों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में हम आपको निबंध के स्वरूप और हिंदी निबंधों के विकास से परिचित कराएँगे। इस इकाई को पढने के बाद आप:

- निबंध का रचनागत वैशिष्ट्य बता सकेंगे;
- निबंध के विभिन्न तत्वों की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- निबंध के तत्वों के आधार पर उसके विभिन्न भेद कर सकेंगे;
- हिंदी निबंध के विकास का वर्णन कर सकेंगे; और
- हिंदी निबंध की विकास परंपरा के विभिन्न चरणों की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-1 से संबंधित यह छठे और अंतिम खंड की पहली इकाई है अर्थात् इस पाठ्यक्रम की यह तैंतीसवीं इकाई है। इस खंड की अगली इकाइयों में आप बालकृष्ण भट्ट, रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' और विद्यानिवास मिश्र के पाँच निबंधों का अध्ययन करेंगे। इनको पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना जरूरी है कि निबंध क्या है, उसके विभिन्न तत्व कौन से हैं, उनकी विशेषताएँ क्या हैं और निबंध के कौन-कौन से भेद हैं। इसके साथ ही हिंदी निबंध की परंपरा से परिचित होना भी आपके लिए जरूरी है। इससे जिन निबंधों का अध्ययन करेंगे, उनको समझने तथा उनका विश्लेषण और मूल्यांकन करने में आपको मदद मिलेगी।

हिंदी निबंधों का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। निबंध, साहित्य की एक नयी विधा है और पत्र-पत्रिकाओं के बढ़ते प्रसार ने इस विधा को भी लोकप्रिय बनाने में मदद पहुँचाई है। हिंदी निबंध की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानी जाती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके समय के कई अन्य महत्वपूर्ण लेखकों ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए इस विधा का सहारा लिया। भारतेंदु के समय में खड़ी बोली गद्य का निर्माण शुरू हुआ ही था। लेकिन पत्र-पत्रिकाओं की जरूरतों के कारण निबंध विधा ने गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। भारतेंदु युग के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के

संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'सरस्वती' ने भी निबंधों के विकास में उल्लेखनीय योग दिया। इसी युग में लेखन आरंभ करने वाले निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी निबंधों को पराकाष्ठा पर पहुँचाया। उनका व्यक्तित्व हिंदी निबंधों के विकास में केंद्रीय महत्व रखता है। बाद में तो हिंदी निबंधों का चहुँमुखी विकास हुआ।

इस इकाई में निबंध के स्वरूप का परिचय दिया गया है। लेकिन श्रेष्ठ रचनाएँ कभी भी नियमों से पूरी तरह बंधी नहीं होतीं। शैली और भाषा के स्तर पर निबंधों में लगातार परिवर्तन हुए हैं और उनमें प्रौढ़ता का समावेश हुआ है। भारतेंदु और बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में ज़िंदादिली और व्यंग्यात्मकता के तत्व थे तो रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में गहन वैचारिकता और विश्लेषणात्मकता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने निबंधों की एक नयी शैली का विकास किया जिसे ललित निबंध कहा गया। कहने का तात्पर्य यही है कि निबंध के स्वरूप के अध्ययन से हमें निबंधों को समझने में सहायता मिलेगी। निबंधों के अध्ययन में हमें रचनाकारों के व्यक्तिगत वैशिष्ट्य का भी ध्यान रखना होगा। यह अवश्य है कि अगर हम यह समझ जाते हैं कि निबंध क्या है तो फिर उसके विकासक्रम और उसमें होने वाले नवीन प्रयोगों को समझना भी आसान हो जाता है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर हमने इस इकाई में तीन बातों पर अपनी पाठ्य सामग्री को केंद्रित किया है। (1) निबंध का अर्थ, परिभाषा और उसके विभिन्न तत्व, (2) निबंधों के विभिन्न भेद और (3) हिंदी निबंधों का विकास। इन तीनों के अध्ययन से आपको वह आधार मिल सकेगा, जिसके परिप्रेक्ष्य में आप आगे की इकाइयों में निबंधों का अध्ययन और विश्लेषण कर सकेंगे।

33.2 निबंध का रचनागत वैशिष्ट्य

आपने हिंदी के आधार पाठ्यक्रम के खंड 3 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध 'क्रोध' भी पढ़ा होगा। उस निबंध को पढ़ने से आपको कुछ अनुमान तो हो गया होगा कि 'निबंध' का क्या तात्पर्य है। 'निबंध' पर विचार करने से पहले आइए, एक बार हम साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं से इसकी तुलना करें।

आप इसी पाठ्यक्रम की इकाई 2 से यह तो पहचान गये होंगे कि गद्य की प्रमुख विधाएँ कौन-सी हैं और उनकी प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं। गद्य के भीतर कहानी उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, यात्रावृत्त, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण आदि कई विधाएँ आती हैं। कहानी, उपन्यास और नाटक को हम कथात्मक विधा कह सकते हैं क्योंकि इनमें कोई न कोई कहानी होती है। यह कहानी काल्पनिक होती है, यद्यपि यह जीवन यथार्थ से प्रेरित होती है। कथात्मक विधाओं में रचनाकार अपनी बात सीधे न कहकर कथा के माध्यम से कहता है। इसके विपरीत निबंध, यात्रावृत्त, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण आदि गद्य विधाओं को हम कथात्मक विधाओं के अंतर्गत नहीं रख सकते क्योंकि इन विधाओं में लेखक का उद्देश्य कथा कहना नहीं होता। जीवनी में किसी अन्य व्यक्ति का जीवन चरित्र केन्द्र में होता है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के बारे में लिखता है। संस्मरण में लेखक अपनी स्मृतियों को प्रस्तुत करता है। ये स्मृतियाँ किसी व्यक्ति, स्थान, या घटना के बारे में हो सकती हैं। रेखाचित्र में लेखक अपने संपर्क में आए किसी व्यक्ति के जीवन चरित्र का खाका प्रस्तुत करता है। यहाँ घटनाएँ नहीं व्यक्ति की चारित्रिक विशिष्टता प्रमुख होती है। यात्रावृत्त में लेखक किसी स्थान विशेष की यात्रा का लेखा-जोखा पेश करता है। इन सभी विधाओं की तुलना में निबंध को रखकर देखें।

निबंध कथात्मक विधा नहीं है क्योंकि उसकी रचना का आधार कथा नहीं है। निबंध में लेखक अपना या दूसरे का जीवन-चरित्र प्रस्तुत नहीं करता, इसलिए वह जीवनी और आत्मकथा से भिन्न है। निबंध में लेखक अपनी स्मृतियों को ही नहीं रखता इसलिए वह संस्मरण से भिन्न है। इसी दृष्टि के वह रेखाचित्र और यात्रावृत्त से भी अलग है। तब, प्रश्न यह है कि निबंध क्या है?

निबंध का सैद्धांतिक विवेचन करने से पहले आइए, हम उसे सीधे-सादे ढंग से समझने की कोशिश करें। इस खंड में आगे जो निबंध दिये गये हैं उन्हें ध्यान में रखिए। संभव हो तो उन्हें पढ़ जाइए। आप पाएँगे कि इन सभी निबंधों में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण उन्हें 'निबंध' की संज्ञा दी गयी है। ये सभी निबंध 'गद्य' में हैं। इसलिए 'गद्यात्मकता' को हम निबंध की पहली विशेषता कह सकते हैं। लेकिन 'गद्य' में लिखे जाने मात्र से कोई रचना निबंध नहीं हो जाती। दूसरा उदाहरण देखिए। हम 'मित्रता' निबंध का एक अंश नीचे दे रहे हैं, इसे पढ़िए:

> *जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकलकर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिल्कुल एकांत और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेलमेल हो जाता है। यही हेलमेल बढ़ते-बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है; क्योंकि संगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है।*

उपर्युक्त अंश में शुक्ल जी ने 'मित्रता' के बारे में विचार किया है। मित्र कैसे बनते हैं और मित्रों की संगति का हमारे आचरण पर क्या प्रभाव पड़ता है, निबंध में इस पर विचार व्यक्त किये गये हैं। यानी कि निबंध में लेखक अपने विचारों को प्रस्तुत करता है। ये विचार किसी भी विषय पर हो सकते हैं। अब एक और अंश देखिए:

> *बालमैत्री में जो मग्न करने वाला आनंद होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहाँ? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है, कैसा अपार विश्वास होता है। हृदय के कैसे-कैसे उद्गार निकलते*

है। वर्तमान कैसा आनंदमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के संबंध में कैसी लुभाने वाली कल्पनाएँ मन में रहती हैं। कैसा बिगाड़ होता है और कैसी आर्द्रता के साथ मेल होता है। कैसी क्षोभ भरी बातें होती हैं और कैसी आवेगपूर्ण लिखा-पढ़ी होती है। कितनी जल्दी बातें लगती हैं और कितनी जल्दी मानना-मनाना होता है।

उपर्युक्त अंश में शुक्लजी ने बालमैत्री की विशेषताओं के भावपक्ष का वर्णन किया है। बालमैत्री में मित्रों को भावनाएँ कैसी होती हैं, उन्हें भावपूर्ण शब्दावली में रखा गया है। यानी निबंध में निबंधकार विषय के भाव-पक्ष को भी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निबंध की दूसरी विशेषता है, **विचारों और भावों की अभिव्यक्ति।**

आप जानते हैं कि लेख में भी लेखक अपने विचारों को प्रस्तुत करता है। तब क्या इतिहास, समाजशास्त्र या विज्ञान के किसी पक्ष पर लिखा लेख भी निबंध की श्रेणी में गिना जा सकता है? लेख में मुख्य उद्देश्य विषय का सुविचारित प्रतिपादन करना होता है। इसमें विषय का वस्तुपरक विवेचन होना आवश्यक है। लेकिन निबंध में वस्तुपरकता अनिवार्य गुण नहीं है, बल्कि लेखक अपने भावों और विचारों को इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि उस प्रस्तुति में उसके लेखकीय व्यक्तित्व का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निबंध में विषय की प्रस्तुति आत्मपरक होती है, किंतु विषय का विश्लेषण वस्तुपरक हो सकता है। शुक्लजी के 'क्रोध', 'लज्जा और ग्लानि' आदि मनोभावों से संबंधित निबंध इसी श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार निबंध की तीसरी विशेषता है, **लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव।**

लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव निबंध को एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित करने का मुख्य आधार कहा जा सकता है। लेकिन एक और विशेषता है जो निबंध को साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करती है। वह है उसका **अभिव्यंजना पक्ष।** निबंध में भावों और विचारों का प्रस्तुतीकरण जिस शैली में रचनाकार करता है, उसके लिए जैसी उत्कृष्ट भाषा प्रयुक्त करता है, वे ही उस निबंध की महत्ता के आधार बनते हैं। गद्य का प्रयोग तो सामान्य लेखन में प्रायः होता ही है, लेकिन निबंध में भाषा और शैली की नवीनता, उत्कृष्टता, प्रौढ़ता और लालित्य (सुंदरता) उन विचारों और भावों को नया आलोक प्रदान करते हैं। हम केवल भाव और विचार से ही प्रभावित नहीं होते। बल्कि अभिव्यक्ति का ढंग भी हमें आकृष्ट करता है। इस प्रकार निबंध का **अभिव्यंजना पक्ष** उसे सामान्य लेखों से अलग करता है। इसे निबंध की चौथी विशेषता कह सकते हैं।

अब हम निबंध की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। इनके आधार पर हम निबंध को परिभाषित कर सकते हैं, उसके स्वरूप की व्याख्या कर सकते हैं और उसके विभिन्न तत्वों को पहचान सकते हैं।

33.2.1 अर्थ और परिभाषा

अर्थ : अंग्रेजी में जिसे 'एसे' कहा जाता है, हिंदी में उसे ही 'निबंध' कहते हैं। गद्य की कई अन्य विधाओं की तरह हिंदी में निबंध लेखन की शुरुआत पश्चिम के प्रभाव से हुई है। अंग्रेजी के 'एसे' की जो विधागत विशेषताएँ हैं, वे ही निबंध की भी विशेषताएँ हैं, लेकिन 'एसे' और 'निबंध' के शाब्दिक अर्थ में फर्क है।

'एसे' शब्द का अर्थ है, प्रयत्न, प्रयोग या परीक्षण, अर्थात् प्रयत्नपूर्वक किसी एक विषय का परीक्षण कर, अपने विचारों को सुव्यवस्थित रूप से अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया को 'एसे' कह सकते हैं। जबकि निबंध शब्द का अर्थ है बांधना या रोकना। "बंध" के साथ "नि" उपसर्ग जुड़ने से निबंध शब्द बना है। विचारों को बिखर जाने से रोकना या व्यवस्थित रूप से बाँधकर विशिष्ट रूप देना निबंध का लक्षण कहा जा सकता है। इस प्रकार 'एसे' और 'निबंध' दो अलग-अलग अर्थों को हमारे सामने रखते हैं। 'एसे' में विचारों को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया पर बल है जबकि निबंध में बल उस परिणति पर है जहाँ विचार व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत हो जाता है। इस प्रकार ये दोनों शब्द अलग-अलग अर्थ देते हुए भी वस्तुतः एक ही प्रक्रिया के दो भिन्न चरणों को व्यक्त करते हैं। चूँकि एक विधा के तौर पर 'निबंध' या 'एसे' में विचारों की प्रस्तुति का विशेष महत्व है, इसलिए इन दोनों शब्दों का शाब्दिक अर्थ आज भी किसी-न-किसी रूप में निबंध में सुरक्षित है। लेकिन एक विधा के रूप में निबंध को परिभाषित करने के लिए इन शब्दों के शाब्दिक अर्थ पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि हम निबंध की जिन विशेषताओं का उल्लेख ऊपर कर आये हैं सभी का समावेश इनमें नहीं होता।

आगे हम निबंध की एक ऐसी परिभाषा बनाने की कोशिश करेंगे, जिसमें निबंध की सभी विशेषताओं का समावेश हो सके और जो निबंध के सभी रूपों पर समान रूप से लागू हो सके।

परिभाषा : किसी भी साहित्य-विधा की कोई ऐसी परिभाषा देना बहुत मुश्किल है जो उसके सभी पक्षों का समावेश कर सके या जो उस के सभी रूपों का प्रतिनिधित्व कर सके। फिर भी विद्वानों ने निबंध को परिभाषित करने का प्रयास किया है। निबंध पर विचार करते हुए जानसन[1] ने उसे नियमबद्ध, और व्यवस्थित कृति न मानकर मुक्त मन की मौज, अनियमित, अपक्व-सी रचना बताया है। जानसन की उक्त परिभाषा में निबंध का ऐसा स्वरूप उभरता है जिसमें लेखक स्वच्छंदतापूर्वक अपने मन की बात कहता है, वह किसी नियम से बंधा नहीं होता और उसकी रचना में कोई व्यवस्था भी नजर नहीं आती। कुछ ऐसी ही परिभाषा एलेक्जेंडर स्मिथ ने भी दी है। उनके अनुसार, "निबंध साहित्यिक विधा के रूप में गीत के अधिक समीप है। गीत के सदृश ही इसका मूल भाव किसी भी मौज से प्रेरित होता है।" इस परिभाषा में भी रचनाकार की स्वच्छंद वृत्ति पर बल दिया गया है।

---

1 जानसन : पूरा नाम सेम्युल जॉनसन, अंग्रेजी के गद्य लेखक और समीक्षक (18वीं सदी)

प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान माइकेल द मोंतेन[1] ने निबंध में वैयक्तिक विचार या अनुभूति को उन्मुक्त, कलात्मक और प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने पर बल दिया था। वस्तुतः ये परिभाषाएँ सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के दौरान लिखे गये निबंधों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की गयी हैं। लेकिन बाद में निबंधों के स्वरूप में काफी परिवर्तन हुआ। हिंदी में भी भारतेंदु युग के निबंधों में जो स्वच्छंदता नज़र आती है, वह रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में नहीं दीख पड़ती। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि निबंधों में रचनाकार अपने भावों और विचारों को निर्वैयक्तिक रूप में प्रस्तुत नहीं करता। हाँ, यह अवश्य है कि भावों और विचारों में चाहे जितनी स्वच्छंदता क्यों न व्यक्त होती हो, लेकिन शैली की दृष्टि से निबंध में कसाव, व्यवस्था और संगति पर बाद में अधिक बल दिया जाने लगा और इन्हें अच्छे निबंध की विशेषताएँ मान लिया गया। कॉलियार्स विश्वकोश में प्रस्तुत परिभाषा जहाँ वैयक्तिक दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण मानती है वहीं उन्मुक्तता पर कुछ हद तक अंकुश लगाती है। उसके अनुसार "निबंध अपने आप में पूर्ण, एक बैठक में पढ़ी जाने लायक ऐसी गद्य रचना है जो गैर तकनीकी पद्धति पर वैयक्तिक दृष्टिबिंदु को प्रधानता देते हुए निर्मित की गई हो।" डॉ. गुलाबराय की परिभाषा से भी कुछ ऐसा ही मत व्यक्त होता है। उनके अनुसार, "निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन; स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया गया हो।" निबंध की यह परिभाषा इस दृष्टि से उचित है कि इसमें निबंध की आधारभूत विशेषताओं को शामिल करने का प्रयास किया गया है।

जैसा कि हम अपने विवेचन में पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं, निबंध में भावों और विचारों की ऐसी अभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है जिसमें लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव व्यक्त होता हो। साथ ही, उसकी शैली में न सिर्फ विषय को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता हो बल्कि लेखक की शैलीगत विशिष्टता भी प्रकट हो। इस दृष्टि से हम **निबंध उस गद्य रचना को कहेंगे जिसमें लेखक अपने भावों और विचारों को आत्मपरक रूप में व्यक्त करने के लिए सजीव, लालित्यपूर्ण और मर्यादित भाषा-शैली का प्रयोग करता है।**

उक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि निबंध में निम्नलिखित चार विशेषताओं का महत्व सबसे अधिक है:

1 विचारात्मक और भावात्मक आधार (अंतर्वस्तु)
2 लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव
3 शैली
4 भाषा

उक्त विशेषताओं को हम निबंध के तत्व भी कह सकते हैं। आगे हम इन पर किंचित् विस्तार से चर्चा करेंगे।

33.2.2 विचारात्मक एवं भावात्मक आधार

निबंधकार निबंध में विचारों और भावों को व्यक्त करता है। इन विचारों और भावों को ही निबंध की विषयवस्तु या अंतर्वस्तु कह सकते हैं। निबंध की विषयवस्तु कुछ भी हो सकती है: राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि। निबंध का विषय महान् भी हो सकता है और गौण भी। किसी मामूली से विषय पर भी निबंध लिखा जा सकता है। इसलिए निबंध में विषय का उतना महत्व नहीं है, जितना कि उसकी प्रस्तुति का।

विषय के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष और विचारपक्ष। निबंधकार विषय के विवेचन को जब बौद्धिक दृष्टि से प्रस्तुत करता है तो उस निबंध में विचार की प्रधानता हो जाती है और जब वह विषय के भावपक्ष को प्रमुखता देता है तो निबंध में भावों की प्रधानता हो जाती है। कई निबंधों में भावों और विचारों का संतुलन भी रहता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध इसी तरह के हैं। लेकिन इतना अवश्य है कि भाव-प्रधान निबंधों में रचनाकार के विचार भी व्यक्त होते हैं। इसी प्रकार विचार-प्रधान निबंधों में उसकी भावनाएँ भी अवश्य व्यक्त होती हैं। शुक्लजी के निबंधों में जहाँ उनकी बौद्धिक क्षमता का परिचय मिलता है, वहाँ उनके व्यक्तित्व का भावात्मक पक्ष भी व्यक्त हुआ है।

निबंध में रचनाकार का उद्देश्य विषय का शास्त्रीय प्रतिपादन करना नहीं होता अर्थात् वह विषय का विवेचन सुव्यवस्थित और उस विषय के नियमों से बंधकर नहीं करता। विषय के विवेचन में निबंधकार काफी स्वतंत्रता से काम लेता है। उदाहरण के लिए हजारीप्रसाद द्विवेदी का निबंध "नाखून क्यों बढते हैं" प्राणिविज्ञान के प्रश्न को उठाता है। द्विवेदी जी इसके बहाने मनुष्य की मनोवृत्तियों का विश्लेषण करते हैं और वहाँ भी उद्देश्य मनोवृत्तियों का शास्त्रीय विवेचन करना नहीं है, बल्कि वे इसके बहाने अधिक व्यापक मानवीय सवालों को उठाते हैं। यही बात शुक्लजी के मनोभावों संबंधी निबंधों के बारे में भी कही जा सकती है।

निबंध रचना में रचनाकार मानवीय अनुभवों का काफी सहारा लेता है। इन अनुभवों से निबंध में सजीवता और प्रमाणिकता दोनों का समावेश होता है। केवल शुष्क वैचारिक विवेचन निबंध को लेख बना देता है लेकिन भावों की उन्मुक्त अभिव्यक्ति से भी रचना में गंभीरता नहीं आ पाती। इसलिए यह जरूरी है कि लेखक अपने विचारों को भावात्मक और भावों को विचारात्मक बनाकर प्रस्तुत करे। रचनाकार जिस किसी विषय पर लिखे, उसका गहरा ज्ञान उसे जरूर होना चाहिए। न केवल विषय से संबंधित सब पक्षों की पर्याप्त जानकारी आवश्यक है बल्कि उसमें मौलिक चिंतन की क्षमता भी होनी चाहिए ताकि वह विषय को नयी दृष्टि और नया अर्थ दे सके।

1 माइकेल द मोंतेन : फ्रेंच भाषा के निबंधकार (1533-92)

निबंधकार को विषय के केवल उन पक्षों को ही प्रस्तुत करना चाहिए जिन्हें वह निबंध के लिए आवश्यक समझता है। वह परस्पर असंबद्ध, नितांत भिन्न पक्षों को भी प्रस्तुत कर सकता है लेकिन निबंध में उनकी संगति अवश्य नज़र आनी चाहिए।

33.2.3 लेखक का व्यक्तित्व

निबंध में रचनाकार जिन भावों और विचारों को व्यक्त करता है, उनकी प्रस्तुति में स्वयं उसका व्यक्तित्व भी शामिल होता है। निबंधों में लेखकीय व्यक्तित्व का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि इसमें लेखक अपने भावों और विचारों को सीधे व्यक्त करता है। कहानी, उपन्यास की तरह वह काल्पनिक कथा का सहारा नहीं लेता। इसलिए निबंध में लेखक की विचारधारा, मान्यताएँ, अभिरुचियाँ आदि व्यक्त होती हैं। विषय के चयन से लेकर शैली और भाषागत अभिव्यक्ति तक में लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव दिखायी देता है। उदाहरण के लिए भारतेंदु युग के लेखकों की ज़िंदादिली, विनोदप्रियता और व्यंग्य करने की प्रवृत्ति उनके निबंधों में बार-बार व्यक्त हुई है। शुक्लजी में भी ये विशेषताएँ हैं लेकिन उनमें वैचारिक गांभीर्य ज्यादा है। शुक्लजी की वैयक्तिक अभिरुचियाँ और मान्यताएँ भी उनके निबंधों में सामने आती हैं। जैसे, शास्त्रीय संगीत या सूक्ष्म नक्काशी के प्रति उनकी वितृष्णा या प्रकृति से गहरा लगाव।

निबंधकार निबंध में अपने व्यक्तित्व को आरोपित करने की कोशिश नहीं करता। अगर वह ऐसा करता है तो उसके निबंध में विषय गौण हो जाएगा और रचना आत्मप्रकाशन का माध्यम भर रह जाएगी। इसलिए श्रेष्ठ निबंधकार अपने व्यक्तित्व को परोक्ष रूप में ही सामने लाता है और ऐसा वह विषय को अधिक जीवंत और आत्मीय बनाने के लिए ही करता है।

निबंधकार को अपने व्यक्तित्व के उन पक्षों को ही निबंध में लाना चाहिए जो उनके व्यक्तित्व की पहचान बन सकें। उसे अपने वैयक्तिक पूर्वाग्रहों, दुर्बलताओं और वैचारिक दुराग्रहों से बचना चाहिए और अगर वह अपने विचारों, मान्यताओं और अभिरुचियों को सामने लाता है तो उनके सामाजिक पक्ष को भी सामने रखना चाहिए ताकि वे पाठकों के लिए भी ग्राह्य बन सकें। लेकिन यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि निबंध में लेखक का व्यक्तित्व सचेत रूप से अभिव्यक्त नहीं होता वरन् यह तो निबंध विधा का वैशिष्ट्य है कि उसमें लेखक का व्यक्तित्व अवश्य व्यक्त होता है।

33.2.4 शैली

निबंध में रचनाकार अपने विचारों और भावों को जिस रूप में प्रस्तुत करता है, उसे ही निबंध की शैली कहते हैं। विचारों और भावों को व्यक्त करने का कोई एक तरीका नहीं है। कोई लेखक अपनी बात सीधे-सीधे व्यक्त कर देता है, तो कोई उसे पेचीदा बनाकर व्यक्त करता है। कोई जीवनानुभवों के सहारे अपनी बात कहता है, तो कोई विभिन्न पुस्तकों से उद्धरण देकर अपनी बात का खुलासा करता है। कोई अपना मत पहले प्रकट कर देता है और फिर उसको स्पष्ट करता है और उसको सही ठहराने के लिए उदाहरण भी देता है, तो कोई पहले जीवनानुभव प्रस्तुत करता है, फिर उसका वैचारिक विश्लेषण करता है और अंत में उसको सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है। कई लेखक अपनी बात इतने आत्मीय रूप में कहते हैं कि हम उसके भावों के प्रवाह में वह जाते हैं, तो कई में इतना गहरा वैचारिक विश्लेषण होता है कि हम उसकी अंतर्दृष्टि का लोहा मान जाते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि निबंधकार निबंध में कोई भी शैली अपना सकता है। वस्तुतः उसकी शैली ही उसके निजी वैशिष्ट्य का प्रमाण होती है। भारतेंदु युग के निबंधकारों की विनोदप्रियता, शुक्ल जी का गंभीर विश्लेषण, हजारीप्रसाद द्विवेदी का लालित्य, हरिशंकर परसाई की व्यंग्यात्मकता उनकी शैली के ऐसे गुण हैं, जिनके कारण उनकी अलग पहचान बनी है।

शैली के संबंध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि न केवल प्रत्येक लेखक की अपनी विशिष्ट शैली होती है बल्कि एक ही रचनाकार के अलग-अलग निबंधों में भी भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग हो सकता है। इसी तरह एक ही शैली के भी कई रूप हो सकते हैं। जैसे, हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, ये सभी ललित निबंधकार माने जाते हैं, लेकिन इनके निबंधों में अपनी निजता भी है। द्विवेदीजी और मिश्रजी के निबंधों के शैलीगत अंतर का अध्ययन आप आगे करेंगे। निबंध में शैली का अत्यधिक महत्व है क्योंकि शैली की विशिष्टता के कारण ही निबंध लेख से अलग होता है और एक साहित्यिक विधा के रूप में अपने को प्रतिष्ठित करता है।

33.2.5 भाषा

निबंध को गद्य की कसौटी कहा गया है क्योंकि निबंध में भाषा को सृजनात्मक रूप देना अत्यंत कठिन काम है। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों पर लिखे जाने वाले लेखों में भाषा का मुख्य उद्देश्य विषय को सही, स्पष्ट और सरल रूप में व्यक्त करना होता है। लेकिन निबंध में भाषा अभिव्यक्ति का साधन मात्र नहीं होती। वह उससे कुछ बढ़कर होती है। निबंधकार केवल विषय को प्रभावशाली रूप में ही प्रस्तुत नहीं करता बल्कि उसको सौंदर्य भी प्रदान करता है। शब्द-चयन से लेकर वाक्य-रचना तक भाषा में नवीनता और निखार लाने की कोशिश करता है। वह कभी सरल शब्दों और छोटे वाक्यों में अपनी बात कहता है तो कभी भारी-भरकम शब्दों और अनेक उपवाक्यों को आपस में मिलाकर बने जटिल वाक्यों द्वारा अपनी बात कहता है। भाषा उसके भावों, विचारों और व्यक्तित्व की वाहक होती है। वह शैली को मूर्त रूप देती है। भाषा के माध्यम से ही रचना हमारे सामने सजीव रूप में उपस्थित होती है।

भाषा में नवीनता और लालित्य का समावेश सरल काम नहीं है, क्योंकि निबंध की भाषा व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करने के लिए अधिक स्वतंत्र नहीं होती। भाषा को सृजनात्मक रूप देने के लिए अधिक कल्पनाशीलता, भाषा की गहरी

जानकारी और उस पर गहरी पकड़ का होना आवश्यक है। आगे की इकाइयों के निबंधों की भाषा का अवलोकन करने पर आप इन विशेषताओं को आसानी से पा सकते हैं।

निबंध की भाषा में अधिक जटिलता उचित नहीं है। यह जटिलता चाहे शब्द-चयन में हो या वाक्य-निर्माण में, विषय को संप्रेष्य बनाने में बाधक भी हो सकती है। तथ्य यह है कि निबंधकार की भाषा विषय को संप्रेष्य बनाने वाली होनी चाहिए। इसके साथ ही उसमें भाषागत सौंदर्य का समावेश किया जाता है तो निबंध अधिक प्रभावशाली हो सकता है। भाषा में अगर लोकोक्तियों, मुहावरों या ऐसे शब्दों और वाक्य-रूपों का प्रयोग किया जाता है जो पाठकों के लिए सहज ग्राह्य हों तो वे निबंध की विषयवस्तु को ग्राह्य और शैली के लालित्य, दोनों को बढ़ाएँगे।

भाषा के संबंध में यह भी दृष्टि में रखना चाहिए कि प्रत्येक दौर की भाषा की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं। इसी तरह प्रत्येक रचनाकार की भाषा की भी अपनी विशेषताएँ होती हैं और एक ही रचनाकार की अलग-अलग रचनाओं का भाषागत वैशिष्ट्य अलग-अलग हो सकता है। इस प्रकार भाषा की सामान्य विशेषताओं से लेकर रचनाकार और रचना की निजी विशिष्टताओं तक को ध्यान में रखना चाहिए। बड़ा रचनाकार भाषा का अनुकरण नहीं करता, वह उसका सृजन करता है। वह भाषा के परम्परागत साँचे को तोड़कर उसे नया अर्थ देता है। किसी भी निबंध पर विचार करते हुए इसे पहचानना जरूरी है। हमारे आगे के अध्ययन में इस पर सोदाहरण विचार करने का मौका मिलेगा।

बोध प्रश्न

अब तक इस इकाई में आपने निबंध के अर्थ और उसके विभिन्न तत्वों का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलाकर देखिए कि आपका उत्तर सही है या नहीं।

1 नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, वे या तो सही हैं या गलत। बताइए।
   क) निबंध में काल्पनिक कथा होती है, इसलिए वह कहानी से भिन्न है। (सही/गलत)
   ख) निबंध में रचनाकार अपना जीवनचरित प्रस्तुत नहीं करता, इसलिए वह आत्मकथा से भिन्न है। (सही/गलत)
   ग) निबंध निर्वैयक्तिक रचना है, इसलिए वह लेख से भिन्न है। (सही/गलत)
   घ) निबंध को गद्य की कसौटी कहा गया है। (सही/गलत)

2 नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, इनके आधार पर बताइए कि इनका संबंध निबंध के किन तत्वों से है। उत्तर कोष्ठक में लिखिए।
   क) रचनाकार जिस किसी विषय पर लिखे, उसका गहरा ज्ञान उसे जरूर होना चाहिए। न केवल विषय से संबंधित सब पक्षों की पर्याप्त जानकारी आवश्यक है बल्कि उसमें मौलिक चिंतन की क्षमता भी होनी चाहिए ताकि वह विषय को नयी दृष्टि और नया अर्थ दे सके। (   )
   ख) लेखक को अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों, दुर्बलताओं और वैचारिक दुराग्रहों से बचना चाहिए। (   )
   ग) कोई लेखक अपनी बात सीधे व्यक्त कर देता है तो कोई उसे पेचीदा बनाकर व्यक्त करता है। (   )
   घ) रचनाकार कभी सरल शब्दों और छोटे वाक्यों में अपनी बात कहता है तो कभी भारी-भरकम शब्दों और अनेक उपवाक्यों को आपस में मिलाकर बने जटिल वाक्यों द्वारा अपनी बात कहता है। (   )

3 'निबंध' और 'एसे' के अर्थ में अंतर बताइए। उत्तर तीन पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

4 निबंध की परिभाषा तीन पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

5 निबंध में प्रयुक्त होने वाली भाषा की किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

अभ्यास

1 निबंध में शैली के महत्व पर प्रकाश डालिए और अपना उत्तर लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

33.3 निबंध के भेद

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि निबंध में कुछ तत्व ऐसे होते हैं जो प्रायः सभी निबंधों में मिलेंगे। किंतु ये सभी निबंधों में समान रूप से नहीं होते। कोई निबंध विचार प्रधान हो सकता है तो कोई भाव प्रधान। किसी में विषय का वर्णन मात्र हो सकता है तो किसी में गहन विश्लेषण। किसी में भाषा सहज और सरल हो सकती है तो किसी में जटिल। कहने का तात्पर्य यह है कि निबंध के उपर्युक्त चारों तत्व कई रूपों में मिल सकते हैं। तत्वों के इन्हीं विभिन्न रूपों के आधार पर निबंधों के कई वर्गीकरण किये जा सकते हैं। आगे हम निबंधों के इन वर्गीकरणों का अध्ययन करेंगे।

33.3.1 विषयवस्तु के आधार पर

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, निबंध का विषय कुछ भी हो सकता है। सामाजिक, सांस्कृतिक या साहित्यिक किसी भी विषय पर निबंध लिखा जा सकता है। निबंध में महत्व विषय का नहीं होता क्योंकि सामाजिक, राजनीतिक या ज्ञान-विज्ञान के किसी क्षेत्र का विस्तृत ज्ञान हासिल करने के लिए हम उन पर लिखे गये 'निबंधों' का अध्ययन नहीं करेंगे बल्कि उन पर लिखे गये 'लेखों' या 'पुस्तकों' का अध्ययन करेंगे। निबंध में महत्व उस विषय की प्रस्तुति का है अर्थात् निबंध में उस विषय को विचारात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है या भावात्मक रूप में। उदाहरण के लिए, मित्रता एक भाव है लेकिन शुक्लजी ने इसका विश्लेषण बौद्धिक और सामाजिक दृष्टि से किया है। इसलिए इस निबंध को हम विचारात्मक निबंध कहेंगे। इसी प्रकार विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' में विषय को भावात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार विषय-वस्तु के आधार पर निबंध के दो भेद किये जा सकते हैं :

- **विचारात्मक या चिंतनप्रधान निबंध**
- **भावात्मक या भावप्रधान निबंध**

विचारात्मक या चिंतनप्रधान निबंध : जिन निबंधों में विचारों या चिंतन की प्रधानता होती है उन्हें हम विचारात्मक निबंध कहते हैं। ऐसे निबंधों में रचनाकार विषय के वैचारिक पक्ष को महत्व देता है और उसको तार्किक और विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। आवश्यकता पड़ने पर अपने मत को ठोस उदाहरणों का हवाला देते हुए पुष्ट भी करता है। इस तरह के निबंधों में लेखक की गहन अंतःदृष्टि, विचारों की नवीनता और विश्लेषण की क्षमता का परिचय मिलता है। विचारात्मक निबंध में भावों की उपेक्षा नहीं होती बल्कि भाव विचारों के अनुवर्ती बनकर ही उपस्थित होते हैं। शुक्लजी के मनोभावों संबंधी निबंधों में उनकी चिंतनशीलता का परिचय मिलता है, लेकिन वहाँ भावों की उपेक्षा भी नहीं है।

भावात्मक या भावप्रधान निबंध : जिन निबंधों में भावों की प्रधानता होती है, उन्हें भावात्मक या भावप्रधान निबंध कहते हैं। ऐसे निबंधों में रचनाकार विषय के भावात्मक पक्ष के वर्णन को प्रधानता देता है। वह भावों की ऐसी धारा बहा देता है जिसमें पाठक डूबने-उतराने लगता है। यहाँ पाठक के सामने विषय पर ठहरकर सोचने का मौका नहीं होता बल्कि भावनाएँ उसके हृदय को आंदोलित करती हैं। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के निबंध 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ' का निम्नलिखित अंश देखिए:

> *न हिलना, न झुकना, मन में ये दो शब्द आये और मैंने आप ही आप इन्हें अपने में दोहराया — न हिलना, न झुकना।*
>
> *दूर अंतर में कुछ स्पर्श हुआ, पर वह स्पर्श सूक्ष्म था; यों ही संकेत सा। शब्द चक्कर काटते रहे — न हिलना, न झुकना और तब आया यह वाक्य — न हिलना, न झुकना जीवन की स्थिरता का, दृढ़ता का चिह्न है और वह वीर पुरुष है, जो न हिलता है, न झुकता है।*

यहाँ निबंधकार प्रकृति की एक स्थिति का वर्णन भावात्मक रूप में कर रहा है। यह स्थिति भावनाओं को आंदोलित कर रही है यद्यपि इसमें विचार का तत्व भी शामिल है।

इस प्रकार विषयवस्तु की दृष्टि से हम निबंध को उक्त दो वर्गों में बाँट सकते हैं।

33.3.2 लेखकीय व्यक्तित्व के आधार पर

वैसे तो सभी निबंधों में लेखक का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य अभिव्यक्त होता है। लेकिन विचारप्रधान और वस्तुपरक निबंधों में यह प्रभाव सबसे कम होता है और उसकी अभिव्यक्ति भी परोक्ष होती है जबकि भावात्मक निबंध में रचनाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की संभावनाएँ अधिक होती हैं। ऐसे निबंध जिसमें रचनाकार का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष और अधिक अभिव्यक्त होता है, उन्हें हम आत्मपरक निबंध कह सकते हैं। इसके विपरीत जिन निबंधों में व्यक्तित्व का प्रभाव कम और परोक्ष होता है उन्हें वस्तुपरक निबंध कह सकते हैं। इस प्रकार लेखकीय व्यक्तित्व की दृष्टि से निबंध के दो भेद किये जा सकते हैं :

- **आत्मपरक निबंध**
- **वस्तुपरक निबंध**

इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल के निबंध 'मित्रता' को वस्तुपरक और विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' को आत्मपरक निबंध कह सकते हैं।

33.3.3 शैली के आधार पर

शैली का तात्पर्य है निबंध किस रूप में लिखा गया है। अपने व्यापक अर्थ में ऊपर बताये गये भेद भी शैली के अंतर्गत ही आयेंगे। यहाँ हम निबंध की रचना पद्धति के आधार पर कुछ अन्य भेदों की चर्चा कर रहे हैं। निबंध की विषयवस्तु की प्रस्तुति के आधार पर उसके निम्नलिखित भेद किये जा सकते हैं:

- **वर्णनात्मक निबंध**
- **विश्लेषणात्मक निबंध**

जब निबंध में विषयवस्तु का सीधे-सीधे वर्णन प्रस्तुत किया जाता है और उसकी व्याख्या नहीं की जाती तब उसे वर्णनात्मक निबंध कहते हैं। निबंधकार ऐसे निबंध में विषयवस्तु का विस्तारपूर्वक वर्णन करता है। उसका वर्णन चमत्कारपूर्ण और जीवंत होता है ताकि वर्ण्यविषय पूरी तरह उभरकर सामने आ सके। किसी स्थान, वस्तु, पर्व, ऋतु आदि के वर्णनों पर आधारित निबंध इसी कोटि में आयेंगे।

जब निबंधकार विषयवस्तु की गहन व्याख्या और विश्लेषण प्रस्तुत करता है तो ऐसे निबंध की शैली को विश्लेषणात्मक शैली कहा जाता है। इस तरह के निबंधों में लेखक विषयवस्तु के चिंतन पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। उसके विभिन्न पक्षों की व्याख्या करता है, उनको ठोस तर्कों और उदाहरणों से स्थापित करता है। ऐसे निबंधों से लेखक की वैचारिक क्षमता का पता चलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध इसी कोटि में आते हैं।

निबंधों में वर्णन और विश्लेषण के लिए दो शैलियाँ अपनायी जाती हैं :

- **समास शैली**
- **व्यास शैली**

समास शैली में लेखक के विचार एक के बाद एक प्रस्तुत होते रहते हैं, उनमें व्याख्या नहीं होती। इस शैली में लेखक अपने विचारों को विस्तार नहीं देता बल्कि उन्हें संक्षेप में और सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत व्यास शैली में लेखक अपने विचारों को खोलकर रखता चलता है। अपना मत व्यक्त करते हुए उसकी व्याख्या भी करता चलता है। शुक्लजी के निबंधों में समास और व्यास दोनों शैलियों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। जैसे 'क्रोध' निबंध में उनका निम्नलिखित कथन समास शैली का उत्तम उदाहरण है :

> *बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है।*

किंतु नीचे दी गयी पंक्तियाँ व्यास शैली का उदाहरण पेश करती हैं जो ऊपर की पंक्ति की ही व्याख्या है :

> *जिससे हमें दुःख पहुँचा है उस पर यदि हमने क्रोध किया और क्रोध हमारे हृदय में बहुत दिनों तक टिका रहा तो वह बैर कहलाता है।*

कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही निबंध में व्यास और समास दोनों शैलियों का प्रयोग हो सकता है।

शैली की दृष्टि से निबंधों का एक वर्गीकरण और किया जा सकता है। जब लेखक कथ्य में अंतर्निहित सौंदर्य को उभारना चाहता है तो उसे ललित निबंध कहते हैं और जब कथ्य में अंतर्निहित व्यंग्य को उभारना चाहता है तो उसे व्यंग्य निबंध कहते हैं। निबंध में लालित्य लाने के लिए लेखक कई तरीके अपनाता है। पहली बात तो यह कि लेखक में व्यापक मानवीय

रुचि उत्पन्न करने की क्षमता होनी चाहिए। वह विषय को इस रूप में प्रस्तुत करे कि सभी के हृदय को छुए। दूसरे, उसमें अपने विचारों को मौलिक और प्रभावशाली रूप में रखने की सामर्थ्य होना चाहिए। तीसरे, वह विषय को इस रूप में प्रस्तुत करे कि उससे उसकी आत्मीयता और खुलेपन का एहसास हो। चौथे, उसमें विनोद की प्रवृत्ति भी होनी चाहिए ताकि उसका निबंध बोझिल न हो और अंत में, उसमें अपनी विचार और भावयात्रा में पाठक को भी सक्रिय रूप से शामिल करने की क्षमता होनी चाहिए।

भावप्रधान निबंधों में ललित शैली अपनायी जाती है। व्यंग्य निबंध में लेखक का उद्देश्य व्यंग्य को उभारना होता है। इसलिए विषय से लेकर भाषा तक निबंध के प्रत्येक पक्ष को वह इस रूप में प्रस्तुत करता है कि उससे कथ्य में निहित अंतर्विरोधी (परस्पर विरोधी) सत्य उभरते हैं। कथ्य में निहित इसी अंतर्विरोध में व्यंग्य निहित होता है जो पाठक को आकृष्ट करता है। हिंदी में भारतेंदु युग के लेखकों और बाद में समकालीन लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी आदि के निबंधों में व्यंग्य की इस क्षमता को देख सकते हैं।

इस प्रकार शैली की दृष्टि से निबंध के निम्नलिखित भेद किये जा सकते हैं :

- **वर्णनात्मक शैली**
- **विश्लेषणात्मक या विवेचनपरक शैली**
- **समास शैली**
- **व्यास शैली**
- **ललित शैली**
- **व्यंग्य शैली**

यहाँ यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि एक ही निबंध में एक-से-अधिक शैलियाँ भी हो सकती हैं।

33.3.4 भाषा के आधार पर

निबंध में भाषा के कई रूप हो सकते हैं। निबंध की भाषा तीन बातों पर निर्भर करती है: विषय, लेखक और शैली। निबंध की भाषा विषय से भी तय होती है, लेखक के निजी वैशिष्ट्य से भी और उस शैली से भी जो विषयवस्तु को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने अपनायी है। निबंध की भाषा संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दों वाली हो सकती है, बोलचाल की भाषा भी हो सकती है और उर्दूनिष्ठ भी हो सकती है। भाषा में लंबे और जटिल वाक्य हो सकते हैं तथा छोटे और सरल वाक्य भी हो सकते हैं। उसमें लोकभाषा का लालित्य भी हो सकता है और पांडित्य का प्रदर्शन भी। कहने का तात्पर्य यही है कि भाषा के कई रूप हो सकते हैं। लेकिन जो भी रूप हो वह निबंध के प्रभाव, सौंदर्य और संप्रेषणीयता को बढ़ाने वाला हो।

निबंध के उपर्युक्त वर्गीकरण के बारे में यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि यह वर्गीकरण अंतिम नहीं है और सभी निबंधों पर ये पूरी तरह से लागू नहीं किये जा सकते। लेकिन ऊपर जो भेद गिनाये गये हैं, उनके आधार पर निबंधों की भिन्न-भिन्न विशेषताओं को पहचानने और समझने में मदद मिलेगी।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

6 नीचे निबंध की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। उनके आधार पर बताइए कि ये विशेषताएँ किस प्रकार के निबंधों में पायी जाती हैं।

उदाहरण : जिस निबंध में विचार की प्रधानता होती है।

उत्तर : विचारात्मक निबंध

क) ऐसे निबंध जिनमें रचनाकार का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष और अधिक अभिव्यक्त होता है। ( )

ख) जिनमें विषयवस्तु की गहन व्याख्या होती है। ( )

ग) जिनमें लेखक अपने विचारों को विस्तार नहीं देता बल्कि उन्हें संक्षेप में और सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है। ( )

घ) जिनमें कथ्य में निहित सौंदर्य को उभारने को प्राथमिकता दी जाती है। ( )

ङ) जहाँ पाठक की भावनाओं को आंदोलित किया जाता है। ( )

7 निम्नलिखित आधारों पर निबंध के दो-दो भेद बताइए।

क) विषयवस्तु के आधार पर

....

....

ख) लेखकीय व्यक्तित्व के आधार पर

....

....

ग) शैली के आधार पर

....

....

8 ललित निबंध की कोई दो विशेषताएँ लिखिए।

....

....

....

....

9 समास शैली और व्यास शैली का अंतर चार पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

10 निबंध में भाषा किन आधारों पर तय होती है? किन्हीं दो आधारों को बताइए।

....

....

अभ्यास

2 लेखकीय व्यक्तित्व के आधार पर निबंध के भेद बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

33.4 हिंदी निबंध का विकास

निबंध के स्वरूप की पहचान के बाद आपके मन में निश्चय ही यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी कि हिंदी में निबंध का विकास किस तरह हुआ। हिंदी निबंध के विकास को समझना कई कारणों से जरूरी है। पहला कारण तो यही है कि इससे हम यह पहचान सकते हैं कि हिंदी में किस तरह के निबंध लिखे जाते रहे हैं, उनकी सामान्य विशेषताएँ क्या हैं? दूसरे, हिंदी निबंध के विकास क्रम में कौन-से महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं और उनकी विशिष्टता क्या है। तीसरे, हिंदी के प्रतिनिधि निबंधकार और उनके उल्लेखनीय निबंध कौन-कौन से हैं और उनकी विशेषताएँ क्या हैं? इससे हमें उन निबंधों को समझने और हिंदी की निबंध परंपरा के परिप्रेक्ष्य में उनका विश्लेषण और मूल्यांकन करने में मदद मिलेगी, जिन्हें हम इस खंड में आगे की इकाइयों में पढ़ेंगे।

हिंदी में निबंध की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है। हिंदी में पहला निबंध कब लिखा गया और किसने लिखा, इस पर कोई एक मत नहीं है। लेकिन कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य हैं जिन्हें निबंधों पर विचार करते हुए अवश्य दृष्टि में रखना चाहिए। हिंदी में निबंधों की शुरुआत, गद्य की अन्य कई विधाओं की तरह भारतेंदु युग से ही हुई। निबंधों के लेखन की शुरुआत के दो मुख्य कारण थे — एक प्रेस की स्थापना और दूसरे, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन। इन दोनों कारणों ने गद्य लेखन को प्रोत्साहित किया और गद्य लेखन में भी निबंध की रचना को विशेष प्रोत्साहन मिला क्योंकि इस विधा के माध्यम से लेखक अपनी बात पाठकों तक सीधे पहुँचा सकते थे। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जो गद्य लेखन सामने आया, उसकी भाषा यद्यपि अभी निर्माण की प्रक्रिया में थी, तथापि उसमें व्यक्त भावों और विचारों तथा उसमें अपनायी गयी शैलियों का महत्व कम नहीं है। निबंध की आरंभिक परंपरा में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्व है क्योंकि उन्होंने विषय, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर निबंधों में नये प्रयोग किये किंतु निबंधों को प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इस दौर में जहाँ एक ओर भाषा का मानक रूप निर्मित हुआ, वहीं दूसरी ओर चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी आया। इस दौर में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्व रहा है जिन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तर पर निबंधों को उच्च स्वरूप प्रदान किया। हिंदी निबंधों के विकास में रामचंद्र शुक्ल का वही महत्व है जो उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद का है। इसलिए हिंदी निबंध के विकास के केंद्र में आचार्य शुक्ल को मानते हुए हम उसे तीन चरणों में बाँट सकते हैं :

1 शुक्ल-पूर्व युग (1850 से 1920)
2 शुक्ल युग (1920 से 1940)
3 शुक्लोत्तर युग (1940 से आज तक)

इन चरणों को प्रवृत्तियों की दृष्टि से कई धाराओं में विभाजित किया जाता है। यहाँ हम इन तीनों चरणों का अलग-अलग विवेचन करेंगे।

33.4.1 शुक्ल-पूर्व युग (सन् 1850 से 1920)

हिंदी में निबंध लेखन की शुरुआत कब हुई और पहला निबंध कब लिखा गया और किसने लिखा यह बहुत स्पष्ट नहीं है। आमतौर पर माना जाता है कि निबंध लेखन की शुरुआत बालकृष्ण भट्ट से हुई। लेकिन मुख्य बात जो जानने की है वह यह कि हिंदी में निबंध लेखन की शुरुआत भारतेंदु युग से हुई। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1868 ई. (संवत् 1925) में 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन आरंभ किया। इसके प्रकाशन ने हिंदी में साहित्यिक लेखन को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। बाद में स्वयं भारतेंदु ने 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' और 'बालाबोधिनी' पत्रिका की भी शुरुआत की। भारतेंदु युग के ही कई अन्य लेखकों ने भी कई पत्र-पत्रिकाएँ शुरू कीं। इनमें प्रताप नारायण मिश्र द्वारा प्रकाशित 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप', उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का 'आनंदकादंबिनी' आदि प्रमुख हैं। उस युग में लिखे गये निबंध प्रायः इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे।

भारतेंदु युग (1875 से 1900) : भारतेंदु युग के निबंधों की मूल प्रेरणा अपने समाज के नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक उत्थान की चिंता थी इसलिए इस युग के निबंधकारों ने समाज सुधार, राष्ट्रप्रेम, देश भक्ति, अतीत के प्रति गौरव भावना, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया है। यह अवश्य है कि उस समय विदेशी शासन के विरुद्ध जन संघर्ष अभी संगठित नहीं हुआ था इसलिए लेखकों ने अंग्रेजी सत्ता के प्रति भक्ति का भी प्रदर्शन किया है, लेकिन राष्ट्र के विकास की चिंता और उसके प्रति गहरा लगाव भी बराबर व्यक्त हुआ है। भारतेंदु युग के निबंधकारों ने उक्त विषयों के अतिरिक्त ऐसे विषयों पर भी निबंध लिखे जिनमें उनकी जिंदादिली और विनोदवृत्ति का परिचय मिलता है। जैसे नाक, कान, भौं, धोखा, बुढ़ापा आदि विषयों पर निबंध लिखे गये। भारतेंदु युग के लेखकों की मूल प्रवृत्ति मनोविनोद की थी, इसलिए वे गंभीर से गंभीर विषय को हास्य और व्यंग्यपूर्ण शैली में सजीव बनाकर प्रस्तुत करते थे। उनके निबंधों में गूढ़ विवेचन का प्रायः अभाव मिलता है लेकिन उनमें जीवन के प्रति गहरी अनुरक्ति के दर्शन होते हैं। व्यक्तित्व का सहज समावेश होने के कारण इस दौर के निबंधों में आत्मपरकता भी पर्याप्त मात्रा में है।

भारतेंदु युग में हिंदी भाषा का कोई मानक रूप नहीं बना था। कहीं-कहीं व्याकरण की शिथिलता भी नज़र आती है। लेकिन बात को प्रभावशाली ढंग से कहना वे जानते थे, विशेष रूप से भाषा के माध्यम से व्यंग्य और विनोद उत्पन्न करने में तो वे सिद्धहस्त थे। मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग करने से निबंधों की भाषा प्राणवान बन गयी है। शब्द भंडार भी व्यापक है। तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ अरबी-फ़ारसी (उर्दू) के शब्दों की बहुतायत है। कुछ निबंध तो पूर्णतः उर्दू शैली में लिखे गये हैं।

इस युग के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवास दास, अंबिकादत्त व्यास, बालमुकुंद गुप्त, जगमोहनसिंह, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी आदि हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) का व्यक्तित्व युगांतकारी महत्व का सिद्ध हुआ। भारतेंदु ने इतिहास, पुरातत्व, धार्मिक, जीवनीपरक तथा साहित्यिक आदि कई विषयों पर निबंध लिखे। विषयों की विविधता उनके विस्तृत अध्ययन और व्यापक जीवनानुभवों का परिणाम थी। उनके निबंधों में जहाँ इतिहास, धर्म, संस्कृति और साहित्य की उनकी गहरी जानकारी का परिचय मिलता है, वहीं देशप्रेम, समाज सुधार की चिंता और अतीत के प्रति गौरव भाव भी प्रकट होता है। 'भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है।' 'लेवी प्राण लेवी' और 'जातीय संगीत' में राष्ट्र और समाज के प्रति उनकी गहरी निष्ठा व्यक्त हुई है तो 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'पाँचवें पैगंबर', 'क़ानून ताजीरात शौहर' जैसे निबंधों में उनकी राजनीतिक

चेतना के साथ ही व्यंग्य विनोद की क्षमता का पता लगता है। भारतेंदु के निबंधों की भाषा के कई रूप हैं — उर्दूनिष्ठ, संस्कृतनिष्ठ और बोलचाल की हिंदी। 'कानून ताजीरात शौहर' की भाषा उर्दूनिष्ठ है जिसका एक उदाहरण देखिए :

जो शौहर अपनी जोरू से लड़ना चाहे या लड़े या गैर शख्स जो उससे लड़ता हो उसकी इमदाद करे तो उसको किसी क़िस्म की कैद की सज़ा दी जायेगी लेकिन अगर अदालत की राय में यह जुर्म संगीन मालूम हो तो हब्सदवाम बअबूर दरयायशोर की सज़ा देने का भी अदालत को अख़्तियार है।

उपर्युक्त अंश की भाषा उर्दूनिष्ठ है, यह बिल्कुल स्पष्ट है और इसमें व्यंग्य-विनोद भी है। भाषा के एक अन्य रूप का उदाहरण भी देखिए :

भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु वे जनसाधारण को दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गाँव, गाँव में साधारण लोगों में प्रचार की जायँ।

(जातीय संगीत : भारतेंदु)

उपर्युक्त अंश की भाषा में संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है लेकिन इसकी सहजता उल्लेखनीय है। एक और बात जो ध्यान देने की है वह यह कि पहले के उद्धरण में कानूनी विषय का वर्णन है, इसलिए उसकी भाषा उर्दूनिष्ठ है, क्योंकि उस समय अदालतों की भाषा उर्दूनिष्ठ थी। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि भाषा के प्रति भारतेंदु का दृष्टिकोण यथार्थवादी था।

बालकृष्ण भट्ट (1844-1914) इस युग के एक अन्य प्रमुख निबंधकार हैं। इन्होंने लगभग एक हजार निबंध लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट ने बत्तीस वर्षों तक 'हिंदी प्रदीप' निकाला। उन्होंने समाज, साहित्य, धर्म, संस्कृति, रीति, प्रथा, भाव, कल्पना सभी क्षेत्रों से विषयों का चयन किया है। हास्य और विनोद तो प्रायः उस युग के सभी निबंधकारों की विशेषता थी, लेकिन भट्टजी के निबंधों में कल्पना, भावना और वैचारिकता का भी स्पर्श मिलता है। उनकी भाषा प्रायः बोलचाल के नज़दीक है। उनमें हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत के शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में है। इससे कहीं-कहीं भाषा बोझिल भी हुई है। उन्होंने 'चारुचरित्र', 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है', 'चरित्रपालन', 'प्रतिभा', 'आत्मनिर्भरता' जैसे विचारात्मक निबंध, 'आँसू', 'मुग्ध माधुरी', 'पुरुष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर हैं', 'कल्पना' आदि भावात्मक निबंध, 'शंकराचार्य और गुरुनानक देव' जैसे वर्णनात्मक, 'आँख', 'नाक', 'कान' जैसे सामान्य विषयों तथा 'इंगलिश पढ़े सो बाबू होय', 'दंभाख्यान', 'अकिल अजीरन रोग' जैसे व्यंग्य-विनोदपरक निबंध लिखे।

प्रतापनारायण मिश्र (1856-1894) में तीखे व्यंग्य और गहरे विनोद की वृत्ति थी, जिसका उल्लेख स्वयं रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में किया है। इनकी भाषा में 'व्यंगपूर्ण वक्रता' की मात्रा काफ़ी है। इसके लिए वे लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। मिश्रजी ने एक ओर 'भौं', 'बुढ़ापा', 'होली', 'धोखा', 'मरे को मारे शाह मदार' जैसे विनोद और व्यंग्यात्मक निबंध लिखे हैं तो दूसरी ओर उन्होंने 'शैवमूर्ति', 'विश्वास', 'नास्तिक' जैसे गंभीर विवेचनपरक निबंध भी लिखे हैं।

भारतेंदु युग के अत्यंत प्रतिभावान् निबंधकार बालमुकुंद गुप्त (1865-1907) की चर्चा भी आवश्यक है जिन्होंने द्विवेदी युग में भी महत्वपूर्ण लेखन किया था। उनके निबंधों में गहरा चिंतन, तीखा व्यंग्य, और मीठी हँसी का समावेश मिलता है। 'शिवशंभु का चिट्ठा' नाम से लिखे गए निबंध उनकी देशभक्ति की भावना के द्योतक तो हैं ही, व्यंग्य और गहरी विचारशीलता के भी परिचायक हैं।

द्विवेदी युग (1900 से 1920) : निबंधों के उत्थान का दूसरा दौर हमें द्विवेदी युग में दिखायी देता है। सन् 1900 में 'सरस्वती' का प्रकाशन आरंभ हुआ था। 1903 में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (1864-1938) इसके संपादक हुए और 1920 तक 'सरस्वती' का संपादन करते रहे। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य को प्रौढ़ता और नवीनता प्रदान की। उन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ निबंध लेखन को भी प्रोत्साहित किया। स्वयं उन्होंने निबंध लिखकर उच्चकोटि के निबंधों का आदर्श प्रस्तुत किया। द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' में "अनेक प्रकार के उपयोगी, ज्ञान-विषयक, ऐतिहासिक, पुरातत्व तथा समीक्षा संबंधी निबंध और लेख लिखे। उन्होंने गद्य की अनेक शैलियों का प्रवर्तन तथा भाषा का संस्कार किया। अंग्रेजी के निबंधकार 'बेकन' के निबंधों का अनुवाद भी 'बेकन विचार-रत्नावली' के नाम से प्रस्तुत किया, जिससे हिंदी के अन्य अनेक लेखकों को निबंध लिखने की प्रेरणा मिली।" (हिंदी साहित्य कोश, भाग 2; सं. डा. धीरेन्द्र वर्मा)।

इस युग के निबंध पत्र-पत्रिकाओं में अधिक प्रकाशित हुए। इनमें 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (1897), 'समालोचक' (1902), 'इंदु' (1909), 'मर्यादा' (1910), 'प्रभा' (1913) आदि प्रमुख हैं। इस युग में राष्ट्रीय चेतना और अधिक परिपक्व हो चुकी थी। राष्ट्रीय जागृति, विश्वबंधुता, सामाजिक एकता, अतीत गौरव तथा सांस्कृतिक नवजागरण की भावना को इस युग की प्रमुख पहचान कहा जाएगा। यही कारण है कि इस युग के "निबंधों में विषयों की विविधता, विचारों की गंभीरता और भाषा की सशक्तता तथा स्वच्छता अधिक मिलती है। जीवन को सांगोपांग और गहराई से देखने के कारण विनोद और हास्य की मात्रा कम होती गयी है और व्यंग्य, भावना के स्पर्श से तरल हो गया है।" (हिंदी साहित्य कोश) इस युग में में द्विवेदीजी ने भाषा के परिष्कार का महत्वपूर्ण कार्य किया। वे न तो अत्यधिक संस्कृतनिष्ठता के पक्ष में थे

और न अरबी-फ़ारसी के शब्दों से लदी भाषा के पक्ष में। हिंदी गद्य ने अपना स्वाभाविक और परिनिष्ठित रूप इसी युग में प्राप्त किया।

इस युग के निबंधकारों में बालमुकुंद गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदरदास, रामचंद्र शुक्ल, सरदार पूर्णसिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, माधवप्रसाद मिश्र आदि प्रमुख हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मुख्यतः विचारप्रधान निबंध लिखे हैं लेकिन उनमें गहरे विश्लेषण और तात्विक चिंतन का अभाव है। सरदार पूर्ण सिंह (1881-1931) ने सिर्फ छह निबंध लिखे हैं। इनके निबंध नैतिक तथा सामाजिक विषयों पर आधारित हैं। मानवतावादी दृष्टि इनकी प्रमुख विशेषता है। इनके निबंधों में 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम' तथा 'सच्ची वीरता' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गुलेरीजी (1883-1920) इतिहास, संस्कृति, साहित्य और भाषा के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने इन्हीं विषयों पर अत्यंत गवेषणापूर्ण और गंभीर लेखन किया, लेकिन इनकी शैली सरल और सरस है। इनके निबंधों में मार्मिक व्यंग्य भी व्यक्त हुआ है।

इसी दौर में रामचंद्र शुक्ल ने भी निबंधों की रचना की। उनके आरंभिक निबंधों में वे सभी विशेषताएँ बीज रूप में मिल जाती हैं जिनके कारण बाद में उनकी विशिष्ट पहचान बनी। शुक्लजी ने भी विविध विषयों पर निबंध लिखे लेकिन उनकी प्रवृत्ति गंभीर विवेचन और तीखे व्यंग्य की रही है। यही कारण है कि निबंधों में उनका चिंतक और मानवतावादी रूप उभरा है। शुक्लजी ने विषय, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से हिंदी निबंधों को उत्कृष्टता प्रदान की। निस्संदेह उन्हें हिंदी का सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहा जा सकता है। द्विवेदी युग के बाद के निबंधों का विकास उन्हीं के व्यक्तित्व से पहचाना जाता है।

33.4.2 शुक्ल युग (1920 से 1940)

द्विवेदी युग में गद्य भाषा के परिष्कार और संस्कार का कार्य संपन्न हो गया था। इसके बाद गद्य की भाषा में सृजनात्मक प्रयोग का कार्य आरंभ हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल (जिन्होंने आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया था) गद्य की भाषा को निखारने और जटिल से जटिल विषय, विचार और भाव को प्रस्तुत करने में सक्षम बनाने का उल्लेखनीय कार्य किया। यह वह दौर था जब कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद और काव्य के क्षेत्र में प्रसाद, निराला, पंत जैसे छायावादी सक्रिय थे। कथा और काव्य दोनों क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण कार्य हो रहा था, उसका प्रभाव भी निबंध लेखन पर पड़ा। स्वयं छायावादी कवियों और प्रेमचंद ने, विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे। छायावादी कवियों की गद्य भाषा में सरसता, भावप्रवणता, कल्पनाशीलता आदि गुण दिखायी देते हैं। प्रेमचंदजी के गद्य लेखन में वैचारिक स्पष्टता, तार्किकता, सरलता और सहजता के गुण हैं। इस युग की गद्य भाषा पर इन दोनों तरह के लेखन का असर पड़ा। शुक्लजी के निबंधों में गंभीर वैचारिक बोध, स्पष्ट चिंतन, सिद्धांत और व्यवहार की पूर्ण एकता तथा संवेदनशील हृदय के दर्शन होते हैं। उनकी भाषा उनके मंतव्य को पूरी तरह संप्रेषित करने में सक्षम है।

इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) ही हैं। शुक्लजी ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे जो 'चिंतामणि' के तीन भागों में संकलित हैं। उन्होंने भय, क्रोध, श्रद्धा, भक्ति, घृणा आदि विभिन्न मनोभावों पर दस निबंध लिखे जिनमें उन्होंने इन मनोभावों के सामाजिक पक्ष का विश्लेषण किया। शुक्लजी ने साहित्य के गंभीर पक्षों पर भी लिखा। उनके ऐसे निबंधों में गंभीर चिंतन, सैद्धांतिक विवेचना और तर्कपूर्ण व्याख्या तो मिलती ही है, भावुक हृदय के दर्शन भी होते हैं। इस युग के निबंधकारों में देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम की भावनाओं के साथ व्यापक मानवीय दृष्टिकोण भी रहा है। यह विशेषता हम शुक्लजी के निबंधों में भी पाते हैं। शुक्लयुग के निबंधकारों में गुलाबराय, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, निराला, महादेवी वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन, रामनाथ सुमन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं।

शुक्लजी के बाद हिंदी निबंधों का विकास अधिक तेजी से हुआ। निबंध लेखन की कई ऐसी धाराएँ विकसित हुईं जिन्होंने अपनी अलग पहचान कायम की, जैसे ललित निबंध और व्यंग्य निबंध। अब आगे हम शुक्लोत्तर युग में निबंधों के विकास पर विचार करेंगे।

33.4.3 शुक्लोत्तर युग (1940 से आज तक)

शुक्लयुग के बाद के दौर में निबंध लेखन की कई शैलियों ने अपनी अलग परंपराएँ कायम कीं। इस युग में दो प्रमुख शैलियों ने निबंध लेखन को उत्कर्ष पर पहुँचाया। ललित निबंध और व्यंग्य निबंध। ललित निबंध और व्यंग्य निबंध क्या हैं, यह हम आपको पहले बता चुके हैं। यहाँ हम इस दौर में निबंधों के विकास का उनकी कुछ प्रमुख शैलियों के अंतर्गत विचार करेंगे। ये शैलियाँ हैं:

1 वैचारिक निबंध
2 ललित निबंध
3 व्यंग्य निबंध

द्विवेदी युग और शुक्लयुग के निबंधों में वैयक्तिक स्पर्श का प्रायः अभाव रहा। छायावादी कवियों द्वारा लिखे गये गद्य में अवश्य वैयक्तिकता और तरलता का स्पर्श था, लेकिन इस पूरे दौर में भारतेंदु युग के लेखकों की भाँति आत्मपरकता और जिंदादिली का प्रायः अभाव ही रहा। शुक्लयुग के बाद के दौर में एक बार फिर वैयक्तिकता का समावेश हुआ। इस वैयक्तिकता में भावुकता नहीं थी बल्कि इसके विपरीत इसमें भाव और विचार का संतुलित रूप व्यक्त हुआ। इस दौर के कई निबंधकारों

ने शुक्लजी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए गहन विश्लेषणात्मक निबंध भी लिखे। भारतेंदु युग के निबंधकारों का महत्वपूर्ण गुण था, सामाजिक समस्याओं के प्रति सजगता और व्यंग्य विनोद। इस परंपरा को व्यंग्य निबंधकारों ने आगे बढ़ाया। इस प्रकार शुक्लोत्तर युग ने निबंध की अब तक की परंपरा को अपने में आत्मसात् करते हुए उसका विकास किया। अब आगे हम इस युग के निबंधों की प्रमुख शैलियों के विकास का अध्ययन करेंगे।

वैचारिक निबंध : शुक्लजी के बाद भी हिंदी में वैचारिक निबंधों की परंपरा यथावत् कायम रही। इस दौर के वैचारिक निबंधों में वैचारिक स्पष्टता और तर्कपूर्ण चिंतन के साथ विचारधारात्मक आग्रह भी व्यक्त हुए। डॉ. संपूर्णानंद, जैनेंद्रकुमार, रामविलास शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, नगेंद्र आदि के निबंधों से उनकी वैचारिक दृष्टि का भी परिचय मिलता है। इन निबंधकारों ने समसामयिक विषयों पर अत्यंत प्रभावशाली निबंध लिखे हैं।

प्रसिद्ध कथाकार जैनेंद्रकुमार ने सांस्कृतिक, नैतिक और राजनीतिक चिंतन को अपनी विशिष्ट शैली में विश्लेषणात्मक निबंधों के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने कहीं-कहीं प्रश्नोत्तर और साक्षात्कार की पद्धति भी अपनायी। उनके निबंधों की खास विशेषता यह है कि वे समस्या के दार्शनिक पहलू पर अपने लेखन को केंद्रित करते हैं और उन्हें जीवन के बड़े सत्य से जोड़ देते हैं। उनकी शैली की यह सीमा भी है कि वह रोचक होते हुए भी कहीं-कहीं जटिल और उलझाव से युक्त हो जाती है। उनके निबंध 'समय और हम' पुस्तक में संकलित हैं। डॉ. संपूर्णानंद के निबंधों में दार्शनिक विवेचन हैं, लेकिन उनमें जटिलता नहीं हैं। डॉ. रामविलास शर्मा के निबंधों में प्रेमचंद और शुक्लजी दोनों की विशेषताएँ मौजूद है। विश्लेषणात्मकता के साथ-साथ भाषा की सरलता और सहजता उनके विशेष गुण हैं। वे अपनी बात पूरी दृढ़ता से और दो-टूक ढंग से कहते हैं। इसलिए उनकी बातों को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। उनके यहाँ तीक्ष्ण व्यंग्य भी है जो उनकी शैली को रोचक बनाता है। उन्होंने ज्यादातर साहित्यिक विषयों पर आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं लेकिन कुछ निबंध उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक आदि विषयों पर भी लिखें हैं। ऐसे निबंध 'विराम चिह्न' में संकलित हैं। डा. नगेन्द्र ने भी मुख्यतः साहित्यिक विषयों पर निबंध लिखे हैं, कुछ यात्रा संबंधी निबंध भी हैं। "नगेन्द्र सुलझे हुए विचारक और गहरे विश्लेषक हैं, उलझन उनमें कहीं नहीं है। अपनी सूझबूझ तथा पकड़ के कारण वे गहराई में पैठकर केवल विश्लेषण ही नहीं करते, बल्कि नयी उद्भावनाओं से अपने विवेचन को विचारोत्तेजक भी बनाते जाते है।" (हिंदी साहित्य कोश) उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं—विचार और विवेचन (1944), विचार और अनुभूति (1949), आस्था के चरण (1969) आदि।

ललित निबंध : ललित निबंध में लालित्य अर्थात् शैली के उत्कर्ष पर विशेष बल होता है। निबंधकार अपने भावों और विचारों को इस रूप में प्रस्तुत करना चाहता है जो सरस, अनुभूतिजन्य, आत्मीय और रोचक लगे। जिसमें भाषा शुष्क न हो बल्कि कल्पनाशीलता, सरसता और सहजता उसका गुण हो। ललित निबंधकार गहरे विश्लेषण, उबाऊ वर्णन, जटिल वाक्य-रचना से बचता है। वह अपने व्यक्तित्व का परिचय भी कदम-कदम पर देता चलता है। वस्तुतः उसकी शैली उसके रचनाकार के व्यक्तित्व का ही आईना होती है। लेकिन वह आत्मस्थापना का प्रयास भी नहीं करता।

ललित निबंधकारों में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का प्रमुख स्थान है। उनके निबंधों में मानवतावादी जीवन-दर्शन और संवेदनशील हृदय दोनों के दर्शन होते हैं। उनका अध्ययन क्षेत्र बहुत विशाल था। उन्होंने संस्कृत के प्राचीन साहित्य के साथ-साथ पालि, अपभ्रंश और बंगला आदि भाषाओं के साहित्य और मध्यकालीन हिंदी साहित्य का गहन अध्ययन किया था, लेकिन उनकी दृष्टि आधुनिक थी, इसलिए उनके निबंधों में पांडित्य के साथ-साथ नवीन चिंतन दृष्टि के भी दर्शन होते हैं। द्विवेदीजी ने अपने निबंधों में विचारों को शुष्क रूप में कभी प्रस्तुत नहीं किया बल्कि जीवनानुभवों और गहन ज्ञान के आलोक में उसे नया रूप प्रदान किया। उनके निबंधों की भाषा में लचीलापन अधिक है। वे देशज शब्दों के साथ संस्कृत के प्रचलित और अप्रचलित शब्दों का सामंजस्य भी बैठा लेते हैं और भाषा का यह रूप कहीं खटकता भी नहीं है। उनका वाक्य-विन्यास भी ललित एवं भावपूर्ण गद्य के अनुकूल हैं। उनके प्रमुख निबंध-संग्रह 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', आदि हैं। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त ललित निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय आदि प्रमुख हैं।

विद्यानिवास मिश्र संस्कृत भाषा और साहित्य के विद्वान हैं किंतु उनकी उतनी ही गहरी पैठ लोक साहित्य और लोक संस्कृति में भी है जिसके कारण उनके निबंधों में पांडित्य के साथ-साथ लोक जीवन का भी आनंद मिलता है। उनकी शैली भावपूर्ण और काव्यमय है तथा भाषा भी वैसी ही काव्यमय और सरस है। उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं : 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'तुम चंदन हम पानी', 'तमाल के झरोखे से', 'संचारिणी', 'लागौ रंग हरी', आदि।

व्यंग्य निबंध : हिंदी में व्यंग्य निबंधों की शुरुआत भारतेंदु युग में हुई थी। उस दौर में स्वयं भारतेंदु ने तथा प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने कई व्यंग्य निबंध लिखे थे। लेकिन बाद में व्यंग्य निबंध लिखने की परंपरा शिथिल हो गई; यद्यपि आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाब राय, रामविलास शर्मा आदि के निबंधों में व्यंग्य और विनोद का पुट भी बना रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दौर में व्यंग्य निबंध के एक नये युग की शुरुआत हुई। इसका श्रेय हरिशंकर परसाई को है जिन्होंने व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा की तरह प्रतिष्ठित किया। व्यंग्य निबंध में निबंधकार समाज की किसी समस्या को अपने निबंध का विषय बनाता है, लेकिन वह उसका न तो वैचारिक दृष्टि से विवेचन करता है और न ही उसका भावात्मक, वर्णन करता है। वह समस्या की गहराई में जाकर उसके अंतर्विरोधी पहलुओं को उद्घाटित करता है, जो सामान्यतः हमारी नज़र से ओझल हो जाते हैं। उन अंतर्विरोधों को वह ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है जिससे कि उससे नये अर्थ की व्यंजना हो। यह अर्थ सहज नहीं होता, उसमें एक तरह का बाँकपन होता है। इसके लिए रचनाकार एक विशेष तरह की भाषाशैली अपनाता है। वह ऐसे शब्दों का चयन करता है जो व्यंग्य को ध्वनित करे, वह वाक्यों को इस रूप में गठित क-

उससे व्यंग्य को व्यक्त करने वाला अर्थ निकले। व्यंग्य निबंधकार प्रायः समसामयिक विषयों पर लिखता है और उन्हें अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है। व्यंग्य से पाठक को एक नयी दृष्टि मिलती है और सामाजिक जागरुकता भी पैदा होती है। रूढ़िवाद, अंधविश्वास आदि पर लिखे गये निबंधों से पाठकों को सामाजिक सोद्देश्यता का संदेश भी मिलता है। व्यंग्य की लोकप्रियता का ही यह परिणाम है कि आज कई समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में व्यंग्य का एक स्थायी स्तंभ रहता है। हिंदी व्यंग्य लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, गोपालप्रसाद व्यास, बरसानेलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं। डॉ. नामवरसिंह का 'बकलम खुद' इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है।

इस दौर में साहित्यिक, भावप्रवण, चिंतनप्रधान उच्चकोटि के निबंध लिखने वाले लेखकों में 'अज्ञेय', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', प्रभाकर माचवे, शिवप्रसाद सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय आदि प्रमुख हैं।

हिंदी निबंध लेखन की परंपरा अत्यंत समृद्ध है। लेकिन इधर के वर्षों में इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन बहुत कम हुआ है। ललित, भावात्मक, विचारात्मक निबंध लेखन की प्रवृत्ति कम हुई है और जो लिख भी रहे हैं वे पुरानी पीढ़ी के ही लेखक हैं। नये लेखकों की निबंध लेखन की ओर से यह उदासीनता अत्यंत चिंताजनक है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थानों में लिखिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

11 निम्नलिखित विशेषताएँ किस युग के निबंधों पर लागू होती हैं? उस युग और उसके एक प्रमुख निबंधकार का नाम बताइए।

क) जिंदादिली और विनोदवृत्ति

युग का नाम ....

निबंधकार का नाम ....

ख) वैचारिक गंभीरता और भाषा के परिष्कार का कार्य

युग का नाम ....

निबंधकार का नाम ....

ग) गहन वैचारिक विश्लेषण और व्यापक मानवीय दृष्टिकोण

युग का नाम ....

निबंधकार का नाम ....

12 निम्नलिखित निबंधकारों के निबंधों की कोई दो विशेषताएँ बताइए।

क) हजारीप्रसाद द्विवेदी

....

....

ख) भारतेंदु हरिश्चंद्र

....

....

ग) विद्यानिवास मिश्र

....

....

घ) रामविलास शर्मा

....

....

13 व्यंग्य निबंध की कोई दो विशेषताएँ बताइए और इस शैली के दो प्रमुख निबंधकारों के नाम लिखिए।

....

....

....

....

14 शुक्लयुग के निबंधों की भाषा की विशेषताएँ तीन पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

15 हिंदी निबंधों के विकास में महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान के कम-से-कम दो पक्षों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

अभ्यास

3 ललित निबंधों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए हिंदी ललित निबंध परंपरा का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

33.5 सारांश

- निबंध साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। इसमें गद्य की भाषा का उत्कृष्ट रूप निखर कर आता है। निबंध में लेखक अपने भावों और विचारों को आत्मपरक रूप में प्रभावशाली भाषा और शैली में ढालकर व्यक्त करता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निबंध का अर्थ और परिभाषा बता सकते हैं।
- निबंध के चार मुख्य अंग है : 1) भावों और विचारों की अभिव्यक्ति, 2) लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव, 3) शैली, और 4) भाषा। अब आप निबंध लेखन में इन चारों के महत्व का उल्लेख कर सकेंगे।
- विषयवस्तु, लेखकीय प्रभाव, शैली और भाषा के आधार पर हिंदी निबंध के कई भेद किये जा सकते हैं। ऐसे कुछ भेद हैं : विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, ललित, व्यंग्य, आत्मपरक, वस्तुपरक आदि। अब आप निबंध के विभिन्न भेदों की विशेषताएँ भी बता सकेंगे।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी निबंध परंपरा के केंद्रीय व्यक्तित्व है। उनको केंद्र में रखकर निबंध परंपरा को तीन युगों में विभाजित किया गया है : शुक्लपूर्व युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग। आप इन युगों की प्रमुख विशेषताओं और प्रमुख निबंधकारों की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।

33.6 शब्दावली

पराकाष्ठा : काष्ठा - सीमा, पराकाष्ठा - चरम सीमा।
चहुँमुखी विकास : चारों ओर से या सभी पक्षों का विकास।
आत्मस्थापना : अपने आपको स्थापित करना।

वस्तुपरकता : वस्तु, स्थिति आदि के बाहरी रूप के बारे में।
आत्मपरकता : वस्तु, स्थिति आदि के निजी रूप के बारे में।
लालित्य : ललित का अर्थ है, सुंदर, लालित्य का अर्थ है सुंदरता। निबंध में कथ्य की सुंदरता, रम्यता और उत्कृष्टता उसका लालित्य है।
अपक्व रचना : पक्व का अर्थ पका हुआ, अपक्व का अर्थ है कच्चा। अपक्व रचना अर्थात् ऐसी रचना जिसमें कच्चापन हो।
स्वच्छंदता : नियमों से मुक्त। वह रचना जो नियमों से बंधी न हो।
निर्वैयक्तिक : वैयक्तिक अर्थात् व्यक्तिगत्। निर्वैयक्तिक अर्थात् जो व्यक्तिपरकता से रहित हो।
व्यंग्यपूर्ण वक्रता : कथन में ऐसा बांकपन जिससे व्यंग्य उत्पन्न हो।
आत्मप्रकाशन : अपने आप को प्रकट करने की प्रवृत्ति।
पूर्वाग्रह : अपने पहले के मत के प्रति आग्रह बनाये रखना। किसी विषय में पहले ही कोई धारणा बना लेना और उसी की हठ पकड़ना।
संप्रेष्य : जो दूसरों तक पहुँचाया जा सके अर्थात् अपना बात को दूसरों तक सफलतापूर्वक पहुँचाना।
सांगोपांग : अंगों तथा उप अंगों से युक्त अर्थात् संपूर्ण।
तात्विक : जिसमें तत्व अर्थात् मूलभूत बातों पर विशेष ध्यान दिया गया हो।
गवेषणापूर्ण : खोजपूर्ण अथवा शोधपरक।
प्रकांड : बहुत बड़ा, जैसे, प्रकांड पंडित।
काव्यमय : काव्य के गुणों से युक्त।

33.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1 क) गलत ख) सही ग) गलत घ) सही
2 क) विचारात्मक और भावात्मक आधार
ख) लेखकीय व्यक्तित्व
ग) शैली घ) भाषा
3 'एसे' का अर्थ है अपने विचारों को व्यक्त करने की व्यवस्थित प्रक्रिया जबकि 'निबंध' का अर्थ है विचारों को व्यवस्थित रूप से बाँधकर विशिष्ट रूप देना।
4 अपने उत्तर को 33.2.1 में दी गयी परिभाषा से मिलाइए।
5 i) विचारों और भावों को प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने योग्य भाषा।
ii) लेखकीय विशिष्टता को व्यक्त करने वाली भाषा।
iii) संप्रेषणीयता।
6 क) आत्मपरक निबंध ख) विश्लेषणात्मक निबंध
ग) समास शैली घ) ललित निबंध
ङ) भावात्मक निबंध
7 क) विचारात्मक निबंध और भावात्मक निबंध।
ख) आत्मपरक निबंध और वस्तुपरक निबंध।
ग) वर्णनात्मक निबंध और विश्लेषणात्मक निबंध **(प्र. 22 पर दिये गए भेदों में से किन्हीं दो का उल्लेख करें)**
8 i) व्यापक मानवीय रुचि उत्पन्न करने की क्षमता।
ii) आत्मीयता और खुलेपन का एहसास।
iii) शैली द्वारा सौंदर्य उत्पन्न करना।
9 अपने उत्तर को 33.3.3 में दी गयी व्याख्या से मिलाइए।
10 i) विषयवस्तु के आधार पर;
ii) लेखकीय विशिष्टता के आधार पर; और
iii) शैली के आधार पर।
11 क) भारतेंदु युग — भारतेंदु हरिश्चंद्र और प्रतापनारायण मिश्र
ख) द्विवेदी युग — महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरदार पूर्ण सिंह
ग) शुक्ल युग — रामचंद्र शुक्ल, गुलाबराय
12 क) हजारी प्रसाद द्विवेदी — 1 पांडित्य
2 मानवतावादी जीवन दर्शन
3 भावपूर्ण भाषा
ख) भारतेंदु हरिश्चंद्र — 1 राष्ट्रप्रेम
2 विषयानुकूल भाषा
3 समाज सुधार

ग) विद्यानिवास मिश्र — 1 लोक संस्कृति का प्रभाव
2 पांडित्य
3 काव्यमय भाषा

घ) रामविलास शर्मा — 1 विश्लेषणात्मकता
2 दो टूक ढंग से अपनी बात कहना
3 बोलचाल की भाषा

13 i) सामाजिक समस्याओं को विषय बनाना।
ii) समस्याओं में निहित अंतर्विरोधों को उजागर करना।
iii) भाषा में व्यंजना शक्ति पैदा करना

लेखकः हरिशंकर परसाई।
शरद जोशी
रवींद्रनाथ त्यागी

14 33.4.2 को पढ़कर अपना उत्तर मिलाइए।

15 i) भाषा का परिष्कार
ii) निबंध लेखन को प्रोत्साहन

अभ्यास

1 देखिए उपभाग 33.2.4
2 देखिए उपभाग 33.3.2
3 देखिए उपभाग 33.4.3 का 'ललित निबंध' अंश।

इकाई 34 बातचीत (बालकृष्ण भट्ट) : वाचन एवं विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य
34.1 प्रस्तावना
34.2 निबंध का वाचन : बातचीत
34.3 निबंध का सार
34.4 संदर्भ सहित व्याख्या
34.5 अंतर्वस्तु
34.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
34.7 संरचना शिल्प
34.8 प्रतिपाद्य
34.9 सारांश
34.10 शब्दावली
34.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

34.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम पंडित बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'बातचीत' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- निबंध की विषयवस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- निबंध के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे;
- निबंध की अंतर्वस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे;
- भाषा और शैली की दृष्टि से निबंध की व्याख्या कर सकेंगे; और
- निबंध के प्रतिपाद्य का उल्लेख कर सकेंगे।

34.1 प्रस्तावना

आप इस इकाई में 'बातचीत' निबंध का अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पहले की इकाई में आपने निबंध के स्वरूप और हिंदी निबंधों के विकास का अध्ययन किया था। उक्त इकाई को पढ़ने से यह स्पष्ट हो गया होगा कि निबंध किसे कहते हैं और निबंध की क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं। इन्हीं के आधार पर हम 'बातचीत' की विशेषताओं को जानने की कोशिश करेंगे। आरंभ में आप निबंध का वाचन करेंगे, बाद में निबंध का सार पढ़ेंगे ताकि आपके सामने यह स्पष्ट हो सके कि इस निबंध का मुख्य कथ्य क्या है। इसके बाद आप निबंध के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या पढ़ेंगे और संरचनात्मक विशेषताओं को भी जानेंगे। ~~निबंध की विषयवस्तु~~ की विशेषताओं, लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव और भाषा-शैली की दृष्टि से निबंध का विश्लेषण भी इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार आप निबंध की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

यह निबंध पंडित बालकृष्ण भट्ट का लिखा हुआ है। बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युग के महत्वपूर्ण लेखक हैं। इनका जन्म 1844 ई. में हुआ था और निधन 1914 ई. में। आपने सन् 1877 ई. में अपने संपादन में 'हिंदी प्रदीप' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया था जो लगभग बत्तीस वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। भारतेंदु युग की पत्रिकाओं में 'हिंदी प्रदीप' का महत्वपूर्ण स्थान था। पं. बालकृष्ण भट्ट ने निबंधों के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। उन्होंने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे हैं। उन्होंने समाज, साहित्य, धर्म, संस्कृति, भाव, कल्पना आदि विषयों पर अत्यंत प्रभावशाली निबंध लिखे हैं। भट्ट जी के निबंधों में कल्पना, भावना, वैचारिकता के साथ-साथ हास्य-विनोद का स्पर्श भी मिलता है। 'बातचीत' उनका विचार प्रधान निबंध है। इसकी विशेषताओं से आप इकाई के अध्ययन के दौरान परिचित होंगे ही। सबसे पहले आप इस निबंध का वाचन कीजिए।

34.2 निबंध का वाचन : बातचीत

वाक्शक्ति का महत्त्व

स्पीच की विशेषता

इसे तो सभी स्वीकार करेंगे कि अनेक प्रकार की शक्तियाँ जो वरदान की भांति ईश्वर ने मनुष्यों को दी हैं उनमें वाक्शक्ति भी एक है। यदि मनुष्य की और और इन्द्रियाँ अपनी-अपनी शक्तियों से **अविकल** रहतीं और वाक्शक्ति उसमें न होती तो हम नहीं जानते इस गूंगी सृष्टि का क्या हाल होता। सब लोग लुंज-पुंज से हो मानों कोने में बैठा दिये गये होते और जो कुछ सुख-दुःख का अनुभव हम अपनी दूसरी दूसरी इन्द्रियों के द्वारा करते उसे **अवाक्** होने के कारण आपस में एक दूसरे से कुछ न कह सुन सकते। इस वाक्शक्ति के अनेक फ़ायदों में **"स्पीच"** वक्तृता और बातचीत दोनों हैं। किन्तु स्पीच से, बातचीत से कुछ ढंग ही निराला है। बातचीत में वक्ता को नाज़-नखरा ज़ाहिर करने का मौ‌का नहीं दिया जाता कि वह एक बड़े अन्दाज़ से गिन-गिन कर पाँव रखता हुआ **पुलपिट** पर जा खड़ा हो और **पुण्याहवाचन** या **नान्दीपाठ** की भांति घड़ियों तक साहबान **मजलिस**, चेयरमैन, लेडीज़ एण्ड जेंटिलमेन की बहुत सी स्तुति कर कराय तब किसी तरह वक्तृता का आरम्भ किया गया। जहाँ कोई मर्म या नोक की कोई चुटीली बात वक्ता महाशय के मुख से निकली कि तालि-ध्वनि से कमरा गूंज उठा। इसलिये वक्ता को **ख़ामख़ाह** ढूंढ़ कर कोई ऐसा मौक़ा अपनी वक्तृता में लाना ही पड़ता है जिसमें करतालध्वनि अवश्य हो।

साधारण बातचीत

वही हमारी साधारण बातचीत का कुछ ऐसा घरेलू ढंग है कि उसमें न करतालध्वनि का कोई मौक़ा है न लोगों को क़हक़हे उड़ाने की कोई बात उसमें रहती है। हम तुम दो आदमी प्रेमपूर्वक **संलाप** कर रहे हैं। कोई चुटीली बात आ गई हँस पड़े तो मुस्कराहट से ओठों का केवल **फरक उठना** ही इस हँसी की अन्तिम सीमा है। स्पीच का उद्देश्य अपने सुनने वालों के मन में जोश और उत्साह पैदा कर देना है। घरेलू बातचीत मन रमाने का एक ढंग है। इसमें स्पीच की वह सब संजीदगी **बेक़दर** हो धक्के खाती फिरती है।

बातचीत का महत्तव

जहाँ आदमी को अपनी ज़िन्दगी मज़ेदार बनाने के लिये खाने, पीने, चलने, फिरने आदि की ज़रूरत है वहाँ बातचीत की भी हमको अत्यन्त आवश्यकता है। जो कुछ मवाद या धुवाँ जमा रहता है वह बातचीत के ज़रिये भाप बन बाहर निकल पड़ता है। चित्त हलका और स्वच्छ हो परम आनंद में मग्न हो जाता है। बातचीत का भी एक खास तरह का मज़ा होता है। जिनको बातचीत करने की लत पड़ जाती है वे इसके पीछे खाना-पीना भी छोड़ देते हैं। अपना बड़ा हर्ज कर देना उन्हें पसंद आता है पर बातचीत का मज़ा नहीं खोया चाहते। **राबिनसन क्रूसो**[1] का किस्सा बहुधा लोगों ने पढ़ा होगा जिसे 16 वर्ष तक मनुष्य का मुख देखने को भी नहीं मिला। कुत्ता, बिल्ली, आदि जानवरों के बीच में रहा कि 16 वर्ष के उपरान्त जब उसने फ्राइडे के मुख से एक बात सुनी। यद्यपि इसने अपनी जंगली बोली में कहा था, उस समय राबिनसन को ऐसा आनन्द हुआ मानों इसने नये सिरे से **फिरके आदमी** का चोला पाया। इससे सिद्ध होता है मनुष्य की वाक्-शक्ति में कहां तक लुभा लेने की ताक़त है। जिनसे केवल पत्र-व्यवहार है, कभी एक बार भी साक्षात्कार नहीं हुआ उन्हें अपने प्रेमी से कितनी लालसा बात करने की रहती है। अपना **आभ्यन्तरिक** भाव दूसरे को प्रकट करना और उसका आशय आप ग्रहण कर लेना केवल शब्दों ही के द्वारा हो सकता है। सच है—

"तामर्द सखुन गुफ़्ता बाशद-ऐबो हुनरश निहुफ़्ता बाशद" [2]

"तावच्च शोभतेमूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषते" [3]

बेन जानसन[4] का यह कहना है कि बोलने से ही मनुष्य के रूप का साक्षात्कार होता है बहुत ही उचित बोध होता है।

दो में बातचीत

इस बातचीत की सीमा दो से लेकर वहाँ तक रक्खी जा सकती है जितनों की जमात मिटिंग या सभा न समझ ली जाय। **एडीसन**[5] का मत है असल बातचीत सिर्फ़ दो में हो सकती है। जिसका तात्पर्य यह हुआ कि जब दो आदमी होते हैं तभी अपना दिल दूसरे के सामने खोलते हैं। जब तीन हुए तब वह दो की बात कोसों दूर गई। कहा है —

"षट् कर्णे भिद्यते मंत्रः" [6]

तीन में बातचीत

दूसरे, यह किसी तीसरे आदमी के आ जाते ही या वे दोनों **हिजाब** में आय अपनी बातचीत से निरस्त हो बैठेंगे या उसे निपट मूर्ख और अंजान समझ बनाने लगेंगे। इसी से—

अविकल: अखंड/ज्यों की त्यों; **अवाक्:** वाक् अर्थात् वाणी से हीन या वाणी के बिन। गूंगे; **स्पीच** (अंग्रेजी शब्द) : बोलना, भाषण। **पुलपिट:** मंच; **पुण्याहवाचन:** विवाह के समय जो मंगल श्लोक पढ़े जाते हैं; **नांदीपाठ:** वह मंगल श्लोक जिसका पाठ सूत्रधार नाटक के आरंभ में करता है; **मजलिस:** सभा या गोष्ठी; **ख़ामख़ाह** (ख़्वाहमख़्वाह) : चाहे या अनचाहे; **संलाप:** बातचीत; **फरक** (फड़क) **उठना** (मुहावरा) : प्रसन्न होना (यहाँ फड़क उठने का अर्थ होंठों का थोड़ा-थोड़ा हिलना है); **बेक़दर** (बेक़द्र) : जिसकी कोई पूछ न हो, अनादृत। **फिरके आदमी** : आदमी की जमात; **आभ्यन्तरिक** : भीतरी; **हिजाब** : लज्जा।

1 राबिनसन क्रूसो: डेनियल डेफो (1660-1731) के इसी नाम के अंग्रेजी उपन्यास का नायक। राबिनसन क्रूसो की रचना 1719 में हुई।

2 जब तक कोई व्यक्ति बोलता नहीं तब तक उसकी ताकत या कमज़ोरी का पता नहीं चलता।

3 मूर्ख की शोभा तब तक ही रहती है जब तक वह बोलता नहीं अर्थात् बोलने पर उसकी मूर्खता प्रकट हो जाती है।

4 अंग्रेजी भाषा के कवि और नाटककार (1572-1637)।

5 पूरा नाम जोसेफ एडिसन (1672-1719) अंग्रेजी के निबंधकार।

6 छह कानों में पड़ी हुई बात गुप्त नहीं रहती।

"द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्"[1]

लिखा है। जैसा गरम दूध और ठण्डे पानी के दो बरतन पास सॉंट के रक्खे जॉंय तो एक का असर दूसरे में पहुंचता है अर्थात् दूध ठण्डा हो जाता है और पानी गरम। वैसे ही दो आदमी पास बैठे हों तो एक का गुप्त असर दूसरे पर पहुंच जाता है, चाहे एक दूसरे को देखे भी नहीं। तब बोलने की कौन कहे। पर एक का दूसरे पर असर होना शुरू हो जाता है। एक के असर होगा इसे कौन न स्वीकार करेगा। अस्तु, अब इस बात को तीन आदमियों के समय में देखना चाहिये। मानों एक से त्रिकोण सा बन जाता है। तीनों का चित्त मानों तीन कोण हैं और तीनों के मनोवृत्ति के प्रसरण की धारा मानों उस त्रिकोण की तीन रेखायें हैं। गुप्त चुप असर तो उन तीनों में परस्पर होता ही है। जो बातचीत तीनों में की गई वह मानों अँगूठी में नग सी जड़ जाती है। उपरान्त जब चार आदमी हुए तब **बेतकल्लुफ़ी** का बिल्कुल स्थान नहीं रहता। खुलके बातें न होंगी। जो कुछ बातचीत की जायगी वह **"फ़ार्मेलिटी"** गौरव और संजीदगी के लच्छे में सनी हुई। चार से अधिक की बातचीत तो केवल **रामरमौवल** कहलावेगी। उसे हम संलाप नहीं कह सकते।

चार में बातचीत

इस बातचीत के अनेक भेद हैं। दो बुड्ढों की बातचीत प्रायः ज़माने की शिकायत पर हुआ करती है। बाबा आदम के समय का ऐसा दास्तान शुरू करते हैं जिनमें चार सच तो दस झूठ। एक बार उनकी बातचीत का घोड़ा छुट जाना चाहिए **पहरों** बीत जाने पर भी अन्त न होगा। प्रायः अंग्रेजी राज्य पर देश और पुराने समय की बुरी से बुरी रीति-नीति का अनुमोदन और इस समय के सब भाँति लायक़ नौजवानों की निन्दा उनकी बातचीत का मुख्य प्रकरण होगा। पढ़े लिखे हुए तो शेक्सपियर,[2] **मिलटन**,[3] **मिल**[4] और **स्पेन्सर**[5] उनके जीभ के आगे नाचा करेंगे। अपनी **लियाक़त** के नशे में चूरचूर **'हमचुनी दीगरेनेस्त'**। अक्खड़ कुश्तीबाज़ हुए तो अपनी पहलवानी और अक्खड़पन की चर्चा छोड़ेंगे। **आशिकीन** हुए तो अपने-अपने प्रेमपात्री की प्रशंसा तथा आशिकीन बनने की **हिमाक़त** की डींग मारेंगे। दो **ज्ञात यौवना** हम सहेलियों की बातचीत का कुछ ज़ायक़ा ही निराला है। इसका समुद्र मानों उमड़ा चला आ रहा है। इसका पूरा स्वाद उन्हीं से पूछना चाहिये जिन्हें ऐसों की रसरानी बातें सुनने को कभी भाग्य लड़ा है।

बुड्ढों में बातचीत

युवतियों की बातचीत

"प्रजल्पन्मत्पदे लग्नः कान्तः किं? नहि नूपुरः"[6]

वुढ़ियाओं की बातचीत का मुख्य प्रकरण बहू बेटी वाली हुई तो अपनी बहुओं या बेटों का गिला शिकवा होगा या बिरादराने का कोई ऐसा **रामरसरा** छेड़ बैठेंगी कि बात करते-करते अन्त में **खोढ़े दाँत** निकाल लड़ने लगेंगी। लड़कों की बातचीत खिलाड़ी हुए तो अपनी-अपनी आवारगी तारीफ करने के बाद कोई ऐसी सलाह गाँठेंगे जिसमें उनको अपनी शैतानी ज़ाहिर करने का पूरा मौका मिले। स्कूल के लड़कों की बातचीत का उद्देश्य अपने उस्ताद की शिकायत या तारीफ़ या अपने सहपाठियों में किसी के गुन-औगुन का कथोपकथन होता है। पढ़ने में तेज़ हुआ तो कभी अपने मुक़ाबले दूसरे को **फ़ौकौयत** न देगा। सुस्त और बोदा हुआ तो दबी बिल्ली का सा स्कूल भर को अपना गुरू ही मानेगा। अलावा इसके बातचीत की और बहुत सी क़िस्में हैं। राजकाज की बात, व्यापार सम्बन्धी बातचीत, दो मित्रों में प्रेमालाप इत्यादि। लड़की-लड़के वाले के ओर से एक-एक आदमी **बिचवई** होकर दोनों के विवाह सम्बन्ध की कुछ बातचीत करते हैं। उस दिन से बिरादरी वालों को ज़ाहिर कर दिया जाता है कि अमुक की लड़की से अमुक के लड़के के साथ विवाह पक्का हो गया और यह रसम बड़े उत्सव के साथ की जाती है। एक **चंडूख़ाने** की बातचीत होती है इत्यादि सब बात करने के अनेक प्रकार और ढंग हैं।

वृद्ध महिलाओं की बातचीत

किशोरों की बातचीत

बातचीत के अन्य भेद

बोध प्रश्न

आपने 'बातचीत' का उपर्युक्त अंश ध्यान से पढ़ा होगा। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए। अगर आपके उत्तर सही न हो तो निबंध के उक्त अंश को दुबारा पढ़िए।

1 नीचे बातचीत के लाभ बताये गये हैं, इनमें जो सही हो, उन पर (√) का निशान लगाइए।

क) बातचीत के जरिए दिल का दुःख कम होता है। (सही/गलत)

ख) सामाजिक संबंध बनते हैं। (सही/गलत)

ग) आदमी बातूनी बन जाता है। (सही/गलत)

घ) दूसरों को प्रभावित कर सकता है। (सही/गलत)

बेतकल्लुफ़ी: अनौपचारिकता (दिखाऊ शिष्टाचार के बिना); **फार्मेलिटी** (अंग्रेज़ी शब्द): शिष्टाचार; **रामरमौवल:** बेमतलब का शोरगुल; **पहरों:** (पहर का बहुवचन): तीन घंटे का समय; **लियाक़त:** योग्यता; **हमचुनी दीगरेनेस्त:** ऐसा दूसरा कोई नहीं। **आशिकीन:** प्रेमी या आशिक मिज़ाज़। **हिमाक़त:** नासमझी; **ज्ञात यौवना:** वह मुग्धा स्त्री जिसे अपने यौवन के आगमन का ज्ञान हो (युवती); **रामरसरा:** चर्चा या किस्सा; **खोढ़े दाँत:** टूटे-फूटे दात; **फ़ौकौयत** (फ़ौकियत): प्रधानता; **बिचवई:** बीच-बचाव करने वाला, मध्यस्थ; **चंडूखाना:** चंडू पीने का स्थान (चंडू अफीम के किवाम को कहते हैं जिसे तंबाकू की तरह पिया जाता है)।

1 राजन् मैं दो में तीसरा नहीं बनता।

2 अंग्रेजी के प्रख्यात नाटककार और कवि (1564-1616)। किंग लियर, ऑथेलो, मेकबेथ, हेमलेट जैसे महान् दुःखांत नाटकों के लिए विश्व प्रसिद्ध।

3 अंग्रेजी कवि (1608-1674) 'पेराडाइज लॉस्ट' महाकाव्य के रचनाकार।

4 पूरा नाम जॉन स्टूअर्ट मिल (1806-1873) उपयोगितावादी दर्शन के प्रणेता।

5 पूरा नाम एडमंड स्पेंसर: अंग्रेजी कवि (सोलहवीं सदी)।

6 बोलते हुए वह मेरे पैरों से लिपट गया। क्या तुम्हारा पति? नहीं, नूपुर!

2 भट्ट जी के अनुसार वृद्ध लोगों की बातचीत का मुख्य विषय होता है :

क) भगवत् चर्चा।
ख) पुराने की प्रशंसा और नयी पीढ़ी की निंदा।
ग) साहित्यिक चर्चा।
घ) बातचीत में कम रुचि। (

3 दो लोगों की बातचीत में ही बातचीत का वास्तविक आनंद क्यों माना गया है?

क) एक दूसरे को अपने दिल की बात कह सकते हैं।
ख) बात छिपी रह सकती है।
ग) बात आत्मीयतापूर्ण वातावरण में हो सकती है।
घ) उपर्युक्त सभी बातें सही। ( )

4 वृद्ध स्त्रियों की बातचीत का मुख्य विषय क्या होता है? एक पंक्ति में उत्तर दीजिए।

....

यूरुप के लोगों में बात करने का हुनर है। "**आर्ट आफ़ कनवरसेशन**" यहाँ तक बढ़ा है कि स्पीच और लेख दोनों इसे नहीं पाते। इसकी पूर्ण शोभा काव्यकला-प्रवीण विद्वन्मंडली में है। ऐसे-ऐसे चतुराई के प्रसंग छेड़े जाते हैं कि जिन्हें सुन कान को अत्यन्त सुख मिलता है। **सुहृद् गोष्ठी** इसी का नाम है। सुहृद गोष्ठी के बातचीत की यह तारीफ है कि बात करने वालों की लियाक़त अथवा पांडित्य का अभिमान या कपट कहीं एक बात में न प्रकट हो कर वरन् जितने क्रम **रसाभास** पैदा करने वाले होते हैं उन सभों को **बरकते** हुए चतुर सयाने अपनी बातचीत का **अक्रम** रखते हैं, वह हमारे आधुनिक शुष्क पंडितों की बातचीत में जिसे शास्त्रार्थ कहते हैं कभी आवेही गा नहीं। मुर्ग़ और बटेर की लड़ाइयों की झंपटाझपटी के समान जिनकी नीरस काँव-काँव में सरस संलाप का तो चर्चा ही चलाना व्यर्थ है, वरन् कपट और एक दूसरे को अपने पांडित्य के प्रकाश से बाद में परास्त करने का संघर्ष आदि रसाभास की सामग्री वहाँ बहुतायत के साथ आपको मिलेगी। घंटे भर तक काँव-काँव करते रहेंगे तो कुछ न होगा। बड़ी-बड़ी कम्पनी और कारखाने आदि बड़े से बड़े काम इसी तरह पहले दो चार दिली दोस्तों की बातचीत ही से शुरू किये गये। उपरान्त बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़े कि हज़ारों मनुष्यों की उससे जीविका और लाखों की साल में आमदनी उसमें है। पचीस वर्ष के ऊपर वालों की बातचीत अवश्य ही कुछ न कुछ सारगर्भित होगी, अनुभव और **दूरंदेशी** से खाली न होगी और 25 से नीचे की बातचीत में यद्यपि अनुभव, दूरदर्शिता और गौरव नहीं पाया जाता पर इसमें एक प्रकार का ऐसा दिल-बहलाव और ताज़गी रहती है जिसकी मिठास उससे दस गुना अधिक चढ़ी-बढ़ी है। यहाँ तक, हमने बाहरी बातचीत का हाल लिखा जिसमें दूसरे **फ़रीक** के होने की बहुत आवश्यकता है, बिना किसी दूसरे मनुष्य के हुए जो किसी तरह सम्भव नहीं है और जो दो ही तरह पर हो सकती है या तो कोई हमारे यहाँ कृपा करे या हमीं जाकर दूसरे को **सर्फ़राज़** करें। पर यह सब तो दुनियादारी है जिसमें कभी-कभी रसाभास होते देर नहीं लगती, क्योंकि जो महाशय अपने यहाँ पधारें उनकी पूरी **दिलजोई** न हो सकी तो शिष्टाचार में त्रुटि हुई। अगर हमीं उनके यहाँ गये तो पहले तो बिना बुलाए जाना ही अनादर का मूल है और जाने पर अपने मन माफ़िक बर्ताव न किया गया तो मानों एक दूसरे प्रकार का नया घाव हुआ। इसलिए सबसे उत्तम प्रकार बातचीत करने का हम यही समझते हैं कि हम वह शक्ति अपने में पैदा कर सकें कि अपने आप बात कर लिया करें। हमारी भीतरी मनोवृत्ति जो प्रतिक्षण नये-नये रंग दिखाया करती है और जो वह **प्रपंचात्मक** संसार का बड़ा भारी आईना है, जिसमें जैसी चाहो वैसी सूरत देख लेना, कुछ दुर्घट बात नहीं है और जो एक ऐसा चमनिस्तान है जिसमें हर किस्म के बेल-बूटे खिले हुए हैं। इस चमनिस्तान की सैर में क्या कम दिल बहलाव है? मित्रों का प्रेमालाप कभी इसकी सोलहवीं कला तक भी न पहुंच सका। इसी सैर का नाम ध्यान या मनोयोग या चित्त को एकाग्र करना है जिसका साधन एक दो दिन का काम नहीं, **सालहासाल** के अभ्यास के उपरान्त यदि हम थोड़ा भी अपनी मनोवृत्ति स्थिर कर अवाक् हो अपने मन के साथ बातचीत कर सकें तो मानो अति भाग्य। एक वाक्शक्ति मात्र के दमन से न जानिये कितने प्रकार का दमन हो गया। हमारी जिह्वा जो **कतरनी** के समान सदा स्वच्छन्द चला करती है। उसे यदि हमने दबाकर क़ाबू में कर लिया वो क्रोधादिक बड़े-बड़े अजेय शत्रुओं को बिन प्रयास जीत अपने वश कर डाला। इसलिये अवाक् रह अपने आप बातचीत करने का यह साधन **यावत्** साधनों का मूल है. शान्ति का परमपूज्य मन्दिर है, **परमार्थ** का एक मात्र सोपान है।

सुहृद् गोष्ठी

अपने आप से बातचीत

बोध प्रश्न

5 अपने आप से बातचीत करने के तीन लाभ बताइए।

क) ....

आर्ट आफ़ कनवरसेशन: बातचीत की कला; **सुहृद गोष्ठी:** समझदार या समान हृदयवाले लोगों की सभा; **रसाभास:** रस का आभास मात्र; **बरकते:** बचाते; **अक्रम:** क्रमरहित; **दूरंदेशी:** दूर की बात (दूरदर्शिता) सोचने का गुण; **फ़रीक:** पक्ष; **सर्फ़राज़:** गौरवान्वित; **दिलजोई:** संतुष्टि; **प्रपंचात्मक:** जंजाल से भरा; **सालहासाल:** कई साल तक; **कतरनी:** कैंची; **यावत्:** जब तक (लेकिन यहाँ अर्थ है, सब); **परमार्थ:** दूसरों की भलाई।

ख) ....

ग) ....

6 अगर मनुष्य में वाक्शक्ति नहीं होती तो क्या होता? निबंध के आधार पर तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

7 "बोलने से ही मनुष्य के रूप का साक्षात्कार होता है।" यह मत किसका है?

क) बालकृष्ण भट्ट

ख) बेन जानसन

ग) एडिसन

घ) मिलटन ( )

34.3 निबंध का सार

पं. बालकृष्ण भट्ट के इस निबंध का विषय है : बातचीत। भट्टजी के अनुसार ईश्वर ने मनुष्यों को जो विभिन्न शक्तियाँ दी है, उनमें एक वाक्शक्ति भी है। लेखक का विचार है कि अगर मनुष्य में बोलने की शक्ति न होती तो वह लुंजपुंज हुआ एक तरफ बैठा रहता और दूसरों से कोई संबंध नहीं बना पाता। बोलने के दो रूप है, एक स्पीच अर्थात् भाषण और दूसरा बातचीत। भाषण में बोलने की कला का परिचय देना पड़ता है, चुटीली या मर्म वाली बातें करनी होती हैं, ताकि लोग ताली बजाकर भाषण की प्रशंसा करें।

किंतु बातचीत तो लोगों का पारस्परिक संलाप है। बातचीत के जरिए लोग अपने मन का गुबार निकालते हैं, जिससे उनका चित्त हल्का और मन प्रसन्न रहता है। कई लोगों को तो बातचीत की ऐसी लत पड़ जाती है कि उसके पीछे खाना-पीना तक भूल जाते हैं। केवल बातचीत के द्वारा ही हम अपने दिल की बात दूसरों के सामने प्रकट कर सकते हैं और दूसरों की बात के आशय को समझ सकते हैं।

लेकिन बातचीत और सभा या बैठक में फर्क है। जहाँ लोगों की संख्या इतनी अधिक हो कि वह सभा या बैठक का रूप धारण कर ले, वहाँ बातचीत नहीं होती। एडिसन के अनुसार बातचीत तो दो के बीच ही हो सकती है, क्योंकि दो की बातचीत में ही व्यक्ति एक दूसरे के सामने अपना दिल खोल पाता है। तीन तक भी गनीमत है, लेकिन जब बातचीत में चार लोग शामिल हो जाते हैं, तो फिर उनमें बेतकल्लुफ़ी का स्थान नहीं होता, केवल औपचारिकता रह जाती है। चार से अधिक की बातचीत तो शोरगुल ही है।

बातचीत के कई भेद है। बूढ़े लोगों की बातचीत में पुराने समय की बुरी-से-बुरी रीति-नीति का समर्थन और योग्य युवकों की भी निंदा शामिल होगी। युवा स्त्रियों की बातें आनंददायक होती हैं। बूढ़ी औरतें अपनी बहुओं की शिकायतें करेंगी। लड़कों की बातचीत में उनकी शरारतें शामिल होंगी। इस तरह अलग-अलग उम्र के लोगों की बातचीत भी अलग-अलग रंग की होती हैं।

लेखक का यह भी मानना है कि यूरोप के लोगों को बातचीत का सलीका आता है। वे बेमतलब की बातें नहीं करते। लेकिन सर्वोत्तम बातचीत दूसरों से बातचीत करना नहीं है। यदि मनुष्य चित्त को एकाग्र करके अपने आप से बातचीत करना सीख ले तो वह कई शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ले। यह अत्यंत कठिन साधना है। यदि हमने अपनी ज़बान पर क़ाबू करना सीख लिया तो फिर क्रोध आदि शत्रुओं को आसानी से जीत सकते हैं। यह शांति और परमार्थ का मार्ग है।

34.4 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने निबंध को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। निबंध का सार पढ़ने के बाद आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि उक्त निबंध में लेखक ने 'बातचीत' के संबंध में क्या कहा है। हो सकता है आपको निबंध के कुछ अंश स्पष्ट न हुए हों। इस दृष्टि से हम निबंध के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

निबंध की व्याख्या कैसे की जाती है, यह जानना आवश्यक है। सबसे पहले उक्त अंश का संदर्भ खोजिए अर्थात् निबंध में वह बात किस संदर्भ में कही गयी है। इससे बात की पृष्ठभूमि मालूम हो सकेगी, जिससे बात का आशय स्पष्ट करने

में मदद मिलेगी। सबसे पहले इसी संदर्भ को लिखिए। लेकिन इससे पहले निबंध का नाम और लेखक का नाम अवश्य लिखिए। संदर्भ के बाद उक्त अंश की व्याख्या कीजिए। व्याख्या का तात्पर्य है, कही हुई बात को सरल शब्दों में, सही ढंग से समझाकर लिखना। व्याख्या न अधिक लंबी हो, न अत्यंत छोटी ही। बात का आशय ज़रूर साफ़ हो जाना चाहिए। व्याख्या के बाद उक्त अंश का कोई उल्लेखनीय पक्ष हो तो उसे लिख सकते हैं और भाषा-शैली की विशेषता बता सकते हैं। आइए, अब हम बातचीत के एक अंश की व्याख्या करें।

यदि हम थोड़ा भी अपनी मनोवृत्ति स्थिर कर अवाक् हो अपने मन के साथ बातचीत कर सकें तो मानो अति भाग्य। एक वाक्शक्ति मात्र के दमन से न जानिये कितने प्रकार का दमन हो गया। हमारी जिह्वा जो कतरनी के समान सदा स्वच्छंद चला करती है। उसे यदि हमने दबाकर काबू में कर लिया तो क्रोधादिक बड़े-बड़े अजेय शत्रुओं को बिन प्रयास जीत अपने वश कर डाला।

संदर्भ : उपर्युक्त अंश पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'बातचीत' से लिया गया है। इस निबंध में भट्टजी ने बातचीत के महत्व पर प्रकाश डाला है। बातचीत मानव जीवन के लिए क्यों जरूरी है, यह बताने के बाद, अंत में भट्टजी ने अपने मन के साथ बातचीत करने के महत्व को उजागर किया है।

व्याख्या : लेखक का विचार है कि बोलने की हमारी क्षमता का हमें सोच-समझकर उपयोग करना चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि हम कम बोलें। कम बोलने के लिए जरूरी है कि हम अपनी मनोवृत्ति को स्थिर करें अर्थात् अपने चित्त को नियंत्रित करें। ऐसा होने पर हम अपने मन से बातचीत कर सकेंगे। मन से बातचीत का तात्पर्य है, अपने मन की भावना को समझना और उसे काबू में रखना। ज़बान काबू में रहेगी तो हमारा मन भी काबू में रहेगा। तब हम न तो बात-बात पर क्रोध करेंगे, न ही व्यर्थ की बातचीत में उलझ कर अपना नुकसान करेंगे। क्योंकि अधिक बोलने से सदैव किसी का अपमान या किसी के नाराज हो जाने का खतरा रहता है। इस प्रकार मन को वश में रखकर हम अपनी जिह्वा को वश में रखेंगे और जिह्वा को वश में रखकर हम क्रोध आदि मनोवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।

विशेष : 1 उक्त उद्धरण में पं. बालकृष्ण भट्ट ने कम बोलने (वाक् संयम) के महत्व का प्रतिपादन किया है।
2 भाषा संस्कृतनिष्ठ परंतु प्रवाहमयी है। वाक्य विन्यास भारतेंदु युग के अनुरूप हैं।
3 "कतरनी के समान" जैसी लोकोक्तियों से विचार में स्पष्टता और शैली में प्रखरता पैदा हुई है।

इसी निबंध के एक और अंश की व्याख्या नीचे दी गयी है।

बोलने से ही मनुष्य के रूप का साक्षात्कार होता है।

संदर्भ : उपर्युक्त उक्ति पं. बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित 'बातचीत' निबंध से ली गयी है। इस निबंध में भट्टजी ने बातचीत के महत्व पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या : मनुष्य के जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है : बोलना। हम दूसरों के साथ बातचीत करके अपने भाव और विचार प्रकट करते हैं। हमारी भावनाएँ और हमारे विचार हमारे व्यक्तित्व को व्यक्त करते हैं। जब तक हम चुप रहते हैं तब तक हमारे व्यक्तित्व का असली रूप भी दूसरों से छिपा रहता है। इसी तरह दूसरों की बातचीत से हम उन्हें भी जानने-पहचानने लगते हैं। इसलिए बोलना वस्तुतः मनुष्य के वास्तविक रूप का परिचायक है अर्थात् हम जान सकते हैं कि व्यक्ति मूर्ख है या बुद्धिमान या औसत बुद्धि-वाला।

विशेष : 1 यह उक्ति प्रसिद्ध लेखक बेन जानसन की है, जिसे पं. बालकृष्ण भट्ट ने उद्धृत किया है।
2 इसमें बहुत थोड़े शब्दों में एक बड़े सत्य को उद्घाटित किया गया है।

अभ्यास

आपने उक्त निबंध के दो अंशों की व्याख्याओं का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित अंशों को स्वयं व्याख्या कीजिए।

1 **जहाँ आदमी को अपनी जिंदगी मज़ेदार बनाने के लिए खाने, पीने, चलने, फिरने, आदि की ज़रूरत है वहाँ बातचीत की भी हमको अत्यंत आवश्यकता है। जो कुछ मवाद या धुआँ जमा रहता है वह बातचीत के ज़रिये भाप बन बाहर निकल पड़ता है। चित्त हलका और स्वच्छ हो परम आनंद में मग्न हो जाता है।**

संदर्भ : ....

....

....

....

व्याख्या : ....

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष : ....

....

....

2 **अपना आभ्यंतरिक भाव दूसरे को प्रकट करना और उसका आशय आप ग्रहण कर लेना केवल शब्दों ही के द्वारा होता है।**

संदर्भ : ....

....

....

....

व्याख्या : ....

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष : ....

....

....

34.5 अंतर्वस्तु

पं. बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युग के लेखक हैं। वह हिंदी गद्य के निर्माण का युग था। इस युग में हिंदी में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुए अधिक समय नहीं हुआ था। पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता को देखते हुए भारतेंदु युग के लेखकों ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त आदि लेखकों ने हिंदी में निबंध साहित्य की शुरुआत की। भट्टजी के निबंध इस दृष्टि से भारतेंदु की परंपरा के अंतर्गत आते हैं।

हमने इकाई 33 में बताया था कि भारतेंदु युग के निबंधों की मूल प्रेरणा अपने समाज के नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक उत्थान की चिंता थी। इसलिए इस युग के निबंधकारों ने समाज सुधार, राष्ट्रप्रेम, देश भक्ति, अतीत के प्रति गौरव भावना, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया है। यह भी कहा गया था कि इन निबंधकारों ने ऐसे विषयों पर भी निबंध लिखे, जिनमें उनकी जिंदादिली और विनोद वृत्ति का परिचय मिलता है। पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में भी हम इस तरह की प्रवृत्तियों को देख सकते हैं।

'बातचीत' निबंध सीधे तौर पर सामाजिक समस्या पर केंद्रित नहीं है। इस निबंध का विषय अधिक व्यापक है और यह मानवजाति की एक क्षमता (वाक्शक्ति) पर केंद्रित है। बोलने का संबंध संपूर्ण मानवजाति से है। यदि हम मनुष्य के अब तक के विकास पर विचार करें तो हमें यह समझते देर नहीं लगेगी कि मनुष्य के विकास में उसकी वाक्शक्ति का बहुत बड़ा हाथ है। वाक्शक्ति या बोलने की क्षमता के कारण ही इंसान एक दूसरे से बात करता है, एक दूसरे की बात समझता है और सामाजिक व्यवहार की नींव रखता है। 'बातचीत' के इसी महत्व पर पं. बालकृष्ण भट्ट ने विचार किया है और इस दृष्टि से यह विचार-प्रधान निबंध है। लेकिन भट्टजी इसे गहन चिंतन का विषय नहीं बनाते बल्कि हल्के-फुल्के ढंग से बातचीत के विभिन्न पक्षों पर मनोरंजक और व्यंग्यपूर्ण टिप्पणियाँ भी करते जाते हैं।

इस निबंध में भट्ट जी ने बातचीत के चार पक्षों पर विचार किया है। सबसे पहले उन्होंने यह बताया कि बातचीत का मानव जीवन में क्या महत्व है। दूसरे, बातचीत में लोगों की संख्या के कम-ज्यादा होने का क्या असर होता है। तीसरे, अलग-अलग वर्गों और उम्र के लोगों की बातचीत में क्या फर्क होता है। चौथे, उन्होंनें वाक्शक्ति को नियंत्रित करने के लाभों पर विचार किया है। इस प्रकार, बालकृष्ण भट्ट बातचीत के प्रायः सभी पहलुओं पर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं।

बातचीत का महत्व : पं. बालकृष्ण भट्ट ने इस निबंध की शुरुआत इस बात से की है कि ईश्वर द्वारा मनुष्य को जो शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें वाक्शक्ति या बोलने की क्षमता का अपना महत्व है। लेखक का विचार है कि अगर मनुष्य में अन्य सभी क्षमताएँ होती लेकिन बोलने की क्षमता न होती तो मनुष्य-मनुष्य के बीच संबंधों का विकास भी नहीं होता। बातचीत के कारण ही मनुष्य अपने मन के भाव दूसरों पर प्रकट कर सकता है और दूसरों के मन की बात को जान पाता है। वह अपने मन के दुख, क्रोध, प्रेम, भय आदि भावों को प्रकट कर अपने मन को हल्का कर लेता है। अगर वह अपने भावों को दूसरे के सामने प्रकट न कर पाता, अपने दिल की बात न कह पाता, तो वह अंदर ही अंदर घुटता रहता और हर समय दुखी, परेशान और अकेला बना रहता। स्पष्ट ही, ऐसी जिंदगी अत्यंत कष्टकारक होती।

बातचीत का दूसरा महत्व यह है कि इससे मनुष्य के व्यक्तित्व की सही पहचान हो जाती है। मनुष्य जब तक चुप रहता है तब तक यह मालूम नहीं पड़ता कि उसके विचार कैसे हैं, उसका स्वभाव कैसा है, वह कितना पढ़ा-लिखा है, उसके संस्कार कैसे हैं। ये सभी बातें हम उसके बोलने से ही पहचान पाते हैं। उसकी बातों से हम उसकी प्रवृत्तियों, रुचियों, भावनाओं और विचारों को जान पाते हैं। इस प्रकार बातचीत से हम मनुष्य के वास्तविक रूप से परिचित होते हैं।

बातचीत में शामिल लोगों की संख्या : बातचीत के लिए कम-से-कम दो लोगों का होना जरूरी है। लेकिन बातचीत में दो से अधिक लोग भी शामिल हो सकते हैं। प्रश्न यह है कि कितने लोगों तक बातचीत, बातचीत बनी रहती है और कब बातचीत सभा या शोरगुल में बदल जाती है।

लेखक का विचार है कि बातचीत का आदर्श रूप दो के बीच होता है। दो लोगों की बातचीत में आत्मीयता होती है, वे एक दूसरे के सामने अपना दिल खोल कर रख सकते हैं। अपने मन के गुप्त रहस्य भी एक-दूसरे पर प्रकट कर सकते हैं क्योंकि वहाँ एक दूसरे पर विश्वास होता है। बात फैलने का डर कम होता है। जब बातचीत में तीन लोग शामिल हो जाते हैं तब बातचीत गुप्त नहीं रह पाती लेकिन आत्मीयता बनी रही सकती है। लेकिन जब बातचीत में चार लोग शामिल हो जाते हैं तो बातचीत केवल औपचारिकता रह जाती है। चार से ज्यादा लोगों की बातचीत लेखक के अनुसार व्यर्थ का शोरगुल होता है। इस प्रकार, भट्टजी बातचीत में लोगों की संख्या को महत्वपूर्ण मानते हैं। बहुत अधिक लोगों की बातचीत को वे 'सभा' मानते हैं, बातचीत नहीं।

बातचीत के भेद: जिस तरह बातचीत कितने लोगों के बीच हो रही है, इसका जितना महत्व है, उसी तरह इस बात का महत्व भी है कि बातचीत किनके बीच हो रही है। सभी तरह के लोगों की बातचीत एक-सी नहीं होती। न केवल बातचीत अलग-अलग होती है, बल्कि उनके विषय भी अलग-अलग होते हैं। बूढ़े लोगों की बातचीत में पुरातन की प्रशंसा और नये की निंदा प्रमुख विषय होते हैं तो बूढ़ी औरतों में अपने बहू-बेटों की शिकवा-शिकायत। इसी तरह युवकों, युवतियों, विद्यार्थियों, खिलाड़ियों आदि की बातचीत के विषय अलग-अलग होते हैं।

अपने-आप से बातचीत करना : बातचीत के उपर्युक्त सभी रूपों में बातचीत किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों से होती है। लेकिन भट्टजी का विचार है कि बातचीत का असली आनंद अपने आप से बातचीत करने में है। यह आसान कार्य नहीं है। इसके लिए अपने चित्त को एकाग्र करना होता है। अपने मन के साथ बातचीत करने की आदत डालनी होती है। जब मनुष्य अपनी वाक्शक्ति को नियंत्रित कर लेता है और अपने आप से बातचीत करने की आदत डाल लेता है तो वह बेमतलब की बातचीत में नहीं उलझता। न बात-बेबात दूसरों के कहे पर उत्तेजित होता है और न ही गलत-सलत बोलकर दूसरों की नाराज़गी मोल लेता है। इस प्रकार अपने आप से बातचीत करने की आदत से व्यक्ति कई ऐसे भावों का दमन करना सीख जाता है जो उसके लिए हानिकारक हैं। वाक्शक्ति को नियंत्रित करने से मनुष्य शांति पाता है और दूसरों का उपकार करने की ओर प्रेरित होता है।

निबंध की विषयवस्तु के इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि पं. बालकृष्ण भट्ट ने बातचीत पर एक विचारक की तरह विचार किया है। बातचीत के सामाजिक पक्ष पर विचार करते हुए उसके विभिन्न रूपों का अंतर स्पष्ट किया है। 'बातचीत' पर यह निबंध यद्यपि विचार-प्रधान है तथापि भट्टजी विषय के गहन विश्लेषण में नहीं जाते। उनकी दृष्टि विषय के व्यावहारिक पक्ष पर ही केंद्रित रहती है तथा वे यह ध्यान रखते हैं कि निबंध की रोचकता कम न हो। इसके लिए यथावसर वे बातचीत को मनोरंजक रूप प्रदान करते हैं। अपने बात को प्रभावशाली ढंग से कहने के लिए वे विभिन्न विद्वानों और ग्रंथों के उद्धरण भी पेश करते जाते हैं। इस निबंध में अंग्रेजी साहित्य और लेखकों के विचारों के उदाहरण तथा संस्कृत और फारसी के उद्धरण भी दिये गये हैं। इस प्रकार लेखक विद्वता और सहजता दोनों को एक साथ लेकर चलता है।

बोध प्रश्न

8 इस निबंध में 'बातचीत' के किन चार पक्षों पर विचार किया गया है? चार पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

....

9 विषयवस्तु की दृष्टि से इस निबंध की कोई तीन विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

10 बातचीत का रूप लोगों की संख्या के अनुसार क्यों बदलता है? तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

34.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

भारतेंदु युग के लेखकों में राष्ट्र के प्रति प्रेम और समाज के प्रति दायित्व बोध की भावना जितनी गहरी थी, उतना ही उनका व्यक्तित्व जिंदादिल और विनोदप्रिय था। समाज, राष्ट्र और मानव-जीवन से जुड़े विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श करने के साथ-साथ जीवन के प्रति गहरा लगाव और गंभीर से गंभीर बात में हास्य-व्यंग्य ढूँढ लेना इस युग के लेखकों की खास विशेषता रही है। पं. बालकृष्ण भट्ट में भी हम ये विशेषताएँ देख सकते हैं।

यह निबंध यद्यपि विचार प्रधान है तथापि निबंध में वैचारिक शुष्कता कहीं नहीं है। इसका कारण है पं. बालकृष्ण भट्ट के लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव। इस निबंध को पढ़ने से भट्टजी के व्यक्तित्व की तीन विशेषताएँ हमारे सामने स्पष्ट रूप से उभरकर आती हैं। ये तीन विशेषताएँ हैं:

1 वैचारिकता
2 अध्ययनशीलता
3 विनोदवृत्ति

वैचारिकता : बालकृष्ण भट्ट के इस निबंध से हमें मालूम पड़ता है कि भट्टजी में नये-नये विषयों पर चिंतन-मनन करने की प्रवृत्ति थी। भट्टजी ने जिस दौर में यह निबंध लिखा था, उस दौर में निबंध लेखन अपनी आरंभिक अवस्था में था। ऐसे समय भट्टजी ने 'बातचीत' जैसे अछूते विषय पर चिंतन प्रधान निबंध लिखा। इस निबंध को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भट्टजी में विषय का वैचारिक दृष्टि से विश्लेषण करने की क्षमता पर्याप्त थी। इस निबंध में हम पाते हैं कि उन्होंने पहले भाषण और विचार के अंतर को स्पष्ट किया, उसके बाद बातचीत के सामाजिक महत्व पर विचार किया और फिर विभिन्न आयु और वर्गों के लोगों की बातचीत के अंतर को बताया है। इस तरह बातचीत के विभिन्न पक्षों को वे हमारे सामने रखते हैं और उनका तुलनात्मक विश्लेषण करते हैं। उनकी यह विशेषता उनके व्यक्तित्व के वैचारिक पहलू को ही उजागर करती है।

अध्ययनशीलता : 'बातचीत' निबंध में भट्टजी के व्यक्तित्व की जो दूसरी विशेषता हमारे सामने आती है, वह है अध्ययनशीलता। भट्टजी ने अपने इस निबंध में अंग्रेज़ी, संस्कृत और फारसी के उद्धरण दिये हैं। अंग्रेजी के बेन जानसन और एडिसन के कथनों को उद्धृत किया है तो राबिन्सन क्रूसो का उल्लेख भी किया है जो डेनियल डेफो के इसी नाम के उपन्यास का नायक है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य से उद्धरणों की भरमार है। दो जगह फारसी के भी उद्धरण हैं। इससे ज़ाहिर होता है कि भट्टजी विभिन्न भाषाओं के साहित्य से गहरे रूप में परिचित थे और उनका अपने लेखन में यथावसर उपयोग भी करते थे। यही नहीं इससे यह भी ज़ाहिर होता है कि भट्टजी अंग्रेज़ी, संस्कृत और फ़ारसी के भी ज्ञाता थे। यह उनकी अध्ययनशीलता और विद्वता का प्रमाण है।

विनोदवृत्ति : ऊपर की दोनों विशेषताएँ ऐसी हैं कि जिनसे निबंध के रसहीन हो जाने का खतरा रहता है लेकिन भट्टजी की गहरी विनोदवृत्ति और व्यंग्य करने की क्षमता उनके निबंधों को रोचक और पठनीय बनाती है। उदाहरण के लिए निबंध के आरंभ में ही "स्पीच" का वर्णन उनकी विनोदवृत्ति का ही नतीजा है। इसी तरह बूढ़ी औरतों आदि की बातचीत की विशेषताओं में हास्य के साथ-साथ व्यंग्य का भी पुट है। जैसे, बूढ़ी औरतों की बातचीत पर टिप्पणी देखिए *"बुढ़ियाओं की बातचीत का मुख्य प्रकरण बहू बेटी वाली हुई तो अपनी बहुओं या बेटों का गिला-शिकवा होगा या बिरादराने का कोई ऐसा रामरसरा छेड़ बैठेंगी कि बात करते-करते अंत में खोढ़े दाँत निकाल लड़ने लगेंगी।"* भाषा का यह रूप इस निबंध में कदम-कदम पर नज़र आता है जो लेखक की जिंदादिली और विनोदवृत्ति का ही प्रमाण है।

इस प्रकार बालकृष्ण भट्ट के व्यक्तित्व का प्रभाव उनके इस निबंध पर साफ़ ज़ाहिर होता है। वैचारिकता, अध्ययनशीलता और विनोदप्रियता, ये उनके व्यक्तित्व के तीन गुण हैं जिन्हें हम निबंध पढ़कर स्पष्ट पहचान सकते हैं।

34.7 संरचना शिल्प

संरचना शिल्प के अंतर्गत हम निबंध की भाषा-शैली पर विचार करेंगे। यह निबंध भारतेंदु युग का प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से इसकी भाषा और शैली की विशेषताएँ वही हैं जो भारतेंदु युग के निबंधों की हैं।

भाषा : 'बातचीत' निबंध के विचार प्रधान होने के कारण इस की भाषा उसी के अनुरूप है। पं. बालकृष्ण भट्ट ने अपनी बात को सीधे और सहज रूप में रखने का प्रयास किया है। भाषा का सामान्य रूप बोलचाल के नज़दीक है इसलिए इसमें उर्दू शब्द अधिक हैं लेकिन जहाँ आवश्यक हुआ है वहाँ संस्कृत के तत्सम रूप भी पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते हैं। भट्टजी भाषा में किसी तरह का बंधन नहीं मानते इसलिए बीच-बीच में अंग्रेज़ी शब्दों का इस्तेमाल भी मिलता है; जैसे, स्पीच, चेयरमैन, लेडीज़ एंड जेंटिलमेन, आर्ट आफ़ कनवरसेशन आदि। इसी तरह उर्दू शब्दों में मज़लिस, हिज़ाब, बेकद्र, सरफ़राज, बेतकल्लुफ़ी, फौक़ौयत, फ़रीक जैसे शब्द भी मिलेंगे। इनमें से कुछ शब्द हिंदी में प्रचलित हैं, कुछ अप्रचलित हैं। भट्टजी ने आभ्यंतरिक, संलाप, रसाभास, दूरदर्शिता, प्रपंचात्मक, यावत्, जिह्वा, परमार्थ, स्वच्छंद जैसे तत्सम शब्द प्रयुक्त किये हैं तो गुन-औगुन जैसे तद्भव रूप भी उनके निबंध में मिल जाते हैं। इनके बीच राम रमौवल, रामरसरा, झपट-झपटी, साँट जैसे शब्दों के देशज रूप भी मिलते हैं। निबंध में संस्कृत और फारसी के छोटे-बड़े उद्धरण भी दिये गये हैं। मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है। इस तरह भट्टजी भाषा का बड़ी उन्मुक्तता से प्रयोग करते हैं।

आम तौर पर भट्टजी की भाषा सहज और प्रवाहमयी है, वाक्य भी छोटे-छोटे और स्पष्ट अर्थ देने वाले हैं। लेकिन कहीं-कहीं वाक्य रचना ऐसी बन गयी है कि बात का अर्थ स्पष्ट होने की बजाय उलझ जाता है। जैसे निम्नलिखित वाक्य को देखिए: *"सुहृद गोष्ठी के बातचीत की वह तारीफ़ है कि बात करने वालों की लियाक़त अथवा पांडित्य का अभिमान या कपट कहीं एक बात में न प्रकट हो कर वरन् जितने क्रम रसाभास पैदा करने वाले होते हैं उन सभों को बरकते हुए चतुर सयाने अपनी बातचीत का अक्रम रखते हैं, वह हमारे आधुनिक शुष्क पंडितों की बातचीत में जिसे शास्त्रार्थ कहते हैं कभी आवेही गा नहीं।"* साठ से अधिक शब्दों का यह वाक्य काफी लंबा है। लेकिन इस तरह की वाक्य रचना बहुत अधिक नहीं है। इस निबंध की भाषा के एक और पक्ष पर विचार करना चाहिए। भारतेंदु युग में खड़ी बोली गद्य का लेखन अभी आरंभिक अवस्था में ही था, इसलिए उसकी भाषा में एक तरह का अनगढ़पन मिलता है। जैसे ऊपर के ही गद्यांश में देखिए, "सभों" का प्रयोग। हिंदी में अब "सभी" का प्रयोग होता है, "सभी" के बहुवचन "सभों" का नहीं। इसी तरह "आवेही गा नहीं" यह देशज प्रयोग है, परिनिष्ठित हिंदी में इसे "आवेगा ही नहीं" या "आएगा ही नहीं" लिखा जाएगा। इस तरह इस निबंध में लिंग, वचन और कारक के प्रयोगों में हिंदी का वह परिनिष्ठित रूप नहीं मिलता, जिससे हम आज परिचित हैं। इसे हम दोष नहीं मानते क्योंकि उस समय तक हिंदी का कोई परिनिष्ठित रूप नहीं बना था।

शैली : यह निबंध विचार प्रधान है, लेकिन इसकी शैली पूर्णतः विश्लेषणात्मक नहीं है। इसमें वर्णन और विश्लेषण दोनों का मिश्रण है। कहीं केवल विश्लेषण है; जैसे निम्नलिखित उद्धरण में दो व्यक्तियों की बातचीत की विशेषता को भट्टजी ने विश्लेषण द्वारा समझाकर स्पष्ट किया है:

> *"जैसा गरम दूध और ठंडे पानी के दो बरतन पास साँट के रक्खे जायँ तो एक का असर दूसरे में पहुँचता है अर्थात् दूध ठंडा हो जाता है और पानी गरम। वैसे ही दो आदमी पास बैठे हों तो एक का गुप्त असर दूसरे पर पहुँच जाता है, चाहे एक दूसरे को देखें भी नहीं। तब बोलने की कौन कहे। पर एक का दूसरे पर असर होना शुरू हो जाता है। एक के शरीर की विद्युत दूसरे में प्रवेश करने लगती है। जब पास बैठने का इतना असर होता है तब बातचीत में कितना अधिक असर होगा इसे कौन न स्वीकार करेगा।"*

भट्टजी के निबंध की शैली की दूसरी विशेषता है — विनोद और व्यंग्य। इसके लिए भट्टजी शब्दों के चयन से लेकर वाक्य-रचना तक का इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए इस वाक्य को देखिए *"चार से अधिक की बातचीत तो केवल रामरमौवल कहलावेगी।"* यहाँ व्यंग्य "रामरमौवल" शब्द के प्रयोग से पैदा हुआ है। इसी तरह निम्नलिखित वाक्य पूरा ही व्यंग्य को ध्वनित करता है : *"सुस्त और बोदा हुआ तो दबी बिल्ली का सा स्कूल भर को अपना गुरू ही मानेगा।"* भट्टजी की यह विशेषता है कि गंभीर-से-गंभीर बात में भी हास्य-व्यंग्य की छटा बिखेर देते हैं। इस तरह वह कहीं भी अपने निबंध को बोझिल और शुष्क नहीं होने देते।

34.8 प्रतिपाद्य

'बातचीत' निबंध उस दौर में लिखा गया था जब भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश था। भारत की जनता का वह हिस्सा जिसे आधुनिक शिक्षा-प्राप्त हुई थी, उसमें राष्ट्रीय जागरण की भावना ज़ोर पकड़ रही थी। भारतेंदु युग के रचनाकार भी देश और समाज की उन्नति चाहते थे। इस उन्नति के सामने दो बाधाएँ थीं: एक, राजनीतिक दासता और दूसरा, भारतीय

जनता का पिछड़ापन। ये दोनों बाधाएँ एक दूसरे से जुड़ी थीं। इसके लिए आवश्यक था कि लोगों को देश और समाज के प्रति जागरूक बनाया जाये। इसके लिए यह भी ज़रूरी था कि लोगों में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जाये। भारतेंदु युग के रचनाकार भी पत्रकारिता और साहित्य रचना के द्वारा राष्ट्रीय गौरव की भावना, सामाजिक पिछड़ेपन का विरोध और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। इसके लिए वे ज्ञान-विज्ञान के नये-नये क्षेत्रों को जानने-समझने का प्रयास कर रहे थे।

पं. बालकृष्ण भट्ट का निबंध 'बातचीत' इसी तरह का निबंध है। आधुनिक युग में मानवजाति जिस तेज़ी से तरक़्क़ी कर रही है, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्य प्राणियों में नहीं हैं। ये विशेषताएँ कौन-कौन सी हैं और इन्होंने मानव-विकास में क्या भूमिका निभायी हैं इन पर विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कोणों से विचार किया है। ऐसी बातों की ओर साहित्यकारों का ध्यान भी गया और उन्होंने ऐसे प्रश्नों पर विचार भी किया। उन्होंने इन प्रश्नों पर सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर विचार किया। वाक्शक्ति अर्थात् बातचीत करने की क्षमता मनुष्य का ऐसा गुण है जो उसे अन्य प्राणियों से अलग करता है। वाक्शक्ति के कारण ही भाषा का विकास हुआ। बातचीत के कारण सामाजिक संबंधों का विकास हुआ। मनुष्य एक दूसरे के नज़दीक आया। एक दूसरे के दुःख में शामिल हुआ। इस तरह मानव प्रगति में बातचीत की महत्वपूर्ण भूमिका स्वयंसिद्ध है। इसी बात को भट्टजी ने अपने इस निबंध में अत्यंत रोचक ढंग से पेश किया है। उन्होंने बातचीत के महत्व, अलग-अलग लोगों की बातचीत का फ़र्क तथा अपने आप से बातचीत करने की आवश्यकता पर विद्वतापूर्ण और रोचक ढंग से विचार किया है।

भट्टजी का निबंध हमें यह बताता है कि भारतेंदु युग के रचनाकारों के अध्ययन और चिंतन का क्षेत्र कितना विस्तृत था। निबंध यह भी बताता है कि इस दौर के लेखक ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों पर विवेकपूर्ण ढंग से विचार करने लगे थे। उन प्रश्नों पर मौलिक ढंग से सोच सकते थे और अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से कहने की क्षमता रखते थे।

भट्टजी के इस निबंध का शीर्षक 'बातचीत' उपयुक्त है क्योंकि लेखक ने अपने निबंध को पूरी तरह से बातचीत विषय पर ही केंद्रित रखा है और बातचीत से जुड़ी बातों पर ही विचार किया है। लेखक अप्रासंगिक बातों में नहीं उलझा है।

बोध प्रश्न

11 'बातचीत' निबंध पर भट्टजी के व्यक्तित्व की कौन-सी विशेषताओं का प्रभाव व्यक्त हुआ है। तीन पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

....

12 निबध में से लेखक की विनोदवृत्ति का एक उदाहरण चुनकर लिखिए।

....

....

13 इस निबंध की भाषा की किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

14 'बातचीत' की शैली की किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

15 'बातचीत' शीर्षक के औचित्य पर विचार कीजिए।

....

....

अभ्यास

3 निम्नलिखित उद्धरणों में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर बताइए कि इनमें से कौन-सा उद्धरण तत्सम प्रधान, कौन-सा उर्दू प्रधान और किस में बोलचाल की हिंदी का रूप मिलता है?

i) **"यही हमारी साधारण बातचीत का कुछ ऐसा घरेलू ढंग है कि उसमें न करताल ध्वनि का कोई मौक़ा है न लोगों को क़हक़हे उड़ाने की कोई बात उसमें रहती है।"**

ii) "अपना आभ्यंतरिक भाव दूसरे को प्रकट करना और उसका आशय आप ग्रहण कर लेना केवल शब्दों ही के द्वारा हो सकता है।" ( )

iii) लड़कों की बातचीत खिलाड़ी हुए तो अपनी-अपनी आवारगी तारीफ़ करने के बाद कोई ऐसी सलाह गाँठेंगे जिसमें उनको अपनी शैतानी ज़ाहिर करने का पूरा मौक़ा मिले। ( )

34.9 सारांश

- इस इकाई में आपने पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'बातचीत' का अध्ययन किया है। इस निबंध में भट्टजी ने बातचीत के महत्व और उसके विभिन्न भेदों पर प्रकाश डाला है। लेखक के अनुसार मानव जीवन में बातचीत का महत्व बहुत अधिक है। बातचीत से ही मनुष्य की सही पहचान होती है, लेकिन अधिक बातचीत नुकसानदेह है। इसे रोकने के लिए मनुष्य को अपने आप से बात करने की आदत डालनी चाहिए। निबंध के वाचन द्वारा आपने इन सभी बातों की जानकारी प्राप्त की है। अब आप स्वयं अपने शब्दों में इनका वर्णन कर सकते हैं।
- आपने इस इकाई में निबंध के कुछ अंशों की व्याख्या का भी अध्ययन किया है। किसी दिये हुए उद्धरण की व्याख्या कैसे की जाती है, इसे भी आप समझ गये होंगे। अतः अब आप स्वयं व्याख्या कर सकते हैं।
- इस निबंध की विषयवस्तु विचार-प्रधान है तथा इसमें बातचीत के महत्व, बातचीत के प्रकार तथा अपने आप से बातचीत करने की ज़रूरत पर विचार किया गया है। इस आधार पर आप स्वयं विषयवस्तु का विश्लेषण कर सकते हैं।
- इस निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की तीन विशेषताएँ व्यक्त हुई हैं : वैचारिकता, अध्ययनशीलता और विनोदप्रियता। इस आधार पर आप 'बातचीत' में लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का वर्णन कर सकते हैं।
- भाषा और शैली की दृष्टि से यह निबंध भारतेंदु युग का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी शैली विचार प्रधान निबंधों के अनुरूप है तथा इसमें वर्णन, विश्लेषण और व्यंग्य की विशेषताएँ समाहित हैं। भाषा भी सहज, बोलचाल के नज़दीक है। शब्दावली में उर्दू और संस्कृत दोनों के शब्द हैं। आप स्वयं निबंध की भाषा-शैली की विशेषताएँ बता सकते हैं।

34.10 शब्दावली

इस इकाई में प्रयुक्त कुछ कठिन शब्द और उनके अर्थ नीचे दिये गये हैं, आप इकाई पढ़ने के दौरान इनकी सहायता ले सकते हैं।
अनगढ़पन : बेडोल अर्थात् जिसका रूप निश्चित न हुआ हो। भाषा के अर्थ में ऐसी भाषा जिसका रूप निश्चित न हो।
गुत्थी : धागों के उलझने से पड़ी हुई गाँठ, यहाँ अर्थ है उलझन।
गुबार निकालना : (मुहावरा) मन में भरी हुई बातें कह डालना या भड़ास निकालना जैसे, बातचीत के ज़रिए लोग अपने मन का गुबार निकाल सकते हैं अर्थात् अपने मन की बातें कह सकते हैं।
परिनिष्ठित रूप : सुधरे हुए रूप में। भाषा का परिनिष्ठित रूप उसे कहेंगे जहाँ उसमें व्याकरण संबंधी शिथिलता न हो और वाक्य-विन्यास गठा हुआ हो।
यथावसर : जैसा अवसर हो, अवसर के अनुसार।

34.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 क) सही ख) सही ग) गलत घ) सही

2 ख

3 घ

4 बूढ़ी औरतें अधिकतर अपने बहू-बेटों की शिकायत करती हैं।

5 क) क्रोध आदि उत्पन्न नहीं होते।
ख) मन को शांति मिलती है।
ग) परमार्थ की ओर मन लगता है।

6 मनुष्य अगर बोल नहीं पाता तो वह अपने सुख-दुःख दूसरों को नहीं कह पाता और मन-ही-मन घुटता रहता। इससे वह सुखी नहीं रहता।

7 ख

8 संकेत : i) बातचीत का महत्व
ii) बातचीत में लोगों की संख्या
iii) विभिन्न आयु एवं वर्गों के लोगों की बातचीत में अंतर
iv) अपने आप से बातचीत का महत्व

9 संकेत : i) विचार प्रधान
ii) विनोद प्रियता
iii) विद्वता

10 बातचीत में कितने लोग शामिल हैं, उसी से बात का रूप तय होता है। आत्मीय और गुप्त बातचीत दो-तीन लोगों से ज्यादा की उपस्थिति में नहीं की जा सकती। बहुत अधिक लोगों की बातचीत में बात को कायदे में नहीं चलाया जा सकता।

11 संकेत : i) वैचारिकता
ii) अध्ययनशीलता
iii) विनोदप्रियता

12 निबंध पढ़कर स्वयं चुनिए।

13 संकेत : i) सहजता और बोलचाल का रूप
ii) शब्द चयन में उदारता

14 संकेत : i) वर्णनात्मक
ii) विश्लेषणात्मक
iii) व्यंग्यात्मक

15 भाग 34.8 देखिए।

अभ्यास

1 **संदर्भ** : संकेत : निबंध : बातचीत
लेखक : बालकृष्ण भट्ट
संदर्भ : बातचीत के महत्व का प्रतिपादन

व्याख्या : i) बातचीत की आवश्यकता
ii) दिल की भड़ास निकालना
iii) चित्त की शांति और आनंद की अनुभूति

विशेष : भाषा : स्वाभाविक हिंदी का रूप
शैली : विचारप्रधान

2 **संदर्भ** : ऊपर के अनुसार
व्याख्या : i) शब्दों का महत्व
ii) मन की बात प्रकट करना
iii) बात का आशय समझ सकना

विशेष : भाषा : संस्कृतनिष्ठ भाषा

3 i) बोलचाल की हिंदी
ii) तत्सम प्रधान
iii) उर्दू मिश्रित हिंदी

इकाई 35 मित्रता (रामचंद्र शुक्ल) : वाचन

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य
35.1 प्रस्तावना
35.2 निबंध का वाचन : मित्रता
35.3 निबंध का सार
35.4 संदर्भ सहित व्याख्या
35.5 सारांश
35.6 शब्दावली
35.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

35.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम श्री रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता' का अध्ययन करेंगे। इस के साथ लेखक का परिचय, निबंध का सार एवं निबंध के महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या भी की जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- निबंध की विषय वस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- निबंध में आए कठिन शब्दों के अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे; और
- निबंध के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।

35.1 प्रस्तावना

आप इस इकाई में 'मित्रता' निबंध का अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पहले की इकाई में आपने श्री बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'बातचीत' का विस्तृत अध्ययन किया है। उसके महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या की है और निबंध का विश्लेषण भी किया है। 'मित्रता' अपेक्षाकृत लंबा निबंध है इसलिए हम इसे दो इकाइयों में दे रहे हैं। इस इकाई में आप निबंध, उसका सार और उसके कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करेंगे। इससे अगली इकाई में इसी निबंध का विश्लेषण और मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा।

यह निबंध आचार्य रामचंद्र शुक्ल का लिखा हुआ है। हिंदी निबंधों के विकास में शुक्ल जी के योगदान से आप इकाई 33 में परिचित हो चुके हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 में मिर्जापुर के एक गाँव में हुआ था। आपने आरंभिक शिक्षा मिर्जापुर में ही प्राप्त की। आपने वहीं चित्रकला के अध्यापक के रूप में अपना कार्य आरंभ किया। बाद में आप नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से तैयार किये जाने वाले शब्दकोश 'हिन्दी शब्द सागर' के कार्य से जुड़ गये और काशी आ गये। आपने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य भी किया। सन् 1941 में आपका देहावसान हुआ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का गुरुत्तर कार्य किया। उनका 'हिंदी साहित्य का इतिहास' आज भी हिंदी का सर्वश्रेष्ठ "इतिहास" माना जाता है। शुक्लजी ने हिंदी आलोचना को भी समृद्ध किया। उन्होंने मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास एवं तुलसीदास की विस्तृत समीक्षाएँ प्रस्तुत कीं तथा रस सिद्धांत की नयी दृष्टि से व्याख्या की। शुक्लजी ने विभिन्न विषयों पर अत्यंत उच्चकोटि के निबंध लिखे। इनमें विभिन्न मनोभावों पर लिखे दस निबंध काफी प्रसिद्ध हैं। इनमें से 'क्रोध' निबंध का अध्ययन आप हिंदी के आधार पाठ्यक्रम में कर चुके हैं। शुक्लजी ने कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों के अनुवाद भी किये। प्रसिद्ध विकासवादी चिंतक हैकल की पुस्तक 'रिडल ऑफ दि यूनिवर्स' का अनुवाद उन्होंने 'विश्व प्रपंच' के नाम से किया है। इस पुस्तक की शुक्लजी द्वारा लिखी गयी भूमिका उन के विस्तृत अध्ययन और ज्ञान की साक्षी है।

शुक्लजी के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैंः बुद्ध चरित्र (1922), काव्य में रहस्यवाद (1929), हिंदी साहित्य का इतिहास (1930), गोस्वामी तुलसीदास (1933), त्रिवेणी (1936), चिंतामणि (तीन भागों में), रस मीमांसा आदि। 'बुद्ध चरित्र' 'लाइट ऑफ एशिया' का काव्यानुवाद है। शेष ग्रंथ आलोचनात्मक अथवा सैद्धांतिक विवेचनापूर्ण हैं। 'त्रिवेणी' गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास और मलिक मुहम्मद जायसी पर शुक्लजी के द्वारा लिखे गये आलोचनात्मक अथवा संपादित ग्रंथों की भूमिकाओं

से सामग्री संकलित की गयी है। शुक्लजी ने बंगला से 'शशांक' उपन्यास का अनुवाद भी किया था। शुक्लजी कवि भी थे। उनकी कविताओं का संकलन 'मधुस्रोत' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। उनका व्यक्तित्व कवि, निबंधकार, आलोचक, इतिहासकार तथा कोशकार के रूप में सामने आता है।

35.2 निबंध का वाचन : मित्रता

सामाजिक जीवन में मित्र चुनने में आने वाली कठिनाइयाँ

जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकलकर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिलकुल एकांत और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेल-मेल हो जाता है। यही हेल-मेल बढ़ते-बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है; क्योंकि संगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है। हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं जब कि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव **अपरिमार्जित** और हमारी प्रवृत्ति **अपरिपक्व** रहती है, अपने **मनोवेगों** की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता हमीं को नहीं रहता। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान रहते हैं जिसे जो जिस रूप का चाहे उस रूप का करे — चाहे राक्षस बनावे चाहे देवता। ऐसे लोगों का साथ करना हमारे लिए बुरा है जो हमसे अधिक दृढ़-संकल्प के हैं; क्योंकि हमें उनकी हर एक बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और भी बुरा है जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं, क्योंकि ऐसी दशा में न तो हमारे ऊपर कोई दाब रहती है और न हमारे लिए कोई सहारा रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवा पुरुषों को प्रायः बहुत कम रहता है। यदि **विवेक** से काम लिया जाय तो यह भय नहीं रहता; पर युवा पुरुष प्रायः विवेक से कम काम लेते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं तो उसके गुण-दोष को कितना परख कर लेते हैं पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार और **अनुसन्धान** नहीं करते। वे उसमें सब बातें अच्छी-ही-अच्छी मानकर उस पर अपना पूरा विश्वास जमा देते हैं। हँसमुख चेहरा, बातचीत का ढंग, थोड़ी चतुराई व साहस — ये ही दो-चार बातें किसी में देखकर लोग चटपट उसे अपना बना लेते हैं। हम लोग यह नहीं सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है तथा जीवन के व्यवहार में उसका कुछ मूल्य भी है। यह बात हमें नहीं सूझती कि यह एक ऐसा साधन है जिससे **आत्मशिक्षा** का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान् का वचन है — "विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा रहती है, जिसे ऐसा मित्र मिल जाय तो उसे समझना चाहिए कि खजाना मिल गया।" विश्वासपात्र मित्र जीवन का एक औषध है। हमें अपने मित्रों से यह आशा रखनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्पों में हमें दृढ़ करेंगे, दोषों और त्रुटियों से हमें बचावेंगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेंगे, जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमें सचेत करेंगे, जब हम **हतोत्साह** होंगे तब हमें उत्साहित करेंगे; सारांश यह है कि वे हमें उत्तमतापूर्वक जीवन-निर्वाह करने में हर तरह से सहायता देंगे। सच्ची मित्रता में उत्तम-से-उत्तम वैद्य की-सी **निपुणता** और परख होती है, अच्छी-से-अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न प्रत्येक युवा पुरुष को करना चाहिए।

युवावस्था: मित्र कैसे हों

अच्छे मित्र के गुण

छात्रावस्था में मैत्री

छात्रावस्था में तो मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता हृदय से उमड़ी पड़ती है। पीछे के जो स्नेह-बंधन होते हैं, उनमें न तो उतनी उमंग रहती है और न उतनी खिन्नता। बालमैत्री में जो मग्न करने वाला आनन्द होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहाँ? कैसी मधुरता और कैसी **अनुरक्ति** होती है, कैसा अपार विश्वास होता है। हृदय के कैसे-कैसे उद्गार निकलते हैं। वर्तमान कैसा आनन्दमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के सम्बन्ध में कैसी लुभाने वाली कल्पनाएँ मन में रहती हैं! कैसा बिगाड़ होता है और कैसी **आर्द्रता** के साथ मेल होता है। कैसी क्षोभ से भरी बातें होती हैं और कैसी आवेगपूर्ण लिखा-पढ़ी होती है! कितनी जल्दी बातें लगती है और कितनी जल्दी मानना-मनाना होता है! 'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति में हृदय के कितने भारी उथल-पुथल का भाव भरा हुआ है! किन्तु जिस प्रकार युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ़, शांत और गंभीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवावस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रों से कई बातों में भिन्न होते हैं। मैं समझता हूँ कि मित्र चाहते हुए बहुत से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन में करते होंगे, पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झंझटों में चलता नहीं। सुन्दर प्रतिभा, मनभावनी चाल और **स्वच्छन्द प्रकृति** ये ही दो-चार बातें देखकर मित्रता की जाती है, पर **जीवन-संग्राम** में साथ देने वाले मित्रों में इससे कुछ अधिक बातें चाहिए। मित्र केवल उसे नहीं कहते जिसके गुणों की तो हम प्रशंसा करें, पर जिससे हम स्नेह न कर सकें, जिससे अपने छोटे-मोटे काम तो हम निकालते जायें, पर भीतर ही भीतर घृणा करते रहें। मित्र सच्चे पथ-प्रदर्शक के समान होना चाहिए जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें; भाई के समान होना चाहिए जिसे हम अपना **प्रीतिपात्र** बना सकें। हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिए — ऐसी सहानुभूति जिसमें दोनों मित्र

बालमैत्री के समय मन की स्थिति

किसे मित्र बनाएँ?

अपरिमार्जित : जो शुद्ध नहीं है, अशुद्ध, अपरिष्कृत; **अपरिपक्व**: कच्चा अर्थात् जिसकी बुद्धि का विकास नहीं हुआ है; **मनोवेग** : आंतरिक भाव या मन में उठने वाले भाव; **विवेक**: वह समझ जो अच्छे और बुरे का अंतर बतलाती है; **अनुसंधान**: जाँच-पड़ताल, खोज; **आत्मशिक्षा**: अपने आप से सीखना; **हतोत्साह**: निराश; **निपुणता**: कुशलता; **अनुरक्ति**: प्रेम या लगाव; **आर्द्रता**: विनम्रता;
स्वच्छंद प्रकृति: ऐसा स्वभाव जहाँ मनुष्य अपने मन की भावनाओं के अनुसार व्यवहार करता है; **जीवन-संग्राम**: जीवन के लिए किया जाने वाला संघर्ष; **प्रीतिपात्र**: प्रेम का पात्र अर्थात् जिससे हम प्रेम करते हों या जो हमारे प्रेम का अधिकारी हो।

एक-दूसरे की बराबर खोज-खबर लिया करें, ऐसी सहानुभूति जिससे एक के हानि-लाभ को दूसरा अपना हानि-लाभ समझे। मित्रता के लिये यह आवश्यक नहीं है कि दो मित्र एक ही प्रकार का कार्य करते हों व एक ही रुचि के हों। इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक व वांछनीय नहीं है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है। राम धीर और शान्त प्रकृति के थे, लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे, पर दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेह था। उदार तथा उच्चाशय **कर्ण** और लोभी **दुर्योधन** के स्वभावों में कुछ विशेष समानता न थी, पर उन दोनों की मित्रता खूब निभी।

यह कोई बात नहीं है कि एक ही स्वभाव और रुचि के लोगों ही में मित्रता हो सकती है। समाज में विभिन्नता देखकर लोग एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। जो गुण हम में नहीं है, हम चाहते हैं कि कोई ऐसा मित्र मिले जिसमें वह गुण हो। चिंताशील मनुष्य **प्रफुल्लचित्त** मनुष्य का साथ ढूँढ़ता है, निर्बल बली का, धीर उत्साही का। उच्च आकांक्षा वाला चन्द्रगुप्त युक्ति और उपाय के लिए चाणक्य का मुँह ताकता था। **नीति-विशारद** अकबर मन बहलाने के लिये बीरबल की ओर देखता था।

मित्र के कर्त्तव्य

मित्र का कर्त्तव्य इस प्रकार बतलाया गया है —"उच्च और महान् कार्यों में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज की सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ।" यह कर्त्तव्य उसी से पूरा होगा जो दृढ़ चित और सत्य-संकल्प का हो। इससे हमें ऐसे ही मित्रों की खोज में रहना चाहिए जिनमें हमसे अधिक **आत्मबल** हो। हमें उनका पल्ला उसी तरह पकड़ना चाहिए, जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था। मित्र हों तो **प्रतिष्ठित** और शुद्ध हृदय के हों, **मृदुल** और **पुरुषार्थी** हों, शिष्ट और **सत्यनिष्ठ** हों, जिसमें हम अपने को उनके भरोसे पर छोड़ सकें और यह विश्वास कर सकें कि उनसे किसी प्रकार का धोखा न होगा। मित्रता एक नई शक्ति की योजना है। बर्क ने कहा है कि **आचरण-दृष्टांत** ही मनुष्य जाति की पाठशाला है; जो कुछ वह उनसे सीख सकता है, वह और किसी से नहीं।

बोध प्रश्न

आपने निबंध का उपर्युक्त अंश ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए। अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए। अगर आपके उत्तर सही न हों तो निबंध के उक्त अंश को दोबारा पढ़िए।

1 कच्ची उम्र में संगति में सावधानी क्यों आवश्यक है?
   क) चित्त कोमल होता है।
   ख) स्वभाव अपरिपक्व होता है।
   ग) मनोवेग प्रबल होते हैं।
   घ) उपर्युक्त सभी कारण।

2 नीचे अच्छे मित्र के गुण बताये गये है। इनमें से कुछ सही हैं कुछ गलत। सही पर (✓) और गलत पर (×) निशान लगाइए।
   क) उत्तम संकल्पों में दृढ़ करने वाला। (सही/गलत)
   ख) हमारे दोषों पर चुप रहे। (सही/गलत)
   ग) हमारे प्रत्येक कार्य का समर्थन करे। (सही/गलत)
   घ) निराशा में आशा का संचार करे। (सही/गलत)

3 निम्नलिखित वाक्यों में उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   (आचरण-दृष्टांत, धैर्य, बुरे, निपुणता, कोमलता, सच्चे, परख)
   क) सच्ची मित्रता में वैद्य की-सी .... और .... होती है।
   ख) सच्ची मित्रता में माता का-सा .... और .... होती है।
   ग) .... ही मनुष्य जाति की पाठशाला है।
   घ) जो हमारी हर बात का समर्थन करते हैं वे मित्र .... होते हैं।
   ङ) जो हमारे दोषों को उजागर करते हैं वे मित्र .... होते हैं।

अच्छे मित्र का प्रभाव

संसार में अनेक महान् पुरुष मित्रों की बदौलत बड़े-बड़े कार्य करने में समर्थ हुए हैं। मित्रों ने उनके हृदय के उच्च भावों को सहारा दिया है। मित्रों ही के दृष्टांतों को देखकर उन्होंने अपने हृदय को दृढ़ किया है। अहा! मित्रों ने कितने मनुष्यों के जीवन को **साधु** और श्रेष्ठ बनाया है। उन्हें मूर्खता और कुमार्ग के गड्ढों से निकालकर **सात्त्विकता** के पवित्र शिखर पर पहुँचाया है। मित्र उन्हें सुन्दर **मंत्रणा** और सहारा देने के लिए सदा **उद्यत** रहते हैं, उनके सुख और सौभाग्य की चिंता वे निरन्तर करते रहते हैं। ऐसे भी मित्र होते हैं जो विवेक को जागरित करना और **कर्त्तव्य-बुद्धि** को **उत्तेजित करना** जानते हैं। ऐसे भी मित्र होते हैं जो टूटे जी को जोड़ना और लड़खड़ाते पाँवों को ठहराना जानते हैं। बहुतेरे मित्र हैं जो ऐसे दृढ़

कर्ण: कुंती का पहला पुत्र; **दुर्योधन:** कौरवों में प्रमुख एवं धृतराष्ट्र का सबसे बड़ा पुत्र; **उच्चाशय:** उच्च अभिप्राय; **प्रफुल्लचित:** खुशमिज़ाज **नीति-विशारद:** नीति में कुशल; **आत्मबल:** मनुष्य का आंतरिक साहस जिसके कारण उसमें चरित्रगत दृढ़ता आती है; **प्रतिष्ठित:** सम्मानित; **मृदुल:** कोमल; **पुरुषार्थी:** जिसमें काम करने की लगन हो और जो अच्छा काम करे; **सत्यनिष्ठ:** सत्य में आस्था रखने वाला; **आचरण-दृष्टांत:** अपने व्यवहार द्वारा प्रस्तुत करना; **साधु:** अच्छा; **सात्विकता:** श्रेष्ठ गुणों का समावेश; **मंत्रणा:** सलाह; **उद्यत:** तत्पर; **कर्त्तव्य बुद्धि:** वह विवेक जो कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करे। **उत्तेजित करना:** उभाड़ना।

आशय और उद्देश्य की स्थापना करते हैं जिनसे कर्मक्षेत्र में आप भी श्रेष्ठ बनते हैं और दूसरों को भी श्रेष्ठ बनाते हैं। मित्रता जीवन और मरण के मार्ग में सहारे के लिए है। यह सैर-सपाटे ओर अच्छे दिनों के लिये भी है तथा संकट और विपत्ति के बुरे दिनों के लिए भी है। यह हँसी-दिल्लगी के **गुलछर्रों** में भी साथ देती है और धर्म के मार्ग में भी। मित्रों को एक-दूसरे के जीवन के कर्त्तव्यों को उन्नत करके उन्हें साहस, बुद्धि और एकता द्वारा चमकाना चाहिए। हमें अपने मित्र से कहना चाहिए — "मित्र! अपना हाथ बढ़ाओ। यह जीवन और मरण में हमारा सहारा होगा। तुम्हारे द्वारा मेरी भलाई होगी। पर यह नहीं कि सारा ऋण मेरे ही ऊपर रहे, तुम्हारा भी उपकार होगा, जो कुछ तुम करोगे उससे तुम्हारा भी भला होगा। सत्यशील, न्यायी और पराक्रमी बने रहो; क्योंकि यदि तुम चूकोगे तो मैं भी चूकूँगा जहाँ-जहाँ तुम जाओगे, मैं भी जाऊँगा। तुम्हारी बढ़ती होगी तो मेरी भी बढ़ती होगी। जीवन के संग्राम में वीरता के साथ लड़ो क्योंकि तुम्हारी ढाल मैं लिए हूँ।"

जीवन का उद्देश्यः कर्तव्य का पालन

जो बात ऊपर मित्रों के सम्बन्ध में कही गई है, वही जान पहचानवालों के सम्बन्ध में भी ठीक है। जो मनुष्य **स्वसंस्कार** में लगा हो, उसे अपने मिलने-जुलने वालों के आचरण पर भी दृष्टि रखनी चाहिए, उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उनकी बुद्धि और उनका आचरण ठिकाने का है। साधारणतः हमें अपने ऊपर ऐसे प्रभावों को न पड़ने देना चाहिए जिनसे हमारी विवेचना की गति मंद हो व भले-बुरे का विवेक क्षीण हो। जीवन का उद्देश्य क्या है? क्या वह भविष्य के लिए **आयोजन** का स्थान नहीं? क्या वह तुम्हारे हाथ सौंपा हुआ ऐसा पदार्थ नहीं है जिसका **लेखा** तुम्हें परमात्मा को और अपनी आत्मा को देना होगा? सोचो तो कि दो, चार, दस जितने गुण तुम्हें दिए गए हैं, उन्हें तुम्हें देने वाले को पचास गुने, सौ गुने करके लौटाना चाहिए, अथवा ज्यों के त्यों बिना ब्याज व वृद्धि के। यदि जीवन एक **प्रहसन** ही है जिसमें तुम गा-बजाकर और हँसी-ठट्ठा करके समय काटो, तब जो कुछ उसके महत्त्व के विषय में मैंने कहा है, सब व्यर्थ ही है। पर जीवन में गंभोर बातें और विपत्ति के दृश्य भी हैं। मेरी समझ में तो महाराणा प्रताप की भाँति संकट में दिन काटना **वाज़िदअली शाह** की भाँति भोग-विलास करने से अच्छा है। मेरी समझ में शिवाजी के सवारों की तरह चने बाँध कर चलना औरंगजेब के सवारों की तरह हुक्के और पानदान के साथ चलने से अच्छा है। मैं जीवन को न तो दुःखमय और न सुखमय बतलाना चाहता हूँ, बल्कि उसे एक ऐसा अवसर समझता हूँ, जो हमें कुछ कर्तव्यों के पालन के लिये दिया गया है। हमारे सामने ऐसे बहुत से लोगों के दृष्टान्त हैं जिनके विचार भी महान् थे, कर्म भी महान् थे। जैसा कि महात्मा डिमास्थिनीज ने **एथेंस** वासियों से कहा था, उसी प्रकार हमें भी अपने मन में समझना चाहिए कि "यदि हमें अपने महान् पूर्व-पुरुषों की भाँति कर्म करने का अवसर न मिले, तो हमें कम-से-कम अपने विचार उनकी भाँति रखने चाहिए और उनकी आत्मा के महत्त्व का अनुकरण करना चहिए।" अतः हमें सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम कैसा साथ करते हैं। दुनिया तो जैसी हमारी संगति होगी, वैसा हमें समझेगी ही; पर हमें अपने कामों में भी संगत ही के अनुसार सहायता व बाधा पहुँचेगी।

जान पहचान वाले कैसे हों?

उसका चित्त अत्यन्त दृढ़ समझना चाहिए जिसकी **चित्तवृत्ति** पर उन लोगों का कुछ भी प्रभाव न पड़े जिनका बराबर साथ रहता है। पर अच्छी तरह समझ रखो कि यह कभी हो नहीं सकता। चाहे तुम्हें जान न पड़े, पर उनका प्रभाव तुम पर बराबर हर घड़ी पड़ता रहेगा और उसी के अनुसार तुम उन्नत व अवनत होंगे, उत्साहित व हतोत्साह होंगे। एक विद्वान् से पूछा गया — "जीवन में किस शिक्षा की सबसे अधिक आवश्यकता है?" उसने उत्तर दिया — "व्यर्थ की बातों को जानकर भी अनजान होना।" यदि हम जान-पहचान करने में बुद्धिमत्ता से काम न लेंगे तो हमें बराबर अनजान बनना पड़ेगा।

महामति **बेकन** कहता है — "समूह का नाम संगति नहीं है। जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ लोगों की आकृतियाँ चित्रवत् हैं और उनकी बातचीत **झाँझ** की झनकार है!" पहचान करने में हमें कुछ स्वार्थ से काम लेना चाहिए। जान-पहचान के लोग ऐसे हों जिनसे हम कुछ लाभ उठा सकते हों, जो हमारे जीवन को उत्तम और आनन्दमय करने में कुछ सहायता दे सकते हों; यद्यपि उतनी नहीं जितनी गहरे मित्र दे सकते हैं। मनुष्य का जीवन थोड़ा है; उसमें खोने के लिए समय नहीं। यदि क, ख, और ग हमारे लिये कुछ नहीं कर सकते, न कोई बुद्धिमत्ता वा विनोद की बातचीत कर सकते हैं, न कोई अच्छी बात बतला सकते हैं, न अपनी सहानुभूति द्वारा हमें **ढाढ़स** बंधा सकते हैं, न हमारे आनन्द में सम्मिलित हो सकते हैं, न हमें कर्तव्य का ध्यान दिला सकते हैं, तो ईश्वर हमें उनसे दूर ही रक्खें। हमें अपने चारों ओर जड़ मूर्त्तियाँ सजाना नहीं है। आजकल जान-पहचान बढ़ाना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई भी युवा पुरुष ऐसे अनेक युवा पुरुषों को पा सकता है जो उसके साथ थिएटर देखने जाएँगे, नाच-रंग में जायेंगे, सैर-सपाटे में जायेंगे, भोजन का निमंत्रण स्वीकार करेंगे। यदि ऐसे जान-पहचान के लोगों से कुछ हानि न होगी तो लाभ भी न होगा। पर यदि हानि होगी तो बड़ी भारी होगी। सोचो तो, तुम्हारा जीव कितना नष्ट होगा, यदि ये जान-पहचान के लोग उन मनचले युवकों में से निकलें जिनकी संख्या दुर्भाग्यवश आजकल बहुत बढ़ रही है, यदि उन **शोहदों** में से निकलें जो अमीरों की बुराइयों और मूर्खताओं की नकल किया करते हैं, दिन-रात बनाव-सिंगार में रहा करते हैं; महफिलों में 'ओ हो हो' 'वाह' 'वाह' किया करते हैं, गलियों में ठट्ठा मारते हैं और सिगरेट का धुआँ उड़ाते चलते हैं। ऐसे नवयुवकों से बढ़कर **शून्य**, **निःसार** और **शोचनीय** जीवन और किसका है? ये अच्छी बातों के सच्चे आनन्द से **कोसों** दूर हैं। उनके लिये न तो संसार में सुन्दर और मनोहर उक्ति वाले कवि हुए हैं और न सुन्दर आचरण वाले महात्मा हुए हैं। उनके लिये न तो बड़े-बड़े वीर अद्भुत कर्म कर गए हैं और न बड़े-बड़े ग्रंथकार ऐसे विचार छोड़ गए हैं जिनसे मनुष्यजाति के हृदय में सात्त्विकता की उमंगें उठती हैं। उनके लिए फूल-पत्तियों में कोई सौंदर्य नहीं, झरनों

गुलछर्रें: मौज-मस्ती; **स्वसंस्कार**: अपने आपको सुसंस्कृत बनाना। **आयोजन**: तैयारी; **लेखा**: हिसाब; **प्रहसन**: हँसी-मजाक, दिल्लगी, नाटक का एक भेद जिसमें हँसी प्रधान रहती है। **वाजिद अली शाह**: अवध का नवाब जिसे ईस्ट इंडिया कंपनी ने पद से हटा दिया था। वाजिद अली शाह की कलाओं में बहुत रुचि थी। **एंथेस**: यूनान का प्रमुख शहर एवं राजधानी। **चित्तवृत्तिः** मन का स्वभाव; **बेकन**: पूरा नाम फ्रांसिस बेकन (1561-1626); इंग्लैंड के निवासी, संसद सदस्य भी रहे। अपने निबंधों के लिए प्रसिद्ध; निबंध के क्षेत्र में वे अंग्रेजी निबंधों के जनक माने जाते हैं। **झाँझ**: काँसे के दो तश्तरी जैसे टुकड़ों से बना मँजीरे जैसा बाजा; **ढाढ़स**: धीरज, दिलासा; **शोहदों**: बदचलन; **शून्य**: खोखलापन, सूना; **निःसार**: जिसमें सार न हो, सारहीन; **शोचनीय**: चिंता करने योग्य; **कोस**: दो मील के बराबर का माप।

के कलकल में मधुर संगीत नहीं, अनन्त सागर-तरंगों में गम्भीर रहस्यों का आभास नहीं, उनके भाग्य में सच्चे प्रयत्न और पुरुषार्थ का आनन्द नहीं, उनके भाग्य में सच्ची प्रीति का सुख और कोमल हृदय की शाँति नहीं। जिनकी आत्मा अपने **इंद्रिय विषयों** में ही लिप्त है, जिनका हृदय नीच आशयों और कुत्सित विचारों से कलुषित है, ऐसे नाशोन्मुख प्राणियों को दिन-दिन अंधकार में पतित होते देख कौन ऐसा होगा जो तरस न खायेगा ? जिसने स्वसंस्कार का विचार अपने मन में ठान लिया हो, उसे ऐसे प्राणियों का साथ न करना चाहिए।

बोध प्रश्न

4 अच्छे मित्र कब काम आते हैं? नीचे दिये गये उत्तरों में से जो सही हों उनके आगे (√) का चिह्न लगाइए।
- क) अच्छे और बुरे दिनों में। ( )
- ख) सिर्फ अच्छे दिनों में। ( )
- ग) कुमार्ग की ओर बढ़ते देखकर। ( )
- घ) संपन्नता के दिनों में। ( )

5 शुक्लजी की दृष्टि में जीवन का उद्देश्य है :
- क) सुख में जीवन यापन करना।
- ख) कष्टों को सहते रहना।
- ग) कर्तव्यों का पालन करना।
- घ) ईश्वर-भजन में लगाना। ( )

6 नीचे बुरी संगति के कुछ लक्षण दिये गये हैं उनमें जो लक्षण बुरी संगति के न हों उस पर (X) का चिह्न लगाइए।
- क) केवल मनोविनोद में डूबे रहना। ( )
- ख) अमीरों की नकल करना। ( )
- ग) प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लेना। ( )
- घ) पुस्तकें पढ़ना। ( )

कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है। यह केवल नीति और **सद्वृत्ति** का ही नाश नहीं करता, बल्कि बुद्धि का भी **क्षय** करता है। किसी युवा पुरुष की संगत यदि बुरी होगी, तो वह उसके पैर में बँधी चक्की के समान होगी जो उसे दिन-दिन अवनति के गढ़े में गिराती जाएगी, और यदि अच्छी होगी तो सहारा देने वाली बाँहों के समान होगी जो उसे निरन्तर उन्नति की ओर उठाती जायेगी।

बुरी बातों का प्रभाव

इंग्लैंड के एक विद्वान् को युवावस्था में राजा के दरबारियों में जगह नहीं मिली। इस पर जिन्दगी भर वह अपने भाग्य को सराहता रहा। बहुत से लोग उसे तो इसे अपना बड़ा भारी दुर्भाग्य समझते, पर वह अच्छी तरह जानता था कि वहाँ वह बुरे लोगों की संगत में पड़ता जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक होते। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनके घड़ी भर के साथ से भी बुद्धि भ्रष्ट होती है, क्योंकि उतने ही बीच में ऐसी-ऐसी बातें कही जाती हैं जो कानों में न पड़नी चाहिए, चित्त पर ऐसे-ऐसे प्रभाव पड़ते हैं जिनसे उसकी पवित्रता का नाश होता है। बुराई अटल भाव धारण करके बैठती है। बुरी बातें हमारी धारणा में बहुत दिनो तक टिकती हैं। इस बात को प्रायः सब लोग जानते हैं कि भद्दी दिल्लगी व फूहड़ गीत जितनी जल्दी ध्यान पर चढ़ते हैं, उतनी जल्दी कोई गम्भीर व अच्छी बात नहीं। एक बार एक मित्र ने मुझ से कहा कि उसने लड़कपन में कहाँ से एक बुरी कहावत सुन पाई थी जिसका ध्यान वह लाख चेष्टा करता है कि न आवे, पर बार-बार आता है। जिन भावनाओं को हम दूर रखना चाहते हैं, जिन बातों को हम याद नहीं करना चाहते, वे बार-बार हृदय में उठती हैं और बेधती है। अतः तुम पूरी चौकसी रखो, ऐसे लोगों को कभी साथी न बनाओं जो अश्लील, अपवित्र और फूहड़ बातों से तुम्हें हँसाना चाहें। सावधान रहो। ऐसा न हो कि पहले-पहल तुम इसे एक बहुत सामान्य बात समझो और सोचो कि एक बार ऐसा हुआ, फिर ऐसा न होगा; अथवा तुम्हारे **चरित्रबल** का ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि ऐसी बात बकने वाले आगे चलकर आप सुधर जायेंगे। नहीं, ऐसा नहीं होगा। जब एक बार मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल देता है, तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहाँ और कैसी जगह पर रखता है। धीरे-धीरे उन बुरी बातों से अभ्यस्त होते-होते तुम्हारी घृणा कम हो जाएगी। पीछे तुम्हें उनसे चिढ़ न मालूम होगी; क्योंकि तुम यह सोचने लगोगे कि चिढ़ने की बात ही क्या है। तुम्हारा विवेक कुण्ठित हो जाएगा और तुम्हें भले-बुरे की पहचान न रह जाएगी। अन्त में होते-होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे। अतः हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगत की छूत से बचो। यह पुरानी कहावत है कि —

काजर की कोठरी में कैसे हू सयानो जाय,
एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै।[1]

समाज मनुष्य को क्या देता है?

जो कुछ ऊपर कहा गया है, उससे यह न समझना चाहिए कि मैं युवा पुरुषों को समाज में प्रवेश करने से रोकता हूँ। नहीं, कदापि नहीं। अच्छा समाज यदि मिले तो उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और उससे **आत्मसंस्कार** के कार्य में बड़ी

अनंतः अंतहीन, जिसका कोई अंत न हो; **इंद्रिय विषयः** भौतिक आनंद के लिए किये जाने वाले कार्य **सद्वृत्तिः** अच्छा स्वभाव; **क्षयः** नाश **चरित्रबलः** चरित्र संबंधी दृढ़ता; **आत्मसंस्कारः** स्वसंस्कार।

1 काजल की कोठरी में कैसा ही साफ-सुथरा व्यक्ति क्यों न चला जाय, काजल की एक रेखा तो अवश्य लगेगी। तात्पर्य यह है कि बुरी संगति का असर अवश्य पड़ता है।

समष्टि जीवन के लाभ

सहायता मिलती है। प्रायः देखने में आता है कि गाँवों से जो लोग नगरों में जीविका आदि के लिए आते हैं उनका जी बहुत दिनों तक, संगी-साथी न रहने से, बहुत घबराता है और कभी-कभी उन्हें ऐसे लोगों का साथ कर लेना पड़ता है, जो उनकी रुचि के अनुकूल नहीं होते। ऐसे लोगों के लिए अच्छा तो यह होता कि वे किसी साहित्य-समाज में प्रवेश करें। पर वहाँ भी उन्हें उन सब बातों की जानकारी नहीं प्राप्त हो सकती जो स्वशिक्षा के लिए आवश्यक हैं। समाज में प्रवेश करने से हमें अपना यथार्थ मूल्य विदित होता है। हम देखते हैं कि हम उतने चतुर नहीं हैं जितने एक कोने में बैठकर कोई पुस्तक आदि हाथ में लेकर अपने को समझा करते थे। भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण होते हैं। यदि कोई एक बात में निपुण है तो दूसरा-दूसरी में। समाज में प्रवेश करके हम देखते हैं कि इस बात की कितनी आवश्यकता है कि लोग तुम्हारी भूलों को क्षमा करें, अतः हम दूसरों की भूल-चूक को क्षमा करना सीखते हैं। हम कई ठोकरें खाकर नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते हैं। इनके अतिरिक्त और भी बड़े-बड़े लाभ होते हैं। समाज में सम्मिलित होने से हमारी समझ बढ़ती है, हमारी विवेक-बुद्धि तीव्र होती है, वस्तुओं और व्यक्तियों के सम्बन्ध में हमारी धारणा विस्तृत होती है, हमारी सहानुभूति गहरी होती है, हमें अपनी शक्तियों के उपयोग का अभ्यास होता है। समाज एक परेड है जहाँ हम चढ़ाई करना सीखते हैं, अपने साथियों के साथ-साथ मिलकर बढ़ना और आज्ञापालन करना सीखते हैं, इनसे भी बढ़कर और-और बातें हम सीखते हैं। हम दूसरों का ध्यान रखना, उनके लिए कुछ स्वार्थत्याग करना सीखते हैं, सद्गुणों का आदर करना और सुन्दर चाल-ढाल की प्रशंसा करना सीखते हैं। **स्वसंस्काराभिलाषी** युवकों को उस चाल-व्यवहार की अवहेलना न करनी चाहिए जो भले आदमियों के समाज में आवश्यक समझी जाती है। बड़ों के प्रति सम्मान और सरलता का व्यवहार, बराबर वालों से प्रसन्नता का व्यवहार और छोटों के प्रति कोमलता का व्यवहार भलेमानुषों के लक्षण हैं। सुडौल और सुन्दर वस्तु को देखकर हम सब लोग प्रसन्न होते हैं। सुन्दर चाल-ढाल को देख हम सब लोग आनंदित होते हैं। मीठे वचनों को सुनकर हम सब लोग सन्तुष्ट होते हैं। ये सब बातें हमें **मनोमीत** होती हैं, शिक्षा द्वारा प्रतिष्ठित आदर्श के अनुकूल होती हैं। किसी भले आदमी को यह कहते सुनकर कि फटी-पुरानी और मैली पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ते नहीं बनता, हमें हँसना न चाहिए। सोचो तो कि तुम्हारी मण्डली में कोई उजड्ड-गँवार आकर फूहड़ बातें बकने लगे तो तुम्हें कितना बुरा लगेगा।

बोध प्रश्न

7 कुसंग से क्यों बचना चाहिए? नीचे दिये गये कारणों में से जो कारण सही हो उस पर (✓) का चिह्न लगाइए।

क) नीति और सद्वृत्ति का नाश करता है। ( )

ख) बुरी बातें हृदय पर जल्दी असर करती हैं। ( )

ग) बुद्धि का विकास होता है। ( )

घ) आत्मिक विकास होता है। ( )

8 समाज व्यक्ति के जीवन पर क्या-क्या प्रभाव डालता है?

निम्नलिखित बातों में से सही (✓) और गलत (×) पर निशान लगाइए।

क) अपनी वास्तविकता का सही ज्ञान होता है। (सही/गलत)

ख) नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते हैं। (सही/गलत)

ग) हमारे विचार संकुचित होते हैं। (सही/गलत)

घ) स्वार्थों के प्रति सजग होते हैं। (सही/गलत)

9 मित्र किसे बनाना चाहिए? दो-तीन पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

....

....

....

10 कुसंग से कैसे बचा जा सकता है? दो पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

....

....

35.3 निबंध का सार

'मित्रता' निबंध तीन बिंदुओं पर केन्द्रित है। पहला है, मित्रता। दूसरा है, जान-पहचान और तीसरा है, समाज। निबंधकार शुक्लजी ने तीनों बिंदुओं का व्यावहारिक विश्लेषण किया है। मित्र कैसे बनता है? कोई युवा समाज में प्रवेश करता है तो उसकी जान-पहचान बढ़ती जाती है। इन्हीं जान-पहचान वालों में से कुछ के साथ उसका हेलमेल हो जाता है। यह हेलमेल ही आगे बढ़कर मित्रता में बदल जाता है। इस समय मित्रों का सोच-समझकर चुनाव करना चाहिए क्योंकि संगति का

स्वसंस्काराभिलाषी: अपने को सुसंस्कृत बनाने की इच्छा रखने वाला; **मनोमीत**: पसंद किया हुआ।

असर बिना जाने हुए ही हम पर पड़ता है। इस युवावस्था में प्रायः बुद्धि अपरिपक्व होती है और मन कोमल होता है। हमारे भाव भी अपरिमार्जित होते हैं। इस समय संगति का प्रभाव अनजाने और सहज रूप में पड़ता है। यदि संगति बुरी है तो हमारा पतन होगा और यदि संगति अच्छी है तो हमारा उन्नयन होगा। दूसरा प्रश्न यह है कि किन लोगों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए? शुक्लजी मानते हैं कि ऐसे व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं करना चाहिए जो अधिक दृढ़ संकल्पी हो क्योंकि तब उनकी बात चाहे अच्छी हो या बुरी माननी ही पड़ती है। ऐसे लोगों के साथ भी मित्रता नहीं करनी चाहिए जो हमारी हर बात को ऊपर रखते हैं। असल में मित्र उसे बनाना चाहिए जिसका विवेक जाग्रत हो। हमें सावधानीपूर्वक मित्रों का चयन करना चाहिए। *"हँसमुख चेहरा, बातचीत का ढंग और थोड़ी सी चतुराई और साहस"* आदि देखकर हम किसी को मित्र बना लेते हैं, यह गलत है। शुक्लजी ने एक विद्वान का उद्धरण देकर यह बताया है कि मित्र विश्वासपात्र होना चाहिए। वह हमारे जीवन में औषधि के समान होना चाहिए। हमें मित्रों से यह आशा करनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्प में हमारी चित्रवृत्ति को दृढ़ करेंगे। दोषों और त्रुटियों से बचाएंगे और मर्यादा से प्रेम को पुष्ट करेंगे। छात्रावस्था में मित्रता की धुन सवार रहती है। इस मित्रता में सभी भाव अर्थात् आनंद, ईर्ष्या, खिन्नता, मधुरता, अनुरक्ति और प्रेम समाए रहते हैं। युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता की अपेक्षा दृढ़, शांत और गंभीर होती है। मित्र वह है जो जीवन संग्राम में हमारा साथ दे। मित्र सच्चा पथ-प्रदर्शक, भाई के समान स्नेह देने वाला, सहानुभूतिपूर्ण और स्वार्थहीन होना चाहिए तथा जो हमारे हानि-लाभ और सुख-दुःख का समान सहभागी हो।

ऐसा भी होता है कि भिन्न-भिन्न प्रकृति वालों में प्रगाढ़ मैत्री संबंध स्थापित होते हैं, जैसे राम और लक्ष्मण। एक शांत और दूसरा उग्र। यह कहना ठीक नहीं है कि मित्रता के लिए समान स्वभाव और समान रुचि का होना जरूरी है।

मित्र का कर्त्तव्य है कि : 1) वह उच्च और महान कार्य में इस प्रकार सहयोग दे कि उसके मित्र का मन बढ़े और वह साहस प्राप्त कर सके; 2) मित्र प्रतिष्ठित हो; 3) शुद्ध हृदय को; 4) मृदुल और पुरुषार्थी हो; 5) सत्यनिष्ठ और शिष्ट हो; 6) विश्वास पात्र हो।

संसार के अनेक महान् पुरुषों ने अपने अच्छे मित्रों की बदौलत महान कार्य किए हैं। मित्रों ने कई लोगों को कुमार्ग से बचाया है और सात्विकता प्रदान की है। अपने साथियों के विवेक को जाग्रत किया है। मित्र एक टूटे हुए मन का बहुत ...ता है। वह ऐसा दृढ़ आशय और उद्देश्य प्रदान करता है कि उसका साथी कर्मक्षेत्र में श्रेष्ठ बन जाता है। मित्रता अच्छे और बुरे दोनों समय के लिए उपयोगी है। जीवन और मरण में मित्रता अनुपम रूप से सहायक होती है।

दूसरा प्रमुख बिंदु जान-पहचान वालों से सम्बद्ध है। जिससे हम मिलते-जुलते हैं, उनके आचरण और बुद्धि की परख कर ही हमें उनके साथ रहना चाहिए। जान-पहचान वालों का बुरा असर हम पर सहजता से पड़ता है। हमें जो गुण परमात्मा ने दिए हैं उनमें कई गुना वृद्धि करके हमें दूसरों को देना चाहिए। जीवन प्रहसन नहीं है। वह एक गंभीर चीज है। जिसका लक्ष्य वाजिद अली शाह के समान भोग-विलास न होकर राणाप्रताप के समान सतत् संघर्ष करना है। जीवन कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए है, समय गंवाने के लिए नहीं। हमारे कर्म भी महान हों और विचार भी महान हों। डिमास्थनीज का कथन है कि यदि अपने महान पूर्व पुरुषों की भांति हमें कर्म करने का अवसर प्राप्त न भी हो तो भी उनके विचारों को अवश्य ग्रहण करना चाहिए। हम अपनी संगति से ही जाने जाते हैं। बेकन का कहना है कि समूह का नाम संगति नहीं है। शुक्लजी की मान्यता है कि संगति में हमें अपने को उन्नत बनाने का सदैव ध्यान रखना चाहिए। यदि हमारी पहचान वाले अच्छा कार्य नहीं कर सकते हैं, न वे हमारे आनंद में सम्मिलित हो सकते हैं, न धैर्य बंधा सकते हैं, न कर्त्तव्य की प्रेरणा दे सकते हैं, तो फिर जान-पहचान व्यर्थ है। ऐसे लोगों की जान-पहचान घातक है। ऐसे लोगों के संग से भारी हानि होने की संभावना बनी रहती है। ऐसी संगति में हम शोहदे और चरित्रहीन ही बन सकते हैं। अतएव ऐसी जान-पहचान से दूर रहना चाहिए। ऐसे चरित्रहीन और ढोंगी पुरुषों की कमी नहीं है, जिन्हें न महान ग्रंथ पढ़ने में आनंद आता है और न प्रकृति के बीच उसकी रंग-बिरंगी छवि में ही रस आता है। ऐसे लोगों ने प्रीति का सुख ही नहीं जाना है। शुक्लीजी का महत्वपूर्ण कथन है कि *"कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है"*। कुसंग में पड़कर बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, आध्यात्मिक विकास रुक जाता है। चिंता की पवित्रता नष्ट हो जाती है और बुराइयाँ दृढ़ होकर मन में बैठ जाती हैं। पतन का रास्ता सरल है। उस रास्ते पर एक बार चले तो फिर उससे अलग हटना मुश्किल है। इसलिए ऐसे साथी मत बनाओ जो फूहड़ और स्वार्थी हों। ऐसे साथ से विवेक कुंठित हो जाता है और बुराइयाँ चारों ओर से घेर लेती हैं। इसीलिए कहा गया है कि काजल की कोठरी में जाओगे तो काजल की एक न एक रेखा तुम पर अवश्य ही अंकित हो जाएगी।

इस निबंध का तीसरा प्रमुख बिंदु समाज से सम्बद्ध है। यदि व्यक्ति को अच्छा समाज मिले तो वह आत्मसंस्कार में सहायक होता है। शुक्लजी ने एक और प्रश्न उठाया है कि ग्रामीण लोग शहर में आते हैं तो वहाँ उन्हें भिन्न प्रकार का समाज मिलता है। यह समाज उनकी रुचि के अनुकूल नहीं होता। इस स्थिति में उन्हें साहित्यिक समाज में प्रवेश करना चाहिए पर, यहाँ भी उन लोगों को वह सब जानकारी नहीं मिलती जिनकी उन्हें स्वशिक्षा के लिए आवश्यकता है। अतः उन्हें समाज में व्यवहार करते हुए काफी सतर्क रहना चाहिए।

हमारा सामाजिक आचरण ही हमारा यथार्थ मूल्य उद्घाटित करता है। हम समाज में प्रवेश कर यह जान पाते हैं कि हम कितने छोटे अथवा कितने बड़े हैं। समाज के भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न गुण होते हैं। हम समाज से ये गुण ग्रहण करते हैं। हम समाज से क्षमा, नम्रता और उदारता के गुण प्राप्त करते हैं। समाज में कार्य करते रहने से हमारी समझ और विवेक-बुद्धि बढ़ती है। हमारा दायरा बढ़ने से हमारी धारणाएँ विस्तृत होती हैं। समाज में हम स्वार्थ-त्याग सीखते हैं, सहानुभूति अपनाते हैं। हिलमिल कर रहना सीखते हैं। आज्ञा पालन करना सीखते हैं और सद्गुणों का आदर करना सीखते हैं। समाज हमें व्यवहार की शिक्षा देता है — जैसे बड़ों के प्रति सरलता का व्यवहार, बराबर वालों के प्रति प्रसन्नता का

व्यवहार तथा छोटों के प्रति कोमलता का व्यवहार। मीठे वचन और उत्तम चालढाल की पाठशाला समाज ही है। इतना अवश्य है कि समाज में फूहड़ लोग भी रहते हैं। जीवन की निर्मिति में ऐसे लोगों से बचना और दूर रहना जरूरी है।

35.4 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने निबंध को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। निबंध का सार पढ़ने के बाद आपको यह मालूम हो गया होगा कि उक्त निबंध में 'मित्रता' के संबंध में क्या कहा गया है। लेकिन हो सकता है आपको निबंध में कही गयी बातें स्पष्ट न हुई हों। इस दृष्टि से हम निबंध के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे और बाद में अगली इकाई में इसकी अंतर्वस्तु और संरचना शिल्प का विश्लेषण करेंगे ताकि आप निबंध में कही गयी बातों का मंतव्य ठीक से समझ सकें।

निबंध के किसी अंश की व्याख्या कैसे की जाती है इसके संबंध में आपने पिछली इकाई में अध्ययन किया है। हमने बताया था कि सबसे पहले 'गद्यांश' के 'संदर्भ' का उल्लेख करते हैं। संदर्भ के अंतर्गत 'गद्यांश' जिस निबंध से लिया गया है उसका उल्लेख करना आवश्यक है। इसके बाद हम दिये गये अंश की व्याख्या करते हैं। व्याख्या के लिए अंश को ध्यानपूर्वक पढ़ें। यह देखें कि इसमें कौन-सी मुख्य बातें कही गयी हैं और उन बातों का तात्पर्य क्या है। अगर आप इन्हें सरल शब्दों में समझा देते हैं तो व्याख्या का काम पूरा हो जाता है। व्याख्या का मतलब ही है, कही हुई बात को और अधिक खोलकर या समझा कर कहना। इसलिए यह जरूरी है कि व्याख्या सरल और समझ में आ सकने योग्य भाषा में हो।

व्याख्या करने के बाद उक्त अंश की विषय वस्तु, भाषा और शैली के संबंध में कोई विशेष बात कहनी हो तो उसे 'विशेष' शीर्षक देकर कह सकते हैं। आइए, अब 'मित्रता' निबंध का एक अंश व्याख्या के लिए लें।

गद्यांश : *जब एक बार मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल देता है, तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहाँ और कैसी जगह पर रखता है। धीरे-धीरे उन बुरी बातों से अभ्यस्त होते-होते तुम्हारी घृणा कम हो जायेगी। पीछे तुम्हें उनसे चिढ़ न मालूम होगी, क्योंकि तुम यह सोचने लगोगे कि चिढ़ने की बात ही क्या है। तुम्हारा विवेक कुंठित हो जाएगा और तुम्हें भले-बुरे की पहचान न रह जाएगी। अंत में होते-होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे।*

संदर्भ : उपर्युक्त गद्यांश 'मित्रता' निबंध से लिया गया है। इसके लेखक आचार्य शुक्ल हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल श्रेष्ठ विचारक और साहित्यकार थे। उनका यह निबंध भी विचार-प्रधान है। इस निबंध में उन्होंने 'मित्रता' के विभिन्न पक्षों पर विचार किया है। उक्त अंश में शुक्लजी ने व्यक्ति पर बुरी बातों का असर कैसे होता है, और बुरी संगति में पड़ जाने पर क्या स्थिति होती है इस पर विचार किया है।

व्याख्या : शुक्लजी ने बुरी संगति को कीचड़ में पैर रखने के समान बताया है। बुरी संगति में पड़ने से पहले व्यक्ति सोचता है कि उस पर कुसंग का कोई असर नहीं होगा। लेकिन एक बार जब आदमी बुरे लोगों का साथ कर लेता है तो धीरे-धीरे उसमें से यह समझ भी गायब हो जाती है कि वह बुराई में फंस गया है। शुक्लजी की मान्यता है कि जैसे कीचड़ में पैर डालने पर फिर अच्छी और बुरी जगह का ध्यान नहीं रहता, वैसे ही एक बार बुराई को स्वीकार कर लेने पर विवेक कुंठित हो जाता है और फिर बुराई के प्रति हमारी घृणा भी समाप्त हो जाती है। हम उसी बुराई के साथ रहने के आदी हो जाते हैं और धीरे-धीरे बुराई भी हमें अच्छी लगने लगती है। एक बार बुराई को स्वीकार कर लेने पर हम भले और बुरे में भेद करने में ही असमर्थ हो जाते हैं। ऐसा होने के बाद बुरे लोग हमें अच्छे लगने लगते हैं और हम उनके कार्यों के समर्थक और भक्त हो जाते हैं।

विशेष : 1 शुक्लजी ने उक्त गद्यांश में कुसंग के प्रभाव का विवेचन किया है, जिसके लिए उन्होंने विश्लेषण शैली का सहारा लिया है। कीचड़ में पैर रखने के दृष्टांत से उनका मतव्य और अधिक उजागर हो जाता है।

2 गद्यांश की भाषा सहज और स्पष्ट है।

निबंधों में निबंधकार कभी-कभी अपनी बात को अत्यंत संक्षेप में और सूत्र रूप में रखता है। ऐसे सूत्र या उक्ति के अर्थ को समझने के लिए उसकी व्याख्या करनी होती है, अर्थ विस्तार करना होता है। उक्ति की व्याख्या में भी पहले संदर्भ लिखना होता है, फिर उसकी व्याख्या लिखनी होती है। नीचे हम ऐसी ही एक पंक्ति और उसकी विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। संदर्भ आप स्वयं लिख सकते हैं।

उक्ति: *कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है।*

संदर्भ : संकेतः पहले दी गयी व्याख्या के आधार पर स्वयं लिखिए।

व्याख्या : शरीर में बुखार आता है तो वह दो-एक दिन की दवाई से ठीक हो जाता है, पर कुसंग अर्थात बुरी सोहबत करने से भी एक प्रकार का आतंरिक बुखार आ जाता है। बुरी संगति से हमारी बुद्धि और हमारे विवेक का नाश हो जाता है। शरीर के बुखार से शरीर का नुकसान होता है, पर कुसंग के ज्वर से हमारा मन-मस्तिष्क क्षत-विक्षत हो जाता है। इसीलिए कुसंग सबसे भयानक है क्योंकि इससे हमारी चेतना अवरुद्ध हो जाती है।

विशेष : यह उक्ति शुक्लजी की सूत्र-शैली का उत्तम उदाहरण है। इस छोटे-से वाक्य में उन्होंने कुसंग के भयावह असर को व्यक्त किया है।

अभ्यास

निम्नलिखित गद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

1 **समाज में विभिन्नता देखकर लोग एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। जो गुण हम में नहीं हैं, हम चाहते हैं कि कोई ऐसा मित्र मिले जिसमें वह गुण हो। चिंताशील मनुष्य प्रफुल्लचित्त मनुष्य का साथ ढूँढता है, निर्बल बली का, धीर उत्साही का।**

संदर्भ : संकेत: .... 'मित्रता' .... आचार्य रामचंद्र शुक्ल ....

....

मित्रता का आधार ....

....

व्याख्या : विभिन्नता के रूप ....

....

भिन्नता का आकर्षण ....

....

....

मित्रता का आधार : मित्र में भिन्न गुणों का होना ....

....

विशेष: 1 मित्रता का आधार : गुणों की भिन्नता ....

2 भाषा-शैली : तर्क पूर्ण एवं सहज ....

2 **समाज में प्रवेश करने से हमें अपना यथार्थ मूल्य विदित होता है। हम देखते हैं कि हम उतने चतुर नहीं है जितने एक कोने में बैठकर कोई पुस्तक आदि हाथ में लेकर अपने को समझा करते थे। भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण होते हैं। यदि कोई एक बात में निपुण है तो दूसरा, दूसरी में। समाज में प्रवेश करके हम देखते हैं कि इस बात की कितनी आवश्यकता है कि लोग तुम्हारी भूलों को क्षमा करें, अतः हम दूसरों की भूल-चूक को क्षमा करना सीखते हैं।**

संदर्भ : .... 'मित्रता' .... आचार्य रामचंद्र शुक्ल ....

सामाजिक जीवन की आवश्यकता ....

....

....

व्याख्या : समाज में ही व्यक्ति अपनी वास्तविक स्थिति को पहचानता है। ....

....

....

केवल पुस्तकों का ज्ञान पर्याप्त नहीं ....

....

प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता अलग-अलग होती है। ....

....

अपनी कमजोरियों को पहचानना ....

....

विशेष: 1 मित्रता और सामाजिक जीवन का संबंध ....

2 विश्लेषणात्मक शैली ....

....

3 **हम कई ठोकरें खाकर नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते हैं।**

संदर्भ : ....

....

....

व्याख्या : जीवन के विभिन्न अनुभव ....

....

दुःखद अनुभव ....

....

दृष्टि का विस्तार ....

....

नम्रता और अधीनता का उदय ....

....

विशेषः सूत्र शैली ....

....

35.5 सारांश

- इस इकाई में आपने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता' का अध्यनन किया है। इस निबंध में शुक्लजी ने वैचारिक दृष्टि से मित्रता के जिन पक्षों पर मुख्य रूप से विचार किया है, वे हैं: मित्रता की क्यों आवश्यकता होती है, अच्छे मित्र के जीवन का हमारे पर क्या प्रभाव पड़ता है, कुसंग के क्या नुकसान हैं, जीवन का उद्देश्य क्या है, मित्र किसे बनाना चाहिए और व्यक्तित्व निर्माण में समाज की क्या भूमिका होती है।
- शुक्लजी का विचार है कि हमें मित्र बहुत सोच-विचार कर बनाना चाहिए क्योंकि मित्रता का हमारे जीवन पर बहुत गहरा असर पड़ता है। मित्र ऐसा होना चाहिए जो हमारे सुख और दुख दोनों में भागीदार बने। जो हमें कुपथ पर जाने से रोके। जो निराशा के क्षणों में उत्साहित करे और संकट में सहारा दे।
- शुक्लजी के निबंध के इन विचारों का अब आप स्वयं अपने शब्दों में वर्णन कर सकते हैं।
- **निबंध में प्रयुक्त कठिन शब्दों के अर्थ स्पष्ट कर सकते हैं और महत्वपूर्ण गद्यांशों और उक्तियों का संदर्भ बताते हुए व्याख्या कर सकते हैं।**

35.6 शब्दावली

विकासवादी : विकासवाद के सिद्धान्त का समर्थक। विकासवाद के अनुसार संपूर्ण प्राणी जगत में विकास का अनुक्रम दिखाई देता है। जलचर से थलचर और थलचर में भी विकास की एक प्रक्रिया रही है।

उन्नयन : उन्नति।

क्षत-विक्षत : नष्ट-भ्रष्ट होना।

35.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 घ 2 क) सही, ख) गलत, ग) गलत, घ) सही

3 क) निपुणता, परख, ख) धैर्य, कोमलता, ग) आचरण-दृष्टांत, घ) बुरे, ङ) सच्चे

4 क ग 5 ग 6 ग, घ

7 क ख 8 क) सही ख) सही ग) गलत घ) गलत

9 जो हमारे सुख-दुख में साथी हों। कुमार्ग पर जाने से रोके। निराशा में आशा का संचार करे। हमारी कर्तव्य-बुद्धि को जाग्रत करे।

10 सोच-विचार कर मित्र चुनें। अपने जीवन को अच्छे उद्देश्यों के लिए समर्पित करें।

अभ्यास

1 **संदर्भ :** उपर्युक्त अंश आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित 'मित्रता' निबंध से लिया गया है। इस निबंध में उन्होंने मित्रता पर बौद्धिक दृष्टि से विचार किया है। उपर्युक्त अंश में हम मित्र कैसे चुनते हैं इस पर शुक्लजी ने अपना मत प्रकट किया है।

व्याख्या : शुक्लजी ने मित्रता के संबंध में विचार करते हुए यह मत प्रकट किया है कि समाज में सभी लोग एक से नहीं होते। किसी में कोई गुण होता है तो किसी में कोई। लोग सिर्फ उन्हें ही पसंद नहीं करते हैं जो उन्हीं जैसे हों बल्कि देखा यह गया है कि हम उन लोगों को ज्यादा पसंद करते हैं जो हमसे भिन्न स्वभाव और गुणों से युक्त होते हैं। जो गुण हममें नहीं हैं, उन्हें दूसरे में देखकर हम उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। एक तरह से वह व्यक्ति हमारे एक अभाव की पूर्ति करता है। इस तरह यह हमारी मित्रता का आधार बनता है। उदाहरण के लिए, अगर हम अत्यधिक चिंतित रहते हैं तो हम ऐसे व्यक्ति के प्रति आकृष्ट हो सकते हैं जो हर समय प्रसन्न रहता हो, या अगर हम अपने को कमजोर महसूस करते हैं तो साहसी व्यक्ति हमारे आकर्षण का केंद्र हो सकता है। यही बात धैर्यवान व्यक्ति और उत्साही व्यक्ति पर लागू होती है। तात्पर्य यही है कि मित्रता एक से स्वभाव के लोगों के बीच हो, यह आवश्यक नहीं है।

विशेष : 1 इस अंश में मित्रता के आधार का विवेचन किया गया है, और स्वभाव व गुणों की भिन्नता को भी मित्रता का आधार बनाया गया है।

2 शुक्लजी ने अपने मत को अत्यंत सहज और स्पष्ट भाषा में रखा है।

2 एवं 3 : दोनों गद्यांशों की व्याख्या निबंध पढ़कर दिये गये संकेतों के आधार पर स्वयं लिखने का प्रयास कीजिए।

इकाई 36 मित्रता : विश्लेषण एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

36.0 उद्देश्य
36.1 प्रस्तावना
36.2 अंतर्वस्तु
36.2.1 विचार पक्ष
36.2.2 भाव पक्ष
36.3 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
36.4 संरचना शिल्प
36.4.1 भाषा
36.4.2 शैली
36.5 प्रतिपाद्य
36.6 सारांश
36.7 शब्दावली
36.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

36.0 उद्देश्य

आप इस इकाई में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता' की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- निबंध की विषयवस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे और इस विश्लेषण के द्वारा 'मित्रता' की विषय-वस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का विवेचन कर सकेंगे;
- निबंध की भाषागत विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे;
- निबंध की शैलीगत विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे, और
- निबंध के प्रतिपाद्य की व्याख्या कर सकेंगे।

36.1 प्रस्तावना

आपने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता' का वाचन इकाई 35 में किया है। निबंध के साथ उसके कुछ अंशों की व्याख्या भी आपने पढ़ी है। इस इकाई में हम इस निबंध का विश्लेषण प्रस्तुत करने जा रहे हैं। किसी निबंध का विश्लेषण कैसे किया जाता है, इसका कुछ अनुमान आपको इकाई 34 के अध्ययन से हो गया होगा। इकाई 34 में पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'बातचीत' की व्याख्या और विश्लेषण प्रस्तुत किया गया था। विश्लेषण के अंतर्गत हमने निबंध की अंतर्वस्तु, लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव, भाषा और शैली की विशेषताएँ तथा प्रतिपाद्य पर विचार किया था। इस इकाई में भी आप 'मित्रता' निबंध के इन्हीं पक्षों का अध्ययन करेंगे। इकाई 34 में हमने उपर्युक्त पक्षों का विश्लेषण स्वयं प्रस्तुत किया था। इस इकाई में हम निबंध का विश्लेषण तो करेंगे लेकिन हम कोशिश करेंगे कि आप स्वयं भी विभिन्न तत्वों के आधार पर निबंध का विश्लेषण कर सकें। इसके लिए हमने अभ्यास दिये हैं जिन्हें पूरा करके आप अपनी विश्लेषण क्षमता का विकास कर सकेंगे।

36.2 अंतर्वस्तु

आपने इकाई 35 में 'मित्रता' निबंध का वाचन किया था। 'मित्रता' निबंध में क्या कहा गया है इससे आप परिचित हो चुके हैं। लेकिन अब आवश्यकता यह है कि हम यह समझें कि निबंध के कथ्य का वास्तविक तात्पर्य क्या है और उसकी विशेषताएँ क्या हैं। निबंध में कही गयी बातों को अगर विश्लेषित करें तो हम उसके महत्व को समझ सकेंगे।

जैसा कि इकाई 33 में बताया गया था, निबंध में रचनाकार अपने विचारों और भावों को व्यक्त करता है। इसलिए निबंध की अंतर्वस्तु उसमें व्यक्त भावों और विचारों से बनती है। निबंध में व्यक्त भावों और विचारों के विश्लेषण द्वारा हम अंतर्वस्तु की विशेषताएँ जान सकते हैं। हमने इकाई 33 में यह भी बताया था कि किसी निबंध में विचारों की प्रधानता होती है और किसी में भावों की। शुक्लजी के निबंध विचार प्रधान हैं। यह निबंध भी विचार प्रधान है लेकिन इसमें शुक्लजी की भावनाएँ भी व्यक्त हुई हैं। आइए, हम विचारों और भावों की दृष्टि से अंतर्वस्तु का विश्लेषण करें।

36.2.1 विचार पक्ष

शुक्लजी का यह निबंध 'मित्रता' नामक भाव के संबंध में है। शुक्लजी ने क्रोध, घृणा, भय, लोभ-प्रीति, श्रद्धा-भक्ति आदि कई मानवीय भावनाओं पर निबंध लिखे हैं। इनमें से 'क्रोध' निबंध का अध्ययन अपने आधार पाठ्यक्रम के अंतर्गत किया होगा। मित्रता भी एक भाव है। शुक्लजी ने इसका वैचारिक दृष्टि से विश्लेषण किया है। युवावस्था में कैसे मित्र बनाएँ और कैसे लोगों की संगति करें यही इस निबंध का प्रतिपाद्य है।

मित्र कैसे बनाएँ: शुक्लजी ने निबंध क आरंभ में इस बात पर विचार किया है कि मित्र कैसे बनते हैं। उनके अनुसार जब हम घर से बाहर निकलते हैं और समाज में प्रवेश करते हैं तो हम तरह-तरह के लोगों के संपर्क में आते हैं। हमारी जान-पहचान का दायरा बढ़ता है। इन्हीं लोगों में से कुछ को हम मित्र के रूप में चुनते हैं। मित्र वह होता है जिनसे हमारी जान-पहचान गहरी होती है। लेकिन क्या मित्रता केवल संयोग है? क्या हम अचेत रूप में मित्र बना लेते हैं या सोच-समझकर बनाते हैं? क्या मित्रों का चयन हमारे लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण है? ऐसे कई सवाल हैं जिन्हें आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने निबंध में उठाया है और उन पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है।

शुक्लजी कहते हैं कि जब हम समाज में प्रवेश करते हैं तब हमारी उम्र ऐसी नहीं होती कि हर चीज़ पर गहराई से सोच-समझकर निर्णय ले सकें। उस समय *"हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है, अपने मनोवेगों की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता हमीं को नहीं रहता।"* शुक्लजी के इस कथन का तात्पर्य यही है कि उस समय हमारे अंदर ग्रहणशीलता ज्यादा होती है, हम जल्दी दूसरों से प्रभावित हो सकते हैं। इसलिए ऐसे समय अगर हम ऐसे व्यक्ति से मित्रता कर लेते हैं जो हम से अधिक संकल्प वाला है तो हम उससे प्रभावित होकर उसका अनुकरण करने लगेंगे। ऐसे में हम अपनी बुद्धि से काम लेने की बजाय उसकी बुद्धि से काम लेंगे। हमें उसके बुरे काम भी अच्छे लगेंगे।

लेकिन अगर हम ऐसे व्यक्ति से मित्रता करते हैं जो हमारी हाँ में हाँ मिलाये, हमारी किसी बात का विरोध न करे, तो हमें यह पता नहीं लग पायेगा कि जो हम कर रहे हैं वह उचित है या अनुचित, बल्कि मित्र का समर्थन हमें गलत दिशा की ओर ही ले जाएगा। दूसरे, ऐसा व्यक्ति अकेला पड़ जाता है, क्योंकि उसे कोई सही परामर्श देने वाला या संकट के समय उसकी मदद करने वाला नहीं होता। तब ऐसी स्थिति में वह क्या करे? शुक्लजी कहते हैं कि हमारा अपना विवेक ही हमें सही मित्र चुनने में सहायता कर सकता है। अगर हम बुद्धि से काम लें तो यह निर्णय ले सकते हैं कि हमें किसे मित्र बनाना चाहिए और किससे दूर रहना चाहिए। किंतु युवावस्था ऐसी होती है जब व्यक्ति विवेक से कम हृदय से अधिक काम लेता है।

अच्छे मित्र के गुण: प्रश्न यह है कि अच्छे मित्र की पहचान क्या है? लोग आमतौर पर दूसरों की बाहरी विशेषताओं से प्रभावित होकर उनकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। जैसे, हँसमुख चेहरा, बातचीत का आकर्षक ढंग, चतुराई और साहस। लेकिन क्या सच्ची मित्रता के लिए इतना पर्याप्त है? शुक्लजी कहते हैं कि हम इस बात पर विचार नहीं करते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है! हमें अच्छे मित्र की जरूरत क्यों है? अगर इसे समझ लें तो हम यह भी समझ जाएँगे कि अच्छे मित्र में क्या-क्या गुण होने चाहिए। वस्तुतः मित्रता ऐसा साधन है जिससे हम अपने आपको शिक्षित कर सकते हैं। सच्चा मित्र हमें जीवन पथ पर लगातार सावधान करता है, हमें साहस बँधाता है और हमारी मदद करता है। वह हमारा विश्वासपात्र होता है लेकिन वह हमें अंधेरे में नहीं रखता, हमें धोखा नहीं देता। हमें भुलावे में नहीं रखता। इस तरह एक अच्छा मित्र पथप्रदर्शक की तरह होता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए शुक्लजी ने अच्छे मित्र के निम्नलिखित गुण बताये हैं:

- अच्छे कार्यों में साहस बँधाने वाला।
- बुराइयों और गलतियों से बचाने वाला।
- कुमार्ग पर जाने से रोकने वाला।
- अच्छे विचारों को पुष्ट करने वाला।
- निराशा के क्षणों में उत्साह बढ़ाने वाला।

मित्रता का प्रभाव: शुक्लजी ने इस बात पर भी विचार किया है कि मित्र किसे बनाना चाहिए। मित्र एक-से स्वभाव और गुणों वाले हों, यह आवश्यक नहीं। परस्पर विपरीत स्वभाव वाले व्यक्तियों में भी गहरा स्नेह और निकटता हो सकती है। लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि उनकी मित्रता किस तरह की है। अगर मित्र सुख और दुख दोनों में साथ देता है, अगर वह अपने मित्र को कुमार्ग पर जाने से रोकता है; उसे अच्छी सलाह और सहयोग देने को तैयार रहता है, तो निश्चय ही उसकी मित्रता मूल्यवान है। ऐसा मित्र ही अपने मित्र को प्रभावित कर सकता है। उसके सत् संकल्पों को दृढ़ कर सकता है। उसे अच्छे मार्ग पर चलने को प्रेरित कर सकता है। मित्रता का अर्थ आपस में मौज-मस्ती करना ही नहीं है, विपत्ति में साथ निभाना भी है। लेकिन कोई मित्र हमें सही सलाह दे सके, हमें कुमार्ग पर जाने से रोक सके, विपत्ति के समय हमारी सहायता कर सके, यह तभी संभव है जब हममें इतना विवेक हो कि हम जिनके संपर्क में आएँ उनकी बुद्धि और आचरण को ठीक

से समझ सकें, और उसी के अनुसार उससे संबंध बढ़ाएँ : इसलिए यह जरूरी है कि हम अपने विवेक को शिथिल न होने दें। हमें अपने जीवन के उद्देश्य को समझना चाहिए।

जीवन का उद्देश्य : शुक्लजी कहते हैं कि हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है। जीवन का उद्देश्य मौज-मस्ती नहीं है। हमें जीवन इसलिए मिला है कि उसे हम कुछ कर्त्तव्यों को पूरा करने में लगाएँ। उसे गंभीर बातों में लगाएँ। परमार्थ में लगाएँ। ईश्वर से जो जीवन मिला है, उसे हमें व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। लेकिन यह अर्थवान् तभी बन सकता है जब हम अपने विचारों और कर्मों को महान् लक्ष्यों से जोड़ें। जैसा हमारा उद्देश्य होगा, वैसे ही हमारे विचार बनेंगे, वैसे ही हमारे कर्म होंगे। तब हम वैसे ही मित्र चुनेंगे। ऐसे ही लोगों की संगति करेंगे जिसके जीवन का लक्ष्य भी वही हो, जो हमारा है।

संगति का असर : शुक्लजी का विचार है कि *"दुनियां तो जैसी हमारी संगति होगी, वैसा हमें समझेगी।"* उनकी यह बात महत्वपूर्ण है क्योंकि संगति के प्रभाव से हम बच नहीं सकते। जैसे लोगों के साथ हमारा उठना-बैठना होगा, हमारा संबंध होगा, हमें वैसी ही सहायता और सम्मति मिलेगी। अगर हमारी संगति बुरी हुई तो हमें सलाह और सहयोग दोनों ही कुमार्ग की ओर ले जाने वाले मिलेंगे। अगर हमारी संगति ऐसे लोगों की हुई जिनमें न बुद्धि है, न साहस, न सहयोग की भावना, तो ऐसे लोग हमारी कोई सहायता न कर सकेंगे। बुरे लोग हमारे अंदर की अच्छाइयों का नाश कर देते हैं, हमारी बुद्धि हर लेते हैं। इसलिए समाज में प्रवेश करते समय हमें बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। जान-पहचान बढ़ाते समय और लोगों के संपर्क में आते समय हमें उनके आचरण और गुणों की सही ढंग से परख कर लेनी चाहिए।

मनुष्य का सामाजिक जीवन : शुक्लजी कहते हैं कि बुरी संगति के कुप्रभाव का अर्थ यह नहीं है कि हम सामाजिक जीवन में प्रवेश करने से डरें। वस्तुतः समाज तो वह स्थल है जहाँ हमें अपना वास्तविक मूल्य मालूम होता है। हम गलती करते हैं, ठोकरें खाते और सीखते हैं। हम नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते हैं। हम अपनी बुद्धि तेज कर सकते हैं। दूसरों का आदर करना, सहायता करना सीखते हैं। संकटों का सामना करना और दूसरों के साथ चलना सीखते हैं। समाज में ही हमें उचित शिक्षा मिलती है। इससे यही प्रमाणित होता है कि समाज ही हमारे आत्म संस्कार और आत्म विकास की सही जगह है। हम समाज के होकर ही अपने को समाज के योग्य बना सकते हैं, लेकिन ऐसा बनने में हमारा विवेक ओर हमारे मित्रों का भी अमूल्य योगदान होता है।

36.2.2 भाव पक्ष

मित्रता एक भाव है, लेकिन शुक्लजी ने इसका विवेचन बौद्धिक दृष्टि से किया है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि शुक्लजी के इस निबंध में हृदय पक्ष की उपेक्षा हुई है। यह अवश्य है कि मित्रता के हृदय पक्ष को शुक्लजी ने कम ही छुआ है और उनकी रुचि इसके विचार पक्ष के विवेचन की ओर ही अधिक रही है। फिर भी, इस निबंध में बराबर उनकी भावनाएँ भी उभरकर सामने आती रहती हैं। उदाहरण के लिए, निबंध के आरंभ में ही छात्रावस्था में की जानेवाली मित्रता का वर्णन करते हुए उन्होंने, उस उम्र में मित्रता के प्रति जो भावावेग होता है, उसका वर्णन भी वैसी ही भावमय शब्दावली में किया है:

> *"बाल मैत्री में जो मग्न करने वाला आनंद होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहाँ? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है, कैसा अपार विश्वास होता है। हृदय में कैसे-कैसे उद्गार निकलते हैं। वर्तमान कैसा आनंदमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के संबंध में कैसी लुभाने वाली कल्पनाएँ मन में रहती हैं। कैसी क्षोभ में भरी बातें होती हैं और कैसी आवेगपूर्ण लिखा-पढ़ी होती है। कितनी जल्दी बातें लगती हैं और कितनी जल्दी मानना-मनाना होता है।"*

इस प्रकार शुक्लजी ने अच्छे मित्र पर विचार करते हुए उसे केवल बौद्धिक विवेचन का विषय ही नहीं रहने दिया है। मित्रों का एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है और वे एक दूसरे के जीवन में क्या भूमिका निभाते हैं इसका विवेचन करते हुए एक जगह वे उसे नाटकीय रूप दे देते हैं। वहाँ सीधे वर्णन या विवेचन की बजाय शुक्लजी उसे एक मित्र के संवाद के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिससे मित्रता का भाव पक्ष भी हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है :

> *"हमें अपने मित्र से कहना चाहिए — "मित्र! अपना हाथ बढ़ाओ। यह जीवन और मरण में हमारा सहारा होगा। तुम्हारे द्वारा मेरी भलाई होगी। पर यह नहीं कि सारा ऋण मेरे ही ऊपर रहे, तुम्हारा भी उपकार होगा, जो कुछ तुम करोगे उससे तुम्हारा भी भला होगा। सत्यशील, न्यायी और पराक्रमी बने रहो, क्योंकि यदि तुम चूकोगे तो मैं भी चूकूँगा। जहाँ-जहाँ तुम जाओगे, मैं भी जाऊँगा। तुम्हारी बढ़ती होगी तो मेरी भी बढ़ती होगी। जीवन के संग्राम में वीरता के साथ लड़ो क्योंकि तुम्हारी ढाल मैं लिए हूँ।"*

इस तरह के अंश निबंध को नीरस होने से बचाते हैं। शुक्लजी निबंध में अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए इतिहास की घटनाओं और व्यक्तियों का भी उल्लेख करते हैं जिससे कि जिस पक्ष का विवेचन किया जा रहा है, उसको पाठक वास्तविक जीवन के उदाहरणों से समझ सकें। शुक्लजी की भाषा शुष्क विश्लेषणात्मक नहीं है बल्कि उसमें साहित्यिक भाषा का रस मिलता है, जो उनके निबंध के भाव पक्ष को ही उजागर करता है। निम्नलिखित उदाहरण में भाषा का ऐसा ही रूप देखने को मिलता है :

> *उनके लिए फूल-पत्तियों में कोई सौंदर्य नहीं, झरनों के कल-कल में मधुर संगीत नहीं, अनंत सागर तरंगों में गंभीर रहस्यों का आभास नहीं, उनके भाग्य में सच्चे प्रयत्न और पुरुषार्थ का आनंद नहीं, उनके भाग्य में सच्ची प्रीति का सुख और कोमल हृदय की शांति नहीं।*

36.3 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

निबंध रचना पर निबंधकार के व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य रहता है। उसका दृष्टिकोण, उसकी अभिरुचि, उसका शैलीगत वैशिष्ट्य और उसकी भाषा की निजता—इन सभी रूपों में उसका व्यक्तित्व निबंध में अभिव्यक्त होता है। यह अवश्य है कि निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव सभी के यहाँ एक-सा नहीं होता।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की लेखन पद्धति वस्तुनिष्ठ है। उनका व्यक्तित्व निबंधों में प्रच्छन्न रूप में ही मौजूद रहता है किन्तु उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को आसानी से पहचाना जा सकता है।

'मित्रता' शुक्लजी का आरंभिक निबंध है। लेकिन उनका दृष्टिकोण इसमें भी पहचाना जा सकता है। शुक्लजी की दृष्टि समाजोन्मुख थी। यह निबंध भी उन्होंने इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर लिखा है। वे प्रत्येक वस्तु, भाव और विचार पर समाज की भलाई की दृष्टि से विचार करते हैं। मित्रता पर भी उन्होंने इसी दृष्टि से विचार किया है। मित्रता यद्यपि भाव है और इस दृष्टि से इस पर मनोवैज्ञानिक या भावनापरक दृष्टि से विचार किया जा सकता है। तथापि शुक्लजी के सामने सदैव सामाजिक हित रहता है, इसलिए वे इसी दृष्टिकोण के अनुसार विचार करते हैं।

इस निबंध में शुक्लजी ने मित्रता पर विचार करते हुए उसके सामाजिक पक्ष को प्रमुखता दी है। मित्रता की क्यों आवश्यकता होती है? मित्रता किससे करनी चाहिए? किसकी संगति का असर अच्छा और किसका बुरा होता है? एक अच्छे मित्र में क्या गुण होने चाहिए? इन सभी बातों पर उन्होंने सामाजिक हित की दृष्टि से ही विचार किया है। अपना यह दृष्टिकोण उन्होंने निबंध के अंत में स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं:

> *समाज में प्रवेश करने से हमें अपना यथार्थ मूल्य विदित होता है। हम देखते हैं कि हम उतने चतुर नहीं है जितने एक कोने में बैठकर कोई पुस्तक आदि हाथ में लेकर अपने को समझा करते थे। भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण होते हैं। यदि कोई एक बात में निपुण है तो दूसरा दूसरी में। समाज में प्रवेश करके हम देखते हैं कि इस बात की कितनी आवश्यकता है कि लोग तुम्हारी भूलों को क्षमा करें, अतः हम दूसरों की भूल-चूक को क्षमा करना सीखते हैं। हम कई ठोकरें खाकर नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते हैं।*

शुक्लजी के व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है, बौद्धिकता। निबंध लिखते हुए वे अपनी भावनाओं को बुद्धि पर हावी नहीं होने देते। इसी कारण वे 'मित्रता' जैसे भाव का विश्लेषण भी वस्तुपरक ढंग से करते हैं। किसी भी विषय पर विचार करते हुए उनकी दृष्टि उसके सभी पक्षों पर रहती है और उन पक्षों में जो तार्किक एकता होती है, उसे वे तत्काल पहचान लेते हैं। यही कारण है कि उनके विचारों में कहीं बिखराव या अंतर्विरोध दिखायी नहीं देता बल्कि अपने मत को वे इतने ठोस और विवेकपूर्ण ढंग से रखते हैं कि उनके विचारों का लोहा मानना पड़ता है। शुक्लजी ने इस निबंध में मित्रता से जुड़े प्रायः सभी पक्षों का विवेचन किया है; जैसे, उन्होंने निबंध की शुरुआत ही इस बात से की है कि मित्र की जरूरत कब पड़ती है। इसके बाद उन्होंने जान-पहचान और मित्रता के अंतर को स्पष्ट किया है। तत्पश्चात् उन्होंने अच्छे मित्र की पहचान और आवश्यकता को रेखांकित किया है। इस बात को उन्होंने जीवन के उद्देश्य के संदर्भ में समझाया है। इसके बाद शुक्लजी ने संगति और मित्रता के संबंध की व्याख्या की है और अंत में व्यक्ति के सामाजिक जीवन के महत्व को समझाया है। विश्लेषण का यह ढंग उनकी बौद्धिकता की पहचान कराता है।

शुक्लजी के व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता है, उनकी भावुकता। शुक्लजी केवल बुद्धिवादी लेखक ही नहीं थे बल्कि उनके पास एक सर्जनशील और भावुक हृदय भी था। मित्रता का बौद्धिक विश्लेषण करते हुए भी शुक्लजी विषय के वर्णन में अपने इस भावुक हृदय और रचनात्मकता का परिचय बार-बार देते हैं। इस निबंध में कई जगह उनकी भाषा की इस रचनात्मकता को पहचाना जा सकता है। इस तरह के कुछ उदाहरणों का उल्लेख हम इसी इकाई में अंतर्वस्तु के अंतर्गत 'भावपक्ष' का विश्लेषण करते हुए कर चुके हैं।

शुक्लजी के निबंधों में उनकी हास्य और व्यंग्य की प्रवृत्ति भी प्रायः व्यक्त हुई है। इस दृष्टि से यह निबंध कुछ भिन्न प्रकार का है। शुक्लजी के व्यक्तित्व का यह पक्ष इस निबंध में नहीं उभर सका है। शायद इसका कारण यह है कि यह शुक्लजी का आरंभिक निबंध है, उस समय तक शुक्लजी निबंधों की अपनी शैली पूरी तरह विकसित नहीं कर पाये थे। लेकिन यह निबंध उनके व्यक्तित्व के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं को पूरी तरह उजागर करता है।

बोध प्रश्न

आपने इस इकाई के 'अंतर्वस्तु' और 'लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति' भागों का अध्ययन किया है। अब आप इन पर आधारित निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1 लेखक ने मित्रता पर किस दृष्टि से विचार किया है?
   क) भाववादी दृष्टि से।
   ख) मनोविश्लेषणवादी दृष्टि से।
   ग) बौद्धिक दृष्टि से।
   घ) किसी दृष्टि से नहा।

2 शुक्लजी ने इस निबंध में मित्रता के किस पक्ष को मुख्य रूप से उजागर किया है?
क) सामाजिक पक्ष
ख) राजनीतिक पक्ष
ग) वैयक्तिक पक्ष
घ) भाव पक्ष। ( )

3 शुक्लजी ने मित्रता के जिन प्रमुख पक्षों का विवेचन किया है, उनमें से कोई से तीन पक्ष बताइए।
1) ....
2) ....
3) ....

4 शुक्लजी के व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशेषताओं में [illegible] निबंध में व्यक्त नहीं हो सकी है:
क) समाज हितैषी
ख) बुद्धिवादी
ग) भावुक हृदय
घ) हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति ( )

5 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सिर्फ एक-एक वाक्य में लिखिए।
1) मित्रता की आवश्यकता कब पड़ती है?
....
2) मित्रता भाव है या विचार?
....
3) सामाजिक पक्ष का क्या तात्पर्य है?
....
4) मित्र बनाते समय विवेक की आवश्यकता क्यों होती है?
....

अभ्यास

1 'मित्रता' निबंध में अच्छे और बुरे मित्र की विशेषताएँ बताई गयी हैं। कृपया पाँच पंक्तियों में इनके किसी एक पक्ष की तुलना कीजिए।
....
....
....
....
....

2 "शुक्लजी किसी भी भाव का विवेचन उसके सामाजिक हित की दृष्टि से करते हैं।" इस कथन को ध्यान में रखते हुए पाँच पंक्तियों में मित्र की आवश्यकता को समझाइए।
....
....
....
....
....

3 शुक्लजी को बुद्धिवादी निबंधकार कहने का क्या [illegible] है? पाँच [illegible]
....
....
....
....
....

36.4 संरचना शिल्प

अब तक हमने निबंध के वस्तु पक्ष पर विचार किया था, अब हम निबंध की संरचना पर विचार करेंगे। निबंध की संरचना के दो पक्ष होते हैं: भाषा और शैली। निबंध को गद्य की कसौटी कहा गया है क्योंकि गद्य की भाषा की सच्ची परीक्षा निबंध में ही होती है। निबंध में भाषा और शैली के लिए बहुत स्वतंत्रता नहीं होती। वहाँ विचार और भाव प्रत्यक्ष रूप में सामने आते हैं, उन्हें किसी काल्पनिक कथा या कल्पना, प्रतीक, मिथक आदि के माध्यम से प्रस्तुत नहीं किया जाता। इसलिए भाषा और शैली को भी अपना रूप बदलने की बहुत स्वतंत्रता नहीं होती। रचनाकार को अपनी विशिष्टता और भाषा के सौंदर्य का प्रदर्शन करने के लिए अधिक रचनात्मक ऊर्जा और कल्पनाशीलता की जरूरत पड़ती है। आइए, अब हम इस निबंध की भाषा और शैली पर विचार करें।

36.4.1 भाषा

इकाई 34 में हम देख चुके हैं कि बालकृष्ण भट्ट के समय में खड़ी बोली का रूप परिनिष्ठित नहीं हुआ था, लेकिन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक आते-आते गद्य की भाषा काफी प्रौढ़ हो चुकी थी। अब उसमें वह ताकत आ चुकी थी कि उसमें किसी भी तरह के विचार और भाव सहजता से प्रकट किये जा सकते थे।

शुक्लजी का भाषा पर जबर्दस्त अधिकार था। जटिल से जटिल विषय का अत्यंत सारगर्भित भाषा में विवेचन कर देना उनके लिए कठिन नहीं था। निबंधों में विवेचन की सहजता और स्वाभाविकता उनके भाषा पर अधिकार के कारण ही है। इस निबंध में जब वे मित्रता के किसी जटिल पक्ष का विवेचन करते हैं, तब भी उनकी भाषा सहज और सरल बनी रहती है। वाक्यों का ऐसा प्रवाह होता है कि एक के बाद दूसरा विचार अपने आप निकलता प्रतीत होता है। सभी वाक्य तर्क के अंतःसूत्र से बंधे होते हैं और उनमें कहीं टकराव या बिखराव नहीं होता। उदाहरण के लिए निबंध के निम्नलिखित अंश को पढ़िए:

> *हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरंभ करते हैं जबकि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है। अपने मनोवेगों की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता हमीं को नहीं रहता।*

उपर्युक्त अंश में शुक्लजी ने किशोर वय की जटिल मनःस्थिति का वर्णन किया है। यह अंश भाषा की दृष्टि से कुछ कठिन है, लेकिन इसमें किशोर व्यक्ति की जटिल मनःस्थिति को थोड़े से शब्दों में जितने स्पष्ट रूप से समझा दिया है, वह भाषा पर शुक्लजी के अधिकार को ही व्यक्त करता है। इस उद्धरण में 'अपरिमार्जित' भाव, 'अपरिपक्व' प्रवृत्ति, 'कोमल' चित्त, 'मनोवेगों की शक्ति', 'प्रकृति की कोमलता', आदि के माध्यम से लेखक ने एक ही वाक्य में किशोर की स्वभावगत विशिष्टता को चित्रित कर दिया है।

शुक्लजी की भाषा में खड़ी बोली का सौंदर्य व्यक्त हुआ है। उनकी प्रवृत्ति तत्सम शब्दों के प्रयोग की ओर अधिक है और इस कारण उनकी भाषा को संस्कृतनिष्ठ कहा जा सकता है। लेकिन इसके कारण उनकी भाषा कृत्रिम, शुष्क और बोझिल नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि शुक्लजी का आग्रह सहज और स्वाभाविक भाषा लिखने की ओर है और इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर वे तद्भव, देशज और उर्दू शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसीलिए उनके इस निबंध में अपरिमार्जित, अपरिपक्व, मनोवेग, अनुसंधान, आत्मशिक्षा, हतोत्साह, अनुरक्ति, आर्द्रता, मृदुल, पुरुषार्थी, सात्विकता, क्षय, सद्वृत्ति संस्काराभिलाषी, मनोनीत जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग तो मिलता ही है, हेलमेल, धड़ाधड़, चटपट, ठट्ठा जैसे देशज शब्द और दरवाजा, दिल्लगी, पानदान, हुक्के, सवार, कमाई, शोहदे, महफिल, अमीर, नकल, बीमार जैसे उर्दू शब्द भी सहज ही आ जाते हैं। इसी तरह इस निबंध में तद्भव शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।

शुक्लजी के निबंध गंभीर और विवेचनपरक हैं, लेकिन यह गंभीरता विचारों तक ही सीमित है, इससे भाषा में जटिलता नहीं आती। इसका कारण यह है कि शुक्लजी वाक्य रचना में उलझाव पैदा नहीं करते। जहाँ तक संभव होता है वे छोटे वाक्य बनाते हैं ताकि विचारों को स्पष्टता से रखा जा सके। उनके वाक्यों में ऐसा प्रवाह रहता है कि विचार अपने आप ही खुलते चले जाते हैं।

शुक्लजी ने भाषा को ऐसा रूप देने का प्रयास किया है जो आगे आने वाले लेखकों के लिए आदर्श बन सके। उन्होंने जहाँ एक ओर भाषा को परिमार्जित और परिनिष्ठित रूप किया, वहीं उसकी रचनात्मकता को भी बनाये रखा। उन्होंने भाषा को गंभीर और जटिल विचार प्रणाली को वहन करने योग्य बनाया। इसके लिए उन्होंने नये-नये शब्दों का निर्माण किया और इस तरह हिंदी को समृद्ध किया।

36.4.2 शैली

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे हैं। विभिन्न मनोभावों पर लिखे उनके निबंध इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। 'मित्रता' यद्यपि उस श्रेणी का निबंध नहीं है तथापि इसमें भी एक मानवीय भाव का ही विवेचन किया गया है। उनका यह विवेचन बुद्धिपरक है, न कि भावपरक।

शुक्लजी जब किसी विषय पर विचार करते हैं तो उनकी दृष्टि उसके सभी पक्षों पर तार्किक और वस्तुपरक ढंग से विचार करने की होती है। 'मित्रता' निबंध पर विचार करें तो हमारे सामने उनकी यह विशिष्टता स्पष्ट हो जाएगी। इस निबंध में मित्रता क्या है, मित्रता की जरूरत क्यों होती है, जान-पहचान कब मित्रता में परिवर्तित हो जाती है, अच्छा मित्र किसे कहते

है, उसमें किस तरह के गुण होने चाहिए, वह हमारे जीवन पर क्या प्रभाव डालता है, बुरा मित्र हमारे जीवन को किस तरह नुकसान पहुंचाता है, संगति का क्या असर होता है और, अंत में, सामाजिक जीवन में मित्रता की क्यों आवश्यकता होती है, मित्रता के इन विभिन्न पक्षों पर शुक्लजी ने तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया है और उन्हें उदाहरणों द्वारा पुष्ट किया है। इससे इस निबंध की शैली को विवेचनपरक कहा जाएगा। यह भावपरक शैली से अलग है क्योंकि निबंध हमारी भावनाओं को उत्तेजित करने से अधिक विचारों को तीव्र करता है।

शुक्लजी की विवेचनपरक शैली अत्यंत प्रभावशाली है। शुक्लजी जिस बात को विश्लेषित करना चाहते हैं पहले उसकी समस्या को सामने रखते हैं, फिर उसकी विस्तार से व्याख्या करते हैं। उसके बाद उसके समर्थन में कोई ठोस उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे एक बात और दूसरी बात के पारस्परिक संबंध को भी स्पष्ट रूप से सामने रखते हैं ताकि पूरे निबंध में विचारों का सतत् प्रवाह भी नजर आये और उनमें विकास भी दृष्टिगोचर हो।

इस दृष्टि से निबंध के आरंभिक अंश का विश्लेषण करें तो हम इस प्रक्रिया को समझ सकते हैं। निबंध के आरंभ में उन्होंने घर की चार दीवारी से बाहर निकलने के बाद किसी युवक के सामने उत्पन्न नयी स्थिति का वर्णन किया है। इसी क्रम में वे बताते हैं कि मित्र कैसे बनते हैं? इस प्रकार वे अपने निबंध की मुख्य समस्या को स्पष्ट शब्दों में हमारे सामने रख देते हैं :

> *जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकलकर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिल्कुल एकांत और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं, और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेलमेल हो जाता है। यही हेलमेल बढ़ते-बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है; क्योंकि संगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है।*

इस प्रकार, वे आरंभ में समस्या को रखते हैं। इसके बाद वे समस्या के एक-एक पक्ष का विवेचन करते जाते हैं। जैसे समस्या को रखने के बाद वे सबसे पहले इस बात पर विचार करते हैं कि युवावस्था में मित्र बनाने में सावधानी की आवश्यकता क्यों होती है, इसके लिए वे युवा वर्ग की मनःस्थिति का वर्णन करते हैं और इसके बाद वे उस मनःस्थिति के कारण मित्र के चयन की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। इस प्रकार वे निबंध के प्रत्येक चरण पर एक नयी बात जोड़ते जाते हैं जो पहली बात को पुष्ट भी करती है और आगे भी बढ़ाती है।

शुक्लजी की विवेचनपरक शैली निश्चय ही उनके बुद्धिवादी चिंतन का ही परिणाम है। लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि उन्होंने भावनाओं की उपेक्षा की है। अपने निबंध में जहाँ भी आवश्यकता हुई है वहाँ उन्होंने अपने विवेचन को भावपरक बनाया है और ऐसे अवसर इस निबंध में कई बार आये हैं, जिनमें से कुछ का उदाहरण इस इकाई में हम पहले ही दे चुके हैं।

36.5 प्रतिपाद्य

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य को सोद्देश्यता की दृष्टि से देखते थे। उनके लिए लेखन का अर्थ "स्वांतः सुखाय" (केवल अपने सुख के लिए) नहीं था। वे निरुद्देश्य लेखन के विरोधी थे। उनके साहित्यिक लेखन की दूसरी विशेषता यह थी कि उनकी दृष्टि समाज-सापेक्ष थी। उनके विचार में साहित्य का उद्देश्य समाज और लोक का मंगल ही हो सकता है। उनकी यह दृष्टि इस निबंध में भी व्यक्त हुई है।

'मित्रता' निबंध पर भी उन्होंने इसी समाज-सापेक्ष दृष्टि से विचार किया है। मित्रता या दोस्ती एक तरह का भाव है जो दो या दो से अधिक लोगों के बीच उनके पारस्परिक संबंधों से उत्पन्न होता है। चूंकि ये संबंध सामाजिक हेलमेल से बनते हैं इसलिए इनका असर व्यक्ति के सोच और कार्य, दोनों पर अवश्य पड़ता है। व्यक्ति के सोच और कार्य का असर पूरे समाज पर पड़ता है और इससे समाज की स्थिति और प्रगति भी प्रभावित होती है। इसलिए यह जरूरी है कि हम किसी से जान पहचान बढ़ाने से पहले अच्छी तरह से विचार कर लें। किसी व्यक्ति को मित्र बनाने से पहले यह सोच लें कि यह मित्रता मेरे व्यक्तित्व का विकास करेगी, संकट के समय मेरे लिए सहायक होगी या सिर्फ मेरे लिए बोझ बनकर रह जाएगी।

मित्रता के सामाजिक पक्ष पर इतना बल देने का कारण यह है कि शुक्लजी इस बात में विश्वास नहीं करते कि मित्रता मात्र दिल मिलने की बात है तथा मित्र कैसा ही क्यों न हो, उसका हमारे जीवन पर कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता जिसको गंभीरता से लेना पड़े। इसके विपरीत शुक्लजी का निश्चित मत है कि संगति का असर अवश्य पड़ता है, इसलिए उसमें सावधानी आवश्यक है और ऐसी सावधानी युवकों के लिए और भी ज़रूरी है, क्योंकि उनकी प्रवृत्ति ऐसी होती है कि वे जल्दी प्रभाव ग्रहण करते हैं।

शुक्लजी ने मित्रता की परीक्षा का आधार ऐसे जीवन-मूल्यों को बनाया है जो सामाजिक दृष्टि से उत्तरदायित्वपूर्ण हों। व्यक्ति सिर्फ स्वार्थ और विलासिता में ही न डूबा रहे बल्कि अपने आपको उन्नति और सामाजिक हित के कार्यों में लगाये।

शुक्लजी के ऐसे विचारों का कारण उस समय की सामाजिक स्थितियाँ हैं। शुक्लजी जिस समय लिख रहे थे उस समय देश में स्वतंत्रता का संघर्ष चल रहा था। वह समय भोग विलास और स्वार्थपरता का नहीं था। अक्सर लोग अपने राष्ट्र और

समाज के हित की न सोचकर सिर्फ अपने स्वार्थों में ही डूबे रहते तो आजादी को हासिल नहीं किया जा सकता था। इसलिए ऐसे विचारों और मूल्यों को प्रसारित करना जरूरी था कि जिससे लोगों में राष्ट्रीय हित की भावना उत्पन्न हो। शुक्लजी का यह निबंध इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

शुक्लजी के इस निबंध की प्रासंगिकता यह है कि सामाजिक जीवन में प्रवेश करते समय अच्छे मित्र का चयन आज के जीवन में और अधिक [illegible] है। [illegible] की बातों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

निबंध का शीर्षक इस [illegible] से उपयुक्त कहा जा सकता है। शुक्लजी ने अपने निबंध को मित्रता पर ही केन्द्रित रखा है और [illegible] इस पर उन्होंने विस्तार से विचार किया है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

6 'मित्रता' निबंध किस शैली में लिखा गया है?

क) व्यंग्य शैली
ख) भावात्मक शैली
ग) वर्णनात्मक शैली
घ) विवेचनपरक शैली ( )

7 इस निबंध में [illegible] शब्दों की प्रधानता है?

क) तद्भव
ख) उर्दू
ग) तत्सम
घ) देशज ( )

8 निम्नलिखित कथन सही है या गलत, बताइए।

1) शुक्लजी के लेखन का उद्देश्य स्वांतः सुखाय है। (सही/गलत)
2) शुक्लजी ने समाज-सापेक्ष दृष्टि से मित्रता पर विचार किया है। (सही/गलत)
3) शुक्लजी उर्दू, तद्भव और देशज शब्दों से परहेज करते हैं। (सही/गलत)
4) शुक्लजी लम्बे और जटिल वाक्य लिखते हैं। (सही/गलत)
5) निबंध का शीर्षक [illegible] है। (सही/गलत)

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर [illegible]

4 इस निबंध को ध्यान में रखते हुए दस पंक्तियों में शुक्लजी की विवेचनपरक शैली की व्याख्या कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

5 निम्नलिखित गद्यांश पर भाषा की दृष्टि से पाँच पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

मित्रता जीवन और मरण के मार्ग में सहारे के लिए है। यह सैर-सपाटे और अच्छे दिनों के लिए भी है तथा संकट और विपत्ति के बुरे दिनों के लिए भी है। यह हँसी-दिल्लगी के गुलछर्रों में भी साथ देती है और

धर्म के मार्ग में भी। मित्रों को एक दूसरे के जीवन के कर्त्तव्यों को उन्नत करके उन्हें साहस, बुद्धि और एकता द्वारा चमकाना चाहिए।

....

....

....

....

....

....

....

36.6 सारांश

- आपने इस इकाई में 'मित्रता' निबंध के विश्लेषण एवं का अध्ययन किया है। अब आप स्वयं निबंध के विभिन्न पक्षों के आधार पर उसकी विशेषताएँ बता सकते हैं।
- शुक्लजी का यह निबंध मित्रता से संबंधित है जिसका विवेचन उन्होंने वैचारिक दृष्टि से किया है और बताया है कि मित्रता का क्या महत्व है, किस से मित्रता करनी चाहिए, अच्छे मित्र की क्या पहचान है, संगति का क्या असर होता है, आदि। अब आप स्वयं निबंध की विषयवस्तु की व्याख्या कर सकते हैं और उसकी विशेषताएँ बता सकते हैं।
- शुक्लजी का यह निबंध वस्तुगत दृष्टि से लिखा गया है इसलिए इसमें उनके व्यक्तित्व का प्रभाव प्रच्छन्न रूप में ही दिखायी देता है। शुक्लजी की बौद्धिकता, सामाजिकता और संवेदनशीलता का प्रभाव उनके इस निबंध पर भी है, जिसको आप स्वयं पहचान सकते हैं और उनको उदाहरण सहित स्पष्ट कर सकते हैं।
- शुक्लजी की भाषा तत्सम प्रधान है, किन्तु उन्हें उर्दू, देशज या तद्भव शब्दों से परहेज नहीं है। उनकी भाषा खड़ी बोली का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है। उनके इस निबंध में गद्य का परिनिष्ठित एवं परिमार्जित रूप मिलता है। वे गंभीर विवेचन को भी सहज और प्रवाहमयी भाषा में प्रस्तुत करते हैं। अब आप स्वयं इस निबंध की भाषागत विशेषताओं को बता सकते हैं।
- इस निबंध की शैली विवेचनपरक है। शुक्लजी विचार-प्रधान निबंध को भी जटिल और नीरस नहीं होने देते तथा अपनी प्रत्येक बात को अच्छी तरह समझाकर प्रस्तुत करते हैं। उनकी शैली की इस विशिष्टता की अब आप स्वयं व्याख्या कर सकते हैं।
- शुक्लजी का यह निबंध उनके समाज-सापेक्ष दृष्टिकोण को सामने रखता है। अब आप स्वयं निबंध के प्रतिपाद्य की विशेषताएँ बता सकते हैं तथा निबंध के शीर्षक की उपयुक्तता भी समझा सकते हैं।

36.7 शब्दावली

व्यक्तिवाद : वह अवधारणा जो समाज की तुलना में व्यक्ति को महत्व देती है।

तार्किक एकता : किसी विचार के पक्ष या विपक्ष में दिये गये तर्कों में पारस्परिक एकता। कई बार उन तर्कों में एकता नहीं होती तो कही गयी बात में अंतर्विरोध उत्पन्न हो जाता है।

स्वांतः सुखाय : अपने सुख के लिए। इस कथन के अनुसार साहित्य का कोई बाहरी उद्देश्य नहीं होता, साहित्यकार केवल अपने सुख और आनंद के लिए ही साहित्य की रचना करता है।

प्रच्छन्न रूप : छुपे हुए रूप में।

36.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 ग 2 क

3 1) अच्छे मित्र के गुण

2) बुरी संगति का असर
3) मित्र के कर्त्तव्य
4) मित्रता का सामाजिक पक्ष

4 घ

5 1) जब मनुष्य समाज में प्रवेश करता है।
2) मित्रता भाव है जो दो या दो से अधिक मनुष्यों के परस्पर संबंधों से उनके हृदय में उत्पन्न होता है।
3) सामाजिक पक्ष का तात्पर्य है किसी वस्तु, विचार या भाव के संबंध में समाज को दृष्टि में रखकर विचार करना।
4) मित्र बनाते समय अगर सोच समझकर निर्णय न लिया जाये तो मित्र चुनने में गलती हो सकती है।

6 घ 7 ग

8 1) गलत 2) सही 3) गलत 4) गलत 5) सही

अभ्यास

1 देखिए उपभाग 36.2.1
2 देखिए उपभाग 36.2.1
3 देखिए भाग 36.3
4 देखिए उपभाग 36.4.2
5 संकेतः
1) उपर्युक्त अंश की भाषा तत्सम प्रधान,
2) देशज, तद्भव और उर्दू शब्दों का भी प्रयोग,
3) छोटे वाक्य,
4) सहज और स्वाभाविक भाषा।

इकाई 37 नाखून क्यों बढ़ते हैं? (हजारीप्रसाद द्विवेदी) : वाचन

इकाई की रूपरेखा

37.0. उद्देश्य
37.1 प्रस्तावना
37.2 निबंध का वाचन : नाखून क्यों बढ़ते हैं?
37.3 निबंध का सार
37.4 संदर्भ सहित व्याख्या
37.5 सारांश
37.6 शब्दावली
37.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

37.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं? का अध्ययन करेंगे। आरम्भ में आप निबंध का वाचन करेंगे और इसके बाद निबंध का सार और उसके महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या पढ़ेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- निबंध की विषयवस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- निबंध में आये कठिन शब्दों के अर्थ बता सकेंगे, और
- निबंध के महत्वपूर्ण अंशों को संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे।

37.1 प्रस्तावना

अब तक आप इस खंड में चार इकाइयों का अध्ययन कर चुके हैं। इकाई 34 में आपने पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंध 'बातचीत' का अध्ययन किया था और इकाई 35 एवं 36 में पं. रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता' का। उपर्युक्त तीनों इकाइयों को पढ़ने से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि निबंध की क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं और उनका अध्ययन और विश्लेषण कैसे किया जाता है। हिंदी निबंध की परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का महत्वपूर्ण स्थान है। इन निबंधकारों ने हिंदी निबंध की परम्परा को समृद्ध ही नहीं किया अपितु उसे नयी दिशा भी दी है। उनके इसी महत्व को दृष्टि में रखते हुए हमने इनके निबंधों को दो-दो इकाइयों में विवेचित किया है। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का अध्ययन भी आप दो इकाइयों में करेंगे। इस इकाई में निबंध का वाचन और उसका सार तथा उसके महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या का अध्ययन करेंगे। इससे अगली इकाई (इकाई-38) में आप अंतर्वस्तु, लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव, भाषा और शैली तथा प्रतिपाद्य आदि की दृष्टि से निबंध का विवेचनात्मक अध्ययन करेंगे।

हिंदी निबंध के विकास में द्विवेदीजी के योगदान से आप इकाई 33 में परिचित हो चुके हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में हुआ था। आपने शांति निकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सान्निध्य में हिन्दी का अध्यापन कार्य किया था। बाद में आपने कुछ समय तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और पंजाब विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कार्य किया। आपने संस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य का गहन अध्ययन किया था और बंगला आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य से भी भली-भांति परिचित थे। आपकी दृष्टि आधुनिक थी इसलिए पांडित्य के साथ-साथ आधुनिक चिंतन दृष्टि आपके लेखन को खास विशेषता है। आपने अपना लेखन मुख्य रूप से साहित्य के इतिहास और आलोचना के क्षेत्र से आरम्भ किया। विशेष रूप से प्राचीन और मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का आपका अध्ययन अत्यंत गम्भीर और मौलिक है। बाद में आप उपन्यास और निबंध लेखन की ओर भी प्रवृत्त हुए। आपके सभी उपन्यास ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर लिखे गए हैं। आपकी रुचि अतीत के राजनीतिक चित्रण की ओर कम तथा सांस्कृतिक चित्रण की ओर अधिक रही है। व्यापक मानवतावादी दृष्टि आपके लेखन में प्रतिबिंबित हुई है। आपने ललित निबंध नामक एक नई निबंध शैली का विकास किया। जो आचार्य शुक्ल की शैली से नितांत भिन्न परंतु उतनी ही महत्वपूर्ण कही जा सकती है। आपका निधन 1979 में हुआ।

द्विवेदीजी द्वारा रचित प्रमुख पुस्तकें हैं :

इतिहास और आलोचना से संबंधित: 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य : 'उद्भव और विकास', 'कबीर', 'सूर साहित्य', 'नाथ साहित्य', 'मध्ययुगीन धर्म साधना', 'प्राचीन भारत में कलात्मक विनोद' तथा 'कालीदास की लालित्य योजना'।

उपन्यास: 'बाण भट्ट की आत्मकथा', 'चारू चंद्रलेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा'

निबंध संग्रह: 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', 'कुटज', 'आलोक पर्व', आदि। "नाखून क्यों बढ़ते है?" निबंध 'कल्पलता' पुस्तक में संकलित है।

37.2 निबंध का वाचन : नाखून क्यों बढ़ते हैं?

नाखून क्यों बढ़ते हैं?

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देने वाले प्रश्न कर बैठते हैं। **अल्पज्ञ** पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन अगर उन्हें बढ़ने दें, तो मां-बाप अक्सर उन्हें डांटा करते हैं। पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भांति फिर छूटते ही **सेंध** पर हाजिर। आखिर ये इतने **बेहया** क्यों हैं?

हथियारों के विकास की कहानी

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था; **बनमानुष** जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दांत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचंद्रजी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाये। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था **देवताओं के राजा** का वज्र, जो **दधीचि** मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार बनाये। जिनके पास लोहे के शस्त्र और अस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। **असुरों** के पास अनेक विधाएं थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। **आर्यों** के पास ये दोनों चीजें थीं। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। **नाग** हारे, **सुवर्ण** हारे, **यक्ष** हारे, **गंधर्व** हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली। इतिहास आगे बढ़ा। **पलीते वाली बंदूकों** ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को जिस कीचड़-भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है। नख-धर मनुष्य अब एटम-बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के **नख-दंतावलंबी** जीव हो — पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।

मनुष्य की बर्बरता क्या खत्म हो पाई है या बढ़ रही है?

ततःकिम्। मैं हैरान होकर सोचता हूं कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून काटने के लिए डांटता है। किसी दिन — कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व — वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डांटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाये जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कंबख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर-युग का कोई **अवशेष** रह जाय, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूं, नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की **बर्बरता** घटी कहां है, वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य के इतिहास में **हिरोशिमा** का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है। यह तो उसका नवीनतम रूप है। मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूं तो कभी-कभी निराश हो जाता हूं। ये उसकी भयंकर **पाशवी वृत्ति** के जीवंत प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

मनुष्य की विलास वृत्ति

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। **वात्स्यायन** के **कामसूत्र** से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के संवारता था। उनके काटने

अल्पज्ञ: कम जानने वाला; **सेंध:** वह छेद जो चोर दीवार तोड़कर बनाते है; **बेहया:** बेशर्म, जिसे शर्म न हो; **बनमानुष:** बिना पुंछ का बंदर जिसकी शक्ल आदमी से कुछ अधिक मिलती है; **देवताओं का राजा:** इंद्र; **दधीचि:** एक पौराणिक चरित्र, महर्षि शुक्राचार्य के पुत्र, वृत्रासुर के अत्याचार से जब देवता पीड़ित थे तो इंद्र ने दधीचि की हड्डियों से वज्र बनाया और उससे वृत्रासुर का वध किया; **असुर:** राक्षस, एक पौराणिक जाति जिसकी वास्तविकता के बारे में कुछ कहना असंभव है, हो सकता है आर्यों का जिनसे संघर्ष हुआ हो उन्हें वे असुर पुकारते हों; **आर्य:** श्रेष्ठ, यहाँ एक जाति से तात्पर्य है जिसके बारे में इतिहासकारों का विचार है कि ईसा से लगभग दो हजार वर्ष पहले वे भारत आये थे और उन्होंने अपनी सभ्यता यहाँ स्थापित की; **नाग, सुवर्ण, यक्ष, गंधर्व:** प्राचीन भारतीय जातियाँ जिनका उल्लेख हिंदू पुराणों में मिलता है; **पलीते वाली बंदूकें:** बंदूक का आरंभिक रूप, जब बंदूक में बारूद भरकर उसमें आग लगाई जाती थी और फिर छोड़ा जाता था; **नख-दंतावलंबी:** नाखून और दांतों पर निर्भर; **ततःकिम्:** तो इससे क्या; **अवशेष:** शेष, बाकी; **बर्बरता:** असभ्यता का जंगलीपन; **हिरोशिमा:** जापान का एक शहर जिस पर अमेरिका ने दूसरे विश्व युद्ध के दौरान 6 अगस्त, 1945 को एटम बम गिराया था; **पाशवी वृत्ति:** पशुओं जैसा स्वभाव; **वात्स्यायन:** 'कामसूत्र' पुस्तक के लेखक, वास्तविक नाम मल्ल नाग, इस पुस्तक में मनुष्य की काम वृत्तियों एवं उससे जुड़ी हुई बातों का वर्णन है;

की कला काफी मनोरंजक बतायी गयी है। त्रिकोण, **वर्तुलाकार**, **चंद्राकार**, **दंतुल** आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। **गौड़ देश** के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसंद करते थे और **दाक्षिणात्य** लोग छोटे नखों को। अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन समस्त **अधोगामिनी** वृत्तियों को और नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मनुष्य की अभ्यास-जन्य सहज वृत्तियाँ

मानव-शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भांति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यास जन्य **सहज वृत्तियाँ** रह गयी हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियां अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की ओर वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गये हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है। मेरा मन पूछता है — किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर। मेरी **निर्बोध** बालिका ने मानो मनुष्य-जाति से ही प्रश्न किया है — जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ — जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? — ये हमारी पशुता की निशानी है। भारतीय भाषाओं में प्रायः ही अंगरेजी के 'इंडिपेंडेंस' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। १५ अगस्त को जब अंगरेजी भाषा के पत्र 'इंडिपेंडेंस' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इंडिपेंडेंस' का अर्थ है अनधीनता या किसी भी अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना। अंग्रेजी में कहना हो, तो 'सेल्फडिपेंडेंस' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेजी की **अनुवर्तिता** करने के बाद भी भारतवर्ष 'इंडिपेंडेंस' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किये — स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता — उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजान में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणि-विज्ञानी की बात फिर याद आती है — सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज होने के बाद स्वभावतः ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाय। हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई नौसिखुए नहीं हैं, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुंचकर आरक्षित छोड़ दिये हों। हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार **विपुल** और संस्कार उज्ज्वल है। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। उपकरण नये हो गये हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गयी है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपने-आप पर अपने आप के द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाये रहने वाली 'बंदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नयी **अनुसंधित्सा** के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। **कालिदास** ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नये खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जांच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे **पूर्वसंचित** भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आवे, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

नाखून: पशुत्व का प्रतीक

पशुत्व से मुक्ति ही मनुष्य का रास्ता

अनधीनता बनाम स्वाधीनता

स्व का बंधन: भारतीय परंपरा का प्रभाव

नये और पुराने का प्रश्न

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए एवं अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक शब्द में दीजिए।

1) नाखून किस का प्रतीक है?

....

2) नाखून से प्रतीकात्मक रूप में किसका विकास जुड़ा हुआ है?

....

वर्तुलाकार: गोल आकार का; **चंद्राकार**: चंद्रमा जैसा आकार; **दंतुल**: बड़े दांत जैसा; **गौड़ देश**: बंगाल का पुराना नाम; **दाक्षिणात्य**: दक्षिण देश का निवासी; **अधोगामिनी**: अवनति, हीनता या बुराई; **सहजात वृत्तियाँ**: मनोविज्ञान से संबंधित शब्द जिसका अर्थ है साथ-साथ उत्पन्न होने वाली स्वाभाविक क्रियाएँ या स्वभाव; **निर्बोध**: भोली-भाली; **अनुवर्तिता**: अनुकरण; **विपुल**: विस्तृत या अधिक; **अनुसंधित्सा**: अनुसंधान या खोज; **कालिदास**: संस्कृत के महान रचनाकार जिन्होंने कई नाटकों और काव्य ग्रंथों की रचना की; **पूर्वसंचित**: पहले से इकट्ठा किया हुआ।

3) नाखून को सँवारने का वर्णन किस भारतीय ग्रंथ में हुआ है?

....

4) नाखून काटने की प्रवृत्ति किस का प्रतीक है?

....

2 "सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नये ख़राब नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है, उसे ग्रहण करते है, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते हैं" यह कथन किसका है?

क) हजारी प्रसाद द्विवेदी
ख) कालिदास
ग) वात्स्यायन
घ) दधीचि मुनि (   )

3 मानव शरीर की अभ्यासजन्य सहज वृत्तियों के ऐसे तीन उदाहरण दीजिए, जिनका उल्लेख निबंध में हुआ हो।

1 ....
2 ....
3 ....

विभिन्न जातियों के लिए समान धर्म की खोज

जातियाँ इस देश में अनेक आयी हैं। लड़ती-झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेमपूर्वक बस भी गयी हैं। सभ्यता की **नाना** सीढ़ियों पर खड़ी और नाना ओर मुख करके चलने वाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बांधना। मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है। आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुःख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के **उद्भावित** बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़-दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किये गये **असत्याचरण** को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। **महाभारत** में इसलिए **निर्वैर भाव**, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है :

मनुष्य और पशु में अन्तर

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठ सर्वभूतेषू भारत।
निर्वैरता महाराज सत्यंक्रोध एव च।।

अन्यत्र इसमें निरंतर दानशीलता को भी गिनाया गया है (अनुशासन १२०.१०)। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुःख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्मनिर्मित बंधन ही मनुष्य को बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल **उत्स** यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वज्ञ आदमी को पछाड़ता है। और आदमी है कि सदा उससे **लोहा लेने** को **कमर कसे** है।

भौतिक उन्नति और मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता: गांधी का सन्दर्भ

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक **बूढ़ा** था। उसने कहा था — बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ। क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो; आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा — प्रेम ही बड़ी चीज़ है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई। आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ — बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठ कर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

पशुत्व से मुक्ति की आवश्यकता

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूंछ झड़ गयी है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जायेगी। शायद उस दिन वह **मारणास्त्रों** का प्रयोग भी बंद कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित

जातियाँ: भारत के बाहर से आने वाले लोग, जो अलग-अलग क्षेत्रों और संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते थे, जैसे आर्य, शक, हूण, यवन, तुर्क, मंगोल आदि। भारतीय संस्कृति पर इन सभी जातीय समूहों का प्रभाव है; **नाना:** अनेक प्रकार के; **उद्भावित:** उत्पन्न या कल्पित; **असत्याचरण:** सत्य के विपरीत आचरण या झूठा आचरण; **महाभारत:** वेदव्यास द्वारा रचित प्राचीन संस्कृत महाकाव्य; **निर्वैर भाव:** वैर से रहित भाव; **उत्स:** स्रोत; **बूढ़ा:** यहाँ गांधी जी की ओर संकेत है; **मारणास्त्र:** ऐसे हथियार जिससे दूसरे की जान जाती हो; **लोहा लेना** (मु.): मुकाबला करना; **कमर कसना,** (मु.): तैयार रहना।

करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास बिना सिखाये आ जाती है, वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएं मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

सफलता और चरितार्थता में अंतर

सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस 'स्व'-निर्धारित आत्म-बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

कंबख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें। मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

बोध प्रश्न

4 नीचे वे विशेषताएँ दी गयी हैं जो पशु में नहीं पाई जाती। इनमें जो गलत हो उन पर (×) और जो सही हो उन पर (√) का निशान लगाइए।

क) संयम	( )	घ) तप	( )
ख) आहार	( )	ङ) निद्रा	( )
ग) श्रद्धा	( )		

5 **"बाहर नहीं भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ।" यह बात किसने कही थी?**

क) गौतम	ग) गांधीजी
ख) वेदव्यास	घ) नेहरूजी ( )

6 महाभारत में निम्नलिखित में से किसे मनुष्य का सामान्य धर्म कहा है?

क) निर्वैर भाव	ग) अक्रोध
ख) सत्य	घ) उपर्युक्त तीनों ( )

7 निम्नलिखित वाक्यों में उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान भरिए:
(संस्कृति, पशुता, पशु, मनुष्यत्व, मनुष्य)
1 उच्छृंखलता..............की प्रवृत्ति है, "स्व" का बंधन..............का स्वभाव है।
2 वृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य की..............की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना.............. का तकाज़ा है।
3 अपने आप पर अपने आप के द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी..............की बड़ी भारी विशेषता है।
4 मनुष्य की..............को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

37.3 निबंध का सार

इस निबंध की शुरुआत एक प्रश्न से होती है। लेखक की छोटी लड़की अपने पिता से पूछती है कि नाखून क्यों बढ़ते हैं? नाखून काटिए, तीन दिन बाद फिर बढ़ जाएँगे। अपनी बच्ची के इस मासूम से प्रश्न से लेखक एक जटिल सवाल में उलझ जाता है।

इस प्रश्न पर विचार करते हुए लेखक के सामने मानव सभ्यता के विकास की कहानी उजागर होने लगती है। कुछ लाख वर्ष पहले मनुष्य जंगली था। अपनी जीवन रक्षा के लिए वह दांतों और नाखूनों का उपयोग करता था। बाद में उसने अपनी रक्षा के लिए पत्थर, पेड़ की डाल और हड्डियों का भी उपयोग किया। मनुष्य लगातार उन्नति करता रहा। उसने लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाये। ऐसे ही हथियारों से आर्यों ने असुरों और दूसरी जातियों को पराजित किया। फिर बंदूक, तोप और बम बने। आज मनुष्य एटम बम तक पहुँच चुका है। उसे अब नाखून की जरूरत नहीं है। फिर भी, नाखून बढ़ते जा रहे हैं।

इस जटिल सवाल से लेखक लगातार जूझता है कि आखिर नाखून क्यों बढ़ते हैं? नाखून तो उस बर्बर युग की देन है जब वह नाखून का हथियार की तरह इस्तेमाल करता था। नाखून काटकर वह बर्बरता से छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन क्या वास्तव में वह बर्बरता से छुटकारा पा सका है? हिरोशिमा का हत्याकांड तो इसी बर्बरता का प्रमाण है।

प्राचीन पुस्तकों में नाखूनों को सजाने और सँवारने संबंधी उल्लेख मिलते हैं। वात्स्यायन के 'काम सूत्र' से मालूम पड़ता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले मनुष्य अपने नाखूनों को तरह-तरह से सजाता-सँवारता था। इन उल्लेखों से लेखक,

चरितार्थता: जिसका प्रयोजन सिद्ध हो गया हो; **निःशेष**: जिसमें कुछ बच न जाए, समूचा।

को भारतवर्ष की एक विशेषता का ज्ञान हुआ। यहाँ के लोगों द्वारा अपनी ऐसी प्रवृत्तियों को जिन्हें हम असत् कह सकते हैं, मानवीय रूप में ढालने की कोशिश का पता चलता है। इससे प्रतीत होता है कि भारतवासी शुरू से ही अपनी असत् प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते रहे हैं।

इसके पश्चात् द्विवेदीजी प्राणी विज्ञान को अपने चिंतन का आधार बनाते हैं। प्राणी विज्ञान से मालूम पड़ता है कि मनुष्य के मन की वृत्तियों की तरह ही मनुष्य के शरीर में अभ्यास से पैदा होने वाली बहुत-सी स्वाभाविक वृत्तियाँ अभी बाकी हैं। इसलिए शरीर ने अपने भीतर एक विशेषता पैदा कर ली है। बिना किसी प्रयत्न के वे वृत्तियाँ सक्रिय रहती हैं। नाखून बढ़ना, केशों का बढ़ना आदि ऐसी ही सहजात वृत्तियाँ हैं जिसके बारे में वह नहीं सोचता अगर वह सोचता तो उसे मालूम होता कि नाखून बढ़ा लेने की वृत्ति उसके अंदर के पशुत्व की निशानी है, उसे काटने की प्रवृत्ति मनुष्यता की। इसलिए पशुत्व के चिह्न भले ही उसमें रह गये हों, वह पशुता छोड़ चुका है। पशुता के सहारे वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे विकास के लिए नया रास्ता खोजना होगा। कारण, हथियार बनाने की प्रवृत्ति भी मनुष्यता की विरोधी है।

यहाँ लेखक एक और प्रश्न उठाता है कि मनुष्य की प्रगति की दिशा कौन-सी है? वह किस ओर बढ़ रहा है? हथियारों को बढ़ाने की ओर या उन्हें समाप्त करने की ओर। यह स्पष्ट है कि हमारे भीतर की बची पशुता के कारण ही नाखून बढ़ते हैं और इसी कारण हथियार भी। लेखक भारतीय संस्कृति के विशेष गुण आत्म नियंत्रण के बल पर सहजात पशुता पर विजय पाने की प्रेरणा देता है। अंग्रेजी शब्द "इंडिपेंडेंस" के भारतीय अर्थ "स्वाधीनता" का उदाहरण देते हुए द्विवेदीजी कहते हैं कि अपने "स्व" पर अपने आप के द्वारा लगाया हुआ बंधन भारतीय संस्कृति की खास विशेषता है। कालिदास का हवाला देते हुए लेखक यह स्पष्ट करता है कि भारतीय संस्कृति के इस गुण की चर्चा वह पुरातन के प्रति मोह के कारण नहीं कर रहा। हर पुरानी बात अच्छी नहीं होती और न ही हर नई बात खराब। आवश्यकता है विवेक से निर्णय लेने की। अगर हमें अपने सांस्कृतिक कोष से कोई कल्याणकारी वस्तु मिल जाए तो उसे अपना लेने से बेहतर क्या हो सकता है?

भारत में लंबे समय से अनेक जातियाँ आती रही हैं। उनमें संघर्ष भी हुआ है। उन सबके लिए "एक सामान्य धर्म खोज निकालना" आसान काम नहीं है। लेकिन ऐसा एक सामान्य आदर्श है और वह है अपने द्वारा बनाये गये बंधनों में स्वयं को बांधना। आहार, निद्रा, भय आदि स्वभाव मनुष्य और पशु में एक से हैं, लेकिन संयम, श्रद्धा, तपस्या, त्याग और दूसरों के प्रति संवेदना ही मनुष्यता की पहचान है। इसीलिए मनुष्य लड़ाई-झगड़े और बुरे आचरण को अच्छा नहीं समझता। सबके प्रति सहानुभूति का भाव, अहिंसा, सत्य और क्रोध से रहित धर्म का मूल आत्मनिर्मित बंधन में है। महाभारत में यही कहा गया है और यही उपदेश गांधीजी ने दिया था। गांधीजी ने कहा था कि केवल बाहरी उन्नति पर्याप्त नहीं है मनुष्य के भीतर की पशुता को नष्ट करना होगा। क्रोध और हिंसा से दूर रहने और दूसरों के लिए कष्ट सहने का उपदेश भी गांधीजी ने दिया था। उच्छृंखलता को वे पशु स्वभाव मानते थे और "स्व" के बंधन को मनुष्य का स्वभाव। किन्तु उनको गोली मार दी गई। यह देखकर आश्चर्य होता है कि मनुष्य की वास्तविक सफलता के आधार को गांधीजी ने कितनी गहराई से खोज लिया था।

एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि जब मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना रुक जाए। प्राणी विज्ञान के अनुसार अनावश्यक अंग समाप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में शायद मनुष्य की पशुता भी समाप्त हो जाए और वह हिंसक हथियारों का प्रयोग बंद कर दे। किंतु जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हमें बच्चों को यह शिक्षा देनी होगी कि नाखून का बढ़ना मनुष्य की पशुता की निशानी है, उसे न बढ़ने देना उसका आदर्श है। मानव जीवन में हथियारों का बढ़ाना पशुता है और उन्हें रोकना मानवता का सूचक। मानव स्वभाव में पुरातन काल से चली आ रही पशुता की वृत्तियाँ जैसे घृणा, ईर्ष्या आदि के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, उसे सीखना नहीं होता। किंतु इन से मुक्ति पाने की तैयारी मनुष्य को करनी ही पड़ती है। इस स्थिति के कारण आत्मसंयम और दूसरों की भावनाओं का आदर करने का आदर्श, उसके निजी धर्म हैं और ये मनुष्य के गौरव के प्रतीक हैं। मनुष्य हिंसात्मक हथियारों को एकत्र करके, बाहरी साधनों की अधिकता से क्षणिक सफलता तो पा सकता है किंतु वास्तविक लक्ष्य तो उसे तभी प्राप्त होगा जब वह प्रेम, मैत्री, त्याग को अपनाये और अपने आपको पूरी तरह से सबके कल्याण के लिए समर्पित कर दे। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस विवेकहीन प्राकृतिक वृत्ति का परिणाम है जो उसके जीवन में भौतिक सफलता तो लाती है, लेकिन जिनसे मनुष्य के मनुष्यत्व का विकास नहीं होता। आत्मनियंत्रण के द्वारा मनुष्य अपनी प्राकृतिक वृत्तियों को वश में करता है और मानवता के उज्ज्वल आदर्शों की ओर बढ़ता है। मनुष्य की यह विकास यात्रा ही वास्तविक यात्रा है और जीवन की सार्थकता भी इसी में है।

द्विवेदीजी का विश्वास है कि मनुष्य की पशु-प्रवृत्तियाँ चाहे कितनी ही बढ़े किंतु अंततः मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

37.4 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने निबंध को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। निबंध का सार पढ़ने के बाद आपको यह मालूम हो गया होगा कि इस निबंध में क्या कहा गया है। लेकिन हो सकता है आप निबंध का मंतव्य न समझ पाये हों अथवा निबंध के तत्वों की दृष्टि से इसकी विशेषताएँ उजागर न हुई हों। इसलिए हम आपके सामने अगली इकाई में निबंध की अंतर्वस्तु और भाषा-शैली की विशेषताएँ प्रस्तुत करेंगे। यहाँ हम आपके सामने कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे जिससे कि आपके सामने निबंध का कथ्य पूरा खुल सके।

निबंध के किसी अंश की व्याख्या कैसे की जाती है इसके संबंध में आप इकाई 34 और 35 में पढ़ चुके हैं। हम यहाँ उसे दोहराएँगे नहीं। यहाँ हम निबंध का एक अंश लेते हैं और उसकी व्याख्या करते हैं :

गद्यांश : मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर-युग का कोई अवशेष रह जाए, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूँ, नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है। यह तो उसका नवीनतम रूप है। मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवंत प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

हमने आपको पहले की इकाइयों में बताया था कि सबसे पहले संदर्भ लिखा जाता है। संदर्भ के अंतर्गत रचना का नाम रचनाकार का नाम तथा वह प्रसंग, जिसके संदर्भ में उक्त उद्धरण कहा गया है। इस दृष्टि से अगर विचार करें तो हमारे सामने स्पष्ट है कि यह उद्धरण किस रचना से लिया गया है तथा इसका लेखक कौन है। इसके बाद प्रसंग पर आते हैं। इस निबंध की शुरुआत इस प्रश्न से होती है कि नाखून क्यों बढ़ते हैं? इस प्रश्न पर विचार करते हुए लेखक के सामने मानव सभ्यता का अब तक का विकास उजागर हो जाता है और इस विकास के साथ वह यह भी देखता है कि मनुष्य ने हथियारों का भी लगातार विकास किया है। किसी समय वह अपनी जीवन रक्षा के लिए नाखून और दांतों का इस्तेमाल करता था और अब उसने एटम बम जैसे संहारक हथियार बना लिये हैं। तब प्रश्न उठता है कि मनुष्य सभ्य हुआ है या नहीं? पशुता तो अब भी बाकी है जो उसके अंदर उस समय से ही थी जब वह जंगल में रहता था।

अब आप स्वयं उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर संदर्भ लिख सकते हैं।

संदर्भ: प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' से लिया गया है। द्विवेदीजी ने इस प्रश्न पर विचार किया है कि नाखून क्यों बढ़ते हैं। हथियारों के विकास को देखकर उनको लगता है कि मनुष्य में अब भी वह पशुता बाकी है जो बर्बर युग की निशानी है।

आइए, अब हम उक्त अंश की व्याख्या पर विचार करें। सबसे पहले यह देखिए कि इस उद्धरण में मुख्य बातें क्या कही गयी हैं। लेखक ने सबसे पहले यह बात कही है कि नाखून को मनुष्य पसंद नहीं करता क्योंकि वह बर्बर युग का अवशेष है। इस बात का तात्पर्य यह है कि मनुष्य नाखून से छुटकारा पाकर बर्बरता से छुटकारा पाना चाहता है। इस विचार के भीतर से लेखक में दूसरा प्रश्न उभरता है कि यह भी कैसे कहा जाय कि मनुष्य बर्बरता से मुक्त होना चाहता है? अगर सचमुच ऐसा होता तो हिरोशिमा जैसे हत्याकांड क्यों होते? वस्तुतः यह एक अंतर्विरोध है। एक तरफ मनुष्य नाखून से मुक्ति चाहता है, दूसरी तरफ एटम बम जैसे हथियारों का निर्माण और इस्तेमाल करने में लगा है। यह इस बात का द्योतक है कि मनुष्य अभी भी अपने अंदर की पशुता से मुक्त नहीं हुआ है। नाखून का बढ़ना उसी पशुता का प्रतीक है जो अभी नष्ट नहीं हुई है। जिस प्रकार बार-बार काटने पर भी नाखून बढ़ जाते हैं, उसी तरह मनुष्य की पशुता भी बार-बार उभर आती है और हिरोशिमा जैसे कांड हो जाते हैं।

इस प्रकार अब आप स्वयं व्याख्या लिख सकते हैं:

व्याख्या: लेखक का विचार है कि मनुष्य अब नाखून नहीं चाहता, क्योंकि नाखून उस युग की निशानी है जब वह जंगली अवस्था में रहता था। पर अब मनुष्य अपनी बर्बरता से मुक्त होना चाहता है। वह यह नहीं चाहता कि उसके अंदर जंगलीपन का कोई अवशेष रह जाय। वह पशुता से मुक्त होकर मनुष्य होना चाहता है। लेकिन लेखक सोचता है कि यह बात भी पूरे विश्वास के साथ कैसे कही जा सकती है? केवल नाखून काटना ही तो पर्याप्त नहीं है? हिरोशिमा में अभी हाल में एटम बम का प्रयोग किया गया और हजारों-हजार आदमियों को मार डाला गया। यह एक हत्याकांड था। क्या यह मनुष्य की बर्बरता, उसके जंगलीपन की निशानी नहीं है? फिर कैसे कहा जा सकता है कि मनुष्य के अंदर की बर्बरता कम हुई है। लेखक अपनी निराशा व्यक्त करते हुए कहता है कि मैं जब नाखून की ओर देखता हूँ तो निराश हो जाता हूँ। ये मनुष्य के अंदर की पशुता के जीते-जागते प्रतीक हैं। जिस तरह नाखून काटे जाने के बावजूद बार-बार बढ़ जाते हैं, उसी तरह मनुष्य की पशुता भी बार-बार उभर आती है। नाखून की तरह पशुता भी नष्ट नहीं हो रही है। लेखक की चिंता और निराशा का कारण यही है।

इसके बाद आप भाषा-शैली या गद्यांश के बारे में कुछ विशेष कहना चाहेंगे। जैसे आप यह कह सकते हैं कि इस उद्धरण में लेखक संहारक हथियारों से चिंतित हैं जो मनुष्य की पशुता के प्रतीक हैं। आप हिरोशिमा का संक्षिप्त विवरण दे सकते हैं। आप उक्त उद्धरण की भाषा और शैली पर टिप्पणी कर सकते हैं और इसके लिए आपको अगली इकाई के 'संरचना शिल्प' भाग से मदद मिल सकती है।

विशेष: 1 इस उद्धरण में लेखक मनुष्य की पशुता पर चिंता व्यक्त कर रहा है जिसके कारण हिरोशिमा जैसे हत्याकांड होते हैं।

2 हिरोशिमा जापान का एक शहर था और अमेरिका ने 6 अगस्त, 1945 को एटम बम से इस शहर को नेस्तनाबूत कर दिया था।

3 उद्धरण की भाषा तत्सम प्रधान है। भाषा में खड़ी बोली का परिनिष्ठित रूप मिलता है तथा लेखक के विचार बहुत ही स्पष्ट रूप में व्यक्त हुए हैं।

उपर्युक्त गद्यांश के बाद आइए, निबंध के एक और अंश को लें।

> *बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है।*

संदर्भ:

आप रचना और लेखक के नाम देने के बाद प्रसंग का उल्लेख कीजिए। लेखक ने यहाँ हथियारों की वृद्धि पर चिंता प्रकट की है और इसे मनुष्यता के विरुद्ध माना है।

व्याख्या:

व्याख्या में आप मनुष्यता और पशुता का अंतर बताइए। यह भी बताइए कि द्विवेदी जी किन गुणों को मनुष्य की पहचान मानते हैं और हथियारों के निर्माण को क्यों मानव-विरोधी मानते हैं। इस बात को आप नाखून के बढ़ने और काटने से भी जोड़िए और मनुष्य की सहजात वृत्तियों और उसके स्वधर्म के बंधन से भी जोड़िए। अगर आप इन सभी बातों को सही ढंग से रख सकेंगे तो आप उक्त अंश की बेहतर व्याख्या कर सकेंगे।

विशेष:

इसके अंतर्गत आप विनाशकारी हथियारों के लगातार बढ़ते खतरे के प्रति लेखक की चिंता को रेखांकित कर सकते हैं। इस महत्वपूर्ण बात को कहने के लेखक के ढंग पर भी टिप्पणी कर सकते हैं।

अब आप स्वयं इस उद्धरण की संदर्भ सहित व्याख्या लिखिए।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थान में लिखिए।

1 उपर्युक्त गद्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

संदर्भ: ....

....

....

....

व्याख्या: ....

....

....

....

....

....

विशेष: ....

....

....

....

2 *कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नये खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जांच कर लेते हैं, जो हितकर होता है, उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आवे, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है।*

संदर्भ:

संकेत:: लेखक का नाम

रचना का नाम

रचना में संदर्भ : नये और पुराने विचारों में मानने योग्य कौन?

....

....

....

व्याख्या:

संकेत : कालिदास के कथन की व्याख्या : ग्रहणीय कौन ?
नया या पुराना
नये और पुराने का अंतर
बुद्धिमान और मुर्ख का अंतर
पुराना भी स्वीकार्य : अगर वह हितकर हो

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

विशेष:

संकेतः 1 कालिदासः 'मालविकाग्निमित्र' से उद्धरण
2 पुरातनपंथी दृष्टि से भिन्न
3 भाषा-शैली की विशेषता

....
....
....
....
....

37.5 सारांश

- इस इकाई में आपने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का वाचन किया है। इस निबंध में द्विवेदीजी ने नाखून के बहाने मनुष्य की हिंसक वृत्ति पर विचार किया है। उन्होंने गंभीरता से हुए प्रश्न को उठाया है कि क्या कारण है कि इतनी भौतिक उन्नति के बावजूद मनुष्य अपनी बर्बर मनोवृत्तियों से मुक्त नहीं हो पाया है। इसका उत्तर देते हुए कहा है कि जब मनुष्य आत्म नियंत्रण वाले गुणों को भूलता है तभी वह पशुता की ओर बढ़ता है। हथियारों का बढ़ता जख़ीरा इस बात का प्रमाण है। भारतीय संस्कृति की विशेषता है स्वाधीनता या स्व का बंधन। हमें इसे याद रखने की आवश्यकता है। निबंध में कही गयी इन बातों को आप अपने शब्दों में प्रस्तुत कर सकते हैं।
- 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' अत्यंत महत्वपूर्ण निबंध है। इस निबंध में लेखक ने कई महत्वपूर्ण सवालों को उठाया है। आपने इस निबंध के कुछ अंशों की व्याख्या द्वारा इसमें कही गयी बातों को समझने का प्रयास किया है। अब आप स्वयं निबंध के ऐसे ही महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकते हैं।

37.6 शब्दावली

मानवतावादी दृष्टिः वे गुण जिनसे मनुष्य की पहचान होती है जैसे सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, निर्वैर आदि। उन्हें मानवता या मनुष्यता कहते हैं। मनुष्य के गुणों को अपनी दृष्टि का आधार बनाना मानवतावाद है।

मंतव्यः आशय या मत। यहाँ रचना के उद्देश्य से तात्पर्य है।

जखीराः भंडार या खजाना।

37.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 1 पशुता 2 अस्त्र-शस्त्र 3 कामसूत्र 4 मनुष्यता

2 ख

3 1 केश बढ़ना
2 नाखून बढ़ना
3 पलकों का उठना-गिरना

4 क ✓ ख × ग ✓ घ ✓ ङ ×

5 ग 6 घ

7 1 पशु, मनुष्य
2 पशुता, मनुष्यत्व
3 संस्कृति
4 पशुता

अभ्यास

1 भाग 37.4 का वह अंश पढ़िए जिसमें इस अंश की व्याख्या पर विचार किया गया है और उसके आधार पर अपना उत्तर लिखिए।

2 **संदर्भ:** प्रस्तुत पंक्तियाँ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' में से ली गयी हैं। इनमें लेखक ने संस्कृत के महाकवि कालिदास के एक श्लोक का भावार्थ लेते हुए नये और पुराने के संबंधों पर विचार किया है। उन्होंने कहा है कि मृत अतीत से चिपके रहना बंदरिया का आदर्श हो सकता है, मनुष्य का नहीं।

व्याख्या: कालिदास का विचार था कि कोई चीज पुरानी हो जाने से ही अच्छी नहीं हो जाती और न ही कोई चीज नयी हो जाने के कारण खराब हो जाती है। नया भी अच्छा हो सकता है और पुराना भी। समझदार लोग इसके बारे में निर्णय उसके नये या पुराने से नहीं करते बल्कि वे यह जाँच करते हैं कि वह ग्रहण करने योग्य है या नहीं। उसको ग्रहण करना हितकर होगा या नहीं। मूर्ख वे ही लोग कहलाते है जो अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं करते और दूसरों के कहे का अंधानुकरण करते हैं और बाद में पछताते हैं। द्विवेदीजी कालिदास के मत से सहमति प्रकट करते हुए यह और जोड़ते हैं कि अगर हमें अतीत के संचित कोष से कोई हितकारी वस्तु मिलती है तो निस्संकोच उसे अपना लेना चाहिए।

विशेष: 1 कालिदास का यह मत उनके ग्रंथ 'मालविकाग्निमित्रम्' से लिया गया है।
2 इन पंक्तियों में द्विवेदीजी ने नये और पुराने के संबंध में एक विवेकसम्मत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।
3 उक्त गद्यांश की भाषा सरल और तत्सम हिंदी में है।

इकाई 38 नाखून क्यों बढ़ते हैं? : विश्लेषण एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

38.0 उद्देश्य
38.1 प्रस्तावना
38.2 अंतर्वस्तु
38.2.1 विचार पक्ष
38.2.2 भाव पक्ष
38.3 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
38.4 संरचना शिल्प
38.4.1 भाषा
38.4.2 शैली
38.5 प्रतिपाद्य
38.6 सारांश
38.7 शब्दावली
38.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

38.0 उद्देश्य

आप इस इकाई में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' की रचनागत विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- निबंध की विषय वस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे। उक्त विश्लेषण के आधार पर इस निबंध के भाव पक्ष और विचार पक्ष की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का विवेचन कर सकेंगे;
- निबंध की भाषागत और शैलीगत विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे; और
- निबंध के प्रतिपाद्य का विश्लेषण कर सकेंगे।

38.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 37 में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते है?' का वाचन किया था। निबंध के साथ उसके कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या का भी आपने अध्ययन किया था। अब आप इस निबंध के रचनागत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे। इसके लिए हम निबंध का विश्लेषण करेंगे। निबंध के विश्लेषण का हमारा आधार वही होगा, जो 'बातचीत' और 'मित्रता' निबंध में रहा है। इस इकाई में हमारी कोशिश होगी कि निबंध की विशेषताओं को पहचानने के लिए विश्लेषण में आपका सक्रिय योगदान हो। इसलिए हम अपनी ओर से पूरा विश्लेषण करने की बजाय उसके लिए आवश्यक संकेत सूत्र देंगे तथा उस विधि का परिचय देंगे जिसकी मदद लेकर आप स्वयं विश्लेषण कर सकें और सही निष्कर्ष निकाल सकें। विश्लेषण की आपकी क्षमता को और बढ़ाने के लिए हम बोध प्रश्न और अभ्यास भी देंगे।

38.2 अंतर्वस्तु

हम आपको पहले बता चुके हैं की निबंध को अंतर्वस्तु के दो पक्ष होते हैं: भाव पक्ष और विचार पक्ष। किसी निबंध में विचारों की प्रधानता होती है, किसी में भावों की। ऐसे भी निबंध हो सकते हैं जिनमें विचार और भाव एक दूसरे से गुंथे हुए हों और निबंध हमारी भावनाओं और विचारों दोनों को उत्तेजित करे। अगर हम इस निबंध की अतर्वस्तु पर विचार करें तो हमें यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि यह निबंध अब तक पढ़े दोनों निबंधों से भिन्न प्रकार का है। लेकिन यह भिन्नता किस दृष्टि से है? अंतर्वस्तु पर विचार करते हुए हम इसी भिन्नता को जानने और समझने का प्रयास करेंगे।

सबसे पहले आप इस बात पर विचार करें कि इस निबंध का विषय क्या है? निबंध को पढ़ने से हमें यह समझने में कोई परेशानी नहीं होती कि निबंध का विषय 'नाखून क्यों बढ़ते हैं ?' पर विचार करना नहीं है बल्कि नाखून के बढ़ने की प्रवृत्ति के माध्यम से कुछ अधिक महत्वपूर्ण सवालों पर विचार करना है। ये महत्वपूर्ण सवाल कौन-से हैं और उन पर लेखक ने एक भाववादी की तरह विचार किया है या एक बुद्धिवादी की तरह? दूसरे, यह निबंध हमें सोचने के लिए प्रेरित करता है या मात्र हमारे भावों को ही उद्वेलित करता है? इन सभी पक्षों का विवेचन करने के लिए आइए, पहले निबंध के विचार पक्ष को समझने का प्रयास करें।

38.2.1 विचार पक्ष

द्विवेदीजी के इस निबंध की शुरुआत बच्चे की जिज्ञासा या एक प्रश्न से होती है। "नाखून क्यों बढ़ते हैं?" यह प्रश्न बच्चे द्वारा पूछा गया सामान्य सा प्रश्न नहीं रहता, जब लेखक इस प्रश्न में अंतर्निहित उसके व्यापक अर्थ को खोलता है। हम सभी जानते हैं कि नाखूनों का आज ऐसा कोई उपयोग नहीं है जो उसके होने की अपरिहार्यता को सिद्ध करे। लेकिन मानव इतिहास में एक समय ऐसा भी रहा होगा जब मनुष्यों को इन नाखूनों की ज़रूरत थी। हम जानते हैं कि कई जंगली जानवर शिकार के लिए नाखूनों और दाँतों का इस्तेमाल करते हैं। अपनी बर्बर अवस्था में जब मनुष्य बनमानुस की तरह रहा होगा, तब अपनी रक्षा और शिकार के लिए दाँतों और नाखूनों का इस्तेमाल भी करता होगा। लेकिन आज नाखूनों का ऐसा कोई उपयोग बाकी नहीं रहा है। फिर भी, नाखून बढ़ते जाते हैं। आज नाखून को बढ़ाना अच्छा नहीं माना जाता, इसलिए मनुष्य बढ़े हुए नाखूनों को काटता है। शायद इसलिए कि बढ़े हुए नाखून असभ्यता और जंगलीपन की निशानी है।

मानव प्रगति और हथियारों का विकास: इस बिंदु पर आकर द्विवेदीजी एक नया प्रश्न उठाते हैं। अगर मनुष्य सचमुच बर्बरता के चिह्नों से छुटकारा पाना चाहता है तो फिर वह हथियारों का निर्माण क्यों कर रहा है? किसी जमाने में मनुष्य अपनी रक्षा के लिए नख और दाँत का प्रयोग करता था। फिर, पत्थर, लकड़ी और हड्डियों का इस्तेमाल करने लगा। लोहे के हथियार बने, बारूद का आविष्कार हुआ और अब एटम बम का युग है। हथियारों के इस विकास को देखें तो हम समझ सकते हैं कि मनुष्य अधिक से अधिक विध्वंसक हथियार बनाने की ओर बढ़ रहा है। हिरोशिमा और नागासाकी का उदाहरण हमारे सामने हैं जहाँ एटम बमों ने लगभग दो लाख लोगों को कुछ ही मिनटों में लाश में बदल दिया था। तब कैसे कह सकते हैं कि मनुष्य सचमुच बर्बरता से मुक्त होना चाहता है?

द्विवेदीजी अपने निबंध की शुरुआत में ही एक सामान्य बाल जिज्ञासा को संपूर्ण मानवजाति से जुड़े प्रश्न से जोड़ देते हैं। आप देखेंगे कि यह तरीका शुक्लजी से अलग है। शुक्लजी जिस समस्या पर अपना निबंध लिखते हैं उसको शुरू में हं स्पष्ट रूप से रख देते हैं और फिर उसके एक-एक पक्ष का विवेचन करते जाते हैं और तब निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। लेकिन द्विवेदीजी अपने विषय को एक साथ नहीं खोलते, उसे धीरे-धीरे खोलते हैं। ऊपर, जिस विचार बिंदु तक हम पहुँचे हैं, वहाँ यह नहीं जान सकते कि निबंध की अंतर्वस्तु आगे किस दिशा की ओर मुड़ेगी। इस दृष्टि से द्विवेदीजी की पद्धति काफी स्वतंत्र है। वे अपने निबंध में विचारों को कोई तार्किक क्रम देने या ऊपरी तौर पर उनमें एकता और संगति लाने का प्रयास नहीं करते; यद्यपि उसमें विचारों की आंतरिक एकता और तार्किक संगति हमेशा बनी रहती है। द्विवेदीजी के निबंधों में विचारों को उत्तेजित करने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध रहती है। इस दृष्टि से देखें तो इस निबंध में निम्नलिखित बिंदुओं पर गम्भीरता से विचार किया गया है :

- मानव प्रगति और हथियारों का विकास
- विलास वृत्ति का उदात्तीकरण
- मनुष्य की अभ्यास-जन्य सहज वृत्तियाँ
- स्व का बंधन : भारतीय संस्कृति की विशेषता
- नये और पुराने का प्रश्न
- मनुष्य और पशु में अंतर : सामान्य धर्म की खोज
- भौतिक उन्नति और मनुष्यता का मार्ग

ये सभी विचार बिंदु जिस एक लक्ष्य से प्रेरित है, वह है विश्व शांति का प्रश्न। लेकिन अपने आप में भी ऊपर से सभी प्रश्न अत्यंत गम्भीर विवेचन की मांग करते हैं जो एक छोटे से निबंध में सम्भव नहीं है इसलिए द्विवेदीजी एक अन्य मार्ग अपनाते हैं। वे प्रत्येक प्रश्न का गम्भीर विवेचन करने के बजाय उसके मूल मंतव्य को पकड़ते हैं और उसे अत्यंत प्रभावशाली रूप में रख देते हैं। उदाहरण के लिए, नाखूनों को सजाने संवारने के पक्ष को लें। इसका, निबंध के मूल मंतव्य से सीधा संबंध नहीं है। मूल मंतव्य मनुष्य की पाशविक वृत्ति को उजागर करना और उसके वास्तविक धर्म की पहचान कराना है।

विलासवृत्ति का उदात्तीकरण: द्विवेदीजी निबंध में हमें यह जानकारी देते हैं कि आज से दो हजार साल पहले भारत में नाखूनों को सजाने संवारने की कला का विकास भी हुआ था। स्पष्ट है कि नाखूनों के जिस उपयोग का यहाँ संकेत दिया गया है उसका संबंध मनुष्य की विलास वृत्ति से रहा है। लेकिन द्विवेदीजी इस तरह की प्रवृत्ति के सकारात्मक पक्ष को भी हमारे सामने रखते हैं, जब वे कहते हैं कि *'समस्त अधोगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है'।* द्विवेदीजी के कहने का तात्पर्य यह है कि वे वस्तुएँ जो मनुष्य को पतन की ओर ढकेलती हैं उनको भी भारतीय परम्परा ने कला का रूप देकर मनुष्यत्व के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। नाखूनों का यह संदर्भ इस निबंध के मूल कथ्य से सीधा जुड़ा नहीं है किंतु द्विवेदीजी की यह विशेषता है कि वे असंबद्ध बातों में भी एक तार्किक संगति उत्पन्न कर देते हैं।

मनुष्य की अभ्यास जन्य सहज वृत्तियाँ: द्विवेदीजी ने इस निबंध में मुख्य प्रश्न यह उठाया है कि मनुष्य पशुता से मुक्त क्यों नहीं हो पा रहा है? नाखून के बढ़ने को वे पशुता मानते हैं और हथियारों के निर्माण को भी। इस प्रश्न पर अपने चिंतन को आगे बढ़ाते हुए वे प्राणी विज्ञान के एक सिद्धांत का सहारा लेते हैं। प्राणी विज्ञान के अनुसार मनुष्य के शरीर में कुछ ऐसी अभ्यास जन्य वृत्तियाँ हैं जिन्हें उसे न सीखना होता है और न जिनके लिए उसे अलग से कोई प्रयास करना पड़ता है। जैसे केशों का बढ़ना, नाखूनों का बढ़ना, पलकों का उठना-गिरना आदि। इनमें से कुछ ऐसी वृत्तियाँ भी है जिनकी अब सभ्यता के विकास के साथ आवश्यकता नहीं है लेकिन लाखों वर्षों के अभ्यास के कारण वे वृत्तियाँ अब भी सक्रिय है। किसी समय शारीरिक और रक्षात्मक आवश्यकता ने उन वृत्तियों को उत्पन्न किया होगा। इन्हें ही द्विवेदीजी ने अनजान की स्मृतियाँ कहा है। नाखून का बढ़ना ऐसी ही सहजात वृत्ति है जो उस अवस्था की द्योतक है जब मनुष्य बर्बर अवस्था में रहता था। मनुष्य इस बात को आज भूल गया है कि नाखूनों का बढ़ना उसी पशुत्व का प्रमाण है। बाहरी तौर पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है लेकिन पशुत्व का चिह्न अब भी विद्यमान है। जिसे वह बढ़ने पर काट देता है।

लेकिन क्या मनुष्य ने सचमुच मनुष्यता को अपना लिया है? इस प्रश्न का उत्तर है "नहीं"। क्योंकि मनुष्य नाखून भले ही काट रहा हो लेकिन हथियारों को तो लगातार बढ़ा ही रहा है। तब मार्ग कौन सा है?

अब तक द्विवेदीजी ने अपने निबंध के विषय की समस्या प्रस्तुत की थी, देखना यह है कि वे उसका क्या समाधान हमारे सामने रखते हैं?

स्व का बंधन : भारतीय संस्कृति की विशेषता : समस्या की ही तरह वे समाधान के प्रश्न को भी सीधे रूप में नहीं रखते। वे अपनी चर्चा की शुरुआत अंग्रेजी के एक शब्द "इंडिपेंडेंस" के भारतीय पर्याय से करते हैं। "इंडिपेंडेंस" का अर्थ है अनधीनता। अनधीनता का आशय है "किसी की अधीनता का अभाव"। लेकिन भारतीय पर्याय यह नहीं है। भारतीय पर्याय है, स्वाधीनता या स्वतंत्रता अर्थात् स्व की अधीनता या स्व का तंत्र। इस प्रकार इसमें किसी की अधीनता का अभाव नहीं बल्कि 'स्व' की अधीनता का भाव निहित है। इसे द्विवेदीजी भारतीय संस्कृति की विशेषता मानते हैं।

नये और पुराने का प्रश्न: यहाँ एक शंका खड़ी हो सकती है कि क्या द्विवेदीजी भारतीय परम्परा का महिमा मंडन कर रहे हैं? निश्चय ही नहीं। द्विवेदीजी कालिदास के मत का उल्लेख करते हुए स्पष्ट कर देते हैं कि उनकी दृष्टि पुरातनपंथियों जैसी नहीं है। लेकिन उनका मानना है कि अगर हमारे अतीत के कोष में मानव जाति की भलाई की कोई बात हो तो हमें उसे अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

मनुष्य और पशु में अंतर : सामान्य धर्म की खोज : आचार्य द्विवेदी इसके बाद मानव जाति के लिए सामान्य धर्म की बात को उठाते हैं। आखिर मनुष्य और पशु में मूल अंतर क्या है? भारतीय परम्परा में आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार बातें ऐसी मानी गयी हैं जो मनुष्य और पशु में एक समान है। स्पष्ट ही इन चार बातों के होने मात्र से कोई मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं बन जाता। तब वह क्या चीज है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है? यहाँ द्विवेदीजी उस सामान्य धर्म की बात करते हैं जिसे स्वयं मनुष्य ने खोजा है और जिसे मनुष्य ने अपने ऊपर बंधन के तौर पर स्वीकार किया है। संयम, श्रद्धा, तप, त्याग और दूसरों के दुख-सुख के प्रति संवेदना। निश्चय ही ये ऐसे धर्म हैं जिन्हें स्वीकार करने के लिए मनुष्य बाध्य नहीं है लेकिन जिन्हें स्वीकार करके मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है।

भौतिक उन्नति और मनुष्यता का मार्ग : इनकी आवश्यकता आज क्यों हैं? क्योंकि भौतिक उन्नति इस बात की गारंटी नहीं है कि मनुष्य पशुत्व से मुक्त हो जाएगा। हथियार इसी भौतिक उन्नति का अंग है जिससे केवल विध्वंस और विनाश ही हो सकता है। लेकिन क्या मनुष्य का लक्ष्य विनाश है? महात्मा गांधी ने सावधान किया था कि सिर्फ भौतिक उन्नति से सुख और शांति नहीं मिलेगी। अपने मन को भी बदलना होगा। मन से हिंसा, क्रोध, द्वेष और असत्य को दूर करना और दूसरों के लिए जीना सीखना होगा, दूसरों के लिए कष्ट सहन करना होगा। गांधीजी ने ये बातें एक उपदेशक की तरह नहीं कही थी वरन् अपने व्यवहार को भी उन्हीं के अनुकूल ढाल लिया था। लेकिन जिन लोगों के मन में हिंसा थी, द्वेष था, क्रोध और बैर का भाव था, उन्हें उनकी बातें अच्छी नहीं लगीं और उन्होंने गांधीजी की हत्या कर दी।

द्विवेदीजी कहते हैं कि हो सकता है किसी दिन नाखून बढ़ना बंद हो जाए क्योंकि जो हमारे लिए गैर जरूरी है प्रकृति उसे हमसे अलग कर देती है — जैसे पूंछ। हो सकता है किसी दिन मनुष्य विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण बंद कर दे। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हमें बच्चों को सिखाना होगा कि नाखून का बढ़ना पशुता की निशानी है और उसको बढ़ने देना मनुष्य का आदर्श नहीं है। इसी तरह हथियारों की बढ़ोत्तरी हमारी पशुता की निशानी है और उनको कम करने की इच्छा रखना हमारी मनुष्यता का प्रमाण है। हमें अपने मनुष्य होने की पहचान को नहीं भूलना चाहिए।

मानवजाति की सार्थकता विनाशकारी हथियारों का ढेर लगाने में नहीं है। मनुष्य जीवन की सार्थकता इस बात में है कि वह प्रेम, मैत्री और त्याग के मार्ग पर चले तथा सब के कल्याण के लिए अपने को समर्पित कर दे। नाखून के बढ़ने की तरह हिंसक वृत्ति भले ही मनुष्य की सहजात वृत्ति का परिणाम हो, लेकिन उससे मुक्त होने की कोशिश करना भी मनुष्यत्व की पहचान है।

इस प्रकार द्विवेदीजी नाखून बढ़ने के सवाल से मनुष्य की हिंसक वृत्ति को जोड़ते हैं और हिंसक वृत्ति के सवाल को हथियारों की बढ़ोत्तरी से। हथियारों में वृद्धि होने से मानवजाति के संपूर्ण विनाश का खतरा उत्पन्न हो गया है। प्रश्न यह है कि इससे मुक्त कैसे हों? द्विवेदीजी इसके लिए आत्म-नियंत्रण का मार्ग सुझाते हैं जो भारतीय परंपरा की देन है और जिसके द्वारा ही मनुष्य अपने अंदर की पशुता से मुक्त हो सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि यह निबंध हमें विश्व-शांति के महत्व पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

38.2.2 भाव पक्ष

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' पर विचार करने के दौरान हमने देखा कि द्विवेदीजी ने इससे जुड़े कई सवालों पर गहन चिंतन से निकले निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। इस निबंध का मूल प्रश्न केवल वैचारिक नहीं है, वह मनुष्य की भावनाओं का भी सवाल है। नाखून बढ़ना भले ही शारीरिक क्रिया हो, लेकिन पशुता और मनुष्यता, मनुष्य के आंतरिक भाव हैं। द्विवेदीजी की मुख्य चिंता मनुष्य की मनोवृत्तियों को ही लेकर रही है। मनुष्य में दो तरह की वृत्तियाँ होती हैं। एक ओर क्रोध, बैर, द्वेष हैं जो मनुष्य में घृणा और नफ़रत पैदा करते हैं जिनके कारण लोगों में लड़ाई-झगड़ा बढ़ता है। यही प्रवृत्ति जब विभिन्न समुदायों, जातियों और राष्ट्रों के बीच बढ़ती है तो उनमें युद्ध होता है। इन युद्धों में हजारों-लाखों निर्दोष लोग मारे जाते हैं। हिंसा और घृणा मनुष्य को ऐसे हथियारों की ओर ले जाती हैं जिनसे और अधिक नरसंहार होता है। आखिर क्या यह सत्य नहीं है कि आज अस्त्र-शस्त्रों की होड़ ने मानव-जाति को ऐसे कगार पर ला खड़ा कर दिया है जहाँ एक कदम आगे बढ़ाने पर ही मानव-जाति संपूर्ण विनाश की ओर बढ़ सकती है।

तब प्रश्न यह है कि इस खतरे से कैसे बचा जाए? द्विवेदीजी इसका उत्तर विचारधारात्मक स्तर पर नहीं देते। वे इसका उत्तर भी भावनाओं के धरातल पर देते हैं। उनका विचार है कि अगर क्रोध, हिंसा, घृणा जैसी पाशविक वृत्तियाँ मनुष्य में मौजूद हैं तो सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने कुछ ऐसी भावनाओं और धारणाओं को भी अंगीकार किया है जिनसे वह अपनी पाशविकता पर विजय प्राप्त कर सके। दूसरों के सुख-दुख के प्रति संवेदना का भाव, प्रेम का भाव, दूसरों के लिए कष्ट उठाना — ये ऐसी चीजें हैं जिनसे व्यक्ति घृणा, क्रोध, हिंसा जैसी वृत्तियों पर विजय पा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस निबंध में वस्तुतः दो भिन्न तरह की भावधाराओं का संघर्ष दिखाया गया है जिन्हें आज की हमारी सभ्यता के मूल में निहित माना जा सकता है। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि द्विवेदीजी के सामने हथियारों के बढ़ते खतरे की चिंता जितनी प्रबल थी, उससे कहीं अधिक प्रबल थी मनुष्य की पशुता — जो मनुष्य की आंतरिक वृत्ति है। इसके कारण क्रोध, घृणा, वैर आदि नकारात्मक भाव उत्पन्न होते हैं और जिनके कारण ही मनुष्य हथियारों की ओर दौड़ता है।

अब प्रश्न उठता है कि द्विवेदीजी अपने निबंध में प्रधानता किस को देते हैं, विचारों को या भावों को। इसका उत्तर देना सरल नहीं है। वस्तुतः द्विवेदीजी की पद्धति विचारप्रधान नहीं है, लेकिन वह पूरी तरह भावों में भी नहीं बहते। वरन् देखा यह गया है कि जब वे भावनाओं में गहरे डूबे नजर आते हैं तब भी उसमें कोई गहरा विचार अंतर्निहित होता है और जब वे किसी विचार का विवेचन कर रहे होते हैं तो वहाँ भी कोई मानवीय भाव उस विचार को शक्ति दे रहा होता है। इसके लिए हम निम्नलिखित उदाहरण ले सकते हैं:

> *मेरा मन पूछता है — किस ओर ? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है। पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर। मेरी निर्बोध बालिका ने मानों मनुष्य-जाति से ही प्रश्न किया है — जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ — जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? ये हमारी पशुता की निशानी है।*

उपर्युक्त उद्धरण में आप पाएँगे कि लेखक अपनी बात को भावात्मक ढंग से रख रहा है, लेकिन इसमें अंतर्निहित प्रश्न हमारे विचारों को भी उद्वेलित करने वाला है। इसलिए, अंत में, यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीजी के इस निबंध में विचार और भावना दोनों एक दूसरे से इस तरह संयोजित हैं कि इसे हम सिर्फ विचार प्रधान या भाव प्रधान निबंध नहीं कह सकते।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से मिलाइए।

1 निबंध में निम्नलिखित में से किन-किन बातों पर विचार किया गया है। सही पर (✓) का चिह्न लगाइए।

क) मानव प्रगति और हथियारों का विकास ( )

ख) राष्ट्र की सुरक्षा का प्रश्न ( )

ग) नये और पुराने का प्रश्न ( )

घ) मानवता और पशुता में अंतर ( )

ङ) मोक्ष प्राप्ति का मार्ग ( )

2 निबंध में किस मुख्य समस्या पर विचार किया गया है ?

क) नाखून का बढ़ना

ख) भौतिक उन्नति को रोकना

ग) मनुष्य की आंतरिक पशुता को समाप्त करना

घ) गांधीवाद का प्रचार करना ( )

3 मनुष्यता का मार्ग कौन-सा है?

क) भौतिक उन्नति करना

ख) दूसरों के लिए कष्ट सहन करना

ग) अस्त्र-शस्त्र बढ़ाना

घ) नाखून काटना ( )

4 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए :

1) "स्व का बंधन" का क्या आशय है?

....

2) सहजात वृत्ति किसे कहते हैं?

....

3) कौन-कौन सी बातें मनुष्य और पशु में समान हैं?

....

4) हथियारों की बढ़ोतरी को रोकना क्यों आवश्यक है?

....

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1 प्रस्तुत निबंध विचार प्रधान है या भाव प्रधान ? पांच पंक्तियों में अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

विचार प्रधान निबंध की विशेषता ....

....

भाव प्रधान निबंध की विशेषता ....

....

द्विवेदीजी के निबंध में विचारों और भावों में संतुलन ....

....

2 निम्नलिखित अंश के आधार पर निबंध के भाव पक्ष का विवेचन अधिक से अधिक 100 शब्दों में कीजिए।

एक बूढ़ा था। उसने कहा था — बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ। क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो।

उत्तर: संकेत : बात कहने का भावपरक और आत्मीय तरीका
विवेचन परकता से भिन्न
पाठक की भावनाओं को उद्वेलित करने का प्रयास
छोटे-छोटे वाक्य जिसमें बात के भाव पक्ष पर बल

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

38.3 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

निबंध में लेखक का व्यक्तित्व किसी-न-किसी रूप में अवश्य व्यक्त होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की शैली शुक्लजी की अपेक्षा कम विवेचनपरक और अधिक भावनात्मक है इसलिए उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को ज्यादा सरलता से

पहचाना जा सकता है। यद्यपि इन दोनों रचनाकारों के व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ एक-सी हैं। द्विवेदीजी के इस निबंध को पढ़ने से उनके व्यक्तित्व की जो विशेषताएँ हमारे सामने उभरकर आती हैं, उन्हीं पर यहाँ विचार किया जाएगा।

मानवतावादी: आचार्य द्विवेदी का दृष्टिकोण मानवतावादी है, उनकी इस दृष्टि को हम इस निबंध में भी पहचान सकते हैं। द्विवेदीजी को यह निबंध लिखने की क्यों आवश्यकता हुई, अगर इस पर विचार करें तो हम पाएंगे कि इसके पीछे मानव-जाति की भविष्य चिंता ही मुख्य कारण है। द्विवेदीजी के लिए ऐसा विश्व ही आदर्श है जो सुख-शांति और प्रेम की भावना से भरा हो। जहाँ लोग क्रोध, घृणा और असत्य से मुक्त होकर जिएँ। लेकिन उनके आदर्शों का यह संसार वास्तविकता में मौजूद नहीं है। जो है — वह विनाश के कगार पर खड़ा है क्योंकि मनुष्य ने ऐसे अस्त्र-शस्त्र निर्मित कर लिये हैं कि उससे संपूर्ण मानव जाति का विनाश हो सकता है। यही मुख्य चिंता है जिसने द्विवेदीजी को इस निबंध की रचना के लिए प्रेरित किया है।

आचार्य द्विवेदी अपनी चिंता को सिर्फ हथियारों की बढ़ोतरी तक ही सीमित नहीं रखते। उनका मानना है कि केवल हथियारों की कमी की बात करना पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हम उस मूल कारण को पहचानें जो इंसान को हथियारों के निर्माण की ओर ले जाती है। द्विवेदीजी की विशेषता यह है कि वे मनुष्य की आंतरिक वृत्तियों के प्रकाश में इस पर विचार करते हैं और बताते हैं कि इस समस्या का संबंध उन पाशविक वृत्तियों से है जिनसे अभी तक मनुष्य मुक्त नहीं हो पाया है। लेकिन ये पाशविक वृत्तियाँ मनुष्य के लिए जितनी सच है उससे कहीं ज्यादा सच है मनुष्य का धर्म। प्रेम, तप, श्रद्धा, संवेदना, त्याग मानवीय गुण या धर्म है, जिनके द्वारा मनुष्य अपने मनुष्यत्व का प्रमाण देता है। मनुष्य जब इन्हें ही भूल जाता है तब वह पशुता की ओर बढ़ने लगता है और तभी वह अस्त्र-शस्त्र का जखीरा बढ़ाता है।

पांडित्य: द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की दूसरी प्रमुख विशेषता है उनका पांडित्य। हम आपको इकाई 37 में बता चुके हैं कि द्विवेदीजी ने प्राचीन भारतीय साहित्य का गहन अध्ययन किया था। उनकी यह अध्ययनशीलता हमें इस निबंध में भी दिखाई देती है। निबंध के आरम्भ में ही राम, दधीचि मुनि, आर्यों का आगमन, सुर-असुर संग्राम, कामसूत्र, कालिदास, महाभारत, गौतम आदि के उल्लेख उनके प्राचीन भारतीय इतिहास, साहित्य और संस्कृति से गहरे परिचय को ही प्रकट करते हैं। द्विवेदीजी के पांडित्य की विशेषता यह है कि वे अपने निबंध को अपनी विद्वता से क्लिष्ट और बोझिल नहीं होने देते और न ही अपने पांडित्य से वे दूसरों को आतंकित करते हैं। प्राचीन परम्परा के ये उल्लेख उनके निबंध की अंतर्वस्तु के साथ पूरी तरह रचे-बसे हैं। जैसे दधीचि मुनि का उल्लेख हथियारों के विकास को प्रकट करता है। 'कामसूत्र' नाखूनों के उपयोग की एक अन्य जानकारी प्रदान करता है। कालिदास नये-पुराने के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं, तो महाभारत और गौतम मानवीय धर्म की व्याख्या करते हैं। ये पक्ष निबंध की विषयवस्तु को समृद्ध ही करते हैं।

द्विवेदीजी के पांडित्य की दूसरी विशेषता यह है कि प्राचीन साहित्य और संस्कृति का यह गहरा अध्ययन उन्हें रूढ़िवादी और दकियानूसी नहीं बनाता। उनके सोच में वैज्ञानिक दृष्टि अंतर्निहित है। उदाहरण के लिए, उनका पूरा निबंध विज्ञान की इस मान्यता पर टिका हुआ है कि मनुष्य पहले बर्बर अवस्था में था और धीरे-धीरे विकास करता हुआ आज की स्थिति में पहुँचा है। जबकि धार्मिक मान्यता यह है कि यह सृष्टि ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न हुई है। इसी तरह, वे अपनी बात की व्याख्या के लिए सिर्फ प्राचीन साहित्य का ही सहारा नहीं लेते बल्कि प्राणी विज्ञान और मनोविज्ञान की मान्यताओं का भी सहारा लेते हैं और अपने मत को उनसे पुष्ट करते हैं। इस प्रकार द्विवेदीजी के पांडित्य का आधुनिकता या पुरातनता से कोई विरोध नहीं है बल्कि उनका तो मत है कि जहाँ भी जो बात अच्छी हो उसे अंगीकार करना चाहिए।

विचारक: द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता है उनकी विचारशीलता। वे किसी भी प्रश्न पर गहरी अंतर्दृष्टि के साथ विचार करते हैं। यद्यपि उनका उद्देश्य पाठकों को अपनी विचार प्रणाली से प्रभावित करने का नहीं होता। वे उस मूल चिंता से पाठक को जोड़ना चाहते हैं जो उनके निबंध की रचना का आधारभूत कारण है। इस तरह वे अपने पाठक को अपनी चिंता का सहभागी बनाते हैं। द्विवेदीजी के चिंतन की खास बात यह है कि वे अपनी बात को प्रायः सामान्य अनुभव से शुरू करते हैं। उस सामान्य अनुभव को वे ज्यादा व्यापक और बृहत्तर जीवन से जुड़े सवालों से सहज ही जोड़ देते हैं। जैसे इस निबंध में नाखून का बढ़ना, नाखून का हथियार की तरह इस्तेमाल का उल्लेख करते हुए एटम बम तक के निर्माण तक पहुँच जाना। इसी तरह नाखून का बढ़ना और काटना क्रमशः मनुष्य की पशुता और मनुष्यता के प्रतीक बन जाते हैं। इस प्रकार, द्विवेदीजी, नाखून बढ़ने के सामान्य अनुभव को हथियारों की बढ़ोतरी से जोड़कर मानवजाति की सामान्य चिंता, विश्व शांति के प्रश्न को अनायास ही प्रभावशाली ढंग से सामने ले आते हैं।

संवेदनशील सौंदर्य द्रष्टा: द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उनकी संवेदनशीलता है। वे चिंतक से अधिक सृजनशील साहित्यकार थे। उनकी संवेदनशीलता जहाँ व्यापक मानवीय सहानुभूति के रूप में व्यक्त हुई है वहीं उनकी सृजनशीलता ने उनके निबंधों को सरस, रोचक और आत्मीय बनाया है। द्विवेदीजी मनुष्य के उदात्त और मानवीय पक्ष को उजागर करते हैं। भावप्रवण और हृदयस्पर्शी ढंग से वे अपनी बात रखते हैं। इससे उनकी बातें पाठक के मस्तिष्क के साथ-साथ हृदय को भी उद्वेलित करती है। निबंध के आरम्भ के निम्नलिखित अंश को देखिए :

> *पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट लीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे, पर निर्लज्ज अपराधी की भांति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर। आखिर ये इतने बेहया क्यों है?*

निबंध के उपर्युक्त अंश की भाषा पर गौर कीजिए। आप देखेंगे कि द्विवेदीजी ने यहाँ नाखून काटने और बढ़ने की प्रक्रिया का मानवीकरण कर दिया है और नाखून के लिए अभागे, निर्लज्ज, अपराधी, बेहया जैसे विशेषणों का प्रयोग करके अपनी बात को हृदयग्राही भी बना दिया है और उसमें रोचकता भी आ गयी है।

इस प्रकार द्विवेदीजी के लेखकीय व्यक्तित्व की कई विशेषताएँ हमारे सामने उजागर होती है।

बोध प्रश्न

5 द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की कौन-सी ऐसी विशेषता है जिससे उनकी अध्ययनशीलता का पता चलता है?
   क) पांडित्य
   ख) मानवतावाद
   ग) संवेदनशीलता
   घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )

6 पुरानी मान्यताओं के प्रति द्विवेदीजी का क्या दृष्टिकोण था?
   क) वे उन का पूर्ण समर्थन करते थे।
   ख) वे उनके कटु आलोचक थे।
   ग) वे पुराने की अपेक्षा नये को उचित मानते थे।
   घ) वे नये और पुराने को विवेकशील दृष्टि से जांचने के पक्षधर थे। ( )

अभ्यास

3 द्विवेदीजी के मानवतावादी दृष्टिकोण पर पाँच पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

38.4 संरचना शिल्प

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी के प्रमुख निबंधकार हैं। इन्होंने निबंधों की एक नयी शैली विकसित की जिसे ललित निबंध कहा जाता है। द्विवेदीजी का यह निबंध इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। भाषा और शैली दोनों दृष्टियों से द्विवेदीजी के निबंध अत्यंत प्रभावशाली हैं। आइए, हम उनके इस निबंध की भाषा-शैली की विशेषताओं का अध्ययन करें।

38.4.1 भाषा

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' से स्पष्ट है कि आचार्य द्विवेदी की भाषा आचार्य शुक्ल की भाषा से भिन्न है। यद्यपि द्विवेदीजी की भाषा भी परिनिष्ठित और परिष्कृत है लेकिन उनकी भाषा की कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं। द्विवेदीजी की शैली विवेचनपरक नहीं है। उनकी भाषा में अधिक लचीलापन है। वे विषय और प्रसंग के अनुसार अपनी भाषा को बदल देते हैं। द्विवेदीजी की भाषा के कई रूप और स्तर हमारे सामने खुलते जाते हैं। उनकी भाषा में शब्द चयन से लेकर वाक्य रचना तक एक तरह की स्वच्छंदता नजर आती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आचार्य द्विवेदी की भाषा में बिखराव या अर्थगत शिथिलता है। उनकी भाषा नदी की तरह प्रवाहमयी है। कभी गरजती-उफनती आगे बढ़ती है, तो कभी कल-कल करती शांति से बहती रहती है। हम निबंध के कुछ अंशों को सामने रखकर उनकी भाषा पर विचार कर सकते हैं :

> *कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दांत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था।*

आप उपर्युक्त अंश की भाषा का विश्लेषण कीजिए। यहाँ केवल एक स्थिति का वर्णन है। लेकिन यहाँ भाषा का रूप अत्यंत सहज और स्वाभाविक है। छोटे-छोटे वाक्य और बोलचाल के सामान्य शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिनमें खड़ी बोली का स्वाभाविक रूप प्रकट होता है। किसी भी पाठक को उक्त बातें समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

> *अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजवृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है।*

इस अंश में द्विवेदीजी ने सहजात वृति का बौद्धिक विवेचन किया है। इसलिए आप पाएँगे कि इस अंश की भाषा ऊपर के अंश से भिन्न है। यहाँ वाक्य लंबे हैं। शब्द तत्सम प्रधान हैं यद्यपि यहाँ भी लेखक ने अपनी बात प्रभावशाली ढंग से रखी है।

> *मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो, और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ।*

द्विवेदीजी ने यहाँ कहा है कि कुछ नेताओं के अनुसार भौतिक उन्नति ही सुख का साधन है। अब इस बात को एक पंक्ति में भी रखा जा सकता था। लेकिन द्विवेदीजी उसे छोटे-छोटे उपवाक्यों में बदलते हैं और भौतिक उन्नति के तात्पर्य को एक व्यापक रूपक में बदल देते हैं। यहाँ कथन का वैचारिक पक्ष ही उजागर नहीं होता बल्कि उसकी प्रस्तुति में निहित उनकी भावना भी उजागर होती है और सबसे बड़ी बात है कि द्विवेदीजी जो कहना चाहते हैं उसे क्लिष्ट बनने से बचाकर सहज और आत्मीयतापूर्ण बना देते हैं।

उपर्युक्त तीन उदाहरणों से हम उनकी भाषा की कुछ विशेषताओं को सामने रख सकते हैं :

- द्विवेदीजी की भाषा परिनिष्ठित है। उसमें हिन्दी की स्वाभाविकता, सहजता और सरसता है।
- उनकी भाषा विषय और प्रसंग के अनुकूल परिवर्तित होती है।
- वे प्रायः छोटे और स्पष्ट अर्थ देने वाले वाक्य बनाते हैं। अपेक्षाकृत लंबे वाक्य वे वहीं इस्तेमाल करते हैं जहाँ कोई गम्भीर विवेचन किया गया हो।
- उनकी भाषा का प्रमुख गुण है, लालित्य। इसके लिए वे भाषा को सरस, रोचक, आत्मीय और पठनीय बनाते हैं और साथ ही काव्य के उपकरणों का भी इस्तेमाल करते हैं। जैसे अलंकार, बिंब, रूपक आदि का प्रयोग। आवश्यकतानुसार मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। लेकिन इनसे उनका कथ्य दबता नहीं है बल्कि और प्रभावशाली बन जाता है।
- उनकी शब्दावली अत्यंत व्यापक है। वे तत्सम शब्दों का पर्याप्त प्रयोग करते हैं। लेकिन तद्भव, देशज और उर्दू शब्दों का प्रयोग भी धड़ल्ले से मिलता है।

अतः हम कह सकते हैं कि द्विवेदीजी ने शुक्लजी की भाषा में लालित्य का एक अतिरिक्त गुण जोड़कर उसे और अधिक समृद्ध किया है।

38.4.2 शैली

द्विवेदीजी के निबंधों की शैली न तो विवेचन प्रधान है और न ही भावप्रधान। वस्तुतः उनमें शैली का एक नया ही रूप मिलता है जिसे हम निबंध की ललित शैली कह सकते हैं। वे सिर्फ कथन के मंतव्य को ही उजागर करना पर्याप्त नहीं समझते, बल्कि अपनी बात को इस ढंग से कहना चाहते हैं कि उसका सौन्दर्य भी सबको प्रभावित करे। वे "क्या कहा है" के साथ-साथ "कैसे कहा है" को भी ध्यान में रखते हैं। यही कारण है कि वे निबंध को कभी वैचारिक गूढ़ता से बोझिल नहीं होने देते और न ही पाठकों को भावनाओं की दरिया में बहाते जाते हैं कि वे अपनी सुध-बुध ही खो बैठें। वे बात को गूढ़ चिंतन शैली में पेश करने की बजाय अनुभूतिपरक बना देते हैं, ताकि सामान्य से सामान्य पाठक भी अनभूति के स्तर पर उससे जुड़ सके। जैसे, नाखून क्यों बढ़ते हैं, यह सामान्य पाठक के लिए भी कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिसे वह न समझ सके। लेकिन विश्व शांति की आवश्यकता पर कोई बौद्धिक निबंध लिखा जाता, तो हो सकता है पाठक उससे इतनी अंतरंगता महसूस नहीं करते।

द्विवेदीजी की शैली की दूसरी विशेषता यह है कि वह अपने कथ्य को एक धारा में बाँधे नहीं रखते बल्कि आवश्यकता के अनुसार बदलते रहते हैं। अगर जरूरत हुई तो किसी ग्रंथ की कोई गूढ़ बात उद्धृत कर दी और जरूरत हुई तो प्रकृति और जीवन से संबंधित कोई बात कह दी। यह भी आवश्यक नहीं है कि वे अपने निबंध को किसी खास विषय तक ही सीमित रखें। मूल कथ्य के साथ-साथ अगर कोई अन्य बात उभर आती है तो उसे भी अत्यंत रोचक ढंग से प्रस्तुत कर देते हैं। जैसे निबंध के आरम्भ में अस्त्र-शस्त्रों के विकास की कहानी कहते हुए वे प्राचीन भारतीय इतिहास पर भी टिप्पणी कर देते हैं। आर्यों की जीत इसलिए हुई कि उनके पास घोड़े थे, लोहे के अस्त्र थे। इसी प्रकार नाखूनों की चर्चा के दौरान वे 'कामसूत्र' के हवाले से दो हजार साल पहले नाखून संवारने की भिन्न-भिन्न कलाओं का परिचय देने लगते हैं या कालिदास के हवाले से नये-पुराने पर टिप्पणी करते हैं। इस तरह के प्रसंगों से उनके निबंध की एकरसता भी समाप्त होती है और पाठक को भी कई नयी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं।

द्विवेदीजी के निबंध की तीसरी विशेषता यह है कि अपनी बात को सरस ढंग से कहने के अभ्यासी हैं। इसके लिए वे या तो रोचक प्रसंगों का चयन करते हैं या फिर अपनी बात को सरस रूप देते हैं। उदाहरण के लिए, नये-पुराने वाले प्रसंग को देखिए। वे पुराने से चिपके रहने को उस बंदरिया की उपमा देते हैं जो अपने मरे बच्चे को गोद में चिपकाये रहती है। इस उदाहरण से उनकी बात अधिक रोचक बनकर सामने आती है। वे गम्भीर विवेचन के समय भी कुछ ऐसे शब्द अपनी बात में डाल देते हैं जिससे बात की गम्भीरता भी बनी रहती है और वह अधिक सहज और सरस भी हो जाती है। इस वाक्य को देखिए:

> *"इसलिए मनुष्य **झगड़े-टंटे** को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर **चढ़-दौड़ने** वाले अविवेकी को बुरा समझता है।*

उपर्युक्त वाक्य में द्विवेदीजी ने अत्यंत महत्वपूर्ण बात कही है। लेकिन "झगड़े-टंटे" और "चढ़ दौड़ने वाले" प्रयोग, वाक्य को अधिक सहज और कथ्य को अधिक सरस बना देते हैं। इसी तरह गांधी जी का सीधा नाम लेने की बजाय उन्हें, 'बूढ़ा,' कहने से गांधीजी के प्रति लेखक की गहरी श्रद्धा और आस्था भी प्रकट होती है, और दूसरों की उनके प्रति उपेक्षा का भाव भी।

अतः शैली की दृष्टि से इस निबंध को हम ललित निबंध कह सकते हैं क्योंकि तथ्य के पूर्ण सौंदर्य को इसमें उजागर किया गया है।

38.5 प्रतिपाद्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' का प्रतिपाद्य क्या है, अब तक के विश्लेषण से आप समझ गये होंगे। आपको मालूम होगा कि लगभग छह वर्षों तक दूसरा विश्वयुद्ध चलता रहा था। इस युद्ध में पूरा यूरोप, एशिया के कई देश, अमरीका आदि शामिल थे। इस में करोड़ों लोग मारे गये थे। हजारों शहर तबाह हो गये थे। युद्ध के आखिरी चरण में अमरीका ने जापान के दो शहरों पर एटम बम का प्रयोग किया था, जिनके कारण वे दोनों शहर पूरी तरह नष्ट हो गये। यद्यपि 1945 में विश्व युद्ध समाप्त हो गया लेकिन दुनिया से युद्ध का खतरा समाप्त नहीं हुआ। इसके विपरीत दूसरे विश्व युद्ध के बाद दुनिया दो खेमों में बंट गई। एक का नेता अमरीका है और दूसरे का सोवियत संघ। दोनों ओर से जोर-शोर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगी। नये-नये अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण होने लगा। इसने तीसरे विश्वयुद्ध का खतरा उत्पन्न कर दिया। ऐसे में विश्व की शांतिकामी जनता ने युद्ध की तैयारियों के विरुद्ध आवाज उठाई। विध्वंसक हथियारों पर रोक लगाने की मांग होने लगी। शांति के पक्ष में उठी इस आवाज का समर्थन लेखकों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों ने भी किया। लेखकों ने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि लिखकर युद्ध के विरोध में और शांति के पक्ष में प्रचार किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह निबंध इसी शांति अभियान का एक अंग है और इसका उद्देश्य विश्व शांति की आवश्यकता को प्रतिपादित करना है।

युद्ध का खतरा और मानव जाति के विनाश का भय आज पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गया है और इस दृष्टि से निबंध की प्रासंगिकता और महत्व और भी बढ़ जाता है। लेकिन द्विवेदीजी ने इस प्रश्न को व्यापक मानवीय संदर्भ में प्रस्तुत किया है। द्विवेदीजी ने इस प्रश्न को केवल हथियारों के उत्पादन तक सीमित नहीं रखा है बल्कि उसे मनुष्यत्व और पशुत्व से जोड़कर इसके नैतिक पक्ष को भी उजागर किया है।

द्विवेदीजी ने अपने मत के समर्थन में महात्मा गांधी के आदर्शों को प्रस्तुत किया है। हम सभी जानते हैं कि महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा का आदर्श रखा था और ब्रिटिश दासता के विरुद्ध संघर्ष में भी उन्होंने सत्य और अहिंसा का मार्ग नहीं छोड़ा था। इसी तरह उन्होंने प्रेम, तपस्या और त्याग द्वारा विरोधी के हृदय-परिवर्तन की बात कही थी। द्विवेदीजी, गांधीजी के इन मानवीय आदर्शों से अत्यंत प्रभावित थे और उन्होंने अपने इस निबंध में उन्हीं आदर्शों को मनुष्यत्व की पहचान के रूप में स्थापित किया है।

द्विवेदीजी का विचार है कि पशुता मनुष्य की एक ऐसी प्रवृत्ति है जो उसके बर्बर युग का अवशेष कही जा सकती है। सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने कुछ मानवीय गुणों का विकास भी किया है। प्रेम, श्रद्धा, त्याग, तपस्या, संवेदना आदि ऐसे ही मानवीय गुण है लेकिन इन्हें मनुष्य तभी अपना सकता है जब वह स्व के बंधन को स्वीकार करें। 'स्व' का अर्थ है मनुष्य के वे सामान्य गुण जिससे वह पशु से अलग अपनी पहचान बनाता है।

द्विवेदीजी ने भारतीय संस्कृति की एक ऐसी विशेषता को भी हमारे सामने रखा है जिसे प्रायः भुला दिया जाता है। "स्व का बंधन" ऐसी ही विशेषता है। आत्मानुशासन के द्वारा मनुष्य हिंसा, क्रोध, घृणा आदि से छुटकारा पा सकता है।

इस प्रकार द्विवेदीजी का यह निबंध विश्व शांति का संदेश देने के साथ-साथ पशुता और मनुष्यता के अन्तर को भी उजागर करता है और हमें बताता है कि मनुष्य होने के नाते हमारे लिए क्या श्रेयस्कर है, नाखून को बढ़ने देना या नाखून को बढ़ने न देना।

शीर्षक की उपयुक्तता : 'बातचीत' और 'मित्रता' की तरह द्विवेदीजी के इस निबंध का शीर्षक विषय का सीधा प्रतिपादन नहीं करता। केवल 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' पढ़ने से हम अनुमान नहीं लगा सकते कि इस निबंध का वास्तविक विषय क्या है। वस्तुतः निबंध का शीर्षक व्यंजनापूर्ण है। निबंध में नाखून क्यों बढ़ते हैं, इसकी चर्चा तो है ही, इसके साथ-साथ और इससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण विषय है, मनुष्य की पशुता का बढ़ना। इस निबंध का वास्तविक विषय यही है और इस अर्थ में नाखून पशुता का प्रतीक बनकर इस निबंध में प्रस्तुत हुआ है। द्विवेदीजी की शैली की यह विशेषता है कि इन दोनों को इस तरह एक साथ जोड़कर उन्होंने प्रस्तुत किया है कि पाठक को निबंध के वास्तविक मंतव्य तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं आती।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए और उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

7 इस निबंध के आधार पर द्विवेदीजी के शब्द चयन पर अपने विचार चार पंक्तियों में लिखिए?

....

....

....

....

8 इस निबंध को ललित निबंध क्यों कहा गया है? पाँच पंक्तियों में समझाइए?

....

....

....

....

....

9 द्विवेदीजी ने किस उद्देश्य से प्रेरित होकर यह निबंध लिखा है। पाँच पंक्तियों में समझाइए?

....

....

....

....

....

10 द्विवेदीजी महात्मा गांधी के किन आदर्शों से प्रभावित थे? पाँच पंक्तियों में समझाइए।

....

....

....

....

....

अभ्यास

4 निम्नलिखित अंश के आधार पर द्विवेदी की भाषा की कोई दो विशेषताएँ बताइए। उत्तर चार पंक्तियों से अधिक में न हो।

लेकिन प्रकृति है कि अब भी नाखून को जिलाये जा रही है और मनुष्य है कि अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कंबखत रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है।

....

....

....

....

....

5 निबंध की प्रासंगिकता पर अपने विचार लिखिए।

....

....

....

....

....

38.6 सारांश

- आपने इकाई 38 के अंतर्गत आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' की विशेषताओं का अध्ययन किया है। यह निबंध मनुष्य की हिंसक मनोवृत्ति पर केंद्रित है जिसके कारण वह मारक अस्त्र-शस्त्रों का ढेर लगा रहा

है। इस निबंध में द्विवेदीजी हमारी भावनाओं को उद्वेलित करते हैं, साथ ही हमारे विचारों को भी। इस दृष्टि से इस निबंध में भाव और विचार दोनों का संयोजन है। आप अब इसके भावपक्ष और विचारपक्ष की विवेचना कर सकते हैं।

- द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ हैं; मानवतावाद, पांडित्य, गहन चिंतन, संवेदनशीलता और सौंदर्य दृष्टि। अब आप निबंध में द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की इन विशेषताओं को पहचान सकते हैं।
- इस निबंध की भाषा सहज स्वाभाविक, सरस, रोचक और भावप्रवण है। इनकी भाषा में हिन्दी का अपना सौंदर्य व्यक्त हुआ है। इसमें जटिल विचारों और गहन अनुभूतियों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता है। आप स्वयं इस निबंध की भाषा की विशेषताओं का वर्णन कर सकते हैं।
- यह ललित निबंध है। इसमें शैली का अनुपम सौंदर्य है। निबंध के विचार और भाव अत्यंत सरस, रोचक, और आत्मीय ढंग से व्यक्त हुए हैं। अब आप स्वयं शैली की इन विशेषताओं का विवेचन कर सकते हैं।
- इस निबंध का मुख्य विषय विश्व शांति का प्रसार करना है। लेकिन इसके माध्यम से लेखक ने मनुष्य की आंतरिक पशुता और सामान्य मानवधर्म पर भी विचार किया है। आप स्वयं निबंध के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकते हैं।
- आप निबंध के शीर्षक की उपयुक्तता पर भी विचार कर सकते हैं।

38.7 शब्दावली

अपरिहार्य : जिसका परिहार न हो सके, अनिवार्य।

नागाशाकी : जापान का एक शहर, जिस पर अमेरिका द्वारा 9 अगस्त, 1945 को एटम बम डाला गया था।

पुरातनपंथी : पुरातन का अर्थ है पुराना। वह जो प्राचीन रूढ़ियों को अच्छा समझता हो और नये का आँख मूँदकर विरोध करता हो।

महिमा मंडन : महिमा अर्थात् बड़प्पन; महिमा मंडन अर्थात बड़प्पन से युक्त करना।

मानवीकरण : एक अलंकार जिसमें निर्जीव वस्तु, विचार या भाव को मानवीय रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

स्वच्छंदता : अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करना।

नैतिक : जो नीति के अनुकूल हो अर्थात् लोक व्यवहार के उपयुक्त आचरण।

आत्मानुशासन : अपने आप का अपने आप पर नियंत्रण।

38.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 क) √ ख) × ग) √ घ) √ ङ) ×

2 ग

3 ख

4 1 अपने आप पर अपने आप के नियंत्रण को "स्व का बंधन" कहते हैं।
2 वे वृत्तियों जो अभ्यासजन्य है, जिन्हें न तो सीखना होता है और न जिसके लिए प्रयास करना पड़ता है। जैसे, नाखून का बढ़ना, पलकों का गिरना आदि।
3 आहार, निद्रा, भय और मैथुन मनुष्य और पशु में समान है।
4 मानव-जाति को विनाश से बचाने के लिए यह आवश्यक है।

5 क

6 घ

7 देखिए उपभाग 38.4.1

8 देखिए उपभाग 38.4.2

9 देखिए भाग 38.5

10 देखिए भाग 38.5

अभ्यास

1 देखिए भाग 38.2

2 उपभाग 38.2.2 पढ़िए और अपना उत्तर स्वयं लिखिए।

3 देखिए भाग 38.3

4 द्विवेदीजी ने यहाँ भाषा को भावप्रवण बनाया है। नाखून का मानवीकरण करके और उसे "कंबख्त" और "अंधा" कहकर उन्होंने बात में आत्मीयता भी उत्पन्न कर दी है। द्विवेदीजी कठिन भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषा दोनों में सिद्धहस्त हैं। लेकिन वे अपनी बात को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से कहने में सफल रहे हैं।

5 द्विवेदीजी ने यह निबंध छठे दशक के आरम्भ में लिखा था, उस समय जिस तरह के हथियार दुनिया में मौजूद थे, उससे कई हजार गुना अधिक खतरनाक और संख्या में भी कई गुना अधिक हथियार आज दुनिया में मौजूद हैं। एक छोटी-सी चिनगारी सारी दुनिया को कुछ मिनटों में नष्ट कर सकती है। मालूम नहीं कब मनुष्य की पशुता जाग उठे और दुनिया को राख के ढेर में बदलता हुआ देखने के लिए भी कोई न बचे। ऐसी स्थिति में यह और भी जरूरी है कि मनुष्य अपने अंदर की पशुता पर विजय प्राप्त करे और अपने मनुष्यत्व को पहचाने।

इकाई 39 एक था पेड़ और एक था ठूँठ! (कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर') : वाचन एवं विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

39.0 उद्देश्य
39.1 प्रस्तावना
39.2 निबंध का वाचन : एक था पेड़ और एक था ठूँठ!
39.3 निबंध का सार
39.4 संदर्भ सहित व्याख्या
39.5 अंतर्वस्तु
39.5.1 विचार पक्ष
39.5.2 भाव पक्ष
39.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
39.7 संरचना शिल्प
39.7.1 भाषा
39.7.2 शैली
39.8 प्रतिपाद्य
39.9 सारांश
39.10 शब्दावली
39.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

39.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के निबंध 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ!' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- निबंध के विषयवस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- निबंध के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे;
- निबंध की अंतर्वस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे;
- भाषा और शैली की दृष्टि से निबंध पर विचार कर सकेंगे; और
- निबंध के प्रतिपाद्य का उल्लेख कर सकेंगे।

39.1 प्रस्तावना

आप इस इकाई में श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के निबंध 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पहले की इकाई में आपने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का अध्ययन किया था। अब तक आप कुल तीन निबंध पढ़ चुके हैं। यह चौथा निबंध है और इस खंड की यह सातवीं इकाई है। इस प्रकार पिछली छह इकाइयों के अध्ययन से आप हिंदी निबंधों के स्वरूप और विकास तथा निबंधों की कई विशेषताओं से भलीभाँति परिचित हो चुके हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि निबंध का अध्ययन और विश्लेषण कैसे किया जाता है। यह निबंध हम एक ही इकाई में प्रस्तुत कर रहे हैं। श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' हिंदी के महत्वपूर्ण गद्यकार हैं। आपका जन्म 1906 ई. में सहारनपुर जिले में हुआ। आपने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और कई बार जेल भी गये। आपने 'ज्ञानोदय' और 'नया जीवन' पत्रिकाओं का संपादन किया। आपने निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, लघु कहानियों आदि की रचना की है। आपकी प्रमुख पुस्तकें हैं: 'नयी पीढ़ी, नये विचार' (1950), तथा 'माटी हो गयी सोना' (1957) रेखाचित्रों के संग्रह हैं। 'आकाश के तारे — धरती के फूल' (1952) लघुकहानियों का संग्रह है। 'दीप जले, शंख बजे' (1958) में संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं तथा 'ज़िंदगी मुस्करायी' (1954), 'बाजे पायलिया के घुँघरू' (1957) आदि ललित निबंधों के संग्रह हैं।

39.2 निबंध का वाचन : 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ!'

दो तरह के पेड़:हराभरा और ठूँठ

जिस मकान में मैं ठहरा, उसकी खिड़की के सामने की खड़ा था पूरा पनपा बाँझ का पहाड़ी पेड़। पलंग पर लेटे-लेटे वह यो दीखता कि जैसे कुशल-समाचार पूछने को आया कोई मेरी ही मित्र हो।

एक दिन उसे देखते-देखते इस बात पर मेरा ध्यान गया कि यह इतना बड़ा पेड़ हवा का तेज झोंका आते ही पूरा का पूरा इस तरह हिल जाता है, जैसे बीन की तान पर कोई साँप झुम रहा हो और इसका ऊपर का हिस्सा हवा जब और भी तेज हो जाती है तो काफ़ी झुक जाता है, पर हवा के हलका पड़ते ही वह फिर सीधा हो जाता है।

हवा मौज में थी, अपने झोकों में झूम रही थी, इसलिए बराबर यही क्रिया होती रही और मैं उसे देखता रहा। देखता क्या रहा, उसकी **झूकझूम** मे रस लेता रहा। पड़े-पड़े वह पेड़ पूरा न दीखता था, इसलिए मैं पलंग से खिड़की पर आ बैठा। अब मुझे वह पेड़ जड़े से **फुंगल** तक दिखाई देने लगा और मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि वहा कितती भी तेज़ हो, पेड़ की जड़ स्थिर रहती है— हिलती नहीं है।

यहीं बैठे, मेरी ध्यान एक दूसरे पेड़ पर गया, जो इस पेड़ से काफी निचाई में था। पेड़ क्या था, पेड़ का **ठूँठ** था—ठूँठ; सूखा वृक्ष और सूखा वृक्ष माने निर्जीव मुरदा वृक्ष। सोचा, यह वृक्ष का कंकाल है; जैसा एक दिन सभी को होना है। अब मैं कभी इस हरे-भरे पेड़ की ओर देखता, कभी उन सूखे ठूँठ की तरफ । यों ही देखते-भालते मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि वह सीधे चले या वेग से, यह ठूँठ न हिलता है, न झुकता है।

हिलना और झुकना :जीवन का प्रतीक

न हिलना, न झुकना; में ये दो शब्द आये और मैंने आप ही आप इन्हें अपने में दोहराया— न हिलना, न झुकना।

दूर अन्तर में कुछ स्पर्श हुआ,पर वह स्पर्श सूक्ष्म था; यो ही संकेत सा। शब्द चक्कर काटते रहे। न हिलना, न झुकना और तब आया यह वाक्य — हिलना न झुकना जीवन की स्थिरता का, दृढ़ता का चिह्न है और वह वीर पुरुष है, जो न हिलता है, न झुकता है।

तभी मैंने फिर देखा उस ठूँठ की ओर। वह न हिल रहा था, न झुक रहा था ! मन में अचानक प्रश्न आया — न हिलना, न झुकना जीवन की स्थिरता का चिह्न है, पर इस ठूँठ में जीवन कहाँ है ?, यह तो मुरदा पेड़ है !

अब मेरे सामने एक विचित्र दृश्य था, कि जो जीवित था, वह हिल रहा था, झुक रहा था और जो मृतक था वह न हिल रहा था, न झुक रहा था। तो न हिलना, न झुकना जीवन का स्थिरता का चिह्न हुआ या मृत्यु की जड़ता का ?

वीरता और जड़ता का अंतर

अजीब उलझन थी, पर समाधान क्या था? मैं दोनों को देख रहा था, देखता रहा और तब मेरे मन में आया कि जो परिस्थितियों के अनुसार हिलता, झुकता नहीं, वह वीर नहीं, जड़ है; क्योंकि हिलना और झुकना ही जीवन का चिह्न है ।

हिलना और झुकना, अर्थात् परिस्थितियों से समझौता । जिल जीवन में समझौता नहीं, समन्वय नहीं, सामंजस्य नहीं, वह जीवन कहाँ है ? वह तो जीवन की जड़ता है; जैसे यह ठूँठ और जैसे यह पहाड़ का शिखर।

मुझे ध्यान आया कि जीते-जागते जीवन में भी एक ऐसी मनोदशा आती है, जब मनुष्य हिलने और झुकने से इनकार कर देता है। अतीत में रावण और **हिरण्यकश्यप** इस दशा के प्रतीक थे तो इस युग में **हिटलर** और **स्टालिन,** जो केवल एक ही मत को सही मानते रहे और वह स्वयं उनका मत था। आज की भाषा में इसी का नाम है **डिक्टेटरी-अधिनायकता।**

जीवन में समझौते और समन्वय का महत्व

विश्व की भाषा है — दे ले।

विश्व की जावन प्रणाली है — क़ह, सुन।

विश्व की यात्रा का पथ है — मान, मना।

इन तीनों का समन्वय है — हिलना-झुकना और समझौता-समन्वय । जिसमें यह नहीं है, वह जड़ है; भले ही वह इस ठूँठ की तरह निर्जीव हो या रावण की तरह जिद्दी।

मेरी खिड़की के सामने खड़ा हिल रहा था बाँझ का विशाल बेड़ और दूर दीख रहा था वह ठूँठ। समय की बात; तभी पास के घर से निकला एक मनुष्य और वह अपनी छोटी कुल्हाड़ी से उस ठूँठ का एक छोटा टहना काटने लगा। सामने ही दीख रही थी सड़क, जिस पर अपनी कुदाल से काम कर रहे थे कुछ मजदूर।

बाँझ का पहाड़ी पेड़: पेड़ का नाम बाँझ है, जो पहाड़ पर होता है, **झुकझूम;** झूकना और झूमना,**फुंगल:**पेड़ की ऊपरी चोटी; **ठूँठ:** बिना डाल-पात का सूखा पेड़; **कंकाल** हड्डियों का ढाँचा; **हिरण्यकश्यप :** एक पौराणिक चरित्र, कश्यप और दिनि के पुत्र ब्रह्मा से वरदान पाया कि मनुष्य पशु, पक्षी, देव आदि कोई उसे मार सकेगा। न दिन में, न रात में, न भूमि पर, न आकाश में। इसी कारण विष्णु ने नृसिंह रूप धारण किया और नाखूनों से हिरण्यकश्यप का शाम के समय वध किया; **हिटलर :** एडोल्फ हिटलर (जन्म 1889) जर्मनी के तानाशाह शासक। जिसकी विस्तारवादी और नस्लवादी नीतियों ने द्वितीय विश्वयुद्ध को जन्म दिया। जर्मनी के पतन के साथ उसने 30 अप्रैल 1945 को वर्लिन में आत्महत्या कर ली; **स्टालिन :** जोसेफ स्टालिन (जन्म 1879) लेनिन की मृत्यु के वाद सोवियत संघ के शासक द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान फासीवाद हमले के समय सोवियत संघ का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया और जर्मनी को परास्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ के पुनर्निर्माण में भी महत्वपूर्ण योग रहा। स्टालिन की मृत्यु 1953 में हुई डिक्टेटरी-अधिनायकता, लोकतांत्रिक, अधिकारियों का दमन करके शासन को अपनी मनचाही से चलाने वाला शासक, **टहना:**पेड़ की साख।

कुल्हाड़ी और कुदाल; कुदाल और कुल्हाड़ी — मैंने बार-बार इन शब्दों को दोहराया और तब आया मेरे मन में यह वाक्य — विश्व की भाषा है — दे, ले; विश्व की जीवन-प्रणाली है — कह, सुन; विश्व की यात्रा का पथ है — मान, मना; अर्थात् हिल भी और झुक भी, पर जो इन्हें भूल कर जड़ हो जाता है, वह ठूँठ हो, पर्वत का शिखर हो, अहंकारी मानव हो, विश्व उससे जिस भाषा में बात करता है उसी के प्रतिनिधि हैं ये कुल्हाड़ी-कुदाल।

साफ़-साफ़ यों कि जीवन में दो भी, लो भी, कहो भी, सुनो भी, मानो भी, मनाओ भी; और यह सब नहीं तो तैयार रहो कि तुम काट डाले जाओ, खोद डाले जाओ, पीस डाले जाओ!

मैं खिड़की से उठकर अपने पलंग पर आ पड़ा। बाँझ का पेड़ अब भी हिल रहा था, झुक रहा था, झूम रहा था, पर तभी मेरे मन में उठा एक प्रश्न — तो क्या जीवन की **चरितार्थता** बस यही है कि जीवन में हवा का झोंका आया और हम हिल गये? जीवन में संघर्ष का झटका आया और हम झुक गये? साफ़-साफ़ यों कि यहाँ-वहाँ हिलते-झुकते रहना ही महत्त्वपूर्ण है और जीवन की स्थिरता-दृढ़ता जीवन के नक़ली सत्य ही हैं?

प्रश्न क्या है, कम्बख़्त बिजली का तेज़ **शॉक** है यह, जो यों धकियाता है कि एक बार तो जड़ से ऊपर तक सब पाया-संजोया अस्त-व्यस्त हो उठे। सोचा — नहीं जी, यह हिलना और झुकना जीवन की **कृतार्थता** नहीं, अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि विवशता है। जीवन की वास्तविक कृतार्थता तो न हिलना, न झुकना ही है, यानी दृढ़ रहना ही है — **"मरियम सो मरियम पै टरियम नहीं।"**

मैं अपने पलंग पर पड़ा देखता रहा कि बाँझ का पेड़ झुक रहा है, झूम रहा है, हिल रहा है और दूर पर खड़ा ठूँठ न हिलता है, न झुकता है। जीवन है वृक्ष में, जो जीवन की कृतार्थता-दृढ़ता से हीन है और वह दृढ़ता है ठूँठ में, जो जीवन से हीन है; अजीब उलझन है यह!

तभी हवा का एक तेज झोंका आया और बाँझ हिल उठा। मेरी दृष्टि उस की झूमती **देह-यष्टि** के साथ रपटती-रपटती उसकी जड़ तक चली गयी और तब मैंने फिर देखा कि हवा का झोंका आता है तो टहनियाँ हिलती हैं, तना भी झूमता है, पर अपनी जगह जमी रहती है उसकी जड़। हवा का झोंका हलका हो या तेज, वह न झुकती है, न झूमती है।

अब स्थिति यह कि कभी मैं देख रहा हूँ स्थिर जड़ को और कभी हिलते-झूमते ऊपरी भाग को। लग रहा है कि कोई बात मन में उठ रही है और वह उलझन को सुलझाने वाली है, पर वह बात क्या है?

बात मन की तह से ऊपर आ रही है — ऊपर आ गयी है।

सिद्धांत के प्रश्न पर दृढ़ता आवश्यक

बात यह कि हमारा जीवन भी इस वृक्ष की तरह होना चाहिए कि उसका कुछ भाग हिलने-झुकने वाला हो और कुछ भाग स्थिर रहने वाला, यही जीवन की पूर्ण कृतार्थता है।

बात अपने में पूर्ण है, पर ज़रा स्पष्टता चाहती है और वह स्पष्टता यह है कि हम जीवन के विस्तृत व्यवहार में हिलते-झुलते रहें, समन्वयवादी रहें, पर सत्य के, सिद्धान्त के प्रश्न पर हम स्थिर रहें, दृढ़ रहें और टूट भले ही जायें, पर हिलें नहीं, समझौता करें नहीं।

जीवन में देह है, जीवन में आत्मा है। देह है नाशशील और आत्मा है **शाश्वत**, तो आत्मा को हिलना-झुकना नहीं है और देह को निरन्तर हिलना-झुकना ही है; नहीं तो हम हो जायेंगे रामलीला के रावण की तरह, जो बाँस की खपच्चियों पर खड़ा रहता है — न हिलता है, न झुकता है। हमारे विचार लचीले हों, परिस्थितियों के साथ वे **समन्वय साधते** चलें, पर हमारे आदर्श स्थिर हों। हमारे पैरों में जीवन के मोर्चे पर डटे रहने की भी शक्ति हो और स्वयं मुड़ कर हमें उठने-बैठने-लेटने में मदद देने की भी।

संक्षेप में जीवन की कृतार्थता यह है कि वह दृढ़ हो, पर अड़ियल न हो।

दृढ़, जो **औचित्य** के लिए, सत्य के लिए टूट जाता है, पर हिलता और झुकता नहीं।

अड़ियल, जो औचित्य और **अनौचित्य**, समय-असमय का विचार किये बिना ही अड़ जाता है, और टूट तो जाता है, पर हिलता-झुकता नहीं।

दो टूक बात यों कि जीवन वह है, जो समय पर अड़ भी सकता है और समय पर झुके भी, पर ठूँठ वह है, जो अड़ ही सकता है, झुक नहीं सकता।

एक है जीवन्त दृढ़ता और दूसरा निर्जीव जड़ता।
हम दृढ़ हों, जड़ नहीं।

मैंने देखा, बाँझ का पेड़ अब भी हिल रहा था, झुक रहा था और ठूँठ अनझुका, अनहिला, ज्यों का त्यों खड़ा।

शॉक: झटका; **चरितार्थता**: उद्देश्य; **मरियम सो मरियम, पैटरियम नहीं**: मर जायेंगे पर हटेंगे नहीं; **देह-यष्टि**: शरीर; **शाश्वत**: जो हमेशा विद्यमान रहे, चिरंतन; **कृतार्थता**: सार्थकता; **समन्वय साधना**: एकता स्थापित करना; **औचित्य**: जो उचित न हो। **अनौचित्य**: जो उचित न हो।

बोध प्रश्न

आपने उपर्युक्त निबंध का ध्यानपूर्वक वाचन किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1 लेखक के अनुसार हिलना और झुकना किस की पहचान है?
   क) जीवन की।
   ख) कायरता की।
   ग) वीरता की।
   घ) जड़ता की। ( )

2 जड़ का न हिलना किस बात की पहचान है?
   क) व्यावहारिक प्रश्नों पर समझौता न करना।
   ख) समझौता करना।
   ग) हर बात पर अड़े रहना।
   घ) सत्य और सिद्धांत के प्रश्न पर स्थिर रहना। ( )

3 कुल्हाड़ी और कुदाल किस बात का संकेत करते हैं? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

4 ठूँठ किस बात का प्रतीक है? एक पंक्ति में उत्तर दीजिए।

....

5 जीवन की कृतार्थता किस में है? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

39.3 निबंध का सार

इस निबंध में रचनाकार ने हरे-भरे पेड़ और सूखे पेड़ के माध्यम से अपनी बात कही है। लेखक बताता है कि जिस मकान में वह ठहरा हुआ था, उसके सामने बाँझ का पहाड़ी पेड़ था। वह हरा-भरा था। लेखक ने देखा कि पूरा पेड़ हवा का तेज झोंका आते ही हिल जाता था और झूमने लगता था। लेकिन लेखक ने देखा कि जड़ स्थिर रहती है और तेज से तेज हवा का झोंका आने पर भी बिल्कुल नहीं हिलती।

वहीं एक दूसरा पेड़ भी था — सूखा पेड़, ठूँठ। हवा के झोंके के साथ वह बिल्कुल नहीं हिलता था। वह वैसा-का-वैसा ही खड़ा रहता था।

यह देखकर लेखक विचारमग्न हो गया। वह सोचने लगा कि यह क्या कारण है कि हरा भरा पेड़ तो हवा के झोंके के साथ हिलता-झुकता है, लेकिन ठूँठ बिल्कुल नहीं हिलता, न ही झुकता है। न झुकना जीवन की स्थिरता का और दृढ़ता का प्रतीक माना गया है। ठूँठ भी स्थिर था। लेकिन ठूँठ की स्थिरता में जीवन न था।

अब लेखक के सामने एक और सत्य प्रकट हुआ। जिसमें जीवन था वह हिल भी रहा था और झुक भी रहा था, लेकिन जिसमें जीवन नहीं था, वह न हिल रहा था, न झुक रहा था।

हिलना और झुकना अर्थात् परिस्थितियों से समझौता। जिस जीवन में समझौता और समन्वय न हो वह जीवन अर्थवान् है। जो व्यक्ति जीवन में अड़ियल स्वभाव का होता है। अपनी ही बात को ठीक समझता है, वह रावण, हिरण्यकश्यप और हिटलर जैसा आचरण करता है। वह अपने विचारों को जोर-जबर्दस्ती से दूसरों पर थोपने की कोशिश करता है। यह चारित्रिक विशेषता अधिनायकता कहलाती है।

लेखक के अनुसार विश्व की भाषा है देना और लेना। जीवन प्रणाली है — कहना और सुनना तथा विश्व की यात्रा का मार्ग है — मानना और मनाना। इन तीनों बातों में समझौते और समन्वय की भावना निहित है अन्यथा जीवन ठूँठ की तरह निर्जीव हो जाता है। जो जीवन में अड़ियल और जिद्दी स्वभाव के होते हैं उन्हें ठूँठ की तरह कुल्हाड़ी और कुदाल से साफ कर दिया जाता है। जिनमें हिलने और झुकने की क्षमता नहीं है उनके साथ समाज कठोरता का व्यवहार ही करता है।

प्रश्न यह उठता है कि जीवन का उद्देश्य क्या है? क्या हम हवा का झोंका आते ही हिलने-झुकने लग जाएँ। नहीं, जीवन का उद्देश्य यह नहीं है। बाँझ का पेड़ हवा के तेज़ झोंके के साथ हिलता-झुकता था, उसके पत्ते, डालियाँ और तना भी। लेकिन जड़ तो स्थिर रहती थी। इसी तरह व्यक्ति को जीवन के व्यवहार के व्यापक क्षेत्र में तो समझौता और समन्वय करना चाहिए पर सत्य के, सिद्धांत के प्रश्न पर हमें स्थिर और दृढ़ रहना चाहिए। आत्मा को अडिग रहना है पर शरीर को हिलना भी है और झुकना भी है। पेड़ और ठूँठ का यही फर्क है।

39.4 संदर्भ सहित व्याख्या

इस निबंध में से व्याख्या के लिए अंश नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं। इस अंश की व्याख्या को ध्यान में रखकर अभ्यास में दिये गये अंशों की व्याख्या आप स्वयं कीजिए।

उद्धरण : *अब मेरे सामने एक विचित्र दृश्य था कि जो जीवित था, वह हिल रहा था, झुक रहा था और जो मृतक था वह न हिल रहा था, न झुक रहा था। तो न हिलना, न झुकना जीवन की स्थिरता का चिह्न हुआ या मृत्यु की जड़ता का?*

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के निबंध 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ' से उद्धृत किया गया है। इस निबंध में प्रभाकरजी ने पेड़ और ठूँठ के माध्यम से जीवन में दृढ़ता और समन्वय की व्याख्या की है। उनके निबंधों में जीवन के अनुभवों को आत्मीय रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न मिलता है। जाहिर है कि इनसे नयी विचार दृष्टि मिलती है।

व्याख्या: लेखक अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के द्वारा जीवन संबंधी महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालता है। लेखक ने देखा कि जो पेड़ हरा-भरा था, वह हवा के झोंके के साथ हिल रहा था और झुक भी रहा था, लेकिन जो ठूँठ था, जो सूख चुका था, जिसमें रस नहीं था वह मृतक-सा स्थिर खड़ा था, उसमें दृढ़ता थी। कैसी भी तेज़ या मंद हवा हो, न वह झुकता था न, हिलता ही था। कहा जाता है कि जो स्थिर और दृढ़ होता है, वही वीर होता है। लेकिन यहाँ तो जो स्थिर और दृढ़ था, सूखा और ठूँठ था। उसमें हरे-भरे पेड़ की तरह क्रियाशीलता न थी। इसी कारण वह जड़ और मृतक जैसा प्रतीत होता था। वह न हिल रहा था, न झुक रहा था। क्या तब न हिलना और न झुकना जीवन की दृढ़ता का चिह्न हो सकता है? जो अड़ियल होते हैं वे किसी की न तो सुनते हैं, न मानते हैं। क्या वे सचमुच दृढ़ हैं या उनकी वह स्थिरता या उनका अडिग होना, उनमें मृत्यु की जड़ता का संकेत है? अर्थात् ठूँठ होना जीवन का चिह्न है या मृत्यु का? लेखक की दृष्टि में वह जड़ता, जीवनहीनता और मृत्यु का ही सूचक है।

विशेष: 1 उक्त अंश में लेखक ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है जीवन की सार्थकता किस में है, समन्वय और समझौते में या अड़ियलपन में। पेड़ और ठूँठ के माध्यम से उन्होंने यही प्रश्न उठाया है।

2 प्रभाकरजी ने इस बात को पेड़ के रूपक द्वारा अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। स्वयं उनका कथन निबंध के आंतरिक कथ्य में अंतर्निहित अर्थ को स्पष्ट कर देता है।

अभ्यास

निम्नलिखित उद्धरणों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए। अगर व्याख्या में कठिनाई महसूस हो तो निबंध को दुबारा पढ़िए और इस इकाई का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिए।

1 **उद्धरण: विश्व की भाषा है — दे, ले।**
विश्व की जीवन-प्रणाली है — कह, सुन।
विश्व की यात्रा का पथ है — मान, मना।

इन तीनों का समन्वय है — हिलना-झुकना और समझौता-समन्वय। जिसमें यह नहीं है, वह जड़ है; भले ही वह इस ठूँठ की तरह निर्जीव हो या रावण की तरह ज़िद्दी।

संदर्भ : ....
....
....
....

व्याख्या : ....
....
....
....
....
....
....
....

विशेषः ....

....

....

....

2 **उद्धरणः बात यह है कि हमारा जीवन भी इस वृक्ष की तरह होना चाहिए कि उसका कुछ भाग हिलने-झुकने वाला हो और कुछ भाग स्थिर रहने वाला, यही जीवन की पूर्ण कृतार्थता है।**

संदर्भः ....

....

....

....

व्याख्याः संकेतः वृक्ष का प्रतीक ....

जड़ की स्थिरतां ....

सत्य और सिद्धांत पर दृढ़ता ....

वृक्ष का ऊपरी भाग ....

जीवन में लचीलापन ....

जीवन का उद्देश्य ....

सत्य और सिद्धांत में अडिगता व्यवहारिक क्षेत्र में लचीलापन ....

....

विशेषः ....

....

....

....

39.5 अंतर्वस्तु

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का यह निबंध 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ!' एक ललित निबंध है। इस निबंध में प्रभाकरजी ने पेड़ और ठूँठ के माध्यम से जीवन के एक महत्वपूर्ण पक्ष पर विचार किया है। व्यापक अर्थ में इस पक्ष का संबंध मनुष्य के संपूर्ण जीवन व्यवहार से है। उसमें हमारे विचार और हमारी भावनाएँ शामिल हैं। प्रभाकरजी ने निबंध के माध्यम से कई विचारोत्तेजक प्रश्न उठाये हैं, और उन प्रश्नों की प्रस्तुति अत्यंत भावात्मक ढंग से की है। आइए, अब हम इस निबंध के विचार पक्ष और भाव पक्ष पर विचार करें।

39.5.1 विचार पक्ष

निबंधकार ने इस निबंध में पेड़ और ठूँठ के माध्यम से जीवन के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है कि जीवन में समझौते और समन्वय का महत्व है या नहीं? क्या मनुष्य को हमेशा ठूँठ की तरह स्थिर ही रहना चाहिए? लेखक का विचार है कि जीवन के विस्तृत व्यवहार में मनुष्य को लचीला या उदार होना चाहिए। हर समय हर बात पर अड़ियल रुख अपनाना न तो बुद्धिमानी है और न चारित्रिक दृढ़ता। मनुष्य को हरे-भरे पेड़ की तरह होना चाहिए। जैसे हवा के तेज झोंके के साथ पेड़ का ऊपर का भाग हिलता है, लेकिन उसकी जड़ स्थिर रहती है उसी तरह मनुष्य को सत्य के संबंध में, अपने सिद्धांतों और आदर्शों के संबंध में दृढ़ रहना चाहिए। उनके संबंध में किसी तरह के गलत समझौते की जरूरत नहीं। लेकिन जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में, ऐसी छोटी-बड़ी कई बातें हो सकती हैं जहाँ व्यक्ति की उदारता, उसका समन्वयवादी रुख आवश्यक है। इसके लिए प्रभाकरजी ने तीन बातों पर ध्यान देने को कहा है।

प्रभाकरजी ने पहली बात यह कही है कि "विश्व की भाषा है — दे, ले।" उनकी इस बात के मर्म को समझना आवश्यक है। देना और लेना, विश्व की भाषा कैसे है? यहाँ भाषा का अर्थ है पारस्परिक संवाद या संबंध। हम दूसरों से तभी संबंध बना और बढ़ा सकते हैं जब हम उन्हें कुछ देने की स्थिति में हों और उनसे कुछ ग्रहण करने के लिए भी तैयार रहें। अपने को उच्च और श्रेष्ठ मानकर सिर्फ देने का अहंकार पाल लेने से हम कभी भी दूसरों का दिल नहीं जीत सकते।

दूसरी बात प्रभाकरजी ने यह कही है कि "विश्व की जीवन-प्रणाली है — कह, सुन।" यहाँ जीवन प्रणाली का अर्थ है जीवन जीने का ढंग। जीवन जीने का सही ढंग कौन-सा है? प्रभाकरजी के अनुसार वह है, कहना और सुनना। अगर हम दूसरों के कार्यों की आलोचना करते हैं तो हमारे अंदर इतनी सहनशीलता और विनम्रता अवश्य होनी चाहिए कि हम स्वयं अपनी आलोचना सुन सकें। कहने का तात्पर्य यही है कि जीवन जीने का सही ढंग है सहनशीलता और सहिष्णुता। अगर वह नहीं है तो हम जीवन में कभी सफल नहीं हो सकते।

तीसरी बात प्रभाकरजी ने यह कही है कि "विश्व की यात्रा का पथ है — मान और मना।" लेखक की यह बात भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जीवन यात्रा की सफलता इसी बात में है कि इसमें ज्यादा से ज्यादा लोग शरीक हों अर्थात् आपके सहयात्री हों। यह तभी संभव है जब हममें पारस्परिक भाईचारा हो और पारस्परिक भाईचारे की भावना तभी आ सकती है जब हम एक दूसरे का आदर करना सीखें। एक दूसरे से अलग और श्रेष्ठ अथवा हीन मानकर दूसरों को अपने से दूर न करें। अगर दूसरे किसी कारण से दूर हो गये हैं तो हमारे अंदर इतनी उदारता होनी चाहिए कि हम उन्हें मनाकर साथ ला सकें। इसी तरह यदि किसी कारण से हम दूसरों से दूर हो गये हों तो अपने अहंकार को इतना नहीं बढा लेना चाहिए कि समझौते और समन्वय की गुंजाइश ही न रहे।

प्रभाकरजी की उपर्युक्त तीनों बातें व्यावहारिक जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इनके बिना सामाजिक जीवन को सार्थक ढंग से जी पाना संभव ही नहीं है। प्रभाकरजी ने हिलने-झुकने की जो बात कही है, उसे इसी संदर्भ में समझना चाहिए। उपर्युक्त बातों का यह तात्पर्य कतई नहीं है कि हमें अपने आदर्शों से समझौता करना चाहिए — निश्चय ही नहीं। लेकिन अगर हममें उदारता, सहिष्णुता और पारस्परिक भाईचारा नहीं होगा तो हमारा जीवन दूभर हो जाएगा।

इस प्रकार जीवन में दृढ़ता और स्थिरता की जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता है समझौते और समन्वय की।

39.5.2 भाव पक्ष

यह निबंध उसी शैली में लिखा हुआ है जिस शैली में द्विवेदीजी ने 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' लिखा है। द्विवेदीजी ने नाखून बढ़ने की प्रक्रिया के माध्यम से मनुष्य की पशुता और मनुष्यता की चर्चा की थी। इसी प्रकार इस निबंध में प्रभाकरजी ने पेड़ और ठूँठ के माध्यम से जीवन में समझौते और समन्वय के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। द्विवेदीजी की तरह प्रभाकरजी ने अपनी बात सीधे न कहकर पेड़ और ठूँठ के रूपक के माध्यम से कही है।

प्रभाकरजी भी निबंध में अपने विचारों को नीरस रूप में नहीं रखते। पेड़ और ठूँठ के माध्यम से उनकी सारी बात भावात्मक रूप से हमारे सामने आती है। निबंध की शुरुआत ही देखिए — यहाँ प्रभाकरजी अपनी बात को पेड़ के माध्यम से कहते हैं। यहाँ उनके भावुक हृदय की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया स्पष्ट रूप से हमारे सामने उभर आती है।

> *हवा मौज में थी, अपने झोकों में झूम रही थी, इसलिए बराबर यही क्रिया होती रही और मैं उसे देखता रहा। देखता क्या रहा, उसकी झुकझूम में रस लेता रहा।*

उपर्युक्त वाक्य में "हवा मौज में थी" "अपने झोंको में झूम रही थी" या "उसकी झुकझूम में रस लेता रहा।" जैसे पद-प्रयोग केवल स्थिति का वर्णन ही नहीं करते बल्कि उसका चित्र भी प्रस्तुत कर देते हैं। लेकिन ऐसा चित्र जो लेखक की हृदयगत भावनाओं को भी व्यक्त करता है। यह विशेषता हम विचारों के विश्लेषण में भी देख सकते हैं:

> *अजीब उलझन थी पर समाधान क्या था? मैं दोनों को देख रहा था, देखता रहा और तब मेरे मन में आया कि जो परिस्थितियों के अनुसार हिलता, झुकता नहीं, वह वीर नहीं, जड़ है; क्योंकि हिलना और झुकना ही जीवन का चिह्न है।*

यहाँ भी "हिलना और झुकना" का वैचारिक विश्लेषण शुद्ध बौद्धिक नहीं है। "अजीब उलझन थी, समाधान क्या था? मैं दोनों को देख रहा था, देखता रहा और तब मेरे मन में आया कि जो ...." अंश लेखक की मानसिक दशा को दर्शाता है। विचारों के प्रवाह के साथ रचनाकार अपनी मनोदशा का चित्रण भी करता जाता है जिससे बात का भावात्मक पक्ष भी हमारे सामने उभर आता है और हम लेखक की संवेदना से तादात्मय स्थापित कर पाते हैं।

39.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

ललित निबंध में लेखक का व्यक्तित्व अधिक प्रत्यक्ष होता है। वह प्रायः "मैं" शैली में अपने निबंध लिखता है और इस तरह सीधे तौर पर अपने विचार और भाव प्रस्तुत करता है। लेकिन लेखक का यह "मैं" इतना निजबद्ध भी नहीं होता कि पाठक उससे तादात्मय ही न कर सके।

प्रस्तुत निबंध में लेखक ने जीवन के जिस महत्वपूर्ण पक्ष पर विचार किया है — वह है, जीवन में समझौते और समन्वय का महत्व। हम सभी जानते हैं कि जीवन में समझौतापरस्ती को अच्छा नहीं समझा जाता। जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व में दृढ़ता और स्थिरता न हो, जो लिजलिजा हो, थोड़ा-सा भी बाहरी दबाव पड़ते ही अपना मार्ग बदल डाले या समय-समय पर अपना मार्ग बदलता रहे, ऐसे व्यक्ति को आदर्श नहीं माना जा सकता। इस सर्वमान्य-सी बात के विपरीत प्रभाकरजी ने एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि जीवन के लिए ठूँठ जैसी दृढ़ता या स्थिरता का महत्व नहीं है बल्कि

समझौता और समन्वय भी जरूरी है। उनका यह मत उनके मौलिक सोच को उजागर करता है जिससे उनके व्यक्तित्व का एक पहलू उभरकर सामने आता है और वह है उनकी चिंतनशीलता। किसी सर्वमान्य बात को नये कोण से देखना और नया विचार प्रस्तुत करना, उस लेखक को विचारक की श्रेणी में पहुँचाता है।

प्रभाकरजी के इस निबंध में उनके व्यक्तित्व की जिस दूसरी विशेषता का संकेत मिलता है, वह है लोकतंत्र में उनकी आस्था। लोकतंत्र में आस्था का प्रमाण यह है कि उन्होंने हिटलर जैसे तानाशाह का विरोध किया है। उन्होंने रावण और हिरण्यकश्यप जैसे पौराणिक चरित्रों को भी इसी श्रेणी में रखा है। इनकी निंदा उन्होंने इस बात के लिए की है कि ये सभी लोकमत की उपेक्षा करते हुए अपने मत को ही श्रेष्ठ समझते रहे और उन्होंने दूसरों को भी इस बात के लिए विवश किया कि वे उनका अनुगमन करें। निश्चय ही यह लोकतंत्र के सिद्धांत के विरुद्ध है, जबकि व्यापक हित में समझौता और समन्वय की भावना लोकतंत्र के अनुकूल है।

प्रभाकरजी के इस निबंध से उनके व्यक्तित्व की जिस तीसरी विशेषता का पता लगता है, वह है उनका प्रकृति प्रेम। पेड़ और ठूँठ हालाँकि यहाँ लेखक के विचारों के प्रतीक बन कर ही आये हैं, पर यह संयोग नहीं है। कमरे की खिड़की में से जब लेखक बाँझ के पहाड़ी पेड़ को पहली बार देखता है तो लेखक के मन में जो विचार उठते हैं, वे लेखक के प्रकृति प्रेम को ही व्यक्त करते हैं:

> *जिस मकान में मैं ठहरा, उसकी खिड़की के सामने ही खड़ा था, एक पूरा पनपा बाँझ का पहाड़ी पेड़। पलंग पर लेटे-लेटे वह यों दीखता कि जैसे कुशल समाचार पूछने को आया कोई मेरा ही मित्र हो।*

पेड़ को मित्र मानना और उससे मानवीय संबंध जताना, लेखक के प्रकृति प्रेम को ही व्यक्त करता है। लेकिन लेखक यहीं तक नहीं रुकता वरन् वह प्रकृति के साथ तादात्मय कर उससे मानव जीवन के लिए प्रेरणा ग्रहण करता है।

लेखक के व्यक्तित्व की चौथी विशेषता है, आत्मीयता। कवि ने भावुक कवि की तरह मानवीय जीवन के एक महत्वपूर्ण पक्ष पर विचार किया है और उसी के अनुकूल उनकी भाषा और शैली भी लालित्यपूर्ण और आत्मीय है।

इस प्रकार, इस निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की कई विशेषताएँ हमारे सामने उभरती हैं; विचारक, लोकतंत्र प्रेमी, प्रकृति प्रेमी और आत्मीयता।

बोध प्रश्न

6 जीवन के किस क्षेत्र में मनुष्य को लचीला होना चाहिए।
- क) सिद्धांत के क्षेत्र में
- ख) व्यवहार के क्षेत्र में
- ग) सत्य के क्षेत्र में
- घ) किसी क्षेत्र में नहीं ( )

7 मनुष्य को किस की तरह होना चाहिए।
- क) पेड़ की तरह
- ख) ठूँठ की तरह
- ग) जड़ की तरह
- घ) तने की तरह ( )

8 "विश्व की भाषा है — दे, ले।" — लेखक के इस कथन का आशय पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

9 इस निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की जिन प्रमुख विशेषताओं की अभिव्यक्ति हुई है, किन्हीं तीन का नामोल्लेख कीजिए।

क) ....

ख) ....

ग) ....

अभ्यास

3 इस निबंध के भाव पक्ष पर पाँच पंक्तियों में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

....

....

....
....
....

4 निबंध के आधार पर बताइए कि प्रभाकरजी को लोकतंत्र प्रेमी कैसे कहा जा सकता है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....

39.7 संरचना शिल्प

संरचना शिल्प की दृष्टि से यह निबंध अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह ललित निबंध है। यहाँ लेखक के विचार तो महत्वपूर्ण हैं ही, उनको प्रस्तुत करने का उसका ढंग भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। आइए, भाषा और शैली की दृष्टि से इस निबंध की कुछ विशेषताओं पर विचार करें।

39.7.1 भाषा

प्रस्तुत निबंध की भाषा पर विचार करने से एक बात जो सबसे पहले उभरकर सामने आती है, वह है उसकी आत्मीयता। लेखक ने अत्यंत आत्मीय ढंग से अपनी बात कही है। वह कहीं भी अपनी बात में दंभ नहीं लाता। पेड़ और ठूँठ को देखकर जो-जो बातें उसके दिमाग में उठती रही हैं, उन्हें वह सीधे-सादे रूप में रखता जाता है। निबंध की भाषा लेखक के मंतव्य को ईमानदारी और ताकत के साथ प्रस्तुत करती है। उसकी भाषा में सहजता है, प्रवाह है।

> *हिलना और झुकना; अर्थात् परिस्थितियों से समझौता। जिस जीवन में समझौता नहीं, समन्वय नहीं, सामंजस्य नहीं, वह जीवन कहाँ है? वह तो जीवन की जड़ता है, जैसे यह ठूँठ और जैसे यह पहाड़ का शिखर।*

उपर्युक्त अंश में आप देखेंगे कि लेखक ने अपनी बात सहज ढंग से कही है बल्कि उसकी बातों में एक तरह की लय भी है प्रवाह भी है — *"जिस जीवन में समझौता नहीं, समन्वय नहीं, सामंजस्य नहीं, वह जीवन कहाँ है"* वाक्य के प्रवाह ने बात के प्रभाव को कई गुना बढ़ा दिया है।

इसी तरह खिड़की से दिखाई पड़ने वाला बाँझ का पहाड़ी पेड़, कुशल पूछने आये मित्र की तरह नज़र आये, इस प्रकार की कथन-शैली वस्तुतः गद्य में काव्य की विशेषताओं का प्रवेश है।

शब्द चयन में लेखक की दृष्टि उदार है। उन्होंने निबंध के विचार, भाव और स्थिति के अनुकूल शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा में शब्द प्रयोग की सहजता ने स्वाभाविकता को बनाये रखा है। हालांकि उनकी भाषा में निर्जीव, सामंजस्य दृश्य, ध्यान, समन्वय, जीवन प्रणाली, सिद्धांत, कृतार्थता, देह-यष्टि जैसे तत्सम शब्द भी हैं। लेकिन इन तत्सम शब्दों का गहरी पकड़ के साथ उपयोग भाषा को बोझिल नहीं बनाता है। इसी तरह हिस्सा, काफ़ी, मज़दूर, कमबख्त, इन्कार, साफ़, तेज़ जैसे बोलचाल के उर्दू शब्द भी निबंध में सहज भाव से प्रयुक्त हुए हैं। निबंध में ठूँठ, फुंगल, खपच्ची, जैसे देशज शब्द भी मिल जाते हैं जिनसे भाषा में लोक-संवेदना शक्ति का विस्तार हुआ है।

प्रभाकरजी के इस निबंध में वाक्य भी प्रायः छोटे हैं। लंबे और जटिल वाक्य नहीं है। यदि कुछ लंबे वाक्य हैं भी तो वे अर्थ संप्रेषण की दृष्टि से कठिन नहीं है। जैसे निम्नलिखित वाक्यः

> *बात अपने में पूर्ण हैं, पर ज़रा स्पष्टता चाहती है और वह स्पष्टता यह है कि हम जीवन के विस्तृत व्यवहार में, हिलते-झुकते रहें, समन्वयवादी रहें, पर सत्य के, सिद्धांत के प्रश्न पर हम स्थिर रहें, दृढ़ रहें और टूट भले ही जायें, पर हिलें नहीं, समझौता करें नहीं।*

यह एक लंबा वाक्य है, लेकिन अर्थ की दृष्टि से स्पष्ट है, क्योंकि लेखक ने इस लंबे वाक्य को कई उपवाक्यों में बाँट रखा है जिससे बात को ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

39.7.2 शैली

'एक था पेड़ और एक था ठूँठ' निबंध ललित शैली में लिखा हुआ है। ललित शैली निबंध की वह शैली है जिसमें लेखक अपनी निजता और कलात्मकता दोनों की ओर सजग रहता है। वह अपने भावों और विचारों की निजता की भी रक्षा करता है और उसको कलात्मकता भी देता है।

इस निबंध में भी हम देखते हैं कि इसमें शैली की निजता भी है और उसकी कलात्मकता या सौंदर्य भी। उदाहरण के लिए विषय की दृष्टि से देखें तो पेड़ और ठूँठ के माध्यम से स्थिरता और समन्वय के फ़र्क को स्पष्ट करना उनके दृष्टिकोण की निजता का प्रमाण है। इसके बाद पेड़ का हिलना और ठूँठ का न हिलना या पेड़ की जड़ का न हिलना और ठूँठ का न हिलना जैसी स्थितियों के पारस्परिक फ़र्क को प्रतीकात्मक अर्थ देना उनके विषय प्रतिपादन की निजता का द्योतक है।

शैली की दूसरी विशेषता उसका कलात्मक सौंदर्य है। इसके लिए प्रभाकरजी कई बातों का ध्यान रखते हैं। वे कभी भी अपनी बात को जटिल नहीं होने देते। उन्हें सहज और सरल ढंग से प्रस्तुत करते हैं। अपनी बात को अलग-अलग ढंग से दुहराकर या उसे किसी सुंदर से रूपक या प्रतीक में बांधकर कलात्मक रूप दे देते हैं। इस निबंध में पेड़, ठूँठ, जड़, पेड़ का हिलना-झुकना, कुदाल और कुल्हाड़ी सभी किसी न किसी भाव या विचार के प्रतीक हैं और ये सभी मिलकर एक ऐसा रूपक बनाते हैं जो पूरे निबंध के अर्थ को खोलता है।

उनकी शैली की तीसरी विशेषता है, कल्पनाशीलता। प्रभाकरजी के निबंध में साधारण बात में असाधारण अर्थ व्यक्त करने की क्षमता है। पेड़ और ठूँठ को हम सभी देखते हैं। पेड़ का हिलना भी और ठूँठ का स्थिर रहना भी। लेकिन यह लेखक की कल्पनाशक्ति ही है जो प्रकृति की इस साधारण-सी लगने वाली क्रिया में मनुष्य के जीवन के लिए एक गहरा संदेश खोज लेती है। यही नहीं उनकी कल्पनाशीलता इस बात में भी है कि वे प्रकृति की व्यापक प्रक्रिया और उसके सूक्ष्म भेदों को भी मानवीय अर्थ दे देते हैं। जैसे, इस निबंध में पेड़ का हिलना, झुकना या जड़ का स्थिर रहना — ये सभी मानव जीवन के लिए कोई न कोई अर्थ व्यक्त कर रहे हैं।

इस प्रकार यह निबंध लेखकीय शैली की निजता, कलात्मकता और कल्पनाशीलता का श्रेष्ठ उदाहरण है।

39.8 प्रतिपाद्य

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने एक साधारण सा विषय लेकर उसे अपने चिंतन और विचार के बल पर एक असाधारण अर्थ दिया है। पेड़ के हिलने और झुकने को जीवन के लचीनेपन का, पेड़ की जड़ों की स्थिरता को जीवन की दृढ़ता का और ठूँठ की स्थिरता को अड़ियलपन या तानाशाही का प्रतीक बनाया गया है। लेखक जीवंत पेड़ की इन क्रियाओं से तथा ठूँठ की स्थिरता से, जीवंत दृढ़ता और निर्जीव जड़ता के बीच सूक्ष्म अंतर स्थापित करता है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि हम दृढ़ हों, जड़ नहीं। निबंध में निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित बातें कही गयी हैं:

- जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में समझौता और समन्वय आवश्यक है।
- यदि जीवन में समन्वय या समझौता नहीं है तो वह जीवन नहीं, जीवन की जड़ता है।
- जो मनुष्य हिलने और झुकने से इंकार करता है और अपने मत को ही सही मानता है और दूसरों को उसका अनुकरण करने को विवश करता है, वह अधिनायक है।
- ऐसे लोग वैसे ही खत्म कर दिये जाते हैं जैसे ठूँठ को कुल्हाड़ी से काट डाला जाता है।
- जीवन की कृतार्थता उसकी दृढ़ता में है, अड़ियलपन में नहीं।

शीर्षक की उपयुक्तता: निबंध के उपर्युक्त निष्कर्षों पर विचार करें तो हम पायेंगे कि ये सभी वैचारिक बिंदु लेखक ने पेड़ और ठूँठ के माध्यम से ही प्रस्तुत किये हैं। यहाँ पेड़ और ठूँठ महज पेड़ और ठूँठ नहीं, बल्कि लेखक की संवेदना या मंतव्य के प्रतीक हैं। इसलिए उनके आधार पर निबंध का शीर्षक देना हर तरह से उपयुक्त है क्योंकि इससे निबंध के मंतव्य का पूर्ण संकेत मिल जाता है।

बोध प्रश्न

10 भाषा की दृष्टि से निबंध की किन्हीं तीन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

i) ....

ii) ....

iii) ....

11 निम्नलिखित में से कौन-कौन से कथन सही और गलत हैं?

i) उपर्युक्त निबंध में व्यंग्य की प्रधानता है। (सही/गलत)

ii) निबंध की शैली विश्लेषण प्रधान है। (सही/गलत)

iii) भाषा में हिंदी का सहज सौंदर्य है। (सही/गलत)

iv) रावण समन्वयवादी था। (सही/गलत)

v) हमारा व्यवहार लचीला और आदर्श स्थिर हो। (सही/गलत)

5 निबंध की शैलीगत दो विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

6 निम्नलिखित अंश का भाषागत वैशिष्ट्य बताइए।

साफ़-साफ़ यों कि जीवन में दो भी, लो भी, कहो भी, सुनो भी, मानो भी, मनाओ भी और यह सब नहीं तो तैयार रहो कि तुम काट डाले जाओ, पीस डाले जाओ।

....

....

....

....

....

7 उपर्युक्त अंश के आधार पर लेखक ने कौन-कौन से वैचारिक निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं, लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

39.9 सारांश

- 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ!' कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' द्वारा लिखित ललित निबंध है। इस निबंध में लेखक ने जीवंत पेड़ और ठूँठ के प्रतीकों के माध्यम से अड़ियलपन या अधिनायकता, स्थिरता या दृढ़ता और समन्वय का अर्थ स्पष्ट किया है और जीवन में समन्वय और समझौते के महत्व को प्रतिपादित किया है। लेखक का विचार है कि जो अपने जीवन में ठूँठ की तरह अड़ियल हो जाते हैं, उन्हें ठूँठ की तरह ही खत्म हो जाना पड़ता है। अब आप स्वयं निबंध की अंतर्वस्तु का विवेचन कर सकते हैं।
- इस निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव मुख्यतः चार रूपों में व्यक्त हुआ है — विचारक, लोकतंत्र प्रेमी, प्रकृति प्रेमी, आत्मीयता या भावुकता। इनके आधार पर आप निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव पर विचार कर सकते हैं।
- भाषा की दृष्टि से निबंध में आत्मीयता, सहजता, स्वाभाविकता और सरसता है। शब्द योजना विषय के अनुकूल है और वाक्य संप्रेषणीय और अर्थवान् हैं।
- यह ललित निबंध है। इसकी शैली भी उसके अनुकूल है। निजता, कल्पनाशीलता, कलात्मक सौंदर्य इस निबंध की शैलीगत प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनकी व्याख्या अब आप स्वयं कर सकते हैं।
- इस निबंध का प्रतिपाद्य है : जीवन में स्थिरता और समन्वय के सही महत्व को स्पष्ट करना। यह निबंध इस दृष्टि से अत्यंत सफल है। आप स्वयं इसके प्रतिपाद्य को स्पष्ट कर सकते हैं तथा यह भी बता सकते हैं कि इसका शीर्षक उपयुक्त क्यों है।

39.10 शब्दावली

कलात्मकता: किसी रचना के रूप और शिल्प संबंधी पक्ष को कलात्मकता कहेंगे।

कलात्मक सौंदर्य: रचना की कला संबंध विशेषताएँ।

प्रतीकात्मक: भाव, वस्तु या स्थिति का ऐसा वर्णन जो किसी अन्य भाव, वस्तु या स्थिति का संकेत करती हो।

39.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 क 2 घ

3 जो ठूँठ की तरह अड़ियल हो जाता है उसे कुल्हाड़ी और कुदाल के द्वारा काट डाला जाता है अर्थात् उन्हें भी ठूँठ की तरह खत्म हो जाना पड़ता है। यहाँ कुल्हाड़ी और कुदाल समय की सच्चाई के प्रतीक है।

4 ठूँठ — अड़ियलपन और तानाशाही का प्रतीक है।

5 जीवन की कृतार्थता पेड़ की तरह होने में है। जीवन के विस्तृत और व्यवहारिक क्षेत्र में समन्वयवादी और सिद्धांत के क्षेत्र में स्थिर।

6 ख

7 क

8 पढ़िए, उपभाग 39.5.1

9 क) विचारक
ख) लोकतंत्र प्रेमी
ग) प्रकृति प्रेमी
घ) भावुक

10 i) भाषा में सहजता, सरसता और आत्मीयता
ii) स्वाभाविक शब्द योजना
iii) वाक्य स्पष्ट और अर्थवान्

11 i) गलत
ii) गलत
iii) सही
iv) गलत
v) सही

अभ्यास

1 एवं 2 की व्याख्या के लिए इकाई को ध्यान से पढ़िए।

3 संकेतः विचारों को भावात्मक रूप प्रदान करना
रचनाकार की मनोदशा का चित्रण
रूपक का प्रयोग

4 संकेतः तानाशाही का विरोध
लोकमत का समर्थन
व्यापक हित में समझौते और समन्वय की भावना का समर्थन

5 संकेतः निजता
कलात्मकता
कल्पनाशीलता

6 संकेत : छोटे-छोटे वाक्य
सांकेतिकता
सहजता और सरलता

7 पढ़िए भाग 39.8

इकाई 40 मेरे राम का मुकुट भीग रहा है (विद्यानिवास मिश्र): वाचन एवं विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

40.0 उद्देश्य
40.1 प्रस्तावना
40.2 निबंध का वाचन : मेरे राम का मुकुट भीग रहा है
40.3 निबंध का सार
40.4 संदर्भ सहित व्याख्या
40.5 अंतर्वस्तु
40.5.1 विचार पक्ष
40.5.2 भाव पक्ष
40.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
40.7 संरचना शिल्प
40.7.1 भाषा
40.7.2 शैली
40.8 प्रतिपाद्य
40.9 सारांश
40.10 शब्दावली
40.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

40.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है।' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- निबंध के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकते हैं;
- निबंध में व्यक्त विचारों और भावों का विवेचन कर सकते हैं;
- निबंध में व्यक्त लेखकीय व्यक्तित्व की विशेषताएँ बता सकते हैं;
- निबंध की भाषा और शैलीगत विशेषताएँ बता सकते हैं; और
- निबंध के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकते हैं।

40.1 प्रस्तावना

यह इस खंड की अंतिम इकाई है। अब तक आप चार निबंध पढ़ चुके हैं। आपने निबंध के स्वरूप और हिंदी निबंधों के विकास का भी अध्ययन किया है। आपने निबंध के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या का अध्ययन भी किया है और विभिन्न तत्वों के आधार पर उनके विश्लेषण का भी। इन इकाइयों के अध्ययन से आप स्वयं भी अब निबंध का विश्लेषण कर सकते हैं।

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' डॉ. विद्यानिवास मिश्र की रचना है। डॉ. मिश्र हिंदी के प्रसिद्ध निबंधकार और आलोचक हैं। आपने ललित निबंध के क्षेत्र में द्विवेदीजी की परम्परा को आगे बढ़ाया और उसे समृद्ध किया। डॉ. विद्यानिवास मिश्र भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, साहित्य तथा भाषा के मर्मज्ञ विद्वान हैं, साथ ही भारतीय लोकजीवन और लोक संस्कृति को उन्होंने गहराई से आत्मसात किया है। इन दोनों पक्षों के कारण उनके निबंधों में जहाँ एक ओर विद्वत्ता और व्यापक ज्ञान का परिचय मिलता है, वहीं लोकतत्त्वों के कारण निबंध में एक नया पक्ष जुड़ गया है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र का जन्म 1925 में हुआ था। आप विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में लम्बे समय तक अध्यापन कार्य करते रहे। आपने कई ग्रंथों की रचना की है। आपके प्रमुख निबंध संग्रह हैं, 'तुम चंदन हम पानी', 'तमाल के झरोखे से', 'संचारिणी', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'आंगन का पंछी' और 'बनजारा मन', 'परंपरा बंधन नहीं', 'लागौ रंग हरी' आदि।

40.2 निबंध का वाचन : मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

महीनों से मन बेहद-बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ आसपास के तनाव और कुछ उनसे टूटने का डर, खुले आकाश के नीचे भी खुलकर साँस लेने की जगह की कमी, जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहता हूँ, उस काम में हजार बाधाएँ; कुल ले-देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज नहीं बनती। फिर भी रात-रात नींद नहीं आती। दिन ऐसे बीतते हैं, जैसे भूतों के सपनों की एक रील पर दूसरी रील चढ़ा दी गयी हो और भूतों की आकृतियाँ और डरावनी हो गयी हों। इसलिए कभी-कभी तो बड़ी-से-बड़ी परेशान करने वाली बात हो जाती है और कुछ भी परेशानी नहीं होती, उल्टे ऐसा लगता है, जो हुआ, एक सहज क्रम में हुआ, न होना ही कुछ अटपटा होता और कभी-कभी बहुत मामूली-सी बात भी भयंकर चिंता का कारण बन जाती है।

मित्र, पुत्र और अतिथि कन्या का संगीत कार्यक्रम में जाना।

अभी दो-तीन रात पहले मेरे एक साथी संगीत का कार्यक्रम सुनने के लिए नौ बजे रात गये, साथ में जाने के लिए मेरे एक **चिरंजीव** ने और मेरी एक मेहमान, महानगरीय वातावरण में पली कन्या ने अनुमति माँगी। शहरों की, आजकल की असुरक्षित स्थिति का ध्यान करके इन दोनों को जाने तो नहीं देना चाहता था, पर लड़कों का मन भी तो रखना होता है, कह दिया, एक-डेढ़ घंटे सुनकर चले आना।

लेखक और लेखक-पत्नी की चिंता

रात के बारह बजे। लोग नहीं लौटे। गृहिणी बहुत **उद्विग्न** हुई, झल्लायीं; साथ में गये मित्र पर नाराज होने के लिए **संकल्प बोलने** लगीं। इतने में जोर की बारिश आ गयी! छत से बिस्तर समेटकर कमरे में आया। गृहिणी को समझाया, बारिश थमेगी, आ जायेंगे, संगीत में मन लग जाता है, तो उठने की तबीयत नहीं होती, तुम सोओ, ऐसे बच्चे नहीं हैं। पत्नी किसी तरह शांत होकर सो गयीं, पर मैं अकुला उठा, बारिश निकल गयी, ये लोग नहीं आये। बरामदे में कुर्सी लगाकर राह जोहने लगा। दूर कोई भी आहट होती, तो **उदग्र** होकर फाटक की ओर देखने लगता। रह-रहकर बिजली चमक जाती थी और सड़क **दिप** जाती थी। पर सामने की सड़क पर कोई रिक्शा नहीं, कोई **चिरई** का पूत नहीं। एकाएक कई दिनों से मन में उमड़ती-घुमड़ती पंक्तियाँ गूंज गयीं —

लोकगीत का स्मरण

"मोरे राम के भीजै मुकुटवा,
लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं।"

(मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा, मेरे लखन का पटुका (दुपट्टा) भीग रहा होगा, मेरी सीता की मांग का सिंदूर भीग रहा होगा, मेरे राम घर लौट आते)

वनवास के दौरान भटकते राम, सीता और लक्ष्मण को लेकर कौशल्या की चिंता और लेखक की मनःस्थिति

बचपन में दादी-नानी **जाँते** पर यह गीत गातीं, मेरे घर से बाहर जाने पर विदेश में रहने पर वे यही गीत **विह्वल** होकर गाती और लौटने पर कहतीं — 'मेरे लाल को कैसा बनवास मिला था'। जब मुझे दादी-नानी की इस आकुलता पर हँसी भी आती, गीत का स्वर बड़ा मीठा लगता। हाँ, तब उसका दर्द नहीं छूता। पर इस प्रतीक्षा में एकाएक उसका दर्द उस ढलती रात में उभर आया और सोचने लगा, आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट को कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में यह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़ा-से-बड़ा संकट झेल लेगी। बार-बार मन को समझाने की कोशिश करता, लड़की दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में पढ़ाती है, लड़का संकट-बोध की कविता लिखता है, पर लड़की का खयाल आते ही दुश्चिंता होती, गली में जाने कैसे तत्त्व रहते हैं! लौटते समय कहीं कुछ हो न गया हो और अपने भीतर अनायास अपराधी होने का भाव जाग जाता, मुझे रोकना चाहिए था या कोई व्यवस्था करनी चाहिए थी, परायी लड़की (और लड़की तो हर एक परायी होती है, धोबी की **मुटरी** की तरह घाट पर खुले आकाश में कितने दिन फहरायेगी, अंत में उसे गृहिणी बनने जाना ही है) घर आयी, कहीं कुछ हो न जाए!

वनवासी राम के माथे पर मुकुट: लोकमानस की अभिव्यक्ति

मन फिर घूम गया कौसल्या की ओर, लाखों करोड़ों कौसल्यों की ओर, और लाखों-करोड़ों कौसल्याओं के द्वारा मुखरित एक **अनाम-अरूप** कौसल्या की ओर, इन सबके राम वन में निर्वासित हैं, पर क्या बात है कि मुकुट अभी भी उनके माथे पर बँधा है और उसी के भीगने की इतनी चिंता है? क्या बात है कि आज भी काशी की रामलीला आरम्भ होने के पूर्व एक निश्चित मुहूर्त में मुकुट की ही पूजा सबसे पहले की जाती है? क्या बात है कि तुलसीदास ने '**कानन**' को '**सत अवध समाना**' कहा और चित्रकूट में हो पहुँचने पर उन्हें '**कलि की कुटिल कुचाल**' दीख पड़ी? क्या बात है कि आज भी वनवासी धुनर्धर राम ही लोकमानस के राजा राम बने हुए हैं? कहीं-न-कहीं इन सबके बीच एक संगति होनी चाहिए।

अभिषेक की बात चली, मन में अभिषेक हो गया और मन में राम के साथ राम का मुकुट प्रतिष्ठित हो गया। मन में प्रतिष्ठित हुआ, इसलिए राम ने राजकीय वेश उतारा, राजकीय रथ से उतरे, राजकीय भोग का **परिहार** किया, पर मुकुट तो लोगों के मन में था, कौसल्या के मातृ-स्नेह में था, वह कैसे उतरता, वह मस्तक पर विराजमान रहा और राम भीगें तो भीगें,

---

चिरंजीव: पुत्र; **उद्विग्न:** परेशान, बेचैन; **उदग्र:** सिर उचकाकर; **दिप:** प्रकाशित, रौशन; **चिरई:** चिड़िया; **संकल्प बोलना:** किसी मनचाही बात के पूरा हो जाने की कामना करते हुए उसके पूरा होने पर दान-दक्षिणा आदि करने की मनौती या निश्चय करना; **जाँते:** चक्की; **मुटरी:** छोटी गठरी; **विह्वल:** दुःख से विकल। **अनाम-अरूप:** जिसका न कोई नाम हो, न कोई रूप अर्थात् व्यक्ति विशेष के रूप में जिसे न पहचाना जाय; सामान्य, अमूर्त; **कानन:** जंगल; **सत अवध समाना:** सौ अयोध्याओं के समान; **कलि की कुटिल कुचाल:** कलियुग की बुरी चाल; **अभिषेक:** राजा का सिंहासन पर बैठना अर्थात् राजा का पद स्वीकार करना; **परिहार:** त्याग।

मुकुट न भीगने पाये, इसकी चिंता बनी रही। राजा राम के साथ उनके अंगरक्षक लक्ष्मण का कमर-बंद दुपट्टा भी (प्रहरी की जागरूकता का **उपलक्षण**) न भीगने पाये और अखंड सौभाग्यवती सीता की माँग का सिंदूर न भीगने पाये, सीता भले ही भीग जायें। राम तो वन से लौट आये, सीता को लक्ष्मण फिर निर्वासित कर आये, पर लोकमानस में राम की वनयात्रा अभी नहीं रुकी। मुकुट, दुपट्टे और सिंदूर के भीगने की आशंका अभी भी **साल** रही है। कितनी अयोध्याएँ बसीं, उजड़ीं, पर निर्वासित राम की असली राजधानी, जंगल का रास्ता अपने काँटों-कुशों, कंकड़ों-पत्थरों की वैसी ही ताजा चुभन लिए हुए बरकरार है, क्योंकि जिनका **आसरा** साधारण गँवार आदमी भी लगा सकता है, वे राम तो सदा निर्वासित ही रहेंगे और उनके राजपाट को संभालने वाले भरत अयोध्या के समीप रहते हुए भी उनसे भी अधिक निर्वासित रहेंगे, निर्वासित ही नहीं, बल्कि एक कालकोठारी में बंद **जलावतनी** की तरह दिन बितायेंगे।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से मिलाइए।

1 निबंध के उपर्युक्त अंश में लेखक की उद्विग्नता का कारण क्या है? एक वाक्य में उत्तर लिखिए।

....

....

2 "मोरे राम के भीजै मुकुटवा" लोकगीत का संदर्भ क्या है? एक वाक्य में लिखिए।

....

....

3 उपर्युक्त लोकगीत में अंतर्निहित दर्द को लेखक उस रात क्यों समझ सका? एक-दो वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....

....

सोचते-सोचते लगा कि इस देश की ही नहीं, पूरे विश्व की एक कौसल्या है; जो हर बारिश में **बिसूर** रही है — 'मोरे राम के भीजै मुकुटवा' (मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा)। मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेंगे; मेरे राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरुए का कमरबंद भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है, मेरे राम की **सहचारिणी** सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखंड सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धीरज धरूँ? मनुष्य की इस **सनातन नियति** से एकदम आतंकित हो उठा, ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं। जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाने को है, उसको निर्वासन पहले से बदा है। जिन लोगों के बीच रहता हूँ, वे सभी मंगल नाना के नाती हैं, वे 'मुद मंगल' में ही रहना चाहते हैं, मेरे जैसे आदमी को वे निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, डर लगता रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दुःख न लग जाए, पर मैं अशेष मंगलाकांक्षाओं के पीछे से झाँकती हुई **दुर्निवार शंकाकुल** आँखों में झाँकता हूँ, तो मंगल का सारा उत्साह फीका पड़ जाता है और बंदनवार, बंदनवार न दिखकर बटोरी हुई रस्सी की शक्ल में कुंडली मारे नागिन दिखती है, मंगल-घट औंधाई हुई अधफूटी **गगरी** दिखता है, उत्सव की रोशनी का तामझाम धुओं की गाँठों का अंबार दिखता है और मंगल-वाद्य डेरा उखाड़ने वाले अंतिम **कारबरदार** की उसाँस में बजकर एकबारगी बंद हो जाता है।

ऐश्वर्य और निर्वासन मनुष्य की सनातन नियति

मंगल में अमंगल की आशंका

राम की अनुपस्थिति में अयोध्या की दशा

लागति अवध भयावह भारी,
मानहुँ कालराति अँधियारी।
घोर जंतु सम पुर नरनारी,
डरपहिं एकहि एक निहारी।
घर मसान परिजन जनु भूता,
सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं,
सरित सरोवर देखि न जाहीं।[1]

---

1 गोस्वामी द्वारा रचित 'रामचरित मानस' के अयोध्या कांड से ये पंक्तियाँ ली गयी हैं। इनमें राम, लक्ष्मण और सीता के अयोध्या के वनगमन करने के बाद का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। इनका भावार्थ है: अयोध्या बड़ी डरावनी लग रही है। मानों अंधकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जंतुओं के समान एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं। घर मानो श्मशान, परिवार के लोग मानो भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराज के दूत हैं। बागों में वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा नहीं जाता।

जलावतनी: अपना देश त्यागकर विदेश में रहने वाला, निर्वासित; **उपलक्षण**: संकेत; **सालना**: पीड़ा देना; **आसरा**: सहारा, आश्रय; **बिसूरना**: रोना; **सहचारिणी**: पत्नी; **सनातन नियति**: सदा से चला आया निश्चित भाग्य चक्र; **दुर्निवार**: जिसका निवारण करना कठिन हो; **शंकाकुल**: शंका से चिंतित, **गगरी**: छोटा घड़ा; **कारबरदार**: उठाने वाला, सेवक।

मुकुट : राम के उत्कर्ष का प्रतीक

सीता का दुहरा निर्वासन

कैसे मंगलमय प्रभात की कल्पना थी और कैसी अँधेरी कालरात्रि आ गयी है? एक-दूसरे को देखने से डर लगता है। घर मसान हो गया है, अपने ही लोग भूत-प्रेत बन गये हैं, पेड़ सूख गये हैं, लताएँ कुम्हला गयी हैं। नदियों और सरोवरों को देखना भी दुसह हो गया है। केवल इसलिए कि जिसका ऐश्वर्य से अभिषेक हो रहा था, वह निर्वासित हो गया। उत्कर्ष की ओर उन्मुख समष्टि का चैतन्य अपने ही घर से बाहर कर दिया गया, उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोन्मुख चेतना की यही कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है। इसीलिए जब कीमत अदा कर ही दी गयी, तो उत्कर्ष कम-से-कम सुरक्षित रहे, यह चिंता स्वाभाविक हो जाती है। राम भीगें तो भीगें, राम के उत्कर्ष की कल्पना न भीगे, वह हर बारिश में हर दुर्दिन में सुरक्षित रहे। नर के रूप में लीला करने वाले नारायण निर्वासन की व्यवस्था झेलें, पर नर रूप में उनकी ईश्वरता का बोध दमकता रहे, पानी की बूंदों की झालर में उसकी दीप्ति छिपने न पाये। उस नारायण की सुख-सेज बने अनंत के अवतार लक्ष्मण भले ही भीगते रहें, उनका दुपट्टा, उनका अहर्निश जागर न भीजे, शेषी नारायण के ऐश्वर्य का गौरव अनंत शेष के जागर-संकल्प से ही सुरक्षित हो सकेगा और इन दोनों का गौरव जगजननी आद्याशक्ति के अखण्ड सौभाग्य, सीमंत सिंदूर से रक्षित हो सकेगा, उस शक्ति का एकनिष्ठ प्रेम-पाकर राम का मुकुट है, क्योंकि राम का निर्वासन वस्तुतः सीता का दुहरा निर्वासन है। राम तो लौटकर राजा होते हैं, पर रानी होते ही सीता राजा राम द्वारा वन में निर्वासित कर दी जाती है। राम के साथ लक्ष्मण हैं, सीता है, सीता वन्य पशुओं से घिरी हुई विजन में सोचती हैं — प्रसव की पीड़ा हो रही है, कौन इस वेला में सहारा देगा, कौन प्रसव के समय प्रकाश दिखलायेगा, कौन मुझे संभालेगा, कौन जन्म के गीत गायेगा?

कोई गीत नहीं गाता। सीता जंगल की सूखी लकड़ी बीनती है, जलाकर अँजोर करती हैं और जुड़वाँ बच्चों का मुँह निहारती हैं। दूध की तरह अपमान की ज्वाला में चित्त कूद पड़ने के लिए उफनता है और बच्चों की प्यारी और मासूम सूरत देखते ही उस पर पानी के छीटें पड़ जाते हैं, उफान दब जाता है। पर इस निर्वासन में भी सीता का सौभाग्य अखण्डित है, वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है, मुकुटधारी राम को निर्वासन से भी बड़ी व्यथा देता है और एक बार और अयोध्या जंगल बन जाती है, स्नेह की रसधार रेत बन जाती है, सब कुछ उलट-पलट जाता है, भवभूति के शब्दों में पहचान की बस एक निशानी बची रहती है, दूर ऊँचे खड़े तटस्थ पहाड़, राजमुकुट में जड़े हीरों की चमक के सैकड़ों शिखर, एकदम कठोर, तीखे और निर्मम —

> पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
> विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्
> बहोः कालाद् दृष्टं ह्यपरमिव मन्ये वनमिदं
> निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति।[1]

राम का मुकुट इतना भारी हो उठता है कि राम उस बोझ से कराह उठते हैं और इस वेदना के चीत्कार में सीता के माथे का सिंदूर और दमक उठता है, सीता का वर्चस्व और प्रखर हो उठता है।

बोध प्रश्न

4 "लागति अवध भयावह भारी" आदि किस रचनाकार की पंक्तियाँ हैं :
- क) भवभूति
- ख) विद्यानिवास मिश्र
- ग) तुलसीदास
- घ) वाल्मीकि ( )

5 आद्याशक्ति किसे कहा गया है:
- क) कौशल्या
- ख) दुर्गा
- ग) लक्ष्मी
- घ) सीता ( )

6 सीता को दूसरी बार वनवास क्यों दिया जाता है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

....

....

कुर्सी पर पड़े-पड़े यह सब सोचते-सोचते चार बजने को आये, इतने में दरवाजे पर हल्की-सी दस्तक पड़ी, चिरंजीव निचली मंज़िल से ऊपर नहीं चढ़े, सहमी हुई कृष्णा (मेरी मेहमान लड़की) बोली — दरवाजा खोलिए। आँखों में इतनी कातरता

1 उत्तर रामचरित, नाटक से उद्धृत पंक्तियाँ। इनका भावार्थ है: पूर्वकाल में जहाँ निर्मल जल के झरने थे, सुंदर तटों वाली नदियां बहती थीं और वनस्पतियों तथा संपत्र पेड़ों से युक्त घने जंगल थे, अब वहाँ सब कुछ विपरीत हो गया है। अब यह बहुत समय से परिचित जंगल सर्वथा अपरिचित दिखाई देता है। केवल पर्वत शिखरों की जड़ स्थिति ही प्रमाण है कि यह वही वन है, अन्यथा सब कुछ बदल गया है।

मसान: श्मशान; **समष्टि:** सामूहिक; **अहर्निशि:** दिन-रात; **शेषी नारायण:** शेष शायी विष्णु के लिए प्रयुक्त शब्द; **शेष:** शेषनाग, लक्ष्मण को इनका अवतार कहा गया है; **आद्याशक्ति:** आदि शक्ति सीता; **सीमंत:** मांग; **विजन:** निर्जन स्थान; **अंजोर करना:** प्रकाश करना, **भवभूति:** संस्कृत के प्रख्यात नाटककार जिन्होंने महावीर चरितम्, मालती माधवम् और उत्तर रामचरितम्, नाटकों की रचना की; **कातरता:** विकलता।

कि कुछ कहते नहीं बना, सिर्फ इतना कहा कि तुम लोगों को इसका क्या अंदाज होगा कि हम कितने परेशान रहे हैं। भोजन-दूध धरा रह गया, किसी ने भी छूआ नहीं, मुँह ढाँपकर सोने का बहाना शुरू हुआ, मैं भी **स्वस्ति** की साँस लेकर बिस्तर पर पड़ा, पर अर्धचेतन अवस्था में फिर जहाँ खोया हुआ था, वहीं लौट गया। अपने लड़के घर लौट आये, बारिश से नहीं, संगीत से भीगकर, मेरी दादी-नानी के गीतों के राम, लखन और सीता अभी भी वन-वन भीग रहे हैं। तेज बारिश में पेड़ की छाया और दु:खद हो जाती है, पेड़ की हर पत्ती से टप्-टप् बूँदें पड़ने लगती हैं, तने पर टिकें, तो उसकी हर नस-नस से **आप्लावित** होकर बारिश पीठ गलाने लगती है। जाने कब से मेरे राम भीग रहे हैं और बादल हैं कि मूसलाधार ढरकाये चले जा रहे हैं, इतने में मन में एक चोर धीरे-से फुसफुसाता है, राम तुम्हारे कब से हुए, तुम, जिसकी बुनाहट पहचान में नहीं आती, जिसके व्यक्तित्व के ताने-बाने तार-तार होकर अलग हो गये हैं, तुम्हारे कहे जानेवाले कोई हो भी सकते हैं कि वह तुम कह रहे हो, मेरे राम! और चोर की बात सच लगती है, मन कितना बँटा हुआ है, मनचाही और अनचाही दोनों तरह की हजार चीजों में। दूसरे कुछ **पतियायें** भी, पर अपने ही भीतर **परतीति** नहीं होती कि मैं किसी का हूँ या कोई मेरा है। पर दूसरी ओर यह भी सोचता हूँ कि क्या बार-बार विचित्र-से अनमनेपन में अकारण चिंता किसी के लिए होती है, वह चिन्ता क्या पराये के लिए होती है, वह क्या कुछ भी अपना नहीं है? फिर इस अनमनेपन में ही क्या राम अपनाने के लिए हाथ नहीं बढ़ाते आये हैं, क्या न-कुछ होना और न-कुछ बनाना ही अपनाने की उनकी बढ़ी हुई शर्त नहीं है?

राम के लिए दु:ख की शाश्वतता

तार टूट जाता है, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, यह भीतर से कहाँ पाऊँ? अपनी उदासी से ऐसा चिपकाव अपने संकरे-से-दर्द से ऐसा रिश्ता, राम को अपना कहने के लिए केवल उनके लिए भरा हुआ हृदय कहाँ पाऊँ? मैं शब्दों के घने जंगलों में **हिरा गया** हूँ। जानता हूँ, इन्हीं जंगलों के आसपास किसी टेकड़ी पर राम की पर्णकुटी है, पर इन उलझाने वाले शब्दों के अलावा मेरे पास कोई राह नहीं। शायद सामने उपस्थित अपने ही मनोराज्य के युवराज, अपने बचे-खुचे स्नेह के पात्र, अपने भविष्यत् के संकट की चिंता में राम के निर्वासन का जो ध्यान आ जाता है, उनसे भी अधिक एक बिजली से जगमगाते शहर में एक पढ़ी-लिखी चंद दिनों की मेहमान लड़की के एक रात कुछ देर से लौटने पर अकारण चिंता हो जाती है, उसमें सीता का ख्याल आ जाता है, वह राम के मुकुट या सीता के सिंदूर के भीगने की आशंका से जोड़े न जोड़े, आज की दरिद्र, अर्थहीन, उदासी को कुछ ऐसा अर्थ नहीं दे देता, जिससे जिंदगी ऊब से कुछ उबर सके?

दूसरों के लिए चिंता का अर्थ

और इतने में पूरब से हल्की **उजास** आती है और शहर के इस शोर-भरे **बियाबान** में चक्की के स्वर के साथ चढ़ती-उतरती **जंतसार गीति** हल्की-सी सिहरन पैदा कर जाती है।' 'मोरे राम के भीजै मुकुटुवा' और अमचूर की तरह विश्वविद्यालयी जीवन की नीरसता में सूखा मन कुछ जरूर ऊपरी सतह पर ही सही भीगता नहीं, तो कुछ नम तो जरूर ही हो जाता है, और महीनों की उमड़ी-घुमड़ी उदासी बरसने-बरसने को आ जाती है। बरस न पाये, यह अलग बात है (कुछ भीतर भाप हो, तब न बरसे), पर बरसने का यह भाव जिस ओर से आ रहा है, उधर राह होनी चाहिए। इतनी असंख्य कौसल्याओं के कंठ में बसी हुई जो एक अरूप ध्वनिमयी कौसल्या है, अपनी सृष्टि के संकट में उसके सतत् उत्कर्ष के लिए आकुल, उस कौसल्या की ओर, उस मानवीय संवेदना की ओर ही कहीं राह है, घास के नीचे दबी हुई। पर उस घास की महिमा अपरंपार है, उसे तो आज वन्य पशुओं का राजकीय संरक्षित क्षेत्र बनाया जा रहा है, नीचे ढकी हुई राह तो सैलानियों के घूमने के लिए, वन्य पशुओं के प्रदर्शन के लिए, फोटो खींचनेवालों की चमकती छवि यात्राओं के लिए बहुत ही रमणीक स्थली बनायी जा रही है। उस राह पर तुलसी और उनके मानस के नाप पर बड़े-बड़े तमाशे होंगे, फुलझड़ियाँ दगेंगी, सैर-सपाटे होंगे, पर वह राह ढँकी ही रह जायेगी, केवल चक्की का स्वर, श्रम का स्वर ढलती रात में भीगती रात में, अनसोये वात्सल्य का स्वर राह तलाशता रहेगा — किस ओर राम मुड़े होंगे, बारिश से बचने के लिए? किस ओर? किस ओर? बता दो सखी।

बोध प्रश्न

7 निबंध में वर्णित लक्ष्मण का दुपट्टा निम्नलिखित में से किस भाव का प्रतीक है।
- क) वीरता
- ख) जागरूकता
- ग) त्याग
- घ) सहनशीलता ( )

8 इस निबंध में राम के किस रूप को प्रमुखता दी गयी है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

....

....

9 इस निबंध में कौशल्या के भाव लेखक की किस भावना से जुड़े हैं? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

....

....

स्वस्ति: शुभ; **आप्लावित:** डुबाया हुआ; **पतियाना:** विश्वास करना; **परतीति:** विश्वास; **हिरा गया:** खो गया; **उजास:** प्रकाश; **बियाबान:** जंगल; **जंतसार गीति:** चक्की पीसते वक्त स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत।

40.3 निबंध का सार

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' आत्मपरक तथा ललित निबंध है। इस निबंध में निबंधकार के अतिरिक्त कुछ और भी सदस्य हैं जो उसे इस निबंध को लिखने की मानसिकता में पहुँचा देते हैं। वे सदस्य हैं — निबंधकार का पुत्र, निबंधकार की पत्नी तथा उनके घर पर मेहमान के रूप में महानगर दिल्ली से आई युवती कृष्णा जो वहाँ किसी कॉलेज में पढ़ाती है।

घटना इस प्रकार हुई कि निबंधकार के एक सुपुत्र और उनके घर मेहमान के रूप में राजधानी दिल्ली से आयी युवा अध्यापिका दोनों उनकी अनुमति से रात्रि में आयोजित एक संगीत समारोह में चले गये। उन्हें कहा गया था कि घंटे अथवा डेढ़ घंटे में अवश्य लौट आएँ। वे नहीं लौटे। आधी रात हुई और वह भी बीत गयी। पत्नी काफी नाराज हुई। यह चल ही रहा था कि आकाश में घिरे बादल बरसने लगे। खूब तेज बारिश होने लगी। प्रतीक्षा करते-करते किसी तरह पत्नी सो गयीं। फिर बारिश भी बंद हो गयी, किंतु पुत्र और मेहमान लड़की तब भी नहीं आये। अब तो लेखक का मन बहुत ही उद्विग्न हो उठा। वे तरह-तरह की कल्पनायें करने लगे। चिंता के उन्हीं क्षणों में अपनी दादी और नानी द्वारा गाये जाने वाले एक लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ लेखक के मस्तिष्क में कौंध गयीं।

"मोरे राम के भीजै मुकुटवा,
लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं।"

लोकगीत की इन पंक्तियों की स्मृति ने मन को एक बारगी झकझोर दिया। पिता का मन आज समझ पाया कि माता-पिता को अपनी संतान की कितनी चिंता होती है। प्रत्येक माता-पिता के लिए उनके बच्चों का कहीं भी बाहर जाना ऐसी ही व्याकुलता का कारण होता है जैसे पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ राम के वन को चले जाने पर माता कौशल्या का व्याकुल होना।

राम, लक्ष्मण और सीता को प्रत्येक माँ अपने बालकों की भांति मानती है। जीवन में घटी छोटी-से-छोटी घटना का संबंध रामकथा की किसी घटना से लोकचित जोड़ देता है। यहाँ भी यही हुआ कि संगीत सभा में गये और देर रात तक न लौटने वाले अपने बच्चों की चिंता में पिता का मन जैसे मां कौशल्या का मन हो गया। देश में और दुनिया में लाखों-करोड़ों माताएँ ऐसी हैं जिनके बालक बड़े होने पर बाहर चले जाते हैं और वे उनकी प्रतीक्षा में आँसू बहाती रहती हैं। कौसल्या की भांति व्याकुल होकर यह सोचती रहती हैं कि वर्षा के दिनों में उनके बालक कहीं भीग न जाएँ। वनवासी राम का मुकुट कहीं भीग न जाए। उनके धनुर्धर भाई का कहीं दुपट्टा भीग न जाए। उन्हें चिंता है कि कहीं उनकी लाड़ली सीता के मस्तक का सिंदूर बारिश में भीग न जाए।

राम के मुकुट, लक्ष्मण के पटके और सीता के सिंदूर के भीगने का वर्णन करने वाले लोकगीत की पंक्तियाँ अपने पुत्र तथा साथ गयी युवती की प्रतीक्षा करने वाले पिता के मन को लोकमन का प्रतिनिधि बना देती हैं। उनका मन श्री राम की वनयात्रा की कहानी में खो जाता है। वनयात्रा की यह कहानी किसी अनाम और अज्ञात लोककवि की मानसिक सृष्टि है। लोकमन में जुड़ी श्री राम के वनवास की मर्मस्पर्शी कथा को लोककवि ने एक नया रूप दे दिया। राम जन-जन के पुत्र हो गये। लोकगीत में लोकमन का राम से एक संबंध स्थापित हो गया। इस संबंध की व्याख्या में निबंधकार का ममता भरा मन वैश्विक विस्तार प्राप्त कर गया।

इस लोकगीत में तीन बातें मुख्य हैं। राम के मस्तक का मुकुट, लक्ष्मण की कमर में बंधा हुआ दुपट्टा और सीता की मांग का सिंदूर। वर्षा हो रही है। मुकुट, दुपट्टा और सिंदूर भीग रहे होंगे। काश! राम घर लौट आते ताकि तीनों की इस भीगो-भीगो देने वाली वर्षा से रक्षा हो सके।

इसके पश्चात् निबंधकार राम, लक्ष्मण और सीता से जुड़ी इन तीनों बातों की प्रतीकात्मक व्याख्या करता है। उसके अनुसार मुकुट प्रतीक है उदार-चरित्र और महान व्यक्ति के ऐश्वर्य का, जो लोकमन उसे प्रदान करता रहा है। उत्कृष्ट व्यक्ति संसार में निर्वासन की व्यथा भोगता है, फिर भी लोकमन उसका अभिषेक करता है। वनवासी होने पर भी उसे मुकुट पहनाता है और उस मुकुट को भीगने से बचाना चाहता है। इस मुकुट की रक्षा के निमित्त ही राम के साथ लक्ष्मण वन में गये। निबंधकार उनके कमरबंद दुपट्टे को प्रहरी की जागरूकता का प्रतीक मानता है। उदात्त गुणों के ऐश्वर्य के प्रतीक मुकुट की रक्षा-भावना कभी सोने न पाए। कभी मुकुट वर्षा के पानी से भीग न जाए। तीसरा प्रतीक है सीता की मांग का सिंदूर। सिंदूर प्रतीक है — नारी के सौभाग्य का, पतिसुख का। सीता तो चौदह वर्ष के वनवास के बाद पुनः निर्वासित हुई थीं। निर्वासित रहीं जीवन भर। सीता भले ही भीगती रहे, पर उनका मांगलिक प्रतीक सिंदूर न भीगने पाए। मानव जीवन और विशेषतः नारी के जीवन की कैसी अभिशाप कथा है यह। लोकमन कितना भीरु है कि नायकों की व्यथामय जीवन-यात्रा में उनके लिए मंगलकामना करता है। उनके प्रति यह मंगलकामना, यह चिंता वास्तव में उसकी अपने प्रति और अपनों के प्रति चिंता तथा मंगलकामना है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए निबंधकार ने लोकजीवन तथा साहित्य में बिखरे हुए सूत्रों का सहारा लिया है।

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' के रचनाकार का भावाकुल मन राम की वनयात्रा से जुड़े अनेक मार्मिक प्रसंगों में भीगता-भिगोता हुआ सुबह के चार बजा देता है। तब कहीं संगीत में रात भर भीगने के पश्चात् सुपुत्र का आगमन होता है, कृष्णा भी आ जाती है। उनके आने के पश्चात् भी मन राम की वनयात्रा के कंटकाकीर्ण पथ में अटका रहता है।

लोकमन से जुड़ी राम संबंधी स्मृतियों का क्रम चलता रहता है। मुकुट, कमरबंद और सिंदूर को भीगने से बचाने की चिंता में मन अब भी भीगता रहता है। बाहर की बारिश थम चुकी है। दिन का उजाला भी हो चुका है पर भीतर अब भी बारिश हो रही है। कौशल्याएँ अब भी व्याकुल हैं कि उनके बालक किसी पेड के नीचे खड़े भीगते होंगे। वह पेड़ कहाँ हैं? राम कब लौटकर घर आएँगे? बारिश कब रुकेगी? ऐसी ही भावप्रवण प्रश्नों के साथ निबंध समाप्त हो जाता है और पाठकों को भी अपने मन में सदा रहने वाले कोमल तथा उदात्त भावों से भिगो-भिगो जाता है।

40.4 संदर्भ सहित व्याख्या

इस निबंध में ऐसी कई पंक्तियाँ हैं जो अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, लेकिन व्याख्या के द्वारा जिनके अर्थ को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। आइए, यहाँ हम दो गद्यांशों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं, शेष महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या इकाई पढ़कर आप स्वयं करने की कोशिश कीजिए।

उद्धरण: 1

पर इस प्रतीक्षा में एकाएक उसका दर्द उस ढ़लती रात में उभर आया और सोचने लगा, आने वाली पीढ़ी, पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में वह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़ा से बड़ा संकट झेल लेगी।

संदर्भ: उपर्युक्त गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित ललित निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' से प्रस्तुत किया गया है। अपने पुत्र और एक मेहमान कन्या के संगीत सभा से देर रात तक न लौटने पर निबंधकार के मन में उक्त विचार उठते हैं। कवि को राम वनवास से संबंधित लोकगीत का भी स्मरण हो आता है।

व्याख्या: अपने पुत्र और मेहमान कन्या की प्रतीक्षा करते हुए लेखक यह महसूस करता है कि पिछली पीढ़ी के मन में अगली पीढ़ी के प्रति जो ममता होती है उसे वह समझ नहीं पाती। लेखक स्वयं उस ममत्व से उत्पन्न पीड़ा को आज समझ पाया है क्योंकि पुत्र वियोग ने उसे उसी मानसिकता में पहुँचा दिया है। यह पीड़ा अपनी संतान या प्रियजन के उस संभावित संकट की कल्पना से उत्पन्न होती है जो प्रियजन को अनुपस्थिति में आशंका के रूप में हमारे मन में जन्म लेती है। यह वास्तव में वह ममता ही है जो अनिष्ट की आशंका मात्र से व्यक्ति को चिंताग्रस्त बना देती है। इस ममता के कारण ही पुरानी पीढ़ी वह विश्वास नहीं कर पाती कि उनकी संतान अब योग्य और समर्थ है तथा संकट का सामना कर सकती है। वह यही समझती है कि मालूम नहीं उसकी संतान पर क्या गुजर रही होगी।

विशेष : 1 जिस लोकगीत का संदर्भ उपर्युक्त गद्यांश से पूर्व निबंध में आया है,उसमें व्यक्त भाव के दर्द को लेखक अपनी इसी मनःस्थिति में समझ पाता है।

2 गद्यांश की भाषा सहज और मर्मस्पर्शी है।

उद्धरण 2

मन फिर घूम गया कौशल्या की ओर, लाखों-करोड़ों कौसल्याओं की ओर, लाखों-करोड़ों कौसल्याओं के द्वारा मुखरित एक अनाम-अरूप कौशल्या की ओर, इन सब के राम वन में निर्वासित हैं। पर क्या बात है कि मुकुट अभी भी उनके माथे पर बंधा है और उसी के भीगने की इतनी चिंता है?

संदर्भ: उपर्युक्त गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' से प्रस्तुत किया गया है। इन पंक्तियों में एक पिता की मनः स्थिति का वर्णन है जो घनी अंधेरी रात में संतान के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। ऐसे समय मन में राम वनवास से संबंधित लोकगीत गूंज उठता है। उस लोकगीत में वन में बारिश से राम के मुकुट, लक्ष्मण के कमरबंद और सीता की मांग के सिंदूर के भीगने की चिंता व्यक्त की गयी है।

व्याख्या : लोकगीत में माता कौशल्या की ममता और संतान के प्रति भावाकुल चिंता का वर्णन है। श्री राम की मां कौशल्या ने संभवतः ऐसी चिंता की होगी। निबंधकार का मन अपनी संतान के प्रति की गयी चिंता में कौशल्या की चिंता का रूप देखता है। वह सोचता है कि जिन-जिन माताओं के बच्चे घर से बाहर गये हैं, वे सब माताएँ कौशल्याएँ हैं। प्रत्येक माँ के मन में एक कौशल्या बैठी है जो अपने बच्चों की प्रतीक्षा करती है। इन करोड़ों माताओं के नाम और रूप कुछ भी हो सकते हैं, किंतु भावनाएँ सबकी कौशल्या के समान हैं। लेखक यह भी विचार करता है कि राम अयोध्या को त्यागकर वन में चले गये फिर उनके मुकुट की भीगने की चिंता क्यों होती है? अभी तक भी क्या राम के मस्तक पर मुकुट बंधा है? घर और नगर से भी निकाल दिये गये राम के सिर पर मुकुट और उस मुकुट के भीगने की यह चिंता कैसी चिंता है?

विशेष: 1 इन पंक्तियों में लेखक ने लोकगीत में वर्णित एक असंगत प्रतीत होने वाली बात को लेकर प्रश्न उठाया है। वस्तुतः यहाँ लोक मानस का **विश्वास** ही कौशल्या के शब्दों में व्यक्त हुआ है। मुकुट लोकमन में राम की उत्कृष्टता का प्रतीक है और यही भावना यहाँ व्यक्त हुई है। मुकुट के भीगने का तात्पर्य यह है कि वन में भी राम की श्रेष्ठता वैसी ही बनी रहे।

2 संतान के वियोग के दर्द को लेखक ने राम वनवास की कथा से जोड़कर व्यापक अर्थ दिया है। लेखक ने अपनी बात अत्यंत प्रभावपूर्ण भाषा में कही है।

अभ्यास

निम्नलिखित गद्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

1 **जिसका ऐश्वर्य से अभिषेक हो रहा था, वह निर्वासित हो गया। उत्कर्ष की ओर उन्मुख समष्टि का चैतन्य अपने ही घर से बाहर कर दिया गया, उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोन्मुख चेतना की यही कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है। इसीलिए जब कीमत अदा कर ही दी गयी, तो उत्कर्ष कम से कम सुरक्षित रहे, यह चिंता स्वाभाविक हो जाती है।**

संदर्भ : ....

....

राम वनवास का संदर्भ ....

....

....

व्याख्या : संकेत : राम को राजा का पद प्राप्त हो रहा था, लेकिन उन्हें निर्वासन भोगना पड़ा। इसी प्रकार सामाजिक उत्कृष्टता के लिए भी व्यक्ति को राम की तरह कष्ट भोगने पड़ते हैं। लेकिन इस कष्ट की घड़ी में भी सामाजिक उत्कृष्टता के मूल्य बचे रहें।

....

....

....

....

....

विशेष : ....

....

....

....

....

40.5 अंतर्वस्तु

आपने निबंध का सावधानीपूर्वक अध्ययन कर लिया होगा। आप यह तो समझ ही गये होंगे कि यह निबंध विचार-प्रधान नहीं है। परन्तु इस निबंध में विचारों की उपेक्षा भी नहीं है। इस निबंध में एक निजी घटना के कारण रचनाकार के मन में जो विचार और भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, उनसे ही इस निबंध की अंतर्वस्तु का निर्माण हुआ है। आइए, संक्षेप में निबंध के विचारपक्ष और भावपक्ष पर विचार करें।

40.5.1 विचार पक्ष

इस निबंध की शुरुआत लेखक के जीवन की एक निजी घटना से होती है। एक शाम लेखक का पुत्र और उसके घर आयी मेहमान कन्या, लेखक के एक मित्र के साथ संगीत का कार्यक्रम सुनने जाते हैं। उनके लौटने में काफी देर हो जाती है, जिससे लेखक की पत्नी और स्वयं लेखक उद्विग्न हो जाते हैं। अनिष्ट की आशंका से ग्रस्त लेखक के मन में एक लोकगीत गूंज उठता है।

"मोरे राम के भीजै मुकुटवा
लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं।"

इस लोकगीत में कौशल्या की भावनाओं को वाणी दी गयी है जो वे वनवास के दौरान जंगल में भटकते राम, सीता, और लक्ष्मण के दुख की आशंका से ग्रस्त है। कौशल्या कल्पना करती हैं कि "मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा, लक्ष्मण का

दुपट्टा भीग रहा होगा, मेरी सीता की माँग का सिंदूर भीग रहा होगा, मेरे राम घर लौट आते"। लेखक के मन में पहली बार इस लोकगीत में व्यक्त दर्द का अनुभव हुआ। जब अपना कोई प्रियजन या अपनी संतान हमसे दूर होती है, तब उसके अमंगल की आशंका से चित्त उद्विग्न रहता है। यहाँ भी कौशल्या अपने पुत्रों और पुत्रवधू के दुःख की आशंका से ग्रस्त है। यही दुःख लोकगीत में व्यक्त हुआ है।

यहाँ लेखक एक महत्वपूर्ण बात कहता है। जब संतान आँखों से दूर होती है, तो माता-पिता संतान के संभावित दुःख की कल्पना मात्र से उद्विग्न रहते हैं। संतान के प्रति उनके मन की ममता ही उनके दुःख का कारण है। ममता में पड़कर ही वे संतान के विषय में या तो समय-असमय आशंका से ग्रस्त रहते हैं या उन्हें बच्चा ही समझते और संकट में अपनी रक्षा करने में असमर्थ मानकर कष्ट अनुभव करते रहते हैं। इसी ममत्व के कारण वे यह नहीं देख पाते कि संतान अब समर्थ हो चुकी है और अपने संकट का स्वयं सामना कर सकती है। दूसरी ओर बच्चे भी माता-पिता की ममता और उसके कारण उत्पन्न पीड़ा को नहीं समझ पाते।

मिश्रजी इसी क्रम में विचार करते हुए एक अन्य पक्ष को रेखांकित करते हैं। इस लोकगीत में गीतकार ने केवल राम की माता कौशल्या के दुःख को ही व्यक्त नहीं किया है बल्कि उन सभी माताओं के दुःख को व्यक्त किया है जिनकी संतान राम की तरह निर्वासन भोग रही है। यही कारण है कि राम-कथा के राम तो कभी के अयोध्या लौट चुके, परंतु लोकमानस के राम अभी भी लोकगीतों में निर्वासन भोग रहे हैं और उनका मुकुट भीग रहा है। यह विचित्र बात है। क्योंकि राम को जब वनवास दिया गया था, तब उन्हें वल्कल वस्त्र धारण करने पड़े थे और राजसी वस्त्रों का त्याग करना पड़ा था। लेकिन लोकमानस तो उन्हें राजा राम ही मानता रहा और वनवास में भी राम के मुकुट भीगने की कल्पना करता रहा।

यहाँ फिर निबंधकार के मन में एक अन्य विचार उभरता है। राम को उस समय वनवास दिया गया, जब उनका राजा के रूप में अभिषेक किया जाने वाला था। जिन्हें ऐश्वर्य का अधिकारी होना था, उन्हें निर्वासन का दुःख भोगना पड़ा। राम समष्टि या सामूहिकता की चेतना की उत्कृष्टता के प्रतीक हैं। मनुष्य की इसी उदात्त और ऊर्ध्वोन्मुख चेतना को प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही थी, राम के राज तिलक द्वारा। लेकिन ऐसा कब होता है? उदात्तता और श्रेष्ठता को तो वैसे ही लांछित और निर्वासित होना पड़ता है, जैसे राम को होना पड़ा। शायद यही सनातन नियम है। यहाँ मिश्रजी एक और बात कहते हैं। राम का भले ही निर्वासन हो गया, लेकिन उत्कर्षता या श्रेष्ठता (या श्रेष्ठ जीवन मूल्य) की रक्षा तो अवश्य हुई। कुछ ऐसा ही भाव इस लोकगीत में भी है। मुकुट राम की इसी उत्कृष्टता का प्रतीक है। लक्ष्मण का दुपट्टा मनुष्य की जागरूकता का प्रतीक है और सीता का सिंदूर स्त्री के सतीत्व और महान त्याग का प्रतीक है। राम, लक्ष्मण, और सीता भले ही भीगें अर्थात् उन्हें चाहे जितना कष्ट क्यों न झेलना पड़े, लेकिन उनका उत्कर्ष, हमेशा सुरक्षित रहे। मनुष्य रूप में ईश्वर चाहे जितने भी कष्ट झेले किंतु मनुष्य के रूप में उनके ईश्वर होने का ज्ञान सदैव प्रकाशमान रहे।

लेकिन राम की व्यथा से कहीं ज्यादा कष्टपरक है, सीता की व्यथा। रचनाकार ने सीता के दोहरे निर्वासन की ओर इंगित करते हुए कहा है कि वनवास से लौटकर राम तो राजा हो जाते हैं, लेकिन सीता को पुनः निर्वासन का दुःख झेलना पड़ता है। राम उसे ऐसे समय त्यागते हैं जब सीता गर्भवती है। उसके दुःख की कोई सीमा नहीं है। लेकिन सीता का यह दुःख लेखक के अनुसार राम की श्रेष्ठता को ही प्रमाणित करता है क्योंकि राम ने जिन मूल्यों की रक्षा के लिए सीता का परित्याग किया था, सीता अपने त्याग द्वारा उन्हें प्रमाणित करती है। सीता का यह विछोह राम को भी गहरी व्यथा में पहुँचा देता है।

इस प्रकार रचनाकार एक निजी घटना के माध्यम से लोकगीत में अंतर्निहित भावों के कई नये अर्थों को उजागर करता है और इस तरह राम वनवास की कथा को एक नया अर्थ देता है। राम, सीता और लक्ष्मण के वनवास में लोकमानस की अपनी भावनाओं का प्रतिबिंब भी है। वे सभी माताएँ कौशल्याएँ ही हैं जिनकी संतान उनके आँचल से दूर निर्वासन भोग रही है। उनके दुःख की कल्पना करते हुए इन कौशल्याओं को राम की माता कौशल्या के दुःख का स्मरण हो आता है और इस तरह लोक-मानस राम के निर्वासन में अपने दुःख का प्रतिबिंब पाता है।

40.5.2 भाव पक्ष

डॉ. विद्यानिवास मिश्र का यह निबंध भाव प्रधान कहा जा सकता है। यह निबंध रचनाकार ने अपनी एक ऐसी मानसिक दशा को व्यक्त करते हुए लिखा है, जो किसी भी ऐसे माता-पिता की मानसिक दशा हो सकती है जो अपनी संतान के विछोह में उसके अनिष्ट की आशंका से चिंतित है। ऐसी मानसिक अवस्था में व्यक्ति बहुत व्यवस्थित ढंग से विचार नहीं करता, बल्कि तरह-तरह के विचार जो उसके मन में ऐसे समय उठते हैं, वे उसके व्याकुल मन के ही प्रतिबिंब होते हैं; यद्यपि यह बात पूरी तरह से निबंध पर लागू नहीं होती। वस्तुतः यह सब तो इस निबंध की पृष्ठभूमि में है। लेखक अपने पुत्र और मेहमान की प्रतीक्षा करते हुए जब अधिक उद्विग्न हो जाता है और उसी स्थिति में "मेरे राम का भीजे मुकुटवा" गीत उसके दिमाग में गूंज उठता है, तो रचनाकार के मन में विचारों का एक नया प्रवाह शुरू हो जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि ऐसी स्थिति में भी लेखक के सामने वे ही मनोभाव प्रधान रहते हैं जो संतान के प्रति चिंता के कारण माता-पिता के मन में उत्पन्न होते हैं।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने इस निबंध में लोकमानस की व्याख्या भी की है। ऐसा क्यों है कि लोकगीतकार जंगल में निर्वासन भोगते राम के सिर पर मुकुट होने की कल्पना करता है। वस्तुतः यहाँ लोकमानस और कौशल्या का मन एकाकार हो गया है। संतान चाहे कितनी ही दरिद्र और विपन्न हो, माता-पिता हमेशा उन्हें श्री और शक्ति सम्पन्न देखना चाहते हैं। राम को भले ही निर्वासित कर दिया गया हो, लेकिन माता कौशल्या और जनता के मन में तो उनका राजतिलक हो चुका है। जनता

किस तरह पौराणिक चरित्रों और कथाओं को अपनी भावनाओं और इच्छाओं के अनुकूल ढाल लेती हैं, इसे डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से समझाया है।

डॉ. मिश्र ने राम वनवास की कथा में निहित मानवीय भावनाओं का उज्ज्वल पक्ष हमारे सामने रखा है।ऐश्वर्य से वंचित अपनी संतान के लिए किसी माता-पिता की पीड़ा और कौशल्या की पीड़ा दोनों एक-सी ही हैं। अपने से दूर गयी संतान के दुःखों की कल्पना मात्र माता-पिता को कितना उद्वेलित करती होगी, उस स्थिति को कौशल्या की पीड़ा से समझा जा सकता है। इसीलिए लेखक विश्व की सभी माताओं की कौशल्या के रूप में कल्पना करता है क्योंकि संतान के दूर होने पर ही उसके प्रति ममता का हमें गहरा बोध होता है और तभी हम दूसरों की पीड़ा को भी समझ पाते हैं। यह पीड़ा सिर्फ अपनी संतान के प्रति ही नहीं होती, दूसरों की संतान के प्रति भी हो सकती है।

40.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

हमने इकाई 38 और 39 में यह बताया था कि ललित निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव अन्य निबंधों की तुलना में अधिक सुगमता से पहचाना जा सकता है। ललित निबंधकार प्रायः अपने निबंध "मैं" शैली में लिखता है, जिसके कारण स्वयं उसके जीवन की घटना, स्थिति, भाव या विचार प्रत्यक्ष रूप में ही सामने उभर कर आते हैं। इस निबंध की शुरुआत भी लेखक के जीवन की एक निजी घटना से होती है। निबंध में स्वयं लेखक, उसकी पत्नी, पुत्र, मित्र और मेहमान का उल्लेख आता है।

यह निजी प्रसंग जहाँ निबंध में लेखकीय निजता का समावेश कर देता है, वहीं उसमें आत्मीयता का तत्व भी आ जाता है। निजता और आत्मीयता निबंध को संवेदनशील बनाती हैं। यह ध्यान रखने की बात है कि निजता और आत्मीयता का तात्पर्य यह नहीं है कि लेखक सिर्फ अपने बारे में लिख रहा है। अगर ऐसा होता तो निबंध का उतना महत्व कभी नहीं हो सकता था। वस्तुतः निज की घटना के माध्यम से लेखक जिन बातों का उल्लेख करता है वह केवल लेखक के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि इस निबंध के पाठकों के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। वस्तुतः यह निबंध आत्मपरक तो है परंतु लेखक आत्मनिष्ठ नहीं हुआ है और अपनी बात को कहते हुए वह निजबद्धता से सावधानीपूर्वक बचा है।

इस निबंध को पढ़ने से हमारे सामने यह तथ्य भी उजागर हो जाता है कि लेखक की रुचि प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य में बहुत गहरी है और यह विशेषता उसके व्यक्तित्व का अपरिहार्य अंग है। इसी तथ्य के साथ यह ध्यान देने की बात है कि जितनी रुचि लेखक की प्राचीन भारतीय साहित्य में है उतनी ही लोक संस्कृति में भी है। यही कारण है कि "मोरे राम का भीजे मुकुटवा" लोकगीत की विशद व्याख्या जहाँ भारतीय संस्कृति के प्राणतत्व-मनुष्य की श्रेष्ठता की भारतीय परिकल्पना को प्रकट करती है वहीं लोक मानस से लेखक के गहरे जुड़ाव को भी उजागर करती है। यहाँ लेखक के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू हमारे सामने उभरता है और वह है, पौराणिक चरित्रों और कथाओं की लोकवादी व्याख्या का प्रयास। राम वनवास की कथा की जो व्याख्या इस निबंध में दी गयी है और जिस ढंग से जन मानस के अपने दुःख-दर्द से उसे जोड़ा गया है, वह लेखक की गहरी संवेदनशीलता और सूझबूझ का परिचायक है।

यह निबंध लेखक की लोक चेतना को भी उजागर करता है। अपने पुत्र के लिए चिंतित होना स्वाभाविक है, लेकिन उस चिंता को अन्य के दुःख दर्द से जोड़ देना और उसे एक व्यापक अर्थ देना लेखक की लोक-हृदय की पहचान का परिचय देता है। यही कारण है कि लेखक निजी दर्द को मानवीय चिंता का साकार रूप देने में सफल हुआ है।

> *बचपन में दादी-नानी जाँते पर यह गीत गातीं, मेरे घर से बाहर जाने पर विदेश में रहने पर वे यही गीत विह्वल होकर गातीं और लौटने पर कहतीं — "मेरे लाल को कैसा वनवास मिला था"। जब मुझे दादी-नानी की इस आकुलता पर हंसी भी आती, गीत का स्वर बड़ा मीठा लगता। हाँ, तब उसका दर्द नहीं छूता। पर इस प्रतीक्षा में एकाएक उसका दर्द उस ढलती रात में उभर आया और सोचने लगा आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है।*

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से मिलाइए।

10 "मोरे राम के भीजै मुकुटवा" लोकगीत में कौशल्या की किस भावना की अभिव्यक्ति हुई है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

....

....

11 इस निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की कौन-कौन सी विशेषताएँ व्यक्त हुई हैं? किन्हीं तीन विशेषताओं के नाम लिखिए।

1) ....

2) ....

3) ....

12 इस निबंध में लेखक ने मुख्य रूप से किन-किन बातों पर विचार किया है, उनमें से किन्हीं दो को बताइए।

....

....

....

अभ्यास

2 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' निबंध में यह बार-बार कहा गया है कि राम भले ही भीग जाएँ उनका मुकुट न भीगने पाए। इससे क्या तात्पर्य है?

....

....

....

....

....

40.7 संरचना शिल्प

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक यह निबंध अब तक पढ़े गये निबंधों की तुलना में जटिल है। इसमें लेखक के भाव और विचार अधिक गुंफित रूप में आते हैं। दूसरे उसमें विचारों का तारतम्य नहीं है, बल्कि कई विचार एक साथ उभरते हैं। इसलिए उनके बीच में वैसी संगति या तार्किकता नज़र नहीं आती जैसी इससे पहले के निबंधों में दिखाई देती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भाषा और शैली के स्तर पर यह दुरूह निबंध है। सच्चाई तो यह है कि अंतर्वस्तु के स्तर की जटिलता के बावजूद भाषा और शैली का सौंदर्य पूरी तरह से अभिव्यक्त हुआ है। इस निबंध की भाषा-शैली कई दृष्टियों से अन्य निबंधकारों से भिन्न है, आइए, हम इन बातों पर विचार करें।

40.7.1 भाषा

यह निबंध भी ललित निबंध है। इसलिए लेखक अपनी भाषा और शैली के प्रति अत्यंत सजग है। चूंकि यह निबंध लेखक ने आत्मपरक शैली में लिखा है और लेखक की आत्मीयता, संवेदनशीलता तथा लोकमानस के प्रति उसका गहरा लगाव व्यक्त हुआ है, इसलिए भाषा भी उसी के अनुकूल भावप्रवण, मर्मस्पर्शी और उदात्त है। जहाँ वैचारिक पक्ष अधिक उभरा है, वहाँ भी भाषा में सरसता बनी रही है। लेखक के बात कहने का ढंग जहाँ निजता लिये हुए है, वहाँ उसमें आत्मीयता का स्पर्श भी झलकता है, जो सीधे पाठक के हृदय को छूता है।

> *तार टूट जाता है, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, यह भीतर से कहाँ पाऊं? अपनी उदासी से ऐसा चिपकाव अपने संकरे से दर्द से ऐसा रिश्ता, राम को अपना कहने के लिए केवल उनके लिए भरा हुआ हृदय कहाँ पाऊं? मैं शब्दों के घने जंगलों में घिरा गया हूँ।*

इस निबंध की भाषा में एक तरह का काव्य का सा आनंद है। लेखक किसी स्थिति, भाव या विचार का वर्णन करते हुए उसे इस रूप में चित्रित कर देता है जिससे पाठकों के सामने उनका एक बिंब खड़ा हो जाता है। उदाहरण के लिए राम द्वारा निर्वासित सीता की दशा का यह वर्णन देखिए। यह मात्र शाब्दिक वर्णन नहीं है, बल्कि एक बिंब है जो सीता की पीड़ा को हमारे सामने मूर्त कर देता है।

> *सीता जंगल की सूखी लकड़ी बिनती है, जलाकर अंजोर करती है और जुड़वां बच्चों का मुँह निहारती है। दूध की तरह अपमान की ज्वाला में चित्त कूद पड़ने के लिए उफनता है और बच्चों की प्यारी और मासूम सूरत देखते ही उस पर पानी के छींटे पड़ जाते हैं, उफान दब जाता है।*

इस निबंध की भाषा यद्यपि तत्सम-प्रधान है, लेकिन आवश्यकतानुसार इसमें तद्भव, देशज और उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए या उसके अन्य पक्षों को स्पष्ट करने के लिए मिश्रजी हिंदी, संस्कृत आदि काव्य-ग्रंथों से अथवा लोक-काव्य से उद्धरण भी देते हैं। वैसे तो उनकी भाषा सहज और स्पष्ट है, लेकिन कहीं-कहीं विचारों की जटिलता के कारण क्लिष्ट भी नजर आती है। जैसे निम्नलिखित वाक्यः

> *उत्कर्ष की ओर उन्मुख समष्टि का चैतन्य अपने ही घर से बाहर कर दिया गया, उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोन्मुख चेतना की यही कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है।*

उपर्युक्त वाक्य को ध्यानपूर्वक और संदर्भ को दृष्टि में रखकर पढ़ा जाय तो इसे समझने में कठिनाई नहीं होगी।

मिश्र के निबंध में कुछ शब्द प्रयोग खटकने वाले भी हैं। जैसे मुटरी का फहरना। मुटरी को फहराया नहीं जा सकता।

40.7.2 शैली

ललित निबंध की शैली का निजीपन और उसका सौंदर्य हम इस निबंध में भी देख सकते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध से इनकी शैली की यह भिन्नता है कि इसमें अधिक आत्मपरकता और भावप्रवणता है। द्विवेदीजी के निबंध में उनका विद्वत रूप भी झलकता है जबकि मिश्रजी के निबंध में उनका सहृदय कवि रूप अधिक झलकता है। द्विवेदीजी के निबंधों में प्रायः एक ही विचार विकसित होता हुआ दिखाई देता है जबकि मिश्रजी के निबंध में भावना की एकरूपता होती है, साथ ही निबंध के दौरान कई विचार उठते हुए भी दिखाई देते हैं। शैली का यह अंतर दोनों का निजी वैशिष्ट्य है। मिश्रजी भी अपनी बात को प्रभावशाली, आत्मीय और भावप्रवण रूप में प्रस्तुत करते हैं, यद्यपि निबंध पढ़ते हुए उनके विस्तृत अध्ययन और ज्ञान का बार-बार परिचय मिलता है। विशेष रूप से उनके निबंधों में आने वाले उद्धरणों से इसका संकेत मिलता है लेकिन यह सब उनके यहाँ अत्यंत सहज़ रूप में आते हैं। उनमें बनावट या विद्वता, प्रदर्शित करने का भाव नहीं है। वस्तुतः उनके निबंध हमारे विचारों को उतना उद्वेलित नहीं करते जितना हमारे हृदय को। वे हमें एक खास तरह के लालित्य में डूबो देते हैं। यही उनकी शैली की विशेषता है।

40.8 प्रतिपाद्य

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' निबंध का केंद्रीय भाव तो मनुष्य मन का वात्सल्य है, लेकिन इसका विस्तार कई अन्य भावनाओं और विचारों को भी अपने में समेटे हुए है। मनुष्य की बाहरी दशा में चाहे जितना भी परिवर्तन क्यों न हो, उसके आंतरिक मनोभावों में परिवर्तन नहीं होता। आज से हजारों साल पहले, जिस प्रकार राम, सीता, लक्ष्मण के वन जाने पर कौशल्या का मन तड़पता होगा, क्या आज भी अपनी संतान के लिए माता-पिता का मन नहीं तड़पता है? मनुष्य के आंतरिक मनोभावों की एकता का यह सूत्र ही उसे आज भी रामकथा से जोड़े हुए है, इसीलिए वह आज भी दर्द से विकल होकर गा उठता है "मोरे राम का भीजे मुकुटवा"।

इसी क्रम में लेखक एक अन्य प्रश्न उठाता है। जब राम को निर्वासित किया गया तो उनके राजसी वस्त्र उतार दिये गये, उनका मुकुट भी। लेकिन इस लोकगीत में राम को मुकुट धारण किये हुए कल्पित किया गया है। वस्तुतः यह जन-मानस में राम का ईश्वरत्व या उत्कृष्टता का भाव है, जिसे जनता सुरक्षित देखना चाहती है।

तीसरी बात लेखक ने इस निबंध में यह कही है कि राम का निर्वासन वस्तुतः उनका ऐश्वर्य से निर्वासन भी है और इस रूप में जिनकी संतान भी ऐश्वर्य से वंचित कर दी गई है, उनका दर्द भी राम-वनवास में व्यक्त हुआ है। माता-पिता हमेशा अपनी संतान की उत्कृष्टता सुख और मंगल की कामना करते हैं। मुकुट उनकी इसी कामना का प्रतीक है।

इस प्रकार यह निबंध राम-वनवास की कथा के माध्यम से मनुष्य मन के वात्सल्य भाव के कई पक्षों को उजागर करता है।

जहाँ तक निबंध के शीर्षक का प्रश्न है, वह अत्यंत उपयुक्त है, क्योंकि लेखक ने जो भी बात कही है वह किसी न किसी रूप में इस शीर्षक में व्यक्त बात की व्याख्या करते हुए ही कही है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

13 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है।' किस शैली में है?
- क) व्यंग्य शैली
- ख) वर्णनात्मक शैली
- ग) आत्मपरक शैली
- घ) विवेचनपरक शैली

14 निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत, बताइए। ( )

1 यह निबंध विचार-प्रधान है।	(सही/गलत)
2 इस निबंध की भाषा तत्सम-प्रधान है।	(सही/गलत)
3 शैली भाववादी और आत्मपरक है।	(सही/गलत)
4 निबंध का केन्द्रीय विषय राम का चरित्र-चित्रण है।	(सही/गलत)
5 निबंध की भाषा सरस, भावप्रवण और प्रभावशाली है।	(सही/गलत)

15 निबंध का केंद्रीय भाव क्या है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

....

....

3 "मनुष्य की बाहरी दशा में चाहे जितना भी परिवर्तन क्यों न हो उसके आंतरिक मनोभावों में परिवर्तन नहीं होता?"
इस निबंध के आधार पर उपयुक्त पंक्ति की व्याख्या कीजिए?

4 निबंध की भाषागत विशेषताओं पर पाँच पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

40.9 सारांश

- इस इकाई में आपने डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' का अध्ययन किया है। यह एक ललित निबंध है। इस निबंध में लेखक ने राम-वनवास पर लिखे गये एक लोकगीत के माध्यम से मनुष्य के अपने बच्चों के प्रति ममत्व भाव की व्याख्या की है। इस निबंध में उन्होंने मनुष्य के आंतरिक मनोभाव की रागात्मकता पर भी प्रकाश डाला है और मनुष्यत्व की उत्कृष्टता को भी रेखांकित किया है। निबंध के इन सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं की व्याख्या आप स्वयं कर सकेंगे।
- इस निबंध में डॉ. विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तित्व की कई विशेषताओं की अभिव्यक्ति हुई है। इनमें उनकी निजता, आत्मीयता, उदात्तता तथा भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्येता के रूप आदि का परिचय मिलता है। आप स्वयं इन विशेषताओं को पहचान सकते हैं।
- इस निबंध की भाषा सरल, सहज और भावप्रवण है। शब्दावली तत्सम प्रधान है यद्यपि आवश्यकतानुसार अन्य देशज और तद्भव शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। शैली की दृष्टि से यह निबंध भाव और आत्मपरक शैली में लिखा गया है। अब आप स्वयं इस निबंध की भाषा और शैली की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- निबंध का केंद्रीय भाव है, मनुष्य के वात्सल्य भाव की व्याख्या। लेखक ने मनुष्यत्व की उत्कृष्टता और ऐश्वर्य से निर्वासन के प्रश्न पर भी विचार किया है। निबंध के केन्द्रीय भाव और मंतव्य का विवेचन आप स्वयं कर सकते हैं।

40.10 शब्दावली

वैश्विक विस्तार : विश्वव्यापी विस्तार अर्थात् जहाँ मन संपूर्ण संसार को अपने में समाहित समझे।

श्री : संपन्नता।

आत्मनिष्ठ : व्यक्ति के स्व से आबद्ध।

निजबद्धता : व्यक्ति के निजीपन से बँधा हुआ।

किसी विचार, भाव या स्थिति का मूर्त चित्र जो शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, बिंब कहते हैं।

40.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 निबंधकार का पुत्र और उनके यहाँ आई मेहमान लड़की संगीत के कार्यक्रम में गये हैं उनके समय पर न लौट पा के कारण लेखक उद्विग्न है।

2 राम के वनवास के दौरान माता कौशल्या के मन में राम, सीता और लक्ष्मण को लेकर जो चिंता रही होगी, उसे ही इस गीत में व्यक्त किया गया है।

3 लेखक गीत में निहित दर्द को इसलिए समझ सका क्योंकि वह स्वयं भी उसी तरह की मानसिकता से गुजर रहा है संतान के संभावित कष्ट की कल्पना दोनों के यहाँ विद्यमान है।

4 ग

5 घ

6 सीता के चरित्र पर अंगुली उठाये जाने पर राम सीता को निर्वासित कर देते हैं।

7 ख

8 राम के वनवासी रूप को प्रमुखता दी गयी है।

9 लेखक भी अपनी संतान के संभावित कष्ट की कल्पना से चिंतित है।

10 इस गीत में कौशल्या, राम, लक्ष्मण और सीता के कष्टों की कल्पना करके दुखी है और कामना करती है कि वनवास के दौरान उन्हें कोई कष्ट न हो और वे सकुशल घर लौट आयें।

11 1 कवि हृदय
2 आत्मीयता
3 प्राचीन साहित्य और संस्कृति से गहरा लगाव

12 1 मनुष्य की अपनी संतान के प्रति ममता
2 मनुष्यत्व की उत्कर्षता

13 ग

14 1) गलत, 2) सही, 3) सही, 4) गलत, 5) सही

15 निबंध का केंद्रीय भाव मनुष्य के वात्सल्य भाव की व्याख्या है।

अभ्यास

1 गद्यांश की व्याख्या के लिए उपभाग 40.5.1 देखिए।

2 उपभाग 40.5.1 देखिए।

3 भाग 40.8 देखिए।

4 उपभाग 40.7.1 देखिए।

उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल, रामचंद्र : **चिंतामणि** (पहला भाग), इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद : **साहित्य-सहचर**, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

शर्मा, रामविलास : **आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी अलोचना**, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

मिश्र, विद्यानिवास : **मेरे राम का मुकुट भीग रहा है**, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली।

शर्मा, रामविलास : **भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा**, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

शर्मा, रामविलास : **महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण**, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

त्यागी, सुरेशचन्द्र (सं) : **कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर': व्यक्ति और साहित्य**, आशिर प्रकाशन, सहारनपुर

डॉ. धीरेंद्र वर्मा एवं अन्य : **हिंदी साहित्य कोश** (भाग एक एवं दो) ज्ञानमंडल, वाराणसी।